Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तकालय

विषय संख्या
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें।

112816

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३४४ D

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

स्टाक समीक्षा १९८३-१९८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

112816
CHECKED 1973

भाग २४, खण्ड २

जुलाई-दिसम्बर

१९२३

पुस्तक सं० ..
आगत सं० 2466-92
गुरुकुल पुस्तकालय कांगड़ी

सम्पादक

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०

सहायक सम्पादक—देवीदत्त शुक्ल

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

वार्षिक मूल्य साढ़े छः रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख-सूची ।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अत्यधिकता (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	११४
२	अन्योक्तिमणिमाला (कविता)	श्रीयुत जर्नादन झा	५३५
३	अभिलाषा (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	३२८
४	अर्थशास्त्र की कुछ प्रारंभिक बातें	श्रीयुत राधाकृष्ण वैश्य, एम० ए०	३४८
५	आकांक्षा की निवृत्ति	श्रीयुत हृषीकेश	४७१
६	इख्नातन	श्रीयुत वनमालीप्रसाद शुक्ल	२३७
७	इतिहास का महत्त्व	श्रीयुत लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, एम० ए०	२८
८	इतिहास में स्वतन्त्रताका विकास	श्रीयुत दीनदयालु श्रीवास्तव, बी० ए०	३१६
९	इष्ट-देव (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	१४२
१०	इँग्लेंड में चार वर्ष	श्रीयुत एम० सी० बनर्जी, आई० ई० एस०	२२२
११	इँग्लेंड में भारतवर्ष	श्रीयुत रमाशङ्कर उपाध्याय	१५६
१२	इंडो-सीदियन जातिकी सभ्यता	श्रीयुत रमाशङ्कर उपाध्याय	४२६
१३	उत्थान और पतन	श्रीयुत विनायक विश्वनाथ वैद्य	५४७
१४	एक अद्भुत जीव	श्रीयुत शिवगोपाल मिश्र	३२९
१५	एकता कैसे हो	श्रीयुत जर्नादन भट्ट, एम० ए०	३४०
१६	कथा-विधि	श्रीयुत ईश्वरचन्द्र ब्रह्मचारी	४३
१७	कपास की कृषि और किस्में	श्रीयुत रामस्वरूप गुप्त, एम० ए०	२२
१८	कला का महत्त्व	श्रीयुत दीनदयालु श्रीवास्तव, बी० ए०	१३१
१९	कवि की स्त्री	श्रीयुत सुदर्शन	३६९
२०	गति-सङ्गीत	श्रीयुत लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव	१५
२१	घर और बाहर	अनुवादक पण्डित रूपनारायण पाण्डेय	६४,१६६,२७५, ३८५,४८४ और ५७२
२२	चारु चयन		८१,१७५,२८४,३९३,४९१, और ६०४
२३	छाया-चित्रण	'सिद्धहस्त'	२४९
२४	जन्मान्ध (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय	४५८
२५	जयपुर के तीन ऐतिहासिक व्यक्ति	श्रीयुत हनूमान शर्म्मा	३६४
२६	जापान में भूकम्प	श्रीयुत गिरिजाशङ्कर वाजपेयी	४३८
२७	जौहरी या जादूगर	श्रीयुत पारसनाथसिंह बी० ए०, एल-एल० बी०	४२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
२८	टामस विलियम रीज़ डेविड्स	श्रीयुत गिरिजाशङ्कर वाजपेयी	१
२९	तिमिर में आलोक	श्रीयुत दुर्गादत्त जोशी, बी० ए० ...	५५१
३०	तीर्थ-रेणु	अनुवादक श्रीयुत सुशीलकुमार	५२२
३१	दलबन्दी	श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव	६१
३२	दुर्विचार (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय	३३८
३३	देशी ओषधियों की परीक्षा और निर्माण ...	पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी	४
३४	देश की कथा	... ...	५९२
३५	द्रोणाचार्य (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	३६
३६	पञ्चपात्र	'ग्रामीण' ...	४४४३, २५४, ४४९ और ५३८
३७	पतङ्ग (कविता)	श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट, बी० ए ...	१३१
३८	पारिवारिक शिक्षा	श्रीयुत सुदर्शन	१२५
३९	पुस्तक-परिचय		१०२, २०४, ३१, ४१४, ५१८ और ६२४
४०	प्राचीन और आधुनिक राष्ट्र-निर्माण ...	श्रीयुत हर्षदेव ओली	१५३
४१	बालकों के छाया-चित्रण पर कुछ विचार ...	'सिद्धहस्त'	३५५
४२	बिजली की अँगीठी और चूल्हे	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एसी०, ई० ई० ...	२६०
४३	बिजली की रोशनी	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एसी०, ई० ई० ...	३२
४४	बीजापुर	श्रीयुत दयाशङ्कर अवस्थी ...	११५
४५	भारत की उन्नति के उपाय	श्रीयुत गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ...	९
४६	भारत के बन्दरगाह	श्रीयुत सियाराम चतुर्वेदी, बी० ए० ...	४७७
४७	भाषाओं का श्रेणी-विभाग	श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल भातत्त्वरत्न, एम० ए०	५६६
४८	मकड़ी (कविता)	श्रीयुत चमूपति 'चातक', एम० ...	५६६
४९	मर्दुमशुमारी की "हिन्दुस्तानी" भाषा ...	श्रीयुत सहदेवसिंह वर्म्मा ...	४१७
५०	मान की अवधि (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	१४
५१	माहाता शैसा	श्रीयुत रामकृष्ण राजवैद्य, बी० ए एल-एल० बी०	५२५
५२	मैडेगास्कर-द्वीप के मूल-निवासी ...	श्रीयुत शिवगोपाल मिश्र	५३२
५३	मौलिकता का स्वरूप	श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव	३५८
५४	रायसाहब गोविन्दलालजी पुरोहित, पुष्करणेन्दु ...	श्रीयुत गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री	४३३
५५	रुक्मिणी-हरण	पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी	१०९
५६	वर्ष के अन्त में (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	५२१
५७	वातावरण	श्रीयुत शङ्करराव जोशी	४६२
५८	विमर्श-विचार	... ...	६२१
५९	विविध विषय		९२, १९३, २६९, ४, ५०४ और ६१४
६०	विश्लेष (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	२४८
६१	विश्व-मैत्री	श्रीयुत वनमालीप्रसाद शुक्ल	३१३
६२	वैरागी वीर	श्रीयुत सन्तराम, बी० ए० ...	२४२, ३३३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
६३	शब्दार्थ-तत्त्व	श्रीयुत नलिनीमोहन सान्याल भाषा-तत्त्व-रत्न, एम० ए० ...	१६० और २२६
६४	शिक्षा	श्रीयुत विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक ...	२६४
६५	शिशु-व्यायाम	श्रीयुत कनकचन्द्र मुकर्जी	५८
६६	शेक्सपियर का विश्व-सन्देश	श्रीयुत गिरिजादत्त शुक्ल, बी० ए० ...	२०६
६७	श्रीरवीन्द्रनाथ के दार्शनिक विचार ...	श्रीयुत रामस्वरूप गुप्त, एम० ए०... ...	१३६
६८	समझौता	श्रीयुत मावलीप्रसाद श्रीवास्तव	१२१
६९	समय	श्रीयुत गोरखप्रसाद, एम० ए०	१४७
७०	सरकार की शासन-समीक्षा	श्रीयुत सहदेवसिंह वर्म्मा	२१२
७१	सरलता (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय	२६३
७२	स्पेन में	श्रीयुत गिरीशचन्द्र घोषाल ...	३७८ और ५५८
७३	स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद	श्रीयुत गिरिजाशङ्कर वाजपेयी	१०५
७४	संसार की गति	... ...	५८२
७५	हमारा जीवन-सर्वस्व (कविता)... ...	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	४२५
७६	हिन्दी-साहित्य और मुसलमान कवि ...	श्रीयुत हरिवल्लभ जोशी	३८
७७	हिन्दी में नाटक और अभिनय	श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए० ...	४५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची।

रङ्गीन चित्र।

नम्बर	नाम	महीना	पृष्ठ
१	अभिमन्यु-शोकातुरा सुभद्रा और उत्तरा	नवम्बर	४५७
२	उमर ख़याम	जुलाई	मुखपृष्ठ
३	कर्ण और कुन्ती	जुलाई	४५
४	चित्र-पद्माकर (नं० १) ...	दिसम्बर	मुखपृष्ठ
५	,, ,, (,, २) ...	,, ...	५३२
६	चित्र-बिहारी (नं० १२) ...	जुलाई	८
७	,, ,, (,, १६) ...	सितम्बर	२७२
८	,, ,, (,, १७) ...	नवम्बर	मुखपृष्ठ
९	,, ,, (,, १८) ...	नवम्बर	४८८
१०	दिन का अवसान	सितम्बर	मुखपृष्ठ
११	द्रौपदी और जयद्रथ	आक्तूबर	३२८
१२	नृत्य-सम्मिलन	सितम्बर	२९६
१३	परम पूजनीय रामभक्तशिरोमणि श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ...	अगस्त	१९८
१४	मणिमाला	अगस्त	मुखपृष्ठ
१५	मन्दिर की नर्त्तकी	आक्तूबर	मुखपृष्ठ
१६	मानिनी	अगस्त	१५६
१७	मुग्धा	आक्तूबर	३४४
१८	शिशु कर्ण और कुन्ती ...	अगस्त	१३६
१९	सरलता	दिसम्बर...	५४८

सादे चित्र।

१-३	इलाहाबाद के विश्वविद्यालय में वायसराय-सम्बन्धी ३ चित्र	५०९-५१०
४-१४	इँग्लेंड में चार वर्ष-सम्बन्धी ११ चित्र	२२३-२२९
१५-१७	कला और छाया-चित्रण-सम्बन्धी ३ चित्र	५१७
१८-२९	गति-सङ्गीत-सम्बन्धी १२ चित्र	१५-२२
३०-४४	छाया-चित्रण-सम्बन्धी १५ चित्र	२४९-२५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	नाम	पृष्ठ
४५-४७	जयपुर के तीन ऐतिहासिक व्यक्ति-सम्बन्धी ३ चित्र	३६४-३६७
४८-५७	जापान में भूकम्प-सम्बन्धी १० चित्र	४३८-४४७
५८	पण्डित मदनमोहन मालवीय	२००
५९-६५	पाश्चात्य-साहित्य में नायिका-भेद-सम्बन्धी ७ चित्र	६०८-६१२
६६-७०	बालकों के छाया-चित्रण पर कुछ विचार-सम्बन्धी ५ चित्र	३५५-३५७
७१-७२	बिजली की रोशनी-सम्बन्धी २ चित्र	३३-३५
७३-७७	बिजली की अँगीठी और चूल्हे-सम्बन्धी ५ चित्र	२६०-२६२
७८-८९	बीजापुर-सम्बन्धी १२ चित्र	११५-१२०
९०-९६	भारत के बन्दरगाह-सम्बन्धी ७ चित्र	४७८-४८२
९७-१०२	लखनऊ की बाढ़-सम्बन्धी ६ चित्र	४१०-४१३
१०३	वैरागी वीर	२४६
१०४-११०	शिशु-व्यायाम-सम्बन्धी ७ चित्र	५८-६१
१११-१२३	समय-सम्बन्धी १३ चित्र	१४७-१५२
१२४-१२५	सम्मोहन-विद्या-सम्बन्धी २ चित्र	१८३-१८४
१२६-१४१	स्पेन में-सम्बन्धी १६ चित्र	५५९-५६५
१४२-१५७	स्पेन-सम्बन्धी १६ चित्र	३७८-३८५
१५८	स्वर्गीय पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र	४०९
१५९	स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद	१०७

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

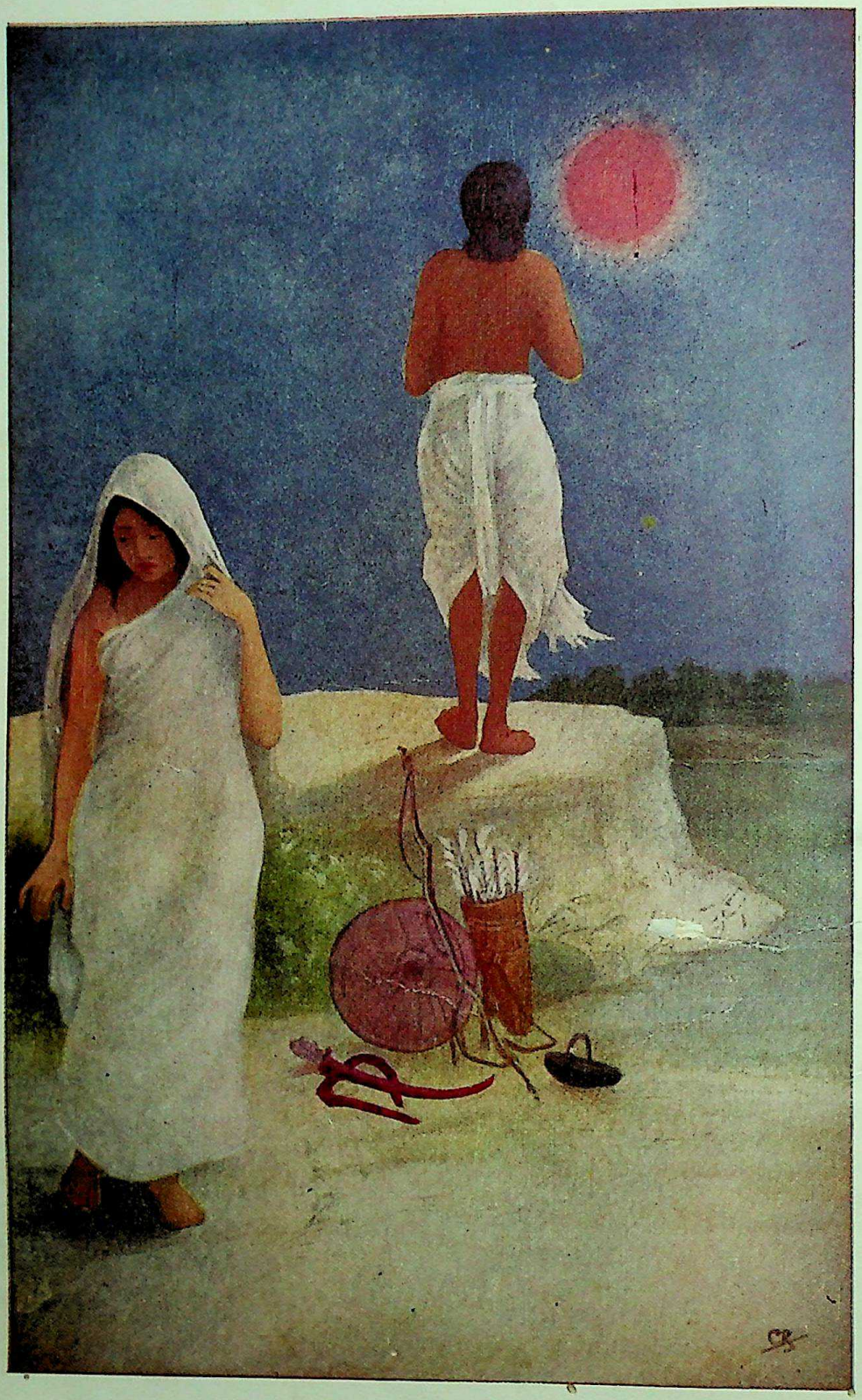

कर्ण और कुन्ती ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशु कर्ण और कुन्ती ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिमन्यु-शोकातुरा सुभद्रा और उत्तरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

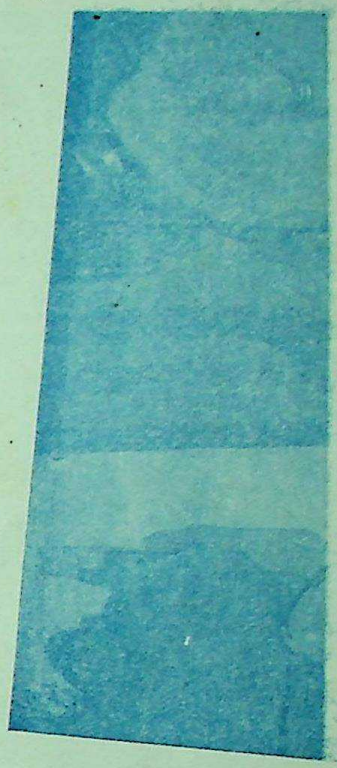

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रौपदी और जयद्रथ ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उमर खयाम ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(श्रीयुत चारुचन्द्र राय द्वारा अङ्कित)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुग्धा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरलता ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

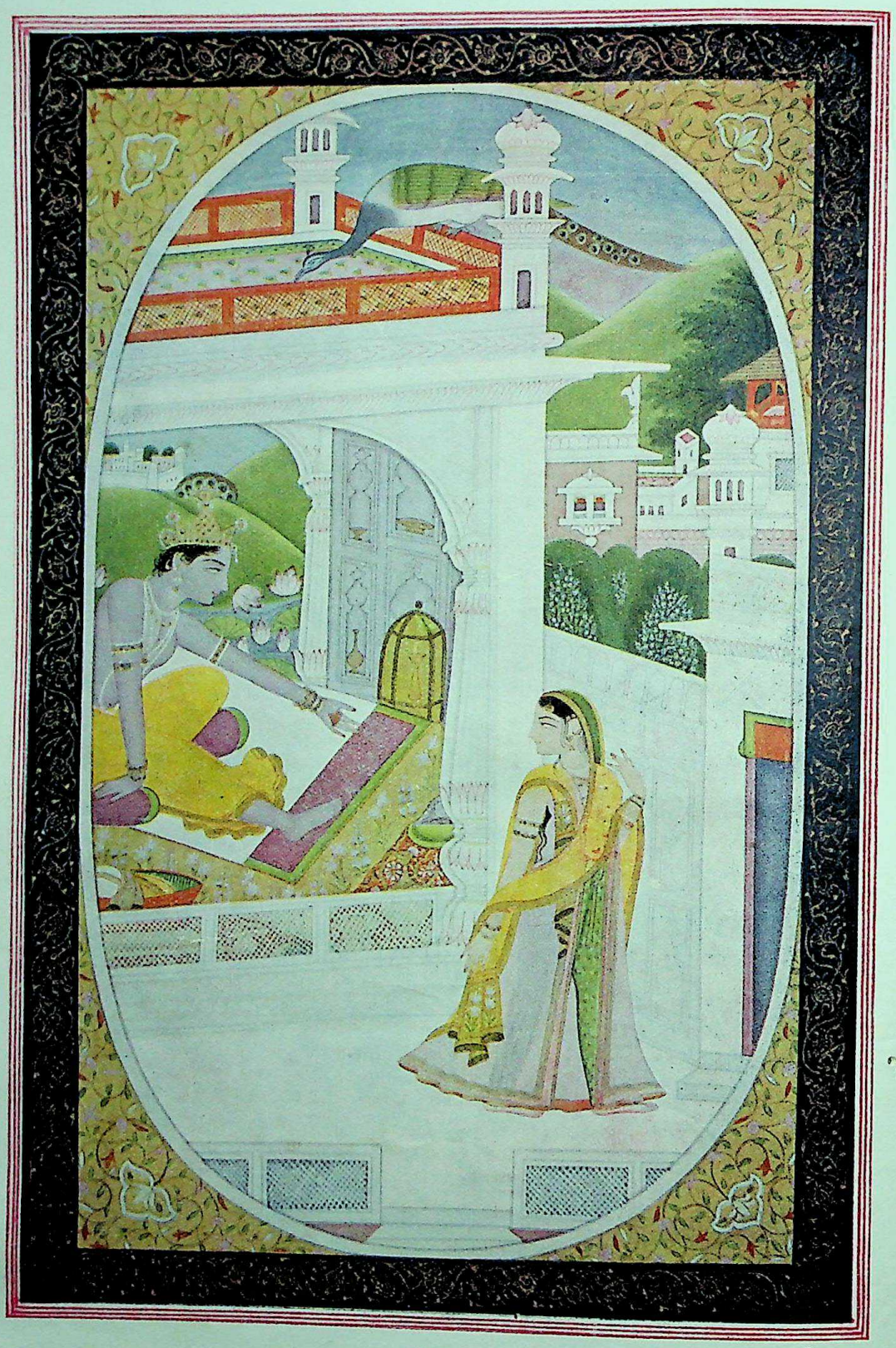

मानिनी ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मणिमाला ।

इंडियन प्रिंटिंग, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

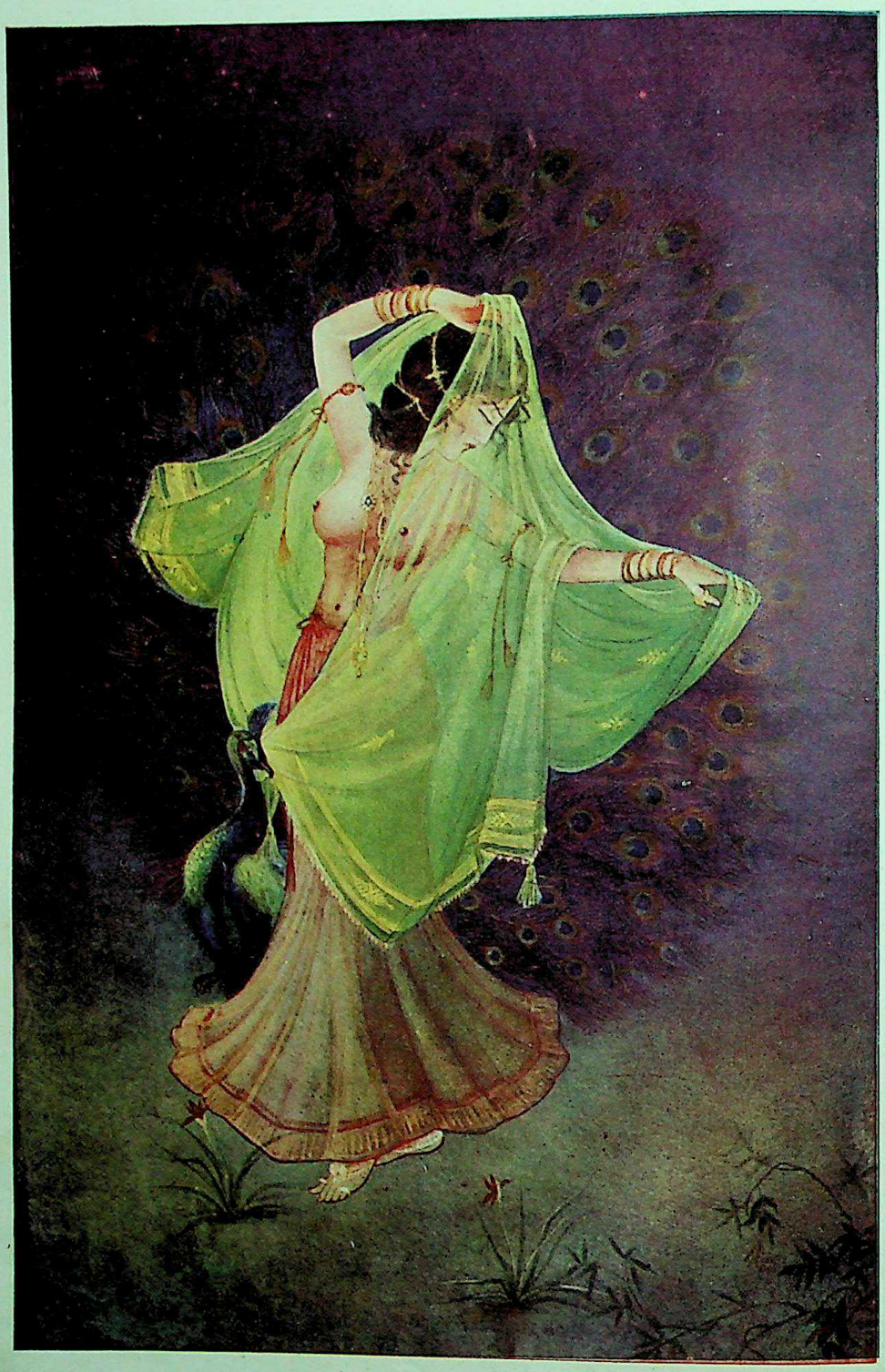

नृत्य-सम्मिलन ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।]

[श्रीयुत एम० ए० रहमान चग़ताई की कृपा से ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दिर की नर्त्तकी ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।

[श्रीयुत एम० ए० रहमान चग़ताई की कृपा से ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

चित्र-बिहारी ।

(नं० १८)

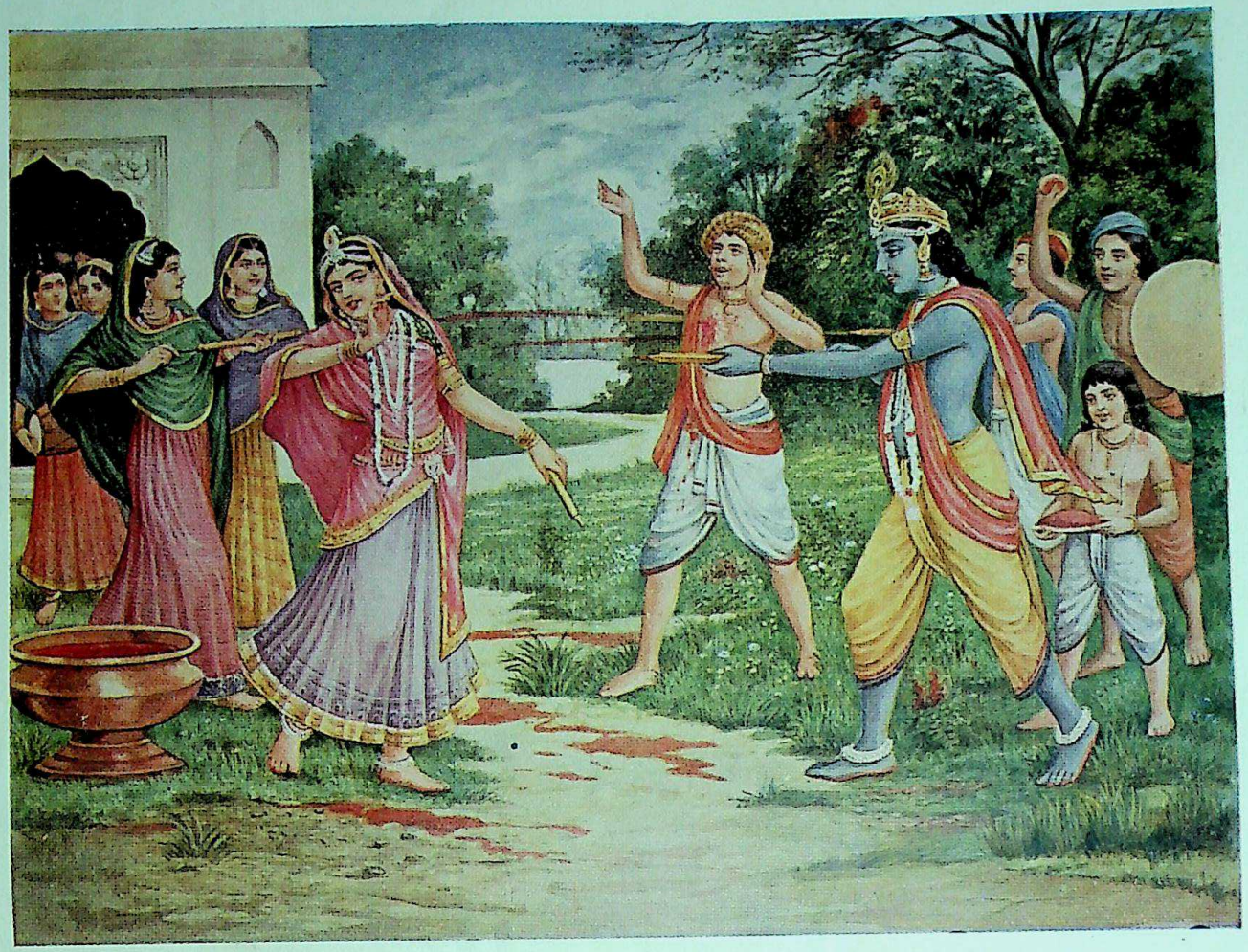

रस भिजये दोऊ दुहुनि तउ टिक रहे टरैं न ।
छबि सो छिरकत प्रेम रँग भरि पिचकारी नैन ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छवि सो छिरकत प्रेम रँग भरि पिचकारी नैन ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-बिहारी ।

(नं० १७)

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोय ।
जा तन की झांईं परे स्याम हरितदुति होय ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-बिहारी

(नं० १६)

दुचिते चित चलति न हालति, हँसति न झुकति विचारि ।
लिखत चित्र पिय सखि चितै, रही चित्रसी नारि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूस मास सुनि सखिनि सों , साईं चलत सबार ।
गहि कर बीन प्रवीन तिय, राग्यो राग मलार ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-पद्माकर

(१)

काहू कियो धौं कहैं बस भाव तो काहू कहूँ धौं कछू छल छायो ।
त्यों पद्माकर तान तरङ्गनि काहू किधौं रचि रङ्ग रिझायो ॥
जानि परै न कछू गति आज की जा हित एतो बिलम्ब लगायो ।
मोहन मो मन मोहिबे को किधौं मो मन को मनिहार न पायो ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-पद्माकर

(२)

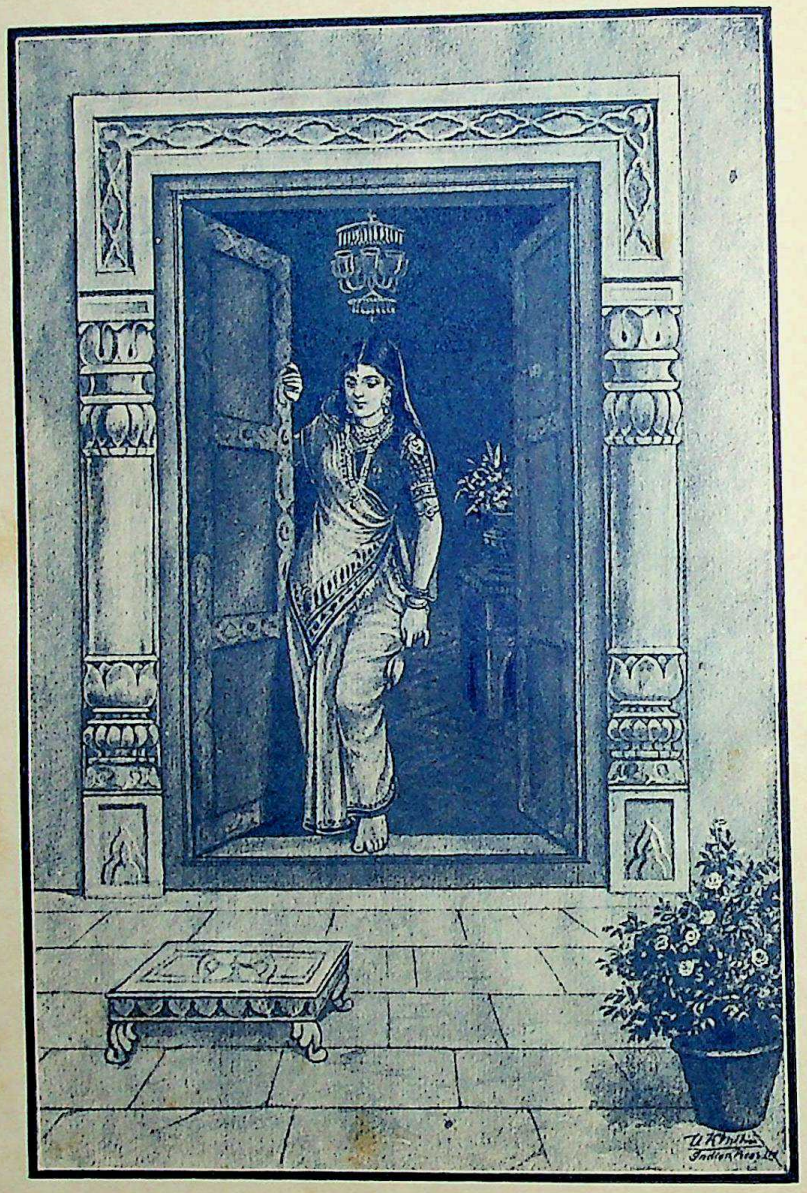

आरत सों आरत सम्हारत न सीस-पट, गजब गुजारत गरीबन के धार पर।
कहै पदमाकर सुगन्ध सरसावै शुचि, विथुरि विराजै बार हीरन के हार पर॥
छाजत छबीले छिति छहरि छरा के छोर, भोर उठि आई केलि मन्दिर दुआर पर।
एक पग भीतर औ एक देहरी पै धरे एक कर कंज एक कर है किवार पर॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन का अवसान।

[श्रीयुत एम. ए. रहमान चग़ताई की कृपा से।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग २४, खण्ड २] जुलाई १९२३—आषाढ़ १९८० [संख्या १, पूर्ण संख्या २८३

टामस विलियम रीज़ डेविड्स।

कुछ समय से योरप में बौद्ध-धर्म और बौद्ध-साहित्य की अच्छी चर्चा हो रही है। कितने ही पाश्चात्य विद्वानों ने बौद्ध-साहित्य का अनुशीलन कर बड़ी ख्याति प्राप्त की है। इन्हीं में रीज़ डेविड्स साहब की गणना थी। नीचे आपका संक्षिप्त चरित प्रकाशित किया जाता है।

रीज़ डेविड्स का जन्म सन् १८४३ में हुआ था। ये सीलोन की सिविल सर्विस में सम्मिलित हुए। सन् १८६६ में इनकी नियुक्ति हुई। सिविल सर्विस में भर्ती होने के पहले ही रीज़ डेविड्स ने संस्कृत पढ़ी थी। इन्होंने ब्रेसलो में (Breslau) स्टेंज़लर (Stenzler) से संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की थी। सीलोन आने पर इन्होंने पाली का अध्ययन किया। इन्होंने पाली-भाषा एक सिलोनी विद्वान् से सीखी थी। इन्होंने सन् १८७७ के हिबर्ट लेक्चर्स में मुक्त-कण्ठ से अपने इस गुरु की प्रशंसा की है। जब ये सन् १८७७ में इँग्लेंड लौट आये तब इन्होंने बारिस्टरी पास की, पर वकालत नहीं की।

सन् १८८२ से तीस वर्ष तक रीज़ डेविड्स लन्दन के यूनीवर्सिटी कालेज में पाली के अध्यापक रहे। इसके सिवा सन् १८२७ से १९०४ तक इन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायल एशियाटिक सोसायटी के सेक्रेटरी और लायब्रेरियन का भी कार्य किया। सन् १८९४ में अपना विवाह करके ये अमरीका चले गये और वहाँ बौद्ध-धर्म, उसके साहित्य तथा इतिहास पर इन्होंने व्याख्यान दिये। इनके इन व्याख्यानों की खूब प्रशंसा हुई। जब सन् १९०२ में ब्रिटिश अकेडेमी और बाद को लन्दन स्कूल आव् ओरियंटल स्टडीज़ नामक संस्थायें स्थापित हुईं तब इनकी स्थापना में इन्होंने पूरा भाग लिया था। सन् १९०४ में इनको मैंचेस्टर में 'तुलनामूलक धर्म' के अध्यापक का पद प्रदान किया गया। गत युद्ध के प्रारम्भ तक इसी पद पर ये काम करते रहे। इसके सिवा सन् १९१० में ये इंडिया सोसायटी के प्रथम सभापति मनोनीत किये गये। अपनी मृत्यु के समय ये इसी पद पर काम करते थे। इनकी मृत्यु गत वर्ष के दिसम्बर में हो गई।

रीज़ डेविड्स ब्रिटिश एकेडमी के फ़ेलो थे। इन्हें अनेक आनरेरी डिग्रियाँ भी प्राप्त थीं। डेनिश-रायल कालेज और शेफ़ील्ड यूनीवर्सिटी की डी० एस-सी०, ब्रेसलो की पी० एच० डी०, एडिंबर्ग की एल-एल० डी० और मैंचेस्टर की डी० लिट० की डिग्रियाँ इनको समय समय पर दी गई थीं।

रीज़ डेविड्स का विद्वत्ता-पूर्ण कार्य सन् १८७७ से प्रारम्भ हुआ था। इसी साल इन्होंने 'सीलोन के प्राचीन सिक्के और बाँट' शीर्षक लेख एशियाटिक सोसायटी की सीलोन-शाखा के जर्नल में छपवाया था। इसके साथ ही इन्होंने 'बौद्ध-धर्म' नामक एक छोटी पुस्तक भी लिखी। उपर्युक्त लेख तथा पुस्तक में इन्होंने अपनी विवेचना-शक्ति तथा प्रतिभा का पूरा परिचय दिया था। यही नहीं, किन्तु बौद्ध-धर्म की पुस्तक को प्रकाशित कर इन्होंने साहस का भी परिचय दिया, इस पुस्तक में इन्होंने पहले के पाश्चात्य प्राच्य-विदों के भ्रमों का निदर्शन करके बौद्ध-धर्म के इतिहास का वर्णन किया था। यद्यपि बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में उस पुस्तक की रचना के बाद बहुत कुछ खोज का काम हुआ, तथापि इस पुस्तक में अधिक फेर-बदल करने की अभी तक आवश्यकता नहीं हुई। एक इसी बात से इनके बौद्ध-धर्म के विशेषज्ञ होने का पक्का प्रमाण मिल जाता है।

सन् १८८० में रीज़ डेविड्स ने जातक का अनुवाद प्रकाशित किया। इसके दूसरे वर्ष एक विद्वान् के साथ विनय-ग्रन्थ और सूत्र-ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित कराये। इसी समय इनके प्रसिद्ध 'हिबर्ट लेक्चर्स' भी पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इन व्याख्यानों की गणना उत्कृष्ट साहित्यिक रचना में की जाती है।

बौद्ध-साहित्य के जो अगणित हस्त-लिखित ग्रन्थ योरप के विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयों में पड़े सड़ रहे थे उन्हें सम्पादित कर प्रकाशित करने का विचार रीज़ डेविड्स ने पहले पहल सन् १८८१ में किया था। यही नहीं, उन्होंने इसी साल पाली टेक्स्ट सोसायटी के स्थापन की घोषणा भी कर दी। निस्सन्देह इस शुभ कार्य का श्रीगणेश अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण था। इस सोसायटी के मुख्य प्रबन्धकों में कई एक प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्राच्यविद् थे। इनमें अब अकेले एम० इमिली सेनार्ट ही जीवित हैं। इस सोसायटी के सभापति का पद-भार ग्रहण करके रीज़ डेविड्स ने ग्रन्थों के प्रकाशन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य प्रारम्भ कर दिया और एक वर्ष के ही भीतर तीन प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रन्थ प्रकाशित करने में सफल हुए। इन तीनों ग्रन्थों का सम्पादन डाक्टर रिचर्ड मारिस ने किया था। ये भी उपर्युक्त प्रबन्धक कमिटी के सदस्य थे। इनके सिवा एक जैन-ग्रन्थ भी अध्यापक जैकोबी के सम्पादकत्व में इन्होंने प्रकाशित किया। यह इन्हीं के अदम्य उत्साह और घोर परिश्रम का फल था कि यह सोसायटी उस समय से अब तक अर्थात् लगातार चालीस वर्ष तक, अपना कार्य बराबर करती रही और इस समय में उसने जितने ग्रन्थ प्रकाशित किये उन सबकी पृष्ठ-संख्या २५००० के लगभग पहुँचती है।

पाली के जो मूल-ग्रन्थ उपर्युक्त सोसायटी-द्वारा प्रकाशित हुए हैं उनमें दीघनिकाय का सम्पादन रीज़ डेविड्स ने भी किया था। इस पुस्तक के पिछले खण्ड को छोड़ कर सारे ग्रन्थ का सम्पादन इन्होंने अध्यापक एस्टलिं कारपेंटर नामक एक विद्वान् के साथ किया था। यह बड़ा भारी कार्य था और इसे पूरा करने में पूरे चालीस वर्ष लग गये। सोसायटी के कार्य में इन्हें अपनी स्त्री से भी काफ़ी सहायता सदा मिलती रही।

जैसी ख्याति दीघनिकाय के अनुवाद में रीज़ डेविड्स को प्राप्त हुई है वैसी ही मिलिन्द प्रश्न के अनुवाद में हुई। ये दोनों अनुवाद इनके पाली के पाण्डित्य के पूर्ण परिचायक हैं।

रीज़ डेविड्स बौद्धकालीन भारतीय इतिहास के विशेषज्ञ थे। इनका 'बुद्धिस्ट इंडिया' इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'केम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया' में 'अर्ली हिस्ट्री आव् दि बुद्धिस्ट्स' नाम का जो अध्याय इन्होंने लिखा है वह भी उसी प्रकार महत्त्वपूर्ण हुआ है। बौद्ध-काल में कोशल, मगध एवं गङ्गा के आस-पास के गण-राज्यों के सम्बन्ध में जिन रहस्यों का उद्घाटन इन्होंने किया है उनसे इनके इतिहास-ज्ञान की सूक्ष्मता का पता लगता है। प्रिंसेप और जार्जटर्नौर इन गण-राज्यों के सम्बन्ध में जो थोड़ी बहुत बातें खोज सके थे उससे कहीं अधिक विस्तृत विवरण खोज निकालने में ये समर्थ हुए थे।

पाली-भाषा के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन करने के सिवा रीज़ डेविड्स ने एक और भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इनका यह कार्य पाली-कोश है। इसकी रचना के लिए इन्होंने पहले विराट् आयोजन किया था और इस सम्बन्ध में संसार भर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध बौद्ध विद्वानों से सहायता प्राप्त करने के लिए कई वर्ष तक लिखा-पढ़ी करते रहे। इस कार्य का सञ्चालन करने के लिए इन्होंने पर्याप्त धन भी सङ्ग्रह कर लिया था। परन्तु गत योरपीय युद्ध के प्रारम्भ हो जाने पर तथा कई सहकारियों की मृत्यु के कारण ये अपने उद्योग में विफल-मनोरथ हुए। अन्त में इन्होंने उस विराट् कार्य का समग्र भार अपने ही सिर ले लिया और इन्होंने उस कोश की रचना का श्रीगणेश कर दिया। उस समय इनकी उम्र ७० वर्ष की थी। सौभाग्य की बात है कि अपनी मृत्यु के पहले ये इस विश्वकोश का आधा भाग छाप डालने में समर्थ हुए और उसकी अवशिष्ट प्रति के संशोधन करने के लिए भी इनको समय मिल गया। इस प्रकार ये अपनी मृत्यु के पहले अपने इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न सा हुआ देख सके। पाली की कोश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना में इनका तथा इनके पूर्ववर्ती विद्वान् चाइल्डर्स का नाम सदा अमर रहेगा। चाइल्डर्स भी लन्दन के यूनीवर्सिटी कालेज में इन्हीं के साथ पाली के अध्यापक थे। पाली का एक कोश पहले उन्होंने ही बनाया था। वे भी इनके साथ सीलोन की सिविलसर्विस में नियुक्त हुए थे और परस्पर मित्र थे।

जिस पाली टेक्स्ट सोसायटी का उल्लेख ऊपर हुआ है और जिसकी सृष्टि रीज़ डेविड्स ने ही सन् १८८१ में की थी उसके कोष में इन्होंने भी कुछ धन दान किया था, परन्तु 'ऐतिहासिक खोज का एक मित्र' के गुप्त नाम से। इस बात से इनकी सहृदयता टपकती है। ये इतिहास के कितने अधिक प्रेमी थे, इसका भी पता इससे लग जाता है। वास्तव में इनके जीवन का एकमात्र उद्देश इतिहास की खोज ही था। ऐसे ही विद्वानों के द्वारा सत्य की यथार्थ परीक्षा होती है। अतएव उनके नाम चिरस्मरणीय हैं।

गिरिजाशङ्कर वाजपेयी

देशी ओषधियों की परीक्षा और निर्माण।

कुछ रोग ऐसे हैं जो देश-विशेषों ही में अधिक होते हैं। गर्मी और सर्दी, नमी और रूक्षता तथा आबोहवा और स्थिति का बहुत कुछ प्रभाव मनुष्य-शरीर पर पड़ता है। जो देश बहुत सर्द हैं वहाँ कुछ रोग ऐसे होते हैं जो गरम देशों में नहीं पाये जाते। इसी तरह गरम देशों के कुछ रोग सर्द देशों में नहीं होते। इँग्लेंड में सर्दी अधिक रहती है। वहांवाले सर्द देश के निवासी हैं। पर उन लोगों ने अपना अधिकार ऐसे भी देशों पर जमा लिया है जो बहुत गरम हैं। ऐसे गरम देशों को भी उन्हें जाना और वहाँ रहना पड़ता है। वहाँ के कुछ विशेष प्रकार के रोगों से पीड़ित होने पर विलायती डाक्टरों से कुछ भी करते-धरते नहीं बनता। क्योंकि उन रोगों के कारण, निदान, लक्षण और चिकित्सा से वे अनभिज्ञ होते हैं। इस त्रुटि को दूर करने के लिए उन्होंने कहीं कहीं विशेष प्रकार के डाक्टरी कालेज और स्कूल खोले हैं। वहाँ गरम देशों के रोगों के कारण आदि की जाँच भी होती है और उनकी चिकित्सा-विधि भी सिखाई जाती है।

इस तरह का एक स्कूल कलकत्ते में भी है। उसी के साथ एक परीक्षागार भी है। स्कूल में उष्ण-देश-जात—श्वेत कुष्ट, काला-अज़र, बेरीबेरी आदि—रोगों का कारण, निदान और चिकित्सा भी सिखाई जाती है और परीक्षागार में नई नई ओषधियों के रोगनाशक गुणों की परीक्षा भी होती है। वहाँ रोगियों को रखने और उनका इलाज करने के लिए एक अस्पताल भी है। इस स्कूल, परीक्षागार, ओषधि-निर्म्माणशाला और अस्पताल की संस्थापना हुए अभी कुछ ही समय हुआ। स्कूल में अन्य विषयों की शिक्षा के सिवा सफ़ाई और तन्दुरुस्ती से सम्बन्ध रखनेवाली बातों की भी शिक्षा दी जाती है, और यह शिक्षा, सुनते हैं, उस शिक्षा से किसी तरह कम नहीं जिसकी प्राप्ति के लिए लोग स्वयं विलायत जाते हैं अथवा गवर्नमेंट के द्वारा या उसकी आज्ञा से भेजे जाते हैं।

इस स्कूल का नाम है स्कूल आव् ट्रापिकल डिज़ीज़ेज़ (School of Tropical Diseases) इसमें स्वदेशी ओषधियों की भी परीक्षा होती है और वे तैयार भी की जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि स्कूल का कम से कम यह विभाग, इस देश की हित-दृष्टि से, बड़े महत्त्व का है। परन्तु इसकी स्थापना या स्थापना में सहायता करने का श्रेय न तो हमारे वैद्यराजों को है, न हकीम साहबों को, और न यहाँ के धनवान् लक्ष्मीपतियों ही को। इसके संस्थापक अँगरेज़ ही हैं। वे लोग और अँगरेज़ी गवर्नमेंट ही इसका अधिकांश ख़र्च चलाती है। इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर लिओनार्ड राजर्स ने खोला है। इसकी इमारत में १४½ लाख रुपया ख़र्च हुआ है। इसके परीक्षागार में तीन विद्वान् खोज का काम करते हैं। उनकी और उनके सहायक कर्मचारियों की तनख़्वाह और दूसरे ख़र्च वे अँगरेज़ देते हैं जो जूट, चाय और खानों का व्यवसाय करते हैं। कुछ सहायता गवर्नमेंट आव् इंडिया भी देती है। स्कूल में जितने प्रोफ़ेसर (अध्यापक) और अन्य कर्मचारी हैं उनके ख़र्च का अधिकांश बङ्गाल की गवर्नमेंट अपने ख़ज़ाने से देती है। इसके सिवा इस स्कूल में कुछ विद्वान् छात्र ऐसे भी रहते हैं जो भिन्न भिन्न विषयों की खोज और जाँच करते हैं। उन्हें छात्रवृत्तियाँ मिलती हैं। महाराजा दरभङ्गा और मित्र नाम के एक महाशय की धर्मपत्नी के द्वारा भी दो छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। डेविड यूल नाम के एक धनी अँगरेज़ भी इसकी सहायता करते हैं।

अभी, हाल में, इस स्कूल की वार्षिक रिपोर्ट निकली है। उसका सम्बन्ध १९२२ ईसवी से है। उसके पाठ से सूचित होता है कि यह स्कूल अपना काम सफलतापूर्वक कर रहा है। शिक्षा के साथ ही साथ खोज का काम भी होता है। उष्ण देशों में होनेवाले रोगों के सम्बन्ध की शिक्षा पानेवाले २८ छात्रों में, रिपोर्ट के साल, १९ छात्र पास हुए। सफ़ाई और तन्दुरुस्ती से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों की शिक्षा प्राप्त करने की ओर लोगों का कम ध्यान है। इसी से इस स्कूल में इस श्रेणी के छात्र बहुत कम भरती हुए हैं। पर इन विषयों की जो शिक्षा यहाँ दी जाती है वह बहुत उच्च है और विलायत में दी जानेवाली शिक्षा से किसी तरह कम नहीं। जो लोग इस शिक्षा में "पास" होते हैं उनको डी० पी० एच० (D. P. H.) की पदवी मिलती है।

अब इसमें एक अजायबघर खोलने की भी तजवीज़ हो रही है। उसमें वे सभी चीज़ें रक्खी जायँगी जिनका सम्बन्ध उष्ण देश में होनेवाले रोगों से है।

इस स्कूल की प्रस्तुत रिपोर्ट में इसके एक बड़े ही महत्त्वशाली विभाग की कुछ बातों का उल्लेख है। उस विभाग का नाम है, फरमाकोलाजी (Pharmacology) अर्थात् ओषधि-निर्माण-विद्या। और और विभागों की तरह इस विभाग का भी एक परीक्षागार (Laboratory) जुदा है। पर और विभागों के परीक्षागारों से यह परीक्षागार अधिक महत्त्व रखता है। इसमें सभी तरह के आवश्यक यन्त्र और अन्यान्य सामग्रियाँ हैं। इसके प्रधानाधिकारी हैं मेजर चोपड़ा। आप पञ्जाबी मालूम होते हैं। डाक्टरी की उच्च शिक्षा पाने और उच्च पदस्थ होने पर भी आपमें स्वदेश-प्रेम की मात्रा बहुत काफ़ी मात्रा में विद्यमान जान पड़ती है। डाक्टरी विद्या में निपुण होने पर भी आप स्वदेशी ओषधियों के निर्माण और प्रचार के बड़े पक्षपाती हैं। इस देश की ओषधियों के गुण-दोषों की जाँच करने के लिए गवर्नमेंट ने जो कमिटी बनाई थी और जिसका उल्लेख सरस्वती में हो चुका है उसके एक मेम्बर आप भी थे। उस कमिटी के मेम्बर की हैसियत से आपने बहुत काम किया है और अनेक स्वदेशी ओषधियों के रोग-नाशक गुणों को आपने क़बूल किया है। इस कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि वैद्यक और यूनानी चिकित्सा अवैज्ञानिक नहीं। अतः गवर्नमेंट को चाहिए कि वह इन चिकित्साओं को भी दाद दे।

स्कूल में जो काम मेजर चोपड़ा के सिपुर्द है उसे तो आप करते ही हैं। साथ ही आप इस देश की जड़ी-बूटियों की परीक्षा भी, वैज्ञानिक ढँग से, करते हैं। जाँच करने पर जो गुण जिस ओषधि में आप पाते हैं उसमें रोग-विशेष को नाश करने की कितनी शक्ति है, इसकी जाँच भी आप स्कूल के अस्पताल के रोगियों पर करते हैं। पुनर्नवा नाम की ओषधि की जाँच आपने बड़े मनोनिवेश से की है और उसमें क्या क्या गुण हैं, अर्थात् किन किन रोगों में उसे देने से लाभ होता है, इसका भी प्रामाणिक विवरण प्रकाशित किया है। उनकी इच्छा है कि एक स्कूल अलग खोला जाय। उसमें छात्रों को ओषधि-निर्म्माण-विद्या की भी शिक्षा दी जाय और प्रत्येक स्वदेशी ओषधि की जाँच करके उसके रोग-नाशक गुणों का वर्णन लिखा जाय। फिर ये ओषधियाँ काफ़ी मात्रा में तैयार करके सरकारी शफ़ाख़ानों को दी जायँ। वहाँ उनका उपयोग उन ओषधियों के बदले में किया जाय जो दूसरे देशों से यहाँ आती हैं। देखिए, कैसा स्तुत्य विचार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज-कल यह हाल है कि कुचिला, सींगिया, मदार, अण्डी, जामुन की मींगी आदि कौड़ी मोल बिकती और विदेश को जाती हैं। वहाँ उनसे नाना प्रकार की ओषधियाँ, तैल इत्यादि तैयार होकर जब वे चीज़ें इस देश को लौट आती हैं तब सैकड़ों गुने अधिक मूल्य पर बिकती हैं। यदि ये सब ओषधियाँ बटी, चूर्ण, स्वरस, कल्क, तेल आदि के रूप में यहीं तैयार होने लगें और वैज्ञानिक ढँग से इनके गुणों का पता लगा कर उनके वर्णन प्रकाशित हो जायँ तो डाक्टरों को विश्वास हो जाय कि ये चीज़ें काम की हैं। अतएव इनका प्रचार बढ़े और देश को करोड़ों रुपये का लाभ हो। परन्तु यह काम इतना बड़ा है कि कर्तमान स्थिति में अकेले डाक्टर चोपड़ा नहीं कर सकते। उन्हें कितने ही सहायक डाक्टर और कर्म्मचारी चाहिए। इसके लिए धन भी बहुत सा चाहिए। स्वदेशी चिकित्सा के पक्षपातियों में जो लोग धनी हैं और देश-भक्त भी हैं उन्हें चाहिए कि इस देशोपयोगी काम में डाक्टर साहब की सहायता करें।

एशियाटिक सोसायटी आव् बेङ्गाल की एक शाखा है। उसमें रोग-चिकित्सा-विषयक बातों पर विचार किया जाता है। कुछ समय हुआ, सोसायटी की इस शाखा के सभ्यों की एक बैठक हुई थी। उसमें स्वदेशी-ओषधि-निर्म्माण पर एक लेख पढ़ा गया था। इस लेख के लेखक हैं वही पूर्वनिर्दिष्ट मेजर चोपड़ा, एल० एम० एस० और डाक्टर बी० एन० घोष। पढ़े जाने के बाद यह लेख अँगरेज़ी की एक सामयिक पुस्तक (Indian Medical Record) में प्रकाशित हुआ है। इस लेख में लेखक-द्वय ने अपने पूर्वोक्त विचारों को विस्तार-पूर्वक प्रकट किया है। लेख के मुख्य मुख्य अंशों का सार नीचे दिया जाता है—

देशी ओषधियों में बहुत सी ओषधियाँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग वैद्य और हकीम सैकड़ों वर्षों से कर रहे हैं और वे अपना गुण भी खूब दिखाती हैं। पर कुछ ओषधियाँ ऐसी भी हैं जिनके गुणों का वर्णन पुस्तकों में ही पाया जाता है। उनके उन गुणों की परीक्षा उचित रीति से, आज तक, किसी ने नहीं की। इस दशा में समझदार चिकित्सक उनके उन निर्दिष्ट गुणों पर विश्वास नहीं करते। एक उदाहरण लीजिए। चिकित्सा-ग्रन्थों में लिखा है कि अशोक से प्रदररोग, पुनर्नवा से जलोदर और अभ्रक-भस्म से बहुमूत्र रोग जाता रहता है। परन्तु ऐसे कथन को डाक्टर नहीं मान सकते, क्योंकि उनके शास्त्र में जलोदर आदि मुख्य रोग नहीं माने गये; वे तो अन्य रोगों के चिह्न या लक्षण-मात्र माने गये हैं। इस दशा में जब तक यह बात वैज्ञानिक रीति से नहीं प्रमाणित की जाती कि हृदय, गुर्दे, यकृत आदि पर इन ओषधियों का क्या असर पड़ता है तब तक विज्ञानवेत्ता डाक्टर इनके गुणों के विषय में किये गये दावे को भ्रान्तिरहित नहीं समझ सकते। हम यह नहीं कहते कि प्राचीन वैद्यों और हकीमों के दावे सही नहीं। हम तो केवल इतना ही कहते हैं कि बिना जाँच और तजरिबे के हम किसी के कथन-मात्र पर पूरा विश्वास नहीं कर सकते। विश्वास जमाने के लिए प्रमाण दरकार होता है। वह प्रमाण आप डाक्टरों को दीजिए। तभी वे इन ओषधियों के पूर्वोक्त गुणों के क़ायल हो सकते हैं।

तिब्बी और वैद्यक चिकित्सा के प्राचीन ग्रन्थों में जिन ओषधियों की योजना लिखी है, बहुत सम्भव है, उनकी जाँच योग्यतापूर्वक की गई हो और उनका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करके तब उनके रोग-नाशक गुणों का निश्चय किया गया हो। क्योंकि प्राचीन वैद्य और हकीम वैज्ञानिक जाँच भी करते थे। पर क्या यह बात सभी ओषधियों के विषय में कही जा सकती है? नहीं, बात ऐसी नहीं। आज-कल तो देश में जितनी जड़ी-बूटियाँ पाई जाती हैं प्रायः सभी में किसी न किसी रोगनाश के गुण बताये जाते हैं। इस तरह की ख्याति का कारण जनश्रुति के सिवा और कुछ नहीं। किसी ने कोई जड़ी-बूटी देकर किसी रोगी का कोई रोग दूर कर दिया। बस उसने यह समझ लिया कि वह बूटी उस रोग की रामबाण ओषधि है। वह इस बात की जाँच नहीं करता कि उसमें ऐसा कौन सा तत्त्व है जिसके कारण उसने उसमें उस रोग के नाश की शक्ति विद्यमान मान ली। नये नये ग्रन्थकारों और टीकाकारों ने इस तरह की सैकड़ों ओषधियों का उल्लेख, अपने अनुभव के बल पर, किया है। उनके उसी उतने अनुभव की बदौलत लोग, आज तक, केवल सुनी सुनाई बातों पर विश्वास करके, अनेक ओषधियों में अनेक रोग-नाशक गुणों की कल्पना करते चले आ रहे हैं। तथापि वे यह नहीं बतला सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि क्यों—किस आधार पर—उन्होंने उन रोगों को दूर करने की शक्ति उन औषधियों में मान ली है। इस तरह की कच्ची कल्पना से वे डाक्टरों को क़ायल नहीं कर सकते। और जब तक वे ऐसा नहीं कर सकते तब तक वे यह आशा भी नहीं कर सकते कि सुशिक्षित डाक्टर और सरकारी दवाख़ाने, केवल उनके कथन पर विश्वास करके, तिब्बी और आयुर्वेदिक दवायें काम में लावेंगे। उन्हें आप अपनी दवाओं के गुणों के वैज्ञानिक प्रमाण दीजिए। फिर देखिए वे उनका प्रयोग करते हैं या नहीं।

ख़ुशी की बात है, आज तक अनेक शिक्षा-प्राप्त डाक्टरों और विज्ञानवेत्ताओं ने स्वदेशी औषधियों के विषय में बहुत कुछ जाँच-पड़ताल की है और कितनी हीं पुस्तकें और लेख भी लिख डाले हैं आज से सौ सवा सौ वर्ष पूर्व सर विलियम्स जोन्स ने इस काम का सूत्रपात किया था। उन्होंने कुछ पौधों पर एक पुस्तक लिखी है। उनके बाद, १८१३ ईसवी में, जान फ्लेमिंग ने एक बड़ी सी सूची प्रकाशित की। उसमें उन्होंने उन पौधों का वर्णन किया जो दवा के काम आते हैं। तदनन्तर शागनेशी, मुहीउद्दीन शेरिफ, डेविड हूपर और डाइमक आदि ने भी कई पुस्तकें इस विषय की लिख कर प्रकाशित कीं। इन पुस्तकों में आयुर्वेदिक और तिब्बी ग्रन्थों के आधार पर जड़ी-बूटियों का वर्णन ही नहीं, किन्तु इनमें लेखकों ने अपने अनुभवों और परीक्षाओं का भी वर्णन किया है। इसके सिवा कुछ लोगों ने औषधीय लताओं, पौधों और बूटियों की परीक्षा, रसायन-शास्त्र में निर्दिष्ट नियमों के अनुसार भी करके, उस परीक्षा का फल प्रकट किया है। अभी, हाल ही में, गवर्नमेंट की आज्ञा से जिस कमिटी ने इस विषय में जाँच-पड़ताल की थी उसने तो बड़े ही महत्त्व की सामग्री एकत्र कर दी है। अतएव अब तक इस सम्बन्ध में जो काम हो चुका है उससे भविष्यत् में बहुत सहायता मिल सकती है।

तथापि देशी औषधियों के गुण-धर्म्म का पता लगाने के लिए अभी बहुत समय, बहुत धन और बहुत बड़े आयोजन की आवश्यकता है। पहले तो एक ऐसे परीक्षागार की आवश्यकता है जिसमें सब तरह के शस्त्र, यन्त्र और अन्यान्य सामग्रियाँ हों। फिर इस इतने बड़े काम के लिए और कर्मचारियों के सिवा अनेक रसायन-शास्त्रियों की भी आवश्यकता है। क्योंकि औषधियों के गुण-धर्म्म की परीक्षा रसायन-शास्त्र के ज्ञाताओं के बिना हो ही नहीं सकती। पद पद पर उनकी आवश्यकता पड़ती है। औषधि-निर्म्माण के काम के लिए और देशों में जैसे कारख़ाने और परीक्षागार हैं वैसे ही जब तक इस देश में न खोले जायँगे और अनेक रसायन-वेत्ता योग न देंगे तब तक हम अपने काम में कदापि सफल-मनोरथ न होंगे। अभी तो कलकत्ते के स्कूल से सम्बद्ध परीक्षागार में मेजर चोपड़ा की सहायता के लिए केवल एक ही रसायन-शास्त्री है इस दशा में औषधि-सम्बन्धी काम नाम लेने योग्य भला कैसे हो सकता है।

किसी औषधि की परीक्षा के लिए पहले इस बात का पता लगाने की ज़रूरत है कि उसमें कौन कौन से रासायनिक द्रव्य हैं। यह बात अच्छे अच्छे यन्त्रों और परीक्षाओं से ही सम्भव है। यह काम सुदक्ष रसायनज्ञ ही कर सकता है। विश्लेषण और पृथक्करण द्वारा द्रव्यों का पता लग जाने पर उनके प्रयोग की परीक्षा आवश्यक होती है। किस रोग में वह कितना काम दे सकती है, इसकी जाँच के लिए बहुत समय, योग्यता और धैर्य्य की ज़रूरत होती है।

तीन मुख्य अभिप्रायों को ध्यान में रख कर देशी औषधियों की परीक्षा और प्रयोग की आवश्यकता है, यथा—

(१) परीक्षा और प्रयोग के द्वारा इतनी औषधियाँ निश्चित कर लेना चाहिए जिससे इस देश को उनके लिए और देशों का मुँह न ताकना पड़े। फिर उन औषधियों को व्यावसायिक ढँग पर खिलाने और पिलाने लायक़ बना लेना चाहिए।

(२) वैद्य और हकीम जिन रोगों में जो औषधियाँ देते हैं उनकी जाँच करके यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उनमें से कौन कौन औषधि गुणकारी है और किसके विषय में वैद्यों तथा हकीमों का दावा ठीक नहीं। फिर जो औषधियाँ परीक्षा में पूरी उतरें उनका प्रचार पश्चिमी देशों के डाक्टरों-द्वारा किये जाने की चेष्टा करनी चाहिए।

(३) औषधियाँ इस तरह तैयार की जायँ कि लागत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम पड़े। सस्ती होने ही से सब लोग उन्हें मोल लेसकेंगे और अधिक आदमियों को उनसे फ़ायदा पहुँच सकेगा।

सैकड़ों जड़ी-बूटियां यहां ऐसी उत्पन्न होती हैं जिनके गुण-धर्म्मों से पूर्वी और पश्चिमी देशों के डाक्टर अच्छी तरह परिचित हैं। उनमें से कुछ विदेशों को भी भेजी जाती हैं। वहां से उनकी दवायें तैयार होकर जब यहां आती हैं तब एक पैसे की चीज़ के डेढ़ दो रुपये देने पड़ते हैं। यदि ये सब ओषधियां यहीं तैयार की जायँ तो लाखों रुपये देश के देश ही में रहें और हज़ारों आदमियों की जीविका का द्वार खुल जाय। फिर सैकड़ों जड़ी-बूटियां यहां जगह की जगह सूख जाती हैं; कोई उन्हें पूछता भी नहीं। इस तरह देश का अनन्त धन योंहीं नष्ट हो जाता है। कुछ जड़ी-बूटियों और पौधों की उत्पत्ति का उल्लेख, उदाहरण के तौर पर, नीचे दिया जाता है—

शिमला से काश्मीर तक, हिमालय पर्वत पर, अङ्गूरी-शफा उत्पन्न होता है। खुरासानी अजवान भी हिमालय पर होती है। इस देश के उष्ण प्रदेशों में इतना कुचला पैदा होता है जिसकी सीमा नहीं। यह कुचला बड़े काम आता है। कोई दवाख़ाना ऐसा न होगा जहां इससे बनी हुई ओषधियां न काम में लाई जाती हों। धतूरा तो सभी कहीं पाया जाता है। मालती सिन्ध में और पेशावर के आसपास, इन्द्रायण सीमाप्रान्त और पञ्जाब में, और जङ्गली प्याज़ तो सभी कहीं अधिकता से उगता है। इसी तरह और भी अनन्त ओषधियां ऐसी हैं जो जङ्गलों, पहाड़ों, घाटियों और तराइयों में गाड़ियों पैदा होती और अकारण ही नष्ट जाती हैं। इन सबकी परीक्षा होनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि किस मौसम में और कहां की कौन चीज़ एकत्र करने से उसके रासायनिक गुण कम नहीं होते। दूसरे देशों में उत्पन्न इन जड़ी-बूटियों की तुलना अपने देश की जड़ी-बूटियों से करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि अपनी देशज ओषधियों में यदि कुछ कमी है तो उसकी पूर्ति किस तरह हो सकती है। किसी विशेष आबोहवा, मौसम और भूमि में उत्पन्न करने से इन बूटियों के गुण-धर्म्म की कमी यदि दूर हो सकती हो तो जांच और तजरिबे से उसे दूर कर देना चाहिए।

कुछ ओषधियां विदेश से ऐसी भी आती हैं जो इस देश में नहीं पाई जातीं। पर उनसे मिलती-जुलती और ओषधियां ज़रूर पाई जाती हैं। जांच करनेवालों को रासायनिक प्रक्रिया-द्वारा अपनी ओषधियों के गुण-धर्म्म का पता लगाना चाहिए और रसायन-शास्त्र के आधार पर यह निश्चय करना चाहिए कि अमुक ओषधि में अमुक तत्त्व हैं। विश्लेषण करके उनकी मात्रा का निर्देश कर देना चाहिए। यदि वैसी ही ओषधियां अन्य देशों से यहां आती हों तो उनकी जगह अपनी देशज ओषधियों के प्रयोग की सिफ़ारिश करना चाहिए। वैज्ञानिक प्रणाली से गुण-धर्म का निश्चय हो जाने पर डाक्टर लोग झख मार कर उनका प्रयोग करेंगे, क्योंकि वे सस्ती पड़ेंगी। जानबूझ कर कोई अपना रुपया क्यों व्यर्थ बरबाद करेगा? विदेशी दवा जालप (Jalap) में जो गुण हैं, वही प्रायः कालादाना में हैं। जो बात भार्ङ्गी में है वही क्वासिया (Quassia) में। चीन और जापान से जो पेपर-मिंट तेल आता है वही यहां के पुदीने से तैयार किया जा सकता है। परन्तु जब तक वैज्ञानिक ढँग से इन ओषधियों के गुण-धर्म्म का निश्चय करके यह न सिद्ध किया जायगा कि इनके प्रयोग से वही काम होगा जो विदेशी ओषधियों से होता है तब तक विज्ञान और रसायन-विद्या के क़ायल डाक्टर किसी की बात, सिर्फ़ कह देने ही से, कभी माननेवाले नहीं। इसी से परीक्षागार में अर्वाचीन यन्त्रों की सहायता से इनके परीक्षण, पृथक्करण और गुण-धर्म्म निरूपण की आवश्यकता है। मदरास के डाक्टर कोमन ने बबरी, पुनर्नवा, सेमल, कुर्ची आदि कितनी ही देशज ओषधियों में कुछ विशेष विशेष रोगों को दूर करने के गुण बताये हैं। परन्तु इस तरह उनका सिर्फ़ बता देना काफ़ी नहीं। रसायनशास्त्र के नियमों से उनमें उन गुणों का होना डाक्टरों के गले उतार देना पड़ेगा। तभी वे इस कथन पर विश्वास करेंगे, अन्यथा नहीं।

जितने डाक्टरी दवाख़ाने हैं और जितने सरकारी अस्पताल हैं सभी में विलायती ही दवायें मिलती और दी जाती हैं। वे बहुत महँगी पड़ती हैं। निज के तौर पर डाक्टरी-पेशा करनेवाले लोग तो दवाओं के दाम, दूकान का किराया, नौकरों की तनख़्वाह, रोशनी वग़ैरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ख़र्च और अपना मुनाफ़ा जोड़ कर उनको और भी महँगा कर देते हैं। उनसे सिर्फ़ वे ही रोगी फ़ायदा उठा सकते हैं जिनके पास चार पैसे हैं। रहे, ख़ैराती अस्पताल, सो उनको दवाओं के लिए सालाना एक निश्चित रक़म मिलती है। उसी के भीतर जो दवायें वे चाहें मँगा सकते हैं, अधिक नहीं। नतीजा यह होता है कि रोज़ काम में आनेवाली बहुत ही साधारण दवायें भी—मसलन कुनैन, मैगनेशिया और अण्डी का तेल भी—कभी कभी कम पड़ जाता है। क़ीमती दवाओं की तो बात ही जुदा है। वे तो बहुत ही कम नसीब होती हैं।

इस दशा में देशज जड़ी-बूटियों से इस ढँग से ओषधियाँ तैयार करना चाहिए जो सस्ती पड़ें। तभी अमीर-ग़रीब सभी को लाभ पहुँच सकेगा—तभी सब लोग उन्हें ख़रीद कर सकेंगे। भारतवर्ष के सदृश बुभुक्षित और निर्धन देश के लिए क़ीमती दवाओं का होना, न होना, दोनों बराबर हैं। दवायें सस्ती तभी हो सकती हैं जब वे अपने ही देश में अपनी ही जड़ी-बूटियों और लता-पत्रादि से तैयार की जायँ और बहुत अधिक मात्रा में तैयार की जायँ। अतएव हमें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि उपयोगी जड़ी-बूटियों को समय पर एकत्र करें, ज़रूरत होने पर अनाज की फ़सल की तरह उन्हें भी पैदा करें, फिर बड़े बड़े कारख़ाने खोल कर उनके कल्क, स्वरस, चूर्ण और बटिकायें आदि तैयार करके उन्हें सस्ते मूल्य पर बेचें। विदेश से आनेवाली ओषधियों के मुक़ाबले में यदि हमारे यहाँ वैसी ही ओषधियाँ पाई जाती हों तो उनके गुण-धर्म्मों का वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करके उनका विवरण प्रकाशित करना चाहिए। फिर व्यावसायिक ढङ्ग पर उनका निर्माण करके विदेशी ओषधियों के बदले उनके व्यवहार का प्रचार करना चाहिए। इसी तरह धीरे धीरे सभी उपयोगी जड़ी-बूटियों से ओषधियाँ प्रस्तुत करके विदेशी ओषधियों का उपयोग बन्द कर देना चाहिए। देश में ही दवायें तैयार करने से विदेशियों का मुनाफ़ा, जहाज़ और रेल का ख़र्च और बहुत अधिक मज़दूरी न देनी पड़ेगी। नतीजा यह होगा कि दवायें सस्ती पड़ेंगी, देश में ओषधि-निर्माण का व्यवसाय बढ़ेगा और यहाँ का लाखों रुपया यहीं रहेगा। अभी तो यह हाल है कि सैकड़ों मन कुचिला, धतूरा, सींगिया और अण्डी के बीज इत्यादि योरप और अमेरिका के व्यवसायी यहाँ से कौड़ी मोल ले जाते हैं। हज़ारों कोस दूर देशों में जाकर इन्हीं चीज़ों से बनी हुई ओषधियाँ जब फिर भारत को लौटती हैं तब उनके दाम कौड़ियों के बदले मुहरों में देने पड़ते हैं।

इस विवेचन से यह बात ध्यान में आ जायगी कि देश में ही ओषधि-निर्माण होने से देश को कितना लाभ पहुँच सकता है। इसकी सिद्धि के लिए अनेक परीक्षागारों, अनेक रसायन-विद्या-विशारदों की सहानुभूति और सहायता, तथा बहुत धन की आवश्यकता है। देशभक्तों और व्यवसायियों और धनवानों का धर्म है कि वे इस ओर ध्यान दें और मेजर चोपड़ा के हृद्गत विचारों को कार्य्य में परिणत करने की चेष्टा में लगें।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

भारत की उन्नति के उपाय।

आज-कल भारत को उन्नत करने के लिए चारों ओर उपाय किये जा रहे हैं। इन उपायों को सोचने-समझने तथा उन्हें कार्यरूप में परिणत करने के लिए नाना प्रकार के समाज, मण्डल, सम्मेलन, सभा तथा समितियाँ नित्यप्रति स्थापित होती जाती हैं। कोई समाज कहता है कि भारत में जब तक जाति-पाँति का भेद-भाव बना रहेगा तब तक भारत का उत्कर्ष नहीं हो सकेगा, अतः वह उसे मेटने में लगा है। कोई सभा कहती है कि भारत के पतितों का जब तक उद्धार नहीं होगा तब तक भारत की उन्नति नहीं होगी, अतः वह उसी के सम्पादन में लगी है। कोई मण्डल कहता है कि जब तक भारत की विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं की जायगी तब तक उसकी भलाई नहीं हो सकेगी, अतः वह उसी के सम्पादनार्थ यत्नशील हो रहा है। कोई सम्मेलन यह कहता है कि जब तक भारत में एक भाषा और एक लिपि का सार्वत्रिक प्रचार नहीं किया जायगा तब तक उसकी उन्नति नहीं होगी, अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह तदर्थ उद्योग कर रहा है। कोई समिति कहती है कि भारत में जब तक स्त्री-शिक्षा का पर्याप्त मात्रा में प्रचार नहीं किया जायगा तब तक वह उन्नत नहीं होगा, अतः वह उसी दिशा में काम कर रही है। तात्पर्य्य जिसे जो सूझता है उसे वह भारतवासी के नाते भारत की उन्नति के लिए कह और कर रहा है।

भारत में एक दल उन पुरुषों का भी है जो भारत की वर्त्तमान उन्नति का यशोगान सर्व-साधारण को सुनाया-समझाया करता है। यह दल कहा करता है कि अभी थोड़े वर्षों के पूर्व भारत के किसी भाग में अतिवृष्टि वा अनावृष्टि के कारण जब अन्न की पर्याप्त उपज नहीं होती थी तब वहां के लोगों को अन्न का जो कष्ट होता था उसे अब रेलगाड़ियां बहुत शीघ्र दूर कर देती हैं अर्थात् वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर खाद्य वस्तुओं को बहुत सुगमता के साथ थोड़े समय में पहुँचा देती हैं। वाणिज्य-व्यवसाय को सहायता देनेवाले उक्त साधन के सिवा डाकघर और तारघर स्थान स्थान में खोल दिये गये हैं। डाकू, चोर, धूर्त्त, प्रतारक आदि पापियों से जनता की रक्षा करने के लिए स्थान स्थान पर पुलिस, पलटन और न्यायालयों की स्थापना कर दी गई है। नगरों में चलने-फिरने के लिए पक्के मार्ग बना दिये गये हैं, जिन पर टांगे, टमटम, बग्घियां और मोटर-गाड़ियां सुविधा के साथ आ जा सकती हैं। प्रत्येक ज़िले के क़स्बे और प्रधान प्रधान स्थानों को जाने-आने के लिए भी पक्के मार्ग बना दिये गये हैं। नगर-निवासियों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए बड़े बड़े अस्पताल खोल दिये गये हैं। उनके बड़े बड़े प्रासादतुल्य भवनों में जल और प्रकाश पहुँचाने का यथेष्ट प्रबन्ध कर दिया गया है। दूसरे देशों से भारत का वाणिज्य-व्यवसाय सुचारुरूप से चल सके, इसलिए स्थान स्थान पर बड़े बड़े बैङ्क खोल दिये गये हैं। जनता में विद्या के प्रचारार्थ स्थान स्थान पर पाठशालायें (स्कूल), विद्यालय (कालेज) और विश्वविद्यालय खोल दिये गये हैं। इन संस्थाओं से प्रति वर्ष सैकड़ों और हज़ारों की संख्या में भारतीय जन परीक्षोत्तीर्ण होकर भारत का हित करने में लग जाया करते हैं। कोई सरकारी दफ़्तरों में क्लार्क, मुन्शी और बाबुओं के पदों पर आरूढ़ होकर अपने देश-भाइयों की सेवा और भलाई का काम करते हैं, कोई नायब तहसीलदार, तहसीलदार, मुन्सिफ़, डिप्टी कलेक्टर, कलेक्टर, जज, वकील और बैरिस्टर आदि के उच्चातिउच्च पदों पर आसीन होकर भारत के अन्याय-पीड़ित जनों को न्याय-दान देने का पुण्य कार्य करके भारतीय जनता में सुख-शान्ति की वृद्धि करते हैं। कोई चिकित्सा, कोई स्थापत्य और कोई वाणिज्य-व्यवसाय की शिक्षा प्रदान कर अपने अपने ज्ञान-कोष से भारतीय जनों का उपकार किया करते हैं। सारांश, भारत में जिधर देखिए उधर उन्नति ही उन्नति दीख पड़ती है।

कुछ विवेकी और दूरदर्शी लोगों का एक दल और है। यह दल उक्त उन्नति को एक दूसरी ही दृष्टि से देखता है। यह दल कहा करता है कि भारत में रेलगाड़ियों के विस्तार ने भारतीय जनों का जो उपकार किया है उसकी अपेक्षा उसने उनका अपकार कहीं अधिक किया है। अन्न-कष्ट के समय एक स्थान से दूसरे स्थान पर अन्न पहुँचाने की सुबिधा उसने अवश्य कर दी है, पर साथ ही उसने अन्न के भाव को इतना महँगा कर दिया है कि लाखों की संख्या में लोगों को अन्न का मिलना दुःसाध्य हो गया है। पहले जहां जो धान्य उपजता था वहीं वह रहता था और वहीं के लोगों के सुख-साधन का कारण होता था। पर अब वह रेलभवानी की कृपा से दूसरे स्थान को सुगमता के साथ भेजा जा सकता है, जिसका परिणाम यह होता है कि जो गेहूँ एक रुपये का मन भर मिलता था वह नौ सेर बिकने लगा; जो घी रुपये का पांच सेर मिलता था वह बड़ी कठिनाई से भी दस छटांक नहीं मिलता है। रेल-द्वारा यात्रा करने से लोग अपने अभीष्ट स्थान को शीघ्र अवश्य पहुँच जाते हैं, पर मार्ग में उन्हें अन्न-जल, मल-मूत्र-त्याग, सोना-बैठना आदि में जो कष्ट होता है उसे भुक्तभोगी ही जानता है। पहले और दूसरे दर्जे में यात्रा करनेवाले भारतीय धनी जन भी इन कष्टों से नहीं बच पाते हैं। कई बार भारतीय रेल-यात्री लोगों के कष्टों को दूर करने के लिए यत्न किया गया, पर वह अरण्यरोदन के समान ही रहा। जिस न्याय-दान की उच्च अभिलाषा से स्कूल-कालेजों-द्वारा साक्षर लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैदा किये जाते हैं उसका वे लोग धर्म तथा सदाचार-हीन शिक्षा पाने के कारण, पद पद पर इतना गला घोंटते हैं कि उसका यथार्थ वर्णन करना इस लेख की सीमा के बाहर है। ईश्वर न करे, कोई मनुष्य इन उपकारियों के उपकार का विषय बने। जिन अभागों को कार्य्यवश इनके निकट जाना पड़ता है वही जान सकते हैं कि वे लोग किस विचार-शून्यता, निर्दयता और स्वार्थपरता के साथ बर्त्ताव करते हैं। भारत के ये न्याय-नारायण अपने दल-बल सहित भारत की न्यायभिक्षुक मूक प्रजा को जिस प्रकार लूटते हैं, उसे त्रास देते हैं, उसका वृत्तान्त वही लोग जानते हैं जिन्हें रात-दिन इनके साथ काम करना पड़ता है। जो लोग समझते हैं कि छोटे लोग जो त्रास देते हैं उनके समाचार बड़े अधिकारियों से कहने में कुछ लाभ होगा, पर उनके ऐसा करने पर उन्हें और भी अधिक हानि उठानी पड़ती है। इस समय इन लोगों की मानो यह धारणा ही हो गई है कि हम लोगों को ईश्वर ने इसी लिए यह पद दिया है कि हम लोग यथेष्ट रूप में अपने से भिन्न इन जीवों को लूटें तथा उन्हें कष्ट दें। कई लोग तो खुल्लमखुल्ला कहा करते हैं कि भाई हम लोग इस प्रकार तुमसे धन पैदा नहीं करेंगे तो अपने बालबच्चों का पालन-पोषण कैसे करेंगे। एक वकील का मुंशी एक दिन यह कहते सुना गया था कि "मैं प्रति दिन प्रातःकाल उठ कर ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि हे ईश्वर किसी धनवान् को हथकड़ी पहरा कर मेरे पास भेजवा दे"। हा! हन्त, इससे बढ़ कर किसी देश का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है। उक्त लोगों में स्वकर्तव्य-कर्म्म-जागरूक लोग भी होते हैं। पर उनकी संख्या बहुत थोड़ी रहती है।

ग्रामों में प्राथमिक शिक्षा देने के लिए स्थान स्थान पर पाठशालायें अवश्य खोल दी गई हैं, पर इनके द्वारा ग्रामीण जनों के बालकों को जो शिक्षा दी जाती है वह उन्हें तादृश उपयोगी नहीं होती। वे जब तक वयस्क होते हैं तब तक उसे यहाँ तक भूल जाते हैं कि दूसरे की सहायता पाये बिना वे अपना नाम तक स्पष्ट और शुद्ध नहीं लिख सकते। हाँ, प्रत्येक इलाके में इस अल्प शिक्षा के प्रभाव से थोड़े से लोग ऐसे अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं जो न राम का ही आदर करते हैं और न रहीम को ही मानते हैं। ऐसे लोगों का नित उठ कर यही काम रहता है कि वे निरक्षर लोगों के नाम से झूठे दस्तावेज़ बनाते हैं, उन पर झूठी नालिशें कर झूठी शहादत देते हैं और अदालत की सहायता से निरक्षर ग़रीबों की धन-धरती का अपहरण करते हैं। ऐसे स्वार्थसाधु दिन भर में नहीं मालूम कितनी बार झूठ बोलते हैं। कहा जाता है कि रावण अत्याचार करने के अभिप्राय से दिन भर में दस बार झूठ बोला करता था। इसी लिए लोगों ने उसके दस सिरों की कल्पना कर ली है। ईश्वर ही जानता होगा कि आज-कल के ये ग्रामीण धूर्त लोग दिन भर में कितना झूठ न बोलते होंगे और कितने दंदफंद रच कर निरक्षर लोगों को न नष्ट करते होंगे तथा साक्षर लोगों को कष्ट पहुँचाते होंगे। जिन सज्जनों को इन ग्रामीण पुण्यजनों के साथ काम करना पड़ता है वही इन ग्रामीण प्रपञ्च-रचना-पटु लोगों की करतूतें जान सकते हैं। अन्य लोगों को इनकी गन्दी करतूतों का पता लगना असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है। ऐसे ग्रामीण नर-पिशाचों का भेद अन्त में खुलता अवश्य है और उन्हें अपनी नीच करनी का दण्ड भी भोगना पड़ता है। पर यह सब बहुत देर में होता है। तब तक न जाने कितने निरपराधों को वे लोग चाट जाते हैं। कहना नहीं होगा कि भारत की जनता का बड़ा भारी भाग ग्रामों में ही बसता है। वह समूह में बड़ा होने पर भी अविद्या के कारण अल्पसंख्यक नीच स्वार्थलोलुप जनों-द्वारा उक्त प्रकार सताया और लूटा जाता है। इस दुरवस्था को देख कर कतिपय उदाराशय जनों के मन में यह भावना उत्पन्न हुई है कि भारत के इन्हीं ग्रामीण जनों की उन्नति करनी चाहिए। जब इनकी उन्नति होगी तभी भारत उन्नत होगा। तदर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से उद्योग कर रहे हैं।

ऊपर भारत की उन्नति तथा वर्तमान दशा का जो अति संक्षिप्त वर्णन लिखा गया है उससे जिन लोगों को लेख या ग्रन्थ पढ़ कर वस्तु-स्थिति समझने का सामर्थ्य है, साथ ही देश-दशा के सुधारने के दायित्व को समझने की जिनमें योग्यता है, वे जान सकते हैं कि आज दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की यथार्थ उन्नति करने की कितनी अधिक आवश्यकता है। कहना नहीं होगा कि इस समय भारत की जो उन्नति दीख पड़ती है वह ठीक 'गजभुक्तकपित्थवत्' ही है। इस दशा को दूर कर उसके स्थान में यथार्थ उन्नति को जन्म देकर उसकी वृद्धि करनी होगी। जब भारत की यथार्थ उन्नति होगी तभी भारतवासी जनों को सच्चा ऐहिक सुख-लाभ होगा।

भारत के चूडान्त पण्डित और धनकुबेर जिस बात को भारत का हित करनेवाली मानते हैं उसके अनुष्ठान के लिए वे लोग मिलजुल कर यत्न करने लगते हैं। ऊपर जिन संस्थाओं की चर्चा की गई है उनके अस्तित्व के कारण ऐसे ही जन हैं। उनमें से कई संस्थायें बहुत पुरानी हैं और उन्होंने बहुत कुछ काम भी कर डाला है। पर वे अभी तक यथेष्ट उन्नति नहीं कर सकी हैं। इससे यह अनुमित होता है कि यथार्थ उन्नति का मार्ग अभी हम लोगों को नहीं मिला है। वह मिल जाता तो अभी तक उस दिशा में बहुत कुछ सफलता हो जाती। उसे ढूँढ़ निकालने के लिए देश-दशा के धुरन्धर सुधारक अहोरात्र लगे रहते हैं। आशा है कि उनकी निःस्वार्थ देश-सेवा अब शीघ्र ही सफल होगी। इस दिशा में हमें जो विचार ज्ञात हुए हैं उन्हें हम उक्त अग्रेसर हित-चिन्तकों के मननार्थ यहाँ लिखते हैं। आशा है कि वे लोग हमारे इन विचारों पर मनन करने की कृपा अवश्य ही करेंगे।

जैसे मूल को सींचने से वृक्ष बढ़ कर पल्लवित और कुसुमित होता है तथा अन्त में फल देने लगता है वैसे ही उन्नति के मूल कारण को जान कर उस दिशा में यत्नवान् होने से यथार्थ उन्नति भी हो सकती है। भारत की यथार्थ उन्नति का मूल भारतीय जनों की भावनाओं का सुरुचिपूर्ण, शुद्ध एवं उदार बनाना है। जब तक जनता में प्रचुरता के साथ उच्च भावों का प्रचार नहीं किया जायगा तब तक सहस्रशः यत्न करने पर भी भारत की भलाई नहीं होगी। भारतीय जनता की भावनाओं में इस समय जो स्वार्थ-परता और दुष्टता भरी है उसे हटा कर उसके स्थान में पारस्परिक सहानुभूति, सत्य-परायणता, देशभक्ति, भ्रातृभाव आदि उच्च भावों को उत्पन्न करना होगा। ये भाव भारत की शिशुजनता में तभी उत्पन्न होंगे जब उन्हें आबाल्यात् भारतीय साहित्य-द्वारा शिक्षा दी जायगी और उनका चरित्र सुचारुरूपेण सङ्गठित किया जायगा। ऐसा करने से उनकी कुभावनायें दूर हो जायँगी और उनके स्थान में उनमें सद्भावनायें अङ्कुरित होकर भारतोन्नति के सच्चे बीज का वपन ही नहीं करेंगी, किन्तु उसे शुद्ध प्रेम-जल से सींच कर और स्वकर्त्तव्य-परायणता-रूपी खाद को यथेष्ट तथा पर्य्याप्त मात्रा में देकर उसके पौदे को फल-दायक बना देंगी। पर यह सब होगा तभी जब भारत के धनकुबेर धन की सहायता देकर विपुल संख्या में शिक्षालय खोल देंगे और विद्वज्जन भारत की मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा का स्थापक साहित्य बना कर उसके द्वारा यहाँ के विद्यार्थियों को शिक्षा देने का पूरा पूरा प्रबन्ध कर देंगे। उस शिक्षा के प्रभाव से जब भारत में कृषक से लेकर न्यायकर्त्ता के पद पर काम करनेवाले तक में चरित्र की दृढ़ता, सत्यपरायणता, स्वकर्त्तव्यकर्म-साधन-पटुता, वस्तुस्थिति को समझने की योग्यता, मिल-जुल कर काम करने की दक्षता आदि गुण उत्पन्न होकर स्थायी हो जायँगे तभी भारत की सच्ची उन्नति का 'ॐ नमः सिद्धये होगा। यही सच्ची उन्नति का मूल कारण है। ईश्वर करे कि हमारे देश के वर्त्तमान धनी और ज्ञानी लोगों में उक्त प्रकार की शिक्षा के प्रचार का उत्साह उत्पन्न होकर वह उत्तरोत्तर बढ़ता जाय।

देश को उन्नत और समृद्धिशाली बनाने के लिए मुख्यतः तीन प्रकार के लोगों की आवश्यकता हुआ करती है। यथा—(१) कला-कौशल्य-द्वारा आवश्यक, उपयोगी और मनोमोहक चीज़ें बनानेवाले, (२) वाणिज्य-व्यवसाय-द्वारा देश को समृद्ध करनेवाले, (३) सेवा-द्वारा राज्य तथा राज्य के धनिकों को सहायता देनेवाले।

भारत-राष्ट्र के अभिमानी विद्वानों-द्वारा भारत-भक्ति-गर्भित जो साहित्य बनाया जायगा और उसके द्वारा भारत सन्तानों को जो शिक्षा दी जायगी उससे निःसन्देह इस देश में निम्नलिखित प्रकार के लोग अधिक संख्या में पाये जायँगे—

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ **अबुध** न **लक्षण** हीना॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब निर्दम्भ धर्म्मरत धनी।
नर अरु नारि **चतुर** सब गुनी॥
सब **गुणज्ञ** सब **पण्डित ज्ञानी**।
सब **कृतज्ञ** नहिं कपट सयानी॥

तुलसीदास

आज-कल हमारे देश में लाखों नहीं करोड़ों का वाणिज्य-व्यवसाय करनेवाले लोग हैं। वे लोग सोना-चाँदी, लोहा, ताँबा, गेहूँ, चना, अलसी, कपास, कपड़ा, ऊन, रेशम और सूई से लेकर लङ्गर तक धातु-वस्तुओं के व्यापार करते हैं। पर उनको इस वाणिज्य-व्यवसाय के क्षेत्र में जिस 'लिमिट' नामक शक्ति के इशारे पर अपने समस्त काम-काज करने पड़ते हैं उसका अणुमात्र भी ज्ञान नहीं रहता है। इस अज्ञान के कारण कभी कभी हमारे धनिकों को लाख का घर खाक में मिला कर अपनी साख खो बैठना पड़ती है। भारतीय विद्वानों-द्वारा बनाये हुए वाणिज्य-व्यवसाय-विषयक साहित्य की शिक्षा से शिक्षित होकर जो लोग वाणिज्य करेंगे वे निःसन्देह 'लिमिट' का रहस्य जानने के योग्य बन सकेंगे। इतना ही नहीं, किन्तु स्वयं उसके विधाता बन उसे अपनी इच्छा के अनुसार नचा कर भारत के कोष को परिपूर्ण करते रहेंगे।

अभी सदाचारहीन शिक्षा-द्वारा चूडान्त पण्डित होकर जो लोग राज्य की सेवा में भाग ले रहे हैं उनकी भावनायें बहुत कलुषित और नीच-स्वार्थ-प्रपूरित हैं। अतः उनके द्वारा प्रजा को जैसा चाहिए वैसा सुख और न्याय नहीं मिलता। कहने को तो वे अपने को प्रजा-सेवक कहते हैं, क्योंकि प्रजा-द्वारा दिये हुए कर से वे पलते हैं। पर वास्तव में वे प्रजा के प्रपीड़क बन कर उसे पद पद पर पीड़ा और त्रास देते हैं। भारतीय विद्वानों-द्वारा प्रस्तुत किये हुए साहित्य की सहायता से जब उन्हें शिक्षा दी जायगी और जब प्रत्येक राजकर्म्मचारी के हृदय में यह भावना दृढ़रूप से अङ्कित कर दी जायगी कि वह प्रजा के प्रत्येक जन-द्वारा दिये हुए कर-स्वरूप धन से पल रहा है, पर उस प्रत्येक जन की यथार्थ सेवा करने का सौभाग्य उसे सदा प्राप्त नहीं होता है, तब उसके मन में यह उत्सुकता और उत्कण्ठा सदा बनी रहेगी कि ज्यों ही उसे अपने देश-भाई की इस क्षेत्र में सेवा करने का अवसर मिले त्यों ही वह उसे बड़े आदर-भाव के साथ निःस्वार्थपूर्वक करे। तभी गोसाईंजी की निम्नलिखित पङ्क्तियाँ सार्थक होंगी—

भूप धर्म्म जो वेद बखाने।
सादर करहिं सकल सुख माने॥

ईश्वर करे कि हमारे राजकर्म्मचारियों के मन में उक्त भाव उत्पन्न करनेवाली शिक्षा के दिये जाने का संयोग शीघ्र आवे।

धनिकों की कोठियों पर मुनीम और गुमाश्तों के पदों पर काम करनेवाले लोगों में ऐसे बहुत हैं जो मुनीमी और गुमाश्तागीरी का काम करते हुए निज के भी व्यवसाय किया करते हैं। ऐसे लोग अपने मालिकों की दृष्टि को बचा कर लाभदायक सौदों को अपने निजी व्यापार में लगा देते हैं और हानिदायक सौदों को मालिक के बही-खातों में लिख देते हैं। यह सब दूषित भावनाओं के फल हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों-द्वारा जो शिक्षा दी जायगी उसके द्वारा इस वर्ग के लोगों में गोसाईंजी की निम्नलिखित पङ्क्तियों के भाव उत्पन्न किये जायँगे—

जो सेवक साहेब हिं सकोची।
निज हित चहे तासु मति पोची॥
सेवक हित साहेब सेवकाई।
करै सकल सुख लोभ बिहाई॥

अहा! क्या ही उत्तम भाव हैं! जिस देश के लोग उक्त भावना से भावान्वित होकर काम करते हैं उस देश की भलाई स्थिर होकर उसके लोगों को सुखी करती है। गोसाईंजी कहते हैं कि सेवक को अपने स्वामी की सेवा को ही अपना हित मानना चाहिए और उसका सम्पादन अपने सकल सुख और लोभ को छोड़ कर करना चाहिए। उक्त पद्यों में 'सकल सुख और लोभ' शब्द बड़े महत्त्व के हैं। उक्त प्रसङ्ग के वे जीवन-धन ही हैं।

जिस प्रकार प्रत्येक भारतवासी को चरित्रवान् बनाना, उसके चित्त में सद्भावनाओं का उत्पन्न करना, उसे परिस्थिति को समझने के योग्य बनाना भारत की यथार्थ उन्नति के लिए परम आवश्यक और प्रयोजनीय है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक उसी प्रकार उसके पोषणार्थ सात्त्विक भोजनों को पर्य्याप्त मात्रा में सुलभ कर देना भी अनिवार्य्य होना चाहिए। इस समय भारतीय जनों के सात्त्विक भोजनों के खाद्य पदार्थों को महार्घता ने इतना दुष्प्राप्य कर दिया है कि वे एक नहीं सहस्रों और लाखों लोगों को मिल ही नहीं सकते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इस देश के मेधावी बालक अल्पायुषी होते हैं। सात्विक भोजनों के पदार्थों को पर्य्याप्त मात्रा में उत्पन्न करने के लिए वर्त्तमान कृषक जनों में वर्त्तमान कृषि-विज्ञान को फैलाना होगा। कृषि-विज्ञान के फैलने से अन्न, घी, दूध, शर्करा आदि की उपज प्रचुर मात्रा में होने लगेगी और उससे भारतीय जनों को पर्य्याप्त मात्रा में सात्विक भोजन मिलने लगेंगे।

भारतीय जनों को चरित्रवान् तथा सद्विद्वान् बनाने के लिए जिस प्रकार स्थान स्थान पर बहुसंख्यक पाठ-शालायें और विद्यापीठ स्थापित करने की आवश्यकता है, उस प्रकार कृषकों को कृषि-विज्ञान की शिक्षा देने के लिए विद्याभवन खोलने की तादृश आवश्यकता नहीं है। कृषकों में कृषि-विज्ञान फैलाने का सम्प्रति सबसे सरल और सहज उपाय यह है कि भारत के प्रत्येक प्रान्त में उसकी प्रान्तीय भाषा में एक ऐसा साप्ताहिक-पत्र निकाला जाय जिसके द्वारा कृषि-विज्ञान का किसानों में प्रचार किया जा सके और उसका इतना प्रचार किया जाय कि वह उस प्रान्त के प्रत्येक गाँव में पहुँचाया जाय और उसे किसानों को पढ़ कर सुनाने का प्रबन्ध किया जाय। इस प्रकार का उद्योग करने से सम्भव है कि दस-पाँच वर्षों के भीतर ही किसानों में कृषि-विज्ञान का ख़ासा प्रचार हो जायगा और उसकी सहायता से वे अपने खेतों से अधिक उपज लेकर भारतीय जनों को सात्विक भोजन पर्य्याप्त मात्रा में पहुँचा सकेंगे। कृषि की उन्नति होने से देश में धीरे धीरे कला-कौशल और उद्योग-धन्धों की भी उन्नति हो सकेगी। क्या भारत के दानवीर लोग हमारी इस सूचना को सफल करने का उद्योग करेंगे? जो लोग इस समय मन्दिरों के बनवाने में, विवाह के समय अग्निक्रीड़ा और वेश्यानृत्य कराने में, थोथी उपाधियों के ख़रीदने में, लाखों रुपयों का अनुत्पादक व्यय कर डालते हैं, उन्हें इस उत्पादक तथा देश-दशा-सुधारक व्यय पर अवश्य ही विचार कर तदनुसार कार्य्य करना चाहिए। ईश्वर हमारे इस निवेदन के महत्त्व को समझने की योग्यता हमारे धन-कुबेरों को दे।

गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री

मान की अवधि।

हैं अनेक शताब्दियां जा ही चुकी,
क्या समय की गति कभी भी है रुकी?।
रोज़ ही दुनिया बदलती रङ्ग है,
पर वही अब भी तुम्हारा ढङ्ग है॥१॥
सृष्टि के आरम्भ से ही रोज़ ही,
हो रही अब तक तुम्हारी खोज ही।
लोग लाखों यत्न कर करके थके,
पर तुम्हारी झलक भी क्या पा सके?॥२॥
बुद्धि कब से है न चक्कर खा रही?
जानने के हित तुम्हें घबरा रही!
जो विविध विज्ञान के विद्वान् हैं,
क्या न वे भी हो रहे हैरान हैं॥३॥
क्या न तुम रह कर छिपे सब काल में?
हो फँसाते विश्व को भ्रम-जाल में।
सत्य ही लीला तुम्हारी धन्य है,
हो तुम्हीं तुमसे न तुम सा अन्य है॥४॥
भक्त बेचारे तुम्हारे क्या करें?
वे प्रतीक्षा-सिन्धु में कब तक तरें?।
जन्म भर किस भाँति वे धीरज धरें,
हाय! क्या नैराश्य ही ले कर मरें?॥५॥
जल-विहीन यथा सुविस्तृत ताल में,
तड़फड़ाती मीन हैं तप-काल में।
तुम बिना जग में तथा पाकर व्यथा,
हैं असंख्य मनुष्य व्याकुल सर्वथा॥६॥
अन्य प्रिय जन भी यदपि संसार में,
दीखते निष्ठुर प्रणय-व्यापार में।
किन्तु वे दो चार को पीड़ित करें
पर तुम्हारे प्रेम में लाखों मरें॥७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो तुम्हारे फँस गये अनुराग में,
है उन्हें जलना विरह की आग में ।
कौन बच सकता तुम्हारी चोट से ?
हो चलाते तीर पट की ओट से ॥ ८ ।
भक्त जन तुमको सदैव पुकारते,
हैं तुम्हारी राह नित्य निहारते ।
पर तुम्हारा दिल पिघलता है नहीं,
नेक उनका दुःख खलता है नहीं ॥ ९ ॥
जो तुम्हारे प्रेम में पागल बने,
ढूँढ़ते फिरते तुम्हें दुख में सने ।
क्या भला दर्शन उन्हें देते कभी ?,
हाय ! उनकी भी न सुधि लेते कभी ॥ १० ॥
हरण कर तुम हृदय होते मौन हो,
जान सकता कौन है तुम कौन हो ?
खोजने कोई तुम्हें जावे कहाँ ?,
हो कहां इसका पता पावे कहां ? ॥ ११ ॥
चाहते तुमको नहीं क्या हैं सभी ?
क्या किसी को चाहते तुम भी कभी ?
चाहना क्या है तुम्हें आता नहीं ?
यह बखेड़ा है तुम्हें भाता नहीं ॥ १२ ॥
देखने कोई तुम्हें पाता नहीं,
पर बिना देखे रहा जाता नहीं ।
लोग होते बार बार हताश हैं,
किन्तु जाते फिर तुम्हारे पास हैं ॥ १३ ॥
क्यों नहीं तुम सामने आते भला ?,
यह कहो किस हेतु शर्माते भला ।
क्या अहो ! इतने अधिक सुकुमार हो ?,
सह न सकते दृष्टि का भी भार हो ॥ १४ ॥
बस बता दो तुम अवधि निज मान की—
दुखमयी अपनी हठीली बान की ।
भक्त जन जिसके सहारे जी सकें,
त्यों तुम्हारे प्रेम-रस को पी सकें ॥ १५ ॥

गोपालशरणसिंह

गति-सङ्गीत ।

गति में जो सौन्दर्य है वह स्थिरता में नहीं । गति का सम्बन्ध जीवन से है और स्थिरता का मृत्यु से । यही कारण है कि कला में गति की उपेक्षा नहीं की जाती । जब हम अपने हृद्गत-भाव को

सलोमी का नृत्य ।

व्यक्त करना चाहते हैं तब हमें शरीर के किसी न किसी अङ्ग को सञ्चालित करना पड़ता है । हाथ, पैर, नेत्र, मुख, ओठ आदि में जो विकार हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिगोचर होता है उसका कारण हृद्गत-भावना ही है। कभी कभी किसी तीव्र भाव के उद्रेक से शरीर जड़ीभूत हो जाता है। परन्तु उस अवस्था में भी

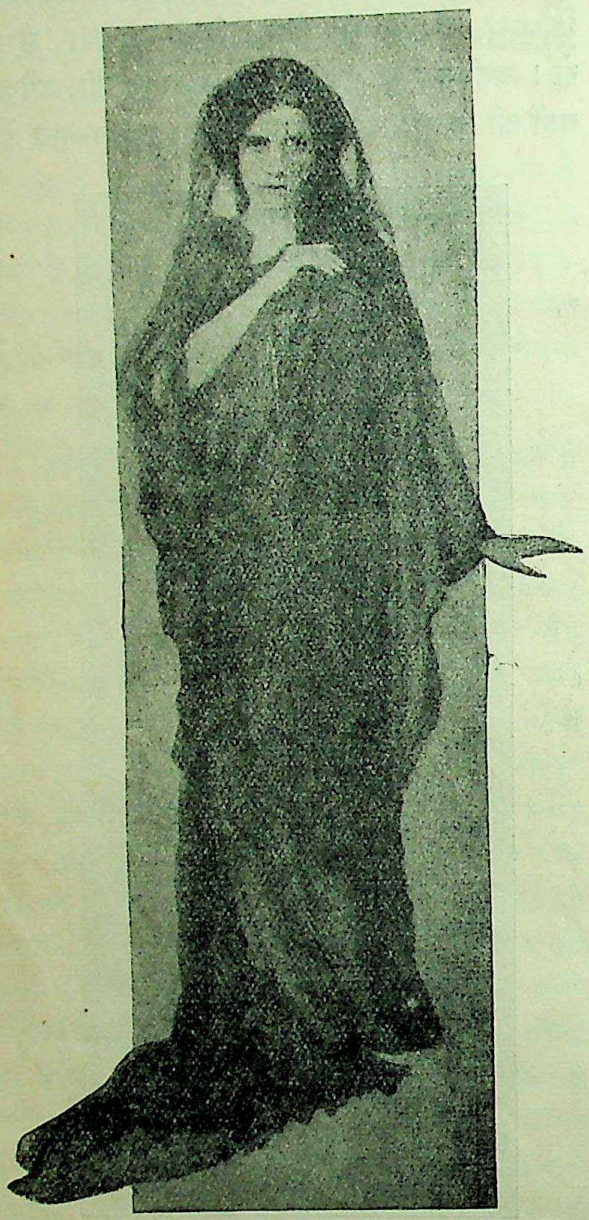

समाधि-यात्रा।

गति का प्रभाव देखा जाता है। फ़ोटो लेते समय फ़ोटोग्राफ़र मनुष्यों की जिस अस्थिरता से घबरा जाता है वही कला का सर्वस्व है। गति के द्वारा जिस सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है उसी की चर्चा यहाँ की जाती है।

संसार में जितने जीव हैं उन सबमें हर्ष और विषाद का न्यूनाधिक अंश अवश्य होता है। वे अपने अङ्गों-द्वारा अपने हर्ष और विषाद के भावों को प्रकट करते हैं। संसार के सब प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ है। वह अपने सुख-दुख और हर्ष-विषाद को सब प्राणियों की अपेक्षा अधिक स्पष्टरूप से प्रकट कर सकता है। अन्य प्राणियों की अपेक्षा उसके पास साधन भी ऐसे हैं जिनसे वह अपने इन भावों

क्लियोपाट्रा-नृत्य।

को सुगमतापूर्वक प्रत्यक्ष कर सकता है। दूसरे प्राणी इनका अनुभव तो अवश्य कर लेते हैं, परन्तु इनके प्रभाव से उनकी जैसी दशा होती है उन्हें वे मनुष्य की तरह व्यक्त नहीं कर सकते।

पहले पहल जब मनुष्यों का आविर्भाव इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार में हुआ होगा तब यहाँ के प्राकृतिक दृश्यों तथा उसकी अन्यान्य नेत्र-रञ्जक लीलाओं को देख कर उनके हृदय में एक प्रकार का आह्लाद उत्पन्न हुआ ही होगा। आह्लाद के उत्पन्न होने से उनके शरीर में एक अद्भुत प्रकार की स्फूर्ति का सञ्चालन होने लगा। ज्यों ज्यों उस स्फूर्ति की गति का वेग बढ़ने लगा त्यों त्यों उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से प्रसन्नता-सूचक भाव दृष्टिगोचर होने लगे और उनका मुख-मण्डल प्रफुल्लित हो उठा। खुशी के मारे उनकी आँखों में एक भिन्न प्रकार की ज्योति का प्रादुर्भाव हो गया। उनका सर्वाङ्ग शरीर तन्मय हो उठा और एक विचित्र स्फूर्ति के द्वारा इधर-उधर सञ्चालित होने लगा। जगन्नियन्ता के इस अनुपम रचना-कौशल को देख कर उनके हृदय में उसके प्रति बड़ी श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होगई। उनका यह भावावेश वाणी में प्रकट हुआ और गति में भी। वाणी से सङ्गीत और काव्य की सृष्टि हुई और गति-सञ्चालन से नृत्य की।

नृत्य-द्वारा रूपक-कथा का अभिनय।

कला की सृष्टि तभी होती है जब मनुष्य अपने भाव को एक रूप देना चाहता है। जब तक मनुष्य अपनी भक्ति में लीन रहे तब तक नृत्य की कला नहीं थी। पर धीरे धीरे उनका ध्यान अपने शरीर-सञ्चालन की ओर भी जाने लगा। अब वे यह सोचने लगे कि हृदय के किस भाव को हम शरीर के किस अङ्ग से और उसे किस प्रकार की गति देकर व्यक्त कर सकते हैं। अतएव वे अपने शुद्ध और सरल नृत्यों में संशोधन करने लगे। अपने हृदय की अनेक भावनाओं को व्यक्त करने का काम उन्होंने अपने शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों को बाँट दिया। कुछ भावों को वे नेत्र के द्वारा, कुछ को हाथ के द्वारा, कुछ को कमर और कुछ भावों को पैर के द्वारा प्रकट करने लगे। तब उनका नृत्य किञ्चित् सुश्रृङ्खलित और नियम-बद्ध हो गया। तब वह कला के रूप में परिणत हो गया। तन्मयता से कला की उत्पत्ति होती है, परन्तु उसके विकास के लिए अवलोकन और परीक्षण की आवश्यकता होती है।

धीरे धीरे मनुष्यों का परिवार बढ़ने लगा और भिन्न भिन्न गणों और समाजों की सृष्टि होने लगी। सभ्यता की वृद्धि के साथ आमोद-प्रमोद के साधन भी बढ़े। अब उनका रहन-सहन और उनके हृदय का भाव पहले सा न रहा। इसके साथ ही साथ उनके नृत्यों का भी ढङ्ग बदल गया। अब वे केवल जगन्नियन्ता के भक्ति-रस में ही डूब कर नहीं नाचते थे, किन्तु अपने आमोद के लिए भी। इसी प्रकार धीरे धीरे उनके नृत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का आधार केवल संसार का ही सुख-विलास रह गया।

संसार में गति-सङ्गीत का आरम्भ इसी प्रकार हुआ और धीरे धीरे वह अपने वर्तमान रूप में परिणत हो गया। आज-कल प्रायः सभी देशों और सभी

वसन्त-नृत्य।

जातियों में इस गति-सङ्गीत का प्रचार हो गया है। सभ्य से सभ्य और असभ्य से असभ्य सभी जातियाँ नाचती और गाती हैं। प्रत्येक नर्तक और नर्तकी इस बात का प्रयत्न करते हैं कि वे नृत्य-द्वारा अपने मन के सूक्ष्म भावों को भी दर्शकों पर प्रकट कर सकें। कवियों ने ऐसे नृत्य को सबसे उत्तम बतलाया है जिसमें शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों के सञ्चालन से भिन्न भिन्न प्रकार के छन्दों के विकास का बोध हो सके।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, सृष्टि के आरम्भ से ही गति-सङ्गीत को सर्वोत्तम और भाव-पूर्ण बनाने की चेष्टा होती चली आ रही है। नाचते समय प्रत्येक नर्तक या नर्तकी का ध्यान भाव की अभिव्यक्ति पर रहना चाहिए। सुख या दुःख अथवा हर्ष या विषाद, किसी भी प्रकार का

वन-नृत्य।

भाव हो उसे उसी रूप में भली भाँति दर्शानेवाले लोग ही नृत्य-कला में निपुण समझे जाते हैं। जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नृत्य में यह गुण पाया जाता है वही उच्च कोटि का समझा जाता है। सुर-सभा में उर्वशी, मेनका और रम्भा इत्यादि अप्सराओं के नृत्य-कौशल की कल्पना भी हमारे नृत्य-प्रेम का ही परिचय देती है।

जहाँ हमारे देश से गति-सङ्गीत का अन्त हो रहा है वहाँ योरप में इसकी उन्नति होती जा रही है। वहाँ के नृत्य-कौशल में भारतीय गति-चातुर्य्य का समावेश होता जा रहा है। इससे वहाँ के गति-सङ्गीत में जो परिवर्तन हो रहा है उसे देख कर सब लोग अवाक् हो रहे हैं। मिस एलन नाम की एक प्रसिद्ध नर्तकी के नृत्य-कौशल का प्रधान लक्ष्य

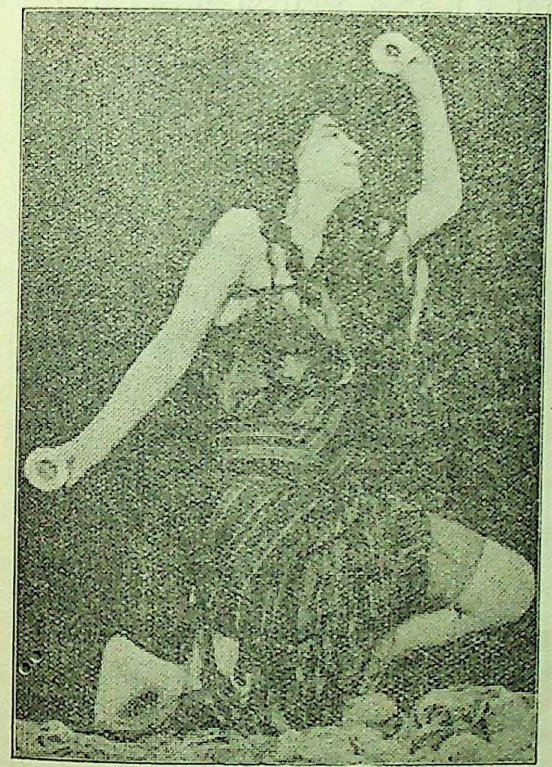

फ़ारस का नृत्य।

यही रहता है कि चित्त की भावनायें शरीर-सञ्चालन-द्वारा प्रत्यक्ष कर दी जायँ। फूल, चित्र, दीपक और स्वर इत्यादि के रूप उसके नृत्य से परिस्फुट हो जाते हैं।

इस समय योरप की नर्तकियों का ध्यान प्राचीन भारत और मिस्र की ओर अधिक

रूस के नर्तक और नर्तकी।

आकृष्ट हो रहा है। आज-कल वे इन्हीं दोनों देशों की प्राचीन आख्यायिकाओं का अवलम्बन कर अपने गति-सङ्गीत का विकास कर रही हैं। मिस रूथ डेनिस नाम्नी एक योरोपीय नर्तकी भारतीय नर्तकियों के ही भाव का अवलम्बन कर अपना नृत्य-कौशल दिखा रही है। यह अपने 'वन्य-नृत्य' नामक नाच में भारतीय योगियों के पूजा और अर्चन का भाव दर्शाती है। अपने नृत्य में यह भारतीय गति, सुर और शरीर-सञ्चालन का बहुत ही अच्छा चित्र खींचती है। भारतीय नर्तकियों के वेश में इसने भारतीय नरेशों के सामने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो नाच नाचा था उसे देख कर किसी के मन में इस बात का ज़रा भी गुमान नहीं हुआ कि यह एक योरोपीय नर्तकी है।

स्पेन की नर्तकी।

इन नर्तकियों के अतिरिक्त और भी बहुत सी ऐसी महिलायें हैं जिन्होंने गति-सङ्गीत में अनेक नये नये भावों और नये नये रूपों की उत्पत्ति कर दी है। इनमें रौशनआरा, स्पेन की वालेन्सिया, रूस की कारासाविना, आना पावलोका और पारसी नर्तकी वहानियान इत्यादि जगत्प्रसिद्ध हैं।

रूस में अभी नृत्य-सङ्गीत का ह्रास नहीं हुआ। वहाँ उसकी ज्योति अभी पूर्ववत् ही फैल रही है। वहाँ के श्रम-जीवी और नीच श्रेणी के लोग भी दिन भर कठिन परिश्रम करने के बाद सन्ध्या-समय नाच गाकर अपनी थकावट को दूर कर लेते हैं। प्राचीन काल के यूनानी नाचों की भी दो एक कलाओं का समावेश अभी तक रूस के गति-सङ्गीत में परिलक्षित होता है।

नृत्य-सङ्गीत में अँगरेज़ों की ख्याति नहीं। उनके नाच में सिवा उछल-कूद के और कुछ नहीं। कभी कभी तो ऐसा जान पड़ता है कि नर्तक और नर्तकियाँ उछलने-कूदने और दौड़ने-चिल्लाने की कसरत कर रही हैं। इस समय अँगरेज़ लोग रूसियों के गति-सङ्गीत की नक़ल कर रहे हैं।

योरप में नृत्य-सङ्गीत की शिक्षा देने के लिए नृत्य-विद्यालय खुले हुए हैं। वहाँ अन्यान्य कला-कारीगरियों की तरह नृत्य-सङ्गीत की भी शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त नर्तक और नर्तकी

इँग्लेंड की रङ्गभूमि का एक नृत्य।

अपनी अपनी प्रतिभा के अनुसार गति-सङ्गीत को मुखर और सजीव बनाने की बड़ी चेष्टा करते हैं।

योरोप में बहुत दिनों तक प्राचीन यूनानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गति-सङ्गीत के 'रेन-बो' और 'सर्पेन्टाइन' नामक नृत्यों की नक़ल करने की बड़ी धूम मची रही। इन नाचों के लिए बड़ी बड़ी लम्बी और भड़कीली पोशाकों की आवश्यकता होती थी। कहा जाता है कि एक बार एक नटी ने 'सर्पेन्टाइन' नृत्य नाचने के लिए एक मील लम्बी पोशाक बनवाई थी। इस समय इस नाच का रवाज बिलकुल ही उठ गया है।

नर्तकी लीडिया की देह गति-लावण्य की प्रत्यक्ष मूर्ति है।

नृत्य के द्वारा देह का सौन्दर्य भली-भाँति स्फुट है। इसी लिए चित्रकारों ने अपनी कला में उसका उपयोग किया है। हमारे देश में अजन्ता के गुहा-मन्दिर में नृत्य में निरत सैकड़ों चित्र हैं। उन्हें देखने से यह प्रतीत होता है कि उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से स्वर निकल रहे हैं और उनकी भिन्न भिन्न मनोरम

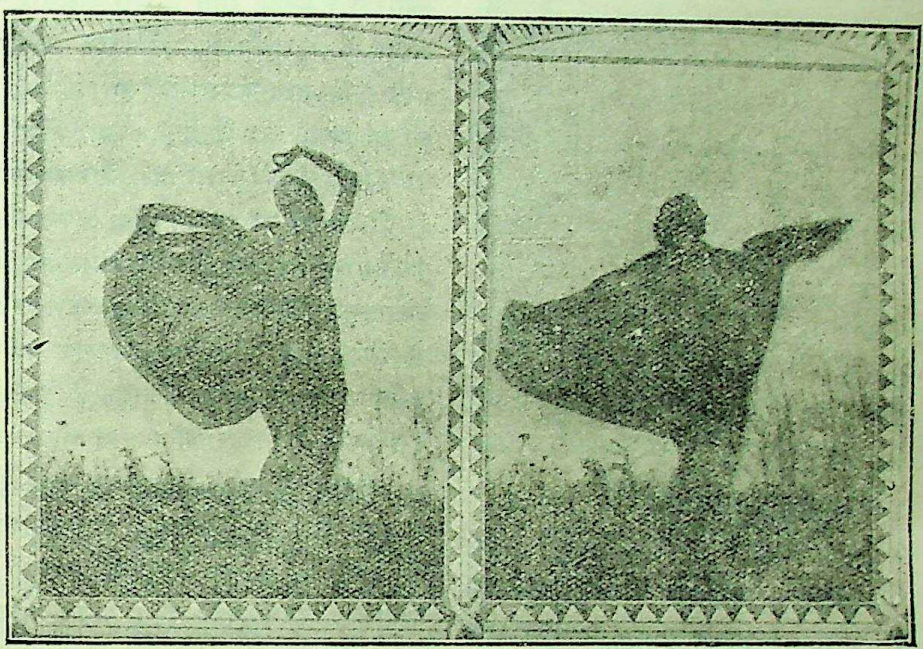

रौशनआरा का भारतीय नृत्य।

ऊपर जिन नृत्यों का उल्लेख किया गया है वे स्वयं चमत्कार-पूर्ण हैं, परन्तु उनसे गति-सौन्दर्य का भी आभास मिलता है। कवियों ने नारी-सौन्दर्य में जिन जिन गुणों का वर्णन किया है उनका विकास नृत्य में ही देखा जाता है। जो रमणी पद-विन्यास में हंसों को शिक्षा नहीं दे सकती, बाहु-निक्षेप में लता को लज्जित नहीं कर सकती, तनु को लीलायित कर जल-तरङ्गों की शोभा नहीं स्फुट कर सकती, उसके सौन्दर्य में माधुर्य नहीं है। रूस की प्रसिद्ध गतियों से भिन्न भिन्न छन्दों का बोध होता है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो गति-सङ्गीत ही मूर्तिमान होकर नाच रहा है।

गति के द्वारा शरीर में जो एक प्रकार की वक्रता आ जाती है उसी से उसका सौन्दर्य बढ़ जाता है। रमणी-सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए कवियों ने जिन जिन उपमाओं की कल्पना की है उनमें वक्रता की ही विशेषता है। चन्द्र, सर्प, लता, मत्स्य, धनु आदि अपनी वक्रता के लिए विख्यात

112816

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। चञ्चल नेत्र, कुञ्चित केश, ग्रीवा-भङ्ग आदि से गति की ही शोभा प्रकट होती है। अतएव यदि यह

नृत्य में गतिसौन्दर्य।
(रूस की प्रसिद्ध नर्तकी लीडिया)

कहा जाय कि गति ही सौन्दर्य का प्राण है तो अत्युक्ति नहीं है।

लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव

कपास की कृषि और क़िस्में।

कपास की खेती और रुई के व्यापार पर बहुत विस्तारपूर्वक विचार हो चुका है। इनके सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। परन्तु यह सब कुछ अभी तक पूँजीपतियों के स्वार्थ को दृष्टि में रख कर होता रहा है। सरकारी कृषि-विभाग का भी सारा प्रयत्न और परिश्रम एवं अन्वेषण और जाँच इसी उद्देश्य से—भारतीय कारख़ानों की उद्योग-वृद्धि के लिए नहीं, किन्तु विशेष कर इँग्लैंड के कपड़े के व्यवसाय के हित के अर्थ—होती रही है*। कारख़ानों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सरकारी कृषि-विभाग कपास की नई नई क़िस्मों की जाँच करता है, नस्लों को बढ़िया बनाने और उनकी उपज बढ़ाने के लिए अनेक नये नये प्रयत्न और प्रयोग किये जाते हैं इसी उद्देश्य से कमीशन † बैठाये जाते हैं और अर्थशास्त्रज्ञ इसी सङ्कुचित सीमा में वाद-विवाद करते हैं। परन्तु अब आवश्यकता है कि हाथ-द्वारा कते सूत के जिस महान् उद्योग की हम अपने देश में सृष्टि करना चाहते हैं और जिस पर हमारे देश की समृद्धि और शान्ति अवलम्बित है उसकी दृष्टि से भी हम उपर्युक्त विषयों पर विचार करें। चर्ख़ा-द्वारा सूत कातने के जिस गृहशिल्प या घरेलू उद्योग का व्यापक प्रचार करके हम अपने ग्रामों में घरों के भीतर और झोपड़ों तक में एक नवीन जीवन और शक्ति का सञ्चार करना चाहते हैं उसके पुनरुत्थान में इस प्रकार के विचार की अत्यन्त आवश्यकता है।

कपास की कृषि का प्रचार सबसे पहले हमारे देश में हुआ था। यहीं से उसका प्रचार संसार के अन्य देशों में हुआ। इसका निरूपण करना इस लेख का प्रतिपाद्य विषय नहीं है। अपने प्राचीन गौरव पर गर्व करने के लिए इतना ही पर्याप्त है कि हमारे प्राचीन आर्यावर्त्त में कपास की कृषि और वस्त्र बनाने का उद्योग उस समय अत्यन्त उन्नति पर था जब वर्तमान सभ्य जातियों के पूर्वज पत्तियों और चमड़े से अपने शरीर को ढकते थे। इसके साथ ही यह भी निर्विवाद रूप से प्रत्यक्ष है कि हम औरों से पहले जितना आगे थे उतना ही अब पिछड़ गये हैं, शरीर ढकने तक

---

* देखो, रुई की कृषि और व्यापारशीर्षक लेख पौष १९७८ के स्वार्थ में।

† कुछ वर्ष पहले भारतीय सरकार ने इसी उद्देश्य से जो कपास-अन्वेषण-समिति बिठाई थी उसकी रिपोर्ट इसी दृष्टि से लिखी गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए दूसरों पर अवलम्बित होगये। अपनी प्राचीन उन्नति पर हमारा मस्तक जितना ऊँचा होता है, वर्तमान अवनति पर उससे अधिक नीचा हो जाता है। साधारण बुद्धिवालों को भी यह बात स्वाभाविक समझ पड़ेगी कि जो वस्तु जहाँ उत्पन्न होती है उसकी तैयारी का उद्योग भी वहीं उन्नति कर सकता है। इसी नियम के अनुसार रुई के वस्त्र बनाने का उद्योग भी भारत में पहले उन्नत होगया था। हमारे देश के सब भागों में रुई उत्पन्न होती है, अतएव सूत कातने और वस्त्र बनाने का उद्योग भी देशव्यापी था। यह कहने में कुछ भी अत्युक्ति नहीं है कि हमारे देश के आर्थिक जीवन का दाहना अङ्ग यदि कृषि-कार्य्य था तो बायाँ अङ्ग कपास का उद्योग था। और इस आर्थिक जीवन का रूप ऐसा था जिससे हमारी सभ्यता और सामाजिक जीवन को पूर्ण अनुकूलता थी। जिस देश को अपने शरीर और लाज की रक्षा करने के लिए प्रकृति ने स्वतन्त्र बनाया है वह केवल अपनी पुरुषार्थ-हीनता से ही इनके लिए परावलम्बी हो सकता है।—प्रकृति ने जहाँ का जल-वायु रुई उत्पन्न करने के योग्य बनाया है वहाँ उसकी तैयारी का उद्योग होना स्वाभाविक है।

कपास की कृषि के अनुकूल जल-वायु—कपास को समशीतोष्ण जल-वायु की आवश्यकता है, अतएव संसार के उन्हीं उष्ण और अल्प उष्ण प्रदेशों में इसकी कृषि होती है जहाँ ग्रीष्म-काल अधिक होता है और भूमि में नमक मौजूद रहता है। संयुक्त-राज्य (अमरीका), भारतवर्ष और चीन जैसे विशाल देशों में इसकी खेती विस्तार से होती है। परन्तु बढ़िया रुई के अनुकूल सामुद्रिक जल-वायु ही होता है। अतएव अमरीका के निकटस्थ द्वीपों और मिस्र देश के नील-नद-सिञ्चित प्रदेश में बहुत बढ़िया रुई उत्पन्न होती है। कहा जाता है कि भारतवर्ष की अतिशय उष्णता और फिर वर्षा-ऋतु में धूप का अभाव बढ़िया कपास की उत्पत्ति में बाधक है। भारतवर्ष में अच्छी रुई उस भूमि में होती है जो रेगर (Soft loam or regar) कहलाती है। यह कपासवाली काली मिट्टी के नाम से प्रसिद्ध है और मुख्य कर गुजरात, काठियावाड़, बरार तथा मदरास के कोयम्बटूर और तिन्नेवली ज़िलों में पाई जाती है। उपर्युक्त स्थानों की रुई भारतवर्ष के अन्य भागों की रुई से उत्तम होती है।

रुई के प्रमुख उत्पादक प्रदेश अमरीका के संयुक्त-राज्य, भारतवर्ष, मिस्र और चीन ही हैं। इनमें से चीन में कपास की खेती की उन्नति की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है और वहाँ की रुई का सम्बन्ध केवल जापान के बाज़ार से ही है। पर अमरीका, भारतवर्ष और मिस्र की रुई का अन्तर्देशीय व्यापार में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कपास की कृषि का फ़ी बीघा

	क्षेत्रफल	पैदावार
अमरीका	५½ करोड़ बीघे	६५ सेर
भारतवर्ष	३¾ करोड़ बीघे	३२ सेर
मिस्र	३० लाख बीघे	१४७ सेर

संसार की कुल रुई का लगभग ¾ भाग अकेले अमरीका में उत्पन्न होता है। इसके सिवा हमारे देश की अपेक्षा अमरीका की रुई के रेशे अधिक लम्बे और मुलायम होते हैं। अमरीका में कई जाति की रुई पैदा होती है। उनका उल्लेख यहाँ किया जाता है—

(१) सी आइलैंड या बार्बडीन—(Sea island or Barbadene) इस जाति की रुई बारबेडोज़ और वेस्ट इंडीज़ के अन्य द्वीपों में उत्पन्न होती थी, इसी लिए इसका उपर्युक्त नाम रक्खा गया। अब संयुक्तराज्य में इसका विशेष प्रचार है। केरोलीना और जारजिया नामक राज्यों में समुद्र के किनारे पर इसी की खेती होती है। इसके रेशे बहुत लम्बे (डेढ़ इंच से ऊपर दो इंच तक), रेशम जैसे बारीक और मुलायम होते हैं। रङ्ग हल्का दुधिया होता है। इसका सूत महीन से महीन काता जा सकता है। पर दूसरे स्थानों में बोये जाने पर यह क़िस्म उतनी अच्छी नहीं होती, इसकी विशेषतायें बहुत कुछ घट जाती हैं।

फ़्लोरिडा की रुई—फ़्लोरिडा-प्रायद्वीप में भी बहुत चिकनी, चमकदार और रेशमी रुई होती है। इस रुई से २०० नम्बर तक का सूत काता जाता है, १४० नम्बर तक तो कतता ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीसवियन रुई—दक्षिणी अमरीका में मज़बूत रेशे की बढ़िया रुई होती है। उससे १५० नम्बर तक का सूत काता जाता है।

मिस्र देश का जल-वायु और भूमि भी रुई के लिए बहुत उपयुक्त है। कड़ाके की धूप और नीलनदी-द्वारा सिँचाई की पर्याप्त सुविधा के प्रभाव से वहाँ बढ़िया जाति की रुई अधिक परिमाण में उत्पन्न होती है। हमारे देश में सिन्ध-प्रान्त का जल-वायु मिस्र के सदृश है। सिचाई का भी अच्छा साधन होने से वह बढ़िया कपास की पैदावार के लिए उपयुक्त देश है। मिस्र में **गैलिनी ब्लैक रैटलर** इत्यादि अनेक जाति की बढ़िया रुई होती है। उनसे १५० नम्बर तक का सूत बनता है। वहाँ भूरे रङ्ग की रुई मध्यम श्रेणी में गिनी जाती है। इससे ५० नम्बर से १०० नम्बर तक का सूत काता जाता है। संसार की रुई की उपज का लगभग $\frac{1}{6}$ भाग यहाँ होता है। यदि कपास की सबसे बड़ी फ़सल अमरीका में होती है और सबसे अधिक उपज मिस्र देश में है तो उसकी उन्नति का सबसे अधिक अवसर भारतवर्ष में है। भारत में रुई की पैदावार खूब बढ़ाई जा सकती है। इसके सिवा श्रेष्ठ जाति की रुई की खेती का प्रबन्ध भी यहाँ ज़ोरों के साथ किया जा सकता है। बहुत सम्भव है कि पहले हमारे देश में श्रेष्ठ श्रेष्ठ जाति की रुई उत्पन्न होती रही हो, क्योंकि जिस आश्चर्य्यजनक महीन मलमल का इस देश में बनना इतिहास से सिद्ध है उसका सूत हाथ से इतना महीन काता जाता रहा होगा जितना मिल के १०० और २०० नम्बरवाले सूत भी नहीं होते। उसके लिए बहुत लम्बे और मज़बूत रेशे की रुई अवश्य उत्पन्न की जाती रही होगी। भारतवर्ष के लगभग सभी प्रान्तों में रुई उत्पन्न होती है। नीचे दिये हुए ब्यौरे से ज्ञात होगा कि किस प्रान्त में कपास की कृषि का कितना विस्तार है—

कोष्टक नं० १

प्रान्त		कपास की कृषि का रक़बा सन् १९१९-२० में (सहस्र एकड़ के अङ्क)	फ़ी एकड़ रुई की निकासी का साधारण औसत (सेरों में)
बङ्गाल		५०	७७½
मदरास		२३३९	४३½
बम्बई	प्रेसीडेन्सी	४०२६	५०
	सिन्ध	३१२	
युक्तप्रान्त	आगरा	११९८	८०
	अवध		
बिहार और उड़ीसा		७४	७७½
पञ्जाब		२०७१	५९
ब्रह्मदेश		४३०	६१
मध्यप्रान्त		१४४८	४३
बरार		३११५	७७
आसाम		३२	१

भारतवर्ष में जो भाग कपास की कृषि के लिए अच्छे हैं और जहाँ अच्छी रुई निकलती है वे हम पहले लिख चुके हैं। उपर्युक्त अङ्कों को देखने से प्रकट होता है कि वहीं कपास की कृषि का विस्तार भी अधिक है।

अब भारतवर्ष की मुख्य मुख्य जाति की रुई का विवरण और वह कहाँ बोई जाती है इनका ब्योरा संक्षेप में आगे दिया जाता है—

कोष्टक नं० २

कहाँ बोई जाती हैं		विवरण
भरौंच	बम्बई-प्रान्त	बहुत साफ़ सफ़ेद। मज़बूत मुलायम रेशा ⅞ इंच से १ इंच तक लम्बा। २८ नम्बर तक का ताना-बाना बनता है। पीला मायल रङ्ग। मुलायम रेशा ⅞ से ⅞ इंच तक २० नम्बर तक का ताना-बाना।
कामती और धारवाड़	बम्बई-प्रान्त	कम साफ़। कूड़ा निकलता है। मज़बूत नहीं। २० नम्बर तक का बाना।
धोलरा		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	कहां बोई जाती हैं	विवरण
आमरा (अमरावती की रुई)	खानदेश, बम्बई, मध्यभारत	$\frac{1}{2}$ से $\frac{5}{8}$ इंच तक का रेशा। मध्यम प्रकार की रुई। अमरावती की मज़बूत। कामती की कमज़ोर।
इसी की उत्कृष्ट	मध्यप्रान्त और बरार	सबसे श्रेष्ठ रुई। रङ्ग हलका सुनहरा। ३२ नम्बर तक का ताना।
क़िस्म हींगनघाट है	मध्यप्रान्त	
बङ्गाल-सिन्ध-देशी	यह क़िस्म बङ्गाल, युक्तप्रान्त, पञ्जाब, राजपूताना और सिन्ध प्रान्त में होती है।	रेशा $\frac{3}{8}$ से $\frac{1}{2}$ इंच तक। बङ्गाल की रुई निकृष्ट श्रेणी की है। इससे युक्त-प्रान्त, सिन्ध आदि की अच्छी होती है। इनसे १५ नम्बर तक का सूत तैयार होता है।
तिन्नेवली (कारूनगनी)	मदरास के दक्षिणी ज़िलों में	१ इंच तक का रेशा। अत्युत्तम मज़बूत और लचकदार। २८ नम्बर तक का सूत।
कम्बोडिया		१ इंच तक का रेशा।
कोकेनाडा उत्तरी आदि	मदरास के उत्तरी और पश्चिमी भाग में	अच्छी रुई नहीं होती।

उपर्युक्त जातियों की रुई में आमरा की कृषि का विस्तार सबसे अधिक है। रुई की सारी उपज का लगभग आधा भाग इसी रुई का है। यह जाति मध्यमश्रेणी की है। भरौंच, तिन्नेवली, धारवाड़ सदृश उत्तम रुई की उपज का परिमाण कुल का चौथाई है। शेष चौथाई में बङ्गाल, सिन्ध तथा मदरास की रुई है, जो नीचे दरजे की होती है। अन्य देशों की अपेक्षा हमारे देश में अच्छी रुई नहीं उत्पन्न होती। यह बात बहुत कुछ जल-वायु और भूमि की दशा पर निर्भर है, जिस पर हमारा कोई अधिकार नहीं। परन्तु बहुत अंश तक रुई की जाति की उन्नति और पैदावार की वृद्धि मानवी प्रयत्न पर अवलम्बित है। चाहे रुई के व्यापार की दृष्टि से, चाहे देशी मिलों के उद्योग की दृष्टि से अथवा रुई के घरेलू उद्योग की दृष्टि से विचार करें, तीन प्रकार की उन्नति तो सब प्रकार से अभीष्ट है। (१) बढ़िया और अच्छे रेशे की कपास पैदा करनी चाहिए, (२) अधिक उपजवाली जातियों और कृषि के उन्नत साधनों-द्वारा कपास की पैदावार बढ़ाना चाहिए और (३) हमें ऐसी नस्ल की कपास चाहिए जिसमें रुई का औसत अधिक हो, क्योंकि यदि कपास की पैदावार बढ़ जाय, परन्तु कपास ऐसे मेल की हो जिसमें रुई का भाग कम हो, तो कुछ लाभ नहीं। युक्तप्रान्त में कानपुर-अमरीका नामक कपास का प्रचार करने का प्रयत्न हो रहा है। इसका रेशा बढ़िया है, परन्तु (lint) रुई का औसत ३१ फ़ी सदी ही है। इसके विपरीत देशी अलीगढ़ की सफ़ेद फूल-वाली कपास से ४० फ़ी सदी रुई निकलती है।

वर्तमान अँगरेज़ी सरकार भी इस विषय में अत्यन्त प्रयत्नशील है। कपास की कृषि की उपर्युक्त तीन प्रकार की उन्नति से देश को आर्थिक लाभ है, अतएव उससे हमारा विरोध नहीं है। परन्तु सरकार का उद्देश हमारे आर्थिक लाभ से उतना नहीं है जितना लंकाशायर की रुई के उद्योग को सहायता पहुँचाना है। काटन-कमीशन की रिपोर्ट में लिखा गया है—"जहां तक लंकाशायर का सम्बन्ध है वहां तक भारतवर्ष में लम्बे रेशे की रुई के प्रचार की शीघ्रतम आवश्यकता है"। इस समस्या की ओर सन् १७८८ (अर्थात् अमरीका के स्वतन्त्रताप्राप्त कर लेने के समय) से अँगरेज़ों का ध्यान रहा है। पिछली शताब्दी के प्रारम्भ में कपास की खेती का विस्तार करने के प्रयत्न का उद्देश यह था कि लंकाशायर अमरीका की रुई पर आश्रित न रहे। परन्तु अब ऐसी स्थिति होगई है कि भारतवर्ष में ही रुई का उद्योग खूब उन्नतिशील है।

चर्खा के उपयोग के हित की दृष्टि से एक अन्य समस्या इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। मिलें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे देश में नहीं हैं। वे वहीं स्थापित की गई हैं जहां रुई मिलने की विशेष सुविधा है। परन्तु चर्खे का प्रचार देश-व्यापी हो सकता है। ऐसे प्रान्तों में भी चर्खे के प्रचार की अधिक आशा की जा सकती है जहां कपास बहुत थोड़ी उत्पन्न होती है। ऊपर दी हुई तालिका के अङ्कों के देखने से ज्ञात होता है कि बंगाल, बिहार और आसाम में रुई की पैदावार बहुत थोड़ी है। पर इन प्रान्तों में उसकी उपज बम्बई, मध्यप्रान्त आदि से बहुत अधिक होती है। इसके सिवा चर्खे के प्रचार की सम्भावना भी किसी प्रान्त से कम नहीं है। इन दो कारणों से यहां कपास की कृषि बढ़ानी चाहिए।

उपर्युक्त तालिका पर विचार करने से एक और अद्भुत बात प्रकट होती है। अर्थात् जिन स्थलों में कपास की उपज कम है वहां तो कृषि अधिक विस्तार से होती है और जहां उपज बहुत अधिक है वहां कपास की कृषि सङ्कुचित क्षेत्र में होती है।

हां, मध्यप्रान्त, बरार, बम्बई और मदरास में बढ़िया रुई उत्पन्न अवश्य होती है। परन्तु यदि इस प्रकार की रुई की उपज कम है तो इस दोष को दूर करना चाहिए। यदि कम उपज होने पर वहां मिलों के कारण कपास की खेती को उत्तेजना मिली है एवं बिहार, आसाम आदि में मिलों के न होने से इस उत्तेजना का अभाव हो गया है तो चर्खा-प्रचार से यह व्यवस्था बदल जायगी।

चर्खे के प्रचार के साथ साथ बङ्गाल, बिहार और आसाम, जहां इस समय कपास की कृषि बहुत कम होती है, थोड़े ही समय में इस कमी को पूरा करके कपास के प्रमुख उत्पादक प्रान्तों में हो जायँगे। यह आशा दो आधारों पर अवलम्बित है। एक तो फ़ी एकड़ कपास की औसत पैदावार के कोष्टक (नं० १) में हम देखते हैं कि इन प्रान्तों में कपास की पैदावार का औसत बहुत अच्छा है। अतएव यहां की भूमि और जल-वायु कपास की कृषि के लिए बहुत उपयुक्त है। इसी कारण शायद ईस्ट इंडिया कम्पनी के पहले इन प्रान्तों में कपास की कृषि होती भी खूब थी। चर्खे के इतिहास से हमें पता चलता है कि केवल १०० वर्ष पहले बिहार में चर्खे का व्यापक प्रचार था और सूत कातना इस प्रान्त का बड़ा उद्योग था। उस समय जहां चर्खे चलते थे वहां उनके लिए कपास की स्थानीय पैदावार भी होती थी। सन् १८०० में लार्ड वेलेज़ली ने भारत के उद्योगों की जांच करने के लिए डाक्टर बुयानन को नियुक्त किया था। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा है—बिहार और पटना में जो स्त्रियां अपनी फ़ुर्सत के समय चर्खा चलाती हैं उनकी संख्या ३,३०,४२६ है। शाहाबाद में १,६०,००० स्त्रियां चर्खा चलाती हैं। और इतनी ही संख्या भागलपुर में। दीनाजपुर में लगभग सब कुलीन स्त्रियां और अधिकांश कृषक स्त्रियां चर्खा चलाती हैं। बङ्गाल का वस्त्र-व्यवसाय इतिहास-प्रसिद्ध है। हाथ-द्वारा कातने और बुनने के इस घरेलू उद्योग का यह पहला सिद्धान्त है कि यह उद्योग तभी सफल हो सकता है जब कपास की कृषि, रुई का कातना और सूत का बुनना इन सबका स्थानीय एकत्रीकरण हो। यही स्वाभाविक नियम भी है। यह नहीं हो सकता कि कपास एक जगह उत्पन्न हो, उसकी रुई दूसरी जगह बने, वह और कहीं चर्खों से काती जाय और स्थानान्तर के जुलाहों के पास वह सूत बुनने के लिए भेजा जाय। हाथ के द्वारा किये जानेवाले ये भिन्न भिन्न कार्य एक ही उद्योग के अन्तर्गत हैं। यद्यपि थोड़ा फ़ासिला होने से कुछ कठिनता से काम चल जाता है, परन्तु इन कामों के भिन्न भिन्न प्रान्तों में स्थित होने से काम नहीं चल सकता, न पहले चल सकता था और न अब चल सकता है।

अखिल-भारत-खादी-विभाग के एक निरीक्षक महोदय ने पञ्जाब, युक्तप्रान्त और बिहार में दौरा करके एक रिपोर्ट लिखी है। उससे भी कपास की कृषि बढ़ाने की आवश्यकता प्रकट होती है। उन्होंने लिखा है कि कताई और बुनाई के विशाल क्षेत्र कहीं तो बिलकुल और कहीं थोड़े-बहुत बेकार होगये हैं। इसका कारण कहीं तो इन्तिज़ाम की त्रुटि है, कहीं धन की कमी और कहीं कपास की कठिनाइयां हैं।

कपास की कृषि की उन्नति के लिए सत्याग्रह-आश्रम में संवत् १९७७ की फ़सल में खेती के वैज्ञानिक प्रयोग यह जांचने के लिए किये गये थे कि चर्खे के हुनर की तरक्क़ी के लिए बारीक और मज़बूत सूत कातने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लायक़ किस क़िस्म की कपास हो सकती है और उसकी कृषि किस प्रकार करने से अधिक फल होगा। चर्ख़े की दृष्टि से जांच करने में जो बातें मालूम हुई हैं वे बड़ी ही उपयोगी हैं। वे कोष्टक के रूप में नीचे दी जाती हैं—

१ * कोष्टक नं० ३ सत्याग्रह-आश्रम में किया हुआ कपास की खेती का प्रयोग।

ग्रेन = क़रीब आधी रत्ती के (हर एक कपास की परीक्षा कपास के पारखियों के सामने की गई थी) खांड़ी = २० मन

क़िस्म	१ डोंडे के कपास का वज़न ग्रेन	रुई का वज़न	बिनौलों का वज़न	कितने मन कपास में से १ खांड़ी रुई उतरी	रेशे की लम्बाई इंच में	मुलायमियत	चिकनाहट	हक़ीक़त
सूरती १	३८	१२	२६	६३।	१। से १।=	बहुत उम्दा	उम्दा	बिष्टा गाड़े गये खेत में कुछ पौधे लगाये गये। तीन बार पानी से सींचा।
सूरती २	३३	११	२२	६०	क़रीब १	अच्छी	अच्छी	सड़ी खाद मिलाकर जोती हुई ३ बीघे ज़मीन में बोया, पीछे से निराकर गोड़ दी।
लारिया	४५	१७	२८	५३	०॥।	अच्छी	कालचलाऊ अच्छी	,, ,, ,, चार बार गोड़ी गई
मठिया	३२	१०	२२	६४	०॥–	,,	,,	,, ,, ,,
वागड़	४०	१६	२४	५०	०॥=	,,	,,	,, ,, ,,
हिरवणो	३६	७	२९	१०३	१	उम्दा	बहुत उम्दा	आंगन को बाड़ के तौर पर चार चार फ़ुट के फ़ासिले से चार बरस पहले बोये हुए पौधे की उपज।
कंबोडिया १	५९	२१	३८	५६।	१	,,	अच्छी	बैंगन के खेत में उगाया गया। पांच दफ़ा सींचा।

उपर्युक्त कोष्टक को देखने से मालूम होगा कि पुरीष की खाद देने से सूरती कपास (१) बढ़िया से बढ़िया कपास से भी ज़्यादा मुलायम, मज़बूत और लम्बे रेशे-वाली उत्पन्न हुई है। मामूली तरह से उगाई हुई सूरती कपास भी अच्छी होती है। सूरती कपास से चर्ख़े पर २० से ४० नम्बर तक का सूत तानी के लायक़ काता जा सकता है। इस पर टेंटुये छः महीने में लगते हैं।

कम्बोडिया-कपास का पौधा अच्छी ज़मीन में बोने और सूखी ऋतु में पानी देने से कनेर के सदृश मोटा होता है। यह कपास पांच महीने में फलने लगती है अर्थात् वक़्त के लिहाज़ से यह सूरती और मठिया के बीच की है।

हिरवणी कपास में चिकनाहट सबसे ज़्यादा है। इसका रेशा बीज से झट अलग नहीं होता। रेशे की लम्बाई भी अच्छी होती है। इसका सूत बहुत मज़बूत निकलता है। पर इसकी उपज बहुत कम है। यह कोठे पर से देखा जा सकता है। आंगन की बाड़ का काम यह पौधा अच्छा दे सकता है। उपज की कमी को

१ * चर्ख़ा-शास्त्र नामक पुस्तक से उद्धृत। यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। सत्याग्रह-आश्रम से मिल सकती है।

नोट २—इन सब क़िस्मों के बिनौले डाक के पार्सल-ख़र्च के साथ बिनौले की क़ीमत (१ आने में आधा सेर) भेजने से सत्याग्रह-आश्रम से थोड़ी तादाद में मिल सकते हैं। इनको बोने की विधि आदि के विषय में भी वहीं से विशेष बातें मालूम की जा सकती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यह ज़्यादा फलने से पूरी कर देता है और बाक़ी यह फिर चार-पांच बरस तक फलता है। इसको पानी देने की ज़रूरत नहीं पड़ती, लेकिन दिया जाय तो और अच्छा हो। इसके फल रेशमी लाल रङ्ग के होते हैं। इससे यह खेत या आँगन की शोभा भी बढ़ाता है। ज़्यादा चिकनाहट होने से इसकी रुई तांत पर चिपटती है तो धनुई की तांत पर बबूल, नीम या इमली के छोटे छोटे रसीले पत्ते घिस कर सुखा ली जानी चाहिए।

देवकपास का पौधा हिरवणी से भी ऊँचा होता है। यह बहुत मुलायम और लम्बे रेशेवाला होने से ८० या १०० नम्बर तक का सूत इसमें से कत सकता है। महाराष्ट्र में क़रीब क़रीब हर एक घर में इसका पौधा उगा हुआ पाया जाता है।

संयुक्त-प्रान्त के किसानों में हिरवणी, देवकपास इत्यादि पेड़वाली कपास मनुर्वा कपास के नाम से पुकारी जाती है। इनका लगाना चर्ख़े के लिए विशेष उपयोगी इसलिए है कि ये बराबर टेंटुये देती रहती हैं और घर के पास लगाई जा सकती हैं, जिससे कपास मिलने में बड़ी सुविधा रहती है।

रामस्वरूप गुप्त, एम० ए०

इतिहास का महत्त्व।

इतिहास की उपयोगिता के सम्बन्ध में दो प्रकार के विपरीत मत हैं। एक मत यह है कि इतिहास पढ़ने से कोई लाभ नहीं। प्राचीन काल की गाथाओं में रक्खा ही क्या है? पुरातन कथाओं, युद्धों और घटनाओं को पढ़ना समय नष्ट करना है। पानीपत के प्रथम युद्ध में आहतों की ठीक संख्या जानने से हमें क्या लाभ? सिकन्दर के भारतीय आक्रमण का यथार्थ मार्ग समझ लेने से हमारा क्या प्रयोजन? हमारे लिए तो सब एक है। चाहे अकबर का जन्म इस संवत् में हुआ हो अथवा किसी और में; चाहे विक्रमादित्य ईसा के पूर्व हुए हों, चाहे अनन्तर; भारतवर्ष में आर्य लोग चाहे ख़ैबर की घाटी से आये हों या हिमालय पार करके; और चाहे उनका आदि-स्थान उत्तरी-ध्रुव हो अथवा मध्य-एशिया अथवा बोहीमिया और चाहे वे भारत के ही आदिम निवासी हों, इनसे हमें लाभ क्या? वर्तमान विद्याओं और उपयोगी कलाओं में ही पारङ्गत होने के लिए यथेष्ट समय नहीं है, फिर भला इन पुराने भग्नावशेषों की धूल फांकने का हमें अवकाश कहाँ? हमें अपना मुख भविष्य की ओर करना चाहिए। उसी में हमारा कल्याण है और तभी हम उन्नति-पथगामी हो सकते हैं। अन्यथा भूतकाल के पचड़े में पड़ने से कहीं के न रहेंगे।

यह तो हुआ एक मत। दूसरा मत यह है कि इतिहास पढ़ने से एक-दो नहीं, अनेक लाभ हैं। प्राचीन काल की घटनाओं का वर्णन इतिहास से ही प्राप्त होता है। मानव-चरित्र का अध्ययन करना हो तो उसके निमित्त इतिहास से बढ़कर और कोई अन्य उपयुक्त सामग्री नहीं मिल सकती। यदि मनुष्यों के मनोबल और आत्म-बल की महिमा जानना अभिप्रेत हो तो इतिहास का अनुशीलन कीजिए। यदि आदर्श पुरुषों का अन्वेषण करना हो तो इतिहास के पन्ने उलटिए। आपको एक से एक उत्तम दृष्टान्त मिलेंगे। उनके पवित्र और उच्च जीवन से आप अपना चरित्र भी सुधार सकते हैं। नैतिक उपदेशों की खोज करना हो तो उन्हें इतिहास में से यथेष्ट निकाल लाइए। यदि आपको समय की प्रगति समझना हो तो इतिहास की शरण में जाइए। यदि आपको अपनी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और वैज्ञानिक उन्नति करना हो तो प्राचीन काल के इतिहास का मनन कीजिए। यदि आपको उन भूलों और भ्रमों से बचना अभीष्ट है जिनमें पड़कर हमारे पूर्वजों को विपत्ति और दुःख का सामना करना पड़ा था तो इतिहास ही आपका सर्वोत्कृष्ट पथ-प्रदर्शक है। इतिहास की कसौटी से ही नूतन सङ्गठनों की खरी परख हो सकती है। फिर इतिहास भी तो एक प्रकार का ज्ञान है; और प्रत्येक ज्ञान मनुष्यों को अवकाशानुसार अवश्य प्राप्त करना चाहिए। इतिहास को पढ़ना संसार के उच्च कोटि के साहित्य का अध्ययन करना है। संसार के पुस्तकालय में जो सर्वोत्तम ग्रन्थ हैं उनमें कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थ भी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहना कि इतिहास का अध्ययन मनोरञ्जन का एक उत्तम साधन है, वास्तव में इतिहास के यथार्थ महत्त्व की भर्त्सना करना है। इतिहास का प्रधान ध्येय सत्यान्वेषण है। इसी उद्देश की पूर्त्ति में इतिहास-प्रेमी दिन-रात एक करके निरत रहते हैं। उनका व्यवसाय पाठकों का मनोरञ्जन नहीं है। सत्य को व्यक्त करने के लिए उन्हें जो शब्दावली उत्तम प्रतीत होती है उसी का वे प्रयोग करते हैं। यह बात दूसरी है कि कहीं कहीं आवश्यकतानुसार ऐसी भाषा भी व्यवहृत हो जाय जो सुपाठ्य होती हुई सुललित और मधुर भी हो। अस्तु, भाषा की रोचकता और नीरसता का विचार इतिहासकार के लिए गौण है। इतिहास न तो अलिफ़लैला का क़िस्सा है, न जासूसी उपन्यास और न नवाबों के महफ़िलों में उपस्थित सज्जनों के आमोद-विनोद की सामग्री ही है। ऐतिहासिक घटनाओं को बलात् रोचकता का परिधान पहनाना इतिहास को कलुषित करना है। परन्तु इस बात के स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि कोई कोई घटनायें स्वतः स्वाभाविक रोचकता-सम्पन्न होती हैं। थर्मापिली-युद्ध में लिओनिडास और स्पार्टा के उसके तीन सौ वीरों का अपने देश के निमित्त प्राण न्यौछावर करना, महाराष्ट्र वीर बाजीप्रभु का अपने स्वामी के हेतु प्राण देना, नेपोलियन-द्वारा पददलित होने पर जर्मन-नेताओं का अपने देश की जागृति के निमित्त उद्योग करना आदि दृष्टान्त मुर्दों में जान फूँकनेवाले हैं। इसी प्रकार नेपोलियन, माहादजी सिन्धिया और आलिवर क्रामवेल के जीवन की घटनायें किसे मनोमुग्धकारी न होंगी? परन्तु रोचकता के फेर में पड़ने से सत्य की बहुत कुछ क्षति हो सकती है।

मानव-चरित्र का अध्ययन करने के लिए इतिहास में सामग्री की खोज करना किसी अंश तक तो अवश्य उचित है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि इस उद्देश की पूर्त्ति उत्तम नाटकों, उपन्यासों अथवा स्वात्मचरितों से सुचारुरूप से हो सकती है। चरित्र-विश्लेषण के अध्ययन के लिए हमें शेक्सपियर आदि का शिष्यत्व ग्रहण करना चाहिए। यदि इतिहासकार चरित्र-चित्रण को ही अपना मुख्य व्यवसाय मान ले तो वह अपने स्थान से च्युत हो जायगा। यह दूसरी बात है कि इतिहास से कुछ चरित्र छाँटकर नाटककार या उपन्यासकार अपने ग्रन्थों में उनका समावेश कर दे। परन्तु अपने कथानक अथवा अपनी आवश्यकता के अनुसार वह उनमें इच्छानुसार परिवर्तन कर लेता है। तब वे ऐतिहासिक व्यक्ति न रहकर कवि की सृष्टि हो जाते हैं। शेक्सपियर का जुलियस सीज़र इतिहास के जुलियस सीज़र से बहुत कुछ भिन्न है, उत्तररामचरित के राम और रामायण के राम में अन्तर है। वाल्टर स्कॉट ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में भी ऐतिहासिक पात्रों के सम्बन्ध में इसी क्षम्य और अनिवार्य रीति का अवलम्बन किया है। एक और बात विचारणीय है, साहित्यिक चरित्र-चित्रण और ऐतिहासिक चरित्र-चित्रण में एक प्रधान भेद है। इतिहास को किसी पात्र के चरित्र से केवल उसी अंश तक सम्बन्ध है जहां तक इतिहास की साधारण धारा अथवा प्रगति पर उसका प्रभाव पड़ा है। समकालीन इतिहास और मुग़ल-साम्राज्य के भाग्य पर औरङ्गज़ेब के आचरण और चरित्र का जितना प्रभाव पड़ा, केवल उसी से प्रधानतः इतिहासकार का मतलब है। परन्तु नाटककार या उपन्यासकार का सम्बन्ध उसके समस्त चरित्र से है, क्योंकि मानव-चरित्र ही तो नाटक या उपन्यास का आधार-सूत्र है। इतिहास की दृष्टि से किसी पुरुष का महत्त्व कम भी हो, तो भी शुद्ध साहित्यिक दृष्टि-कोण से उसका चरित्र विशेष महत्त्व-सम्पन्न हो सकता है। साहित्य और इतिहास में यही भेद है। अतएव चरित्राध्ययन के लिए इतिहास उपयोगी नहीं है।

आत्म-बल और मनोबल की महिमा जानने का अभिप्राय भी इतिहास से पूर्ण नहीं होता। इतिहास केवल आदर्श पुरुषों की ही लीलाओं की रङ्गभूमि नहीं है। इस विषय की समीक्षा नीचे दूसरे प्रसङ्ग में की जायगी।

जो लोग केवल इस तर्क के आधार पर इतिहास की उपयोगिता सिद्ध करना चाहते हैं कि संसार के समस्त ज्ञान का सम्पादन उपयोगी है वे भारी भ्रम में पड़े हुए हैं। सब प्रकार का ज्ञान कदापि उपयोगी नहीं है और न हमारा जीवन इतना दीर्घ है कि हम विशाल ज्ञान-मन्दिर के कोने कोने से पूर्ण परिचय प्राप्त कर सर्वज्ञान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्णात हो जायँ। सर्वज्ञता मर्त्य जीवों के भाल में नहीं लिखी गई। तो फिर हमें केवल ऐसा ही ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करना उचित है जो हमारे लिए हितकर अथवा उपयोगी हो। यदि मानव-जीवन से इतिहास का घनिष्ठ सम्बन्ध है और यदि उससे हितकर परिणाम निकल सकता है तो उसका अध्ययन हमारे लिए परमावश्यक है।

इतिहास के पक्षपाती कहा करते हैं कि यदि भविष्य में आपको अपने पूर्वजों की भूलों और उनके भ्रमों से बचना हो तो इतिहास का अनुशीलन कीजिए। इतिहास सब शासकों को चेतावनी देता है कि गत युगों में अमुक अमुक शासकों ने ये भूलें कीं, इसलिए उन्हें उलटी मुँह की खानी पड़ी। प्रजा के असन्तोष और विद्रोह का परिणाम यह हुआ और सैनिक राज्य का अन्तिम फल वह हुआ, इत्यादि अनेक दृष्टान्त हमें भविष्य के लिए पथ-प्रदर्शक की भाँति हैं। प्राचीन अनुभव से लाभ उठाना हो तो इतिहास को पढ़िए। कारण की समानता पर कार्य्य का सादृश्य निर्भर है। प्राचीन कारण के पुनः प्रकट होने पर प्राचीन कार्य्य भी पुनः आविर्भूत होगा। तभी तो कहा गया है कि "History repeats itself" अर्थात् इतिहास की पुनरावृत्ति होती है।

परन्तु जो लोग ऐसा मत प्रकट करते हैं वे इतिहास के वास्तविक मर्म से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हैं। इतिहास क्या है? इतिहास की ठीक ठीक परिभाषा देना तो बड़ा कठिन है, परन्तु यह वर्णन करना उतना दुरूह नहीं है कि इतिहास की अवधि अथवा व्यापकता कितनी है, उसका प्रसार और विस्तार कहाँ तक है, अर्थात् उसमें किन किन विषयों का समावेश हो सकता है। परन्तु सबसे प्रथम यह विचार करना है कि इतिहास विज्ञान की कोटि में परिगणित किया जा सकता है अथवा नहीं। जिस प्रकार हम भूगर्भ, ज्योतिष, खगोल, रसायन, गणित आदि विद्याओं को विज्ञान अथवा शास्त्र की कक्षा में रखते हैं, क्या उसी प्रकार इतिहास-शास्त्र या इतिहास-विज्ञान कहने का भी हमें अधिकार है? इसी प्रश्न के उत्तर पर इतिहास का महत्त्व निर्भर है। यदि इतिहास भी विज्ञान है तो उसका विशेष महत्त्व है, परन्तु यदि वह विज्ञान नहीं है तो इतिहास पढ़ने से हमें भविष्याचरण अथवा कार्य्य-प्रणाली में उससे कोई लाभ होने की सम्भावना नहीं।

विज्ञान कहते किसे हैं? सुव्यवस्थित और सुसम्बद्ध ज्ञान को ही विज्ञान कहते हैं। सब तारागणों के नाम, उनकी परिधि का परिमाण आदि जान लेना ज्ञान अवश्य है, पर वह विज्ञान नहीं है। जब तक हम तारों के परस्पर अन्तर, उनकी गति और उनके परस्पर सम्बन्ध आदि के आधार पर कुछ व्यापक नियम नहीं बना सकते और फिर उन नियमों के आधार पर भविष्य में होनेवाली नाक्षत्रिक घटनाओं (यथा—ग्रहणादि) का निरूपण पहले से ही नहीं कर सकते तब तक हमारा खगोल-विद्या-विषयक ज्ञान विज्ञान-कोटि में परिगणित नहीं किया जा सकता। सब वृक्ष-लता—गुल्मादि के नाम जिह्वाग्र कर लेने सेही हमारा ज्ञान वनस्पति-शास्त्रीय नहीं कहा जा सकता, जब तक उस ज्ञान के आधार पर हम कुछ सार्वभौमिक नियमों की रचना करके अपने ज्ञान को सुव्यवस्थित नहीं कर लेते।

इसी प्रकार इतिहास को शास्त्र या विज्ञान के पद पर हम तभी विभूषित कर सकते हैं जब हम यह स्वीकार कर लें कि उपर्युक्त प्रकार के व्यापक अथवा सार्वभौमिक नियम इतिहास की घटनाओं के आधार पर भी रचे जा सकते हैं और फिर उन नियमों के आधार पर भविष्य के सम्बन्ध में भी अधिकाधिक निश्चयात्मक रूप से पूर्वदृष्टि की जा सकती है। परन्तु यहाँ एक बड़ी कठिनाई सामने आती है। खगोल-विद्या का वर्ण्य-विषय सुनिश्चित है, इसलिए खगोल-विद्या सुनिश्चित विज्ञान है। उसके व्यापक नियम और उपनियम भी पूर्णरूप से सुनिश्चित हैं, क्योंकि, जैसा अरिस्टाटल का मत है, प्रत्येक शास्त्र या विज्ञान की प्रकृति (अथवा गुण) उसके वर्ण्य-विषय पर निर्भर होती है। यदि वर्ण्य-विषय सुनिश्चित है तो वह विज्ञान-विषय भी सुनिश्चित होता है। परन्तु नीति-शास्त्र अथवा कर्म-योग-शास्त्र का वर्ण्य-विषय सुनिश्चित नहीं है। इसी प्रकार समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र और इतिहास का वर्ण्य-विषय भी अनिश्चित है। हर्बर्ट स्पेन्सर ने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"समाज-शास्त्र की भूमिका" नामक ग्रन्थ में इस प्रश्न पर बड़ा मार्मिक विचार किया है। उन्होंने समाज-शास्त्र की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए लिखा है कि समाज-शास्त्र की सामग्री अत्यन्त अनिश्चित है। देश-काल आदि अनेक अवयव हमारी अग्रगणना को भ्रष्ट कर देते हैं। बहुत सी बातें ऐसी आ जाती हैं जिनका गुमान तक किसी को नहीं था, जो अनुमान से विपरीत और मानव-गणना से परे थीं। फिर भिन्न भिन्न देशों में पृथक् पृथक् जलवायु, प्रकृति, परिस्थिति आदि के कारण भिन्न भिन्न प्रकार के परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं। सब युगों में एक प्रकार का प्रचार-प्रवाह अथवा प्रवृत्ति नहीं पाई जाती।

इतिहास में सब प्रकार के दृष्टान्त मिल सकते हैं। स्वेच्छाचार की विजय और लोक-मत का पराजय, सत्य पर असत्य की जीत, नेकी की अवहेलना और बुराई की समृद्धि आदि के दृष्टान्तों का प्रत्येक देश के इतिहास में बाहुल्य है। दो देशों की स्थिति कभी एक सी नहीं होती। सैकड़ों अदृश्य और अज्ञात नियमों और सिद्धान्तों का सङ्घर्षण होता रहता है। अनेक प्रवृत्तियों के घात-प्रतिघात का परिणाम अनुमान-क्षेत्र से परे होता है। तभी तो फ्रेडरिक हैरिसन का मत है कि "Similar events never do and never can occur in History. The story of the world is played out like a drama in many acts and scenes, not like successive games of chess, in which the pieces meet, combat and manœuvre for a time, and then the board is cleared for another trial, and they are replaced in their original position.....Political maxims drawn crudely from History may do more harm than good." अर्थात् इतिहास में एक सी घटनायें न तो कभी घटती हैं और न घट सकती हैं। संसार का इतिहास कई अङ्कों के एक अभिनय के समान है। वह शतरञ्ज के खेल के समान नहीं है, जिसमें मोहरों के परस्पर युद्ध होने के बाद बख़्ता साफ़ कर दिया जाता है और फिर मोहरे अपने अपने घरों में रख दिये जाते हैं। बिना गम्भीर विचार किये हुए इतिहास से जो राजनैतिक सिद्धान्त निकाले जाते हैं वे लाभ के बदले हानि अधिक करते हैं।

तो फिर क्या इतिहास विज्ञान नहीं है? और क्या इतिहास पढ़ने से कोई लाभ नहीं? इतिहास विज्ञान अवश्य है और इसी लिए उसका उपयोग भी है। प्रत्येक विज्ञान समानरूप से सुनिश्चित नहीं होता। हर्बर्ट स्पेंसर का कथन है, "All sciences are not equally exact. If there is some provision, there is some science." जिसमें जितनी ही अग्र-निरूपण की मात्रा विद्यमान होती है वह उसी अंश तक विज्ञान है। यद्यपि इतिहास के आधार पर निश्चयात्मक रूप से हम व्यापक नियमों की सृष्टि नहीं कर सकते और न भविष्य के विषय में ही ठीक ठीक अनुमान कर सकते हैं, तथापि इतिहास की सहायता से हम बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। कम से कम प्राचीन प्रवृत्तियों के कारणों का अध्ययन करके हम यह निश्चय रूप से कह सकते हैं कि अमुक अमुक कारणों से ये परिणाम हुए और ये प्रवृत्तियां वृद्धि को प्राप्त हुईं या इनका ह्रास हुआ। इन निष्कर्षों के आधार पर भविष्य में हम शासकों, समाजों और विभिन्न मतानुयायियों को सचेत कर सकते हैं।

परन्तु इतिहास पढ़ने का मुख्य लाभ यह है कि भूत-काल ही के द्वारा हम वर्तमान-काल को समझ सकते हैं। मनुष्य की उन्नति क्रमशः हुई है। हमारी धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक संस्थायें आसमान से बनी बनाई नहीं फाट पड़ी हैं। आदिम संस्थाओं पर कालचक्र ने अपना प्रभाव डाला है। प्रत्येक युग अपना चिह्न उन पर छोड़ गया है। उन सबके सङ्घर्षण से ही हमारी वर्तमान संस्थायें विकसित हुई हैं। इँग्लेंड की पार्लियामेंट एक दिन में नहीं बन गई थी। कई सहस्र वर्षों से उसका विकास होता रहा है और यह क्रिया अभी जारी है। हिन्दू-धर्म का वर्तमानरूप सहस्रों वर्षों के भिन्न भिन्न विचारों के घात-प्रतिघात का परिणाम है। लार्ड एक्टन का भी यही मत है, "There is wisdom and depth in the philosophy which always considers the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

origin and the germ, and glories in history as one consistent epic." अर्थात् अनादि काल से इतिहास की शृङ्खला अनवरत-रूप से चली जा रही है। इसलिए प्रत्येक विषय का अध्ययन उसके आदिम सूत्र से करना चाहिए। यही विधान विद्वत्तापूर्ण और गम्भीर है। फ्रीमेन ने भी इसी "Unity of History" इतिहास की एकता अर्थात् उसकी अविरत-धारा पर विशेष ज़ोर दिया है। अध्ययन की इस विशद पद्धति का प्रभाव सब विज्ञानों पर पड़ा है। "धार्मिक विज्ञान, दर्शन-शास्त्र, प्राणि-शास्त्र, नर-शास्त्र, भाषा-विज्ञान, समाज-शास्त्र आदि सबमें इसी ऐतिहासिक अथवा तुलनात्मक अध्ययन-पद्धति ने उलट-फेर और क्रान्ति मचा दी है। विकास-वाद का प्रसिद्ध सिद्धान्त भी तो इसी पद्धति का विजय-चिह्न है।"

तभी तो इतिहास का स्थान सब शास्त्रों से ऊँचा है। परन्तु कुछ लोगों ने इतिहास का विस्तार बहुत सङ्कुचित माना है। प्रोफ़ेसर सीली का मत है कि "History is past politics, and politics present history." अर्थात् अतीत राजनैतिक घटनायें इतिहास हैं और राजनीति वर्तमान इतिहास है। इसका यह अर्थ हुआ कि इतिहास का सम्बन्ध केवल बादशाहों, शासकों, युद्धों, राजनैतिक संस्थाओं आदि से ही है। परन्तु फ्रेडरिक हैरिसन, लार्ड एक्टन आदि के मतानुसार इतिहास का साम्राज्य बड़ा विस्तृत है।

"Ours is a domain that reaches farther than the affairs of state, and is not subject to the jurisdiction of governments." (लार्ड एक्टन)

वास्तविक इतिहास में राजनैतिक के अतिरिक्त, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, औद्योगिक, वैज्ञानिक आदि मानव-जीवन के समस्त कार्य-क्षेत्रों के इतिहास का समावेश होता है। "History is a study of growth, of life, of variety." अर्थात् मानव-जीवन की उन्नति, विकास और विभिन्नता के अध्ययन का नाम इतिहास है। संस्कृत का एक श्लोक भी इसी सिद्धान्त को व्यक्त क ता है।

"धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥"

कुछ लोगों का मत है कि इतिहास केवल महान् पुरुषों की जीवनी है।

किंग्सले और फ्रूड की भी यही सम्मति है। उनका कहना है कि संसार में जो कार्य हुए हैं उनका श्रेय केवल कुछ महान् आत्माओं और प्रतिभा-सम्पन्न पुरुषों को ही प्राप्त है। यही महापुरुष इतिहास की धारा की गति की दिशा का परिवर्तन कर देते हैं, उसे मनमाना रूप दे देते हैं। यहां इस प्रश्न पर केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि यदि यह 'महान् पुरुष सिद्धान्त' मान लिया जाय तो इतिहास विज्ञान न रहेगा, किन्तु आकस्मिक घटनाओं का समुच्चयमात्र हो जायगा। इस मत का उत्तम खण्डन हर्बर्ट स्पेंसर ने अपनी ऊपर उल्लिखित पुस्तक में बड़ी योग्यता से किया है। "क्या न्यूटन अफ्रीका की हाटेनटाट जाति में पैदा हो सकता है?" इत्यादि दृष्टान्तों से उन्होंने सिद्ध किया है कि संसार के महापुरुष वास्तव में अपने युग की भावनाओं, प्रवृत्तियों और परिस्थिति की सृष्टि होते हैं।

इस प्रकार इतिहास का अध्ययन बड़े महत्त्व का है। इसका विस्तार अत्यन्त विशाल है। इतिहास वास्तव में सब विज्ञानों का विज्ञान है।

लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

बिजली की रोशनी।

बिजली की रोशनी से किसी अन्य प्रकार की रोशनी की तुलना नहीं की जा सकती। बिजली की रोशनी कैसी साफ़ और स्वास्थ्यवर्धक होती है। इस रोशनी के सामने नेत्र फोड़नेवाली, टिम टिम करनेवाली और अपने गन्दे धुवें से सारे कमरे को काला बनानेवाली मिट्टी के तेल की रोशनी या प्राण-घातक गैस की रोशनी का मुक़ाबला नहीं हो सकता। हमारे भारतीय विद्यार्थी मिट्टी के तेल के प्रकाश के सामने बैठकर अपने अमूल्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्रों को कितनी छोटी आयु में ख़राब कर देते हैं। कलकत्ते इत्यादि बड़े बड़े नगरों में जब गैस का प्रचार हुआ तब गैस लगे कमरों में सोने से कितने मनुष्यों के प्राण गये, क्योंकि रोशनी देनेवाली गैस बड़ी ज़हरीली होती है और यदि भूल से उसे खुली छोड़ कर कोई मनुष्य किसी कमरे में सो जाय तो अवश्य उसका ज़हर असर करेगा। किन्तु बिजली की रोशनी से किसी प्रकार का भय नहीं है। आरम्भ में बिजली के दो तारों के आपस में छू जाने से आग लग जाने का भय रहता था, किन्तु अब ऐसे ऐसे उपाय और तरकीबें की गई हैं कि आग का लगना भी असम्भव सा हो गया है। जिस घर में बिजली की रोशनी होती है वह घर कितना साफ़ और सुन्दर प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त मनमाना किसी समय भी बिना किसी दियासलाई इत्यादि की मदद के बटन को ज़रा सा दबाने से कमरा रोशनी से प्रकाशमय हो उठता है। इसके अतिरिक्त यदि सावधानी की जाय तो बिजली की रोशनी दूसरी रोशनियों से सस्ती भी पड़ती है।

बिजली की रोशनी का आविष्कार कैसे हुआ? एक काँच के गोले को शीघ्रतापूर्वक एक चर्ख़ी पर लगा कर घुमाने से उसमें बिजली पैदा होती है, यह स्कूल के विद्यार्थियों को भी मालूम है। यह भी देखा गया है कि यदि उस गोले की ओर किसी धातु के दो तार लगा दिये जायँ और उन के सिरे निकट लाये जायँ तो एक चिनगारी निकलती है। इसी प्रकार एक बैटरी के दो सिरों को तार-द्वारा बाँध कर तार के दूसरे सिरों को निकट लाने से भी चिनगारी निकलने लगती है। और यदि कई बैटरी आपस में जोड़ दी जायँ, जिससे अधिक बिजली निकले, तो उनमें बँधे हुए तारों के सिरों को निकट लाने से अधिक चिनगारियाँ निकलती हैं जो अधिक देर तक बनी रहती हैं। यह भी देखा जाता है कि अधिक देर तक इस प्रकार चिनगारी निकालने से तार के सिरे बड़े गर्म होकर पिघल जाते हैं। यदि तार के सिरों के साथ कोयले के दो टुकड़ों को लगा दिया जाय और वे एक दूसरे के निकट ले आये जायँ तो उन कोयलों से बड़ी तेज़ रोशनी निकलने लगती है। बैटरी के स्थान में यदि अधिक बिजली पैदा करनेवाला एक डाइनमो यन्त्र चला कर लगाया जाय और उससे पैदा हुई बिजली दो कोयलों में लगा कर कोयले पास किये जायँ तो और भी अधिक रोशनी होने लगती है। साधारण कोयला शीघ्र जल कर भस्म हो जाता है, इस लिए बड़े सख़्त कोयले को पीस कर उसमें कई धातु मिला कर उसकी क़लमें कल में बनाई जाती हैं

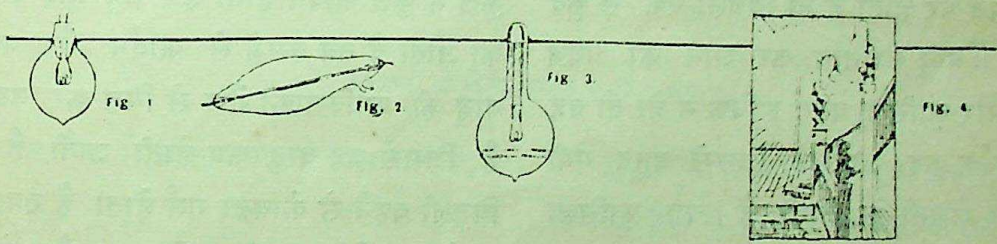

बिजली के लैम्प नम्बर १ से ४ तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब इस कोयले की क़लमें एक लैम्प में लगा कर उनमें बिजली डालने से क़लमों की नोक को थोड़ा सा एक दूसरे से फ़ासिले पर रखने से बड़ी सख़्त रोशनी होने लगती है। इस लैम्प को Arc lamp आर्क लैम्प कहते हैं और ये कलकत्ते, बम्बई, दिल्ली इत्यादि बड़े बड़े नगरों में लगे हुए देखे जाते थे, पर अब ऐसे लैम्प पुरानी चाल के समझे जाते हैं और उनके स्थान में तार के लैम्प जलाये जाते हैं।

इस लैम्प में रोशनी होने की शर्त यह है कि इसमें लगे हुए कोयले के क़लम के सिरे आपस में मिलने न पावें और न बहुत फ़ासिले ही पर हो जायँ। जब दो सिरे आपस में मिल जाते हैं तब उनके द्वारा बिजली सहज में चली जाती है—रोशनी होने के लिए बिजली के रास्ते में अधिक बाधा होनी चाहिए जिससे ख़ूब गर्मी उत्पन्न हो। जब कोयले की क़लमें न मिल कर कुछ फ़ासिले पर होती हैं तो बिजली एक से कूद कर दूसरे में वायु को नाँघ कर जाने का प्रयत्न करती है और फ़ासिला बहुत अधिक न हो तो वह सफलतापूर्वक कूद जाती है, जिससे बहुत गर्मी पैदा होकर रोशनी हो जाती है। यह फ़ासिला इतना न हो जाना चाहिए कि बिजली कूद कर एक सिरे से दूसरे सिरे जाही न सके—

अधिक देर जलते रहने से कोयले की क़लम के सिरे जल कर एक दूसरे से अधिक फ़ासिले पर हो जाते हैं, जिससे बिजली बह नहीं सकती और रोशनी होना बन्द हो जाता है, इसलिए कुछ देर के बाद क़लमों को खसकाना पड़ता। इस लैम्प में पतले तारों का एक ऐसा गुच्छा लगा रहता है जो बिजली बहने से चुम्बक होकर एक लोहे की डंडी को अपनी ओर खींचता है। इस डंडी के सहारे ऊपरवाली कोयले की क़लम लटकी रहती है, जिससे जब तार के गुच्छे में बिजली बहने से लोहे की डंडी ऊपर को खिंचती है तब कोयले की क़लम भी ऊपर को खिंच जाती है और जब जल कर क़लमें बहुत फ़ासिले पर हो जाती हैं तब यह तार का गुच्छा इसे फिर ठीक फ़ासिले पर ले आता है।

इस आर्क लैम्प के पश्चात् जो साधारण लैम्प कमरों में जलते हुए देखे जाते हैं उनका आविष्कार हुआ। यह देखा गया कि जब किसी कोयले के द्वारा बिजली भेजी जाती है तब वह कोयला ख़ूब गर्म होकर लाल हो जाता है, जिससे उसमें से रोशनी निकलने लगती है।

वायु दो प्रकार की गैसों से बनी है, आक्सिजन और नाइट्रोजन। संसार के सब पदार्थों में कुछ न कुछ कार्बन होता है। जब कोई वस्तु गर्म की जाती है तब उसमें से कार्बन गैस बन कर वायु की आक्सिजन गैस से मिल कर उड़ जाती है, जिससे वह वस्तु कम होती जाती है। जब बिजली बहने से कोयला गर्म होता है तब उसका कार्बन पदार्थ वायु की आक्सिजन गैस से मिल कर उड़ जाता है, जिससे कुछ देर बाद कोयला ग़ायब हो जाता है। यदि वायु इस गर्म कोयले के निकट न आने पावे तो कोयला कभी नहीं घट सकता और सदैव वैसा ही बना रहेगा।

जब यह देखा गया कि बिजली द्वारा कोयला जल कर थोड़ी देर में भस्म हो जाता है तब कोयले के साथ कई धातु मिला कर उसे कड़ा बना कर और उसके बारीक तार खींच कर नाशपाती के फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शकल के बने हुए काँच के बल्ब से वायु निकाल कर उसके भीतर इन तारों को लगा कर बाहर से प्लेटिनम धातु के तार से जोड़ देते हैं। प्लेटिनम (Platinum) धातु से जोड़ने का कारण यह है कि इस धातु का यह गुण है कि गर्मी पाकर यह उतना ही बढ़ जाता है जितना काँच का मुँह बढ़ता है जिनमें यह पहनाया रहता है। यदि किसी अन्य धातु से ये कोयले के तार काँच के छेदों में डाल कर जोड़े जायँ तो गर्मी पाकर दूसरे धातु काँच से अधिक बढ़ जाते हैं इससे काँच टूट जाता है या कम बढ़ते हैं इससे काँच के छेद बड़े ढीले हो कर वायु को भीतर जाने देते हैं। इससे कार्बन आक्सिजन गैस से मिल जाता है और तार भस्म हो जाता है।

इस प्रकार कोयले के तारों के लैम्प बना कर बिजली के तारों से लगे हुए ब्रैकेट में लगा देने से, जिससे इस लैम्प के तार में बिजली जा सके, रोशनी हो जाती है। इन लैम्पों को (Carbon Filament Lamp) कार्बन फ़िलामेंट लैम्प कहते हैं। ये भी अब पुरानी चाल के हो गये। इन लैम्पों के जारी होने के कुछ दिनों के पश्चात् यह विदित हुआ कि यदि कोयले के स्थान में किसी दूसरे धातु के तार बना कर काँच के भीतर रक्खे जायँ तो रोशनी भी अच्छी होती है और बिजली भी बहुत कम ख़र्च होगी। इसलिए कई बहुमूल्य धातुओं के तार बना कर काँच में रख कर लैम्प बनाये जाते हैं, जिनमें से ओस्मियम और टैन्टेलम नामक ख़ास दो धातु हैं। इन धातुओं के तारवाले लैम्पों को मेटेलिक फ़िलामेन्ट लैम्प कहते हैं। घरों में आज-कल इन्हीं लैम्पों का अधिकतर व्यवहार किया जाता है, क्योंकि बहुमूल्य धातु के तार होने के कारण यद्यपि इस लैम्प का मूल्य अधिक होता है किन्तु इन्हें बर्ताव में लाने से बिजली कोयलेवाले लैम्प की अपेक्षा बहुत ही कम ख़र्च होती है, जिससे बिजली का दाम कम हो जाता है।

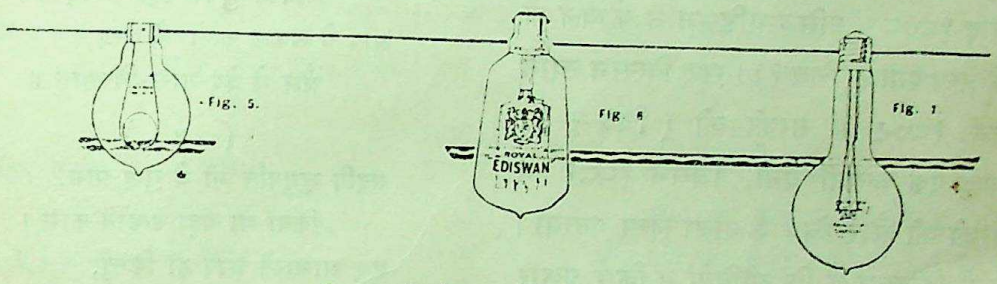

बिजली के लैम्प नम्बर ५ से ७ तक।

इन लैम्पों के अतिरिक्त एक प्रकार के लैम्प और भी होते हैं, यद्यपि इनका व्यवहार अधिक नहीं किया जाता—ये पारे के लैम्प होते हैं। काँच की लम्बी नली में पारा-धातु भरा रहता है, जिसके दो सिरे तार से लगे रहते हैं। इन सिरों में बिजली डालने से पारे में इतनी अधिक गर्मी उत्पन्न होती है कि पारा कुछ कुछ भाप बन जाता और एक अजीब प्रकार की नीली रोशनी देने लगता है। यह लैम्प नक़शा खींचने के कमरों में अधिकतर लगाया जाता है, जहाँ आँखों पर अधिक ज़ोर दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लैम्प बनानेवालों ने अब एक और नवीन विधि का आविष्कार किया है। धातु के लैम्पों में एक प्रकार की गैस डाल कर बन्द कर देते हैं, जिससे धातु के तार बहुत थोड़ी बिजली से गरम होकर रोशनी देने लग जाते हैं। इन्हें (Half Watt Lamp) हाफ़ वाट लैम्प कहते हैं। ये बड़े क़ीमती होते हैं, किन्तु बिजली कम ख़र्च करने के कारण लोग इन्हें व्यवहार में अधिक लाने लग गये हैं।

बिजली की रोशनी का इतिहास संक्षेप में यह है। जैबलाचकाव महाशय ने सन् १८७६ में सबसे पहले कोयले की बत्तियों का अनुसन्धान किया। इसके बाद १८७८ में प्रसिद्ध एडिसन ने कोयले के हारों के लैम्प बनाये (चित्र १)। सर विल्सन स्वान ने उसमें १८७९ में तरक़्क़ी की (चित्र २)। इसके बाद एक कम्पनी बनी, जिसने १८८१ में और तरक़्क़ी की और चित्र ३ वाला लैम्प बनाया। चित्र ४ में दिखाया है कि सीढ़ियों में किस प्रकार इस समय लैम्प लगाते थे। इसके बाद शीघ्रता-पूर्वक तरक़्क़ी होती गई। चित्र ५ वाला कोयले के तार का लैम्प १८८९ में बना। फिर १९०५ में टेन्टेलम धातु के तार के लैम्प का आविष्कार हुआ और दूसरे वर्ष (Tungsten) टंगस्टन नामक धातु के तार के लैम्प बनने लगे। १९१३ में इसी लैम्प में गैस भर दी गई। (चित्र ७)। गैस भरे भिन्न भिन्न सुन्दर सूरतवाले लैम्प बनते हैं।

जगन्नाथ खन्ना

द्रोणाचार्य्य।

(१)

धन्य थे जग में द्रोणाचार्य्य,
किया उपयुक्त आपने कार्य्य।
दिखाया धनुर्वेद का तत्त्व,
आपका साहस था अनिवार्य्य॥

(२)

आप थे अनुपम तपोनिधान,
जितेन्द्रिय धर्मनिष्ठ विद्वान।
कृती योगी निर्भय निर्लोभ,
सरल गुरु गुणी और बलवान॥

(३)

रहे गुण-गौरव से विख्यात,
आपका सुयश रहा अवदात।
आप थे सकल कला के केन्द्र,
और थे वेद-शास्त्र-निष्णात॥

(४)

यदपि भृगुपति भी थे गुण-ग्राम,
किया था बड़ा उन्होंने काम।
हुए आचार्य्य आप ही किन्तु,
अधिक है यद्यपि उनका नाम॥

(५)

आपने किये नवाविष्कार,
किया था धनुर्वेद-उद्गार।
द्रोण! थे मर्त्यलोक-आलोक,
लोक का किया बड़ा उपकार॥

(६)

कौरव-पाण्डु-सुतों का नाम,
जगत में होता नहीं ललाम।
कृपा करते थे उन पर आप,
द्रोण! वे हुए तभी गुणग्राम॥

(७)

पाण्डु-सुत कैसे होते वीर?
अन्धसुत कैसे होते धीर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपा कर उन्हें न यदि आचार्य्य,
सिखाते आप चलाना तीर ॥

(८)

द्रोण ! अतिशय सीधे थे आप,
इसी से रह न सके निष्पाप ।
खलों, छलियों की बातें मान,
आपने सहा दुसह सन्ताप ॥

(९)

द्रोण ! अभिमन्यु मरा रणबीच,
समर उससे करते थे नीच ।
आपने उन छलियों की बात,
मान ली क्यों आँखों को मीच ? ॥

(१०)

युधिष्ठिर का क्यों कर विश्वास,
पुत्र-शोकातुर हुए हत-
हुआ घातक हा धृष्टद्युम्न,
द्रोण ! स्वार्थी को कैसा त्रास ? ॥

(११)

चाहिए गुरुवर में जो धर्म,
आपने वही किया था कर्म ।
पुत्र-सम लखा आपने शिष्य,
आपमें था न भेद का मर्म ॥

(१२)

आपमें थी पाठन की रीति,
आपमें थी धर्मोदित नीति ।
शिष्य जो जैसा होता तीव्र,
आप करते त्यों उससे प्रीति ॥

(१३)

सबों में अर्जुन था मतिमान,
पठन में देता था वह ध्यान ।
आपने किया प्यार इस हेतु—
उसे देकर रण-विद्या-दान ॥

(१४)

द्रोण ! नरदेव-देव थे आप,
कृपा के कानन कला-कलाप ।
जिसी ने किया आपका ध्यान,
उसी का मिटा सकल सन्ताप ॥

(१५)

पूज कर एकलव्य ने मूर्ति—
आपकी, पाई शर की स्फूर्ति ।
आपको दिया अँगूठा काट,
भेट की हुई अलौकिक पूर्ति ॥

(१६)

आप थे बड़भागी विद्वान,
आपका औरस तथा रहा न ।
सुधी-सुत होते प्रायः मूढ़,
आपमें स्थित था पुण्य महान ॥

(१७)

किन्तु था उसे मिला दुःसंग,
चढ़ा था उस पर कौरव-रङ्ग ।
इसी से अश्वत्थामा भी न,
कार्य करता था अच्छे ढङ्ग ॥

(१८)

विप्र का आर्जव है शुभ धर्म,
मिला था तुम्हें धर्म का मर्म ।
शस्त्र यदि फेंक न देते द्रोण,
द्रुपदसुत क्या करता दुष्कर्म ॥

(१९)

धर्म से अधिक नहीं है प्राण,
द्रोण ! हैं इसके आप प्रमाण ।
अयश देकर पाण्डव के शीस,
आपने किया धर्म का त्राण ॥

(२०)

आप यदि शस्त्र न देते छोड़,
समर से वदन न देते मोड़ ।
मही पर कहीं एक भी द्रोण,
वीर था कौन आपके जोड़ ? ॥

(२१)

द्रोण ! होकर भी नर-शार्दूल,
आपने की थी भारी भूल ।

यह पुस्तक वितरित न की जाय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको शिरोधार्य थी हाय,
जगत में पराश्रिता दुख-मूल ॥

(२२)

द्रोण ! यदि नराधमों का साथ—
न करते, रहते अपने हाथ ।
हुए होते तो जग के बीच,
आप भी नरनाथों के नाथ ॥

(२३)

किया क्यों विप्रों का अपमान ?
दिया क्यों उन्हें न विद्या-दान ? ।
आपने किया मनो आचार्य्य,
गुणों का अपने कर अवसान ॥

(२४)

आपकी विद्या ही थी व्यर्थ
मचाया उसने बड़ा अनर्थ ।
उसे ही पाकर क्षत्रिय मूढ़,
परस्पर मरे मही के अर्थ ॥

(२५)

आपने नूतन आविष्कार—।
किये, पर सभी हुए बेकार ।
गये वे।हाय उन्हीं के साथ,
भरे थे जिनमें विविध विकार ॥

(२६)

आपका दोष न था संयोग,
स्वार्थ का जिन्हें लगा था रोग ।
हुए जो निज भाई के भी न,
आपके क्यों होते वे लोग ? ॥

(२७)

जोड़ कर नराधमों से प्रेम,
आपने फिर भी चाहा क्षेम ।
न छूते हैं छलियों की छाँह,
द्रोण ! है सत्पुरुषों का नेम ॥

(२८)

आपने जिस पाण्डव के अर्थ,
हटाया एकलव्य को व्यर्थ ।
हुआ अरि वही पार्थ आचार्य,
किये क्या क्या उसने न अनर्थ ? ॥

(२९)

आपके जीवन को ही मेट,
पाण्डुतनयों ने दी गुरु-भेट ।
पेट के वश होकर आचार्य,
आप थे हुए शिष्य-आखेट ॥

(३०)

आपसे मृषा शोक-संवाद,
कहा जिसने हो निर्मर्याद ।
उसे क्या हुआ न सुत का शोक ?
वृथा क्यों जाता विप्र-विवाद ? ॥

(३१)

पुत्र था अमर आपका वीर,
हुए क्यों उसके लिए अधीर ? ।
आपने सुन कर उसकी मृत्यु,
दृगों से व्यर्थ बहाया नीर ॥

(३२)

मिला गुरु-हत्या का फल हाय—
पाण्डवों को भी सहित सहाय ।
पाण्डु-सुत कौरव भी यदुवंश
मिटे सब होकर के निरुपाय ॥

रामचरित उपाध्याय

हिन्दी-साहित्य और मुसलमान कवि ।

सभी देशों के इतिहास में भिन्न भिन्न जातियों के पारस्परिक सङ्घर्ष के उदाहरण मिलते हैं। उनसे यही सिद्ध होता है कि परस्पर ही सङ्घर्षण से सभ्यता का विकास होता है। भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न अवस्थाओं के कारण विभिन्न जातियों के विभिन्न आदर्श होते हैं। जब एक जाति का दूसरी जाति के साथ मिलन होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं तब उसका सामाजिक जीवन जटिल हो जाता है, पर इसी जटिलता से सभ्यता का विकास होता है। दो जातियों में परस्पर भिन्नता रहनी चाहिए, परन्तु जब उन्हें एक ही स्थान में रहना पड़ता है तब विवश होकर उन्हें कोई एक ऐसा सम्बन्ध-सूत्र खोजना पड़ता है जिससे उस भिन्नता में भी एकता स्थापित हो जाय। यही सत्य का अन्वेषण है, बहु में एक और व्यष्टि में समष्टि।

भारतवर्ष के इतिहास में महत्त्व-पूर्ण घटना भिन्न भिन्न जातियों का पारस्परिक सम्मिलन है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में जाति-प्रेम की समस्या अधिक कठिन थी। योरप में जिन जातियों का सम्मिलन हुआ है उनमें इतनी विषमता नहीं थी। उनमें से अधिकांश की उत्पत्ति एक ही शाखा से हुई थी। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें जाति-गत विद्वेष और विरोध की मात्रा कम नहीं थी तो भी कदाचित् उनमें वर्ण-भेद नहीं था। यही कारण है कि इँग्लैंड में सैक्सन और नार्मन जातियों में इतना शीघ्र मिलाप होगया। सच तो यह है कि सभी पाश्चात्य जातियों में वर्ण और शारीरिक गठन की समता है। यही नहीं, किन्तु उनके आदर्शों में भी अधिक भेद नहीं है। इसी लिए उनके पारस्परिक सम्मिलन में बाधा नहीं आती। परन्तु भारतवर्ष की यह दशा नहीं है। प्राचीन-काल में श्वेताङ्ग आर्यों का कृष्णकाय आदिम निवासियों से मिलाप हुआ। फिर द्रविड-जाति से उनका सङ्घर्षण हुआ। उस समय द्रविड-जाति भी सभ्य थी और उनका आचार-व्यवहार आर्यों के आचार-व्यवहार से सर्वथा भिन्न था। यह विषमता दूर करने के लिए तीन ही उपाय थे। एक तो यह कि इन जातियों का नाश ही कर दिया जाय। दूसरा यह कि उन्हें वशीभूत कर उन पर अपनी सभ्यता का प्रभाव डाला जाय और तीसरा यह कि एक ऐसे बृहत् सत्य का आविष्कार किया जाय जहाँ किसी भी प्रकार की भिन्नता नहीं रह सकती। भारतीय आर्यों ने इस तीसरे उपाय का अवलम्बन किया। भारत-वर्ष के इतिहास में जिन महापुरुषों का नाम अग्र-गण्य है उन्होंने यही कार्य किया है। भगवान् बुद्ध ने विश्व-मैत्री की शिक्षा देकर भारत के राष्ट्रीय जीवन में एकता का प्रचार किया। जब भारत पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ तब देश में एक नये आन्दोलन का जन्म हुआ। उस आन्दोलन का उद्देश था जातीय और धार्मिक विरोध को भूल कर नारायण के प्रेम में सभी नरों को भ्रातृ-रूप से ग्रहण करना। हिन्दी-साहित्य पर इस आन्दोलन का जो प्रभाव पड़ा उसी की चर्चा यहाँ की जाती है।

भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य सहसा स्थापित नहीं होगया। समस्त हिन्दू-जाति ने—विशेषकर राजपूतों और मरहठों ने—बड़ी दृढ़ता से उनका आक्रमण रोका था। मुसलमानों का पहला आक्रमण सन् ६६४ ईसवी में हुआ। उस समय मुसलमान मुलतान तक ही जाकर लौट गये। उनका दूसरा आक्रमण सन् ७११ में हुआ। तब उन्होंने सिन्धु-देश पर अधिकार कर लिया था। परन्तु कुछ समय के बाद राजपूतों ने उनको वहाँ से हटा दिया। इसके बाद महमूद ग़ज़नवी का आक्रमण हुआ। उस समय भी मुसलमानों का प्रभुत्व यहाँ स्थापित नहीं हुआ। सन् ११९३ से मुसलमानों का शासन युग प्रारम्भ हुआ। उत्तर-भारत में उनका साम्राज्य स्थापित हो जाने पर भी दक्षिण में हिन्दू-साम्राज्य बना रहा। विजय-नगर का पतन होने पर कुछ समय के लिए समग्र भारत पर से हिन्दू-साम्राज्य का लोप हो गया। परन्तु सत्रहवीं सदी में मरहठे प्रबल हुए और अन्त में उन्होंने फिर हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना की। इसी समय अँगरेज़ों का प्रभुत्व बढ़ा और कुछ ही समय में हिन्दू और मुसलमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों को अँगरेज़ों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा।

यद्यपि भारतवर्ष में मुसलमानों का साम्राज्य सन् ११९३ से प्रारम्भ होता है तथापि कितने ही मुसलमान-साधक और फ़क़ीर इन आक्रमण-कारियों के पहले ही यहाँ आ चुके थे। आठवीं सदी में जब मुसलमानों ने भारत का एक भाग विजय कर लिया तब तो हिन्दुओं और मुसलमानों में घनिष्ठता होगई। उस समय मुसलमानों का अभ्युदय बढ़ रहा था। बग़दाद विद्या का केन्द्र हो गया था। कितने ही भारतीय विद्वान् ख़लीफ़ा के दरबार तक जा पहुँचे। वहाँ उन लोगों की बदौलत संस्कृत के कितने ही ग्रन्थ-रत्नों का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ। भारतवर्ष में मुसलमानों ने केवल अपनी प्रभुता ही स्थापित नहीं की किन्तु अपने धर्म का भी प्रचार किया। तभी हिन्दू और मुसलमान का विरोध आरम्भ हुआ। इस विरोध को दूर करने का सबसे अधिक प्रयत्न किया कबीर ने। कबीर ने देखा कि भारत-वर्ष में हिन्दू और मुसलमान का विरोध बिलकुल अस्वाभाविक है।

कोइ हिंदू कोइ तुरुक कहावै एक ज़मीं पर रहिये।
वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये॥
वेद किताब पढ़ैं वे कुतवा वे मोलना वे पांड़े।
विगत विगत कै नाम धरायो यक माटी के भांड़े॥

कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों का हाथ पकड़ कर एक ही पथ पर ले जाना चाहते थे। परन्तु दोनों इसका विरोध करते थे। कबीर को उनकी इस मूढ़ता—इस धर्मान्धता—पर आश्चर्य होता था। उन्होंने देखा कि इस विरोधाग्नि में पड़ कर दोनों नष्ट हो जावेंगे।

साधो देखो जग बौराना।
साँच कहो तो मारन धावै झूठे जग पतियाना।
हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मूये मरम न काहू जाना।
हिन्दू की दया मेहर तुरकन की, दोनों घट सों त्यागी।
वैं हलाल वैं झटका मारैं, आग दोऊ घर लागी।
या विधि हसत चलत हैं हमको आप कहावे स्याना।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, इन में कौन दिवाना।

स्वदेश की कल्याण-कामना से प्रेरित हो कबीर उस पथ को खोज निकालना चाहते थे जिस पर हिन्दू और मुसलमान दोनों चल कर अपनी आत्मोन्नति कर सकें। परन्तु हिन्दू एक ओर जारहे थे तो मुसलमान ठीक उसके विपरीत जारहे थे। कबीर ने उनको चेतावनी दी—

अरे इन दुहु राह न पाई।
हिन्दू की हिन्दुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भई साधो कौन राह ह्वै जाई।

इसी लिए कबीर ने हिन्दू की हिन्दुवाई और तुर्क की तुरकाई दोनों को छोड़ दिया। उन्होंने केवल मनुष्यत्व को ग्रहण किया—

हिन्दू कहूँ तो मैं नहीं मुसलमान भी नाहिँ

उन्होंने दोनों को एक ही दृष्टि से देखा—

सम दृष्टी सतगुरु किया मेटा भरम विकार
जहँ देखौं तहँ एक ही साहेब का दीदार
सम दृष्टी तब जानिये सीतल समता होय
सब जीवन की आतमा लखें एक सी सोय।

कबीर का प्रयास व्यर्थ नहीं हुआ। हिन्दू और मुसलमान सम्मिलन की ओर अग्रसर हुए। भाषा के क्षेत्र में इनका सम्मिलन बहुत पहले हो चुका था। अमीर ख़ुसरो ने इस एकता की नींव को दृढ़ किया। हिन्दी में काग़ज़-पत्र, शादी ब्याह, ख़त-पत्र आदि शब्द उसी सम्मिलन के सूचक हैं। इसके बाद जायसी ने मुसलमानों को हिन्दी साहित्य में सौन्दर्य का दर्शन कराया।

तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि
जामें मारग प्रेम का सबै सराहै ताहि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलिक मुहम्मद जायसी कवि ही नहीं थे, साधक भी थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों उनकी पूजा करते थे। कितने ही लोग उनके शिष्य थे। अतएव यह कहना नहीं होगा कि हिन्दी-भाषा में रचना कर उन्होंने मुसलमानों को हिन्दू-जाति से प्रेम करने की शिक्षा दी। जायसी के धार्मिक विचारों का आभास उनके अखरावट से मिलता है। अपने धर्म पर अविचल रह कर भी कोई दूसरे के धर्म को श्रद्धा की दृष्टि से देख सकता है। यही नहीं, किन्तु वह उसमें सत्य का यथार्थ और अभिन्न रूप देख सकता है। यह बात जायसी की कृति से प्रकट होती है। हिन्दू भी मुसलमानों की तरह ईश्वर की सन्तान हैं। यही नहीं, उनका भी धर्म ईश्वर-प्रदत्त है। अतएव वे हमारी घृणा के पात्र नहीं हैं।

तिन्ह संतति उपराजा भांतिहि भांति कुलीन।
हिन्दू तुरक दुनउ भए अपने अपने दीन।

जायसी ने जो शिक्षायें दी हैं उनमें ऐसी कोई शिक्षा नहीं है जिसे कोई हिन्दू स्वीकार न कर सके। ईश्वर की सर्वव्यापकता पर उन्होंने कहा है—

जस तन तस यह धरती जस मन तइस अकास।
परमहंस तेहि मानस जइस फूल मँह बास।

जो उसका दर्शन करना चाहते हैं उन्हें अपने हृदय को सदैव स्वच्छ रखना चाहिए—

तन दरपन कहँ साज दरसन देखा जो चहइ
मन सों लीजइ मांज, महमद निरमल होम किया।

उन्होंने एकत्ववाद की सदैव शिक्षा दी है—

एक कहत दुइ होय दुइ से राज न चलि सकइ
बीच तें आपहु खोय महमद एकाग्र होइ रहइ

भोग्य और भोक्ता में भी उन्होंने कोई भिन्नता नहीं देखी है—

सबइ जगत दरपन कइ लेखा
आपुहि दरपन आपहु देखा
आपुहि बन अउ आपु पखेरू
आपुहि सउजा आप अहेरू
आपुहि पुहुप फूल-गति फूले
आपुहि भवँर बास-रस भूले
आपुहि फल आपुहि रखवारा
आपुहि सो रस चाखन-हारा
आपुहि घट घट मँह मुख चाहइ
आपुहि आपन रूप सराहइ
आपुहि कागद आपु मसि आपुहि लिखनहार
आपुहि लिखनी अखर आपुहि पँडित अपार

जिस आन्दोलन के प्रवर्तक कबीर थे उसकी पुष्टि जायसी के समान मुसलमान साधकों और फ़क़ीरों ने की। भारत में राजकीय सत्ता स्थापित करने के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रयत्न करते रहे। परन्तु देश में दोनों का स्थान निर्दिष्ट हो चुका था। भारत से मुसलमानों का उतना ही सम्बन्ध होगया जितना हिन्दुओं का। प्रतिद्वन्द्वी होने पर भी इन दोनों के धर्मों का प्रवेश भारतीय सभ्यता में होगया। हिन्दी और फ़ारसी से उर्दू की सृष्टि हुई। इसी प्रकार हिन्दू और मुसलमान की कला ने मध्ययुग में एक नवीन भारतीय कला सृष्टि की। देश में शान्ति भी स्थापित हुई। कृषकों का कार्य निर्विघ्न होगया। व्यवसाय और वाणिज्य की वृद्धि होने लगी। देश में नवीन भाव का यथेष्ट प्रचार हो गया। अकबर के राजत्व-काल में इसका पूरा प्रभाव प्रकट हुआ। उसके शासन-काल में जिस साहित्य और कला की सृष्टि हुई उसमें हिन्दू और मुसलमान का व्यवधान नहीं था। अकबर के महामन्त्री अबुलफ़ज़ल ने एक हिन्दू-मन्दिर के लिए जो लेख उत्कीर्ण कराया था उसका भावार्थ यह है—हे ईश्वर, सभी देव-मन्दिरों में मनुष्य तुम्हीं को खोजते हैं, सभी भाषाओं में मनुष्य तुम्हीं को पुकारते हैं। विश्व-ब्रह्मवाद तुम्ही हो और मुसलमान-धर्म भी तुम्हीं हो। सभी धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही बात कहते हैं कि तुम एक हो, तुम अद्वितीय हो। मुसलमान मस्जिदों में तुम्हारी प्रार्थना करते हैं और ईसाई गिर्जाघरों में तुम्हारे लिए घण्टा बजाते हैं। एक दिन मैं मस्जिद जाता हूँ और एक दिन गिर्जा। पर मन्दिर मन्दिर में मैं तुम्हीं को खोजता हूँ। तुम्हारे शिष्यों के लिए सत्य न तो प्राचीन है और न नवीन। अबुलफ़ज़ल का यह उद्गार मध्ययुग का नव सन्देश था। हिन्दी में सूरदास और तुलसीदास ने अपने युग की इसी भावना से प्रेरित हो मनुष्य-जीवन में श्रेष्ठ आदर्श दिखलाया। उसी भाव को ग्रहण कर मुसलमानों में रहीम ने कविता लिखी। निम्न-लिखित पद्यों से प्रकट हो जाता है कि रहीम ने हिन्दू-भाव को कितना अपना लिया था।

अनुचित बचन न मानिए जदपि गुराइस गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ ते सुजस भरत को बाढ़ि॥
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चञ्चला होय॥
गहि सरनागति राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर और न कछू उपाव॥
जो रहीम करिबो हुतो ब्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धर्‍यो गोवर्धन गोपाल॥

मुग़लों के शासन-काल में हिन्दी-साहित्य की जो श्री-वृद्धि हुई उसका कारण यही है कि उस समय मुसलमान भारत को स्वदेश समझने लगे थे। न तो हिन्दुओं ने तत्कालीन राज-भाषा की उपेक्षा की और न मुसलमानों ने हिन्दू-साहित्य की। उस समय वैष्णव-सम्प्रदाय के आचार्यों ने धार्मिक विरोध को भी हटाने की चेष्टा की। कितने ही मुसलमान साधक श्रीकृष्ण के उपासक होगये। इनमें रसखान की भक्ति ने हिन्दी में रस की धारा बहा दी है। उनका निम्न-लिखित पद्य बड़ा प्रसिद्ध है।

मानुस हो तो वही रसखान बसौ मिलि गोकुल गोप गुवारन।
जो पशु होउँ कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को जु कियो ब्रज छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग होउँ बसेरो करौं वही कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।

मुसलमानों के लिए यह प्रेम कम साहस का काम नहीं था। ताज का यह कथन सर्वथा उचित था—

सुनौ दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम
इस ही बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं।
देव पूजा ठानी मैं निवाजहू भुलानी तजे
कलाम क़ुरान सारे गुनन गहूँगी मैं।
श्यामला सलोना सिरनताज सिर कुलेदार
तेरे नेह दाग मैं निदाघ ह्वै दहूँगी मैं।
नन्द के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै
तांण नाल प्यारे हिन्दुवानी वै रहूँगी मैं।

इसी प्रेम से प्रेरित हो कितने ही मुसलमान कवियों ने हिन्दी-साहित्य को अपनी रचनाओं से अलङ्कृत किया है।

राजनीति के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान जाति का विरोध दूर नहीं हुआ। समाज के क्षेत्र में भी दोनों का सङ्घर्षण बना रहा। तो भी साहित्य के क्षेत्र में दोनों ने सत्य को ग्रहण करने में सङ्कोच नहीं किया। इसी चिरन्तन सत्य के आधार पर—इसी ऐक्य-मूलक आध्यात्मिक आदर्श की भित्ति पर—भारत ने अपनी जातीयता की स्थापना की है। इस जातीयता में सभी जातियाँ अपने अस्तित्व को स्थिर रख सकती हैं। इसमें सम्मिलित होने के लिए हिन्दू ने अपना हिन्दुत्व नहीं छोड़ा और न मुसलमानों ने अपने धार्मिक और सामाजिक संस्कारों का परित्याग किया। परन्तु इन दोनों का मिलन अनन्त सत्य के मन्दिर में हुआ जहाँ बाह्य आचार-व्यवहार और कृत्रिम जाति-भेद के बन्धन से मनुष्य-जाति की एकता भिन्न नहीं होती। यह एकता काल्पनिक नहीं है। यह हिन्दू और मुसलमान के जीवन में अभी तक काम कर रही है। सत्य की सीमा सङ्कु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित कर देने से ही इनमें परस्पर विरोध होता है। ईश्वर में ही सभी विरोधों का मिलन होता है। इसी लिए उसी को अपना लक्ष्य मान कर भारत ने अपनी जातीयता की सृष्टि की है। यहाँ एक ओर समाज में आचार-विचार की रचना होती आई है और दूसरी ओर मनुष्य की एकता को लोग स्वीकार करते आये हैं। एक ओर भिन्न भिन्न वर्णों में एक ही पङ्क्ति में बैठ कर खाने-पीने तक का निषेध किया गया है और दूसरी ओर आत्मवत् सर्वभूतेषु की शिक्षा दी गई है। आधुनिक युग में जाति-भेद की जो समस्या उपस्थित हो गई है उसके सम्बन्ध में रवीन्द्र बाबू ने बिलकुल ठीक लिखा है कि आज-कल जाति-विद्वेष खूब बढ़ गया है। सभ्य जाति अपनी शक्ति के मद से उन्मत्त हो निर्बल जातियों पर अत्याचार करने में सङ्कोच नहीं करती। अभी मनुष्यत्व का विचार उनके लिए उपहासास्पद है। परन्तु जब जातीय स्वातन्त्र्य, परजाति-विद्वेष और स्वार्थ-सिद्धि का वीभत्स रूप दृष्टि-गोचर होने लगेगा तब मनुष्य यह समझेगा कि मनुष्य की यथार्थ मुक्ति किसमें है। नर में नारायण को उपलब्ध करने में ही उसकी मुक्ति है, इसी में उसका कल्याण है। इसके लिए अधिक तर्क करने की आवश्यकता नहीं।

बिन्दु मों सिन्धु समान को अचरज कासों कहै
हेरनहार हेरान, रहिमन अपने आपतें ॥

हरिवल्लभ जोशी

कथा-विधि ।

वादी-प्रतिवादी अपने मत की सिद्धि के लिए जिस वाक्य-समूह का प्रयोग करते हैं उसका नाम कथा है। कथा में वादी को अपने पक्ष की पुष्टि के लिए कैसी युक्तियां देनी चाहिए तथा प्रतिवादी के पक्ष का खण्डन किस प्रकार करना चाहिए इत्यादि विषयों का विवेचन, न्याय-शास्त्र के अनुसार, इस लेख में किया जा गा।

कथा के तीन भेद हैं, वाद, जल्प, वितण्डा। यदि वादी-प्रतिवादी अपने सिद्धान्त के अनुकूल प्रमाण और तर्क से पक्ष की सिद्धि तथा प्रतिपक्ष का खण्डन करे और अनुमान के प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन इन पांच अवयवों का ठीक प्रयोग करे तो उस कथा का नाम वाद है। वादी-प्रतिवादी के विचार में यदि स्वमत की सिद्धि के लिए प्रमाण और तर्क के साथ छल, जाति तथा निग्रहस्थानों का भी प्रयोग हो तो उस कथा का नाम जल्प है। यदि प्रतिवादी स्वपक्ष की स्थापना न करे तो जल्पसमान कथा वितण्डा कही जाती है। इन तीन प्रकार की कथाओं के अधिकारी वे जन हैं जो तत्त्व-निश्चय या विजय के इच्छुक हैं तथा विचार-चतुर, लोक के अनुभव को माननेवाले हों। इनमें भी वाद उनका ही होता है जो तत्त्व के जिज्ञासु, प्रकरणानुकूल वक्ता, ईर्ष्या-हीन, गुरु-शिष्य, सहपाठी आदि हों। विजय के इच्छुकों के लिए जल्प वा वितण्डा हैं।

वाद में केवल तत्त्व-निश्चय की ही इच्छा होती है, अतः वाद में उन दोषों को ही प्रकट करना चाहिए जिनसे तत्त्वज्ञान करने में कुछ विघ्न उपस्थित हो; तत्त्व-निर्णय करने में जिन दोषों के रहते हुए भी कोई रुकावट नहीं आती, जो केवल वादी के ज्ञान की न्यूनता से हो गये हैं उन दोषों को नहीं प्रकट करना चाहिए। वाद में राजा, मध्यस्थ तथा साधारण लोगों से युक्त सभा की भी कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि दोनों परस्पर के युक्ति-सङ्गत वाक्यों को मान लेते हैं अतः उनके फ़ैसले के लिए मध्यस्थ आदि की आवश्यकता नहीं रहती। हां, जल्प और वितण्डा में मध्यस्थ आदि की उपस्थिति आवश्यक है क्योंकि जल्प वा वितण्डा में लोग विजय की इच्छा से प्रवृत्त होते हैं। इसीलिए दोनों में से एक अपने पक्ष को युक्ति-हीन समझता हुआ भी कह सकता है कि मेरा पक्ष ठीक है। उस समय मध्यस्थ के वचनानुसार दोनों को जय या पराजय मानना होगा। जल्प या वितण्डा में पाण्डित्य की परीक्षा करनी होती है, लोगों पर अपना प्रभाव स्थापित करना होता है इसलिए पुरुष की अशक्ति को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखानेवाले दोषों को प्रकट करना आवश्यक है। दोष के न प्रकाशित करने पर स्वयं दोषी होना पड़ेगा। यह बात निग्रह-स्थानों के निरूपण में स्पष्ट हो जायगी। जल्प और वितण्डा में छलादि का भी प्रयोग होता है, इसलिए यह आवश्यक नहीं कि किसी पक्ष के निर्णय के अनन्तर ही जल्प वा वितण्डा की समाप्ति हो किन्तु दोनों में से किसी एक के पराजित होने पर भी समाप्ति हो जाती है। हाँ वाद तब तक समाप्त नहीं होता जब तक तत्त्व-निर्णय न हो जाय।

न्याय-शास्त्र में इस चर्चा को देख कर प्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र ने आक्षेप किया है—

स्वयं विवादग्रहिले वितण्डा-
पाण्डित्यकण्डूलमुखे जनेऽस्मिन्।
मायोपदेशात्परमर्मभिन्दन्न-
हो विरक्तो मुनिरन्यदीयः॥

भाव—स्वयं विवाद के हठी तथा वितण्डा-प्रिय लोगों को छलादि से विरोधियों को मर्म-पीड़ा पहुँचाने का उपदेश देनेवाले गौतम-मुनि के वैराग्य का क्या कहना है।

प्रतिवादी यदि आग्रहवश छलादि का प्रयोग करे तो छलादि के स्वरूप को बिना जाने वादी नहीं कह सकता कि तुमने छल या जाति का आश्रय लिया है। इसी प्रकार शास्त्र-पठन से जिसको तत्त्वज्ञान हुआ तो है किन्तु दृढ़ नहीं, उसको यदि कोई अभिमानी कुछ कह कर व्याकुल कर दे तब पास के साधारण-जन भ्रम में पड़ सकते हैं। ऐसी अवस्था में मुमुक्षु को भी शीघ्र ही यथार्थ दूषण के न पाने पर छल या जाति-द्वारा भी प्रतिवादी का खण्डन कर देना चाहिए। यद्यपि पण्डित तो जानते ही हैं कि उचित उत्तर में असमर्थ होकर कौन अब गड़बड़ करने लगा है तथापि मध्यमज्ञान के लोगों की परमार्थ में श्रद्धा बनी रहेगी। यदि कहो कि प्रभाव स्थापित करने के लिए छलादि का उपदेश दिया गया है तो थूकने या हाथ-पैर के आघात करने का उपदेश क्यों नहीं किया? तो इसका उत्तर कुछ विचारने से ही मिल जाता है। मन्द से मन्दबुद्धि भी गाली-गलौज में लगे हुए को पाखण्डी समझने लगते हैं; परन्तु छल या जाति से उत्तर देने पर दोष रहने पर भी वैसी हँसी नहीं होती। भगवान् गौतम का तो वस्तुतः यही आशय है कि मुमुक्षु लोग अभिमानी जनों के छल या जाति को प्रकट कर सकें।

छल के तीन, जाति के चौबीस तथा निग्रह-स्थान के बाईस भेद हैं। लेख की दीर्घता के भय से तथा मनोरञ्जक होने से विशेष वर्णन निग्रहस्थानों का ही किया जायगा।

वक्ता का जिस अर्थ में अभिप्राय है उसको छिपा कर अन्य अर्थ की कल्पना करके वक्ता के वचन का खण्डन छल है। वादी जब हेतु से स्वपक्ष की स्थापना कर चुके तब प्रतिवादी केवल साधर्म्य से जिस दूषण को दे उसका नाम जाति है। विपरीत ज्ञान अर्थात् अयुक्त हेतु को हेतु और अयुक्त दोष को दोष समझना तथा अज्ञान, अर्थात् हेतु के दूषण और दूषण के उद्धार का न करना निग्रह-स्थान है। प्रायः अयुक्तवादी निग्रह में आ जाते हैं; युक्तवादी भी जल्प या वितण्डा में यथार्थ हेतु से प्रतिवादी के अयुक्त दूषण देने पर दूषण की अयुक्तता को न प्रकट करता हुआ निग्रह में आ जाता है।

यहाँ इतना ध्यान रखना चाहिए कि दूषित या अदूषित पदार्थ हेतु आदि दोष देने से दूषित नहीं होते सब हेतु अपने साध्य की सिद्धि में सर्वदा समर्थ ही रहते हैं। वस्तुतः पदार्थ या हेतु का अनुचित स्थल में प्रयोग करनेवाला अपराधी है। मूर्ख यदि रेत से दूध न निकाल सके तो यह रेत का दोष नहीं; तथापि पुरुष के दोष वचन-द्वारा प्रकट होते हैं इसलिए हेतु आदि दोष युक्त कहे जाते हैं। बाईस निग्रहस्थान ये हैं—

प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञान्तर, प्रतिज्ञाविरोध, प्रतिज्ञा संन्यास, हेत्वन्तर, अर्थान्तर, निरर्थक, अविज्ञातार्थ, अपार्थक, अप्राप्तकाल, न्यून, अधिक, पुनरुक्त, अननुभाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, विक्षेप, मतानुज्ञा, पर्यनुयोज्योपेक्षण, निरनुयोज्यानुयोग। अपसिद्धान्त, हेत्वाभास।

वादी स्वपक्ष की सिद्धि के लिए जब हेतु को कह चुके तब प्रतिवादी के दूषण देने पर यदि वादी स्वपक्ष में पर पक्ष के धर्म को मान ले तो प्रतिज्ञा के नष्ट हो जाने से प्रतिज्ञाहानि नामक निग्रह-स्थान होता है। उदाहरण—शब्द अनित्य हैं, इन्द्रियद्वारा प्रत्यक्ष होने से जैसे घट, इस प्रकार वादी के कहने पर प्रतिवादी ने कहा घटत्व आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातियों का भी इन्द्रियों से ज्ञान होता है परन्तु जातियाँ नित्य हैं, अतः यह हेतु अयुक्त है। इस पर यदि वादी यह कहे कि नित्य जाति के समान शब्द भी नित्य हो जाता है तो उसका कथन प्रतिज्ञाहानि में आ जायगा। किसी विधि से अपनी प्रतिज्ञा को निबाहना असम्भव समझ कर प्रतिज्ञा के त्याग से वादी प्रतिज्ञाहानि को प्राप्त होता है। इस तात्पर्य को न जान कर जैन विद्वान् विद्यानन्दी ने यह दोष दिया है—

सा हेत्वादिपरित्यागात्प्रतिपक्षप्रसाधना ।
प्रायः प्रतीयते वादे मन्दबोधस्य वादिनः ॥
कुतश्चिदाकुलीभावादन्यतो वा निमित्ततः ।
तथा तद्वाचि सूत्रार्थो नियमान्न व्यवस्थितः ॥

अर्थ—मन्दबुद्धि वादी सभाभीरु होने से या किसी कारण से व्याकुल होकर या किसी और विषय में दत्तचित्त होने से भी प्रतिज्ञाहानि को प्राप्त हो जाता है। यह तो आवश्यक नहीं कि इसी तरह प्रतिज्ञाहानि हो अतः यह लक्षण अयुक्त है। यह आक्षेप निस्सार है। उदाहरण का यह अभिप्राय नहीं कि इससे भिन्न रीति से प्रतिज्ञाहानि की सम्भावना ही नहीं।

वादी ने जिस धर्म को सिद्ध करने के लिए प्रतिज्ञा की है प्रतिवादी से उसके खण्डन करने पर वादी यदि किसी भिन्न धर्म को सिद्ध करने की प्रतिज्ञा करे तो वादी को प्रतिज्ञान्तर होता है। उदाहरण—वादी के शब्द को अनित्य सिद्ध करने के लिए पहले के समान हेतु के कहने पर तथा प्रतिवादी के जाति से हेतु में दोष देने पर यदि वादी—इन्द्रियों से प्रत्यक्ष जाति व्यापक है, अतः वह नित्य है। परन्तु शब्द तो व्यापक नहीं परिच्छिन्न है, इसलिए घट के समान शब्द भी अनित्य है। इस आशय से शब्द परिच्छिन्न है—इस दूसरी प्रतिज्ञा को करे तो वादी प्रतिज्ञान्तर से निगृहीत होगा। यदि प्रतिवादी के दोष देने पर वादी हेतु में परिच्छिन्नत्व धर्म का विशेषण देता तो कोई दोष नहीं था, किन्तु घबरा कर वादी ने शब्द परिच्छिन्न है यह दूसरी प्रतिज्ञा कर ली, और प्रतिज्ञा से प्रतिज्ञा की सिद्धि नहीं होती किन्तु हेतु और दृष्टान्त से; अतः वादी निग्रह में आ जाता है। इस पर विद्यानन्दी ने यह आक्षेप किया है—

प्रतिज्ञाहानितश्चास्य भेदः कथमुपेयते ।
पक्षत्यागाविशेषेऽपि योगैरिति च विस्मयः ॥
प्रतिदृष्टान्तधर्मस्य स्वदृष्टान्तेऽभ्यनुज्ञया ।
यथा पक्षपरित्यागस्तथा सैधान्तरादपि ॥

अर्थ—दोनों स्थलों में प्रतिज्ञात्याग के समान होने पर भी प्रतिज्ञाहानि से प्रतिज्ञान्तर को पृथक् मानना आश्चर्यजनक है। स्वपक्ष में परपक्ष के धर्म को मानने से जैसे प्रतिज्ञा का त्याग होता है वैसे ही दूसरी प्रतिज्ञा से भी। इसका समाधान—प्रतिज्ञान्तर से यद्यपि प्रथम प्रतिज्ञा की हानि हो जाती है तथापि प्रतिज्ञान्तर का ज्ञान पहले होता है और प्रतिज्ञाहानि का पीछे। इसलिए ऐसे स्थल में प्रतिज्ञाहानि का अवसर नहीं है।

प्रतिज्ञा, हेतु आदि के परस्पर विरोधी होने पर प्रतिज्ञा-विरोध होता है। उदाहरण—द्रव्य गुणों से भिन्न है; रूपादि से भिन्न किसी वस्तु के न प्रतीत होने से। यहाँ प्रतिज्ञा और हेतु में परस्पर विरोध है, क्योंकि यदि द्रव्य रूपादि से भिन्न है तो रूपादि से भिन्न वस्तु का अज्ञान नहीं हो सकता और यदि रूपादि से भिन्न वस्तु का अज्ञान है तो द्रव्य गुणों से भिन्न नहीं। यहाँ भी वादी के ऐसा प्रयोग करने पर प्रतिज्ञाविरोध का ज्ञान पहले होता है और अन्य दोषों का पीछे।

प्रतिवादी से हेतु के दूषित करने पर वादी यदि प्रतिज्ञा को छिपा ले तो प्रतिज्ञासंन्यास होता है। शब्द को अनित्य सिद्ध करने के लिए वादी के पूर्वोक्त हेतु में प्रतिवादी-द्वारा जाति से दोष देने पर यदि वादी कहे—किसने कहा था शब्द अनित्य है मैंने तो नहीं कहा—तो वादी प्रतिज्ञासंन्यास से निगृहीत होगा। प्रतिवादी के दिये दोष के उद्धार की इच्छा से प्रतिज्ञा को छिपाता हुआ वादी इससे ही निगृहीत होता है हेतु-दोष से नहीं। इस पर विद्यानन्दी का यह आक्षेप है—

प्रतिज्ञाहानिरेवैतैः प्रकारैर्यदि कथ्यते ।
प्रकारान्तरतोऽपीयं तदा किन्न प्रकथ्यते ॥
पक्षस्य प्रतिषेधे हि तूष्णींभावो धरेक्षणम् ।
व्योमेक्षणं दिगालोकः खात्कृतं चपलायितम् ॥
हस्तास्फालनमाकम्पः प्रस्वेदाद्यप्यनेकधा ।
निग्रहान्तरमस्यास्तु तत्प्रतिज्ञान्तरादिवत् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—विलक्षण रीति से प्रतिज्ञा के त्याग का नाम यदि प्रतिज्ञासंन्यास है तो प्रतिज्ञा का त्याग कई रीतियों से हो सकता है। प्रतिवादी-द्वारा दोष देने पर वादी का चुप होना, भूमि की ओर देखना, आकाश वा दिशाओं का देखना, खाँसी लेना, चञ्चलता का दिखाना, हस्तों का ताड़न, काँपना, पसीना आदि भी निग्रह-स्थान क्यों न मान लिया जाय। इसका समाधान यह है। वादी के दोष का उद्धार प्रतिज्ञा के छिपाने से हो सकता है चुप आदि से नहीं। प्रत्युत चुप आदि से वादी की निर्बलता प्रकाशित होती है।

प्रतिवादी से हेतु आदि को दूषित करने पर वादी यदि हेतु आदि में विशेषण दे तो हेत्वन्तर निग्रहस्थान होता है। उदाहरण—शब्द को अनित्य सिद्ध करने के लिए वादी के बाह्य इन्द्रिय से प्रत्यक्षत्व रूपी हेतु में जाति से प्रतिवादी-द्वारा दोष देने पर वादी—यदि शब्द अनित्य है, जातियुक्त तथा बाह्य इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होने से—इस प्रकार हेतु में विशेषण दे तो वादी हेत्वन्तर से निगृहीत हो जायगा। यह निग्रहस्थान जल्प वा वितण्डा में ही होता है, वाद में नहीं। वाद में दोनों के शुद्ध अभिप्राय होने से विशेषण के कहने पर भी तत्त्व-निर्णय में कोई विघ्न नहीं आता। प्रकरण के अनुकूल अर्थ से भिन्न अर्थ के कहने पर वादी या प्रतिवादी अर्थान्तर से निगृहीत होता है। उदाहरण—कोई जैन सब वस्तुओं को स्थिर तथा क्षणिक सिद्ध करने के लिए यह कहता है कार्य के उत्पादक होने से पदार्थ स्थिर तथा क्षणिक हैं। परन्तु ऐसे कथन में वस्तु का एक काल में स्थिर तथा क्षणिक होना परस्पर विरुद्ध है। अतएव वह जैन यह कहता है कि यह हम राग-द्वेष-रहित भगवान् महावीर स्वामी के उपदेशानुसार मानते हैं। महावीर के अनुयायी जैनमत के गुरु के सूत्रों पर चौरासी हज़ार श्लोकों से युक्त गन्धहस्ति नामक, समन्तभद्र का बीस हज़ार श्लोकों से युक्त तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिकालङ्कार नामक, विद्यानन्द का सोलह हज़ार श्लोकों से युक्त अकलङ्क नामक भाष्य है। हरिभद्र, प्रभाचन्द्र, हेमचन्द्र आदि अनेक विद्वानों ने जैन-सिद्धान्तों के पोषक बहुत ग्रन्थ बनाये हैं। इस प्रकार कहता हुआ जैन अर्थान्तर में आ जायगा।

वाच्य अर्थ से रहित शब्दों के प्रयोग करने से निरर्थक निग्रह-स्थान होता है। यदि नियम के बिना वादी प्राकृत आदि भाषा के न जाननेवाले प्रतिवादी से प्राकृत आदि भाषा-द्वारा जगत्कर्त्ता नित्य परमात्मा की सत्ता को खण्डित करे तो वादी निरर्थक से निगृहीत होगा।

वादी से तीन बार कहे हुए जिस वाक्य का आशय अप्रसिद्ध तथा अनेक अर्थों के बोधक शब्दों से युक्त होने से या अति शीघ्र उच्चारणादि अन्य कारणों से सभा या प्रतिवादी में से कोई भी नहीं समझ सका तो वादी अविज्ञानार्थ से निगृहीत होगा। धूर्त लोग अपनी निर्बलता को छिपाने के लिए इसका आश्रय लेते हैं। सभास्थल में अनेक विद्वानों के उपस्थित होते हुए यदि अर्थ का ज्ञान किसी को नहीं होता तो अपनी निर्बलता को छिपाने के लिए शब्दप्रयोग में वादी की चालाकी स्पष्ट है। तीन बार उच्चारण का नियम इसलिए है कि एक दो बार कहने पर अर्थ का ज्ञान ध्यान न रहने से भी हो जाता है; तीन बार कहने पर यदि अर्थ नहीं जाना गया तो वक्ता की ही मूर्खता है। नियम के अभाव में बार बार कहने की कोई अवधि ही न रहेगी।

एकार्थवाचक, धीरे से कहे हुए परस्पर असङ्गत वचनों का उच्चारण अपार्थक का लक्षण है। देवदत्त पटने को गया था; दस अनार हैं; छः मालपूए हैं; एक काला कम्बल है इस प्रकार के वचनों से अपार्थक होता है। निरर्थक में केवल वर्णों का उच्चारण होता है, पदों या वाक्यों का अर्थ नहीं होता। अर्थान्तर में परस्पर सङ्गत पद और वाक्यों के यद्यपि अर्थ होते हैं तथापि प्रकरण के अनुकूल नहीं रहते, अपार्थक में पदों के अर्थ तो हैं पर उनमें परस्पर सङ्गति नहीं होती। इन तीनों में यह भेद है।

प्रतिज्ञादि अवयवों का विपरीत क्रम से प्रयोग, अप्राप्तकाल निग्रह-स्थान है उदाहरण—पर्वत अग्नियुक्त है यह प्रतिज्ञा, धूम होने से यह हेतु, रसोई के समान यह उदाहरण, रसोई के समान पर्वत भी आग से व्याप्त धूम से युक्त है यह उपनय, इसलिए पर्वत अग्नियुक्त है यह निगमन। इन अवयवों के प्रयोग का यथार्थ क्रम यही है। इस क्रम का उल्लङ्घन करके प्रतिज्ञादि के कहने पर अर्थात् हेतु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे प्रतिज्ञा या प्रतिज्ञा से पहले उदाहरणादि का प्रयोग करने पर अप्राप्तकाल निग्रहस्थान होता है।

प्रतिज्ञादि अवयवों में से किसी एक के न कहने पर न्यून निग्रहस्थान होता है।

एक हेतु या दृष्टान्त अन्य हेतु या दृष्टान्त के प्रयोग से अधिक होता है यह निग्रहस्थान रागद्वेष से रहित वाद में नहीं होता।

जल्प में भी मैं अधिक हेतु वा उदाहरण नहीं दूँगा यह नियम जिसने मान लिया है, वह वादी ही अधिक से निगृहीत होता है।

अनुवाद को छोड़ कर शब्द और अर्थ का फिर कहना पुनरुक्त है। जहाँ एक शब्द का दो बार उच्चारण किया जाय वहाँ शब्द पुनरुक्त होता है उदाहरण—शब्द नित्य है, शब्द नित्य है। जो अर्थ एक बार एक शब्द से कहा गया है उसका फिर दूसरे शब्द से कहना अर्थ पुनरुक्त है उदाहरण—शब्द अनित्य है, आवाज़ नष्ट हो जाती है। अनुवाद में फिर कहना अभिप्राय-युक्त है, अतः कोई दोष नहीं। उदाहरण—जल्दी जल्दी चलो। दो बार जल्दी कहने से अत्यन्त वेग से चलने का अभिप्राय है, पुनरुक्त के उदाहरण में कोई अभिप्राय नहीं।

सभा ने जिसका आशय जान लिया है तथा वादी से तीन बार जो कहा जा चुका है प्रतिवादी यदि उसका अनुवाद न करे तो प्रतिवादी को अननुभाषण निग्रहस्थान होता है। अभिप्राय यह कि वादी ने जिस क्रम से वचन कहे हैं उसी क्रम से रत्ती भर भी न्यूनता या अधिकता के बिना उन्हीं शब्दों का उच्चारण प्रतिवादी के लिए आवश्यक नहीं। किन्तु वादी के जितने अंश का खण्डन करना है उतने का अनुवाद प्रतिवादी को अवश्य करना चाहिए उसके न करने पर प्रतिवादी निगृहीत होगा।

सभा से जाने हुए वादी के वाक्य को प्रतिवादी का न समझना अज्ञान निग्रहस्थान है।

वादी के पक्ष को जान लेने पर भी उत्तर का न जानना अप्रतिभा है। वादी उत्तर में असमर्थ होकर अपनी प्रशंसा आदि में लग जाता है। वह कहने लगता है सब शास्त्र मेरी जिह्वा के आगे नाच रहे हैं और इसने दो चार इधर-उधर की पुस्तकें पढ़ी हैं, इसका मेरे साथ विचार ही उचित नहीं। कहाँ सूर्य कहाँ जुगनू? वाद में यह निग्रहस्थान नहीं होता, तत्त्वनिर्णय की इच्छा है अतः जब तक दूसरा न समझे तब तक वाक्य का उच्चारण करने में कोई दोष नहीं। किन्तु जल्प में पुरुष-शक्ति की परीक्षा से प्रयोजन है। इसलिए उच्चारण का नियम अवश्य करना चाहिए।

जल्प में यदि नियम न हो तो कथा ही न समाप्त हो। वह तो एक शिष्यों का पढ़ाना हो जायगा।

अननुभाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, इन तीनों का परस्पर भेद स्पष्ट किया जाता है। जो जिसका खण्डन करता है उस विषय को तथा उसमें जो दोष हैं उनको जानता हुआ भी बहुत बोलने में चतुर न होने से दूषणीय विषय के अनुवाद में असमर्थ है वह अननुभाषण से निगृहीत होता है। जो खण्डनीय अंश को जानता है तथा अनुवाद भी करता है परन्तु उत्तर नहीं दे सकता वह अप्रतिभा से निगृहीत होगा। जो दूषणीय अंश को ही नहीं समझता वह अज्ञान से निगृहीत होता है। अज्ञान के स्थल में अननुभाषण नियम से नहीं होता। तीव्रबुद्धिवाला प्रतिवादी अर्थ को बिना जाने भी वादी के वचनों का अनुवाद कर सकता है। खण्डनीय विषय के न जानने पर उसके खण्डन का ज्ञान असम्भव है। अतः अज्ञान के स्थान में अप्रतिभा यद्यपि अवश्य रहेगी तथापि स्वरूप दोनों का भिन्न है। खण्डनीय विषय का न जानना अज्ञान है और उत्तर का न जानना अप्रतिभा है।

किसी काम के बहाने से कथा का भङ्ग कर देना विक्षेप निग्रहस्थान है। दूसरे के पाण्डित्य को अधिक जान कर अपने पराजय के भय से यदि—मेरा गला सूख रहा है, सिर में भारी पीड़ा है, एक शब्द भी मुख से नहीं निकलता, घर में मेरा भाई भीषण ज्वर से पीड़ित है वहाँ मेरा जाना आवश्यक है इत्यादि—बहाना करके यदि कोई कथा का भङ्ग करे तो विक्षेप से निगृहीत होता है।

अपने पक्ष में प्रतिवादी से दिये दोष को मान कर प्रतिवादी के पक्ष में उसी दोष के देने पर मतानुज्ञा निग्रहस्थान होता है। उदाहरण—पुरुष होने से आप चोर हैं, जैसे प्रसिद्ध चोर। इस प्रकार वादी के कहने पर आप भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष होने से चोर हैं यह दूषण देता हुआ प्रतिवादी मतानुज्ञा से निगृहीत हो जाता है। अब शङ्का उठेगी, वादी के दुष्ट हेतु का दोष प्रतिवादी ने इस ढङ्ग से प्रकट किया है। अतः वादी का पराजय उचित है, प्रतिवादी का नहीं। इसका समाधान—प्रतिवादी को कहना तो यह चाहिए कि आपका हेतु युक्त नहीं, जो चोरी नहीं करते ऐसे भी सज्जन पुरुष हैं, परन्तु इस रीति से न कह कर आप भी पुरुष होने से चोर हैं यह कहता हुआ प्रतिवादी वादी की युक्ति को मान लेता है। हेतु के अयुक्त होने पर भी दोष प्रकाशित नहीं हुआ। इसलिए वादी का पराजय नहीं होता। किन्तु मतानुज्ञा में प्रतिवादी ही आ जाता है।

जो निग्रहस्थान में आ गया है उसका निगृहीत न करना पर्यनुयोज्योपेक्षण है। जो निग्रहस्थान में आगया है उसको यदि आप इस निग्रहस्थान में आगये हैं इस प्रकार नहीं कहा गया तो प्रतिवादी पर्यनुयोज्योपेक्षण से पराजित होता है। यहाँ आक्षेप किया जाता है—इस निग्रहस्थान को, जो निग्रहस्थान में आगया है अथवा जिसने निग्रहस्थान को प्रकाशित नहीं किया—इन दोनों में से कौन प्रकट करता है। निग्रहस्थान में आया हुआ तो अपने दोष को नहीं प्रकाशित करेगा। यह मेरा दोष था उसको आपने प्रकट नहीं किया इस प्रकार दूसरे को दूषित करता हुआ वह स्वयं दूषित हो जाता है। जिसने निग्रहस्थान को प्रकट नहीं किया वह भी दोष को नहीं जानता; ज्ञान होने पर दोष को क्यों न प्रकट करता? और दोष की उपेक्षा करके भी यह कैसे कहेगा यह निग्रहस्थान में आगया था, पर मैंने उपेक्षा की, अतः मैं निगृहीत हो गया हूँ। फिर अप्रतिभा से इस निग्रहस्थान का कोई भेद नहीं। वादी के अयुक्त हेतु की जिसने उपेक्षा की है, दोष को नहीं प्रकाशित किया वह उत्तर के अज्ञान से अप्रतिभा-द्वारा निगृहीत होगा।

वस्तुतः इस प्रकार के स्थल में जय या पराजय किसी का नहीं होता। एक ने अयुक्त हेतु का प्रयोग किया है और दूसरे को उसके उत्तर का पता नहीं। यदि वादी के अयुक्त दूषण को प्रतिवादी ने प्रकट नहीं किया तो भी दोनों दोषी हैं। एक ने दूषण ठीक नहीं दिया दूसरे से उसका प्रकाशन नहीं हुआ। इसका परिहार यह है कि मध्यस्थ इसको प्रकट करता है। यदि मध्यस्थ न प्रकाशित करे तो अयुक्त हेतु या दोष को देनेवाला कह सकता है कि मैंने इसके बल की जिज्ञासा से जान-बूझ कर अयुक्त हेतु या दोष दिया है पर यह मूर्ख जानता ही नहीं। तब वादी कैसे निगृहीत होगा, जय-पराजय वस्तुतः किसी का नहीं किन्तु जल्प में प्रतिवादी इससे पराजित हो जाता है, क्योंकि वादी के अयुक्त हेतु या दोष से प्रतिवादी चुप हो जाता है। हेतु के युक्त होने पर उत्तर का अज्ञान अप्रतिभा और अयुक्त हेतु के प्रयोग में उसके दोष को न प्रकाशित करना पर्यनुयोज्योपेक्षण है। इन दोनों में यह भेद है।

निग्रहस्थान के अभाव में निग्रहस्थान का कथन निरनुयोज्यानुयोग नाम निग्रहस्थान है। उचित क्रम के साथ युक्त हेतु के प्रयोग करने पर भी वादी को जो कहे निगृहीत है वह अविद्यमान दोष के कहने से पराजित हो जाता है।

अपने सिद्धान्त के प्रतिकूल कथन का नाम अपसिद्धान्त है उदाहरण—एक ब्रह्म ही है और कुछ नहीं, यह प्रतिज्ञा करके शास्त्र, जीव, प्रमाण आदि अनेक विषयों का निरूपण करता हुआ अद्वैतवादी अपसिद्धान्त से पराजित हो जाता है।

अनैकान्तिक, विरुद्ध, सप्रतिपक्ष, असिद्धबाध हेत्वाभास—निग्रहस्थान हैं। लेख लम्बा होगया है, इस लिए नाम-मात्र से इनका निर्देश किया जाता है। हिन्दी के समालोचकों से यह प्रार्थना है कि यदि उन्हें किसी विषय में विचार करना हो तो यथाशक्ति वाद ही करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर जल्प या वितण्डा से काम लिया जा सकता है परन्तु उसमें भी नियमानुसार चलना चाहिए। यह सभी जानते हैं कि बिना नियम के विचार में दोनों ओर से कितनी उच्छृङ्खलता हो जाती है।

ईश्वरचन्द्र ब्रह्मचारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चपात्र ।

[सन् १९२० की बात है। एक दिन कलकत्ता में एक विशेष समाज की स्थापना हुई। इसमें किसी प्रकार का चन्दा नहीं देना पड़ता था। इसके सदस्य केवल पांच व्यक्ति हो सकते थे, एक अँगरेज़, दूसरा फ्रेञ्च, तीसरा जापानी, चौथा मुसलमान और पांचवां बङ्गाली। इस समाज का यह नियम था कि जब सब लोग मिल कर कोई दिन ठीक करें तब जिस सदस्य की बारी हो वह अपने देश की प्रथा के अनुसार सबको एक बढ़िया दावत दे, उसके बाद अपने ही देश की कोई कहानी कहे। इस समाज के सदस्य अपने आप ही सदस्य बन बैठे थे। सबसे पहले अँगरेज़ की बारी आई। उसने अपने मित्रों को अँगरेज़ी ढँग की दावत दी। जब सब लोग अच्छी तरह खा पी चुके तब कहानी प्रारम्भ हुई। उसने कहा—]

मैं अँगरेज़ हूँ। हमारा समाज आप लोगों के समाज से भिन्न है। हमारे समाज की कितनी ही बातें आपको अनुचित जान पड़ेंगी, पर मनुष्य-स्वभाव सर्वत्र एक ही होता है। सुख-दुःख और आशा-निराशा का द्वन्द्व-युद्ध किसी एक ही जाति में परिमित नहीं रहता। सभी लोगों को अपने जीवन में इनका अनुभव करना पड़ता है। मैं जानता हूँ कि इस देश में कितने ही ऐसे हिन्दू हैं जो स्वयं सदाचार की अवहेलना कर अपने समाज के सदाचार का गर्व करते हैं। मनुष्य स्वयं चाहे कितना ही अनाचार करे, परन्तु समाज के लिए अनाचार असह्य है। समाज अपने नियमों को नहीं तोड़ सकता, चाहे उन नियमों से व्यक्ति का सर्व-नाश हो जाय। समाज का अत्याचार स्त्रियों ही पर है। पुरुष तो नियम-भङ्ग करके भी बेदाग़ बच जाते हैं। इसीसे कभी कभी सत् और असत् का भी निर्णय कठिन हो जाता है। अच्छा तो, अब मेरी कहानी सुनिए।

युद्ध से लगभग चार वर्ष पहले की बात है, मैं लन्दन की पार्क-लेन में ठहरा था। मुझे वहाँ कुछ दिनों तक रहना था। जून का महीना रहा होगा। उस समय मेरी स्त्री देहात में थी। जिस घर में मैं ठहरा था उसकी स्वामिनी का नाम रूथग्रेंगर था। रूथ से मेरी स्त्री की पुरानी मित्रता थी। पिछले कई वर्षों से हम दोनों से उसकी गहरी मैत्री हो गई थी।

जिस समय की बात मैं कह रहा हूँ उस समय रूथ छब्बीस वर्ष की रही होगी। वह बड़ी सुन्दर थी, परन्तु पिछले छः वर्ष से वह घोर दुःख सहती रही है। उसने बीस वर्ष की उम्र में सर हेनरी ग्रेंगर के साथ विवाह किया था। यही विवाह उसके घोर दुःख का कारण हुआ। सर हेनरी अत्यन्त नीच पुरुष था। वैसे दुष्ट मुझे बहुत ही कम देखने को मिले हैं। उसके हृदय में भलमनसी का अङ्कुर तक नहीं था, यद्यपि उसका जन्म एक अत्यन्त सम्भ्रान्त कुल में हुआ था। इस विवाह से रूथ के घर-वाले कैसे सहमत हो गये, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। शायद रुपये की बात रही हो, क्योंकि सर हेनरी धनवान् भी था। चाहे जो हो, रूथ ने सर हेनरी के साथ विवाह कर लिया और तभी से उसका दुःख-पूर्ण जीवन प्रारम्भ हुआ।

मैंने कहा है, सर हेनरी निरा पशु था। मनुष्यता उसको छू तक नहीं गई थी। वह बहुत अधिक शराब पीता था! उसकी सारी आदतें बन्दर जैसी थीं। उसके चरित्र की क़लई 'हनीमून' के ही दिन खुल गई थी। उस दिन से उसने अपने रहन-सहन को छिपा रखने की ज़रा भी परवा नहीं की। मैं सर हेनरी के चरित्र की बात और अधिक खोल कर नहीं कहना चाहता। हम सबने इस ढङ्ग के आदमी देखे होंगे, पर कम से कम मुझे हेनरी जैसा नीच आदमी देखने को नहीं मिला। ऐसे आदमियों में भी अधिकांश लज्जाशील होते हैं। वे अपने बुरे कामों को छिपाने का कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य करते हैं, परन्तु हेनरी ने कोई बात कभी नहीं छिपाई। मानो वह यह समझता था कि सभी बातें खुले-आम करनी चाहिएं। कभी कभी मैं अपने मन में आश्चर्य करता कि हेनरी ऐसा क्यों करता है? क्या वह अपने सारे काम खुल्लमखुल्ला इसलिए करता है कि उसकी स्त्री उन्हें देख कर जले और दुःखी हो। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं उसने अपनी स्त्री को घोर दुःख दिया।

मुसलमान ने पूछा—क्या उसकी स्त्री ने कभी तलाक़ देने की चेष्टा नहीं की?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अँगरेज़ कहने लगा—नहीं, कभी नहीं। एक बार हम लोगों में इस सम्बन्ध की बातचीत भी हुई थी। हम लोगों से मतलब केवल तीन आदमियों से है—मैं, मेरी स्त्री और वह। मुझे उसको तलाक़-सम्बन्धी अपने यहाँ की विचित्र क़ानूनी बातें समझानी पड़ीं, क्योंकि हेनरी का चरित्र-दोष पूर्णरूप से क़ानून के भीतर नहीं आता था। हाँ, सम्बन्ध-भङ्ग अवश्य किया जा सकता था, पर कारणवश रूथ सम्बन्ध-भङ्ग करना नहीं हुई। केवल इतनी सी बात के लिए वह बदनामी सहने को तैयार नहीं थी। उस समय मैंने उससे यह भी कहा था—तो तुम अपने पत्नी-सम्बन्धी स्वत्वों की प्राप्ति का दावा क्यों नहीं करती? तुम्हारे पति का इधर-उधर का आना-जाना छूट सकता है। यदि वह चौदह दिन में न लौट आवे—

हँस कर उसने मेरी बात को बीच में ही काट दिया। उसने धीरे से कहा—यह तो वह स्वयं करने को तैयार है। इस बात के लिए वकील की सहायता लेना सरासर मूर्खता है। वह मुझे बहुत प्यार करता है। अधिक समय तक इधर-उधर घूम फिर कर वह दो-तीन दिन के लिए घर अवश्य आ जाता है।

मतलब यह कि हेनरी भी नहीं चाहता था कि उसकी स्त्री तलाक़ दे दे। घर आने-जानेवालों की ख़ातिरदारी के लिए उसे एक उपयुक्त व्यक्ति की आवश्यकता थी। और इस काम को रूथ ने भले प्रकार सँभाल लिया था। ख़ैर।

ऐसी ही परिस्थिति में मैं रूथ के घर जाकर ठहरा था। जिस स्त्री पर हेनरी की विशेष कृपा थी वह उस समय सङ्गीत में नाम पा चुकी थी। उसका नाम नेली-जोन्स था। हेनरी ने इस मामले को छिपाने की कोशिश नहीं की। लन्दन में जो लोग उसके ख़ानदान से परिचित थे उन्हें इस मामले का सारा हाल मालूम था। हेनरी ने इस स्त्री के साथ उसी भोजनालय में दो बार भोजन किया था जिसमें रूथ लोगों को दावत देती थी। एक बार तो उन दोनों ने रूथ की मेज़ के पास की ही मेज़ के सामने बैठ कर भोजन किया था।

बङ्गाली ने कहा—कैसा नीच है!

अँगरेज़ ने कहा—आप बहुत ठीक कहते हैं। पर हेनरी इतना ही करके सन्तुष्ट नहीं हुआ। वह इससे भी आगे बढ़ गया। एक बार वह अपनी प्रेयसी को अपने घर इस इच्छा से ले गया था कि उसकी स्त्री उसकी ख़ूब ख़ातिरदारी करे।

जब मैं रात के समय रूथ के घर पहुँचा था उस दिन उसके घर दावत थी। सौभाग्यवश अब वैसी दावतों का अस्तित्व नहीं रह गया है। वैसी दावतों में कोई न कोई अवश्य गाता है, पर सुनता कोई नहीं है। सभी अपने रङ्ग में मस्त रहते हैं। इसके सिवा वहाँ वैसे आदमी से अवश्य भेंट हो जाती है जिससे मिलने को जी नहीं चाहता। अतएव मैं वायलेट सीमर के पास चला गया। उससे मेरी पुरानी जान-पहचान थी। वह नाटक-घर की नर्तकी थी, पर उस समय किसी नाटक-मण्डली में शामिल नहीं थी। हम दोनों ज़ीने के ऊपर एक ख़ाली जगह में जा बैठे और बातें करने लगे।

सीमर ने कहा—बिल, मालूम होता है, शीघ्र ही सारा जलसा समाप्त हो जायगा। रूथ का रङ्ग-ढङ्ग आज ठीक नहीं जँचता है। वह कुछ न कुछ गड़बड़ ज़रूर करेगी।

मैंने कहा—क्या कहा जाय! बड़े दुःख की बात है। हेनरी बड़ा ही दुष्ट है। वह सब कुछ कर सकता है।

सीमर ने उत्तेजित होकर कहा—यदि तलाक़ सम्बन्धी दूषित क़ानून में परिवर्तन हो जाय तो ऐसे दुष्ट के राह में आ जाने में ज़रा भी देर न लगे। क्यों बिल, रूथ तलाक़ क्यों नहीं दे सकती? यह तो बड़ा अन्याय है।

इसी बीच हम लोगों के पास से ही एक और सज्जन आ निकले। इनका नाम सर एडवर्ड शोरहम था। ये जज थे। मुझे स्मरण है, इनकी इजलास में उस समय एक ख़ून का मुक़द्दमा चल रहा था। उस मामले की लोगों में बड़ी चर्चा थी। अभियुक्त का अपराध सिद्ध होगया था। उस समय हम लोग उसी मामले की बात-चीत करने लगे।

सर एडवर्ड को देख कर सीमर उनकी ओर मुड़ी। उसने कहा—तो आपने उसे फाँसी की सज़ा दे दी?

सर एडवर्ड ने सिर हिला कर गम्भीरता से कहा—हाँ, उसका अपराध सिद्ध हो गया था।

इस पर सीमर बीच में ही ठहर गई। उसने धीमे स्वर में कहा—ऐसा दण्ड देते समय आप ज़रा भी भयभीत नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए। जिस आदमी को आपने फांसी की सज़ा दी है वह जेल की कोठरी में बन्द अपने जीवन की घड़ियां गिन रहा होगा!

सर एडवर्ड ने मुसकरा कर कहा—मालूम होता है, आप एक बात भूल गई हैं। उस आदमी ने एक स्त्री का वध किया है।

सीमर ने कहा—नहीं, मैं भूली नहीं हूँ। परन्तु अपराध की अपेक्षा दण्ड बहुत ही ख़राब है। यदि मृत्यु सहसा आजाय तो उतना हर्ज नहीं है, पर असहाय अवस्था में उसकी राह देखना—

सीमर की बात पूरी नहीं हुई थी कि वहां रूथ आगई। उस समय कमरे में कोई स्त्री गा रही थी, अतएव रूथ को आगत लोगों का स्वागत करने के काम से कुछ अवकाश मिल गया था। रूथ ने गम्भीर और मधुर मुसकान के साथ सर एडवर्ड की ओर अपना हाथ बढ़ा कर कहा—आप बहुत ही व्यस्त से मालूम पड़ते हैं। सर एडवर्ड ने कहा—कुछ नहीं है। मिस सीमर से बात हो रही थी, आपके विचार क्रान्तिकारी हैं।

संयोगवश इसी समय मेरी निगाह रूथ पर पड़ गई। जब उसने सर एडवर्ड के चेहरे की ओर देखा था तब उसका हृद्गत भाव क्षण भर के लिए उसके चेहरे पर स्पष्ट व्यक्त हो गया। परन्तु वह शीघ्र ही सँभल गई। उसके मुख की रङ्गत फिर ज्यों की त्यों हो गई। इस बात से मैं तुरन्त ताड़ ही गया कि उन दोनों में कम से कम प्रेम अवश्य है। यद्यपि प्रेम के मामलों की परख में मैं प्रवीण नहीं हूँ तथापि मैं यह बात ज़ोर के साथ कह सकता हूँ कि यदि वे एक दूसरे के प्रेम में नहीं फँसे थे तो कम से कम वे उस स्थिति के समीप अवश्य पहुँच चुके थे। इस बात को जान कर मुझे बड़ा दुःख हुआ।

शोरहम अभी युवक ही था। कम से कम जजी के लिए उसकी उम्र कम थी। उसका विवाह भी नहीं हुआ था। अभी तक इन दोनों के कलंक की बात मेरे कानों तक नहीं पहुँची थी। शोरहम क़ानून का बड़ा पाबन्द था। इस सम्बन्ध में उसकी प्रसिद्धि थी। उसके शत्रु उसे निर्दय और कठोर कह कर उसकी निन्दा किया करते थे, पर जो लोग उससे अधिक परिचित थे उनका यह अनुमान था कि उसका कठोर स्वभाव बनावटी है, अपने स्वाभाविक कोमल हृदय को छिपाये रखने के लिए वह कृत्रिम ढङ्ग धारण किये रहता है। मुझे आज तक ऐसा आदमी नहीं देख पड़ा जो उसके समान कर्तव्य-निष्ठ हो और अपने उत्तरदायित्व को उतना महत्त्व देता हो। ऐसी दशा में सहसा यह ख़याल करना कि वह रूथ ग्रैंगर के प्रेम में फँसा है निस्सन्देह एक दुःखजनक बात थी।

मेरे पास बैठती हुई रूथ ने पूछा—तो आपका क्या कहना है?

मिस सीमर बीच में ही बोल उठी। उसने कहा—सदाचार बनाम क़ानून।

सर एडवर्ड ने कहा—यह नहीं। कहिए, व्यक्ति बनाम समाज। मिस सीमर, हमारे समाज की कुछ बातें बड़ी टेढ़ी हैं। इन्हीं के कारण कुछ बुरे क़ानूनों की रचना हुई है। कुछ समय से लोग मनमानी करने लगे हैं। यह सब बन्द होना चाहिए।

रूथ ने धीरे से कहा—क्या आप मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति को कभी स्वीकार नहीं करेंगे?

सर एडवर्ड ने जवाब दिया—नहीं, किसी भी दशा में नहीं। क़ानून मौजूद है। न्याय प्राप्त करने का प्रयत्न करो। अन्यथा गोल-माल हो जायगा।

सीमर ने पूछा—और उन मामलों के सम्बन्ध में आप क्या कहते हैं जिन तक आपके क़ानून की भी पहुँच नहीं है।

सीमर की बात समाप्त हुई थी कि सर हेनरी अपनी प्रेयसी का हाथ पकड़े हुए वहां आ खड़ा हुआ।

अपने पति को देख कर रूथ उठ खड़ी हुई। उसके चेहरे का रङ्ग जाता रहा। वह अपने पति के भद्दे और चिढ़ानेवाले मुख को घूर कर देखने लगी। पर उसने कुछ नहीं कहा, मानो उसे अपने अपमान की गुरुता का ख़याल ही न हुआ हो। वह स्तम्भित हो गई थी। नौकर लोग अलग मुँह बाये खड़े एक-टक देख रहे थे। भोजन के कमरे की ओर जानेवाले मेहमान भी जहां के तहां ठहर गये। क्षण भर बाद रूथ ने धीरे से कहा—सर एडवर्ड, क्या आपने भोजन किया है? यह कह कर रूथ ने अपना हाथ उसकी ओर किया और अपने पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास से होकर वह एडवर्ड के साथ वहां से चली गई। उसने उन दोनों की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया। इस व्यवहार पर हेनरी की प्रेयसी कुछ नाराज़ सी हो गई।

जब हेनरी और उसकी प्रेयसी वहां से चले गये तब सीमर ने मुझसे कहा—मैं समझती हूँ कि यदि रूथ उस दुष्ट को ज़ीने पर ही गोली मार देती तो सर एडवर्ड उसे भी फांसी की सज़ा अवश्य दे देता।

मैंने कहा—मैं भी यही समझता हूँ।

उस जलसे का सारा विवरण सुना कर मैं आप लोगों का समय नहीं नष्ट करूँगा। आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि ऐसी दशा में कैसी कनफुसकियाँ और इशारेबाज़ी हुई होंगी। दो तीन घण्टे बाद जब सब मेहमान खा-पीकर चले गये तब रूथ अपनी बैठक में अँगेठी के सामने जा बैठी। उसका चेहरा मुरझाया हुआ था। उसके होंठ एक दूसरे से चिपके हुए थे, मानो घोर चिन्ता में लीन हो। मैं भी वहीं एक ओर चुपचाप खड़ा था। हेनरी उस समय अपने पुस्तकालय में था। मिस जोंस के चले जाने के बाद ही वह वहां चला गया था। मैंने स्वयम् देखा था कि एक नौकर दो बोतल शैम्पेन उसके पास पहुँचा आया है।

एकाएक रूथ ने मेरी ओर देख कर कहा—यह मामला अब समाप्त है। मैं इसे नहीं सहन कर सकती। आज से ही इसकी इति समझिए। उस स्त्री को यहां लाने का साहस उसने कैसे किया?

सीमर ने जो कहा था वह अब मुझे सच जँचने लगा। रूथ हताश सी हो रही थी। उसके मुख की ओर देखने तक की हिम्मत नहीं होती थी।

मैंने धीरे से कहा—रूथ, जाकर सोओ। अब रात में किसी तरह की छेड़-छाड़ ठीक नहीं है। तुम्हें जो कुछ कहना हो, कल कहना।

मेरी बात के समाप्त होते ही कमरे का द्वार खुला और हेनरी भीतर आकर खड़ा हो गया। जैसा मैंने कहा है कि वह उन आदमियों में था जिन पर शराब अपना असर नहीं दिखाती, पर उस रात को उसके भी पैर लड़खड़ाते थे। वह दरवाज़े के सहारे खड़ा हो गया और मुँह बना कर अपनी स्त्री की ओर घूर कर देखने लगा। उसका ढङ्ग देख कर रूथ भी उससे जा उलझी। कहा-सुनी के ढङ्ग से मुझे यह समझ पड़ने लगा कि आज रूथ पर अवश्य मार पड़ेगी। मुझे यह भी जान पड़ा कि वह स्वयं वैसा कराना चाहती थी, जिसमें मैं उसका साक्षी हो जाऊँ। परन्तु हेनरी ने हाथ नहीं चलाया! उसने रूथ की सारी कड़ी बातें हँस कर उड़ा दीं। जब वह चुप हो गई तब हेनरी ने उसे चिढ़ा कर कहा—और भवानी, तुम अपने उस दुष्ट प्रेमी के सम्बन्ध में क्या कहती हो? उस न्यायभिष्ट जज के सम्बन्ध में, जिसकी तुम पूजा करती हो! वही प्यारा सदय एडवर्ड शोरहम!

इस प्रहार की आशङ्का रूथ को नहीं थी। वह नहीं जानती थी कि हेनरी वैसा सन्देह कर सकता है। क्षण भर के लिए उसके चेहरे का रङ्ग मलिन पड़ गया। इसके बाद वह घमण्ड से तन गई। उसने कहा—

सर एडवर्ड और मुझमें कैसा सम्बन्ध है, यह बात तुम जैसे पशुओं की बुद्धि में नहीं धँस सकती। यदि तुम वास्तव में यह लाञ्छन लगाते हो तो झूठ बोलते हो और इसे तुम जानते भी हो।

जिस समय रूथ अपनी यह बात कह रही थी उस समय हेनरी खड़ा हँस रहा था। जब उसकी बात पूरी हो गई तब उसने एक बार हेनरी की ओर घृणा से देखा। उसके बाद वह उसके पास से होकर कमरे से चली गई और बाहर किवाड़ बन्द कर दिये। उसके चले जाने पर हेनरी को वहां अकेला छोड़ कर मैं भी चला आया। वह उस समय चुपचाप खड़ा अँगेठी की ओर ध्यान से देखता था। अगर मैं उससे कुछ कहता तो सख़्त सुस्त ही कहता, पर उसके घर में होने के कारण मैंने कुछ भी नहीं कहा-सुना।

बाहर आकर मैं सोने के लिए अपने कमरे में चला गया। जब मैं कपड़े उतारने की तैयारी में था तब हेनरी भी मेरे कमरे के सामने से अपने पुस्तकालय की ओर चला गया। मेरा मन उस समय स्थिर नहीं था, उसी घटना के सोच-विचार में पड़ा था। इतने में ही कोई दस मिनट बाद रूथ के कमरे का द्वार खुला। उसने अपनी नौकरानी से कहा—जाकर अपने कमरे में सोओ। नौकरानी 'गुड नाइट' या ऐसा ही कुछ कह कर चली गई। इसी समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने अपने कमरे के छिद्र से झाँक कर देखा कि रूथ अपने पति के कमरे की ओर जा रही है। इसके पहले का हाल मैंने अपनी आंखों से ही देखा था। अतएव उन दोनों का उस समय फिर मिलना मुझे ठीक न जँचा। परन्तु मेरी स्थिति बड़ी टेढ़ी थी। पति-पत्नी के झगड़े में किसी बाहरी का पड़ना ठीक काम नहीं है। पर मामले के तूल पकड़ने पर भी मेरा चुप रहना उचित न होगा। यह सोच मैं भी धीरे से अपने किवाड़ खोल कर बाहर निकल आया। मैंने रूथ को अपने पति के कमरे का द्वार खोल कर भीतर घुसते देखा। उसने किवाड़ बन्द किये ही थे कि पलक मारते ही मुझे रिवाल्वर के दगने और उसके साथ ही धड़ाम से किसी के गिरने का शब्द सुनाई दिया। यह सुन कर पहले तो मैं हक्का बक्का हो गया, पर क्षण भर बाद मैं उसी ओर बेतहाशा दौड़ा और जाकर कमरे का दरवाज़ा खोल दिया।

मैंने देखा कि फ़र्श पर पड़ा हुआ हेनरी छटपटा रहा है और कमरे के बीच में उसकी स्त्री निस्तब्ध खड़ी है। दरी पर उसके पैरों के पास ही एक रिवाल्वर भी पड़ा है। मुझे देख कर रूथ ने धीरे से कहा—दुर्घटना हो गई! क्या वह मर गया है?

हेनरी के पास जाकर मैंने उसे देखा-भाला। गोली उसके हृदय को पार कर गई थी, अतएव मृत्यु अवश्यम्भावी थी।

मैंने कहा—हे ईश्वर, यह क्या हुआ। रूथ, बताओ तो?

रूथ ने लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कहा—क्या हुआ? यहां एक मनुष्य था ... ... खिड़की। इतना कह कर वह बेहोश होकर वहीं गिर गई। अब तक बटलर और दो नौकर भी दरवाज़े पर आगये थे। मैंने साहस करके कहा—श्रीमती की दासी को तुरन्त लाओ। सर हेनरी को गोली मारी गई है। डाक्टर को फ़ौरन बुलाओ।

मेरी आज्ञा पाकर बटलर तेज़ी से रवाना हुआ। परन्तु मैंने उन दोनों नौकरों को रोक लिया था। रिवाल्वर को उठा कर मैंने कहा—ठहरो, किसी दुष्ट ने यह जघन्य कृत्य किया है। खिड़की के सामने के पर्दों को पीछे खींच लो। मैं उसे मारूँगा।

मेरे कहने के अनुसार नौकरों ने पर्दे हटाये। मैंने खिड़की की ओर रिवाल्वर दाग़ दिया। पास जाकर देखा तो कोई नहीं देख पड़ा। खिड़की से होकर किसी के नीचे कूद जाने की भी सम्भावना नहीं थी, क्योंकि वह ज़मीन से ४० फुट ऊँची थी। मैंने ऊपर नीचे चारों ओर खूब ध्यान से देखा, पर वहां बिल्ली के पैर तक का चिह्न न देख पड़ा।

तब मैंने चिल्ला कर नौकरों से कहा—जाओ, नीचे कमरों में खोजो। शायद वह यहां से निकल गया है। परन्तु वे शीघ्र ही लौट कर आये और बोले—सारे किवाड़ अच्छी तरह बन्द हैं। किसी ओर से निकल भागने की राह नहीं है।

उपर्युक्त दुर्घटना ऐसी आकस्मिक थी कि कुछ देर तक मेरा मस्तिष्क कुछ भी निश्चय न कर सका। परन्तु धीरे धीरे मेरी क़ानूनी बुद्धि जागृत हुई और मैं एक एक बात पर विचार करने लगा। रूथ वहां फिर आगई थी। उससे भी मैंने एक दो सवाल किये। यद्यपि वह अभी तक विकल थी, तथापि उसने उनका जवाब तरतीब के साथ दिया। उसने कहा—

कमरे के भीतर आते ही मैंने वहां एक आदमी को देखा। वह शाम के कपड़े पहने था। भीतर घुसते ही मैंने गोली की आवाज़ सुनी। उसके साथ ही रोशनी भी बुझ गई और खिड़की के किवाड़ भी एकाएक खुल गये। मैंने ज्यों ही रोशनी की त्योंही तुम भी आ पहुँचे। इसके सिवा और कुछ मैं नहीं जानती।

यह कह कर रूथ अपनी कुर्सी से उठ कर मेरे पास आखड़ी हुई। उसने मेरी ओर घूर कर देखते हुए कहा—बिल, तुमको मुझ पर विश्वास है? क्या तुम मेरी बात का विश्वास नहीं करते?

मैंने जल्दी से कहा—बेशक, मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ। जाओ और लेटो। हमें अब पुलिस को बुलाना है।

यह सुन कर रूथ अपनी दासी के साथ वहां से चुपचाप चली गई। तब मैंने नौकरों से नीचे जाकर बैठने को कहा। उनके चले जाने पर मैं एक कुर्सी पर बैठ कर इस दुर्घटना पर विचार करने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे कोई जासूसी कहानी नहीं समझना चाहिए। इस कहानी का सम्बन्ध मानव-चरित्र से है। एक सज्जन मनुष्य के हृदय में प्रेम और कर्तव्य के बीच जो द्वन्द्व हुआ है उसी का चित्र इसमें अङ्कित है। वह मनुष्य सर एडवर्ड शोरहम था।

मुझे बिना बताये ही रूथ ने सर एडवर्ड को बुलवा भेजा था। वह तत्काल आया। बटलर उसे सीधा हेनरी के कमरे में ले आया था। वहां मैं पहले से ही बैठा था। वह आकर दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ा हो गया और फ़र्श पर पड़े हुए घायल सर हेनरी की ओर देखने लगा। डाक्टर के न आने के कारण वह अभी तक वहीं पड़ा था। शोरहम को देख कर मैं आश्चर्य के साथ खड़ा हो गया।

सर एडवर्ड ने कहा—बटलर से इस दुर्घटना की सूचना मुझे मिली है। बताइए तो, क्या बात हुई?

मैंने धीरे से जवाब दिया—सर एडवर्ड, मुझे आपके आने की आशा नहीं थी। परन्तु आप भले ही आगये। आपकी भी सलाह की आवश्यकता है।

सर एडवर्ड ने ज़ोर से कहा—आपका क्या मतलब है? क्या इसमें भी कोई रहस्य है?

मैंने कहा—जो बात मुझे मालूम है उसे मैं आपको बताता हूँ। लेडी ग्रैंगर का उनके पति से आज रात में झगड़ा हो गया। इसके बाद जब वे सोने को अपने कमरे में चली गईं तब मैं भी अपने कमरे को चला गया। थोड़ी देर बाद सर हेनरी भी इस कमरे में चले आये। मेरा कमरा इन दोनों कमरों के रास्ते पर है, यह तो आप जानते ही हैं। दस मिनट बाद लेडी ग्रैंगर इसी कमरे की ओर आईं। तब मैंने भी अपना दरवाज़ा खोल दिया। मुझे डर लगा कि कहीं फिर न लड़ाई होने लगे। मैंने उन्हें कमरे में घुसते देखा और उसके बाद ही रिवाल्वर के दगने की आवाज़ सुनी।

सर एडवर्ड ने पूछा—क्या यह दरवाज़ा बन्द था?

मैंने कहा—हां, बन्द था। मैं दौड़ कर तुरन्त यहां आया। किवाड़ खोल कर देखा कि लेडी ग्रैंगर खड़ी हैं और उनके पैरों के पास रिवाल्वर पड़ा है। हेनरी ऐसा ही पड़ा था और वे उसकी ओर आंखें फाड़े देख रही थीं। मुझे देख कर श्रीमती ग्रैंगर ने कहा कि दुर्घटना हो गई है। इसके बाद एक आदमी और खिड़की के सम्बन्ध में कुछ बुदबुदा कर कहा और मूर्छित हो गईं। मैंने खिड़की के पास जाकर देखा, पर किसी को नहीं पाया। बाहर भी देख-भाल की गई, पर कोई नहीं मिला। क्या आप भी देखेंगे?

सर एडवर्ड ने खिड़की के पास जाकर देखा-भाला। वापस आकर उसने पूछा—गोली दगने के कितनी देर बाद आपने खिड़की के पास जाकर देखा था?

मैंने कहा—चौथाई मिनट की भी देर नहीं हो पाई थी।

हम दोनों चुपचाप एक दूसरे को ताकते हुए खड़े रहे। अन्त में सर एडवर्ड ने कहा—आप क्या सोच रहे हैं?

मैंने जवाब दिया—सर एडवर्ड, मैं तो कुछ भी नहीं सोच सकता। हाँ, एक बात यह है कि हेनरी की मृत्यु हो गई है और पुलिस बुलानी चाहिए। परन्तु हमें बयान क्या देना होगा, यह पहले सोच लेना चाहिए।

सर एडवर्ड ने तुरन्त कहा—केवल सत्य बात कहनी होगी।

मैंने धीरे से कहा—यह तो आपने ठीक कहा है, पर सत्य क्या है?

सर एडवर्ड के चेहरे का रङ्ग मलिन पड़ गया। वह पास ही रक्खे हुए एक पुराने जिरह-बख़्तर के बल खड़ा हो गया। सर हेनरी के घर में इनका अच्छा सङ्ग्रह था। अन्त में उसने पूछा—क्या लेडी ग्रैंगर ने उस आदमी को खिड़की से भागते हुए देखा है?

मैंने कहा—नहीं, उन्होंने उसे खिड़की को खोलते हुए देखा था। उन्होंने यह भी कहा है कि उसने रोशनी बुझा दी थी। ठीक उसी समय मैं उनके पास कमरे में जा पहुँचा था।

यह सुन कर सर एडवर्ड आगे बढ़ आया और विषण्ण-वदन होकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

मैंने कहा—सर एडवर्ड, डाक्टर आता ही होगा। पुलीस बुलानी चाहिए। हम सबको क्या कहना होगा, यह भी निश्चय हो जाय। क्योंकि वह आदमी दरवाज़े से बाहर नहीं निकला। यदि निकलता तो मैं उसे अवश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखता । और खिड़की से तो उसका निकल भागना असम्भव है ।

सर एडवर्ड ने धीरे से कहा—आपको इस बात पर विश्वास नहीं है कि यहां कोई आदमी था ।

मैंने जवाब दिया—भगवान् जाने, मुझे तो विश्वास नहीं है । कहा-सुनी के अन्त में जो बात हेनरी ने कही उससे मिसेज़ ग्रैंगर को बहुत अधिक चोट पहुँची । यह कह कर मैंने एक बार सर एडवर्ड की ओर देखा और कहा—सर हेनरी ने अपनी स्त्री पर यह अभियोग लगाया था कि वह आपके प्रेम में फँसी है । जब मैंने इस तरह स्पष्ट कह दिया तब शोरहम ने एक गहरी सांस ली । मैंने कहा—क्या आप इतने से भी नहीं समझ सकते ? वे यहां आईं और उन्होंने सर हेनरी को गोली मार दी । जब घटनास्थल पर मैं आ पहुँचा तब उन्होंने मुझसे वही बात कही जो पहले-पहल उनके मन में आई ।

सर एडवर्ड ने दुःख के साथ कहा—यदि आपका कहना ठीक है तो इसका मतलब यह है कि मिसेज़ ग्रैंगर पर हत्या का अभियोग चलेगा । यह कह कर वह खड़ा हो गया और बोला—हे ईश्वर, बड़ा भयङ्कर मामला है । पहले से स्थिर की हुई हत्या ! झगड़े के समय आवेश में आकर नहीं की गई, किन्तु उसके उपरान्त पन्द्रह मिनट बाद !

मैंने गम्भीरता से कहा—इसी बात पर जूरी चौंकेंगे ।

सर एडवर्ड ने कहा—मान लो, मिसेज़ ग्रैंगर ने यह हत्या उत्तेजना के वश होकर की है । उस समय उनका पति उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित कर रहा था तब उन्होंने मेज़ पर रक्खे हुए रिवाल्वर को उठा लिया था । यह बात उसने बहुत ही मन्द स्वर में कही । इसके बाद वह मेरी ओर देखने लगा ।

मैंने कहा—मान लो, ऐसा ही हुआ है । परन्तु मिसेज़ ग्रैंगर को सच सच बात तुरन्त कह देनी चाहिए ।

सर एडवर्ड ने कहा—पर ऐसा नहीं हुआ है और न ऐसा हो ही सकता था ।

मैंने कहा—आप बहुत ठीक कहते हैं, ऐसी बात नहीं हुई है । परन्तु सर एडवर्ड, मान लो कि वैसा हुआ होता तो ।

सर एडवर्ड ने ज़ोर से कहा—ईश्वर के लिए आप चुप रहें ।

मैंने कहा—पर चुप रहने में भलाई नहीं है । क्या इसका निश्चय पुलिस के आ जाने पर होगा ? आपने भी वही निष्कर्ष निकाला है जो मैंने पहले सोचा था । यदि पुलिस के आने पर मिसेज़ ग्रैंगर वही बात कहेंगी जो वे इस समय कह रही हैं—

सर एडवर्ड ने कहा—तो आप यह कहते हैं कि मिसेज़ ग्रैंगर बात बनाती हैं ।

मैंने कहा—आप चाहे जो कहें, परन्तु मिसेज़ ग्रैंगर के इस बयान पर स्वेच्छा से अपने पति के मार डालने का अभियोग उन पर चलाया जायगा । परन्तु यदि वे साथ ही अपना अपराध स्वीकार कर लेंगी और हृदय पर प्रभाव डालनेवाली कोई बात कहेंगी तो आश्चर्य नहीं कि वे साफ़ छूट जायँ ।

सर एडवर्ड ने कहा—परन्तु ऐसा करना तो बड़ा भयङ्कर है । यह कह कर उसने मेरी ओर देखा, मानो वह मुझसे प्रश्न कर रहा हो ।

मैंने कहा—सर एडवर्ड, आइए हम लोग इस मामले का निश्चय धीरता के साथ करें । सच पूछो तो जो घटना हुई है उसे हम जानते हैं । रूथ यहां आई और उसने द्वार खोल कर अपने पति का वध कर डाला । जूरी को यह मामला इसी तरह समझाया जायगा । इसका निर्णय क्या होगा ?

शोरहम अपना कालर ढीला करने लगा, मानो उसका दम घुट रहा हो ।

मैंने कहा—मान लो, यदि रिवाल्वर तत्काल ही नहीं छूटा था—और मैं ही अकेला इस बात का गवाह हूँ । यदि मैंने हेनरी की क्रोध-भरी आवाज़ सुनी थी; यदि हेनरी अपनी स्त्री की ओर झपटा था, उसने उसका चुम्बन करने की चेष्टा की थी और उसकी स्त्री ने बिना कुछ सोचे-समझे जो चीज़ उसके हाथ लगी उसे उठा ली, रिवाल्वर ही सही और वह भी बिना यह जाने कि वह ख़ाली या भरा है तो क्या होगा ? नौकरों से भी जांच की जायगी । जब मिसेज़ ग्रैंगर ने उस आदमी का ज़िक्र किया था तब वे पागल जैसी बातें कर रही थीं, नहीं जानती थीं कि मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या कह रही हूँ। और जब वे अपने कमरे को चली गईं तब उन्होंने समझा कि सच कहना ही ठीक होगा, अतएव उन्होंने आपको जज समझ कर बुला भेजा। कोई जूरी इससे अच्छा और क्या प्रमाण पा सकता है। और आप अपने पद के विचार से.....।

सर एडवर्ड ने ज़ोर से पर बैठी हुई आवाज़ से कहा—ऐसा न कहिए, आप मुझे पागल कर देना चाहते हैं। आप...आप...

मैंने कहा—क्यों, बात क्या है?

हम दोनों आमने-सामने खड़े थे। रूथ का कमरे में आना हममें से किसी ने नहीं जाना। वह कुछ देर तक शोरहम की ओर एक-टक देखती रही। इसके बाद वह आहत हेनरी के पास से निकल कर हम लोगों के पास आ गई और बोली—मैंने सुना कि तुम यहां हो। इसके बाद ज़ोर से उसने कहा—शोरहम, तुम इस प्रकार मेरी ओर क्यों देख रहे हो? तुम यह मत समझ लेना कि मैंने यह दुष्कार्य किया है।

यह कह कर रूथ पीछे हट गई। उसने पहले शोरहम की ओर देखा और फिर मेरी ओर। उसने फिर कहा—तुम ऐसा नहीं समझ सकते कि इस काम को मैंने किया है। मैं तुमसे ज़ोर देकर कहती हूँ कि यहां पहले से ही एक आदमी मौजूद था। उसी ने यह कुकाण्ड किया है। ओह! सब तो मेरा विश्वास करते हैं! क्या तुम मेरी बात का विश्वास नहीं करोगे?

मैंने कहा—रूथ, मैं तुमको बतलाना चाहता हूँ कि हम दोनों तुम्हारे मित्र हैं—जब मैं इस तरह कहने लगा तब उसने मेरी ओर आंख उठा कर तक न देखा। उस समय उसकी आंखें भयङ्कर हो गई थीं। वह शोरहम की ओर एक-टक देख रही थी। मैं कहता गया—जब तुमने इस आदमी का ज़िक्र किया था तब तुम्हारे होश-हवास दुरुस्त नहीं थे। तुम नहीं जानती थी कि क्या कह रही हो। हम दोनों को तुम्हारी दशा का अनुभव है। परन्तु अब हमें तुम्हारी सहायता के लिए कोई बढ़िया उपाय ढूँढ़ना है। तुम जानती हो कि पुलिस बुलानी पड़ेगी, हमें उसे पहले ही बुलाना चाहिए था।

रूथ मेरे पास से होकर शोरहम के पास चली गई। उसने कहा—नेड, क्या तुम विश्वास करते हो कि मैंने इस काम को किया है? यदि मैं इसके लिए शपथ लूँ तो क्या उससे तुम्हें विश्वास हो जायगा?

शोरहम ने चिल्ला कर कहा—परन्तु रूथ, तुमको मुझे ही विश्वास नहीं दिलाना है। तुम पुलिस को कैसे सन्तुष्ट करोगी? उस समय कोई आदमी इस खिड़की से होकर कैसे जा सकता था। यह असम्भव है। यदि यह बात तुम पुलिस से कहोगी तो वह तुम्हारी बात की हँसी उड़ाएगी। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम हमसे सच सच कह दो। तब जो उचित होगा वह हम करेंगे।

रूथ निस्तब्ध खड़ी थी। इसके बाद उसने निधड़क होकर शोरहम से कहा—यदि तुम नहीं विश्वास करते कि यहां एक आदमी था तो तुमको यही समझना चाहिए कि मैंने ही अपने पति को मार डाला है। क्योंकि यहां और कोई था ही नहीं। अच्छा, मान लो कि मैंने ही यह काम किया है। तो क्या इस कार्य का समर्थन तुम स्वीकार नहीं?

इतने में मैं कुछ कहने लगा, पर रूथ ने मुझे हाथ के इशारे से रोक कर कहा—बिल, कृपा कर ठहरो। नेड, मैं तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा कर रही हूँ। यदि मैंने इसे मारा है तो क्या होगा?

अपनी बात कह चुकने के बाद रूथ शोरहम की ओर देखने लगी। मैं उस समय इस बात में लीन था कि रूथ की रक्षा कैसे की जाय। उधर वह दूसरी ही उधेड़-बुन में लगी थी। वह अपने प्रेमी के हृदय के भावों की थाह ले रही थी। और शोरहम, वह अपने प्रेम और कर्तव्य के पचड़े में फँसा था। उसका यह भाव उसके चेहरे के रङ्ग से साफ़ व्यक्त होता था। यही नहीं, उसके सामने उसकी प्रेमिका भी खड़ी थी। उसने अपने पति की हत्या अभी की थी और अब वह उसके साथ विवाह करने के लिए सर्वथा स्वतन्त्र हो गई थी।

शोरहम और मैं दोनों यह बात जानते थे कि जो बात मैंने बताया था उससे रूथ के मुक्त हो जाने का पूरा अवसर था। जैसा मैंने बताया था, यदि वैसे ही सारी कहानी गढ़ कर जूरी के सामने कह दी जाती तो जूरी बहुमत से वह साफ़ छूट जाती, यह बात हम दोनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते थे। शोरहम और मैं दोनों कोर्ट में उस घटना का वर्णन अच्छी तरह कर देते। रूथ का वकील अपनी बहस में सारी घटना का चित्र खींचने का प्रयत्न अलग करता। ऐसी दशा में हमारे उद्देश की सिद्धि में कुछ भी सन्देह नहीं था।

जब मैं इस प्रकार अपने मन में मंसूबे गांठ रहा था तब शोरहम ने रूथ के प्रश्न का उत्तर धीरे से दिया। उसने कहा—रूथ, यदि तुमने उसे मार डाला है तो इस बात के सिवा कि तुम बच नहीं सकती और क्या होगा।

कुछ लोग इसे विजय और कुछ लोग पराजय कहेंगे। अपनी अपनी विचार-दृष्टि की बात तो है। परन्तु यह सारा प्रपञ्च देख कर स्वयं हत्यारा तक बहुत खुश हुआ था।

जापानी ने चौंक कर पूछा—ऐं हत्यारा!

अँगरेज़ ने कहा—हाँ, हत्यारा। वह हत्यारा एक जिरह-बख़्तर के पीछे कोने में चुपचाप खड़ा था और हम लोगों का सलाह-मशविरा सुन रहा था। एकाएक वह बाहर निकल आया। हम लोग अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगे। इसी बीच में वह ज़ोर ज़ोर से खाँसने लगा। उसकी खाँसी बड़ी भयङ्कर थी। ख़ूब अच्छी तरह खाँस लेने के बाद उसने कहा—मुझे क्षमा माँगनी चाहिए। ग्रैंगर के मारने के सिवा अपनी मृत्यु के पहले मुझे एक और काम करना था। इसी से मैं छिप गया था। परन्तु मेरे जैसे रोगी को खाँसना ही पड़ता है। यह कह कर उसने सर एडवर्ड की ओर मुँह करके कहा—मुझे इस बात की ख़ुशी है कि आपका निर्णय सुनने के लिए मैं अपनी खाँसी काफ़ी समय तक रोक सका था। मैं आपको बार बार धन्यवाद देता हूँ।

शोरहम उछल कर आगे हो गया और बोला—दुष्ट, तू इससे पहले ही क्यों निकल नहीं आया।

हत्यारे ने कहा—क्योंकि मुझे अभी एक और काम करना था। पेरिस की रयूसेंट क्लेर नामक गली में एक स्त्री रहती है। किसी समय वह सुन्दरी थी। मेरे लिए तो वह आज भी सुन्दर है। उससे मेरा सम्बन्ध था—यह कह कर उसने हेनरी के शव की ओर देखा।

रूथ ने एक गहरी साँस ली। उसने पूछा—फिर?

हत्यारे ने गम्भीरता से कहा—फिर उसका हेनरी ग्रैंगर से सम्बन्ध हो गया। हम दोनों के बीच ईश्वर ही न्याय करेगा। परन्तु मैं अभी उसे एक बार फिर देखना चाहता हूँ।

रूथ ने पूछा—उसका नाम और उसके मकान का नम्बर क्या है?

हत्यारे ने कहा—उसका नाम सिविलडियारिङ्ग है और वह १४ नं० के मकान में रहती है।

रूथ बोली—अगर चाहो तो मैं तुम्हारा काम कर सकती हूँ।

क्षण भर तक वह हत्यारा रूथ की ओर चुपचाप देखता रहा। इसके बाद सिर झुका कर उसने कहा—लेडी ग्रैंगर, मैं हृदय से आपको धन्यवाद देता हूँ। मुझे आशा है, जो सुख आपको मिलना चाहिए वह आपको प्राप्त होगा। यह कह कर उसने शोरहम की ओर देखा और मुसकरा दिया। उसने कहा—जब कोई किसी को प्यार करता है तब वह किसी बात की परवा नहीं करता। ऐसा ही है न? सर एडवर्ड, जब कोई आपके समक्ष अपने भाग्य को कोसता और उस पर आश्चर्य करता हुआ खड़ा हो तब याद रखिएगा कि कोई न कोई उसे उसी प्रकार चाहता है जैसे आप इनका प्यार करते हैं।

यह कह कर अँगरेज़ ने कहानी समाप्त की और उठ कर वह पानी पीने लगा।

बङ्गाली ने पूछा—क्या उस आदमी को फांसी हो गई?

अँगरेज़ ने कहा—नहीं, एक हफ़्ते बाद वह अपने क्षय रोग से ही मर गया।

जापानी ने पूछा—और उन दोनों का क्या हुआ?

अँगरेज़ ने कहा—उन दोनों का व्याह हो गया। वे आज भी आनन्दपूर्वक रहते हैं और फल का व्यवसाय करते हैं।

फ्रेंच ने कहा—फल का व्यवसाय, ऐसा क्यों?

अँगरेज़ ने कहा—कुछ न कुछ तो करना ही चाहिए। सर एडवर्ड ने जजी छोड़ दी थी। कुछ लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है।

'ग्रामीण'

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशु-व्यायाम।

जो लोग देश की कल्याण-कामना में रत रहते हैं वे अपने देश की किसी भी त्रुटि की उपेक्षा नहीं कर सकते। एक दोष से कितने ही दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव देश के हितचिन्तकों का ध्यान दोषान्वेषण की ओर पहले जाता है। वे पहले दोष ढूँढ़ते हैं और फिर उसको निर्मूल करने की चेष्टा करते हैं। इसके लिए कितने ही उपायों की उद्भावना की जाती है। कुछ समय पहले इँग्लेंड में बच्चों की अकाल-मृत्यु के कारण बड़ा आन्दोलन हुआ। सामयिक पत्रों ने उसका भीषण परिणाम बतलाया और जनता का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट किया। फल यह हुआ कि गवर्नमेंट ने अपनी ओर से तो चेष्टा की ही, सर्व-साधारण भी निश्चेष्ट नहीं रहे। आज-कल इँग्लेंड

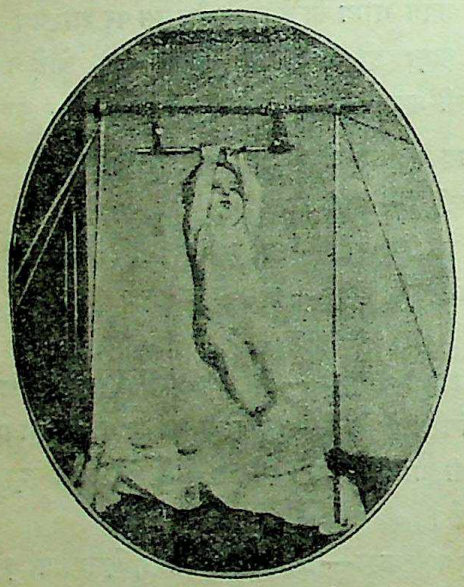

यह पाँच महीने का है।

तथा अन्य पाश्चात्य देशों में बच्चों की रक्षा तथा शिक्षा के लिए जितना प्रयत्न किया जा रहा है उसकी कल्पना तक हम अपने देश में नहीं कर सकते।

भारतवर्ष में बच्चों की मृत्यु-संख्या सदैव भयावह रही है। कहीं कहीं बच्चों की रक्षा के लिए कुछ विशेष प्रयत्न भी किये जा रहे हैं। पर

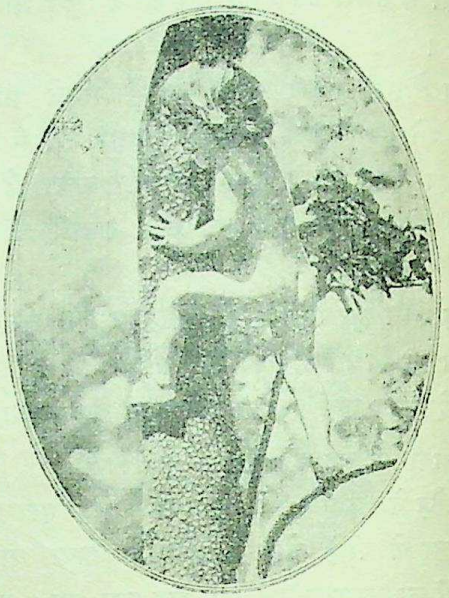

यह अठारह महीने का है।

अधिकांश लोगों को उससे कोई लाभ नहीं है। ऐसे प्रयत्नों की सीमा शहरों तक ही रहती है। देहातियों के लिए न निपुण डाक्टर हैं और न शिक्षिता धाई। देहातों में प्रसूति-सम्बन्धी काम अपढ़ स्त्रियाँ ही करती हैं। इस कारण प्रसूता पर कभी कभी घोर आपत्तियाँ आ जाती हैं। कितने ही नव-जात बच्चों की मृत्यु हो जाती है और कभी कभी माता को भी अपने प्राण खोने पड़ते हैं। जो बच्चे जीवित रह जाते हैं उनकी यथोचित रक्षा न होने के कारण थोड़े ही दिनों में मृत्यु हो जाती है। बच्चों के भरण-पोषण तक का भार कितने दरिद्र भारतवासी नहीं उठा सकते। जिनकी अकाल-मृत्यु नहीं होती वे भी शारीरिक निर्बलता के कारण आजीवन दुःख भोगते रहते हैं। हमारे देश में ऐसे निकम्मे और अपाहिज लोगों की भी संख्या कम नहीं है।

हमारे देश में एक ओर दरिद्रता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर अशिक्षा है। जो गवर्नमेंट इन दोनों को दूर करने का उपाय कर सकती है उसके पास भी अभी इतना धन नहीं कि वह शहरों के साथ साथ देहातों की भी दुरवस्था मिटाने की चेष्टा कर सके। इसी लिए जब हम अन्य देशों में बच्चों की शिक्षा का हाल पढ़ते हैं तब हमें बड़ा कौतूहल होता है।

अन्य देशों की अपेक्षा अमरीका का संयुक्त-राज्य अपनी उन्नति के लिए अधिक सचेष्ट रहता है। वहाँ बालकों की रक्षा तथा शिक्षा का भार गवर्नमेंट ने अपने ऊपर ले रक्खा है। वहाँ अब

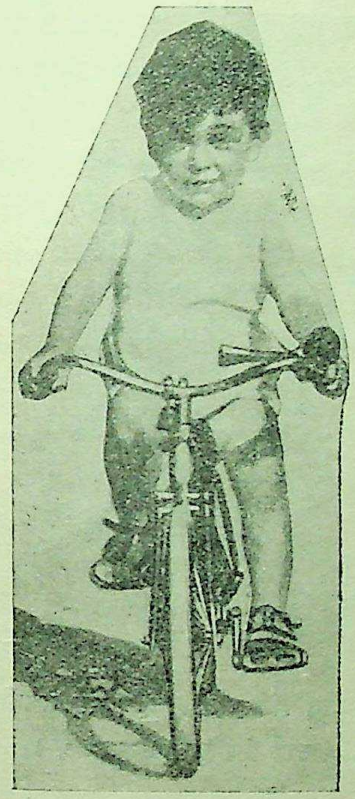

यह ढाई वर्ष का है।

यह चेष्टा की जा रही है कि गाँव गाँव में प्रसूति-गृहों की स्थापना हो जाय जिससे स्त्रियों को प्रसव-काल के समय किसी प्रकार की विपत्ति से सामना न करना पड़े। नव-जात शिशुओं की पूरी पूरी रक्षा की जाती है। जो लोग निर्धन हैं, जो बच्चों को आरोग्य-वर्धक भोजन देने में असमर्थ हैं, उन्हें सरकार की ओर से सहायता मिलती है। जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता है तब उसकी शिक्षा का प्रबन्ध तो किया ही जाता है। सदैव आरोग्य-वर्धक परिस्थिति में रहने के कारण वहाँ के सभी बालक हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न-वदन रहते हैं।

यह तीन वर्ष का है।

बच्चों की शारीरिक उन्नति के लिए व्यायाम की भी आवश्यकता है। यह बात कदाचित् हम लोगों के लिए आश्चर्यजनक हो कि नव-जात शिशुओं को भी व्यायाम करना पड़ता है और इस व्यायाम का बड़ा ही अच्छा फल होता है। कितने ही लोगों की यह धारणा है कि नव-जात शिशुओं के शरीर में कुछ भी शक्ति नहीं रहती। परन्तु यह भ्रम है। सच तो यह है कि अपनी देह के अनुसार बच्चे कभी दुर्बल नहीं होते। अतएव प्रत्येक माता-पिता का यह कर्तव्य होना चाहिए कि बच्चों को कुछ ऐसे व्यायाम कराते रहें जिनसे उनकी शक्ति की वृद्धि होती रहे। बाधा पाने से ही शक्ति बढ़ती है। शक्ति बढ़ाने का यह मुख्य उपाय है। इसके लिए बच्चे को उलटा लिटा देना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उलटा सोने से बच्चे के प्रत्येक अङ्ग को बाधा होती है। इससे वह हाथ, पैर और सिर को खूब हिलाता है। इससे उसकी छाती, हाथ, पैर और

यह पाँच वर्ष का है।

गला सशक्त होते हैं। जब बच्चा कुछ महीने का हो जाय तब उसको धीरे धीरे व्यायाम करना चाहिए। पहले पहल दिन में एक बार और फिर दिन में दो बार व्यायाम कराना यथेष्ट है। प्रारम्भ में पाँच मिनट से अधिक व्यायाम की ज़रूरत नहीं है। कुछ समय के बाद दस से पन्द्रह मिनट तक व्यायाम कराया जा सकता है।

उचित रीति से व्यायाम कराने का फल क्या होता है, यह हम अमरीका के कुछ बच्चों के अद्भुत व्यायाम-कौशल देख कर समझ सकते हैं। बच्चों का कण्ठ अभी फूटा नहीं और वे व्यायाम करने लगे हैं, यह बात है बड़ी विचित्र। न्यूयार्क में एक शिशु है। उसकी उम्र अभी सिर्फ़ पाँच महीने की है। परन्तु वह लोहे के झूले में खूब मज़े में झूला करता है। उसका नाम है मेथ्यू जिवेट। जब वह डेढ़ महीने का हुआ तभी से उसके माबाप उसको व्यायाम की शिक्षा देने लगे। न्यूयार्क में एक और बच्चा है। उसका नाम है जिमि। वह डेढ़ साल का है, परन्तु वह झाड़ पर चढ़ जाता है। वसन-भूषण-हीन नग्न शिशु का झाड़ पर चढ़ना सचमुच बड़ा ही मनोमोहक दृश्य है। स्पेन के मैड्रिड शहर में एक ढाई वर्ष का लड़का है। वह बाइसिकल पर चमत्कार दिखला सकता है। पनामा कैनाल की सीमा में एक लड़का पाँच साल का है। वह अद्भुत व्यायाम कर सकता है। रिङ्ग के खेल में भी वह बड़ी निपुणता दिखलाता है। एक बाल-पहलवान पाँच ही साल का है। परन्तु वह अपनी छाती को ढाई इञ्च फुला सकता

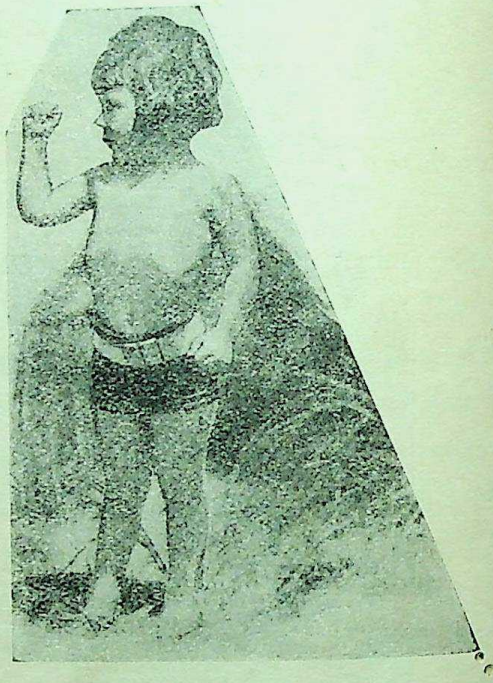

यह पहलवान पांच वर्ष का है। यह अपनी छाती को ढाई इंच फुला सकता है।

है। न्यूयार्क का एक दूसरा लड़का, लेस्टर स्लीज़र पैरलवार पर खेल दिखलाता है। अभी उसकी उम्र सिर्फ़ तीन साल की है।

ऊपर जो बातें लिखी गई हैं वे कल्पित नहीं हैं। सब सच्ची हैं। ये जादू-टोना अथवा झाड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूँक की करामातें नहीं हैं। बच्चों पर उचित ध्यान देने से ही उनमें यह अद्भुत शक्ति आई है, इन बाल-पहलवानों के मा-बाप ने उनको किस रीति से व्यायाम-शिक्षा दी है उसका भी हाल सुनिए। उन्होंने एक प्रकार जन्मकाल से ही अपने बच्चों की प्रवृत्ति व्यायाम की ओर की। जब बच्चा दो हफ़्ते का हुआ तब उसके हाथ में एक पेन्सिल पकड़ाने की चेष्टा की गई। जब उसको पकड़ने के प्रयत्न में बच्चा थकने लगता था तब भी उसके सामने पेन्सिल ले जाकर उसकी सहायता नहीं की जाती थी। इसका फल यह हुआ कि बच्चे के कन्धे खूब मज़बूत होगये और उसकी शक्ति की भी वृद्धि इतनी शीघ्र हुई कि डेढ़ महीने में ही वह लकड़ी या डण्डे को खूब ज़ोर से पकड़ सकता था।

कोलम्बिया यूनीवर्सिटी में एक डाक्टर हैं अर्नेष्ट होल्ट। शिशु-शरीर-तत्त्व के वे आचार्य माने जाते हैं। इसके लिए उनकी प्रसिद्धि भी है। उन्होंने शिशु के शारीरिक गठन के लिए कुछ नियम बाँध दिये हैं। इनसे लाभ ही होता है, हानि की आशङ्का नहीं है। डाक्टर साहब का शिशु के व्यायाम का चार्ट नीचे दिया जाता है।

शिशु का पहला व्यायाम।

वसुन्धरा वीर-भोग्या है। जो जाति निर्बल है वह सदैव पराधीन रहेगी। जाति में शक्ति तभी आ सकती है जब उसके एक एक व्यक्ति सबल और स्वस्थ हों। यदि शैशव-काल में उनकी यथोचित रक्षा नहीं की गई तो भविष्य जाति का निर्माण ही कौन करेगा। यदि कोई राष्ट्र उन्नतिशील है तो वही जो अपने बच्चों की रक्षा में खूब ध्यान देता है। यही कारण है कि सभी पाश्चात्य देश बालकों के राष्ट्रीय मूल्य का ख़याल कर उनके लिए सभी प्रकार का प्रबन्ध करते हैं।

कनकचन्द्र मुकर्जी

दलबन्दी।

दल बांध कर रहना प्राणिमात्र का स्वभाव है। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग और मनुष्य सभी किसी न किसी प्रकार का अपना दल बना कर रहते हैं। हाथियों के झुण्ड में घोड़े और कोयल के झुण्ड में कौए नहीं रह सकते। मनुष्य ने भी भिन्न भिन्न जाति, व्यवसाय, उद्देश और सिद्धान्त के आधार पर बहुत से दल बना लिये हैं। एक ब्राह्मण के साथ दूसरे ब्राह्मण की सहानुभूति की सम्भावना, एक बज़ाज़ के साथ दूसरे बज़ाज़ की घनिष्ठता, एक चोर के साथ दूसरे चोर का मेल और एक कांग्रेस-भक्त के पास दूसरे कांग्रेस-भक्त का खिँच जाना ऐसी बातें हैं जिनसे मनुष्य-मात्र की दल बांध कर रहने की इच्छा सूचित होती है।

दलबन्दी दो प्रकार की होती है—एक अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए और दूसरी अन्य लोगों को व्यर्थ की हानि या कष्ट पहुँचाने के लिए। पहले प्रकार की दलबन्दी एक आवश्यक और धर्म-सम्मत गुण है और दूसरे प्रकार की दलबन्दी एक नीचता-पूर्ण दोष और पाप है। हमारी चातुर्वर्ण-व्यवस्था भी एक उच्च कोटि की दलबन्दी है जिसके कारण इस प्राचीन हिन्दू-जाति की सभ्यता, विशिष्टता और उच्च सिद्धान्तों का अस्तित्व आज कई हज़ार वर्षों के बाद भी स्पष्ट रीति से दिखलाई पड़ता है। ब्राह्मणत्व में जिन पवित्र गुणों का समावेश है उनकी रक्षा के लिए ब्राह्मणों की जाति अथवा दल, क्षत्रियत्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रक्षा के लिए क्षत्रियों का समूह और वैश्यत्व को जीवित रखने के लिए वैश्य-समुदाय की सृष्टि की गई थी। इस दृष्टि से देखने पर हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था रक्षात्मक दलबन्दी के सिवा कुछ नहीं है।

अब हिंसात्मक दलबन्दी का उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि चार स्वतन्त्र राष्ट्र एक दूसरे के पड़ोस में रहते हैं। उनमें से एक राष्ट्र कमज़ोर है और अन्य तीन राष्ट्र शक्तिशाली हैं। यदि वे तीनों राष्ट्र आपस में मिल जाते हैं और सदैव अपने निर्दोष परन्तु निर्बल पड़ोसी राष्ट्र को कुचल डालने का प्रयत्न करते हैं तो यह हिंसात्मक दलबन्दी होगी। मतलब यह है कि किसी भी मनुष्य, जाति, समाज अथवा देश के उद्देश और कार्य को देख कर यह समझ लेना कठिन नहीं होगा कि उनके दल रक्षा के भावों से प्रेरित होकर बने हैं अथवा हिंसा के।

दलों का जन्म किसी सिद्धान्त अथवा विशेष उद्देश के लिए होता है। भिन्न भिन्न धर्मों के अनुयायियों के समान भिन्न भिन्न दलों के भी कट्टर भक्त हुआ करते हैं। वे चाहे उस दल में पहले किसी भी कारण से शामिल हुए हों परन्तु पश्चात् वे उससे अलग होने में लज्जा और पाप समझते हैं। वे अपने दल की कमज़ोरियों को अपने दल के व्यक्तियों के सिवा दूसरों के सामने मंज़ूर ही नहीं करते। जब उनका दल सङ्कट में पड़ जाता है तब उचित और अनुचित का विचार छोड़ कर वे उसकी सहायता और रक्षा के लिए जुट जाते हैं। दलबन्दी के झगड़ों में प्रत्येक दल के भक्तों में स्वार्थ-त्याग और शरण-भाव की आवश्यकता होती है। यों तो दलबन्दी बहुत से उच्च परन्तु अधूरे और एक-पक्षीय गुणों की शिक्षा देती है, परन्तु उसके कारण उच्च सिद्धान्त और साधारण नीतिमत्ता भी कुचल दी जाती है। रावण-दल को छोड़ देने के कारण विभीषण आज भी बदनाम है, चाहे अन्य दृष्टियों से वह एक सज्जन क्यों न समझा जाता हो। उलटे, कुम्भकर्ण ने अपने भाई के पक्ष को अन्याय-पूर्ण जान कर उसकी निन्दा तो की है, परन्तु उस अन्यायी-दल के लिए सङ्कट के समय अपना सिर अवश्य कटा दिया है इसलिए चारित्रिक दृष्टि से वह प्रशंसनीय ही समझा जाता है।

दलबन्दी एक बड़ी भारी शक्ति है और यह शक्ति प्रत्यक्ष रूप से संसार में सर्वत्र कार्य कर रही है। इसके परदे में लोग अपनी व्यक्तिगत कमज़ोरियों को सरलता से छिपा लेते हैं। जिस पशु-पक्षी या मनुष्य-समाज का कोई निजी दल नहीं उसका अस्तित्व अधिक समय तक रह नहीं सकता। पश्चिमी देशों में दलबन्दी राजनीति का एक बड़ा अङ्ग मानी जाती है। किसी समय एक दल अधिकारारूढ़ होता है और किसी समय दूसरा। वहाँ दलों का सङ्गठन भी बड़ी उत्तमता से होता है। फलतः शासकों पर उसका प्रभाव भी बहुत पड़ता है। प्रत्येक दल का एक सर्वमान्य अगुआ अथवा सेनापति रहता है, उसके पास उस दल के उद्देशों की पूर्ति के लिए एक स्थायी कोष तथा मुखपत्र रहता है और अपने दल के उद्देशों के प्रचार के लिए सब तरह के उपाय भी नित्य किये जाते हैं। दल के अगुआ के इशारे पर उसके सारे भक्त कार्य किया करते हैं। अगुआ यदि सद्भावों से प्रेरित और नीतिमान् पुरुष होता है तो वह अपने दल की शक्ति को किसी अच्छे मार्ग पर लगा देता है। यदि वह विवेकहीन और स्वार्थ-युक्त हो तो अपने दल को अत्याचार करने में सहायता देकर स्वयं नष्ट होता और उसे भी नष्ट कर डालता है। हठपूर्ण दलबन्दी के भयङ्कर दुष्परिणामों से संसार का इतिहास भरा पड़ा है। समय प्रवाह और विचार-हीन लोगों की इच्छा से दब कर काम करनेवाले अगुआ समाज को सङ्कट के समय डुबा देते हैं। इतिहास उन्हीं महान् आत्माओं को पूज्य दृष्टि से याद करता है जो दल बना कर आवश्यकतानुसार उसे तोड़ भी सकते हैं, जो अनेक दलों और सम्प्रदायों को मिला सकते हैं, जो भिन्न भिन्न दलों का कार्य, आपस में गुत्थम किये बिना, स्वच्छन्दतापूर्वक चला सकते हैं और मार्गभ्रष्ट लोकप्रवाह के सामने पड़ कर या तो उसे ठीक में ले आते हैं या अपने मिट जाने तक भी उसकी आज्ञा को भ्रष्टता के नाम से ही पुकारते हैं।

सार्वजनिक आन्दोलनों में उच्च आदर्श और परम ध्येय को यथेष्ट स्थान बहुत कम मिलता है। इसके कारणों की मीमांसा करते हुए एक विख्यात ग्रन्थकार ए० आर० ला महोदय कहते हैं—

"दलबन्दी का सङ्गठन जब राजनैतिक मनोविकारों को भड़काने और निम्नश्रेणी का राजनैतिक अनुराग उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिए एक मशीन हो जाता है तब प्रतिनिधि सत्तात्मक प्रजातन्त्र पर आक्षेप करने के लिए उसके समालोचकों को एक प्रबल साधन मिल जाता है। ऐसे सङ्गठनों का मुख्य उद्देश एक दल के लिए वोटों और अनुयायियों की संख्या बढ़ाना और उन्हें बनाये रखना होता है। इसलिए उन्हें विवश होकर जन-साधारण से अपील करनी पड़ती है अर्थात् उन्हें अधिकतर अज्ञानी जन-समूह से काम पड़ता है। बहुमत को अपनी ओर करने के लिए राजनैतिक दलों को लोगों के परम्परागत मिथ्याविश्वासों की हां में हां मिलानी पड़ती है और ऐसे भावों का प्रचार करना पड़ता है जिन्हें अधिक शिक्षित लोग भ्रमात्मक जानते हैं। यही प्रजातन्त्र-प्रणाली का आत्म-पतन है। जब दलबन्दी का भाव प्रबल हो जाता है तब पूर्ण सङ्गठन अनिवार्य हो जाता है; और जब समाज की निम्नतम श्रेणी के लोग भी सङ्गठन में सम्मिलित किये जाते हैं तब आन्दोलन में पतनकारी बुराइयों की कुछ मात्रा का आना भी अनिवार्य हो जाता है।''

प्राचीन काल की भारतीय राजनीति में दलबन्दी का प्रायः उज्ज्वल स्वरूप—धर्म-प्रेम—ही दिखाई पड़ता है। आज-कल दलबन्दी में जो बुराइयाँ, कूट-नीतिज्ञता और शतरंजी चालें दिखलाई पड़ती हैं उनका तिरस्कार भारत सदा से करता आ रहा है। भारतवर्ष की सभ्यता अपने हृदयहीन मित्र की अपेक्षा सहृदय शत्रु को अधिक आदर का पात्र समझती है। पश्चिमी शिक्षा तथा योरपीय संस्कारों के नशे में चूर रहनेवाले हमारे कुछ भाई कहा करते हैं कि अवसर पाकर अपने शत्रु का नाश अनुचित उपायों और राजनैतिक चालबाज़ियों से भी कर लेना चाहिए, क्योंकि दलबन्दी और लड़ाई में दाँव-पेंच के बिना काम नहीं चलता। बस, भारतवर्ष जब तक इन दाँव-पेंच की बातें नहीं मानता तब तक ही वह भारतवर्ष रह सकता है; ज्योंही वह चालबाज़ियों की राजनीति में तन्मय हो जायगा उसी समय वह अपनी प्राचीन सभ्यता और गौरव खो देगा।

बहुत से दल बना कर दाँव-पेंच की लड़ाई लड़ने के इच्छुक भारत की आध्यात्मिकता को बुद्धि-हीनता समझते हैं! सनातन काल से भारतीय रण-विद्या और योद्धाओं का यह सिद्धान्त रहा है कि सोते हुए दुश्मन को जगा कर और सावधान करके मारना चाहिए। अर्जुन के पुत्रों पर छिप कर प्रहार करनेवाले अश्वत्थामा की बड़ी निन्दा की गई है। यहाँ वही शिकारी अच्छा समझा जाता है जो शिकार के समय शेर को ललकार कर और स्वयं मैदान में उतर कर उसे मारे। भारतीय राष्ट्र सबल दुश्मन का नाश दाँव-पेंचों के साथ नहीं करना चाहता। यही तो उसकी विशेषता है। इसी लिए तो रामायण में—सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीरामचन्द्रजी को भी वानरों के राजा बालि ने फटकार कर कहा है कि "धर्म हेतु अवतरेउ गुसाईं। मारेहु मोहि व्याध की नाईं।" निःशस्त्र शत्रु को रणाङ्गण में शस्त्र देने के उदाहरण भारतवर्ष के सिवा और किस देश में मिलेंगे? अपने मरने का उपाय दुश्मनों को अपने ही श्रीमुख से भारतवर्ष के भीष्म पितामह के सिवा और किस देश का वीर बतला सकता है? क्या दाँव-पेंचवाले इस उच्चता की कल्पना भी कर सकते हैं? भारतीय युद्ध-नीति की उच्चता का पता केवल एक इसी बात से लग सकता है कि सूर्यास्त तक परस्पर की हत्या करनेवाले कौरव-पाण्डवों के दल रात्रि के समय बन्धु-भाव से विश्वासपूर्वक आपस में मिलते-जुलते थे। और भौतिक सभ्यतावाले देशों में दाँव-पेंचवाले राजनीतिज्ञों ने तो आज-कल ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है कि दुश्मन से हज़ार कोस की दूरी पर रहने पर भी एक बादशाह तक अपने महल में ही सुख की नींद नहीं सो सकता। इस विषय को और अधिक विस्तार न देकर संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति में दलबन्दी की हवा अभी कुछ वर्षों से ही बहने लगी है और दाँव-पेंच की शिक्षा तो बिलकुल ही विदेशी और नई है। अस्तु।

भारतवर्ष अपनी वर्तमान दशा में राजनैतिक दलबन्दी के धक्के सहने के लिए कहाँ तक समर्थ है इसके सम्बन्ध में बड़े बड़े विद्वानों में बहुत सा मतभेद है और स्थानाभाव के कारण इस विषय का यहाँ विचार भी नहीं करना है। परन्तु यह बात किसी भी भारतवासी से छिपी नहीं है कि अब इस देश के राजनैतिक अखाड़े में अनेक राजनैतिक दल दिखाई पड़ने लगे हैं। इन दलों के जन्म-दाताओं के मूल-हेतु में, सबल प्रमाणों के बिना, किसी तरह की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्का करना नीचता है। महात्मा गान्धी ने असहयोगियों का दल तैयार किया। ब्रिटिश-सरकार की न्यायप्रियता पर न्यूनाधिक विश्वास रखनेवालों का नरम-दल पहले से ही मौजूद है। अब एक नये स्वराज्य-ख़िलाफ़त दल की रचना और हुई है। इसमें सन्देह नहीं कि इन तीनों दलों के जन्म-दाताओं का उद्देश भारतवर्ष को स्वतन्त्र और सुखी बनाना है, परन्तु इन दलों में जितने अनुयायी भरती होते गये हैं उनके सिद्धान्तों, उद्देशों और आकांक्षाओं की विभिन्नता के अनुसार इन दलों में कमज़ोरियाँ भी आती गई हैं। स्वराज्य-दल के जन्मदाता देशबन्धुदास ने अपना दल तैयार करते समय स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि वे अपना दल to live and let others live के आधार पर बना रहे हैं अर्थात् वे स्वयं अपने को (अपने अन्तरात्मा-द्वारा प्रेरित सिद्धान्तों को) जीवित रखना चाहते हैं और दूसरों को (दूसरों की राजनीति-सम्बन्धी हार्दिक धारणाओं को) भी मरने नहीं देना चाहते। यदि इस दल के प्रत्येक कार्य और हलचल में इस इच्छा की छाया दिखाई पड़े तो, एक नहीं, बीस दलों का जन्म होना भी अनुचित तथा अवाञ्छनीय नहीं है। परन्तु बहुधा ऐसा नहीं होता। लोग उत्साह के आवेश में अपने दल के विशुद्ध ध्येय को भूल जाते हैं और अत्याचार तथा अपनी सबलता देख कर कभी कभी नीचता करने पर उतारू हो जाते हैं। दलों का अल्पजीवी अथवा दीर्घजीवी होना उसकी न्याय-प्रियता और आध्यात्मिकता पर ही निर्भर रहता है।

एक से अनेक हो जाने का नाम ही दलबन्दी है। जो एक है वह अनेक नहीं और जो अनेक है वह एक नहीं। परन्तु जो अनेकता में भी एकता स्थिर रख सकता है वही पुरुष अथवा नेता धन्य है। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह कह कर लड़ने लगें कि मैं ब्राह्मण हूँ और तू क्षत्रिय अथवा वैश्य है तो बड़े दुःख का प्रसङ्ग आ जाता है। इसलिए प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को पहले यह जानना चाहिए कि वे सबके सब हिन्दू हैं और फलतः एक हैं और बाद में इसकी चिन्ता करनी चाहिए कि उनमें से कौन क्षत्रिय है और कौन वैश्य है। इसी तरह हिन्दू और मुसलमान अथवा ईसाई में भी ढूँढ़ने से स्वाभाविक एकता के तत्त्व मिल सकते हैं। चाहे एक आदमी हिन्दू हो और दूसरा मुसलमान या ईसाई, परन्तु वे सब ई की सन्तान और मनुष्य तो अवश्य हैं। इसी तरह अ असहयोगियों का और स्वराज्य-दलवालों का उद्देश है और ये आपस में व्यर्थ के प्रहार किये बिना अप अपनी सीमा के भीतर कार्य करते रहें तो चिन्ता का कारण नहीं।

कुछ लोगों की धारणा है कि दलबन्दी एक ईमान मनुष्य से दूसरे ईमानदार मनुष्य के विवेक-पूर्ण आन्तरिक मतभेद का परिणाम है। कुछ अंशों में यह सच भी है। परन्तु अधिकांश में वह मनुष्य-जाति अनादिकालीन जीवन-पिपासा, संघर्षण-शीलता और कल प्रियता का ही द्योतक है।

दलबन्दी संसार के जीवित समाज का एक अनि धर्म है। चाहे किसी को अच्छा मालूम हो या बुरा, प संसार में सदैव ही दलबन्दी होती आई है और हु करेगी। दलबन्दी उसी दशा में निन्दनीय है जब उस अन्तिम लक्ष्य केवल दलबन्दी ही हो। जनता का समय समय पर अनेक कारणों से उभर पड़ता है। बढ़े हुए जोश को सन्मार्ग दिखला कर उससे कोई म सत्काय करा लेना ही बुद्धिमान् अगुआ का कर्तव्य हो है। दल का उद्देश सिद्ध होने पर उसकी कोई आवश्य नहीं रह जाती। संसार में सदैव ऐसे दलों की आवश्य रहती है जो लोक-कल्याण को अपना परम लक्ष्य बना जन्म ग्रहण करते हैं—केवल आतङ्क जमाने के लिए नहीं

मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

घर और बाहर।

निखिलेश की आत्म-कथा

पाँचू की स्त्री तपेदिक़ के रोग में भुगत मर गई। पाँचू को प्रायश्चित्त होगा। समाज ने हिसाब करके बत है, उसमें साढ़े तेईस सौ रुपये ख़र्च हो

मैंने खीझ कर उससे कहा—तू अगर प्रायश्चित करे तो तुझे डर काहे का है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने थके हुए बैल की तरह अपने धैर्य-भार-पूर्ण नेत्रों को उठा कर कहा—लड़की है, उसका ब्याह करना है। फिर स्त्री की भी जिसमें गति बन जाय, वह करना ही चाहिए।

मैंने कहा—अगर पाप ही हुआ तो इतने दिनों से उसका प्रायश्चित्त भी तो कम नहीं हुआ!

उसने कहा—जी कम कैसा! डाक्टर के ख़र्च में जो कुछ ज़मीन थी वह बिक गई है, और, और जो कुछ था वह रेहन हो गया है। मगर दान-दक्षिणा और ब्रह्म-भोज किये बिना तो छुट्टी नहीं मिल सकती।

तर्क करके क्या होगा? अपने मन में कहा—जो ब्राह्मण भोजन करेंगे उनके पाप का प्रायश्चित्त कब होगा?

एक तो पाँचू बराबर आधे पेट, चौथाई पेट खाकर गुज़र करता था, उस पर स्त्री की दवा, क्रिया-कर्म, ब्रह्मभोज आदि का ख़र्च आ पड़ने से वह मानो एकदम अथाह पानी में गिर पड़ा। इसी समय किसी तरह एक प्रकार की सान्त्वना पाने के लिए वह एक संन्यासी साधु के पास बैठने लगा। उससे यह हुआ कि उसके बाल-बच्चे खाने को नहीं पाते, यही भूले रहने के नशे में वह डूबा रहा। उसने समझ लिया, संसार कुछ नहीं है—जैसे सुख नहीं है, वैसे ही दुःख भी स्वप्नमात्र है। अन्त को एक दिन रात के समय टूटे घर में चार बाल-बच्चों को छोड़ कर वैरागी होकर वह कहीं चल दिया।

पाँचू के चले जाने का हाल मुझे मालूम न था। उस समय मेरे मन में सुरासुर का मन्थन हो रहा था। मास्टर साहब ने मुझे यह भी नहीं बताया कि पाँचू के लड़कों को अपने घर में रख कर वे पाल रहे हैं। इस समय उनका लड़का अपनी स्त्री को लेकर रंगून चला गया है; घर में वही अकेले हैं, उस पर दिन भर स्कूल में रहना पड़ता है।

इसी तरह जब एक महीना बीत गया तब एक दिन सबेरे के समय पाँचू आकर उपस्थित हो गया। उसका वैराग्य का नशा उतर गया था। जब उसके बड़े लड़के और लड़की, दोनों ने उसकी गोद के पास ज़मीन पर बैठ कर उससे पूछा—बप्पा, तुम कहाँ गये थे, सबसे छोटा लड़का उसकी गोद में आकर बैठ गया और मँझली लड़की पीठ पर से उसके गले में लिपट गई, तब रोने पर रोना, किसी तरह उसका रोना थमता न था। वह कहने लगा—मास्टर बाबू, इन बच्चों को दोनों वक़्त पेट भर खिलाने की भी शक्ति मुझमें नहीं है, और इन्हें छोड़ कर परमार्थ की ओर दौड़ लगा सकूँ—ऐसी मुक्ति भी मैं नहीं पा सका हूँ। ईश्वर, इस तरह बाँध कर क्यों मारते हो? मैंने कौन पाप किये थे?

इधर जिस रोज़गार से किसी तरह उसका गुज़र होता था उसका सिलसिला भी टूट गया था। पहले कुछ दिनों तक वह मास्टर साहब के ही यहाँ रहा, अब वह वहाँ से हिलने का भी नाम न लेता था। अन्त को मास्टर साहब ने उससे कहा—पाँचू, तुम अपने घर जाओ, नहीं तो तुम्हारा घर-द्वार सब मिट्टी हो जायगा। मैं तुमको कुछ रुपये उधार देता हूँ। तुम कपड़े का रोज़-गार करके धीरे धीरे उसे अदा कर देना।

पहले तो पाँचू के मन में कुछ खेद हुआ। उसने समझा, दया-धर्म नाम की कोई चीज़ जगत् में है ही नहीं। उसके बाद रुपये देने के समय मास्टर साहब ने जब हैंडनोट लिखा लिया तब उसने अपने मन में कहा—रुपये तो अदा करने ही होंगे, ऐसे उपकार का मूल्य ही क्या! मास्टर साहब का स्वभाव था कि वह किसी को बाहर से दान करके भीतर की ओर से ऋणी बनाना बिलकुल न चाहते थे। वे कहते हैं—हृदय से अपनी इज़्ज़त चले जाने पर मनुष्य का मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है।

हैंडनोट लिख कर रुपये लेने के बाद पाँचू मास्टर साहब को ख़ूब भक्ति के साथ लम्बी दण्डवत् न कर सका—पैरों की धूल लेकर सिर पर नहीं लगाई। मास्टर साहब मन ही मन हँसे। वे प्रणाम की मात्रा छोटी होना ही पसन्द करते हैं। वे कहते हैं, मनुष्य के साथ मेरा इतना सम्बन्ध ही यथार्थ है कि मैं उस पर श्रद्धा करूँ और वह मुझ पर श्रद्धा करे—भक्ति को मैं अपने प्राप्य से अधिक समझता हूँ।

पाँचू कुछ धोती-सारी, कुछ सर्दी के कपड़े मोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाकर किसानों की बस्ती में फेरी लगाने लगा। उसे नक़द दाम नहीं मिलते थे, किन्तु उसी समय कुछ धान, पाट या और कोई फ़सल की चीज़ जो वह वसूल कर लाता था सो दाम में मुजरे नहीं होती थी। दो महीने के भीतर ही उसने मास्टर साहब को एक किश्त का सूद और कुछ असल का रुपया दे दिया और इस ऋण चुकाने का अंश प्रणाम से काट लिया अर्थात् उतनी ही प्रणाम के आडम्बर में कमी कर दी। पाँचू निश्चित रूप से यह समझने लगा कि एक दिन मास्टर साहब को जो उसने गुरु ठहराया था सो उसने भूल की थी। मास्टर साहब की दृष्टि लाभ के लोभ में फँसी हुई है।

इसी तरह पाँचू का गुज़र होता जा रहा था। इसी समय बड़े प्रबल वेग से स्वदेशी की बहिया आ पड़ी। हमारे और हमारे आस-पास के गाँवों के जो लड़के स्कूलों और कालेजों में पढ़ते थे वे छुट्टियों में अपने अपने घर आये। उनमें से बहुतों ने स्कूल-कालेज छोड़ दिये। वे सब सन्दीप को मुखिया बना कर स्वदेशी के प्रचार में मतवाले से हो उठे। इनमें से बहुत से मेरे यहाँ के फ्री स्कूल से एन्ट्रेंस पास कर गये हैं और बहुतों को मैंने कलकत्ते में पढ़ने के लिए वृत्ति दी है। सब लड़के एक दिन दल बाँध कर मेरे पास आकर उपस्थित हुए। उन्होंने कहा—आपको अपने शुक-सायर के बाज़ार से विलायती सूत रैपर वग़ैरह एक-दम निकाल बाहर कर देने होंगे।

मैंने कहा—सो मुझसे न होगा।

उन्होंने कहा—क्यों, आपका नुक़सान होगा?

मैं समझ गया, यह बात मेरा कुछ अपमान करने के भाव से ही कही गई है। मैं कहनेवाला था कि मेरा नुक़सान नहीं, ग़रीबों का नुक़सान होगा।

मास्टर साहब वहीं बैठे थे, वे बोल उठे—हाँ, इनका नुक़सान नहीं तो क्या तुम्हारा नुक़सान होगा!

उन्होंने कहा—देश के लिए—

मास्टर साहब बीच ही में बोल उठे—देश मिट्टी को तो कहते ही नहीं हैं, ये सब मनुष्य ही तो देश हैं। भला इतने दिनों से तुमने कभी इन देशवासियों की ओर नज़र उठा कर देखा है? आज जो एकाएक बीच में पड़ कर, ये कौन नोन खायँ और कौन कपड़ा पहनें—यह बताने और उसके लिए इन पर अत्याचार करने आ हो तो भला ये ही क्या सहेंगे, और हमीं क्यों इन तुम्हारा वह अत्याचार सहने देंगे।

उन्होंने कहा—हमने खुद भी तो देशी नोन, देशी चीनी और देशी कपड़े का इस्तेमाल शुरू कर दिया है

मास्टर साहब ने कहा—तुम चिढ़ गये हो, तुम्हें हो गया है, उसी झोंक में जो तुम करते हो सो खुशी करते हो। तुम्हारे पास चार पैसे हैं, तुम दो पैसे अधि देकर देशी चीज़ें ख़रीदते हो, तुम्हारी उस ख़ुशी में ये लोग बाधा नहीं डालते! किन्तु उनसे तुम जो करा चाहते हो सो केवल ज़ोर-ज़बरदस्ती से। वे लोग प्रति दिन जीवन-मरण की खींचतान में पड़ कर मरते दम त केवल किसी तरह टिके रहने के लिए, समय से लड़ते हैं—उनके लिए दो पैसे कितने क़ीमती हैं, इसकी तुम कल्प भी नहीं कर सकते—उनके साथ तुम्हारी तुलना कै हो सकती है? जीवन की इमारत में सदा तुम ए कोठे में और वे एक कोठे में रहे हैं। आज तुम अप मुश्किल उनके सिर डालना चाहते हो, अपने क्रोध उन पर अत्याचार करके चरितार्थ करोगे? मैं तो इ कायरपन समझता हूँ।

युवकदल में से प्रायः सभी मास्टर साहब के पढ़ा हुए थे, इसी से कोई स्पष्ट रूप से कोई कड़वी बात नहीं कह सका, किन्तु क्रोध के मारे उनका ख़ून मानो खौ उठा। मेरी तरफ़ देख कर सबने कहा—देखिए, सारे दे ने जिस व्रत को ग्रहण किया है उसमें केवल आप बाधा डालेंगे?

मैंने कहा—उसमें बाधा डालने की शक्ति भ मुझमें है? बल्कि मैं प्राणपण से उसके अनुकूल रहूँगा।

एम० ए० क्लास के छात्र ने व्यंग्य से भरी हँसी कर कहा—आप क्या अनुकूलता कर रहे हैं?

मैंने कहा—देशी मिल से देशी कपड़ा और देशी मँगा कर मैंने अपने बाज़ार में रक्खा है—यहाँ तक इलाक़े के और बाज़ारों में भी मैं देशी सूत बिकने लिए भेजता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह छात्र बोल उठा—किन्तु हम आपके बाज़ार में जाकर देख आये हैं, आपके देशी सूत को कोई नहीं ख़रीदता।

मैंने कहा—यह तो मेरा दोष नहीं है, मेरे बाज़ार का दोष नहीं है; इसका एकमात्र कारण यही है कि सारे देश ने तुम्हारे व्रत को ग्रहण नहीं किया।

मास्टर साहब ने कहा—केवल यही नहीं, जिन्होंने व्रत लिया है उन्होंने विव्रत करने का ही व्रत लिया है। तुम चाहते हो, जिन्होंने व्रत नहीं लिया वही इस सूत को ख़रीदें; जिन्होंने व्रत नहीं लिया ऐसे जुलाहों से कपड़े बुनवाना चाहते हो और जिन्होंने व्रत नहीं लिया उन्हीं से वह कपड़ा ख़रीदवाना चाहते हो। किस उपाय से? अपने हाथ-पैरों के ज़ोर से, या ज़मींदार के प्यादे की ताड़ना से? अर्थात् व्रत तुम्हारा है, किन्तु भूखे रहेंगे वे, और उपवास करोगे तुम! क्यों न?

साइंस-क्लास का छात्र बोला—अच्छा, अच्छी बात है, आप लोगों ने उपवास का कौन अंश लिया है—सुनें तो!

मास्टर साहब ने कहा—सुनोगे? देशी मिल से निखिल को वह सूत खुद ही ख़रीदना होता है, निखिल ही वह सूत देकर जुलाहों से कपड़े बुनवाते हैं, तांत चलाने का स्कूल निखिल ने खोल रक्खा है। इसके उपरान्त भैया ऐसे रोज़गार में होशियार हैं कि उस सूत से अँगोछा जब तैयार होगा तब उसके दाम होंगे कमख़ाब के टुकड़े के इतने, अतएव वह अँगोछा ख़ुद ही ख़रीद कर वे अपनी बैठक का पर्दा बनावेंगे, उस पर्दे से उनके घर की आबरू रहेगी नहीं। तब तक तुम्हारा व्रत अगर सम्पूर्ण होगा तो देशी कारीगरी के उस नमूने को देख कर तुम्हीं सब ऊँचे स्वर से हँसोगे। कहीं यदि उस रङ्गीन अँगोछे का आर्डर और उसे आदर मिलेगा तो अँगरेज़ के ही निकट।

इतने दिनों से मैं मास्टर साहब के पास हूँ, मगर उनको इतना उत्तेजित होते और किसी दिन नहीं देखा। मुझे अच्छी तरह मालूम हुआ कि कुछ दिनों से उनके हृदय के भीतर चुपचाप एक वेदना जमती जा रही है—सो केवल मुझे वे प्यार करते हैं इसी कारण। उनकी उस वेदना ने ही उनके धैर्य के 'बाँध' को भीतर ही भीतर काट डाला है।

मेडिकल कालेज का छात्र बोल उठा—आप अवस्था में बड़े हैं, आपके साथ हम तर्क नहीं करेंगे। तो फिर संक्षेप में यह कहिए कि आप अपने बाज़ार से विलायती माल को नहीं हटावेंगे।

मैंने कहा—नहीं हटाऊँगा, क्योंकि वह माल मेरा नहीं है।

एम० ए० क्लास के छात्र ने कुछ हँस कर कहा—क्योंकि उसमें आपका नुक़सान है।

मास्टर साहब ने कहा—हाँ, उसमें उनका नुक़सान है, और इस कारण उसे वही समझ सकते हैं।

तब सब छात्र ऊँचे स्वर से वन्दे मातरम् कह कर चिल्लाते हुए चले गये।

इसके कुछ दिन बाद ही मास्टर साहब पाँचू को लिये मेरे पास आकर उपस्थित हुए। मामला क्या है?

पाँचू के ज़मींदार हरिश कुण्डू ने उस पर एक सौ रुपया जुर्माना किया है।

मैंने कहा—क्यों, इसका अपराध क्या है?

मास्टर साहब ने कहा—इसने विलायती कपड़ा बेंचा है। इसने ज़मींदार के पास जाकर पैरों पर गिर कर कहा कि मैंने दूसरे से रुपये उधार लेकर यह कपड़ा ख़रीदा है। इतना कपड़ा बिक जाने पर ऐसा काम फिर कभी न करूँगा। ज़मींदार ने कहा—यह न होगा। मेरे सामने इन कपड़ों को जला दे, तब छोड़ूँगा। पाँचू से रहा नहीं गया, वह एकाएक कह उठा कि मेरे तो इतना सामर्थ्य नहीं, मैं ग़रीब आदमी हूँ। आप लखपती हैं, आप दाम देकर ख़रीद लीजिए और जला डालिए। यह सुन कर ज़मींदार आग हो उठा, उसने कहा—हरामज़ादा बातें बनाता है, मारो जूते! एक बार अपमान भी हो गया और उस पर सौ रुपया जुर्माना भी चाहिए!

मैं—कपड़े का क्या हुआ?

मास्टर—जला डाला गया।

मैं—वहाँ और कौन कौन था?

मास्टर—बहुत से लोग थे, वे चिल्लाने लगे—वन्दे-मातरम्। वहाँ सन्दीप भी थे, उन्होंने मुट्ठी भर राख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठा कर कहा—भाइयो, विलायती माल के अन्त्येष्टि-सत्कार में तुम्हारे गाँव में पहली चिता की यह आग जली है—यह राख पवित्र है—यह राख शरीर में लगा कर मञ्चेस्टर के जाल को काट कर नागा फ़क़ीर होकर तुमको साधना करने के लिए निकलना होगा !

मैंने पाँचू से कहा—तुझे फ़ौजदारी मुक़द्दमा चलाना होगा।

पाँचू ने कहा—कोई गवाही नहीं देगा।

मैंने कहा—कोई गवाही नहीं देगा ?—सन्दीप ! सन्दीप !

सन्दीप मेरे मकान से मिले हुए मेरे ही एक मकान में रहता था। सन्दीप अपने घर से निकल कर मेरे पास आया, और बोला—क्यों, मामला क्या है ?

मैं—इस आदमी की कपड़ों की गठरी इसके ज़मींदार ने तुम्हारे सामने जलाई है, तुम गवाही न दोगे ?

सन्दीप—(हँस कर) दूँगा क्यों नहीं। किन्तु मैं तो उसके ज़मींदार का गवाह हूँ !

मैं—ज़मींदार का गवाह कैसा ! गवाह को तो सत्य की गवाही देनी चाहिए।

सन्दीप—जो घटना हुई है उसी को शायद तुम एक-मात्र सत्य समझते हो ?

मैंने पूछा—और सत्य क्या है ?

सन्दीप—जिसके होने की आवश्यकता है। जो सत्य हमें सम्पन्न करना होगा उस सत्य के लिए बहुत से झूठ की ज़रूरत है। जैसे माया के द्वारा इस जगत् की सृष्टि हुई है। पृथ्वी पर जो लोग सृष्टि करने आये हैं वे सत्य को मानते नहीं हैं, वे सत्य को बनाते हैं।

मैं—अतएव—

सन्दीप—अतएव तुम जिसे झूठी गवाही कहते हो, वही झूठी गवाही मैं दूँगा। जिन्होंने राज्य फैलाया है, साम्राज्य स्थापित किया है, समाज को बाँधा है, धर्म-सम्प्रदाय चलाया है, वे सब तुम्हारे बँधे हुए सत्य की अदालत में छाती फुला कर झूठी गवाही दे आये हैं। जो शासन करेंगे वे मिथ्या से नहीं डरते, जो शासन मानेंगे उन्हीं के लिए सत्य लोहे की शृङ्खला है। तुमने क्या इतिहास नहीं पढ़ा ? तुम क्या नहीं जानते, पृथ्वी के बड़े बड़े बावर्चीख़ानों में जहाँ राष्ट्रयज्ञ में पालिटिक्स की खिचड़ी तैयार होती है वहाँ मसाले का काम झूठ से लिया जाता है !

मैं—जगत् में बहुत सी खिचड़ियाँ पकाई गई हैं, इस समय—

सन्दीप—नहीं जी, तुम क्यों खिचड़ी पकाओगे, वे तुम्हारी गर्दन पकड़ कर तुमको खिचड़ी निगलावेंगे। वे वङ्ग-विभाग करेंगे और कहेंगे, यह तुम्हारे ही सुभीते के लिए किया जा रहा है। शिक्षा का द्वार हर तरह कस कर बन्द करते रहेंगे और कहेंगे, यह तुम्हारे ही आदर्श को अत्यन्त उच्च बनाने के अच्छे इरादे से किया जा रहा है—तुम साधु होकर आँसू बहाते रहो, हम असाधु हो कर मिथ्या के दुर्ग को दुर्गम और दृढ़ बनावेंगे—तुम्हारे आँसू टिकेंगे नहीं, किन्तु हमारा मिथ्या का दुर्ग टिका रहेगा।

मास्टर साहब ने मुझसे कहा—ये सब तर्क करने की बातें नहीं हैं। निखिल, हमारे भीतर और सब बातों के मूल में ही एक विराट् सत्य है—अपने हृदय से ही जो मनुष्य इस भाव को प्राप्त नहीं कर सकता वह किस तरह विश्वास करेगा कि उसी अन्तर्तम सत्य को सब आवरण हटाकर प्रकाशित करना ही मनुष्य का चरम लक्ष्य है—बाहर की चीज़ का ढेर लगा देना ही चरम लक्ष्य नहीं है।

सन्दीप हँस उठा, बोला—आपकी यह बात मास्टर साहब की ऐसी ही है ! ये बातें केवल किताबों के सफ़ों में ही देख पड़ती हैं—आँखों के द्वारा हमें यही देख पड़ता है कि बाहर की चीज़ को ढेर करना ही मनुष्य का चरम लक्ष्य हो रहा है। और उस लक्ष्य का साधन जिन्होंने बहुत बड़े ढङ्ग से किया है वही रोज़गार के विज्ञापन में नित्यप्रति बड़े बड़े अक्षरोंवाला झूठ बोलते हैं, वे राष्ट्रनीति के बड़े रजिस्टर में ख़ूब मोटे क़लम से जाली हिसाब लिखते हैं, उनके अख़बार झूठ से लदे हुए जहाज़ हो रहे हैं और मक्खियाँ जिस तरह सन्निपात के बुख़ार के बीजाणु इधर से उधर ले जाती हैं वैसे ही उनके धर्मप्रचारक लोग मिथ्या को फैलाते घूमते हैं। मैं उन्हीं का शिष्य हूँ। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब कांग्रेस के दल में था तब मैंने बाज़ार का ढङ्ग देख कर आध सेर सत्य में साढ़े पन्द्रह आने भर पानी मिलाने में कुछ भी लज्जा नहीं की। आज मैं उस दल से बाहर निकल आया हूँ। आज भी मैं इसी धर्मनीति को सारांश समझता हूँ कि सत्य मनुष्य का लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य है फल-लाभ।

मास्टर साहब ने कहा—सत्य ही फल-लाभ है।

सन्दीप ने कहा—परन्तु वह फ़सल मिथ्या के बीज से ही फलती है। पैरों के नीचे की ज़मीन खोद कर चूर चूर कर देने पर वह फ़सल फलती है। और जो सत्य है, जो आप ही पैदा होता है वह है घास, कँटीला पेड़। उससे जो लोग फल की आशा करते हैं उनका शुमार कीड़ों-पतङ्गों में है।

इतना कह कर सन्दीप तेज़ी से उठ कर चल दिया। मास्टर साहब ने ज़रा हँस कर मेरी ओर ताक कर कहा—जानते हो निखिल, सन्दीप अधर्मी नहीं है। वह विधर्मी है। वह अमावस का चांद है; चांद ही है, किन्तु दैवयोग से पूर्णिमा के पीछे जा पड़ा है।

मैंने कहा—इसी कारण सदा से उसके मत के साथ मेरा मत नहीं मिलता, किन्तु उसके प्रति मेरे स्वभाव का झुकाव है। उसने मेरी बहुत कुछ हानि की है, और भी करेगा, किन्तु उस पर मैं अश्रद्धा नहीं कर सकता।

मास्टर साहब ने कहा—सो मुझे क्रमशः मालूम पड़ रहा है। मैंने अक्सर अचम्भे में आकर अपने मन में सोचा है कि इतने दिनों तक तुमने सन्दीप को कैसे बर्दाश्त की। यहां तक कि कभी कभी मुझको यह सन्देह हुआ कि इस बारे में तुम्हारी कुछ कमज़ोरी है। इस समय देख पड़ रहा है, उसके साथ तुम्हारा भाव का मेल नहीं है, किन्तु छन्द का मेल है।

मैंने हँसी के तौर पर कहा—मित्र मित्र मिल कर अमित्राक्षर (तुकहीन = बेतुका) छन्द हुआ! शायद हमारे भाग्यकवि ने "पैराडाइसलास्ट" का ऐसा एक "एपिक" लिखने का संकल्प किया है।

मास्टर साहब ने कहा—अब पांचू के लिए क्या किया जाय?

मैंने कहा—आपने कहा था, पांचू के ज़मीन और घर के मौरूसी हक़ को उड़ा देने के लिए उसका ज़मींदार बड़ी चेष्टा कर रहा है—उसकी उस ज़मीन को मैं ख़रीद कर उसमें उसी को अपनी प्रजा बना कर बसा दूँगा।

मास्टर—और उस पर सौ रुपये का जुर्माना जो हुआ है?

मैंने कहा—वह जुर्माने का रुपया कहां से वसूल किया जायगा? ज़मीन तो मेरी हो जायगी।

मास्टर—और उसकी कपड़ों की गठरी?

मैंने कहा—मैं उसे और कपड़ा ख़रीदे देता हूँ। मेरी प्रजा होकर उसका जो जी चाहे करे—चाहे जैसा कपड़ा बेचे, देखें उसमें कौन बाधा डालता है?

पांचू ने हाथ जोड़ कर कहा—हुज़ूर, राजा राजा में लड़ाई है; पुलिस दारोग़ा से लेकर वकील-बैरिस्टर तक चील्ह-गिद्धों के झुंड जमा हो जायँगे; सभी तमाशा देखेंगे मगर मौत मेरी ही होगी।

मैंने कहा—क्यों, तेरा कौन क्या कर सकता है?

पांचू—मेरे घर में आग लगा दी जायगी—लड़के-बाले तक उसी में जला कर मार डाले जायँगे।

मास्टर साहब ने कहा—अच्छा, तेरे बाल-बच्चे कुछ दिन मेरे ही यहां रहेंगे, तू डर मत—अपने घर में बैठ कर मनमाना रोज़गार कर, तेरे शरीर में कोई भी हाथ न लगा सकेगा।

उसी दिन पांचू की ज़मीन ख़रीद कर रजिस्ट्री करा कर उस पर अपना दख़ल मैंने कर लिया। उसी के उपरान्त से कुचक्र चलने लगा।

पांचू की सब जायदाद उसके नाना की है। पांचू के सिवा उसका कोई वारिस न था, यही सब जानते थे। एकाएक न जाने कहां से उसकी एक मामी निकल पड़ी और घर-द्वार पर दावा करके अपनी पोटली, अपना पिटारा, हरिनामी माला की झोली और एक सयानी विधवा भतीजी को लेकर पांचू के घर में दाख़िल होगई।

पांचू देख कर सन्नाटे में आगया, बोला—मेरी मामी तो बहुत दिन हुए मर चुकी है।

इसका उत्तर मिला—पहली मामी मर चुकी है, मगर दूसरी मामी ज़िन्दा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँचू ने कहा--किन्तु मामी तो मामा के मरने के बहुत दिन बाद मरी है, दूसरे ब्याह की तो गुञ्जाइश ही न थी।

उस स्त्री ने स्वीकार किया कि दूसरा ब्याह पहली के मरने पर नहीं, जीते रहने पर ही किया गया था। उसने यह भी कहा कि सौत से लड़ाई-झगड़ा होने के ख़याल से मैं अपने मायके में ही रहती थी, स्वामी के मरने पर प्रबल वैराग्य के मारे वृन्दावन चली गई। ज़मींदार कुण्डू बाबू के अमलों में से किसी किसी को यह सब हाल मालूम है, शायद उनकी प्रजाओं में से भी कोई कोई जानता है। और ज़मींदार बाबू ज़ोर डालें तो ब्याह में जो बराती बन कर गये थे उनमें से भी कोई कोई उपस्थित हो सकता है।

उस दिन दोपहर को पाँचू के इसी गलग्रह के झगड़े में मैं व्यग्र था, इसी समय अन्तःपुर से विमला ने मुझको बुला भेजा।

मैं चौंक उठा। नौकर से पूछा--कौन बुलाता है ?

नौकर बोला--रानीजी।

मैं--बड़ी रानी ?

नौकर--नहीं, छोटी रानीजी।

छोटी रानी ? जान पड़ा, सैकड़ों बरसों से छोटी रानी ने मुझको नहीं बुलाया है।

बैठक में सबको बिठा कर मैं भीतर गया। सोने के कमरे में जाकर विमला को देख कर मैं और भी अचम्भे में आगया। मैंने देखा, उसके सब अङ्गों में, बहुत नहीं, मगर ख़ूबी से भरी हुई सजावट झलक रही है। कुछ दिनों से इस कमरे में भी सफ़ाई और सजावट मैंने नहीं देखी, सब सामान इस तरह अस्तव्यस्त पड़ा हुआ था कि जान पड़ता था मानो यह कमरा तक अन्यमनस्क हो रहा है। कमरे में भी आज पहले की ऐसी सजावट और सफ़ाई के लक्षण देख पड़े।

मैं कुछ न कह कर सामने खड़े होकर विमला के मुख की ओर देखने लगा। विमला का मुख कुछ लाल हो उठा। उसने दाहने हाथ से अपने बायें हाथ का कड़ा जल्दी जल्दी घुमाते हुए कहा--देखो सारे बङ्गाल भर में केवल इसी बाज़ार में विलायती कपड़ा आता और बिकता है, यह क्या अच्छा हो रहा है ?

मैंने पूछा--क्या किया जाय तो अच्छा हो ?

विमला--इन विलायती चीज़ों को वहाँ से हटा दे के लिए क्यों नहीं कहते ?

मैंने पूछा--चीज़ें तो मेरी हैं नहीं।

विमला--लेकिन बाज़ार तुम्हारा ही है।

मैंने पूछा--बाज़ार पर मेरी अपेक्षा उनका अधि दावा है जो उसमें चीज़ें ख़रीदने आते हैं।

विमला--वे देशी चीज़ें ख़रीदें न।

मैंने पूछा--अगर वे ख़रीदें तो मैं ख़ुश होऊँगा लेकिन अगर वे न ख़रीदें ?

विमला--यह कैसी बात है ? उनकी इतनी मजाल सकती है ? तुम चाहो--

मैंने पूछा--मुझे बहुत फ़ुरसत नहीं है, इस पर तर्क वितर्क करने से क्या होगा ? मैं अत्याचार न कर सकूँगा

विमला--अत्याचार तो तुम अपने लिए नहीं देश लिए करोगे।

मैंने पूछा--देश के लिए अत्याचार करना देश ऊपर ही अत्याचार करना है। इस बात को तुम न समझ सकतीं।

यह कह कर मैं चला आया। एकाएक मेरी आँखों आगे सारा जगत् मानो प्रकाशित हो उठा। मुझे अपने में ऐसा अनुभव हुआ, मानो मिट्टी की पृथ्वी का भार चल गया है--वह मानो अपने जीवपालन के सब काम को भी एक अद्भुत शक्ति के वेग से दिन-रात्रि को जयमाला तरह फिराते फिराते आकाश में दौड़ी चली जारही है कर्म के भार की सीमा नहीं है, साथ ही मुक्ति के वेग भी सीमा नहीं है ! कोई न बाँध रक्खेगा, कोई न अट रक्खेगा, किसी तरह न अटका रक्खेगा। अकस्मात् मन की गम्भीरता से एक महान् आनन्द ने उठ कर मा समुद्र के जल-स्तम्भ की तरह आकाश के मेघ को जा छू लिया।

अपने से आप बारम्बार मैंने पूछा--एकाएक तुम यह क्या हो गया ? पहले कुछ स्पष्ट उत्तर नहीं मि उसके उपरान्त साफ़ तौर पर जान पड़ा, कुछ दिनों जिस बन्धन ने दिन-रात मेरे मन को भीतर ही भीतर पीड़ा पहुँचाई है उसकी आज एक बड़ी भारी कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई पड़ गई। मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ा, मेरे मन में किसी तरह का मोह या आवेश न था। फोटोग्राफ़ के प्लेट में जिस तरह चित्र पड़ता है, मेरी दृष्टि में विमला का सब कुछ वैसे ही अङ्कित हो गया। मुझे स्पष्ट देख पड़ा, मुझसे मतलब निकालने के लिए—काम कराने के लिए विमला ने आज विशेषरूप से शृङ्गार किया है। आज से पहले तक मैंने कभी विमला को और विमला के शृङ्गार को अलग अलग नहीं देखा। आज उसके विलायती ढङ्ग के जूड़े की चूड़ा केवल केशों की कुण्डली ही देख पड़ी—केवल यही नहीं, एक दिन यह जूड़ा मेरे निकट अमूल्य था, आज देखता हूँ वह सस्ते मोलों बिकने के लिए तैयार है।

अपने सोने के कमरे के टूटे पिँजड़े के भीतर से जब उस हेमन्त-ऋतु की दोपहर के खुले प्रकाश में बाहर निकल आया तब पिड़कियों का एक झुंड मेरे बाग़ के पेड़ों के नीचे अकस्मात् न जाने किस कारण से भारी उत्तेजना के साथ किचमिच किचमिच करने लगा। बरामदे के सामने दक्षिण ओर कंकड़-पड़े रास्ते के दोनों तरफ़ क़तार की क़तार कचनार के पेड़ों ने बहुत से गुलाबी फूलों के रङ्ग और गन्ध से आकाश को अभिभूत कर रक्खा है। थोड़ी ही दूर पर पगडंडी के किनारे ख़ाली बैलगाड़ी आकाश की ओर टाँगें उठाये ज़मीन में मुँह डाले पड़ी है। उसी के खुले हुए दोनों बैलों में से एक घास चर रहा है और दूसरा घाम में पड़ा सो रहा है—उसकी पीठ के ऊपर एक कौआ ठोकर मार मार कर घाव से कीड़े निकाल रहा है। आज मुझे जान पड़ा, विश्व में यह जो कुछ ख़ूब सहज किन्तु अत्यन्त बृहत् है, मैं उसी की धड़क रही छाती के ख़ूब पास आकर लेटा हूँ, उसी की गर्म साँस इस कचनार के फूल की महक के साथ मिल कर मेरे हृदय पर आकर पड़ रही है। मुझे जान पड़ा, मैं हूँ और सभी कुछ है, इन दोनों के मेल से जो आकाश-व्यापी सङ्गीत उठ रहा है वह कैसा उदार है, कैसा गम्भीर है, कैसा अनिर्वचनीय सुन्दर है।

मेरा मोह दूर हो, मेरी आँखों का पर्दा हट जाय, मेरा पौरुष अन्तःपुर के स्वप्न के जाल में व्यर्थ हो कर उसी में उलझा पड़ा न रहे! हम पुरुष हैं, मुक्ति ही हमारी साधना है। आइडियल की आवाज़ सुन कर हम सामने की ओर दौड़े चले जायँगे। दैत्यपुरी की दीवार फाँद कर हमें बन्दी-भाव से अवस्थित लक्ष्मी का उद्धार करना होगा—उन्हें अपने यहाँ लाना होगा। जो स्त्री अपने निपुण हाथों से हमारी उसी यात्रा की जयपताका तैयार करके दे रही है वही हमारी सहधर्मिणी है। और, घर के कोने में जो हमारे लिए मायाजाल बुन रही है, उसके छद्मवेष को छिन्न भिन्न करके उसके मोह-मुक्त सत्य का परिचय हम पावें! उसे अपनी ही कामना के रस और रङ्ग से अप्सरा बना कर अपनी तपस्या को भङ्ग करने के लिए न भेजें। आज मुझे जान पड़ रहा है, मेरी जय होगी—मैं सहज के मार्ग में खड़ा हुआ हूँ, सहज दृष्टि से सब देख रहा हूँ—मैंने मुक्ति पाई है, मैंने मुक्ति दी, जहाँ मेरा काम है वहीं मेरा उद्धार है।

सन्दीप की आत्म-कथा।

उस दिन आँसुओं की वर्षा होते होते रह गई। मुझे विमला ने बुला भेजा, किन्तु कुछ देर तक उसके मुख से बात नहीं निकली, उसकी दोनों आँखें डबडबा आईं। मैं समझ गया, निखिल के पास जाने से कुछ फल नहीं हुआ। जिस तरह हो, वह कुछ करवा ही लेगी, यह अहङ्कार उसके मन में था, किन्तु यह आशा मेरे मन में न थी। मर्द जहाँ कमज़ोर हैं, वहाँ औरतें उन्हें बहुत अच्छी तरह पहचानती ही हैं, किन्तु मर्द जहाँ पर खरा मर्द है, वहाँ के रहस्य को औरतें ठीक ठीक नहीं समझ सकतीं। असल बात यह है कि मर्द औरतों के निकट एक रहस्य हैं और औरतें मर्दों के निकट एक रहस्य हैं। यदि यही न होता तो इन दोनों जातियों का भेद प्रकृति का एक अत्यन्त अपव्यय समझा जाता।

अभिमान है! जिसकी ज़रूरत थी वह क्यों नहीं हुआ, इसका ख़याल मन में नहीं है, किन्तु, मैंने जो मुँह-फोड़ कर माँगा वह क्यों नहीं पूरा हुआ—यही खेद है। स्त्रियाँ इसी अपने 'मैं' के दावे पर कितने ही रङ्ग बदलती हैं, आकार बनाती हैं, रोती-धोती हैं, छल-कौशल करती हैं, हाव-भाव दिखाती हैं। इन्हीं बातों में तो उनका माधुर्य है। वे हम लोगों की अपेक्षा अधिक व्यक्ति-विशेष (ख़ास ख़ास तरह की) हैं। हम लोगों को जब विधाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने बनाया था तब वे थे स्कूलमास्टर, उस समय उनकी झोली में थीं पोथियाँ और तत्त्व; और औरतों की सृष्टि करने के समय मास्टरी छोड़ कर वे आर्टिस्ट हुए, उस समय उनके पास थी कूँची और रङ्ग का बक्स !

इसी से उस आँसुओं से भरे अभिमान की ललाई में जब विमला सूर्यास्त की दिगन्त रेखा में एक जल-भरे अग्नि-पूर्ण लाल मेघ की तरह चुपचाप खड़ी रही तब मुझे वह बहुत ही मधुर देख पड़ी। मैंने बिलकुल पास जाकर उसका हाथ पकड़ लिया, उसने हाथ छुड़ा नहीं लिया, थर थर करके काँपने लगी। मैंने कहा—मक्खी-रानी, हम दोनों सहयोगी हैं, हमारा लक्ष्य एक है। तुम बैठो।

यह कह कर मैंने विमला को एक कुर्सी पर बिठा दिया। आश्चर्य है ! इतना वेग केवल इतने ही में आकर रुक गया ! बरसात की जो पद्मा (बंगाल की एक नदी) तोड़ करती बहाती गरजती चली आ रही थी, जान पड़ता था—सामने कुछ भी न रक्खेगी, वह एकाएक एक जगह पर मानो बिना कारण के अपने बहाव की सीधी लाइन को छोड़ कर एक-दम इस पार से उस पार चली गई। उसकी तह में कहाँ पर कौन बाधा लुकी हुई थी सो वह मकरवाहिनी ख़ुद भी नहीं जानती थी। मैंने विमला का हाथ पकड़ लिया, मेरी देह-वीणा के छोटे बड़े सब तार झनकार उठे, किन्तु इस आस्ताई में ही वह झनकार क्यों रुक गई, अन्तर तक क्यों नहीं पहुँची ? मुझे जान पड़ा, भीतर कुछ सङ्कोच कहीं रह गया है; वह क्या है ? वह कोई एक वस्तु नहीं है, वह अनेक का समूह है। इसी कारण उसके चेहरे को अच्छी तरह पहचान नहीं सकता; शायद यही केवल एक बाधा है। इसी से शायद, मैं असल में जो हूँ वह अदालत की गवाही के द्वारा पक्की दलील से कभी प्रमाणित न होगा। मैं अपने निकट आप रहस्य हूँ, इसी कारण अपने ऊपर ऐसा प्रबल आकर्षण है—उसे आदि से अन्त तक सम्पूर्ण रूप से पहचान लेता तो उसे उखाड़ फेंक कर एक-दम तुरीय अवस्था हो जाती।

कुर्सी पर बैठने पर देखते-देखते विमला का चेहरा एक-दम फीका हो गया। अपने मन में उसने समझा, उसकी एक 'अल्प' कट गई। धूमकेतु तो पास से सन चला गया, किन्तु उसकी अग्निमयी पूँछ के धक्के विमला का शरीर और मन कुछ दम के लिए जैसे अ होगया। इस अवस्था को दूर करने के लिए कहा—बाधा है, किन्तु उसके लिए हम खेद नहीं को भिड़ेंगे ! क्या कहती हो रानी ?

विमला ने ज़रा खाँस कर अपने रुँधे हुए गले साफ़ करके केवल कहा—हाँ।

मैंने कहा—किस तरह काम शुरू करना हो इसका प्लैन ज़रा स्पष्ट करके ठीक कर लेना चाहिए।

इतना कह कर जेब से काग़ज़-पेंसिल निकाल मैं लिखने बैठा। कलकत्ते से हमारे देश के जो ल आगये हैं उनमें किस तरह काम बाँटना होगा, इस आलोचना करने लगा—इसी समय एकाएक बीच विमला बोल उठी—अभी रहने दो सन्दीप बाबू, प बजे आऊँगी, उस समय सब बातचीत होगी। इ कह कर वह जल्दी से उठ कर चली गई।

मैंने समझा, इतनी देर तक चेष्टा करके भी किसी त विमला मेरी बातों पर ध्यान नहीं दे सकती थी। इस स कुछ देर तक अपने मन के साथ उसके अकेले रहने आवश्यकता है। शायद बिछौने पर लेट कर रोना हो

विमला के चले जाने पर उस कमरे के भीतर हवा जैसे और भी अधिक मस्त हो उठी। सूर्य अस्त के दमभर बाद जैसे आकाश के मेघ तरह तरह के से रङ्गीन हो उठते हैं, वैसे ही विमला के चले जाने बाद मेरे मन में भी तरह तरह के रङ्ग चढ़ने ल जान पड़ने लगा, ठीक समय को मैंने निकल जाने दि यह कैसा कायरपना है ! मेरी इस अद्भुत दुबधा को कर विमला जान पड़ता है, मेरी अवज्ञा करके ही गई ! अवज्ञा कर भी सकती है।

इसी नशे के आवेश में जिस समय रक्त में प्रकार की सनसनाहट फैली हुई थी, इसी समय ने आकर ख़बर दी कि अमूल्य मुझसे मुलाक़ात चाहता है। मेरा जी चाहा कि इस समय मैं उसे कर दूँ—किन्तु मेरे सँभल कर बैठने के पहले वह में घुस आया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके उपरान्त नोन, चीनी, कपड़े की लड़ाई की ख़बर छिड़ गई । तब घर की हवा का वह मतवालापन जाता रहा । जान पड़ा, स्वप्न देखने से जग उठा । कमर कस कर खड़ा हो गया । उसके उपरान्त चलो रणक्षेत्र में ! हर हर बम बम !

ख़बर यह थी कि ज़मींदार कुण्डू बाबू के जो आसामी माल लाते हैं वे क़ाबू में आगये । निखिल के यहाँ के अमलों में से प्रायः सभी गुप्त रूप से हमारे दल में शामिल हैं । वे भीतर ही भीतर हमें उत्साहित कर रहे हैं ! माड़वारी लोग कहते हैं—हमसे कुछ दण्ड लेकर विलायती कपड़े बेचने दीजिए, नहीं हम कहीं के न रहेंगे । मुसलमान लोग किसी तरह राज़ी नहीं होते ।

एक किसान अपने लड़के-लड़कियों के लिए सस्ते दाम की जर्मनी शाल लिये जा रहा था, हमारे दल के इस गाँव के एक लड़के ने वे शाल उससे छीन कर जला दिये हैं । इसी बात को लेकर गड़बड़ मची हुई है । हम उससे कहते हैं—हम तुझे देशी गर्म कपड़े ख़रीदे देते हैं । किन्तु सस्ते दाम के देशी गर्म कपड़े कहाँ हैं ? रङ्गीन कपड़े तो देख ही नहीं पड़ते । और कश्मीर के शाल तो उसे ख़रीद कर दे नहीं सकते । वह किसान निखिल के पास जाकर रोने लगा । निखिल ने उस लड़के के नाम नालिश करने का हुक्म दिया है । निखिल के अमलों ने हमसे यह वादा किया है कि नालिश की कारवाई ठीक न होने का ज़िम्मा वे लेते हैं, यहाँ तक कि निखिल का मुख़्तार हमारे दल में है ।

अब प्रश्न यह है कि जिसका कपड़ा जलावेंगे उसके लिए अगर देशी कपड़े ख़रीद देने होंगे, उसके बाद फिर मुक़द्दमा चलेगा तो उसके लिए रुपये कहाँ हैं ? और इस तरह जलाने से विलायती कपड़े की बिक्री और भी अधिक होने लगेगी । नवाब जब बिल्लौरी झाड़ तोड़ने के शब्द से मुग्ध होकर घर घर झाड़ तोड़ते घूमते थे तब झाड़वालों के रोज़गार की ख़ूब उन्नति हुई थी ।

दूसरा प्रश्न यह है कि सस्ता और देशी कपड़ा बाज़ार में नहीं है । शीत के दिन आगये हैं । अब विलायती शाल, रैपर, मेरिनो आदि को बिकने दें या बाज़ार से निकाल बाहर करें ?

मैंने कहा—जो कोई विलायती कपड़ा ख़रीदे उसे देशी कपड़े देना सर्वथा असम्भव और अयोग्य है । दण्ड उसी को होना चाहिए, हमें नहीं । जो लोग मुक़द्दमा चलाने को खड़े होंगे उनके खलिहानों में आग लगा देंगे, पीठ सहलाने से काम न चलेगा । किसान के खलिहान में आग लगा कर रोशनी करने का हमें शौक़ नहीं है । किन्तु यह है युद्ध । दुःख पहुँचाने में अगर डरते हो तो, मधुर रस में ग़ोता लगाओ, राधा-भाव में मग्न होकर 'क' कहते ही ज़मीन पर लोट जाओ ।

और विलायती गर्म कपड़े ? चाहे जितनी असुविधा हो, उनका प्रचार किसी तरह न होने पावेगा । विलायती के साथ किसी भी कारण कहीं समझौता न हो सकेगा । विलायती रङ्गीन रैपर जब न थे तब किसानों के लड़के सिर पर से दुलाई लपेट कर जाड़ा बिताते थे; इस समय भी वही करेंगे । मैं जानता हूँ, इससे उनका शौक़ पूरा न होगा, पर शौक़ पूरा करने का समय अभी नहीं है ।

बाज़ार में जो लोग नावें लाते हैं उनमें से बहुत से छल से बल से क़ाबू होने की राह में कुछ कुछ लाये जा सके हैं । उनमें सबका मुखिया है मीरजान । वह किसी तरह नर्म नहीं होता । यहाँ के नायब कुलदाचरण से पूछा गया कि उसकी नाव को वह डुबा दे सकता है कि नहीं ? उसने कहा—यह क्या कठिन है, डुबा सकता हूँ; किन्तु अन्त को उसकी ज़िम्मेदारी मेरे सिर तो न आ पड़ेगी ? मैंने कहा—ज़िम्मेदारी किसी एक के सिर न पड़नी चाहिए, और अगर ऐसा ही मौक़ा आ पड़ेगा तो सब ज़िम्मेदारी अपने सिर ले लूँगा ।

बाज़ार हो जाने पर मीरजान की ख़ाली नाव घाट पर बँधी हुई थी । कोई और मल्लाह भी न था । नायब ने कौशल करके एक जगह नाच में उन सबको बुलवा लिया था । उसी रात को नाव खोल कर प्रवाह के बीच ले जाकर उसमें छेद करके, बालू के बोरे भर कर, डुबा दी गई ।

मीरजान सब समझ गया । वह मेरे पास आकर रोते रोते हाथ जोड़ कर बोला—हुज़ूर गुस्ताख़ी हुई थी, अब—

मैंने कहा—अब यह बात इस तरह स्पष्टरूप से कैसे समझ में आगई ?

इसका जवाब न देकर उसने कहा—उस नाव के दाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो हज़ार रुपये से कम न होंगे, हुज़ूर ! अब मेरे होश ठिकाने हो गये—अब की दफ़ा मेरा क़सूर माफ़ कर दीजिए तो—

कह कर उसने मेरे दोनों पैर पकड़ लिये। मैंने उससे कहा कि दस दिन बाद मेरे पास आना। इस आदमी को अगर इस समय दो हज़ार रुपये दिये जायँ तो इसे गोया मोल ले लिया जाय। इसी के ऐसे आदमी को दल में मिलाने से काम हो सकता है। कुछ अधिक रुपयों का प्रबन्ध किये बिना कुछ फल न होगा।

तीसरे पहर विमला के बैठक में आते ही कुर्सी से उठ कर मैंने उससे कहा—रानी, सब काम बन आया है, कुछ देर नहीं है, अब रुपये की ज़रूरत है ?

विमला ने कहा—रुपये ? कितने रुपये ?

मैंने कहा—बहुत अधिक नहीं, किन्तु चाहे जहाँ से हो रुपये चाहिए।

विमला ने कहा—कितने चाहिए, बताइए तो !

मैंने कहा—अभी सिर्फ़ पचास हज़ार।

रुपयों की संख्या सुन कर विमला मन ही मन चौंक उठी, किन्तु बाहर से उसे छिपा गई। बार बार वह कैसे कहे कि मुझसे न हो सकेगा।

मैंने कहा—रानी, तुम असम्भव को सम्भव कर सकती हो ! किया भी है। क्या किया है, सो अगर दिखा सकता तो देखतीं। किन्तु यह इसका समय नहीं है; एक दिन शायद समय आवेगा। इस समय रुपये चाहिए।

विमला ने कहा—दूँगी।

मैंने समझा, विमला ने अपने मन में ठीक कर लिया है कि अपना ज़ेवर बेच कर देगी। मैंने कहा—तुमको अपना गहना इस समय अपने हाथ में रखना चाहिए मालूम नहीं, कब क्या ज़रूरत आ पड़े।

विमला मेरे मुख की ओर ताकती रही।

मैंने कहा—यह रुपया तुमको अपने स्वामी के रुपये से लाना होगा।

विमला और भी स्तम्भित होगई। दम भर बाद उसने कहा—उनके रुपये मैं किस तरह लाऊँगी ?

मैंने कहा—उनके रुपयों में क्या तुम्हारा दावा नहीं है ?

उसने खब अभिमान के साथ कहा—नहीं !

मैंने कहा—तो वे रुपये निखिल के भी नहीं हैं। वे रुपये देश के हैं। देश को जब ज़रूरत है तब वे रुपये निखिल ने देश से चुरा कर रक्खे हैं, यह मानना होगा।

विमला ने कहा—मैं वे रुपये पा किस तरह सकती हूँ ?

मैंने कहा—चाहे जिस तरह हो। तुम यह काम कर सकती हो। जिसके रुपये हैं उसके पास तुम उन्हें ले दोगी। वन्दे मातरम्, इस मन्त्र से आज लोहे का सन्दूक खुल जायगा, ख़ज़ाने की दीवार टूट जायगी, और ये लोग धर्म का नाम लेकर उस महाशक्ति को नहीं मार उनका हृदय विदीर्ण हो जायगा ! मक्खीरानी, बोलो वन्दे मातरम् !

विमला—वन्दे मातरम् !

हम पुरुष हैं, हम राजा हैं, हम मालगुज़ारी लेंगे जब हम पृथ्वी पर आये हैं तब से इसे लूटा है। हम जितना ही पृथ्वी पर दावा किया है उतना ही वह हम क़ाबू में आई है। हम मर्दों ने आदि काल से फल तो हैं, पेड़ काटे हैं, मिट्टी खोदी है, पशुओं को मारा है पक्षियों को मारा है, मछलियों को मारा है। समुद्र तह से, मिट्टी के नीचे से, मृत्यु के मुख से लेना, लेना हम केवल लेते ही आये हैं—हम वही मर्द की जाति हैं विधाता के ख़ज़ाने में किसी लोहे के सन्दूक़ को हम छोड़ा नहीं—हमने तोड़ा है और निकाला है।

इस मर्दों के दावे को पूरा करना ही पृथ्वी का आन है। दिन-रात उस अनन्त दावे को पूरा करते ही का पृथ्वी उपजाऊ हुई है, शोभित हुई है, सार्थक हुई है, तो जङ्गलों में छिपी रह कर वह आप ही अपने को जान सकती थी। नहीं तो उसके हृदय के सभी द्वार रहते, उसकी खानों के हीरे खानों में ही रह जाते, उस सीपों के मोती प्रकाश में बाहर न निकलते।

हम मर्दों ने केवल अपने दावे के ज़ोर से ही स्त्रियों आज उद्घाटित कर दिया है। केवल हमारे निकट को देते देते ही क्रमशः उन्होंने अपने को बड़ा करके और करके पाया है। उन्होंने अपने सारे सुख के हीरे और के मोती हमारे राजकोष में जमा किये हैं, इसी से उन पता लगा है। इस तरह मर्द के लिए लेना ही है यथार्थ दान, और स्त्रियों के लिए देना ही है यथार्थ लाभ।

विमला के आगे मैंने खूब ही लम्बी-चौड़ी हाँक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन का धर्म ही है, नाहक़ अपने साथ झगड़ा करना, इसी से पहले कुछ खटका सा मालूम हुआ। जान पड़ा, यह मेरा व्याख्यान बहुत ही कठिन हुआ। एक बार सोचा, विमला को बुला कर कहूँ—नहीं, तुम इन झञ्झटों में न पड़ो, तुम्हारे जीवन में क्यों ऐसी अशान्ति उपस्थित करूँ? दम-भर के लिए मैं भूल गया कि पुरुषों की जाति इसी लिए तो सकर्म्मक है, हम अकर्मक लोगों में झञ्झट खड़ा करके अशान्ति उपस्थित करके उनके अस्तित्व को सार्थक करेंगे! हम आज तक औरतों को अगर रुलाते न आते तो उनके दुःख के ऐश्वर्यभाण्डार का दरवाज़ा बन्द ही रहता। त्रिभुवन को रुला कर धन्य बनाने के लिए ही मर्द हैं! नहीं तो उनके हाथ ऐसे सबल और उनकी मुट्ठी ऐसी कड़ी क्यों होती?

विमला का अन्तरात्मा चाहता है कि मैं सन्दीप उसके निकट कोई बड़ी बात चाहूँ—उसे मरने के लिए बुलाऊँ। यह न होता तो वह ख़ुश क्यों होती? इतने दिनों तक उसे अच्छी तरह रोने को नहीं मिला, इसी से तो वह मेरी राह देख रही थी। इतने दिनों तक वह केवल सुख में थी, इसी से तो मुझे देखते ही उसके हृदयाकाश में दुःख की नई वर्षा एक-दम काली घटा की तरह घनी हो आई। मैं यदि दया करके उसके रोने को रोकना चाहूँ तो जगत् में मेरी ज़रूरत ही क्या थी!

असल में, मेरे मन में जो कुछ खटका लगा था उसका प्रधान कारण रुपयों का माँगना था। रुपया-पैसा मर्दों की चीज़ है। उसे माँगने में एक प्रकार का भिक्षा का भाव आ जाता है। इसी कारण मुझे रुपयों की संख्या बढ़ानी पड़ी। एक-दो हज़ार में तो बिलकुल ही चोरी की गन्ध रहती है, किन्तु पचास हज़ार का शुमार डकैती में है।

इसके सिवा मुझे खूब धनी होना चाहिए था। इतने दिनों तक केवल रुपये के अभाव से मेरी अनेक इच्छायें पग पग पर रुक गई हैं, यह बात, और चाहे जिस किसी को सोहती हो, पर मुझे किसी तरह नहीं सोहती। मेरे भाग्य के लिए यह अन्याय अगर होता तो उसे मैं माफ़ कर देता, किन्तु यह ठहरा रुचिविरुद्ध, इस कारण अमार्जनीय है। मकान का किराया चुकाने के लिए हर महीने सिर पर हाथ रख कर सोचना और रेल में यात्रा करने के समय बहुत सोच-विचार कर ड्योढ़े दर्जे का टिकट ख़रीदना मुझ ऐसे मनुष्य के लिए दुःख की नहीं, हँसी की बात है। मैं अच्छी तरह देख रहा हूँ कि निखिल ऐसे मनुष्य के लिए पैत्रिक सम्पत्ति का होना अनावश्यक और व्यर्थ है। वह अगर ग़रीब होता तो कुछ अशोभित न जान पड़ता। तो वह अनायास अकिञ्चनता की छकड़ा गाड़ी में अपने चन्द्र-मास्टर का जोड़ीदार हो सकता।

मैं अपने जीवन में कम से कम एक बार पचास हज़ार रुपये हाथ में ले कर अपने आराम और देश के प्रयोजन के लिए दो दिन में उसे उड़ा देना चाहता हूँ। मैं अमीर हूँ, अपने इस ग़रीबी के नक़ली वेश को दो दिन के लिए भी दूर करके एक बार आईने में अपने को देख लूँ—यही एक शौक़ मुझे है।

किन्तु मुझे यह विश्वास नहीं होता कि विमला सहज में पचास हज़ार का पता कहीं पा सकेगी। शायद अन्त को वही दो-चार हज़ार हाथ लगेंगे। वही सही। किसी ने कहा है—अर्द्धं त्यजति पण्डितः, किन्तु जब अपनी इच्छा से नहीं है तब अभागा पण्डित बारह आने, यहाँ तक कि पन्द्रह आने भी त्यजति।

यहीं तक लिखा है, ये मेरी ख़ास बातें हैं। इन बातों को अवकाश के समय और भी ख़ुलासा करके लिखा जायगा। इस समय अवकाश नहीं है। यहाँ के नायब ने बुला भेजा है, इस समय उसके पास जाना चाहिए। सुना है, कुछ गड़बड़ हो गई है।

* * * *

नायब ने कहा—जिस आदमी के हाथों नाव डुबाई गई थी उस पर पुलिस ने सन्देह किया है। वह आदमी पुराना दाग़ी है—उसे पकड़ कर पुलिस कबुलवाने का प्रयत्न कर रही है। आदमी उस्ताद है, उससे कुछ मालूम करना पुलिस के लिए कठिन होगा। किन्तु कहा क्या जाय! ख़ास कर निखिल बहुत ही बिगड़ा हुआ है, नायब स्पष्टरूप से कुछ कर न सकेगा। नायब ने मुझसे कहा—देखिए, अगर मुझ पर कुछ मुसीबत आवेगी तो मैं आपको भी न छोड़ूँगा।—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने कहा—मुझे फँसाने का फन्दा कहाँ पाओगे ?

नायब ने कहा—इस ख़याल में न रहिएगा, आपकी लिखी एक, और अमूल्य बाबू की लिखी तीन चिट्ठियाँ मेरे पास हैं।

अब समझ में आ रहा है कि नायब का चिट्ठी लिख कर उसका जवाब मुझसे मँगाना इसी कारण से ज़रूरी था—उसका और कोई प्रयोजन न था। ये सब चालें नई सीखने में आ रही हैं।

अब समस्या यह है कि पुलिस को घूस देने के लिए चाहिए; और अगर मामला और भी तूल पकड़ गया तो जिसकी नाव डुबाई गई है उसका नुक़सान पूरा करके उससे भी राज़ीनामा लिखाना होगा। मैं ख़ूब समझ रहा हूँ, यह जो जालों का बेड़ा डाला गया है इसके मुनाफ़े की एक बड़ी रक़म नायब के हिस्से में भी पड़ेगी। किन्तु वह बात मन में दबाये रखने के सिवा और कोई उपाय नहीं। मुख से मैं भी कहता हूँ—वन्दे मातरम्, और वह भी कहता है—वन्दे मातरम्।

ऐसे मामलों में जिस सामग्री से काम चलाना होता है उसका छिद्र बड़ा है; जितना पदार्थ टिका रहता है उसकी अपेक्षा बहुत अधिक गिर जाता है। धर्मबुद्धि गुप्तरूप से अस्थि-मज्जागत हो रही है, इसी कारण नायब के ऊपर पहले बड़ा क्रोध हुआ, और ज़रा होता तो देश के लोगों के कपटपूर्ण आचरण के सम्बन्ध में ख़ूब कड़ी बातें इस डायरी में मैं लिखने बैठा था। किन्तु भगवान् यदि हों तो उनके निकट इतनी कृतज्ञता मुझे स्वीकार करनी ही होगी कि उन्होंने मेरी बुद्धि को साफ़ कर दिया है—अपने भीतर या अपने बाहर कुछ भी अस्पष्ट नहीं रह सकता। और चाहे जिसे धोखा दूँ पर अपने को कभी धोखा नहीं दिया, इसी कारण अधिक देर तक क्रोध नहीं टिक सका। जो सत्य है वह अच्छा भी नहीं है, बुरा भी नहीं है, वह सत्य है, यही हुआ विज्ञान। मिट्टी जितना जल सोख लेती है उसके अलावा जो जल रहता है उसी से जलाशय होता है। वन्दे मातरम् की नीचे की तह की मिट्टी कुछ जल सोखे ही गी—वह जल मैं भी सोखूँगा और नायब भी सोखेगा—उसके बाद भी जो रह जायगा वही हुआ वन्दे मातरम्। इसे कपट का आचरण कह कर गाली दे सकता हूँ, किन्तु यह सत्य है, इसे मानना ही होगा। पृथ्वी के सब बड़े कामों के नीचे एक तह जमती है जो केवल कीचड़ होती है; महासमुद्र के नीचे भी वह है।

इसी से बड़े काम करने के समय इस कीचड़ के दावे का हिसाब भी कर लेना चाहिए। अतएव नायब कुछ लेगा, और मुझे भी कुछ ज़रूरत है, वह ज़रूरत बड़ी भारी ज़रूरत के अन्तर्गत है। क्योंकि केवल घोड़ा ही दाना न खायगा, पहिये में भी कुछ तेल देना होगा।

चाहे जो हो, रुपये चाहिए। पचास हज़ार की राह देखने से काम न चलेगा। इस समय जो मिले वही वसूल करना होगा। मैं जानता हूँ, ये सब ज़रूरतें जब ताक़ीद करती हैं तब राह देखने से काम नहीं चलता। आज के पाँच हज़ार परसों के पचास हज़ार से लाख दर्जे अच्छे। ज़रूरतें तो आज हैं,—घड़ी भर में घड़ी जले और ढाई घड़ी भद्रा है। मैं तो यही निखिलेश से कहता हूँ कि जो लोग त्याग की राह पर चलते हैं उन्हें लोभ का दमन करना ही नहीं पड़ता; जो लोग लोभ के मार्ग में चलते हैं उन्हीं को पग पग पर लोभ का त्याग करना पड़ता है। पचास हज़ार को मैंने छोड़ा, लेकिन निखिल के मास्टर चन्द्र बाबू को इतनी रक़म छोड़ने का अवसर ही नहीं।

छः शत्रु हैं, उनमें पहले के दो और पीछे के दो मर्दों के हैं और बीच के दोनों नामर्दों के हैं। कामना करेंगे, किन्तु लोभ न होगा, मोह न होगा। तब तो फिर कामना मिट्टी होगई। अतीत और भविष्य के आधार पर ही मोह की स्थिति होती है। वर्तमान को राह भुलाने के उस्ताद हैं भूत और भविष्य। इस समय जिसकी ज़रूरत है उसमें जो लोग मन नहीं लगा सकते, जो लोग अन्य समय की वंशी सुन रहे हैं, वे विरहिणी शकुन्तला की तरह हैं पास ही अतिथि की पुकार को वे मुग्ध होने के कारण सुन नहीं पाते। इसी शाप से जिस दूर के अतिथि को वे मुग्ध होकर चाहते हैं उसे हाथ से गँवा देते हैं। जो लोग कामना के तपस्वी हैं उन्हीं के लिए मोह मुद्गर है। का तव कान्ता कस्ते पुत्रः।

उस दिन मैंने विमला का हाथ पकड़ लिया था, उसके आन्दोलन का बाजा उसके मन में बज रहा है। मेरे मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भी उसकी झनकार अभी तक हो रही है। इस झनकार को ताज़ा बनाये रखना होगा। इसी को बार बार अभ्यस्त करके यदि मैं सहज कर दूँ तो इस समय जो गान के ऊपर से चल रहा है वह तर्क पर पहुँच जायगा। इस समय मेरी किसी बात में विमला 'क्यों' पूछने का अवकाश नहीं पाती। जिन मनुष्यों को मोह पदार्थ की ज़रूरत है उनका रातिब बन्द कर देने से क्या होगा? इस समय मुझे बहुत से काम हैं—अतएव अभी रस के प्याले के ऊपर तक ही रहने देना उचित होगा, तह तक जाने से गड़बड़ मच जायगी। जब उसका समय आवेगा तब उसका भी अनादर न करूँगा। हे कामी, लोभ को त्याग करो, और मोह को उस्ताद के हाथ के सितार की तरह अच्छी तरह अपने क़ाबू में करके उसके महीन तार में मींड़ लगाते रहो।

इधर काम ख़ूब बढ़ गया है। हमारा दल गुप्तरूप से फैल गया है। भाई भाई कह कर बहुत गला फाड़ कर अन्त को यह समझ में आया है कि पीठ पर हाथ फेर कर किसी तरह मुसलमान अपने दल में मिलाये न जा सकेंगे। उनको एक-दम नीचे दबा देना होगा, उनको यह जता देना चाहिए कि शक्ति हमारे ही हाथों में है। आज वे हमारी पुकार पर ध्यान नहीं देते, दांत निकाल कर गुर्रा उठते हैं, एक दिन उन्हें भालू का नाच नचावेंगे।

निखिल कहता है—भारतवर्ष यदि कोई सच्चा पदार्थ है तो उसमें मुसलमानों का भी स्थान है।

मैं कहता हूँ—यह हो सकता है, किन्तु उनका स्थान कहाँ है सो जानना चाहिए और उसी जगह ज़ोर के साथ उन्हें बिठा देना होगा। नहीं तो वे विरोध करेंगे ही।

निखिल कहता है—विरोध बढ़ा कर तुम विरोध को मिटाना चाहते हो?

मैं कहता हूँ—तुम्हारा प्लैन क्या है?

निखिल कहता है—विरोध मिटाने का केवल एक मार्ग है।

मैं जानता हूँ, अच्छे आदमी के लिखे उपन्यास की तरह निखिल के सभी तर्क अन्त को एक उपदेश का रूप धारण कर लेते हैं। आश्चर्य यही है कि इतने दिनों से इन उपदेशों की जाँच कर रहा है, किन्तु आज भी उन पर वह विश्वास करता है! इसी से तो मैं कहता हूँ कि निखिल एक-दम जन्म-स्कूल की पुस्तक है। गुण उसमें यही है कि वह खरा माल है। चाँद सौदागर की तरह उसने अवास्तव का शिवमन्त्र लिया है, वास्तव के सर्प के काटने को वह मरने पर भी मानना नहीं चाहता। मुश्किल यही है कि ऐसे लोगों के लेखे मरना अन्तिम प्रमाण नहीं है; वे आँख मूँद कर यह समझे बैठे हैं कि उसके बाद भी कुछ है।

बहुत दिनों से मेरे मन में एक प्लैन है; उसके अनुसार काम करने का यदि सुयोग पाऊँ तो देखते ही देखते सारे देश में आग लग जाय। देश को आँखों से देख पाये बिना हमारे देश के लोग नहीं जागेंगे। देश की एक देवी-प्रतिमा चाहिए। मेरे मित्रों को मेरी यह बात पसन्द आई थी। उन्होंने कहा—अच्छा, एक मूर्ति बना ली जाय। मैंने कहा—हमारे बनाने से काम न चलेगा। जो प्रतिमा चली आ रही है उसी को अपने देश की प्रतिमा बना लेना होगा। पूजा की राह हमारे देश में गहरी खोदी हुई है, उसी राह से अपनी भक्ति की धारा को देश की ओर ले आना होगा।

इसी बात को लेकर निखिल के साथ कुछ दिन पहले मेरा ख़ूब तर्क-वितर्क होगया है। निखिल ने कहा—जिस काम को सत्य कह कर उस पर श्रद्धा करते हैं उसको साधने के लिए मोह को अपने दल में खींचने से काम न चलेगा।

मैंने कहा—मिष्टान्नमितरे जनाः, मोह के बिना इतर लोगों का गुज़र ही नहीं होता; और पृथ्वी के बारह आने लोग इतर श्रेणी में हैं। उसी मोह की रक्षा करने के लिए सब देशों में देवता की सृष्टि हुई है—मनुष्य अपने को पहचानता है।

निखिल ने कहा—मोह को मिटाने के लिए ही देवता हैं। रखने के लिए अपदेवता हैं।

मैंने कहा—अच्छी बात है, अपदेवता ही सही, उसके बिना कार्य अग्रसर नहीं होता। दुःख का विषय यही है कि हमारे देश में मोह खड़ा ही है, उसको बराबर ख़ूराक देते हैं, मगर उससे काम नहीं लेते। यह देखो न, ब्राह्मण को भूदेव कहते हैं, उसके पैर छूते हैं, दान-दक्षिणा का भी शुमार नहीं है, किन्तु इतनी बड़ी तैयार चीज़ को वृथा नष्ट होने देते हैं, काम में नहीं लगाते। उनकी पूरी क्षमता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगर उनके हाथ में दी जाय तो उस क्षमता से आज हम असाध्य-साधन कर सकते हैं। क्योंकि पृथ्वी पर एक ऐसे जीवों का दल है जो पदतलचर हैं, उन्हीं की संख्या अधिक है। वे कोई भी काम नहीं कर सकते, अगर नित्य नियमित-रूप से चरण-रज न पावें—वह चरण-रज चाहे पीठ पर हो, चाहे सिर पर हो। इनसे काम कराने के लिए मोह एक बड़ी भारी शक्ति है! अपनी अस्त्रशाला में बहुत दिनों से हम उस शक्ति की सेल पर सान देते आ रहे हैं। आज उसके चलाने का दिन आया है। आज क्या हम उसे अलग फेंक दे सकते हैं?

किन्तु निखिल को ये सब बातें समझाना बहुत कठिन है। सत्य जिसे कहते हैं वह केवल एक अन्ध-विश्वास की तरह बन गया है। मानो सत्य नाम का कोई एक विशेष पदार्थ है। मैंने उससे कितनी ही बार कहा है कि जहाँ मिथ्या सत्य है वहाँ मिथ्या ही सत्य है। हमारा देश इस बात को समझता था; इसी से यहाँ के शास्त्रकार बिना किसी सङ्कोच के कह गये हैं कि अज्ञानी के लिए मिथ्या ही सत्य है। उस मिथ्या से भ्रष्ट होते ही मनुष्य सत्य से भ्रष्ट हो जायगा। देश की प्रतिमा को जो लोग सत्य मान सकते हैं उनमें देश की प्रतिमा सत्य की ही तरह काम कर दिखावेगी। हमारा स्वभाव या संस्कार ऐसा है कि हम देश को सहज में नहीं मान सकते, किन्तु देश की प्रतिमा को अनायास मान सकते हैं। यह जब जानी बात है, तब जो लोग काम बनाना चाहते हैं उन्हें यह बात ध्यान में रख कर ही काम करना चाहिए।

मेरी ये बातें सुन कर एकाएक बहुत ही उत्तेजित हो निखिल बोल उठा—सत्य की साधना करने की शक्ति तुमने खो दी है, इसी से तुम एकाएक आकाश से एक बड़ा भारी फल पाना चाहते हो। इसी से सैकड़ों वर्षों से देश के सभी काम जिस समय बाक़ी पड़े हैं उस समय तुम देश को देवता बना कर वर पाने के लिए हाथ फैलाये बैठे हुए हो।

मैंने कहा—असाध्य साधन करना चाहिए, इसी कारण देश को देवता बनाना ज़रूरी है।

निखिल ने कहा—अर्थात् साध्य की साधना में तुम्हारा मन नहीं लगता। जो कुछ है सो सब ऐसा ही रहेगा, किन्तु उसका फल विचित्र होगा!

मैंने कहा—निखिल, तुम जो कह रहे हो वह उपदेश है। एक ख़ास अवस्था में उसकी ज़रूरत हो सकती है; किन्तु मनुष्य के जब दाँत निकलते हैं उस समय उपदेश की ज़रूरत नहीं। स्पष्ट ही आँखों के आगे देख रहा हूँ—किसी दिन जिसका बीज नहीं बोया वही फ़सल फटी पड़ती है—किसके ज़ोर से? आज देश को देवतारूप से अपने मन में देख पा रहा हूँ, इस कारण उसी को मूर्ति के द्वारा चिरन्तन बना डालना ही इस समय की प्रतिमा का कार्य है। प्रतिमा तर्क नहीं करती, सृष्टि करती है। आज देश यह सोच रहा है कि मैं उसे रूप दूँगा। मैं घर घर घोषणा करता घूमूँगा कि देवी ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिये हैं, वह पूजा माँगती है। हम ब्राह्मणों से जाकर कहेंगे कि देवी-पूजा के पुजारी तुम्हीं हो—वह पूजा बन्द होने के कारण ही तुम इस दशा में हो। तुम कहोगे, मैं झूँठ कहता हूँ। नहीं, यह सत्य है,—मेरे मुख से यह बात सुनने के लिए हमारे देश के लाखों लोग अपेक्षा कर रहे हैं, इसी कारण कहता हूँ कि यह बात सच है! अगर मैं अपनी वाणी का प्रचार कर सका तो तुम इसका विचित्र फल देखना!

निखिल ने कहा—मेरी आयु ही अब कितनी बाक़ी है! तुम जो फल देश को हाथों हाथ दोगे उसके बाद का भी कोई फल है, वह शायद इस समय देख में न पड़ेगा।

मैंने कहा—मैं आज का फल चाहता हूँ, वही फल मेरा है।

निखिल ने कहा—मैं कल का फल चाहता हूँ, वही फल सबका है!

असल बात यह है कि बङ्गाली जाति का जो एक बड़ा ऐश्वर्य है—कल्पनावृत्ति, वह शायद निखिल में थी, किन्तु बाहर से एक धर्म-वृत्ति के वनस्पति ने बढ़ कर जैसे उसको अपना थाला बना डाला था। भारतवर्ष में यह जो दुर्गा, जगद्धात्री की पूजा बङ्गालियों ने चलाई है उसमें ही उन्होंने अपना अद्भुत परिचय दिया है! मैं निश्चितरूप से कह सकता हूँ, यह देवी पोलिटिकल देवी है। मुसलमानों के शासन-काल में बङ्गालियों ने जिस देवी शक्ति के निकट से शत्रु-विजय के वर की कामना की थी उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवी की ये दोनों (दुर्गा, जगद्धात्री) दो तरह की मूर्त्तियां हैं । साधना का ऐसा विचित्र बाह्यरूप भारतवर्ष की और कौन जाति बना सकी है ।

निखिल की कल्पना की दिव्य दृष्टि बिलकुल ही अन्धी होगई है, इसी कारण वह अनायास मुझसे कह सका कि मुसलमानों के शासनकाल में चाहे मरहठे हों, चाहे सिख हों, उन्होंने अपने हाथ में अस्त्र को लेकर फल की कामना की है। बङ्गालियों ने अपनी देवी-मूर्त्ति के हाथ में अस्त्र देकर मन्त्र पढ़ कर फल की कामना की थी। किन्तु देश तो देवी नहीं है, इसी से बकरे-भैंसों के मुण्डपात के सिवा और कुछ फल नहीं हुआ। जिस दिन कल्याण के मार्ग में हम देश का काम करते रहेंगे उसी दिन जो देश से बड़े हैं, जो सत्य देवता हैं, वे सत्य फल देंगे।

मुश्किल यह है कि काग़ज़-क़लम के लिखने से निखिल की बातें अच्छी जँचती हैं—किन्तु मेरी बातें काग़ज़ में लिखने की नहीं हैं—लोहे के खन्ते से देश का हृदय चीर चीर कर लिखने की हैं। पण्डित जिस तरह छापे की स्याही से कृषितत्त्व लिखते हैं उस तरह नहीं, हलकी नोक से किसान जिस तरह ज़मीन के भीतर अपनी कामना अङ्कित कर देता है उस तरह।

विमला से जब मेरी मुलाक़ात हुई तब मैंने कहा—तुमको यदि मैं न देखता तो अपने समग्र देश को एक न देख पाता। यह बात मैं तुमसे कितनी ही दफ़ा कह चुका हूँ, मालूम नहीं, तुम मेरी बातों को ठीक समझ सकती हो या नहीं। यह बात समझाना बहुत कठिन है कि देवता देवलोक में अदृश्य रहते हैं, मनुष्य-लोक में ही वे दिखाई देते हैं।

विमला ने एक प्रकार से मेरी ओर देख कर कहा—तुम्हारी बातों को मैं खूब स्पष्टरूप से समझ चुकी हूँ। यही पहले पहल विमला ने आज मुझे "आप" न कह कर "तुम" कहा।

मैंने कहा—अर्जुन जिन कृष्ण को अपने साधारण सारथी के रूप से सदा देखते थे उनका भी एक विराट् रूप था, वह भी एक दिन अर्जुन ने देखा था;—उस समय उन्हें पूर्ण सत्य के दर्शन हुए थ। अपने समग्र देश में मैंने तुम्हारा वही विराट् रूप देखा है। तुम्हारे गले में गङ्गा और ब्रह्मपुत्र नद का सतलड़ा हार है। तुम्हारे उज्ज्वल श्याम नेत्रों की कजरारी पलकों को मैंने नदी के नील जल के बहुत दूर के किनारे की वन-रेखा में देखा है। कच्चे धान के खेतों के ऊपर तुम्हारी धूप-छाँह की रङ्गीन डोरिये की सारी लोट लोट जाती है। मुझे देख पड़ता है, तुम्हारा निष्ठुर तेज जेठ की उस धूप के समान है, जिसमें सारा आकाश मरु-भूमि के सिंह की तरह लाल जीभ निकाल कर हाः हाः करके सांसें लिया करता है! देवी ने जब अपने भक्त को ऐसे आश्चर्यरूप से दर्शन दिया है तब मैं उनकी पूजा का प्रचार सारे देश में करूँगा। तभी मेरे देश के लोगों की जान बचेगी।

"तोमार मूर्त्ति गड़ि मन्दिरे मन्दिरे!" (हर मन्दिर में तुम्हारी मूर्त्ति गढ़ कर बिठलावें) किन्तु इस बात को सबने स्पष्ट करके नहीं समझा। इसी से मेरा सङ्कल्प यह है कि सब देश को बुला कर अपनी देवी की मूर्त्ति को अपने हाथ से गढ़ कर इस तरह उसकी पूजा करूँगा कि कोई उस पर फिर अविश्वास न कर सकेगा। तुम मुझे वही वर दो, वही तेज दो!

विमला की आँखें बन्द हो आईं। वह जिस कुर्सी पर बैठी थी उस कुर्सी के साथ वैसी ही अचल होकर पत्थर की मूर्त्ति ही बन गई। मैं और कुछ कहता तो वह बेहोश होकर गिर जाती। थोड़ी देर बाद आँखें खोल कर टूटी-फूटी भाषा में जो उसने कहा उसका मर्म यही है कि अजी ओ प्रलय के पथिक, तुम मार्ग में निकल आये हो, तुम्हारी राह में बाधा डालने की शक्ति किसी में नहीं है। मुझे देख पड़ रहा है कि आज तुम्हारी इच्छा के वेग को कोई सँभाल न सकेगा। राजा आवेगा, तुम्हारे पैरों के निकट अपना राज-दण्ड डाल जाने के लिए; धनी आवेगा, अपना धन-भाण्डार तुम्हें दे डालने के लिए; जिनके पास और कुछ भी नहीं है वे आवेंगे तुम्हारी सेवा में केवल प्राण देने के लिए। भले-बुरे का सब विधि-विधान दूर हो जायगा, दूर हो जायगा! मेरे राजा, मेरे देवता, नहीं जानती—तुमने मुझमें क्या देखा है, किन्तु मैंने अपने हृदय-कमल के ऊपर तुम्हारा विश्वरूप देख पाया है। उसके आगे मैं क्या हूँ! कैसी सर्वनाशिनी उसकी प्रचण्ड शक्ति है। जब तक वह मुझे सम्पूर्ण रूप से मार न डालेगी तब तक मुझको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो चैन नहीं। मुझसे तो अब रहा नहीं जाता—मेरी छाती फटी जाती है।

कहते कहते उसने कुर्सी पर से उठ कर ज़मीन पर गिर कर मेरे दोनों पैर पकड़ लिये। उसके बाद फिर वही फूल फूल कर रोना शुरू होगया।

यही तो हिप्नाटिज़्म है। यह शक्ति ही पृथ्वी भर को जीतने की शक्ति है। कोई उपाय नहीं है, कोई सामग्री नहीं है, यही सम्मोहन है! कौन कहता है, सत्यमेव जयते! जय होगी मोह की।—बङ्गालियों ने यह बात समझ ली थी, इसी से बङ्गालियों ने दशभुजा की पूजा चलाई थी, बङ्गालियों ने सिंहवाहनी की मूर्त्ति गढ़ी थी। वही बङ्गाली आज फिर मूर्त्ति गढ़ेंगे, विश्व को केवल सम्मोहन से जीत लेंगे—वन्दे मातरम्!

धीरे धीरे हाथ पकड़ कर विमला को कुर्सी पर उठा कर बिठाया। इस उत्तेजना के उपरान्त शिथिलता आने के पहले ही मैंने कहा—बङ्गाल में मातृपूजा-स्थापना करने का भार उन्होंने मेरे ऊपर दिया है, किन्तु मैं ग़रीब हूँ।

विमला का चेहरा उस समय भी लाल बना हुआ था, आँखों में उस समय भी आँसू भरे हुए थे। उसने गद्गद कण्ठ से कहा—तुम ग़रीब किस बात के हो? जिसके पास जो कुछ है सो सब तुम्हारा ही है। मेरा सन्दूक़ भर गहना किसके लिए रक्खा है? मेरा सब सोना और जवाहरात अपनी पूजा के लिए ले न लो, मुझको कुछ भी न चाहिए।

इससे पहले और एक बार विमला ने गहने देने की इच्छा प्रकट की थी—मैं और कहीं नहीं सकुचता, यहीं सकुच जाता हूँ। सङ्कोच काहे का है, सो मैंने सोच कर देखा है। सदा से मर्द ही औरत को गहने से सुसज्जित करते आये हैं—औरत के हाथ से लेने से पौरुष में जैसे एक तरह की हीनता आ जाती है।

किन्तु यहाँ अपने को भूलना चाहिए। मैं लेता नहीं हूँ। यह माता की पूजा है, सभी उसी पूजा में लगाऊँगा। ऐसी धूम-धाम से पूजा करनी होगी कि वैसी पूजा कभी किसी ने इस देश में देखी न होगी! सदा के लिए नये बङ्गाल के इतिहास के मर्मस्थल में यह पूजा स्थापित हो जायगी। यह पूजा ही मैं अपने जीवन के श्रेष्ठदान के रूप से देश को दे जाऊँगा। देवता की साधना करते हैं देश के मूर्ख लोग, देवता की सृष्टि करता हूँ सन्दीपचन्द्र।

ये तो हुईं बड़ी बातें। किन्तु छोटी बातें भी छेड़नी होंगी। इस समय कम से कम तीन हज़ार रुपयों के बिना तो काम चलेहीगा नहीं—अगर पाँच हज़ार हों तो बड़े ही मज़े में काम चल जाय। किन्तु इतनी बड़ी उद्दीपना के समय एकाएक इन रुपयों की बात कहीं उठाई जा सकती है? मगर अब समय भी नहीं है।

सङ्कोच की छाती पर पैर रख कर खड़े होकर मैंने कह डाला—रानी, मगर इधर ख़ज़ाना खाली हो आया है, काम बन्द हुआ जाता है!

वैसे ही विमला के मुख पर वेदना की त्यौरी देख पड़ी। मैं समझ गया, विमला सोच रही है कि मैं शायद इसी समय पचास हज़ार माँग रहा हूँ। इसी बात के ख़याल का पत्थर उसकी छाती पर रक्खा हुआ है—जान पड़ता है, रात भर वह चिन्ता में पड़ी रही है, लेकिन कुछ भी उपाय नहीं सूझा। प्रेम की पूजा का और कोई उपचार तो उसके हाथ में है नहीं, और हृदय को स्पष्टरूप से मेरी सेवा में अर्पण कर दे नहीं सकती। इसी कारण उसका मन इतने रुपयों के ढेर को अपने अवरुद्ध आदर की जगह पर मुझे लाकर देना चाहता है। किन्तु कोई राह न सूझने से उसके प्राण ऊब रहे हैं। उसका यह काम मेरे हृदय को व्यथित कर रहा है। वह इस समय सम्पूर्ण रूप से मेरी है; उखाड़ डालने का दुःख देने की अब ज़रूरत नहीं है। अब अनेक यत्न से उसकी रक्षा करनी होगी।

मैंने कहा—रानी, इस समय पूरे पचास हज़ार की विशेष आवश्यकता नहीं है। मैंने हिसाब करके देखा है पाँच हज़ार, यहाँ तक कि तीन हज़ार होने से भी काम चल सकता है।

एकाएक बोझ कम हो जाने से विमला का हृदय एक-दम उच्छ्वसित हो उठा। उसने जैसे एक गान की तरह कहा—पाँच हज़ार तुमको ला दूँगी।—जिस सुर में राधिका ने कहा था—

बँधूर लागि केशे आमि परब एमन फूल।
स्वर्गे मर्त्ये तिन भुवने नाइक याहार मूल॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बांशिर ध्वनि हवाय भासे,
सबार काने बाजूबे ना से।
देखलो चेये यमुना ऐ छापिये गेल कूले॥

(अर्थात् बन्धु के लिए मैं बालों में ऐसा फूल लगाऊँगी जिसकी जड़ स्वर्ग, पृथ्वी, तीनों लोकों में नहीं। वंशी की ध्वनि हवा में लहराती है, वह सबके कानों में न पहुँचेगी—आंख उठा कर देखो, वह यमुना किनारों को डुबाती हुई बढ़ रही है।)

यह ठीक वही सुर है, और वही गान है, और वही एक बात है—"पांच हज़ार तुमको ला दूँगी।" "बंधुर लागि केशे आमि परब एमन फूल!" वंशी के भीतर का छिद्र तङ्ग होने से ही—उसके चारों ओर बाधा होने से ही—ऐसा सुर है,—अति लोभ के दबाव से वंशी को यदि तोड़ कर आज चपटी कर देता तो सुन पड़ता—क्यों, इतने रुपयों की तुम्हें ज़रूरत क्या है? और मैं स्त्री की जाति, इतने रुपये कहां पाऊँगी? इत्यादि इत्यादि। राधिका के उल्लिखित गान के साथ उसका एक अक्षर भी न मिलता। इसी से कहता हूँ, मोह ही सत्य है,—वही वंशी है, और मोह को बाद देकर जो बचता है वह है टूटी वंशी के भीतर का पोल। उस अत्यन्त निर्मल शून्यता का स्वाद आज-कल निखिल ने कुछ पाया है। यह बात उसका चेहरा देखने से ही जान पड़ती है। मेरे मन को भी कष्ट होता है। किन्तु निखिल की बड़ाई यह है कि वह सत्य को चाहता है, मेरी बड़ाई यह है कि जहां तक हो सकेगा वहां तक मोह को हाथ से जाने न दूँगा। यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी—अतएव इसके लिए दुःख करने से क्या होगा?

विमला के मन को उसी ऊपर की हवा में उड़ाये रखने के लिए संक्षेप में पांच हज़ार रुपये मांग कर फिर उसी महिषमर्दनी की पूजा के बारे में सलाह करने लगा। पूजा कब किस समय होगी? निखिलेश के इलाके में रुईमारी गांव में अगहन उतरते जो हुसेन ग़ाज़ी का मेला होता है उसमें वहां लाखों आदमी आते हैं। वहीं अगर पूजा हो तो खूब जमाव होगा। विमला उत्साहित हो उठी। उसने सोचा, यह तो विलायती कपड़ों को जलाना—लोगों के घर में आग लगा देना आदि नहीं है, इतने बड़े अच्छे प्रस्ताव में निखिल को कुछ आपत्ति न होगी। मैं मन ही मन यह कह कर हँसा कि जो नौ बरस तक दिन-रात एक साथ रहे हैं वे भी परस्पर एक दूसरे को कितना कम पहचानते हैं? केवल गृहस्थी के कामों में ही पहचानते हैं, जब घर के बाहर की बात उठ पड़ती है तब वे फिर थाह नहीं पाते। वे दोनों शायद नौ वर्ष तक घर में बैठे बैठे बराबर इसी बात पर विश्वास करते आये हैं कि घर के साथ बाहर का पूरा पूरा मेल है। किन्तु आज उनकी समझ में आ रहा है कि किसी दिन जिन दोनों के मिलाने की चेष्टा नहीं की गई वे आज एकाएक किस तरह मिल जायँगे?

जाने दो, जिन्होंने ग़लत समझा था वे ठोकरें खा खा कर ठीक तरह से समझ लें, इस बात को लेकर अधिक चिन्ता करने की मुझे ज़रूरत नहीं। विमला को इस उद्दीपना के वेग में बेलून की तरह बहुत देर तक उड़ाये रखना तो सम्भव नहीं, अतएव यह हाथ का काम जितनी जल्दी हो सके पूर्ण किये लेता हूँ। विमला जब कुर्सी पर से उठ कर दरवाज़े तक पहुँची तब मैंने बिलकुल ही उड़ते ढङ्ग से कहा—रानी, तो रुपये कब—

विमला फिर कर खड़ी होगई। बोली—इसी महीने के अन्त में।

मैंने कहा—नहीं, देर होने से काम बिगड़ जायगा।

विमला—तुम्हें कब चाहिए?

मैं—कल ही।

विमला—अच्छा कल ही ला दूँगी।

(असमाप्त)

रूपनारायण पाण्डेय

चारु चयन।

१—"सुतापराधे जनकस्य दण्डः"।

हिन्दी-साहित्य की उन्नति हो रही है। हिन्दी के समाचारपत्रों और सामयिक पुस्तकों की उन्नति उससे भी अधिक हो रही है। और, हिन्दी-भाषा में सम्पादन-कार्य्य करनेवालों की कला-कुशलता की तो इतनी अधिक उन्नति हो रही है जिसकी माप बड़े से बड़े गज़, लट्ठे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरीब से नहीं हो सकती। इसका कारण यह जान पड़ता है कि हिन्दी के सम्पादकों को सम्पादन-कार्य्य की योग्यता प्राप्त करने की मुतलक़ ज़रूरत नहीं। वह उन्हें अनायास ही प्राप्त हो जाती है; जन्म के साथ ही वह उन्हें मिल जाती है; आँख, कान, नाक की तरह उसे भी देकर ही ईश्वर हिन्दी के सम्पादकों को जन्म देता है। पहले यह बात न थी; कुछ ही समय से ईश्वर ने सम्पादकों को इस विभूति से विभूषित करने की कृपा की है। इसी से क़सबों और शहरों ही में नहीं, छोटे छोटे गाँवों तक में सम्पादक उत्पन्न हो रहे हैं और मासिक, पाक्षिक और साप्ताहिक पत्रों का निकास करके देश, जाति और धर्म आदि की निष्काम सेवा से सबका मुख उज्ज्वल कर रहे हैं।

परन्तु विधाता की सृष्टि वैपरीत्य से ख़ाली नहीं। देव हैं तो दानव भी हैं; पुण्य है तो पाप भी है; गुण है तो दोष भी है; अमृत है तो विष भी है। इसी से तुलसीदास जी कह गये हैं—

जड़-चेतन गुण-दोषमय विश्व कीन्ह करतार

और इसी से हिन्दी के नव-नवोद्गत सम्पादकों में ब्रह्मा ने जहाँ योग्यता, उदारता, विद्वत्ता और विवेकशीलता आदि की निःसीम सृष्टि की है तहाँ हिन्दी के पाठकों में अयोग्यता, अनुदारता, बुद्धिहीनता और अविवेकता आदि दुर्गुणों को भी ठूँस ठूँस कर भर दिया है। फल यह हुआ है कि वे ज्ञान-विज्ञान की बातों से भरे हुए पत्रों की भी क़दर नहीं करते। कोई कैसा ही अच्छा पत्र क्यों न निकाले वह महीने ही दो महीने या अधिक से अधिक वर्ष ही दो वर्ष में, ग्राहक या पाठक न मिलने से, अस्त हो जाता है। कोई कोई तो गर्भ ही में नष्ट हो जाते हैं। कुछ बच भी गये तो विज्ञापनों ही में रह जाते हैं; बाहर निकलने की नौबत ही नहीं आती। ईश्वरी निर्देश!

पाठकों का तो यह हाल है, लेखकों का इससे भी बदतर। न वे पाप से डरते हैं, न प्रायश्चित्त से डरते हैं, न लोक-लज्जा ही से डरते हैं। इस दशा में हिन्दी की निःसीम सेवा का व्रत धारण करनेवाले और देश-भक्ति का बीड़ा उठानेवाले सर्वगुणसम्पन्न सम्पादकों की लालसायें और अभिलाषायें व्यर्थ ही मुरझा जाती हैं; हिन्दी-साहित्य की कृशता दूर नहीं होती; देश-भक्ति की लता ज़रा भी पनपने नहीं पाती। एक ऐसे ही निराश सम्पादक के पत्र की नक़ल नीचे दी जाती है। यह पत्र हिन्दी के एक लेखक के नाम है। इसमें जो कई लेखकों के नाम हैं छोड़ दिये गये हैं; केवल संख्याङ्क दे दिये गये हैं। पत्र की इबारत इस प्रकार है—

श्रीयुत + + + + जी। प्रणाम।

(१) बा० + + + +, (२) पं० + + (३) [बाबू, पण्डित, मिस्टर कुछ नहीं] + + + +, (४) सबके लिए प्रथम बार लिख चुका था + + + + जी (नंबर) ने लेख भेजने की दया की है,। आप किसी ने भी सुनाई नहीं की। आप से पुनः प्रार्थना है कि अन्य अंकों के लिए यथावकाश, मगर प्रथमांक के लिए शीघ्रही नवयुवकों के उपयोगी कोई लेख भेजिये। अन्यथा संतोषदायक उत्तर दीजिए। १० दिन के अन्दर लेख तथा उत्तर प्राप्त न होगा तो आप लोगों की कृपा के कारण—साहित्य संसार में हम असमर्थता प्रगट कर देंगे। जिससे नवयुवकों का एक मात्र मासिक पत्र न निकलने का दोष-भार आपही के ऊपर होगा। आप उत्तर तक न देने ने हमारे सेवा कार्य में बड़ी शिथिलता पैदा की है।

भवदीय

सं०'—'

पत्र की यह हूबहू नक़ल है। पत्र-लेखक ने पत्रान्त में 'सं०' के आगे अपने गर्भगत पत्र का ही नाम देने की ज़रूरत समझी है, अपना नाम देने की नहीं। परन्तु वह तो बेचारा अभी पैदा भी नहीं हुआ। नाम छिपाना भी शायद सम्पादकीय कला-कौशल का कोई अंश है। पर क़ानून इस कौशल का क़ायल नहीं। वह तो सम्पादकों से अपने सम्पादित पत्रों पर ज़बरदस्ती उनके नाम प्रकाशित कराता है। सम्भव है, इस गर्भजात पत्र के सम्पादक ने प्रेस-ऐक्ट के इस बलात्कार से बचने की भी कोई तोड़ निकाल रक्खी हो।

सम्पादकजी के इस पत्र के पाठ से हम बहुत ही हैरान हो रहे हैं। इसलिए कि उनके सेवा-कार्य्य में शिथिलता आ जाने से, जिसके नाम यह पत्र है उस पत्र दोषों का भार जो टूट पड़ेगा उसका परिहार कैसे होगा। मनु और याज्ञवल्क्य आदि ने ऐसे दोषों के प्रायश्चित्त का कोई विधान तो बताया नहीं, सम्पादकजी ही अपने निज-निर्म्मित किसी स्मृति से कोई वचन उद्धृत करके दोषी की रक्षा करें तो कर सकते हैं। दोषी का दोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुतर अवश्य है; क्योंकि उसने ही—और उसके सदृश और भी लेखक माने गये कितने ही मनुष्यों ने—आपके हाथ-पैर जोड़ कर, मिन्नत-आरज़ू करके, और आपके द्वार पर धरना देकर आपको एक मासिकपत्र निकालने के लिए मजबूर किया है; और अब वही पहले अङ्क के लिए भी लेख नहीं लिखते। लिखना तो दूर रहा, पत्र का उत्तर तक नहीं देते। अतएव इन लोगों के दोष-भार या पाप-पुञ्ज की गुरुता में सन्देह नहीं। भगवन्! सम्पादक-प्रवर! त्रायस्व।

पत्र-लेखक का शब्दशास्त्र-ज्ञान, आपकी रचना-चातुरी और आपकी तर्क-पद्धति का हाल, आपका पत्र ही कह रहा है। फिर यदि कोई लेखक आपको लेख न भेजे तो आश्चर्य्य या अफ़सोस की कौन बात? जिस लेखक को आप कोस रहे हैं उसने अपने होशोहवास में तो आपसे पत्र निकालने की दरख़्वास्त की नहीं और लेख भेजने की प्रतिज्ञा से भी अपने को बाँध लिया नहीं। फिर वह दोषी कैसे? सेवा का सुख लूटें आप; सम्पादक बनें आप; नाम पैदा करें आप; पत्र चल जाय और कुछ प्राप्ति हो तो दाम अपने काम में लावें आप; कोई किसी कारण से लेख न भेजे या न भेज सके तो दोष-भार लादें आप लेखकों पर! आप अपने बल पर पत्र निकालने चले हैं या ज़बरन लेखकों के बल पर! आपके पत्र का कोई उत्तर न दे तो आप उसे कोसें क्यों? उत्तर देने पर आपका प्रत्युत्तर यदि और भी अधिक मधुर वचनों से परिपूर्ण आवे तो कोई उस मार्ग ही का "बायकाट" क्यों न कर दे? सरकार, आपने अपने पत्र में जिस लेखक को प्रणाम किया है वह आपसे हार गया! अतएव तुलसीदास के वचनों में उसकी प्रार्थना है।

वधे पाप अपकीरति हारे
मारतहू पा परिय तुम्हारे

कुछ सम्पादक-शिरोमणि और पत्र-स्वामी एक और भी परमार्थ-साधक पथ का अवलम्बन करते हैं। वे अपने नये पत्र की एक एक कापी लोगों को भेजते हैं। उसमें एक चिट छाप कर लगा देते हैं। उस पर छपा रहता है कि यह अङ्क पाते ही या तो साल भर का मूल्य भेज देना, या अगला अङ्क वी० पी० से भेजे जाने का हुक्म देना, या यही लिख भेजना कि हमारा नाम ग्राहकों में लिख लिया जाय; और यदि यह कुछ भी न करना तो एक पोस्टकार्ड तो ज़रूर ही लिख भेजना कि हमें ग्राहक होना मंज़ूर नहीं। इसके उत्तर में निवेदन है कि औरों से यह सब करा लेने का आपको क्या अधिकार? आप एक चीज़ लेकर बाज़ार में आये हैं। जिसे वह पसन्द होगी या जिसे उसकी ज़रूरत होगी वह आप ही उसे लेगा। आप उस पर अपनी इच्छा-पूर्ति का इतना भार क्यों लादते हैं? यदि उसे वह चीज़ पसन्द नहीं तो वह चुप रहेगा। पोस्टकार्ड लिखने में व्यर्थ श्रम, ख़र्च और समय का नाश क्यों करेगा? परमेश्वर के लिए आप इस तरह का ज़ुल्म करना छोड़ दीजिए।

बड़े बड़े विज्ञापन निकलते हैं—अमुक तिथि को "अनन्वय" निकल जायगा, अमुक तारीख़ को "अनन्त" प्रकाशित हो जायगा; अमुक महीने की पूर्णिमा को मधुरालाप-पण्डित "कलकण्ठ" अपने दर्शन दे देगा। उसके निकलते ही अज्ञानान्धकार दूर भाग जायगा; उसके चित्र देख कर रैफ़ल की आत्मा को कँपकँपी आजायगी; उसकी छपाई देख कर इंडियन प्रेस के टाइप ढालनेवालों को ग़श आजायगा, इत्यादि। पहले तो ऐसे पत्रों के निकलने ही में सन्देह रहता है। यदि निकले भी तो प्रायः पहले ही अङ्क में इस तरह की कुछ न कुछ कैफ़ियत पढ़ने को मिलती है—

(१) पत्र छः महीने विलम्ब से निकलता है। डिक्लेरेशन लेनेवालों ने देर कर दी। अगले अङ्क से एक मिनट की भी देर न होगी।

(२) चित्र समय पर कलकत्ते से नहीं आया। इससे विचित्र ही निकला है। अब दस बीस चित्र पहले ही से बना कर रख लिये जायँगे।

(३) टाइप अच्छा नहीं। अगले अङ्क, मास या वर्ष से निज का प्रेस हो जाने पर यह त्रुटि भी दूर हो जायगी।

इस तरह के पत्रों में से कुछ तो निकलते ही नहीं; कुछ दो चार महीने चल कर बन्द हो जाते हैं; कुछ साल दो साल विरले ही भाग्यशाली बच जाते हैं और अपने अस्तित्व की सार्थकता कर दिखाते हैं। इस दशा में कोस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोस कर लेखकों से लेख लिखाने और लोगों से पेशगी मूल्य प्राप्त कर लेने की चेष्टा करना कहाँ तक न्याय-सङ्गत है, इसका फ़ैसला पाठक ही अच्छी तरह कर सकते हैं।

सत्यानन्द

२—भाग।

चौपदे

हैं पड़े भूल के भुलावों में।
कब भरम ने भरम गँवा न ठगा।
क्या कहें हम अभाग की बातें।
आज भी भागभूत भवन भगा॥ १॥
बिन उठाये न जायगा मुँह में।
सामने अन्न जो परोसा है।
है भरी भूल चूक रग रग में।
भाग का ही अगर भरोसा है॥ २॥
जब बने तब बने गये बीते।
काहिली हो सकी न जौ भर कम।
भाग कैसे अभाग तब पावे।
जब रहे भाग के भरोसे हम॥ ३॥
पा सके जो जहान में सब कुछ।
क्या न थे वे उपाय कर करते।
हैं उमगते उमंग में भर जो।
दम रहे भाग का न वे भरते॥ ४॥
क्यों न रहती सदा फटी हालत।
पास सुख किस तरह फटक पाता।
करतबों से फटे रहे जब हम।
भाग कैसे न फूट तब जाता॥ ५॥
देख करतूत की कमर टूटी।
सुख घड़ी फूट फूट कर रोई।
जब न हित आँख खुल सकी खोले।
किस तरह भाग खुल सके कोई॥ ६॥
हम अगर हाथ पाँव डाल सके।
तब कुदिन पीस क्यों नहीं पाता।
फट पड़ा जब अभाग का पर्वत।
भाग कैसे न फूट तब जाता॥ ७॥
पाँव पर अपने खड़े जो हो सके।
ताक पर-मुख वे सभी सहते नहीं।
बाँह के बल का भरोसा है जिन्हें।
वे भरोसे भाग के रहते नहीं॥ ८॥
वीर हैं तदबीर से कब चूकते।
करतबी करतब दिखाते कब नहीं।
भागवाले हैं जगाते भाग को।
भाग की चोटें अभागों ने सहीं॥ ९॥
है नहीं जब लाग जी से लग सकी।
लाभ तो होगा नहीं मुँह के तके।
जब जगाने से नहीं जीवट जगी।
भाग कोई जाग तब कैसे सके॥ १०॥

अयोध्यासिंह उपाध्या

३—नये ख़लीफ़ा।

एक एक करके संसार के प्रसिद्ध प्रसिद्ध शा घरानों का अस्तित्व ही नहीं मिटता जा रहा है, कि जो शेष रह गये हैं धीरे धीरे उनके शाहाना ठाट-बाट भी भारी परिवर्तन होता जा रहा है। वे स्वयं न अपनी पहले जैसी स्थिति क़ायम रखना चाहते हैं औ यदि रखना चाहें तो रख भी नहीं सकते। इसे काल गति ही समझना चाहिए। योरपीय महासमर के का रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया के राजघरानों का अस्त गया और यद्यपि तुर्कों के जगत्प्रसिद्ध सुलतान सिंहासन धूल में मिल जाने से किसी प्रकार बच तो भी अब उस पर बैठनेवाले वर्तमान ख़लीफ़ा ने अ प्राचीन परम्परा परित्याग कर दी है। अब पहले जै शाहाना रङ्ग-ढङ्ग वर्तमान सुलतान के राजमहल में द को देखने को नहीं मिलेगा।

तुर्की के वर्तमान सुलतान ख़लीफ़ा अब्दुल मजीद वर्ती सुलतान के सिंहासनाच्युत कर दिये जाने पर अंगो सरकार-द्वारा सिंहासन पर बिठाये गये हैं। अङ्गोरा कार प्रजातन्त्रात्मक सरकार है, अतएव अब कुस्तु निया के सिंहासन पर पहले जैसे सुलतानों की नहीं। जिन सुलतानों ने यल्दीज़ राजमहल के भीतर कर अपना शासन-दण्ड परिचालित किया है उनके स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थिति अब नहीं रह गई है। सम्भवतः इसी कारण वर्तमान सुलतान पहले जैसी परम्परा नहीं रखनी चाहते। यल्दीज़ राजमहल कुस्तुन्तुनिया-नगर के एक एकान्त स्थल में है। यहां सर्वसाधारण की पहुँच नहीं। इसकी रचना ही इस ढङ्ग से हुई है कि सहसा यह किसी की नज़र में भी नहीं पड़ता। जङ्गल में स्थित ऐसे ही राजमहल में पूर्व-कालीन सुलतान रहा करते थे और सर्वसाधारण क्या बड़े बड़े रईस-उमराओं तक को उनके दर्शन दुर्लभ थे। इस महल में छः ड्योढ़ियां लगती थीं। इनके पहरे में सुरक्षित रूप से रह कर सुलतान अपना जीवन एकान्त में बिताया करते थे। यहां तक कि वे जुमा की नमाज़ भी वहीं अपनी एक ख़ानगी मस्जिद में पढ़ लिया करते थे। उस समय भी उनके साथ ख़ास ही ख़ास आदमियों को नमाज़ पढ़ने के लिए निमन्त्रण मिलता था।

परन्तु ख़लीफ़ा अब्दुल मजीद ने पुरानी परम्परा का परित्याग कर दिया है। वे दोल्मा बाग़ची नामक जगत्-प्रसिद्ध राजमहल के एक भाग में निवास करते हैं। यह राज-महल शहर से आध मील दूर बासफ़ोरस के मुहाने पर है। उनके खुले प्रवेश-द्वार की मेहराब के सामने से घरघर करती हुई ट्राम-गाड़ियां और उनके पुस्तकालय की खुली हुई खिड़की के आगे से आदमियों से भरी हुई नौकायें छप छप करती हुई रात-दिन दौड़ा करती हैं। अब यह बात सुलतान की शान के ख़िलाफ़ नहीं समझी जाती कि उनके महल के आस-पास पक्षी तक पर न मारने पावे। यही नहीं, सुलतान अब अपनी जुमा की नमाज़ शहर की मस्जिदों में पढ़ने जाते हैं। वहां वे सर्वसाधारण के साथ ही नमाज़ पढ़ते हैं। वे नमाज़ पढ़ने के लिए राजकुमारों को अपने साथ लेकर कभी घोड़ों, कभी नौकाओं और कभी चार घोड़े की खुली गाड़ी पर सवार होकर जाते हैं। इनमें से चाहे जिस ढङ्ग से उनकी सवारी जाय वह सभी को प्रिय है और सभी उसका स्वागत करते हैं, क्योंकि न तो अब उनके आसपास जासूसों का दल रहता है और न सर्वसाधारण के आने-जाने में किसी प्रकार की रोक-टोक ही की जाती है।

मुसलमान लोग रमज़ान महीने की एक तिथि को अत्यन्त पवित्र समझते हैं। इसे वे शबे क़दर कहते हैं। इसी दिन हज़रत मुहम्मद के शरीर में ईश्वरीय आत्मा ने प्रवेश किया था और क़ुरान शरीफ़ की आयतें उन्हें मालूम हुई थीं। अतएव इसकी स्मृति के लिए इस्लामी संसार में बड़ा भारी धार्मिक महोत्सव होता है और प्रत्येक मस्जिद में घण्टे घण्टे भर बाद आधी रात तक नमाज़ पढ़ी जाती है। पिछले रमज़ान में कुस्तुन्तुनिया की सेंट सोफ़िया नामक मस्जिद में इस अवसर पर नमाज़ पढ़ने के लिए सुलतान आये थे और हज़ारों आदमियों के साथ नमाज़ पढ़ी थी। इस अवसर पर सेंट सोफ़िया की शोभा देखने योग्य होती है। पहले जब सुलतान इस धार्मिक महोत्सव में भाग लेने को आया करते थे तब वे बड़ी शान और शौक़त के साथ आते थे।

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि वर्तमान ख़लीफ़ा नई रोशनी के आदमी हैं। इन्हें सिंहासन-प्रदान करने के समय पुराने विचार के लोगों ने इनका विरोध भी किया था। परन्तु ये अपने इसी गुण-विशेष के कारण वर्तमान पद पर अधिष्ठित किये गये हैं। ये आधुनिक सभ्यता के बीच में पले हैं, अतएव उसके प्रति इनका ख़ासा अनुराग है। ये तैल-चित्र आदि भी खींचने में निपुण हैं। गत वर्ष सर्वसाधारण में इनके तीन चित्र दिखाये गये थे। ये अब एक राष्ट्रीय आर्ट गैलरी खोलना चाहते हैं। ये व्यङ्ग्य चित्र खींचने में कुशल हैं। गाने की चीज़ें भी बनाया करते हैं। इनके बनाये नाटक भी खेले गये हैं। जब ये राजकुमार थे तभी इनकी प्रवृत्ति उपर्युक्त कलाओं की ओर थी। ये कला के अत्यधिक प्रेमी हैं।

अङ्गोरा-सरकार ने सुलतान अब्दुल मजीद को ख़लीफ़ा के सिंहासन पर आसीन तो कर दिया है, पर उनका सम्बन्ध राजकाज से कुछ भी नहीं रक्खा गया है। राज-काज से अङ्गोरा-सरकार का सम्बन्ध है। उसके प्रतिनिधि ख़लीफ़ा के समीप सदा उपस्थित रहते हैं। वे सदा इस बात से सावधान रहते हैं कि ख़लीफ़ा का सम्पर्क राजनीति से न होने पावे। वे समझते हैं कि एक भूतपूर्व ख़लीफ़ा ने अपनी स्वेच्छाचारिता से राष्ट्र का अहित किया है। अतएव अब इस सम्बन्ध में उपेक्षा का भाव न धारण करना चाहिए। इसी कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान सुलतान को एक-मात्र ख़लीफ़ा के ही अधिकार प्रदान किये गये हैं और यों तो वे समग्र तुर्क-साम्राज्य के अधीश्वर हैं ही।

गोपीनाथ शर्मा

४—जर्मनी में स्त्रियों का प्रभाव।

आज-कल सभी देशों में स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र बढ़ रहा है। हमारे देश में स्त्री-शिक्षा का कम प्रचार रहने पर भी कुछ शिक्षित महिलाओं ने अधिकार-प्राप्ति के लिए बड़ी चेष्टा की है। जो स्थान अब तक उनके लिए अगम्य थे वहाँ उनका प्रवेश हो चुका। यदि वे प्रयत्न करती रहीं तो वे उन सभी अधिकारों का उपयोग करने लगेंगी जो अभी तक पुरुषों के स्वत्व थे। योरप की महिलाओं की शक्ति तो अब अप्रतिहत है। इँग्लेंड में तीन स्त्रियाँ पार्लियामेंट में प्रविष्ट हो चुकी हैं। अन्य देशों में भी यही हाल है। जर्मनी में राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों का कितना हाथ है इसका हाल सुनिए। पार्लियामेंट में स्त्रियों का कोई विशेष दल है या नहीं अथवा पार्लियामेंट के स्त्री-सदस्यों में परस्पर घनिष्ट सहयोग है या नहीं, इसके विषय में वहाँ का सबसे बड़ा दल, जो सामाजिक प्रजातन्त्रवादी दल के नाम से प्रसिद्ध है, कहता है कि अभी तक ऐसा दल सङ्घटित नहीं हुआ है और इसका भी पूर्ण निश्चय है कि भविष्य में कभी ऐसा दल सङ्घटित नहीं होगा। सामाजिक प्रजातन्त्रवादी दल की एक विख्यात स्त्री—फिरोज्यूचज—की राय है कि पहले तो इस प्रकार के दल के बनने की सम्भावना ही नहीं है, और यदि कहीं बन गया तो यह कुछ अच्छी बात न होगी। जिस प्रकार की दलबन्दी और मतभेद पुरुषों में है, ठीक वही अवस्था स्त्रियों की भी है और जिन प्रश्नों को हमने स्त्री-समस्याओं का नाम दे रखा है वे इतने प्रबल नहीं हैं कि स्त्रियों को एक सूत्र में बाँध सकें। यह भी कहा जाता है कि स्त्री-समस्याओं को हल करने के लिए पुरुषों के साथ वाद-विवाद और परामर्श करने की बड़ी भारी आवश्यकता है, अन्यथा केवल स्त्रियों के विचारों का परिणाम अवश्यमेव अधूरा, बेकाम और अव्यावहारिक होगा।

स्त्रियों को वोट देने और पार्लियामेंट में प्रविष्ट होने का अधिकार मिल चुका है, अतएव एक प्रकार से राजनैतिक युद्ध में उनकी विजय हो चुकी है। इस समय स्त्रियों का ध्यान, पार्लियामेन्ट के भीतर और बाहर, सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों की ओर अधिकाधिक खिंचता जाता है। क्योंकि इन क्षेत्रों में दलबन्दी टूट जाती है और सदुद्देश रखनेवाली सभी संस्थायें एक साथ मिल कर समाज की शारीरिक और मानसिक व्याधियों को दूर करने के लिए प्राणपन से उद्योग कर रही हैं। केवल बर्लिन में प्रजातन्त्रवादी दल के लगभग १००० सदस्य सामाजिक सुधार की अनेक योजनाओं, जैसे नवयुवकों और नवयुवतियों का हितचिन्तन, सिनेमा का नियन्त्रण, विधवाओं और अनाथ बालबच्चों की रक्षा आदि, में खूब भाग लेते हैं। बहुत से शिक्षा-प्रचार में सहायता कर रहे हैं, और समय समय पर स्त्रियों की सार्वजनिक सभायें करते हैं। इनके अतिरिक्त जर्मनी में छोटी छोटी महिला-परिषदें भी हैं। अकेले बर्लिन में १५० के लगभग परिषदें होंगी, जिनमें महीने में एक बार सदस्य और आगन्तुक राजनैतिक और सामयिक प्रश्नों पर वाद-विवाद करते हैं। स्त्री-समाज को इन प्रश्नों का किसी प्रकार सम्बन्ध रखना आवश्यक नहीं समझा जाता है। आज-कल स्त्री-समाज का ध्यान स्कूल के बालकों को निःशुल्क भोजन, चिकित्सा, बच्चों के स्वास्थ्य और रक्षा आदि के विषयों की ओर अधिक लगा हुआ है। ऐसे कामों के लिए स्वयंसेविकाओं की बड़ी माँग रहती है, क्योंकि म्यूनिसिपलटियाँ ऐसी दशा में नहीं हैं कि प्रत्येक कर्मचारी को वेतन दे सकें। स्त्रियों का सबसे बड़ा सङ्गठन, जो किसी दर्जे तक स्त्री-समाज का प्रतिनिधि हो सकता है, Bund Dentscher Frauenvereine है। इस सम्मेलन का उद्देश राजनैतिक मामलों से कोई सम्पर्क नहीं रखता, हर पेशे की, हर व्यवसाय की स्त्रियाँ, चाहे वे शिक्षिका हों, क्लर्क हों, डाक्टरिन हों, समाज-सेविका हों, इसमें सम्मिलित हो सकती हैं। साधारण से साधारण स्त्री भी यह समझती है कि स्त्रियों को वोट देने और पार्लियामेन्ट का सदस्य बनने का अधिकार मिल जाने के कारण इस सम्मेलन का महत्त्व कुछ घट गया है, सामाजिक दल की स्त्रियाँ तो उसको बिलकुल निर्जीव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बतलाती हैं। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह सङ्गठन अब भी मज़दूरी के बाज़ार में स्त्रियों को अहित से बचाने के लिए सराहनीय उद्योग कर रहा है। यद्यपि सिद्धान्तरूप से यह मान लिया गया है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष सबको एक सा वेतन दिया जायगा तथापि स्त्रियों के इस अधिकार को नष्ट करने के लिए कई स्थानों में गुप्त रीति से उद्योग किया गया। सम्मेलन ने इसका विरोध किया और उसको कुछ सफलता भी हुई। अब कोई स्त्री, स्त्री होने के कारण अपने पद से च्युत नहीं की जा सकती, न उसको कम वेतन दिया जा सकता है। विवाहिता स्त्रियों के लिए भी इस सम्बन्ध में कोई अपवाद नहीं है। प्रायः सभी महिला-सभायें यह शिकायत करती हैं कि उनको सार्वजनिक कार्यों में हर दर्जे की कमी करना पड़ रही है। एक ओर सदस्यों की ऐसी अवस्था नहीं रह गई है कि वे इन कामों में यथेष्ट समय और विचार लगा सकें, जो कुछ भी समय बचता है उसमें जीवन-निर्वाह की चिन्ता सताया करती है, रात्रि-दिन की परेशानी के कारण उनका मस्तिष्क चकरा जाता है। दूसरी ओर सार्वजनिक सभाओं और कार्यों का सम्पादन, मूल्य में भीषण वृद्धि होने के कारण, बड़ा कठिन हो गया है। दारिद्र्य के कारण सार्वजनिक जीवन नष्ट हो रहा है। किराया, रोशनी, शीतरक्षा, इश्तिहार छपाना, निमन्त्रण भेजना, डाकव्यय आदि का सम्मिलित प्रश्न इतना भारी हो गया है कि साधारण नागरिक के लिए सार्वजनिक सभाओं में भाग लेना कठिन हो रहा है। एक एक करके सभी स्त्री-समाचार-पत्र बन्द होते जाते हैं। बस, यही सन्तोष का विषय है कि स्त्रियों को वोट का अधिकार मिल गया है जिससे वे पार्लियामेन्ट में अपनी आवाज़ उठा सकती हैं।

सिविलसर्विस में भी स्त्रियों को उच्च पद प्राप्त हैं, लगभग प्रत्येक मन्त्रिमण्डल में भी स्त्रियों को स्थान दिया गया है। यद्यपि स्त्री-पुरुषों को एक समान वेतन देने का सिद्धान्त निश्चित है, तो भी व्यवहार में इसकी अवहेलना की जाती है।

दीनदयालु श्रीवास्तव

५—परदा।

अरे क्यों भूलता नाहक़, खड़ा किसको निरखता है ?
यहाँ निःशेष जीवन का, पड़ा परदा न दिखता है ?
नहीं अन्यत्र है वह, आपही अपना हृदय देखो।
उठा दो द्वैत का परदा, उसे सर्वात्ममय देखो॥
यही है द्वार प्रियतम का, मगर यह पट जड़ा कैसा ?
अरे ! यह मार्ग अवरोधक, यहाँ परदा पड़ा कैसा ?
हटा माया का घूँघट औ, हमारा मोह का परदा।
हृदय-पट जब खुले कैसा, रहा फिर क्षोभ का परदा ?
जहाँ देखो दुई समझो, पड़ा है आपका परदा।
जहाँ हो भय वहीं निश्चय, रहेगा पाप का परदा॥
यही परदा पड़ा है जो, बना बेपर्द का परदा।
पड़ा जिस पर स्वयं परदा, वो उसका आप ही परदा॥
कहीं बेगानगी परदा, कहीं है एकता परदा।
कहीं अच्छा हुआ परदा, कहीं पर है बुरा परदा॥
समझते हैं वही परदा, कि जो परदे के बाहर हैं।
वो क्या जानेंगे परदे को, कि जो परदे के भीतर हैं॥
उठा कर आँख जो देखा, कहाँ देखा किसे देखा ?
पड़ा जब आँख का परदा, मरा देखा जिसे देखा॥
उठा परदा न देखा कुछ, कहाँ वह औ कहाँ मैं था ?
पड़ा जब लाज का परदा, उधर वह औ इधर मैं था !
पलक खुलते झलक में बस, पड़ा परदा मैं बौराना।
भरा जञ्जाल परदे में, ये मैंने आज पहचाना॥
न उनसे था हमें परदा, न उनको हमसे था परदा।
किसे था ज्ञात है परदे, के अन्दर और यह परदा ?
न निरखे अन्य यह सङ्कोच, आया चित्त में सहसा।
उमड़ कर अश्रुधारा ने, गिराया प्रेम का परदा॥
उठा दो दृष्टि का परदा, निरख लो द्वन्द्व की महिमा।
पलट दो भाव का परदा, समझ लो सृष्टि की गरिमा॥
ये है परदा छिपी जिसमें, हमारी लाज घर की है।
ये है परदा भरी जिसमें, प्रगति संसार भर की है॥
उमंगे, चाह, आहें और, आशा व्याप्त कर दी है।
इसी परदे ने दीनों की, जगत् में शान रख ली है॥
न था परदा तो क्यों डाला, हमारी शक्ल पर परदा।
जो कहते हैं न हो परदा, है उनकी अक़्ल पर परदा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये हैं परदे का वैभव और, उसकी यह झलक देखो।
कहीं बाँकी नज़र देखो, कहीं जी की कलक देखो॥
कहीं स्वर्गीय सुषुमा है, कहीं उसकी रमक देखो।
कहीं है ज्योति की प्रतिभा, कहीं उसकी चमक देखो॥
कहीं पर जी गड़ा होगा, कहीं पर चित अड़ा होगा।
गुज़रते वक़्त भी मुँह पर, यहाँ परदा पड़ा होगा॥

'हृदय'

६—प्रेम-रहस्य।

(१)

क्या हानि है रहती किसी की जो प्रतीक्षा है हमें।
किस ओर से सन्तोष की यह दिव्य दीक्षा है हमें॥
उपदेशको, लेनी तुम्हारी भी परीक्षा है हमें,
पूरी तुम्हारे भाव की करनी समीक्षा है हमें॥

(२)

मिल जायगा जब फूल शुचि निःशूल तुमको एक दिन,
जिसका मधुर सौरभ करेगा और सब सौरभ मलिन,
जिसकी मृदुल मुसक्यान झूलेगी दृगों में रात-दिन,
सुरभित करेगा जो तुम्हारे स्वप्न के सुन्दर विपिन॥

(३)

जिसको न तुम धर ला सकोगे तोड़ कर उद्यान से,
जिसके समीप न रह सकोगे कार्य-क्रम के ध्यान से।
आक्षेप ये सारे तुम्हारे तब हवा हो जायँगे,
यह वक्रता बह जायगी, दृग नित्य भर भर आयँगे॥

(४)

जिसके हृदय तक लव-लगन की गन्ध आई भी नहीं,
जिसके न शूल चुभा फटी पग में बिवाई भी नहीं।
वह किस तरह समझे प्रतीक्षा, पर-व्यथा की बात भी,
खुलती न जब तक आँख दिखते हैं नहीं दिन रात भी॥

(५)

चितचोर चितवन दृष्टि से जिनके कभी लड़ती नहीं,
है फूक जिन पर प्रेम के शुभ मन्त्र की पड़ती नहीं।
वे आत्म-विस्मृति का मधुरतम स्वाद पा सकते नहीं
वे तुच्छ दैहिक स्वार्थ के उस पार जा सकते नहीं॥

(६)

वह फूक करके नाश मन के छल-कपट का स्वार्थ का,
पट खोलकर परिचित कराती द्वार है परमार्थ का।
जीवन हमारा ढालती है दूसरे ही ढङ्ग में,
रँगती हृदय को है हमारे दूसरे के रंग में॥

(७)

जीना सिखाती है हमें वह दूसरे जन के लिए,
बन्धन बनाती है अनूठा वह चपल मन के लिए।
हम एक मानव के लिए सर्वस्व करते दान हैं,
दो के जगत—लघुवृत्त—में खोते दुई का ध्यान हैं

(८)

इस भाव का घेरा बढ़ेगा नित्य ही संसार में,
परिणत कभी लघु बूँद होगी एक पारावार में।
प्रभु-प्रेम के परिणाम की होगी सुगन्धि दिगन्त में,
आत्मा हमारा विश्व का फिर एक होगा अन्त में

श्रीअनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

७—मानवी मस्तिष्क का अद्भुत चमत्कार।

हाल में स्वतः सूचना (auto suggestion) द्वारा एक मनुष्य के फाँसी लगा कर मर जाने का समाचार मिला है। उसकी फाँसी का जो वृत्तान्त प्रकाशित हुआ है उससे मालूम होता है कि उसकी ठोडी उसके कमरे में खाट से बँधे हुए रूमाल में रक्खी हुई थी, परन्तु इस बात का कोई चिह्न नहीं कि उसकी मृत्यु गला घोंटे जाने से हुई।

डाक्टर ने कचहरी में साक्ष्य देते हुए कहा "कि मेरी सम्मति में उसका यह विचार ही कि मैं फाँसी पर लटकाया जा रहा हूँ उसकी मृत्यु का कारण है। इस विचार के कारण उसके हृदय का स्पन्दन बन्द हो गया।

सम्भवतः उस दुर्घटना का सच्चा समाधान यह था। मनुष्य के शरीर की प्रत्येक चेष्टा का मूल कारण मस्तिष्क है। एक डाक्टर लिखता है कि शरीर का नियन्त्रण सारे दिन और रात मन-द्वारा होता है, और इस कारण नहीं जान पड़ता कि जिन लोगों में यथेष्ट इच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति है वे, थोड़े अभ्यास से, अपने को अपने शरीर के पूर्ण स्वामी क्यों न बना लें।

अनेक योगाभ्यासी कई दिन बिना भोजन के बिता देते हैं और प्रकट रूप से उनको इस उपवास से कुछ भी हानि नहीं होती। उन्होंने अपने शरीर को अपने मन के अधीन कर रक्खा है। कुछ लोग ऐसे हैं जिन्होंने अपने शरीर को मन का शिष्य बना कर अभ्यास-द्वारा तितिक्षा की असाधारण शक्ति प्राप्त की है, और वे ऐसी ऐसी बातें कर सकते हैं जो बाहर से देखने में तो शारीरिक रूप से असम्भव हैं, पर मानसिक रूप से असम्भव नहीं।

पूर्वी देशों में, विशेषतः भारत में, अनेक लोग ऐसे हैं जिनमें अपने मस्तिष्क के साथ अपने शरीर को जीतने की शक्ति है।

हम आगे दो उदाहरण उपस्थित करते हैं। इनकी जांच विश्वस्त मनुष्यों-द्वारा हो चुकी है।

पहली घटना एक लङ्का-निवासी की है। उसने दूसरे मनुष्य से भूमि का एक टुकड़ा चुरा लिया था। उसने किसी प्रकार भूमि की रजिस्टरी का काग़ज़ चुरा कर यह घोषणा कर दी थी कि मैं ही उस टुकड़े का स्वामी हूँ। इस पर उसके शत्रु ने उसे शाप दिया कि "परमात्मा करे कि तुम कुत्ते की मौत मरो!"

जब रात हुई तब चोर के घर में बड़ा भयानक चीत्कार सुनाई देने लगा, मानो उसे कोई तड़पा तड़पा कर मार रहा है। लोग उसकी सहायतार्थ दौड़ कर गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि वह अकेला भूमि पर पड़ा मरणासन्न अवस्था में अत्यन्त वेदना से व्यथित होकर तड़प रहा है।

डाक्टर बुलाया गया। परन्तु इससे कुछ भी लाभ न हुआ। सूर्योदय के पूर्व ही घोर यातना से उसका शरीर छूट गया। डाक्टरी परीक्षा करने पर मालूम हुआ कि उसे कोई भी रोग न था। शाप के डर ने उस पर ऐसा प्रभाव डाला कि उसका प्राणान्त हो गया।

दूसरा दृष्टान्त वहाँ की दो स्त्रियों का है। वे दोनों आपस में परम सहेलियाँ थीं। दोनों को ज्वर हुआ। वे एक दूसरे का कुशल-समाचार पूछ भेजा करती थीं। एक दिन दूत ने आकर सूचना दी कि पहली स्त्री का देहान्त हो गया है। जब यह समाचार उसकी सहेली को सुनाया गया तब वह उठ कर बैठ गई और कहने लगी कि "तब मैं भी मर गई हूँ।"

इतना कह कर वह फिर लेट गई और एक ही दो सेकण्ड में उसका प्राणान्त हो गया।

सन्तराम

८—आकाश में महल।

अब तक "आकाश में महल" वाली कहावत ही सुनते आये थे। अब अमरीकावाले इस कहावत को कार्य-रूप में परिणत करने के उद्योग में लगे हैं। अमरीका के व्योमयान-विद्या में पारङ्गत एक वैज्ञानिक ए० जेफ़्रीज़ महाशय इस उद्योग में लगे हुए हैं कि पृथ्वीतल से ५,००० फुट ऊपर आकाश में लटकती हुई बादलों के मध्य में स्थित एक छोटी सी बस्ती बनाई जाय, जिसमें रसिकों को छुट्टी के दिनों में सैर तथा आमोद-प्रमोद करने का एक नवीन अवसर मिले। उनकी यह युक्ति है कि व्योमयानों को आकाश में स्थिर करके उनके सहारे तार के मोटे मोटे दृढ़ रस्सों पर लोहे के बहुत बड़े बड़े गार्डर लटकाये जायँ और इन्हीं पर एक बृहत् मञ्च रचा जाय और उसी पर एक छोटा-मोटा शहर तैयार कर दिया जाय। जेफ़्रीज़ महोदय का कथन है कि व्योमयानों के प्रचालन की आवश्यकता नहीं होगी, प्रचालन कार्य के लिए जो इञ्जन इन यानों में लगे रहेंगे उनके उपयोग से यानों में इतनी शक्ति उत्पन्न की जा सकती है कि वे इतने बृहत् बोझ का भार रोके रह सकें। उनका तो यह दावा है कि ऐसा निस्सन्देह किया जा सकता है। परन्तु इस कार्य के लिए बहुत धन की आवश्यकता है। करोड़ों रुपये लगेंगे। तो भी अमरीका धनाढ्य देश है और उसके लिए व्यय से घबराना लज्जा की बात होगी। बहुत से अमरीका के धन-कुबेरों ने इस उद्योग में सहायता करने का वचन दिया है। देखें, कब तक इस कार्य के सफलतापूर्वक सम्पादित होने की ख़बर मिलती है। इस प्रस्ताव की अन्य विशेषतायें अभी गुप्त रक्खी गई हैं।

यह कहना न होगा कि इस बस्ती में छुट्टी मनानेवाले तथा स्वास्थ्य-सेवन के लिए जानेवाले रसिक लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्योमयानों पर ही चढ़ कर बादलों तक पहुँचेंगे और उनके तमाशे के लिए इस नगर के चारों ओर आकाश में व्योमयानों की झूठी लड़ाइयाँ भी होंगी।

आश्चर्य का कभी अन्त नहीं होता।

रामचन्द्र टण्डन

८—योरप का सबसे प्रसिद्ध जुए का अड्डा।

योरप की पार्थिव क्षमता खूब बढ़ी-चढ़ी है। उसके वैभव की वृद्धि ही होती जा रही है। परन्तु इस वैभव के साथ जो दुर्गुण अनिवार्य हैं उनकी भी वृद्धि हो रही है। पाश्चात्य देशों में आमोद-प्रमोद का एक मुख्य उपाय जुआ है। घुड़दौड़ में लाखों रुपयों के दाँव लगाये जाते हैं। इसके सिवा सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध शहरों में जुए के अड्डे बने रहते हैं। यहाँ जुए के सबसे प्रसिद्ध अड्डे का हाल दिया जाता है।

मोनाको भूमध्यसागर में एक अन्तरीप है। इसका आयतन केवल आठ वर्ग मील है और जन-संख्या उन्नीस हज़ार। प्रिंस आव् मोनाको यहाँ का अधिपति है। इतना छोटा राजा पृथ्वी पर कोई नहीं है। तीस वर्ष पहले इस स्थान पर पहाड़ था और यह मरुभूमि सा मालूम होता था। इसलिए चोर-बदमाश या किसानों को छोड़ कर यहाँ कोई न आता था। परन्तु अब यह श्रीमानों की विलास-भूमि बन गया है।

अब यहाँ तीन छोटे छोटे शहर बस गये हैं, गोन्डा-माइन, मोनाको, मान्टेकार्लो। आज-कल यहाँ चोरी-डकैती न होने पर भी कितने ही लोग अमीर-फ़क़ीर हो गये हैं।

मान्टेकार्लो की प्रसिद्धि का कारण है कैसिनो। इसे एक बड़ा महल कहना चाहिए। यहीं लोग जुआ खेलने के लिए आते हैं। योरप तथा अमरीका में ऐसा कोई नहीं है जो इसे न जानता हो। आज-कल कैसिनो पृथ्वी पर जुए का सर्वश्रेष्ठ अड्डा हो रहा है।

जुआ खेलने का ढङ्ग यह है। एक मेज़ पर एक चक्र लगा रहता है। इसके ३६ घर होते हैं। यह खूब तेज़ी से घुमाया जाता है। फिर दूसरी ओर से एक गेंद लुढ़का जाती है। यह जिस घर के ऊपर जाकर स्थिर हो जाती वही जीत का नम्बर होता है। इस नम्बर पर यदि किसी ने १००) लगाया हो तो उसे जीतने पर इसका छत्तीस गुना ३६००) रुपया मिलेगा। इस जुए के खेल को रोलेट कहते हैं। कैसिनो में इस जुए के १२ टेबिल हैं। दिन में किसी समय आप कैसिनो में जाकर देखेंगे कि प्रत्येक टेबिल के पास ५०, ६० जुआड़ी जुआ खेल रहे हैं।

इस जुए के अड्डे में बहुत दूर दूर से प्रतिदिन सैकड़ों आदमी आते हैं। कैसिनो में जाने वाले जुआड़ियों के लिए फेरीवाले 'बाज़ी जीतने का उपाय' शीर्षक पुस्तक बेचते रहते हैं। किन्तु यदि सचमुच इस पुस्तक को पढ़ कर लोगों को बाज़ी जीतना आ जाता तो पुस्तक की बिक्री बन्द करवा दी जाती।

यह बात ठीक है कि कितने ही लोगों ने यहाँ अपार धन पैदा कर लिया है। वेल्स नामक एक जुआड़ी ने यहाँ नौ लाख रुपया पैदा किया। हन्टल बेकर ने पन्द्रह वर्ष यहीं व्यतीत किया और उसको २ लाख सत्तर हज़ार रुपया मिला। कर्नल पावेल ने दस लाख पचास हज़ार रुपया पाया था। रूस के किसी काउन्ट नामक व्यक्ति ने एक रात में २ लाख दस हज़ार रुपया पाया। विलायत के एक जहाज़ के मालिक ने दो घण्टा खेल कर ४ हज़ार रुपया प्राप्त किया। किन्तु चाहे जितना चालाक या जीतनेवाला हो कैसिनो के लोगों को कुछ भय नहीं होता, क्योंकि आज-कल उनकी वार्षिक आमदनी ... करोड़ रुपया है।

युद्ध के समय में मान्टेकार्लो में इतने जुआड़ी थे कि लोग चकित होते थे। कैसिनो के पास एक पुल स्थान है। वहाँ जाने की मनाही है। एक बार कितने ही जुआड़ियों ने आत्महत्या कर ली।

प्रिंस आव् मोनाको ने स्वयं कभी जुआ नहीं खेला। किन्तु जुआ के मालिक होने से उन्हें तीस लाख रुपया देना पड़ता है। मोनाको का प्राकृतिक दृश्य देखने के योग्य है। यहाँ भ्रमणकारियों के देखने के लिए सुन्दर स्थान कम नहीं हैं।

इस राज्य की शान्तिप्रिय प्रजा जुआ खेलने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधी है और यह खेल बन्द करने के लिए उसने न मालूम कितना आन्दोलन किया, पर इसका बन्द होना तो दूर रहा, उल्टा इसकी उन्नति ही होती जा रही है।

एक रिपोर्ट से ज्ञात होता कि इस वर्ष मान्टेकार्लो की कुल आय लगभग ६,६०,००,००० फ्रेंक हुई है अर्थात् गत वर्ष की अपेक्षा ४०,००,००० फ्रेंक अधिक आय हुई। और हर तरह के ख़र्च के बाद, संस्था को इस वर्ष १,३२,३८,००० फ्रेंक की बचत हुई है। गत वर्ष १,२७,३०,००० फ्रेंक हुई थी और सन् १९१९ में २३,५०,००,००९ फ्रेंक। संस्था के सञ्चालक कमी का यह कारण बतलाते हैं कि आज-कल खिलाड़ी लोग छोटी छोटी बाज़ी लगाते हैं। यद्यपि खिलाड़ियों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, तो भी जो विख्यात खिलाड़ी, बढ़ बढ़ कर दाँव लगाने में नाम पा चुके थे, उनमें कुछ की अनुपस्थिति के कारण संस्था की आमदनी में बड़ा धक्का लगा है। सञ्चालकों ने बड़े दुःख से लिखा है कि अब साधारणतया खिलाड़ी कुछ सौ फ्रेंक के ऊपर दाँव नहीं लगाते हैं, जिसका परिणाम यह हुआ है कि सन् १९१९ में तो २७५ फ़ी सदी लाभ हुआ, पर गत वर्ष लाभ घट कर केवल ८० फ़ी सदी रह गया।

शकुनि

१०—कौटिल्य और गीता।

गीता के काल-निर्णय के लिए अनेक प्रमाण एकत्र किये जा चुके हैं, तथापि यदि कुछ अधिक प्रमाण मिल सकें तो वे मूल प्रमाणों को पुष्ट ही करेंगे। हम यहाँ कौटिल्य के 'अर्थ-शास्त्र' से कुछ ऐसे प्रमाण देना चाहते हैं जिनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि गीता कौटिल्य के बहुत पहले की है।

कौटिल्य ने चारों वर्णों के कर्तव्यों का जो वर्णन दिया है वह गीता से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। कौटिल्य कहता है—

स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति। क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणश्चेति। वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपशुपाल्ये वणिज्या च। शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलव कर्म च·····स्वधर्मं स्वर्गायानन्त्याय च। तस्यातिक्रमे लोकस्सङ्करादुच्छिद्येत।

इनके बहुत से विचार गीता के १८ वें अध्याय के निम्नलिखित श्लोकों में मिलते हैं:—

शमोदमस्तपःशौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२ ॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३ ॥
कृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४ ॥

इन श्लोकों से ऐसा जान पड़ता है कि उपरिलिखित वाक्य लिखते समय कौटिल्य के मन में ये श्लोक रहे होंगे। इनसे यह भी देख पड़ता है कि चतुर्वर्णों के कर्म कौटिल्य के समय में गीता-काल से अधिक निश्चित हो चुके थे और इस कारण कौटिल्य ने चतुर्वर्णों के कर्मों को एक एक करके स्पष्ट गिना दिया है। इससे यह अनुमान होता है कि गीता-काल कौटिल्य से सदी दो सदी पहले था। परन्तु इन अनुमानों पर एक आक्षेप यह हो सकता है कि कौटिल्य के समय में चतुर्वर्णों की कर्म-व्यवस्था कौटिल्य के पहले से बनती आ रही थी और उसके समय में प्रायः निश्चित हो चुकी थी। समाज में जो कल्पनायें रूढ़ हो चुकी थीं उन्हीं को कौटिल्य ने यहाँ बतलाया है। वे गीता से ही ली गई हैं, ऐसा निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसके लिए हम कुछ अधिक प्रमाण देना चाहते हैं। कर्म-सम्बन्धी कल्पनायें भले ही प्रचलित समाज से ली गई हों, परन्तु उनके परिणाम-सम्बन्धी कल्पना समाज से लेना सम्भवनीय नहीं। इसका कारण यह है कि ऐसी सुदूर कल्पना समाज में रातदिन प्रचलित नहीं रहती। उसके जानने और बनानेवाले बहुधा थोड़े लोग रहते हैं। उदाहरणार्थ, कौटिल्य का यह श्लोक—चतुर्वर्णाश्रमो लोकः राज्ञा दण्डेन पालितः। स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वर्त्मसु—गीता के इस श्लोक से—स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। मिलता-जुलता है। अतएव यही अनुमान ठीक ठहरता है कि कौटिल्य का काल गीता के बाद का है। "अर्थशास्त्र"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कई स्थानों में "योगक्षेमवहाः" शब्द आया है और ऐसा जान पड़ता है कि वह गीता से ही लिया गया है।

कौटिल्य का एक श्लोक—

यान्यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः
स्वर्गैषिणः पात्र चयश्च यान्ति।
क्षणेन तानप्यतियान्ति शूराः
प्राणान् सुयुद्धेषु परित्यजन्तः॥

गीता के निम्नलिखित श्लोक से बहुत कुछ मिलता है—

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥ गी० २।३२॥

हमें ऐसा भी जान पड़ता है कि कौटिल्य ने जब उपरिलिखित श्लोक रचा तब उसके ध्यान में गीता का निम्नलिखित श्लोक भी था—

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवं रूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरु प्रवीर॥ गी० ११।४८॥

इस श्लोक के कुछ शब्द कौटिल्य के उपरिलिखित श्लोक में मिलते हैं ही, पर दोनों के छन्द भी वही अर्थात् उपजाति जान पड़ते हैं। भेद इतना ही है कि गीता के श्लोक के तीसरे चरण का तीसरा अक्षर ह्रस्व होने के स्थान में दीर्घ है। परन्तु गीता में इस प्रकार के कई छन्द हैं। और इससे यही जान पड़ता है कि गीता कौटिल्य से पुरानी है—गीता-काल में छन्दों के नियम उतने निश्चित नहीं थे जितने कौटिल्य के समय में।

हमारे ये अनुमान 'अर्थशास्त्र' के कुछ उल्लेखों से भी सिद्ध होते जान पड़ते हैं। 'अर्थशास्त्र' में दुर्योधन, युधिष्ठिर, वृष्णि, द्वैपायन आदि का उल्लेख तो है ही, परन्तु देवताभाव से कृष्ण का भी उल्लेख मिलता है। इन सब बातों से यह पता चलता है कि कौटिल्य के समय तक गीता का यथेष्ट प्रचार हो गया था। हाँ, हमें यह मानना होगा कि अकेले 'अर्थशास्त्र' के आधार पर हम यह नहीं कह सकते कि गीता कौटिल्य के कितने पहले बनी थी। जो कुछ कहा जा सकता है वह इतना ही कि गीता कौटिल्य से पुरानी है।

गोपाल दामोदर तामस्कर

विविध विषय।

१—इँग्लेंड के शाही ख़ानदान का ख़र्च।

प्राचीन समय के कुछ ही नरेश और बादशाह प्रजा से कर के रूप में वसूल किये हुए रुपये को प्रजा ही की चीज़ समझते और उसे उसी के लाभ के लिए ख़र्च करते थे। वे अपना जीवन सादगी से व्यतीत करते थे और प्रजा से प्राप्त रुपये का बहुत ही थोड़ा अंश अपने और अपने कुटुम्ब के लिए काम में लाते थे। बाक़ी को वे प्रजा ही की धरोहर मानते थे और उसका सद्व्यय करते थे। परन्तु इस तरह के पृथ्वीपाल बहुत ही थोड़े हो गये हैं। तथापि प्रजापालक पदवी यथार्थ में उन्हीं के विषय में घटित होती थी। उलटे इसके अधिकांश नरेश, बादशाह और नवाब प्रजा से प्राप्त रुपये को अपनी पैत्रिक सम्पत्ति जानते थे और अपने ऐश आराम के लिए उसे पानी की तरह बहाते थे। प्राचीन हिन्दू-नरेश इस रुपये को किस तरह ख़र्च करते थे, इसका विश्वसनीय वर्णन कहीं नहीं मिलता। परन्तु देहली के मुसलमान बादशाहों के ख़र्च का वर्णन इतिहासों में जगह पाया जाता है। उससे सूचित होता है कि उनमें से अधिकांश बादशाह करोड़ों रुपया तेल-फुलेल, नाच-राग-रंग, खाने-पीने और वस्त्राच्छादन तथा आभूषणों के लिए बर्बाद कर देते थे। हीरों के हारों, मोतियों की मालाओं, सुवर्ण और रत्न-खचित सिंहासनों और बहुमूल्य मुकुटों के निर्माण में वे अरबों रुपया फूँक तापते थे। कुछ कुछ यही हाल योरप के भी कुछ बादशाहों का था। रूस के ज़ार के अनमोल रत्नों और आभरणों का वर्णन पढ़ कर किस विचार-शील को यह सोच कर सन्ताप न हुआ होगा कि प्रजा से पाया गया रुपया क्या इसी काम के लिए था? क्या प्रजा के लाभार्थ ख़र्च न करके उसे इस तरह बरबाद कर देने का अधिकार ज़ार को था?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इँग्लेंड में पहले के नरेश कर-प्राप्त रुपये का चाहे दुरुपयोग करते रहे हों, पर अब वहाँ यह बात नहीं। अब तो वहाँ प्रजा की आज्ञा के बिना राजा को अपने ख़र्च के लिए एक झंझी भी नहीं मिल सकती। जब तक पारलियामेंट मंज़ूरी न दे दे तब तक राजा और राजवंश के लोगों को अपना ख़र्च बढ़ाने का अधिकार नहीं। जिसके लिए जितनी रक़म मंज़ूर हो गई है उससे अधिक वह नहीं पा सकता। राजवंश के ड्यूक आव् यार्क को, उनके ख़र्च के लिए, सालाना १० हज़ार पौंड अर्थात् कोई डेढ़ लाख रुपया मिलता रहा है। अप्रेल १९२२ में उनकी शादी हुई। इससे उनका ख़र्च बढ़ गया। तब पारलियामेंट में यह तजवीज़ पेश की गई कि उनको १० के बदले २५ हज़ार पौंड सालाना दिया जाया करे। यह सुनते ही मज़दूरों और उनके पक्षपातियों ने हाहाकार मचा दिया। उन्होंने कहा, यह नहीं हो सकता। हम लोग तो, लाखों की तादाद में, भूखों मरें अथवा दिन में एक बार भी मुश्किल से पेट भर सकें, शाही घराने के एक ही व्यक्ति को १५ हज़ार पौंड और दे दिये जायँ! इस विवाद और कड़ाकड़ी से यह स्पष्ट है कि इँग्लेंड का जन-समुदाय उस रुपये को अपनी ही चीज़ समझता है जिसे वह कर के रूप में अधिकारियों को देता है। और की बात तो दूर, स्वयं राजा या राजवंश-सम्भूत कुमारों तक को वह तब तक एक कौड़ी भी उनके ख़र्च के लिए नहीं देता जब तक उसका दिया जाना वह सर्वतोभाव से आवश्यक नहीं समझता। उधर इँग्लेंड के निवासियों के बनाये हुए क़ानून का यह हाल है। इधर अपने देश, भारतवर्ष, के क़ानून का यह है कि प्रजा के प्रतिनिधियों के एक नहीं तीन तीन दफ़े नमक पर कर बढ़ाना नामंज़ूर करने पर भी, उसी इँग्लेंड के राजा के प्रतिनिधि, वाइसराय, उसे, अपने अधिकार के बल पर दूना कर देते हैं!

इस सम्बन्ध में यह जान लेना मनोरञ्जक होगा कि इँग्लेंड के वर्तमान राजा और राज-पुरुषों को, उनके ख़र्च के लिए, सालाना कितना रुपया मिलता है—

प्रजा से प्राप्त रुपये में से सालाना ४ लाख ७० हज़ार पौंड राजा को मिलता है। वह इस तरह—

	पौंड
(१) जेब ख़र्च—	१,१०,०००
(२) नौकर-चाकरों की तनख़्वाह—	१,२५,०००
(३) निज ख़र्च—	१,९३,०००
(४) इमारत-ख़र्च—	२०,०००
(५) दान-पुण्य—	१३,२००
(६) फुटकर—	८,०००
कुल—	४,७०,०००

राजवंश के और लोगों को क्या मिलता है, सो भी सुन लीजिए—

	पौंड
(१) महारानी अलेग्ज़ांड्रा—	७०,०००
(२) ड्यूक आव् कनाट—	२५,०००
(३) प्रिंस आव् वेल्स को कुछ नहीं। क्योंकि उन्हें उनकी जायदाद से काफ़ी आमदनी होती है। १९२१ में उससे १,९४,०२० पौंड की आमदनी हुई थी, जिसमें से उन्हें दिये गये थे—	३३,७३६
(४) ड्यूक आव् यार्क की तरह राजा के प्रत्येक राजकुमार को—	१०,०००
(५) कुमारी मेरी—	६,०००
(६) महारानी मेरी यदि अपने पति के बाद जीती रहें तो उन्हें मिलेंगे	७०,०००

इनके सिवा राजवंश के और भी कितने ही लोगों को बड़ी बड़ी रक़में मिलती हैं, जिनका टोटल ३१,००० पौंड के लगभग पहुँचता है। पर यह सभी रुपया प्रजा की मंज़ूरी से ही मिलता है। बात यह है कि वह उसी का है। बिना उसकी इजाज़त के दूसरा उसे क़ानूनन नहीं पा सकता।

गवर्नमेंट ने इस देश में १ पौंड का दाम १०) कल्पना कर लिया है। पर असल में उसका दाम १५) ही रुपये के इधर-उधर है। इस हिसाब से पौंडों में दी गई रक़मों को रुपये में परिवर्त्तित करके देखिए, कितना रुपया इँग्लेंड की प्रजा, खुद भूखी रह कर, अपने राजा और राजवंश को दे डालने की उदारता दिखाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—साहित्य की मर्य्यादा।

साहित्य का उद्देश ज्ञान का प्रचार करना है, कम से कम सत्-साहित्य का यही उद्देश है। साहित्य से मनुष्य का जो मनोरञ्जन होता है उसका कारण है उसकी स्वाभाविक ज्ञान-लिप्सा। यदि उसमें ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा बलवती न होती तो साहित्य के किसी भी अङ्ग से उसकी मनस्तुष्टि न होती। मनुष्य मनुष्य-समाज को जानना चाहता है। इसी से इतिहास, नृतत्त्वशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति-विज्ञान आदि शास्त्रों की सृष्टि होती है। वह मनुष्य के अन्तस्तल में प्रवेश कर उसके अन्तर्निहित भावों को जानना चाहता है। इसी से काव्य का निर्माण होता है। वह प्रकृति के समस्त रहस्यों का उद्घाटन करना चाहता है। इसी से विज्ञान की रचना होती है। जब वह बाह्य प्रकृति के साथ अपना सम्बन्ध ढूँढ़ने लगता है, जब वह विश्व के मूल तक जाना चाहता है तब दर्शनशास्त्रों की आवश्यकता है। मतलब यह कि समस्त साहित्य के मूल में ज्ञान है। साहित्य के जिस अंश से हम ज्ञान का जितना ही अधिक अंश स्वायत्त कर लेते हैं वह हमारे लिए उतना ही अधिक उपादेय है। ज्ञान की प्राप्ति में ही साहित्य की उपादेयता है।

कथा, उपन्यास और आख्यायिकायें काव्य के अन्तर्गत हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि इनका उद्देश केवल मनोरञ्जन है। इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यासों से जितने अधिक लोगों का मनोरञ्जन होता है उतना अन्य किसी शास्त्र से नहीं होता। परन्तु इससे इनका महत्त्व घटता नहीं है। उपन्यास अथवा कथाओं से मनुष्य का मनोरञ्जन इसी लिए होता है क्योंकि उनसे वह अपना मनुष्यत्व पहचान लेता है। इतिहास राष्ट्र से हमें परिचित कराता है और उपन्यास व्यक्ति से। यही दोनों में भेद है। राष्ट्र अथवा समाज का ज्ञान हमारे लिए जितना हितकर है उससे कम व्यक्ति का ज्ञान नहीं है। एक में हम राष्ट्र का उत्थान-पतन देखते हैं और दूसरे में व्यक्ति का। जिस कथा से हमें मनुष्यत्व का जितना ही अधिक ज्ञान होता है वह उतना ही अच्छा समझा जाता है।

अब विचारणीय यह है कि साहित्य की मर्यादा क्या है। यह तो स्पष्ट है कि उसका उद्देश ज्ञान की प्राप्ति है। परन्तु क्या यह कहा जा सकता है कि ज्ञान की सीमा यहीं तक है, इससे अधिक हम नहीं जा सकते? उदाहरण के लिए, क्या कथाओं के विषय में यह कहा जा सकता है कि उनमें हमें श्रेष्ठ पुरुषों के ही जीवन की महत्ता देखनी चाहिए, क्षुद्रों की क्षुद्रता देखने से लाभ क्या? प्राचीन काल की कथाओं में राजा और रानी की ही कहानियाँ वर्णित हुई हैं। रामायण, महाभारत, रघुवंश आदि सभी काव्यों के नायक महापुरुष हैं। चरित्र-हीन, नीच, क्षुद्र जनों को अपनी कृति-द्वारा अक्षय करने की चेष्टा किसी ने नहीं की है। तो क्या ऐसे मनुष्यों का जीवन अवर्णनीय है? निवेदन है कि आँख मूँद लेने से हमारे लिए कोई नहीं रह जाता। परन्तु संसार उठ नहीं जाता। वह जहाँ का तहाँ बना रहता है। इसी लिए जो आँख मूँद कर चलने की चेष्टा करते हैं वे ठोकर भी खाते हैं। अतएव नीति की दृष्टि से तो यह आवश्यक है कि मनुष्य भलाई और बुराई दोनों से परिचित हो जाय, परन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि हमें मनुष्य-स्वभाव का पूरा ज्ञान होना चाहिए। एक चरित्र-हीन के जीवन से मनुष्यत्व का जो विकास हुआ है वह हमारे लिए उपेक्षणीय नहीं है। ऐसे ग्रन्थों के पाठ से चित्त कलुषित नहीं होता। यथार्थ ज्ञान से सहानुभूति उत्पन्न होती है। जिन लेखकों में यह शक्ति नहीं है कि वे मनुष्य के अन्तस्तल तक पहुँच सकें उन्हीं की रचनाओं में मनुष्यत्व का विकृत रूप प्रदर्शित होता है, जिससे चित्त विकृत होता है। मनुष्य के लिए अधःपतन अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु इस पतनावस्था में जो प्रवृत्तियाँ काम करती हैं उन्हीं में यह शक्ति भी रहती है कि वे मनुष्य को उच्चतम अवस्था में ले आवें। अतएव उनका ज्ञान हमारे लिए अनिष्टकर नहीं है।

साहित्य के लिए सबसे अधिक अनिष्ट-कर उन लोगों का कार्य है जो ज्ञान के क्षेत्र को सङ्कुचित कर मनुष्य को आगे बढ़ने से रोका करते हैं। प्राचीन परम्परा की दुहाई देनेवाले यही चाहते हैं कि बचपन में हम जो कपड़े पहनते थे उन्हीं को अवस्था बढ़ जाने पर भी हम पहने रहें। यदि हमारे हाथ-पैर बढ़ गये हैं तो हमें अपने हाथ-पैर को काट कर कपड़े के अनुकूल बना लेना चाहिए। ऐसे लोगों के लिए मनुष्य की अपेक्षा आवरण अधिक महत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का है। साहित्य का कार्य-क्षेत्र पहले से कितना अधिक व्यापक हो गया है, इसकी ओर इन लोगों की दृष्टि नहीं जाती है। ज्ञान के क्षेत्र में भी ये जाति-भेद स्थिर करना चाहते हैं। हिन्दी के कुछ प्रकाण्ड पण्डितों के लिए पाश्चात्य साहित्य की चर्चा हिन्दी के लिए अशुभ सूचना है। इन विद्वानों के लिए तत्त्व अन्यत्र है ही नहीं। ये अपने ज्ञान-दण्ड से सारे संसार के ज्ञान को माप लेते हैं और फिर भी इनका ज्ञान दो अङ्गुल बढ़ा ही रहता है। जिन्हें पाश्चात्य साहित्य से ज़रा भी सम्पर्क नहीं वे श्रेष्ठ पाश्चात्य लेखकों के सम्बन्ध में बेधड़क अपनी राय दे डालते हैं। हिन्दी में ये उच्छृङ्खलता के विरोधी स्वयं कितने उच्छृङ्खल हो गये हैं, इसका अनुमान करना कठिन है।

साहित्य की मर्यादा तभी अक्षुण्ण रहती है जब ज्ञान की वृद्धि होती रहती है। जहां अज्ञान है वहीं दुराग्रह, हठ और अन्धविश्वास का साम्राज्य रहता है। वहीं साहित्य की अवमानना होती है। जो ज्ञान के भक्त होते हैं वे देश और काल का विचार कर ज्ञान का निरादर नहीं करते। ज्ञान पर किसी जाति-विशेष का स्वत्व नहीं है। जिन्होंने साहित्य के क्षेत्र में किसी भी सत्य का आविष्कार किया है वे सभी लोगों के लिए पूज्य हैं। उनको अपनाना लज्जा की बात नहीं है। उनको अपनाने से हम अपना सम्बन्ध समस्त मानवजाति से जोड़ते हैं। हिन्दी-साहित्य में कितने ही महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ हैं। उनका हमें गर्व है। परन्तु अभी वह साहित्य उन्नति की चरम सीमा तक नहीं पहुँच गया है। सच तो यह है कि उन्नति की कोई सीमा ही नहीं है। इसी लिए विद्वान् सदैव अपने साहित्य को उन्नत करने की चेष्टा करते रहते हैं। उन्नति के लिए सबसे अधिक आवश्यक यह है कि हम संसार की अन्य उन्नतिशील जातियों के साहित्य का अध्ययन करें। अपने को ही सरस्वती का वर-पुत्र समझ कर जो लोग मिथ्याभिमान में पड़े रहते हैं उन्हीं के द्वारा साहित्य की मर्यादा नष्ट होती है। हमें विश्वास है कि जब हिन्दी के विद्वान् साहित्य की वृद्धि के लिए अपने ज्ञान का उपयोग करेंगे तभी हमारे साहित्य की उन्नति होगी। जब तक उनका ज्ञान दूसरों का तिरस्कार करने में लगा रहेगा तब तक न तो साहित्य की मर्यादा रहेगी और न उसकी कुछ उन्नति ही होगी।

३----भौगोलिक उन्नति।

लन्दन में एक रायल जिओग्रेफिकल सोसायटी है। वह भौगोलिक ज्ञानवृद्धि के लिए प्रयत्न किया करती है। उसकी प्रेरणा से कितने ही लोग दुर्गम स्थानों में जाते हैं और अनेक विपत्तियां झेल कर उनका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसी सोसायटी के वार्षिक अधिवेशन में उसके सभापति ने उसके वर्ष भर के कार्य का परिचय दिया। उन्होंने कहा—गत वर्ष सर फ्रांसिस यंग हसबैंड ने हमको उस दल की सूचना दी थी जो सभी साधनों से सम्पन्न होकर हिमालय की सर्वोच्च श्रेणी के अन्तिम शिखर पर चढ़ने के लिए कटिबद्ध हो रहा था। उस समय यह नहीं कहा जा सकता था कि यह दल अपने उद्देश में कहां तक सफल होगा, क्योंकि सफलता की आशायें और असफलता की आशंकायें समानरूप से प्रबल थीं। यद्यपि मेलोरी और फिंच ने पहाड़ों पर उस ऊँचाई तक चढ़ कर दिखा दिया था, जिस तक उस समय कोई पहुँचने की आशा नहीं करता था, तो भी पूर्ण सफलता उनके लिए दूर की बात थी। मेलोरी, सोमेरविल, नार्टन आदि बिना आक्सीजन की सहायता के २६,९८५ फीट की ऊँचाई पर और फिंच और ज्योके ने आक्सीजन की सहायता लेते हुए २,७२,००० फीट की ऊँचाई पर चढ़ कर संसार को मनुष्य के अदम्य साहस और अपूर्व धैर्य का दिव्य उदाहरण दिया है। भौगोलिक उन्नति के इतिहास में इन लोगों की विजय को अक्षय स्थान मिलेगा।

यद्यपि इस वर्ष शिखर पर चढ़ने के लिए नवीन दल का संगठन नहीं हो सका है, तथापि इसका मतलब यह नहीं है कि मनुष्य ने पर्वत के आगे हार स्वीकार कर ली है। यद्यपि मनुष्य की शारीरिक शक्ति बहुत ही तुच्छ है तो भी प्रकृति की बाधाओं पर विजय प्राप्त करने की उसके हृदय में प्रबल आकांक्षा विद्यमान रहती है। सन् १९२२ के दल के अनुभवों से हमें बड़ा लाभ हुआ है। अब यह बात निश्चित हो गई है कि कम से कम २५,५०० फीट की ऊँचाई पर मनुष्य के रहने योग्य डेरा बन सकता है। इससे हमें यह दृढ़ आशा होगई है कि आगामी वर्ष दलों को अधिक सफलता होगी।

हिमालय पर्वत के अतिरिक्त एक दूसरे हिमाच्छादित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेश में प्रवेश करने में भी जिसके लिए मनुष्य चिरन्तन काल से उद्योग करता आता है। गत वर्ष एक दल को बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है। सन् १९२१ के वसन्त काल में दक्षिणी ध्रुव की छानबीन करने के लिए एक संगठन होने लगा था। भाग्यवश इसका प्रेरक और निरीक्षक एक ऐसा व्यक्ति था जो असाधारण कृत्य करने के लिए सदैव उत्सुक रहता था। इसी इच्छा के प्राबल्य के कारण अँगरेज़ जाति इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हुई है। किन्तु दुःख की बात है कि जब इसके नायक सर अर्नेस्ट शेकेलटन सभी कठिनाइयों का सामना करके और समुद्रयात्रा की प्रारम्भिक विपत्तियों को सहन करके, एन्टार्कटिक समुद्र के द्वार पर पहुँचे तब एकाएक उनका हृदयस्पन्दन रुक गया। उनकी बड़ी बड़ी आशायें उनके हृदय में लीन हो गईं। ब्रिटेन को ऐसे पुरुषों के सम्मान करने में सदैव बड़ी प्रसन्नता होती है। यह हर्ष का विषय है कि इस व्यक्ति की स्मृति को चिरस्थायी करने के लिए एक राष्ट्रीय स्मारक बनाये जाने का आयोजन हो रहा है। यह भीषण बाधा होने पर भी कमान्डर फ्रेंक नाइल्ड और मिस्टर रौवेर के कठिन परिश्रम के द्वारा यह दल अपने उद्देश्य में सफल हुआ। इन लोगों ने दक्षिणी ध्रुव की अच्छी तरह छान-बीन की है जिससे समीपवर्त्ती समुद्रों के भौगोलिक विवरण में बहुत कुछ स्पष्टता और पूर्णता आगई है।

इनके अतिरिक्त गत वर्ष अफ़्रीका के मध्यभाग के दुर्गम स्थानों—किलमिनजारो, मुफमविरो, वहरेगजल-में मनुष्य की पैठ हो गई है। चीनी तिब्बत के अगम्य स्थानों की भी खोज की गई और जनरल पेरेरी ने चीन से लासा होते हुए भारतवर्ष तक यात्रा की। इसका अद्भुत, रोचक और ज्ञानवर्द्धक विवरण सोसायटी की पत्रिका में प्रकाशित हो चुका है।

अन्त में सभापति ने कहा कि सन् १९१४ में महायुद्ध के कारण मनुष्य के सभी ज्ञानवर्द्धक व्यापारों में थोड़ी बहुत रुकावट पड़ गई थी, सुतरां भौगोलिक अनुसन्धान का आन्दोलन भी शिथिल पड़ गया था। किन्तु यह बड़े हर्ष का विषय है कि आज हमको महायुद्ध के समाप्त होते ही आन्दोलन के पुनः जागृत होने के अच्छे लक्षण दिखाई दे रहे हैं।

सोसायटी के इस विवरण से यह साफ़ मालूम होता है कि ज्ञान-लिप्सा किसे है। जो साहस-सम्पन्न होते हैं वही ज्ञान के सच्चे अधिकारी हैं। वे विघ्न और बाधा को तुच्छ समझते हैं। बाधा की कौन कहे, असफलता भी उन्हें अपने निश्चय से नहीं डिगा सकती है। वे अपने प्रयत्न में लगे ही रहते हैं और अन्त में उन्हें सफलता होती ही है।

४—चीनी वर्णमाला का परिष्कार।

चीनी वर्णमाला में चालीस हज़ार वर्ण हैं। ये वर्ण नहीं, किन्तु शब्दों के सङ्केत-मात्र हैं। इस शब्द-माला की विशाल सङ्केतमाला के कारण चीन में सदा निरक्षरता का साम्राज्य रहा है। इस समय वहाँ मुश्किल से सौ में पाँच आदमी साक्षर हैं। राष्ट्र की इस त्रुटि को दूर करने के लिए वहाँ के नेता इधर कुछ समय से अधिक प्रयत्नशील रहे हैं। इसी का परिणाम है जो वहाँ ध्वन्यात्मक वर्णमाला की सृष्टि हुई और देश की निरक्षरता दूर करने के लिए उसका प्रचार हुआ।

परन्तु अभी हाल में ही जो अभिनव कार्य हुआ है वह जितना आश्चर्य-जनक है उतना ही चीन के पक्ष में लाभदायक भी है। इसका श्रेय मरगेनथालर लीनो-टाइप कम्पनी को है। इसने चीनी वर्णमाला के चालीस हज़ार शब्द-सङ्केतों की जटिलता बड़ी सुन्दरता के साथ दूर कर दी है। चीनी ध्वन्यात्मक वर्णमाला के लिए जो लीनो-टाइप मशीन इस कम्पनी ने तैयार की है उसमें केवल चालीस वर्णों से उपर्युक्त वर्णमाला का पूरा काम निकल जाता है। परीक्षा करने पर वह बिलकुल निर्दोष सिद्ध हुई है। अतएव चीन में उसके प्रचार की तत्काल योजना की गई। इसके प्रचार के आयोजन का समर्थन वहाँ की सरकार, ईसाई मिशनरी तथा शिक्षा-सम्बन्धी-संस्थायें भी कर रही हैं। अतएव अब इस बात की पूर्ण आशा है कि ध्वन्यात्मक वर्णमाला के प्रचार के साथ यह मशीन भी चीन की निरक्षरता दूर करने में पूरा भाग लेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनी कम्पोज़ीटर को अपना काम करने में जितना परिश्रम करना पड़ता है उतना और किसी भाषा के कम्पोज़ीटर को नहीं करना पड़ता। उसे चालीस हज़ार टाइप के केसों का उपयोग करना पड़ता है, जो उसके कमरे में भरे रहते हैं। यह ज़रा सोचने की बात है कि इच्छित वर्ण तुरन्त प्राप्त करने के लिए उसे किस प्रकार की स्मरण-शक्ति की आवश्यकता होगी। उसे कितने केसों को ढूँढ़ना पड़ता होगा। परन्तु अभ्यास के कारण वे लोग इतने अधिक कुशल हो जाते हैं कि वे अपना काम मुस्तैदी से शीघ्रता के साथ करते रहते हैं। ऐसी दशा में यदि वहाँ लीनो टाइप मशीन का समुचित प्रचार हो जाय तो चीन के छापेख़ानों की भी ख़ासी उन्नति हो जाय और साथ ही देश में साक्षरता की वृद्धि में पूरी सहायता भी पहुँचे।

चीनी भाषा के प्रसिद्ध अध्यापक मिस्टर पोर्टर का कहना है कि चीन के अधिक भाग में मंडारिन भाषा बोली जाती है। वहाँ केवल ५ फ़ी सदी लोग पढ़ लिख सकते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि सरकार द्वारा अनुमोदित धन्यात्मक वर्णमाला के माध्यम-द्वारा कम से कम ९० फ़ी सदी चीनी साक्षर करा दिये जायँ। मंडारिन भाषा-भाषी प्रान्तों में आज-कल ध्वन्यात्मक वर्णमाला प्रचलित है। यही वर्णमाला वहाँ लिखने-पढ़ने का माध्यम मानी गई है। यह वर्णमाला प्राचीन शब्दात्मक वर्णमाला का परित्याग करने के लिए नहीं स्वीकार की गई है, किन्तु लोगों की समझ में प्राचीन वर्णमाला आ जाय, इसलिए इसका प्रचार हुआ है। सरकारी तथा मिशनरी स्कूलों में अब सरल, लिखित चीनी भाषा सिखलाई जाती है। एक वर्ष पहले वहाँ उसके सम्बन्ध में लोगों को यथार्थ बात नहीं मालूम थी। केवल कुछ इने गिने लोग और वे भी मुख्यतः न्यूयार्क या सन फ़्रांसिस्को के निवासी, जो उसकी उन्नति चाहते थे, उसे जानते थे। परन्तु वह बड़े बड़े विश्वविद्यालयों में स्वीकृत कर ली गई है। इसके सिवा समाचार-पत्रों के कारण उसका प्रचार निरक्षर लोगों में भी होने लगा है। यद्यपि लीनो टाइप का उपयोग अब तक चालीस भाषाओं में हो चुका है तथापि उपर्युक्त चीनी वर्णमाला को छाप कर सफलता प्राप्त करने में इस मशीन ने कमाल कर दिखाया है। अभी तक चीनी कुलियों के लिए शब्दात्मक चीनी वर्णमाला के केवल कुछ सुन्दर और कठिन वर्ण पहचान लेना ही बस था, परन्तु अब वे इस बात की आशा कर सकते हैं कि लीनो टाइप की बदौलत वे भी दैनिक पत्र पढ़ने का आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

उपर्युक्त अध्यापक महोदय कहते हैं कि चीन के राष्ट्रीय शिक्षा-बोर्ड ने ध्वन्यात्मक वर्णमाला के सम्बन्ध में अपनी स्वीकृति दे दी है और इस बात की सिफ़ारिश की है कि उसका उपयोग सब स्कूलों में किया जाय। चीनी प्रजातन्त्र के प्रारम्भिक काल में चीनी विद्वानों की एक सभा ने अपनी शब्दमाला के उच्चारण के आदर्श के लिए सात-आठ हज़ार वर्ण और धन्यात्मक वर्णमाला के रूप में उनतालीस वर्ण-चिह्न स्वीकृत किया था तब उसने रोमन-वर्णों के उपयोग के लिए अपना मत दिया था।

ध्वन्यात्मक वर्णमाला की स्वीकृति के सम्बन्ध में अपना मत देते समय चीन-सरकार ने नीचे लिखी हुई बातों की ओर ध्यान दिया था। (१) समग्र चीन में बोली जानेवाली भाषा का आदर्श क़ायम हो जाय। (२) उपर्युक्त वर्णमाला की समुन्नति हो जिसमें बोली जानेवाली भाषा सरलता-पूर्वक लिखी जा सके। (३) बोली और लिखी जानेवाली भाषा में एकता क़ायम हो जाय।

अध्यापक महोदय का कहना है कि राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक वर्णमाला के प्रचार से लिखित चीनी का सर्वथा परित्याग न होगा। इसका उदाहरण जापान है।

५—मौलिकता का स्वरूप।

मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक की बात अब पुरानी पड़ गई है। पाठकों ने हिन्दी के पत्रों में उसके सम्बन्ध में कई प्रकार के लेख पढ़े होंगे। अभी हाल में सम्मेलन-पत्रिका ने मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक के निर्णायकों की सम्मतियां प्रकाशित की हैं। उनसे हमें कई नई बातें मालूम हुई हैं। अतएव उनके कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक के लिए वही ग्रन्थ चुना जा सकता है जो मौलिक हो और सर्वोत्तम हो। अतएव निर्णायकों ने इन्हीं दो शब्दों की व्याख्या की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमान् पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—इस वर्ष साहित्य के किसी मौलिक ग्रन्थ के लिए पुरस्कार दिया जानेवाला है। विचार अब इस बात का करना है कि मौलिक ग्रन्थ किसे कहते हैं। मौलिक का शाब्दिक अर्थ शायद सम्मेलन यह समझता हो कि जिसकी उत्पत्ति मूल (जड़) से हो; जिसकी जड़—जिसका आधार—उसीमें हो; जिसने अपनी उत्पत्ति के लिए और कहीं से कुछ उधार या साहाय्य न लिया हो—अर्थात् जो एक-दम ही नया हो। यदि यही अर्थ हो तो भली भला। यह न हो तो सम्मेलन बताने की कृपा करे कि "मौलिक" शब्द का प्रयोग उसने किस अर्थ में किया है। तब तक मैं माने लेता हूँ कि उसने इस शब्द का वही अर्थ समझा है जो मैंने समझा है। संसार में मूल पदार्थ बहुत थोड़े हैं। दार्शनिकों और विज्ञानवेत्ताओं के माने हुए मूल पदार्थों के मूलत्व को भी धक्के लग रहे हैं। फिर भला मूलता का पता मेरे सदृश अल्पज्ञ कैसे लगा सकता है। बिजली की शक्ति परिच्छिन्न भाव से, शायद सृष्टि के आरम्भ से ही विद्यमान है। विद्युच्छास्त्रियों ने अपने ग्रन्थों में उस शक्ति का विवेचन-मात्र किया है। वह थी पहले ही से, पर अज्ञात थी। राम और कृष्ण थे दोनों पहले ही से। रामायण आदि में उनका अज्ञात या अल्पज्ञात चरित-मात्र लिखा गया है। इस दृष्टि से सम्पूर्ण मौलिक ग्रन्थ मिलना बहुत कठिन है। फिर आज तक जितने ज्ञान का संचय हो चुका है और भिन्न भिन्न भाषाओं में जितने ग्रन्थ बन चुके हैं उनके परिशीलन और पाठ का प्रभाव लेखकों और विद्वानों के विचारों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। उनका कुछ न कुछ संस्कार हृदय पर, बीजरूप में, अवश्य ही रह जाता है। अतएव नई पुस्तकों में भी, चाहे वे कितनी ही मौलिक क्यों न मानी जायँ, प्राचीनों के विचार किसी न किसी रूप में घुस ही जाते हैं। इस दशा में सम्मेलन को मौलिक शब्द की परिभाषा बता देना था। इस सन्देहावस्था में मैं मान लेता हूँ कि जिस पुस्तक में नवीनता का अंश अधिक हो वही मौलिक समझी जायगी। और इसी अर्थ को ध्यान में रख कर मैं पुस्तकों की जाँच करने जाता हूँ। नियम ३ में एक शब्द है "सर्वोत्तम"। इस सर्वोत्तम की भी कोई परिभाषा नहीं बताई गई। अतएव विवश होकर मुझे अपनी ही मन्दमति से काम लेना पड़ेगा। सर्वोत्तम जानने के लिए मैं पुस्तकों की जाँच कई दृष्टियों से करूँगा, यथा—

(१) साहित्य की दृष्टि से
(२) उपादेयता की दृष्टि से
(३) प्रचाराधिक्य की दृष्टि से, और
(४) उद्देश और उसकी सिद्धि की दृष्टि से।

साहित्याचार्य पण्डित चन्द्रशेखर शास्त्री की सम्मति सुनिए—जो पुस्तक जिस विषय पर लिखी गई है वह तभी सर्वोत्तम समझी जानी चाहिए, जब कि प्राचीन परम्परा की रक्षा करते हुए, ग्रन्थकार-सम्प्रदाय की शिष्टताओं का अनुसरण करते हुए, ग्रन्थकार योग्यतापूर्वक विषय का प्रतिपादन करें, उस विषय में सर्वसम्मत नवीनता लावें। सर्वसम्मत से मेरा मतलब यह है, ग्रन्थकार विषय-प्रतिपादन के लिए जिस नवीन शैली का अनुसरण करें, जो नवीन बातें लिखें वे पाठकों के सामने आते ही उनकी निज की बातें हो जायँ। वह नवीनता उन्हें प्रिय हो, वह शैली, वे बातें नवीन होने पर भी लोगों को रुचिकर हों। वह इतनी स्पष्ट हो कि उसे देखते ही लोग यह समझने लगें कि यह वस्तु मेरी परिचित है। यह विषय की सर्वसम्मत नवीनता ही ग्रन्थकार को नवीन बनाती है और उसके कार्य को चिरस्थायी बनाती है। यह परिभाषा केवल साहित्य की पुस्तकों के लिए मैंने निश्चित की है।

श्रीमान् पण्डित अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी ने लिखा है—"मौलिक रचना" किसे कहेंगे। उल्था तो अवश्य मौलिक रचना नहीं है, पर क्या भाष्य भी मौलिक की श्रेणी में नहीं रह सकते? यदि भाष्य नहीं रह सकते तो फिर दूसरे ग्रन्थों के आधार पर अपनी टीका टिप्पणी सहित कुछ लिखना भी मौलिक की कोटि में नहीं आ सकता। यदि यह तर्क ठीक है तो फिर रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि भी मौलिक नहीं हो सकती। इसके सिवा साहित्य का निर्माण भी असम्भव हो जायगा। इसलिए विचारों की नवीनता मौलिकता है, पर उन्हें विचित्रतापूर्वक समझाना भी मौलिकता की श्रेणी में ही आता है। इसलिए भाष्य और अन्य ग्रन्थों के आधार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ढङ्ग पर टीका टिप्पणी सहित लिखी हुई पुस्तकें भी मौलिक समझ कर हमने प्रथम श्रेणी में रक्खी हैं।

मौलिकता की उपर्युक्त व्याख्यायें पढ़ने से यह मालूम हुआ कि मौलिकता में विचारों की नवीनता चाहिए। वाजपेयीजी की सम्मति में पुराने विचारों को नये ढङ्ग से समझाने में भी मौलिकता है। साहित्याचार्यजी चाहते हैं कि शैली नवीन हो, पर प्राचीन परम्परा की रक्षा की जाय और ग्रन्थकार-सम्प्रदाय की शिष्टता का अनुसरण किया जाय। आपकी राय में सर्व-सम्मत नवीनता ही ग्रन्थकार को नवीन बनाती है। यह सर्व-सम्मत नवीनता क्या चीज़ है, इसकी भी आपने व्याख्या की है। ग्रन्थकार जो नवीन बातें लिखें वे पाठकों के सामने आते ही उनकी निज की बातें हो जायँ। इसके सिवा वे नवीन बातें पाठकों को रुचिकर भी हों (क्योंकि लेखकों की रुचि विकृत हो सकती है, पाठकों की नहीं। सभी पाठक बहुज्ञ और सुरुचि-सम्पन्न होते हैं)। फिर वे इतनी स्पष्ट भी हों कि उसे देखते ही लोग समझने लगें कि यह वस्तु मेरी परिचित है, (अर्थात् यह नवीन वस्तु पुरानी चीज़ है जिसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ)। शास्त्रीजी की इस व्याख्या में कठिनता एक बात की है। वह यह कि प्रत्येक पाठक की राय जानना मुश्किल है।

कुछ भी हो, हमें हर्ष है कि हिन्दी में अब मौलिकता का स्वरूप स्पष्ट हो गया।

६—पञ्जाब में शिक्षा-प्रचार।

पञ्जाब के शिक्षा-विभाग के मन्त्रिमण्डल ने प्रान्त की नीच जातियों के शिक्षा के सम्बन्ध में कमिश्नरों और डिप्टी कमिश्नरों के नाम एक पत्र प्रकाशित कराया है। सरकार का यह अनुभव है कि अब लोगों के हृदय से नीच जातियों को पृथक् रखने का परम्परागत भाव अपने आप उठता जाता है और पञ्जाब के स्कूलों में नीच जातियों के बच्चों को भरती करते समय अब कम आपत्ति की जाती है। इस वर्ष यह अनुमान किया गया है कि स्कूलों और कालिजों के विद्यार्थियों की संख्या में कम से कम १०,००,००० की वृद्धि होगी और यह आशा की गई है कि यह वृद्धि नीच जातियों के बच्चों के द्वारा होगी। इसमें क्रिश्चियन मिशनरियों और स्थानीय सार्वभौमिक उद्देश रखने वा संस्थाओं की, जिन्होंने इन लोगों में शिक्षा-प्रचार का प्रयत्न किया है, प्रशंसा की गई है। मन्त्री महोदय को आर्थिक कठिनाई होने पर भी यह चिन्ता लगी हुई है कि वे जहाँ तक हो सके, इन लोगों को प्रोत्साहन और सहायता देते रहें। नीच जातियों में शिक्षा-प्रचार की उत्तरोत्तर वृद्धि के उपाय सोचे जा रहे हैं। इन्स्पेक्टर ध्यान देकर देख रहे हैं कि आज-कल स्कूलों में नीच जाति के विद्यार्थी किस संख्या में प्रवेश करते हैं। वे अध्यापक भी प्रशंसनीय हैं जो बच्चों की रक्षा और उन्नति के लिए खूब उद्योग कर रहे हैं। ऐसे कामों में सबसे अधिक भाग लेनेवाले स्कूलों को सरकार विशेषरूप से आर्थिक सहायता देगी। रात्रि-पाठशालाओं का खुलना पञ्जाब में शिक्षा के विकास का द्योतक है। इनसे नीच जाति के लोग खूब लाभ उठा रहे हैं। मन्त्री महोदय का विश्वास है कि हमें अभी तक जो सफलता मिली है वह हमारी भविष्य उन्नति की भूमिका-मात्र है। वे आशा करते हैं कि भारत की निरक्षरता और अज्ञान दूर करने और ऊँच और नीच जातियों के बीच की दीवार को मिटाने में पञ्जाब भारत के अन्य प्रान्तों का मार्ग-प्रदर्शक होगा। एवमस्तु।

७—भारतीय स्त्रियों की हित-चिन्तना।

हमारे देश में निरक्षरता और अन्ध-विश्वास का योंही अखण्ड राज्य है। फिर दरिद्रता के कारण लोग अपनी हित-चिन्तना में असमर्थ हैं। राजा का प्रधान कर्तव्य यही है कि वह अपनी प्रजा की हित-चिन्तना करे। प्रसूता स्त्रियों और शिशुओं की अकाल-मृत्यु रोकना उसका परम धर्म है। हमारे प्रान्त में मातृधर्म और बालचर्या की शिक्षा की व्यवस्था के सम्बन्ध में इस समय जो स्कीमें काम कर रही हैं उनके सम्बन्ध में सरकारी पबलीसिटी विभाग का यह कथन है—

देशी दाइयों के सुधार के लिए सन् १९१९ के मई में एक नई व्यवस्था कार्य में परिणत की गई थी। इसका श्रीगणेश विक्टोरिया मेमोरियल स्कालर्शिप फ़ंड के प्रताप से हुआ था। इस नई व्यवस्था के अनुसार पहले पहल मेरठ, आगरा और लखनऊ में कार्य का आरम्भ हुआ। इसके बाद इलाहाबाद, कानपुर और फ़ैज़ाबाद भी उसके केन्द्र बनाये गये। परन्तु इन पिछले केन्द्रों में दाइयों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधार की व्यवस्था में लाभजनक लक्षण न देख पड़े। अतएव ये केन्द्र तोड़ दिये गये, पर पहले के केन्द्रों में पूर्ववत् काम जारी रहा। इस व्यवस्था का कार्य उपर्युक्त मेमोरियल फ़ंड और प्रान्तिक सरकार के धन की सहायता से चलता है। केन्द्रों के व्यय के लिए प्रान्तिक सरकार दस हज़ार रुपया प्रतिवर्ष देती है और देख-रेख रखने के लिए सुपरवाइज़र के ख़र्च के लिए उपर्युक्त फ़ंड से ६४३०) रुपया प्रतिवर्ष मिलता है। प्रत्येक केन्द्र का कार्य-सञ्चालन एक स्थानिक कमिटी करती है। वहाँ के म्युनिसिपल बोर्ड का चेयरमैन उस कमिटी का सभापति बनाया जाता है और सरकारी हेल्थ-आफ़िसर तथा डफ़रिन हास्पिटल की दाई अवैतनिक मन्त्री का काम करते हैं। इसके सिवा एक स्थानिक दाई भी प्रत्येक केन्द्र में नियुक्त है।

उपर्युक्त स्कीम की कार्य-व्यवस्था संयुक्त-प्रान्त के सिविल अस्पतालों के इन्स्पेक्टर जनरल के सहकारी के निरीक्षण में होती है। अतएव वे उसके केन्द्रों का परिदर्शन भी करते हैं। गत वर्ष डाक्टर एम० आई० बालफ़ोर, सी० एम० ओ०, डब्ल्यू० एम० एस० ने भी केन्द्रों का निरीक्षण किया था और व्यावहारिक शिक्षा भी दी थी। प्रत्येक केन्द्र में पोस्टर, माडल, कार्टून आदि का प्रदर्शन भी किया गया था और इनका प्रदर्शन उन नगरों में भी किया गया था जहाँ के केन्द्र बन्द कर दिये गये हैं। स्कूल की लड़कियों और पर्दा में रहनेवाली स्त्रियों को भी उपर्युक्त प्रदर्शन दिखलाने के लिए दिन निश्चित कर दिये गये थे। उस समय उन्हें व्याख्यान भी सुनाया जाता था।

उपर्युक्त स्कीम के साथ ही एक और स्कीम काम कर रही है। इसके अनुसार उच्च श्रेणी की दाइयाँ तैयार होंगी। तदनुसार अलीगढ़, बरेली, मुरादाबाद, बनारस, लखनऊ, कानपुर, इलाहाबाद, फ़ैज़ाबाद, मेरठ और गोरखपुर के डफ़रिन हास्पिटल में उनकी शिक्षा की व्यवस्था की गई है। इस समय जो स्त्रियाँ शिक्षा पा रही हैं उन्हें बारह रुपया की मासिक वृत्ति मिलती है। इसके सिवा रहने को मकान और कपड़ों के लिए आवश्यक भत्ता भी दिया जाता है। जिन स्थानों में मकान का प्रबन्ध नहीं है वहाँ उन्हें उसका किराया दे दिया जाता है। उनके लिए जैसी शिक्षा की व्यवस्था की गई है वह संयुक्त-प्रान्त के मेडिकल एक्ज़ामिनेशन्स स्टेट-बोर्ड की दाई-परीक्षा के दर्जे के बराबर है। परन्तु स्टेट-बोर्ड-परीक्षा ऊँचे दर्जे की परीक्षा है। अतएव अब एक दूसरे ढङ्ग की परीक्षा की आयोजना की गई है। यह उपर्युक्त परीक्षा से सरल है। इस परीक्षा का भार उपर्युक्त सहकारी इन्स्पेक्टर जनरल और एक सनद-प्राप्त दाई को दिया गया है।

उपर्युक्त स्कीम की व्यवस्था का व्यय छः हज़ार रुपया की उस सरकारी रक़म से चलता है जो स्थानिक सरकार डफ़रिन फ़ंड की प्रान्तिक कमिटी को प्रतिवर्ष देती है।

जिस समय मातृधर्म और बालचर्या-सम्बन्धी आल-इंडिया लेडीचेम्सफ़ोर्ड लीग की स्थापना की गई थी तभी से संयुक्त प्रान्त में उसकी एक शाखा-सभा स्थापित करने का विचार प्रान्तिक सरकार कर रही है। यहाँ के सिविल अस्पतालों के सहकारी इन्स्पेक्टर जनरल की प्रार्थना पर उपर्युक्त सर्व-भारतीय लीग के नियोजक मन्त्री मिसेज़ बीमिस ग्रांट लखनऊ आईं और सिविल अस्पतालों के इन्स्पेक्टर जनरल के दफ़्तर की सभा में शरीक हुईं। उन्होंने वहाँ एक व्याख्यान देकर कार्यकारी सभा के सदस्यों को लीग के लाभ और उद्देश समझाये। यही नहीं, किन्तु तब तक के लिए भिन्न भिन्न कमिटियाँ बना दी गईं जब तक संयुक्त-प्रान्त में उपर्युक्त लीग की शाखा-सभा का कार्य-सञ्चालन करने के लिए एक प्रबन्ध कमिटी नहीं बन जाती।

एक दूसरी स्कीम के अनुसार बरेली में अलग काम हो रहा है। इस सम्बन्ध की संस्था का नाम मिसेज़ स्टब्स मैटर्निटी एंड चाइल्ड वेलफ़ेर है। बरेली-निवासियों की हित-कामना में यह संस्था बड़ी मुस्तैदी से काम कर रही है। इसका सङ्गठन करने के लिए मिसेज़ स्टब्स के बुलाने पर सहकारी इंस्पेक्टर-जनरल बरेली गये थे और उसके सङ्गठन में सहायता की थी। सन् १९२२-२३ में स्थानिक सरकार ने इस संस्था को सहायता-स्वरूप दो हज़ार रुपया दिया था। इसके सिवा लखनऊ की म्यूनिसिपल्टी ने वज़ीरगञ्ज में एक अपनी स्कीम अलग जारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—हिन्दी में शृङ्गार-रस के काव्य।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठीजी ने हिन्दी का एक संक्षिप्त इतिहास लिखा है। प्रयाग के हिन्दी-मन्दिर से वह प्रकाशित हुआ है। मूल्य ।=) है। उसमें उन्होंने अनेक नई बातें लिखी हैं। एक जगह उन्होंने हिन्दी के शृङ्गार-रसात्मक काव्यों के विषय में अपनी यह राय दी है—

हिन्दी-कवियों में शृङ्गारी कवियों की संख्या सब से अधिक है। इनमें कुछ तो बहुत उच्च कोटि के हैं, उन्होंने हृदय के सौन्दर्य पर बड़ी ललित कविता की है। भक्त कवियों ने जहाँ कहीं प्रसङ्गवश शृङ्गार का वर्णन किया है, उसमें विशुद्ध प्रेम और मानव-स्वभाव की सच्ची झलक दिखाई पड़ती है। वे सदाचार की सीमा के बाहर नहीं गये हैं। किन्तु सिर से पैर तक शृङ्गार में डूबे हुये कवियों ने सदाचार को लात मारी है। उन्होंने नायक-नायिका-भेद को कविता का सब से प्रधान अङ्ग बना डाला है। नायिकाओं को पता ही नहीं, किन्तु कवियों ने उनके सैकड़ों भेद कर डाले। सब की अलग अलग भाषा, सब के अलग अलग भाव, वेष, भूषा और चाल; बिल्कुल नया संसार ही रच दिया। इस संसार में सदाचार की गन्ध नहीं। अभिसार स्थान की सजावट है, दूतियों की दौड़ है, वाक्यविलास है, बिरहोच्छ्वास और बेकली है। कोकिल और पपीहों के हज़ारों अपराध गिनाये जा रहे हैं, उन्हें लाखों गालियाँ दी जा रही हैं। उन बेचारों को इस का पता भी नहीं। विरह के वर्णन में तो और ग़ज़ब ढाया गया है। एक विरहिणी पार्वती की पूजा करने गई थी। जैसे ही उसने हाथ में माला लेकर पार्वती के गले में डालना चाहा, वैसे ही, हाथ लगते ही माला राख हो गई। तब उस विभूति को शिवजी को चढ़ाकर वह वापस आई। विरह की आँच हृदय में ही होती है, किन्तु कवियों को वहीं तक उसे रखने में सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने हाथ में भी उसकी दाहक-शक्ति पहुँचा दी। एक विरहिनी पनघट पर जल लाने गयी। घड़ा भरकर सिर पर रखते ही वह विरह की आँच से सूख जाता था। फिर उतार कर फिर भरती और सिर पर रखते ही वह फिर सूख जाता। दिन भर इसी चढ़ाव-उतार में लगी रही।

बिहारी ने एक विरहिणी का वर्णन इस प्रकार किया है—

इत आवति चलि जाति उत, चली छ सातिक हाथ।
चढ़ी हिँडोरे सी रहै, लगी उसासनि साथ॥

अर्थात्, विरह के मारे वह इतनी कमज़ोर हो गई है कि साँस लेने और छोड़ने के साथ वह छः सात हाथ आगे पीछे आती जाती रहती है। साँसरूपी हिँडोले पर चढ़ी हुई इधर से उधर झूलती रहती है।

ऐसा तो उस नायिका का हाल था। अब यह बात यहाँ समझ में नहीं आती कि जब वह हवा से भी इतनी हलकी हो गई थी तो तितली का पङ्ख लगा कर अपने प्रियतम के पास क्यों नहीं उड़कर चली गई?

ग्वाल कवि ने एक विरहिणी का हाल ऐसा लिखा है:—

तांदुर ले आई तिया आँगन में ठाढ़ी रही,
करके पसारबे में भात हाथ में भयो।

इस देश में जब से अँगरेज़ी राज आया तब से विरही-विरहिणियों की संख्या तो बढ़ गई, किन्तु पहले जैसी घटनायें अब नहीं होतीं। लाखों विरही तो रोज़ रेल पर चढ़े फिरते हैं, बीसों हज़ार कालेजों में भरे पड़े हैं; डाक और तार का भी पूरा प्रबन्ध है फिर भी किसी विरही के घर से यह ख़बर नहीं आती कि उसकी विरहिणी की आह से उसका घर जल गया या किसी कोयल या पपीहे की बोली से उसकी स्त्री मर गई। मालूम होता है, इस बला को पुराने कवि अपने साथ ही स्वर्ग ले गये।

९—चित्र-परिचय।

फ़ारिस के उमर ख़याम की रुबाइयाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। कितने ही चित्रकारों ने उन पर चित्र बनाये हैं। सरस्वती के इस अङ्क में एक बङ्गाली चित्रकार का चित्र दिया जाता है।

जिस रुबाई के आधार पर यह चित्र बना है उसका अनुवाद अँगरेज़ी में फिट्ज़ेरल्ड ने इस प्रकार किया है—

Here with a loaf of Bread beneath the Bough,
A Flask of wine, a Book of verse and Thou
Beside me singing in the wilderness...
And wilderness is paradise enow.

प्रभा में बाबू मैथिलीशरण ने इसका जो अनुवाद किया था वह नीचे दिया जाता है।

इस तरु-तले कहीं खाने को रोटी का टुकड़ा हो एक।
पीने को मधु पात्र पूर्ण हो करने को हो काव्य विवेक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिस पर इस सन्नाटे में तुम बैठ बग़ल में गाती हो तो मेरे हित इसी विजय में स्वर्ग राज्य का हो अभिषेक ॥

पुस्तक-परिचय।

१—तीन पुस्तकें

(१) कूटस्थादेश—इसका आकार छोटा, काग़ज़ मोटा, छपाई साफ़सुथरी, पृष्ठ-संख्या अन्दाज़न ५००, लिपि और भाषा गुजराती, और मूल्य २॥) है। ऊपर सुवर्ण-वर्णाङ्कित जिल्द है। इसे "कूटस्थ श्री" नाम के किसी व्यक्ति-विशेष ने लिखा और हीरालाल तुलजाराम देसाई ने प्रकाशित किया है। अंकलेश्वर के पते पर पत्र लिखने से पुस्तक प्रकाशक से प्राप्त हो सकती है। इसमें ५ शतक हैं। हर शतक में १०० लेखांश या पाराग्राफ़ हैं। हर पाराग्राफ़ में देशाचार, लोकाचार, धर्म्माचार, वेदान्त या योगशास्त्र की एक न एक बात है। इसके लेखक ने देशाचार को बड़ा महत्त्व दिया है। लिखा है कि शुद्धाचरण से ही धर्म्म में प्रवृत्ति होती है और मनुष्य मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। उसका कथन है कि मनुष्य को प्रारब्ध का गुलाम न बनना चाहिए; वासनाओं को धीरे धीरे दूर करके, शुद्धाचरण-पूर्वक, देवत्व प्राप्त करना चाहिए। आज-कल लोग आचार, विचार, आहार और विहार आदि सभी बातों में भ्रष्ट हो रहे हैं। अतएव उस भ्रष्टता का ज्ञान प्राप्त करके पवित्राचरण के द्वारा मनुष्य-शरीर को सार्थक करना चाहिए। इसी सार्थकता-प्राप्ति के उपाय इस कूटस्थादेश में बताये गये हैं। सारांश यह कि इसमें "आचारः परमो धर्म्मः" का प्रतिपादन किया गया है और सनातनधर्म्म-विहित मार्गों से ही, वेदान्त निर्दिष्ट परमार्थ वस्तु की प्राप्ति के साधनों का उल्लेख किया गया है। विवेचन का ढंग नया और स्तुत्य है। गुजराती-भाषा जाननेवालों के लिए यह पुस्तक सर्वथा उपादेय है।

(२) संवाद-गुच्छ, द्वितीय पुष्प—इस पुस्तक की भी भाषा और लिपि गुजराती है। आकार मँझोला और पृष्ठ-संख्या २२७ है। काग़ज़ और छपाई मज़े की और मूल्य १॥) है। पुस्तक पर साधारण जिल्द भी है। इसके लेखक गोविन्द ह० पटेल और प्रकाशक बालकृष्ण कालिदास धोरा हैं। प्रकाशक से ही (पींपली, पोस्ट आंकलाव, स्टेशन वासद के पते पर) मिल सकती है। इसमें १२ ऐतिहासिक और पौराणिक संवाद अर्थात् पारस्परिक वार्तालाप हैं। कुछ के नाम ये हैं—हरिश्चन्द्र और तारामती, दमयन्ती और दूत, दशरथ और कैकेयी, मालदेव और कुम्भ, चन्द्रावती और जसवन्तसिंह, तेग़बहादुर और औरङ्गज़ेब। संवाद सभी काल्पनिक हैं। तथापि इतिहास और पौराणिक कथाओं के आधार पर उनकी सृष्टि की गई है। वे प्रायः सबके सब मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद हैं। उनसे पुरानी बातों के ज्ञान के साथ ही साथ यथेष्ट शिक्षा भी मिलती है। पुस्तक विशेष करके लड़कों, लड़कियों और नव-युवकों के पढ़ने योग्य है।

(३) इष्टोपदेश-टीका—जैनियों में पूज्यपाद-स्वामी नाम के एक आचार्य्य हो गये हैं। पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि उन्हें हुए कोई १५०० वर्ष बीते। यह छोटी सी, ५० श्लोकों की, मूल पुस्तक संस्कृत में है। उसी की यह हिन्दी-टीका है। टीका के विस्तार ने पुस्तक का आयतन कई गुना बढ़ा दिया है। इसी से इस मँझोले आकार की पुस्तक में ढाई सौ से अधिक पृष्ठ हो गये हैं। मूल्य इसका १।) है। ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद ने इसकी विस्तृत टीका, हिन्दी में, की है। टीका में आपने सामान्यार्थ, विशेषार्थ और भावार्थ, सभी तरह का अर्थ किया है। अन्यान्य ग्रन्थों के प्रमाणभूत श्लोक भी आपने अर्थ-सहित जगह जगह पर, दे दिये हैं। साथ ही मूल-संस्कृत-श्लोक भी ऊपर उद्धृत कर दिये हैं। ग्रन्थ का विषय जैन वेदान्त है। उसमें आत्म, अनात्म आदि विषयों का विवेचन है। लखनऊ के बाबू बरातीलाल ने अपने पिता लाला दलमोदरदास की यादगार में इसका प्रकाशन कराया है। मिलने का पता—दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, चन्दाबाड़ी, सूरत।

२—हिन्दी की कुछ नई पुस्तकें।

हिन्दी में लोक-प्रियता की दृष्टि से उपन्यासों के बाद जीवन-चरित का स्थान है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि जीवन-चरित अच्छे ढङ्ग से लिखा जाय तो वह किसी उपन्यास से कम मनोरञ्जक नहीं होता। परन्तु उपन्यास में कल्पना की प्रधानता होने से उसे मनोरञ्जक बनाना जितना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल है उतना सरल जीवन-चरित को मनोमोहक बनाना नहीं है। नेपोलियन के समान सभी महात्माओं के जीवन में कौतूहलोद्दीपक घटनायें नहीं होतीं। अधिकांश लोगों का जीवन बड़ा सरल होता है। उनके दैनिक जीवन में किसी प्रकार की विलक्षणता नहीं रहती। जीवन-चरित के लेखक का कर्तव्य यह नहीं है कि वह साधारण पुरुषों के जीवन में भी असाधारणता दिखलाने का प्रयत्न करे। यदि लेखक ने अपने नायक के जीवन का यथार्थ स्वरूप देख लिया है तो उसे यह बतलाने की चेष्टा करनी चाहिए कि उसकी महत्ता किस बात में है और उस महत्ता का विकास उसके जीवन में किस प्रकार हुआ है। यदि चरित्र-नायक कवि है तो हमें उसके चरित में उसके व्यक्तित्व का ज्ञान हो जाना चाहिए जिससे हम यह जान सकें कि उसके काव्यों ने एक विशेष रूप कैसे धारण किया। राजनीतिज्ञों और धर्म-गुरुओं के जीवन में हमें उनके व्यक्तित्व से उन सिद्धान्तों का विकास देख लेना चाहिए जिनका प्रतिपादन उन्होंने जीवन भर किया है। हिन्दी के अधिकांश जीवन-चरित पढ़ने से यही मालूम होता है कि उनके लेखकों ने जीवन-चरित लिखने ही के लिए किसी भी महापुरुष के जीवन की दो चार बातें जानने की चेष्टा की है। उचित तो यह है कि जब किसी लेखक को किसी महापुरुष के जीवन का पूर्ण ज्ञान हो जाय तभी वह उसका चरित लिखने की चेष्टा करे। ऐसे ही जीवन-चरित स्थायी हो सकते हैं। ऐसे चरित हिन्दी में एक ही दो हैं। आज-कल जो चरित लिखे जाते हैं उनमें से अधिकांश पुस्तक-प्रकाशकों की प्रेरणा से लिखे जाते हैं और हिन्दी के पुस्तक-प्रकाशकों की उदारता के कारण उनके लिखने में योग्य लेखक कदाचित् यथेष्ट परिश्रम नहीं करते। ऐसे चरितों से वे चरित अधिक अच्छे होते हैं जिन्हें लेखक अपनी ही इच्छा से लिखते हैं। ऐसे लेखकों में जो योग्य हैं उनके लिखे चरित अधिक मनोरञ्जक होते हैं। कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि छोटे छोटे जीवन-चरितों से भी कुछ न कुछ लाभ होता ही है, अतएव इनका प्रचार होना सर्वथा हितकर है। कानपुर के प्रताप-पुस्तकालय से **टालस्टाय के सिद्धान्त** नामक जो ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है उसमें रूस के प्रसिद्ध विद्वान् टालस्टाय का संक्षिप्त चरित है और उनके कुछ निबन्धों का अनुवाद भी। लेखक पण्डित जनार्दन भट्ट, एम० ए० हैं। जीवनी १८ पृष्ठों में समाप्त होगई है। लेखक का उद्देश जीवन-चरित लिखना नहीं था। वे महात्मा टालस्टाय के सिद्धान्त समझाना चाहते थे। प्रारम्भ में हिन्दी के पाठकों को टालस्टाय से परिचित कराने के लिए उन्होंने उनके सम्बन्ध में कुछ बातें लिख दी हैं। टालस्टाय के सिद्धान्तों को आपने अच्छे ढङ्ग से समझाया है। भाषा स्पष्ट है। मूल्य १।) है।

लखनऊ के गङ्गा-पुस्तक-माला-कार्यालय से एक चवन्नीचरितावली का प्रकाशन होने लगा है। इसका पहला ग्रन्थ **द्विजेन्द्रलाल राय का संक्षिप्त चरित** है। हिन्दी में उनके नाटकों की धूम है। अतएव इस चरित से हिन्दी के पाठकों की कौतूहल-निवृत्ति हो सकती है। चरित अच्छे ढङ्ग से लिखा गया है। छोटा होने पर भी यह पढ़ने योग्य है। भाषा भी अच्छी है और सुन्दर छपी भी है।

एक छोटा सा जीवन-चरित राष्ट्रीय ग्रन्थ-रत्नाकर कार्य्यालय (१६२-१६४ हरीसन रोड कलकत्ता) से प्रकाशित हुआ है। उसका नाम है **केथेराइन या स्वाधीनता की देवी**। इसके लेखक श्रीयुत रामप्रसाद हैं। पृष्ठ-संख्या २६ और मूल्य ॥)। रूस में सबसे पहले क्रान्ति का बीज वपन करनेवाली यही देवी थी। इसमें इसी का कार्य-कलाप वर्णित हुआ है। लेखक का परिचय देने में प्रकाशक ने एक ही बात उल्लेख करने योग्य समझी। वह यह कि लेखक किसी षड्यन्त्र केस में अभियुक्त समझे गये थे।

महात्मा मेज़िनी के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ निकल चुके हैं। नागपुर की प्रणवीर-पुस्तक-माला में एक और जीवन-चरित प्रकाशित हुआ है। उसका नाम है **महात्मा मेज़िनी**। इसके लेखक श्रीयुत राधामोहन गोकुलजी हैं। लेखक ने एक जगह एक टिप्पणी में लिखा है कि यह चरित नेपोलियन आदि की भांति कहानी-मात्र नहीं है। मेज़िनी के दार्शनिक भावों का समझना अभीष्ट है तो कुछ कष्ट उठाना ही पड़ेगा, क्योंकि दार्शनिक भावों को इससे अधिक सरल भाषा में व्यक्त करना कम से कम मेरी शक्ति के बाहर है। यह टिप्पणी व्यर्थ है। कोई भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठक किसी भी लेखक से यह आशा नहीं रखता कि वह अपनी शक्ति के बाहर काम करेगा। भाषा में जटिलता और अशुद्धियाँ रहने पर भी जो दाम ख़र्च कर किताब ख़रीदेगा वह पुस्तक समझने की चेष्टा करेगा ही। फिर भी यदि वह नहीं समझेगा तो वह किताब फेंक देगा। और वह कर क्या सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस पुस्तक में ये दोनों दोष विद्यमान हैं।

हिन्दी-भाषा-भाषी 'समाज में कुरुचि का निवारण और आगामि सन्तान का चरित-सुधार' करने के महत् उद्देश से श्रीयुत ब्रजराजजी ने कथा-मुखी नामक पत्रिका से केवल सात कथायें चुन कर **कथा-कादम्बिनी** नाम का एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है। यह हर्ष की बात है। इसका प्रकाशक है साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग। पुस्तक के अन्त में साहित्य-भवन लिमिटेड, का जो विज्ञापन छपा है उसके पढ़ने से भी इसी महत् उद्देश की सूचना मिलती है। मैनेजर का कथन है कि हिन्दी में जिस तेज़ी के साथ अश्लील और गन्दे उपन्यास और नाटक निकल रहे हैं और मातृ-भाषा हिन्दी का गला घोंट रहे हैं उनसे यह साफ़ मालूम होता है कि नवयुवकों का मन और आचरण कभी पवित्र नहीं होता। अतएव मैनेजर की मनस्कामना है कि हम हिन्दी में अच्छा से अच्छा साहित्य निकाल सकें। इसके लिए उन्हें ग्राहकों की आवश्यकता है। 'समस्त विषयों' के 'उच्च कोटि' के लेखकों का प्रबन्ध शायद कर लिया गया है। हमें आशा है कि हिन्दी के सुरुचि-सम्पन्न पाठक शीघ्र ही उनके ग्राहक होंगे जिससे वे उत्तमोत्तम पुस्तकें निकाल सकें।

कथा-कादम्बिनी को पढ़ने से यह साफ़ मालूम हो जाता है कि प्रकाशक अपने उद्देश में सफल होंगे। इसकी सभी कहानियाँ मनोहर हैं। आशा है कि 'मातृभाषा का गला घोंटनेवाले' अन्य पुस्तक-प्रकाशक साहित्य-भवन से शिक्षा ग्रहण करेंगे। मूल्य ।।।)।

मुरादाबाद के लक्ष्मीनारायण प्रेस से पण्डित कृष्णानन्द जोशी के सम्पादकत्व में एक सरस-कथामाला निकल रही है। अब तक उसमें सात पुस्तकें छप चुकी हैं। सातवीं पुस्तक में **कर्मवीर विश्वामित्र** की कथा वर्णित है। पुस्तकें छोटे लड़के और लड़कियों के लिए सचमुच उपयोगी हैं। इसी प्रेस ने हितोपदेश का एक अनुवाद हिन्दी में निकाला है। उसका नाम है **हिन्दी-हितोपदेश**। इसके लेखक पण्डित रूपनारायण पाण्डेय हैं। भाषा अच्छी है। हितोपदेश का परिचय देने की आवश्यकता नहीं।

कुछ समय से हिन्दी तथा अँगरेज़ी के पत्रों में कौटिल्य के अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में अनेक लेख निकल रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ ऐसा ही महत्त्व-पूर्ण है। हर्ष की बात है कि अब हिन्दी में उसका अनुवाद प्रकाशित होगया। अनुवादक श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालङ्कार हैं और प्रकाशक हैं श्रीयुत मोतीलाल बनारसीदास, अध्यक्ष पञ्जाब-संस्कृत पुस्तकालय सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर। यह ग्रन्थ ४२८ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। अनुवादक का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे ग्रन्थ-रत्न को प्रकाशित कर श्रीयुत मोतीलाल बनारसीदासजी ने हिन्दी का सचमुच बड़ा उपकार किया है।

३—कुछ चीज़ें।

कभी कभी उदारचेता दवाफ़रोश और वदान्य शिरोमणि व्यवसायी अनेक बहुमूल्य चीज़ें समालोचनार्थ भेज देते हैं। अभी हाल में दो सज्जनों ने हम पर ऐसी ही कृपा की है। अमृतसर के कायकल्प कार्यालय ने कायकल्प नाम की दवा की शीशी और दाद की दवा भेजी है। हम इन बहुमूल्य दवाओं की परीक्षा करने में असमर्थ हैं, अतएव उनके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकते। अलीगढ़ की श्रीकाशीराम झा ऐंड कम्पनी ने दस रुपये की एक तलवार भेजी है। आपकी आज्ञा है कि हम इस तलवार की और साथ ही साथ कम्पनी के सब हथियारों की 'उचित और मार्मिक शब्दों में अद्भुत तथा अपूर्व तत्काल चमत्कार दिखलानेवाली समालोचना शीघ्रातिशीघ्र' लिख दें। खेद है कि हममें ऐसी अद्भुत समालोचना-शक्ति नहीं है। स्वयं तलवार के परीक्षक न होने के कारण हमने अपने एक मित्र की राय ली और उनकी राय है कि तलवार का लोहा अच्छा नहीं।

———

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग २४, खण्ड २] अगस्त १९२३—श्रावण १९८० [संख्या २, पूर्ण संख्या २८४

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ।

खेद है कि गत १५ जुलाई को इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् मुंशी देवीप्रसादजी का स्वर्गवास हो गया। नीचे आपका संक्षिप्त चरित प्रकाशित किया जाता है।

मुंशी देवीप्रसाद का जन्म जयपुर में अपने नाना के घर संवत् १९०४ में हुआ था। इनके पिता मुंशी नत्थनलाल अपने पिता और माता के साथ टोंक में रहते थे। वहाँ उनका ननिहाल था और वे इनके जन्म के समय टोंक के नवाब के पुत्र के पास नौकर थे।

मुंशीजी का जन्म गौड़ कायस्थ कुल में हुआ था। पहले इनके पूर्वज दिल्ली में रहते थे और वहाँ शाही दरबार में नौकरी करते थे। दिल्ली के पतन के बाद वे भूपाल चले गये। अन्त में इनके पितामह टोंक चले आये। यहाँ उनकी ससुराल थी। उनके ससुर नवाब के बख़्शी थे। अतएव उन्हें भी नवाब के दरबार में जगह मिल गई। इस प्रकार इनके पिता ने टोंक को ही अपना पैत्रिक घर निश्चित किया।

मुसलमानी ज़माने की प्रथा के अनुसार मुंशीजी के परिवार में भी उर्दू के पठन-पाठन का खूब प्रचार था। इसी की बदौलत दिल्ली छोड़ने के बाद इनके पूर्वजों को रियासतों में नौकरियाँ मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकी थीं। इनके पितामह और पिता उर्दू-फ़ारसी के पूर्ण ज्ञाता थे। अतएव मुंशीजी को भी उन्हीं की शिक्षा दी गई। सोलह वर्ष की उम्र तक इन्हें उर्दू-फ़ारसी का पूरा ज्ञान हो गया था। अतएव इन्हें टोंक-दरबार में मुंशीगीरी की नौकरी मिल गई।

टोंक-दरबार में नौकरी करते समय मुंशीजी ने अपने स्वाधीन भाव का ख़ासा परिचय दिया था। मुसलमानी रियासत होने के कारण टोंक में हिन्दुओं को अनेक धार्मिक असुविधायें झेलनी पड़ती थीं। वहाँ का यह हाल देख कर मुंशीजी से न रहा गया। इन्होंने इस सम्बन्ध में अख़बारों में लेख लिखना शुरू कर दिया। इनके ये लेख उर्दू-पत्रों में प्रकाशित होते थे। जब इस बात की ख़बर टोंक-दरबार को हुई और इन पर सन्देह किया गया तब ये नौकरी से बर्ख़ास्त करके टोंक से निर्वासित कर दिये गये। अतएव ये अजमेर चले गये और खुल्लम-खुल्ला वहाँ से हिन्दुओं के साथ होनेवाले दुर्व्यवहारों का वर्णन पत्रों में छपवाने लगे। इनके आन्दोलन का सुपरिणाम हुआ और टोंक में हिन्दुओं को धार्मिक सुविधायें प्राप्त होगईं।

जिस समय मुंशीजी टोंक से निर्वासित किये गये थे उस समय इनके छोटे भाई जोधपुर की रेज़ीडेंसी में क्लार्क थे। उन्होंने इन्हें अपने पास बुला लिया। तेरह वर्ष तक रियासत की नौकरी करने के कारण इन्हें अपने काम का पूरा अनुभव था। अतएव थोड़ा ही प्रयत्न करने पर इन्हें जोधपुर-दरबार में नौकरी मिल गई। महकमे अपील में ये नायब सरिश्तेदार बना दिये गये। इस पद पर इन्हें महाराज कर्नल सर प्रतापसिंह की मातहती में रहना पड़ा।

मुंशीजी ने स्थायीरूप से जोधपुर-दरबार की नौकरी की। यहाँ ये आबाद भी हो गये। यहाँ इन्होंने भिन्न भिन्न पदों का कार्य सफलता के साथ सँभाला और नामवरी हासिल की। जब मुंशी हरदयालजी जोधपुर के प्रधान मन्त्री बनाये गये तब उन्होंने इनको अपना सेक्रेटरी बनाया था। उनके समय में राज्य में कई एक सुधार किये गये। इस समय राज्य की मनुष्य-गणना भी हुई थी। मनुष्य-गणना में मुंशीजी को डिप्टी सुपरिंटेंडेंट का पद मिला था। इन्होंने इस कार्य में भी अपनी कार्य-कुशलता का ख़ासा परिचय दिया था और राज्य की हिन्दू-मुसलमान जातियों के सम्बन्ध में एक ऐसी रिपोर्ट लिखी थी जिससे जोधपुर-नरेश ने प्रसन्न होकर इन्हें प्रशंसा-पत्र के सहित ५००) का पुरस्कार दिया था। इसके बाद ये मुंसिफ़ बनाये गये और इनका मासिक वेतन १००) हो गया। इस प्रकार इन्होंने राज्य के भिन्न भिन्न महकमों में काम किया और धीरे धीरे २५०) मासिक वेतन के पद पर पहुँच गये। अपनी वृद्धावस्था के समय भी ये दरबार की सेवा से विरत नहीं हुए थे। पिछले कई वर्षों से ये 'महकमे तवारीख़' के सदस्य थे। इस पद का वेतन इन्हें केवल ९४) रुपया मासिक मिलता था। पर ये इस अल्प वेतन से सन्तुष्ट थे। इसी पद पर कार्य करते हुए इनकी मृत्यु गत आषाढ़ महीने में होगई। इस समय इनकी उम्र ७६ वर्ष की थी।

यद्यपि मुंशीजी पुराने ढङ्ग के रियासती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहलकार और उर्दू-फ़ारसी-मात्र के पण्डित थे, तथापि ये प्रतिभावान् व्यक्ति थे । इनकी प्रतिभा इनके सभी कार्यों से प्रकट होती है। ये यावज्जीवन हिन्दी-साहित्य की सेवा करते रहे। उसके हितचिन्तन में इनका उत्साह कभी मन्द नहीं हुआ । यही नहीं, किन्तु समय

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ।

समय पर ये उसके दूसरे सेवकों की यथेष्ट सहायता भी करते रहे। जब मिश्र-बन्धुओं ने अपने 'विनोद' के लिखने की घोषणा की थी तब इन्होंने राजस्थान के कोई चार सौ कवियों की नामावली उनके परिचयात्मक वृत्तान्त के सहित उन्हें लिख कर भेजी थी। इनकी निगाह से हिन्दी के सम्बन्ध की कोई भी बात निकल कर नहीं जाने पाती थीं। ये हिन्दी से सम्बन्ध रखनेवाली छोटी सी बात की भी उपेक्षा कभी नहीं करते थे। सुदूर मारवाड़ में रहते हुए ये जिस प्रकार हिन्दी की समुन्नति में सोत्साह अपने जीवन भर भाग लेते रहे हैं वह इनके हिन्दी-प्रेम का असाधारण रूप है। हिन्दी की जो सेवा इन्होंने की है उसके लिए हिन्दी-साहित्य में इनका नाम सदा कृतज्ञता के साथ लिया जायगा।

मुंशीजी को लिखने-पढ़ने का बेहद शौक था। इन्हें इतिहास से अत्यधिक प्रेम था। इन्होंने मुसलमानी समय के, विशेष करके राजस्थान के,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास का अध्ययन भले प्रकार ही नहीं किया था, किन्तु ये उनके अच्छे ज्ञाता समझे जाते थे। इनके ख़ानगी पुस्तकालय में हस्तलिखित एवं छपी हुई अनेक बहुमूल्य पुस्तकों के सिवा और भी बहु-संख्यक दुर्लभ ऐतिहासिक वस्तुओं का सङ्ग्रह है। इस सङ्ग्रह के लिए इनको बड़ा परिश्रम तथा बहुत कुछ व्यय भी करना पड़ा था। इतिहास के जिज्ञासुओं के लिए इन्होंने इस बात का विज्ञापन तक दे रक्खा था कि मुसलमानों और राजपूतों के इतिहास के सम्बन्ध में जिसे कुछ पूछना हो या तत्सम्बन्धी किसी पुस्तक की आवश्यकता हो वह मुझसे पत्र-व्यवहार करे। अपनी इस घोषणा के अनुसार ये इतिहास के जिज्ञासुओं की मनस्तुष्टि करने के लिए सदा मुस्तैद रहते थे। यही नहीं, यदि कभी किसी सामयिक पत्र में इतिहास-सम्बन्धी कोई भ्रम-पूर्ण बात छप जाती, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, ये उसका प्रतिवाद करने से कभी नहीं चूकते थे। इन्होंने इतिहास-सम्बन्धी कोई ५०-६० ग्रन्थ लिखे हैं। इनकी 'तवारीख़ क़ौम मारवाड़' नामक पुस्तक पर संयुक्तप्रान्त की सरकार ने इन्हें ५००) का पुरस्कार दिया था।

उर्दू-फ़ारसी के जिन विद्वानों ने हिन्दी को अपनाकर उसकी तन-मन-धन से सेवा की है उनमें मुंशीजी का विशेष स्थान है। इनकी हिन्दी-भक्ति केवल मौखिक ही नहीं रही या हिन्दी में दो-चार छोटी-बड़ी पुस्तकें लिख कर ही नहीं समाप्त हो गई, किन्तु इन्होंने अपनी हिन्दी-भक्ति को व्यावहारिक रूप दिया था। जोधपुर आने के पहले इन्होंने उर्दू में 'ख़्वाबे राजस्थान' नाम की एक किताब लिखी थी। उसमें इन्होंने लिखा था कि राजस्थान की कचहरियों की सारी कार्यवाही हिन्दी में होनी चाहिए। जोधपुर के कर्नल सर प्रतापसिंह की मातहती में काम करते समय इन्हें उनके हिन्दी-प्रेम का पता लग गया। अतएव ये वहाँ की कचहरियों में हिन्दी का प्रचार करने के लिए प्रयत्नशील हुए और कर्नल महोदय के ज़ोर डालने पर महाराज यशवन्तसिंह ने बड़ी अदालतों में भी हिन्दी के प्रचार को स्वीकार कर लिया। इस नूतन परिवर्तन के कारण उर्दू के अनेक हिमायती इनसे द्वेष भी करने लगे, पर इन्होंने उनकी ज़रा भी परवा न की और ये अपने हिन्दी-प्रेम से रत्ती-भर भी न डिगे। इन्होंने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को साढ़े दस हज़ार रुपया दिया है। इस धन की सहायता से हिन्दी में इतिहास-ग्रन्थों की रचना की जायगी। इसी उद्देश से उपर्युक्त सभा से 'मुंशी देवीप्रसाद ऐतिहासिक ग्रन्थमाला' नाम की एक पुस्तकमाला निकल रही है। यद्यपि इस माला में अभी तक कोई वैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ नहीं निकला है तो भी जो ग्रन्थ निकले हैं उनसे हिन्दी के ऐतिहासिक साहित्य की वृद्धि ही होगी।

मुंशी जी ने घोर परिश्रम कर जो धनोपार्जन किया है उसका सदुपयोग भी खूब किया है। अपनी सम्पत्ति का प्रायः सारा भाग कोई अस्सी-पचासी हज़ार रुपया इन्होंने दान कर दिया है। इसमें कोई पचास हज़ार रुपया अकेले आर्य-प्रतिनिधि-सभा लाहौर को ही दिया है। समय-समय पर भिन्न भिन्न शिक्षा-सम्बन्धी तथा लोकोप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पयोगी संस्थाओं को जो रक़म दान में दी है उसकी सूची इस प्रकार है—

आर्य-प्रतिनिधि-सभा, लाहौर	५०,०००)
पीताम्बर-स्कालर्शिप गवर्नमेंट कालेज, अजमेर	१०००)
हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी	५००)
सर प्रताप (कायस्थ) स्कूल, जोधपुर	७००)
नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी	१०,५००)
राजपूताना-बोर्डिंग-हाउस, अजमेर	१,१००)
देवीप्रसाद-कन्या-पाठशाला, जोधपुर	६,०००)
देवीप्रसाद-नत्थनलाल लाइब्रेरी, जोधपुर	६,०००)
कल्लोबाई आयुर्वेदिक औषधालय, जोधपुर	१०,०००)

ऐसे उदारचेता विद्वान् की मृत्यु से हिन्दी-साहित्य की जो हानि हुई है, हिन्दी के सभी प्रेमी उसका अनुभव करेंगे ।

गिरिजाशङ्कर वाजपेयी

रुक्मिणी-हरण ।

कुछ समय पूर्व, जबलपुर में, वहां के राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर का वार्षिकोत्सव था। उसके सभापति थे काशी-निवासी बाबू भगवान्दासजी । आपकी योग्यता, विद्वत्ता और देश-भक्ति सर्वश्रुत है । उत्सव के दूसरे दिन आपने एक व्याख्यान दिया । उसमें आपने श्रीमद्भागवत की बड़ी प्रशंसा की । आपने उसके गुण-गान भी किये और उसके पद्यात्मक हिन्दी-अनुवाद की आवश्यकता भी बताई ।

बाबू साहब का वक्तव्य पढ़ कर हमें परमानन्द हुआ। श्रीमद्भागवत सचमुच ही अप्रतिम और अनमोल ग्रन्थ है । वक्तव्य पढ़ते समय हमारे हृदय में यह भाव उदित हुआ कि अँगरेज़ी भाषा के द्वारा उच्च शिक्षा पाये हुए सज्जनों में इस तरफ़ भला एक सत्पुरुष तो ऐसा है जो श्रीमद्भागवत का इतना आदर करता है, उसे बड़े मोल की वस्तु मानता है, और उसके अनुवाद की भी आवश्यकता समझता है ।

हमारे वेद, हमारे पुराण, हमारे शास्त्र, हमारे अन्य प्राचीन ग्रन्थ हमारे पूर्वजों की दी हुई निधि है । उस निधि की रक्षा करना, उससे लाभ उठाना और उसके अवलोकन से अपने पूर्वजों के कीर्ति-कलाप को विस्मृति के गर्त में चले जाने से बचाना हम लोगों का परम पवित्र कर्तव्य है । इस दृष्टि से तो इन ग्रन्थों का आदर हिन्दू-मात्र को करना ही चाहिए । और दृष्टियों से भी इनके पठन-पाठन की आवश्यकता कम नहीं । इनके अध्ययन और अवलोकन से हमें अपनी प्राचीन सभ्यता, समाज-स्थिति, राजसत्ता, विद्याभिरुचि, कला-कुशलता, बल-वैभव आदि का भी ज्ञान होता है और इस ज्ञान-प्राप्ति से अनेक लाभ हो सकते हैं । इसे भी आप जाने दीजिए । इनसे पारलौकिक ज्ञान की प्राप्ति भी होती है । जो धर्म्मनिष्ठ हैं—जो अपने धर्म्म-कर्म्म की बातें जानना चाहते हैं—अथवा जो सांख्य, योग, वेदान्त, मीमांसा और भक्ति-योग के तत्त्वों से परिचित होना चाहते हैं वे भी इन ग्रन्थों से अपनी अभीष्ट-सिद्धि बहुत कुछ कर सकते हैं । परन्तु जो इन विषयों के भी प्रेमी नहीं—जिनका मन वेद, शास्त्र, उपनिषद् और ज्ञान-विज्ञान की बातों में नहीं लगता—उनके मनोरञ्जन के लिए भी इनमें बहुत कुछ सामग्री विद्यमान है । श्रीमद्भागवत में तो एक नहीं, अनेक स्थल ऐसे हैं जो महाकवियों की भी वाणी को मात करनेवाले हैं । वे उत्कृष्ट कविता के नमूने हैं । वे अत्यन्त सरस, सालङ्कार और प्रसाद-गुण-पूर्ण हैं । किसी किसी स्थल में तो प्रकृत रस का इतना अधिक परिपाक हुआ है कि उस स्थल की रचना के आस्वादन में हृदय तल्लीन हो जाता है, कुछ समय के लिए आत्म-विस्मृति सी हो जाती है और ऐसा मालूम होने लगता है कि आकलनकर्त्ता का मन किसी और उच्च लोक में विहार कर रहा है । उस समय आधि-व्याधियां भूल जाती हैं और हृदय में अनिर्वचनीय सात्त्विक भावों का उदय हो आता है । इसे आप अत्युक्ति न समझिए । बाबू भगवान्दास के सदृश सरस-हृदय जन, हमें विश्वास है, हमारी इस उक्ति का अवश्य समर्थन करेंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो इन पुराणों में—विशेष करके श्रीमद्भागवत में—साहित्य-प्रेमियों, काव्य-लोलुपों और रसिक-शिरोमणियों को भी लुभानेवाली बहुत कुछ सामग्री है। इस बात की पुष्टि के लिए, श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के बावनवें अध्याय में वर्णित रुक्मिणी-हरण-सम्बन्धिनी कथा के कुछ अंश की कविता का नमूना नीचे दिया जाता है।

विदर्भ-देश में एक राजा था। उसकी राजधानी कुण्डिनपुर थी। नाम था उसका भीष्मक। उसके रुक्मी, रुक्मरथ आदि पाँच पुत्र और रुक्मिणी नाम की एक कन्या थी। रुक्मिणी जब विवाह-योग्य हुई तब श्रीकृष्ण के शौर्य्य, वीर्य्य और सौन्दर्य्य आदि गुण सुन कर उन पर वह मुग्ध होगई और मन ही मन उन्हीं के साथ विवाह करने का निश्चय किया। रुक्मी को छोड़ कर उसके अन्य भाइयों ने भी अपनी बहन के लिए कृष्ण ही को सबसे अधिक उपयुक्त पात्र समझा। परन्तु बड़ा भाई रुक्मी कृष्ण-द्वेषी था। वह चेदि-देश के राजा शिशुपाल का पक्षपाती था और शिशुपाल था श्रीकृष्ण का परम शत्रु। अतएव रुक्मी ने अपने पिता और छोटे भाइयों को समझा-बुझा कर शिशुपाल ही के साथ रुक्मिणी के पाणिग्रहण का निश्चय किया। इस निश्चय ने रुक्मिणी को विकल कर दिया। उसने इस विघ्न को टालने का और कोई उपाय न देख, एक ब्राह्मण को चुपचाप द्वारका भेजा। उसके द्वारा उसने श्रीकृष्ण को सब बातों की सूचना दी और प्रार्थना की कि आप ज़बरदस्ती मुझे हर लेजाइए; अन्यथा, शिशुपाल के साथ मेरा विवाह होने से मैं अपने प्राण दे दूँगी।

ब्राह्मण-देवता द्वारका पहुँचे तो श्रीकृष्ण ने उनका बड़ा आदर किया। सिंहासन से उतर कर वे उस ब्राह्मण से सम्मानपूर्वक मिले। आज-कल के नरेशों की तरह डटे बैठे ही न रहे। उसके रहने, खाने-पीने और सेवा-शुश्रूषा का उचित प्रबन्ध करके आपने उसे उसके ठहरने की जगह भेज दिया। जब वह खा-पीकर और विश्राम करके निश्चिन्त हुआ तब आप उसके पास पहुँचे और बोले—

विप्र-वर, कहिए, आप आराम से तो हैं? किसी बात की तकलीफ़ तो नहीं? विदर्भ-देश में आप अपना धर्म्माचरण तो अच्छी तरह कर सकते हैं न? कोई विघ्न-बाधा तो नहीं उपस्थित होती? सन्तोष का क्या हाल है? महाराज, ब्राह्मण के लिए सन्तोष तो बहुत बड़ी चीज़ है। मुझे सन्तोषशील ब्राह्मण ही पसन्द है। अच्छा, आपके राजा का क्या हाल है? उनकी प्रजा सब सुखी है? प्रजा-पालक राजा की क्या बात है। ऐसे ही राजा को राजा समझता हूँ।

श्रीकृष्ण के इन उदार प्रश्नों का उत्तर उस ब्राह्मण यथोचित दिया।

ऊपर एक बात लिखनी रह गई। जिस समय श्रीकृष्ण उस ब्राह्मण के आवास में गये, वह सोया हुआ था। सोया न था तो लेटा ज़रूर था। इस कारण आप धीरे धीरे उसके पैर दबाना शुरू किया। जब वह जागा अथवा स्वस्थ हुआ तब आपने उससे पूर्वनिर्दिष्ट प्रश्न किये। श्रीकृष्ण की इस निरभिमानिता, इस ब्राह्मण भक्ति, इस अतिथि सेवा और इस दीनता-प्रदर्शन की तुलना आज-कल के मूर्तिमान अभिमान-धनिकों और नरेशों से कीजिए। पर अब न तो वैसे नरेश ही हैं और न वैसे तपोनिष्ठ तथा साक्षर ब्राह्मण ही हैं। तथापि, इस समय, गुरुता में अपराध का पल्ला महीमहेन्द्रों ही की ओर अधिक झुकता है; क्योंकि किसी किसी राजा की गद्दी के सिंहद्वार पर पाण्डित्यपूर्ण पण्डितों की कभी कभी वही दशा होती है जो दशा किसी राजा की राजधानी के फाटक पर प्रसिद्ध काश्मीरी पण्डित बिल्हण की हुई थी। अस्तु।

कुशल-प्रश्न हो चुकने पर श्रीकृष्ण ने उस ब्राह्मण से उतनी दूर आने का कारण पूछा। उत्तर में उसने रुक्मिणी के विवाह की सारी बातें कह सुनाईं। साथ ही रुक्मिणी ने जो सन्देश कहा था अथवा जो गुप्त पत्र दिया था उसका भी प्रकटीकरण उसने किया। पुराणकार ने रुक्मिणी के इस पत्र या सन्देश का जो आशय, अपनी रसवती और रुचिर रचना के भीतर रख कर, व्यक्त किया है वह नीचे दिया जाता है। श्रीकृष्ण को सम्बोधन कर रुक्मिणी कहती है—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे अच्युत ! आपके गुणों का वर्णन नहीं हो सकता। वे इतने लोकातिशायी हैं कि सुननेवालों के कर्ण-विवरों की राह भीतर घुस कर शरीर के सभी तापों का शमन कर देते हैं। आपके गुणों का तो यह हाल है। रूप का हाल मैं क्या बताऊँ। वह तो और भी अप्रतिम है; क्योंकि सौन्दर्य्य में आपकी समता करनेवाला इस लोक में और कोई नहीं। नेत्रधारियों के नेत्रों को यदि आपका रूप देखने को मिल जाय तो मानो उन्हें सब कुछ मिल गया—उन्हें समस्त अर्थों की प्राप्ति होगई; वे सफल हो गये। आपके गुण-समुच्चय और रूपराशि का वर्णन, दूसरों के मुख से, सुन कर मैं आप पर मुग्ध हो गई हूँ—मेरा निर्लज्ज मन आप पर आसक्त हो गया है। निर्लज्ज इसलिए कि कुलकन्यकाओं को अपने मन की जो बात किसी पर भी प्रकट न करनी चाहिए उसी को मैं इस तरह आप पर प्रकट कर रही हूँ। पर करूँ क्या ? निर्लज्जता न करने से तो मेरा सर्व्वनाश उपस्थित होने के सभी सामान हो चुके हैं।

हे नरशार्दूल ! एक बात और भी तो है। उस पर भी आप विचार करने की कृपा अवश्य कीजिए। वह यह—

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-
विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम्।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या
काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम् ॥३८॥

विवाह-काल उपस्थित होने पर, उपवर कन्यायें उसी पुरुष-रत्न का वरण करती हैं जो कुल में, शील में, रूप में, विद्या और कला-कौशल में, वय में, धन-सम्पत्ति में और तेजस्विता में अपने ही सदृश हो। मुकुन्द, अब आप ही कहिए। ये सब गुण आप में हैं या नहीं और इस भूलोक में सबसे अधिक मनोऽभिराम आप ही हैं या नहीं ? इस दशा में यदि मैं आप पर अनुरक्त होगई और निर्लज्ज होकर अपनी अनुरक्ति आप पर प्रकट कर दी तो क्या यह कोई अभावनीय बात होगई ? ख़ैर, मुझे आप निर्लज्ज ही समझिए। पर क्या इस लोक में कोई इतनी धैर्य्यधारिणी और इतनी उदारहृदया भी कुलकन्या है जो आपके सदृश सर्वगुण-सम्पन्न नर-रत्न को अपना हृदय-दैवत बनाने में आना-कानी कर सके ? मुझे तो ऐसी एक भी राज-कन्या कहीं नज़र नहीं आती। मैं उपवर हूँ; मैं वयस्क हूँ; मैं अपना हानि-लाभ स्वयं समझ सकती हूँ। अतएव, पेंच में पड़ने पर, यदि मैं आप पर अपने मन की बात व्यक्त करूँ तो मेरी यह धृष्टता या निर्लज्जता क्या क्षमायोग्य नहीं ?

तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जाया-
मात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥३९॥

इसी से, सब बातों का विचार करके और खूब आगा-पीछा सोच कर, मैंने आपको पति-रूप में वरण कर लिया है। यहाँ तक कि मैंने तो अपनी आत्मा भी आपको अर्पित कर दी है। आप विभु हैं—आप सर्व-समर्थ सर्व-व्यापी हैं। अतएव अब आप मुझे अपनी ही पत्नी समझ कर जो उचित जान पड़े कीजिए। पर मेरी एक प्रार्थना पर अवश्य ध्यान दीजिए। वह यह कि मैं वीर-भोग्या हूँ—मैं अपने को वीरों ही का प्राप्य भाग समझती हूँ, कायरों और दुर्बलों का नहीं। अतएव ऐसा न हो कि, सर्वथा आप ही के भोग-योग्य मुझे, शेर के शिकार को गीदड़ के सदृश, दुर्वृत्त शिशुपाल कहीं उठा ले जाय। यदि आपके आने में विलम्ब हुआ तो ऐसी शोचनीय दुर्घटना का हो जाना बहुत सम्भव है। इससे मैं पहले ही से आपको सचेत किये देती हूँ। अब मेरी लज्जा आपही के हाथ है। जल्दी कीजिए।

भगवान्, कहाँ विराज रहे हो ? तुमसे भी मेरी एक प्रार्थना है—

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-
गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥४०॥

मैंने पूर्वजन्म या जन्मान्तर में कुवे और जलाशय खुदा कर, यज्ञ और अग्निहोत्र आदि करके, दान-दक्षिणा देकर, तीर्थ-यात्रा और व्रतादिकों का अनुष्ठान करके यदि कुछ भी पुण्य-सम्पादन किया हो, तथा देव, ब्राह्मण और गुरु की पूजा करके इन सभी सत्कर्मों के द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परात्पर परमात्मा को कुछ भी सन्तुष्ट किया हो, तो वे प्रसन्न होकर मुझे यही वर दें कि गदाग्रज भगवान् कृष्ण ही आकर मेरा पाणिग्रहण करें; शिशुपाल आदि अन्य नरेशों में से कोई भी मेरा स्पर्श न कर सके!

श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्
गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः।
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य
मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्य्यशुल्काम् ॥४१॥

मेरा यह सन्देश सुन कर, सम्भव है, आपके मन में इस शङ्का की समुद्भावना हो कि मेरे कुटुम्बियों ने जब मुझे शिशुपाल को दे डालने की प्रतिज्ञा कर ली है तब मेरी प्राप्ति के लिए आपका आना व्यर्थ है। महाराज, इस प्रकार की शङ्का आपको न करनी चाहिए। पिता और भ्राता ने मेरे शरीर को दे डालने का निश्चय ज़रूर कर लिया है; पर मेरे मन को दे डालने का नहीं। और मन से तो मैं आप ही को अपना पति मान चुकी हूँ। फिर एक बात और भी तो है। मैं क्षत्रियकुलोत्पन्न कन्या हूँ। मुझे पाने का अधिकारी वही हो सकता है जो बल, वीर्य और पराक्रम में औरों से अधिक हो; क्योंकि मैं तो वीर्य्यशुल्का हूँ। मेरा शुल्क—मेरा मूल्य—केवल बल और पराक्रम है। अतएव आप एक काम कीजिए। विवाह के पहले ही आप चुपचाप यहाँ आ जाइए। चुपचाप इसलिए कि समय पर कहीं कोई विघ्न न उपस्थित हो जाय और आपके आने की बात विदित हो जाने पर मुझ तक आप न पहुँच पावें। अपने साथ आप (अपनी सेना) और सेनापतियों को भी लेते आवें। इस तरह तैयार होकर आप यहाँ उपस्थित हो जायँ और जरासन्ध, शिशुपाल आदि का दर्प चूर्ण करके, राक्षसी विधि से बलपूर्वक मेरा पाणि-ग्रहण कर लें। इसमें सङ्कोच के लिए जगह नहीं। भगवान् मनु ने राक्षस-विवाह की विधि को भी शास्त्र-सम्मत माना है। आप अजित हैं ही; आज तक आप कभी किसी से नहीं हारे। अतएव विघ्न-रूप विपक्षियों को मार भगाना भी आपके लिए कोई बड़ी बात नहीं।

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूं-
स्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम्।
पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा
यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥४२॥

आपके मन में एक और भी शङ्का का उद्भव हो सकता है। वह यह कि मैं अन्तःपुर ही में रहती हूँ, कभी बाहर नहीं निकलती। मुझे प्राप्त कर सकने के पहले युद्ध में आपको मेरे बन्धु-बान्धवों का नाश करना पड़ेगा; तब कहीं आप मुझ तक पहुँच सकेंगे। परन्तु वह कुछ न होगा। इसका उपाय मैंने पहले ही सोच रक्खा है। मेरे यहाँ यह रीति है कि विवाह के दिन पूर्व अपनी कुल-देवी गिरिजा के पूजन के लिए नव-वधू को महलों से निकल कर बाहर जाना पड़ता है। उस समय खूब भीड़-भाड़ होती है; बड़े समारोह से यात्रोत्सव किया जाता है। अतएव उसी मौके पर उपस्थित होकर आप अपनी कार्य्य-सिद्धि कर ले जाइए।

अब आप मेरी अन्तिम प्रार्थना सुन लीजिए—

यस्यांघ्रि (यत्पाद) पङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥४३॥

हे कमललोचन! आपको मैं देवाधिदेव और त्रिनियन्ता समझती हूँ। उमापति शङ्कर के सदृश बड़े बड़े देवता भी, अपने अज्ञान के नाश के निमित्त, आपके पाद-पङ्कजों की धूल से स्नान करने की—उसे अपने मस्तक पर चढ़ाने की—सदा ही कामना करते हैं। ऐसे सर्वेश्वर आप यदि मुझ पर प्रसाद न करेंगे—यदि आप मेरी अभिलषित पूर्ण न करेंगे—तो आप, निश्चय जानिए, मैं अपने प्राण दे दूँगी। मैं आपकी प्राप्ति के लिए, आत्म-हत्या न करूँगी। आत्महत्या करना तो घोर पातक है। निराहार और निर्जल व्रतादि का अनुष्ठान करके इस शरीर को छोड़ दूँगी और जब तक आप न मिलेंगे, जन्मान्तरों में भी, मैं अपने प्राण इसी तरह देती चली जाऊँगी। सौ पचास जन्मों तक, अपने लिए मुझे बार बार मरते देख, कभी न कभी तो आपको मुझ पर दया आवेहीगी। इत्यलम्।

करुणोक्तियों से भरा हुआ भगवती रुक्मिणी का क्षत्रियकन्यकोचित सन्देश सुन कर भगवान् कृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने उसकी प्रार्थना मान कर तदनुकूल कार्य किया और उसे इस तरह हर ले आये जिस तरह गरजता हुआ शेर गीदड़ों के बीच से अपना भाग हर ले आता है—"शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः"।

आगे के त्रेपनवें अध्याय में महाप्राज्ञ पुराणकार ने रुक्मिणी के रूप आदि का वर्णन किया है। वह वर्णन उस समय का है जिस समय वैदर्भी अपनी सखियों, सौभाग्यवती स्त्रियों और प्रहरियों आदि से आवृत होकर, नगर के बाहर, अम्बिकार्चन के लिए गई है। पुराण-निर्म्माता व्यासजी ने चैद्य आदि समागत राजाओं की दुरवस्था और कृष्ण भगवान् के द्वारा रुक्मिणी के हरण किये जाने का भी वर्णन वहीं पर किया है। इस स्थल की रचना भी बड़ी ही हृदयहारिणी, कवित्वपूर्ण और रसानुप्राणित है। वह इतनी सुन्दर है कि उसकी सरसता को अक्षुण्ण रख कर, हिन्दी में उसका ठीक ठीक गद्यात्मक भी अनुवाद कर सकना हमारे सामर्थ्य के बाहर की बात है। अतएव हम उन श्लोकों को नीचे ज्यों का त्यों नक़ल करके ही सन्तोष करेंगे—

तां देवमायामिव वीरमोहिनीं
सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम्।
श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां
व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ॥५१॥
शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युति-
शोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम्।
पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं
शिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ॥५२॥
विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता
यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः। ५२½
यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहास-
व्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः।
पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा
यान्नाञ्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥५३॥
सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ
प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा।
उत्सार्य्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः
प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान् ददृशेऽच्युतं सा ॥५४॥

तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं
जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम्।
रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं
राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ॥५५॥
ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः
शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ५५½।
तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं
परे जरासन्धवशा न सेहिरे।
अहो धिगस्मान् यश आत्तधन्विनां
गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥५६॥

सारांश यह कि बड़े बड़े वीरों को भी मोह के महासागर में निमग्न कर देनेवाली, देवमाया के समान, उस परमरूप लावण्यवती कन्या को देख कर वहाँ पर एकत्र राजवर्ग के होश-हवास जाते रहे। उनके हाथ से अस्त्र-शस्त्र छूट पड़े और वे स्वयं भी अपने अपने रथ, हाथी या घोड़े से लुढ़क कर ज़मीन पर गिर गये। इधर अम्बिकार्चन करके लौटी हुई रुक्मिणी ने यह जानना चाहा कि देखूँ, कृष्ण भगवान्, मेरी प्रार्थना को सफल करने के लिए, यहाँ आये हैं या नहीं। अतएव हाथ से अपनी अलकें हटा कर, बड़े ही हाव-भावपूर्वक, जो उसने अपाङ्ग-दृष्टि से देखा तो उसे अपने इष्टदेव के दर्शन हो गये और साथ ही पृथ्वी पर अचेत पड़े हुए वे राजन्य वीर भी उसे दिखाई दिये। यह दृश्य देखते ही उसने रथ पर सवार हो जाने की इच्छा, मन ही मन, प्रकट की। श्रीकृष्णजी इस बात को तुरन्त ही ताड़ गये। अतएव उसे उठा कर उन्होंने अपने गरुड़ध्वज रथ पर बिठा लिया और वाँह से प्रस्थान कर दिया।

होश में आने पर जरासन्ध और शिशुपाल के पक्षपाती नरेश आक्रोश करने लगे। उन अभिमानियों का सारा अभिमान चूर्ण हो गया। उनका यश ख़ाक में मिल गया। पराभव ही उनके हाथ लगा। उहोंने कहा—हमको धिक्कार! बड़े धनुषधारी होने का दम भरनेवाले हम लोगों से इन अहीरों ने हमारा यश वैसे ही छीन लिया जैसे सिंहों का यश हिरन छीन लेते हैं। यह तो बड़े ही आश्चर्य्य और बड़ी ही लज्जा की बात हुई!

श्रीमद्भागवत के आध्यात्मिक स्थलों का अनुवाद पद्य में ठीक ठीक कर देना तो कठिन है ही। अन्यान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंशों का भी सरस और भावमूलक अनुवाद कर सकना सहज नहीं। अस्तु। जब तक कोई सौभाग्यशाली कवि इस ग्रन्थ का अच्छा अनुवाद करके हिन्दी-साहित्य को गौरवान्वित न करे तब तक यदि कोई महाशय इसके चुने हुए रुचिर और रमणीय स्थलों ही का पद्यात्मक अनुवाद करने की कृपा करे तो भागवत के भक्तों और साहित्य के प्रेमियों का बड़ा उपकार हो। "रुक्मिणी-हरण" यदि अनुवाद-योग्य समझा जाय तो इसी से कवि-जन अपनी कवित्व-शक्ति के उड्डान की परीक्षा का आरम्भ कर सकते हैं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

अत्यधिकता।

(१)

अति का करना कहीं किसी ने कहा नहीं है
क्योंकि उसे कर कौन आज तक रहा कहीं है ?।
फिर करके अत्यधिक दुष्ट जन नष्ट न हो क्यों ?
जो हो नय-पथ-भ्रष्ट उसे फिर कष्ट न हो क्यों ?॥

(२)

जो है पोली वस्तु दबाने से दब जाती,
दब करके वह किन्तु ठोस के गुण को पाती।
ज्यों रूई की गाँठ काठ सी होती दब कर,
मूल्यवती हो अधिक वही पाती है आदर॥

(३)

क्या होती है हानि दबाने से दुर्बल को ?
क्या होती दुष्कीर्ति किये पर कल से छल को ?।
है इनका आदर्श लङ्कपति सबसे ऊँचा,
हा कलङ्क के सहित नष्ट वह हुआ समूचा॥

(४)

बचा नहीं अन्याय एक भी कोई उससे,
अपना दुखड़ा प्रजा नहीं क्या रोई उससे ?।
पर उसका अन्याय नित्य बढ़ता जाता था,
मद उसका हो समुद व्योम चढ़ता जाता था॥

(५)

सभी सुरासुर दुखी हुए उसकी अनीति से,
पर वह था निश्चिन्त आसुरी रीति-प्रीति से।
नीतिज्ञों ने उसे न क्या बहुविध समझाया ?
किन्तु किसी का मन्त्र नहीं उसके मन भाया॥

(६)

हँसता था वह मूढ़ प्रजा जब दुख रोती थी,
देख प्रजा का लाभ, हानि उसकी होती थी।
ऐसा था कर कौन प्रजा थी जिसे न देती ?
अति तृष्णा दुष्कीर्ति जगत में किसे न देती ?

(७)

सुन करके हित-वाक्य मूढ़ वह जल जाता था,
बुध को बागी बना युक्ति से भिड़ जाता था।
पण्डित जन भी हुए अकारण दण्डित उससे
दुर्जन वन्दित हुए, हुए थे मण्डित उससे॥

(८)

निशिचर के चर विचर रहे थे घोर क्रूर हो,
होकर निर्दय अभय विनय नय से विदूर हो।
प्रजा फँसाते रहे, हँसाते रहे नृपति को,
वैर बढ़ाते रहे, बढ़ाते रहे विपति को॥

(९)

जिस दुर्जन के शीश घोर दुर्दिन आता है,
जग को करना दुखी उसे अतिशय भाता है।
निर्जल जलजों को न ग्रीष्म यदि करे कहीं पर,
तो धाराधर धार गिरे क्यों कभी मही पर ?॥

(१०)

कहिए किसको किया न अपने वश में उसने ?
कभी दिया क्या ध्यान सुयश अपयश में उसने ?
अग्नि-पवन को जल-जलधर को वन्दी करके—
रक्खा उसने, सभी सुरों को सर्वस हरके॥

(११)

नित परस्व का हरण किया ही वह करता था,
साधुजनों को दुःख दिया ही वह करता था।
रहा काल का काल, किन्तु जब दुर्दिन आया,
धोखा खाया, चली न कुछ भी उसकी माया॥

(१२)

नर वानर को भक्ष्य समझता था वह अपना,
पर से डरना उसे हुआ था मानो सपना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही दनुज पर मरा मनुज के हाथों रण में,
सबका अन्तक अन्त समय पर करता क्षण में ॥

(१३)

थे जिसके दश शीश भुजायें बीस जिसे थीं,
लङ्का हाटक-पुरी मिली जगदीश ! किसे थी ? ।
बचा न वह भी दुराचार की वक्र दृष्टि से,
घटना-बढ़ना लगा हुआ है आदि सृष्टि से ॥

(१४)

उत्पीड़क खल सदा न रह सकते हैं जग में,
उगते काँटे घोर कभी उनके भी मग में ।
दुर्बल होते प्रबल कभी सबलों के ऊपर,
रहा न अब तक कहीं एक सा कोई भू पर ॥

(१५)

करिए मत अन्याय न्याय से भू पर रहिए,
होकर के अति नीच न सिर पर चढ़ कर रहिए ।
नीचे गिरता वही अधिक ऊपर चढ़ता जो,
पीछे हटता वही अधिक आगे बढ़ता जो ॥

(१६)

अति अचिन्त्य भी वस्तु वस्तुतः मिल जाती है,
कभी धराधर लिये धरा भी हिल जाती है ।
धन धरती का गर्व कभी मत मन में करना,
डरना होगा तुम्हें समय पर होगा मरना ॥

रामचरित उपाध्याय

बीजापुर ।

दक्षिण का बीजापुर एक प्रसिद्ध नगर है । मुसलमानों के समय में तो इस नगर को एक स्वाधीन राज्य की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है । यह नगर कितना प्राचीन है, इस सम्बन्ध में निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता । परन्तु पश्चिमी चालुक्य-राजाओं के जो शिलालेख बीजापुर के क़िले में मौजूद हैं उनसे इसकी प्राचीनता और ऐतिहासिकता दोनों सिद्ध होती है । इनमें चालुक्य-राज द्वितीय सोमेश्वर का एक शिलालेख है । उसमें इसका नाम विजयपुर लिखा है । अतएव इसकी स्थापना चालुक्यों के समय में या उनके पूर्व किसी विजय के उपलक्ष्य में हुई होगी ।

उसकी प्राचीन हिन्दू-इमारतों के जो चिह्न इस समय उपलब्ध हैं उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दू-काल में यह एक प्रसिद्ध स्थान रहा होगा ।

मुसलमानी-राज्य की राजधानी होने के पहले बीजापुर विजयपुर-मात्र था । वहाँ चालुक्य-राजाओं के कीर्ति-निदर्शक अनेक जरा-जीर्ण हिन्दू-मन्दिर विद्यमान थे । इस बात का प्रमाण स्वयं वहाँ की मुसलमानी इमारतें हैं । यहाँ के क़िले के फाटक से कुछ दूर उत्तर ओर जो पुरानी मस्जिद है वह हिन्दू-मन्दिर की सामग्री से ही नहीं बनी है, किन्तु उस स्थान के हिन्दू-मन्दिर का मण्डप मस्जिद का मण्डप बना लिया गया है । वह अभी तक जैसा का तैसा खड़ा है और नगर के प्राचीन गौरव की गवाही दे रहा है ।

यूसुफ़ आदिलशाह ।

परन्तु इस समय बीजापुर अपनी मुसलमानी इमारतों के लिए ही प्रसिद्ध है । ये इमारतें आदिलशाही घराने के बादशाहों के समय की हैं । बहमनी-राज्य-भङ्ग होने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका स्वामिभक्त सरदार यूसुफ़ अपने ही जैसे दूसरे सरदारों की भाँति बीजापुर के आस-पास का प्रदेश अपने अधिकार में करके स्वयं बादशाह बन बैठा और आदिल-शाही नामक एक नये राज-घराने की सृष्टि की। उसी ने इस नगर को अपनी राजधानी बनाया था। उसके ख़ान्दान ने अनेक वर्षों तक राज्य किया। इसी समय बीजापुर की वर्तमान प्रसिद्ध इमारतों की रचना हुई थी।

यूसुफ़ उन कुछ भाग्यशाली विदेशी लोगों में से था जो भारत आकर किसी छोटे या बड़े राज्य के संस्थापक हुए और कई पीढ़ियों तक जिनके वंशधरों ने शासन किया। कहा जाता है कि वह रूम के सम्राट् बजाज़त का छोटा पुत्र था। सम्राट् के घराने का यह क्रूर नियम था कि बड़े लड़के को छोड़ कर उसके दूसरे सब लड़के मार डाले जाते थे, जिसमें भविष्य में उत्तराधिकार के लिए गृह-युद्ध न हो। अतएव यथासमय यूसुफ़ के भी वध की आज्ञा दी गई। परन्तु पुत्र के प्रेम-वश सम्राज्ञी ने यूसुफ़ के समान एक दूसरे लड़के का वध करवा कर उसे मारे जाने से बचा लिया और अपने पास सोलह वर्ष तक

इस्माइल।

गुप्तरूप से छिपाये रही। जब सम्राज्ञी को भेद खुल जाने का भय हुआ तब उसने यूसुफ़ को फ़ारस भेज दिया।

इस प्रकार शाहज़ादा यूसुफ़ फ़ारस पहुँचा। जब वह फ़ारस के शीराज़ नगर में रहता था तब उसने एक दि[illegible] यह स्वप्न देखा कि यदि मैं भारत चला जाऊँ तो [illegible] मुझे एक राज्य मिल जाय। स्वप्न पर विश्वास कर [illegible] तुरन्त भारत को रवाना हुआ और दक्षिण पहुँच [illegible]

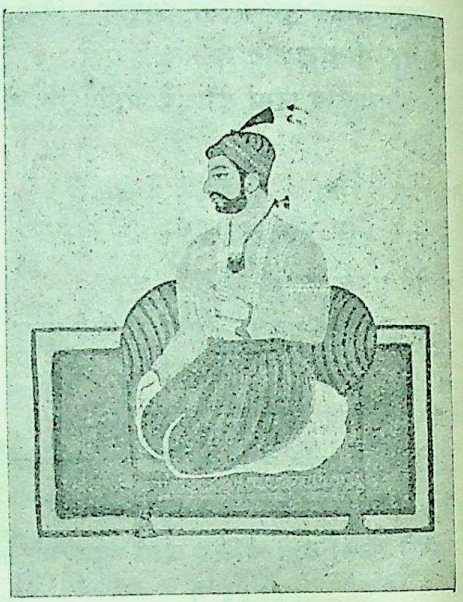

इब्राहीम प्रथम।

बहमनी-राज्य में उसने नौकरी कर ली। अपनी प्रतिभा [illegible] बदौलत वह थोड़े ही समय में राज्य का एक शक्तिशा[illegible] और प्रधान व्यक्ति हो गया। जब बहमनी-राज्य-भङ्ग हु[illegible] तब दरबार के दूसरे सरदारों की भाँति वह भी बीजापुर [illegible] आस-पास का देश अपने अधिकार में कर वहाँ का स्वाधी[illegible] राजा बन बैठा। इस प्रकार उसका स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ।

यूसुफ़ की उत्पत्ति तथा उसके भारतागमन के सम्ब[illegible] में कई एक परस्पर-विरुद्ध कहानियाँ प्रचलित हैं। पर[illegible] इस बात में सन्देह नहीं है कि वह रूम के सुलतान [illegible] वंशधर था, क्योंकि बीजापुर की प्रायः सभी शाही इमार[illegible] पर रूम के सुलतान का राज-चिह्न 'चन्द्रकला' अङ्कित है।

बीजापुर के आदिलशाही शासकों का शासन-का[illegible] सन् १४८९ से १६८६ तक रहा है। इस घराने में [illegible] नौ बादशाह हुए। इनके नाम क्रम-पूर्वक इस प्रकार हैं:

(१) यूसुफ़ आदिलशाह, (२) इस्माइ[illegible] आदिलशाह, (३) मल्लू आदिलशाह, (४) इब्राही[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिलशाह, (५) अली आदिलशाह, (६) इब्राहीम (दूसरा) आदिलशाह, (७) मुहम्मद आदिलशाह, (८) अली (दूसरा) आदिलशाह, (९) सिकन्दर आदिलशाह।

बीजापुर के उपर्युक्त बादशाहों में तीसरे और अन्तिम को छोड़ कर प्रायः सभी को इमारत बनवाने का शौक़ था। तीसरा तो गद्दी पर बैठने के बाद ही उतार दिया गया था और अन्तिम के समय राज्य पर घोर सङ्कट था। मुग़ल बादशाह औरङ्गज़ेब बीजापुर को अपने राज्य में मिला लेने के लिए तुला बैठा था। इस कारण इसके समय में कोई इमारत नहीं बन सकी। परन्तु शेष सात बादशाहों के समय में जो इमारतें बनी हैं उनमें दो एक ऐसी हैं कि उनसे उनके बनवानेवालों का नाम अमर हो गया है।

आदिलशाही बादशाहों के ज़माने में बीजापुर भारत का एक वैभवपूर्ण नगर था। उस समय उसकी आबादी दस लाख के लगभग थी। परन्तु काल के प्रभाव से वही नगर श्री-विहीन होकर उजड़ा पड़ा है और इस समय उसमें कुल

अली प्रथम।

२५०० मनुष्य रहते हैं। अब वह कुछ मन-चले यात्रियों की मनस्तुष्टि का साधन-मात्र रह गया है। नगर में प्रवेश करते समय चारों ओर बहुसंख्यक सुन्दर इमारतों के खण्डहर ही देख पड़ते हैं। जो राज-महल, मेहराबें, मकबरे, हौज़, सिंहद्वार आदि वहाँ टूटे-फूटे पड़े हैं वे सब तक्षण-कला के निदर्शक हैं। उन पर उगी हुई लताओं और

इब्राहीम द्वितीय।

पीपल या बरगद के वृक्षों ने उनके नष्ट-भ्रष्ट होने में अपनी सहायता अलग दी। इतने पर भी उन्हें देख कर यही कहना पड़ता है कि जिन इमारतों के वे खण्डहर हैं वे कला की दृष्टि से अद्वितीय और आदर्श रही होंगी। टेलर ने लिखा है कि दक्षिण के बीदर, गुलबर्गा या गोलकुण्डा जैसे एक भी नगर के भग्नावशेषों में बीजापुर के समान सुरुचि-परिचायक तथा आश्चर्यजनक कारीगरी के नमूनों का दर्शन नहीं होता। बीजापुर के खण्डहरों में कोई सप्ताहों तक घूमा करे, पर भव्य कारीगरी के नमूनों को वहाँ देख कर उसके कौतूहल की निवृत्ति न होगी।

बीजापुर का दुर्ग-मय राजमहल एक प्रकार से आदिलशाही बादशाहों का इतिहास है। काल की गति से अब वह नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। इसके चौक में स्वामिभक्त दिलशाह आग़ा के साथ जिरह-बख़्तर धारण कर यूसुफ़ आदिलशाह की बेगम बूबूजी ख़ानूम ने विद्रोही कमालख़ाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसके सैनिकों से युद्ध कर नवयुवक बादशाह इस्माइल की रक्षा की थी। इस महल में वह कमरा अभी तक मौजूद है जहाँ से विश्वासघाती किशबरख़ाँ प्रसिद्ध चाँदबीबी को क़ैद कर देने के लिए घसीट ले गया था। इसी

मुहम्मद।

प्रकार राजमहल के दूसरे भागों को देख कर राज-घराने से सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी ऐतिहासिक घटनाओं की स्मृति इतिहास के ज्ञाताओं को अपने आप हो आती है। परन्तु यह दुर्गमय राजमहल ही क्यों, यहाँ की सभी इमारतें अपनी अपनी कहानी कहती हैं।

यद्यपि बीजापुर सैनिक-दृष्टि से उपयुक्त स्थान पर नहीं आबाद है, तथापि अपने समय की दृष्टि से वह भले प्रकार सुरक्षित था। वह शहरपनाह से घिरा हुआ है, जिसमें ९६ बुर्ज और पाँच प्रधान सिंहद्वार हैं। शहरपनाह के चारों ओर एक गहरी और चौड़ी खाई है। इस प्रकार अपने समय के ऐसे ही दूसरे नगरों की अपेक्षा वह सैनिक-दृष्टि से किसी बात में हीन नहीं था।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि सभी आदिलशाही बादशाह इमारत बनवाने के प्रेमी थे, परन्तु उनमें मुहम्मद आदिलशाह की सुरुचि सबसे बढ़ कर थी। मुहम्मद आदिलशाह और मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ दोनों एक ही समय सिंहासन पर बैठे और जब शाहजहाँ गद्दी से उतार कर क़ैद कर दिया गया लगभग उसी समय मुहम्मद की भी मृत्यु हुई। यह सादृश्य तब और भी विचित्र धारण कर लेता है जब हम यह देखते हैं कि इन दो

अली द्वितीय।

बादशाहों की इमारत-सम्बन्धी अभिरुचि में भी समान थी। यदि शाहजहाँ का 'ताजमहल' संसार में अपना शा नहीं रखता तो मुहम्मद का 'गोलगुम्मज' भी संसार अद्वितीय है। यह इमारत मुहम्मद ने अपना शव दफ

सिकन्दर।

करने के लिए बनवाई थी। इसे वह सिंहासन पर आसी होने के बाद से ही बनवाने लगा था, जिसमें उसकी मृत्यु के पहले ही बन कर तैयार हो जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोल गुम्मज की उँचाई उसकी कुर्सी से गुम्मज तक कुल १९८ फ़ुट ९ इंच है। उसका विशाल कमरा १३५ फ़ुट ५ इंच लम्बा-चौड़ा है। इस इमारत के गुम्मज का व्यास १२४ फ़ुट ५ इंच है और उसकी मोटाई १० से ९ फ़ुट तक है। यह इमारत संसार में अपने ढङ्ग की एक ही है। रोम के प्रसिद्ध पैन्थियन का नम्बर इसके बाद है।

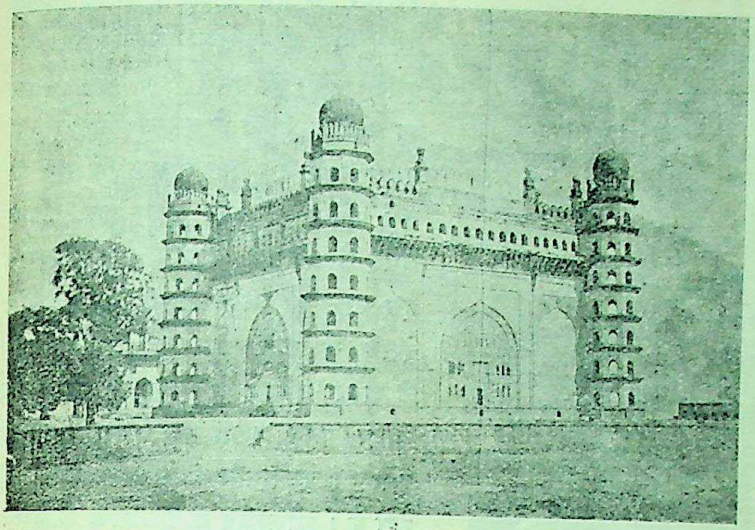

गोल गुम्मज।

गोल गुम्मज के सिवा बीजापुर की दूसरी इमारतें भी अपने शिल्पचातुर्य और भव्यता के लिए कम प्रसिद्ध नहीं हैं। जामा-मस्जिद, असार-महल, हैदरबुर्ज, अदालत-महल, अर्शमहल, आनन्द-महल, गगन-महल, सतमंज़िली ऐसी ही इमारतें हैं। क़िले के शाहीमहल के सम्बन्ध में एक अँगरेज़ लेखक लिखता है—विशालता और कारीगरी की दृष्टि से यह महल संसार में अप्रतिम है। योरप में प्राचीन या नवीन जितने शाहीमहल मैंने देखे हैं उनमें कोई भी उपर्युक्त बातों में इससे बढ़ कर नहीं है। इस महल का भोजन-गृह योरप के प्रसिद्ध रगलकैसल के भोजन-गृह से तिगुना बड़ा है।

नगर के दक्षिण-पूर्व में एक छोटी सी बड़ी अद्भुत इमारत है। इसे मुबारकख़ाँ का महल कहते हैं। यह इमारत तिमंज़िली है। नीचे का भाग चौकोर, बीच का अष्टपहलू और ऊपर का गुम्मजदार है। तीनों मंज़िलों में सुन्दर सुन्दर फ़ौवारे और हम्माम बने हुए हैं। इस इमारत में इन्हीं बातों की विशिष्टता है। मालूम होता है कि इन्हीं के प्रदर्शन के लिए इसकी रचना हुई थी। फ़ौवारों की रचना में कारीगर ने अपना रचना-चातुर्य ख़ूब व्यक्त किया है। इनमें तथा हम्मामों में नल-द्वारा जल पहुँचाया जाता था।

नल-द्वारा जल पहुँचाने की व्यवस्था बीजापुर के सभी शाही-महलों में थी। भारत के प्रायः सभी मुसलमानी नगरों में जल का ख़ासा प्रबन्ध रहा है। ऐसी दशा में बीजापुर जैसे विशाल जन-संख्या के नगर में उसका और भी श्रेष्ठ प्रबन्ध होना चाहिए था। अतएव शासकों ने कुएँ, बावली और तालाब खुदवा कर

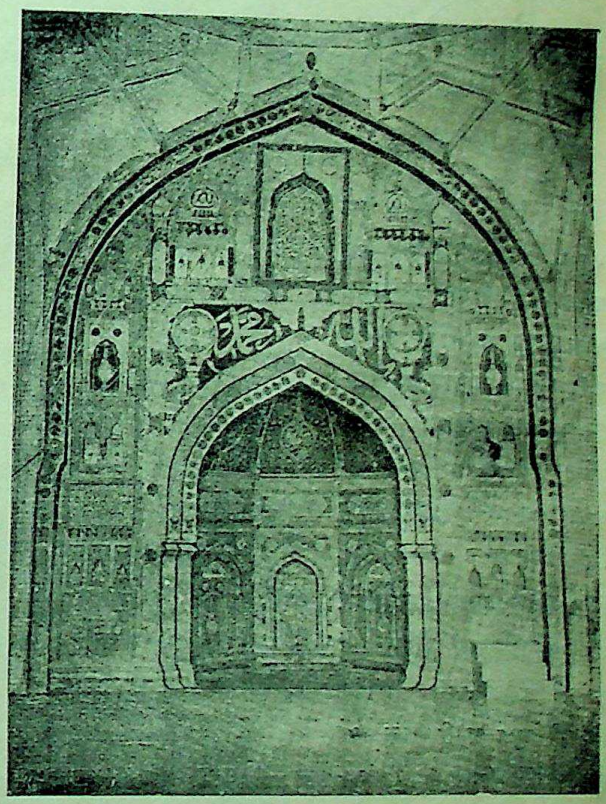

जामा मस्जिद—भीतरी दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल की समुचित व्यवस्था कर दी थी। शाहीमहलों में जल पहुँचाने के लिए नल की व्यवस्था थी। कुछ कुछ आज-कल जैसा ही प्रबन्ध था। शहर के बाहर तरवेह और बेगम-तलाब से नल-द्वारा जल लाया जाता था। खोदने पर अब भी जगह जगह इनके चिह्न मिलते हैं।

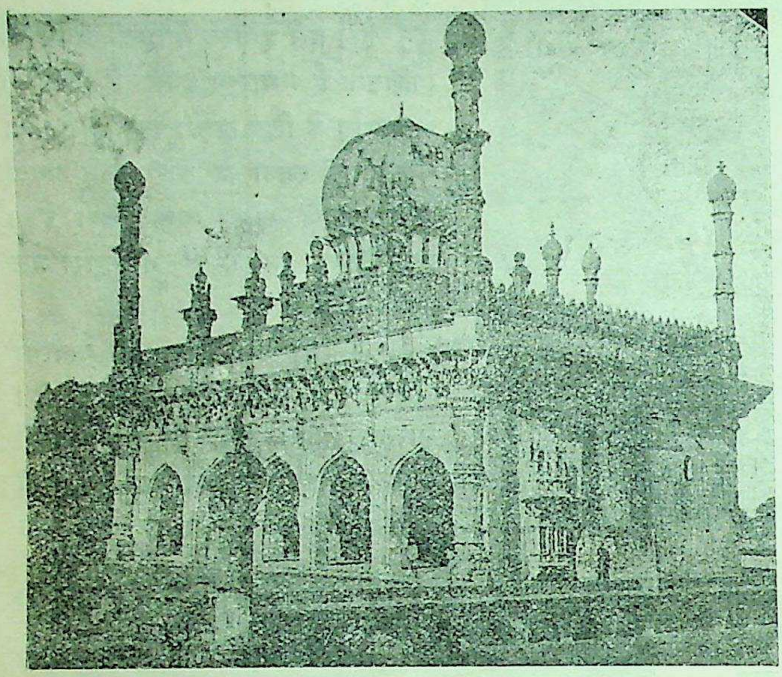

इब्राहीम रौज़ा।

बीजापुर के ध्वंसावशेषों में इब्राहीम का रौज़ा एक उत्कृष्ट इमारत है। इसकी चिपटी छत अभी तक ज्यों की त्यों निराधार खड़ी है। इसमें धरनों का उपयोग नहीं किया गया है। सम्पूर्ण छत पत्थर की पटियों की बनी है। ये पटियाँ एक दूसरी से गारे से ही जोड़ दी गई हैं। निस्सन्देह, भारतीय कारीगरी का यह एक अद्भुत नमूना है। जिस कारीगर ने इसकी रचना की है उसकी हस्तलाघव की प्रशंसा तो है ही, पर इसके साथ ही उसने जिस श्रेष्ठ मसाले का उपयोग किया है उसका भी कुछ कम महत्त्व नहीं है। क्या मजाल कि छत की एक पटिया मसाला छोड़ कर अपनी जगह से खिसक जाय। ऐसा मज़बूत इस ढङ्ग का काम अभी तक अन्यत्र देखने में नहीं आया है। शहरपनाह के बाहर दक्षिण ओर एक गुम्मज का आधा भाग अभी तक खड़ा बीजापुर की इमारतों की पुष्टता का परिचय अलग दे रहा है। औरङ्गज़ेब के आक्रमण के समय दूसरी इमारतों के साथ इसका आधा भाग ध्वस्त हो गया था।

अन्त में बीजापुर की प्रसिद्ध तोप मलिकमैदान का वर्णन भी इस लेख में आवश्यक है। पश्चिम

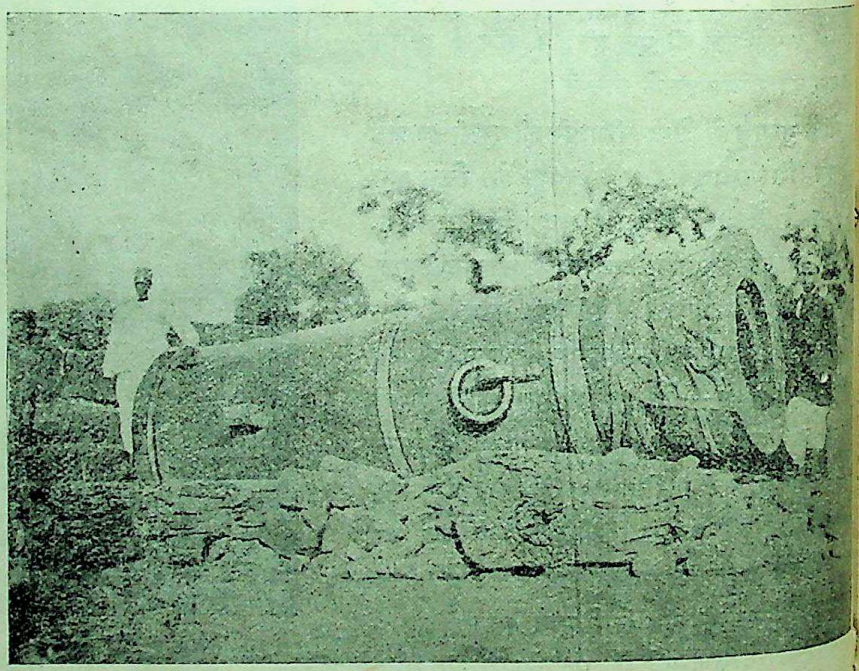

मालिके मैदान।

ओर की शहर-पनाह के सबसे बड़े बुर्ज पर वह चढ़ी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी के पास ही लन्दाकसब नाम की दूसरी बड़ी तोप भी रक्खी है। लन्दाकसब २७ फ़ुट ७ इंच लम्बी है और इसके मुँह का व्यास ४ फ़ुट ४ इंच है। इसकी नली १८ फ़ुट ७½ इंच लम्बी है। इसका वज़न ४७ टन है। मालिके-मैदान बाहर से चिकनी और पालिश की हुई है। चोट करने पर उससे घण्टी की सी आवाज़ निकलती है। इस पर तीन लेख खुदे हुए हैं। एक में इसके बनानेवाले मुहम्मद बिनहसन स्तम्बोली का नाम लिखा है, दूसरे में अबुलग़ाज़ी निज़ामशाह के नाम के साथ इसके ढाले जाने का हिजरी सन् ९५६ (सन् १५४९) उत्कीर्ण है और तीसरे में औरङ्गज़ेब के बीजापुर-विजय करने का सन् १०९७ हिजरी अङ्कित है। यह तोप १४ फ़ुट ४ इंच लम्बी और इसकी नली का व्यास ४ फ़ुट ९½ इंच है। इसका वज़न ४० टन है। यह तोप अहमदनगर में ढाली गई थी। तालीकोट के भयङ्कर युद्ध में इस तोप ने बहुत अधिक नर-संहार किया था। यह निज़ामशाह के तोपख़ाने में थी। युद्ध के बाद उसने इसे परनदाह के क़िले में चढ़ा दिया था। पर जब बीजापुरवालों ने इस क़िले को ले लिया तब विजय-चिह्न-स्वरूप यह तोप बीजापुर लाई गई। तब से इसी बुर्ज पर चढ़ी है। ग्रामीण लोग इस तोप की पूजा किया करते हैं।

इस तोपराज के वर्णन के साथ ही यदि बीजापुर के राजकीय पुस्तकालय का भी कुछ उल्लेख कर दिया जाय तो अनुपयुक्त न होगा। इस पुस्तकालय में अरबी और फ़ारसी के बहुसंख्यक अमूल्य ग्रन्थ थे। इनमें अधिकांश धार्म्मिक ग्रन्थ ही थे। पर क़ानून, राजनीति, व्याकरण, कोश, गणित, ज्योतिष के ग्रन्थों की भी संख्या कुछ कम न थी। सन् १८५३ में इस पुस्तकालय के सभी ग्रन्थ विलायत भेज दिये गये। इस प्रकार आदिलशाही बादशाहों की विद्याभिरुचि का परिचायक उनके पुस्तकालय का अस्तित्व अब इस नगर से मिट गया।

दयाशङ्कर अवस्थी

समझौता।

संसार "मैं और तू" के द्वन्द्व-भाव का एक बड़ा भारी अखाड़ा है। यहाँ स्वार्थ के कारण लड़ाई-झगड़े और मतभेद होते ही रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि लड़ाई-झगड़े से हानि है, परन्तु विरोध और मतभेद का अवसर कभी न कभी आ ही जाता है। मुर्दों में लड़ाई नहीं होती। विरोध होने पर हानि के बढ़ने से बुद्धि ठिकाने आती है और मनुष्य समझौते के लिए तैयार होने लगता है। इस संसार में समझौता कभी कभी बड़ा काम कर जाता है। इससे जन-धन-हानि और बड़े बड़े भयङ्कर अनर्थ रोके जाते हैं। सामाजिक झगड़ों में, व्यक्ति-गत लड़ाई और मुक़द्दमेबाज़ी में तथा अकारण द्वेष के कलहों में समझौते की बड़ी गुञ्जाइश रहती है, परन्तु धार्मिक क्षेत्र में इसका अच्छा असर बहुत कम पड़ता है। मित्रता, मेल, शान्ति, आपसी तसफ़िया, एकता, सन्धि आदि सब समझौते के भाई-बन्धु हैं। इतिहास और राजनीति के क्षेत्र में समझौते का महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है। इस लेख में यह बतलाने का प्रयत्न किया जायगा कि समझौता क्या वस्तु है।

समझौता दो परस्पर-विरोधी व्यक्तियों अथवा दलों में होता है; चाहे वे भाई भाई हों या दो समाज, देश अथवा राज्य हों। कभी कभी विरोधी दल दो से भी अधिक रहते हैं। समझौता प्रायः तभी होता है जब दो में से एक पक्ष कुछ निर्बल और दूसरा कुछ थोड़ा सा सबल रहता है। ऐसा बहुत कम अवसर होता है कि दो समान शक्ति-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले विरोधी दलों में समझौता हो, क्योंकि बल की समानता होने पर या तो शत्रुता ही प्रारम्भ न होगी या प्रारम्भ होने पर विरोधी के बल को देखकर अपने बल का भी अभिमान रहेगा और उसके सम्मुख झुकने की आवश्यकता न मालूम होगी। यदि एक दल अत्यन्त ही निर्बल अथवा नगण्य और दूसरा दल बहुत अधिक बलवान् हो तो समझौता होने की थोड़ी भी आशा नहीं रहती, क्योंकि बलवान् शत्रु को विश्वास हो जाता है कि वह अपने कमज़ोर दुश्मन को हर हालत में पीस देगा; लड़ाई-झगड़े में अभिमान, हठ और स्वार्थ की प्रधानता रहती है। यहाँ दया, उदारता और परोपकार को कोई नहीं पूछता। उदारता और परोपकार-बुद्धि हो तो शत्रुता ही कैसे हो सकती है?

जब दोनों विरोधी व्यक्ति अथवा दल एक दूसरे की ताक़त के क़ायल होते हैं और यह महसूस करने लगते हैं कि अब और अधिक समय तक लड़ने-भिड़ने से दोनों की हानि अवश्य होगी तभी भविष्य-चिन्ता से समझौता होने का समय आता है। झगड़े अपने स्वार्थ के लिए होते हैं और जब दोनों के स्वार्थों का गला घुटने का मौक़ा आ जाता है तब मेल किये बिना काम नहीं चलता। स्वार्थ ही शत्रुता कराता है और स्वार्थ ही मित्रता भी कराता है। जब तक दो विरोधियों के हृदय में यह आन्तरिक विश्वास न हो जाय कि दोनों दलों में कुछ घट-बढ़ कर यथेष्ट बल है, दोनों दल बहुत अधिक समय तक लड़ सकते हैं, लड़ते रहने से दोनों की हानि अवश्यम्भावी है और झगड़ा बन्द करने पर दोनों को लाभ होगा तब तक समझौता होने का परिपक्व समय नहीं आता।

समझौते का अर्थ क्या है? उसका अ यही है कि "थोड़ा हम भी झुकें और थो आप भी झुकें।" समझौता करने के लि दोनों दलों को थोड़ा थोड़ा स्वार्थत्याग क पड़ता है। दूसरे दल से कुछ अधिकार अथ वस्तु लेने के लिए उसे भी अपने पास से कु अधिकार या वस्तु देनी पड़ती है। इस दृष्टि वह एक प्रकार का सौदा या लेन-देन है। अ एव समझौता उसे कहना चाहिए जिसके द्वा कुछ रियायत और पारस्परिक वचन-बद्धता आधार पर मतभेद, विरोध और लड़ाई हो और मनमुटाव अथवा वैमनस्य मिट कर दूसरे के लिए सद्भाव स्थापित हो। समझौता प्रकार का हो सकता है। जब दोनों दलों को विश्वास हो जाय कि मिल जाने से न तो कि की जीत हुई है न हार तथा न तो किसी अनुचित हानि हुई है और न किसी का अनुचि लाभ, तब समझना चाहिए कि यह उत्तम को का समझौता है। ऐसे समझौते से दोनों द को पूर्ण सन्तोष का अनुभव होता है, आ प्रतिष्ठा नष्ट होने का दुःख नहीं होता और झ की जड़ सदा के लिए उखड़ जाती है। कृत्रि समझौता दबाव, लाचारी या असमर्थता से हो है। इससे झगड़े की आग चार दिनों के लि घास पत्तों के नीचे छिप जाती है और अव मिलने पर फिर चौगुनी ताक़त से भड़क उ है। जो दो को एक बना सके वह समझौता और दोनों के हृदय को मिला न सके शाब्दिक अथवा काग़ज़ी लीपा-पोती है। अ समर्पण और समझौते में बड़ा अन्तर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब समझौते के लिए परिपक्व समय आ जाता है तब विचार और निर्णय के लिए अत्यन्त शान्त परिस्थिति की आवश्यकता होती है। ऐसा समय आ जाने पर दोनों दलों को शान्त परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए जी तोड़ कर ईमानदारी से प्रयत्न करना पड़ता है और क्षण भर के लिए वैर-भाव को स्थगित कर देना पड़ता है। इस प्रयत्न में सचाई की जितनी मात्रा होगी उतने ही अंश तक सफलता मिलेगी; यदि राजनीति की केवल शतरंजी चाल रही तो समझ लीजिए कि और भी गहरी खाई खुद रही है। एक ओर समझौते और एकता की बातें करते और दूसरी ओर अपने दल के लोगों को भड़का कर छुरी तेज़ करते रहने से समझौते की नैया डगमगा कर उलट पड़ती है और उस पर बैठनेवाले खुद डूब मरते हैं और दूसरों को भी डुबा देते हैं। समझौता तभी सम्भव हो सकता है जब दुरङ्गी चालें और प्रहार रुक जायँ, प्रारम्भिक शान्ति और स्थायी सन्धि के लिए परस्पर विश्वास उत्पन्न हो सके, मानवी भूलों पर दोनों ओर से कुछ अंश तक क्षमा और सहिष्णुता का भाव उत्पन्न हो और दोनों विरोधियों को विश्राम का श्वास लेकर गम्भीर विचार करने का अवसर मिले।

दूरदर्शिता और व्यावसायिक बुद्धि समझौता करा सकती है। सफल समझौता हो जाना दोनों पक्ष की बुद्धि का सूचक है। समझौते की शर्तें तय करते समय सीधेपन से दबना ठीक उतनी बड़ी मूर्खता है जैसे ऐंठ के साथ दुराग्रह करके विरोधी के स्वार्थ पर ख़याल न रखना। न तो मुरौवत करना चाहिए न अनुचित आशा। समझौते के तराज़ू के कांटे को इधर-उधर झुकने देने से सौदा कभी तय न होगा। इस कहावत पर ध्यान रखना चाहिए कि "इतना न तान कि टूट जाय।" हठ समझौते के लिए ज़हर है। समझौते का पौधा बड़ा नाज़ुक होता है, इसलिए उसका सिंचन सावधानी से होना चाहिए। जैसे किसी मनुष्य को भूत दबा लेता है और उपाय करने पर छोड़ देता है तो भी वह मनुष्य बार बार झिझकता रहता है उसी तरह दो दुश्मन समझौता हो जाने पर भी एक दूसरे को शङ्का की दृष्टि से देखते रहते हैं। अतएव समझौता करनेवालों की हार्दिक इच्छा यदि सच्ची और स्थायी शान्ति स्थापित करने की हो, अपने अपने दल के धन-जन का नाश रोकना हो और समाज के अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों का मार्ग खोल देना हो तो कपट का व्यवहार दोनों ओर से बन्द हो जाना आवश्यक है। ऐसी दशा में मुँह से जो कुछ कहा जाय—शर्तों के द्वारा जो कुछ तय हो जाय—उसके विपरीत काम करने से समझौते का कोमल पौधा कुम्हला कर नष्ट तो हो ही जाता है, परन्तु निराशा और द्वेष के कारण शत्रुता में सौगुनी तेज़ी और कट्टरता बढ़ जाती है।

आपसी तसफ़िया या समझौता करा देने के लिए श्रीकृष्ण और अङ्गद की भी आवश्यकता होती है। आपस में लड़नेवाले दो दल या मनुष्य अपने वैरी से स्वयं मिलने और बातें करने में अप्रतिष्ठा समझते हैं, इसी से पञ्च और दूत की प्रथा उत्पन्न हुई है। ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलेंगे जहाँ पञ्च, मध्यस्थ, न्यायाधीश और दूत के बिना झगड़ा तय हो गया हो। हम यहाँ हिन्दुस्तान के अपने मारवाड़ी, बनिये और रोज़गारी भाइयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते; वे अपने झगड़ों का निपटारा ऐसी पोशीदगी के साथ कर लेते हैं कि पास के खड़े हुए सियार को उनके खून का एक बूँद भी नहीं मिल पाता। ऐसे सियार को समझौता होते देख कर बड़ा दुःख होता है। मुक़द्दमेबाज़ी में जो केवल अपनी आमदनी देखेगा और वादी-प्रतिवादी दोनों में से किसी के लाभ का विचार न रक्खेगा वह वकील समझौता होता देख कर अवश्य दुखी होगा। कोई दया और परोपकार-भाव से पञ्च और दूत बन जाते हैं, कोई विरोधी दलों के बनाने और अधिकार देने से बनते हैं और कोई दालभात में मूसलचन्द भी होते हैं। बेईमान और स्वार्थी पञ्च पर भरोसा करने से केवल उतनी ही हानि होती है जितनी लड़ कर मर जाने से। मध्यस्थ और दूत जितना ही चतुर, सदाचारी, विश्वसनीय और न्याय-प्रेमी होगा उतनी ही भलाई होगी। ईमानदारी से प्रबल प्रयत्न करने पर यदि दुर्योधन ने समझौता न करना चाहा तो इसमें श्रीकृष्ण के दूतत्व की कोई हीनता नहीं मालूम होती और तब यदि पाण्डव लोग कौरवों का नाश करने पर उतारू हो गये तो उन्हें कोई दोष नहीं दिया जा सकता।

समझौता करा देना बड़े पुण्य का काम है। उसका सफल हो जाना परम सौभाग्य की बात है। वियोग में संयोग करा देना, शत्रुता की जगह मित्रता करा देना, मुक़द्दमेबाज़ी की जगह भाई-चारा पैदा कर देना और दो दिलों को राज़ी कर-के एक कर देना सहज काम नहीं है। समझौता करा देनेवाले को प्रायः यश अधिक मिलता है और अपयश कम। जो इस कार्य को हाथ में ले उसे झगड़े के असली कारणों की जाँच कर लेनी चाहिए; जब तक रोग के कारणों का ही पता न रहेगा तब तक वैद्य कोई अच्छी दवा नहीं दे सकता। समझौते के प्रेमी के शरीर में हृदय होता है और मस्तिष्क में बुद्धि। जब दुर्भाग्य अथवा विनाश का समय रहता है तब अच्छे से अच्छा दूत मेल नहीं करा सकता। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण का कहना न माना—वह पाँच पाण्डवों को केवल पाँच गाँव भी नहीं देना चाहता था। वह युद्ध के बिना "सूच्यग्रं न दातव्यं बिना युद्धेन केशव" सुई की नोक के बराबर भी भूमि अपने भाइयों को नहीं देना चाहता था। आधे राज्य पर पाण्डवों का पूरा हक़ था, परन्तु वे झगड़ा टालने के लिए केवल पाँच गाँव लेकर ही सन्तुष्ट हो जाना चाहते थे। दुर्योधन समझता था कि वनवास करनेवाले युधिष्ठिर उसका कुछ न कर सकेगा। समझौते का अर्थ अपने अधिकार का पूरा पूरा त्याग कर देना नहीं है। यदि इसे समझौता कह सकें तो युधिष्ठिर पाँच गाँव का माँगना भी छोड़ कर समझौता कर सकते थे और भिक्षा-वृत्ति से या नौकरी कर दिन काट सकते थे।

विरोधी सिद्धान्तों का समझौता नहीं हो सकता। सच और झूठ, पाप और पुण्य, न्याय और अन्याय में समझौता होना असम्भव है। रामचन्द्रजी रावण से केवल एक शर्त पर समझौता कर सकते थे—वह यह कि उन्हें सीता मिल जाय। सीता पर रामचन्द्रजी का स्वाभाविक अधिकार था—रावण का बिलकुल नहीं। यदि रावण चाहता कि वह रामचन्द्रजी को लङ्का का पूरा राज-पाट दे दे और सीता वापस न करे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझौता होना असम्भव था। व्यभिचारी, आततायी और ख़ूनी के साथ क्या समझौता हो सकता है ? उन्हें तो उनके कर्मों का दण्ड मिलना ही चाहिए। हाँ, यदि सीता वापस मिल जाती तो रामचन्द्रजी अपनी उदारता से रावण को क्षमा कर सकते थे; विजय होने पर जब उन्हें सीता मिल गई और रावण मर गया तब उन्होंने रावण की लाश को ठुकराया नहीं, बल्कि उसकी विधिपूर्वक क्रिया करवा दी। सारांश यह है कि संसार में द्वन्द्वभाव और स्वार्थ के कारण लड़ाई-झगड़े और विरोध के अवसर आ ही जाते हैं, परन्तु बुद्धिमान् और भाग्यवान् वही हैं जो उसे तीव्र होने देने के पहले दूर कर सकें।

कुछ भी हो, समझौता आख़िर मरहम-पट्टी ही है। वह बड़े बड़े अनर्थों को रोक सकता है और शान्ति स्थापित कर सकता है अवश्य, परन्तु कब ? जब मन का मैल मिट जाय और स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हो सके। इस संसार में देवता दस-पाँच और मनुष्य करोड़ों रहते हैं। यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि समझौता बुरी बात है पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि घाव के भर जाने पर उसका दाग़ रह जाता है; एक रस्सी को तोड़ कर फिर जोड़ने से गाँठ पैदा हो जाती है और मरम्मत की हुई दीवार में पहले की सी मज़बूती नहीं रह जाती। यदि मनुष्य देवता होता तो वह पुनः मित्रता स्थापित होने पर झिझकना और सन्देह करना छोड़ देता। मनुष्य मनुष्य है, इसी लिए कहा गया है कि "मन, मोती अरु दूध रस, इनके यही स्वभाव। फाटे से ये ना मिलैं कोटिन करो उपाव।" यह सब कहने में हमारा उद्देश यह नहीं है कि समझौता करना कोई हीन कार्य है; हमारा मतलब सिर्फ़ यही है कि असली और बनावटी प्रेम में कुछ न कुछ भेद अवश्य रहता है। जो समय पाकर बनावटी प्रेम को भी स्वाभाविक मित्रता का स्वरूप दे सकें वे व्यक्ति अथवा दल धन्य हैं और उनका समझौता संसार के लिए आदर्श है।

मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

पारिवारिक शिक्षा।

(१)

लाला चमनलाल का ख़र्च आय से अधिक था, इसलिए प्रायः उदास रहा करते थे। उनकी स्त्री की हथेली में छेद था, पानी की भाँति ख़र्च करती थी। लाला चमनलाल बहुत मितव्ययी थे। उनका अपना ख़र्च बीस रुपये से अधिक न होता था। परन्तु उनकी स्त्री बड़े घर की बेटी थी, मख़मली स्लीपर पहनती, रेशमी साड़ी, रुपये का घी दूसरे दिन ख़र्च कर देती थी। दो तीन भाजियों के बिना रोटी का ग्रास उसके कण्ठ से नीचे न उतरता था, और रोटी खाकर जब तक फल न खा लेती तब तक भोजन हज़म न होता था। यही नहीं, दस-पन्द्रह रुपये मासिक लैस-फ़ीतों में उड़ जाते थे। दोपहर के समय अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ उसके पास आ बैठतीं तो उनके लिए मिठाई मँगवाई जाती। लाला चमनलाल यह देखते तो बहुत कुढ़ते। प्रायः स्त्री को समझाया करते, "देखो यह चाल अच्छी नहीं। रुपया-पैसा लहू-पसीना एक करके मिलता है, सोच-समझ कर ख़र्च करो। कन्यायें हैं, वे नीम के पेड़ की भाँति बढ़ रही हैं। उनके ब्याह के लिए अभी से बचाना आरम्भ करोगी तो समय पर पूरा पड़ेगा, नहीं तो भाई-चारे में नाक कट जायगी। इस तरह धन को उड़ाना धनाढ्य लोगों को शोभा देता है। इससे उनकी मान-प्रतिष्ठा को चार चान्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लग जाते हैं। परन्तु निर्धनों के लिए इस प्रकार व्यर्थ ख़र्च करना हलाहल विष के समान है। उनकी भलाई इसी में है कि फूँक फूँक कर पाँव धरें। सहेलियों से मिलो, बर्तो, उजले वस्त्र पहनो, मनाही नहीं, परन्तु रुपये को रुपया समझ कर ख़र्च करो। दिखावे के लिए सारी आयु का सुख गिरवी न रख दो।"

रामप्यारी सुनती तो सिर झुका लेती और सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करती कि भविष्य में कभी ऐसा न करूँगी। परन्तु उसकी यह टेव प्रकृति का एक अङ्ग बन चुकी थी, मास के अन्त में फिर यही कठिनाई आ पड़ती। रुपया-पैसा फिर समाप्त हो जाता, आवश्यक सामग्री फिर उधार मँगवाई जाती, लाला चमनलाल फिर कुढ़ते, रामप्यारी फिर प्रतिज्ञा करती, परन्तु यह प्रतिज्ञा कभी पूरी न हुई। यहाँ तक कि मितव्ययिता के विचार से लाला चमनलाल ने लाहौर छोड़ कर पास के ग्राम इच्छेर में रहना आरम्भ किया। इससे मकान के किराये में तो सोलह रुपये मासिक की बचत हो गई, परन्तु लाला चमनलाल पर मुसीबत टूट पड़ी। अब उन्हें पाँच मील रोज़ पाँव प्यादा चलना पड़ता था। सुहृद् मित्र कहते—"कैसे सूम हो, एक साईकल क्यों नहीं ख़रीद लेते, प्रति दिन के झञ्झट से छूट जाओगे"। ये शब्द लाला चमनलाल के हृदय में भाले की तरह चुभ जाते, परन्तु दूध का घूँट करके पी जाते। विवशता जीभ को पकड़ लेती थी।

(२)

साँझ का समय था, रामप्यारी कन्या के गौन में सिल्मा-सितारा लगा रही थी कि चमनलाल ने दफ़्तर से आकर एक गुलाबी लिफ़ाफ़ा उसके आगे रख दिया। रामप्यारी ने चिहुँक कर पूछा, "क्या है?"

"मिसेज़ रामरखामल ने तुम्हें आमन्त्रण दिया है।"

"कब?"

"दशहरे के दिन।"

रामप्यारी को भोज-निमन्त्रणों का बहुत चाव था। वह ऐसे अवसर पर हर्ष से उछल पड़ती थी। परन्तु इस समय उसके मुख पर उदासी छा गई जैसे किसी की बीमारी की ख़बर सुन ली हो। उसने उठ कर लिफ़ाफ़े को लौटा दिया और कहा, "मैं न जाऊँगी।"

रामप्यारी भोज में सम्मिलित होना अस्वीकार क[illegible] देगी इस बात का उन्हें ख़याल तक न था और विशेषतः मिसेज़ रामरखामल के साथ तो उसका चिरकाल का सम्बन्ध था। उन्होंने घबरा कर पूछा, "क्यों कुशल तो है?"

रामप्यारी ने सिर झुका कर उत्तर दिया, "वहाँ जितनी स्त्रियाँ आती हैं सबकी सब सज-सजाकर आती हैं। मैं उनमें जाकर नक्कू न बनूँगी।"

"क्यों? तुम्हारे पास फ़िरोजी रँग की जो साड़ी है, वह तुम्हें बहुत ही भली लगती है।"

"एक साड़ी है, उसे ही बार बार पहन कर अब जी भी उकता गया है। सब कहेंगी कि इसके पास ले देकर यही एक साड़ी है, दिन-रात उसे ही पहने फिरती है। कई स्त्रियाँ नोंक-झोंक भी कर देती हैं। उस समय की अवस्था मन की होती है उसे मन ही जानता है।"

"तो फिर क्या विचार है?"

"अच्छा तो यह है कि ना कर दीजिए, मैं न जाऊँगी।"

"नई साड़ी ही न ला दूँ?"

व्यर्थ ख़र्च करने में क्या धरा है। दूसरों के मुख से वाह वाह सुनने के लिए अपना घर लुटा देना कहाँ की बुद्धिमत्ता है।"

सम्भव है, यदि रामप्यारी हठ करती तो इन्हीं शब्दों में चमनलाल उसे उपदेश सुनाने लगते, परन्तु उसके अपने मुख से यह शब्द सुन कर उनको तीर सा लगा। अपनी निर्धनता पर क्रोध आया, प्रारब्ध को सैकड़ों गालियाँ दे डालीं और दुखित होकर इधर-उधर टहलने लगे। कुछ समय के पश्चात् बोले, "प्रिये! तुम्हारा वहाँ जाना अत्यावश्यक है।"

रामप्यारी ने सुई में तागा डालते डालते कहा, "मुझसे अपमान न सहा जायगा।"

"मैं कल नई साड़ी लेता आऊँगा।"

"कितने की आयेगी?"

"पच्चीस रुपये तक काम बन जायगा।"

रामप्यारी ने ठण्डी साँस भर कर कहा—मेरे पास तो सवा आठ आने के सिवा एक पैसा भी नहीं।

चमनलाल ने स्त्री के पास चारपाई पर बैठ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी कमर में हाथ डाला और हँस कर कहा, "कोई पर्वा नहीं। मेरा बटुआ भरा हुआ है।"

"झूठ।"

"नहीं सच।"

"दिखाओ तो……।"

यह कहते हुए रामप्यारी ने पति की जेब से बटुआ खींच लिया और उसे खोल कर देखा तो आश्चर्य्य से उछल पड़ी। उसमें दो गिन्नियाँ थीं। जिस प्रकार अबोध बालक नये खिलौने को देख कर प्रसन्न हो जाता है, उसी प्रकार गिन्नियों को देख कर रामप्यारी को हर्ष हुआ, मुख पर प्रसन्नता लहराने लगी। हँस कर बोली, "ये कहां मिलीं?"

चमनलाल कुछ देर चुप रहे। जब वे दफ़्तर को जाने लगते थे, तब रामप्यारी उनकी जेब में दोपहर को कुछ खाने-पीने के लिए चार आने पैसे डाल दिया करती थी। वे उन्हें बचा बचा कर रखते रहे। ये दो गिन्नियाँ उनकी चार मास की मितव्ययिता का फल थीं। उन्होंने मन ही मन सोचा, वास्तविक बात बतानी चाहिए या नहीं। अन्ततः यही निश्चय किया कि झूठ न बोलना चाहिए। रामप्यारी ने फिर पूछा, "ये कहां मिलीं? अभी महीना चढ़ने में तो एक सप्ताह बाक़ी है।"

चमनलाल ने कहा, "तुम मुझे खाने-पीने के लिए प्रति दिन क्या दिया करती हो?"

"चार आने।"

"ये चार मास की वही चवन्नियां हैं।"

रामप्यारी को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसे किसी ने सहस्रों मीलों की ऊँचाई से धक्का दे दिया हो। अपनी अमितव्ययिता उसकी दृष्टि में आज तक साधारण बात थी। परन्तु पति की मितव्ययिता के सामने उसको अपने अनर्थ के रूप का अनुभव हुआ। सोचने लगी, ये कमाते हैं, परन्तु पैसा पैसा सँभाल कर रखते हैं। मैं घर में बैठी राज करती हूँ, परन्तु रुपयों को ऐसा समझती हूँ, मानो मिट्टी के ढेले हों। वह रोती हुई पति के चरणों से लिपट गई और बोली, "तुमने मेरी आंखें खोल दी हैं। अब मैं एक पैसा भी व्यर्थ न ख़र्च करूँगी। ये गिन्नियां सँभाल कर रक्खो, मुझे नई साड़ी की आवश्यकता नहीं।"

परन्तु चमनलाल ने कहा, "इतना व्यर्थ ख़र्च तुम करती रही हो, एक बार मुझे भी कर लेने दो"।

(३)

दूसरे दिन दफ़्तर बन्द हुआ तो चमनलाल सीधे बज़ाज़ की दुकान पर पहुँचे और बोले, "कोई अच्छी सी साड़ी दिखाओ।"

"क्या रङ्ग हो?"

"नसवारी, जोगिया, कबूतरी।"

बज़ाज़ ने साड़ियों का ढेर लगा दिया। चमनलाल घबरा गये कि कौन सी पसन्द करूँ। बहुत समय तक उलट पलट करके देखते रहे, कभी एक को पसन्द करते, कभी दूसरी को। सोचते, कैसी भूल की, उसे साथ ले आते तो यह कष्ट न होता, अपनी मनमानी वस्तु ले जाती। स्त्रियों और पुरुषों की रुचि में भूमि-आकाश का अन्तर है। अन्त में एक साड़ी आंखों में जँची। उसे हाथ में लेकर बोले, "इसका मोल बताइए।"

बज़ाज़ ने साड़ी को हाथ में लेकर उसे जांचा और उत्तर दिया, "बाज़ार में यह साड़ी तीस रुपये में बिक रही है, पर आपसे पच्चीस ही ले लूँगा।"

चमनलाल को यदि मूल्य तीस रुपये बताया जाता तो वह कहता, पच्चीस लीजिए, परन्तु बज़ाज़ के अपने मुख से वही मूल्य सुन कर उन्होंने उत्तर दिया, "पच्चीस अधिक हैं।"

"आपकी दूकान है, उठा कर ले जाइए। यदि कोई दूसरा दूकानदार पौने पच्चीस को दे जाय, तो मैं आपसे एक कौड़ी भी न लूँगा।"

चमनलाल पर यह मन्त्र चल गया, रुपये फेंक कर बोले, "यदि पसन्द न आई तो वापस कर दी जायगी।"

"बड़ी ख़ुशी से। घर की बात है।"

चमनलाल साड़ी लेकर चले, तो हृदय आनन्द के मद से मतवाला हो रहा था और पांव पृथ्वी पर न पड़ते थे। परन्तु बाज़ार से बाहर निकले तो हृदय बैठ गया, घड़ी ने सात बजा दिये। उड़ते हुए गाड़ियों के अड्डे पर पहुँचे कि कोई टमटम मिल जाय तो उसी पर बैठ जायँ। परन्तु वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था। चमनलाल का कलेजा धड़कने लगा। आनन्द में मनुष्य की सबसे बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा यह होती है कि पर लग जायँ तो उड़ कर घर पहुँच जायँ। चमनलाल को टमटम भी न मिली। निराश होकर जमादार से बोले, "इच्छरे को कोई टमटम मिल जायगी ?"

"ज़रा ठहरिए, मिल जायगी।"

सूखे धान में पानी पड़ गया, चमनलाल का बोझ उतरा। लालटैन के पास जाकर चाव के साथ साड़ी को देख कर मन ही मन प्रसन्न होने लगे। अचानक कान में आवाज़ आई, "कोई इच्छरे की सवारी।"

चमनलाल ने चिहुँक कर आँख उठाई और टमटम की ओर बढ़े। परन्तु वहाँ तक पहुँचने न पाये थे कि चार आदमी टमटम पर सवार हो गये। चमनलाल के पाँव भूमि में गड़ गये। परन्तु फिर ख़याल आया, रात का समय है, देखता कौन है। उचक कर सवार हो गये और बोले, "ज़रा जल्दी चलो।"

टमटमवाले ने उत्तर दिया, "बाबू साहब! मेरे पास तो सवारियाँ पूरी हो चुकी हैं।"

"कोई बात नहीं, रात का समय है।"

"जो किसी ने पकड़ लिया तो आप छुड़ा लेंगे ?"

चमनलाल ने बेपर्वा होकर उत्तर दिया, "छुड़ा लूँगा।"

टमटमवाले ने यह समझा कि यह कोई उच्च अधिकारी है, इसे अपने ऊपर भरोसा है। उधर चमनलाल का विचार था कि इस समय कोई नहीं रोकेगा। परन्तु चौक में पहुँचते ही सन्तरी ने डाँट कर कहा, "ठहर जाओ।"

टमटमवाले का हृदय सहम गया। उसने चमनलाल से कहा, "बाबू साहब।"

चमनलाल ने देखा कि विपत्ति सिर पर आ गई, कोरे से होकर बोले, "थोड़ी मिन्नत-खुशामद कर दो, तुम्हें फाँसी थोड़ा ही दे देगा।"

टमटमवाले की आँखें खुल गईं। उसे यह आशा नहीं थी कि चमनलाल इस प्रकार आँखें बदल लेंगे। वह काँपता हुआ टमटम से उतरा और सन्तरी के सामने हाथ जोड़ कर बोला, "सरकार! माफ़ करें, फिर कभी ऐसी भूल न होगी।"

परन्तु सन्तरी ने न तो आँसुओं को देखा और न मिन्नत को सुना, लपक कर उसके सिर से नम्बर उतार लिया, कहा, "कल कचहरी आना"।

कोचवान रोता हुआ टमटम पर चढ़ा और घोड़े चाबुक लगा कर बोला "बाबू साहब! आपने यह अ किया है।"

परन्तु चमनलाल चुप साधे रहे। यह चुप्पी के कोचवान के हृदय के घाव पर नमक छिड़क गई। सह भूति के दो शब्द उस पर मरहम का काम दे जाते। पहुँचे तो वह मन में चमनलाल को सहस्रों गालि रहा था, परन्तु चमनलाल घरवाली को साड़ी दिखा चाव में मस्त थे। उनको बेचारे कोचवान की पर्वा न थी।

(४)

दूसरे दिन सवेरे कोचवान मैजिस्ट्रेट के सामने हुआ। मैजिस्ट्रेट की प्रकृति बड़ी कठोर थी, क्रोध बोला, "टुम पाँच सवारी क्यों बैठाया"

कोचवान ने हाथ बाँध कर और आँखों में आँसू कर उत्तर दिया, "सरकार! अब माफ़ कर दें, फिर ग़लती न होगी, ग़रीब आदमी हूँ।"

"लेकिन क़ानून के माफ़िक क्यों नहीं चला। अब मांगटा।"

"हुज़ूर माई-बाप हैं। यह पहली भूल है, माफ़ दो। सारी उमर दुआ देता रहूँगा।"

"हूँ।"

"सरकार सच कहता हूँ, फिर ऐसी ख़ता न होगी अब के माफ़ कर दें। ग़रीब आदमी हूँ, जुर्माना न सकूँगा।"

मैजिस्ट्रेट ने कुछ देर विचार किया और पच्चीस जुर्माना कर दिया। कोचवान के पास रुपये न थे, लिए हवालात में डाल दिया गया।

उसकी स्त्री ने यह सुना तो पछाड़ खाकर पड़ी। कुछ काल पश्चात् सुध आई तो लाला चन्द के पास पहुँची और सहायता के लिए प्रार्थना उसका पति उसी की टमटम ठेके पर चलाया करता परन्तु उसने किसी प्रकार की सहायता न की। तब निराश होकर वापस लौटी। यदि चमनलाल के चली जाती तो वह उसका जुर्माना भर देता, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास न आता था कि इसमें सफलता होगी। इस पर उसने चमनलाल को सहस्रों गालियां दे डालीं। स्त्री क्रोध में आई हुई बफ़री हुई शेरनी बन जाती है। यदि उस समय चमनलाल उसके हाथ आ जाते तो वह उनका पेट चीर देती, परन्तु विवश थी। विवश मनुष्य का मुँह बहुत चलता है। उसने भी गालियां देकर क्रोध उतारा और बच्चों को लेकर रोने लगी।

इधर कोचवान हवालात में बन्द था, उधर चमनलाल ज्वर में बेहोश पड़े थे। रामप्यारी के नेत्रों से अश्रु बह रहे थे, ओषधि पर ओषधि दे रही थी, परन्तु रोग में न्यूनता न होती थी। दो दिन बीत गये, शरीर तन्दूर के समान तप रहा था, रोग घटने का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता था। रामप्यारी मिन्नतें मान रही थीं, हनूमान् के लड्डू देने का व्रत कर रही थी और बार बार हाथ लगा कर देखती थी, परन्तु ज्वर कम न होता था।

तीसरे पहर का समय था। रामप्यारी चमनलाल के सिरहाने बैठी उसके मुँह की तरफ़ ताक रही थी कि उन्होंने नेत्र खोल दिये और कहा, "प्रिये!"

रामप्यारी का मुँह चमकने लगा, रोम रोम में आनन्द की लहर दौड़ गई। नीचे झुक कर बोली, "क्यों? क्या हाल है?"

"करमदीन बोदीबाला कोचवान है। उसे पच्चीस रुपये जुर्माना हुआ है। वह मुझे होना चाहिए।"

"आपको क्यों?"

"मैं ज़बरदस्ती उसकी टमटम पर चढ़ा था। यह मेरा दोष है उसका नहीं।"

"फिर।"

"उसे रुपये दे दो।"

रामप्यारी ने ठण्डी साँस भर कर उत्तर दिया, "रुपये कहाँ हैं?"

चमनलाल उन्माद में थे, बोले, "बटुए में दो गिन्नियां हैं।"

रामप्यारी के हृदय में बाण सा लगा, वह करमदीन के क़ैद होने की घटना सुन चुकी थी। परन्तु इस घटना का उसके पति से सम्बन्ध है, इसका उसे ज्ञान न था। पति के मुख से अपराध का मानना सुन कर उसे विश्वास हो गया कि चमनलाल को ठण्डे श्वासों ने बुख़ार चढ़ा दिया है, ओषधि से न उतरेगा। इसके लिए हार्दिक आशीर्वाद की आवश्यकता है। वह घबराई हुई उठी और पड़ोसिन के पास जाकर बोली, "बहन तेरे पास पच्चीस रुपये हैं। पहली को लौटा दूँगी।"

पड़ोसिन के पास रुपयों का घाटा न था, परन्तु उसने देना उचित न समझा, मुँह बना कर बोली, "नहीं, मेरे पास नहीं। होते, तो तुमसे क्या फ़र्क़ है।"

रामप्यारी के हृदय को इस उत्तर से बड़ा आघात पहुँचा। यही पड़ोसिन थी, जिसे उसने कई रुपये की मिठाई खिला दी थी। परन्तु समय पर वह इस प्रकार आंखें चुरा लेगी, इसका विचार न था। उसके कोरे उत्तर ने रामप्यारी की आंखें खोल दीं। पिछले निरर्थक ख़र्च उसके सामने मूर्तिमान् हो गये। सोचा, यदि बचा कर रखती, समझ-सोच कर ख़र्च करती तो पच्चीस रुपयों के लिए हाथ न पसारना पड़ता। इस पड़ोसिन का घरवाला, जिसके रुपये सूद पर चढ़े रहते हैं, पचास रुपया मासिक कमाता है। मेरे यहां सौ रुपये से अधिक की आय है, परन्तु हाथ में पैसा नहीं। उन्होंने सैकड़ों बार समझाया, और सोच-विचार कर ख़र्च करने का उपदेश किया, रामप्यारी के मन में यह बात न बैठी थी। परन्तु इस क्षुद्र सी घटना ने उसके मन में हलचल मचा दी। जो काम घड़ों जल से नहीं हो सकता, उसे क्वाथ के दो घूँट कर देते हैं।

(५)

रामप्यारी रोती हुई उठी और अपनी नई साड़ी ले कर टांगे में बैठ गई और बोली, शहर चलो। बज़ाज़ के पास जाकर बोली, "यह साड़ी लेलो, मुझे पसन्द नहीं।"

बज़ाज़ को उनका बहुत लिहाज़ था। उसने कहा, "कोई और दिखाऊँ?"

रामप्यारी साड़ी को नापसन्द होने के कारण नहीं प्रत्युत आवश्यकता के कारण लौटा रही थी, परन्तु इस बात को बज़ाज़ भांप गया तो कदाचित् न लौटाये, इस विचार से उसने उत्तर दिया, "दिखाओ।"

बज़ाज़ ने कई साड़ियां दिखाईं, परन्तु रामप्यारी ने सबमें कोई न कोई दोष निकाल दिया। बज़ाज़ ने हार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रुपये लौटा दिये। उन रुपयों को हाथ में लेते समय रामप्यारी को ऐसा मालूम हुआ, मानो पति का स्वास्थ्य ले रही है। यह साड़ी ख़रीदते समय वह प्रसन्न हुई थी, वापस करते समय उससे भी अधिक प्रसन्न हुई।

सायङ्काल हो गया था। रामप्यारी इच्छरे पहुँची और उड़ती हुई करमदीन कोचवान के घर गई। किवाड़ बन्द थे। रामप्यारी अपराधिन की भाँति सिर झुका कर खड़ी हो गई और सोचने लगी, "किवाड़ क्योंकर खुलवाऊँ।" इतने में अन्दर से आवाज़ आई, "अल्लाह! उसका बेड़ा ग़र्क़ कर। मेरा आदमी क़ैद में है और वह घर में पड़ा है। उसका सत्यानाश कर जिसका क़सूर है। अल्लाह उसको जवानी की मौत।"

रामप्यारी सह न सकी। उसने ज़ोर से साँकल हिलाई। कोचवान की बीबी ने किवाड़ खोल दिया। रामप्यारी का विचार था कि उसकी गालियों का उत्तर दूँगी और उसका मुँह ज़ोर से बंद कर दूँगी, परन्तु उसकी जिह्वा को जैसे किसी ने पकड़ लिया और पाँव भूमि में गाड़ दिये।

कोचवान की बीबी ने देखा, कोई भले घर की सुन्दरी खड़ी है। वह घबरा कर बोली, "आप किसे पूछती हैं?"

रामप्यारी को बातचीत का रास्ता मिल गया। उसने धीरे से उत्तर दिया, "तुम्हें।"

"मुझे।"

"हाँ हाँ मैं तुम्हारी अपराधिन हूँ। तुमसे क्षमा माँगने आई हूँ।"

कोचवान की स्त्री ने विस्मित सी होकर पूछा, "साफ़ साफ़ कहें। आपका मतलब क्या है?"

"तुम अभी अभी गालियाँ किसे दे रही थीं।"

"लाला चमनलाल को। उसने मेरे घरवाले को क़ैद करा दिया है।"

"मैं उनकी स्त्री हूँ।"

कोचवान की स्त्री स्तम्भित सी खड़ी रह गई और नम्रतापूर्वक विनय-भाव के साथ बोली, "मेरा मन बहुत दुखी हुआ है, मेरी ज़बान मेरे क़ाबू में नहीं।"

जब क्रोध नम्रता का आकार धारण कर लेता है तब अभिमान भी सिर नीचा कर लेता है। रामप्यारी ने हाथ जोड़ कर कहा, गालियाँ उनको न दो मुझे दो। यह मेरा अपराध है। यदि मैं सीधे राह चलती, यदि सोच समझ कर उचितानुचित देख कर ख़र्च करती, आज उनकी यह दशा न होती। मख़मली स्लीपरों के बिना मुझे चैन न पड़ती थी। फलों के बिना मुझे रोटी न पचती थी। रेशम का थान मेरे लिए ही मँगवाया गया था साड़ी मेरे लिए ही आई थी। तुम्हारी अपराधिन मैं हूँ, तुम्हारा शाप मेरे नाम पर पड़ना चाहिए। तुम्हारी आवाज़ मेरे विरूद्ध उठनी चाहिए। वे चाहते थे कि तुम्हारे पति का जुर्माना आप भर दें, परन्तु व्यर्थ के ख़र्च रास्ते बाधक हुए, तुम मुझको कोसो, मुझे शाप दो, तुम्हारी अपराधिन मैं हूँ।"

कोचवान की स्त्री ने सिर झुका कर उत्तर दिया, "मेरी ज़बान में कीड़े पड़ जायँ, ये बातें क्यों कहीं? पर रानी देख लो, मेरे घर का सारा असबाब पच्चीस रुपये का नहीं, वर्ना तन के कपड़े बेच कर भी उनको छुड़ा लाती। तुम नहीं जानतीं, हमने भी कभी अच्छे दिन देखे हैं, आज पैसे पैसे को लाचार हैं। जब से वह हवालात में हैं चूल्हे में आग नहीं जली।"

रामप्यारी ने दुपट्टे के अञ्चल से रुपये खोले और कोचवान की स्त्री के हाथ में रख दिये। इस समय उसका मन आनन्द से नाच रहा था, जैसे सूरज की सुनहरी किरणें पानी पर नाचती हैं। उसने अच्छे से अच्छे खाने खाये, बढ़िया से बढ़िया वस्त्र पहने थे, धनवान् स्त्रियों से मिली थी, परन्तु ऐसा आध्यात्मिक आनन्द, ऐसा सच्चा सुख उसे आज पहली ही बार अनुभव हुआ। वह आनन्द से केले के पत्ते की तरह काँपने लगी।

कोचवान की स्त्री कृतज्ञता के भाव से रामप्यारी के चरणों में गिर पड़ी और रोती हुई बोली, "मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हें बहुत दुख दिया है।"

रामप्यारी ने उसे उठा कर गले से लगा लिया और कहा, "उनको दो दिन से अपने तन की भी सुधि नहीं। उनके लिए दुआ करो। इससे उनका ज्वर उतर जायगा।"

कोचवान की स्त्री घुटनों के बल झुक गई और दोनों हाथ ऊँचे उठा कर बोली, "अल्लाह उसे राज़ी कर। इनके कलेजे को ठण्ढक दे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामप्यारी अधीर हुई घर पहुँची, परन्तु आशीष उससे पहले पहुँच चुकी थी। चमनलाल का ज्वर हलका हो गया था और वे धीरे धीरे अपनी कन्या से बातें कर रहे थे। रामप्यारी को देख कर बोले, "साड़ी हाथ से गई"।

"परन्तु उसके बदले में ऐसी शिक्षा मिली है जो आजीवन न भूलेगी। अब आपका हाल क्या है?"

"अच्छा हूँ।"

और दूसरे दिन उनका बुख़ार उतर गया।

सुदर्शन

पतङ्ग।

लगाती है नभ में तू फेरा,
पतली डोरी, हवा और बन्धन है जीवन तेरा।
चढ़ी हवा के घोड़े पर तू क्यों सबसे लड़ती है?
जिसे देख लेती है कहीं उसी से जा अड़ती है।
जिसके बल पर ऐंठ रही है वह कच्चा है धागा,
पड़ा दूसरे के चक्कर में—क़ैदी हुआ अभागा।
तू निज रंग-रूप पर फूली इधर-उधर फिरती है,
भूल गई यह बात कि जो चढ़ती है वह गिरती है।
यह न समझियो—"मेरा ही यश जग में रह जावेगा",
तू भी तिनका है—जो भव-सागर में बह जावेगा।
ज्योंही डोर कटेगी त्योंही स्वयं हवा तू होगी,
चली जायगी अपने रस्ते—जैसे रमता जोगी।
पहले उसको धन्यवाद दे जिसने तुझे बनाया,
फिर उसको जिसने तुझको यों नभ में है पहुँचाया।
पल पल में हो रहा प्रलय है; अपनी ख़ैर मना तू,
कर विचार, हो सावधान, अब बिगड़ा काम बना तू।

बदरीनाथ भट्ट

कला का महत्त्व।

मनुष्य-जीवन में कला का क्या स्थान है, यह भर्तृहरि ने एक ही श्लोक में बता दिया है—उनकी राय में जो मनुष्य साहित्य, सङ्गीत और कला से शून्य है वह साक्षात् पशु है। कला के साथ मनुष्य-मात्र का सम्बन्ध है। कला में मनुष्य-जीवन का आदर्श भी रहता है। जिस प्रकार कला की उन्नति में ये आदर्श काम करते हैं उसी प्रकार कला भी मनुष्य में उन आदर्शों का प्रचार करती है। श्रीयुत अरविन्द घोष ने मनुष्य-जीवन में कला का महत्त्व बतलाने की इच्छा से एक बहुत ही विस्तृत, उपयोगी और महत्त्व-पूर्ण निबन्ध लिखा है। नीचे उसका सारांश दिया जाता है।

आधुनिक काल में संसार में एक ऐसी प्रवृत्ति फैल रही है जिसके कारण सौन्दर्य का महत्त्व घटाने और उपयोगिता का महत्त्व बढ़ाने की कोशिश की जाती है। योरपवासी इस प्रवृत्ति को दबाने के लिए बारम्बार अपनी प्राचीन परम्परा-गत सभ्यता की दुहाई दिया करते हैं, साथ ही वहाँ सौन्दर्योपासना के शिक्षा-वितरण का भी समुचित प्रबन्ध किया जा रहा है। भारतवर्ष में, हम एक अर्थ-लोलुप और आत्म-विहीन शिक्षा-प्रणाली के कारण अपनी प्राचीन परम्परा और सभ्यता के मूल स्रोतों से वञ्चित कर दिये गये हैं। तो भी यहाँ इसके सुधार की आशा मनुष्य-मात्र की उन सहज, स्वाभाविक, वृत्तियों के पुनरुद्भव में है जो कुछ काल के लिए दबी पड़ी रह सकती हैं, किन्तु जिनका समूल नाश होना असम्भव है। ये स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ कल्पना, मनोद्वेग या आध्यात्मिक स्फूर्ति हैं। हमारे पूर्व पुरुष सङ्गीत, कला या कविता को क्यों मनुष्य-जीवन के लिए इतना अधिक श्रेयस्कर समझते थे, यह बात वर्तमान युग की समझ में नहीं आ सकती, क्योंकि सम्प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा जीवन एक प्रकार से उद्देशहीन सा हो रहा है। हम इस पृथ्वी को वल्मीक के ढेर या मधुमक्खियों के छत्ते के रूप में परिवर्तित करने में ही अपना गौरव समझने लगे हैं अर्थात् मानवी उन्नति के सबसे निम्न साधन को, यद्यपि वह सबसे अधिक आवश्यक है, हम इस विशाल विकासात्मक विश्व का एक-मात्र उद्देश मान बैठे हैं। मनुष्य-जाति की सबसे पहली और सबसे अन्तिम यह आवश्यकता है कि उसके शरीर की सुरक्षा के लिए अन्न और जल, छाया और वस्त्र का यथेष्ट सङ्ग्रह हो और आपस में उनका न्यायपूर्ण बँटवारा हो। थोड़े से मनुष्य इस श्रेणी से ऊपर उठ जाते हैं और उच्च इच्छाओं की तृप्ति का उद्योग करते हैं। ये इच्छायें उन गुरुतर प्रेरणाओं के कारण आविर्भूत होती हैं जिनको हमारे दर्शन-शास्त्र में प्राणमय कोश का नाम दिया गया है। ये इच्छायें, उच्चतर श्रेणी की होने के कारण मनुष्य की पाशविक, साधारण, स्थूल एवं विचार-शून्य वृत्तियों के ऊपर, जो मनुष्य और पशुओं में एक रूप से विद्यमान रहती हैं, अपना प्रभुत्व जमा लेती हैं। पहले पहल प्राणमय कोश की इच्छाओं के ही कारण—जिनमें धन-पिपासा, भोग-विलास या सुन्दर स्त्रियों की इच्छा, मधुर जल और स्वादिष्ट भोजन की भूख जैसी इच्छायें सम्मिलित हैं—समाज के प्रारम्भिक, निम्न किन्तु शान्तिमय सामञ्जस्य में आघात पहुँचा है और इन्हीं के कारण समाज में व्यक्तिगत आधिपत्य की प्रथा की सृष्टि हुई है। फिर भला इस प्रथा की अन्य अनेक सहोदर बुराइयाँ, जैसे विषमता, अन्याय, अत्याचार, छल-कपट, वैमनस्य, घृणा, अन्तर्जातीय द्वेष, संक्षेप में प्रत्येक कुटुम्ब और मनुष्य के स्वार्थ भिन्न भिन्न होने के कारण पारस्परिक विद्रोह, किस प्रकार प्रकट होने से रुक सकती थीं। धीरे धीरे यही मनुष्य की उन्नति के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक मानी जाने लगीं। विश्वनियन्ता बुराई और भलाई दोनों ही साधनों के द्वारा इस संसार का चक्र चला रहा है, वह क्षणिक बुराई के द्वारा पूर्ण और स्थायी भलाई की स्थापना किया करता है। जैसे जैसे मनुष्य की प्रारम्भिक पाशविक मनोवृत्तियाँ दिन प्रतिदिन जटिल और प्रबल होती गईं, उसी प्रकार समाज में अव्यवस्था की भी वृद्धि होती गई। प्रेम, घृणा, प्रतिहिंसा, क्रोध, आसक्ति, राग-द्वेष आदि मनोवृत्तियों के समुदाय को दर्शन-शास्त्र में 'चित्त' संज्ञा दी गई है, इसी को योरपीय लोग 'हृदय' कहते हैं। जब यह प्राणमय कोश की तीव्र इच्छाओं से परिपूर्ण हो जाता है तब उसका सामाजिक रूप लुप्त हो जाता है और प्रत्येक प्राणी अपनी अपनी इच्छाओं की पूर्ति और तृप्ति में संलग्न हो जाता है। समाज में प्रत्येक मनुष्य की प्रारम्भिक इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयुक्त साधन उपलब्ध होने चाहिए। अन्यथा वह किसी प्रकार सुचारुरूप से अपना कार्य सम्पादित नहीं कर सकता, उसमें एक-दम षड्यन्त्र और विद्रोह की ज्वाला भभक उठती है।

इस अवस्था पर पहुँच कर मनुष्य न केवल शारीरिक इच्छाओं—अन्नमय कोश—की तृप्ति के लिए लालायित रहता है वरन् प्राण और चित्त अर्थात् प्राणमय कोश और मनोमय कोश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छाओं की तृप्ति के लिए अधीर हो उठता है। अपने और अपने प्रिय-जनों के लिए धन, वैभव और भोग-विलास की यथेष्ट सामग्री तो चाहिए ही, साथ ही राष्ट्रीय सम्पत्ति, सम्मान, उच्च पद, स्पर्द्धा, युद्ध, सन्धि और शान्ति में, जो किसी समय इने-गिने उच्च वंशी राजकुमारों, सरदारों, आचार्यों और सेठ-साहूकारों का अधिकार था, अब प्रत्येक मनुष्य बराबर हिस्सा चाहने लगा है। फ्रेंच रिवोल्यूशन में इस अधिकार-पिपासा का मदान्ध और क्रोधोन्मत्त रूप सबको दृष्टि-गोचर हो चुका है, चाहे इसे प्रजातन्त्रवाद कहिए, चाहे साम्यवाद, चाहे बोल्शेविज़्म और चाहे अराजकता। विशेषाधिकार-प्राप्त और सम्पत्तिवान् मनुष्य चाहे जितना विकराल रूप धारण कर साम्यवाद के नेताओं के सामने नाक-भौंह सिकोड़े, गाली दे या चाहे निन्दा करे, किन्तु इनके बढ़ते हुए वेग को रोकना उसके लिए किसी प्रकार सम्भव नहीं। हज़ारों और लाखों पीढ़ियों से बराबर आज तक ये विशेषाधिकार अक्षुण्ण चले आते हैं, अतएव ये पवित्र हैं। इनको कलुषित करना घोर पाप है। किन्तु भविष्य भूतकाल से कहीं अधिक बलवान् है। और विकासवाद का निर्दय नियम उन सब वस्तुओं को, जिनकी उसे आवश्यकता नहीं रहती, टुकड़े टुकड़े करके पैरों-तले रौंदने के लिए तत्पर हो जाता है। जो इसके विरुद्ध खड़े होते हैं वे मानो ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध लड़ते हैं। यही चिरन्तन नियम है। कारण जगत् में पहले से ही उनका पराजय हो चुका है और वे मृत्यु की गोद में आराम कर रहे हैं। कारण जगत् ही सूक्ष्म और स्थूल जगत् का आदि कारण है, जो कुछ वहाँ पहले से निश्चित हो जाता है वही स्थूल जगत् में व्यक्त होता है।

साधारण जन-समुदाय अभी तक शारीरिक आवश्यकताओं, मानसिक इच्छाओं, मनोविकारों एवं तज्जनित विचार-धारा के ऊपर नहीं उठ सका है अर्थात् अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोश में तल्लीन हो रहा है। हिन्दू-दर्शनशास्त्र में संवेदनाओं के द्वारा आविर्भूत विचारधारा को मन कहते हैं। सबसे ऊँची सीढ़ी जिस पर अधिकांश मनुष्य अभी तक पहुँच सके हैं यही है, किन्तु बहुत से नरपशु इस पर भी चढ़ने में असमर्थ हो रहे हैं। साधारणतः मनुष्य-मात्र ने मनोमय कोश में विहार करने की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है। मन से परे है बुद्धि या शुद्ध विचार। जब बुद्धि का पूर्ण विकास हो जाता है तब मानसिक इच्छाओं या शारीरिक आवश्यकताओं या मनोविकारों के द्वन्द्व से कोई सम्पर्क नहीं रहता। किन्तु बहुत ही थोड़े मनुष्यों में इस इन्द्रिय का किञ्चित् विकास हो सका है, उसमें पूर्ण योग्यता ले आने की बात तो बहुत दूर है। केवल पहुँचे हुए योगियों में ही विशुद्ध बुद्धि होती है, उनकी विचारेन्द्रिय निम्नतर कोशों के झंझट से मुक्त हो जाती है और वे पाशविक और मानसिक विकारों के राग-द्वेष को हटा कर चित्त को शुद्ध कर लेते हैं। अधिकांश मनुष्यों की बुद्धि मन में लिप्त रहती है और उनका मन प्राणमय और अन्नमय कोश में तल्लीन रहता है।

बुद्धि से भी परे बहुत सी शक्तियाँ हैं, जिनको हम इस समय साधारणतः आत्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति कह सकते हैं। बुद्धि की अपेक्षा यह आत्मिक शक्ति और भी कम दृष्टिगोचर होती है, ऊँची से ऊँची श्रेणी के महात्माओं में भी इस शक्ति का बहुत ही कम विकास हुआ है। अनेक मनुष्य तर्कशक्ति, काल्पनिक स्फूर्ति या मनोद्वेग को आत्मिक शक्ति समझ बैठते हैं, किन्तु यह शक्ति इनसे कहीं ऊँची है, सर्वोपरि है। वास्तव में अन्य सब कोश इसके आवरण-मात्र हैं। सबसे ऊँची सीढ़ी, जो साधारण मनुष्य को अभी तक प्राप्त हो सकी है, है बुद्धि या विज्ञानमय कोश, और इसी बुद्धि-शक्ति के विकास के कारण प्राचीन समाज की व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो गई है। वास्तव में बुद्धि के दो भिन्न भिन्न पहलू हैं, एक न्याय या तर्क और दूसरा कल्पना। विचार की पूर्णता के लिए दोनों पहलू अत्यावश्यक हैं। एक ओर से विज्ञान, दर्शन और समालोचना शास्त्र के आघातों ने और दूसरी ओर से कला, कविता और आदर्शवाद के प्रहारों ने मनुष्य-समाज की प्राचीन व्यवस्था की जड़ खोखली कर डाली है। इसी के खण्डहर पर नवीन सामाजिक व्यवस्था की नींव डाली जा रही है। बुद्धि के दोनों पहलुओं में से पहले पहलू पर विज्ञान, दर्शन और समालोचना-शास्त्र ने जन-साधारण के सामने अपनी उपयोगिता भली भाँति कर दिखाई है, क्योंकि यह विज्ञान मनुष्य को सुख, ऐश्वर्य, भोग-विलास के प्राप्त करने में, जिनके लिए संसार लालायित हो रहा है, बहुत सहायक होता है, साथ ही मानवी इच्छाओं, स्वार्थों, मनोविकारों और आकांक्षाओं के द्वन्द्व-युद्ध में सम्मिलित होना मनुष्य के लिए न्याय-सङ्गत बना देता है। दूसरे पहलू का महत्त्व, पहले की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और गम्भीर है और इसी लिए वह जन-समुदाय की आँखों से छिपा हुआ रहता है। उसका प्रभाव भी सूक्ष्म और भावोत्पादक होता है। अतः इसके देखने के लिए दृष्टि चाहिए।

विशुद्ध वैज्ञानिक शिक्षा से मनुष्य की बुद्धि तीव्र होती है जिससे वह एक सीमा विशेष के भीतर की सब वस्तुएँ साफ़ साफ़ देख सकता है, किन्तु साथ ही साथ मनुष्य सङ्कुचित, कठोर और हृदयशून्य भी बन जाता है। हृदय को उन्नत किये बिना केवल बुद्धि को शिक्षित करने से मनुष्य अपने सर्वोच्च आदर्श पर नहीं पहुँच सकता। हृदय को शिक्षित करना ही सच्ची उच्च शिक्षा का एक-मात्र ध्येय हो सकता है। भाषा, साहित्य, कला, सङ्गीत चित्रलेखन या मूर्ति-निर्माण का अभ्यास, दर्शन, धर्म, और इतिहास का अध्ययन, मनुष्य और उसके कार्यों का मनन, मनुष्य और प्रकृति का बुद्धिगम्य विश्लेषण आदि साधन मनुष्य के हृदय को अधिकाधिक विशाल बनाने में सहायक होते हैं। इनमें से प्रायः अधिकांश साधनों की उपयोगिता सहज में स्वीकार कर ली जाती है, किन्तु कला और कविता यथोचित आदर की दृष्टि से नहीं देखी जातीं। साधारण लोग समझते हैं कि ये हमारे जीवन के लिए आवश्यक या लाभदायक नहीं हैं, केवल धनवानों और बैठकबाज़ों के रुचिवैचित्र्य या दिल-बहलाव की चीज़ हैं। मध्यकालीन सभ्यता में संसार की बागडोर थोड़े से आदमियों के हाथ में रहती थी, बढ़िया से बढ़िया चीज़ों पर उनका आधिपत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता था। भोग-विलास में पड़ कर धनवानों-द्वारा इन कलाओं का ऐसा भीषण दुरुपयोग किया गया कि साधारण जनता यह समझ बैठी कि हमारा इनसे कोई सरोकार नहीं। किन्तु कुछ भी हो सौन्दर्य-निरीक्षण की अभिलाषा जनसाधारण के हृदय से सर्वथा दूर नहीं हो सकती। प्राण-रक्षक वृत्तियों की तृप्ति से लेकर शुद्ध हार्दिक आनन्द देनेवाली वस्तुओं में मनुष्य सौन्दर्य देखने की इच्छा करता है। स्त्री-पुरुष अपने साथियों में, भोजन के सामान में, कपड़ों में, आभूषणों में, भोग-विलास की सामग्री में, प्रायः उपभोग की प्रत्येक वस्तु में, सौन्दर्य देखना चाहता है। इस सौन्दर्य-लिप्सा के द्वारा मनोवेग शुद्ध और परिमार्जित हो जाता है, भावनायें उन्नत हो जाती हैं। हृदय और कल्पना-शक्ति के उन्नत होने से मनुष्य में विज्ञानमय कोश का विकास होता है। जो सीढ़ी हमें ऊपर चढ़ाने में सहायक होती है उसकी यत्न-पूर्वक रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। अन्यथा ऊँचे शिखर से हमारा नीचे लुढ़क पड़ना अवश्यम्भावी है। जिस मनुष्य का मस्तिष्क विकसित हो चुका हो, जिसका वैज्ञानिक अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा हो, जिसने स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति पर आधिपत्य प्राप्त कर लिया हो, जिसने नैसर्गिक शक्तियों को अपना नौकर बना लिया हो, सारा संसार जिसका लोहा मानता हो, यदि उसी के हृदय और आत्मा का विकास नहीं हुआ है तो हम उसको मनुष्य-नाम की पवित्र संज्ञा नहीं दे सकते, उसको बड़ा भारी दैत्य समझेंगे जिसने अपनी पाशविक वृत्तियों को तृप्त करने के लिए देवताओं के समान अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं। प्राचीन संसार की टूटी-फूटी कहानियों की धुँधली स्मृति से हमको पता चलता है कि प्राचीन एटलानटिक निवासियों की सभ्यता ठीक इसी प्रकार की थी। जब उनकी शैतानी इतनी बढ़ गई कि पृथ्वी उसके भार से दबने लगी तब वह समुद्र की गोद में समा गई। हमारे यहाँ भी असुरों की बड़ी बड़ी रोचक कथायें प्रचलित हैं, जिनकी महान् और अपूर्व शक्तियों के आगे हमको दाँतों-तले अँगुली दबानी पड़ती है, किन्तु ऐसी सभ्यता का अधखिले फूल की तरह मुरझा जाना अवश्यम्भावी था।

कला का सबसे पहला उपयोग यह है कि उससे लोगों की रुचि सौन्दर्य की ओर आकर्षित होने लगती है, दूसरा उपयोग यह है कि उससे बुद्धि विकसित होती है, तीसरा और अन्तिम लाभ यह है कि उससे आत्मिक विकास होता है। सौन्दर्योपासना की रुचि बढ़ाने के लाभ को सबसे निम्नश्रेणी का ठहराने से हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि वह मनुष्य-मात्र के लिए किसी प्रकार अवाञ्छनीय है, किन्तु अन्य गुरुतर उपयोगों के साथ तुलना करने पर उसको सबसे नीची श्रेणी का उपयोग बतलाया गया है। मनुष्य के लिए सौन्दर्य बड़ी आवश्यक वस्तु है, और जब तक मनुष्य में सौन्दर्य-निरीक्षण की शक्ति नहीं आती तब तक उसके लिए कला के उच्चतर उपयोगों से पूर्ण लाभ उठाना भी किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। अरस्तू दुःखान्त घटनाओं को अधिक श्रेयस्कर समझता है, क्योंकि उनमें मनुष्य को शुद्ध करने की शक्ति होती है, उनमें यथार्थ सौन्दर्य का दिग्दर्शन होता है। बहुत से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दार्शनिक सुन्दर और श्रेयस्कर में कोई भेद नहीं मानते। कभी कभी इस विचार का अनुचित रीति से प्रतिपादन होता हुआ देखा गया है। किन्तु यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो ज्ञात होगा कि सृष्टि का मूल केवल इसी एक सचाई की सत्ता पर विद्यमान है। यह तथ्य किसी ऊपरी सचाई का रूपान्तर-मात्र नहीं है। हमारे दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुसार यह सारा संसार आनन्द का आविर्भाव-मात्र है और अन्त में इसको आनन्द में ही लीन होना है। आनन्द के अङ्ग हैं शान्ति, प्रेम और सौन्दर्य। यह सौन्दर्य क्या है, संसार की प्रत्येक वस्तु में, मनुष्य में, प्राणि-मात्र में, प्रकृति में ईश्वर का दर्शन करना—दर्शन करके उससे प्रेम करना और उस प्रेम में शुद्ध आनन्द का अनुभव करना। यदि मनुष्य को ऐसे सौन्दर्य के दर्शन होने लगें तो मनुष्य-मात्र इस सीढ़ी के द्वारा सहज में ईश्वर के समीप पहुँच सकते हैं। अविद्या के द्वारा विद्या प्राप्त करने का यही अर्थ है। समस्त ब्रह्माण्ड में जो एक परमात्मा व्यक्त हो रहा है, उसके भिन्न भिन्न रूपों में उसके सौन्दर्य के दर्शन करने से ही मनुष्य को सहज आनन्द मिल सकता है। उपनिषद् बार बार इसी सचाई का प्रतिपादन करते हैं। इस दर्शन से जो आनन्द मिलता है वह शुद्ध आनन्द है। उसमें मेरे-तेरे की भावना नहीं रहती और न उसमें सुख-दुःख की छूत रहती है। संसार में बुरे और भले, कुरूपवान् और स्वरूपवान् आदि द्वन्द्वों की भावनायें निरन्तर हमारी बुद्धि और इन्द्रियों को विक्षिप्त किया करती हैं, किन्तु यदि हम उस अनन्त तक पहुँचना चाहते हैं तो हमें वस्तु-मात्र में माधुर्य्य, अखण्डरस, विशुद्ध और असीम आनन्द का अनुभव करना चाहिए। उस परमपद पर पहुँचने के लिए हमें सौन्दर्य की लघुतर और ससीम भावना का पूर्ण उपयोग करना चाहिए जो कला के द्वारा विकसित होकर हमें नीचता से उच्चता की ओर, मलिनता से स्वच्छता की ओर, सौन्दर्य-रश्मि से सौन्दर्य-राशि की ओर ले जा रहा है।

दीनदयालु श्रीवास्तव

——

श्रीरवीन्द्रनाथ के दार्शनिक विचार

"हमारे शरीर की नस नस में जिस प्राण-तरङ्ग-माला का सदैव सञ्चार हो रहा है वही जीवन-धारा विश्व में व्याप्त हो रही है। समस्त सृष्टि में ताल-सुर-पूर्वक उसी का ताण्डव नृत्य हो रहा है। वही प्राण भूमि के प्रत्येक रोम-कूप में असंख्य तृणों के रूप में लहलहा रहे हैं। उसी जीवन-रस का विकास पल्लव और पुष्प में हो रहा है। यह वही जीवन है जो जन्म-मृत्यु-रूपी विश्वव्यापी समुद्र के पालने में ज्वार-भाटे के रूप में झूल रहा है।

मैं अनुभव करता हूँ कि इस अनन्त प्राण-तरङ्ग के स्पर्श से मेरे अङ्ग अङ्ग महान् हो रहे हैं। वही युगयुगान्तर-वर्ती जीवन-स्पन्दन आज मेरी नाड़ियों में नृत्य कर रहा है।

यह वह अगाध आध्यात्मिक अनुभव है जो महाकवि रवीन्द्रनाथ के काव्य में हमें मिलता है। महाकवि की रचना आध्यात्मिक ज्ञान का भाण्डार है। रवीन्द्रनाथ उत्कृष्ट कवि ही नहीं हैं, किन्तु वे एक महान् ज्ञानी और शिक्षक भी हैं। उनकी रचनाओं का प्रचार संसार भर में हो रहा है। रवीन्द्र बाबू ने जीवन-सत्य के रहस्यों पर विचार करके उसके तत्त्व का अनुभव किया है और फिर अपनी प्रतिभापूर्ण वाणी-द्वारा उस तत्त्व की शिक्षा देना अपने जीवन का उद्देश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परन्तु उसे अधूरा समझने अथवा समझ कर भी केवल एकाङ्गीग्रहण करने के कारण पूर्वी और पश्चिमी सभ्यतायें अभी त्रुटिपूर्ण मार्ग पर चल रही हैं और व्यक्ति अथवा समाज के जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति नहीं हो रही है।

समग्र सत्य की पहचान से ही मनुष्य की सच्ची उन्नति हो सकती है। सत्य का एकाङ्गी ग्रहण अथवा तत्त्व की अधूरी पहचान भी असत्य के तुल्य है, क्योंकि उसमें सत्य के कुछ अङ्गों की अवहेलना होती है। अतएव वह हमारी सर्वाङ्गीण उन्नति में बाधक होती है। यही नहीं, किन्तु हमारी एकाङ्गी उन्नति स्वयं भी अन्य अङ्गों की उपेक्षा के कारण रुक जाती है और उलटा हानिकर सिद्ध होती है। जैसे शरीर के पोषक द्रव्यों को यथोचित मात्रा में न ग्रहण करने या उनमें से कुछ को ही अधिक मात्रा में ग्रहण करने से शरीर स्वस्थ नहीं रहता, उसी प्रकार सभ्यता की एकाङ्गी उन्नति भी उसके नाश का कारण हो जाती है और समाज को स्वस्थ दशा में नहीं रख सकती। पूर्वी और पश्चिमी सभ्यतायें इसी एकाङ्ग-वृद्धि की व्याधि से ग्रस्त हो गईं। इसलिए वे अपनी जड़ पर ही कुठाराघात करने का कारण हुईं। कदाचित् मनुष्य-समाज के विकास में यह एक आवश्यक स्थिति थी। परन्तु क्रमशः विकास के मार्ग पर चलते चलते मनुष्य-समाज समय की सड़क के उस स्थान पर पहुँचा जहाँ पूर्वी और पश्चिमी सभ्यताओं के परस्पर मिलने का अवसर आया। अपनी अपनी भूलों से व्यथित दो प्राणियों के परस्पर मिलने और एक दूसरे के अनुभवों से, गुण और दोषों के विवेचन से, जो शिक्षा मिल सकती है उसके समझने का अवसर आया। वर्तमान युग में यही विशेषता है, जिससे कण्टकाकीर्ण मार्ग को छोड़ कर उन्नति का सच्चा मार्ग मिलने की आशा हुई है।

ऐसे समय में बुद्धिमान् पथ-प्रदर्शकों की आवश्यकता रहती है। ये पथ-प्रदर्शक वही लोग हो सकते हैं जिन्होंने दोनों सभ्यताओं के मर्म को समझा है। हमारे इस प्राचीन देश में भिन्न भिन्न सभ्यताओं के मिलने का कुछ विशेष संयोग प्राप्त हुआ है। सभ्यताओं और आदर्शों की परस्पर तुलना करने, व्यक्ति और समाज के जीवन पर उनका क्या प्रभाव पड़ता है उसको देखने और देख कर उनके हानि-लाभ पर विचार करने का जैसा विशेष अवसर भारतवर्ष में उपस्थित हुआ है वैसा संसार के अन्य किसी देश में नहीं हुआ है। उपर्युक्त प्रकार की समझ अथवा विचार सभ्यताओं के गुण-दोषों पर केवल मानसिक वाद-विवाद करने से नहीं आता। ऐसे विचार करनेवाले तो बहुधा पक्षपात-पूर्ण खण्डन-मण्डन में ही पड़ जाते हैं। अन्य समाजों के आदर्शों की हँसी उड़ाना अथवा तिरस्कार करना ही बहुधा उनका भाव हो जाता है। पूर्वी समाजों अथवा सभ्यताओं पर विचार करते समय पश्चिमी विद्वानों का बहुधा यही भाव रहा है। बिना सहानुभूति के सच्ची समझ होना असम्भव है। और सहानुभूति और समझ उसी में आती है जिस पर बीतती है। जिस पर दुःख नहीं पड़ा है, जिसे अपने धन-बल का मद है वह दूसरों की स्थिति को बहुधा तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। उस पर सहानुभूति-पूर्वक विचार करना अथवा उससे अपने लाभ की शिक्षा ग्रहण करना तो उसी को आता है जो अपनी पीड़ा की ओषधि की खोज में हो। इस वृद्ध भारत पर सब प्रकार की बीत चुकी है। हिन्दू-सभ्यता के गुणों के कारण उन्नति, फिर उसके दोषों का कुफल, मुसलमानी सभ्यता का गौरव और ह्रास, फिर पश्चिमी सभ्यता के प्रचार से सद्गुणों और दुर्गुणों की उत्पत्ति, यह सब कुछ हमारे देश ने देखा है, स्वयं उन सबका अनुभव किया है। अतएव भारतीय राष्ट्र की आत्मा की दृष्टि और परख जितनी गम्भीर हो सकती है उतनी अन्य देशों और समाजों के लिए असम्भव है। इस देश को कई बार नवागत जातियों से पददलित होना पड़ा, विजेता जातियों के राज्याधिकारियों की सभ्यता से सङ्घर्ष करना पड़ा, अपनी रीति-नीति और सभ्यता की रक्षा के लिए तपस्या करनी पड़ी और फिर भिन्न भिन्न आदर्शों और रीति-नीतियों में पारस्परिक व्यवहार स्थापित हुआ। समय की इन सब चालों का भावार्थ यह जान पड़ता है कि एक-देशीय अथवा एक-जातीय सङ्कीर्णता को भेद कर ऐसे आदर्शों और विचारों का विकास हो जिनका संसार में सामान्यरूप से प्रचार हो, जिनसे सब जातियों में पारस्परिक सदिच्छा और सहानुभूति उत्पन्न हो।

इन सामान्य आदर्शों और भावों के विकास में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि रवीन्द्रनाथ का महत्त्वपूर्ण योग है। उन्होंने वह मधुर तान छेड़ी है जो पूर्वी और पश्चिमी दोनों हृदय-तन्त्रियों से समानरूप से निकलती जान पड़ती है। अतएव उनकी रचना भारतीय और योरपीय पाठकों को समानरूप से मुग्ध करती है।

डब्ल्यू० बी० यीट्स ने लिखा है कि रवीन्द्र बाबू की "कल्पना ने एक जाति के जीवन का, उसकी सभ्यता का, जिससे हम नितान्त अपरिचित हैं, अनेक रूपों में चित्रण किया है। परन्तु उससे हमारे हृदय मुग्ध हो जाते हैं। उसकी नवीनता पर नहीं, किन्तु इस कारण कि उसमें हमें अपनी सभ्यता का स्वरूप दिखलाई पड़ता है। योरप में पुनर्जागृति* के पश्चात् योरप के सन्तों और महात्माओं के ग्रन्थों का प्रभाव हमारे विचारों पर नहीं रहा तथापि उनकी उपमायें और विचार-प्रणाली हमारे लिए बहुत परिचित हैं"। कारण यह है कि पुनर्जागृति के पश्चात् योरप में जीवन के प्रति जिन भावों और रुचियों का विकास हुआ है उनसे मध्यकालीन सन्तों के भावों की अनुकूलता नहीं है। मनुष्य-जीवन की एक अत्यन्त महत् समस्या मृत्यु है। उसके प्रति हमारा क्या भाव होना चाहिए? कभी अत्यन्त शोक में हमें संसार-त्याग की कामना होती है और कभी हम उत्साह-पूर्वक मृत्यु का सामना करने के लिए तैयार होते हैं। परन्तु जिस मनुष्य ने काव्य, सङ्गीत अथवा सुन्दर दृश्य का आनन्द उठाया है, जो सुख केवल इन्द्रियों का सुख नहीं है, किन्तु जो आनन्द-स्रोत आत्मा से बहता जान पड़ता है, वह संसार को और इह लौकिक जीवन को त्याज्य और हेय नहीं समझ सकता। हमारे देश में कुछ सन्तों अथवा ज्ञानियों ने इस संसार को केवल दुःखमय, दुःख अथवा माया या भ्रम ठहराया है। प्रसिद्ध है कि योरप के मध्यकालीन सन्त बरनार्ड ने अपनी आँखें बन्द कर ली थीं जिससे वह स्विज़रलैंड के मनोहर झीलों के दृश्य न देख सकें। जीवन के प्रति इस प्रकार के भाव से यदि मृत्यु का भय छुड़ाया जाय तो जीवन ही मृत्यु से अधिक भयङ्कर हो जाता है। उपनिषदों का वह भाव कितना ऊँचा है, वह भाव कितना सच्चा है, जहाँ जीवन और मृत्यु समान प्यारी वस्तु हैं "आनन्दादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दम्प्रयान्त्यभिविशन्ति"। यह सृष्टि आनन्द से ही उत्पन्न होती है, आनन्द से जीवित रहती है, आनन्द की ओर ही इसकी गति है और आनन्द में ही यह प्रवेश करती है। गीताञ्जलि में महाकवि का गीत है—

"जिस क्षण इस आश्चर्य्यमय संसार-रूपी महान् केतन के जीवनरूपी सिंहद्वार में मैंने प्रवेश किया था समय की मुझे कुछ ख़बर नहीं। वह कौन शक्ति जिसने अर्द्धरात्रि में अरण्य-कली की भाँति इस विश्व रहस्य में मुझे विकसित किया था।

"जब प्रातःकाल मैंने प्रकाश देखा तब मुझे क्षण मालूम हुआ कि मैं इस जगत् में कोई अपरिचित जन नहीं हूँ। उस नाम-रूप-रहित अज्ञेय शक्ति मेरी मा का रूप धारण कर मुझे अपनी गोद में ले लिया है। क्या मृत्यु मेरे लिए अपरिचित है, जिसके कारण आज मैं क्षण क्षण काँपता हूँ और संसार की बिदाई नेत्र सजल हो जाते हैं और जीवन की कड़ी को भुजाओं से पकड़ना चाहता हूँ?

"अरे मूढ़, जीवन-संसार को इतना क्यों अपनाता है जो जन्म-मुहूर्त के समय तुझे अज्ञात था।

"मृत्यु के प्रभात में वही अज्ञात शक्ति ऐसे

*योरपीय सभ्यता का आधार ग्रीस और रोम की सभ्यता है। जैसे सारी हिन्दू-सभ्यता का आधार प्राचीन वैदिक सभ्यता है। योरप में मध्यकाल में कई शताब्दियों तक ग्रीस और रोम के प्राचीन साहित्य, इतिहास, चित्र-कला और भावों से अनभिज्ञता होने लगी थी (जैसे हिन्दू-समाज वैदिक-काल के जीवन और विचारों से अनभिज्ञ होने लगा था)। जब सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में उनका अध्ययन पुनः आरम्भ हुआ तब योरप के साहित्य-विचार और जीवन में नई जागृति, नई स्फूर्ति का सञ्चार हुआ, जिसके फलस्वरूप साहित्य, कलाकौशल इत्यादि ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में अद्भुत उन्नति हुई। इसी को पुनर्जागृति कहते हैं। वर्तमान हिन्दू-समाज में अपने प्राचीन बलशाली वैदिक-साहित्य और जीवन के अध्ययन से इसी प्रकार की पुनर्जागृति प्रारम्भ हुई है, जिसका सबसे अधिक विकास बङ्गाल में हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी मानो उससे मेरा परिचय सदा से था। मुझे अपना जीवन प्यारा है, इसलिए मुझे मृत्यु भी प्यारी लगेगी।

"जब मा बच्चे को दाहने स्तन से छुड़ाती है तब वह रोता है, पर दूसरे क्षण में ही जब वह उसे बाँया स्तन देती है तब उसे आश्वासन होता है।

मृत्यु का यह प्यार, अमरत्व का यह भाव, सब धर्म-वालों को, पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता को, एक सा आश्वासनकारक है। गीताञ्जलि के प्रस्तावना-लेखक विद्वान् पीट्रस ने लिखा है—मैं जीवन को प्यार करता हूँ, इसलिए मुझे मृत्यु भी प्यारी लगेगी, यह भाव हमारा ही है, यद्यपि ईसाई सन्त केम्पिस अथवा जान आव्दी क्रास के भावों से यह बहुत भिन्न है।

यही नहीं कि महाकवि की मृत्युविषयक साम्यबुद्धि ही पश्चिमी भावों को आकर्षित करती है। उनके गीतों की गम्भीर शान्ति, जीवन के प्रति आनन्द-भाव, संसार के छोटे बड़े अनेक दृश्यों और घटनाओं में अलौकिकता और रहस्ययुक्तता के भाव (mysticism) और ईश्वर की सत्ता का विचित्र अनुभव, ये सब बातें पश्चिमी भावों को मुग्ध कर लेती हैं।

वर्तमान सभ्यता में हम लोग निरीश्वरवादी हो रहे हैं। ईश्वर की उपासना और भक्ति हमारे लिए सजीव बातें नहीं, किन्तु निर्जीव सी प्रतीत होती हैं। परन्तु हम सब प्राकृतिक दृश्यों पर मुग्ध होते हैं, बहुधा रमणीक पर्वत-शिखर के एकान्त का आनन्द लूटते हैं, व्यायाम और नींद में सुख उठाते हैं और संसार में बहुतों के प्रति अनुराग प्रदर्शित करते हैं। परन्तु जीवन में इस सारे सौन्दर्य्य और आनन्द का स्रोत क्या है, यह आगे के गीत में अङ्कित है—

"हे मेरे स्वामी, मेरे हृदय में तूने साधारणजन की भांति प्रवेश किया और मैंने तेरा स्वागत भी न किया। परन्तु तूने इस जीवन के अनेक अस्थायी क्षणों पर अमरत्व की छाप लगा दी है।

"थकावट की रात में तुझ पर भरोसा करके बिना प्रयास मुझे अपने आपको निद्रा के अर्पण करने दे—जागृतावस्था का नवीन आनन्द पुनः प्रदान करने के लिए तू ही दिन की थकी हुई आँखों पर रात का परदा डाल देता है।

"बरसते हुए सावन की घनी छाया में, दबे पैरों, रात्रि सा निस्तब्ध और सब पहरेवालों से बचता हुआ तू चलता है।"

दुःख और दरिद्रता के कष्टों के सहने में, और निष्काम कर्म-पथ पर चलने में ईश्वर की सच्ची उपासना है।

"इस पूजा-पाठ, भजन-गान और माला के जाप को छोड़ सब द्वारों को बन्द करके मन्दिर के एकान्त अँधेरे कोने में तू किसकी पूजा करता है? आँखें तो खोल और देख कि तेरा ईश्वर तेरे सामने नहीं है। वह तो वहाँ है जहाँ किसान कड़ी भूमि में हल चला रहा है और सड़क बनानेवाला पत्थर तोड़ रहा है। वह धूप और पानी में उनके साथ है और उसके कपड़े धूल से आच्छादित हो रहे हैं। तू अपने पवित्र वस्त्र को उतार डाल और उसके समान धूलभरी भूमि में उतर आ।

"मुक्ति! मुक्ति कहाँ मिल सकती है? हमारे स्वामी ने स्वयं अपने आपको सृष्टि के बन्धनों में सहर्ष डाला है। वह हम सबके साथ सदा के लिए बँधा है"।

इस अन्तिम वाक्य में रवीन्द्रनाथ ने उस तत्त्वज्ञान का वर्णन किया है जिसकी हिन्दू-सभ्यता ने अपने उत्तर-काल में बहुधा उपेक्षा की। संसार के बन्धनों में भी जगन्नियन्ता के अस्तित्व को देखना और कर्तव्य-पालन में भी उपासना की दृष्टि रखना, इस तत्त्वज्ञान से पृथक् हो जाने से ही हिन्दू-सभ्यता का ह्रास प्रारम्भ हुआ। उसने सत्य के समग्ररूप को दृष्टि से ओझल कर दिया, सत्य के एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग को भुला दिया। इसलिए वह सभ्यता स्वयं भी अधूरी रह गई और केवल एक पैर से चलने की चेष्टा में निष्फल हुई—मार्ग में ही गिर पड़ी और पद-दलित हुई। अपने साधना नामक ग्रन्थ में रवीन्द्र बाबू ने लिखा है—मुझे अपने श्रोताओं को अच्छी तरह जतला देना चाहिए कि भारतवर्ष के ऋषियों ने यह उपदेश नहीं दिया कि संसार का और अहन्त्व का त्याग किया जाय। इस नास्ति का फल तो केवल कोरी शून्यता होती है। उनका उद्देश अहन्त्व का त्याग नहीं, किन्तु आत्मतत्त्व का ज्ञान था अर्थात् दूसरे शब्दों में विश्व के पूर्ण सत्य-रूप की पहचान थी। इसी उपर्युक्त भाव को ईसामसीह ने कहा था—धन्य हैं वे जिन्होंने नम्रता को अपनाया है, क्योंकि उनको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार का आधिपत्य मिलेगा। अर्थात् जब मनुष्य मैं के अहङ्कार का त्याग कर देता है तभी वह अपने सच्चे अधिकार को प्राप्त करता है। तब संसार में अपने पद के लिए उसे झगड़ा नहीं करना पड़ता। आत्मा के अमर-अधिकार से उसका पद संसार में सर्वत्र सुरक्षित है। संसार और संसार के अधीश्वर से एक रूप होकर अपने सत्यस्वरूप को पहचानना ही आत्मा का कार्य है और अहङ्कार उसमें बाधा डालता है।

रवीन्द्र ने उपर्युक्त शब्दों में उस तत्त्वज्ञान का वर्णन किया है जिसके ग्रहण से मनुष्य लौकिक और पारलौकिक उन्नति कर सकता है। दोनों में विरोध नहीं, किन्तु साम-ञ्जस्य है। संसार और व्यक्ति का अस्तित्व भुला देने से तो केवल शून्यता रह जाती है। संसार और अहं में आसक्ति और अभिमान को मिटाना चाहिए। इस तत्त्व को ग्रहण करने से पूर्वी और पश्चिमी सभ्यतायें अपनी वर्तमान अर्द्धाङ्गता से मुक्त हो सकेंगी। उपनिषदों और ईसा की शिक्षा का सार यही है। रवीन्द्र ने महात्मा बुद्ध की शिक्षा को भी उद्धृत किया है। साधुसिंह को उपदेश करते हुए बुद्ध ने कहा है, "सिंह, यह सत्य है कि मैं कर्म की निन्दा करता हूँ, परन्तु केवल उस कर्म की जिससे मन, वाणी अथवा कृत्य में दोष उत्पन्न हो। यह सत्य है कि मैं अस्तित्व मिटा देने का उपदेश देता हूँ, परन्तु केवल अभिमान, वासना, कुविचार और अविद्या के अस्तित्व को मिटाने का, क्षमा, प्रेम, उदारता और सत्य के अस्तित्व को मिटाने का नहीं; बुद्ध ने मुक्ति का उपदेश दिया, वह अविद्या की दासता से मुक्त होने का। अविद्या वह अन्धकार है जो हमारे आत्मज्ञान को परिवेष्टित किये है और उसे ममत्व की सीमा में परि-मित कर रक्खा है। इसी अविद्या के कारण, आत्मज्ञान के परिमित होने के कारण, अहङ्कार में बिलगपने का भाव उत्पन्न होता है और इसी से अभिमान, लोभ और निर्दयता की सृष्टि होती है। निद्रा के समय मनुष्य अपने भौतिक शरीर के सङ्कुचित कर्मों में परिमित हो जाता है। इसी प्रकार जब मनुष्य अविद्या में पड़ा रहता है तब वह ममत्व के घेरे में परिमित रहता है। यह आत्मा की निद्रा है, इसे मोह-निद्रा कहते हैं।

जब तक आत्मा को उस महत् सत्ता का ज्ञान नहीं होता जो सर्वत्र स्थित है तब तक उसे अपने सत्य-स्वरूप का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। जब तक आत्मा को निज स्व का ज्ञान नहीं होता तब तक मनुष्य का दारिद्र्य अपार है। उसकी वासनायें अपरिमित हैं।

अतएव उपनिषदों की शिक्षा है "तमेवैकम् जानथ आत्मानम्। अमृतस्यैव सेतुः।"

नवीन विज्ञान-शास्त्र से एक उत्तम उपमा देकर रवीन्द्र ने इसे स्पष्ट किया है। किसी समय यह पृथ्वी अव्यवस्थित परमाणुओं का सङ्ग्रह थी। उसके परमाणु उष्णता के कारण विशृङ्खल दशा में थे। तब पृथ्वी को स्थायीरूप नहीं प्राप्त हुआ था और उसमें सौन्दर्य्य का उद्देश कुछ भी नहीं था। केवल गति और उष्णता थी। क्रमशः जब एक शक्ति के द्वारा, जो उसके विशृङ्खल अवयवों को एक केन्द्र के अधीन नस्थ करने में सफल हुई, पृथ्वी के वाष्पमण्डल को एक गोलाकार स्थायीरूप प्राप्त हुआ, तब सूर्य्य-मण्डल में उसे उचित स्थान मिला और माला के मध्य में नीलम को सी शोभा प्राप्त हुई। इसी प्रकार हमारी आत्मा विषय-वासनाओं की उष्णता और निरन्तर गति से अव्यवस्थित रहती है, परन्तु जब आत्मनिग्रह की शक्ति से हमारी आत्मा केन्द्रीभूत हो जाती है तब उसके परस्परविरोधी द्वन्द्व-भाव मिट जाते हैं। और सबका समावेश एकस्थिर सुव्यवस्था में हो जाता है। तब हमारे भिन्न भिन्न निरीक्षणों की बुद्धि का साम्यावस्था में समावेश हो जाता है। सब मनोविकार और क्षणिक उद्वेग प्रेम में परिणत हो जाते हैं और जीवन की छोटी छोटी बातें एक व्यापक उद्देश के अङ्गीभूत हो जाती हैं।

आत्मस्वरूप का ज्ञान, अविद्या का नाश ही मनुष्य जीवन का उद्देश है। इस साधना के द्वारा व्यक्ति के सब सांसारिक सम्बन्ध, जीवन के सब कर्म अपना उचित स्थान ग्रहण करते हैं। वे साधना में बाधक नहीं होते, किन्तु सहायक होते हैं। यही नहीं, किन्तु साधना का अङ्ग बन जाते हैं। "जीवन की छोटी छोटी बातें एक व्यापक उद्देश के अङ्गीभूत हो जाती हैं।" संसार का और जीवन के सब कर्मों का त्याग, व्यक्ति के लौकिक सम्बन्ध और कर्तव्यों की अवहेलना, इनकी आवश्यकता नहीं है। बहुधा विदेशी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग प्रश्न करते हैं कि क्या हिन्दू-धर्म के उच्चतम तत्त्वज्ञान में इन्हीं बातों का उपदेश है। क्या व्यक्तित्व का नाश ही हिन्दूधर्म की अन्तिम शिक्षा है। यदि है तो कोई आश्चर्य्य नहीं कि हिन्दू-समाज अवनति को प्राप्त हुआ। और विदेशी ही क्यों, हममें से बहुत लोग हिन्दू-तत्त्वज्ञान के मर्म को न समझ कर इस भ्रम में पड़े हुए हैं। रवीन्द्रनाथ ने इस विषय पर उपनिषदों की शिक्षा का अपनी अनोखी शैली और नवीन उपमाओं-द्वारा स्पष्टीकरण किया है।

अपने अस्तित्व के एक छोर पर मैं पर्वत और नदियों के साथ एक हूँ। मेरा विश्व के साथ साम्य है। इसी से अस्तित्व की व्यापकता और अमरत्व है। परन्तु सत्ता के दूसरे छोर पर मैं सबसे पृथक् हूँ। सारे विश्व की शक्ति इस व्यक्तित्व को नाश नहीं कर सकती। देखने में यह तुच्छ है, परन्तु असल में महान् है। सृष्टि-कर्त्ता की कारीगरी का यह एक नमूना है, जिसका दूसरा प्रतिरूप नहीं मिल सकता।

यदि हम यह व्यक्तित्व खो दें तो हमारा क्या रह जाय। व्यापक न होने के ही कारण यह बहुमूल्य है। अतएव इसकी हानि सारे विश्व की हानि है। इसके द्वारा ही हम विश्व की व्यापकता की प्राप्ति कर सकते हैं। अपने पृथक्त्व के ज्ञान-शून्य पड़े रहने से नहीं। विश्व का अन्तिम विकास व्यक्ति में है। और व्यक्तित्व की रक्षा करने की हमारी अभिलाषा असल में विश्व की गति है, जो हमारे द्वारा प्रकट हो रही है। हमें अपने अस्तित्व में जो आनन्द आता है उसका प्रभाव हमारा वही आनन्द है जो हमें अनन्त में आता है।

भारतवर्ष के प्रमुख तत्त्वज्ञान के अनुसार अविद्या अथवा अज्ञान से मुक्ति ही यथार्थ में मुक्ति अथवा मोक्ष है। मनुष्य-जीवन का अभीष्ट यथार्थ अथवा तथ्य का नाश नहीं है, किन्तु अविद्या का अथवा मिथ्या, अतथ्य का नाश है, जो यथार्थ पर आवरण डाले है। जब अविद्या का यह आवरण हटा लिया जाता है तब केवल आँख का परदा हटाया जाता है। आँख को कोई हानि नहीं पहुँचाई जाती।

हम अपने अज्ञान के कारण समझते हैं कि हमारी अहन्ता ही हमारा सच्चा स्वरूप है। जब तक हमारी अपने बारे में यह भ्रमात्मक समझ है तब तक हमारे जीवन का उद्देश अहङ्कारपूर्ण रहता है जैसा गीता में कहा है—इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्। इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्। तभी तक हमें निराशा उठानी पड़ती है, जैसे कोई मनुष्य अपने अभीष्ट स्थान तक पहुँचने के लिए मार्ग की धूल को मुट्ठी में पकड़े रहे। हमारे सच्चे रूप का स्वभाव प्रगतिशील है। उसकी उपमा एक धागे से है, जो जीवनरूपी करघे से चलता हुआ कपड़े के रूप में बिना जा रहा है। उसको पकड़ने से हम उसकी अभीष्ट-सिद्धि में बाधा डालते हैं।

अविद्या के कारण हम अपने आपे की बेड़ी में पड़े हुए हैं। अपना सच्चा स्वरूप जानने से ही हम अपना आत्मोद्धार करते हैं। धर्म का अर्थ है स्वभाव, किसी वस्तु की यथार्थ प्रकृति अथवा शील। अतएव जब हम अपने धर्म को पहचानते हैं तभी हमें मुक्ति मिलती है। परन्तु यह धर्म, जो हमारा आन्तरिक सत्य है, प्रकट रूप में कुछ और समझ पड़ता है। यहाँ तक कि कुछ दार्शनिक विचारों में मनुष्य का स्वभाव पापमय है और केवल परमात्मा की कृपा से किसी मनुष्य का उद्धार हो सकता है। परन्तु उपर्युक्त विचार तो यह कहने के सदृश है कि बीज का स्वभाव अपने छिलके में बन्द रहने का है और किसी विशेष आश्चर्यघटना के बिना बीज का विकास वृक्षरूप में नहीं हो सकता। परन्तु हम जानते हैं कि बीज का प्रकट स्वरूप उसके सत्य-स्वरूप से, उसके धर्म से भिन्न है। जब हम वृक्ष को उगते देखते हैं तब हम बीज के धर्म को जानते हैं, और कह सकते हैं कि जो बीज नहीं उगा, सड़ गया, वह अपने स्वभावसिद्धि में अपने धर्म में अपूर्ण रहा। और इसी प्रकार मनुष्य-जाति के महान् पुरुषों के जीवन में हम अपने धर्म को पूर्ण होते देखते हैं और यद्यपि बहु-संख्यक जीवन असफल होते देखते हैं, तथापि इसका निश्चय होता है कि उनका स्वभाव अथवा धर्म इससे भिन्न है।

बीज की मुक्ति उसके धर्म के सिद्ध होने में अर्थात् वृक्ष होने में है। जिस त्याग के द्वारा किसी पदार्थ को उसकी धर्म-सिद्धि प्राप्त होती है उस त्याग को सत्य मृत्यु नहीं कह सकते। यह बन्धन-विच्छेद है, जिससे मुक्ति मिलती है।

हमारे श्रेष्ठ पुरुषों के जीवनों से प्रकट होता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य-जीवन का आदर्श त्याग है। मनुष्य के आपे का श्रेष्ठ तत्त्व सदा उस वस्तु की खोज में रहता है जो उससे भी परे की है किन्तु फिर भी उसका यथार्थ रूप है, जिसके लिए वह सब कुछ त्याग और बलिदान कर देता है। किन्तु यह त्याग ही उसका पुरस्कार है। खिला हुआ फूल अपनी सुगन्ध संसार को देता है, किन्तु त्याग ही उसका विकास है न कि अपने आप में बन्द रहना। लैम्प अपना तेल जला कर प्रकाश करता है। जब तक उसने तेल का त्याग नहीं किया तब तक उसका सच्चा प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। जब उसने तेल को प्रकाश पर बलिदान किया तब उसको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

परन्तु व्यर्थ का त्याग और भी अधिक निष्फलता है। लैम्प को प्रकाश के लिए तेल का बलिदान करने से प्रयोजन-सिद्धि मिलती है। इसी प्रकार मनुष्य-जीवन में त्याग के साथ साथ प्रेम का विकास होना चाहिए। बुद्ध ने प्रेम के मार्ग से निर्वाण का उपदेश दिया है। पूर्ण प्रेम में ही आपको मुक्ति, स्वतन्त्रता मिलती है। जो कार्य अथवा कर्म प्रेम के हेतु किया जाता है वही निर्बन्ध-पूर्वक किया जाता है। अतएव प्रेम के हेतु कर्म करना ही कर्म की स्वतन्त्रता है। गीता में निष्काम-कर्म के उपदेश का यही अर्थ है।

परमेश्वर ने अपनी सृष्टि में अपने को प्रकट किया है। उपनिषद् में कहा है 'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' अर्थात् ज्ञान, बल, क्रिया उसका स्वभाव है। वह उनके लिए विवश नहीं है, किन्तु स्ववश है। अतएव उसके कार्य में उसकी स्वतन्त्रता है। दूसरे मन्त्र में कहा है 'आनन्दादेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दम्प्रयान्त्यभिविशंति। अर्थात् आनन्द से अपने प्रेम की पूर्णता से उसने सृष्टि की रचना की, आनन्द से ही यह जीवित है, आनन्द की ओर इसकी गति है और आनन्द में ही सब प्राणी प्रवेश करते हैं। इस मन्त्र में परमेश्वर की सृष्टि अथवा सब प्राणियों का स्वभाव वा धर्म भी वर्णित है। उपनिषद् में एक प्रश्न है, "ब्रह्मविदां वरिष्ठः" ब्रह्म के जानने-वालों में श्रेष्ठ कौन है? इसका उत्तर है "आत्मक्रीडा आत्म-रति क्रियावान्" अर्थात् ब्रह्म में ही जो आनन्द अनुभव करता है, उसी में क्रीड़ा करता है और क्रियावान् है।

इस प्रकार उपनिषदों में उस तत्त्व-ज्ञान का वर्णन है जिस पर ज्ञानशील और क्रियाशील सभ्यता का आधार रक्खा जा सकता है, जिसके मर्म के यथार्थ ज्ञान की आवश्यकता पूर्व और पश्चिम दोनों को है, जिससे वे अपनी वर्तमान सभ्यता के एकपक्षता को दूर करें। उसी शिक्षा का स्पष्टी-करण रवीन्द्र ने अपनी प्रतिभाशाली शैली में किया है। इस लेख में उसका बहुत संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है।

रामस्वरूप गुप्त, एम. ए.

इष्टदेव।

क्या न तुम केवल हमारे इष्टदेव महान हो?,
अखिल जीवन-धन हमारे परम-प्रीति-निधान हो।
यह कभी सम्भव भला न तुम्हें हमारा ध्यान हो?
किन्तु तुम यों हो रहे जैसे न कुछ पहचान हो॥ १॥
क्यों निठुर हो बन रहे तुम तो कृपालु सुजान हो?
जान कर भी किसलिए तुम हो रहे अनजान हो?।
यह न हो सकता कभी जिसका हृदय में स्थान हो,
बस उसी को ही न उर के भाव का भी ज्ञान हो॥ २॥
सरस सहृदय हो बड़े फिर क्यों भला हठ ठानते?
हो दयामय फिर दया हम पर नहीं क्यों आनते?।
क्या नहीं यह बात भी तुम सत्य ही हो जानते?
हम परम सर्वस्व अपना हैं तुम्हीं को मानते॥ ३॥
तुम भले ही यह समझ लो हम हुए हैं बावले,
किन्तु हम बस हैं तुम्हारे, हैं बुरे या हैं भले।
यदपि हम तुमसे सदा ही नाथ! रहते दूर हैं,
पर तुम्हारे प्रेम के ही हम नशे में चूर हैं॥ ४॥
मन-भवन के हो निवासी बस तुम्हीं हृदयेश हो,
क्या न है आश्चर्य तो भी तप्त जो हृद्देश हो?।
है सही जाती नहीं मन की व्यथा अब तो हरो,
स्नेह-जल से सींच कर उरतल-कमल शीतल करो॥ ५॥
कौन तुमको छोड़ दाता है हमें संसार में?
माँगने जायें कहो, हम और किसके द्वार में?
क्यों न तुम देते भला अब भी हमें अवलम्ब हो?
प्रार्थना है बस यही अब तो न और विलम्ब हो॥ ६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम नहीं यह माँगते हमको सुयश-सम्मान हो,
हम न यह भी चाहते सुख का हमें सामान हो ।
और कुछ दो या न दो इस ओर भी तो ध्यान दो,
इन विकल प्यासे दृगों को रूप-रस का दान दो ॥ ७ ॥

गोपालशरणसिंह

पञ्चपात्र ।

[सन् १९२० की बात है । एक दिन कलकत्ता में एक विशेष समाज की स्थापना हुई । इसमें किसी प्रकार का चन्दा नहीं देना पड़ता था । इसके सदस्य केवल पाँच व्यक्ति हो सकते थे, एक अँगरेज़, दूसरा फ्रेंच, तीसरा जापानी, चौथा मुसलमान और पाँचवाँ बङ्गाली । इस समाज का यह नियम था कि जब सब लोग मिलकर कोई दिन ठीक करें तब जिस सदस्य की बारी हो वह अपने देश की प्रथा के अनुसार सबको एक बढ़िया दावत दे । उसके बाद अपने ही देश की कोई कहानी कहे । इस समाज के सदस्य अपने आप ही सदस्य बन बैठे थे । सबसे पहले अँगरेज़ की बारी आई । उसके बाद जापानी की बारी आई । उसने अपने मित्रों को जापानी ढङ्ग की दावत दी । जब सब लोग अच्छी तरह खा-पी चुके तब कहानी प्रारम्भ हुई । उसने कहा—]

आज सवेरे मेरा सिगरेट-केस नहीं मिलता था । मैंने सोचा, शायद पुस्तकालय में पड़ा हो । वहाँ भी खोज की, पर नहीं मिला । अन्त में अपनी मेज़ पर भी उलट-पलट कर देखा, पर वहाँ भी नहीं मिला । तब मैंने घण्टी दी । नौकर के आने पर मैंने ज़रा चिड़चिड़ा कर कहा—मेरा सिगरेट-केस ढूँढ़ कर लाओ । यह सुन कर वह एक क़दम आगे बढ़ आया । उसने उसे ब्लाटिङ्ग-पैड के नीचे से उठा कर मेरे आगे रख दिया । आश्चर्य है, वह पैड ठीक मेरे सामने रक्खा था । न मालूम मस्तिष्क में क्या बात हो गई थी जिससे मैं अपने सामने ही रक्खे हुए सिगरेट-केस को न देख सका । क्या हो गया था, यह तो मैं नहीं बता सकता, पर मैंने वह कहानी अवश्य सोच ली जो मुझे आप लोगों को अभी सुनानी है ।

मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मेरी कहानी में कोई रोमाञ्चकारी घटना नहीं है । हमारे जीवन में सभी समय बड़ी घटनायें नहीं होती हैं । परन्तु मेरी कहानी से आप लोग जापानी के स्वभाव से परिचित हो जावेंगे ।

आज-कल प्रायः सभी देश के लोग यह समझने लगे हैं कि हम लोग जापान में पाश्चात्य सभ्यता का पूरा पूरा अनुकरण कर रहे हैं । कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि हम लोगों ने जो कुछ उन्नति की है वह पाश्चात्य सभ्यता की बदौलत । ऐसे लोगों की राय कहाँ तक सच है, यह मैं नहीं कह सकता । परन्तु इतना मैं कह सकता हूँ कि जापान में अब भी वही हृदय धड़क रहा है जो हमारे पूर्वजों के अन्तस्तल में धड़कता था । मेरा यह भी विश्वास है कि यदि उसका यह हृदय-स्पन्दन रुक जाय तो उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है । पाश्चात्य सभ्यता की कोई भी ओषधि उसे पुनरुज्जीवित नहीं कर सकती । यह हृदय कहाँ है, इसे ढूँढ़ने के लिए हमें जापान के बड़े बड़े कारख़ानों में नहीं जाना पड़ेगा । वहाँ जो आदमी हमें चलते-फिरते दिखाई देते हैं वे यथार्थ में आदमी नहीं हैं । मशीन के कल-पुर्ज़े की तरह वे भी निर्जीव ही हैं । जापान की शक्ति इन निर्जीव कल-पुर्ज़ों पर निर्भर नहीं है, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि उसकी शक्ति-रक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए ये भी आवश्यक हैं। जापान को जानने के लिए हमें जापान के कृत्रिम आडम्बर को हटा कर उसके घर में उसका असली रूप देखना होगा। पाश्चात्य सभ्यता भी एक कृत्रिम आडम्बर है जिसको जापान ने अपने ऊपर ढाँक रक्खा है। उसका यथार्थ रूप तभी प्रकट होता है जब वह इन कृत्रिम बन्धनों को दूर कर देता है। अच्छा, अब मेरी एक कहानी सुनिए।

जापान के सितागाओया नामक स्थान में हारादा नैसुख नाम का एक मोची रहता था। उसके घर में उसकी स्त्री को छोड़ कर और कोई नहीं था। वह बहुत ही ग़रीब था। साधारण ढङ्ग के जूते बेंच-बाँच कर अपना निर्वाह किसी प्रकार करता था। अपने व्यवसाय के लिए उसे महाजन से ऋण लेना पड़ा। परन्तु कुछ समय बाद जब देना अधिक हो गया तब नैसुख और उसकी स्त्री का हृदय भय और चिन्ता से व्याकुल होने लगा। वे रात-दिन यही सोचा करते थे कि क़र्ज़ा कैसे चुकाया जाय।

नैसुख की स्त्री का कान्दा नामक एक भाई शहर में रहता था। वह डाकृर था। अपने व्यवसाय में परिश्रम करने से उसने बहुत अधिक धन पैदा कर लिया था। नैसुख की स्त्री ने अपनी गिरी दशा का हाल उसे लिख भेजने का विचार किया। अन्त में पति-पत्नी ने आपस में सलाह कर चिट्ठी लिखी।

नैसुख की स्त्री के भाई का स्वभाव बहुत ही उदार था। अपनी बहन के पत्र को पढ़ कर वह बहुत दुखी हुआ। उसने अपने मन में सोचा कि इस समय बहन बड़े कष्ट में है। मुझे उसकी कुछ सहायता अवश्य करनी चाहिए। यह विचार कर उसने उसी दिन औषध के एक छोटे से बक्स में सोने के दस सिक्के रख कर उसे अपने नौकर के हाथ बहन के घर भेज दिया।

जब डाकृर का नौकर नैसुख के घर उस बक्स को लेकर पहुँचा और उसे उसकी स्त्री को दिया तब नैसुख और उसकी स्त्री दोनों ने उसे बहुत धन्यवाद दिया। बक्स के खोलने पर उन्हें एक काग़ज़ मिला। उसे देख कर उनके विस्मय का ठिकाना न रहा। उस काग़ज़ पर डाकृर के हाथ से स्पष्ट लिखा था—

रोग—दरिद्रता

औषध—मुहरें

मात्रा—उपयुक्त रूप से व्यवहार करने पर रोग शान्त होगा।

जब नैसुख की स्त्री ने काग़ज़ के नीचे टटोल कर देखा तब उसे दस मोहरें मिलीं। मुहरों को पाकर वे दोनों पति-पत्नी एकटक एक दूसरे को देखने लगे। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। दस मोहर! हमारे जैसों के लिए यह साधारण रक़म नहीं। अब उन दोनों के चेहरे हर्ष से खिल गये। घर के भीतर जाकर उन्होंने मोहरें यथास्थान रक्खीं और अच्छी तरह स्नान कर साफ़-सुथरे कपड़े पहन कर घर से बाहर आये। नैसुख उस दिन अपने इष्ट-मित्रों और भाइयों के पास जाकर अपने घर भोजन करने के लिए सबको निमन्त्रण दे आया। उस दिन रात को अधिक शीत पड़ रहा था, ख़ूब बर्फ़ गिर रहा था। अतएव निमन्त्रण में केवल सात आदमी आसके। नैसुख के मित्रों और बन्धु-बान्धवों को इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि नैसुख ने कहाँ इतना धन पाया जो उसने हम लोगों को आज भोज दिया है। जो लोग निमन्त्रण में आ सके उनकी उत्सुकता का निवारण शीघ्र ही हो गया। जैसे ही सब भोजन करने लगे, नैसुख ने अपने मित्रों और बन्धुओं से सब हाल कह सुनाया और अपने साले की भेजी हुई मुहरें उन्हें दिखाने लगा।

नैसुख की दरिद्रता का विनाश करनेवाली स्वर्णमुद्रा-रूपी औषध की बात जान कर सभी अभ्यागत हँसने लगे। उन्होंने नैसुख के साले की भी ख़ूब प्रशंसा की। जब सब लोग चुप हो गये तब नैसुख अपनी औषध को बन्द करने लगा। ज्यों ही वह मोहरों को इकट्ठा करने लगा त्यों ही उसने चकित होकर कहा—अरे! दस मोहरों में केवल नौ ही रह गई हैं! एक कहाँ गई!

नैसुख की बात सुन कर सभी अभ्यागत उठ कर खड़े हो गये और अपने अपने कपड़े झाड़ने लगे। बहुत खोज हुई, पर वह मोहर कहीं न मिली। सब लोग आपस में काना-फूसी करने लगे—यह तो बड़े आश्चर्य की बात है! मोहर गई तो कहाँ गई?

अपने बन्धु-बान्धवों को इस प्रकार असमञ्जस में पड़े हुए देख कर नैसुख ने एक बहाना किया। उसने अपने सिर पर हाथ रख कर बात बना कर कहा—"भाई, मुझसे बड़ी भूल हुई है। मुहरें तो नौ ही थीं। एक को भुना कर मैंने आप लोगों के दावत की तैयारी की है। मेरी मोहर खोई नहीं है।" यह कह कर उसने जल्दी जल्दी बाक़ी नौ मोहरों को बक्स में बन्द कर दिया।

पर नैसुख के बान्धव उसके इस भद्रतापूर्ण बहाने को जान गये। उन्होंने सोचा कि वह मोहर के खोने की बात को दबा देना चाहता है। अतएव उन लोगों में से प्रायः सबने कहा—नहीं, दस मोहरें तो थीं। नौ कैसे? जल्दी न करो। देखो, यहीं पड़ी होगी। कौन ले जायगा। इतने कहने पर नैसुख के पास जो व्यक्ति बैठा था उसने अपने कपड़े खोल कर जामातलाशी सी दे दी। उसके पास के दूसरे आदमी ने भी चुपचाप उठ कर वैसा ही किया।

पर तीसरा आदमी चुपचाप बैठा रहा। लज्जा से उसका मुख लाल हो गया था। कुछ देर में वह अपने स्थान से उठा। घुटनों के बल सबके बीच में बैठ कर उसने दोनों हाथ ऊपर उठा कर भरे हुए स्वर में कहा—भाइयो, मेरे कपड़े ढूँढ़ने से क्या होगा? मेरे पास एक मोहर है। घर से चलते समय उसे मैं अपने साथ लेता आया था। समय के फेर से आज मुझे चोर बनना पड़ा। यह मेरे पूर्व जन्म के पापों का दण्ड है। मैं इस कलङ्क को लेकर अब जाना नहीं चाहता। यह कह कर वह एक उच्च कुलीन की तरह आत्म-हत्या करने को तैयार हो गया।

सब लोगों ने उसको रोक कर कहा—"यह क्या करते हो। तुमने तो सत्य सत्य कह दिया। तुम मोहर क्यों लेने लगे? क्या हम लोग ग़रीब हैं? हमारे सबके घर में एक आध मोहर तो यों ही फालतू पड़ी रहती है।"

बड़े उच्च स्वर में यह बात उन लोगों ने कह तो डाली, किन्तु हृदय में विश्वास न हुआ। क्योंकि वे सब अपने मन में जानते थे कि खोजने से भी घर में मोहर न निकलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस आदमी ने फिर कहा—"सिदो ने मुझे एक बड़ी छुरी बना कर दी थी उसी को मैंने एक डाकृर के हाथ एक मोहर में बेचा था। जो हो, इन बातों के कहने से क्या होगा। मेरी इज्ज़त तो गई। मेरे लिए मृत्यु ही ठीक है। मैं अभी आत्म-हत्या करूँगा। किन्तु आप लोगों से मेरी एक प्रार्थना है। कल आप लोग एक बार उस डाकृर के पास जाइएगा। तब मेरी बात की सत्यता आप लोगों को मालूम हो जायगी।

यह कह कर जब वह आदमी छुरा निकाल कर अपने पेट में घुसेड़ने चला तब उनमें से एक ने चिल्ला कर कहा—देखो! देखो! मोहर मिल गई। यहाँ लैम्प की आड़ में पड़ी थी, मुझे अभी देख पड़ी है।

यह सुन कर वह आदमी रुक गया। उसने आत्म-हत्या न की। सभी अभ्यागत बोल उठे—अच्छी तरह खोज न करने से कैसी भयङ्कर समस्या उपस्थित हो गई थी। मोहर के मिल जाने पर सब लोग निश्चिन्त हो कर एक दूसरे को धन्यवाद देने लगे। किन्तु उसी समय नैसुख की स्त्री दौड़ी हुई वहाँ आ पहुँची। उसने कहा, खोई हुई मोहर मिल गई। वह बक्स की लकड़ी में अटकी थी।

अब मोहर की समस्या और भी कठिन होगई। अब उनकी संख्या दस से ग्यारह हो गई। लेम्प की आड़ में जो मोहर मिली है वह कहाँ से आई? अवश्य ही अभ्यागतों में से किसी ने डाल दिया है। किन्तु किसने डाला, इसको किसी ने न स्वीकार किया। तब सभी लोग आश्चर्य करने लगे, क्योंकि सबके सामने देखते ही देखते दस मोहरों का ग्यारह हो जाना बड़े सौभाग्य की बात थी। वे नैसुख को इस बात के लिए ध देने लगे।

नैसुख के घर का स्वामी भी निमन्त्रण में आ था। उसने कहा—"भाइयो, दस में से एक ग हो जाने पर नौ बचीं और फिर एक के मिल से उनकी संख्या दस होगई। यहाँ तक तो स्वा विक बात है। किन्तु ग्यारह मोहर कैसे हो गई आपही लोगों में से किसी ने इस विपत्ति के स एक मोहर डाल दी है। जिसने यह काम किया उसे प्रकट हो जाना चाहिए। नहीं तो अच्छी न न होगी।"

इस आदमी के कहने का भी कुछ प्रभाव पड़ा। किसी ने स्वीकार न किया कि मैंने मो डाली है। कुछ समय बीत जाने के अन्त में इ कहा—देखो, मैं जिस ढङ्ग से उस अधिक मोहर मालिक ढूँढ़ दूँ उसे आप मानेंगे? उसकी बात सब लोग राज़ी हो गये। तब उसने कहा—"अच्छ सुनो। मोहर को बक्स में रख कर घर के बा घेरे के पास जो कुआ है वहीं रख आओ। स लोग एक एक करके यहाँ से उठ कर अ अपने घर जाइए। जो जाय वह अपने घ दरवाज़ा बन्द करता जाय। जब तक घेरे दरवाज़े के बन्द होने का शब्द न सुनाई पड़े तक यहाँ दूसरा आदमी जाने को न उठे। जि आदमी की मोहर हो वह उसे लेता जाय।

बक्स में मोहर रख दी और वह कुएँ के प रख दिया गया। एक एक करके सब चले ग सबके चले जाने के बाद नैसुख और उसकी स्त्री जाकर देखा, बक्स के भीतर मोहर नहीं है।

अच्छा, उसे किसने लिया? कोई इसको न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानता था, किन्तु यह निश्चय है कि वह जिसकी थी उसी ने ली । ग़रीब होने पर भी आत्मसम्मान का ज्ञान उनमें यथेष्ट था ।

ग्रामीण

समय ।

इस निर्धन भारतवर्ष में भी घड़ियों का इतना प्रचार हो गया है कि "गाड़ी नौ बज कर बीस मिनट पर मिलेगी" इस वाक्य के अर्थ को ग्रामीण लोग भी समझ लेते हैं । परन्तु नौ बज कर बीस मिनट कब होगा, इस बात का ठीक पता कैसे चलेगा, इसको बहुत कम लोग बतला सकेंगे । कितने कहेंगे कि इसमें क्या कठिनाई है । घड़ी देखते ही पता चल जायगा कि क्या समय है । परन्तु मेरे

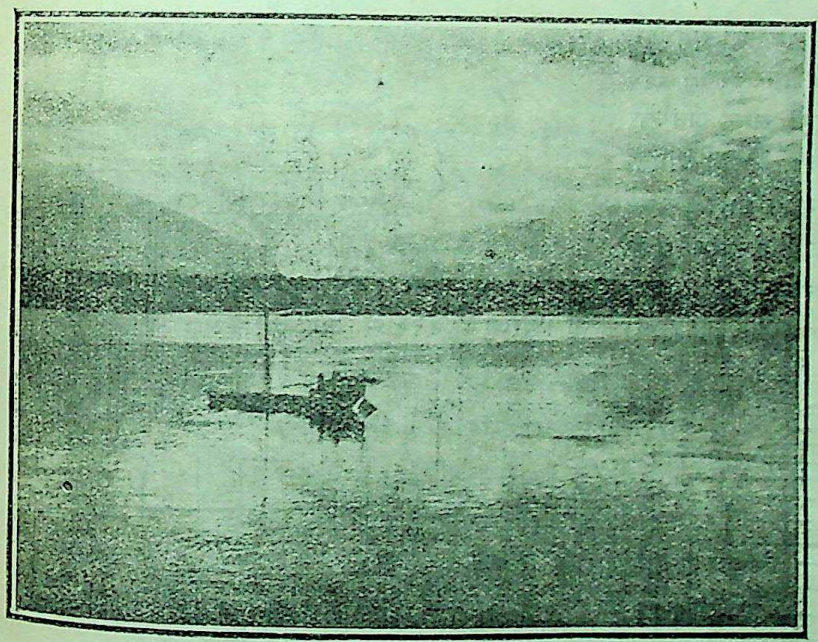

"सूर्योदय एक प्रत्यक्ष, सुन्दर और भावपूर्ण घटना है जिसको सभी देख सकते हैं ।"

प्रश्न का यह आशय नहीं है । घड़ी सुस्त है या तेज़, इसका निर्णय कौन करेगा ? कदाचित् इसका उत्तर आप यह दें कि हम अपनी घड़ी का मिलान डाकघर की घड़ी से कर लेंगे, तो भी मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता । डाकख़ाने की घड़ी ठीक है या नहीं, इसका पता कैसे चलेगा ?

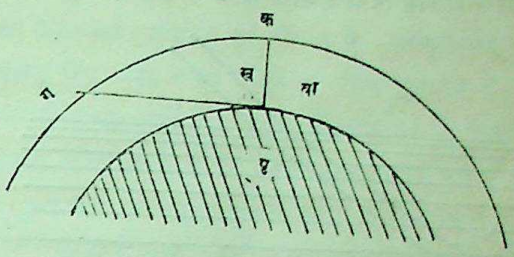

वायु-मण्डल का प्रभाव ।

बात यह है कि हमें एक ऐसी परिभाषा चाहिए जिससे हम यह सदा निर्णय कर सकें कि अब कितना बजा है । इस लेख में समय के इसी अङ्ग पर विचार किया जायगा । समय किसको कहते हैं, इस विषय पर हम यहाँ विचार नहीं कर सकते । यह विषय इतना गूढ़ है कि इसमें बड़े बड़े वैज्ञानिक धोखा खा गये हैं । स्वयं न्यूटन* ने भी समय की परिभाषा देने में भूल की । उसका कहना है कि परम, असली और गणितोपयोगी समय वह है जो एक गति से बहता हो, जिसकी गति में स्थूल पदार्थों की गति की शीघ्रता या मन्दता का कुछ प्रभाव न पड़ता हो । परन्तु समय की परिभाषा में 'एक गति' का प्रयोग करना निरर्थक है । जो यह जानता ही नहीं कि असली समय क्या है वह "एक गति" से क्या समझ सकेगा !

यह बात सच है कि हमारा मस्तिष्क बाह्य इन्द्रियों की सहायता के बिना समय के बीतने का अनुभव कर सकता है । कदाचित् हमारे मस्तिष्क में कुछ ऐसी क्रियायें हैं जो बार

* इँग्लेंड का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार हुआ करती हैं और वही घड़ी का सा काम देती हैं। वैज्ञानिक काम के लिए इस प्रकार का मानसिक अनुभव बिलकुल निकम्मा है और सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों या तारों की शरण में गये बिना हमारा काम न चल सकेगा।

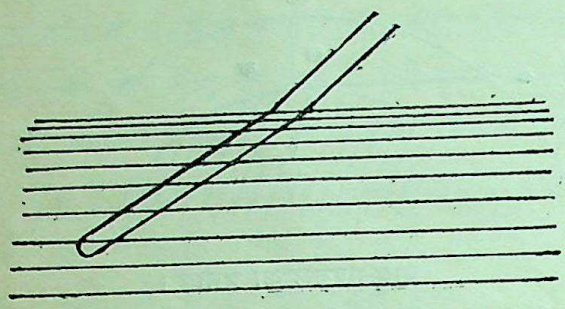

जल में आधी डुबोई छड़ी सीधी नहीं दिखलाई पड़ती।

सूर्य की चाल से रात-दिन और उसके उत्तरायण-दक्षिणायन होने से वर्ष होता है। चन्द्रमा की चाल से हमको महीना मिलता है। इन सबमें रात-दिन का होना ही प्रधान है और इसलिए स्पष्ट है कि समय को रात-दिन से सम्बन्ध अवश्य रखना चाहिए। रात-दिन के बदले हम यहाँ "दिन" शब्द का प्रयोग करेंगे। दिन का आरम्भ कब से मानना चाहिए, ऐसी सरल बात पर भी मतभेद है। परन्तु यह मतभेद अब मिटता जा रहा है। साधारणतः मध्य-रात्रि से ही दिन का आरम्भ माना जाता है, परन्तु योरप के ज्योतिषी ठीक दोपहर से दिन का आरम्भ मानते हैं। जिसको सर्व-साधारण १२ जून १९२२, ग्यारह बज कर बीस मिनट (दोपहर बाद) कहते हैं उसको

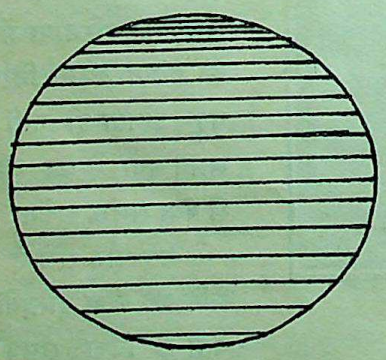

सूर्योदय के समय सूर्य का आकार।

ज्योतिषी भी १२ जून १९२२, ग्यारह बज कर बीस मिनट कहते हैं, परन्तु प्रचलित रीति के अनुसार जिसको साधारण लोग १३ जून १९२२, ग्यारह बज कर मिनट (दोपहर पहले) कहते हैं उसको ज्योतिषी

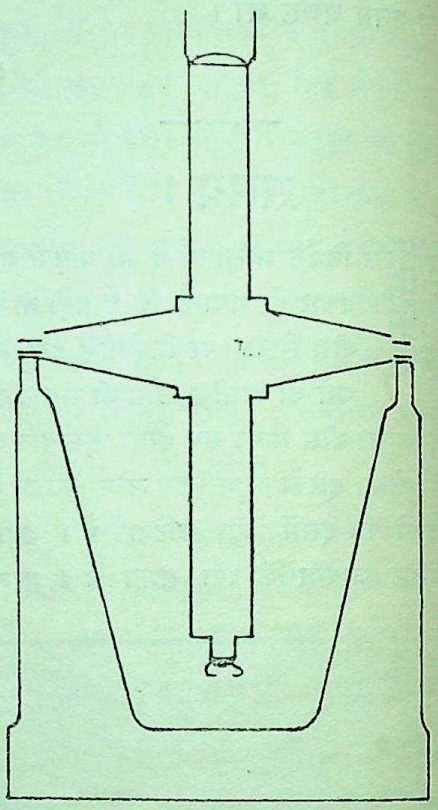

सरल यामोत्तर चक्र।

१२ जूलाई १९२२, तेईस बज कर बीस मिनट हैं। परन्तु १९२५ से ज्योतिषी लोग भी आधी

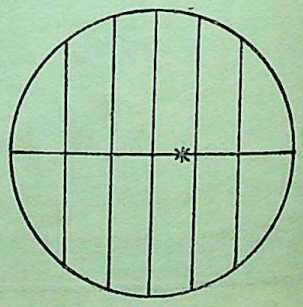

दूरबीन के दृष्टि-क्षेत्र में तार और एक तारा।

से दिन का आरम्भ समझेंगे और उनकी और सर्व-साधारण की गणना में जो अन्तर इस समय है वह रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष के ज्योतिषी सदा सूर्योदय से दिन का आरम्भ मानते आये हैं। ऐसा करने से दो एक बातों

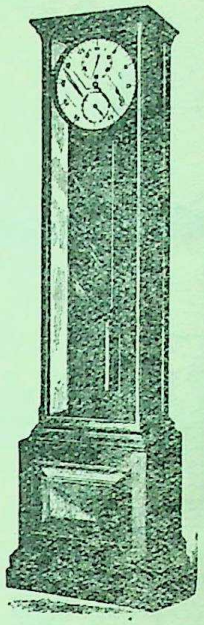

ज्योतिष-घड़ी।

में सुविधा तो अवश्य है, परन्तु शेष बातों में विशेष असुविधा है। पहले तो सुविधाओं की बात लीजिए। सूर्योदय कब होता है, इसका पता एक बच्चा भी (मोटी रीति से) लगा सकता है। पर दोपहर कब होता है, इसका पता लगाना सरल नहीं है। सूर्योदय एक प्रत्यक्ष, सुन्दर और भावपूर्ण घटना है, जिसको सभी देख सकते हैं। सूर्योदय के कितने घण्टे बाद अमुक घटना हुई थी, इसका भी बतलाना दोपहर से कितना पहले या पीछे कोई घटना हुई थी इसके बतलाने से सरल है, क्योंकि मनुष्य का नित्य-कर्म सूर्योदय पर निर्भर है, मध्याह्न पर नहीं। परन्तु ठीक ठीक समय नापने के लिए सूर्योदय से समय नापना अच्छा नहीं है। पहले तो सूर्योदय के समय सूर्य इतना नीचा रहता है कि उसकी किरणों पर इस पृथ्वी के वायु-मण्डल का बहुत प्रभाव पड़ता है। चित्र नं० २ में "पृ" पृथ्वी है और "वा" वायु-मण्डल है। स्पष्ट है कि दोपहर के समय किरणों को केवल "क ख" की दूरी तक वायु-मण्डल में चलना पड़ता है, परन्तु सूर्योदय के समय किरणों को "ख ग" तक की दूरी तय करनी पड़ती है, जो पहली दूरी से बहुत अधिक है। ख ग का मार्ग वायु-मण्डल में तिरछा होकर आता है। इससे इसमें बहुत परिवर्तन हो जाता है। फिर जिस कारण जल में आधी डुबोई हुई छड़ी सीधी नहीं दिखलाई पड़ती (चित्र ३) उसी कारण सूर्योदय के समय सूर्य चिपटा सा दिखाई पड़ता है (चित्र ४)। और इसके उपरान्त एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक प्रति दिन एक ही समय नहीं बीतता।

इन्हीं कारणों से आधुनिक ज्योतिषी दोपहर (या आधी रात) से दिन की गणना करते हैं। परन्तु यामोत्तर रेखा*

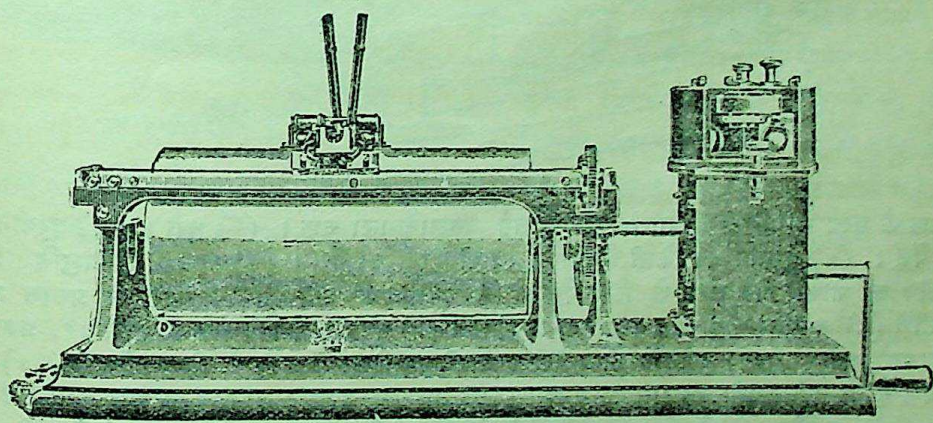

समय-लेखक।

*आकाश में वह रेखा जो उत्तर, दक्षिण और सिर के ऊपरवाले बिन्दुओं से होकर जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो आकाश में दिखलाई नहीं पड़ती। इसलिए एक ऐसे यन्त्र की आवश्यकता पड़ती है जिससे इस रेखा का ज्ञान सहज में ही हो सकता है। इस यन्त्र को यामोत्तर चक्र कहते हैं और इसका सिद्धान्त बहुत सरल है। इसके मुख्य भाग चित्र ५ में दिखलाये गये हैं। एक दूरबीन को इस प्रकार रखते हैं कि वह अपनी एक धुरी से समकोण बनाता है और उसी धुरी के बल घुमाया जा सकता है। इस धुरी को ठीक पूरब-पश्चिम दिशा और समतल में रख

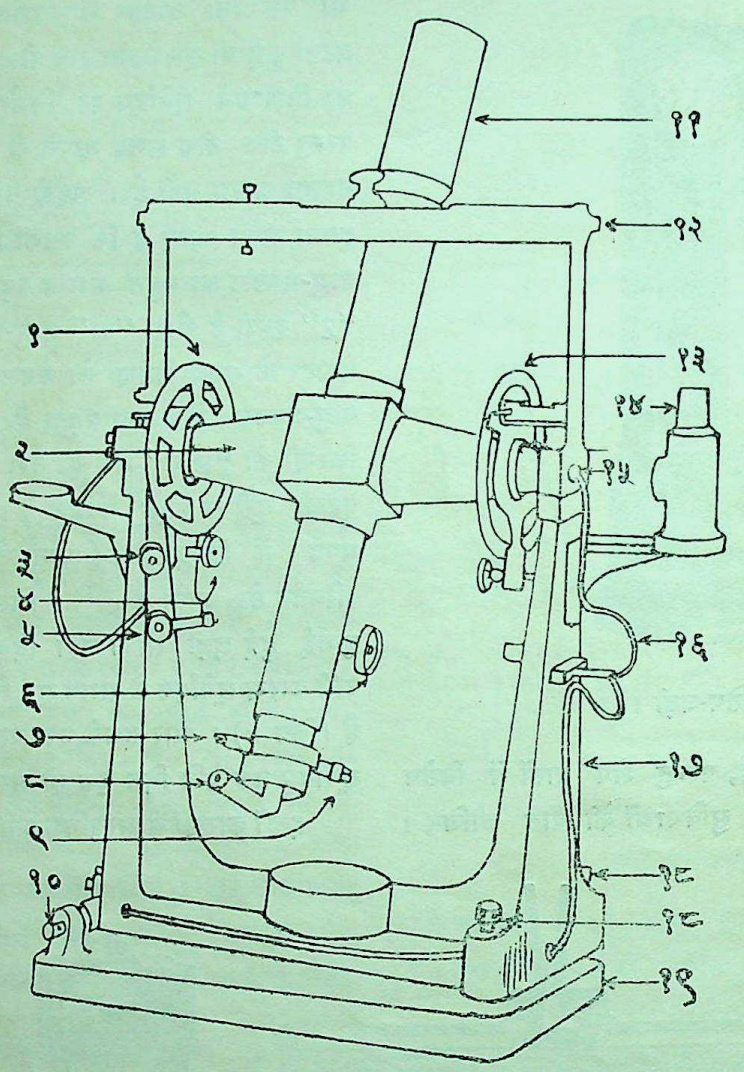

यामोत्तर चक्र के मुख्य भागः—(१) तारों की ऊँचाई बतलानेवाला चक्र। (२) धुरी। (३) दूरबीन को धीरे धीरे घुमाने का पेंच। (४) दूरबीन को किसी स्थिति में स्थायी करने का पेंच। (५) चक्र १ की अशुद्धि मिटाने के पेंच। (६) दूरबीन का फोकस ठीक करने के लिए पेंच। (७) दूरबीन के दृष्टि-क्षेत्र के तारों पर प्रकाश डालने के लिए बिजली बत्ती। (८) दूरबीन का आँख लगानेवाला सिरा। (९) दूरबीन के दृष्टि-क्षेत्र के तारों पर प्रकाश डालने के लिए दूसरी बिजली बत्ती। (१०) धुरी को ठीक ठीक पूरब-पच्छिम दिशा में लाने के लिए पेंच। (११) दूरबीन। (१२) धुरी समथल है या नहीं इसको बतलाने का यन्त्र। (१३) तारा ग्रह इत्यादि की ओर दूरबीन घुमाने में सहायता देनेवाला चक्र। (१४) दूरबीन के भीतर प्रकाश डालने के लिए लैम्प। (१५) धुरी। (१६) बिजली का तार। (१७) पाया जिस पर धुरी घूमती है। (१८,१८) धुरी को समथल करने के पेंच। (१९) पेंदा जो पत्थर या ईंट के खम्भे पर बैठा दिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। स्पष्ट है कि ऐसी दशा में दूरबीन उत्तर, दक्षिण और ठीक सिर के ऊपर रहनेवाले बिन्दुओं से होकर घूमेगा और सदा यामोत्तर रेखा में रहेगा।

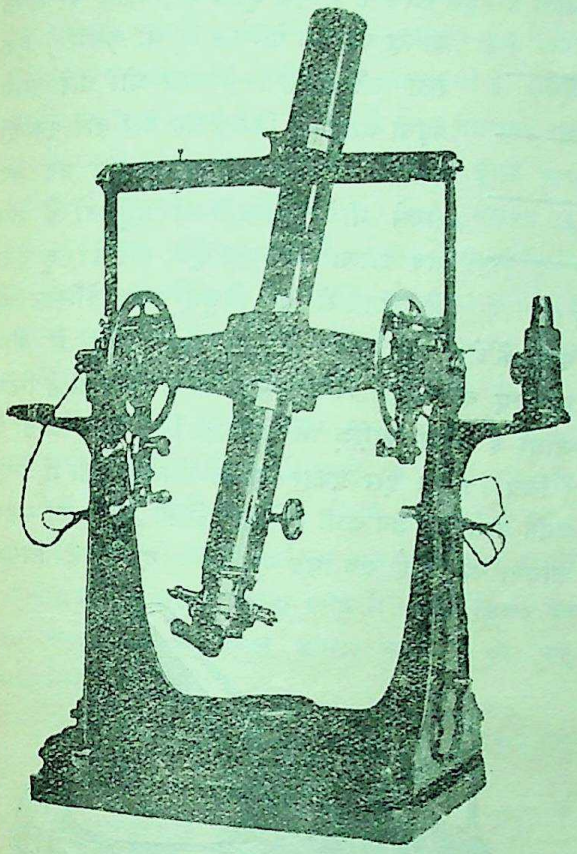

यामोत्तर चक्र।

जब कोई तारा या ग्रह ऐसे दूरबीन में दिखलाई देगा तब हम जान जायँगे कि वह यामोत्तर रेखा पर है और तब बिना गणित के ही हम जान लेंगे कि दोपहर* हुआ है।

परन्तु यदि यामोत्तर चक्र इतना ही सरल होता तो समय मिनट और सेकण्ड तक न नापा जा सकता। पहले तो सूर्य कई सेकण्ड या कुछ मिनट तक दूरबीन में दिखलाई देता है। ठीक कब दोपहर हुआ, इसका पता कैसे चलेगा? इस बात का निर्णय करने के लिए दूरबीन के दृष्टि-क्षेत्र में पाँच (या अधिक) खड़े तार और एक बेंड़ा तार लगा रहता है (चित्र ६)। जब कोई तारा बेंड़े तार और बीचवाले खड़े तार के मिलने के बिन्दु पर आता है तब जाना जाता है कि वह यामोत्तर रेखा पर आ गया। जब सूर्य का केन्द्र इस बिन्दु पर आता है तब समझा जाता है कि दोपहर हुआ। जब एक ही खड़े तार से काम चल सकता है तब पाँच तारों की क्या आवश्यकता है? वे पाँच तार इसलिए लगे रहते हैं कि आधुनिक ज्योतिषी को एक बार नापने पर विश्वास नहीं होता। यदि उससे आप एक लकड़ी की ठीक ठीक लम्बाई पूछेंगे तो वह उसको बार बार बड़ी सूक्ष्म रीति से नापेगा और उन सबका औसत निकाल कर आपको लम्बाई बतलावेगा और साथ साथ यह भी बतला देगा कि इस लम्बाई में कितनी ग़लती होने की सबसे अधिक सम्भावना है। इसी प्रकार समय जानने के लिए वह एक नाप पर भरोसा नहीं करता। वह एक ऐसी घड़ी चुनेगा जिसके बनाने में पूरी कारीगरी की गई है और जिसका लङ्गर इस रीति से बनाया गया है कि घड़ी की गति पर गरमी का कुछ प्रभाव न पड़े (चित्र ७)। ऐसा होने पर भी अशुद्धियों के घुस आने के डर से वह

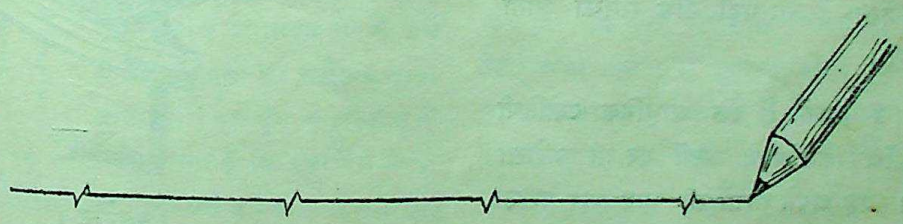

समय-लेखक पर घड़ी के चिह्न।

थोड़ा सा सरल गणित करने से उसके समय का पता चल जायगा। जब दूरबीन में सूर्य दिखलाई देगा इस घड़ी को ऐसे तहख़ाने में रक्खेगा जहाँ के ताप-क्रम

* स्थानीय स्पष्ट दोपहर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कुछ अन्तर नहीं होने पाता। फिर वह ऐसी घड़ी के साथ एक ऐसे यन्त्र (चित्र ८) को जोतेगा जिससे बड़ी सुगमता से समय एक सेकण्ड के शतांश तक नापा जा सकता है। दूरबीन के तार की मोटाई से समय का नाप

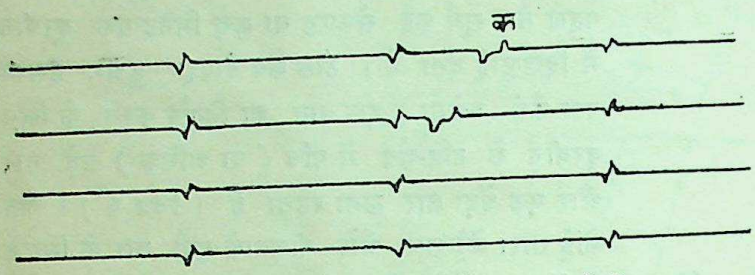

समय-लेखक पर घड़ी और किसी विशेष घटना के चिह्न।

कुछ अनिश्चित न रह जाय, इसलिए वह अपने दूरबीन में मकड़ी के जाले का एकहरा बहुत ही सूक्ष्म सूत लगवाता है। फिर एक तारे को दूरबीन के पाँचों तारों को पार करते हुए देखता है और उचित समय पर घुण्डी दबाता है जिससे प्रत्येक तारा के पार करने का समय उपर्युक्त यन्त्र पर लिख जाता है और यह समय भी कितना सूक्ष्म केवल घण्टे, मिनट और सेकण्ड में ही नहीं, किन्तु सेकण्ड के दशांश और शतांश में। सेकण्ड का एक शतांश! इतने समय में ६५ मील प्रति घण्टे चलनेवाली रेलगाड़ी एक फुट भी न चल पायेगी। उपर्युक्त पाँच तारों के औसत को भी ठीक मानने में उसे आपत्ति होती है। जब तक वह कई एक ताराओं से परीक्षा नहीं कर लेता, वह सन्तुष्ट नहीं होता। ताराओं की स्थिति के अनुसार गणना करने से जो समय निकलता है, यदि वह घड़ी के समय से मिलता है तो घड़ी ठीक समझी जाती है अन्यथा नहीं।

आप समझ सकते हैं कि आधुनिक ज्योतिषी बिना ख़ूब जाँच किये अपने यन्त्रों पर भी भरोसा नहीं करता। वह अपने यन्त्रों की बार बार परीक्षा करता है, प्रायः प्रतिदिन करता रहता है। उसकी अशुद्धियों को लगभग मिटा देता है। और असुविधाओं के कारण जिनको वह नहीं मिटाता उनके फल को गणना-द्वारा मिटा देता है। एक वास्तविक यामोत्तर यन्त्र चित्र ९ में दिखलाया गया है और उसके कुछ अङ्ग चित्र में स्पष्ट दिखलाये गये हैं।

यह समझना कि $\frac{1}{100}$ सेकण्ड का समय कैसे नापा जाता है बहुत सरल है। एक घूमते हुए बेलन पर लपेटे कागज़ पर एक पेन्सिल (या क़लम) एक रेखा खींचती है। पेन्सिल धीरे धीरे आगे बढ़ती जाती है, जिससे वह बार बार एक ही रेखा न खींचे। घड़ी का लङ्गर जब सबसे नीचे की स्थिति पर पहुँचता है तब उसका सिरा एक बूँद पारे को छू देता है। इतने से ही विद्युत्-धारा पेन्सिल के पास के लोहे पर लपेटे तार में दौड़ जाती है और इसलिए वह लोहा जिसमें पेन्सिल लगी रहती है हिल जाता है और काग़ज़ में नोकीला चिह्न बन जाता है (चित्र ११)। इस प्रकार प्रत्येक सेकण्ड रेखा में चिह्न बनते जाते हैं। जब कभी ज्योतिषी किसी घटना का समय जानना चाहता है तब वह एक बटन दबाता है जिससे

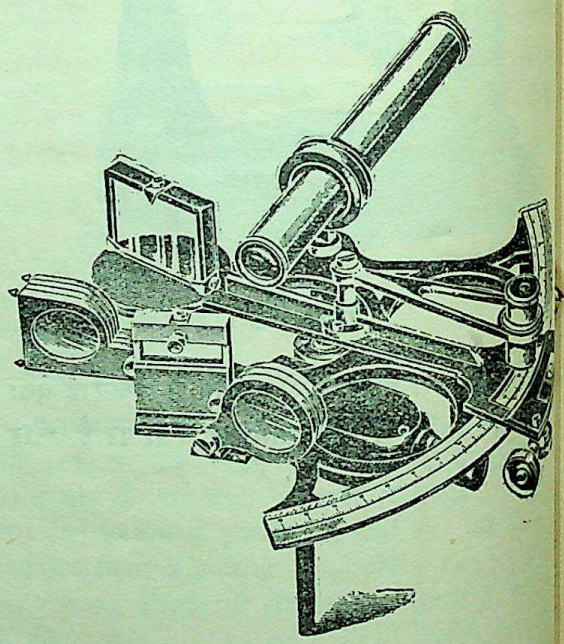

सेक्सटैन्ट।

विद्युत्-धारा के ज़ोर से रेखा में फिर चिह्न पड़ जाता है (चित्र १२ में क)। इस चिह्न की स्थिति से समय का पता सुगमता से चल जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप कहेंगे कि आधुनिक ज्योतिषी पगले होते हैं। यदि कोई घटना २ बज कर ३१ मिनट ४९'२७ सेकण्ड पर हुई या २ बज कर ३१ मिनट ४९'२५ सेकण्ड पर तो इसको जान कर कोई क्या लाभ उठा सकता है। परन्तु यह आपकी भूल है। ठीक समय का जानना कुछ लोगों को बहुत आवश्यक है। जहाज़ पर समय से ही उसकी स्थिति का ज्ञान होता है। जहाज़ के लोग यामोत्तर चक्र का तो नहीं प्रयोग कर सकते, परन्तु एक दूसरे यन्त्र "षष्ठांश" (Sxtant) (चित्र १३) से $\frac{1}{10}$ सेकण्ड तक का समय नापने की चेष्टा करते हैं। इससे वे अपनी स्थिति का निश्चय आधे मील के भीतर ही कर सकते हैं। यदि जहाज़ के लोग केवल मिनट तक ही समय जान सकते तो वे मीलों दूर भटक जाया करते। ये लोग तो केवल आध मील तक ही अपना स्थान बतला सकते हैं, परन्तु यदि किसी अच्छे ज्योतिषी की आँखों पर पट्टी भी बाँध दी जाय और उसको पृथ्वी के किसी भी कोने में छोड़ दिया जाय तो वह अपने यामोत्तर चक्र, घड़ी और पुस्तकों की सहायता से एक ही स्वच्छ रात्रि में अपनी स्थिति को दस पन्द्रह गज़ के भीतर बतला सकेगा! क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है?

गोरखप्रसाद

प्राचीन और आधुनिक राष्ट्र-निर्माण।

प्राचीन काल में धर्म की भूमि पर राष्ट्रीयता की नींव का पड़ना नैसर्गिक नियम था। भारतवर्ष के तो धर्म में ही राष्ट्रीयता का अस्तित्व माना जाता था। इस देश के इतिहास के अवलोकन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यहाँ ऐसे किसी कार्य्य को स्थान नहीं मिलता था जिससे धर्म की अवहेलना हो। वास्तव में भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता, राज-नीति, समाज आदि का घनिष्ट सम्बन्ध सर्वदा धर्म से रहा है। यहाँ के प्राचीन विद्वान् और विचारशील अपनी अपनी विद्या और बुद्धि का उपयोग अधिकतर धार्मिक उन्नति के सम्बन्ध में करते थे। सांसारिक जीवन में भौतिक उन्नति की आवश्यकता को जान कर भी उसको सबसे उच्च स्थान देना मानव-जीवन का मुख्य उद्देश नहीं माना गया। इसी लिए हमारे आदर्श-जनों ने समय समय पर कहा है कि "यतो धर्मस्ततो जयः"। किन्तु समय के फेर से आज इस नियम के अनेक अपवाद देख पड़ते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इन अपवादों की कृपा से उपर्युक्त नियम की सत्ता हिल सी गई है। कारण यह है कि संसार में इस समय धर्म-रहित मायावादी विज्ञान-युग का सूर्य्य संसार के आकाश में चमक रहा है। जिधर देखिए उधर ही विज्ञान के महत्त्व की कहावत चरितार्थ होती हुई दिखाई दे रही है। विज्ञान के नित्य नये आविष्कारों तथा उसकी क्रमशः विजय के सामने धर्म और वास्तविकता की बोलती बन्द है। सभी पाश्चात्य देशों तथा पूर्वी देशों में विशेषकर जापान को सम्पूर्ण रूप से वशीभूत कर अब विज्ञान ने अपना पदार्पण भारत-वर्ष में किया है। भारत का शिक्षित समाज दूसरे देशों की बाह्य उन्नति को देख कर इस विचार में पड़ा हुआ है कि किस प्रकार भारत भी करवट लेकर उसी ढँग से अपने राष्ट्रीय जीवन को निर्माण कर सके। यह कह कर हम विज्ञान को रुष्ट नहीं करना चाहते, न उसके महत्त्व के मूल्य को ही घटाते हैं। किन्तु हम इतना अवश्य कहेंगे कि इसको सर्वोच स्थान देने तथा इसकी सत्ता पर राष्ट्रीय भवन को स्थापित करने से किसी भी राष्ट्र की दशा सन्तोष-जनक नहीं हुई है। इसकी इयत्ता ने जन-समाज की चित्तवृति को भौतिक उन्नति की ओर झुका दिया है और उसके स्वाभाविक फल स्वार्थ, अनीति, निर्दयता और अत्याचार के रूप में देखने में आरहे हैं। इन्हीं के आधिक्य से आज धर्म और राजनीति विभक्त हो गये हैं। इसी लिए सभी देशों के दूरदर्शी लोग पाश्चात्य राजनीति पर तीव्र कटाक्ष कर रहे हैं। वे यह बात स्पष्ट देख रहे हैं कि इसका अन्तिम परिणाम मनुष्य-जाति की भावी सन्तानों के लिए सुख और शान्तिवर्धक नहीं होगा। इस बात को सभी जानते और मानते हैं कि विज्ञान असत्य नहीं है। उसकी नींव धर्म के समान सत्य-सनातन है। वह कभी धर्म के साथ विरोधभाव धारण नहीं कर सकता, न उससे कभी धार्मिक भावों को रुकावट ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है, बल्कि बहुत से निःस्वार्थ और धर्म-भीरु विज्ञान-वेत्ताओं का मत है कि विज्ञान भक्ति और साधन का सच्चा सहायक है। तो भी स्वार्थ के वशीभूत हो राष्ट्र अपने तुच्छ ध्येयों में साफल्य होने के लिए विज्ञान का दुरुपयोग कर रहे हैं। अब हम और राष्ट्रों के विषय में अधिक न कहकर पाठकों का ध्यान वर्तमान भारत की स्थिति की ओर आकर्षित करेंगे।

आधुनिक सभ्यता की ज्योति से आज-कल के हमारे अधिकांश विद्वानों के हृदय जाज्वल्यमान हो उठे हैं। उनकी धारणा है कि बहुत प्राचीन काल से धार्मिक श्रेष्ठता अपना पर्याप्त आधिपत्य दिखा चुकी है। यह केवल मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति की ओर झुकानेवाली है। इसका एक-मात्र आश्रय लेने से पार्थिव-सम्पत्ति का उत्पादन करना असम्भव है। इसके अतिरिक्त यह हमारे राष्ट्र को दूसरे सभ्य राष्ट्रों के साथ व्यवहार करने का वर्जन करती है। उनका यह भी कहना है कि शताब्दियों से इस पर अवलम्बित होने से हम जड़ीभूत हो चुके हैं। अब समय आया है कि हम करवट बदल कर अपनी बुद्धि और शक्ति को नये ढँग से जागृत करें। ये धर्म को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मानो वे इसके सनातन सिद्धान्तों को पूर्णतया कार्यरूप में परिणत कर चुके हैं और अपनी बुद्धि के विकास से अनेक नये आविष्कारों को ढूँढ़ चुके हैं। प्रति दिन के नये नये वैज्ञानिक आविष्कारों ने उन्हें इतना मोहित कर लिया है कि अब धर्म की प्राचीन प्रथा पर ध्यान देने के लिए समय ही नहीं प्राप्त होता है। धर्म के विषय की चर्चा आदिकाल से ही होती आई है, आधुनिक मनुष्य की भौतिक पिपासा को वह किस प्रकार तृप्त कर सकता है? ऐसा कहनेवाले हमारे अधिकांश चिन्ताशील विद्वानों का मन्तव्य है कि अब हम धर्म से नाता तोड़ कर अपने हृदय के अन्धकार को आधुनिक विज्ञान-विकास-द्वारा हटावें। धार्मिक नियम उन्हें निकृष्ट और अग्राह्य मालूम होते हैं, किन्तु यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उनके महत्त्व, सौन्दर्य और आनन्द का मूल्य अवगत करने की उनमें शक्ति ही नहीं है। ऐसी चित्तवृत्ति का स्वाभाविक परिणाम यही है कि इन असमञ्जसों से हमारी स्वतन्त्र विचार-शक्ति दिन प्रतिदिन दीन और निर्बल होती जा रही है।

इस प्रकार के विचारवाले अपने अस्तित्व को तिलाञ्जलि देते हुए मनोनीत सभ्यता के तत्त्वों से भी अनभिज्ञ होते जा रहे हैं, जिससे राष्ट्र निर्माण होना तो एक ओर रहा सब लोग तीन तेरह हो रहे हैं और सामाजिक जीवन में उच्छृङ्खलता बढ़ रही है। आधुनिक शिक्षित-समाज अपनी इस स्थिति में इस बात पर विचार करना सहसा भूल गया है कि किन संस्कारों, भावों और आचरणों का समावेश प्राचीन सभ्यता में होता है और किनका आधुनिक सभ्यता में। अतएव इसका यह परिणाम हुआ है कि पाश्चात्य राजनैतिक प्रथा भारत में भी अपना आधिपत्य प्रारम्भ कर रही है। किन्तु स्मरण रहे कि देश-काल और परिस्थिति के अनुसार पाश्चात्य राजनीति को अपनाने में भी हम सफलता प्राप्त करने में असमर्थ हैं क्योंकि यह पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण-मात्र है; न भारत के सामाजिक, राष्ट्रीय और बौद्धिक जीवन में अपना पूरा प्रभाव नहीं जमा सकती, न राष्ट्र-सङ्गठन के लिए ही श्रेय है। इसे दो भिन्न भिन्न प्रकार के मतों का दारुण सङ्ग्राम कहना चाहिए। तब भी हमारे शिक्षित देशवासी अपना हठ नहीं छोड़ते। उन्हें आशा है कि इस नवीन प्रथा से हम किसी दिन भारत का पुनरुद्धार कर ही लेंगे। इस घोर अज्ञान ने उनके हृदय को आच्छादित कर लिया है कि धर्म का सहारा लेकर भारत संसार की अन्य जातियों की उन्नति से स्पर्धा करने को समर्थ नहीं हो सकता और न धर्म में वह शक्ति ही है कि वह हमें अपने राष्ट्र को जीता जागता बनाये रखने का बल प्रदान कर सके।

धर्म की इस प्रकार अवहेलना करने तथा उसे जीर्ण और शक्तिहीन मानने में हम अपने राष्ट्रीय जीवन को महान् क्षति पहुँचा रहे हैं। इससे पाठक यह न समझ बैठें कि हम लकीर के फ़क़ीर बने रहने के पक्ष में हैं। देश की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रणालियों में समयानुकूल उपयुक्त परिवर्तन सदा वाञ्छनीय है। किन्तु अपने अस्तित्व को परिवर्तित करके कोई भी समाज या जाति जीवित नहीं रह सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हमारे प्राचीन इतिहास का ध्यान-पूर्वक अध्ययन किया जाय तो विदित हो जायगा कि भारतवासियों ने विद्या के किसी भी विभाग में यथोचित भाग लेने से कभी मुँह नहीं मोड़ा। वे जीवन के किसी भी कार्य को सम्पादन करने में अयोग्य नहीं रहे। विज्ञान के सौन्दर्य-पूर्ण और उपयोगी आविष्कार करने में वे सर्वदा समर्थ रहे। क्या भारतवर्ष ने आदर्श विज्ञानवेत्ता भास्कराचार्य, आर्य्यभट्ट आदि को नहीं उत्पन्न किया है? पर उन वैज्ञानिकों, उनके अनुयायियों और प्रशंसकों की महत्ता यही थी कि वे अन्य कर्म-क्षेत्रों में उन्नति करते हुए अपने अस्तित्व को यथावत् सुरक्षित रखते गये। किन्तु आज-कल के विद्वानों के चिह्न विलक्षण ही हैं। वे अपने अस्तित्व के मूल्य पर पाश्चात्य राजनीति को सच करना चाहते हैं। राष्ट्रीय समस्या की ऐसी डावांडोल दशा को देखकर यही कहा जा सकता है कि धर्म के सम्मुख सबसे बड़ा कार्य यह है कि वह किसी नये मार्ग-द्वारा फिर से लोगों को जागृत करे और देश के राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन से अपना अधिकार न टलने दे।

उस जागृति में ऐसा बल हो कि वह भारतवासियों को अपना अस्तित्व अवस्थित रखने के लिए बाध्य कर सके। यदि भारत का राष्ट्रीय जीवन धर्म पर निर्भर है तो इस प्रकार की ज्योति का प्रकाश होना उसके धार्मिक इतिहासानुकूल अनिवार्य है। वास्तव में धार्मिक सत्ता की टिमटिमाती हुई ज्योति का पुनः प्रकाश होने लगा है। क्या वह शक्ति आज हमें समयानुकूल उचित मार्ग पर नहीं लेजा रही है? यदि हम आँखें रखते हैं तो हम उसे स्पष्ट देख सकते हैं। अतएव हमारे शिक्षितों को विचार करना चाहिए कि हम आधुनिक विज्ञान के आविष्कारों के भ्रम में पड़कर अपनी नैसर्गिक शक्ति और अधिकारों को तिलाञ्जलि न दे दें। बिना उसका परिणाम सोचे बिचारे किसी कार्य के करने से अन्त में असह्य क्षति होती है। धर्म भारत के जीवन में कभी जीर्ण और अनादरणीय नहीं हो सकता। यह सृष्टि के समान सनातन है। चाहे कितने ही नये आविष्कारों का प्रादुर्भाव क्यों न हो धर्म अपना आसन सदा उच्च रक्खेगा। इसी में अगाध श्रद्धा होने के कारण अब भी भारत की गणना वास्तव में पतित जातियों में नहीं है। यदि हमारी श्रद्धा इसमें कुछ न्यून भी हो गई हो तो हमारा कर्तव्य है कि हम उसे फिर पूर्ण करें।

अब यह जानने की आवश्यकता है कि धर्म का नाम सुनने से ही हमारे शिक्षित देशवासी क्यों उदासीन और निरुत्साह हो जाते हैं? यदि उनका यह निश्चय है कि आधुनिक प्रथायें हमारे लिए हितकर हैं तो हमें यह देखना होगा कि हमारे धर्म और इनमें कितनी एकता है। यदि हमें सूक्ष्म निरीक्षण करने के पश्चात् यह मालूम हो कि हमारे जीवन की समस्यायें धर्म का आश्रय लेने से नहीं सुलझ सकतीं तो हमें अवश्य धर्म का त्याग करना पड़ेगा। तब हमें साहसपूर्वक यह कहना पड़ेगा कि भावी भारत का निर्माण करने के लिए धर्म मलीन वस्तु है। किन्तु बिना ऐसे किसी संशोधन के ही हमारे शिक्षित लोगों ने धर्म से सहसा मुँह मोड़ लिया है। पाश्चात्य राजनीति और राष्ट्रीयता के पंजे में पड़कर उन्होंने अपना ध्यान ही धर्म की ओर से हटा लिया है। वे इस बात को बिलकुल भूल गये हैं कि प्रत्येक जाति के उत्थान के मार्ग भिन्न भिन्न हैं। यह बात निर्विवाद है कि राष्ट्रीयता जीवन में सबसे पहली बात है, किन्तु भारतवर्ष इस उद्देश से रहित नहीं है। सबसे दुःख का विषय यह है कि हमारा सभ्य तथा शिक्षित जन-समुदाय अपनी प्राचीन सभ्यता और राष्ट्रीयता रख कर भी सहसा समस्त राष्ट्र को पाश्चात्य राजनीति के कुए में ढकेलने को उतारू है।

यह बात सर्व-सम्मत है कि आधुनिक सभ्यता की नींव पर जिन राष्ट्रों का निर्माण हो चुका है या हो रहा है उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। यद्यपि बाह्य रूप से उनकी चमक-दमक हमारे चित्त को कुछ काल के लिए आकर्षित कर लेती है तथापि जब हम उनके समीप जाते हैं तब उनकी अन्तरङ्ग स्थिति हमें भली भाँति ज्ञात हो जाती है। यदि उस प्रकार के राष्ट्र-सङ्गठन में कुछ सत्ता होती तो आज संसार में अशान्ति और वैमनस्य के चिह्न दृष्टिगोचर न होते। पाश्चात्य सभ्यता के प्रधान और गौण गुण संसार के सम्मुख उपस्थित हैं। हमारे आधुनिक आदर्श-जनों ने भी हमें इस भूल से बचाने के लिए बार बार सावधान किया है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने प्रभावशाली भाषण में एक बार कहा था—"समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य संसार (विज्ञान की उन्नति से) एक ज्वालामुखी पर्वत पर अवस्थित है। वह न मालूम कब भड़क उठे। यदि पाश्चात्य देश अपनी दशा को यथासमय परिवर्तित नहीं करेंगे तो सम्पूर्ण पाश्चात्य सभ्यता का नामोनिशान भी संसार से उठ जायगा। इँग्लेंड को सबसे अधिक सतर्क रहना चाहिए।"

उपर्युक्त भविष्य-वाणी का अनुभव हम गत महासमर में कर चुके हैं। उसकी चिनगारियाँ अभी तक नहीं बुझी हैं। इसी बात को लोकमान्य तिलक और योगी अरविन्द ने भी अपने अपने व्याख्यानों और लेखों में अनेक बार कहा है। महात्मा गांधी उसी सन्देश का प्रचार संसार भर में कर रहे हैं। वास्तव में भौतिक विज्ञान केवल सांसारिक सम्पत्ति की वृद्धि करता है और आध्यात्मिक विज्ञान ऐहिक और पारलौकिक जीवनों को सफल बनाता है। आत्मज्ञान-रहित विज्ञान की भूल-भुलैयाँ में मनुष्य का व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवन नष्ट-भ्रष्ट होजाता है। खेद है कि यह जानते हुए भी आधुनिक भारत पाश्चात्य सभ्यता का आद्योपान्त अनुकरण कर अपना राष्ट्र निर्माण करना चाहता है। इसी बात को हम फिर से दुहरा कर कहेंगे कि दूसरे राष्ट्रों की तरह भारत का भी सम्बन्ध विज्ञान से बना रहे। अतएव भारतीय राष्ट्रीयता का विज्ञान से ऐसा रूपान्तर नहीं होसकता कि एक दूसरे का सम्बन्ध पूर्णतया नष्ट होजाय। हमारा अभिप्राय यह है कि कोरे विज्ञान और पाश्चात्य राजनीति के आधार पर राष्ट्र निर्माण करना कठिन ही नहीं बरन असम्भव है। जब एक सिद्धान्त का प्रचार किसी देश में सहस्रों वर्षों तक होता रहता है तब उसका संस्कार उस जाति के प्रत्येक अंश में इतना व्याप्त होजाता है कि वह उस देश के सार्वजनिक जीवन का मूलाधार होजाता है। उस जाति की रीति-नीति और व्यवहार-विचार यहाँ तक कि खाना-पीना आदि नित्यक तक उसी आदर्श के रँग से रँगे जाते हैं। सारांश यह कि वह सिद्धान्त ही उस जाति का जीवन-मूल होजाता है। भारत की पुष्टि और वृद्धि चिरकाल तक धर्म से ही होती रही है। यहाँ तक कि अन्यान्य जातियों के अनेक आक्रमण और सम्पर्क धर्म को भारत से अलग नहीं कर सके। ऐसी अवस्था में राष्ट्र-निर्माण के लिए हम लोग भी राजनीति को धर्म से पृथक् नहीं कर सकते। आधुनिक पाश्चात्य राष्ट्रीयता का नूतन संस्कार करने और उसको अपने अनुकूल बनाने के लिए असंख्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। यदि यह सम्भव भी हो जाय तो इस ऋषि-भूमि का नैसर्गिक अभीष्ट भी नष्ट हो जायगा। समस्त राष्ट्र अपने अस्तित्व को रसातल भेज कर नक़ालों का एक नया राष्ट्र बन जायगा। तब वह अपने जीवन की भी रक्षा न कर सकेगा। संसार में धर्म और ज्ञान की जागृति करने की बात तो अलग है।

हर्षदेव ओली

इँग्लेंड में भारतवर्ष।

ब्रिटिश असोसिएशन का एक अधिवेशन हाल में ही हुआ था। उसमे भाषण देते हुए उसके सभापति मिस्टर पीकी ने कहा है कि इस समय भारत में शासक और शासित में मनोमालिन्य है। अधिकांश मनोमालिन्य का कारण एक दूसरे की सम्मतियों और विचारों के आदर का अभाव है। इस नासमझी को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि एक दूसरे की सभ्यता का सहानुभूति-पूर्वक ज्ञान-प्राप्त किया जाय। परन्तु विद्वान् सभापति ने जो उपाय निर्देश किया है वह तभी कार्य में परिणत हो सकता है जब दोनों ओर से अर्थात् अँगरेज़ी प्रेस तथा भारतीय प्रेस—की ओर से सच्चे और सतत प्रयत्नों का श्रीगणेश हो।

इँग्लेंड और भारत के बीच सद्भाव, स्पष्ट रूप से मेल-जोल और पारस्परिक सहिष्णुता के सबसे बड़े बाधकों में से अँगरेज़ी-पत्रों का साधारण भाव भी एक है। इस भाव के कारण उनमें सङ्कीर्णता, घृणा, अन्याय और कभी कभी नृशंसता तक प्रायः दिखाई देती रही है। ये बातें विशेष कर उस समय परिलक्षित होती हैं जब भारतीयों या उनकी किसी जाति-विशेष के विचारों या भावों की चर्चा की जाती है।

अँगरेज़ी-पत्रों की यदि उद्देश-सिद्धि होती हो तो वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय विषयों पर लेख लिखवाने से कभी नहीं हिचकेंगे। परन्तु जो लोग जनता के विचारों को परिष्कृत करने तथा उसे अनेक बातों से अवगत कराने के अधिकारी समझे जाते हैं उनकी अज्ञता, अशिष्टता और मूर्खता इन लेखों से अपने आप प्रकट हो जाती है। इन्हें पढ़ कर यही समझ पड़ेगा कि जो लोग भारत पर लेख लिखते हैं वे भारत की छोटी सी छोटी बात से सर्वथा कोरे रहते हैं। जो साधारण बातें और अङ्क वे सस्ती जंत्रियों से जान सकते हैं उनका भी समावेश उनके लेखों में नहीं किया जाता। भारत पर लेख लिखने के लिए वे इन्सैक्लोपीडिया तथा न मालूम और क्या क्या पढ़ कर नक़ल कर देंगे, पर जो भूतपूर्व लेफ़्टिनेंट गवर्नर या उच्च अधिकारी अधिक समय तक भारत में रह चुका हो उसके लेख का अवलोकन करना वे अपने लिए गर्हित समझते हैं। हम लोग भारतीयों की अँगरेज़ी पर तो बे-तरह हँसते हैं, पर हमारी अज्ञता-सूचक बातों की भी इसी प्रकार हँसी उड़ती है। हमारे उपन्यासों में 'भयङ्कर अफ़ग़ान शेरशाह' या लन्दन के दैनिक-पत्रों में 'मापला मरहठों के सम्बन्धी हैं' और 'अकाली सिक्खों की एक जाति का नाम है' लिखा देख कर भारतीय भी हमारे ज्ञान पर तरस करते हैं।

विलायत का प्रान्तिक प्रेस लन्दनी पत्रों की अपेक्षा भारतीय बातों से अधिक अवगत रहता है। इसके सिवा वह अधिक उदार और अधिक न्यायी भी है। उसमें अर्थ-लोलुपता, गँवारपन, घमण्ड और नृशंसता भी कम है। जहाँ तक सर्व-साधारण के सदाचार से सम्बन्ध रहता है, किसी को प्रान्तिक-पत्रों में उसके विपरीत वैसी बातें न मिलेंगी जैसी लन्दनी पत्रों में बहुतायत से देखी जाती हैं। समाचार-पत्र भी एक प्रकार का व्यवसाय हो गया है। बेईमानी या ईमानदारी भले ही करनी पड़े, उससे लाभ होना ही चाहिए।

जब प्रिंस आव् वेल्स भारत आये थे तब लन्दनी पत्रों का गँवारपन और चापलूसी सीमा को पार कर गई थी। अपनी मूर्खता के कारण वे सुरुचि और शालीनता की सीमा अतिक्रमण कर गये थे। उनके स्तम्भों में छपा था कि युवराज के प्रति अपनी राज-भक्ति दिखलाने के लिए कुलीन हिन्दू-स्त्रियाँ सर्वसाधारण में नाची थीं। यही नहीं, किन्तु अपने कथन की पुष्टि के लिए उन्होंने उन जलसों के फ़ोटो तक छाप देने का साहस किया था। जो अँगरेज़ भारत से परिचित हैं उन्होंने इन झूठी बातों और चित्रों से अपने प्रजा-बन्धुओं का घोर अपमान समझा। परन्तु जो लाखों इँग्लैंड-निवासी पाठक भारत से अवगत नहीं हैं वे अपने मन में क्या सोचते होंगे? जब यहाँ के साधारण लोग यहाँ तक कि मज़दूर तक अपनी स्त्रियों और लड़कियों को पूर्व के किसी बड़े राजा को प्रसन्न करने के लिए सर्वसाधारण में कभी नहीं नाचने देंगे तब यहाँ की कुलीन ललनाओं के नाचने की बात सोचना उनके लिए सर्वथा असम्भव है। परन्तु यही बात उनके आगे छपी रक्खी है। उन्हें लन्दनी प्रेस से ज्ञात होता है कि उच्च जाति की भारतीय स्त्रियाँ ख़ुशामद और चापलूसी से इतना अधिक गिर गई हैं कि वे अपनी वह विनय-शीलता और आत्म-सम्मान तक भूल गईं जिसके लिए वे उस समय भी प्रसिद्ध थीं जब इँग्लैंड में जङ्गली लोग निवास करते थे। वे अपने पर्दे से निकल कर उसी प्रकार चटक-मटक के साथ नाचने लगीं जैसे तैंजियर और सईद बन्दर के बाज़ारों में स्त्रियों को नाचते हुए देखा जाता है। इस प्रकार की मिथ्या बात छाप कर लन्दनी पत्रों ने आर्य जातियों में सबसे बड़ी और प्राचीन जाति के वर्तमान उत्तराधिकारियों के सामाजिक जीवन पर यह जघन्य कलङ्क लगा दिया है। इस बात को केवल हीन श्रेणी के पत्रों ने ही नहीं, किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली पत्रों तक ने छापा है। लन्दनी पत्रों का प्रचार भारत में भी है, अतएव इनमें छपी हुई इस प्रकार की बातों से अँगरेज़ों और भारतीयों के बीच न तो मित्रता की वृद्धि हो सकती है और न एक दूसरे के प्रति आदर का भाव ही जाग्रत हो सकता है।

विलायती-प्रेस भारतीय मामलों पर अधिक ध्यान नहीं देता। इसके मुख्य कारणों में से एक कारण यह है कि जो समाचार भारत से आते हैं वे सरकारी होते हैं और पत्र पढ़ने के प्रेमियों को यह भेद मालूम है कि जो बात सरकारी होती है वह सरकारी ढँग से रक्खी जाने के कारण मनोरञ्जक नहीं रह जाती और कभी कभी तो वह प्रायः बिलकुल अविश्वसनीय हो जाती है। गत वर्ष के अक्टूबर महीने के प्रथम सप्ताह में लन्दन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध प्रसिद्ध दैनिक-पत्रों में जो भारतीय समाचार छपे थे उनका सारांश आगे दिया जाता है—

निकट पूर्व की परिस्थिति के प्रति सम्पूर्ण भारत में अत्यधिक दिलचस्पी है, तो भी राजनैतिक स्थिति अधिक सन्तोषप्रद है। हाँ, पंजाब में अभी कुछ राजनैतिक उत्तेजना है। परन्तु स्थिति अब अधिक सुधरी हुई है। पंजाब की अवस्था के सम्बन्ध में भयभीत होना न्याय-सङ्गत नहीं है, तो भी कुछ ऐसी बातें हैं, जिनसे अधिकारी कुछ कुछ चिन्तित हैं। पंजाब में मुसलमानों की संख्या अधिक है। अतएव यदि तुर्कों से लड़ाई छिड़ गई तो एक मुसलमानी प्रान्त होने से उसकी सहानुभूति तुर्कों के प्रति होवेगी ही। परन्तु यह सहानुभूति कार्य में परिणत नहीं होने की।

जैसे समाचार हमें भारत से मिलते हैं उसी का यह एक उदाहरण है। जो अँगरेज़ भारत के सम्बन्ध में कुछ जानने को इच्छुक रहता है वह ऐसे समाचार से क्या जान सकता है? इसमें तो भारत का कोई समाचार ही नहीं है। पिछले तीस वर्ष के ह्विटकर के किसी अलमनक से कोई भी यह बात जान सकता है कि पंजाब में मुसलमानों की संख्या अधिक है। मुसलमान मुसलमान के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है, इसमें भी कुछ आश्चर्य नहीं है। परन्तु आश्चर्य इस बात में अवश्य है कि ऐसी मूर्खता-पूर्ण बातें इतना कष्ट और व्यय करके इतनी दूर क्यों भेजी गईं। 'भारत में कुछ ऐसी बातें मौजूद हैं जिनके लिए अधिकारी चिन्तित हैं', यह समाचार इँग्लेंड के लिए समाचार कैसे हो सकता है। परन्तु जब हम ऐसे चिन्तित लोगों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने को तैयार रहते हैं तब हम यह बात याद रखने से बाज़ नहीं रह सकते कि उन्हें अपना साधारण कर्तव्य पालन करने के लिए चिन्तित रहने को ख़ासी तनख़्वाह मिलती है। तो भी वर्तमान परिस्थिति में ऐसी निस्सार और धोखा देनेवाली ख़बरें भेजने के लिए हमें भारत के समाचार भेजनेवाले अधिकारियों की निन्दा नहीं करनी चाहिए। वे नहीं जानते कि कौन ख़बर किसके कान में पड़ेगी। परन्तु वे यह बात अवश्य जानते हैं कि उन ख़बरों के ऐसे लोगों के कानों में पड़ने की बहुत अधिक सम्भावना है जो भारत के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते हैं और बारूद के ढेर में आग की चिनगारी डाल देने को सदा तैयार रहते हैं।

अब ग़ैर-सरकारी ख़बरों के सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है। यदि किसी महत्त्वपूर्ण घटना का सत्य विवरण लन्दन के किसी पत्र को छपने के लिए भेजा जाय तो या तो वह लेख लौटा दिया जायगा या उसे रद्दी की टोकरी में स्थान मिलेगा। सन् १९१९ की मई के अन्त में एक अँगरेज़ अधिकारी ने लाहौर से अमृतसर के हत्याकाण्ड और बलवे का सच्चा विवरण लिखा था। वह अच्छी तरह जानता था कि यदि मैं इस लेख को डाक द्वारा भेजूँगा तो वह बम्बई में खोल कर पढ़ा जायगा और तब मेरी नौकरी छूट जायगी। अतएव उसने उस लेख को एक आहत अँगरेज़ अधिकारी के हाथ भेज दिया। वह अधिकारी इँग्लेंड आ रहा था। लन्दन आने पर उसने उस लेख को वहाँ के सबसे बड़े दैनिक-पत्र के सम्पादक को छापने के लिए दिया और उसकी एक दूसरी कापी कुछ फेर-फार करके एक प्रसिद्ध साप्ताहिक-पत्र के सम्पादक को दी। परन्तु इन दोनों सम्पादकों में किसी की हिम्मत उसे छापने की न पड़ी। वे उस लेख को साफ़ हज़म कर गये। परन्तु इसके तीन महीना बाद यहाँ के पत्र इस घटना का सरकारी विवरण छोटे छोटे अंशों में छापने लगे। जो लोग इस घटना का सच्चा विवरण महीनों पहले छाप सकते थे उन्हीं ने बाद को रँगे हुए सरकारी विवरण को छापा और उसी के आधार पर अपने सम्पादकीय लेखों में अपनी क़लम की कारीगरी भी दिखाई।

सभ्य देशों के सभी प्रेस इस बात में अपना गौरव समझते हैं कि किसी संवाददाता का नाम उसकी अनुमति के बिना न छापा जाय। परन्तु लन्दन के कुछ पत्र इस ओर वैसा ध्यान नहीं देते। एक उदाहरण लीजिए। युद्ध के बाद मेसोपोटेमिया तथा दूसरे पूर्वी युद्ध-क्षेत्र से जो अधिकारी तथा सैनिक इँग्लेंड लौट आये उनमें से कुछ लोगों को अपनी जीविका के लिए नौकरी की आवश्यकता थी। अतएव उन लोगों ने एक सभा को अपने आवेदन-पत्र भेजे। इस सभा की स्थापना ऐसे आवेदन-पत्रों की देख-भाल तथा तत्सम्बन्धी व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देने के लिए ही हुई थी। जिन लोगों ने इस सभा को अपने आवेदन-पत्र भेजे थे उनमें से पाँच व्यक्तियों के साथ सभा के कर्मचारियों ने उजड्डता का व्यवहार किया था। वे पाँचों भूतपूर्व सैनिक अधिकारी थे। उन्होंने अपने हस्ताक्षर के एक लेख में अपनी सारी शिकायतें एक प्रसिद्ध साप्ताहिक-पत्र के सम्पादक के पास लिख भेजीं और यह भी प्रार्थना की कि हमारे पक्ष में आप अपनी ओर से भी कुछ लिख दें। इसके साथ ही हमारे नाम प्रकट न किये जायँ। परन्तु वह लेख सीधा उसी अधिकारी के हाथों में जा पहुँचा जिसके ऊपर उसमें दुर्व्यवहार का इलज़ाम लगाया गया था। दूसरे ही हफ़्ते वे पाँचों जन उसी सभा में बुलाये गये और उनसे स्पष्ट कह दिया गया कि सभा तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर सकती। इसके लिए कोई कारण भी नहीं बताये गये। इसके बाद उसी सप्ताह उसी पत्र में उस सभा के सम्बन्ध में एक प्रशंसात्मक लेख निकला और उसमें उस अधिकारी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गई जिसके विरुद्ध शिकायतें की गई थीं। परन्तु समाचार-पत्रवालों का कहना है कि भारत की ख़बरें छापने से कुछ लाभ नहीं है। जो इँग्लेंडवासी भारत की ख़बरें जानने को इच्छुक रहते हैं उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। इसके सिवा भारत की ख़बरें भी तो अपने असली रूप में प्राप्त नहीं हो सकतीं। उन पर सरकारी मुहर लग जाती है, अतएव वे नीरस हो जाती हैं।

भारत का अधिकारिवर्ग ऐसी ख़बरें भेजना नीति की दृष्टि से लाभदायक समझता है जो न तो मनोरञ्जक होती हैं, न उतनी महत्त्वपूर्ण होती हैं जिससे उनकी ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकृष्ट हो। जब अँगरेज़-जनता का ध्यान किसी बात की ओर आकृष्ट हो जाता है तब वह उसकी छान-बीन करने लग जाती है और यह बात शिमला तथा दिल्ली की नौकरशाही को पसन्द नहीं है। क्योंकि जब अँगरेज़-जनता किसी बात के जानने को तुल जाती है तब किसी सरकारी ढङ्ग से उस बात को टाल देना सहज काम नहीं है। 'यह सर्वसाधारण के लाभ की बात नहीं है', जैसे बहाने बता कर उससे अपना पिण्ड छुड़ा लेना मुश्किल हो जाता है। यह रहस्य भारत की नौकरशाही को मालूम है। अतएव भारत-सम्बन्धी घटनाओं से अँगरेज़-जनता को जान-बूझ कर अपरिचित रखना उनकी वर्षों से एक निश्चित नीति रही है। पर जब वे यह समझते हैं कि अमुक बात को प्रकट किये बिना काम नहीं चलेगा तब वे उसका विवरण ऐसे ढङ्ग से प्रकाशित करते हैं कि उसका सारा महत्त्व नष्ट हो जाता है। ऐसी दशा में कहना पड़ता है कि जब तक यह दशा बनी रहेगी तब तक इँग्लेंड और भारत एक दूसरे से दूर ही होते जायँगे।

भारत की पश्चिमोत्तर-सीमा पर जब जब कठिनाइयाँ उपस्थित हुई हैं तब तब उनका सम्बन्ध किसी राजनैतिक या फ़ौजी अधिकारी की हत्या से रहा है। परन्तु यह एक ऐसी बात है जो यों ही नहीं उड़ा दी जा सकती। इसका कुछ न कुछ विवरण लन्दन को भेजना ही पड़ता है। अतएव जो पहला विवरण भेजा जाता है उसमें यह जोड़ दिया जाता है कि इस मामले का कोई राजनैतिक महत्त्व नहीं है। यद्यपि अधिकारी-वर्ग भले प्रकार जानता रहता है कि भारत तथा अँगरेज़ी साम्राज्य के लिए वह मामला अत्यन्त उच्च कोटि के राजनैतिक महत्त्व का है, तो भी वे कुछ का कुछ बताते हैं और इस प्रकार अँगरेज़-जनता की आँखों में धूल झोंकते हैं। अपने उद्देश में वे किसी हद तक सफल भी होते हैं। परन्तु जब सहसा मोपला-विद्रोह या अमृतसर-हत्याकाण्ड जैसी कोई घटना सङ्घटित हो जाती है तब वे अन्त में उसका विवरण देने को बाध्य होते हैं। परन्तु इतने पर भी वे उस विवरण का महत्त्व न्यून कर डालने से विरत नहीं होते। वे अपने सरकारी कैंड़े का उपयोग कर और असुविधाजनक सत्य बातों को दबा कर अपराधी पक्ष का दोष-मार्जन करते हैं और अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बातों पर धूल डाल देते हैं। अपनी कठोर नीति के समर्थन के लिए वे कहने लगते हैं कि भारत का अमुक भाग बहुत दिनों से विद्रोही हो रहा था। इस बात को समाचार-पत्र में पढ़ कर लन्दन का अँगरेज़ अपनी आँखें मल कर कह उठता है कि भारत के किसी विद्रोह की बात पहले-पहल यही पढ़ी है। यही बात इसके पहले मुझे क्यों नहीं बताई गई। परन्तु ऐसा इसलिए हुआ कि भारत के सम्बन्ध में सत्य बात बताना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वजनिक हित की बात नहीं थी। क्योंकि तब अनेक प्रश्न पूछे जाने लगते और लोगों का अनुराग भारतीय बातों के प्रति बढ़ जाता, जिसका रोकना भारतीय नौकरशाही का एक उद्देश है। परन्तु यदि विलायतवाले भारतीय बातें जानना ही चाहते हों तो उन्हें सार्वजनिक पुस्तकालयों में किसी एंग्लो-इंडियन-पत्र के साप्ताहिक संस्करण पढ़ने चाहिए। उसमें उन्हें उन लोगों के नाम-धाम पूरे पूरे लिखे मिल जायँगे जो महीना भर पहले किसी बड़े अधिकारी की दावत में शिमला में शरीक हुए थे।

जब से भारत में नये शासन-सुधारों का उपक्रम हुआ है तब से लन्दन के कुछ पत्र इस बात का दावा करते हैं कि हमारे ख़ास या विशेष संवाददाता भारत-सरकार के सदर मुक़ामों में नियुक्त हैं। परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। वे एंग्लो-इंडियन-पत्रों के सम्पादकीय विभाग के लोगों को निश्चित मासिक वेतन पर अपना संवाददाता बना लेते हैं। जब कभी ये इधर-उधर की टूटी-फूटी ख़बरें भेज देते हैं तब वही 'ख़ास या विशेष संवाददाता-द्वारा प्राप्त' लिख कर छापी जाती हैं। परन्तु ये संवाददाता अपना कर्तव्य-पालन करने में स्वतन्त्र नहीं हैं। उन्हें पहले अपने पत्र की नीति का पालन करना पड़ता है, जिससे उनकी जीविका चलती है। अतएव वे सत्य संवाद देने को सर्वथा असमर्थ हैं। एक बार पायनियर के एक सर्व-श्रेष्ठ सम्पादक का नाम गवर्नमेंट-हाउस-लिस्ट से स्वयं वायसराय ने अपने हाथों से काट दिया था, क्योंकि उसने एक सत्य बात कह दी थी। इसी प्रकार जब सिविल एंड मिलिटरी गज़ेट के भूतपूर्व सम्पादक मिस्टर काल्डवेल लिप्सेट ने चित्राल-आक्रमण के सम्बन्ध में सच बातें अपने पत्र में छाप दी थीं तब उन पर इस बात का ज़ोर उनके मालिकों-द्वारा डलवाया गया कि वे या तो स्वयं उन बातों का अपने पत्र में खण्डन कर दें या नौकरी से हट जायँ। परन्तु उस स्वाभिमानी सम्पादक ने नौकरी से अलग हो जाना ही अच्छा समझा। इस घटना से उसके उत्तराधिकारियों को भी एक प्रकार से अपने कर्तव्य की सूचना मिल गई।

परन्तु सभी अँगरेज़ी-प्रेस ऐसे नहीं है। इंग्लैंड में ऐसी पत्र-पत्रिकायें छपती हैं जिनमें भारतीय मामलों पर सहानुभूति तथा उदारतापूर्वक टीका-टिप्पणी की जाती है। परन्तु दुर्भाग्य से ऐसे पत्रों की संख्या अधिक नहीं है। और यह भी निश्चित है कि इनके स्वामी कभी लखपती या लार्ड नहीं हो सकेंगे। इनके सम्पादकों को भी आत्म-सुख छोड़कर और कोई पुरस्कार नहीं प्राप्त हो सकेगा। भारत और इंग्लैंड के बीच सद्भाव स्थापित करने का जो पुरुषार्थ-पूर्ण प्रयत्न ये लोग कर रहे हैं इसी की वाहवाही इनके लिए बस समझनी होगी।

ब्रिटिश असोसिएशन के सभापति का कथन है कि एक दूसरे के ज्ञान का सहानुभूति-पूर्वक अध्ययन होना चाहिए। परन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि अभी तक अच्छी भूमि में बीज ही नहीं पड़ा है। यहाँ तो किसी दूसरे ज्ञान का अध्ययन पसन्द कर लिया जायगा, यहाँ तक कि उन ज्ञानों का भी जो मृत हो गये हैं और जिनसे मानव-जाति को कोई लाभ भी नहीं पहुँचा है। पर भारतीय ज्ञान सर्वथा उपेक्षणीय है। सभापति महोदय जिस अध्ययन की ओर सङ्केत कर रहे हैं उसकी ओर अँगरेज़ नागरिकों को प्रेरित करने का प्रयत्न ही नहीं हुआ है। जाड़े के दिनों में हमारे ज्ञान-वर्द्धन के लिए यूनिवर्सिटी एक्सटेंसन लेक्चर्स नाम के जो बहुसंख्यक व्याख्यान दिये जाते हैं उनमें एक भी व्याख्यान भारतीय इतिहास, राजनीति, समाज-शास्त्र या अर्थशास्त्र पर नहीं होता। यदि भारत मङ्गलग्रह का नवाविष्कृत कोई प्रदेश होता तो हमारे विद्या-दिग्गज निस्सन्देह इस ओर प्रवृत्त होते*।

रमाशङ्कर उपाध्याय

शब्दार्थ-तत्त्व।

(१)

मनुष्य-जाति की उन्नति पारस्परिक सहयोग का फल है। परन्तु भाषा के बिना यह सहयोग सम्भव नहीं है, क्योंकि भाषा ही परस्पर मनोभाव व्यक्त करने का साधन है। यह साधन सरल या जटिल हो सकता है। भाषा को जिस प्रकार का काम करना पड़ता है उसी के अनुसार

* सङ्कलित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार यह सीधी या जटिल होती है । बालकों तथा बर्बरों का अभाव थोड़ा होता है । अतएव उनकी चिन्ता सरल होती है, भाषा भी सरल होती है । उनको अधिक शब्दों का प्रयोजन नहीं होता और जिन जिन शब्दों का व्यवहार वे करते हैं उनसे अमिश्रभाव प्रकाशित होते हैं ।

असभ्य-समाज में अवच्छिन्न (abstract) भाव बहुत कम रहते हैं, परन्तु बालक की भाषा के सदृश सहज भाषा से सभ्य-समाज का पूर्णवयस्क मनुष्य अपना काम नहीं चला सकता । अपने दैनिक काम के लिए उसको बहुत तरह के आदमियों से मिलना पड़ता है और उनके पास अपना मनोभाव प्रकाशित करना पड़ता है । अतएव उसकी भाषा अवश्य जटिल होनी चाहिए । क्योंकि अपने प्रयोजन के अनुसार उसे अपनी भाषा गठित कर लेनी पड़ती है । इससे देखा जाता है कि भाषा एक एक अवस्था का दर्पण है । किसी मनुष्य की भाषा से जाना जा सकता है कि वह किस समाज से सम्बन्ध रखता है ।

जब मनोभाव का प्रकाश करना ही भाषा का काम है तब यह निश्चित है कि जैसे जैसे चिन्ता-शक्ति बढ़ती है वैसे वैसे भाषा का भी उत्कर्ष होता है । भाषा से हम बहुत कुछ कराना चाहते हैं । हम चाहते हैं कि वह मनुष्य के छोटे-बड़े, ऊँचे-नीचे, भले-बुरे प्रत्येक व्यापार, प्रत्येक ज्ञान, प्रत्येक विश्वास, कल्पना, अभिलाषा तथा आवेग को प्रकाशित करे; क्योंकि शब्दों अथवा क्रियाओं के द्वारा जब तक मनुष्य अपनी मानसिक सृष्टियों को प्रकाशित नहीं कर सकता तब तक उसको शान्ति नहीं होती । अतएव हम चाहते हैं कि भाषा मनुष्य के सब प्रकार के मानसिक विकास को प्रकाशित करे । प्रत्येक भाषा के इतिहास से ज्ञात होता है कि मनुष्य भाषा से जो कुछ चाहता है वह पूरा होता है । समाज की उन्नति के अनुसार जैसे जैसे साहित्य, विज्ञान, कला, शिल्प, व्यापार बढ़ते जाते हैं, वैसे वैसे उनके निर्वाह के निमित्त नये नये शब्द बनते जाते हैं । अतएव किसी देश की भाषा से उसकी जातीय उन्नति तथा सामाजिक अवस्था का परिचय मिलता है ।

भाषा परिवर्तनशील है । उच्चारण का परिवर्तन सदैव होता है । बहुत शब्दों का उच्चारण भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न है । एक युग में किसी शब्द का जैसा उच्चारण होता है परवर्त्ती युग में वह प्रायः बदल जाता है । इसी हेतु संस्कृत से मागधी, सौरसेनी, महाराष्ट्री, प्राकृत भाषायें उत्पन्न हुईं, विभिन्न प्राकृतों से विभिन्न अपभ्रंश भाषायें बनीं और इनसे हिन्दी, बँगला इत्यादि भाषायें उत्पन्न हुईं । किसी भाषा की उपभाषायें अर्थात् बोलियाँ भी इसी प्रकार बनती हैं । शब्दों तथा अर्थों का भी परिवर्तन होता है । बहुत शब्द धीरे धीरे लुप्त हो जाते हैं और उनके स्थान में नये शब्दों का व्यवहार होता है । बहुत नये शब्द भाषा में प्रवेश करते हैं । या तो वे बनाये जाते हैं या दूसरी भाषाओं से लिये जाते हैं । भाषा में जो शब्द बहुत दिनों से चले आते हैं उनके अर्थ का परिवर्तन होता है अथवा परिवर्तन की ओर झुकाव रहता है । कभी अर्थ व्यापक हो जाता है, कभी संङ्कीर्ण हो जाता है, कभी एक अर्थ से दूसरा अर्थ हो जाता है । ऐसा भी देखा जाता है कि एक वर्ग की दो भाषाओं में एक ही शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ हैं । घाम शब्द संस्कृत-घर्म्म शब्द से निकला है । हिन्दी में इसका अर्थ है धूप, परन्तु बँगला में पसीना । थाँमना शब्द संस्कृत के स्तम्भ शब्द से निकला है । हिन्दी में इसका अर्थ है पकड़ना, परन्तु बँगला में रुकना । ढीठ शब्द संस्कृत के धृष्ट शब्द से निकला है । हिन्दी में इसका अर्थ है निर्लज्ज, परन्तु बङ्गला में सीधा । हिन्दी डाव संस्कृत में दर्भ, और बँगला में कच्चा नारियल है ।

ध्वनि-परिवर्तन के सूत्र निकल सकते हैं, परन्तु अर्थ-परिवर्तन के कुछ नियम नहीं निकल सकते । ध्वनि-परिवर्तन में शारीरिक क्रिया अधिक है, मानसिक क्रिया बहुत कम है । परन्तु अर्थ के परिवर्तन में शारीरिक क्रिया कुछ नहीं है, यह सम्पूर्ण मानसिक क्रिया से उत्पन्न होता है । इन मानसिक क्रियाओं के कुछ नियम नहीं बन सकते । हम यह नहीं कह सकते कि एक शब्द का अर्थ क्यों व्यापक हो जाता है तथा दूसरे शब्द का अर्थ क्यों सङ्कीर्ण हो जाता है । शब्दों की परीक्षा से इतना ही जाना गया है कि कुछ शब्दों का अर्थ व्यापक होता है और कुछ का अर्थ सङ्कीर्ण हो जाता है । यह भी जानते हैं कि किस प्रकार के साहचर्य्य (association)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अर्थ की व्यापकता उत्पन्न हुई है, और किस प्रकार के साहचर्य्य से सङ्कीर्णता।

यह कहा गया है कि आदिम अवस्था में, जब सभ्यता का विस्तार नहीं हुआ था, मनुष्य केवल उन्हीं वस्तुओं को जानते थे जो चक्षु, कर्ण इत्यादि इन्द्रियों से जानी जा सकती थीं। अतएव उनका शब्द-भाण्डार छोटा था। उनकी भाषा खूब साधारण वस्तुओं तथा क्रियाओं के नामों से बनी थी। हम, तुम, वह, यह, एक, दो, तीन, चार, पाँच, हाथ, पैर, मुँह, आँख, नाक, कान, सिर, वृक्ष, गौ, कुत्ता, जल, सूरज, चाँद, आकाश, उठना, बैठना, खड़ा होना, खाना, सोना, चलना, दौड़ना इत्यादि शब्द उसमें पाये जाते थे। पहले पहल जो शब्द बने थे वे क्रिया-वाचक या वस्तुवाचक थे। अभाव बढ़ते गये। अभावों को पूर्ण करने के लिए चेष्टा होने लगी। चेष्टा से धीरे धीरे सामाजिक उन्नति होने लगी। सामाजिक उन्नति के साथ साथ मानसिक उन्नति होने लगी। चिन्ता-शक्ति की वृद्धि होती गई। सादृश्य तथा वैषम्य का अनुभव होने लगा। वस्तुओं के वर्ग बनाने की शक्ति classification उत्पन्न हुई। सामान्य ज्ञान (generalisation) उत्पन्न होने के साथ साथ जाति-ज्ञान (species) उत्पन्न हुआ। गौ, कुत्ता इत्यादि का साधारण नाम पशु रक्खा गया। पदार्थों के गुणों का अनुभव होने लगा। सूर्य्य उज्ज्वल है, घास हरी है इत्यादि गुणों की उपलब्धि होने लगी। चिन्ता की उन्नति के साथ साथ गुणी से गुण पृथक् होकर अवच्छिन्नतावाचक (abstract) शब्द बनने लगे।

भाषा मनुष्य-चिन्ता के प्रकाश के निमित्त सजीव साधन है। जब तक मनुष्य चिन्ता करते तथा बोलते रहेंगे तब तक भाषा अपने को उसकी चिन्ता के प्रकाश करने का उपयोगी बना लेगी। या तो शब्दों में नये अर्थों का प्रवेश होगा या वाक्यों में शब्दों का नये ढङ्ग से विन्यास होगा। स्मरण रखना चाहिए कि बहुधा वस्तुओं का पूरा ज्ञान होने के पहले ही लोग उनके नाम सीखते हैं। अतएव उनमें शब्दों के मौलिक अर्थों को बढ़ा या घटा देने की सम्भावना रहती है। यह भी जानना चाहिए कि एक शब्द को एक आदमी एक अवस्था में सीखता है, दूसरा आदमी उसको दूसरी अवस्था में सीखता है, इसलिए उनकी अनुभूतियों में भिन्नता आ जाती है। एक धार्मिक व्यक्ति का लड़का 'भला' शब्द से जो अर्थ समझेगा, एक चोर का लड़का उसका विपरीत समझेगा। विशेष विशेष अवस्था में साहचर्य्य की विभिन्नता होती है। किसी विशेष पर्व के दिन जिसका बेटा मर गया था दूसरे वर्ष उस पर्व के दिन उसको मृत पुत्र याद आवेगा और उस हर्ष के दिन वह शोक से भर जायगा। लोग अपनी अपनी अनुभूति के अनुसार शब्दों के अर्थ समझते हैं।

केवल शब्दों की आलोचना से हम भाषा के यथार्थ तथ्य को नहीं पहुँच सकते, परन्तु शब्दों के भीतर क्या मानसिक व्यापार है हमें उसका भी ज्ञान आवश्यक है। असल बात तो यह है कि केवल एक ही शब्द से एक भाव (idea) का प्रकाश नहीं होता। कहीं अलग एक शब्द का व्यवहार होता भी होगा तो वह आवेग-सूचक (interjectional) है या उसके साथ के दूसरे शब्द अप्रकाशित हैं। भाषा में शब्द स्वतन्त्र नहीं रहते। किसी भाव के प्रकाश के निमित्त एक सम्पूर्ण वाक्य आवश्यक है। वाक्य ही चिन्ता का स्वल्पतम उपादान या सबसे छोटा अंश (unit) है। शब्द को सबसे छोटा उपादान नहीं समझना चाहिए। लिखित वाक्यों को हम शब्दों में विभक्त पाते हैं, इसलिए हम समझते हैं कि शब्द ही भाषा का सबसे छोटा अंश है। अतएव अर्थों के परिवर्तनों को समझने के लिए वाक्य में शब्दों के सम्बन्ध का अनुसन्धान भी होना चाहिए। जहाँ एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं वहाँ वाक्य से ही मालूम होता है कि कौन अर्थ ग्रहण करना चाहिए। जैसे, चिड़ियों के पक्ष रहते हैं, कुरुक्षेत्र के युद्ध में कौरव और पाण्डव दो पक्ष थे, वह हमारे पक्ष में राय देगा, भाद्र महीने के कृष्ण पक्ष की अष्टमी की रात को श्रीकृष्ण ने जन्म ग्रहण किया था। इन वाक्यों से ही मालूम होता है कि एक एक स्थान पर 'पक्ष' शब्द का अर्थ क्या है।

जब कोई शब्द पृथक् व्यवहृत होता है तब हस्त इत्यादि के सङ्केतों के द्वारा वाक्य के अन्य शब्द सूचित होते हैं। प्रत्येक शब्द किसी विचार (judgment) का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक है। विचार वाक्य के द्वारा प्रकाशित होता है। अतएव प्रत्येक शब्द एक वाक्य का प्रकाशक है और असल में एक संक्षिप्त वाक्य है। परन्तु कुछ ऐसे शब्द हैं जिनसे अर्थ की यथार्थ उपस्थिति नहीं होती। अव्यय शब्द इस श्रेणी के हैं। परन्तु अव्यय शब्द भी किसी न किसी समय विचार के प्रकाशक थे। अब वे ऐसे बदल गये हैं कि उनके पहले के रूप नहीं जाने जाते।

जब सङ्केत घटते गये तब उनके बदले शब्द व्यवहृत होने लगे। अतएव देखा जाता है कि एक एक वाक्य कई एक विचारों की समष्टि है। पहले एक एक शब्द एक एक ध्वनि था। इन एक ध्वनिज शब्दों के संयोग से वाक्य बनते थे। एक वाक्य में जितने शब्दों का संयोग होता था वे परस्पर मिल कर एक द्विध्वन्यात्मक वा बहुध्वन्यात्मक शब्द बन जाता था।

कुछ काल के बाद ध्वनियों के संयोग से उत्पन्न ये वाक्य यौगिक शब्द हो गये। फिर यौगिक शब्दों से वाक्य बनते गये। परिवर्तन भाषा का स्वभाव है। यौगिक शब्द ऐसे परिवर्तित हो गये कि अब उनके मूलों का निश्चय नहीं होता। कुछ भाषाओं में अन्त की ध्वनियों से विभक्तियाँ बनीं और कुछ आदि के शब्दों से उपसर्ग बने।

जानना चाहिए कि एक एक शब्द का किसी विशेष ध्वनि पर अधिक बल पड़ता है। वाक्य के उच्चारण करने में भी किसी किसी शब्द पर बलप्रयोग होता है। बल क्यों दिया जाता है? भाषा का असल काम है मनोभाव का प्रकाश करना। बलप्रयोग से मनोभाव स्पष्टता से प्रकाशित होता है। भाषा दो प्रकार की है—संश्लेषक तथा विश्लेषक। संस्कृत, ग्रीक, लाटिन इत्यादि भाषायें संश्लेषक हैं। इनके शब्द विभक्त्यन्त (inflectional) होते हैं। वाक्य में विभक्तियों के द्वारा शब्दों का सम्बन्ध सूचित होता है, जैसे देवदत्तः दरिद्राय धनं ददाति अर्थात् देवदत्त दरिद्र को धन देता है। यहाँ प्रत्येक शब्द पर विभक्ति लगी है। परन्तु इस वाक्य के हिन्दी अनुवाद में केवल 'देता' शब्द पर विभक्ति लगी है, बाक़ी शब्दों पर विभक्तियाँ नहीं लगीं। 'दरिद्राय' के स्थान में 'दरिद्र को' हुआ है अर्थात् चतुर्थी विभक्ति के लिए एक अलग 'को' शब्द का व्यवहार हुआ है। जिन भाषाओं में विभक्तियों के स्थान में पृथक् शब्दों का व्यवहार होता है उनको विश्लेषक भाषायें कहते हैं। अँगरेज़ी, हिन्दी, बँगला इत्यादि विश्लेषक भाषायें हैं। अँगरेज़ी में विशेष्य इत्यादि के विभक्ति-सूचक सहायक शब्द उनके पहले आते हैं, इसलिए सहायक शब्दों को पूर्वस्थ अव्यय (prepositions) कहते हैं। हिन्दी इत्यादि में ये सहायक शब्द पीछे आते हैं, इसलिए इनको परस्थ अव्यय (post-positions) कहते हैं। संश्लेषक भाषाओं के वाक्यों में शब्दों का परस्पर सम्बन्ध विभक्तियों से ज्ञात होता है, अतएव उनमें शब्दों का कोई निर्दिष्ट क्रम नहीं है। वे वाक्य में जहाँ तहाँ बैठ सकते हैं, और अर्थ के समझने में कुछ मुश्किल नहीं मालूम होती। अतएव संश्लेषक भाषा के वाक्यों के अर्थ को ठीक ठीक समझने के लिए किसी शब्द पर बलप्रयोग का प्रयोजन नहीं होता। परन्तु विश्लेषक भाषाओं में विभक्तियाँ नहीं रहने के कारण वाक्यों में शब्दों का क्रम आवश्यक है और विशेष विशेष शब्द पर बलप्रयोग भी आवश्यक है।

हम वाक्य के किसी शब्द पर बलप्रयोग क्यों करते हैं? प्रत्येक शब्द की कुछ शक्ति है। उस शक्ति के अनुसार उसका अर्थ समझा जाता है। तब बलप्रयोग का क्या प्रयोजन है? बलप्रयोग से हम शब्द की जो शक्ति है उससे कुछ अधिक सूचित करना चाहते हैं। वाक्य में शब्दों के क्रम को बदल कर भी किसी विशेष शब्द पर बल दिया जा सकता है। राम का पिता किसी बन्धु से कह रहा है कि राम मूर्ख रह गया; उसके बन्धु कहते हैं, "राम तो रोज़ विद्यालय को जाता है", इस पर राम का पिता कहता है, "राम जाता तो है रोज़ विद्यालय को, पर वहाँ अपने पाठ पर ध्यान नहीं देता"। यहाँ "राम तो रोज़ विद्यालय को जाता है" और "राम जाता तो है रोज़ विद्यालय को" इन दोनों वाक्यों के अर्थों में प्रभेद है। शेषोक्त वाक्य में 'जाता' पर बल पड़ा है और यह बल शब्दों के क्रम से ज्ञात होता है। शब्द को कुछ विशेषत्व देने के लिए बलप्रयोग होता है। इस प्रकार से शब्द के अर्थ में कुछ विशेषत्व आ जाता है। वाक्य में शब्दों का निर्दिष्ट क्रम रहने से वाक्य का अर्थ स्पष्टता से व्यक्त होता है। एक विभक्ति से सब प्रकार के अर्थ स्पष्ट प्रकाशित नहीं होते। एक सप्तमी विभक्ति के स्थान में हिन्दी में दो तीन भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न सहायक परस्थ अव्यय (post-positions) व्यवहृत होते हैं, जैसे 'में', 'पर'। इन परस्थों के द्वारा भिन्न भिन्न अर्थ सूचित होते हैं और भाषा की प्रकाशिका शक्ति बढ़ती है। बहुत सी भाषाओं में विभक्तियाँ रहने पर भी सहायक शब्दों का व्यवहार होने लगता है, और सहायक शब्दों के प्रवेश के कारण विभक्तियाँ क्रमशः लुप्त होने लगती हैं, और वे भाषायें विश्लेषक बन जाती हैं।

यह दिखाया गया है कि जब शब्द वाक्य में रहते हैं तभी उनका अर्थबोध होता है। वाक्य में शब्दों का परस्पर सम्बन्ध प्रकाशित होता है। अन्य शब्दों के सम्बन्ध से मालूम होता है कि कहनेवाले ने किसी शब्द को किस उद्देश से व्यवहार किया है। उस शब्द का जो साधारण अर्थ है कहनेवाले का ठीक वही उद्देश नहीं भी हो सकता है। इस प्रकार शब्दों के साधारण अर्थ का परिवर्तन सम्भव है। एक एक शब्द एक एक विचार का प्रकाशक है। एक विचार कई एक उपादानों से निर्मित होता है। अतएव हर एक शब्द बहुत से उपादानों की समष्टि है। विशेष विशेष अवस्था में एक एक उपादान दूसरे शब्दों के सम्बन्ध में आने के योग्य होता है। "इस गाँव के सब घर खपरेल के हैं", "यह सौ घर की बस्ती है" "इस मकान में आठ घर हैं," "वह घर में नहीं है", "वह घर गया है", "वह घर-द्वार छोड़ कर भाग गया है", "धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का", "राम बड़े घर का लड़का है", इन वाक्यों में पदों के अन्वय से मालूम होता है कि 'घर' शब्द का क्या अर्थ है। 'घर' शब्द के अर्थ के जितने उपादान हैं किसी एक अवस्था में उनमें एक ही सामने उपस्थित होता है, और दूसरे अनुपस्थित रहते हैं। प्रत्येक शब्द के भाव के साथ बहुत से सहचर भाव रहते हैं। विशेष विशेष स्थान पर विशेष विशेष सहचर भाव का उदय होता है। चिन्ता-शक्ति की वृद्धि के साथ साथ नई चिन्ताओं के प्रकाश के निमित्त नये शब्दों का प्रयोजन होता है। सहचर भावों से पुराने शब्दों से नये शब्द बनते हैं और चिन्ताओं के प्रकाश के निमित्त इन शब्दों का व्यवहार होता है।

यद्यपि चिन्ता तथा भाषा साथ साथ चलती हैं, तथापि भाषा पीछे रहती है। जिस अनुपात से चिन्ता बढ़ती है उस अनुपात से भाषा की प्रकाशिका शक्ति नहीं बढ़ती। मनुष्य-समाज बराबर एक ही अवस्था में नहीं रहती। यदि मनुष्य में सन्तोष रहता तो अभाव का अनुभव नहीं होता और समाज एक ही अवस्था में रह जाती। परन्तु मनुष्य को सदा ही अभाव का अनुभव होता है। अभाव के अनुभव से उसके दूर करने की चेष्टा होती है। इस चेष्टा से सामाजिक उन्नति होती है और सभ्यता की वृद्धि होती है। शिल्प और कला की उन्नति होती है। इन सब व्यापारों में चिन्ता का विकास होता है। चिन्ता के प्रकाश के निमित्त भाषा का प्रयोजन है। बहुत मिश्र तथा अवच्छिन्न भाव उत्पन्न होते हैं। इन भावों के प्रकाश के निमित्त यथेष्ट शब्द नहीं मिलते। इस अवस्था में एक ही शब्द भिन्न भिन्न साहचर्य्य से नाना प्रकार का अर्थ प्रकाश करता है। साधारण वस्तुओं के सिवा अन्य वस्तुओं के प्रकाश के निमित्त प्रत्येक आदमी भिन्न भिन्न नाम का व्यवहार करने लगता है। अवच्छिन्न भावों के प्रकाश करने में और भी अधिक कठिनता होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी समझ के अनुसार अवच्छिन्नता-वाचक शब्दों का व्यवहार करता है। शब्द भाषा के सिक्के हैं। सोलह आना दाम के सिक्के का, कोई बारह आना, कोई चार आना, कोई बीस आना दाम लगाता है। सुननेवाला शायद उसका आठ आना या अठारह आना दाम लगाता है। कोई एक शब्द के पूरे भाव के अंशमात्र को पूरा अर्थ समझता है, कोई सम्पूर्ण अर्थ से भी उसका अर्थ अधिक समझता है। कोई उस शब्द के जितने उपादान हैं उनमें से एक ही ग्रहण करता है, कोई उस पर बाहर का कोई उपादान जोड़ देता है। इस प्रकार धीरे धीरे एक शब्द के नये अर्थों का एक औसत बन जाता है, जो साधारण में मान लिया जाता है। परन्तु जैसे किसी वाक्य की दो ध्वनियों के बीच में असंख्य मध्यवर्ती अस्पष्ट ध्वनियाँ रहती हैं, जिनका ठीक प्रकाश नहीं होता, वैसे ही मूल अर्थ तथा नये (औसत) अर्थ के बीच में असंख्य भाव रहते हैं, जो ठीक से प्रकाशित नहीं हो सकते। इन मध्यवर्त्ती भावों में से कभी कभी एक आध भाव प्रबल हो जाता है और भाषा में चलने लगता है।

किसी आदमी के मन में एक शब्द के अर्थों की स्पष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूति नहीं होती, क्योंकि उस शब्द को सुनते ही प्रत्येक के मन में भिन्न भिन्न साहचर्य्य (associations) उत्पन्न होते हैं। हर एक के मन के तत्काल के साहचर्य्य के अनुसार उसका अर्थबोध होता है। अतएव एक शब्द के अर्थ में अस्पष्टता रह जाती है। यह ठीक नहीं कहा जा सकता है कि सर्वसाधारण में पीछे उसका क्या अर्थ लगाया जायगा। अतएव कुछ शब्दों का अर्थ स्पष्टता से प्रकाशित नहीं होता। परन्तु जिनका अर्थ सबको स्पष्टता से ज्ञात है उनके अर्थ का भी व्यापक, सङ्कीर्ण वा अपसृत (shifted) होने की तरफ़ झुकाव रहता है। भाषा की सदैव चेष्टा रहती है कि चिन्ताओं को सूक्ष्मता से प्रकाशित करे। अतएव शब्दों के अर्थ में कुछ विशेषत्व का योग करके भाव की सूक्ष्मता का प्रकाश होता है। इससे देखा जाता है कि अर्थ की सङ्कीर्णता ही अधिक होती है। व्यापकता के उदाहरण कम मिलते हैं।

ऐसे बहुत भाव हैं जो सूक्ष्मता से प्रकाशित नहीं हो सकते। सफ़ेद, काला, नीला, पीला, लाल इत्यादि नामों से कई एक साधारण रङ्ग समझे जाते हैं। परन्तु लाल रङ्ग के साथ यदि बहुत थोड़ा, नीला या पीला रङ्ग मिला दिया जाय, तो इन मिश्रणों से जो नये रङ्ग बनेंगे उनके प्रकाश के निमित्त कोई नाम नहीं मिलते। रङ्गों के विभिन्न परिमाण के मिश्रण से सैकड़ों रङ्ग बन सकते हैं, परन्तु इतने नामों का बनना असम्भव है। ये प्रधान प्रधान रङ्गों के नाम से चलते हैं। अतएव देखा जाता है कि बहुत भावों के ठीक ठीक प्रकाशित होने की भाषा नहीं मिलती, और अनेक शब्द सम्पूर्ण अर्थ के प्रकाशक नहीं हैं।

एक मूल-ध्वनि के स्थान में अन्य ध्वनियों के बार बार प्रयोग से ध्वनियों का परिवर्तन होता है। इस व्यापार में मूल-ध्वनि लुप्त हो जाती है और उस लोप के साथ साथ नई ध्वनि प्रतिष्ठित होती है। परन्तु अर्थ-परिवर्तन के व्यापार में पुराना अर्थ नहीं लुप्त होता। आरम्भ में पहले का अर्थ जारी रहता है और उस अर्थ के साथ साथ उस शब्द के अर्थ का विस्तार वा सङ्कोच होने लगता है। एक एक शब्द का एक एक साधारण अर्थ रहता है, अर्थात् सब कोई उसी अर्थ में उसका व्यवहार करते हैं। परन्तु कभी कभी देखा जाता है कि कोई एक व्यक्ति उस अर्थ में उसका व्यवहार नहीं करता, किसी विशेष अर्थ में उसका प्रयोग करता है। उसकी समझ में उस शब्द का यही अर्थ है और वह ख़याल करता है कि उसने जिस अर्थ में शब्द का प्रयोग किया है उसी अर्थ में लोग उसको समझ जायँगे। अतएव शब्दों के दो प्रकार के प्रयोग हैं—(१) प्रसिद्ध प्रयोग और (२) नैमित्तिक प्रयोग।

जिन मनुष्यों में बात-चीत होती है यदि उनकी मानसिक अवस्थायें सदृश हों तो एक दूसरे के भाव को आसानी से समझ सकते हैं। प्रसिद्ध अर्थ के समझने के लिए मानसिक सादृश्य का उतना प्रयोजन नहीं है जितना नैमित्तिक अर्थ समझने में। जब एक आदमी किसी शब्द को किसी विशेष अर्थ में व्यवहृत करके चाहता है कि दूसरे उसको समझ जायँ तब मानसिक साम्य का प्रयोजन है। सुननेवाले की समझ, उसकी मानसिक अवस्था, पारिपार्श्विक अवस्था तथा सहायक शब्दों के अनुसार स्पष्ट या अस्पष्ट होती है।

जिस शब्द का व्यापक अर्थ है उसको निर्दिष्ट अर्थ में व्यवहृत करने के लिए किसी निर्देश-वाचक शब्द का व्यवहार होता है। जब ऐसा कोई जानवर दृष्टिगोचर होता है जो पहले नहीं देखा गया तब उसे कोई नाम देने के लिए जानवर शब्द व्यवहृत होता है, परन्तु उसको ठीक ठीक समझाने के लिए किसी निर्देश-वाचक शब्द का व्यवहार होता है। "ज़ेब्रा एक जानवर है, जो घोड़े के सदृश है, परन्तु उसकी देह पर लम्बी लम्बी काली रेखायें होती हैं"।

निर्देश-वाचक सर्वनाम इत्यादि के संयोग से कभी कभी अवच्छिन्नता-वाचक (abstract) संज्ञायें पदार्थ-वाचक बन जाती हैं। जैसे क्लेश, वह क्लेश या राम का क्लेश। जातिवाचक शब्द (class names) सामान्य प्रत्ययों के प्रकाशक हैं। जैसे गो, वृक्ष इत्यादि शब्दों से गो-जाति, वृक्ष-जाति इत्यादि समझी जाती है। किसी निर्दिष्ट गो वा वृक्ष के समझने के लिए कोई निर्देश-वाचक विशेषण आवश्यक है, चाहे वह प्रकाशित रहे चाहे अप्रकाशित। जिस पदार्थ का उल्लेख हो रहा है यदि वह सामने वा निकट हो तो सुननेवाला समझ जाता है कि किस पदार्थ का उल्लेख हो रहा है। जैसे "चलो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फुलवाड़ी में जायँ", यहाँ अपनी या निकटस्थ फुलवाड़ी समझी जाती है। आँख के सङ्केत या दूसरे प्रकार की अङ्ग-भङ्गी के द्वारा भी निर्देश हो सकता है। कभी वाक्यान्तर्गत शब्दों से पदार्थ निर्दिष्ट हो जाता है, जैसे राम आँख का काना है। यहाँ राम की आँख समझनी चाहिए।

यदि किसी शब्द के कई एक अर्थ हों तो उसके सुनते ही मन में पहले ख़ूब साधारण या मूल-अर्थ का उदय होता है। यदि कई एक अर्थ प्रसिद्ध हों तो मूल-अर्थ सबसे पहले सामने आता है। जैसे दल शब्द के अर्थ हैं (१) समूह, झुंड (२) सम्प्रदाय (३) पत्र (४) फूल का अंश। पहले झुंड का अर्थ सामने आता है। परन्तु एक ही शब्द से भिन्न भिन्न पेशावालों के मन में एक ही साथ अपने पेशा के अनुसार अर्थ का उदय होता है। जैसे चक्का शब्द से लोहार, बढ़ई, कुम्हार स्वतन्त्र प्रकार के पदार्थों को समझेंगे। "पेड़ की जड़" 'दोष का जड़', 'बबूल का काँटा', 'दाँड़ी का काँटा'; इनमें 'जड़' तथा 'काँटा' शब्द भिन्न अर्थों में व्यवहृत हुए हैं। इन उदाहरणों में 'जड़' तथा 'काँटा' प्रसिद्ध अर्थ के सिवा कुछ अधिक अर्थ सूचित करते हैं।

नलिनीमोहन सान्याल

घर और बाहर।

निखिलेश की आत्म-कथा।

मेरे ऊपर अख़बार में नोट और चिट्ठियाँ छपनी शुरू होगई हैं—सुना है, एक कविता और चित्र भी प्रकाशित होगा। उद्योग हो रहा है। रसिकता का फुहारा खुल गया है, उसी के साथ निरन्तर झूठी बातों के धारा-वर्षण से सारा बङ्गाल पुलकित हो रहा है। वे जानते हैं, इस पङ्किल रस की होरी में पिचकारी उन्हीं के हाथ में है—मैं भला आदमी रास्ते के एक किनारे से चला जा रहा हूँ, अपने सफ़ेद कपड़ों को बचाये रखने का कोई उपाय नहीं है।

लिखा है, मेरे इलाक़े में बड़ी जातियों से लेकर छोटी जातियों तक सभी स्वदेशी के लिए एक-दम उत्सुक हो रहे हैं, केवल मेरे ही भय से वे कुछ कर नहीं पाते। जो दो-एक साहसी पुरुष देशी चीज़ों का चलन चलाना चाहते हैं उन्हें मैं अपनी ज़मींदारी के ज़ोर से अच्छी तरह सता रहा हूँ। भीतर ही भीतर पुलिस से मैं मिला हुआ हूँ, गुप्तरूप से मजिस्ट्रेट के साथ मेरी लिखा-पढ़ी हो रही है और विश्वस्त सूत्र से अख़बारवाले को ख़बर मिली है कि पुश्तैनी ख़िताब के ऊपर स्वयं उपार्जित उपाधि जोड़ने के लिए मेरी चेष्टा व्यर्थ न होगी। लिखा है, स्वनामा पुरुषो धन्यः, किन्तु देश के लोगों ने बे-नाम की फ़रमाइश दी है—इसकी ख़बर भी हम रखते हैं! मेरा नाम स्पष्ट करके नहीं लिखा, किन्तु बाहर की अस्पष्टता के भीतर से वह ख़ूब अच्छी तरह झलक रहा है।

इधर मातृ-भूमि के अनन्य भक्त हरिश कुण्डू के गुण-गान की चिट्ठी पर चिट्ठी अख़बार में निकल रही है। पत्र-लेखक ने लिखा है, माता के ऐसे सेवक अगर देश में अधिक होते तो अब तक मंचेस्टर के कारख़ानों की चिमनियाँ तक वन्दे मातरम् के सुर में सुर मिला कर शङ्ख बजाने लगतीं।

उधर मेरे नाम लाल रोशनाई से लिखी एक चिट्ठी आई है। उसमें यह सूचना है कि लिवरपूल के नमक-हलाल ज़मींदार की कचहरी कहाँ कहाँ कौन कौन जला दी गई है। चिट्ठी में कहा गया है कि भगवान् पावक अब इस पावन कार्य में लग गये हैं। जो माता के सन्तान नहीं हैं वे जिसमें माता की गोद में चैन के साथ न रह सकें इसका प्रबन्ध हो रहा है।

नीचे दस्तख़त है "माता की गोद का अधम सन्तान श्रीअम्बिकाचरण गुप्त"।

मैं जानता हूँ, यह सब मेरे इस गाँव के छात्रों की लीला है। मैंने उनमें से दो-एक को बुला कर वह चिट्ठी दिखाई। बी० ए० के छात्र ने गम्भीर भाव से कहा—हमने भी सुना है, देश में कुछ लोग पागल से हो उठे हैं, वे स्वदेशी की बाधा दूर करने के लिए ऐसा कोई काम नहीं जिसे न कर सकें।

मैंने कहा—उनकी अनुचित ज़बर्दस्ती से देश का एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी भी अगर हार माने तो उससे सारे देश की हार होगी।

इतिहास में एम० ए० के एक छात्र ने कहा—यह हमारी समझ में नहीं आया।

मैंने कहा—हमारा देश देवता से लेकर चपरासी तक डर कर अधमरा हो रहा है। आज तुम मुक्ति का नाम लेकर उसी जूजू के डर को फिर और एक नाम से अगर देश में प्रचलित करना चाहो, अत्याचार के द्वारा कायरपने के ऊपर यदि अपने देश की जय-पताका गाड़ना चाहो, तो देश को जो लोग प्यार करते हैं वे उस भय के शासन के आगे रत्ती भर भी न झुकेंगे।

इतिहास में एम० ए० ने कहा—ऐसा कौन देश है जहां राज्यशासन-भय का शासन नहीं है?

मैंने कहा—इस भय के शासन की सीमा कहां तक है, इसी के द्वारा देश के मनुष्य कुछ कुछ स्वाधीन जाने जाते हैं। भय का शासन यदि चोरी-डकैती और दूसरे के प्रति अन्याय के ऊपर ही खींच कर डाला जाय तो समझा जाता है कि हर एक मनुष्य को अन्य मनुष्य के आक्रमण से स्वाधीन करने के लिए ही यह शासन है। किन्तु मनुष्य ख़ुद कौन कपड़ा पहने, किस दूकान से ख़रीदे, क्या खाय, किसके साथ बैठ कर खाय, यह भी यदि भय के शासन से नियमित हो तो उससे यह समझना चाहिए कि मनुष्य की इच्छा को बिलकुल ही अस्वीकार किया जाता है। यही है मनुष्य को मनुष्यत्व से वञ्चित करना।

इतिहास में एम० ए० ने कहा—अन्य देश के समाज में भी क्या मनुष्य की इच्छा को जड़ से काटने की कहीं कोई व्यवस्था नहीं है?

मैंने कहा—कौन कहता है कि नहीं है? मनुष्य को लेकर जहां जितना दास-व्यवसाय है वहां उतना ही मनुष्य ने अपने को नष्ट किया है।

एम० ए० ने कहा—तो यह दास-व्यवसाय मनुष्य का ही धर्म है—यही मनुष्यत्व है।

बी० ए० ने कहा—उस दिन सन्दीप बाबू ने इस सम्बन्ध में जो दृष्टान्त दिया था वह हमें ख़ूब पसन्द आया है! यही जो उस पार ज़मींदार हरिशकुण्डू हैं या सानूकीभांगा के ज़मींदार चक्रवर्ती बाबू हैं, उनके सारे इलाक़े में आज छटांक भर भी विलायती नमक नहीं मिल सकता। क्यों? क्योंकि वे बराबर अपनी शक्ति के ऊपर चल रहे हैं—जो लोग स्वभाव से ही दास हैं उनके लिए सबसे बढ़ कर विपत्ति प्रभु का न रहना ही है।

एफ़० ए० में पढ़नेवाला छोकरा बोला—चक्रवर्ती बाबू की प्रजा एक कायस्थ था। वह अपने एक बाज़ार में चक्रवर्ती बाबू की आज्ञा का पालन करने को किसी तरह राज़ी न होता था। अदालत लड़ते लड़ते अन्त को उसकी ऐसी दशा होगई कि खाने का ठिकाना नहीं रहा। जब दो दिन तक उसके घर में चूल्हा नहीं जला तब वह अपनी स्त्री के चाँदी के गहने बेचने के लिए निकला। ये गहने ही उसकी रही-सही पूँजी थे। ज़मींदार के डर से किसी ने उसके गहने मोल लेने का भी साहस नहीं किया। ज़मींदार के नायब ने कहा—मैं पांच रुपये के ख़रीदूँगा। उन गहनों के दाम तीस रुपये के लगभग होंगे। प्राण-रक्षा के लिए जब वह पांच ही रुपये पर बेचने को राज़ी हुआ तब उसके गहने लेकर नायब ने कहा—ये पाँच रुपये तुम पर जो मालगुज़ारी बाक़ी है उसमें जमा कर लिये गये। यह सुन कर हमने सन्दीप बाबू से कहा था कि हम चक्रवर्त्ती बाबू का बायकाट कर देंगे। सन्दीप बाबू ने कहा—ऐसे ज़िन्दादिल लोगों का ही अगर बहिष्कार कर दोगे तो क्या मसान के मुर्दों को साथ लेकर देश का काम करोगे? ये लोग प्राण-पण से इच्छा करना जानते हैं; यही तो प्रभु हैं। जो लोग सोलहों आने इच्छा करना नहीं जानते वे या तो इन लोगों की इच्छा के अनुसार चलेंगे, और नहीं तो इन लोगों की इच्छा से मरेंगे। सन्दीप बाबू ने आपके साथ तुलना करके कहा—आज चक्रवर्त्ती बाबू के इलाक़े में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो स्वदेशी के विरुद्ध चूँ भी कर सके। किन्तु निखिलेश हज़ार इच्छा करने पर भी स्वदेशी को चला न सकेंगे।

मैंने कहा—मैं स्वदेशी से भी बड़ी चीज़ चलाना चाहता हूँ, इसी कारण स्वदेशी को चलाना मेरे लिए कठिन है। मैं मुर्दा खूँटी नहीं चाहता, मैं ज़िन्दा पेड़ चाहता हूँ। मेरे काम में देर होगी।

इतिहास में एम० ए० ने हँस कर कहा—आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुर्दा खूँटी भी न पावेंगे, और ज़िन्दा पेड़ भी न पावेंगे। क्योंकि सन्दीप बाबू की यह बात मैं मानता हूँ कि पाने के माने ही हैं छीन लेना। यह बात सीखने में हमें समय लगा है, क्योंकि यह स्कूल की शिक्षा से उलटी शिक्षा है। मैंने अपनी आँखों से देखा है कि कुण्डू बाबू का गुमाश्ता गुरुचरण भादुड़ी मालगुज़ारी के रुपये वसूल करने निकला था। एक मुसलमान प्रजा के ऐसी कोई सम्पत्ति न थी जिसे बेच कर रुपये वसूल किये जाते। उसके केवल एक जवान स्त्री थी। भादुड़ी ने उससे कहा—तू अपनी औरत का निकाह दूसरे किसी के साथ करके उससे रुपये लेकर मालगुज़ारी अदा कर। निकाह करने का उम्मेदवार भी मिल गया, रुपये भी अदा हो गये। सच तो यह है कि उस स्त्री के पहले स्वामी का रोना देख कर मुझे उस दिन रात को नींद नहीं आई; किन्तु चाहे जितना कष्ट हो, मैंने उससे यह शिक्षा प्राप्त की है कि जब रुपये वसूल ही करने होंगे तब जो मनुष्य ऋणी की स्त्री को बेच कर रुपये वसूल कर सकता है वह मनुष्य के हिसाब से मेरी अपेक्षा बड़ा है। मुझसे वैसा नहीं हो सकता, मेरे आँसू उमड़ पड़ते हैं, इसी से सब मामला बिगड़ जाता है। हमारे देश की अगर कोई रक्षा करेगा तो यही सब गुमाश्ते, यही कुण्डू और चक्रवर्त्ती!

सुन कर मैं सन्नाटे में आ गया। मैंने कहा—अगर यही बात है तो इन गुमास्ते, इन कुण्डू और चक्रवर्त्ती आदि के हाथ से देश की रक्षा करने का काम ही मेरा है। देखो, दासत्व का जो विष मज्जागत है वही जब सुयोग पाकर बाहर फूट निकलता है तब साङ्घातिक उपद्रव का रूप धारण करता है। बहू होकर जो मार खाती है वही सास होकर अपनी बहू को सबसे अधिक मार मारती है। समाज में जो मनुष्य सिर झुकाये रहता है वही जब बराती होकर किसी के द्वार पर जाता है तब उसके उत्पात से इज़्ज़तदार गृहस्थ को इज़्ज़त बचाना कठिन हो जाता है। भय के शासन से तुम बिना किसी विचार के केवल सकलता में ही सकल को मानते आ रहे हो, उसी को तुमने धर्म कहना सीखा है; इसी कारण आज अत्याचार करके सबको अपनी बात मनाने को ही धर्म समझ रहे हो। दुर्बलता की इस दारुणता के साथ ही मेरी लड़ाई है!

मेरी ये सब बातें बहुत ही सहज बातें हैं। सरल पुरुष से कही जायँ तो वह इन्हें दम-भर में समझ लेगा। किन्तु हम लोगों के देश में जो एम० ए० ऐतिहासिक बुद्धि के पेंच कस रहे हैं उनके वे पेंच बुद्धि को परास्त करने के लिए ही हैं।

इधर पाँचू की जाली मामी के मामले की चिन्ता अलग है। उसे अप्रमाणित करना कठिन है। सत्य घटना के गवाहों की संख्या थोड़ी होती है, यहाँ तक कि गवाह का न रहना ही सम्भव है, किन्तु जो घटना घटी नहीं उसके लिए कोशिश करने से गवाहों की कमी नहीं रहती। मैंने जो मौरूसी हक़ पाँचू से मोल लिया है उसे नाजायज़ ठहराने के लिए यह फन्दा डाला गया है।

मैं और कोई उपाय न देख कर सोच रहा था कि पाँचू को अपने ही इलाक़े में बसा कर घर-द्वार बनवा दूँ। किन्तु मास्टर साहब ने कहा—अन्याय से सहज में हार न मान सकूँगा। मैं खुद चेष्टा करके देखूँगा।

मैं—आप चेष्टा करेंगे?

मास्टर—हाँ मैं।

मुक़द्दमेबाज़ी के मामले में मास्टर साहब क्या कर सकेंगे, सो कुछ मैं समझ न सका। शाम को जिस समय नित्य मुझसे उनकी भेंट होती है उस समय उस दिन भेंट नहीं हुई। ख़बर लेने से जान पड़ा, वह अपना कपड़ों का बक्स और बिछौना लेकर कहीं चले गये हैं। नौकरों से केवल इतना कह गये हैं कि उनको लौटने में दो चार दिन की देर होगी। मैंने सोचा—गवाह ठीक करने के लिए वह पाँचू के मामा के घर गये हैं। अगर यही बात है तो मैं जानता हूँ, उनकी चेष्टा वृथा होगी। जगद्धात्री की पूजा, मोहर्रम और रविवार मिला कर उनके स्कूल में कई दिन की छुट्टी थी। इससे स्कूल में भी उनका पता नहीं लगा।

हेमन्त-ऋतु में तीसरे पहर को दिन के प्रकाश का रङ्ग जैसा मैला होता है वैसे ही भीतर ही भीतर मन का रङ्ग भी बदला करता है। गोधूलि जब जगत् के ऊपर प्रेयसी के आँखों की काली पुतली की तरह अनिमेष हो उठती है तब मेरा मन और शरीर कहा करता है—सच नहीं है, यह बात कभी सच नहीं है कि केवल काम ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य का आदि अन्त है; मनुष्य बिलकुल मजूर ही नहीं है—चाहे वह सत्य की ही मजूरी क्यों न हो, धर्म की ही मजूरी क्यों न हो। उस तारा के प्रकाश से छुटकारा पाये हुए काम के बाहर के मनुष्य को—उस अन्धकार के अमृत में डूब मरने के मनुष्य को तूने क्या सदा के लिए हाथ से खो दिया, निखिलेश ? सारे संसार की असंख्यता भी जिस जगह मनुष्य का लेश-मात्र सङ्ग नहीं दे सकती उसी जगह जो मनुष्य अकेला है उसका अकेलापन कैसा भयानक है !

उस दिन तीसरे पहर की बेला ठीक सन्ध्या के मोहाने पर जब आ पहुँची थी उस समय मेरे हाथ में कोई काम नहीं था, काम करने को जी भी नहीं चाहता था। मास्टर साहब भी न थे। शून्य हृदय जब आकाश में कुछ अकाय खोज रहा था उस समय मैं घर के भीतर के बाग़ में गया। मुझे चन्द्रमल्लिका के फूलों का बड़ा शौक़ है। मैंने टबों में अनेक रङ्ग के चन्द्रमल्लिका के पेड़ सजा रक्खे थे। जब सब पेड़ों में असंख्य फूल फूल उठते थे तब जान पड़ता था, हरे सागर में लहरें उठने से रङ्ग का फेना उठा है। कुछ दिनों से मैं बाग़ में नहीं गया। आज मन ही मन कुछ हँस कर कहा—चलूँ, अपनी विरहिणी चन्द्रमल्लिका का विरह मिटा आऊँ।

बाग़ के भीतर जब गया उस समय कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के चन्द्रमा ने हमारी दीवार के ऊपर पहुँच कर भीतर की ओर मुँह बढ़ाया था। दीवार के नीचे गहरी छाँह थी—उसी के ऊपर से आड़ा होकर चन्द्रमा का प्रकाश बाग़ के पश्चिम ओर आकर पड़ रहा था। मुझे ठीक यह जान पड़ा मानो चन्द्रमा एकाएक पीछे से आकर अन्धकार की आँखें मूँद कर मुसकरा रहा है।

दीवार के जिस किनारे पर गैलरी की तरह तले ऊपर चन्द्रमल्लिका के टब रक्खे हुए थे उस ओर जाकर देखा, उस पुष्प-पूर्ण सोपानश्रेणी के तले घास के ऊपर कोई चुपचाप पड़ा हुआ है। कलेजा धक से हो गया। मेरे पास जाते ही वह भी चौंक कर जल्दी से उठ बैठा।

अब क्या किया जाय ? मैं सोचने लगा—यहाँ से लौट जाऊँ या नहीं, और विमला भी शायद सोचने लगी कि "यहाँ से उठ कर चली जाऊँ या नहीं।" किन्तु ठहरना जैसे कठिन है, चला जाना भी वैसे ही कठिन है। मेरे कुछ मन स्थिर करने के पहले ही विमला उठ कर खड़ी हुई और सिर ढक कर घर की ओर चली।

इतनी ही देर में विमला का असह्य दुःख मुझे जैसे मूर्त्तिमान् होकर दिखाई पड़ा। उसी घड़ी मेरे जीवन का अभियोग मुझे भूल गया ! मैंने उसे पुकारा—विमला !

वह ठिठक गई। मगर तब भी मेरी ओर फिरी नहीं। मैं उसके सामने जाकर खड़ा हुआ। उसकी ओर छाँह थी। मेरे मुँह पर चाँदनी पड़ी। वह आँखें बन्द किये खड़ी रही। मैंने कहा—विमला, मेरे इस पिँजड़े के चारों ओर की राहें बन्द हैं, तुमको किस लिए इसमें बन्द कर रक्खूँ ? इस तरह तो तुम्हारा जीना भारू हो जायगा !

विमला आँखें बन्द ही किये रही, मुख से भी कुछ नहीं कहा।

मैंने कहा—तुमको अगर इस तरह ज़बर्दस्ती बन्धन में रक्खूँगा तो मेरा सारा जीवन एक लोहे की ज़ंजीर बन जायगा। उससे क्या मुझे कुछ सुख होगा ?

विमला चुप ही रही।

मैंने कहा—मैं तुमसे सच कहता हूँ—मैं तुमको छुटकारा देता हूँ। मैं तुम्हारा अगर और कुछ नहीं हो सकता तो कम से कम तुम्हारे हाथों की हथकड़ी नहीं बनूँगा।

इतना कह कर मैं घर की ओर चला गया। नहीं, नहीं, यह मेरी उदारता नहीं है, और यह मेरी उदासीनता भी नहीं है। बात यह है कि अगर मैं न छोड़ूँगा तो मुझे भी छुट्टी न मिलेगी। जो मेरे हृदय का हार है उसे सदा के लिए अपने हृदय का बोझ बना कर नहीं रख सकता। अन्तर्यामी के निकट मैं हाथ जोड़ कर यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं सुख न पाऊँ, न पाया न सही; दुःख पाऊँ, वही स्वीकार है। किन्तु मुझे बन्धन में रख न छोड़ना। मिथ्या को सत्य कह कर पकड़ रखने की चेष्टा अपने हाथों अपना गला दबाना है। मुझे उस आत्म-हत्या से बचाओ !

बैठक में आकर देखा, मास्टर साहब बैठे हुए हैं। उस समय भीतर ही भीतर मेरे मन में एक आन्दोलन मचा हुआ था। मास्टर साहब को देख कर और कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछने के पहले ही मैं कह उठा—मास्टर साहब, मुक्ति ही मनुष्य के लिए सबसे बढ़ कर पदार्थ है। मुक्ति के बराबर और कुछ नहीं है, कुछ नहीं!

मास्टर साहब मेरी उत्तेजना देख कर विस्मित हो गये। कुछ न कह कर वह मेरी ओर ताकने लगे।

मैंने कहा—किताबें पढ़ने से कुछ भी समझ में नहीं आता। शास्त्र में पढ़ा था, इच्छा ही बन्धन है, वह अपने को और दूसरे को भी बन्धन में डालती है। किन्तु केवल इच्छा को बन्धन मानना पोच है। इच्छित पदार्थ ही बन्धन है। चिड़िया को जब मैंने पिँजड़े से उड़ा दिया उस दिन मुझे मालूम हुआ कि उसने ही मुझे मुक्ति दी। जिसे हम बाँधते हैं वह हमें इच्छा के बन्धन में डालता है। वह इच्छा का बन्धन ज़ंजीर से भी बढ़ कर है। पृथ्वी पर यह बात किसी की समझ में नहीं आती। सभी सोचते हैं कि संस्कार और किसी जगह करना चाहिए। और कहीं नहीं—कहीं नहीं—यहीं संस्कार होना चाहिए!

एकाएक याद आ गया, मास्टर साहब कई दिन से बाहर गये हुए थे। कुछ लज्जित होकर मैंने पूछा—आप कहाँ थे?

मास्टर साहब बोले—पाँचू के घर में।

मैं—पाँचू के घर में? चार दिन वहीं थे?

मास्टर—मैंने सोचा, जो औरत पाँचू की मामी बन कर आई है उसके साथ बात-चीत करके देखूँ। मुझे देखते ही पहले तो वह कुछ चौंकी; भले आदमी का लड़का होकर भी कोई इतना बड़ा अद्भुत हो सकता है, यह कभी वह सोच ही नहीं सकी थी। उसने देखा कि मैंने वहीं आसन जमा दिया। उसके बाद से उसे लज्जा लगने लगी। उससे मैंने कहा—मैया, मुझे तू अपमान करके भगा न सकेगी। और मैं अगर रहूँगा तो पाँचू को भी रक्खूँगा, उसके मातृहीन छोटे छोटे बच्चों को राह राह मारे मारे फिरते मुझसे देखा न जायगा। दो दिन तक उसने चुपचाप मेरी बातें सुनीं, न 'हाँ' कहा न 'ना' कहा। अन्त को आज देखा कि वह अपना पिटारा-पोटली बाँध रही है। बोली—मैं वृन्दावन जाऊँगी, मुझे राह-ख़र्च दो। वृन्दावन जायगी या नहीं, सो तो मालूम नहीं, किन्तु राह-ख़र्च के लिए उसे सौ-पचास रुपये देने पड़ेंगे। इसी से तुम्हारे पास आया हूँ।

मैं—अच्छा, मैं दूँगा।

मास्टर—बुढ़िया बुरे मिजाज़ की नहीं है। पाँचू उसे पानी का घड़ा छूने नहीं देता, रसोई के पास जाने पर 'हाँ हाँ' कर उठता है, इसी से उसके साथ खटपट हो जाती थी। किन्तु उसके हाथ की रसोई खाने में मुझे कुछ आपत्ति नहीं, यह सुन कर बुढ़िया ने मेरी ख़ातिरदारी की हद कर दी। बड़ी अच्छी रसोई बनाती है। पाँचू की जो कुछ श्रद्धा-भक्ति मुझ पर थी वह भी अब कम जाती रही। पहले उसकी धारणा थी कि कम से कम मैं आदमी सरल हूँ, किन्तु अब उसकी धारणा यह हो गई है कि मैंने जो बुढ़िया के हाथ की रोटी खाली, सो केवल उसे क़ाबू में करने के लिए फन्दा डालने ही के वास्ते। संसार में फन्दा डालना अवश्य चाहिए, किन्तु उसके लिए अपना धर्म ही खो देना! अगर मैं झूठी गवाही खड़ी करके बुढ़िया को सज़ा करा देता तो कुछ हर्ज न था! चाहे जो हो, बुढ़िया के बिदा हो जाने पर भी कुछ दिन तक मुझे पाँचू के घर की रक्षा करनी होगी। नहीं तो हरिश कुण्डू उस पर दारुण अत्याचार कर बैठेगा। उसने अपने मुसाहबों से कहा है—मैंने पाँचू की एक जाली मामी खड़ी कर दी, उस साले ने न-जाने कहाँ से एक जाली बाबा बुला लिया। देखता हूँ, उसका बाबा उसे किस तरह बचाता है!

मैंने कहा—वह बच भी सकता है, मर भी सकता है; किन्तु देश के लोगों के लिए हज़ारों तरह के जो फन्दे तैयार कर रहे हैं, धर्म, समाज और व्यवसाय में उनका मुक़ाबला करते करते अगर हार भी हो तो हम सुख से मर सकेंगे।

विमला की आत्म-कथा।

यह ख़याल भी नहीं किया जा सकता कि एक जन्म में इतना हो सकता है। मेरे जैसे सात जन्म हो गये। इन्हीं कई महीनों में जैसे हज़ार वर्ष बीत गये। समय की गति इतनी तेज़ थी कि उसका बीतना ही मुझे जान न पड़ा। उस दिन एकाएक धक्का खाने से जान पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाज़ार से विदेशी माल का बायकाट करने की बात जिस दिन स्वामी से कहने गई थी उस दिन जानती थी कि इस पर कुछ तर्क-वितर्क होगा। किन्तु मेरा यह एक विश्वास था कि तर्क के द्वारा तर्क को निरस्त करने की मेरे लिए आवश्यकता नहीं। मेरे चारों ओर के वायु-मण्डल में एक जादू है। सन्दीप ऐसा इतना बड़ा एक पुरुष समुद्र की लहर की तरह मेरे पैरों पर गिर पड़ा। मैंने तो उसे बुलाया नहीं, मेरी इस हवा ने ही उसे यहां लाकर डाला। और उस दिन देखा उस अमूल्य को—आहा वह अभी बालक है—कच्चे बाँस की वंशी की तरह सरल और सरस है—वह मेरे पास जब आया तब तड़के की नदी की तरह देखते ही देखते उसके जीवन की धारा के भीतर से एक रंग फूट उठा। देवी अपने भक्त के मुख की ओर देख कर किस तरह मुग्ध हो सकती हैं, सो उस दिन अमूल्य की ओर देख कर मेरी समझ में आ गया। मेरी शक्ति कैसे जादू का काम कर जाती है, सो मैंने इस तरह देखा है।

इसी से उस दिन अपने ऊपर दृढ़ विश्वास लेकर वज्र-वाहिनी बिजली की रेखा की तरह मैं अपने स्वामी के पास गई थी। किन्तु हुआ क्या? आज, आज नौ वर्ष हुए, मैंने स्वामी के नेत्रों में ऐसी उदास दृष्टि नहीं देखी। वह जैसे मरु-भूमि के आकाश की तरह है, उसमें ख़ुद भी ज़रा भी रस का लेश नहीं, और जिसकी ओर वह ताक रही है उसमें भी जैसे कहीं कुछ भी रङ्ग नहीं देख पड़ता। अगर मेरे स्वामी कुछ क्रोध भी करते तो भी कुछ सन्तोष होता! कहीं उन्हें छू भी नहीं सकी। जान पड़ा, मैं मिथ्या हूँ। जैसे मैं स्वप्न हूँ—स्वप्न जैसे ही आँखों की ओट हुआ, वैसे ही आँखों के आगे अन्धकार रात्रि होगई।

इतने दिनों से अपनी सुन्दरी जिठानियों से रूप के लिए मन ही मन ईर्ष्या रखती थी। सोचती थी, विधाता ने मुझे शक्ति नहीं दी—अपने स्वामी का प्यार ही मेरी एकमात्र शक्ति है। आज शक्ति की शराब प्याला भरकर पी है, नशा भरपूर हो आया है। इसी समय एकाएक शराब का प्याला टूट कर ज़मीन पर गिर पड़ा। अब किस तरह जियूँ!

जल्दी से जूड़ा बाँधने बैठी थी! लज्जा! लज्जा! लज्जा! उस दिन मँझली रानी के कमरे के सामने से जाते समय वह बोल उठीं—छोटी रानी, जूड़ा तो सिर नाँध कर कूदने चाहता है, सिर ठीक है न?

उस दिन बाग़ में स्वामी ने मुझसे अनायास कह डाला—मैं तुमको मुक्त करता हूँ—छुट्टी देता हूँ। छुट्टी क्या इतने सहज में दी या ली जाती है? इस छुट्टी के तो कुछ माने नहीं। मछली की तरह मैं सदा आदर के जल में तैरती रही हूँ—एकाएक आकाश में चढ़ा कर जब कहा, मैं तुमको छुट्टी देता हूँ, तब मैंने देखा कि यहां मैं चल भी नहीं सकती और बच भी नहीं सकती।

आज सोने के कमरे में जब घुसी तब वहां केवल असबाब देख पड़ा—केवल अरगनी, केवल आईना, केवल पलँग है—उसके ऊपर वह सर्वव्यापी हृदय नहीं है। केवल छुट्टी ही छुट्टी है। झरना एक-दम सूख गया, पत्थर और कङ्कड़ियाँ बाहर निकल पड़ी हैं। आदर नहीं है, असबाब है।

इस जगत् में सत्य मेरे लिए कहां कितना टिका हुआ है, इस सम्बन्ध में एकाएक जब मैं चौंधिया गई, उसी समय सन्दीप से भेंट हो गई। हृदय में हृदय का धक्का लगने से वह आग तो फिर उसी तरह जलने लगी। कहां है मिथ्या! यह तो पूर्ण सत्य है—यह तो दोनों किनारों में लबालब भरा हुआ सत्य है। ये सब मनुष्य चल फिर रहे हैं, बातें कर रहे हैं, हँस रहे हैं—यह बड़ी रानी माला फेर रही हैं, वह मँझली रानी थाको दासी के साथ बातें कर कर हँस रही हैं; मेरे भीतर का यह आविर्भाव इन सबकी अपेक्षा हज़ार गुना सत्य है।

सन्दीप ने कहा—पचास हज़ार रुपये चाहिए! मेरा मतवाला मन कह उठा—पचास हज़ार कुछ भी नहीं हैं! ला दूँगी! कहां पाऊँगी, किस तरह पाऊँगी, यह भी क्या कोई बात है! यह देखो न, मैं ख़ुद दम भर में 'कुछ नहीं' एक-दम जैसे सब कुछ से बढ़ गई हूँ—इसी तरह एक इशारे में सब हो जायगा। दे सकूँगी, दे सकूँगी, दे सकूँगी—इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

चली तो आई। उसके बाद चारों ओर नज़र दौड़ाई, रुपये कहां हैं? कल्पवृक्ष कहां है? बाह्य विषय मन को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह लज्जित क्यों करता है ! किन्तु तब भी रुपये लाही दूँगी। जिस तरह हो, उसमें ग्लानि नहीं है। जहाँ दीनता है वहीं अपराध है, शक्ति को कोई अपराध छू नहीं सकता। चोर ही चोरी करता है, विजयी राजा लूट करा लेता है। ख़ज़ाने में मालख़ाना कहाँ है, वहाँ किसके हाथों रुपये जमा होते हैं, कौन लोग पहरा देते हैं—यही सब पता लगा रही हूँ। आधी रात को बाहरी घर में जाकर बरामदे में खड़े होकर दफ़्तर की ओर एक नज़र से ताक कर घण्टों बिता दिये हैं। इस लोहे के सन्दूक़ की मुट्ठी से पचास हज़ार किस तरह छीन लूँगी ? यही चिन्ता थी। मन में दया नहीं थी—जो लोग पहरा दे रहे थे वे अगर किसी मन्त्र के बल से वहीं पर गिर कर मर जाते तो उसी समय मैं उन्मत्त की तरह उस घर के भीतर दौड़ जाती। उसी घर की रानी के मन में डकैतों का दल खाँड़ा हाथ में लिये नाचते नाचते देवी के निकट वर माँगने लगा। किन्तु बाहर का आकाश बिलकुल चुप सन्नाटे में था। पहर पहर भर पर पहरा बदलने लगा। घड़ी में टन टन करके घण्टा बजा। बड़ा भारी राजभवन निर्जन शान्ति के बीच निद्रा में अचेत था। इसी तरह कई रातें बीत गईं।

अन्त को एक दिन मैंने अमूल्य को बुलाया। उससे कहा—देश के लिए रुपयों की ज़रूरत है—ख़ज़ांची के हाथ से इतने रुपये क्या तुम निकाल नहीं ला सकते ?

उसने छाती फुला कर कहा—क्यों नहीं ला सकता ?

हाय रे ! मैंने भी सन्दीप के आगे इसी तरह कहा था—क्यों न दे सकूँगी ? अमूल्य का छाती फुलाना देख कर मुझे तनिक भी आश्वास नहीं हुआ।

मैंने पूछा—तुम क्या करोगे ?

अमूल्य इस तरह के विचित्र प्लैन बतलाने लगा कि वे मासिकपत्रों के छोटे क़िस्सों को छोड़ कर और कहीं प्रकाशित करने के योग्य नहीं।

मैंने कहा—नहीं, अमूल्य, ये सब बचपन की बातें रहने दो।

उसने कहा—अच्छा, रुपये देकर इन पहरा देनेवालों को अपने हाथ में कर लूँगा।

मैंने कहा—रुपये कहाँ पाओगे ?

उसने चट कह दिया—बाज़ार लूटूँगा।

मैंने कहा—इन बातों की ज़रूरत नहीं है। मेरे पास गहने हैं, उन्हीं से काम चलेगा।

अमूल्य ने कहा—लेकिन ख़ज़ांची घूँस न लेगा। एक बहुत ही सहज उपाय है !

मैंने कहा—क्या ?

अमूल्य—आप सुन कर क्या करेंगी ? वह बहुत ही सहज है।

मैं—ख़ैर सुनें तो।

अमूल्य ने कोट की जेब से पहले एक पाकेट-एडीशन गीता निकाल कर टेबिल के ऊपर रक्खी, उसके बाद एक छोटी सी पिस्तौल निकाल कर मुझे दिखाई। और कुछ नहीं कहा।

कैसा सर्वनाश ! हमारे बूढ़े ख़ज़ांची को मार डालने की बात सोचने में उसे कुछ भी देर नहीं लगी। उसका मुख ऐसा है कि उसे देखने से जान पड़ता है, एक चिड़िया मारना भी उसके लिए कठिन है, किन्तु उसी मुख की भाषा दूसरे ढङ्ग की है। असल बात यह है कि इस संसार में बूढ़ा ख़ज़ांची कितना सत्य है, यह भी वह देख नहीं पाता, वहाँ जैसे शून्य आकाश है। उस आकाश में प्राण नहीं है, व्यथा नहीं है, केवल यह श्लोक है—न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

मैंने कहा—अमूल्य, तुम कहते क्या हो ! हमारा ख़ज़ांची रायसाहब के स्त्री है, लड़के-बाले हैं, उनको—

अमूल्य—स्त्री और बाल-बच्चे जिसके न हों, ऐसा मनुष्य इस देश में मिल नहीं सकता। देखिए, हम जिसे दया कहते हैं वह केवल अपने ही ऊपर दया है। अपने दुर्बल मन को व्यथा न हो, इसी लिए हम दूसरे पर हाथ उठा नहीं सकते—यह तो कायरपन की हद है !

सन्दीप के मुख की बातें बालक के मुख से सुन कर हृदय काँप उठा। उसकी तो बिलकुल ही कच्ची उम्र है, अच्छे को अच्छा मान कर विश्वास करने का ही उसका समय है। उसकी अभी जीने की, बढ़ने की अवस्था है। मेरे भीतर माता का आविर्भाव हो आया। मेरे अपने लिए न कुछ भला ही था और न कुछ बुरा ही था, मधुर रूप धरे हुए केवल मरण था; किन्तु जब इस अठारह वर्ष के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़के ने अनायास यह ठहरा लिया कि एक बूढ़े आदमी को बिना अपराध के मार डालना ही धर्म है तब मेरा कलेजा कांप उठा। जब मैंने देख पाया, उसके मन में पाप नहीं है तब उसके इस विचार का पाप बड़े भयङ्कर रूप से मुझे देख पड़ा। जैसे मा-बाप का अपराध उस नाबालिग़ लड़के में देख पड़ा।

विश्वास और उत्साह से भरे बालक के दोनों सरल नेत्रों की ओर देखने से मेरे हृदय में हलचल मच गई। यह तो अजगर सांप के मुख में जा रहा है, इसे कौन बचावेगा? मेरा देश क्यों नहीं सचमुच की मा होकर इस लड़के को अपने हृदय से लगा लेता? क्यों इससे नहीं कहता—ओ बच्चे, अगर मैं तुझे बचा न सकी तो तू मुझे बचा कर क्या करेगा?

जानती हूँ, जानती हूँ, पृथ्वी के बड़े बड़े प्रताप शैतान से सुलह करके ही बढ़ उठे हैं, किन्तु मा तो इस शैतान की समृद्धि को तुच्छ करने के लिए अकेली खड़ी है। माता तो कार्य-सिद्धि नहीं चाहती, वह सिद्धि चाहे जितनी बड़ी हो। माता तो बचाना ही चाहती है! आज मेरा सम्पूर्ण हृदय इस बालक को दोनों हाथों से खींच कर बचाना चाहता है।

कुछ देर पहले मैंने उससे डकैती करने के लिए कहा था, इस समय चाहे जितनी उसके ख़िलाफ़ बात कहूँ, कुछ फल न होगा। वह उसे औरतों की कमज़ोरी कह कर हँसेगा। औरतों की दुर्बलता के आगे मर्द तब सिर झुकाते हैं जब वह पृथ्वी को डुबाने के लिए तैयार हो जाती है।

अमूल्य से मैंने कहा—जाओ, तुम्हें कुछ न करना होगा। रुपयों का प्रबन्ध मैं ख़ुद ही करूँगी।

जब वह दरवाज़े तक पहुँचा तब मैंने उसे पुकार कर लौटा लिया और कहा—अमूल्य, मैं तुम्हारी बहन हूँ। आज पत्रे के अनुसार भैया-दूज का दिन नहीं है, किन्तु भैया-दूज की असल तिथि साल भर के सभी दिन है। मैं तुमको आशीर्वाद देती हूँ, भगवान् तुम्हारी रक्षा करें।

एकाएक मेरे मुख से यह बात सुन कर अमूल्य ज़रा ठिठक रहा। उसके बाद प्रणाम करके उसने मेरे पैरों की धूल अपने मत्थे से लगाई। उठ कर जब वह खड़ा हुआ तब उसके नेत्रों में आँसू भरे हुए थे। भाई मेरे, मैं तो मौत के मुँह में खड़ी ही हुई हूँ, मैं तेरी सब अला-बला लेकर मरूँ। मेरे लिए तुमसे कोई अपराध न हो।

मैंने कहा—अमूल्य, यह अपना पिस्तौल तुम मुझे दे दो।

उसने कहा—क्या करोगी दीदी?

मैंने कहा—मरण की प्रैक्टिस करूँगी।

उसने कहा—यही तो उचित है दीदी, औरतों को भी मरना होगा—मारना होगा!—इतना कह कर अमूल्य ने पिस्तौल मेरे हाथ में दे दिया।

अमूल्य नवीन उषःकाल की प्रथम अरुण-रेखा की तरह अपने तरुण मुख की दीप्ति की रेखा मेरे जीवन में अङ्कित कर गया। पिस्तौल को सदरी के भीतर छिपा कर कहा—यही मेरे उद्धार का अन्तिम उपाय है।

स्त्री के हृदय में जहां माता का आसन है, मेरे हृदय की उसी जगह का द्वार यही एक बार एकाएक खुल गया था। उस समय जान पड़ा, अब से यह खुला ही रहेगा।

किन्तु मेरे श्रेय की राह बन्द हो गई, प्रेयसी नारी ने आकर माता के स्वस्त्ययन के घर में ताला लगा दिया।

दूसरे दिन सन्दीप से फिर भेंट हुई। एक नग्न पागलपन हृदयपिण्ड के ऊपर खड़े होकर फिर नाचने लगा। किन्तु यह क्या है! यह क्या मेरा स्वभाव है? कभी नहीं।

इस निर्लज्ज को, इस निदारुण को, इससे पहले तो किसी दिन देखा नहीं। मदारी ने एकाएक आकर इस सांप को मेरे आंचल के भीतर से निकाल कर दिखा दिया—किन्तु यह कभी मेरे आंचल के भीतर न था, यह इसी मदारी की चादर के भीतर की चीज़ है। भूत किस तरह मेरे ऊपर सवार हो गया है—आज मैं जो कुछ करती हूँ वह मेरा काम नहीं, वह उसी की लीला है।

उसी भूत ने एक दिन रङ्गीन मशाल हाथ में लिये आकर कहा, मैं ही तुम्हारा देश हूँ—मैं ही तुम्हारा सन्दीप हूँ—मुझसे बढ़ कर तुम्हारा और कुछ नहीं है—वन्दे मातरम्। मैंने हाथ जोड़ कर कहा—तुम्हीं मेरे धर्म हो, तुम्हीं मेरे स्वर्ग हो, मेरा जो कुछ है सब तुम्हारे प्रेम में बहा दूँगी—वन्दे मातरम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच हज़ार चाहिए ? अच्छा, पांच हज़ार ही ले आऊँगी। कल ही चाहिए ? अच्छा कल ही पाओगे। कलङ्क और दुस्साहस से यह पांच हज़ार रुपये का दान शराब की तरह फेनिल हो उठेगा—उसके बाद मतवाले का उत्सव होगा,—अचला पृथ्वी पैरों के नीचे डगमगाने लगेगी, आंखों से आग निकलेगी, कानों के भीतर तूफ़ानी हवा गरजेगी, सामने क्या है क्या नहीं, सो जान ही न सकूँगी—उसके बाद लड़खड़ाती हुई मरण में जाकर गिर पड़ूँगी—सारी आग दम भर में बुझ जायगी, सारी राख हवा में उड़ेगी—कुछ भी बाक़ी न रहेगा।

इस दिन के पहले किसी तरह यह न सूझता था कि रुपये कहाँ मिलेंगे। उस दिन तीव्र उत्तेजना के प्रकाश में वे रुपये एकाएक आंखों के आगे ही देख पड़े।

हर साल मेरे स्वामी कुआँर में दुर्गापूजा के अवसर पर दोनों बड़ी भावजों को प्रणाम करके तीन तीन हज़ार रुपये दिया करते हैं। वे रुपये हर साल उन्हीं के नाम से बैंक में जमा हो जाते हैं। सूद भी उनका बैंक ही में जमा हो जाता है। अब की भी दस्तूर के माफ़िक स्वामी ने भावजों को रुपये दिये थे। किन्तु मुझे मालूम है, अब की वे रुपये अभी तक बैंक में जमा नहीं किये गये। वे रुपये कहाँ रक्खे हैं, सो भी मेरा जाना है। हमारे सोने के कमरे से मिली हुई कपड़े उतारने की छोटी कोठरी में कोने पर लोहे का सन्दूक़ है। उसी के भीतर रुपये रक्खे हैं।

हर साल ये रुपये लेकर मेरे स्वामी कलकत्ते के बैंक में जमा करने जाते हैं, अब की बार उनका जाना नहीं हुआ। इसी कारण तो दैव को मानती हूँ। ये रुपये देश लेगा, इसी से रुके हुए हैं। इन रुपयों को बैंक ले जाने की ताक़त किसमें है ? और मुझमें ही इतनी शक्ति कहाँ कि इन रुपयों को मैं न लेऊँ। प्रलयङ्करी भयङ्करी ने खप्पर बढ़ा दिया है—कहती हैं, मैं भूखी हूँ, मुझको दे,—मैंने इन पांच हज़ार रुपयों के रूप में अपने हृदय का रक्त दिया ! मैया री, ये रुपये जिसके गये उसकी तो साधारण ही हानि होगी। लेकिन मुझे तो अब की तुम ने एक-दम कङ्गाल कर दिया !

अब से पहले कितनी ही बार मैंने अपने मन में बड़ी रानी और मँझली रानी को चोर कहा है। मेरी यही शिकायत थी कि वे मेरे विश्वासपरायण स्वामी को धोखा देकर रुपये ले रही हैं। अपने स्वामियों के मरने के बाद बहुत सा सरकारी सामान उन्होंने गुप्तरूप से खिसका दिया है—यह बात मैंने अक्सर अपने स्वामी से कही है। मेरे स्वामी सदा इसका कुछ जवाब न देकर चुप रहते थे। तब मुझे क्रोध चढ़ आता था। मैं कहती थी—दान करना हो तो हाथ से उठा कर दान करो, किन्तु चोरी क्यों करने देते हो ?। विधाता उन दिनों मेरी यह शिकायत सुन कर हँसते रहे होंगे। आज मैं अपने स्वामी के सन्दूक़ से उन्हीं बड़ी रानी और मँझली रानी के रुपये चुराने जा रही हूँ।

रात को मेरे स्वामी उसी कोठरी में कपड़े उतारते हैं, उन्हीं कपड़ों की जेब में उस सन्दूक़ की चाभी रहती है। वह चाभी निकाल कर मैंने लोहे का सन्दूक़ खोला। जो थोड़ा सा शब्द हुआ उसी से जान पड़ा, जैसे सारी पृथ्वी जाग पड़ी। एकाएक ठण्डक से मेरे हाथ-पैर ठण्डे पड़ गये और मेरा हृदय धक धक करके धड़कने लगा।

लोहे के सन्दूक़ के भीतर एक दराज़ है। उसे खोल कर देखा, नोट नहीं हैं। काग़ज़ में लपेटी हुई गिन्नियों की बीड़ें अलग अलग रक्खी हुई हैं। उस समय यह हिसाब करने का समय नहीं कि हर बींड़ में कितनी गिन्नियां हैं और मुझको कितनी गिन्नियों की ज़रूरत है। बीस बींड़ें थीं, सब उठा कर अपने आंचल में बांध लीं।

कम भारी न थीं। चोरी के बोझ से मेरा मन जैसे ज़मीन पर लोट गया। शायद नोटों का गट्ठा होता तो वह इतनी अधिक चोरी न जान पड़ती। यह तो सब सोना है।

उसी रात को जब अपने ही घर में चोर होकर घुसना पड़ा तभी से यह घर फिर अपना नहीं रहा। इस घर में मेरा कितना बड़ा अधिकार है—चोरी करके सब खो दिया।

मन ही मन जपने लगी—वन्दे मातरम्; वन्दे मातरम्। देश, मेरे देश, मेरे सोने के देश। सब सोना उस देश का सोना है, यह और किसी का नहीं है।

किन्तु रात को अन्धकार में मन दुर्बल हो जाया करता है। मेरे स्वामी पास के ही कमरे में सो रहे थे। आंखें बन्द किये उनके कमरे के भीतर से निकल गई। अन्तःपुर की खुली छत के ऊपर जाकर उसी आंचल में बँधे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई चोरी के ऊपर हृदय रख कर ज़मीन पर पड़ गई। वे बींड़ें हृदय के भीतर जैसे खनखनाने लगीं। सन्नाटे की रात मेरे सिरहाने उँगली उठाये खड़ी रही। घर को तो मैं देश से अलग देख न सकी। आज घर को लूटा है, देश को ही लूटा है—इस पाप से एक ही साथ घर मेरा घर नहीं रहा और देश भी पराया हो गया। मैं यदि भीख माँग कर देश की सेवा करती और वह सेवा सम्पूर्ण हुए बिना ही मर भी जाती तो वह असमाप्त सेवा ही पूजा होती, देवता उसे ग्रहण करते। किन्तु चोरी तो पूजा नहीं है। यह वस्तु कैसे देश के हाथ में उठा कर दूँगी? मैं चोरी के माल से देश की भरी नाव डुबाने बैठी हूँ! खुद मरने को तैयार हूँ, किन्तु देश को पकड़ कर उसे भी क्यों अपवित्र करूँ?

ये रुपये फिर ले जाकर सन्दूक़ में रखने की राह भी बन्द है। फिर इसी रात को उसी कोठरी में जाकर वही चाभी निकाल कर वह सन्दूक़ खोलने की शक्ति मुझमें नहीं है। जाऊँगी तो स्वामी जहाँ लेटे हैं वहाँ चौखट के पास बेहोश होकर गिर पड़ूँगी। इस समय सामने जो मार्ग है उसके सिवा और राह नहीं है।

लज्जा के मारे मुझसे यह न हो सका कि कितने रुपये लिये हैं यहीं बैठ कर गिनती। गिन्नियाँ जैसी ढकी हुई हैं वैसी ही ढकी रहें, चोरी का हिसाब नहीं करूँगी।

शीतकाल की अँधेरी रात को आकाश में ज़रा सा भी बादल नहीं था, सब तारे झलक रहे थे। मैं छत के ऊपर पड़ी पड़ी सोच रही थी—देश के नाम पर ये तारे अगर एक एक मोहर की तरह मुझे चुराने होते—अन्धकार के हृदय में सञ्चित ये तारे चुराने होते—उसके दूसरे दिन से चिरकाल के लिए रात्रि एक-दम विधवा हो जाती—आधी रात का आकाश एक-दम अन्ध हो जाता—तो वह चोरी सारे जगत् की चोरी होती। आज यह जो चोरी मैं कर लाई हूँ, यह भी तो रुपयों की चोरी नहीं है, यह भी आकाश के चिरकाल के प्रकाश की चोरी के समान ही है—यह चोरी भी सब जगत् की चोरी है—यह विश्वास की चोरी है, धर्म की चोरी है।

(असमाप्त)

रूपनारायण पाण्डेय

चारु चयन।

१—टाइम्स।

विलायत के पत्रों में टाइम्स का दर्जा सबसे अधिक ऊँचा है। यही नहीं, संसार के प्रभावशाली पत्रों में टाइम्स अपने ढङ्ग का एकही पत्र है। भविष्य में समाचारपत्रों का जो इतिहास लिखा जायगा उसमें इस पत्र को गौरव-पूर्ण स्थान प्राप्त होगा। टाइम्स ने अपना यह गौरवशाली पद अपने स्वामियों और सम्पादकों की बदौलत प्राप्त किया है। इसके जन्मदाता वाल्टर साहब आक्सफ़ोर्ड में पादड़ीगीरी सीखते थे। वहीं उन्हें समाचारपत्र निकालने की इच्छा हुई। तदनुसार सन् १७८५ में उन्होंने लन्दन से टाइम्स का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसने अब अपने १३८ वें वर्ष में पदार्पण किया है।

अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में टाइम्स को भी अपने अस्तित्व के लिए सरकार से लड़ना पड़ा था। इसी लड़ाई-झगड़े के समय फ़्रांस में विप्लव और नेपोलियन का शासन क़ायम हुआ था। अतएव ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के समय तत्कालीन विलायती सरकार ने पत्रों में ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये जिससे उनकी उन्नति में बाधा पहुँची। यद्यपि विलायत में समाचार-पत्र बहुत पहले से छपते रहे हैं, तथापि उन्हें विशेष सुविधा नहीं प्राप्त थी और न वे अधिक स्वतन्त्रता से लिख ही सकते थे। परन्तु टाइम्स के जन्म-समय के कुछ समय पहले पत्रों के प्रचार के लिए सरकार ने क़ानून-द्वारा कुछ सुविधायें कर दी थीं। सञ्चालकों की बुद्धिमत्ता और सावधानी से वह अपने विघ्नपूर्ण प्रारम्भिक जीवन को पार करने में सफल हुआ। यही नहीं, वाटरलू के युद्ध के बाद उसके जीवन के ३० वें वर्ष में उसकी ग्राहक-संख्या ५,००० हो गई थी। इसके बाद टाइम्स के सम्पादन का भार उन लोगों पर डाला गया जो अपनी प्रतिभा से टाइम्स को उस मार्ग से ले गये जिस पर चलने से उसने अपना गौरव-पूर्ण पद प्राप्त किया है। इन लोगों में बार्नेस पहला व्यक्ति है। बार्नेस सन् १८१७ में टाइम्स का सम्पादक हुआ था। वह रेडिकल-दल का था। जब बार्नेस सम्पादक बनाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया तब अधिकांश लोगों ने इस नियुक्ति का विरोध किया। वे नहीं चाहते थे कि टाइम्स का सम्पादन कोई रेडिकल करे। परन्तु बार्नेस ने टाइम्स की मर्यादा-वृद्धि करने में कोई कोर-कसर नहीं की। रेडिकल होकर भी वह देश-काल को देख कर अपने पत्र का सम्पादन करता था। लेहंट, हैज़लिट जैसे साहित्य-सेवी उसके मित्रों में थे। बार्नेस ने अपने लेखन-कौशल से अपनी और अपने पत्र दोनों की प्रतिष्ठा क़ायम कर ली। उसके समय में टाइम्स में जो लेख प्रकाशित होते थे वे वज़नदार रहते थे। सरकार और जनता दोनों पर उनका प्रभाव पड़ता था। इस प्रकार अपनी निर्भीक आलोचनाओं से टाइम्स का दबदबा बँध गया। जब सन् १८३५ में सर राबर्ट पील ने अपने प्रधान मन्त्रित्व के पद से इस्तीफ़ा दे दिया तब उन्होंने अपने एक प्रसिद्ध पत्र में बार्नेस की पक्षपात-रहित नीति की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। बार्नेस ने अपनी योग्यता से कैसी मर्यादा प्राप्त कर ली थी यह इसी बात से प्रकट हो जाता है कि एक बार लार्ड डर्हम बेलजियम के राजा की ओर से एक लेख के बारे में बार्नेस से मिलने गये थे। और लार्ड डर्हम विलायत के प्रसिद्ध अभिमानी व्यक्तियों में गिने जाते थे। यही क्यों, मेलबोर्न के पद-त्याग के बाद जब सन् १८३४ में विलिङ्गडन प्रधान मन्त्री हुए तब टाइम्स को अपने पक्ष में करने के लिए उनकी ओर से बड़ा प्रयत्न किया गया था। इस प्रयत्न का फलस्वरूप जो समझौता हुआ था उससे यद्यपि टाइम्स टोरी-दल के पक्ष में लिखने लगा, तथापि उसकी अपनी नीति अलग ही बनी रही। उसमें निर्भीकता और लोक-हितैषणा की कमी कभी नहीं आने पाई। इसी से वह अपने गौरव से भी कभी नहीं च्युत हुआ। बार्नेस की प्रतिभा से टाइम्स ने जो स्थिति प्राप्त करली उससे बड़े बड़े राजकर्मचारी उसकी सहायता की प्रत्याशा करने लगे। वह अन्याय का प्रतिकार कराने के लिए भयवश अपने कर्तव्यपथ से कभी नहीं विमुख हुआ। उसने टाइम्स का सम्पादन लगातार २४ वर्ष तक किया। उसके समय में टाइम्स की ग्राहक-संख्या बढ़ कर १८,५०० तक पहुँच गई थी।

सन् १८४१ में बार्नेस की मृत्यु होगई। अतएव टाइम्स के सम्पादन का भार डिलेन को सौंपा गया। डिलेन बार्नेस का सहकारी था। पर इसका स्वभाव बार्नेस से सर्वथा विपरीत था। तथापि था वह प्रतिभाशाली लेखक। अपने लेखन-कौशल से उसने यह बात सबके मन में बैठा दी कि टाइम्स किसी दलविशेष का पत्र नहीं है, उसकी अपनी स्वतन्त्रता-नीति अलग है। डिलेन ने लगातार ३६ वर्ष तक टाइम्स का सम्पादन किया। यह जैसे टाइम्स के लिए गौरव की बात है वैसे ही उसके लिए भी है। उसके समय में टाइम्स सर्व-साधारण का मुख-पत्र गिना गया, यहाँ तक कि महाराज अलबर्ट भी उसे ऐसा ही समझते थे।

मन्त्रि-मण्डल के मन्त्रियों तथा दूसरे उच्चाधिकारियों एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों से डिलेन की बहुत अधिक घनिष्ठता थी। इससे डिलेन की महत्त्वपूर्ण स्थिति का पूरा परिचय मिल जाता है और यह विदित हो जाता है कि उस समय वह कैसी कैसी महत्त्वपूर्ण राजनैतिक स्थितियों के प्रश्नों को हल करने में भाग लेता था। सन् १८५९ में लार्ड डर्बी की सरकार की हार होगई और लार्ड पामर्सटन प्रधान-मन्त्री बनाये गये। इस समय टाइम्स ने एक रहस्य-पूर्ण बात सर्व-साधारण पर प्रकट करके अपने साहस का ख़ासा परिचय दिया था। महारानी विक्टोरिया उदारदल के नेता लार्ड ग्रैनवाइल को प्रधान मन्त्री बनाना चाहती थीं पर ग्रैनवाइल मन्त्रि-मण्डल की रचना करने में सफल नहीं हुए। महारानी की इस गुप्त-मन्त्रणा का पता डिलेन को लग गया। उसने निर्भय होकर सारी बात टाइम्स में छाप दी। उसे पढ़ कर महारानी चकित और नाराज़ हो हुई थीं। लार्ड पामर्सटन की डिलेन से घनिष्ठता थी इस कारण पार्लियामेंट में उन पर आक्षेप भी हुए और उन्होंने स्वीकार भी किया कि डिलेन का सम्बन्ध लाभदायक है, उससे राज-काज में हित की ही अधिक सम्भावना है। डिलेन के समय में टाइम्स के गौरव की वृद्धि पहले से अधिक हुई। अनेक नये नये विद्वान् और प्रतिष्ठित लोग टाइम्स में गवेषणापूर्ण लेख लिखने लगे और विलायत के सार्वजनिक जीवन में उसकी धाक होगई।

विदेश में संवाददाता नियुक्त कर वहाँ के समाचारों में लेख छापने का काम पहले पहल डिलेन के समय में ही टाइम्स ने प्रारम्भ किया था। उसका पहला संवाददाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी की राजधानी बर्लिन में नियुक्त हुआ था। इससे पत्र की लोकप्रियता और भी बढ़ गई। इसके प्रसिद्ध विदेशी संवाददाताओं में कुछ का उल्लेख यहाँ किया जाता है।

डब्ल्यू० एच० रसेल उसके वैदेशिक संवाददाताओं में से थे। क्रीमिया-युद्ध के समय इन्हीं के लेखों की बदौलत युद्ध-भूमि में स्थित सेना की दुरवस्था में बहुत कुछ सुधार हुआ था। रसेल के सिवा जनरल इबर वायना के, मलेंगा दूसरी राजधानियों के और कुक चीन के प्रसिद्ध संवाददाता थे। परन्तु ब्लोविज़ का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यह सन् १८७२ में टाइम्स का संवाददाता नियुक्त हुआ था।

ब्लोविज़ बहोमिया का रहनेवाला था। वह बड़ा विचित्र आदमी था। रूप, रंग से वह बिलकुल साधारण आदमी जँचता था, पर था बड़ा मेधावी। वह फ्रेंच, जर्मन आदि कई भाषायें जानता था। फ्रांस के तत्कालीन राजनीतिज्ञों से वह भले प्रकार परिचित था। पिछले फ्रांस-जर्मनी-युद्ध के समय वह पेरिस में टाइम्स का सहकारी संवाददाता नियुक्त हुआ था। उसी समय डिलेन प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ थियर्स का भाषण सुनने के लिए वर्सिलीज़ आया था। ब्लोविज़ भी उसके साथ सभा-स्थल को गया। व्याख्यान के बाद बात-चीत करते समय डिलेन ने उससे कहा कि यदि मुझे यह सम्पूर्ण भाषण कल के टाइम्स में छापने को मिल जाता तो बहुत ही अच्छा होता। उसके लन्दन चले जाने पर ब्लोविज़ अपने कमरे में जा बैठा और थियर्स के सम्पूर्ण भाषण को अपनी स्मरण-शक्ति से ज्यों का त्यों लिख डाला। फिर उसने उसे तार-द्वारा तत्काल लन्दन को भेज दिया। जब दूसरे दिन डिलेन ने उस स्पीच को टाइम्स में ज्यों की त्यों छपा देखा तब वह बहुत खुश हुआ। उसने ब्लोविज़ को तुरन्त पेरिस का प्रधान संवाददाता बना दिया। वह अपने पद पर कई वर्ष तक रहा। संवाददाता के पद का महत्त्व इसी व्यक्ति की बदौलत ऊँचे दर्जे को पहुँचा।

अन्त में अस्वस्थ होने के कारण सन् १८७७ में डेलेन ने सम्पादकीय कार्य से हाथ खींच लिया। इस घटना के दो वर्ष बाद ६२ वर्ष की उम्र में उसकी मृत्यु होगई।

डिलेन की मृत्यु के पहले ही विलायत की अवस्था में भारी भारी परिवर्तन हो चुके थे। १९ वीं सदी के मध्यभाग में विलायत की जो दशा थी वह अब नहीं रह गई थी। सन् १८६७ में डिसरायली के प्रधान मन्त्रित्व में जो रिफ़ार्म-एक्ट पास हुआ था उससे सर्व-साधारण में बहुसंख्यक लोगों को वोट देने का अधिकार प्राप्त हो गया था। इसके बाद ही प्रारम्भिक शिक्षा का नया क़ानून बना। उससे देश की परिस्थिति में बहुत कुछ फेरफार का कारण उपस्थित हो गया। इन विधानों से सर्व-साधारण को राजनैतिक अधिकार तो प्राप्त हो ही गया, पर उनमें शिक्षाप्रचार की भी पूरी सुविधा होगई। इन क़ानूनों के पास होने के पहले सन् १८५३ से १८६१ तक क़ानून-द्वारा जो सुधार वहाँ किये गये थे उनसे तीन प्रकार के कर उठा दिये गये—विज्ञापन-सम्बन्धी कर, स्टाम्प-एक्ट और पेपर-ड्यूटी। इन उन्नति-रोधक क़ानूनों के उठ जाने से समाचारपत्रों के प्रचार के लिए मार्ग उन्मुक्त हो गया और नये नये पत्रों का प्रकाशन स्थान स्थान से प्रारम्भ हुआ। उस समय विलायती पत्रों में एक-मात्र टाइम्स का ही एकाधिपत्य था। उपर्युक्त नई परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर भी डिलेन के सम्पादकत्व में टाइम्स अपने पूर्व पद पर जैसा का तैसा डटा रहा। उस समय उसकी ६०,००० प्रतियाँ नित्य छपतीं थीं। यहाँ तक कि मार्निङ्ग अडवाइज़र, डेलीन्यूज़, मार्निङ्ग हेरल्ड और मार्निङ्ग पोस्ट आदि पत्रों की ग्राहक-संख्या एक में मिला देने पर भी वह टाइम्स की ग्राहक-संख्या से कम ही ठहरती थी।

उपर्युक्त नये सुधारों के कारण विलायत में भी सस्ते पत्रों के प्रचार का समय आ गया। केवल धन और योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी। सबसे पहले सन् १८५५ के सितम्बर में डेली टेलीग्राफ़ एंड करियर निकला। इसका मूल्य १ पेनी था। यह दो पृष्ठों में छपता था। बाद को इसका नाम डेली टेलीग्राफ़ ही रह गया। यह पत्र इस समय भी चल रहा है। इसके बाद काबडेन और ब्राइट ने मार्निङ्ग स्टार और ईवनिंग स्टार नामक पत्र निकाले। ये पत्र फ्री-ट्रेड के पक्षपाती थे। इनके बाद स्टेंडर्ड निकला। इसे जेम्स जानसन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़रीद कर योग्यता के साथ निकाला। पहले इसका मूल्य २ पेन्स था, फिर १ पेनी हो गया। इन दैनिक-पत्रों ने समयानुसार बहुत कुछ काम किया। पाठकों की रुचि अधिक परिष्कृत होगई। तब प्रसिद्ध सम्पादक जान डगलस कुक के सम्पादकत्व में सैटर्डे-रिव्यू नामक एक नया साप्ताहिक-पत्र निकला। इसमें राज-नीति, साहित्य, विज्ञान और कला के उत्कृष्ट लेख प्रकाशित होते थे। इसी समय ३६ वर्ष का पुराना स्पेक्टेटर भी अपने नये सम्पादक के निरीक्षण में अच्छे ढँग से निकलने लगा। इनके सिवा और भी कई एक सस्ते-महँगे साप्ताहिक-पत्र निकलने लगे थे। इनमें सस्ते साप्ताहिक-पत्रों का सर्व-साधारण में अधिक प्रचार था।

१९ वीं सदी के पिछले भाग की पूर्वोक्त प्रगति का प्रभाव टाइम्स पर भी पड़ा। उसे अपनी प्राचीन नीति का अनुसरण करते हुए अधिक बल और ओज के साथ कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होना पड़ा। इस समय जो नये सान्ध्य-कालीन पत्र निकले उनके प्रभाव-शाली जीवन का कुछ कम प्रभाव टाइम्स पर नहीं पड़ा। पालमाल गज़ेट भी इसी समय फ़्रेडरिक ग्रीनवुड के सम्पादकत्व में निकला था। बाद को सन् १८६५ में उसका सम्पादन जान मार्ले ने किया, ऐसी प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति में टाइम्स अपने कार्य-क्षेत्र में बराबर अग्रसर होता गया। यही क्यों, बाद को जो और पत्र निकले उनकी प्रतिस्पर्धा में भी टाइम्स ने अपनी पुरानी नीति नहीं छोड़ी और उसकी मर्यादा में बट्टा नहीं लगने पाया। उसके प्रतिस्पर्धी जिस मतलब से आये उसे पूरा कर अपनी राह लगे और टाइम्स टाइम्स ही बना रहा।

मिस्टर डिलेन के बाद मिस्टर वाल्टर ने टामस चेनेरी को टाइम्स का सम्पादक बनाया। इस नियुक्ति से लोग बहुत चकित हुए, क्योंकि उस समय टाइम्स के सम्पादकीय लेख लिखने में ल्योनार्ड कोर्टने की ख्याति थी और लोग समझते थे कि वही सम्पादक बनाया जायगा। इस सम्बन्ध में चेनेरी का नाम नहीं हुआ था। हाँ वह विद्वान् था और आक्सफ़ोर्ड में अरबी का अध्यापक था। चेनरी टाइम्स के सम्पादकीय विभाग में २५ वर्ष तक रहा। क्रीमिया-युद्ध के पहले तथा युद्ध-काल में वह कान्स्टैंटिनोपल का संवाददाता था। वह बहु-भाषाविद् था और जिन लोगों के बीच में रहता था उनकी चाल-ढाल से वह पूर्ण परिचित रहता था। इसके बाद वह टाइम्स के कार्यालय में बुला लिया गया था। विदेश के मामलों में उसका ज्ञान बहुत ही बढ़ा-चढ़ा था। इसी कारण डिलेन की धारणा उसके सम्बन्ध में बहुत अच्छी होगई थी। यद्यपि डिलेन के सदृश उसका सम्बन्ध समाज के प्रतिष्ठित लोगों से अधिक नहीं था, तथापि वह एक योग्य सम्पादक था। पत्र के स्वामी, मैनेजर तथा अपने सहकारियों में उसकी ख़ासी पटती थी।

चेनेरी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था, अतएव सन् १८८४ में उसकी मृत्यु हो गई। यह सात वर्ष से भी कम समय तक टाइम्स का सम्पादक रहा। इसके समय में सार्वजनिक जीवन में कोई वैसा महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं उपस्थित हुआ, जिससे उसकी सम्पादकीय प्रतिभा का पता चलता। डिलेन के समय के कार्यकर्ताओं में इस समय तक कुछ ही आदमी रह गये थे। इनमें विलियम स्टेविंग, ल्योनार्ड कोर्टने और डाक्टर हेनरी बेल थे।

चेनेरी की मृत्यु के बाद टाइम्स का सम्पादन-कार्य जार्ज अर्ल बकल को सौंपा गया। उसकी उम्र २९ वर्ष की थी। वह आक्सफ़ोर्ड का छात्र था। चेनरी उसे अपना दाहना हाथ समझता था। उसने टाइम्स का सम्पादन २८ वर्ष तक किया। सन् १९१२ में वह अपने पद से पृथक् हुआ। सन् १८६० से १९१० तक के इँगलैंड के इतिहास का वह असाधारण ज्ञाता था। टाइम्स के किसी लेख में यदि उपर्युक्त समय की किसी घटना का उल्लेख होता और यदि उसमें लेखक से कुछ भूल हो जाती तो यह मजाल न थी कि वह बकल की निगाह से बच जाती। उसे अपने समय की छोटी-बड़ी सभी घटनाओं का सविस्तर ज्ञान था। उसमें मुख्य बात के शीघ्र समझने की विचित्र शक्ति थी। उसकी मेधा-शक्ति भी असाधारण थी। सार्वजनिक बातों से विशेषतया घरेलू मामलों से उसको विशेष प्रेम था। मतलब यह कि प्रथम श्रेणी के सम्पादक में जो विशेष गुण होना चाहिए वे सब बकल में विद्यमान थे। यद्यपि डिलेन के सदृश विलायत के बड़े बड़े लोगों से उसकी घनिष्ठता नहीं थी तो भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्टर बालफ़ोर और मिस्टर जोसेफ़ चैम्बरलेन उसका बहुत अधिक सम्मान करते थे।

जिस समय बकल को टाइम्स का सम्पादन सौंपा गया था उस समय आयर्लैंड में राजनैतिक आन्दोलन उग्र रूप धारण कर रहा था। उसको शान्त करने के लिए जब मिस्टर ग्लैडस्टन ने पार्लियामेंट में होम-रूल-बिल को उपस्थित किया तब बकल ने उसका घोर विरोध किया, जिसका फल यह हुआ कि उक्त बिल पास न हो सका और उदार-दल की हार होगई।

होम-रूल-बिल के पास न होने पर आयर्लैंड में घोर उपद्रव होने लगे। इनके विरुद्ध टाइम्स में लेख निकलने लगे और सारा दोष आयरिश राष्ट्रवादियों और उनके नेता पर मढ़ा जाने लगा। अन्त में राष्ट्रीय-दल के नेता मिस्टर पार्नेल ने पार्लियामेंट में टाइम्स-द्वारा लगाये गये अभियोगों की जांच के लिए एक कमिटी नियुक्त करने के लिए ज़ोर दिया। इस पर सरकार ने तीन प्रसिद्ध जजों का एक कमिशन नियुक्त कर दिया। इस कमिशन के सामने जांच का काम शुरू हुआ। यह बड़ा शानदार मुक़द्दमा था। इसमें दोनों ओर से प्रसिद्ध प्रसिद्ध बैरिस्टर पैरवी करते थे। सारी जांच में जजों को १२८ दिन लगे और अन्त में यह सिद्ध हुआ कि जिन पत्रों के आधार पर टाइम्स में लेख निकले थे वे जाली थे और उनका पर्नेल या उसके राष्ट्रीय-दल से कोई सम्बन्ध नहीं था।

इस प्रसिद्ध मुक़द्दमे में टाइम्स का बहुत अधिक धन व्यय हुआ। यहां तक कि पत्रों के स्वामियों को यह समझ पड़ने लगा कि बिना बाहरी सहायता लिये पत्र का कार्य सुचारुरूप से नहीं चल सकता। सन् १८९० में पत्र के मैनेजर मिस्टर जे० सी० मैकडालन की मृत्यु हो गई। यह व्यक्ति डिनेल के समय से टाइम्स का कार्य करता था। इसकी मृत्यु पर सर आर्थर बाल्टर ने चार्ल्स एम० बेल को मिस्र से बुला कर टाइम्स का मैनेजर नियुक्त किया। बेल वहां के एक व्यवसायी का पुत्र था। कुछ समय तक इसका सम्बन्ध एक फ़र्म से था, पर बाद को यह भी अख़बारी काम करने लगा था। जब सन् १८८२ में अँगरेज़ी बेड़े ने अलेक्ज़ेंड्रिया का विध्वंस किया था तब इसने उसका वर्णन छपा कर अख़बारी दुनिया में प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उस समय से इसका सम्बन्ध टाइम्स से बराबर बना रहा। लार्ड क्रोमर का इस पर अधिक विश्वास था। वे इससे सदा सलाह लिया करते थे। जब बेल टाइम्स का मैनेजर हो गया तब इसे वहां की परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ। इसने टाइम्स की आर्थिक स्थिति ठीक करने का यथासाध्य प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। इसी के समय में टाइम्स-कार्यालय से टाइम्स का कई रूपों में निकलना प्रारम्भ हुआ था। उसका साहित्यिक क्रोड़-पत्र एक दूसरे सम्पादक के हाथ से प्रकाशित हुआ। इसके सिवा और भी भिन्न भिन्न काम शुरू किये गये। इन नये उद्योगों में सफलता तो हुई, पर उतनी नहीं हुई जितनी आवश्यक थी। टाइम्स का लिटरेरीसप्लीमेंट मिस्टर वूस रिचमंड के निरीक्षण में अपनी श्रेणी में उच्च कोटि का पत्र गिना गया। इसके बाद व्यापारी और इंजिनियरिंग आदि के भी क्रोड़पत्र निकले। परन्तु लाभ टाइम्स के स्वामियों को इन्साइक्लोपीडिया का नया संस्करण निकालने से हुआ। पर उससे भी उस भयङ्कर व्यय की पूर्ति नहीं हुई जो उसे पूर्वोक्त मुक़द्दमे में करना पड़ा था।

यद्यपि मिस्टर बेल ने टाइम्स की आर्थिक स्थिति राह पर ले आने के लिए कुछ उठा नहीं रक्खा, तो भी पत्र का आर्थिक सङ्कट दूर नहीं हुआ। नौबत यह पहुँची कि सन् १९०७ के लगभग टाइम्स में घाटा होने लगा। यह हाल देख कर पत्र-स्वामी घबराये। अतएव पत्र के कुछ हिस्से बेंच देने की ठहरी। पहले राथचाइल्ड और उसके बाद पियर्सन से बातचीत की गई, परन्तु इन दोनों में किसी से सौदा तय नहीं हुआ। अन्त में लार्ड नार्थक्लिफ़ से बातचीत की गई। डेलीमेल तथा दूसरे पत्रों के द्वारा इन्होंने खूब धन पैदा कर लिया था।

टाइम्स की आर्थिक स्थिति राह पर लाने के लिए जब नार्थक्लिफ़ से बातचीत होने लगी तब दूसरे हिस्सेदारों में अधिकांश लोगों ने विरोध किया। वे समझते थे कि इनके हाथों में पत्र के चले जाने पर टाइम्स में अनेक परिवर्तन होंगे, जिनसे उसकी बँधी मर्यादा में बट्टा लगेगा। पर अन्त में यही ठहरा कि टाइम्स को नार्थक्लिफ़ के ही हाथों में सौंपना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लार्ड नार्थक्लिफ़ ने अपने जीवन के पिछले २५ वर्षों में अख़बारवालों के व्यवसाय में क्रान्ति उपस्थित कर दी। इस व्यक्ति में अद्भुत प्रतिभा थी। परिस्थिति की आवश्यकतायें, उनकी प्राप्ति के साधन तथा तत्सम्बन्धी व्यवहार-कुशलता यही तीन बातें ऐसी थीं जिनकी बदौलत इस व्यक्ति ने अपनी उन्नति की।

आन्सर्स नामक पत्र का प्रकाशन कर नार्थक्लिफ़ पहले पहल कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। इसके बाद डेलीमेल का जन्म हुआ और इसकी बदौलत वे असाधारण आदमी हो गये। सन् १९०८ में टाइम्स को भी अपने कब्ज़े में कर ये एक प्रकार से विलायती पत्रों के सर्वे-सर्वा हो गये। बात यह थी कि ये थे भी प्रतिभावान्। इनके अध्यवसाय और व्यवहार-बुद्धि की बदौलत समाचार-पत्रों की वह उन्नति हुई जिससे आज वे लाखों लोगों की एक आवश्यक और अनिवार्य वस्तु हो गये हैं। यदि टाइम्स का प्रबन्ध ऐसे महापुरुष को सौंप दिया गया तो यह कार्य सर्वथा उपयुक्त ही हुआ।

जैसा सन्देह किया गया था वही हुआ। छः महीने तक तो नार्थक्लिफ़ ने टाइम्स के सञ्चालन में कुछ भी हस्तक्षेप नहीं किया, किन्तु बाद को उसमें धीरे धीरे परिवर्तन होने लगे। नार्थक्लिफ़ के पहले पत्र के सञ्चालन का सारा अधिकार उसके मुख्य सम्पादक के हाथों में था। पत्र-स्वामी कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करता था, परन्तु यह बात नार्थक्लिफ़ के स्वभाव के विरुद्ध थी। वे चाहते थे कि टाइम्स का प्रचार बढ़े और विज्ञापन छाप कर उससे लाभ उठाया जाय। परन्तु टाइम्स की नीति यह थी कि राजनैतिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय विषयों को अपने पत्र में अग्रस्थान देकर वह अपनी प्रतिष्ठा को क़ायम रक्खे। इन परस्पर विरोधी सिद्धान्तों में सङ्घर्ष हुआ, जिससे सम्पादक ने अपने पद से सन् १९१२ में इस्तीफ़ा दे दिया।

सन् १९१२ के बाद से दस वर्ष तक टाइम्स पर लार्ड नार्थक्लिफ़ का नियन्त्रण रहा। इस काल में पाँच वर्ष तक मिस्टर ज्योफ़्री डासन ने टाइम्स का सम्पादन किया। ये मिस्टर बकल के मुख्य सहकारी थे। इनके समय में जब युद्ध प्रारम्भ हुआ तब ऐस्क्वीथ के विरुद्ध टाइम्स में लेख निकले, जिससे प्रधान मन्त्री को पदत्याग करना पड़ा। परन्तु नार्थक्लिफ़ टाइम्स को बिलकुल डेलीमेल का रूपान्तर करने के कुचक्र में थे। अतएव सम्पादक से उनकी जुड़ती भी नहीं पटती थी। क्योंकि वह पत्र की गौरव-रक्षा का अभिमानी था। अन्त में युद्ध के समाप्ति के बाद उसने त्याग-पत्र दे दिया और मिस्टर स्टेड सम्पादक बनाये गये। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का इनको पूर्ण ज्ञान है। अतएव इन्होंने इस विषय को अपने सम्पादन-काल में अधिक महत्त्व दिया था।

परन्तु जब हाल में लार्ड नार्थक्लिफ़ की मृत्यु हो गई तब टाइम्स का सङ्गठन फिर से किया गया। बहुत कुछ वाद-विवाद के बाद मिस्टर जान वाल्टर और मेजर जान जैकाब आस्टर ने नार्थक्लिफ़ के हिस्से फिर से ख़रीद लिये। डेली मेल से टाइम्स का सम्बन्ध बिलकुल तोड़ दिया गया और टाइम्स का सम्पादन-भार मिस्टर डासन को बुलाकर फिर सौंपा गया। इस प्रकार टाइम्स का अपने जन्मदाता के घराने से फिर सम्बन्ध हो गया और उसका सम्पादन उसकी नीति के अभिमानी सम्पादक के हाथों में होने लगा। यहाँ यह भी कह देना उचित है कि जो सुधार लार्ड नार्थक्लिफ़ ने टाइम्स में किये थे वे सर्वथा उपयोगी और समयानुकूल थे। विशेषकर टाइम्स का मूल्य घटा देने से अधिक सफलता हुई। सन् १९१२ में टाइम्स की ५३,००० प्रतियाँ छपती थीं और उसका मूल्य ३ पेंस था। सन् १९१४ में उसकी १,४५,००० प्रतियाँ छपने लगीं और १९२२ में उनकी संख्या १,८०,००० पहुँच गई और मूल्य ३½ पेंस हो गया। संसार-प्रसिद्ध टाइम्स की यही गौरव-गाथा है।

रामसेवक पाण्डेय

२—विवाह-मण्डन।

ज़िला उन्नाव में मौरावाँ नाम का एक छोटा क़स्बा है। यहाँ पण्डित भवानीप्रसाद पाठक नाम के एक सुकवि हो गये हैं। इनका उल्लेख शिवसिंह-सरोज तथा मिश्रबन्धु-विनोद में हुआ है। ये कविता में अपना नाम 'भावन' लिखते थे। इनका जन्म संवत् १८७० के लगभग हुआ था। छोटे बड़े सब मिला कर कविता के कोई २७ ग्रन्थ इन्होंने लिखे हैं। उनके अवलोकन से ज्ञात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है कि ये प्रौढ़ पण्डित तथा सुकवि थे। इनके रचित ग्रन्थों में एक को छोड़ कर शेष अप्रकाशित हैं, उनमें से कुछ अप्राप्य भी हैं। इनके कुछ ग्रन्थ स्थानीय नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्राप्त किये हैं। साथ ही उनके प्रकाशन का उद्योग भी सभा कर रही है। उन्हीं में से एक विवाह-मण्डन भी है। इसी के सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखा जा रहा है।

विवाह-मण्डन एक प्रकार का सामाजिक काव्य-ग्रन्थ है। है तो यह एक छोटा ग्रन्थ, परन्तु उसमें वैवाहिक कुरीतियों का दिग्दर्शन बहुत ही विस्तृत और विशद है। इस ग्रन्थ की जो हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है वह संवत् १९५१ की लिखी हुई है। यत्र तत्र के कुछ दोहों को छोड़ कर सारी रचना में कवित्त और सवैया छन्दों का प्रयोग किया गया है। अथ से इति तक समस्त विवाह-विधि इसमें आगई है। प्रारम्भ में साधु-पक्ष का वर्णन किया गया है। फिर आधुनिक कुरीतियों का दिग्दर्शन कराया गया है।

साधु-पक्ष के वर के सम्बन्ध में कवि कहता है—

श्रीवर हैं तेई जिन्हें दीन्ह्यों करतार रूप,
धन, कुल, विद्या, वय, जौन पुनि पावते।
पूत जे उदार के उदार निज बूतभरि,
पाँचि जिन्हैं पाँचक अयाँचक कहावते॥
शील सों लपेटे मेटे मद को विराजत हैं,
गाँव गाँव घर घर यश सब गावते।
इनते इतरते वै नितही बिसारिबे हैं,
ब्याह के न योग भूलि भौन को न भावते॥

असाधु-पक्ष के वर के सम्बन्ध में कवि कहता है—

पूँछि दिन नीको तेऊ टीको चढ़वाइ लेत,
देन की न बात-चीत गीत वैसे गावते।
माँगि पाँचि वस्तुन को झूँठि ही बढ़ाइ शोभा,
पालकी चढ़ाइ वैसे ब्याहन को आवते॥
देखि मुख मोरै कोऊ नैन को न जोरै नेकु,
रोइ कै विचारैं नेगी नेगु आधो पावते।
बीच निज माड़ो के पूत सूम राँड़ों के,
लीवर बहत तेऊ श्रीवर कहावते॥

दहेज के करार के सम्बन्ध में भावन जी की उक्तियाँ हृदयग्राही हैं। पूरा दहेज न मिलने पर वर-पक्ष का समधी कहता है—

काजु सरै इन बातन सों नहिं
वादि करै विनती तुअ काको।
होत कुलीन है दायज के हित
जान्यो कबों यह भेद न जाको॥
मेरो न रोग कबों टसकै
यह सौंह करौं छुओं माथ कका को।
लै हौं भराय करार ज़रूर कै
शील न मानहुँ एक टका को॥

ठीक है टका में कैसा शील। ज़रा आगे की भी उक्ति देखिए। कैसी सुहावनी है।

फूटिगे कान कपार पिरात है
आइगै जूड़ी औ ताप चढ़ी है।
रैरे अधीनता दीनता को सुनि
जानि दगा बड़ी भीति बढ़ी है॥
का विनती करिये हम आपकी
विद्या विशेष कछू ना पढ़ी है।
काम नहीं इन बातन से कुछ
दामन की हम चाटी कढ़ी है॥

अब कुलीनता की भी कुछ बानगी लीजिए। कैसा खाका खींचा गया है।

ब्राह्मण को काम नहीं पढ़त सुआ मैना है,
खेती को करत जौन तौन कुरमी काछी है।
क्षत्रिय सिपाही होत बनिया व्यापार करैं,
हम तो कुलीन पात्र तेगा है न बाछी* है॥
देह कै जनेउ दस बीस ब्याह कीन्हे यार,
कहाँ लौ घटाई कोऊ जाति अति आछी है।
यार सुनो साँची कहैं ब्याह ही हमारी सिद्धि,
हम ना विचारत हैं बारु है कि माछी है॥
बालपने में जिये ननिहाल,
सुज्वान भये ससुरारि गये ते।
वृद्धपने में जिये समधी बनि
रीति यही नहिं आजु नये ते॥

* बर्छी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्याहहिं ब्याह कुहाने मनावहिं
काम चलै नित आये गये ते।
और उपाय न रञ्चक है
हम लुञ्ज भये हैं कुलीन भये ते

खान-पान के विषय में भावन ने कहा है—

मांस में रञ्चक दोष न होत हैं
वेद कहैं बलिदान चढ़ाये।
भोग अयोग्य नहीं तरुणीन को
सुन्दर सन्तति के उपजाये॥
कोरिहु के किये ब्याह न दोष है
भावन जू बड़ दायज पाये।
मोक्ष में बाधन है अपराध
सुब्याहि कै ब्याधन के घर खाये॥ १॥
ब्याहि कै खात चमारहु के घर,
ब्याहे बिना न पियै द्विज पानी।
बात परे पै महा द्विजता
यह रीति प्रसिद्ध सबै जग जानी॥
काज विचारि विचारि करैं,
यह छोटेन की प्रभु पद्धति ठानी।
कौन कियो उन्हें लोक ते बाहेर,
'भूलनि' की तनया जिन आनी॥ २॥

उन्नाव ज़िले में रणजीत पुरवा नाम का एक प्रसिद्ध क़स्बा है। नवाबी के समय वहाँ सीतलप्रसाद त्रिवेदी चकलेदार हो गये हैं। कहते हैं कि भूलनि नाम की उनकी एक उपपत्नी थी। वह जाति की क़साइन थी। उससे उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई थी। उसका विवाह किसी कुलीन मिश्र के यहां हुआ था। उनके वंशधर इस समय भूलनशाही के नाम से प्रसिद्ध हैं। कवि ने अपना उपर्युक्त सवैया इसी बात को लक्ष्य कर लिखा है।

बारात में जो नादिरशाही होती है उसके सम्बन्ध में कवि कहता है—

बैलन को भांग लोई दाना भुस घास बेगि,
भेजि हौ जो सैगर कै कमर तब छोरि हैं।
टटुआ मसाला पावैं देखत के दूबर हैं
दक्षिणी पछाहीं आहीं रातिब न थोरि हैं॥
करुई तमाखू लाओ खानहू औ पीवन की।
प्यारे दमादहू ते बहलवान मोरि हैं।
ख़ास के रहन वारे खरे कनवजिया हैं
मिर्चवानि पीहैं जब बूटी ख़ूब घोरि हैं॥ १॥
भेजे न हरेरे पान थोर ही सुपारी खैर,
धाकर भसाकू लार भँगरा भराये हैं।
न्हान को न चौकी आई सपरन को देर भई
ब्याह नहिं कीन्हें वाद्य सोवत जगाये हैं।
अबहूँ ते चेत करु तिनको जो चूकि है रे
हेठ घुसि जैहैं जौन चन्दन लगाये हैं।
जानत न मोहिं की रिसहे हैं फलाने दत्त
सर्व नात गोतन को हाड़न हगाये हैं॥

प्रायः कुलीनों के यहां स्त्रियों को अनेक ताड़नायें दी जाती हैं। यह बात सहृदय मनुष्यों से छिपी नहीं है। दिहातों में तो ऐसे अत्याचार सदैव सुनाई देते हैं। इसी स्त्री-दुर्दशा को लक्ष्य करके भावनजी कहते हैं—

कीन्हीं वर्ष बीस खीस पातकी जनक जाके
रज के नहान कांरे नाइन नहावती।
दायज के नाते लाई डारि के सिधारो भाई,
पिता गहै पांय सखी सूपींह गहावती॥
मारती जिठानी बोली डोली ते उतरत ही,
नींदि नींदि ननदैं नित ठेनन सहावतीं।
'भवन' को न भावै भूलि कबहूँ न आवै मन,
तेऊ दिना द्वेक दुखी दुलही कहावती॥
भोग ही के योग हैं वियोग सों संयोग ही में
सोगभरी रोग बिन मरी ऐसी जीती हैं।
रहती मसूसै मारि चोर की सी नारि नित,
कहती न कछू पूँछे कृष्ण और श्वेती हैं॥
खान-पान पराधीन परमहंस की सी गति,
काहू से न बैर और काहू से न प्रीती है।
भावन जू सूमबाल निपट विहाल हाल,
आसन को लीलि लीलि स्वासन को लेती हैं॥

भावनजी जिस प्रकार अन्य कुरीतियों के विरोधी थे उसी प्रकार बाल-विवाह के भी परम शत्रु थे। इसी में दूसरे विषय का एक उदाहरण देकर इस प्रबन्ध को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त करता हूँ। देखिए कैसे मार्मिक शब्दों में इसका खण्डन किया है।

देत कबौं गारी रोय बाप पापकारी कहँ,
कबहूँ सरापती हैं मध्यवर खोटे को ॥
जन्म भरि आँखी कान कौनी भाँति मूँदे रहैं,
देख कर चित्त चहै छैलवर मोटे को ॥
भावन सुकवि कहैं कौनी भाँति भूजैं कुल,
काम वाम आठों याम ठाढ़ लिये सोंटे को।
सिगरे नरक साज भोग के करन काज,
कन्या को विवाहि देत जौन वर छोटे को ॥

शिवदुलारे त्रिपाठी (नूतन)

३—सम्मोहन-विद्या।

हमारे देश में मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण की बात साधारण है, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि यह विद्या अब भी यहाँ सुलभ है। हाँ, योरप में इसका प्रचार बढ़ रहा है। अभी हाल में मैंचेस्टर में एक नया दृश्य देखा गया था। एक डाक्टर ने सम्मोहन-विद्या के बल से एक आसामी से अपराध स्वीकार करवा लिया।

पाश्चात्य-साहित्य में कितनी ऐसी कथायें प्रसिद्ध हैं जिनमें सम्मोहन-विद्या का उल्लेख हुआ है। 'दी वेल्स' और 'ट्रिली' नामक नाटकों में सम्मोहन की दो विचित्र कथायें वर्णित हैं। उनके सिवा अन्य नाटकों और उपन्यासों में सम्मोहन की सहायता से चोरी और हत्या प्रभृति की कहानियाँ हैं। किन्तु सम्मोहन की सहायता से क्या ये सब काम सम्भव हैं? यहाँ इसी बात पर विचार किया जाता है।

किसी को सम्मोहित करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि वह हम पर पूरा पूरा विश्वास करे। यदि हम उसमें अपने प्रति विश्वास नहीं उत्पन्न करा सके तो हमारा प्रयत्न सफल नहीं होगा। इसके बाद हमको यह व्यवस्था करनी होगी कि चारों ओर निस्तब्धता सी फैल जाय। इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। बाह्य स्थिति को अपने अनुकूल कर लेने पर हमें ऐसी अवस्था में उसको लाना चाहिए जिससे हमारे सङ्केत के प्रभाव से वह अभिभूत हो जाय।

सबसे पहले हमने उसे यह आज्ञा दी, तुम अपने नेत्रों को ऊपर स्थिर करो। उसने वैसा किया। इससे एक निस्तब्धता का भाव आता है। थोड़ी देर आँखों को उसी तरह रक्खे रहने के बाद हमने उसे दोनों पलकों को अच्छी तरह मूँद लेने के लिए कहा। इसी समय हमको क्रमागत बोलना होगा। जिससे उसकी आँखें क्रमशः

सम्मोहन-क्रिया का दृश्य।

श्रान्त और उसके अङ्गप्रत्यङ्ग भी भारी हो जायँ। ये सब साधारण निद्रा के लक्षण हैं। सो जाने पर आँखों की यही अवस्था हो जाती है।

तब क्या होगा? यदि हम ठीक तरह से काम करेंगे तो उस आदमी का आपटिक नेत्र मज्जा-तन्तु श्रान्त होकर सो जायगा और उसकी विचार-शक्ति शिथिल पड़ जायगी। बिना हमारी आज्ञा के वह नहीं जाग सकता। हम उसकी दृष्टि, श्रवण और आघ्राण-शक्ति का भी दमन कर सकेंगे। हम जैसा चाहेंगे वैसा उससे करा सकेंगे। हमारी इच्छा के अनुसार वह किसी भी बात को भूल जायगा और फिर स्मरण कर लेगा। उसके प्रगुप्त मन की गति को हम अस्थायीभाव से रुद्ध कर सकेंगे। वह हमारी बात पर विचार न करेगा। 'चाय' को शराब कहने से वह मान लेगा और 'चाय' कहने से वह बेहोश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जायगा। हमारे कथनानुसार वह सुख और दुख का अनुभव करेगा। हम यदि कहें कि उसकी अँगुलियाँ सूज

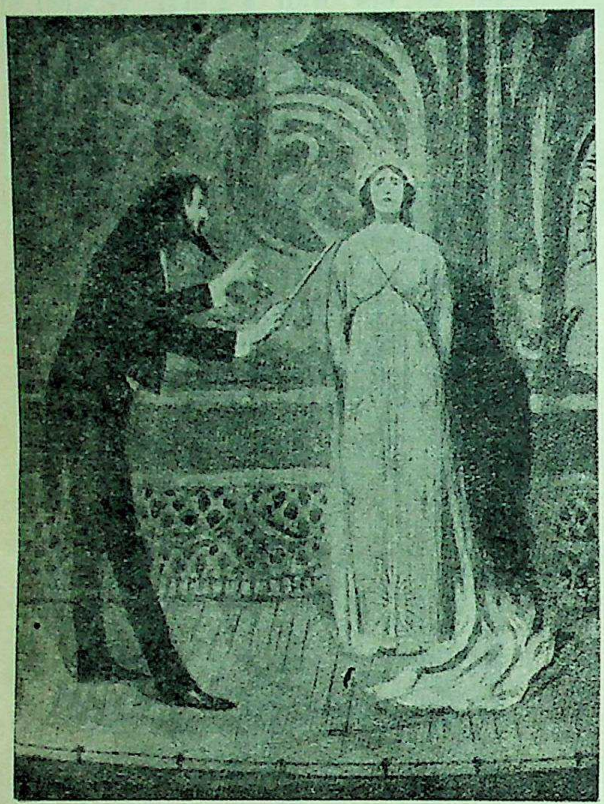

मैजिक वांड-द्वारा सम्मोहन क्रिया।

जायँ तो वे सूज जायँगी। इसी मानसिक अवस्था में उसे तीस फ़ुट दूर से 'टिक' 'टिक' शब्द सुनाई देगा। हमारे ही निर्देश से उसकी शक्ति लौट आयेगी।

सङ्केत का प्रभाव कितना होता है, यह एक सत्य घटना से प्रमाणित होता है। एक मनुष्य ने रास्ता चलते चलते देखा कि पाँव के नीचे से एक साँप चला जाता है। ठीक उसी समय उसके पैर में काँटा गड़ गया। थोड़ी देर में वह मर गया। उसके शरीर में साँप काटने के सब लक्षण थे, किन्तु डाक्टर के परीक्षा करने के बाद यह मालूम हुआ कि साँप ने उसे बिलकुल नहीं काटा था।

सम्मोहन से सङ्केत की तीव्रता और भी अधिक हो जाती है। किन्तु उस समय युक्ति-द्वारा चञ्चल मन अचेत रहने पर भी काम कर सकता है। इसी से कभी कभी हत्याकारी दोष स्वीकार करने के लिए हमारी आज्ञा को नहीं मानेगा। जो पक्के झूठे हैं वे सम्मोहनावस्था में भी सच न बोलेंगे। विशेष आत्मरक्षा का संस्कार अपराधियों के जीवन में (हृदय में) गड़ जाता है। सम्मोहित होने पर भी वे दोष कभी स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसे समय में कोई विपज्जनक प्रश्न करने से अपराधी सम्मोहित होकर जाग पड़ेगा या घोर निद्रा में पड़ जायगा, किसी प्रकार से भी सङ्केत का फल न होगा।

आज-कल अपराध स्वीकार कराने के लिए सम्मोहन-विद्या का व्यवहार हो रहा है। किन्तु ऐसी चेष्टा से कुछ विशेष लाभ होता नहीं दिखलाई देता। क्योंकि अपराधी या किसी भी व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध उसको सम्मोहित करना एक प्रकार से असम्भव है। विवश करने पर भी सम्मोहनकारी किसी को भी अचेत नहीं कर सकेगा। इसके सिवा बच्चे, पागल और बेवकूफ़ों पर सम्मोहन का प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि जिसका मन एकाग्र नहीं हो सकता उसको सम्मोहित करना सम्भव नहीं। दर्शन-मात्र से जिस किसी को वशीभूत कर लेना कहानियों में ही सम्भव है।

रामचन्द्र गोपाललाल दुबे

४—इष्टदेवी का चित्र।

चित्रकार ने ध्यान किया,
भक्ति-सहित आह्वान किया,
उस देवी को जिसे पूजता आया जीवन-भर मन में
पर जिसके पद चूम न पाया कभी कल्पना-दर्पन में
स्नेह-अश्रु का अर्घ दिया,
नम्र निवेदन निम्न किया,
मातः अङ्कित कर न सकूँ जो चित्र तुम्हारा इस कर में
दाग़ मिटा देना जीवन का वसुधा के अञ्चल पर से
कर ने कठिन प्रयास किया,
शिर पर गुरुतर भार लिया,
बनने लगा चित्र, लहराने लगा भावना का सागर
लगे घुमड़ने मन के नभ में आशा के घन उठ उठ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ लिखा लेखनी ने,
जी समझा उसको जी ने,
अङ्ग अङ्ग की अगम छटा पर चित्रकार बलिहार हुआ;
स्नात इष्टदेवी की स्वर्गिक शोभा में संसार हुआ।
आँख रह गई थी केवल,
डिगा आत्म-विश्वास अचल,
हो विह्वल उसने देवी की निर्जल उपासना ठानी,
बीते यों ही सात दिवस तब सुनी स्वस्थ नीरव बानी।
दृढ़ आशामय आश्वासन,
स्थिर करता था विचलित मन,
उसके सिर पर परम स्नेहमय फिरा अदृश्य हाथ कोई,
लगा रहा था शीतल उर से उसका व्यस्त माथ कोई।
होकर कम्पित करने स्थिर,
थामी त्यक्त लेखनी फिर,
धीरे धीरे लगा देखने चित्र ठीक उन नयनों से,
चित्रकार के मन में थे जो, पर अवर्ण्य थे वयनों से।
कल कटाक्ष, मृदु भाव वही,
गम्भीरता प्रभाव वही,
चित्रकार ने निर्निमेष दृग से देखा अपने को भूल,
थी देवी प्रत्यक्ष उसे, था अचर चित्र अब सचर-स्थूल।
बहुत दिनों पर हो सकरुण,
निर्गुण से हो गई सगुण,
उसके लिए महोपकार का भार दबी चेतना समस्त,
मूर्च्छित होकर चित्रकार वह पड़ा रहा दिन भर अव्यस्त।
फिर जब उसके नयन खुले,
उत्सुकता के अयन खुले,
पड़ा पार्श्व में था परिचायक चरम निपुणता का वह चित्र,
इष्टदेवि के शुभदर्शन का शुचि विस्मृति का चिह्न विचित्र।
स्वप्नावस्था में उस रात,
प्रकट हुई देवी अवदात,
बोली—लसी हुई थी ईषत् स्मित मुख पर लक्षित था प्यार—
चित्र बनाया है जो मेरा, दे दो उसे मुझे उपहार।
सङ्कट विकट पड़ा उस पर,
वह निस्तब्ध रहा क्षण भर,
फिर बोला निर्भय—इन चरणों पर रक्खा मन का उपहार,
उसमें है जो चित्र तुम्हारा उस पर बलि सारा संसार।

आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

५—हिन्दी-वर्णमाला में सुधार की आवश्यकता।

सरस्वती के किसी गताङ्क में पण्डित बदरीनाथजी भट्ट का एक लेख हिन्दी-वर्णमाला के सुधार पर निकल चुका है। आज इस लेख में एक और अनुभवी और मननशील विद्वान् के विचार पाठकों के सामने रक्खे जाते हैं। पण्डित गूजरमलजी एक रिटायर्ड सब एञ्जिनियर हैं। वे चिरकाल से नागरी-वर्णमाला को सुधारने के उपाय सोच रहे हैं। इस वर्णमाला को संक्षिप्त और सुगम बनाने के लिए जो जो उपाय और सुधार वे अब तक निश्चित कर चुके हैं वे सब उन्होंने मेरी प्रार्थना पर लेख-बद्ध कर दिये हैं। वे सुधार ऐसे हैं जिन पर विद्वानों को विचारपूर्वक अपनी सम्मति प्रकट करने की आवश्यकता है। पण्डितजी ने इस विषय में जो चिट्ठी मेरे पास भेजी है वह मैं बुद्धिमानों के विचारार्थ यहाँ देता हूँ—

"प्यारे महाशय सन्तरामजी,

नमस्ते—जब मैं पिछली बार जालन्धर में आपसे मिला था तो मैंने ज़िक्र किया था कि मैं हिन्दी-भाषा की लिपि को निर्दोष तथा सरल बनवाना चाहता हूँ। अब उसमें बहुत से अक्षर ऐसे हैं जो कि व्यर्थ और दोषों से भरे हुए हैं—यथा इ ई उ ऊ ए ऐ, इनकी जुदा जुदा शकल व्यर्थ है। अ के साथ ि ी ु ू े ै मात्रायें लगा देने से काम चल सकता है और वर्णमाला सरल और संक्षिप्त हो सकती है।—फिर देखो कि ऋ ॠ ऌ ॡ और विसर्ग (:) स्वरों में और ष* व्यञ्जनों में व्यर्थ हैं। हिन्दी में ये कभी काम नहीं आते। ङ और ञ भी व्यर्थ हैं। इनका काम अनुस्वार (ं) से चल सकता है। क्ष त्र और ज्ञ का वर्णमाला में रखना ही व्यर्थ है। क्ष और त्र तो

* ष का काम श या ख से चल सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वादशाक्षरी में आ जाते हैं। ज्ञ का काम ग्य दे सकता है; क्योंकि इसका शुद्ध उच्चारण, जो ज् + ञ है, दक्षिण देश के संस्कृत के पण्डितों के सिवा और कोई नहीं करता है। हिन्दी में सब जगह ग् + य बोला जाता है। अब अक्षरों के रूपों के दोष लिखता हूँ। ख ग और श के दो दो और ण के तीन अङ्ग जुदा जुदा होने से बालकों और बालिकाओं को तो आम तौर पर हमेशा और सुपठित (हिन्दी पढ़े हुए) पुरुषों को कभी कभी हाथ से लिखी हुई इबारत पढ़ने में ख़ास कर जब कि जल्दी में लिखा हुआ हो बहुत दिक्क़त होती है। इस कारण इनका रूप बदलना चाहिए। नमूने के तौर पर लिखा जाता है कि र और व के मिल जाने से ख बन जाता है और इस लेख (औरतोसबठीकहैपरयहथालीदोसेखालीहै) को दो तरह से पढ़ा जा सकता है, अर्थात्, "और तो सब ठीक है पर यह थाली दो सेरवाली है" या "दो से खाली है"। इसी प्रकार खाना को रवाना या खाना पढ़ा जा सकता है। फिर देखिए ग श और ण के पीछे (ॅ) ऐसी मात्रावाला वर्ण आ मिलने से (ॅ) का (ि) पढ़ा जा सकता है। और जल्दी लिखने में अक्सर ऐसा ज़रूर हो जाता है। इसी प्रकार ए का रूप रा से मिल जाता है अथवा ण की संयुक्त अवस्था में ण्य का राय पढ़ा जाता है। इसी वास्ते मैंने ख ग ण या ण और श पर एक तिरछी लकीर खींच कर उनका रूप बदल दिया है। स्वरों के रूप के वास्ते मैंने बिन्दु (ॅ) * * को मुख्य शून्य बीज या मूल मान कर उनका रूप भी तदनुसार बदल दिया है, क्योंकि आज-कल की प्रचलित वर्णमाला का अ कार बहुत भारी है और उसको लिखने में देर भी बहुत लगती है। फिर ऊपर लिखी तजवीज़ के अनुसार इस पर ा ि ी आदि मात्रायें बढ़ाने से इसकी बोझलता और भी अधिक हो जाती है। इसके सिवा अब जो अ कार का रूप प्रचलित है वह एक तरह से त्र और प्र की संयुक्त अवस्था है, और जल्दी में लिखे जाने से अक्सर ज् + प् + र या ज्प्र पढ़ा जाता है या पढ़े जाने की संभावना है। इस वास्ते हिन्दी में इसको बदल देने की प्रस्तावना की गई है। फिर यह बात है कि बिन्दु (ॅ) को असली रूप में रखने से जब आ का रूप या होगा तब इसका प्रचलित ण अर्थात् ण पढ़े जाने का डर है। और मैं जिन जिन अक्षरों का रूप बदलना चाहता हूँ उनकी कोई ऐसी शकल नहीं रखना चाहता जो कि अकेली या संयुक्त अवस्था में वर्तमान वर्णमाला के किसी दूसरे अक्षर की अकेली या संयुक्त अवस्था के रूप से मिलती-जुलती होवे। इसी वास्ते मैंने बिन्दु (ॅ) पर एक तिरछी लकीर कर दी है। इस रूप में इसके नीचे ु ू की मात्रायें लगाना भी आसान होगा। फिर एक बात और है। वर्णमाला में अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ आदि बारह स्वर रखने से कुछ फ़ायदा नहीं होगा। क्योंकि अब इनके रूप जुदा जुदा नहीं रहेंगे। इस वास्ते मेरी राय में जैसे कि क ख ग घ आदि व्यञ्जन अक्षरों के बीज या मूल रूप बजाय हलन्त अवस्था के पहले स्वर अ से संयुक्त अर्थात् अकारान्त कर वर्णमाला में पढ़ाए जाते हैं। इसी तरह से सारे स्वरों का बीज रूप बिन्दु (ॅ) या पहले स्वर अ कार से संयुक्त रूप में अकेला ही पढ़ाना चाहिए, बाक़ी के ११ रूप द्वादशाक्षरी में व्यञ्जनों के साथ मुहारणी में आजावेंगे। इन युक्तियों के अनुसार मैंने हिन्दी-भाषा के लिए एक नई वर्णमाला तजबीज़ की है।

इस वर्णमाला में सिर्फ़ ३१ अक्षर होंगे। सिवा अंगरेज़ी के यह सब भाषाओं की वर्णमालाओं से छोटी होगी, क्योंकि उसमें २६ ही अक्षर हैं। परन्तु उसमें ख घ च छ झ ठ ढ थ ध फ भ श का अभाव है। दो दो या तीन

* * बिन्दु (०), जिसको अँगरेज़ी में ज़ीरो (Zero) कहते हैं, शून्य अवस्था का सङ्केत है। नादविद्या में शून्य अवस्था का नाम आकाश या वायु-मण्डल है, जिससे शब्द पैदा होते हैं। सारे शब्दों में मुख्य स्वर हैं। स्वरों में मुख्य अकार है। इसी कारण हलन्त बिन्दु (०) को नाद या स्वर से शून्य माना गया है और फिर वर्णमाला के बाक़ी सब अक्षरों की भाँति इसके सिर पर भी पड़ी रेखा लगा कर इस (ॅ) शकल का बना दिया गया है। और प्रचलित विधि के अनुसार इसके नीचे हलन्त की रेखा न लगा कर इसको अकार का सङ्केत या अक्षर माना गया है, और ा ि ी ु ू आदि मात्रायें लगा कर आ इ ई उ ऊ आदि स्वरों के अक्षर बना दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन अक्षरों को मिला कर यह कमी पूरी की जाती है। फ़ारसी या उर्दू की वर्णमाला में ३६ अक्षर हैं, परन्तु भ थ ठ झ छ ध ढ घ का इसमें भी अभाव है और दो दो अक्षरों को मिला कर उनकी कमी पूरी की जाती है। गुरुमुखी में ३५ अक्षर हैं। सबसे बड़ी तो आज-कल की हिन्दी की वर्णमाला है, जिसमें ५२ अक्षर हैं। ग़ज़ब है कि नहीं? यह दोष रहते हुए भी आप लोग चाहते हैं कि हमारी हिन्दी-भाषा की लिपि का प्रचार हो जाय। भला यह कैसे हो सकता है? बच्चे हिन्दी की वर्णमाला को सीखने में छः छः महीने लगा देते हैं, परन्तु अँगरेज़ी या उर्दू की वर्णमाला को एक या दो महीने में ही सीख लेते हैं—

मेरी राय में तो आज-कल की प्रचलित हिन्दी-भाषा की वर्णमाला की द्वादशाक्षरी भी ठीक नहीं है, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है। विसर्ग (:) तो निकाल ही दिया जायगा। अनुस्वार की मुहारणी भी सिर्फ़ पहले स्वर अ कार पर लगाये जाने के बजाय बाक़ी नौ स्वरों पर भी लगा कर अलग पढ़ाई जानी चाहिए, क्योंकि वास्तव में अनुस्वार सब स्वरों पर लगाया जाता है। इस विधि के अनुसार द्वादशाक्षरी की मुहारणी का नाम दशाक्षरी मुहारणी होना चाहिए और उसका आरम्भ इस प्रकार होगा—

क का कि की कु कू के कै को कौ (ककार की मुहारणी)
कं कां किं कीं कुं कूं कें कैं कों कौं (कं की ,,)

इत्यादि अन्त तक—

इसके सिवा एक अक्षर का द्वित्व करने के वास्ते (जिसको फ़ारसी या उ में तशदीद कहते हैं) गुरुमुखी की भाँति अर्धचन्द्र ( ) की रेखा को प्रचलित करना चाहिए। इससे लिखाई में कमी होगी। मिसाल के तौर पर बच्चा को बचा लिखा जाय और र के नीचे जो अक्षर आवे उसका द्वित्व न किया जाय ... ... अर्थात् धर्म्म को धर्म लिखा जाय—

अब मुझे आप अपनी सम्मति देवें और पण्डित चेतरामजी तथा और विद्वानों की भी राय लेकर लिखें कि जिन जिन अक्षरों के रूप मैं बदलवाना चाहता हूँ और उनके जो जो रूप मैंने बदले हैं वे ठीक हैं कि नहीं या उनमें किसी प्रकार का नुक़्स तो नहीं है और जिन जिन अक्षरों को वर्त्तमान वर्णमाल में से निकाला गया है, इससे कोई हानि तो नहीं होगी।

एक बात का ख़याल रहे कि ऊपर लिखी जो तजबीज़ें मैंने की हैं वे सिर्फ़ हिन्दी-भाषा की लिपि या वर्णमाला के संशोधन के वास्ते हैं। संस्कृत या वेदाक्षरी की वर्णमाला पर हाथ डालने का मेरा मतलब नहीं है और न मैं इस योग्य हूँ—हिन्दी-भाषा की लिपि को सीख कर अगर कोई संस्कृत पढ़ना चाहे तो वर्त्तमान की ५२ अक्षरी वर्णमाला वह आसानी से जुदा सीख सकता है—परन्तु संस्कृत के जो शब्द हिन्दी में आम तौर पर बोल-चाल में बर्ते जाते हैं उनको हिन्दी की लिपि में लिखते हुए हिन्दी की संशोधित वर्णमाला के अनुसार लिखना होगा"।

मुझे आशा है कि हिन्दी-प्रेमी विद्वान् इस महत्त्वपूर्ण विषय पर अपने विचार प्रकट करने की कृपा करेंगे।

सन्तराम, बी० ए०

६—कविते! तेरा वास कहाँ?

तू फूलों में फूल रही?
किन पलनों में झूल रही?
किस उपवन में भूल रही।
ऐसे सुमन सुवास कहाँ?
कविते! तेरा वास कहाँ?
तू सावन की झड़ी? नहीं।
तू बूँदों की लड़ी? नहीं।
मणि-मुक्ता से जड़ी? नहीं।
इनमें वह रस-रास कहाँ?
कविते! तेरा वास कहाँ?
मणियों की मालाओं में।
ललना-ललित कलाओं में।
मुसकाती कलिकाओं में।
तेरा मृदु मधु हास कहाँ?
कविते! तेरा वास कहाँ?
सरके! लो परदे सरके।
झाँक झाँक मन! जी भरके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय-भवन में कविवर के।
ऐसा विमल विलास कहाँ ?
कविते ! तेरा वास कहाँ ?
वीणा-हित कर क्या हिलते।
बिखर बिखर स्वर क्या मिलते।
भवन भवन मुखड़े खिलते।
ऐसा कुसुम विकास कहाँ ?
कविते ! तेरा वास कहाँ ?

चमूपति 'चातक'

७—लेटन्ट लाइट कल्चर और भर्तृहरि-लाज।

गत योरपीय महाभारत ने जड़-संसार-वादियों (meterialism वालों) को बहुत कुछ सचेत कर दिया है। वैसे तो युद्ध के पहले से ही संसार के साधु-प्रकृति के लोग आध्यात्मिक-वाद के पीछे पड़े हुए थे, परन्तु जब से टाइटानिक के साथ जल-समाधि लेनेवाले महात्मा स्टेड और एक प्रख्यात अध्यात्मवादी के सुपुत्र वीर रेमण्ड ने जो समाचार अन्तरिक्ष की आत्माओं के बताये हैं, उनसे चकित होकर खोजी और भी विशेषरूप से आत्म-शक्ति की खोजों में लग गये हैं।

रेमण्ड-द्वारा अपने शोक-पीड़ित पिता को बताया हुआ समाचार कुछ वर्ष पहले छापा गया था। उसकी आत्मा ने सविस्तर मृत्यु के विवरण के अतिरिक्त अपने पिता को उनकी पुस्तक-रचना की सहायता के लिए जो जो बातें बतलाई थीं वे बहुत ही आश्चर्यकारक, मनोरञ्जक तथा बहुत कुछ अपनी प्राचीन पुराणों की बातों से मिलती-जुलती हैं। आत्मा का रूप, अन्तरिक्ष में आत्माओं के भ्रमण करने के श्रेणी-बद्ध स्थान, आपस के व्यवहार आदि का वर्णन जो रेमण्ड की आत्मा ने दिया था वह गरुड़-पुराण से बिलकुल मिलता-जुलता है।

अब तो अनेक लोगों ने इस विद्या में यहाँ तक तरक्की की है कि बहुत से सांसारिक कार्य भी सुलभ हो गये हैं। और धीरे धीरे इन बातों की खोज करते हुए विदेशी लोग आर्यसन्तानों के गुरु बनते जा रहे हैं। यह दिनों का फेर है कि जो पुण्यश्लोका आर्यभूमि आध्यात्मिक विद्या में विदेशों को विद्या-दान देती थी वही अब आज विदेशों से उसी अपनी विद्या का दान पाने के लिए लालायित हो रही है ! अमेरिका के हेमाटिज़्म और मेस्मेरिज़्म आदि विषयक योग की साधारण से साधारण क्रियाओं के सबक़ यहाँ के लोग वहाँ की क़ीमती क़ीमती पुस्तकों-द्वारा सीखने का प्रयत्न करते हैं और थोड़ा सा ही अभ्यास हो जाने पर दूसरों को उनका चमत्कार दिखाया करते हैं।

यह देश का दुर्भाग्य समझना चाहिए, जो इस विद्या की ओर अभी तक शिक्षित समाज का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। विदेशों में तो इस विद्या की परीक्षायें विद्यालयों में ली जाने के समाचार बराबर आते रहते हैं। वे लोग इस विद्या को सीख कर अनेकानेक प्रकार से इसका प्रयोग किया करते हैं।

यहाँ भी कुछ काल से इस विद्या का नये ढङ्ग से प्रचार होने लगा है। कई लोग इसे शौकिया सीखते हैं परन्तु फिर भी इसका प्रचार देश की विशालता देखते हुए कुछ नहीं के बराबर है। इसका कारण इस विद्या के विद्यालय अथवा संस्थाओं का अभाव ही है। हाँ, कुछ रोज़ से भारतवर्ष में दो-चार संस्थायें इस विद्या का प्रचार करने के लिए स्थापित हो चुकी हैं।

सबसे ज़्यादा प्रख्यात और सुचारुरूप से सञ्चालित संस्था "लेटेन्ट लाइट कल्चर" नामक है। यह संस्था टिनावेली, मद्रास में डाक्टर टी० आर० सञ्जीवी-द्वारा स्थापित की गई है। और दूसरी इसी की एक शाखा उज्जैन में है। इन्हीं दोनों संस्थाओं और इनके सञ्चालक का परिचय कराने का प्रयत्न यहाँ किया जा रहा है।

डाक्टर सञ्जीवी का जन्म सन् १८८० में टिनावेली के पास मनापदिया वीड़ू ग्राम में हुआ था, जो पहले कभी भारतीय राजा की राजधानी रह चुका है। आप मैसूर स्टेट के प्रधान मन्त्री के एक उच्च कुल की विदुषी महिला के वंशज हैं। आपकी शिक्षा टिनेवेली के हिन्दू-कालेज में समाप्त हुई थी। कालेज छोड़ने पर उदर-निर्वाहार्थ अनेक व्यवसाय किये और १९०० में Psychic and mental Science का अभ्यास प्रारम्भ किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर सञ्जीवी ने इस विद्या में अच्छी योग्यता प्राप्त कर लेने पर अनेक आविष्कार करके विदेशियों को मुग्ध कर रक्खा है। आप इसी की बदौलत १९०७ में अमरीका के Ohio State के Phremo Logical Society के लाइफ़ मेम्बर चुने गये थे। बाद में आप १९१० में वहीं अमेरिका की प्रख्यात यूनिवर्सिटी के द्वारा डाक्टर आव् लिटरेचर और मास्टर आव् आर्ट्स एन्ड ओरिएन्टल इस्टेडीज़ बनाये गये।

आप अमेरिका ह्यूमेन एसोशियेशन के संवाददाता तथा पेरिस की Societies vinitic के भी मेम्बर हैं। आप आध्यात्मिक संसार की प्रत्येक क्रिया से बहुत सम्बन्ध रखते हैं। आपने अपने परिश्रमों के फल-स्वरूप Latent light culture नामक संस्था खोल रक्खी है। आपने यह योगशाला १९०५ में स्थापित की थी। यह संस्था भारतवर्ष में अपने ढङ्ग की निराली और अग्रगण्य है।

अमरीका, अफ़्रीका, एशिया, और यूरोप आदि संसार के अनेक देशों के निवासी उपर्युक्त संस्था के सदस्य बनते जा रहे हैं। "कल्पक" नामक संस्था का मुख-पत्र भी निकाला जाता है, जिसे राजे, महाराजे, नीतिज्ञ तथा विज्ञानाचार्य आदि सब बड़े चाव से पढ़ते हैं।

डाक्टर साहब Psychic आविष्कारों के लिए बड़े प्रख्यात हैं और अग्रगण्य समझे जाते हैं। आपकी संस्था आपके योग्य विद्यार्थियों-द्वारा सुचारु रूप से चलाई जा रही है। बाहरवालों को चिट्ठी-पत्री-द्वारा भी शिक्षा दी जाती है। जिसका जी चाहे संस्था से उसके नियम आदि मँगाकर घर बैठे बैठे अभ्यास कर सकता है। आपकी शाला के सीखे हुए बहुत से शिष्यों ने इस संस्था की शाखायें खोल रक्खी हैं, जिनके द्वारा जनता को बहुत लाभ पहुँच रहा है। मध्यभारत में मुख्य शाखा उज्जैन में है। इस शाखा-संस्था का नाम है "भर्तृहरिलाज" और इसके सञ्चालक हैं पण्डित दुर्गाशङ्करजी नागर।

नागरजी ने लाइट कल्चर कोर्स की निम्नलिखित परीक्षायें पास करने के बाद इस आश्रम की स्थापना की है—

हिप्नाटिज़्म, मेस्मेरिज़्म, आकल्टिज़्म, थ्यूरापोर्टक्स और मेन्टेल हीलिंग।

नागरजी लाज का मुख्य कार्य है मेन्टेल हीलिंग। रोगियों के चित्र पर प्रभाव डाल कर उनको चङ्गा करना। आप अपनी संस्था-द्वारा अनेकों को शिक्षा-प्रदान कर रहे हैं और लाज की शाखाओं की स्थापना भी। आपके शिष्यों ने निम्नलिखित स्थानों में छोटी छोटी शाखायें खोल कर जन-सेवा का काम प्रारम्भ कर रक्खा है—

बड़नगर में	गेंदालाल जैन ने
इन्दौर में	डाक्टर बर्ड ने
कोटा में	जी० वी० टेंग ने
तिरोरा में	रामजी कुलेवर ने
देवास में	लक्ष्मीनारायण शर्मा ने

और नया खेड़ी में शालिग्राम प्रभृति काम कर रहे हैं। कोई भी अभ्यासी अपनी उप-जीविका का काम करते हुए इस परोपकार के कार्य में प्रवृत्त हो सकता है।

नागरजी की इस नूतन चिकित्सा से स्थानीय तथा दूरस्थ जनता लाभ उठा रही है। दूरस्थ लोगों का इलाज आप उनके फ़ोटो मँगाकर किया करते हैं। आपकी इन शक्तियों के कारण काम इतना बढ़ गया है कि अब आपने दीनहितैषी बन कर मास्टरी का धन्धा भी छोड़ दिया है। जीवन-निर्वाह के लिए केवल २ या ३ ट्यूशन करते हैं और सारा दिन ११ बजे रात तक किसी से १ पाई न लेते हुए दूसरों की हित-चिन्तना में लगे रहते हैं।

नागरजी के लाज की व्यवस्था देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अनेकानेक रोगों की चिकित्सा देख कर मुझे तो जादू का सा खेल प्रतीत हुआ। आपके इस लाज के मुख्य अध्यक्ष (पेटेन) हैं तरनतारन-निवासी पूर्ण योगिराज श्री सन्त सम्पूर्णसिंहजी। आप ही इस शाखा के साइकिल सर्किल के डायरेक्टर भी हैं।

नागरजी के एक प्रिय शिष्य श्रीयुत अब्दुलहुसैनजी बोहरा आपको बड़ी सहायता पहुँचाया करते हैं। बोहरा महोदय कपड़ों की एक विशाल मिल के स्वामी हैं। ये लक्षाधीश हैं। परन्तु स्वभाव से बहुत ही योग्य, पूर्ण सभ्य और परोपकारी हैं। ये लाज में बराबर समयानुसार आते और नागरजी को तन, मन, धन से सहायता पहुँचाया करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरजी के दूसरे एक मित्र हैं श्रीमान् श्रीमन्त कुबेरदासजी कल्याणजी सेठ, जिनकी कृपा से लाज का मुख-पत्र "कल्पक" भी निकलने लगा है। इन्हीं दो महाशयों की सहायता से तथा श्रीमन्त रोगियों के दिये गये दान से लाज का काम चल रहा है। नागरजी के इस अदम्य उत्साह की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। हम आशा करते हैं कि रियासत के प्रबन्ध-कर्त्ताओं का ध्यान शीघ्र ही आकर्षित होगा और तब सरकारी सहायता से इस संस्था का पाया और भी सुदृढ़ हो जायगा।

लेख बढ़ जाने के भय से विशेष विवरण न देकर यहाँ एक तालिका-मात्र दी जाती है। इससे इस बात का पता चल जायगा कि भयङ्कर रोग भी कितने थोड़े समय में यहाँ अच्छे हो जाते हैं।

रोगी का परिचय	रोग	रोग का समय	अच्छे होने का समय
कोटा के न्यू० सेक्रेटरी का लड़का	पेट की बीमारी	१ वर्ष के लगभग	३ मास
गिरीशचन्द प्रकाशवती तिवारी	थाईसिस	१ वर्ष	३ मास
मङ्गलीप्रसादजी तिवारी की लड़की		६ मास	,, ,,
और भतीजा धर्मपत्नी बाबू भैया लाल जैन बड़नगर	प्रेत-बाधा	१ वर्ष	२ मास
सा० देवास के महाराज	वात-रोग	कई मास	७ दिन
डाक्टर अमीर ख़ाँ	दिल बढ़ गया था		३ मास

मैंने जो पत्र-व्यवहार और रोगियों का रजिस्टर देखा था उससे पता चलता है कि लाज से वही लोग जीवन पा रहे हैं जो बिलकुल निराश हो जाते हैं। लकवा, प्रेत-बाधा, क्षय, उरक्षत, प्रदर और मन्दाग्नि के रोगियों को ज़्यादा लाभ पहुँचाया गया है। लाज से तीन पुस्तकें भी प्रकाशित की गई हैं। लाज का परिचय, भक्ति और तेज, दैव-शक्ति या मनःशक्ति (ये तीनों पुस्तकें बिना मूल्य वितरण की जाती हैं)।

भारतीय दीनहितैषी जनता से मेरी प्रार्थना है कि सब मिल कर लाज के लिए थोड़ी थोड़ी सहायता करें। दान देकर अथवा कल्पक पत्र की ग्राहक-संख्या बढ़ा कर। दूसरे जिन महाशयों को उज्जैन जाने का अवसर प्राप्त हो वे लाज का निरीक्षण अवश्य करें।

गणेशराम मिश्र

८—उद्गार।

भाई,

तुमको मैंने कोई पत्र नहीं लिखा। सामयिक समाचार के अनुसार मुझे इसका कारण बतलाना चाहिए। पर दुःख है, पत्र न लिखने का कोई भी उचित और सच्चा कारण मालूम नहीं पड़ता। बीमारी का बहाना तो कर नहीं सकता, क्योंकि वह केवल बहाना होगा। लोग लिखते हैं कि फ़ुरसत न थी, काम अधिक था। पर मैं सच कहता हूँ कि काम अधिक होने पर भी फ़ुरसत थी और काफ़ी थी। ७ घण्टे से कम किसी दिन मैं न सोया, बाहर घूमने में २ घण्टे बिता दिया करता था, बातें करनेवाले भी कम थे। इन सबके लिए समय था, फ़ुरसत थी तो क्या एक पत्र लिख देने के लिए समय नहीं था। इसी लिए फ़ुरसत नहीं थी यह बात मैं नहीं लिख सकता। झूठ क्यों लिखूँ कुछ लोग किसी फ़ायदे के लिए झूठ बोलना जायज़ समझते हैं, कुछ लोग झूठ बोलने की आदत को यह कह कर निर्मूल बनाते हैं कि अमुक मनुष्य भी तो झूठ बोलता है। कुछ लोग ऐसे भी हैं कि अपनी इस आदत को छिपाने के लिए झूठ बोलते हैं, नाराज़ होते हैं, मौक़े पर आँखें भी गीली कर देते हैं। पर मैं इन युक्तियों में से किसी से भी लाभ उठा नहीं सकता। तुम इसका भी कारण जानना चाहोगे, पर तुमको समझना चाहिए कि जो मनुष्य एक कारण बतलाने की शक्ति नहीं रखता वह दो कारण कैसे बता सकेगा।

फ़ुरसत थी, इच्छा भी थी, पर मैं तुम्हें आज तक पत्र न लिख सका। इसके कारण का निर्णय मैं तो नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता, यथार्थ कारण क्या है यह बतला नहीं सकता, फिर भी इस सम्बन्ध में मैं कुछ सोच ज़रूर सकता हूँ। तुम जानते हो, मनुष्य कठिन से भी कठिन काम करने के लिए तैयार हो जाता है, हथेली पर जान रख कर आगे बढ़ जाता है, पर किसी समय उसी मनुष्य से आसान से आसान काम भी नहीं होता। वह सोचता है कि छोटा काम है, इसके लिए बहुत परिश्रम भी करना न पड़ेगा। फिर भी वह चुप रहता है, उस काम को नहीं करता, उधर से लापरवाह हो जाता है। इसका कारण मानव-स्वभाव नहीं है। किन्तु वह है उत्कट इच्छा का अभाव, आवश्यकता का गहराई के साथ अनुभव न करना। जब मनुष्य को किसी बात की आवश्यकता प्रतीत होती है, जब किसी बात के लिए उसकी उत्कट इच्छा होती है, तब वह उस काम के लिए आगे बढ़ता है, चाहे वह बड़े ख़तरे ही का क्यों न हो। पर जहाँ ये बातें न हों, जिसके लिए उत्कट इच्छा न हो, जिसकी आवश्यकता मालूम न पड़े, उस काम को करने के लिए कोई भी तैयार नहीं होता। सम्भव है, तुम्हारे पास पत्र भेजने के लिए मेरी उत्कट इच्छा उत्पन्न न हुई हो, तुम्हें पत्र लिखना मैंने आवश्यक न समझा हो। अगर कुछ कारण होगा तो यही हो सकता है।

ऊपर का लिखा कारण यदि सच मान लिया जाय तो इससे तुम यह न समझ लेना कि मैंने तुम्हारी उपेक्षा की है अथवा तुम्हें भूल गया हूँ। इनमें एक भी बात नहीं है। यह लिख चुका हूँ कि मुझे फ़ुरसत बहुत रहा करती है और उस समय अक्सर तुम्हारी बातें सोचा करता हूँ। तुमसे मिलने के लिए कई बार निश्चय कर चुका हूँ, कम से कम १०।१२ बार तुम्हारे यहाँ आने की तैयारी भी कर चुका हूँ, क्या तुम इसे उपेक्षा कह सकते हो, क्या इसे तुम भूलना समझ सकते हो। फिर भी पत्र नहीं लिख सका।

एक दिन स्वयं ही मेरे सामने यह प्रश्न उपस्थित था। मैं बैठा था, दिन के दो बज गये थे, भोजन नहीं किया था, पानी बरसने लगा, उस समय पढ़ने-लिखने में चित्त नहीं लगता था। शायद तुमको मालूम न होगा कि ऐसे समय में सोचने-विचारने का काम बड़े अच्छे ढङ्ग से होता है, उस समय बुद्धि बड़ी पैनी रहती है, कठिन से कठिन बातों को समझती और उनका फ़ैसला कर देती है। अतएव उस समय मैंने भी इस प्रश्न का निर्णय कर देना निश्चित कर लिया। वह प्रश्न जिस रूप में उपस्थित था वह मैं तुम्हें बतला देना चाहता हूँ। प्रश्न था कि इतनी इच्छा रहने पर भी किसी बाधा-विघ्न के न होने पर भी मैं अपने प्रिय मित्र को पत्र क्यों नहीं लिखता। उत्तर मिला, साहस नहीं। पर यह उत्तर समझ में न आया, भला पत्र लिखने के लिए साहस की क्या ज़रूरत है। पत्र की न तो समालोचना होती है और न वह परीक्षक के ही पास भेजा जाता है। फिर साहस न होने की बात कैसी। फिर उत्तर मिला, भय हो सकता है, पर यह उत्तर भी ठीक न जँचा। एक मित्र एक मित्र से भय कर सकता है, इस बात का कुछ अर्थ ही नहीं है। इसी प्रकार के अनेक तर्क-वितर्क करने पर मैंने यह निश्चय किया कि अज्ञान के कारण मैं पत्र नहीं लिख रहा हूँ। वह अज्ञान वस्तु का नहीं, किन्तु ढङ्ग का है। मैं इस बात का निश्चय नहीं कर सकता था कि कैसे लिखूँ। लिखने की बातें बहुत हैं, उनमें कौन पहले लिखी जाय, किस विषय पर अधिक लिखा जाय, कौन संक्षिप्त लिखा जाय, आदि अनेक ऐसी बातें थीं जिनका निर्णय नहीं कर सकता था और इसी लिए आज तक मैं तुम्हें पत्र न लिख सका। इस बात को तुम बनावटी समझ सकते हो, पर मैं अनुमान से इसे ही सत्य समझता हूँ।

इसी प्रकार के कारण बतलाये जा सकते हैं। पर तुम समझ लो कि मैं इन कारणों का उल्लेख कल्पना और अनुमान के सहारे कर रहा हूँ। मुझे स्वयं ही इस बात का निश्चय नहीं है कि क्या कारण है। अतएव मेरी समझ से जो जो कारण हो सकते थे उनका उल्लेख कर दिया। इनमें तुम्हें जो अच्छा लगे उसे ही कारण समझ लो। यदि तुम इनमें एक को भी यथार्थ कारण न समझ सको तो मेरा यह कार्य तुम निष्कारण समझ लेना।

तुम सुन कर प्रसन्न हो सकते हो कि यहाँ आने पर हम लोगों की धारणा के विरुद्ध कार्य हुआ। तुम्हें स्मरण होगा, तुमने यहाँ आने के लिए रोका था, तकलीफ़ों का भय दिखाया था। पर यहाँ आने पर मेरा दूसरा अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ, अब ये तकलीफ़ें मुझे बहुत ही प्रिय मालूम होती हैं, प्रति क्षण का इनका मेरा साथ है, इनसे मेरा इस समय एक प्रकार की घनिष्ठता हो गई है। पहले हम और तुम जिन तकलीफ़ों की कल्पना करके व्याकुल हो जाते थे वे आज मेरी साथिन हैं। मुझसे इनका भय दूर हो गया है। तुम्हारा शिक्षित समुदाय जिन बातों को तकलीफ़ समझता है और मैं भी जिन्हें तकलीफ़ समझता था उन्हें मैं इस समय तकलीफ़ नहीं समझता। जिन कामों को करने से मुझे पहले तकलीफ़ होती थी, पहले जिन कामों को करनेवालों को दुःखी समझता था, वे काम मुझे स्वयं करने पड़ते हैं पर मुझे कोई कष्ट नहीं होता, इससे मैं अपने को दुःखी नहीं समझता। पर एक बात है, दूसरे जो मुझे बर्तन मलते देखते हैं, बाज़ार से सिर पर मोटरी लाते देखते हैं, कूएँ से पानी निकालते देखते हैं, वे दुःखी हो जाते हैं। क्यों, इसका पता नहीं। मैंने एक दिन पूछा तो उन्होंने बतलाया कि तुम्हारा दुःख देख कर हम लोग दुखी हो रहे हैं। ये अकारण बन्धु हैं। इनको मैं धन्यवाद देता हूँ। पर उनका यह दुःख निरर्थक है, क्योंकि जिसके लिए वे दुःखी हैं वह अपने को दुःखी नहीं समझता। यह बात मैंने उन लोगों से कही भी, पर वे नहीं मानते। वे कहते हैं कि नहीं, भला ऐसा भी हो सकता है। क्या करूँ, लाचार हूँ।

इसी के सम्बन्ध की एक और बात मैं तुम्हें सुनाना चाहता हूँ। एक दिन मैं अपने एक मित्र के घर से लौट रहा था साथ एक मित्र भी थे। दो अभी नहीं बजे थे। रास्ते में एक घर के पास एक बुढ़िया स्त्री को हम लोगों ने देखा। वह बर्तन मल रही थी। उसके सामने बहुत अधिक बर्तन पड़े थे। हम वहीं खड़े होगये। मैंने मित्र से कहा, इस समय तो आपको बड़ा कष्ट हो रहा होगा। उन्होंने कहा, क्या धूप से। मैंने कहा, नहीं इस बुढ़िया का कष्ट देख कर। वे चुप हो गये, कुछ उत्तर उन्होंने नहीं दिया। पुनः मैंने पूछा। उन्होंने कहा, इसका तो यह काम है। इसे कष्ट क्या होगा। तुमने शायद मेरा अभिप्राय समझ लिया होगा। मुझे बर्तन मलने में कष्ट नहीं होता, पर हितमित्रों को मेरे इस कार्य से कष्ट होता है, और जिसको कष्ट होता है उसके लिए किसी के भी हृदय में कष्ट नहीं होता। हम बर्तन मलते हैं अपने लिए, हमारे बर्तन मलने का फल हमारे लिए बहुत अधिक होता है, पर वह हमारे लिए कष्ट समझा जाता है। पर जिसके बर्तन मलने की माहवारी मजूरी दो तीन रुपयों से अधिक नहीं उसके लिए कोई दुःखी नहीं होता, वह उसका काम समझा जाता है। इस भेद का कारण मेरी समझ में नहीं आता। शायद तुम कुछ समझ सको, इसलिए लिख दिया है।

तुमको स्मरण होगा कि पहले मैं बहुत सी बातें सोचा करता था। स्कीमें बनाया करता था, मनसूबे बांधा करता था और बड़ा ही उत्साही था। इसको बहुत दिन बीत गये, आज भी उत्साह ज्यों का त्यों है, आज भी काम करने से मैं थकता नहीं, पर नई नई बातें सोचने की आदत नहीं। जान-बूझ कर मैंने यह आदत छोड़ दी है। इसका मार्ग बड़ा ही कठिन है, इसके लिए बहुत बड़े त्याग की आवश्यकता है। भाई, सच समझना मुझमें इतना बड़ा त्याग करने की शक्ति नहीं है। मैं अपने विचारों को सफल बनाने के लिए अपना मनुष्यत्व अर्पित नहीं कर सकता। शायद तुम भी मेरे इस विचार को पसन्द करोगे।

चलने के समय तुमने मुझे कतिपय कार्य-क्रम बतलाये थे और उनके प्रयोग की विधि भी बतलाई थी। तुमने कहा था कि इससे काम न चले तो इसका उपयोग करना। पर यहां आने पर मैंने तुम्हारी एक ही विधि का प्रयोग किया है और उसी से मेरे सब काम होते जाते हैं। कोई दिक्कत नहीं पड़ती, अतएव तुम्हारी दूसरी विधियां योंही पड़ी हैं। इस सम्बन्ध में मुझे एक बात का अनुभव हुआ है। वह मैं तुमको लिख देना चाहता हूँ। मैंने समझा है कि कोई विधि चाहे कितनी ही अच्छी क्यों न हो उससे तब तक लाभ नहीं होता जब तक दृढ़ता के साथ उसका उपयोग नहीं किया जाता। कोई भी विधि निरर्थक नहीं है, कोई भी उपाय निष्फल नहीं है। सिर्फ़ उनका प्रयोग करनेवाला होना चाहिए। अतएव मैंने एक ही विधि का उपयोग किया है। मैं जानता हूँ कि तुम लोगों का विचार इससे भिन्न होगा। उस दिन तुम्हीं ने न कहा था कि डाक्टर मुकुर्जी को बुलाओ, डाक्टर सरकार से कुछ न होगा। तुम समझते हो कि डाक्टर रोग दूर कर देता है, अतएव आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाक्टर पर तुम लोगों का अधिक विश्वास होता है। हम लोगों का विश्वास इससे भिन्न है। हम लोग समझते हैं कि रोग आपही आप दूर होता है, जो रोग दूर होनेवाला नहीं होता वह किसी से भी दूर नहीं होता। साधारण रोग आप ही आप अच्छे हो जाते हैं। डाक्टर का होना या न होना हम लोग ज़रूरी नहीं समझते। हां, डाक्टरों के कारण घरवाले कुछ निश्चिन्त रहते हैं, उन्हें भरोसा रहता है। इसे यदि लाभ समझा जाय तो यह लाभ कहा जा सकता है। यही बात विधि-विधानों के भी सम्बन्ध में है। तुम लोग उपाय निश्चित किया करते हो। आज एक बात कहते हो, कल दूसरी। बहुत दिनों से तुम लोग उपाय ही ढूँढ़ रहे हो, क्यों समझते हो इसी लिए कि तुम लोगों की समझ में उपायों की महत्ता है कर्त्ता की नहीं।

पता नहीं मैं क्या लिख गया, लिखना बहुत था। पर जब मैं लिखने बैठा उस समय न मालूम क्यों सब बातें भूल गईं। मैं लिखना कुछ और चाहता था, पर जो लिखना चाहता था वह लिखा न जा सका। जो बातें मैंने लिखी हैं उनको पढ़ने की तुम्हें फ़ुरसत है कि नहीं, यह मैं नहीं जानता। फिर भी इस कारण मैंने ये बातें लिख दी हैं कि कुछ लिखना चाहिए।

तुम्हारा ही एक सजातीय

विविध विषय।

१—म्यूनीसिपैलिटियों के कारनामे।

देश-भक्तों का कहना है कि स्वराज्य अर्थात् स्वतन्त्रता हो तो नरक में भी रहना अच्छा है, और पर-राज्य अर्थात् पर-तन्त्रता हो तो स्वर्ग में भी रहना अच्छा नहीं। मतलब यह कि स्वराज्य के बराबर सुख नहीं और पर-राज्य में रहने के बराबर दुःख नहीं। इसी से स्वाधीनता की इतनी महिमा है और इसी से स्वराज्य-प्राप्ति के लिए, कुछ समय से, इस देश में बड़ी बड़ी चेष्टायें होने लगी हैं। बात यहां तक पहुँची है कि स्वराज्य की स्थापना के लिए वर्तमान गवर्नमेंट के साथ असहयोग किया जा रहा है और कालान्तर में उसके लगाये गये कर तक न देने की तैयारियां हो रही हैं।

हर काम के लिए थोड़ी-बहुत योग्यता अवश्य दरकार होती है। खेती करनेवाला यदि खेती का काम नहीं जानता, व्यापार करनेवाला यदि व्यापार-कौशल नहीं रखता, अध्यापक बननेवाला यदि अध्यापन-कार्य्य नहीं कर सकता, तो उसे अपने काम में कभी सफलता नहीं हो सकती। इसी तरह जो मनुष्य अपने घर का भी साधारण काम-काज अच्छी तरह नहीं कर सकता वह भला ज़मींदारियों का प्रबन्ध कैसे कर सकेगा। उसे दस-पांच मौज़ों की भी ज़मींदारी यदि मिल जाय तो वह उसे चौपट किये बिना न रहेगा। और यदि कहीं उसे एक तहसील, एक ज़िले या एक सूबे का आधिपत्य मिल जाय तो अनर्थ की परम्परा ही उपस्थित हो जायगी। ऐसी दशा में दुर्व्यवस्था और दुर्गति के सिवा और कुछ न होगा।

गवर्नमेंट ने यद्यपि म्यूनीसिपैलिटियों का क़ानून बना दिया है और उसके कर्तव्यों का नियमन कर दिया है, तथापि एक हद के भीतर उनके मेम्बर अपना काम-काज करने के लिए स्वतन्त्र हैं। अर्थात् गवर्नमेंट ने उन्हें स्थानिक स्वराज्य दे रक्खा है। परन्तु इस अत्यन्त छोटे स्थानिक स्वराज्य को वे लोग किस तरह चलाते हैं, यह देख कर बड़ा दुःख होता है। मामूली समझ का भी आदमी यह जानता है कि आमदनी से अधिक ख़र्च न करने ही से उसका घर-बार बिकने से बच सकता है। चाहिए तो यह कि आमदनी से ख़र्च सदा कम ही हो, तथापि वह उससे बढ़ना तो कदापि न चाहिए। परन्तु यह इतनी मोटी बात कितनी ही म्यूनीसिपैलिटियों के ध्यान में नहीं आती। वे लाखों रुपये की क़र्ज़दार हैं। किसी किसी ने तो दस-दस बीस-बीस दफ़े गवर्नमेंट से क़र्ज़ लिया है, जिसके बोझ से वे अब तक दब रही हैं। किसी ने सोचा, अपने शहर में नल द्वारा पानी पहुँचाना चाहिए। पर रुपया पास नहीं। अच्छा, लो क़र्ज़। किसी ने कोई बाज़ार बनवाना चाहा। अच्छा, लो क़र्ज़। किसी ने शहर की गलियों में पत्थर जड़ाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहा। अच्छा, लो क़र्ज़। इस सूबे में कुछ कुछ यही हाल हो रहा है। बिना कल के पानी और बिना पत्थर की पटिया जड़ी गलियों के इन्हें कल ही नहीं। म्यूनीसिपैलिटी का चाहे बाल बाल बिक जाय, चाहे सबसे अधिक आवश्यक शिक्षा-दान का कुछ भी प्रबन्ध न हो सके, पर कल का पानी ये ज़रूर पिलावेंगे। जैसे अब तक हमारे बाप-दादे वाटर-वर्क्स के बिना प्यासे ही मर गये हों। ये लोग अर्थ-शास्त्र के इस मूल सिद्धान्त के बिलकुल ही क़ायल नहीं—

इदमेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता।
अयमेव परो धर्म्मो यदायान्नाधिको व्ययः॥

और क़ायल हों भी कैसे। कितनी ही म्यूनीसिपैलिटियों के अनेक मेम्बरों के उदार-हृदयों में स्वार्थ का साम्राज्य जो है। वह उन्हें कुछ करने भी दे। नरोत्तमनगर के म्यूनीसिपैलिटी का एक कल्पित उदाहरण लीजिए—

इस म्यूनीसिपैलिटी के चेयरमैन (जिसे अब कुछ लोग कुर्सीमैन भी कहने लगे हैं) श्रीमान् बूचाशाह हैं। बाप-दादे की कमाई का लाखों रुपया आपके घर भरा है। पढ़े-लिखे आप राम का नाम ही हैं। चेयरमैन आप सिर्फ़ इसलिए हुए हैं कि अपनी कारगुज़ारी गवर्नमेंट को दिखा कर आप राय-बहादुर हो जायँ, लाट साहब से हाथ मिलाने का सौभाग्य आपको प्राप्त हो जाय, और ख़ुशामदियों से आप ८ पहर ६४ घड़ी सदा घिरे रहें। म्यूनीसिपैलिटी का काम चाहे चले, चाहे न चले—आपकी बला से। इसके एक मेम्बर हैं, बाबू बख़्शिशराय। आपके साले साहब ने फ़ी रुपया तीन चार पंसेरी का भूसा (म्यूनीसिपैलिटी को) देने का ठेका ले रक्खा है। आपका पिछला बिल १० हज़ार रुपये का था। पर कूड़ागाड़ियों के बैलों और भैंसों के बदन पर सिवा हड्डी के मांस नज़र नहीं आता। सफ़ाई के इन्स्पेक्टर हैं लाला सतगुरप्रसाद। आपकी इन्स्पेक्टरी के ज़माने में, हिसाब से कम तनख़्वाह पाने के कारण, मेहतर लोग ३ दफ़े हड़ताल कर चुके हैं। नज़ूल ज़मीन के एक टुकड़े का नीलाम था। सेठ सर्वसुख उसके ३ हज़ार देते थे। पर उन्हें वह टुकड़ा न मिला। उसके ६ महीने बाद म्यूनीसिपैलिटी के मेम्बर पण्डित सत्यसर्वस्व के ससुर के साले के हाथ वही ज़मीन १ हज़ार पर बेच दी गई। किया क्या जाता? उस समय और किसी ने इससे ज़ियादह दाम ही न लगाये! इस म्यूनीसिपैलिटी की सीमा में १० मदरसे हैं। उनकी देख-भाल का काम एक मेम्बर साहब के सिपुर्द है। आपका शुभ नाम है—ठाकुर वंशपालसिंह। एक बार एक बैठे ठाले ने पता लगाया तो मालूम हुआ कि कुल ३० मुदर्रिसों में से २६ मुदर्रिस ठाकुर साहब के रिश्तेदार निकले—कुछ मातृपक्ष के, कुछ पितृपक्ष के।

इस दशा में भी यदि म्यूनीसिपैलिटियों का काम सुचारु रूप से चल जाय तो समझना चाहिए कि सूर्य शीतल हो गया और चन्द्रमा आग उगलने लगा। यह हाल सभी म्यूनीसिपैलिटियों का नहीं, ग़नीमत इतनी ही है।

हमारे सामने, इस समय, म्यूनीसिपैलिटियों की वार्षिक रिपोर्ट पड़ी है। उसका सम्बन्ध उस वर्ष से है जो ३१ मार्च १६२२ को ख़तम हुआ था। उसे गवर्नमेंट ने ही प्रकाशित किया है। उसके अनुसार इस सूबे में ८५ म्यूनीसिपैलिटियाँ हैं। उनमें से २८ अर्थात् एक तृतीयांश क़र्ज़ में डूबी हुई हैं। अब तक वे करोड़ों रुपया क़र्ज़, विशेष करके गवर्नमेंट से, ले चुकी हैं। ३१ मार्च १६२१ में इस क़र्ज़ का टोटल १ करोड़ ... लाख ३० हज़ार रुपया था। १६२२ में १४ लाख ४४ हज़ार रुपया नया क़र्ज़ लिया गया। इस तरह क़र्ज़ की कुल रक़म का टोटल १ करोड़ १६ लाख ७५ हज़ार रुपया हो गया। उसमें से दिया गया केवल ६ लाख २० हज़ार। अतएव १ करोड़ १० लाख ... हज़ार देना बाक़ी रहा। कुछ म्यूनिसिपैलिटियाँ तो ऐसी हैं, जो लिये गये क़र्ज़ का सालाना सूद तक अदा नहीं कर सकतीं। अकेली इस मद में उन्हें कोई १ लाख रुपया, ३१ मार्च १६२२ को, देना बाक़ी था। यह है स्वराज्य के दावीदार हम लोगों की कारपरदाज़ी! ... म्यूनीसिपैलिटी जितनी ही बड़ी है, अतएव जिसकी आमदनी जितनी ही अधिक है, वह उतना ही अधिक क़र्ज़ लेकर अपना काम चलाती है। बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, आगरा, लखनऊ, मन्सूरी आदि की म्यूनीसिपैलिटियों ने क़र्ज़ लेने में बड़ी ही बहादुरी दिखाई है। बनारस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३ दफ़े, कानपुर ९ दफ़े, इलाहाबाद ८ दफ़े, आगरा २० दफ़े, लखनऊ २३ दफ़े, और मन्सूरी २४ दफ़े क़र्ज़ ले चुकी है!

म्यूनीसिपैलिटी के मेम्बर बनने में तो लोग बड़ी दिलचस्पी दिखाते हैं, पर मीटिङ्ग में उपस्थित होने की बहुत कम लोग कृपा करते हैं। रिपोर्ट के साल २१९ मीटिङ्ग में इ ने कम मेम्बर आये कि कोरम ही पूरा न हुआ। इससे काम ही न हो सका। कोरम पूरा भी होता है तो भी सब न सही, अधिकांश भी मेम्बर नहीं आते। १५ बोर्डों की औसत हाज़िरी तो ५० फ़ी सदी से भी कम पड़ी। इससे स्पष्ट प्रकट है कि बहुत लोग सिर्फ़ मेम्बर बन जाने ही को सब कुछ समझते हैं; काम हो चाहे भाड़ में जाय।

रिपोर्ट के साल म्यूनीसिपैलिटियों की आमदनी १ करोड़ १२ लाख से बढ़ कर १ करोड़ २६½ लाख हो गई। और ख़र्च? वह भी बढ़ा। वह एक करोड़ १८¾ लाख से १ करोड़ ४७¼ लाख हो गया। समझे साहब! वह इतना बढ़ा कि आमदनी से कोई २१ लाख अधिक हो गया! आप पूछेंगे कि फिर काम कैसे चलेगा या चला होगा। अजी, उसकी क्या चिन्ता? क़र्ज़ लेने या सरकार के दरबार में भिक्षा माँगने से जैसे अब तक काम चलता आया है वैसे ही अब भी चलेगा। सरकार भी तो जी खोल कर क़र्ज़ लेती है और अब तक अरबों रुपया ले भी चुकी है। म्यूनीसिपैलिटियाँ भी तो उसी की चेली-चाटियाँ हैं।

रिपोर्ट में उल्लिखित और बातों पर कुछ कहने की विशेष आवश्यकता नहीं। इसलिए कि जो अपना ख़र्च आप ही नहीं सँभाल सकता वह सड़कें बनवा कर, सफ़ाई रख कर, दवा-पानी पहुँचा कर, शिक्षा-प्राप्ति के साधन सुलभ करके दूसरों को कहाँ तक फ़ायदा पहुँचा सकेगा, मरता क्या न करता। लष्टम-पष्टम किसी तरह ये काम हो रहे हैं।

जब तक म्यूनिसिपैलिटियों में सुशिक्षित, सुयोग्य, कार्य्यपटु और निःस्वार्थ मनुष्य मेम्बर बन कर न जायँगे तब तक उनकी उन्नति न होगी। अभी हाल में जो नया चुनाव हुआ है उसमें काँग्रेस की तरफ़ से खड़े होकर, और बड़े बड़े आस्फालन तथा प्रचारण करके, अनेक लोग उनमें पहुँचे हैं। परन्तु उनमें भी कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जिनसे विशेष आशा नहीं। किसी के पास समय नहीं, किसी में योग्यता नहीं, किसी में कार्य्य-दक्षता नहीं, किसी ने काफ़ी शिक्षा नहीं पाई। सो जो दोष अब तक के मेम्बरों में थे वही इन नये मेम्बरों में से भी कुछ में विद्यमान हैं। तथापि कई म्यूनिसिपैलिटियों के नये मेम्बरों ने अपनी योग्यता का अच्छा परिचय देना आरम्भ किया है। उदाहरणार्थ बनारस और इलाहाबाद की म्यूनिसिपैलिटियों के मेम्बरों ने। आशा है इस बार के सङ्गठन से पहले की बिगड़ी हुई अनेक म्यूनिसिपैलिटियों में से कुछ की दशा सुधर जायगी।

मुख्य बात यह है कि जब तक योग्य जन निःस्वार्थ-भाव से प्रेरित होकर म्यूनिसिपैलिटियों में न जायँगे और अपना समय ख़र्च करके श्रमपूर्वक काम न करेंगे तब तक विशेष फल-प्राप्ति की आशा कम है।

२—संयुक्त-प्रान्त की आबादी का लेखा।

कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में यह तो लिखा मिलता है कि उस ज़माने में भी कभी कभी मनुष्य-गणना होती थी, पर इस बात का पता नहीं चलता कि किस तरह के नक़शे बनाये जाते थे और उनकी सहायता से किन किन विषयों की ज्ञान-प्राप्ति की चेष्टा की जाती थी। इसका भी पता नहीं कि कितने साल बाद यह गणना होती थी और यथानियम और यथा-समय होती भी थी या नहीं। आज-कल के सभ्य और सुशिक्षित देश इस गणना-कार्य्य को जिस ढङ्ग और जिस योग्यता से करते हैं उस ढङ्ग और उस योग्यता से यह काम पुराने-ज़माने में न होता रहा होगा, क्योंकि तब आज-कल जैसे साधन भी न थे और यह काम उतना महत्त्व-पूर्ण भी समझा न जाता था। मनुष्य-गणना की वर्तमान प्रणाली तो सर्वथा पश्चिमी देशों ही की कृपा से अस्तित्व में आई जान पड़ती है। उसने तो अब कला का जैसा रूप धारण कर लिया है वह निर्दिष्ट काला-परान्त, एकही दिन (दिन क्यों, रात को), एक ही समय में सर्वत्र होती है। उसके नक़शे ऐसे बनाये जाते हैं जिनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ानापुरी होने से और अनेक विषयों के सिवा स्त्री-पुरुषों की, बच्चों, वयस्कों और बूढ़ों की, तथा सभी उम्र की विधवाओं और रँडुवों की संख्या मालूम हो जाती है। कितने स्त्री, पुरुष और बच्चे साक्षर हैं और कितने निरक्षर तथा कितने शिक्षा पा रहे हैं; सब तरह के पेशे करनेवाले कितने हैं, हर जाति और हर धर्म्म के अनुयायियों की संख्या कितनी है, इस तरह की और भी सैकड़ों बातें उनसे मालूम हो जाती हैं। इन बातों के ज्ञान से देश, प्रान्त या ज़िले की यथार्थ अवस्था उसी तरह आँखों के सामने आ जाती है जिस तरह कि आईने के सामने रक्खी जाने से किसी चीज़ का प्रतिबिम्ब तद्वत् दिखाई देता है।

इस देश की गवर्नमेंट हर दस साल बाद मनुष्य-गणना करती है। इसके लिए बहुत पहले से बड़े बड़े आयोजन होते हैं। प्रान्त प्रान्त में इसके दफ़्तर खुलते हैं। फिर उन सबके ऊपर एक और दफ़्तर खुलता है, जो हर प्रान्त के नक़शों और रिपोर्टों का अध्ययन करके सारे देश की मनुष्य-गणना का फल प्रकाशित करता है। हर प्रान्त, हर ज़िले, यहाँ तक कि हर मौज़े की गणना का लेखा तैयार किया जाता है। वह सब बड़ी बड़ी पुस्तकों के रूप में प्रकाशित होता है। प्रान्तीय पुस्तकों के आकार बड़े और ज़िलों की पुस्तकों के छोटे होते हैं। सारे भारत के लेखे की पुस्तकें तो और भी बड़ी और मोटी होती हैं। वे कई जिल्दों में निकलती हैं। रिपोर्टें अलग निकलती हैं, नक़शे अलग।

पिछली मनुष्य-गणना, दस वर्ष बाद, मार्च १९२१ में हुई थी। उसकी रिपोर्टें अभी तक अलग तो शायद नहीं निकलीं, पर उसका फल इस प्रान्त की शासन-रिपोर्ट में, अभी हाल ही में, प्रकाशित हुआ है। उसमें अपने प्रान्त की दशा का नहीं, दुर्दशा का, बड़ा भीषण चित्र दिखाया गया है। उसे देख कर रोमाञ्च हो आता है। इसलिए कि दस वर्ष में यहाँ की आबादी बढ़ने के बदले घट गई। और घटी भी थोड़ी नहीं, लाखों की संख्यामें घट गई! जिस दिन मनुष्य-गणना हुई थी उस दिन इस प्रान्त की आबादी ४,६५,१०,६६८ थी अर्थात् १० वर्ष पूर्व, १९११ ईसवी में, जितनी थी उससे १४,८६,६९६ कम! न कोई युद्ध हुआ, न कोई बहुत व्यापक दुर्भिक्ष ही पड़ा। फिर इतनी कमी क्यों? कमी का कारण सरकार ने बताया है रोग। १९१८ ईसवी के अकेले इन्फ़्लुयंज़ा ने ही कोई २८ लाख मनुष्य मार डाले। हैज़ा, प्लेग, बुख़ार आदि ने भी क़हर मचाया। फिर मनुष्य-संख्या घटे न तो क्या हो। बेचारी स्त्रियों पर तो और भी आफ़त आई। पहले प्रति एक हज़ार पुरुषों के पीछे स्त्रियों का औसत ९१५ था। अब ९०१ ही रह गया। सो पुरुषों की संख्या यहाँ यों भी अधिक थी, अब और भी अधिक होगई। शायद अब की एक हज़ार पुरुषों में कम से कम १०० को अविवाहित ही रहना पड़ेगा; क्योंकि स्त्रियों की संख्या ही उतनी कम हो गई है। मनुष्यों की सबसे अधिक कमी इस प्रान्त के पश्चिमी ज़िलों में हुई। ३६ ज़िलों की आबादी कम हो गई। केवल १२ की बढ़ी।

मनुष्य-गणना के नक़शों से मालूम हुआ कि यहाँ रँडुवे पुरुष और कुँवारी लड़कियाँ तो अधिक हैं, विवाहित स्त्री-पुरुष कम। कारण? अनुमान तो यही कहता है कि घर में बन्द रहने, दवा-पानी का ठीक प्रबन्ध न हो सकने और निर्धनता के कारण पौष्टिक भोजन कम मिलने से विवाहिता स्त्रियों के प्राण गये; अतएव रँडुवे अधिक हो गये। रही कुँवारी लड़कियाँ, सो कठोर वैवाहिक प्रथाओं और धन की कमी ने उन्हें गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाने से रोक रक्खा।

इस इतने प्राणनाश का हाल सुन कर, पाठक शायद पूछ बैठें कि सरकार तो अपने को जनता का माँ-बाप कहती है। उसने सब लोगों के इलाज का ठीक ठीक प्रबन्ध क्यों न किया। प्रबन्ध ठीक होने से कुछ रोगी तो अवश्य ही बच जाते। इसका उत्तर यह है कि सरकार किसकी किसकी दवा का प्रबन्ध करे? क्या वह गाँव गाँव अस्पताल खोले? उसके पास इतना रुपया कहाँ? वैद्यों और हकीमों के इलाज की प्रणाली वैज्ञानिक नहीं। उससे मरने का ख़तरा अधिक है, जीने की आशा कम। अतएव वह बेचारी लाचार है। लोग मरें तो अपने दुर्भाग्य से और जियें तो अपने सौभाग्य से। इस पर आप कह सकते हैं कि जो यह दशा है—जो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता के रोगनाश का यथोचित प्रबन्ध नहीं कर सकती—तो फिर इस प्रान्त पर शासन क्यों करती है? क्यों नहीं वह शासन का भार और किसी को अपने ऊपर लेने देती? यह सवाल आपका है तो माकूल, पर जवाब इसका यदि कुछ हो सकता है तो वह है—हः हः हः हः हः।

अच्छा तो और बातें सुनिए—

नीचे यह दिखाया जाता है कि १९११ और १९२१ में फ़ी दस हज़ार आदमियों में से भिन्न भिन्न धर्म्मों के अनुयायी कितने थे—

	१९११	१९२१
हिन्दू	८,४७८	८,४४८
मुसलमान	१,४३८	१,४४६
क्रिश्चियन	३८	४४
आर्य	२९	४४

रोग आदि के कारण हिन्दुओं की जितनी कमी होनी चाहिए थी उससे भी अधिक कमी हो गई। वह मामूली कमी से भी ९ फ़ी सदी अधिक है। इसका कारण रिपोर्ट के लेखक यह बताते हैं कि हिन्दुओं में से कुछ तो आर्य्यसमाजी हो गये और कुछ क्रिश्चियन। हैं भी तो हिन्दू बहुत ज़ियादह। चखने दीजिए और मज़हबों का भी मज़ा। पर मुश्किल तो यह है कि ये लोग और मज़हबवालों को अपने मज़हब का मज़ा नहीं चखने देते। यह अनुदारता अथवा स्वार्थपरता अच्छी नहीं। हिन्दू शायद अपनी "वसुधैव कुटुम्बकम्" वाली नीति सबके लिए उपयोगिनी नहीं समझते। अच्छा, ये आर्य्य-समाजी अपने को हिन्दुओं से अलग क्यों बताते हैं? क्या हिन्दुओं में निराकार के उपासक और वेदों के भक्त नहीं पाये जाते?

प्रति एक हज़ार मनुष्यों में से कितने १९११ में साक्षर थे और १० वर्ष बाद, कितने १९२१ में, इसका हिसाब लीजिए—

	१९११	१९२१
पुरुष	६१	६५
स्त्री	५	६
स्त्री पुरुष दोनों मिला कर	३४	३७

सो लाखों क्यों, करोड़ों रुपया अधिक ख़र्च करने पर भी, दस साल में, नरों की फ़ी एक हज़ार आबादी में केवल ४ अधिक साक्षर हुए। वृद्धि ख़ूब रही! घोंघे की चाल को भी मात कर दिया! और स्त्रियों की शिक्षा-वृद्धि का तो क्या कहना है। दस साल में फ़ी हज़ार ५ से ६! हिन्दुओं ने मुसलमानों की अपेक्षा शिक्षा-प्राप्ति में चावल भर अधिक क़दम बढ़ाया। फ़ी एक हज़ार मुसलमानों में जहाँ ३५ मुसलमान शिक्षित हैं वहाँ हिन्दू ३८ हैं। बस, इतना ही। हाँ, अँगरेज़ी पढ़ने में लोगों ने विशेष दिलचस्पी दिखाई। १९११ में दस हज़ार पुरुषों में केवल ४९ अँगरेज़ीदाँ थे; पर अब हैं ६६।

एक और बात जो इस रिपोर्ट से ज्ञात हुई वह यह है कि इस प्रान्त में फ़ी सदी ७५ आदमियों की जीविका का निर्वाह खेती से होता है।

३—हिन्दू-धर्म की महत्ता।

कुछ समय से हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म के सम्बन्ध में हमारे देश में कई प्रकार के विचार प्रकट किये जा रहे हैं। अपनी जाति के पुनरुद्धार की चेष्टा करना सर्वथा स्तुत्य है। अपनी जाति में धर्म की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखना भी आवश्यक है। हिन्दू-धर्म की एक विशेषता है कि अभी तक उसने किसी को अपनी ओर आकृष्ट करने की चेष्टा नहीं की है। कुछ समय पहले श्रीयुत विपिनचन्द्र पाल ने उसकी इसी विशेषता पर एक लेख लिखा था। यहाँ उसका सारांश कदाचित् असङ्गत न होगा।

हिन्दू-धर्म के विरुद्ध यह बात कही जाती है कि वह प्रचारक धर्म नहीं है। जो हिन्दू के घर में जन्म लेते हैं वही हिन्दू-धर्म में स्थान पा सकते हैं। हिन्दू-धर्म पर अन्य किसी का अधिकार नहीं है। कुछ लोगों की समझ में यह हिन्दू-धर्म की सङ्कीर्णता है। बात सच होने पर भी यह आक्षेप मिथ्या है। इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार बौद्ध-धर्म, ईसाई-धर्म और मुसलमान-धर्म प्रचारक धर्म है उसी प्रकार हिन्दू-धर्म प्रचारक धर्म नहीं है। अच्छा, यह प्रचारक धर्म है क्या? जो धर्म जाति और वर्ण की उपेक्षा कर सभी मनुष्यों को ग्रहण करे वही धर्म प्रचारक है। प्रचार का मतलब है कुछ विशेष विश्वासों को जन-समूह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रचलित करना। जितने प्रचारक धर्म हैं वे सब कुछ मतों और विश्वासों पर स्थापित हैं। ये मत और विश्वास सार्वजनीन नहीं हैं अर्थात् सभी इनको सत्य नहीं मानते। जो इन मतों को नहीं मान सकते वे इन धर्मों के बाहर रहते हैं। इन धर्मों की व्यापकता मतैक्य पर निर्भर है। परन्तु हिन्दू-धर्म में यह बात नहीं है। उसका प्राण मत नहीं, आचार है; विश्वास नहीं, अनुष्ठान है। यदि ईसाई-धर्म और इस्लाम-धर्म को हम प्रचार-धर्म कहें तो हिन्दू-धर्म को हम आचार-धर्म कहेंगे। सभी प्रचारक धर्म आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में उदार होते हैं, परन्तु मत और विश्वास के विषय में सङ्कीर्ण होते हैं। हिन्दू-धर्म मत और विश्वास के सम्बन्ध में उदार होता है परन्तु आचार में सङ्कीर्ण होता है। यही इन दोनों में भेद है। विचारणीय यह है कि मत की शृङ्खला से मन को बाँधना अच्छा है या आचार के बन्धन से अपने बाह्य आचरण और कर्माकर्म को आबद्ध करना।

इसमें सन्देह नहीं कि पराधीनता से, बन्धन से, मनुष्यत्व के विकास में बाधा होती है। परन्तु बिना किसी प्रकार के बन्धन के समाज की स्थिति सम्भव नहीं।

स्वाधीनता और बन्धन, इन दोनों में सामञ्जस्य स्थापित किये बिना मनुष्यत्व की रक्षा असाध्य है। हिन्दू के वर्णाश्रम में यही सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा की गई है। समाज में गृहस्थाश्रम में प्रत्येक व्यक्ति को समाज के नियम के अनुसार चलना होगा। इन नियमों से जब चित्त की शुद्धि हो जाय, चरित्र निर्मल और प्रवृत्तियाँ संयत हो जायँ तब वानप्रस्थ और अन्त में संन्यास ग्रहण कर मनुष्य सभी नियमों का अतिक्रमण कर सकता है। साधना की अवस्था में पराधीनता और सिद्धावस्था में स्वाधीनता, यही हिन्दू-समाज में आचार की व्यवस्था है। इसी वर्णाश्रम के द्वारा हिन्दू-जाति विस्तृत हुई थी। इसी से उसने द्राविड़ देश को अपने अङ्गीभूत किया और हूण, शक प्रभृति अहिन्दू-जातियों को हिन्दू-जाति में स्थान दिया। आचार के बन्धन से ही हिन्दू-जाति ने अपने को बाँधा है और इसी बन्धन के भीतर लाकर वह दूसरों को आत्मसात् कर लेती है। वर्णाश्रम को मान कर, सामाजिक यम-नियमों को स्वीकार कर सभी को यथेष्ट चिन्ता और विचार करने का अधिकार है। हिन्दू-जाति में कोई शैव है, कोई वैष्णव है और कोई शाक्त है। कोई नास्तिक है तो कोई आस्तिक। तत्त्वालोचना में भी हिन्दू-दर्शन शास्त्रों में तीव्र मत-भेद है। निरीश्वर सांख्य और सेश्वर योग तथा न्याय वैशेषिक या पूर्व-मीमांसा और उत्तर मीमांसा सभी अपने अपने सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित हैं। यही नहीं, किन्तु वे एक दूसरे के सिद्धान्तों का खण्डन भी करते हैं। तो भी ये सभी हिन्दू-धर्म में सम्मिलित हैं। कबीर-पन्थी, दादू-पन्थी, नानक-पन्थी आदि कितने ही नये पन्थ भी प्रचलित हैं। परन्तु कोई भी हिन्दू-समाज से बहिष्कृत नहीं हुआ। विचार की यह स्वाधीनता साधना के ये ऋजु-कुटिल नाना पथ हिन्दू-धर्म में ही हैं। इन्हीं के कारण हिन्दू-धर्म में वह उदार और सार्वजनीन भाव आ गया है जो अन्यत्र कहीं नहीं है।

प्रचारक धर्मों में यह उदारता सम्भव नहीं है। कोई भी प्रचारक धर्म यह स्वीकार नहीं करेगा कि उसके विरोधी मतों में भी सत्य है। उनका कथन है कि धर्म का सार वस्तु और मुक्ति का एक-मात्र पथ केवल उन्हीं को लक्ष्य है। जो ईसाई नहीं हैं उन्हें ईसाई के कथनानुसार नरक की यातना सहनी पड़ेगी। जो मुसलमान नहीं हैं उन्हें जहन्नुम जाना पड़ेगा। इसीलिए वे संसार का कल्याण करने के लिए अपने सङ्कीर्ण मत का प्रचार करते हैं। हिन्दू-धर्म ने कभी अपने को इस दृष्टि से नहीं देखा। उसने विश्वेश्वर का विश्वरूप ही देखा। उसने कभी अपने को सत्य का एक-मात्र अध्यक्ष नहीं समझा। हिन्दू ईसाई-धर्म के बाह्य क्रिया-कलाप का वर्जन कर ईसा को भगवान् के रूप में देख सकता है। हिन्दू के लिए सम्भव नहीं है तो यही कि वह ईसा के लिए कृष्ण को अथवा मुहम्मद के लिए बुद्धदेव को नहीं छोड़ सकता। इसी को चाहे तो कोई उसकी सङ्कीर्णता कह सकता है। किसी भी धर्म की निन्दा करना वह पाप समझता है। यही हिन्दू-धर्म का महत्त्व है।

४—गोस्वामी तुलसीदासजी की त्रिंशत्-वार्षिक जयन्ती।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने हिन्दी-भाषा-भाषियों का जो उपकार किया है वह अतुल है। उनका रामचरित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम पूजनीय रामभक्तशिरोमणि
श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानस हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ रत्न है और हिन्दी-भाषा-भाषियों का सर्वस्व है। हिन्दू-समाज में धर्म का जो भाव अभी तक विद्यमान है उसका एक-मात्र कारण वही आदर्श हैं जिन्हें हिन्दू-कवियों ने अक्षय रूप दे दिया है। यदि हिन्दू-समाज में उन आदर्शों का लोप हो जाय तो उन्हीं के साथ समाज का अस्तित्व भी नष्ट हो जाय। निगम और आगम विद्वानों के लिए है। समाज में इनकी मर्यादा उन्हीं आदर्शों के कारण अक्षुण्ण बनी रही है। हिन्दू-समाज पर आज तक कितने ही आघात-प्रत्याघात हुए हैं, परन्तु वह अपने पथ से कभी विचलित नहीं हुआ। उसकी भौतिक प्रभुता नष्ट हो गई, उसका रत्न-भाण्डार रिक्त हो गया, उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति क्षीण हो गई। परन्तु उसका गार्हस्थ्य जीवन पवित्र बना रहा, उसके धार्मिक जीवन में व्यतिक्रम नहीं हुआ। वैदिक ऋषियों की सन्तान होने पर भी कितने हिन्दू वेद-ज्ञान का गर्व कर सकते हैं? तत्त्वदर्शी ऋषियों के उत्तराधिकारी होने पर भी कुछ ही लोगों में भारतीय तत्त्व-ज्ञान परिमित है। तो भी हिन्दू-समाज का हिन्दुत्व नष्ट नहीं हुआ है। इसका कारण यही है कि हिन्दू-समाज में रामचरितमानस के समान ग्रन्थ हैं।

जिस कवि ने हिन्दू-समाज को ऐसी अक्षयनिधि दी है। उसे भूल जाना घोर पाप है। यह सम्भव नहीं कि हिन्दू-समाज कभी गोस्वामी तुलसीदासजी को भूल जाय। तो भी वर्ष में एक दिन उनका स्मरण करना, उनकी कृति की पूजा करना और उनका गौरव-गान करना अपनी कृतज्ञता प्रकट करना है। इससे गोस्वामीजी के यश की वृद्धि नहीं होगी, उनका माहात्म्य नहीं बढ़ेगा। हिन्दू-समाज ने पहले से ही उनको अपना जीवन-धन बना डाला है। हिन्दू-समाज ने अपने गृह में ही उनके लिए अक्षयकीर्ति-मन्दिर स्थापित कर लिया है। ऐसा कौन हिन्दू होगा जिसके गृह में रामायण का पारायण न होता हो। इसमें सन्देह नहीं कि गोस्वामी तुलसीदास को विशेष सम्मानित करने का कोई भी साधन नहीं रहा है। तो भी अपनी मनस्तुष्टि के लिए हिन्दी के प्रेमियों ने उनकी मृत्यु-दिवस पर उनकी जयन्ती मनाना आरम्भ किया है। गत श्रावण शुक्ला सप्तमी को उनकी त्रिंशत्वार्षिक जयन्ती मनाई गई। हिन्दी के प्रायः सभी पत्रों ने उनका यशोगान किया। उसी के उपलक्ष में लखनऊ की माधुरी नामक मासिक पत्रिका ने अपनी एक विशेष तुलसी-संख्या प्रकाशित की। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने शायद उनकी रचनाओं का एक नया संस्करण निकाला है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति ने एक अधिवेशन कर अपने को कृतकृत्य समझा। हिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तों के कई नगरों में भी उनकी जयन्ती मनाई गई। हमें विश्वास है कि हम लोगों में इस भाव की उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती जायगी।

५ - हिन्दू-महासभा का वार्षिक अधिवेशन।

गत १९ और २० अगस्त को काशी में हिन्दू-महासभा का सप्तम वार्षिक अधिवेशन हो गया। सभापति भारत के सुपुत्र पण्डित मदनमोहन मालवीय थे। स्वागत-कारिणी समिति के सभापति राजा मोतीचन्द के अभिभाषण से मालूम हुआ कि हिन्दू-जाति के भिन्न भिन्न समाजों को एकता और प्रेम के सूत्र में बाँधना हिन्दू-महासभा का परम लक्ष्य है। हिन्दू-सङ्गठन का यह उद्देश कदापि नहीं कि हम भारत की अन्य जातियों से किसी प्रकार का विद्रोह करें। हम केवल इतना ही चाहते हैं कि हमारी जाति में एकता, विद्या और बल बढ़े और हमारी प्राचीन सभ्यता सुरक्षित रहे। श्रीमान् मालवीयजी ने अपने भाषण में इसके उपाय बतलाये। आपने कहा—

प्रश्न उठता है उपाय का। हमारा यही एक देश है। हमारे मन्दिर, मुक्ति-स्थान सब कुछ यहीं हैं। दूसरी जातियों के मन्दिर दूसरे देशों में भी हैं। वे उन्हें भी प्यार कर सकते हैं, पर हमारे लिए यही देश है। इसके हित के लिए परस्पर मेल रखना अनिवार्य है। मुसलमान, पारसी, ईसाई किसी के भी मेल में फ़र्क आया तो सुख, स्वतन्त्रता तथा शान्ति न होगी। मन में भी न लाओ कि मुसलमानों से विरोध सदा रखना है। पर मेल क्यों नहीं है? मेल हमेशा बराबरवाले में होता है। कहते दुःख होता है कि समाज की रक्षा के लिए प्राण अर्पण करने की शक्ति का हममें अभाव है। जिस दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमानों को मालूम हो जायगा कि एक प्रहार करने पर हिन्दू हम पर दो करेगा, उसी दिन प्रेम पक्का हो जायगा। यह आपका जातीय धर्म है। मिल के काम कर सको तो ज़रूर सबसे मिल कर काम करो। नागरिक कामों में सबसे मिलो। रुकावट न डालो। पर हिन्दू कहलाने से मत झपको। मुसलमान, ईसाई सबसे मिल कर काम करो। हिन्दुओं से भी दुष्टता हुई, उसका भी मुझे दुःख है। कटारपुर और बिहार की घटनाओं पर मुझे दुःख हुआ। परन्तु उन्हें दण्ड भी अधिक कड़ा मिला और निर्दोषों को भी कष्ट भोगना पड़ा। नगर-रक्षक दलों में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सब मिल कर काम करो।

सरकार से कहते हो कि प्राइमारी शिक्षा-बिल पास कर दो। गोखले कहते कहते मर गये, परन्तु मातायें यदि इस काम में हाथ बटाएँ तो यह काम बहुत आसानी से हो सकता है। 'न च मातासमो गुरुः', परन्तु पहले माताओं को इस काम के लिए तैयार करना होगा। गङ्गा के किनारे बैठ कर रोते हो कि कुएँ से पानी निकालने की डोरी नहीं है। घर घर स्त्रियों को शिक्षित बनाओ, फिर बच्चों की शिक्षा के लिए बिल पास कराने की आवश्यकता न होगी। तीन मास में अच्छी तरह हिन्दी लिखना-पढ़ना आ सकता है। मुहल्ले मुहल्ले में पाठशाला बनाओ। जो पढ़े हैं दूसरों को पढ़ावें। इस तरह सब शिक्षित हो जायँगे। बच्चों के शिक्षण में मातायें पूरी मदद देंगी। फिर शिक्षा के लिए रुपये का अभाव न रह जायगा।

अब तो ब्रह्मचारियों का रूप ही बदल गया। कर्ज़ फ़ैशन चल गया है। गुरु गोविन्दसिंह ने महाभारत पढ़ कर ही क्षत्रियों में शक्ति पैदा की थी। युद्ध से पहले दुर्गा की स्तुति करते थे। उन्होंने अपने शिष्यों को ब्रह्म

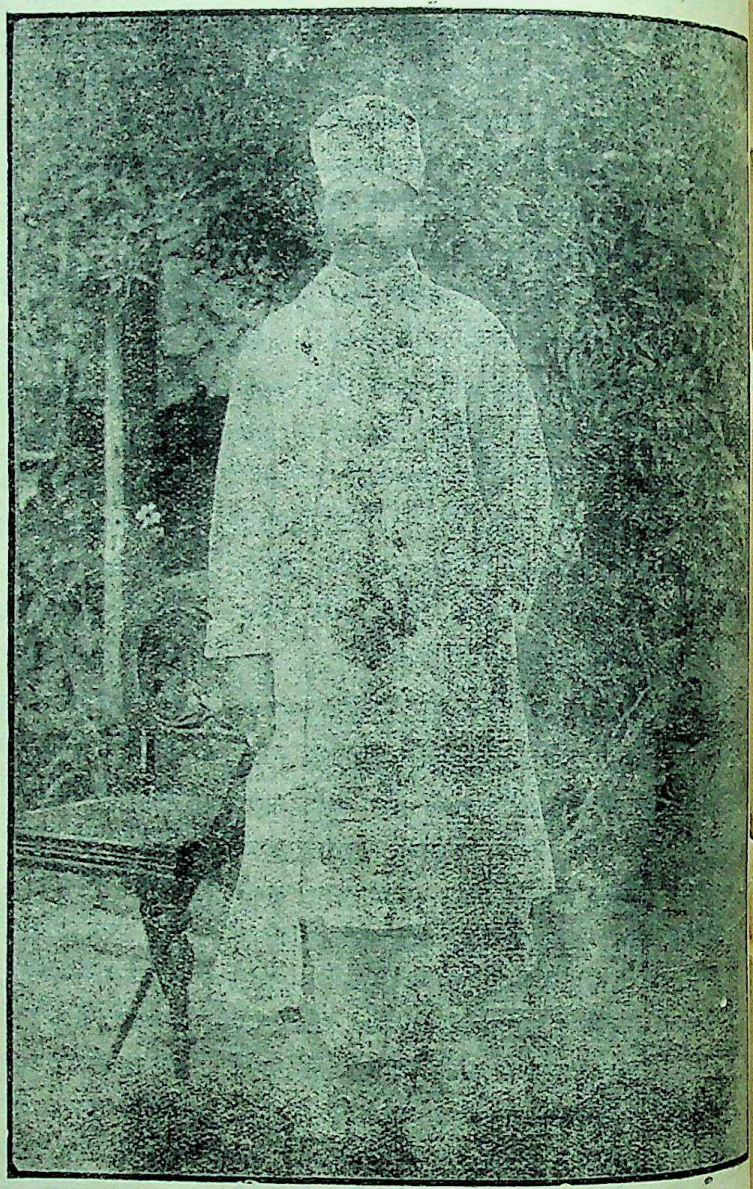

पण्डित मदनमोहन मालवीय।

चर्य का व्रत दिया और बतला दिया कि केशों को मत काटो। शास्त्र कहता है कि ब्रह्मचर्य में ही बल है, शक्ति है। हमारे यहाँ भीष्म और हनूमान् दो ऐसे ब्रह्मचारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए हैं जिनकी टक्कर का ब्रह्मचारी और कहीं नहीं मिल सकता। मैं चाहता हूँ कि उनकी मूर्तियाँ महल्ले महल्ले में खड़ी हो जायँ। वहाँ पर वे ही जायँ जो लँगोटे के सच्चे हों। अर्जुन ने ब्रह्मचर्य के कारण ही विजय प्राप्त की। स्थान स्थान पर अखाड़े खोल दो। वहाँ जाकर सब कुश्ती लड़ें, व्यायाम करें और अपने से ड्योढ़े को पटकने की शक्ति प्राप्त करें।

यदि इस समय कोई आकर कहे कि अमुक चाण्डाल की चुटिया भुलावा देकर किसी ने कटवा दी तो क्या यहाँ जितने लोग हैं उन सबको दुःख नहीं होगा। इससे सिद्ध है कि उस चाण्डाल का आपसे कोई और सम्बन्ध न होते हुए भी चुटिया का ही एक सम्बन्ध ऐसा है जिससे आपके मन में उसके लिए इतना प्रेम है। मैंने सुना है कि हरिश्चन्द्र-घाट पर एक डोम ने मन्दिर बनवाया और काशी-नरेश के गुरु ने उसकी प्रतिष्ठा कराई। उस हलालख़ोर ने अपनी गाढ़ी कमाई में से बचा कर कितने दिन में वह रुपया जमा किया होगा जो उसने शिव-मन्दिर बनवाने में ख़र्च किया? फिर बतलाइए यदि वह मुझे मिले तो मैं क्यों न उसके चरणों में पगड़ी रख दूँ। कहा जाता है कि 'सबसे कठिन जाति अपमाना' पर वह इसको भी सहता है। अँगरेज़ और मुसलमानों में ऐसे लोग हैं जो छः छः महीने स्नान नहीं करते, भोजन करके हाथ नहीं धोते। उनसे हम मिलते हैं, सब प्रकार से व्यवहार करते हैं। पर बेचारे रामदास से घृणा करते हैं। यद्यपि वह हमारे साथ 'राम की जय' बोलता है। बतलाइए उसे हम सभा में क्यों न बुलावें? उसे देवदर्शन से कैसे रोकें? उसे मैं कैसे पापी समझूँ। तुम कहते हो वह मैला उठाता है। भाई दोपहर को मैला उठाने का काम ख़तम करके जब वह हाथ धोता है तब उसके हाथ से मैला उतर जाता है। किन्तु मैं झूँठ बोलता हूँ। देवियों को पाप की दृष्टि से देखता हूँ तथा कितने ही पाप करता हूँ। ईश्वर के नाम पर, विश्वनाथजी के नाम पर आप लोगों से भीख माँगता हूँ कि यह आज्ञा दे दो कि जिसका जी चाहे वह भगवान् का दर्शन कर सकता है।

हिन्दू-महासभा में कितने ही प्रस्ताव पास हुए। उनमें एक यह भी प्रस्ताव पास हुआ कि हिन्दू-जाति के सङ्गठन और हिन्दुओं में प्रेम-भाव बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक हिन्दू हिन्दी अवश्य पढ़े। भारत के लिए वह दिन बड़ा ही सौभाग्यशाली होगा जब भिन्न भिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के अनुयायी अनैक्य को दूर करके आपस में भ्रातृ-भाव का व्यवहार करेंगे।

६—मातृभाषा का प्रेम।

भाई परमानन्दजी का नाम हिन्दी के पाठकों के लिए अपरिचित नहीं है। आपमें अनेक सद्गुण हैं। एक गुण यह है कि आप मातृभाषा के बड़े प्रेमी हैं। उस दिन बम्बई में आपने एक व्याख्यान में अपने इसी मातृभाषा-प्रेम को व्यक्त किया। आपने कहा—

हमें दो शब्द प्यारे हैं "मातृभाषा" और "मातृभूमि"। पशु और मनुष्यों में एक बड़ा भेद यही है कि मनुष्य विचार कर सकता है और पशु ऐसा नहीं कर सकते। फ़िलासफ़ीवालों का मत है कि मनुष्य बातें करनेवाला पशु है। जैसे जैसे मनुष्य सभ्य होता जाता है उसकी भाषा के शब्द भी बढ़ते जाते हैं। हमारे यहाँ वाणी को सरस्वती देवी माना है। ईश्वर से उतर कर इसी का स्थान है। हमें इसकी पूजा करनी चाहिए।

मातृभूमि में ऐसी क्या विशेषता है जिससे वह हमें प्यारी है। इसी लिए कि हम उसमें पैदा हुए हैं और उसी के उत्पन्न अनाज से हमारा शरीर बना है। हमारे पूर्वज भी इसी देश में पले हैं। इसी कारण मातृभूमि से प्रेम होना स्वाभाविक है। इसी को देश-भक्ति भी कहते हैं।

जिन लोगों को अपनी मातृभूमि से प्रेम नहीं; उसकी भाषा वेश और सभ्यता से प्रेम नहीं; उनका उस भूमि में पैदा होनाही व्यर्थ है। इसी भाँति मातृभाषा का प्रेम होता है। जिस भाँति एक देश पर दूसरे देशवाले आक्रमण करते हैं; उसी प्रकार एक भाषा पर दूसरी भाषा का आक्रमण होता है। सर्व-प्रथम इस देश की वैदिक भाषा थी। फिर शक और हूण लोगों के मिल जाने से प्राकृत भाषा की उत्पत्ति हुई। सम्राट् अशोक के समय में प्राकृत भाषा की ख़ूब उन्नति हुई। बहुत से ग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखे गये। बहुत समय बाद जब मुसलमानों का दौरदौरा हुआ तब बहुत से फ़ारसी के शब्द भी उक्त भाषा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगये। अगर ये हमले नहीं होते तो भाषा में कोई फेर-बदल नहीं होता। जब एक जाति किसी दूसरी जाति पर विजय प्राप्त कर लेती है तब यह शारीरिक विजय होती है। परन्तु भाषा की विजय मन की विजय समझी जाती है। भाषा छूट जाती है तो मन भी कमज़ोर हो जाता है। अँगरेज़ी राज्य के आगमन से हमारी भाषा पर तीसरा आक्रमण हुआ। अँगरेज़ों ने अदालत की भाषा अँगरेज़ी कर दी। जिस किसी को अदालत में नालिश करनी हो तो वह अँगरेज़ी में ही कर सकता है। भिन्न भिन्न भाषाओं में भी परस्पर सङ्ग्राम होता है। एक ओर आपकी भाषा है और दूसरी ओर अन्य शक्ति। दोनों अपने अपने दाँव खेल कर आपस में एक दूसरे को दबा लेना चाहती हैं। ऐसी अवस्था में क्या यह आपका कर्तव्य नहीं कि आप अपनी भाषा की रक्षा करें।

एक प्रश्न यह है कि हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा क्यों मानी जाय? मैं पञ्जाबी हूँ, महात्माजी गुजराती, लोकमान्य तिलक महाराष्ट्रीय, स्वामी दयानन्द काठियावाड़ी। ये सब हिन्दी को ही राष्ट्र-भाषा क्यों मानते हैं? कारण यही कि हिन्दी ऐसी सरल भाषा है कि जिसे सब भारतवासी आसानी से सीख और बोल सकते हैं। मुझे अपने "कालेपानी" के निवास का यह अनुभव है कि वहाँ बर्मी, मदरासी आदि भिन्न भिन्न प्रान्तों के जो लोग आते हैं वे एक दो मास में ही हिन्दी सीख लेते हैं। इसके बिना कोई चारा ही नहीं था। मद्रास-प्रान्त में मुसलमान तो उर्दू समझते हैं, परन्तु राष्ट्रभाषा का प्रश्न केवल वहाँ के हिन्दुओं के लिए है। इसका उन्हें निपटारा कर लेना चाहिए।

अन्त में आपने कहा कि जो लोग यह कहते हैं कि हिन्दी में साहित्य कम है उन्हें मैं जवाब देता हूँ कि पहले भाषा सीखनी चाहिए साहित्य तो अल्प समय में हो सकता है।

७—अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्व-मैत्री।

समस्त विश्व को एक रूप में देखना, आत्मीय-अनात्मीय, सधन-निर्धन, उच्च-नीच आदि का विचार न कर, जाति और धर्म का अतिक्रमण कर, सबको अपना मित्र समझना बड़ा ऊँचा भाव है। ऐसे भाव की ओर महात्मा ही अग्रसर होते हैं। परन्तु मनुष्यों में सहयोगिता का जो भाव विद्यमान है वह उनको इसी महत् भाव की ओर प्रेरित कर रहा है।

एक विद्वान् ने लिखा है कि मनुष्य अपने दैनिक जीवन की उन्नति के लिए समाज का सङ्गठन करता है। इस सङ्गठित समाज का लक्ष्य सैकड़ों वर्षों तक परिमित रहा। वह राष्ट्रीयता का रूप नहीं ग्रहण कर सका। अब समाज का लक्ष्य एक राष्ट्र के लक्ष्य में परिणत हो गया है। इसका कारण यह है स्थिति का परिवर्तन। अवस्था-भेद से मनुष्य का स्वार्थ भी अधिक व्यापक होता है। आधुनिक युग में मनुष्य-समाज की अवस्था में बड़ा परिवर्तन हो गया है। अतएव यह अनुमान करने का कारण है कि परिवर्तित अवस्थाओं में इस भाव के कुछ अधिक समुन्नत होने की आवश्यकता है। सङ्गठित समाज-वाद के पीछे राष्ट्रीयता-वाद का नम्बर आया। अतएव अब हमें अन्तर्राष्ट्रीयता-वाद की ओर अग्रसर होना चाहिए।

आज-कल, कम से कम पाश्चात्यों की यह धारणा हो गई है कि राज्य के रूप में सङ्गठित राष्ट्रीयता हमारा सर्वस्व है। वे इसी को अन्तिम राजनैतिक सङ्गठन मानते हैं और मानो समाज में इसे सर्वश्रेष्ठ वस्तु समझते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य देशों में इसी सिद्धान्त की धूम रही। राष्ट्रीयता-वाद के इस विश्वास से कुछ सुफल हुए और कुछ कुफल भी। उससे योरपीय समाज कई स्पष्ट भागों में विभक्त हो गया। इनमें प्रत्येक विभाग का नेतृत्व किसी ऐसे संशयालु देशभक्त को प्राप्त हुआ जो सदैव दूसरे विभाग से लाभ उठा कर अपनी स्थिति को विस्तृत करने के उपाय में सदा संलग्न रहा। उसने समाज के दूसरे विभागों के प्रति अपने सामान्य कर्तव्यों के पालन करने से भी मुँह मोड़ लिया। उसने भिन्न भिन्न राष्ट्रों की समानता को स्वीकार ही नहीं किया, क्योंकि यदि वह उस पर ध्यान देता तो वह अपने स्वार्थ-साधन में स्वेच्छाचारी न होता और उस दशा में किसी न किसी प्रकार के उच्च राष्ट्रीय निकाय की रचना हो जाती।

जब तक भिन्न भिन्न राष्ट्र अन्य राष्ट्रों पर अपनी प्रभुता स्थापित करने का अधिकार नहीं रक्खेंगे और जब तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे संसार के प्रति अपने कर्तव्य की उपेक्षा करेंगे तब तक न तो अन्तर्राष्ट्रीय भाव उन्नत हो सकता है और न राष्ट्र ही मानव-जाति के लिए कुछ कर सकते हैं। भिन्न भिन्न राष्ट्रों का सम्मिलन ही समुन्नति का मार्ग है। जो राष्ट्र संसार से पृथक् रहेगा उसका विनाश अनिवार्य है।

अतएव हमें सङ्कीर्ण राष्ट्रीय भावना का त्याग करना चाहिए। जो राष्ट्र अपने आपको ईश्वर के वर-पुत्र समझते हैं और हीन श्रेणी में स्थित दूसरे राष्ट्रों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं उन्हें अपनी यह भावना दूर करनी चाहिए। हमें राष्ट्र या जाति या वर्ण के सारे भेद-भावों के परे अपना ध्यान देना चाहिए। वही मनुष्य का दर्शन हो। यही सच्ची अन्तर्राष्ट्रीय भावना है। इसकी प्राप्ति के लिए या अपनी पद्धतियों के पुनःसङ्गठन के सिवा कुछ अधिक करने की आवश्यकता है। अपने अन्तर्भाव को पूर्ण रूप से बदले बिना उसकी उपलब्धि सम्भव नहीं। अभी तक हम राष्ट्रीय आदर्श के ही भक्त रहे हैं। परन्तु वह भक्ति अब पर्याप्त नहीं है। अब हमारा आह्वान उससे ऊँची और श्रेष्ठ भक्ति के लिए है। इस भक्ति से दूसरी का विनाश नहीं होता है, बरन यह उसे और अधिक सम्पूर्ण करती है। सारे संसार में एक ही उपकार है और वह उपकार मानव-जाति का हित-चिन्तन है और एक ही आदर्श है और वह मनुष्य की जाति का आदर्श है। अतएव हमारी भक्ति उन सब बातों के प्रति हैं जो इस उपकार की सहायता और इस आदर्श को सम्पूर्ण करती हैं।

यही भाव वैदिक काल के ऋषियों के हृदय में बह रहा था। तभी तो उन्होंने कहा है—

सर्व्वा आशा मम मित्रं भवन्तु। और भी—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्व्वाणि भूतानि समीक्षताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्व्वाणि भूतानि समीक्षे।

८—यन्त्र और मानव-जाति।

आधुनिक विज्ञान ने मानव-जाति को कितने ही यन्त्र दिये हैं। इन्हीं की बदौलत उसने अपनी उन्नति की है। परन्तु अब विचारशील विद्वानों के हृदय में इनके प्रति विशेष श्रद्धा नहीं है।

इनसे लोक-कल्याण की कहां तक सम्भावना है, स सम्बन्ध में वे तर्क-वितर्क करने लगे हैं। अमरीका ने वैज्ञानिक यन्त्रों के आविष्कार में विशेष ख्याति प्राप्त की है। वहीं के एक विद्वान् की राय सुनिए।

पिछले समय की घटनाओं से यह बात भले प्रकार स्पष्ट हो गई है कि एक-मात्र यन्त्रों से संसार की रक्षा नहीं हो सकती। प्रकृति को अपने अधिकार में कर लेने से मनुष्य में अधिक मनुष्यत्व नहीं आ जाता, बरन इस शक्ति-वृद्धि से वह अधिक नृशंस हो जाता है। कहा जा सकता है कि हमें पहले से ही प्रकृति की अत्यन्त अधिक गुप्त शक्तियों का ज्ञान था। परन्तु आदम की सन्तान के हाथ में विज्ञान एक अत्यन्त ही अधिक भयङ्कर अस्त्र के रूप में है। यदि हम अपने वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि करते हैं तो समझना चाहिए कि हम स्वयं अपने लिए कुआं खोद रहे हैं। पिछले युद्ध में संसार का सर्वनाश हो जाने से जिस वस्तु ने बचाया था वह हमारी समझ में अज्ञान था। यदि विज्ञान और आविष्कार का प्रारम्भ पचास वर्ष और पहले हुआ होता तो युद्धलिप्त राष्ट्रों के हौसले भले प्रकार देखने में आते। उनकी गति कहानी के उन्हीं दो कुत्तों जैसी हुई होती जिन्होंने लड़ते लड़ते एक दूसरे को इस प्रकार चबा डाला था कि उनकी दुम को छोड़ कर उनके शरीर का कुछ भी अंश शेष नहीं रह गया था।

सौभाग्य से युद्धलिप्त राष्ट्रों की शक्ति उतनी प्रचण्ड नहीं थी कि वे उपर्युक्त प्रकार का परिणाम अपने कृत्य से सङ्घटित करते। परन्तु जो बात सुनाई पड़ी है वह यदि सच हो तो इस बात में ज़रा भी सन्देह नहीं है कि उन्होंने यह निश्चय कर लिया है कि भविष्य में इस प्रकार की असफलता की पुनरावृत्ति न होगी। ऐसे हवाई जहाज़ों के बनाये जाने की बातें हमारे कानों तक पहुँची हैं जिन पर स्फोटक पदार्थ लादे जा सकेंगे और शत्रुओं पर उनका प्रयोग बेतार के द्वारा किया जा सकेगा। यही नहीं, गैस के ऐसे ऐसे गोले बनाये गये हैं जिनसे समूचा शहर तक नष्ट किया जा सकेगा। यद्यपि हम अभी बिलकुल तैयार नहीं हैं, तथापि यह सच है कि प्रकृति को कुछ ही और अधिक अपने वश कर लेने पर हमारी सभ्यता उस स्थिति को प्राप्त कर लेगी जिससे हम अत्यन्त विस्तृत रूप तथा प्रभाव के साथ आत्महनन करने में समर्थ हो जायँगे, जो इतिहास में अभूतपूर्व होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ अमरीका में भी मैशिनरी, सङ्गठन और उपयोगिता का आदर तथा उनकी प्रशंसा सदा नहीं होती। वे प्रायः ललित लालसा और उच्च आदर्श के चिह्न ही समझे गये। अपने सारे नवयुवकों के लिए अमरीका भी एक श्रेष्ठ राष्ट्रीय ऐतिह्य रखता है।

प्रजा-वाद का अर्थ समय पाकर अब व्यापक और गम्भीर हो गया है। समय के अनुसार जाति, रङ्ग या दासता की पूर्व दशा का विचार किये बिना ही उसे अपनी सीमा के भीतर मनुष्य-मात्र को शामिल करना पड़ा है।

इस प्रजावाद के युग में किसी को, यहाँ तक कि एक दीनतम नागरिक को भी, ज़लील काम नहीं करना पड़ेगा, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति एक विशाल बिरादरी का सदस्य समझा जायगा। हमारी सुविधाओं, सफलताओं और महत्त्वाकांक्षाओं का हक़दार भी वह समानरूप से होगा। उसमें कृषक और जागीरदार नहीं होंगे, क्योंकि वंशगत स्वत्वों और पदवियों का अस्तित्व ही उसे स्वीकार नहीं है। जैसे पुत्र अपनी पिता की संरक्षा में समुन्नति करता है, उसी प्रकार प्रत्येक नागरिक को इस बात के अवसर और साधन प्राप्त रहेंगे कि यथेष्टरूप से वह अपनी आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर सके।

९—चित्र-परिचय।

कलकत्ते के प्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा के छोटे भाई श्रीयुत महावीरप्रसादजी वर्म्मा ने "मणिमाला" नामक चित्र भेजने की कृपा की है। हर्ष की बात है कि आपने भी अब चित्र-कला में अच्छी उन्नति कर ली है। चित्र रवीन्द्र बाबू की एक कविता के आधार पर बनाया गया है। कविता यह है।

রাজার দুলাল গেল চলি' মোর
ঘরের সমুখ পথে,
মোর বক্ষের মনি না ফেলিয়া দিয়া
রহিব বল কি মতে ?

—রবিন্দ্রনাথ।

पुस्तक-परिचय।

१—कुछ पुस्तकें।

(१) अध्यात्म-अनुभव-योग-प्रकाश। इसके "कर्ता परम योगीश्वर श्रीचिदानन्दजी महाराज" और प्रकाशक कोठारी जमनालाल, २०१, हरिसन रोड, कलकत्ता हैं। आकार बड़ा, छपाई और काग़ज़ अच्छा, पृष्ठ-संख्या २७८ और मूल्य ३॥) है। पुस्तक मिलने के एकाधिक पतों में से एक पता है—बाबू भैरवदानजी अमीचन्दजी गुलेछा, २०१, हरिसन रोड, कलकत्ता। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रकाशक महाशय और पुस्तक-विक्रेता महाशय, दोनों, कलकत्ते में एक ही मकान में रहते हैं।

कोठारीजी का कहना है कि "योग का असली रहस्य और कुञ्जी, बिना अध्यात्मशैली के अनुभवी महात्मा के, प्राप्त होना प्रायः असम्भव है"। इस पुस्तक का नाम जैसे अद्भुत है वैसी ही अद्भुत कोठारीजी की बातें भी हैं। सुनते आये हैं कि आत्मानुभव के लिए योग-साधन करना पड़ता है; पर आप कहते हैं कि "अध्यात्म-शैली के अनुभवी" को ही योग का रहस्य ज्ञात हो सकता है। मतलब यह जान पड़ता है कि मनुष्य अध्यात्मशैली पहले सीखे, योग पीछे! यह "अध्यात्मशैली" क्या चीज़ है, सो भी यदि आप बता देते तो कृपा होती। खैर, इसी आध्यात्मिकता की प्रेरणा से, शायद इस पुस्तक में मूर्तिपूजा, जिन-प्रतिमा, द्रव्य-निक्षेप, मेस्मेरिज़्म, स्पिरिच्युएलिज़्म आदि के साथ साथ दादू-पन्थियों, निरञ्जनियों, कबीर-पन्थियों आदि तक का वर्णन किया गया है। यहाँ तक कि राधास्वामी-सम्प्रदाय भी नहीं छूटने पाया। शायद इन सबका वर्णन और इनके गुण-दोषों की समीक्षा भी अध्यात्मशैली की परिभाषा के भीतर ही है।

प्रकाशकजी का कहना है कि इस पुस्तक के कर्ता योगिराजजी पुस्तक का तात्पर्य बनाते अथवा लिखाते गये हैं और आप लिखते गये हैं। अर्थात् बात योगिराज की कही है, लेख आपका है। सो सही।

रही समालोचना की बात, सो न तो हम अध्यात्म-शैली के अनुभवी ही हैं और न योगी ही हैं। यहाँ तक कि आजन्म किसी योगी से हमारा समागम तक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। अतएव हम इस पुस्तक की समालोचना करने में असमर्थ हैं। सरस्वती में तो अधिकांश पुस्तकों का केवल परिचय प्रकाशित होता है। वही इस पुस्तक के विषय में किया जा रहा है। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि योग की अन्य पुस्तकों में जिसे राजयोग और हठयोग कहते हैं उन दोनों की बातें इसमें हैं। पर वे ठीक हैं या नहीं, यह हम नहीं जान सकते। इसके सिवा इसमें बहुत कुछ अप्रासङ्गिक और अनावश्यक बातें भी हैं। चित्त की एकाग्रता के लिए यदि मूर्त्तिपूजा करने और उसकी शास्त्रीयता सिद्ध करने की ज़रूरत योगिराज ने समझी तो राधास्वामी-सम्प्रदाय पर कटाक्ष करने की ज़रूरत क्यों समझी? राधास्वामी-सम्प्रदाय के एक आचार्य को "कायस्थ सालिगराम" कह कर याद करना और यह कहना कि यह बात राधास्वामी के लेख से न मिलेगी, वह बात न मिलेगी, योगियों को शोभा नहीं देता और आत्मानुभव पानेवाले महात्माओं को भी शोभा नहीं देता। आप लोक-कल्याण के लिए योग का रहस्य समझाइए। पर यह कहने की ज़रूरत आपको क्यों दरपेश आई कि आप सुनते हैं कि ये लोग अपने गुरुओं का उच्छिष्ट प्रसाद खाते हैं। खाते होंगे, आपकी योग-साधना का उससे क्या सम्बन्ध?

पुस्तक हिन्दी में है और योग की बातें जानने की इच्छा रखनेवालों—विशेष करके जैनियों—के देखने योग्य है। जैनियों के लिए हमने विशेषता इस कारण बतलाई, क्योंकि बीच बीच में जैनधर्म्म की बातें इसमें भी समाविष्ट हैं। इसकी भाषा कहीं कहीं अजीब लच्छेदार है। एक नमूना लीजिए—

> "परन्तु जो उन्होंने आकाश में जाने की बातें, और आकाश के परचे (?) लिखे हैं, उनके पढ़ने से जिन्होंने गुरुकुञ्जी पाई, योगाभ्यास में तबियत लगाई, शरीर की शुद्धि कराई, इस शरीर में जो कुछ दिया दिखाई, सो राधास्वामी के लेख से न मिलेगा भाई"।

ऐसी ही भाषा और ऐसी ही शैली की प्रधानता इस पुस्तक में है।

२—नीतिवाक्यामृतं सटीकम्—माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैनग्रन्थ-माला नाम की एक पुस्तक-माला बम्बई से निकलती है। उस माला का यह बाईसवाँ पुष्प है। यह सोमदेव सूरि नाम के एक प्राचीन जैन पण्डित की रचना है। इस पर एक विस्तृत टीका भी है। टीकाकार का नाम-धाम मालूम नहीं। मूल-ग्रन्थ और टीका दोनों ही संस्कृत में हैं। पुस्तक अच्छी छपी है। काग़ज़ भी अच्छा है। आकार मँझोला है। ऊपर काग़ज़ की पतली जिल्द है। पृष्ठ-संख्या ३३ + ४२७ है। मूल्य है पौने दो रुपये। मिलने का पता—मन्त्री, माणिकचन्द्र-जैन-ग्रन्थ-माला, हीराबाग़, बम्बई।

आरम्भ में जो विस्तृत भूमिका है उसमें भूमिका-लेखक ने इस ग्रन्थ और इसकी टीका का महत्त्व समझाया है, ग्रन्थकार का समय-निरूपण किया है तथा पुस्तक-सम्बन्धिनी और भी अनेक विषयों का विचार किया है। सोमदेव सूरि का समय विक्रम की दसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और ग्यारहवीं का पूर्वार्द्ध मालूम होता है। उनका लिखा हुआ एक और भी ग्रन्थ प्रसिद्ध है। वह प्रकाशित भी हो चुका है। उसका नाम है यशस्तिलक-चम्पू। उसके और प्रस्तुत पुस्तक के अवलोकन से ज्ञात होता है कि सोमदेव सूरि अनेक शास्त्रों के पारगामी पण्डित थे। तर्क, व्याकरण, अलङ्कार, काव्य, राजनीति आदि में उनकी गति अप्रतिहत थी। वे महाकवि भी थे। उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में राजनीति का वर्णन सूत्ररूप में किया है। दुर्ग, कोश, बल, मित्र, व्यसन, दूत, चार, सदाचार, व्यवहार, युद्ध आदि ३२ विषयों में ग्रन्थ को विभक्त करके ग्रन्थकार ने हर विषय का विवेचन छोटे छोटे सूत्रों में किया है। यथा—"नाजितेन्द्रियाणां कापि कार्य्य-सिद्धिरस्ति"। इस ग्रन्थ में जो कुछ है वह ग्रन्थकार का निज का माल नहीं मालूम होता। वह चाणक्य के अर्थ-शास्त्र का बहुत कुछ संक्षिप्त सार है। कहीं कहीं चाणक्य के वाक्य ज्यों के त्यों रख दिये गये हैं। इसमें सोमदेव की निज की रचना थोड़ी ही है। कहीं कहीं उन्होंने कुछ अपनी तरफ़ से भी लिखा है, पर बहुत नहीं। तथापि छोटे छोटे, पर सरल सूत्रों-द्वारा चाणक्य के ग्रन्थ का आशय प्रकट कर देना भी कम विद्वत्ता का काम नहीं। सोमदेव ने इस कठिन काम को योग्यता से किया है। अर्थ-शास्त्र की जटिल भाषा अच्छे संस्कृतज्ञों को भी कहीं कहीं चक्कर में डाल देती है। यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख कर सोमदेव ने शायद इस सूत्रमय ग्रन्थ की रचना, सरल भाषा में, करने की ज़रूरत समझी। सुना जाता है कि कन्नोज के अधीश्वर महीपालदेव के कहने से सोमदेव ने चाणक्य के अर्थ-शास्त्र को इस रूप में प्रकट किया है। सम्भव है, यह किंवदन्ती ठीक हो। पर पुस्तक में इसका कोई उल्लेख नहीं। हाँ, टीकाकार ने इसका उल्लेख अपनी टीका के आरम्भ में ज़रूर किया है। कौटिलीय अर्थ-शास्त्र, शुक्रनीति, कामन्दकीय राजनीति आदि कुछ ही पुस्तकें इस विषय की अब तक ज्ञात थीं। यह पुस्तक उन सबसे बढ़ कर निकली, इसमें सन्देह नहीं। इसके पहले भी यह बम्बई में प्रकाशित हो चुकी है और महाराजा बड़ोदा की कृपा से इसके मराठी और गुजराती अनुवाद भी हो चुके हैं।

इस पुस्तक की टीका बड़ी ही विशद, विस्तृत और सुन्दर है। उसका कर्ता विद्वान् और बहुश्रुत था। उसने प्रत्येक सूत्र का बहुत ही अच्छा विवेचन किया है। ग्रन्थकार के कथन को पुष्ट करने के लिए उसने बात बात पर प्रमाण दिये हैं। नाना ग्रन्थों से श्लोक और श्लोकखण्ड उद्धृत करके और उनका पारस्परिक तारतम्य बतला कर उसने अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है। पुस्तकान्त के १९ पृष्ठों में उसके उद्धृत श्लोकों की एक सूची दे दी गई है, जो बहुत अच्छा हुआ है। खेद है, यह टीका संस्कृत-भाषा में है। हिन्दी में होती तो हम प्रयाग के साहित्य-सम्मेलन की स्थायी समिति से प्रार्थना करते कि वह ऐसे विज्ञ और बहुज्ञ परीक्षकों की एक कमिटी बना दे जो अगली बार इस टीका के रचयिता को न सही, प्रकाशक को ही "मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक" दिलाने की चेष्टा करे। क्योंकि अब हिन्दी के पण्डित टीकाओं और हँसी-मज़ाक से भरे हुए "संहार" को भी मौलिक ग्रन्थ समझने लगे हैं। सो, इन परीक्षा-पण्डितों की कसौटी पर कसने से शायद व्याकरण का महाभाष्य, वृत्ति, काशिका आदि बड़े बड़े और बड़ी विद्वत्ता के सूचक सभी ग्रन्थ मौलिक ग्रन्थों की श्रेणी में समा जायँ।

३—टुंकी वार्ताओ, भाग ७ मो। यह पुस्तक गुजराती भाषा और गुजराती ही लिपि में है। अहमदाबाद के सस्तुं-साहित्य-वर्द्धक कार्य्यालय ने भेजी है। जिल्ददार है। पृष्ठ-संख्या ३०० के ऊपर है। छपाई और काग़ज़ उत्तम और मूल्य डेढ़ रुपया है। इसमें अनेक फुटकर लेख हैं। उदाहरणार्थ—स्वराज्य का मूल्य, देशभक्त कैथराइन, हम लोग किस तरह देश की सेवा करें? एक कंजूस की कथा और समाज आदि। इन लेखों में जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे उदात्त, अनुकरणीय और सन्मार्ग-सूचक ही नहीं, देशभक्ति के वर्धक भी हैं। इनके सिवा इसमें तीन छोटी छोटी पुस्तकें भी हैं। पहली का नाम दयालु माता और दूसरी का सद्गुणी पुत्री है। ये दोनों ही स्त्रियों और लड़कियों के लिए बहुत ही लाभदायक हैं। इनमें जो कुछ लिखा गया है वह स्त्रियों के चारु-चरित-निर्म्माण में निःसन्देह विशेष सहायक हो सकता है। पुस्तकान्त में शेख़ सादी शीराज़ी का संक्षिप्त चरित और उनकी प्रसिद्ध पुस्तक गुलिस्ताँ के भावार्थ का अनुवाद है। यह अन्तिम अंश तो सभी के पढ़ने लायक़ है। कुछ लेख बँगला और हिन्दी से अनुवाद किये गये हैं, कुछ मौलिक हैं। रचना भिन्न भिन्न लेखकों और अनुवादकों की है।

२—हिन्दी की नई पुस्तकें।

कलकत्ते (१२६, हरिसन रोड) में एक हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी है। वह एक हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी माला के नाम से एक ग्रन्थ-माला निकाल रही है। इस ग्रन्थ-माला में अब तक पचीसों ग्रन्थ निकल चुके हैं। कई अनुवादित हैं और कई मौलिक। सभी विषयों के ग्रन्थ इस ग्रन्थ-माला में गूँथे जाते हैं। अभी हाल में वहाँ से दो अच्छी किताबें प्रकाशित हुई हैं। (१) **तिब्बत में तीन वर्ष** और (२) **चरित्र-हीन**। ये दोनों अनुवादित ग्रन्थ हैं। तिब्बत में तीन वर्ष एक अँगरेज़ी ग्रन्थ का अनुवाद है। उसमें कावागुची नाम के एक जापानी यात्री ने अपनी तिब्बत-यात्रा का वर्णन किया है। अनुवादक पण्डित गुलज़ारीलाल द्विवेदी हैं। पुस्तक ५१८ पृष्ठों में समाप्त हुई है। इसमें १०३ परिच्छेद हैं। इसमें तिब्बत का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। तिब्बत के रीति-रवाज, विवाह और विवाहित जीवन, लामा-धर्म और लामा-शासन, राज-व्यवस्था, व्यापार और शिक्षा-उत्सव और खेल-कूद आदि का वर्णन है। साथ ही कावागुची के तिब्बत की परराष्ट्र-नीति के सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अपने विचार भी इस पुस्तक का महत्त्व बढ़ाते हैं। भूमिका-लेखक श्रीयुत पारसनाथसिंहजी ने लिखा है कि कावागुची ने जिस समय के विचार प्रकट किये थे उस समय से संसार की और उसके साथ तिब्बत की बातें बहुत कुछ बदल गई हैं। पर इससे उनकी पुस्तक के महत्त्व में रत्ती भर भी फ़र्क़ नहीं पड़ता। तिब्बत-पर्य्यटक कई हुए हैं, एक से एक साहसी और भौगोलिक तत्त्वान्वेषक, पर कावागुची के समान तिब्बती जीवन का मर्म कोई नहीं जान सका। हमें आशा है कि हिन्दी के प्रेमी पाठक इस पुस्तक का उचित आदर करेंगे। मूल्य २॥)।

चरित्र-हीन—श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के एक बँगला-उपन्यास का अनुवाद है। अनुवादक ने अपना नाम नहीं दिया है। उपन्यास ६७० पृष्ठों में समाप्त हुआ है। यह एक प्रतिभाशाली लेखक की रचना है। ऐसे ही उपन्यासों में हमें मनुष्यत्व का यथार्थ रूप लक्षित होता है। ऐसे ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित कर हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी ने हिन्दी-साहित्य का बड़ा उपकार किया है। हमारा विश्वास है कि ज्ञान की वृद्धि और सुरुचि का प्रचार करने के लिए हमें अन्य भाषाओं के ग्रन्थ-रत्नों का अनुवाद करना होगा। मूल्य ३।)।

(३) इँग्लेंड का इतिहास—(प्रथम भाग)—लेखक, अध्यापक प्राणनाथ विद्यालङ्कार। प्रकाशक, गङ्गा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ। मूल्य २) है।

यह इँग्लेंड के इतिहास का प्रथम भाग है। इस भाग में आदि काल से लेकर महारानी एलिज़ाबेथ के समय तक के इतिहास का वर्णन आया है। अवशिष्ट अंश दूसरे भाग में समाप्त होगा। इस किताब की लेख-शैली सरल और सरस है। लेखक ने इसे अँगरेज़ी की अनेक प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुस्तकों को पढ़ कर लिखा है। इसकी भूमिका में इसके सम्पादक ने इस बात की घोषणा की है कि इस उत्कृष्ट और अपूर्व ग्रन्थ को साहित्य-सम्मेलन ने अपनी मध्यमा-परीक्षा के कोर्स में नियत किया है। यह और भी अधिक सन्तोष की बात है।

(४) भारतवर्ष का इतिहास—लेखक, एक इतिहास-प्रेमी। प्रकाशक, ज्ञानमण्डल-कार्यालय, काशी। सजिल्द का मूल्य २॥।) है।

इस पुस्तक में वेदों के समय से लेकर वर्तमान काल तक का भारतवर्ष का इतिहास लिखा गया है। यह ग्रन्थ पाँच खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में मुसलमानों के आने के समय तक का वर्णन है। दूसरे में राजपूत और मुग़ल, तीसरे में मराठा, चौथे में सिक्ख और पाँचवें में अँगरेज़ों के सम्बन्ध का इतिहास लिखा गया है। लेखक ने अपने इस ग्रन्थ को एक नये ही ढङ्ग से लिखा है, जिसके कारण विषय-प्रतिपादन कुछ असम्बद्ध सा हो गया है। कहा गया है कि इस ग्रन्थ की रचना जातीय दृष्टि से की गई है। विशेषता यही है कि दास आदि मुसलमानी राजघरानों तथा अँगरेज़ी शासन के कई एक गवर्नरजनरलों का अत्यधिक संक्षेप में वर्णन किया गया है। इनके स्थान में राजपूतों, मराठों और सिक्खों का कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है। परन्तु लेखक ने उनकी उन्नति और अवनति के कारण भी अच्छी तरह नहीं समझाये हैं। साहित्य और कला की उपेक्षा भी की गई है। भाषा अच्छी है।

(५) भारत का धार्मिक इतिहास—लेखक, पण्डित शिवशङ्कर मिश्र। प्रकाशक, आर० डी० वाहिती एण्ड कम्पनी, नं ४, चोरबगान, कलकत्ता। मूल्य ३) है।

इस पुस्तक में लेखक ने भारत के भिन्न भिन्न धर्मों, सम्प्रदायों तथा शाखा-सम्प्रदायों का वर्णन किया है। भारत के छोटे-बड़े सब मिला कर कोई अस्सी नब्बे धर्मों का परिचयात्मक उल्लेख इस पुस्तक में हुआ है। ग्रन्थकार ने अपने वक्तव्य में लिखा है कि यह रचना गुजराती और बँगला की दो एक पुस्तकें पढ़ कर की गई है। अतएव यह सङ्कलन-मात्र है। अधिकांश धर्मों के सम्बन्ध का परिचयात्मक वृत्त अत्यन्त ही अल्प है। कोई कोई धर्म भयङ्कर भी बता दिया गया है। हिन्दी में अपने ढङ्ग की यह पहली पुस्तक है। इससे इस देश में प्रचलित धर्मों का नाम-धाम तथा उनके सिद्धान्तों का यत्किञ्चित् ज्ञान अवश्य हो जाता है। अतएव पुस्तक पढ़ने योग्य है।

(६) भारतवर्ष का इतिहास—लेखक, श्रीयुत मन्मथनाथ राय, एम० ए०, एल० टी०, प्रकाशक, नन्दकिशोर एंड ब्रादर्स, पबलिशर्स एंड बुकसेलर्स, चौक, बनारस सिटी। इस इतिहास की रचना हाईस्कूल में पाठ्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक नियत की जाने के उद्देश से की गई है। लेखक स्वयं शिक्षक हैं, अतएव इसके लिखने में उन्होंने इस बात का ध्यान रक्खा है कि इसकी भाषा सरल हो और विषय-वर्णन भी जटिल न होने पावे। छपाई साधारण है।

(७) भारतवर्ष का इतिहास—(प्रथम भाग) लेखक लाला लाजपतराय। अनुवादक श्रीयुत सन्तराम बी० ए०। प्रकाशक, अध्यक्ष, आर्य-पुस्तकालय तथा सरस्वती-आश्रम, लाहौर।

यह भारतवर्ष के उस विस्तृत इतिहास का प्रथम भाग है जिसे लाला लाजपतराय ने जेल में रहते समय लिखना शुरू किया था। इस भाग में वैदिक काल से लेकर मुसलमानों के आगमन के पहले तक का सारा इतिहास आगया है। इसमें वैदिककाल, बौद्धकाल, गुप्तकाल तथा इसके बाद के भारतीय काल का विशद वर्णन किया गया है। अलग अलग परिच्छेदों में सभी बातों की पूरी पूरी विवेचना की गई है। पुस्तकान्त में जो पाँच परिशिष्ट लगा दिये गये हैं उनसे इस पुस्तक की उपयोगिता और भी अधिक हो गई है। भारत के इतिहास का यह अपने ढङ्ग का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। पुस्तक पर सुन्दर जिल्द बँधी हुई है, मूल्य नहीं लिखा है।

(८) राजनीति-विज्ञान—लेखक, श्रीयुत सुखसम्पत्ति राय भण्डारी। प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी, १२६ हरीसन रोड, कलकत्ता। मूल्य १।=) है।

लेखक ने अपनी भूमिका में लिखा है कि इस पुस्तक की रचना पचासों अँगरेज़ी के राजनैतिक ग्रन्थों को देख कर की गई है। अतएव पुस्तक की उत्तमता पर किसी को सन्देह नहीं होना चाहिए। हिन्दी के पाठकों के लिए अँगरेज़ी किताबों की नामावली विशेष लाभदायक नहीं। उन्हें तो सन्तोष उतने में ही है जितना लेखक ने लिख देने की कृपा की है। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक ने अपनी यह पुस्तक लिख कर हिन्दी के राजनीति-साहित्य के ग्रन्थों की संख्या-वृद्धि ही नहीं की है, किन्तु अपनी विषय-विवेचना से राजनीति के सिद्धान्तों पर भी अच्छा प्रकाश डाला है। पुस्तक उपयोगी है।

(९) स्वाधीनता के सिद्धान्त—अनुवादक पण्डित हेमचन्द्र जोशी, बी० ए०। प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-भवन, १८१, हरीसन रोड, कलकत्ता और मूल्य १) है।

यह पुस्तक आयर्लैंड के वीर आत्मत्यागी टेरेन्स मैक्स्विनी की Principles of Freedom नामक पुस्तक का अनुवाद है। पुस्तक के प्रारम्भ में महामना मैक्स्विनी का संक्षिप्त जीवन-चरित भी दे दिया गया है। अनुवाद की भाषा सरल है। इस प्रसिद्ध पुस्तक का अनुवाद कर जोशीजी ने इसे हिन्दीवालों के लिए भी सुलभ कर दिया है। अतएव हिन्दी के पाठक उनके कृतज्ञ हैं।

(१०) भारतभक्त एण्ड्रूज़—लेखक, एक भारतीय हृदय, प्रकाशक, गाँधी-हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, कालबादेवी रोड, बम्बई, और मूल्य २।) है।

इस पुस्तक में दीन-दुःख-कातर एण्ड्रूज़ महोदय का चरित लिखा गया है। ऐसे महामना व्यक्ति के चरित-पाठ से लाभ की ही सम्भावना अधिक रहती है। अतएव यह पुस्तक पढ़ने और सङ्ग्रह करने योग्य है।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग २४, खण्ड २] सितम्बर १९२३—भाद्रपद १९८० [संख्या ३, पूर्ण संख्या २८५

शेक्सपीयर का विश्व-सन्देश।

प्रत्येक महाकवि अपनी कृति में मनुष्य-जीवन के सम्बन्ध में अपना अनुभव प्रकट करता है। इसी अनुभव के द्वारा हम उसकी महत्ता का परिचय पाते हैं। प्रत्येक मनुष्य के अनुभव में कुछ न कुछ नवीनता, कुछ न कुछ विचित्रता रहती ही है, इसी को हम उस मनुष्य की कला कहते हैं। एक व्यक्ति के विचारों और अनुभवों में, जो उसकी कृति में प्रकट होते हैं, जितनी ही अधिक नवीनता होगी, जितनी ही विशेष मात्रा में विचित्रता होगी, उतनी ही उत्कृष्ट उसकी रचना समझी जायगी। शेक्सपीयर के विषय में एक लेखक का कहना है कि यदि संसार में कभी कोई मौलिक कहलाने योग्य था तो वह शेक्सपीयर था। उसकी मौलिकता के ही कारण उसकी कृतियों में मनुष्य-जीवन के सम्बन्ध में हमें अद्भुत हृदय-स्पर्शी विचार मिलते हैं। इस लेख में हमें उसकी कला के विषय में ही कुछ कहना है।

सबसे बड़ी विचित्रता, जो शेक्सपीयर को अन्य लेखकों से पृथक् करती है, यह है कि वह जीवन को अनेक दृष्टियों से देखता है। वर्ड्स्वर्थ, मिल्टन, पोप तथा अन्य अनेक कवि एक तरह की बात कहते हैं, उनकी समस्त रचनाओं को पढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डालिए आपको यह अवगत हुए बिना न रहेगा कि उनकी विचार-धारा एक ही मार्ग में बहती है। उन लोगों ने मनुष्य को रूप-विशेष में देखा है। जब वे उसका ध्यान करते हैं, वही रूप उनके सामने आता है। वर्ड्स्वर्थ की दृष्टि में मनुष्य की गम्भीर प्रकृति का कपाट खुलने के लिए प्रकृति-देवी की आराधना में उसका रत होना वाञ्छनीय है। पोप की दृष्टि में सृष्टि में मनुष्य का स्थान अत्यन्त क्षुद्र है। सामाजिक जीवन में, स्वार्थ-सङ्ग्राम में, सफलता प्राप्त करने के निमित्त जिन उपायों का अवलम्बन मनुष्य करता है उन्हीं के आधार पर पोप ने उसके विषय में अपनी धारणा निश्चित की है। मिल्टन कुछ आगे बढ़ा है सही, पर उसने भी मनुष्य को अदृष्ट के सामने परवश माना है। उसने अपने काव्यों में ईश्वर के सामने मनुष्य के इसी परवश स्वरूप को अङ्कित किया है। यह बात शेक्सपीयर में नहीं है, वह हमें मनुष्य को एक रूप में दिखला कर सन्तुष्ट नहीं होता। यदि कहीं वह हैम्लेट, ब्रूटस का चरित्र अङ्कित करता है तो कहीं मैकबेथ, ओथेलो का और कहीं टच-स्टोन तथा फ़ालस्टाफ़ का। शेक्सपीयर के अनुभव-क्षेत्र का यह विस्तार उसी की विशेषता है।

शेक्सपीयर के जो नाटक विनोद-प्रधान कहे जाते हैं, यदि उनके असली स्वरूप पर ध्यान दिया जाय तो उनमें कल्पना और जीवन के आनन्द का बाहुल्य ही मिलेगा। समाज में जो कुछ प्रकट अनौचित्य दीखता है उसी को मिटाने के लिए विनोद-प्रधान नाटकों की रचना होती है, उपहास और व्यङ्ग्य का आश्रय लेकर नाटककार बुराइयों की तीव्र समालोचना करता है और प्रायः उसकी इच्छा के अनुकूल फल भी होता है। परन्तु उपहास दो प्रकार का होता है। एक उपहास वह है जिसमें तीक्ष्ण व्यङ्ग्य और घृणा का प्राबल्य होता है। दूसरे प्रकार के उपहास में व्यङ्ग और घृणा का नाम नहीं होता, उसकी उत्पत्ति और उसका जीवन प्रेम के अन्तर्गत ही होता है। शेक्सपीयर के विनोद-प्रधान नाटक ऐसे ही हैं, As you like it, A mid-summer night dream और Much ado about nothing में वह कहीं भी तीक्ष्ण व्यङ्ग्य में रत नहीं होता। सच पूछिए तो इन नाटकों में काव्य, कल्पना और जीवन के आनन्द की मस्ती ही अधिकतर दिखाई पड़ती है। चारों ओर जीवन की सरसता को देख कर शेक्सपीयर उन्मत्त हो जाता था, कभी कभी यह संसार उसे स्वर्ण-रञ्जित सा जान पड़ने लगता था, उसके उक्त नाटकों से यही परिचय मिलता है।

किन्तु संसार का यह मोहक रूप दिखा कर शेक्सपीयर मौन नहीं होता, वह हमारी उस दुर्बलता का दृश्य भी दिखाता है जो मनुष्य को पग पग पर अदृष्ट के सामने उसकी विवशता दिखलाती है। 'हैम्लेट' में बादशाह को मार न सकने में हैम्लेट की असमर्थता को दिखला कर वह हमारे सामने एक बेढब प्रश्न खड़ा कर देता है। हैम्लेट कवि है, दार्शनिक है, उदात्त विचार का पुरुष है, फिर भी वह उस कार्य को नहीं कर सकता जिसे करना वह अपना कर्त्तव्य समझता है। जिस कार्य को लेरटीज़ सा साधारण आदमी बिना विलम्ब कर सकता है उसी कार्य को हैम्लेट नहीं कर सकता। मि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न लेखकों ने हैम्लेट की इस असमर्थता के भिन्न भिन्न कारण बतलाये हैं। किसी का कहना है कि वह दार्शनिक और कवि होने के कारण व्यावहारिक कार्य में कुशल नहीं था, किसी का कहना है कि उसे मानसिक रोग था और इस कारण वह अपना कार्य नहीं कर सका। किसी का कहना है कि वह व्यावहारिक कार्य में कुशल होने के ही कारण अपने पिता की हत्या का पूरा प्रमाण पाये बिना बादशाह का वध न कर सका। इन भिन्न भिन्न मतों में किसका मत ठीक है और किसका नहीं, इससे हमें कोई मतलब नहीं। हमारा मतलब तो है इस बात से कि हैम्लेट जैसा बलवान् मस्तिष्क और उदार नैतिक भावों का पुरुष जीवन के ऐसे चक्र में पड़ गया कि उसे उस कार्य में रत होने की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसके करने की योग्यता उसमें इसी कारण नहीं थी कि वह इतना अधिक उदात्त विचारवाला है।

इस प्रकार शेक्सपीयर हमारे सामने बड़ा गहरा प्रश्न खड़ा कर देता है। जिन आदर्शों को जीवन में प्राप्त करना मनुष्य अपना लक्ष्य समझता है उनके कारण जब वह जीवन के कर्त्तव्यों को कर सकने की योग्यता खो बैठता है तब फिर हमें क्या करना चाहिए? शेक्सपीयर इसका उत्तर नहीं देता, केवल सङ्केत-मात्र करके वह हमें छोड़ देता है। अदृष्ट मनुष्य के आत्म-विकास-प्रयत्न के विरुद्ध नहीं है, वह हममें पूर्णता चाहता है और हमारी अपूर्णता के लिए हमें कठोर दण्ड देता है।

'मैकबेथ' में शेक्सपीयर एक दूसरी ही बात बतलाता है। मैकबेथ क्रूर हत्या और अनाचार का आश्रय लेकर राज्य प्राप्त करता है, पराजित होता है, और मृत्यु की गोदी में जाता है। यदि इतना ही होता तो मैकबेथ शोकान्त नाटक न कहलाता, क्योंकि दुराचारी पुरुष के जीवन के दुःखमय परिणाम पर शोकान्त नाटक नहीं अवलम्बित किया जा सकता। लेकिन दुराचारी होने के साथ ही साथ मैकबेथ में पहले सज्जनता विशेष परिमाण में थी। जिस दिन उसके राज्य पाने की भविष्यद्वाणी की गई उसी दिन से उसमें प्रबल लालसा की लहर आई, और तभी से वह एक अनाचार के बाद दूसरा अनाचार करने लगा। धीरे धीरे उसके सम्पूर्ण अच्छे गुण नष्ट हो गये। मनुष्य में थोड़ी सी बुराई किस प्रकार बल पाकर उसके मृदु स्वभाव को नष्ट करके उसे राक्षस बना देती है—इसी दुःखमय सत्य का अवलम्बन करके इस शोकान्त नाटक ने जन्म पाया है।

'ओथेलो' में आयेगो का चित्रण करके शेक्सपीयर ने हमें मानव-प्रकृति की एक दूसरी ही दुर्बलता का पता दिया है। मनुष्य अपने क्षणिक विनोद के लिए औरों का सर्वनाश कर सकता है, ओथेलो और डेसडेमोना जैसे दो प्रेमियों का जीवन दुःखमय कर सकता है। क्या यह शोचनीय नहीं है?

शेक्सपीयर के शोकान्त नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे हमारा ध्यान मनुष्य-जीवन की अपूर्णता की ओर ले जाते हैं, अन्य शोकान्त नाटकों की तरह वे प्रयत्न-विशेष में हमारी असफलता को दिखला कर हमारे हृदय को निराशा का धक्का नहीं देते, वे केवल उस कमी की याद दिलाते हैं जिसने मानव-जीवन को चारों ओर से घेर रक्खा है और इस क्रिया-द्वारा वे हमें अदृष्ट के सामने नम्र बना कर पूर्णता की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं। हम यह मानते हैं कि हमारी असफलता को दिखानेवाले नाटक हमारा अपकार ही करेंगे। और शायद इसी कारण हमारे संस्कृत-साहित्य में शोकान्त नाटकों के लिए कोई स्थान नहीं है, परन्तु हमारा विचार है कि शेक्सपीयर के ढङ्ग के नाटक हमारी प्रकृति से कलुषित अंश को निकाल कर हमारी आत्म-शुद्धि ही करेंगे।

यदि शेक्सपीयर जीवन के सरस भाग पर कहीं अपनी मुग्धता दिखलाता है तो कहीं मानव-जीवन की क्षुद्रताओं का चित्रण कर वह हमें क्षुब्ध भी करता है और अपने इस ढङ्ग से वह हमें यह पता नहीं देता कि मनुष्य-जीवन के सम्बन्ध में उसका एक निश्चित विचार क्या है। वह भिन्न भिन्न दृश्यों को दिखा कर, भिन्न भिन्न विचार-धाराओं में हमें बहा कर मौन हो जाता है और हम हो जाते हैं आश्चर्य्य-चकित। जिस संसार में इतना सुख है उसमें इतना दुःख भी है, जिसमें इतना आनन्द है उसमें इतनी क्षुद्रता, ईर्ष्या, द्वेष भी है, जिसमें इतनी सरसता है उसमें इतना कष्ट भी है। शेक्सपीयर हमें यही दिखलाने का प्रयत्न करता है। यह सब देख कर हम संसार को विचित्र कहने लगते हैं। इस विचित्रता का आभास पाकर हम किसी अज्ञात शक्ति की महत्ता का अनुभव करने लगते हैं। यही शेक्सपीयर की विशेषता है, यही उसकी कला है। इससे अधिक नाटककार कुछ नहीं कर सकता। इसी कारण हम शेक्सपीयर को संसार के महान् नाटककारों में सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

गिरिजादत्त शुक्ल

सरकार की शासन-समीक्षा।

स्वामी जब अपने सेवक को किसी काम पर तैनात करता है तब वह अपनी कारगुज़ारी की रिपोर्ट पेश करता है। वह उस काम के सम्बन्ध में अपने स्वामी को बताता है कि उसने उसे किस तरह किया; वह कितना हुआ और कितना रह गया; उससे स्वामी को क्या नफ़ा-नुक़सान होने की उम्मीद है, इत्यादि। इस देश में प्रायः जितने बैङ्क और जितनी बड़ी बड़ी कम्पनियाँ, अर्थात् व्यावसायिक सङ्घ, हैं उन सबके स्वामी हैं शेयर-होल्डर्स (हिस्सेदार)। काम चलाने के लिए वे मैनेजर, एजन्ट, गुमाश्ते, मुहर्रिर इत्यादि रखते हैं। उन मुलाज़िमों का अध्यक्ष भी अपने स्वामी, शेयरहोल्डरों, की जानकारी के लिए अपने काम की कैफ़ियत देता है। यह कैफ़ियत वह हर छठे महीने या हर साल देता है। वह एक रिपोर्ट पेश करता है। उसमें और और बातों के सिवा वह नफ़े-नुक़सान का भी हिसाब बताता है। इसी रिपोर्ट को देख कर स्वामी अपने उन सेवकों की कारपरदाज़ी का अनुमान करता है और अपने व्यवसाय के वृद्धि-ह्रास का पता पाता है।

इँगलेंड, फ्रांस, रूस, अमेरिका, स्विज़रलेंड आदि देशों में स्वायत्त-शासन है। वहाँ के निवासी ही वहाँ के अधीश्वर हैं। वे स्वामी हैं और जिन लोगों को वे शासन-कार्य्य के सञ्चालन के लिए नौकर रखते हैं वे हैं सेवक। बैङ्कों और कम्पनियों की तरह ये सेवक भी हर साल अपने काम का लेखा-जोखा अपने स्वामियों के सामने रखते हैं। वे हर महकमे की सालाना रिपोर्ट पेश करते हैं। यह भी ठीक ही है। सेवक का यह काम ही है कि वह अपनी कारगुज़ारी या कारपरदाज़ी की रिपोर्ट अपने स्वामी के सामने रक्खे। अन्यथा स्वामी जान कैसे सकता है कि मेरे सेवकों ने दिये हुए काम को किस तरह सँभाला; किस तरह अंजाम दिया; क्या क्या दिक्कतें पेश आईं; और कहाँ कितना नफ़ा-नुक़सान हुआ।

अच्छा, तो, हिन्दुस्तान की गवर्नमेंट के कर्म्मचारी जो सालाना रिपोर्टें लिखते, छपाते और प्रकाशित करते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे किसके लिए। इस देश के निवासियों को तो वे अपना स्वामी समझते नहीं। यदि समझते तो जो अनेक अतर्कित बातें होती हैं वे न होतीं। उदाहरण के लिए इस देश के निवासियों के प्रतिनिधि कहते हैं कि विलायत से बड़े बड़े अफ़सरों को यहां लाने और हज़ारों रुपये, वेतन के रूप में, उन्हें देने की ज़रूरत नहीं। जितने हैं उतने ही रहने दो; उनका काम हमीं लोग करेंगे और कम वेतन पर करेंगे। यदि गवर्नर और गवर्नर-जनरल और सेक्रेटरी आव् स्टेट अपने को हम लोगों का नौकर समझते तो हमारे कथन को, आज्ञा मान कर, शिरसा धारण करते। परन्तु यही नहीं कि वे हमारी बात न मानते हों। वे तो उलटा एक कमिशन नियत करके हाकिमों का वेतन और भत्ता आदि बढ़ा देना चाहते हैं। दूसरा उदाहरण लीजिए। हम कहते हैं कि नमक पर १।) मन जो टैक्स अब तक सरकार लेती थी वही बहुत था; उससे अधिक कर देना ग़रीबों के गले पर छुरी फेरना है। पर सरकार हमारे हो-हल्ले की कुछ भी परवा न करके उस टैक्स को २॥) अर्थात् दूना कर देती है। अतएव यहां की गवर्नमेंट हमारी सेवक नहीं। वह तो स्वामी बनी बैठी है। क़ानून की तथा और भी कितनी ही सरकारी किताबों में जो यह लिखा रहता है कि सरकारी कर्म्मचारी सर्व-साधारण के सेवक (Public Servants) हैं सो विडम्बना-मात्र है। नये शासन-विधान, अर्थात् गवर्नमेंट आव् इंडिया ऐक्ट, के अनुसार, कुछ समय से, प्रजा के प्रतिनिधियों को स्वामी के कुछ अधिकार दिये जाने की घोषणा ज़रूर की गई है। पर वह घोषणा एक ढकोसला ही जान पड़ती है। क्योंकि अधिकार दिये जाने का उल्लेख करके भी देने न देने की किल्ली सरकार ने अपने ही हाथ में रक्खी है। कुछ टैक्स (कर) ऐसे हैं जिन्हें लगाने का अधिकार प्रजा के प्रतिनिधियों को है; पर सरकार उस अधिकार को मानने के लिए बाध्य नहीं। नमक पर लगाये गये कर को ही लीजिए। स्वामिस्वरूप प्रजा ने कहा, नमक पर टैक्स न लगेगा। सरकाररूप सेवक ने गरज कर जवाब दिया, लगेगा और ज़रूर लगेगा। न लगेगा तो हमारा बढ़ा हुआ खर्च कैसे चलेगा। ख़र्च न चलने से फ़ौज-फाटा कैसे रक्खेंगे और तुम लोगों का जान-माल कैसे बचेगा। आपत्ति-काल में हमें ऐसा करने का—तुम्हारा कहना न मानने का—अख़तियार है। बस लीजिए; कर दूना हो गया। स्वामी पर सेवक ग़ालिब आ गया।

इसी से कहना पड़ता है कि इस देश की गवर्नमेंट यहांवालों की जानकारी के लिए सालाना रिपोर्टें नहीं निकालती। वह या तो अपनी ही आत्मा को सन्तुष्ट करने के लिए निकालती है; या दुनिया को दिखाने के लिए निकालती है; या विलायत में बैठे हुए अपने उन कर्णधार स्वजनों की जानकारी के लिए निकालती है जो मन्त्रि-मण्डल के सभासद् हैं, जो इंडिया आफ़िस के सर्वे-सर्वाः हैं, जो पार्लियामेंट के मेम्बर हैं; या अन्य ऐसे लोगों के लिए निकालती है जो भारतेतर देशों के वासी हैं और जिनकी बात सुनना या जिनके सलाह-मशविरे पर ध्यान देना वह अपना फ़र्ज़ समझती है। हां वह इस देश के निवासियों को अपनी रिपोर्टें पढ़ने और उन पर चीं-चपड़ करने को मना नहीं करती। क्योंकि वे तो सरे-बाज़ार बिकती हैं। जिसका जी चाहे मोल ले, पढ़े और मनमानी टीका करे। हां, की गई टीका को मान देना, न देना सरकार के मन की बात है।

और प्रान्तों की तरह इस प्रान्त की गवर्नमेंट भी हर साल एक रिपोर्ट निकालती है। उसमें साल भर की शासन-सम्बन्धिनी बातों का वह निदर्शन या दिग्दर्शन करती है। अथवा यह कहना चाहिए कि वह अपने काम की समीक्षा आप ही करती है। हर दसवें वर्ष वह अपनी इस वार्षिक रिपोर्ट को कुछ विस्तृत करके पिछले दस वर्षों के काम-काज का सिंहावलोकन भी करती है। उसने १९२१-१९२२ की जो रिपोर्ट, अभी हाल ही में, प्रकाशित की है वह दस वर्ष बाद की विस्तृत रिपोर्ट है। उसका सम्बन्ध उन बारह महीनों से है जो ३१ मार्च १९२२ को ख़तम हुए अर्थात् वह अपनी अवधि के कोई १४ महीने बाद निकली है। रिपोर्ट दो भागों में है। पहले भाग में शासन अथवा प्रबन्ध से सम्बन्ध रखनेवाले सभी महकमों की संक्षिप्त आलोचना है। दूसरे भाग में उन्हीं महकमों के काम-काज का वर्णन, विस्तार के साथ, किया गया है। यह दूसरा भाग ९ अध्यायों में विभक्त है। हर अध्याय में एक एक विषय का विस्तृत वर्णन है। नवीनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी विभाग में है। इसमें कितने ही अंश ऐसे हैं जिन पर पिछले ९ वर्षों में विशेषतया कुछ नहीं लिखा गया। कुछ विषय तो ऐसे हैं जो बिलकुल ही नये हैं अर्थात् इस रिपोर्ट में पहले ही बार उन पर कुछ लिखा गया है। उदाहरणार्थ—इस प्रान्त का ऐतिहासिक वर्णन, क़ानून बनानेवाले नये कौंसिल अर्थात् धारा-सभा के सङ्गठन आदि का विवरण, मालगुज़ारी और क़ानून लगान का इतिहास और तद्विषयक सरकारी नीति आदि। इस दफ़े की रिपोर्ट का आकार भी छोटा कर दिया गया है। अतएव रखने और पढ़ने में अधिक सुभीता होता है। इस तरह अनेक दृष्टियों से यह रिपोर्ट बहुत कुछ विशेषता रखती है। यदि यह रिपोर्ट हिन्दी और उर्दू में भी निकलती तो सरकार की शासन-समीक्षा का ज्ञान बहुत अधिक लोगों को हो सकता। और, इसका ज्ञान अधिक लोगों को होना आवश्यक भी है। पर, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, सरकार शायद संयुक्त-प्रान्तवासियों की जानकारी के लिए अपनी रिपोर्टें प्रकाशित ही नहीं करती। करती तो वह उनका तर्जुमा प्रान्त की भाषाओं में ज़रूर प्रकाशित करती; क्योंकि वह यह तो अवश्य ही जानती है कि यहाँ फ़ी सदी पूरा एक आदमी भी अँगरेज़ी नहीं लिख-पढ़ सकता। वह ख़ुद ही अपनी समीक्षा में कह रही है कि इस सूबे में फ़ी दस हज़ार आदमियों पीछे मुश्किल से ६६ अँगरेज़ीदाँ पाये जाते हैं। ख़ैर। तो अब इस रिपोर्ट की कुछ ख़ास ख़ास बातें सुन लीजिए।

शासन में कठिनाइयाँ।

जितनी रिपोर्टें ज़िलों और डिवीज़नों आदि से सरकार के दरबार में पहुँची हैं सभी में दो बातें प्रधान हैं। एक तो असहयोगी और असन्तुष्ट लोगों के राजनैतिक आन्दोलन की बात और दूसरी रुपये की कमी की बात। रुपये की कमी का कारण कुछ लोग नई शासन-प्रणाली के मत्थे मढ़ते हैं, जो किसी हद तक ज़रूर सही है, क्योंकि उसके कारण ख़र्च ज़रूर बढ़ गया है; पर वही कारण प्रधान नहीं। प्रधान कारण है महँगी के कारण तनख़्वाहों का बढ़ाया जाना और अधिक आमदनी बढ़ाये जाने के ज़रियों का इस सूबे में न होना। असहयोग ने भी सरकारी ख़र्च को कुछ न कुछ ज़रूर बढ़ा दिया है। उसने असन्तोष और ग़ैर-क़ानूनी बहस-मुबाहसे को तो बहुत ही अधिक कर दिया है, यहाँ तक कि सरकार को अनेक झंझटों में फँसना पड़ा है। मिस्टर गाँधी के इस असहयोग से लाभ तो कुछ हुआ नहीं, हानि बहुत बड़ी हुई है। उसने इस सूबे की तरक़्क़ी की राह में रोड़े बखेर दिये हैं। उसने इसकी माली तरक़्क़ी को भी रोक दिया है और दीन-ईमान की तरक़्क़ी को भी। लोग बदहवास से हो गये हैं। वे अपनी भलाई-बुराई की परवा न करके असहयोग के प्रवाह में, बिना सोचे विचारे, बहे चले जा रहे हैं। रिपोर्ट-लेखक की राय यही है।

दस वर्ष पहले भी राजनैतिक चर्चा होती थी। पर कम होती थी; वह विशेष विषाक्त न होती थी। धीरे धीरे उसका रुख़ बदलता गया। रौलेट ऐक्ट, पञ्जाब के विद्रोह, महँगी इत्यादि कारणों से वह ज़ोर पकड़ती गई। उस आग में असहयोगियों की काररवाइयों ने आहुति का काम दिया। हज़ारों की संख्या में, जगह जगह, स्वयं-सेवकों की टोलियाँ तैयार करके वे उस आग की प्रचण्डता को बढ़ाते ही चले गये। उन्होंने काश्तकारों को भी उभाड़ा। फल यह हुआ कि कितनी ही जगह मार-पीट हो गई, गोली तक हो गया, बहुत लोगों की जानें तक चली गईं। चौरी चौरा के हत्याकाण्ड ने सबके हृदय कँपा दिये। क़ानूनन स्वयंसेवक बनना नाजायज़ ठहराया गया। उधर गाँधीजी जेल की हवा खाने भेज दिये गये। इससे देश की दशा अधिक नहीं बिगड़ी। मामला वहीं तक रह गया। अब तो असहयोगियों के बल का सितारा बहुत कुछ ढल गया है। उनमें स्वयं फूट पड़ गई है। वे दलों में विभक्त हो गये हैं। वे लोग अब अपनी नादानी को धीरे धीरे समझने लग गये हैं और बहुत लोग उनके दल को छोड़ने भी लग गये हैं। ये सब बातें भी सरकार की कही हुई समझिए।

असहयोगियों के विषय में सरकार की इस राय में क्या किसी को कुछ सन्देह हो सकता है? हमारी राय में तो नहीं। देखिए न, इन्हीं लोगों के उकसाने से चौरीचौरा का हत्याकाण्ड हो गया; रायबरेली और फ़ैज़ाबाद में बलवे हो गये; सीतापुर और हरदोई में एके की आँधी आ गई। इन्हीं ने राजा और प्रजा में अनबन पैदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी और अब अपने ही अस्तबल में ये दुलत्तियां झाड़ रहे हैं। और, राम आपका भला करे, इन्हीं के मन्त्र फूँकने से हज़ारों स्वयं-सेवकों को जेलों में सड़ना पड़ा। कांग्रेस के सैकड़ों ध्वजाधारियों को भी इन्हीं की बदौलत कुट्टी की दाल और मिट्टी-कङ्कड़ मिली हुई अधपकी रोटियाँ खानी पड़ीं। शिव शिव! ये लोग सचमुच ही बड़े भयङ्कर जीव हैं। जान पड़ता है ये बावले भी हैं। क्योंकि ऐसे ऐसे काम ऐसे ही लोगों से हो सकते हैं। यह नहीं कि आराम से घर बैठे मज़े उड़ावें और सरकार बहादुर की कृपा से रात को सुख की नींद सोवें। इन बावलों को स्वराज्य लेने की पड़ी है—

गति अति नीच ऊँच रुचि आछी
चहिय अमिय जग जुरै न छाछी

अरे भाई! अपने सारे कर्त्तव्य सरकार पर छोड़ो। अकारण ही अनहद्-नाद न करते फिरो। सरकार तुमसे अधिक अक़्ल रखती है। तुम्हारी बेहतरी का उसे ख़ुद ही ख़याल है। और बहुत अधिक ख़याल है। देखते नहीं, कौंसिलों में उसने तुम्हारे अधिकार कितने बढ़ा दिये हैं। पाँच पाँच छः छः हज़ार रुपये महीना तो वह तुम्हारे मिनिस्टरों (मन्त्रियों) को तनख़्वाह देने लगी है। और क्या चाहिए? स्वराज्य क्या एक दिन में मिल जाता है? धीरज धरो। लायक़ बनो। वह भी किसी दिन मिल जायगा। सरकार की मुख़ालिफ़त करने से एक पाने के बदले हाथ की आधी भी खो बैठोगे! समझे!

महकमा पुलीस और जुर्म।

पुलीस के महकमे पर भी असहयोगियों ने छापा डालने और अपनी छाप लगाने में कसर नहीं की। बरसों की महँगी ने इस सूबे के निवासियों को यों ही कमज़ोर कर डाला था—दूसरों के रेल-पेल बरदाश्त करने और उनको रोकने की शक्ति उनमें बहुत कम रह गई थी। असयोगियों ने जो कृपा की तो उन पर आफ़त ही आ गई। बड़े बड़े जुर्मों की तादाद बढ़ गई। पुलीस बेचारी के नाकों दम आ गये। वही अपराधियों का पता लगानेवाली, वही क़ातिलों और डाकुओं को पकड़नेवाली, वही विद्रोहात्मक लेख और लेक्चर देनेवालों की ख़बर लेने वाली, और वही सब जुर्मों की तहक़ीक़ात करनेवाली ठहरी। पर वह करे तो क्या क्या करे। दम मारने को उसे मुहलत भी तो मिले। एक के पीछे दौड़ती है तो दूसरा हाथ से जाता है। इस दशा में चोरी, लूट, डाके, क़त्ल आदि की तादाद बढ़ जाय तो क्या आश्चर्य्य?

इन्हीं कारणों से रिपोर्ट के पिछले साल जहाँ ६९६ क़त्ल हुए थे वहाँ रिपोर्ट के साल बढ़ कर वे ७३५ हो गये। चोरी और लूट-पाट के हादसे भी अधिक हुए; पर ग़नीमत है कि बहुत अधिक नहीं। बलवे के अपराधों की संख्या १०६५ से १२९० तक पहुँच गई। और ऐसी डकैतियों की संख्या जिनमें डाकुओं ने लोगों को जान से मार डाला हो ६९४ से १२७७ तक जा पहुँची। इसका मतलब आप समझे? मतलब यह कि ऐसी डकैतियां प्रायः दूनी हो गईं अर्थात् पिछले साल की अपेक्षा ५८३ डाके और पड़े! पर याद रखिए और इस बात को कभी न भूलिए कि जिन ज़िलों में असहयोगियों ने अधिक ऊधम मचाया उन्हीं में डाके भी अधिक पड़े। फ़ैज़ाबाद में हर साल छः-सात डाकों से अधिक न पड़ते थे। पर वहां, रिपोर्ट के साल, उनकी संख्या १३५ हो गई। अलीगढ़ में वह २० से ८३, गोरखपुर में २० से ६०, मेरठ में २८ से ६६ और रायबरेली में २५ से ४८ डाके पड़ने की नौबत आई! यह है दीन-दुखियों की पालक हमारी सरकार की नज़रों में असहयोगियों की देश-सेवा! मगर वाहरी हमारी पुलीस। उसकी राजभक्ति और नमकहलाली सर्वथा अनुपमेय है। असहयोगियों के हज़ार प्रयत्न करने पर भी वह उनके फन्दे में न फँसी; सरकार की ख़ैरख़्वाह बनी ही रही।

ज़माना किफ़ायतशारी का है। क्योंकि अपढ़ और असभ्य हिन्दुस्तानियों को पढ़ाने-लिखाने, फौज़-फाटा रखने और ऊँचे उहदेवालों की तनख़्वाहें बढ़ाने के कारण ख़र्च बहुत बढ़ गया है। इस कारण इस महकमे को भी, शायद ३) महीना पानेवाले, ३५,००० चौकीदारों को बरख़ास्त कर देना पड़ा। अपने अपने जानो-माल की रक्षा अब सूबे के अधिकांश बाशिन्दे ख़ुद ही कर लें। लूट-खसोट, चोरी, डाकेज़नी होगी तो पुलीस तहक़ीक़ात कर देगी। हाँ, एक बात और भी हुई है। पुलीस-सेना में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ तख़फ़ीफ़ या कमी और भी हुई है; पर कितनी और कैसी, यह इस रिपोर्ट में नहीं बताया गया। इतना ही लिख दिया गया है कि कुछ तख़फ़ीफ़ ("Some Reduction") कर दी गई है। मालूम नहीं कुछ सुपरिन्टेंडेन्ट, असिस्टेंट सुपरिंटेंडेन्ट, इन्स्पेक्टर, सब-इन्स्पेक्टर आदि भी निकाले गये हैं या चौकीदार, चपरासी, ख़लासी और कांस्टेबुलों ही पर कुल्हाड़ी चली है।

कृषक-कथा।

यह पृथ्वी किसी की नहीं। आज इसके पास, कल उसके। राम और कृष्ण, दिलीप और मान्धाता, पृथु और हरिश्चन्द्र, इन सबकी होकर भी किसी के साथ नहीं गई। पर इस सूबे के तअल्लुक़ेदार, ज़मींदार और कृषक उसे नहीं छोड़ना चाहते। वे चाहते हैं कि वह सदा उन्हीं की होकर रहे। यद्यपि यह बात किसी ने कही नहीं, पर मंशा सबका यही जान पड़ता है।

सरकार कहती है कि तअल्लुक़ेदार और ज़मींदार नहीं चाहते कि हर तीसवें साल बन्दोबस्त हुआ करे और उनकी मालगुज़ारी बढ़ा करे। कौंसिल में उन्होंने अपने बल पर यह प्रस्ताव भी "पास" करा लिया है कि ५० वर्ष बाद बन्दोबस्त हुआ करे। पर सरकार ने उनकी यह राय आँख बन्द करके नहीं मान ली। उसने एक कमिटी बना दी है और उसके मेम्बरों से कह दिया है कि भाई, ख़ूब सोच-समझ कर रिपोर्ट करो। बताओ, तुम्हारी क्या राय है। तअल्लुक़ेदारों की बात मानी जाय या नहीं। देखिए, ये लोग सरकार को क्या सलाह देते हैं।

उधर कृषकों की—विशेष करके अवध के कृषकों की—यह शिकायत है अथवा थी कि हम लोग हर आठवें वर्ष बेदख़ल न किये जाया करें और हम पर जा-बेजा इज़ाफ़ा न किया जाया करे। नज़राना भी हमसे न लिया जाया करे। इस पर कृषकों के माँ-बाप सरकार की आज्ञा है कि हाँ, तुम्हारी शिकायतें उचित भी हैं और अनुचित भी। बार बार बेदख़ल किया जाना ज़रूर अनुचित है; पर ज़मींदार ही बेचारे क्या करें। ग़ल्ला महँगा हो गया है और ज़मीन की क़ीमत बढ़ गई है। इसी से सात साल बाद १ आना रुपया इज़ाफ़ा वे काफ़ी नहीं समझते। इसी से पट्टेदारों को बेदख़ल करके वे नज़राना भी लेते हैं।

इन्हीं सब बातों का ख़याल करके अवध का क़ानून लगान सरकार ने बहुत कुछ बदल दिया है। अब सरकार ने कृषकों पर यह कृपा की है कि १ आना रुपया इज़ाफ़ा की क़ैद दूर करके तअल्लुक़ेदारों को इजाज़त दे दी है कि तुम लोग एक उचित सीमा के भीतर कस कर इज़ाफ़ा किया करो। रही औचित्य की सीमा, सो उसे हम बता दिया करेंगे। पर अभी तक बताया नहीं। हाँ, साथ ही इसके, उसने एक बात और भी कर दी है। वह यह कि यदि हर दस वर्ष बाद उचित इज़ाफ़ा मिलता जाय तो पट्टेदार किसान उम्र भर अपनी ज़मीन जोतता बोता रहे। यही नहीं, उसके मरने पर उसका वारिस भी ५ वर्ष तक बेदख़ल न किया जाय।

यद्यपि सरकार ने खुल्लमखुल्ला इस बात को कबूल किया है कि ज़मींदार और तअल्लुक़ेदार अपने काश्तकारों को, सिर्फ़ रुपया ऐंठने के इरादे से, बार बार बेदख़ल करते रहे हैं; लगान लेकर कोई कोई रसीद नहीं देते हैं; तरह तरह के अबवाब भी वसूल करते हैं और काश्तकारों से ग़ैरक़ानूनी नज़राना भी लेते हैं। यहाँ तक कि वे लोग लगान की रक़म बहुत ज़ियादह वसूल करके उससे कम रक़म पटवारी के काग़ज़ात में दर्ज कराते रहे हैं। अर्थात् ये लोग सरकार को भी धोखा देते रहे हैं। फल इसका यह हुआ कि हज़ारों किसान उजड़ गये, उनकी लोटा-थाली बिक गई; उन्हें भूखों मरने की नौबत आई। तथापि ऐसे अन्यायों के होने पर भी और कृषकों की दुर्गति अपनी आँखों देखने पर भी, सरकार कहती है कि—वह कृषकों को मौरूसी हक़ नहीं दे सकती। और दे भी कैसे। वह वचन-बद्ध जो है। सन् १८५७ के ग़दर के बाद उसने अवध के तअल्लुक़ेदारों से पक्का वादा कर लिया है कि ज़मीन के मालिक आप ही लोग माने जायँगे। और वह मालिक ही कैसा, जो अपनी ज़मीन पर कृषकों को दवामी क़ब्ज़ा कर लेने दे। देहली के बादशाहों की सात आठ सौ साल की बादशाही छिन सकती है; लखनऊ के नवाबों की नवाबी छिन सकती है; पूना, सतारा और नागपुर के नरेशों का राज्य छिन सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय।

है; पर अवध के तअल्लुक़ेदारों का भूमि-सम्बन्धी स्वामित्व नहीं छिन सकता। सरकार बात जो हार चुकी है—न छीनने का वचन जो दे चुकी है।

यह तो हुआ अवध का हाल। आगरा-प्रान्त के कृषकों और ज़मींदारों में भी परस्पर अनबन है। वहां भी बहुत कम सन्तोष के दर्शन होते हैं। सम्भव है, वहां के भी पट्टेदारी क़ानून (Tenancy Act) में सरकार को तरमीम करनी पड़े।

हां, तो क़ानून-लगान में तरमीम हो जाने से अवध के कृषकों की शिकायतें मन्दी पड़ गई हैं। मामला कुछ थँम गया है। सरकार की ऐसी ही राय है। पर हमारी राय तो यह है कि थँभा वँभा कुछ नहीं। आग भीतर ही भीतर सुलग रही है। पाही काश्त की मनाही, खेत शिकमी उठाने की मनाही, एक आना रुपया इज़ाफ़े की हद का रद किया जाना इत्यादि कृषकों के असन्तोष-पावक में घी डालने का काम कर रहा है। आगे सरकार की मर्ज़ी।

सरकार की समीक्षा है कि अवध के क़ानून-लगान में तरमीम होने के पहले वहां के कृषक असन्तुष्ट तो थे ही। असहयोगियों ने अपनी बेजा हरकतों से उस असन्तोष की मात्रा को यहां तक बढ़ा दिया कि कई जगह बलवे हो गये, जिनमें बहुत आदमियों की जानें तक गईं। सो, ये असहयोगी जहां जाते हैं वहीं ग़ज़ब ढाते हैं। ये खुले न रहने पावें सो ही अच्छा। पर, इस विषय में, एक बात न भूलनी चाहिए। अवध के जिस क़ानून-लगान के कारण कृषकों और तअल्लुक़ेदारों में इतनी अनबन हो गई और जिसके कारण, सरकार ही के शब्दों में, अनेक कृषकों को भीख माँगने की नौबत आई ("Many tenants were reduced to destitution by ejectment") उसमें सरकार ने तब तक तरमीम करने की कृपा न की जब तक उपद्रवी और विद्रोही असहयोगियों ने कृषकों को उभाड़ कर बलवे न करा दिये। अब कृषक चाहे उन्हें शाप दें, चाहे आशीर्वाद।

शिक्षा-समस्या।

लोग चाहते हैं कि शिक्षा का ख़ूब प्रचार हो; एक भी मनुष्य निरक्षर न रह जाय। सरकार भी यही चाहती है। इसी से उसने लखनऊ और बनारस में विश्वविद्यालय बना दिये हैं; प्रयाग के विश्वविद्यालय के सङ्गठन आदि में माक़ूल फेर-फार कर दिये हैं; कालेजों और स्कूलों के बीच की शिक्षा दी जाने के साधनों को भी उसने नया रूप दे दिया है। यह तो हुई उच्च शिक्षा की बात। हाई-स्कूल की शिक्षा की ओर ध्यान देकर उसके साधनों को दुरुस्त और चुस्त करने की योजना भी वह बहुत पहले ही कर चुकी है। रही प्रारम्भिक शिक्षा, सो पिछले दस वर्षों में उसने अन्यान्य शिक्षाओं की ओर ज़रा कम और इसकी ओर बहुत अधिक ध्यान दिया है। इरादा तो सरकार का यह था कि हिन्दी-उर्दू के मदरसों ही की नहीं, छात्रों की भी संख्या दूनी हो जाय। इस उद्देश से उसने ख़र्च भी बहुत किया। परन्तु देश, देशवासियों और सरकार के भी दुर्भाग्य से ये अहमक़ असहयोगी यहां भी आड़े आये। उन्होंने सब गुड़ मिट्टी नहीं तो शीरा ज़रूर कर दिया। १९२१-२२ ईसवी में ४८ ज़िलों में से ३३ ज़िलों में छात्रों की हाज़िरी बढ़ने के बदले घट गई! इस घटी का कारण असहयोग के सिवा, जूड़ी-बुख़ार और महँगी भी समझना चाहिए। जो रुपया मदरसों की संख्या बढ़ाने के लिए था वह मुदर्रिसों की तनख़्वाहें बढ़ाने में ख़र्च हो गया। किया क्या जाता? और रुपया ख़ज़ाने में था ही नहीं। सो छात्रों की कमी के कारणों में एक कारण यह भी कूद पड़ा। पाँच वर्ष पहले देशी भाषाओं और अँगरेज़ी के स्कूलों के अध्यापकों की तनख़्वाहें बहुत कम थीं। अब वे ख़ूब बढ़ा दी गई हैं; इतनी कि ये लोग अब यथेष्ट आराम से रह सकते हैं। परन्तु, अफ़सोस इस बात का है कि बावजूद माक़ूल तनख़्वाहें देने के, क़ाबिल मुदर्रिस फिर भी नहीं मिलते। ये लोग बहुधा अपनी ज़िम्मेदारी को नहीं समझते; काम में जी नहीं लगाते; इसी फ़िराक़ में रहते हैं कि किसी और महकमे में जुगुत लग जाय तो शरिस्ते तालीम को तलाक़ दे दें। भला कहीं ऐसे आदमियों से अच्छा काम होने की उम्मेद की जा सकती है। पर किया क्या जाय; लाचारी है।

दस वर्ष पहले हिन्दी-उर्दू के मदरसों में लड़कों की संख्या केवल ४,८०, ३३८ थी। पिछले साल बढ़ कर वह ७,८७,५०७ हो गई। मदरसे पहले ९, २५१ थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर इस समय उनकी संख्या है १५,४६१। देखा आपने। सरकार चाहती थी कि मदरसे भी दूने हो जायँ और लड़के भी। पर नहीं हो पाये। अनेक विघ्न-बाधायें जो आ गईं। रही, ख़र्च की बात। सो उसमें विशेष कञ्जूसी नहीं की गई। पांच साल पहले प्रारम्भिक मदरसों का ख़र्च सिर्फ़ २६ लाख रुपया था। पर १९२२ में वह ६२½ लाख कर दिया गया। अर्थात् कोई ढाई गुना अधिक! पर लड़कों की संख्या दूनी भी न हुई! कारण? वही असहयोगियों की धांधल, वही जूड़ी-बुख़ार, वही महँगी इत्यादि। सरकार की इसमें कुछ भी लाग नहीं।

आमदनी और ख़र्च।

पहले बड़ी सरकार अर्थात् गवर्नमेंट आफ़ इंडिया जो कुछ देती थी उसी से छोटी सरकार को अपना ख़र्च चलाना पड़ता था। पर जब से शासन में नया सुधार हुआ तब से यह तै पाया कि अपनी अपनी आमदनी और अपना अपना ख़र्च अलग रहे। इस प्रान्त की सरकार को हुक्म हुआ कि ज़मीन की माल-गुज़ारी, आबपाशी, आबकारी, जङ्गलात, स्टाम्प, रजिस्ट्रेशन आदि से जो कुछ आमदनी हो वह तुम्हारी। इनके सिवा आमदनी की कुछ और भी थोड़ी सी मदें शामिल की गईं। पर शर्त यह ठहरी कि इस आमदनी में से तुम अपना ख़र्च भी चलाओ और रियाया के आराम के लिए नये नये काम भी करो; पर बड़ी सरकार को दो करोड़ चालीस लाख रुपया सालाना पहले दे दिया करो। और छोटी सरकारों से भी इस तरह बड़ी सरकार ने रूपया लिया है और ले रही है। परन्तु ख़ुदा के फ़ज़्ल से जिस कमिटी ने यहाँ की छोटी सरकार के मत्थे इतना रुपया मढ़ा था उससे एक भूल होगई। उसने इस सूबे की सालाना आमदनी कूती थी १२ करोड़ ३२ लाख और ख़र्च १० करोड़ ७५ लाख। इसी से उसने कहा कि इतनी आमदनी लेकर क्या करोगे। इसमें से २ करोड़ ४० लाख बड़ी सरकार को दिया करो। इस तरह ख़र्च बाद देने पर, फिर भी इतना रुपया बच जायगा कि वह तुम्हारा ख़र्च ही न किया जा सकेगा। कमिटी की यह सिफ़ारिश फ़ौरन ही मान ली गई। पर गुल क्या खिला कि छोटे-बड़े सभी मुलाज़िमों की तनख़्वाहें इतनी बढ़ानी पड़ीं कि कमिटी की दिखाई हुई सारी बचत अन्तर्धान हो गई; और कुछ घर से भी देना पड़ा—शारदा नदी के नहर के लिए जो रुपया क़र्ज़ लिया गया था उसमें से भी कोई ९१ लाख रुपया उड़ गया। आप कहेंगे कि आमदनी देख कर ख़र्च किया जाता है। आमदनी काफ़ी न थी तो तनख़्वाहें इतनी ज़ियादह क्यों बढ़ाई गईं। इसका उत्तर यह है कि बढ़ावें न तो करें क्या। लोग बिला तरक़्क़ी लिये मानें तब न। यहांवाले मान भी जायँ तो विलायत से आनेवाले साहब तो माननेवाले जीव नहीं। वे तो अभी और भी तनख़्वाह बढ़ाई जाने की फ़िक्र में हैं। और यदि वे यहाँ नौकरी करने आना पसन्द न करें तो हिन्दुस्तान का यह इतना बड़ा राज्य चले कैसे। हिन्दुस्तानियों में राज-काज सँभालने की तमीज़ तो है ही नहीं; और हो भी, तो भी उन पर बड़े बड़े काम कैसे छोड़े जा सकते हैं। अस्तु।

तनख़्वाहें वग़ैरह बढ़ने के सिवा ख़र्च बढ़ जाने के और भी कारण तो हैं। आबकारी, आबपाशी और जङ्गलात के महकमों से जितनी आमदनी कूती गई थी उतनी नहीं हुई। इसके सिवा एक करोड़ से अधिक रुपया शिक्षा के साधनों को बढ़ाने के लिए भी मामूली से अधिक ख़र्च करना पड़ा। और भी कई महकमे लाखों रुपया अधिक खा गये। ६१ लाख रुपया तो उस क़र्ज़ के ब्याज-बट्टे में चला गया जो नहर वग़ैरह खुदाने के लिए छोटी सरकार ने लिया है। पर याद रहे, सबसे अधिक ख़र्च मुलाज़िमों की तनख़्वाह, भत्ता, पेंशन वग़ैरह में हुआ। अकेली इस मद में ख़र्च की वृद्धि, पिछले दो वर्षों में, ३ करोड़ ४ लाख रुपये तक पहुँच गई। इसका नतीजा क्या हुआ, सो सुन लीजिए—

सन् १९१९–२० के शुरू में दो करोड़ ५२½ लाख की बचत थी। वह उसके अन्त में घट कर २ करोड़ २१ लाख रह गई। १९२०–२१ में वह यहाँ तक उड़ी कि केवल ८९ लाख रह गई। १९२१–२२ में वह तो उड़ गई; ६० लाख रुपये का उलटा घाटा रहा। यह घाटा १९२२–२३ के अन्त में १ करोड़ ३३ लाख हो गया। इसी से क़र्ज़ लिये गये रुपये से काम चलाना पड़ा और इसी से, इस साल, १९२३ में, नये नये करों की सृष्टि और वृद्धि करनी पड़ी। इस पर कुछ टीका-टिप्पणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना व्यर्थ है; क्योंकि बड़ों के काम भी बड़े—बड़े निराले—होते हैं। साधारण भी समझ का आदमी आमदनी से ख़र्च नहीं बढ़ने देता; पर सरकार इस नियम की क़ायल नहीं। ज़रूरी ख़र्च वह नहीं घटा सकती, क़र्ज़ चाहे भले ही लेना पड़े। उपाय भर तो वह क़िफ़ायत कर ही रही है। देखिए, हज़ारों चौकीदार और चपरासी वग़ैरह उसने बरख़ास्त कर दिये; काग़ज़, क़लम, दावात वग़ैरह का ख़र्च कम कर दिया; अपने गैज़ट का आकार छोटा कर दिया; एक बार काम में लाये गये लिफ़ाफ़ों को, लौट फेर कर, फिर उन्हीं को काम में ला रही है। और आप चाहते क्या हैं ?

मनुष्य-गणना का फल।

१९२१ ईसवी में, १० वर्ष बाद, यहाँ मर्दुम-शुमारी हुई थी। उससे मालूम हुआ कि यहाँ की आबादी अब केवल ४,६५,१०,६६८ रह गई है। अर्थात् १९११ ईसवी की अपेक्षा १४,८६,६९६ मनुष्य कम हो गये हैं। यह क्यों ? ये कोई १५ लाख आदमी गये कहाँ ? चाहिए तो यह था कि आबादी बढ़ती। वह घट कैसे गई ? अजी इन लोगों को हैज़ा, प्लेग, बुख़ार और इनफ़्लुयंज़ा वग़ैरह खा गये ! इनको भी तो कुछ ख़ूराक चाहिए। आदमी अनाज खा जाता है; बहुत लोग भेड़, बकरियाँ तथा अन्य जानवर खा जाते हैं। बीमारियाँ इन खानेवालों को खा जाती हैं। लेना-देना बराबर ! तुम औरों को खाते हो; तुम्हें और खा जाते हैं। हाँ, सफ़ाई, तन्दुरुस्ती और दवा-पानी से बीमारियाँ दब जाती हैं या बहुत नहीं होतीं; अतएव आदमी भी कम मरते हैं। यह सब सही है। पर चार-पाँच करोड़ आदमियों के लिए कोई कहाँ तक अस्पताल और दवाख़ाने खुलवावे। क्या गाँव गाँव असिस्टेंट सर्जन रक्खे जायँ ? फिर, इस प्रान्त के अधिकांश निवासी ठहरे निरक्षर और निर्बुद्धि। सफ़ाई की महिमा उनकी समझ में आ नहीं सकती और सबके सब एक-दम से पढ़ा-लिखा कर पण्डित बनाये नहीं जा सकते। फिर ये लोग पेट भर खाते भी तो नहीं। इससे कमज़ोर रहते हैं। जहाँ किसी रोग ने दबाया तहाँ तड़ाका। राम की माया, और क्या कहा जाय। यदि किसी का कुछ दोष है तो इन्हीं लोगों के भाग्य का।

अच्छा तो पिछले दस वर्षों की अपेक्षा फ़ी सदी ३०१ आबादी यहाँ की कम हो गई। २८ लाख आदमियों का कलेवा तो अकेला इनफ़्लुयंज़ा कर गया। मरदों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक मरीं। पहले इस प्रान्त की आबादी फ़ी मील मुरब्बा ४२७ थी। अब वह ४१४ ही रह गई। एक हिसाब से यह अच्छा ही हुआ। आदमी कम रह जाने से कहीं कहीं शायद ज़मीन अब सस्ती हो जाय।

धर्म्मान्तर करने के कारण हिन्दुओं की संख्या कुछ कम हो गई। १९२१ में, फ़ी १० हज़ार आदमियों पीछे, धर्म्म के लिहाज़ से, इस प्रान्त के निवासियों का औसत इस प्रकार था—

हिन्दू	८४४८
मुसल्मान	१४४६
आर्य	४४
क्रिश्चियन	४४
और धर्म्मवाले	१८

और इसके १० वर्ष पहले, अर्थात् १९११ ईसवी में था—

हिन्दू	८४७८
मुसल्मान	१४३८
आर्य	२९
क्रिश्चियन	३८

बीमारी आदि के कारण हिन्दुओं का जितना ह्रास होना चाहिए उससे भी ९ फ़ी सदी ह्रास अधिक हुआ। सरकार का अनुमान है कि बहुत से हिन्दुओं को आर्य्यों और क्रिश्चियनों ने अपने अपने धर्म्म में दीक्षित कर लिया। चलो, अच्छा ही हुआ। यह ह्रास ह्रास नहीं। यह तो लाभ की बात है। ३३ कोटि देवताओं की पूजा के बदले अब एक ही निराकार की निश्चल उपासना करनी पड़ेगी और खाने-पीने में भी कुछ सुभीता हो जायगा।

इल्म की ख़ूब तरक़्क़ी हो रही है। मर्दुमशुमारी से मालूम हुआ कि फ़ी एक हज़ार आदमियों में ३७ आदमी लिखना-पढ़ना जानते हैं। अर्थात् फ़ी सदी कोई ३½ आदमी। बाक़ी के ९६½ बिलकुल ही अपढ़ हैं—काला अक्षर भैंस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बराबर। क्यों साहब तरक्की हुई है या नहीं ? ज़रूर हुई है। इसका सबूत यह है कि पहले, अर्थात् १९११ में, फ़ी एक हज़ार आदमियों में केवल ३४ पढ़े-लिखे थे। अब तीन बढ़ गये हैं। दस वर्ष में ३ की वृद्धि कम न समझिए—

शनैः पन्थाः शनैः सन्था शनैः पर्वतलङ्घनम् ॥

फ़ी एक हजार पुरुषों और स्त्रियों में कितने पुरुष और कितनी स्त्रियां पढ़ी-लिखी हैं, इसका भी हिसाब सुन लीजिए—

	१९११ में	१९२१ में
पुरुष	६१	६५
स्त्रियां	५	६

देख लीजिए, पुरुषों ही ने नहीं, स्त्रियों ने भी इल्म हासिल करने में तरक्की कर डाली है। पहले हज़ार स्त्रियों में पाँच ही लिखना-पढ़ना जानती थीं। अब ६ जानती हैं। दस वर्ष में एक की संख्या बढ़ गई।

पहले की मर्दुमशुमारियों में हिन्दी-उर्दू के पीछे लोग बावले से हो जाते थे। वे अपनी अपनी भाषा के जाननेवालों की संख्या बढ़ाने के पीछे बे-तरह हैरान होते थे। इससे इन लोगों पर तरस खाकर सरकार ने, १९२१ में, इस झंझट की जड़ ही काट डाली। उसने अपने नक़शों से हिन्दी-उर्दू के ख़ाने ही निकाल डाले। उनकी जगह उसने "हिन्दुस्तानी" को दे दी। सो अब फ़ी दस हज़ार आदमियों में ९,९७४ आदमी यही बोली बोलते हैं। असल में ये लोग कौन भाषा या बोली बोलते हैं, इसका पता लगाने की ज़रूरत ही सरकार ने नहीं समझी। उसने कल्पना कर लिया कि न हिन्दी ही कोई भाषा है, न उर्दू ही। जो कुछ है "हिन्दुस्तानी" है। नगरों, क़सबों, गांवों और खेड़ों तक में सभी कहीं हिन्दुस्तानी ही की तूती बोल रही है। कहिए, कैसी अच्छी कल्पना है। हिन्दी-उर्दू के झगड़े को इसने कितनी आसानी से हल कर दिया।

जन्म, मृत्यु, बीमारी और तन्दुरुस्ती।

जब किसी के घर बच्चा पैदा होता है या कोई मरता है तब चौकीदार साहब उसकी रिपोर्ट थाने में करते हैं—वही चौकीदार जिनके ३५ हज़ार भाई-बन्द अभी हाल ही में ३) माहवार देनेवाली मुलाज़िमत से बरतरफ़ किये गये हैं। इन्हीं की रिपोर्टों के आधार पर इसका पता लगाया जाता है कि साल में कितने आदमी मरे और कितने पैदा हुए। यह हिसाब, जान पड़ता है, बहुत ठीक—बहुत ही ठीक और सही—रक्खा जाता है। क्योंकि इन रिपोर्टों या नक़शों से तो यह साबित होता है कि पिछले दस वर्षों में जितने आदमी मरे उनसे ९,५७,२५९ अधिक पैदा हुए। पर मर्दुमशुमारी के नक़शे कह रहे हैं कि आबादी में से १४ लाख ३२ हज़ार आदमी कम हो गये। अब बताइए, सही किसे मानें ? दोनों को सही मानें या एक ही को ? अथवा दोनों ही ग़लत हैं ! सरकार और सरकारी मुलाज़िम तो कभी ग़लती ही नहीं करते। सुनते तो यही चले आते हैं। परन्तु इस विषय में सरकार ख़ुद ही सन्दिहान है। उसका ख़याल है कि चौकीदारों की रिपोर्टों के आधार पर पुलिस के तैयार किये हुए नक़शे ज़रूर ग़लत रहे हैं। अस्तु।

१९२० ईसवी में फ़ी एक हज़ार आबादी पीछे ३५½ बच्चे पैदा हुए थे; पर १९२१ में उनकी संख्या घट कर ३४½ ही रह गई। सो उधर आदमी अधिक मरे, इधर बच्चे कम पैदा हुए। बेचारे बच्चों पर तो बड़ी ही आफ़त आई। एक तो उनकी पैदायश कम हुई; दूसरे जो पैदा हुए उनमें से मरे भी अधिक। पिछले साल फ़ी एक हज़ार बच्चों में २२० ही मरे थे; रिपोर्ट के साल २३६½ मर गये। यह हिसाब ज़िलों का अथवा देहात का है, शहरों का नहीं, जहां म्यूनीसिपैलिटियां हैं। शहरों में तो बच्चों की मरी सी आ गई—उन शहरों में जहां नल का साफ़ सुथरा और छना हुआ पानी मिलता है, जहां कूड़ा-करकट और गन्दगी उठाने के लिए मेहतरों के बटालियन के बटालियन रहते हैं, जहां की सड़कों पर छिड़काव होता है, और जहां प्रायः बिजली की रोशनी और पङ्खे इफ़रात से पाये जाते हैं। ऐसे शहरों में जहां पिछले साल हज़ार में ३०३½ बच्चे मरे थे वहां १९२१ में ३२१ मर गये। कानपुर ने तो इस मद में बहुत ही अधिक तरक्की कर दिखाई। वहां फ़ी एक हज़ार पीछे ५८०¾ बच्चे मर गये अर्थात् आधे से भी ज़ियादह !

देहात की सफ़ाई और तन्दुरुस्ती का हाल कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूछिए। बुरी दशा है। पड़ोस के एक सूबे की सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के महकमे के बड़े साहब की राय है कि इस दुरवस्था का कारण रियाया की ग़रीबी है (The people are unhealthy because they are poor) सरकार की भी राय कुछ कुछ ऐसी है। उसका कथन है कि ग़रीबी ही नहीं, अज्ञान अथवा अशिक्षा भी इसका कारण है और वे ही सफाई और तन्दुरुस्ती के मार्ग में कण्टक हैं। पर, सरकार लाचार है; क्योंकि देश की वर्तमान अवस्था में वह और कुछ कर धर नहीं सकती। यदि लोगों का अज्ञान दूर भी कर दिया जाय तो ग़रीबी कैसे दूर हो सकेगी। उसे दूर करने का ठेका तो सरकार लेही नहीं सकती। मगर इस दुख में उसके लिए सुख की बात एक अवश्य है। वह यह कि शहरों और क़सबों की अपेक्षा देहात में लोग कम मरते हैं; उनकी तन्दुरुस्ती औरों से अच्छी रहती है।

अब ज़रा पिछले दो वर्षों की जन्म-मृत्यु का लेखा, अङ्कों में, सुन लीजिए—

	१९२०	१९२१
जन्म	१६,६४,१९२	१५,६०,६०२
मृत्यु	१७,४२,८३५	१७,९५,४४५

सो इस हिसाब से भी यही प्रकट है कि पिछले साल से १९२१ में जन्म कम हुआ और नाश अधिक। किस रोग से कितना नर-नाश हुआ, इसका भी कुछ हिसाब नीचे देखने की कृपा कीजिए—

हैज़े से	१,४९, ६६७
चेचक से	६,३५४
प्लेग से	२४,००९
बुख़ार से	१३,६१,९२०
संग्रहणी और अतीसार से	१७,३०१

तेरह तेरह लाख आदमी एक साल में बुख़ार से मर जाते हैं। पर ख़र्च की कमी के कारण लाख पचास हज़ार रुपये लगा कर हकीम और वैद्य नहीं रख लिये जाते कि ये लोग देहात में अपने दवाख़ाने खोल कर लोगों की चिकित्सा करें। कारण इसका यह जान पड़ता है कि इन लोगों की चिकित्सा का ढङ्ग वैज्ञानिक नहीं। सरकार शायद डरती है कि इनकी अवैज्ञानिक चिकित्सा के कारण कहीं तेरह के बदले छब्बीस लाख मरीज़ न चल बसें।

उपसंहार।

रिपोर्ट बहुत बड़ी है। यद्यपि उन सभी विषयों पर बहुत कुछ कहने-सुनने की जगह है जिनकी समीक्षा सरकार ने की है, तथापि इस छोटे से लेख में और अधिक नहीं लिखा जा सकता। और यदि लिखा भी जाय तो पढ़ेगा कौन? इस नीरस, अरोचक और अल्पपरिचित विषय की आलोचना पढ़ने के लिए फ़ुरसत ही किसे? यह खद्दर का माहात्म्य, चर्ख़े की चर्चा, असहयोग-संग्राम की स्तुति और देशभक्ति की कुसुमाञ्जलि तो है ही नहीं जो लोग खाना-पीना और आराम करना तक छोड़ कर पढ़ने दौड़ेंगे। इन विषयों पर रची गई चतुष्पदियां, मुसद्दस और ग़ज़लें भी इस लेख में नहीं जिन्हें लोग गाते फिरें या जिनसे क्षण भर उनका मनोरञ्जन ही हो। अतएव एक आध बात और लिख कर हम इसे ख़तम करना चाहते हैं।

सरकार का कहना है कि अवध में कभी, किसी भी ज़माने में, मामूली किसानों को ज़मीन पर क़ब्ज़ेदारी या मौरूसी हक़ प्राप्त न था—

"The ordinary tenant in Oudh never had any kind of occupancy or heriditary right."

परन्तु सरकार ने कोई सबूत देने की कृपा नहीं की। यों तो अराजकता और प्रजा-पीड़न के ज़माने में किसानों की तो बात ही नहीं, बड़े बड़े तअल्लुक़ेदारों और नरेशों के भी मौरूसी हक़ हवा में उड़ते रहे हैं। राजा-महाराजा रोज़ ही बनते बिगड़ते हैं और अवध में भी कितने ही बने बिगड़े हैं। पर इस तरह के हक़ कभी किसी को मिले ही नहीं, यह कहना ज़रा साहस का काम है। क्योंकि पुराणों और स्मृतियों में एक नहीं अनेक जगह लिखा है कि ज़मीन उसी की है जो उसे जोतने-बोने लायक़ बनाता और उस पर फ़सल पैदा करता है। तो क्या ये सारी उक्तियां निराधार हैं? मौरूसी हक़ किसी को भी प्राप्त न था तो ये उक्तियां स्मृतियों में घुस आईं कैसे? मान लीजिए कि मुसलमानों के शासनकाल में इस तरह का हक़ किसी को न था तो क्या हिन्दुओं के शासन-काल में भी न था। अच्छा, यदि कोई पण्डित इस बात को सप्रमाण सिद्ध कर दे कि सरकार का कहना ठीक नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो क्या सरकार अवध के किसानों को क़ब्ज़ेदारी या मौरूसी हक़ देने को तैयार हो जायगी ? सम्भावना तो ऐसी नहीं; क्योंकि वह कहती है, मैंने, ग़दर के बाद तअल्लुक़ेदारों को सनदें दे देकर उन्हें अपने अपने तअल्लुक़े का मालिक मान लिया है। सो यदि उसकी बात ग़लत भी साबित कर दी जाय तो भी वह उन सनदों की इस मद को मनसूख़ नहीं कर सकती। यद्यपि दुनिया में आज तक अनेक सनदें और सुलहनामे मंसूख़ हो चुके हैं; पर सरकार अपनी दी हुई सनदें मंसूख़ नहीं कर सकती। सनदों की कुछ शर्तें अवध के सनदयाफ़्ता लोगों ने तोड़ दी हैं और शर्तें तोड़ने से दस्तावेज़ ज़रूर ही रद हो जाते हैं। अवध के नये क़ानून-लगान की चर्चा के समय यह बात सरकार को सुझाई भी गई थी। पर उसने किसी की नहीं सुनी। बात यह जान पड़ती है कि सनदयाफ़्ता लोग हैं सरकार के बहुत बड़े ख़ैरख़्वाह और ख़ैरख़्वाहों अथवा आश्रितों के गुण-दोष नहीं देखे जाते—

नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा स्यात्

अच्छा यही सही। मान लीजिए कि किसानों को कभी ऐसे हक़ हासिल नहीं रहे। तो क्या उनसे कभी लगान भी उतना ही लिया जाता रहा है जितना कि इस समय सरकार और उसके ख़ैरख़्वाह लेते हैं ? सैकड़ों प्राचीन पुस्तकों में लिखा है कि हिन्दुओं के शासन-काल में राजा अपनी प्रजा से भूमि की उपज का केवल षष्ठांश लेता था। फिर क्यों सरकार आज-कल उपज का ५० फ़ी सदी तक लगान और मालगुज़ारी लेती है और इस बात को उसने इस रिपोर्ट में क़बूल भी किया है ? असल बात यह कि—

वेश्याङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा

—— सहदेवसिंह वर्म्मा

इँग्लेंड में चार वर्ष।

कैम्ब्रिज के वर्णन में मैंने लिखा था कि कैम्ब्रिज में पढ़ाई के दो टर्मों के बीच हमें लगभग छः हफ़्ते की छुट्टी भी मिलती है। चार महीने की लम्बी छुट्टी इससे अलग है। छुट्टी के दिनों में कोई छात्र कैम्ब्रिज में नहीं रहने पाता। वहाँ रहने के लिए उसे अपने कालेज के ट्यूटर की विशेष आज्ञा लेनी पड़ती है। अतएव अधिकांश अँगरेज़ छात्र छुट्टियों में अपने घर चले जाते हैं और भारतीय विद्यार्थी अपने अवकाश-काल का उपयोग इँग्लेंड के भिन्न भिन्न मनोहर स्थानों के परिदर्शन में करते हैं।

अपनी पहली क्रिसमस की छुट्टी में मैं अपने कुछ भारतीय मित्रों के साथ सिडमथ की सैर को गया था। यह स्थान डिवनशायर में इँग्लेंड के दक्षिणी किनारे पर है। डिवन-प्रदेश वसन्त-ऋतु का क्रीड़ा-क्षेत्र है। यहाँ बारहों महीने हरियाली छाई रहती है। यहाँ तक कि शीतकाल में जब सम्पूर्ण इँग्लेंड में रूक्षता का राज छा जाता है और हरियाली का कहीं नाम निशान नहीं रह जाता तब इस प्रदेश की हरी-भरी घाटियाँ उत्तर से आनेवाले थके-माँदे यात्री को आनन्द का साधन होती हैं। इँग्लेंड के दक्षिणी-पश्चिमी किनारे को जैसा ठण्डा होना चाहिए था वह उससे भी कम ठण्डा है। इसका कारण दक्षिणी अक्षांश रेखा, गल्फ़स्ट्रीम का सान्निध्य और समुद्र का साम्यात्मक प्रभाव है। अतएव भारतीय छात्र जाड़े की छुट्टियों में प्रायः इस ओर बहुत आते हैं। सिडमथ एक सुन्दर स्थान है। यहाँ मछली का व्यवसाय होता है। इसके अधिकांश निवासी नाविक हैं। डिवनशायर में टारक्वे सबसे बड़ा नगर है। यह अपने स्नान के घाटों के लिए प्रसिद्ध है। किसी किसी का यह कहना है कि यह स्थान इँग्लेंड के समुद्री किनारों के नगरों में सबसे बढ़ कर सुन्दर है। डिवनशायर के उत्तरी किनारे पर ब्रिस्टल-चैनल के समीप और भी दो छोटे पर सुन्दर नगर हैं। एक का नाम इल्फ़ाकोम्बी और दूसरे का लिंटन है। छुट्टियों के अन्त में हम लोग ब्रिस्टल होकर लौटे। इसी नगर में भारत के सुपुत्र और आधुनिक विभिन्न सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक आन्दोलनों के जन्मदाता राजा राममोहन राय की समाधि है। इँग्लेंड में प्रवास करते समय भारत के इस नर-श्रेष्ठ का यहीं शरीर-पात हुआ था।

ईस्टर की छुट्टियों में मैं अपने एक डाक्टर मित्र के साथ उत्तरी वेल्स के एक छोटे से रमणीक स्थान की सैर को गया। मेरे ये डाक्टर मित्र इस समय जी० आई० पी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेलवे में डिस्ट्रिक्ट रेलवे सर्जन हैं। उत्तरी वेल्स का यह स्थान बहुत ही सुन्दर है। इसके पृष्ठ-भाग में पेनमीनमार नामक एक पर्वत-माला है और सामने आरिश सी। वेल्स के अधिकांश नगरों का नाम लान (Lean) से शुरू होता है। इस स्थान का नाम लान फ़ेरफ़ेचन है, जिसका अर्थ मेरी का छोटा गिरजा है। वेल्स के दूसरे नगरों के नाम बहुत बड़े बड़े होते हैं। ऐंगिल्सी के एक छोटे गाँव के नाम में अट्ठावन अक्षर हैं। उसके नाम में ये अक्षर हैं—Llarfainpwllgwymgyllgogerychwyrndrobwll-llantysiliogogogoch.

उत्तरी वेल्स में हम लोगों का समय बड़े आनन्द में व्यतीत हुआ। हम लोग वहाँ की घाटियों और पहाड़ के दर्रों में तथा आसपास सायकिल पर सवार होकर भ्रमण किया करते थे। इँग्लेंड और वेल्स में पेनमीनमार नाम की पर्वत-माला सबसे अधिक ऊँची है। इसका अवलोकन कर हमें कुछ कुछ हिमालय की शानदार उँचाई की सुध आगई। परन्तु हिमालय की बात कुछ और ही है। एक दिन हम ऐंगिल्सी के ब्यूमारिस नामक स्थान को सायकिल की सवारी से गये। राह में हमें बैंगर और मिनाई का पुल मिला। मिनाई के मुहाने के पास दो अच्छे पुल हैं। ये दोनों मनुष्य की कारीगरी के अद्भुत नमूने हैं।

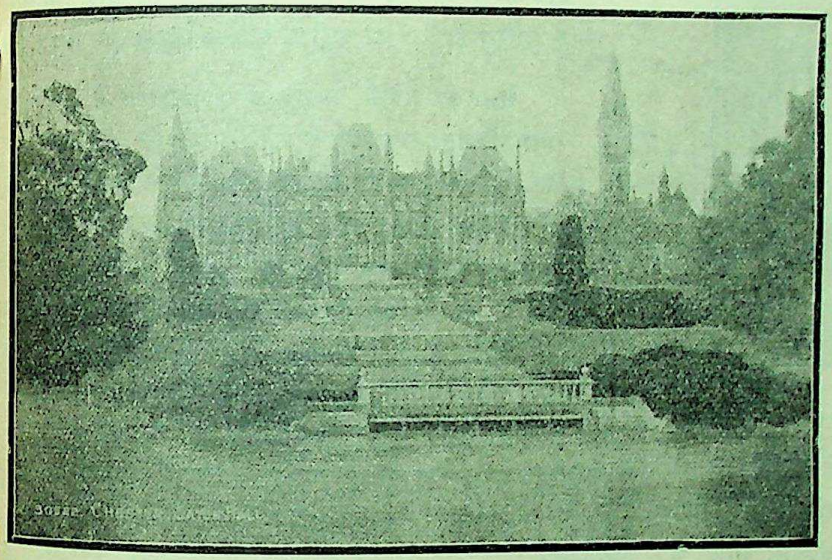

चेस्टर का ईडनहाल।

बैंगर एक सुन्दर नगर है। यहां एक विश्वविद्यालय भी है। ऐंगिल्सी के होलीहेड नामक बन्दरगाह से यात्री लोग आयर्लैंड के डब्लिन और बेल्फ़ास्ट को जाते हैं। भूतपूर्व प्रसिद्ध महामन्त्री मिस्टर लायड जार्ज उत्तरी वेल्स के ही निवासी हैं। वेल्स-भाषा अँगरेज़ी-भाषा से बिलकुल भिन्न है। अधिकांश वेल्स लोग अँगरेज़ी समझ और बोल सकते हैं। परन्तु देश के बिलकुल भीतरी भाग में कुछ ऐसे लोग अभी मिलते हैं जो अँगरेज़ी का एक अक्षर तक नहीं समझ सकते।

पेरीमीनमार के पृष्ठ-भाग में जो उच्च समभूमि है उसमें ड्रूड लोगों का पुरातन चिह्न अभी तक मौजूद है। वह चिह्न बड़े बड़े पत्थरों का एक गोल बाड़ा सा है। कोई कोई उसे ड्रूड लोगों का मन्दिर समझते हैं और कुछ लोगों का यह मत है कि युद्ध में मारे गये तत्कालीन वीरों की स्मृति के लिए ऐसे गोल बाड़ों की स्थापना की गई थी। वहाँ रोमन लोगों के भी कुछ प्राचीन चिह्न माइलस्टोन, अस्त्र-शस्त्र, सिक्के आदि के रूप में प्राप्त हुए हैं। इँग्लेंड और वेल्स का सर्वोच्च पहाड़ स्नोडन उत्तरी वेल्स में ही है। उसकी उँचाई ३,५०० फ़ुट है। उत्तरी वेल्स में दो बड़े जल-प्रपात हैं। एक का नाम अबर जल-प्रपात है। यह लान फ़ेरफ़ेचन से चार मील के लगभग है। दूसरे का नाम स्वालोफ़ाल्स है। यह बेटसी कूड (Bettwls-y Coed) से कुछ मील दूर दक्षिण है। स्वालोफ़ाल्स इँग्लिस्तान का सबसे बड़ा जल-प्रपात है। इसका दृश्य बहुत ही अद्भुत है। फेन से पूर्ण इसकी प्रबल धारायें बड़े वेग से नीचे गिरती हैं।

उत्तरी वेल्स में दो बहुत प्राचीन राजकीय दुर्ग हैं। एक तो कार्नर्वान में, और दूसरा कानवे में है। इँग्लेंड के युवराज का प्रिंस आव् वेल्स-सम्बन्धी अभिषेक-संस्कार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्नर्वान के दुर्ग में ही सम्पन्न होता है। कानवे के दुर्ग की गणना इँग्लिस्तान के अत्यन्त विशाल नष्टप्राय पुराने दुर्गों में है। इसकी स्थापना प्रथम एडवर्ड ने सन् १२८४ में की थी। कानवे में अभी तक वह पुराना

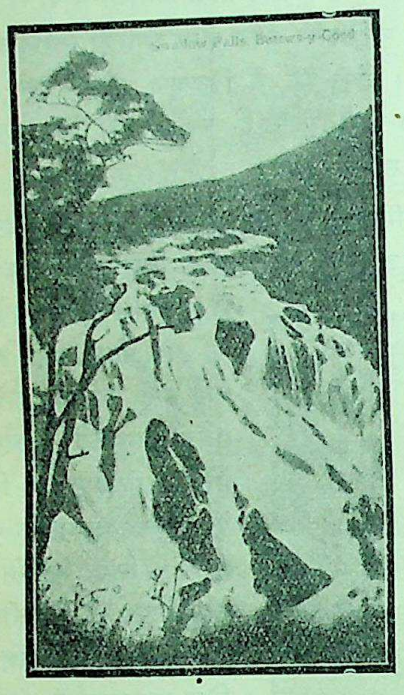

स्वालोफ़ाल्स।

गिरजा मौजूद है जिसका उल्लेख वर्डस्वर्थ ने अपनी 'वी आर सेवेन' नामक कविता में किया है। चेस्टर लान फ़ेयरफ़ेचेन से चालीस मील के लगभग है। मैंने इस ऐतिहासिक प्राचीन नगर की भी सैर की। इसे रोमन लोगों ने बसाया था। यह उनका एक दृढ़ दुर्ग था। प्राचीन परिखा और दुर्ग के भग्नावशेष अभी तक मौजूद हैं।

चेस्टर में एक पागलख़ाना है। उसमें १५०० से भी ज़्यादा पागल रहते हैं। इसके निरीक्षण के लिए कई एक डाक्टर नियुक्त हैं। उनमें एक डाक्टर मेरा मित्र था। उसके रहने के मकान पागलख़ाने के भीतर ही थे। मैं वहीं ठहरा था। उसके घर जाने और वहाँ से बाहर आने में बड़ी झञ्झट उठानी पड़ती थी। जब आधे दर्जन के क़रीब दरवाज़ों के ताले खुलते और बन्द होते तब कहीं बाहर जाना या भीतर आना नसीब होता। इसके सिवा उसके घर में मुझे तरह तरह का हँसी-मज़ाक, शोर-गुल, गाली-गलौज और रोना-धोना सुनना पड़ता। किसी नवागन्तुक के लिए वहाँ रहना बड़ी जीवट का काम था। मेरा डाक्टर मित्र वहाँ महीनों तक कैसे रह सका, इसके लिए मैं उसके धैर्य की प्रशंसा करूँगा। अपने मित्र के ख़ूब आदर-सत्कार करने रहने पर भी मैं वहाँ एक सप्ताह से अधिक नहीं रह सका। मैंने अपने मन में सोचा कि यदि मैं वहाँ कुछ और अधिक समय तक रह गया तो मुझे भी एक दिन उस संस्था का एक सदस्य हो जाना पड़ेगा। चेस्टर का गिरजाघर और टाउनहाल बहुत सुन्दर है। टाउनहाल एटनहाल के नाम से प्रसिद्ध है और डी नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है।

गर्मी की अपनी पहली लम्बी छुट्टी में मैं अपने कुछ मित्रों के साथ विलायत के झील-प्रदेश की सैर करने को गया था। यह स्थान वहाँ लेक-डिस्ट्रिक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। लेक-डिस्ट्रिक्ट की विंडमर झील के किनारे पर बोनेस नाम का एक स्थान है। रहने के लिए यहाँ हमें एक अच्छा बोर्डिङ्ग हाउस मिल गया था। लेक-डिस्ट्रिक्ट में विंडमर सबसे बड़ी झील है। वह दस मील लम्बी है। हमने अपनी इस यात्रा में ख़ूब आनन्द उपभोग

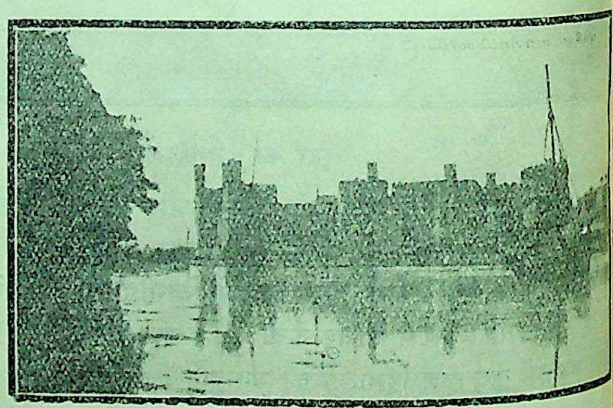

कार्नर्वान कैसिल

किया। लेक-डिस्ट्रिक्ट वास्तव में एक रमणीक प्रदेश है। वर्डस्वर्थ ने कहा है कि वह अत्यन्त प्रिय स्थान है जिसे कभी मनुष्य ने प्राप्त किया है। कभी कभी हम स्टीमर पर सवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर झील पर भ्रमण करते तो कभी कभी नौका पर। कभी कभी हम मोटरबस, चरावङ्का, गाड़ी आदि सवारियों-द्वारा लेक-डिस्ट्रिक्ट के भिन्न भिन्न भागों का परिदर्शन करते। दर्शकों के लिए वहाँ सब प्रकार की सुविधा दी जाती है।

लेक-डिस्ट्रिक्ट जैसा सुन्दर भूभाग मुझे अपने देश के बिहार और उड़ीसा प्रदेश में देखने को मिला है। इस स्थान में भी एक बहुत सुन्दर पहाड़ी झील है। इसका नाम खरगपुर झील है। यह झील मुँगेर से लगभग १६ मील दक्षिण है। इँग्लेण्ड के उपर्युक्त लेक-डिस्ट्रिक्ट की सुन्दरतम झील की अपेक्षा खरगपुर झील किसी बात में ज़रा भी न्यून नहीं है। इँग्लेंड में इस प्रकार के सुन्दर

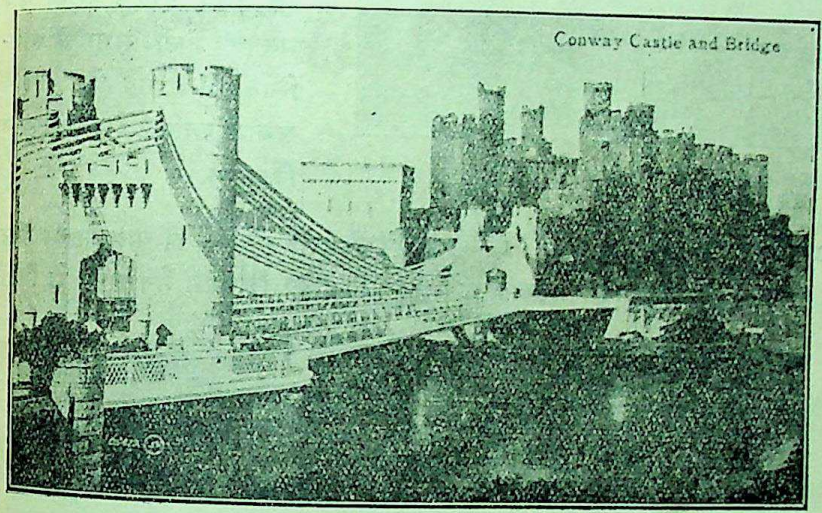

कानवे का दुर्ग और पुल।

स्थान के चारों ओर अब तक सैनीटोरियम, होटल, मकान आदि न मालूम कितने बन चुके होते और स्वास्थ्य-सुधारनेवाले या छुट्टी बितानेवाले लोगों के लिए क्रीड़ास्थल हो गये होते। परन्तु दुर्भाग्य से खरगपुर झील अभी जङ्गली स्थान ही बना हुआ है। वहाँ कोई नहीं आता-जाता और न कोई उसे जानता-बूझता ही है। उसके आस-पास सन्थालों के कुछ गाँव इधर-उधर देख पड़ते हैं, हिंस्रक जन्तु और नर-भक्षक उस स्थान में आनन्द के साथ अपने शिकार की खोज में घूमते रहते हैं।

लेक-डिस्ट्रिक्ट में सबसे सुन्दर झील ग्रसमेर है। यह एक छोटी सी झील है। यहीं वह डब कॉटेज है जिसमें कविवर वर्डस्वर्थ ने अपने परिवार के सहित सन् १७९९ से १८०८ तक निवास किया था। इसके बाद उसमें टामस डिक्वेंसी आकर रहने लगा था। ग्रसमेर चर्च से मिले हुए मैदान में वर्डस्वर्थ और कालरिज की क़बरें हैं। ग्रसमेर के आगे हेलवेलीन पहाड़ के पास थर्लमीर झील है। इसी झील से सुदूर मैंचेस्टर नगर को जल पहुँचाया जाता है। इनके सिवा लेक-डिस्ट्रिक्ट में और भी कई एक झीलें हैं। उनके नाम कानिस्टन-वाटर, उलेस-वाटर, डरवेंटवाटर, बटरमीर और क्रैमक वाटर हैं। इँग्लिस्तान का सबसे बड़ा जल-प्रपात क्रैमक वाटर का ही है। इसे देखने के लिए लोग बटरमीर गाँव से झील पार करके जाते हैं। डरवेंटवाटर के पास ही वैरो-फ़ाल्स और लैडर-फ़ाल्स नामक दो जल-प्रपात हैं। केसविक नामक प्रसिद्ध नगर डरवेंटवाटर के ही तट पर है। यह स्थान पेंसिल के कारख़ाने के लिए प्रसिद्ध है। इस नगर के ठीक पीछे स्कीडन पहाड़ की ऊँची चोटी है। विंडरमीर के सिरे पर एम्बलसाइड नाम का एक ख़ासा बड़ा गाँव है। उसके बिलकुल सन्निकट पहाड़ी घाटी में स्टाक-घिलफ़ोर्स है। एम्बलसाइड और ऊल्सवाटर के बीच किर्कस्टोन नामक प्रसिद्ध दर्रा है। लेक-डिस्ट्रिक्ट के सबसे अधिक सुन्दर स्थलों में एक यह भी है। बटरमीर और केशविक के बीच में एक सड़क है। यह सड़क एक स्थल पर हाथ की कुहनी जैसी है। इसे लोग 'डेविल्स एल्बो' कहते हैं। इस स्थान से गाड़ी आदि द्रुतगति से ले जाने में जोखिम रहती है। इसी कारण लोगों ने इसका उपर्युक्त नाम रख दिया है।

सन् १९१९ के एप्रिल में मैंने दूसरी बार फिर करविक और डरवेंटवाटर की यात्रा की। सन् १९१८ में यह निश्चित हुआ था कि इँग्लिस्तान के विश्वविद्यालयों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़नेवाले भारतीय विद्यार्थी किसी सुविधाजनक स्थान में एकत्र होकर प्रतिवर्ष एक सभा किया करें और उस सभा में शिक्षा, राजनीति और समाज-सम्बन्धी मामलों का विचार हुआ करे। मैंचेस्टर विश्वविद्यालय के छात्र मिस्टर अदवानी ने इस प्रस्ताव को उपस्थित किया था।

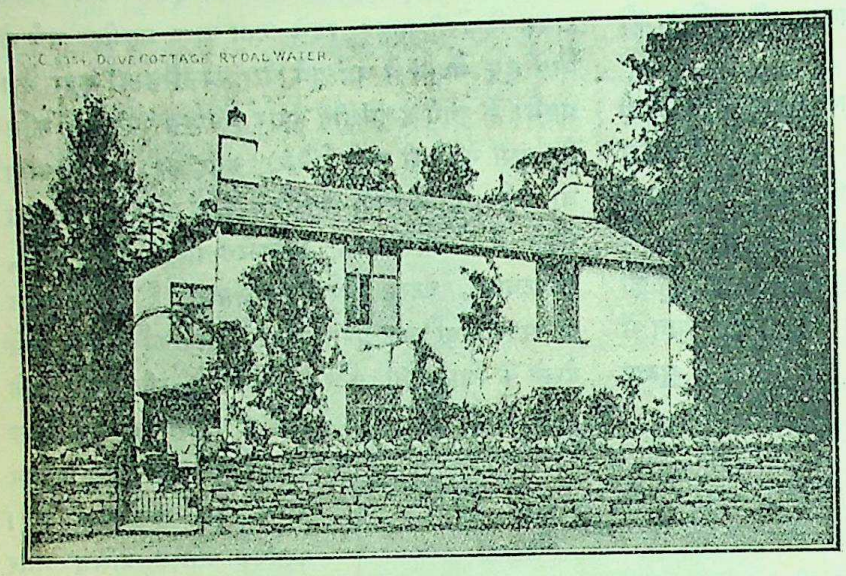

डव काटेज।

उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार सभा की पहली बैठक सन् १९१८ में यार्कशायर के स्वारेज़ नामक स्थान में हुई थी। सभा की दूसरी बैठक सन् १९१९ के एप्रिल में केसविक के समीप डरवेंटवाटर के किनारे बारोहाउस में हुई। मैं इस सभा में उपस्थित था। लगभग सौ भारतीय छात्र स्त्री और पुरुष एक सप्ताह तक इस स्थान में एकत्र रहे और सबने सभा में योग-दान दिया। इँग्लेंड में रहते समय मेरा यह सप्ताह बड़े आनन्द का रहा

बारोहाउस एक बहुत ही सुन्दर घर है। उसके सामने ही डरवेंटवाटर लहरा रही है। उसके अहाते के भीतर ही प्रसिद्ध बारोफ़ाल्स भी है। हम लोग यहाँ सवेरे बहस-मुबाहिसे, वाद-विवाद और व्याख्यान देते, दोपहर में सैर-सपाटा और खेल-कूद और सन्ध्या-समय गाना, बजाना, मुशायरा और नाटक इत्यादि करते। 'भारत में जनता की शिक्षा' पर मैंने इस सभा में एक निबन्ध पढ़ा था। पण्डित हृदयनाथ कुँजरू उस समय इँग्लेंड में ही थे। अतएव वे भी सभा में आमन्त्रित किये गये थे। उन्होंने सभा में शामिल होकर व्याख्यान दिया था।

अब मैं इँग्लेंड के दूसरे स्थानों की यात्राओं का हाल लिखता हूँ। सन् १९१६ का क्रिसमस मैंने अपने दो मित्रों के साथ कार्नवाल के सेंट आइवेस नामक स्थान में व्यतीत किया था। सेंट आइवेस कारबिस की खाड़ी के किनारे लैंड्स एंड के समीप स्थित है। यह पुराने ढङ्ग का एक

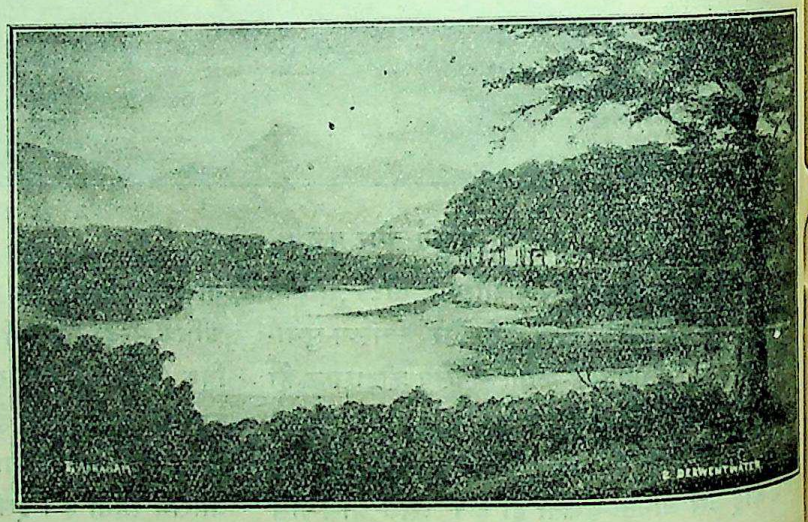

डरवेंटवाटर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र क़स्बा है। यहाँ मछली का व्यवसाय होता है।

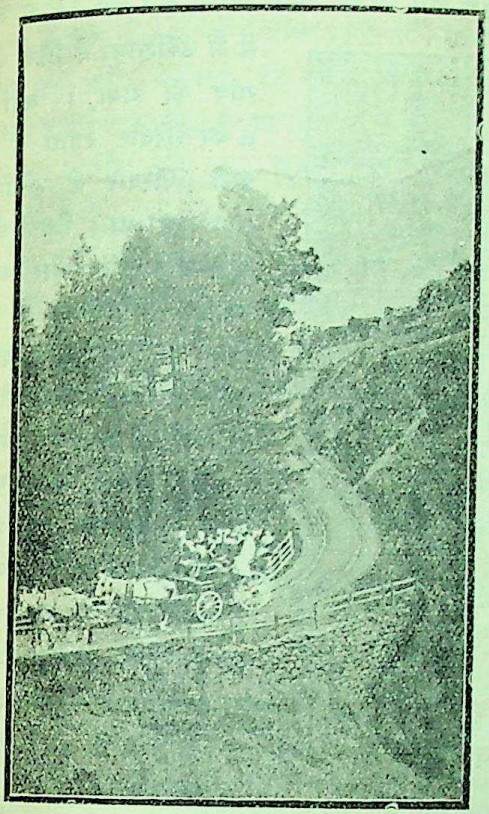

डेविल्स एल्बो।

हम यहाँ एक फ़ार्महाउस में ठहरे थे। कार्नवाल ऊबड़-खाभाड़ देश है। वह डिवनशायर जैसा हरा-भरा देश नहीं है। एक दिन हम लोग लैंड्स एंड देखने गये। इस ओर इँग्लेंड की भूमि का यह अन्तिम छोर है। इसी के समीप एक सुन्दर होटल भी है। लैंड्स एंड के छोर पर एक बड़ा पत्थर है। प्रकृति ने उसे इस प्रकार का बना दिया है कि उसका आकार मनुष्य के मुँह जैसा बन गया है। वह किसी वृद्ध मनुष्य का खल्वाट सिर सा मालूम पड़ता है, मानो वह वृद्ध डाक्टर जानसन के चित्र के सिर जैसा हो। कहा जाता है कि डाक्टर जानसन प्रायः इस स्थान पर बैठ कर अपने कोश के प्रणयन में विचार किया करते थे।

लैंड्स एंड के समीप प्योजर्सी नाम का एक सुन्दर क़स्बा है। इसके सामने इँग्लिश चैनल में एक छोटा सा द्वीप है। उस द्वीप पर एक पुराना दुर्ग है। इसका नाम सेंट मिचल्स माउँट है। यह बहुत रमणीक स्थान है।

१९१७ के क्रिसमिस में अपने उन्हीं मित्रों के साथ मैंने आइल आव् वाइट की सैर की। यह स्थान इँग्लेंड का बाग़ कहलाता है। हम लोग इस द्वीप में शंकलिन नामक स्थान में ठहरे। शंकलिन से तीन मील दूर एक स्थान पर पुरातत्त्व-विभाग की ओर से खोदाई होती है। यहाँ रोमन लोगों के समय की अनेक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। वे सब पास के ही एक अजायबघर में रक्खी गई हैं। प्रायः लोग किसी वस्तु के नाम को दो अर्थों में प्रयुक्त कर ख़ासी हँसी किया करते हैं। यहाँ के लोग भी कुछ शब्दों का प्रयोग इसी प्रकार करते हैं। ऐसे ही पाँच शब्दों के प्रयोग यहाँ की लोकोक्ति में आ गये हैं। वे इस प्रकार हैं। यहाँ के निवासी कहते हैं कि तुम यहाँ की सुइयों में डोरा नहीं डाल सकते। अँगरेज़ी में सुई को निडिल कहते हैं। पर आइल आव् वाइट में

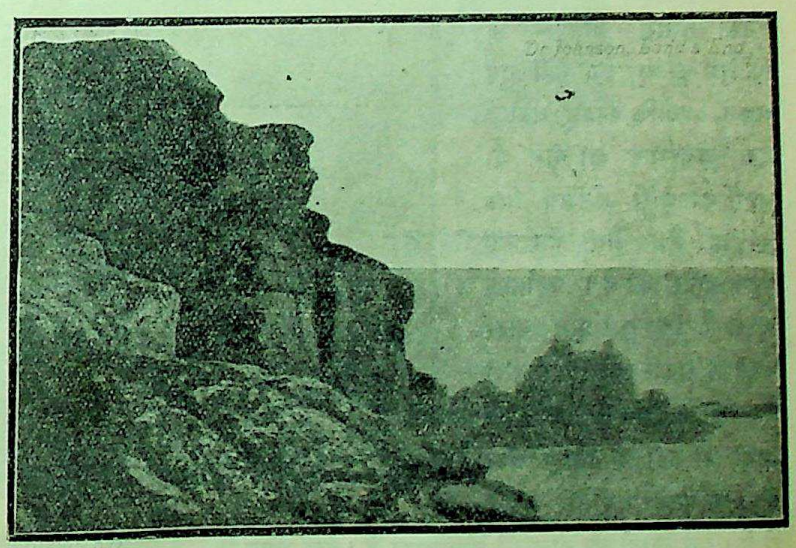

डाक्टर जानसन का लेंड्स एंड।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो समुद्री चट्टानें जल की सतह के ऊपर निकली रहती हैं वे निडिल कहलाती हैं। उनका दूसरा कथन

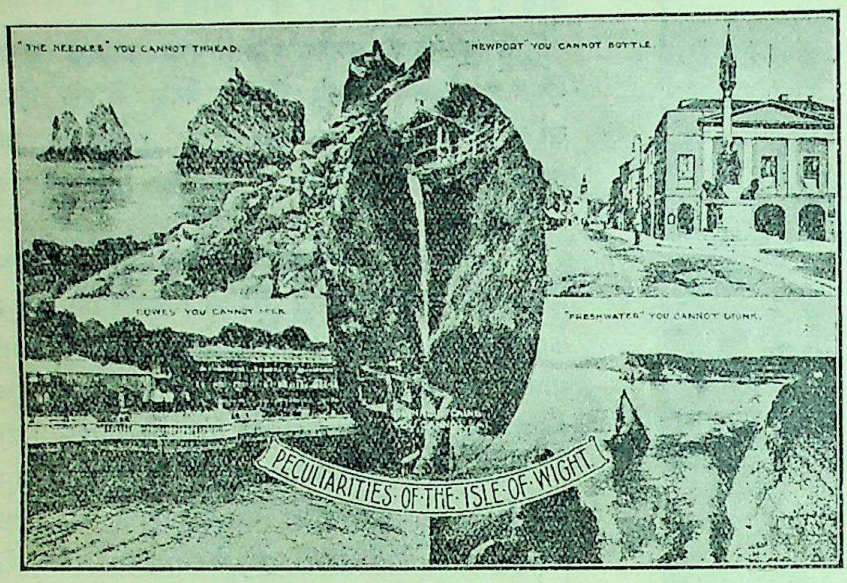

आइल आव् वाइट के दृश्य।

यह है कि यहाँ के 'न्यूपोर्ट' को कोई बोतल में नहीं भर सकता। इस वाक्य में न्यूपोर्ट का मतलब शराब से नहीं है, किन्तु न्यूपोर्ट वहाँ की राजधानी का नाम है। उनकी तीसरी बात यह है कि तुम काउज़ को नहीं दुह सकते, क्योंकि काउज़ वहाँ के एक बन्दरगाह का नाम है, यहाँ काउज़ से मतलब गाय का नहीं है। चौथी विशेषता 'फ्रेश वाटर' की है। वहाँवाले कहते हैं कि तुम फ्रेश वाटर नहीं पी सकते। इस कथन में फ्रेश वाटर से मतलब ताज़े पानी से नहीं है, किन्तु वहाँ की एक खारे पानी की खाड़ी से है। इस खाड़ी का नाम भी फ्रेश वाटर है। इस स्थान में हम लोगों के छुट्टी के दिन बड़े आनन्द में व्यतीत हुए।

दूसरी छुट्टियों में हम लोगों ने बोर्नीमथ, ईस्टबोर्न, क्रोमर इत्यादि स्थानों की यात्रा की, परन्तु इनके सम्बन्ध में मुझे कुछ अधिक नहीं कहना है। सन् १९ ८ के जून में मैं डर्बीशायर के क्रिच नामक गाँव को गया। वहाँ एक क्वेकर-परिवार रहता है। मैं इसी परिवार के लोगों के साथ ठहरा था। जितने उत्कृष्ट, अत्यन्त विद्वान् और अत्यन्त धार्मिक परिवारों से परिचित होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है उनमें से एक यह भी है। क्वेकर-सम्प्रदाय वास्तव में एक श्रेष्ठ सम्प्रदाय है। क्वेकर लोग बड़े शान्त, उदार और जाति-गत ईर्ष्या से शून्य होते हैं। मेरे ख़ास अध्यापक इँग्लेंड के सर्वश्रेष्ठ ज्योतिर्विद प्रोफ़ेसर इडिंगटन इसी सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। पिछले युद्ध के समय यह जानते हुए भी कि युद्ध का विरोध

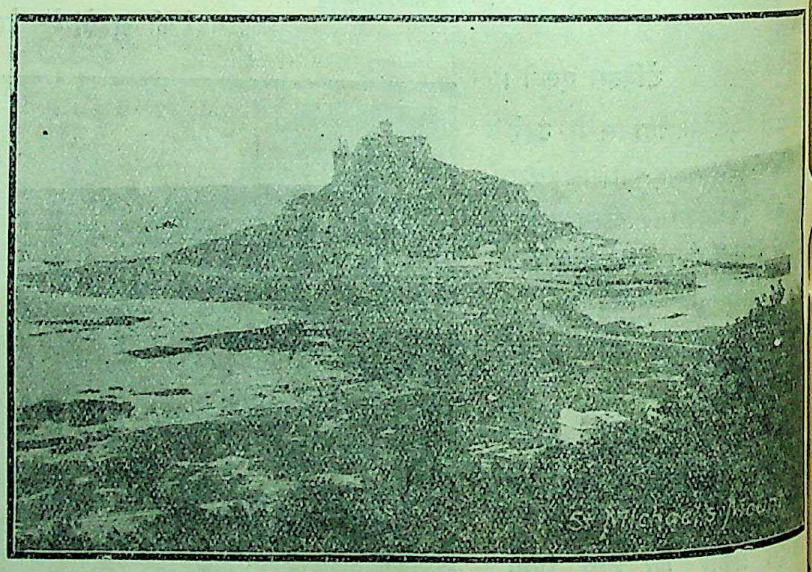

सेंट मिचल्ट माउँट।

करने पर जेल जाना पड़ेगा क्वेकर लोगों ने अपने विचार के विरुद्ध युद्ध में भाग नहीं लिया था। एक दिन मैं गृ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी के साथ उनके गिरजा-घर गया । मैंने वहाँ देखा कि सभी लोग आँखें बन्द किये हुए चुपचाप भगवान् की उपासना में लीन हैं । वे लोग आधा घण्टा से भी अधिक देर तक इसी प्रकार ध्यानस्थ बैठे रहे । उसके बाद उनमें से किसी एक को 'आत्मा' ने प्रवृत्त किया और वह प्रार्थना करने लगा । क्वेकर लोग दृढ़ भक्त, बड़े ईमानदार और सच्चे होते हैं ।

इँग्लैंड में मुझे इस बात का अनुभव हुआ है कि वहाँवाले भारत के ऐंग्लो-इंडियन लोगों को अधिक नहीं चाहते । वे इन लोगों को अहङ्कारी और उद्धत समझते हैं । इनसे उनकी अच्छी नहीं पटती, अतएव ये लोग प्रायः भारतीय छात्रों से मित्रता करने के लिए अधिक उत्सुक रहते हैं । सन् १९१९ के नवम्बर में जब मैं इँग्लैंड से भारत को आ रहा था तब मार्ग में आसाम के एक टीप्लैन्टर के स्वभाव में क्रमिक परिवर्तन देख कर मेरा बड़ा मनोविनोद हुआ था । वह भी मेरी ही भाँति भारत को लौट रहा था । लन्दन से स्वेज़ की नहर तक वह सभी के प्रति मित्रता और विनम्रता से व्यवहार करता रहा, परन्तु जब हम लोग स्वेज़ पार कर आये तब वह हम लोगों से कुछ कुछ उदासीन सा रहने लगा । जहाज़ के अपने भारतीय नौकरों के प्रति भी उसका व्यवहार पहले जैसा अधिक विनम्रता-पूर्ण नहीं होता था । जब हम लोग बम्बई में उतरे और रेल-गाड़ी पर सवार होकर कलकत्ते को रवाना हुए तब राह में मुझसे उसकी भोजन की गाड़ी में फिर भेट हुई । मैंने उसे वहाँ ख़ानसामा को डाँटते और गाली देते तथा बिना मतलब का गोलमाल करते देखा । टीप्लैन्टर के इस क्रमिक परिवर्तन पर मैंने बार बार विचार किया । वास्तव में यह विचार करने की ही बात है कि उपर्युक्त टीप्लैन्टर योरपीय समुद्रों में रहने तक इस प्रकार विनम्र और सज्जन क्यों बना रहा और उनके पार करने के बाद ही उसके स्वभाव में ऐसा परिवर्तन क्यों हो गया ।

ए० सी० बनर्जी

क्रिच गाँव का एक दृश्य ।

शब्दार्थ-तत्त्व ।

(२)

बहुत मिश्रभाव सम्पूर्णता से प्रकाशित नहीं हो सकते । भाषा में उपमा का प्रचुर व्यवहार होता है । उपमा में दो वस्तुओं की तुलना प्रकाशित होती है । यह तुलना उनके सामान्य धर्म के आधार पर होती है । उपमा के तीन उपादान हैं—(१) उपमेय अर्थात् जिस वस्तु की तुलना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है, (२) उपमान अर्थात् जिस वस्तु के साथ तुलना होती है और (३) सामान्य धर्म अर्थात् उपमेय तथा उपमान में जो साधारण धर्म है। किसी किसी उपमा में उपमावाचक 'इव' इत्यादि शब्द भी रहते हैं। जिसमें उपमावाचक शब्द रहता है उसको अँगरेज़ी में सिमिली (Simile) कहते हैं। कभी कभी उपमावाचक शब्द लुप्त रहता है। बहुधा उपमा में साधारण धर्म अप्रकाशित रहता है। तब वह धर्म-लुप्ता कहलाती है। यदि हम कहें कि राम शृगाल के सदृश धूर्त है तो इस वाक्य में राम उपमेय है, शृगाल उपमान है, धूर्तता साधारण धर्म है और सदृश शब्द उपमावाचक है। यदि हम कहें कि राम शृगाल के सदृश है तो वाचक लुप्त रहता है। यदि हम कहें कि राम शृगाल है तो वाचक तथा धर्म दोनों लुप्त रहते हैं। भाषा में प्रायः वाचक और धर्म लुप्त रहते हैं। पूर्णोपमालङ्कार में वाचक और धर्म को मिटा कर उपमेय पर ही उपमान का आरोप करने से वह रूपक (Metaphor) हो जाता है। अतएव रूपक एक प्रकार की उपमा है। इस प्रकार की उपमा से शब्दों के नये अर्थ उत्पन्न होते हैं। जैसे पहाड़ की चोटी, खटिया का पाया, नदी की शाखा, आरे के दाँत, घड़े का गला।

जब हम ऐसे किसी भाव को प्रकाशित करना चाहते हैं जिसके लिए भाषा में कोई शब्द नहीं है तब हम उस भाव के सदृश किसी भाव के द्वारा उस भाव को प्रकाशित करते हैं। जब हम किसी नूतन वस्तु का नाम रखते हैं तब जो वस्तु उसके गठन या आकार से मिलती है उसी के नाम के अनुसार उसका नाम रखते हैं, जैसे बन्दूक़ का घोड़ा, अनन्नास की आँखें, नारियल का खोपड़ा कहते हैं। जब हम कोई वास्तव गुण प्रकाशित करना चाहते हैं तब किसी सदृश गुणवाचक शब्द का व्यवहार करते हैं, जैसे मेह के साथ ओले गिरते हैं। इस वाक्य में ओला शब्द पत्थर का सादृश्य सूचित करता है। पर्वत की चोटी में स्थान का सम्बन्ध प्रकाशित होता है। नदी की शाखा में वृक्ष के साथ नदी का सादृश्य है। मनुष्य-शरीर के सादृश्य से हम ऊख की आँख तथा सितार के कान कहते हैं। अवस्तुवाचक भावों का प्रकाश भी वस्तुवाचक या अवस्तुवाचक शब्दों के द्वारा होता है। गुण, अवस्था या क्रिया भी सादृश्य के द्वारा प्रकाशित होती है। जैसे, ज्ञान का आलोक, प्रकृति की पुलकित, कर्कश आवाज़, कड़ा मिज़ाज, मीठी बोली, काल का स्रोत, क्रोध का भभकना, दिल बहलाना।

एक प्रकार के शब्दों के अर्थ अपने निर्दिष्ट अर्थ की सीमा तक नहीं पहुँचते या निर्दिष्ट सीमा के बाहर पहुँच जाते हैं। कुछ वस्तुओं से स्थान, काल या कार्य-कारण इत्यादि का सम्बन्ध रहता है। कभी कभी एक का प्रकाशक शब्द दूसरे के प्रकाशक शब्द के स्थान में व्यवहृत होता है। जिस विषय को कहना हो उसे स्पष्ट शब्दों में न कह कर यदि इस ढङ्ग से कहें कि असली बात सूचित हो जाय तो वहाँ संस्कृत अलङ्कार-शास्त्र के अनुसार अप्रस्तुत अलङ्कार का व्यवहार होता है। जहाँ कारण का कहना इष्ट है वहाँ उसे सीधे शब्दों में न कह कर उसके कार्य का उल्लेख करके यदि कारण जनाया जाय, जहाँ कार्य कहना है वहाँ यदि कारण कहा जाय, यदि सामान्य के स्थान में विशेष का व्यवहार हो, यदि विशेष की जगह सामान्य का उल्लेख हो, यदि करनेवाले के स्थान में साधन का व्यवहार हो, यदि आधेय के स्थान में आधार का व्यवहार हो, यदि किसी वस्तु के स्थान में उसके सङ्केत का व्यवहार हो, यदि सम्पूर्ण वस्तु के स्थान में अंशमात्र का व्यवहार हो, यदि वर्ग के स्थान में व्यक्ति का व्यवहार हो, तो वहाँ शब्द का अर्थ निर्दिष्ट सीमा के बाहर चला जाता है या सङ्कीर्ण हो जाता है। जैसे, वह शेक्सपीयर पढ़ता है, वह शिराज़ी पीता है, राम अद्भुत जीव है, उद्भिद से मनुष्य को वस्त्र मिलता है, तलवार से क़लम की अधिक शक्ति है, कड़ाही उबल रही है, वह राजमुकुट का अधिकारी हुआ, दो कानों में चार कान होती है, सब कोई कालिदास नहीं होते। जब प्रसिद्ध प्रयोग को छोड़ कर कोई शब्द किसी विशेष अर्थ में व्यवहृत होता है तब उस नैमित्तिक अर्थ को समझने के लिए कोई पता मिलना चाहिए।

ऊपर लिखे हुए विवरण से जाना जाता है कि अर्थों के नैमित्तिक प्रयोग से भाषा के शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। नैमित्तिक प्रयोग एक व्यक्ति से आरम्भ होता है और धीरे धीरे फैलता है। जब बहुत लोग उसको स्वीकार कर लेते हैं तब वह प्रसिद्ध प्रयोग हो जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी शब्द के नैमित्तिक अर्थ की प्रसिद्ध के आरम्भ में उसके पहले के अर्थ का स्मरण होता है, परन्तु जब उसके पहले के अर्थ से सम्बन्ध नहीं रहता तभी नैमित्तिक अर्थ प्रसिद्ध हो जाता है। अर्थ का ज्ञान आपसे आप होता है। दूसरों की व्याख्या से प्रायः अर्थ नहीं सीखा जाता। एक बालक किसी शब्द का अर्थ तभी सीखता है जब पदार्थ के साथ उस शब्द का सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। उसके लिए पहले वह अर्थ नैमित्तिक है। पीछे जब उस शब्द के उस अर्थ का प्रयोग वह अधिक सुनता है तब उसे प्रसिद्ध अर्थ का ज्ञान होता है। यहाँ भी मनस्तत्त्व के साधारण नियम का कार्य होता है। दो एक दृष्टान्तों से व्याप्ति-ज्ञान नहीं हो सकता। अनेक दृष्टान्तों से समता की उपलब्धि होती है तथा सिद्धान्त बनता है। अतएव देखा जाता है कि शिशु को एक ही शब्द से अनेक वस्तुओं के भावों को प्रकाश करने की आदत होती है। 'लोटा' शब्द से हज़ार लोटों के भावों का प्रकाश होता है। इस श्रेणी की सब वस्तुओं का नाम है लोटा, इस प्रकार के वर्गीकरण का अभ्यास प्रारम्भ से ही होता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि पहले पहल बच्चे को बहुत भ्रम होता है। कभी अतिव्याप्ति, कभी अव्याप्ति होती है। अतिव्याप्ति ही अधिक होती है, क्योंकि उसका शब्द-भाण्डार बहुत छोटा रहता है। धीरे धीरे उसकी परिदर्शन शक्ति तथा शब्द-भाण्डार बढ़ते हैं। नये शब्दों या नये मुहावरों के सीखने में ज़्यादा उमर के लोगों की भी यही दशा होती है। शब्दों के नैमित्तिक प्रयोगों का ज्ञान तथा अभ्यास पहले थोड़े आदमियों में आरम्भ होता है, पीछे वे बहुत आदमियों में फैलते हैं। उनके व्यवहार का सम्पूर्ण ज्ञान अधिक अभ्यास से होता है। तब वे प्रसिद्ध प्रयोग हो जाते हैं। समय के अनुसार भी अर्थों का परिवर्तन होता है। किसी किसी शब्द का जो प्रयोग पहले की पीढ़ी में प्रसिद्ध था, पीछे की पीढ़ी में उसके अंशमात्र का ग्रहण होता है। परन्तु ऐसे उदाहरण थोड़े मिलते हैं। प्रयोगों के परिवर्तन का आरम्भ पुरानी पीढ़ी से ही होता है। पीछे की पीढ़ी इस व्यापार का सहायक होती है। परन्तु पहले की पीढ़ी में किसी शब्द के अर्थों के वर्ग जिस प्रकार बनते थे, पिछली पीढ़ी में उनके वर्ग भिन्न प्रकार बनते हैं। पहली पीढ़ी में नैमित्तिक व्यवहार के साथ साथ प्रसिद्ध अर्थ का ख़याल रहता है, परन्तु पिछली पीढ़ी में इसका ख़याल घट जाता है। अतएव पिछली पीढ़ी में नैमित्तिक व्यवहार के लिए अधिक स्वाधीनता मिलती है। बहुधा कोई कोई व्यक्ति प्रसिद्ध व्यवहार सीखने के पहले ही नैमित्तिक व्यवहार सीखते हैं। एक लड़के ने सुना कि किसी निर्बोध आदमी के सम्बन्ध में गधा शब्द का प्रयोग हुआ है। जब उसको गधा शब्द का यह अर्थ ज्ञात हुआ तब उसको इस अर्थ के समझने के लिए मूल अर्थ जानने का प्रयोजन नहीं था। उसके मन में यह ख़याल होगा कि गधा शब्द के अर्थों में यह अर्थ भी प्रसिद्ध अर्थ है। जब तक एक व्यक्ति को किसी शब्द के प्रयोग की सम्पूर्ण अभिज्ञता नहीं होती तब तक किसी प्रयोग को देख कर वह नहीं कह सकता कि वह प्रयोग प्रसिद्ध है या नैमित्तिक है। वह नैमित्तिक प्रयोग को प्रसिद्ध प्रयोग के सदृश समझेगा।

एक प्रकार के परिवर्तन से शब्द की द्योतकता (Connotation) बढ़ती है, परन्तु विस्तार (Denotation) घट जाता है। इससे अर्थ में विशिष्टता आ जाती है। कर शब्द का मौलिक अर्थ है जिससे कुछ किया जाता है। इससे इस शब्द का अर्थ 'हाथ' हुआ। इस अर्थ में द्योतकता बढ़ गई, परन्तु विस्तार घट गया। कर शब्द का तीसरा अर्थ है हाथी की सूँड़ अर्थात् हाथ से जो जो काम होते हैं, सूँड़ से प्रायः वही काम होते हैं। कर शब्द का चतुर्थ अर्थ है सूर्य की रश्मि अर्थात् सूर्यदेव के हाथ का कुछ कुछ काम रश्मि से होता है, जैसे उत्ताप तथा आलोक देना और पृथ्वी से रस खींचना। कर शब्द का पाँचवाँ अर्थ है मालगुज़ारी अर्थात् सूर्य पृथ्वी से जैसे रस ग्रहण करता है वैसे राजा प्रजा से शुल्क ग्रहण करता है। अतएव मौलिक अर्थ का सम्बन्ध धीरे धीरे लुप्त हो गया। पैसा, शीशा, काग़ज़ इत्यादि इसी प्रकार के शब्द हैं। कुछ जातिवाचक या विवरणात्मक शब्दों से विशिष्ट व्यक्ति, स्थान इत्यादि वाचक शब्द बने हैं। जैसे, जो भक्त के हृदय में रमण करते हैं वे राम हैं, जो पाप को हरण करते हैं वे हरि हैं, जहाँ वरुणा तथा असी गङ्गा में गिरी हैं वह वाराणसी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात का उल्लेख हो चुका है कि अर्थ का परिवर्तन तीन प्रकार से होता है—(१) कुछ शब्दों के अर्थ का प्रसार हो जाता है; (२) बहुत शब्दों का अर्थ सीमाबद्ध हो जाता है; और (३) कुछ शब्दों का अपना अर्थ लुप्त हो जाता है और उनमें दूसरे शब्द का अर्थ आ जाता है।

जब हम किसी वस्तु का नाम लेते हैं या उसके विषय में चिन्ता करते हैं तब उसकी एक प्रतिच्छाया मन में उदित होती है। उस प्रतिच्छाया में कई एक उपादान रहते हैं। उन उपादानों के सब रूप स्पष्टता से सामने उपस्थित नहीं होते। कुछ प्रच्छन्न रहते हैं या एक-दम लुप्त हो जाते हैं और बाक़ी का स्पष्ट अनुभव होता है। यह नहीं कहा जा सकता कि कौन कौन उपादान उपस्थित होंगे। कहनेवाले या सुननेवाले की अभिज्ञता के अनुसार या उसके उस समय के विचार के अनुसार ये उत्पन्न होते हैं। कभी कभी एक शब्द के जितने उपादान हैं उन सबके साथ या कुछ के साथ बाहर के कुछ उपादानों के संयुक्त होने पर अर्थ का विस्तार होता है अर्थात् जितने व्यक्तियों या गुणों के लिए उसका प्रयोग होता था, पीछे उनसे अधिक व्यक्तियों या गुणों के लिए उसका व्यवहार होता है। जिन सादृश्यों के कारण एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं वे जब एक ही प्रकार के होते हैं तब उसके अर्थ का विस्तार होता है अर्थात् उसका ऐसा एक अर्थ हो जाता है जिससे उसके अन्तर्गत सब वस्तुओं का प्रकाश होता है। जैसे काग़ज़ शब्द के अन्तर्गत ख़बर का काग़ज़, कम्पनी का काग़ज़, किसी फंड के काग़ज़। एक-वस्तुवाचक शब्द कभी बहु-व्यक्तिवाचक हो जाता है। जैसे, सूरज तथा चाँद शब्द पहले केवल पृथ्वी से सम्बन्ध रखते हुए सूरज तथा चाँद के लिए व्यवहृत होते थे। अब वे व्यापक अर्थ में भी व्यवहृत होते हैं, जैसे एक एक तारा एक एक सूर्य है, मङ्गलग्रह के दो चाँद हैं। माता पुत्र का सम्बन्ध अपेक्षित है। बच्चे के सम्बन्ध से माता शब्द का व्यवहार होता है। परन्तु कभी कभी माता शब्द का निरपेक्ष व्यापक अर्थ भी होता है, जैसे "शिशुपालन के विषय में माताओं के लिए एक पुस्तक लिखी गई है"। "उसके पास बहुत पैसा है"—यहाँ पैसा शब्द का अर्थ है धन। "बहुत परिश्रम से उसे रोटी मिलती है"—यहाँ जीविका के अर्थ में रोटी शब्द का व्यवहार हुआ है। पहर शब्द संस्कृत प्रहर शब्द से बना है। इसका मौलिक अर्थ आघात है। घण्टा आदि बजाकर समय जनाया जाता है, इससे पहर शब्द समयवाचक है। इस श्रेणी के और भी शब्द मिलते हैं—

ठग—मध्य-भारत के हत्यारों के सदृश आदमी।

निपुण—इसका मौलिक अर्थ है जो पुण्य कर्म करता है। इससे अर्थ हो गया कुशल।

विराट—विराट राजा के सदृश बड़ा।

नवाब—नवाबों के सदृश जिसकी लम्बी चौड़ी चाल है।

भाषा में ऐसे शब्दों के उदाहरण पाये जाते हैं जिनके अर्थ की उन्नति हुई है तथा ऐसे शब्दों के भी जिनके अर्थ की अवनति हुई है। गोसाईं शब्द के अर्थ की उन्नति हुई है। इसका पहला अर्थ है गौ का मालिक, फिर इसका अर्थ हुआ धनी, पीछे इसका अर्थ हुआ सम्मानयोग्य आदमी, तब इसका अर्थ हुआ बहुत धार्मिक व्यक्ति, शेष में इसका अर्थ हुआ ईश्वर। साहब, बाबू, महाराज, बाबाजी, पधारना, किसी की सेवा में उपस्थित होना, तशरीफ़ लाना, फ़रमाना इत्यादि शब्द ऐसे ही उदाहरण हैं। किसी व्यक्ति या वस्तु के गौरव को बढ़ाने के लिए आदरसूचक शब्दों का व्यवहार किया जाता है। रुचिविरुद्ध या भयङ्कर भावों को छिपाने के लिए सुन्दर शब्दों से उनका प्रकाश होता है। जैसे 'माता निकलना' में 'माता' शब्द चेचक के लिए व्यवहृत हुआ है। 'उनके पिता का स्वर्गवास हो गया' में 'मृत्यु' के लिए स्वर्गवास शब्द का व्यवहार हुआ। दिवंगत जाना भी इसी प्रकार का व्यवहार है। इन आदरसूचक शब्दों का व्यवहार होते होते ये जिन मन्दभावों के प्रकाशक हैं उनके सहार्थक हो जाते हैं, इनका अर्थ सङ्कीर्ण हो जाता है और अर्थ की अवनति होती है।

इसी प्रकार अर्थ की अवनति उन शब्दों में होती है जो अर्थ में अधिक शक्ति प्रयोग के लिए व्यवहृत होते हैं। लोग ख़्याल करते हैं कि मामूली शब्दों से बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं पहुँचेगा। इसीलिए 'बहुत' शब्द के स्थान में अतिशय, अत्यन्त, अतीव, अतिमात्र, बेहद, उच्च कोटि का, परम, असामान्य, अलौकिक, विराट्, अद्भुत, भयानक, भयङ्कर इत्यादि शब्दों का प्रयोग होता है। ऐसे शब्दों के अधिक व्यवहार से उनकी शक्ति घट जाती है। वे धीरे धीरे निर्बल होकर मामूली श्रेणी के हो जाते हैं। तब फिर गुरुत्व-सूचक दूसरे शब्दों का प्रयोजन होता है। 'ज़रा सुनिए', 'एक मुहूर्त्त ठहर जाइए', 'एक बात कहनी है आपसे', 'अभी किये देता हूँ', इन वाक्यों में 'ज़रा', 'एक मुहुर्त्त' 'एक बात', 'अभी' शब्द ठीक अर्थ प्रकाश नहीं करते। आलस्य इत्यादि के कारण भी समयवाचक शब्दों का अर्थ बदल जाता है। कभी कभी मन के अधिक आवेग से, कभी कभी व्यङ्ग्य के उद्देश से भी अतिशयोक्ति होती है, परन्तु पीछे अर्थ सङ्कीर्ण हो जाता है।

भाषा के अधिकांश शब्द अर्थ के सङ्कोच से बने हैं। पहले ही कहा गया है कि एक शब्द की प्रतिच्छाया में बहुत से उपादान रहते हैं। किसी शब्द के बोलने या सुनने के समय प्रायः उनमें से थोड़े सम्मुखीन होते हैं। प्रसिद्ध अर्थ के अनुसार जितने व्यक्तियों या गुणों के लिए किसी शब्द का व्यवहार होना चाहिए उनसे कम व्यक्ति या गुणों के लिए उसका व्यवहार होता है। जैसे बकरे के लिए संस्कृत में पशु शब्द का व्यवहार होता है। इससे पशु शब्द का सङ्कीर्ण अर्थ हो गया। "राम अद्भुत जीव है" इसमें 'जीव' शब्द मनुष्यवाचक है। गम् धातु से 'गो' शब्द बना है, अर्थ है 'जो जाता है'। मनुष्य भी गमनशील है, घोड़ा भी गमनशील है, परन्तु गो शब्द का अर्थ सङ्कीर्ण होकर एक ही छोटी जाति के लिए व्यवहृत होता है। भार्या शब्द का मूल अर्थ है जिसका भरण-पोषण किया जाता है। अब यह अर्थ सङ्कुचित होकर पत्नीवाचक हो गया है। ऐसे ही कुछ शब्द आगे दिये जाते हैं—

दुहिता = जो गाय दुहती है।

ननान्द = जो भौजाई को सताती है,

तृण = (संतृद् = हिंसा करना) गवादि जिसकी हिंसा करते हैं।

चार्व्वाक = जिसकी बोली मीठी है।

श्राद्ध = श्रद्धा के साथ जो कुछ किया जाता है।

कष्ट = जिससे परीक्षा होती है।

घड़ी = सं घटी = जल के प्रवाह के अनुसार समय-निरूपण करने का यन्त्र।

धान = धन का आधार।

ग्रन्थ = जो गूथ कर रक्खा जाता है।

वह्नि = जो वहन करता है।

मार्जार = जो मांजती है।

द्रुम = जो बढ़ता है।

राजा = जो आनन्द देता है।

अबला = जिसको बल नहीं है।

शुश्रूषा = सुनने की या सेवा करने की इच्छा।

पुरुष = जो पुर अर्थात् शरीर में शयन करता है (आत्मा)।

किसी शब्द के प्रसिद्ध अर्थ की अधिक सङ्कीर्णता तभी होती है जब उस अर्थ का दूसरा शब्द भाषा में रहता है या प्रवेश करता है। कम से कम उसके अर्थ का जितना अंश लुप्त हो गया उतने के प्रकाश के लिए कोई शब्द अवश्य रहता है। यदि किसी शब्द का प्रसिद्ध अर्थ क + ख हो और वह अर्थ सङ्कीर्ण होकर केवल क रह जाय तो भाषा में क + ख अर्थ का या ख अर्थ का दूसरा कोई शब्द अवश्य रहता है। जैसे चक्का के स्थान में पहिया। अर्थ के स्थान में अभिप्राय, प्रयोजन।

जब किसी शब्द का प्रसिद्ध अर्थ सङ्कीर्ण होने लगता है तब या तो वह नया अर्थ किसी विशेष स्थान में या किसी विशेष सम्प्रदाय के भीतर चलता है या सर्वव्यापी हो जाता है या दब जाता है। काग़ज़ शब्द का सङ्कीर्ण अर्थ ख़बर का काग़ज़ है, यह सभ्य लोग समझते हैं। रेल या तार शब्द का सङ्कीर्ण अर्थ अब सर्वव्यापी हो गया है। जिनके साथ इन वस्तुओं का सम्बन्ध है, केवल उन्हीं के भीतर इनके सूचक शब्दों का नैमित्तिक अर्थ पहले चलने लगता है और पीछे इसको सब कोई ग्रहण करते हैं और यह प्रसिद्ध अर्थ हो जाता है।

कभी कभी भाव के साहचर्य्य से एक शब्द के मुख्य अर्थ के साथ एक गौण अर्थ संयुक्त हो जाता है। इस गौण अर्थ को बोलनेवाला तथा सुननेवाला दोनों सम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झते हैं और यह मूल अर्थ के सदृश प्रसिद्ध हो जाता है। कुछ समय के पीछे उस शब्द का केवल यही एक अर्थ रह जाता है। यदि क अर्थ के साथ ख अर्थ संयुक्त हो जाय तो पहले शब्द का अर्थ क+ख हो जायगा, पीछे केवल ख अर्थ रह जायगा। गोस्वामी का अर्थ था जो बहुत से गौ का अधिकारी हो। उसके साथ सम्मान योग्य अर्थ का योग हुआ। अब गोसाईं शब्द का अर्थ है सम्मान-योग्य धार्मिक मनुष्य। गवाँर शब्द का अर्थ पहले था गाँव का रहनेवाला। गाँव के लोग नगरवालों की भाँति सभ्य नहीं होते, अतएव "गाँव का रहनेवाला" अर्थ के साथ 'असभ्य' अर्थ संयुक्त हुआ। अब इस शब्द का एक ही अर्थ है 'असभ्य'।

शब्दों के आलङ्कारिक प्रयोग के विषय में उल्लेख हो चुका है। भाषा में उपमा या रूपक का प्रयोग मनुष्य-समाज की आदि अवस्था से होता आया है। आदिम समाज में शब्द-भाण्डार छोटा था। जिन शब्दों का व्यवहार होता था वे साधारण वस्तु या क्रियावाचक थे। सामान्यतावाचक या अवच्छिन्नतावाचक (generalised or abstract) शब्द नहीं थे। इस अवस्था में जब लोगों की चिन्ता-शक्ति की वृद्धि होने लगी तब सामान्य तथा अवच्छिन्न भावों के प्रकाश के निमित्त शब्दों का प्रयोजन हुआ। इन मानसिक प्रत्ययों के प्रकाश के निमित्त वे वस्तुवाचक शब्दों को मरोड़ कर व्यवहृत करने लगे। वस्तुओं के सादृश्य से मानसिक क्रियाओं का प्रकाश होने लगा, 'सीधी लकड़ी' से 'सीधी बात' बनी। 'यह पत्थर माथे पर लगा' से 'यह कड़ी बोली मेरे हृदय पर लगी' ऐसा वाक्य बना। 'कड़े पत्थर' से 'कड़ी बोली' हुई। आज-कल सभ्यता की वृद्धि बहुत हुई है और शब्द-भाण्डार भी बढ़ गया है। इस अवस्था में भी चिन्ताओं की अपेक्षा भाषा पिछड़ी रही है और इस कारण उपमा का व्यवहार सर्वदा आवश्यक होता है। जब शब्द घटते हैं तभी उपमा का आश्रय लेना पड़ता है। उपमा-मूलक शब्द व्यवहार होते होते उनका अर्थ साधारण हो जाता है, तब वे उपमामूलक नहीं मालूम होते और भिन्न प्रकार की उपमा के द्वारा उनका भिन्न प्रकार का अर्थ होता है। यह नहीं कहा जा सकता कि उपमा के द्वारा किस शब्द का अर्थ बदल जायगा या उसमें किस प्रकार की उपमा का प्रयोग होगा। हर भाषा में उपमामूलक शब्द व्यवहृत होते हैं, परन्तु हर एक में एक ही रीति से उपमा का प्रयोग नहीं होता। एक ही मूल-भाषा से निकली हुई दो भाषाओं में एक ही अर्थसूचक किसी शब्द का अर्थ उपमा के दो प्रकार के प्रयोग से दो प्रकार का हो जाता है। यदि एक शब्द का मूल अर्थ क हो तो हिन्दी में उसका अर्थ क+ख होगा और बँगला में उसका अर्थ क+ग होगा। 'ख' और 'ग' में कुछ सम्बन्ध नहीं भी रह सकता है।

उपमा के द्वारा शब्द कई प्रकार से बने हैं।

(१) किसी वस्तु के किसी विशिष्ट अंश के अनुसार, जैसे ऊख की आँख, नदी की शाखा।

(२) एक वस्तु के एक अंश से दूसरी वस्तु के एक अंश का नाम बनना, जैसे घड़े का गला, घोड़ी की दुम।

(३) मनुष्य-शरीर के किसी अंश से दूरत्व का परिमाण, जैसे पाँच हाथ, चार उँगली, तीन फ़ुट।

(४) आकृति के सादृश्य से 'मिठाई का पहाड़' हो गया।

(५) व्यवहार के सादृश्य से उनकी बोली 'बहुत तीक्ष्ण' है।

(६) स्थान और समय के सादृश्य से, जैसे दीर्घ काल, कुछ समय के पीछे।

(७) इन्द्रियानुभूतियों के परस्पर सादृश्य से, जैसे मधुर शब्द, सुन्दर स्वाद।

(८) शारीरिक अनुभूतिसूचक शब्द मानसिक या नैतिक भावों के लिए, जैसे कटु वाक्य, उच्च भाव, गन्दी बात, जी ठण्ढा हो गया।

अप्रस्तुत अलङ्कार (Metonymy और Synecdoche) का उल्लेख हो चुका है। इससे स्थान, काल या कार्य्यकारण के सम्बन्धों का परस्पर परिवर्तन होता है।

(१) समग्र वस्तु के स्थान में अंशमात्र का व्यवहार, जैसे रोटी खाना।

(२) शरीर के किसी विशिष्ट अंश या मन के किसी विशिष्ट उपादान के अनुसार किसी मनुष्य या जीव का नाम, जैसे शुभ्र केश, सुग्रीव, महाशय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) किसी विशेष चिह्न के अनुसार, जैसे लाल पगड़ी।

(४) आधार के लिए आधेय जाति के लिए व्यक्ति है, जैसे वे तो कालिदास हैं।

(५) आधेय के लिए आधार व्यक्ति, जैसे थाली परोसी गई, सारा शहर कह रहा है।

(६) गुणी के लिए उसका गुण, जैसे विद्या प्रतिष्ठा चाहती है।

(७) जिस पदार्थ से कोई वस्तु बनी है उस पदार्थ के अनुसार उस वस्तु का नाम, जैसे एक टीन, एक गिलास।

कभी कभी शब्दों का अर्थ सम्पूर्ण बदल जाता है।

बहुत समय तक मनोयोग के अभाव, आलस्य या अज्ञता से अर्थ का परिवर्तन होता है। जिस व्यक्ति ने किसी एक शब्द का अर्थ नहीं समझा, यदि वह उसका व्यवहार करे तो वह अवश्य उसका ठीक ठीक व्यवहार नहीं कर सकेगा। उसने दूसरे को उस शब्द का व्यवहार करते सुन कर उसका ग़लत अर्थ समझा है। भाषा के बड़े बड़े शब्दों के व्यवहार में यह दुर्दशा अक्सर होती है। साधारण लोग प्रत्येक शब्द के सूक्ष्मार्थ पर अक्सर ध्यान नहीं देते। इन सब कारणों से पहले यथार्थ अर्थ से ग़लत अर्थ की थोड़ी भिन्नता होती है और दोनों अर्थों में कुछ सम्बन्ध पाया जाता है। पीछे अर्थों की बहुत विभिन्नता हो जाती है। बातचीत में यदि सुननेवाले ने बोलनेवाले के किसी शब्द के अर्थ को ठीक ठीक नहीं समझा हो तो वह कहनेवाले से नहीं पूछता कि उस शब्द का क्या अर्थ है। वह अपने विचार के अनुसार उस शब्द का अर्थ लगा लेता है और उसी अर्थ में उसका व्यवहार करता है। उस शब्द का यथार्थ अर्थ क्या है, यह जानने की चेष्टा वह नहीं करता। यदि कहनेवाले ने उस शब्द के अर्थ के साथ कुछ विद्रूप मिला दिया हो तो सुननेवाले के मन में उस शब्द का बुरा साहचर्य्य उत्पन्न होता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि व्याख्यान के समय दो पक्ष हैं—बोलनेवाला तथा सुननेवाला। यह मान लिया जाता है कि बोलनेवाला जिन शब्दों का व्यवहार करता है उन शब्दों का यथार्थ अर्थ वह जानता है। ख़याल कीजिए कि सुननेवाला पहले पहल किसी एक शब्द को सुनता है और जिस अर्थ में बोलनेवाले ने उसका व्यवहार किया है उस अर्थ को सीखता है। यदि बोलनेवाले ने उस शब्द को ठीक अर्थ में व्यवहार न किया हो तो सुननेवाला उस शब्द को उसी ग़लत अर्थ में व्यवहार करेगा। जितने नवीन व्यक्ति उस बोलनेवाले के प्रभाव के अधीन हैं वे इस परिवर्तित अर्थ को मान लेते हैं और उस शब्द को उसी अर्थ में व्यवहार करते हैं। इस प्रकार कभी कभी ग़लत अर्थ भाषा में प्रचलित हो जाता है। उच्चारण के व्यापार में भी यही दशा होती है।

कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका मूल एक ही है, परन्तु आकार तथा अर्थ भिन्न हैं। इनको सममूल-भिन्नार्थक शब्द (Doublets) कहते हैं। हिन्दी के जितने शब्द हैं वे प्रायः संस्कृतमूलक हैं। एक ही मूल के दो शब्दों में से एक शब्द संस्कृत से निकल कर प्राकृत के बीच हो कर हिन्दी में आया है। दूसरा एक-दम संस्कृत से लिया गया है। सममूल-भिन्नार्थक शब्दों से अर्थ-परिवर्तन का कुछ पता मिलता है। संस्कृत में आहार और आहरण शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ हैं। एक का अर्थ है भोजन, दूसरे का अर्थ है सङ्ग्रह। प्रहार, प्रहर। विधान, विधि। भोग, भोजन। परखिया, परीक्षक। चलना, चरण। आप, आत्मा। भभूत, विभूति। टिकली, तिलक। थाना, स्थान। चेरा, चेला। लालच, लालसा। मेंह, मेघ। सोहाग, सौभाग्य। सयाना, सज्ञान। भला, भद्र। ढाह, दाह। धुन, ध्वनि। जी, जीव। दूल्हा, दुर्लभ। और, अपर। सीतला, शीतल। सुर, स्वर। बहलाना, विहार करना। लौटना, निवृत्त होना। भँवर, भ्रमण। गवाना, गमन कराना। (दौड़) धूप, धावन। बात, वार्त्ता। सहल, सुलभ। ताक, तर्क। भेस, वेश। हौला, लघु। उमङ्ग, उद्वेग। पास, पार्श्व। बाँस, वंश। ये सब शब्द भिन्नार्थक हैं। यदि भिन्नार्थक न होते तो एकही अर्थ के दो शब्दों का प्रयोजन नहीं था। इन शब्दों के द्वारा भाषा की पुष्टि होती है और भिन्न भिन्न भावों के प्रकाश के निमित्त सहायता मिलती है।

शब्दों के संयोग अर्थात् समास से भी अर्थ का परिवर्तन होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ शब्द ऐसे हैं जो वर्ण-विन्यास तथा उच्चारण में एक ही हैं, परन्तु व्युत्पत्ति तथा अर्थ में भिन्न हैं। इनको भिन्नमूल भिन्नार्थक शब्द (Homonyms) कहते हैं। हिन्दी के भिन्नार्थक शब्दों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। इनके वाक्य के अन्तर्गत नहीं होने से इनका अर्थ नहीं निकलता।

आम (संस्कृत आम्र से)
आम (अरबी आम = साधारण)
कद (हिन्दी कब)
क़द (अरबी क़द = उँचाई)
कुल (= संस्कृत वंश)
कुल (= अरबी समस्त)
जाल (संस्कृत जाल)
जाल (अरबी = फ़रेब)
सहन (सहना)
सहन (अरबी = आँगन)

बहुत शब्द ऐसे हैं जिनके भिन्न भिन्न अनेक अर्थ होते हैं। इनको अनेकार्थक शब्द (apparent homonyms) कहते हैं। एक ही मूल अर्थ से इनके सब अर्थ निकले हैं। इन शब्दों के भी वाक्य के अन्तर्गत नहीं होने से इनके अर्थ की उपस्थिति नहीं होती। कभी कभी इनके मूल अर्थ का लोप हो जाता है या मूल अर्थ का निकालना कठिन होता है। कर शब्द के अर्थ हैं—(१) हाथ, (२) सूँड, (३) किरण, (४) मालगुज़ारी, (५) ओला। हरि शब्द के अर्थ हैं—(१) नारायण, (२) सूर्य, (३) चन्द्र, (४) शिव, (५) वानर, (६) साँप, (७) भेक, (८) कोकिल, (९) वायु, (१०) किरण, (११) घोड़ा, (१२) अग्नि, (१३) हंस।

अब यह कहना है कि बहुत लोग शब्दों को नये अर्थ में व्यवहार करना पसन्द करते हैं, इसलिए नहीं कि भावों को प्रकाशित करने के लिए उनको शब्द नहीं मिलते, परन्तु अपनी भाषा में कुछ ताज़ापन या चटकीलापन लाने के लिए वे सीधी तरह अपने भावों को प्रकाशित करके सन्तुष्ट नहीं होते। कभी कभी देखा जाता है कि बहुत व्यवहार से एक साधारण शब्द की शक्ति घट जाती है और उसके एवज़ में कौतुकप्रद अर्थ का कोई शब्द व्यवहृत होता है। 'अलगू चौधरी के घर थे तो चैन की बाँसरी बजती थी' (सप्तसरोज)। 'इन बगुलों में हंस कहाँ छिपा हुआ है' 'गेंद किसी दफ़्तर के अप्रेंटिस की तरह ठोकरें खाने लगा'। इसी प्रकार की प्रवृत्ति से अपशब्दों (Slang) की उत्पत्ति होती है। जैसे, खाने के अर्थ में "कचरकूट"। हर एक व्यवसाय के लोगों के भीतर अपने व्यवसाय-सम्बन्धी कुछ अपशब्दों का व्यवहार होता है। निपूता, निगोड़ा (जिसके गोड़ नहीं हैं—एक प्रकार की गाली), टिक्टिकी (डिटेक्टिभ्), सूरदास (अन्धा), पैजामा (बेवकूफ़—आदमी है कि पैजामा है ?), घोंघा (मुँहचोर—सभा में घोंघा बन गये), घनचक्कर (अजीब आदमी—तुम बड़े ही घनचक्कर हो), लंठ (दुष्ट), चरखा (बेवकूफ़), पेट भधवा (जो कुत्ते के ऐसा अपना पेट पालता है), भल्लू, भोंदू, चौपटानन्द, काम बोलना (दिवालिया होना, सेठजी का काम बोल गया), राजा (बनारस में गुण्डे के अर्थ में व्यवहृत होता है), गपोरसंख (मोहन अपने वंश में बड़ा गपोरसंख निकला), कुप्पा (वह ख़ुशी के मारे फूलकर कुप्पा हो गया)।

एकार्थक शब्दों का व्यवहार भी इसी कारण होता है। कई एक शब्द एक ही अर्थ में व्यवहृत होते हैं। इनको प्रतिशब्द (Synonyms) कहते हैं। जैसे अचल, अद्रि, गिरि, भूधर, नग, पर्वत, महीधर, शिखरी, शैल, पहाड़। वृक्ष, तरु, द्रुम, विटपी, महीरुह, शाखी, पेड़, गाछ, रूख।

यह कहा गया है कि भाषा से कुछ शब्द लुप्त हो जाते हैं और उसमें कुछ नये शब्द प्रवेश करते हैं। शब्द लुप्त होने का कारण यह है कि जिन भावों को वे प्रकाश करते हैं वे लुप्त हो जाते हैं। कभी कभी उन भावों के प्रकाश के निमित्त नये शब्द मिलते हैं। कुछ समय के लिए पुराना तथा नया शब्द दोनों साथ साथ चलते हैं क्योंकि यदि ऐसा न हो तो नये शब्द का अर्थ नहीं समझा जाता है और वह लुप्त हो जाता है। वैदिक भाषा के बहुत शब्द लुप्त हो गये हैं, क्योंकि अब वैदिक प्रणाली से यज्ञानुष्ठान नहीं होता। अध्वर्यु, पुरोडाश इत्यादि शब्द अब व्यवहृत नहीं होते। लुप्त वैदिक शब्द—दर्शनीय के अर्थ में 'दर्शत', जनुस् = जो बनाया जाता है। बौद्ध-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शब्द—भिक्खु, जातकम्, बोधिसत्त, अर्हं थेर, पटिसन्धि, पटिनिसग्गो, भन्ते, संघ, समापत्ति, मारं। किसी आकस्मिक भारी सामाजिक विप्लव, किसी आकस्मिक सभ्यता के उत्थान, समग्र जाति के देश-परित्याग इत्यादि कारणों से बहुत शब्दों का लोप होता है। जिस अवस्था में उनका व्यवहार होता था वह अवस्था नहीं रहने के कारण नई अवस्था में उनका प्रयोजन नहीं होता। जर्मनी इत्यादि देशों में ईसाई-धर्म जारी होने के बाद उसके पहले के युग में जब बहु देवताओं की उपासना होती थी उस युग के बहुत से शब्द लुप्त हो गये। सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक अभ्युदय से या दूसरी जातियों के सङ्घर्ष से या शिक्षा के विस्तार से बहुत नये शब्द बने हैं। अरबी शब्दों के उदाहरण—मालूम, ख़बर, हाल, ख़ास, कुल, हाकिम, राज़ी, असबाब, हुक्का, ग़ुस्सा, फ़ायदा, कसर, हिसाब, हक़, हुक्म, माफ़, क़िस्सा, बाद, ग़रीब, फ़क़ीर, ख़राब, साहब इत्यादि। फ़ारसी शब्द—शर्म, ज़ोर, निशान, बराबर, होश, रेशम, सौदा, सूद, गरम, रास्ता, हर, तमाशा, ख़ून, ख़ूब, पोशाक, बन्दोबस्त, किराया, इलाज, आवना, गुलाब, सवार, रवाना, किनारा इत्यादि। पोर्त्तुगाली शब्द—अलमारी, गिरजा, पादरी, कमरा, परेग, मेज़, ईसपात, कमीज़, गोदाम। अँगरेज़ी शब्द—स्कूल, मास्टर, स्लेट, पेनसिल, कालेज, युनिवर्सिटी, इँगलिश, चाक खड़, स्केल, फ़ुट, इञ्च, मील, चेयर, टेबिल, बेंच, टूलबाक्स, रेल, इञ्जिन, मेल, स्टेशन, टिकट, टाइम, वाच, क्लाक, चेन, स्टाम्प, कोट, शर्ट, गंजी, पतलून, बूट, स्लीपर, बटन, पाकेट, ब्रश, गिलास, टीन, बोतल, पिन, रिंग, क्रिकेट, बाल, फ़ुटबाल, टेनिस, बैट, जर्मन-सिलवर, गिलोट, जनवरी, फ़रवरी इत्यादि, थियेटर, पार्ट, प्ले, बायस्कोप, बाइसिकिल, मोटरकार, एअरोप्लेन, हारमोनियम, वोट, गिनी, पोस्ट-आफ़िस, मजिस्टर, रेजिस्ट्रार, रपोट, डिक्री, डिसमिस, औंस, पौंड, किस्कुट, लम्प, अपील, अर्दली, शेयर, बिल, कम्पनी इत्यादि।

नलिनीमोहन सान्याल

इख्नातन।

तूतनखामेन के मक़बरे का पता लगने से मनुष्य के हाथ स्वर्णाक्षर में लिखा हुआ इतिहास का एक नया अध्याय लग गया है, जिससे मिस्र के अठारहवें वंश के राजाओं के राजत्व-काल की सभ्यता और कला-कौशल की श्रेष्ठता का पूरा पूरा पता लगता है। उस वंश का सिर-मौर आहमेस (प्रथम) था, जो पिरामिड के निर्माण-काल के १३०० वर्ष पश्चात् अर्थात् ईसा के लगभग १५८० वर्ष पूर्व सिंहासनारूढ़ हुआ था। सर्व-प्रथम उसी ने अपने छोटे से राज्य को एक बड़े साम्राज्य के रूप में परिवर्तित करने का उद्योग किया, जिसकी पूर्ति कालान्तर में उसके उत्तराधिकारियों के हाथ से हुई।

अठारहवें वंश के प्रायः सभी राजा वीर थे। आहमेस ने ही एशियावालों को मिस्र से मार भगाया था। आमेन होतप (प्रथम) ने उत्तरी सीरिया के ओरनटस नदी तक दिग्विजय किया। थातमेस (प्रथम) ने एशिया माइनर से लगा कर सूदान तक के समस्त देशों को अपने राज्य में मिलाया। थातमेस (द्वितीय) ने अपने राज्य की सीमा का विस्तार इससे भी अधिक दूर तक बढ़ाया। थातमेस (तृतीय) के समय में युद्ध का इतना ज़ोर रहा कि पेलेस्टाइन, सीरिया, यूनान, साइप्रस, क्रीट, सिनाई और सूदान सबके सब थीब्स के रक्षित राज्य हो गये।

वीर-शिरोमणि तृतीय थातमेस के राजत्व-काल में मिस्र ने जैसी शक्ति प्राप्त की थी वैसी उसे न कभी मिली थी, न भविष्य में ही मिलने की आशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। उस समय थीब्स सर्वमान्य था। आधा संसार उसे भेट देता था, अपनी धन-सम्पत्ति से उसके कोष को गौरवान्वित करने में वह अपना अहोभाग्य समझता था। कहा जाता है कि फेरोह थातमेस ने विश्वविजय की खुशी में अपने अमीर-उमराओं को स्वर्ण और रौप्य के रथ, हाथी-दाँत और आबनूस की मूर्तियाँ, बहुमूल्य पत्थरों के हार, जड़ाऊ शस्त्र और कला-कौशल के अनेक नमूने उपहार में दिये थे। प्रोफ़ेसर ब्रीसटेड साहब ने इस उपहार-सामग्रियों का लेखा लगाया है। उनका कथन है कि फेरोह की १३ सादी मूर्तियाँ, बुर्राक आकृति की उसकी ७ तसवीरें, ८ रत्नहार, ६८० जड़ाऊ ढालें, २३० रत्नखचित तरकश, कसकुट धातु की ३६० जड़ाऊ तलवारें, और उसी धातु की १४० जड़ाऊ कटारें, रत्नजटित सोने की ३० छड़ियाँ, आबनूस और हाथीदाँत के २२० कोड़े, सात सन्दूक़, जिन पर कला का सूक्ष्म स्वरूप प्रदर्शित किया गया था, सोने-चाँदी की सैकड़ों चौकियाँ और तश्तरियाँ, हज़ारों जरीन छतरी और कला-कौशल के असंख्य अन्यान्य पदार्थ वितरण किये गये थे। वास्तव में उस समय मिस्र-देश स्वर्णमय था। रथ, कपड़े, बर्तन सभी स्वर्ण के बनते थे। वहाँ स्वर्ण की इतनी अधिकता थी कि उस काल के एक राजा ने फेरोह के पास यह लिख भेजा था कि मित्र, मुझे स्वर्ण की अत्यधिक लालसा है। जितना हो सके उतना स्वर्ण बिना तोले मुझे प्रदान करने की आप कृपा करें। मैं जानता हूँ कि आप अपने मित्र की अभिलाषा अनायास पूर्ण कर सकते हैं, क्योंकि आपके यहाँ स्वर्ण मिट्टी के समान पड़ा मिलता है।

धन की अधिकता और राजा की इच्छा की प्रबलता के कारण उस काल में अनेक विशाल भवन और गगनचुम्बी मन्दिर बनवाये गये। उनमें ललित-कला की योजना भी खूब की गई। बनावट के अनुरूप सजावट में भी कोर-कसर नहीं रक्खी गई। उनकी उत्तमता इसी एक बात पर से भलीभाँति लक्षित होती है कि वर्तमान समय के कला-कोविदों को उनमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं मिलती। उस समय के लोगों की रुचि के अनुकूल इमारतों की दीवारें सुनहरी और नीले रङ्ग से रँगी और फ़र्श तथा छत में जीवधारियों की रङ्ग-बिरङ्गी तसवीरें अङ्कित की गईं।

उस समय के वैभव और ऐश्वर्य पर विचार करने से हमें तूतनखामेन के क़ब्र की वस्तुओं को देख कर बहुत कम आश्चर्य होता है। और ऐसा होना भी चाहिए, क्योंकि वहाँ की सङ्गृहीत सम्पत्ति उसके पूर्व-पुरुषों की प्राप्त की हुई सम्पत्ति का नमूना-मात्र है। पूर्वकालीन ललित-कला के नमूने के रूप में उससे यह सूचित होता है कि उस काल के लोगों की रुचि किस दर्जे तक पहुँच चुकी थी। वास्तव में वे सब पदार्थ सौन्दर्यवृक्ष के स्वर्णफल के सदृश हैं और अनन्तकाल तक लोगों के आनन्द की सामग्री बने रहेंगे। प्राचीन राजवंश के ऐश्वर्य के सम्बन्ध में इन वस्तुओं को देख कर मन में जिस कल्पना का आविर्भाव होता है उसका शतांश भी लिखित इतिहास के पढ़ने से नहीं होता।

परन्तु तूतनखामेन को इतिहास में जो बड़प्पन मिला है उसका मूल कारण न उसके समय की कला की उच्चता है, न उसके बृहत् अधिकार प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने की गाथा है। इसके सिवा उसके मक़बरे के स्वर्ण और आबनूस से प्रकट होनेवाली कहानी भी उसकी नहीं है। जिस बात से वह महान् समझा जाता है वह मिस्रवासियों के हृदय में उसके स्थान पाने का इतिहास है। वास्तव में वह कोई महान् पुरुष नहीं था। महापुरुष उसका ससुर इख्नातन था, जो संसार-पट पर महात्मा बुद्ध के समान प्रसिद्ध आध्यात्मिक व्यक्ति हो गया है। जडवाद के युग में जन्म लेकर और विलासिता की गोदी में पल कर भी उसने अध्यात्ममय जीवन बिताया और उसका फलस्वरूप एक नूतन धर्म की सृष्टि की। इसी से कहा जाता है कि तूतनखामेन की कीर्ति इख्नातन के आध्यात्मिक कृत्यों पर जितना अवलम्बित है उतना उसके शूरवीर पुरुषाओं के सैनिक प्रताप तथा उसके निज की क़ब्र में से निकली हुई सूक्ष्म-कला-प्रदर्शक वस्तुओं पर नहीं है।

इख्नातन के पिता का नाम आमेनहोतप था। वह जैसा विभूतिमान् था वैसा विलासप्रिय भी था। उसके काल में बहुदेववादी धर्म का ख़ूब प्रचार था। उस समय तक लोगों की कल्पना में यह बात नहीं आई थी कि ईश्वर एक है। उनके धार्मिक संसार में असंख्य देवी-देवता वास करते थे। उनमें से मुख्य देवता आमेन और रा थे। आमेन थीब्स का देवता था और रा हेलियोपोलिस का। आमेन और रा के अतिरिक्त जो और अनेक देवता थे उनमें से कुछ के नाम ये हैं—हथोर (प्रेम का देवता), मूट (आमेन की माता), ओसीरीस (पाताल का राजा), होरस (बाज), थोथ (कला का देवता), नूत (स्वर्गदेव), नरवेब (वृद्धराज), सवाक (ग्राह) आदि। पशु-पक्षियों का पूजन करना भी उनके धर्म का अङ्ग था। वे लोग साँड, मेष, लङ्गूर, बिल्ली, सर्प आदि को भी देवतातुल्य मान कर उनकी पूजा किया करते थे। देवताओं के अतिरिक्त असुरों की भी प्रतिष्ठा करना वे अपना कर्तव्य समझते थे। जिन असुरों की पूजा की जाती थी वे संख्या में ४२ थे और उनका सम्बन्ध ओसीरीस के सहायक मन्त्रि-मण्डल से था। लोगों का विश्वास था कि ओसीरीस नामक देव इन्हीं असुरों की सहायता से मृत आत्माओं का न्याय करते हैं, अतः उन्हें भी सन्तुष्ट रखना चाहिए। यद्यपि यह धर्म वर्तमान काल की सभ्यता के उपासकों की दृष्टि में दूषित दीखता है, परन्तु मिस्रवालों की उस पर अटल श्रद्धा थी। इसी से थीब्स के मन्दिर का पुरोहित फ़ेरोह से अधिक प्रतिष्ठित माना जाता था। उस पुरोहित का एक प्रबल शत्रु था। वह हेलियोपोलिस के रा देवता का पुजारी होने के कारण आमेन को मिस्र से उठा देने और उसके स्थान में रा की स्थापना करने के अभिप्राय से उससे सदा झगड़ता रहता था। इसके लिए उसे महारानी तीई से भी, जो सीरिया की राजकुमारी थी और जहाँ रा भगवान् अतन के नाम से पूजे जाते थे, ख़ासी सहायता मिलती थी।

जिस समय समस्त मिस्र में इस प्रकार के धर्म का ख़ूब ज़ोर था उसी समय ११ वर्ष की अवस्था में इख्नातन सिंहासनारूढ़ हुआ। छुटपन से ही रा अर्थात् अतन भगवान पर उसकी श्रद्धा थी, इसी से १६ वर्ष की अवस्था में उसको जो कन्या हुई उसका नाम उसने अपने उपास्य देव अतन के नाम पर रक्खा। अतन का उपासक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर भी उसे मिस्र की धर्म-रूढ़ि के अनुसार अनेक देवी-देवता मानने पड़ते थे। यह बात इख्नातन को नहीं रुचती थी। इसलिए १७ वर्ष की अवस्था में उसने अपने पूर्व-पुरुषों के धर्म को पूर्णतः त्याग दिया और अपना नाम आमेनहोतप से इख्नातन धर लिया। फिर उसने एक नवीन नगरी बसाने और उसके मध्य में अतन अर्थात् सूर्य भगवान् का विशाल और सर्वसुन्दर मन्दिर बनवाने का सङ्कल्प किया। १७ वर्ष के नवयुवक राजा के लिए इस प्रकार का सङ्कल्प करना निःसन्देह साहस का कार्य है। इस कार्य के लिए उसने शुभमुहूर्त में यात्रा की और नील नद के दक्षिण की ओर घूमते फिरते एक ऐसे स्थान में जा पहुँचा जो कैरो से १६० मील दक्षिण में है। वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य पर से मुग्ध होकर उसने वहीं अपनी नूतन नगरी और मन्दिर की नींव डाली और उसमें शिलालेख खुदवा कर लगवाये।

इख्नातन का खुदवाया हुआ लेख वहाँ अब तक स्थित है और अपने निर्माणकर्ता के विचार, भक्ति और थीब्स के पुरोहितों के प्रति उसकी घृणा का परिचय दे रहा है। वहाँ से वह थीब्स को फिर लौट आया और सूर्य-मन्दिर तथा आकाश-गर्भा नगरी के तैयार होने तक वहीं ठहरा रहा। १९ वर्ष की अवस्था में वह अपनी धर्मपत्नी-सहित, जिसका नाम नफेरतीती था, नवीन नगरी में आ बसा और सूर्योपासना में अपना काल-क्षेप करता रहा। उसका विश्वास था कि संसार में एक-मात्र सूर्य ही सबसे प्रमुख देवता हैं। वही ज्योति के केन्द्र और जीवन तथा शक्ति के दाता हैं। ईश्वर मनुष्याकृति का नहीं है। वह आत्मिक, प्रिय और सर्वशक्तिमान् है।

इस प्रकार मिस्र के प्राचीन धर्म में अद्भुत परिवर्तन हुआ। प्रोफ़ेसर ब्रीसटेड साहब ने इख्नातन की जीवनी में लिखा है कि ईसा के पूर्व सीरिया तथा पैलेस्टाइन में सर्व-शक्तिमान परमेश्वर ने जैसा अपना स्वरूप दिखाया था उससे अधिक स्पष्ट परन्तु क्षणिक रूप उन्होंने मिस्र में प्रदर्शित किया था। उसके दर्शन से फेरोह की आत्मा, जो थीब्स के प्राचीन धर्माचरण के संसर्ग से कलुषित हो गई थी, पवित्र होगई। उसने भ्रान्तिपूर्ण और अमानुषीय धार्मिक क्रिया-पद्धति तथा रीति-रवाज और प्राचीन धर्म के मूर्खतापूर्ण अन्धविश्वास को खोद ढहाया और उसके बदले में जनता को प्रेम तथा सत्य का अनमोल उपदेश दिया। उसके उपदेश संख्या में कम थे, परन्तु उनमें विचार की गम्भीरता और सहृदयता खूब भरी पड़ी थी। वह अपने धर्मानुयायियों से कहता था कि सूर्य भगवान् को बलि प्रदान करना पाप है, क्योंकि हिंसा उन्हें अप्रिय है। वे अपने सुपुत्रों से पत्र-पुष्प तथा इसी प्रकार के अन्यान्य पदार्थों की भक्ति-पूर्वक भेंट पाने की आशा करते हैं और केवल उसी से वे सन्तुष्ट होते हैं। उन्हें स्तुति और भक्ति जितनी प्यारी है उतनी प्यारी उन्हें कोई वस्तु नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि इख्नातन प्रेम और सत्य का उपासक था। शान्ति उसके जीवन का ध्येय था। युद्ध से घृणा करना वह अपना परम कर्तव्य समझता था। ब्रीसटेड साहब ने उसे शान्ति का साक्षात् अवतार कहा है, जो अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस युद्धप्रिय युग में, जिसका वायुमण्डल युद्ध-नाद से परिपूर्ण था और जिसकी भूमि युद्ध-रक्त से रञ्जित थी, उसका अपने पथ पर दृढ़ बना रहना इस बात का प्रमाण है। परन्तु शान्ति की उस सदेह मूर्ति को मिस्र की जनता ने मूर्खतावश कापुरुष समझा। वास्तव में वह पौरुषहीन नहीं था; अन्यथा वह किशोरावस्था में नूतन नगरी बसाने, नूतन धर्म का आविष्कार तथा जनता में उसका प्रचार करने तथा विपक्ष की पुरोहिती शक्ति को रण-निमन्त्रण देने का साहस कदापि नहीं कर सकता।

इख्नातन का अटल विश्वास था कि ईश्वर एक है और वह केवल सूर्य ही है, जो शक्ति तथा सौन्दर्य का केन्द्र है। इसी विश्वास से वह जन्म भर सूर्य की उपासना करता रहा। उसके सूर्य-मन्दिर में जो स्तुति गाई जाती थी उसका अनुवाद ब्रीसटेड साहब ने अँगरेज़ी भाषा में किया है। यहाँ उसकी बानगी हिन्दी-भावार्थ के रूप में दी जाती है—

हे ईश्वर, तू ही शक्तिमान् है। तेरी एक किरण की शक्ति समस्त ब्रह्माण्ड की शक्ति से बड़ी है। तेरे कृत्य इतने अनोखे हैं कि मानव-दृष्टि न उन्हें देख सकती है, न समझ सकती है।

इख्नातन शान्ति का जैसा प्रथम भक्त था वैसा ही वह प्रथम विश्वप्रेमी भी था। परन्तु उसकी प्रजा उस महात्मा को नहीं समझ सकी। इसी से कुछ लोग उसे मूर्ख कहते थे और अधिकांश उससे घृणा करते थे। फल यह हुआ कि थीब्स के पुरोहित और सेनाध्यक्ष उसके विरुद्ध हो गये। इससे पड़ोसी राजाओं की बन आई और उन्होंने मिस्र पर चढ़ाई करके वहाँ लूट-मार प्रारम्भ कर दिया। इस पर भी उसने अपनी शान्ति भङ्ग नहीं की; क्योंकि वह अपने विश्वास के आगे राज्य को तुच्छ वस्तु समझता था। परन्तु जब वह पुरोहितों के कुव्यवहार से तङ्ग आ गया तब वह अपने धर्म-रक्षार्थ उनसे लड़ने पर उतारू हुआ। प्रथम उसने आमेन की मूर्तियों को समराग्नि में स्वाहा किया। पश्चात् जहाँ जहाँ आमेन का नाम लिखा मिला, सब खोद मिटाया, यहाँ तक कि अपने माता-पिता की क़ब्र पर खुदे हुए अमेन नाम को साफ़ उड़ा दिया। इतने पर भी वह शान्त नहीं हुआ। उसने आज्ञा दी कि मिस्र-राज्य भर में अतन भगवान् के अतिरिक्त जहाँ कहीं और किसी देवता का नाम या उसकी मूर्ति दीखे वह सब नष्ट कर दी जाय।

उपर्युक्त युद्ध में इख्नातन की जीत नहीं हुई, क्योंकि उस काल की जनता मनुष्य-जाति के पिता और शान्ति के देवता से घृणा करती थी। उन्हें केवल युद्ध प्रिय था। लूट का भूखा और ख़ून का प्यासा देवता ही उन्हें पसन्द था। इसी से जैसे जैसे मिस्र-साम्राज्य की नींव डगमगाने लगी वैसे वैसे प्रजा राजा से अधिक घृणा करने लगी। अन्त में उसका भी सिंहासन डगमगाया, कोष ख़ाली हो गया, और वह २८ वर्ष की अवस्था में परलोक को सिधारा। क्या यह संसार की एक बृहत् शोकान्त लीला नहीं है?

इख्नातन की मृत्यु के लगभग १५०० वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् १९०७ में उसका शव उसकी मा तीई की क़ब्र में गड़ा हुआ मिला। ताबूत पर स्वर्णाक्षर से जो उसका नाम लिखा गया था वह और उस पर के अन्य लेख मिटा दिये गये थे। उसमें उसके शरीर की मिमियाई भी धूलवत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिली। जान पड़ता है कि यह सब काम उसके दुश्मनों ने किया होगा।

कुछ विद्वानों की राय है कि तूतनखामेन की क़ब्र की अमूल्य और सुन्दर वस्तु उसके श्वसुर इख्नातन की जायदाद है। सम्भव है कि उसे वे सब पदार्थ इख्नातन की नूतन नगरी के अजायबघर में से प्राप्त हुए हों, क्योंकि इख्नातन सौन्दर्योपासक होने के कारण कला का अनन्यभक्त था और उसके आचार्यों की पूरी पूरी प्रतिष्ठा करता था। इसके सिवा उसके समय में कला की उन्नति भी सुचारु रूप से हो गई थी। उसकी नवीन नगरी भी, जिसके नाम का अर्थ क्षितिज होता है, सर्वाङ्ग-सुन्दर थी। उसकी सुन्दरता के सम्बन्ध में जो कवितायें गाई जाती थीं उनसे पता चलता है कि क्षितिज देखने में जैसी सुन्दर थी वैसी ही आनन्ददायी रीतियाँ और रवाज वहाँ प्रचलित थे। वहाँ वैभव और सम्पत्ति भी इतनी थी, मानो वह पृथ्वी पर स्वर्ग हो। ब्रीसटेड साहब का कथन है कि मूर्ति-निर्माण-कला इख्नातन के समय में सर्वोच्च शिखर तक पहुँच गई थी। उसी के समय में बेक नामक प्रसिद्ध मूर्तिकार उत्पन्न हुआ था। उसे इख्नातन ने स्वयं शिक्षा दी थी। उस कारीगर की कारीगरी में सरलता और सत्यता ख़ूब भरी है जिससे काल की सत्यप्रियता का परिचय मिलता है।

सुनते हैं कि इतिहास-वेत्ता इख्नातन के सम्बन्ध में यह पता लगाने की आशा से बड़ी बारीकी से खोज कर रहे हैं कि मेदीसी के समान वह भी कला के आचार्यों का संरक्षक था।

वनमालीप्रसाद शुक्ल

वैरागी वीर।

आज हम एक ऐसे महापुरुष का परिचय पाठकों को देना चाहते हैं जिसकी उपमा न केवल भारत, वरन समस्त भूमण्डल में भी नहीं मिलती। इसका नाम बन्दा था और यह एक असाधारण महापुरुष था। यद्यपि महापुरुषों की तुलना करना व्यर्थ है, तो भी बन्दा में ऐसी अनेक विशेषतायें थीं जो न महाराना प्रताप में दिखाई देती हैं और न शिवाजी में। इस महात्मा का आदर्श यवनों के राजत्वकाल में एक सच्चा राष्ट्रीय आदर्श था। मुसलमान विजेता और शासक थे और हिन्दू एक विजित और पीड़ित जाति। यह महात्मा एक पक्का हिन्दू वैरागी था। सिक्खों में 'पन्थ' के प्रेम का भाव काम करता था। राजपूत और मराठे अपने अपने प्रान्त को ही राष्ट्र समझते थे। यह वैरागी न तो 'पन्थ' में दाख़िल हुआ और न इसे किसी प्रान्त-विशेष का विचार था। इसकी आत्मा में हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म के प्रेम का भाव काम करता था। इसकी आत्मा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों को देख कर जलती थी। अतएव उनका बदला लेने में इसने भी मुसलमानों के विरुद्ध उन्हीं शस्त्रों का उपयोग किया जो मुसलमानों की ओर से हिन्दुओं के विरुद्ध काम में लाये जाते थे। इस महापुरुष में अनेक ऐसे गुण एकत्र पाये जाते हैं जिनका किसी एक ही पुरुष में मिलना कठिन है। इस पंजाबी महात्मा का जीवन अनेक दुर्लभ गुणों का सङ्घात था। एक बार लक्ष्मण राजपूत (क्योंकि इस महात्मा का पहला नाम यही था) को आखेट करते समय एक गर्भवती हरिणी पर दया आगई। उसने वैराग्यवश अपना घर-बार, भाई-बन्धु सबका परित्याग कर दिया और एकान्त में जाकर कठिन तपस्या की। यह उसके जीवन का एक पक्ष था। जब गुरु गोविन्दसिंहजी पंजाब को छोड़ कर 'दक्षिण' चले गये और वहाँ 'वैरागी' से मिल कर उन्होंने उसका ध्यान हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जाति की दुःखितावस्था की ओर आकर्षित किया तब वैरागी वैराग्य छोड़ कर सेना का सेनापति बन गया। सेनापति के रूप में उसने वह वीरता दिखलाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि दुनिया दङ्ग रह गई। उसने लाहौर को छोड़ कर पञ्जाब का बहुत सा भाग विजय किया और नये सिरे से हिन्दू-राज्य की स्थापना की। यदि इस देश का पुराना रोग फिर न आ मौजूद होता तो वैरागी ने गुरु गोविन्द-सिंह का सौंपा हुआ काम पूरा कर दिया था।

वैरागी के जीवन का अगला पक्ष उसकी अलौकिक मृत्यु है। संसार में और भी धर्मवीर हुए हैं, परन्तु जिस प्रकार की यातना सहन करके वैरागी ने प्राण दिये और जो वीरता उसने इस यातना को सहते हुए प्रकट की वह उसके बलिदान को अनुपम बना देती है। मसीह का बलिदान उसके सामने सिर झुका लेता है।

इन सब बातों पर विचार करते हुए वैरागी का जीवन हमारे सामने एक सच्चे जातीय वीर का आदर्श उपस्थित करता है। उसे हिन्दू कल्कि का अवतार मानते थे। क्योंकि बाद का सिक्ख-इतिहास अधिकतर 'पन्थ' के साम्प्रदायिक रङ्ग में रँगा गया, और वैरागी "पन्थ" के अन्तर्गत नहीं था, इसलिए उसके जीवन की उपेक्षा की गई। वैरागी भारत में घोर कलि के समय का अवतार था। हिन्दू उस पर जितना भी गर्व करें थोड़ा है। परन्तु खेद है कि उन्होंने अपने इस उपकारी को भुला रक्खा है।

इस्लाम और हिन्दुओं की टक्कर।

इस्लाम की शक्ति अरब से अरबी सभ्यता और इस्लाम-धर्म का भाव लेकर एक महानद की लहर की तरह भारत पर उमड़ आई। हिन्दू-जाति अपने घमण्ड और प्रमाद के मद में सो रही थी। सहसा उसे एक चोट सी लगी। इस आकस्मिक विपत्ति से डर कर हिन्दू-जाति चौंक उठी। मुसलमानों के पहले आक्रमण तो राजाओं पर थे। उत्तर के राजों ने अकेले अकेले थोड़ा बहुत सामना किया, परन्तु वे सब कुछ खो बैठे। जब तक राजाओं की राजनैतिक शक्ति इस्लाम के साथ टक्कर खाकर चकनाचूर न होगई तब तक हिन्दुओं को अपनी निद्रा छोड़ने का विचार तक न आया। जब इस्लाम की सत्ता दिल्ली में स्थिर होगई और उससे हिन्दू राजे अपने अपने महलों में बैठे हुए काँपने लगे तब हिन्दुओं ने आँखें खोलीं। इसका पहला प्रभाव हिन्दुओं में धार्मिक आन्दोलन से आरम्भ हुआ। कबीर इस आन्दोलन का प्रथम उपदेष्टा और प्रवर्तक था। उसने निस्सन्देह हिन्दू और मुसलमान दोनों के सिद्धान्तों की कड़ी आलोचना की है, परन्तु उस आलोचना के भीतर उदार हिन्दू-धर्म का भाव काम करता है। हिन्दू उस समय पादाक्रान्त हो रहे थे। मुसलमान अपने को प्रत्येक बात में हिन्दुओं से श्रेष्ठ समझते थे। कबीर ने मुसलमानी सिद्धान्तों की आलोचना करके यह प्रकट करने का यत्न किया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों में त्रुटियां और मूढ़-विश्वास बराबर हैं; और मुसलमान किसी बात में हिन्दुओं से श्रेष्ठ नहीं। ऐसे समय में और किसी बात का प्रचार हो ही नहीं सकता था। हिन्दुओं के हृदयों में यह भाव उत्पन्न कर देना कि तुम्हारे शासक मुसलमान कोई अलौकिक व्यक्ति नहीं, वे किसी भी बात में तुमसे बढ़ कर नहीं, मुसलमान सत्ता की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाना था। क्योंकि इससे शासक और शासित का भाव नष्ट होकर मानवी-समता का विचार दृढ़ होता था।

कबीर के पश्चात् पञ्जाब में सिक्ख-गुरुओं ने भी इसी काम को किया। पहले पहल गुरुओं का आन्दोलन शुद्ध धार्मिक था, परन्तु गुरु अर्जुनदेव के समय में इसने राजनैतिक रूप धारण कर लिया। यह इस प्रकार हुआ—

जहाँगीर का पुत्र खुसरो बादशाह से विद्रोह करके पञ्जाब भाग आया। गुरु ने उसे शरण दी। इससे बादशाह अप्रसन्न हो गया। गुरु ने अमृतसर में मन्दिर बनवाया और उनके पास बहुत सा धन भी हो गया। उन्होंने ग्रन्थसाहब को पुस्तक-रूप में सम्पादित किया। इस पर किसी ने बादशाह से कह दिया कि गुरु ने क़ुरान शरीफ़ के मुक़ाबले पर एक पुस्तक तैयार की है। बादशाह स्वयं गये और गुरुजी से कहा कि आपने अपनी पुस्तक में क़ुरान के विरुद्ध लिखा है। गुरुजी ने कहा कि यह बात सर्वथा झूठ है। मैंने तो गुरुओं की वाणी और भक्तों के भजनों का सङ्ग्रह और सम्पादन किया है। बादशाह ने कहा कि यदि आपकी दृष्टि में सब धर्म समान हैं तो आप 'ग्रन्थ' में इस्लाम के पैग़म्बर की प्रशंसा में भी कुछ गीत लिख दीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु अर्जुनदेव के लिए यह बड़े सङ्कट का समय था। दिल्ली के बादशाह की आज्ञा को न मानना कोई साधारण बात नहीं थी। कोई और मनुष्य होता तो वह ख़याल करता कि इसमें हानि ही क्या है। एक भजन लिख देने से दिल्लीपति प्रसन्न हो जायगा। शायद जागीरें भी दे दे। इसके बाद बड़ी सुगमता से सिक्ख-धर्म का प्रचार होता रहेगा। परन्तु अर्जुनदेव एक सच्चा नेता था। वह जानता था कि स्वतन्त्रता में ही नवीन आन्दोलन की आत्मा है। उसने सोचा कि यदि मैं बादशाह की आज्ञा का पालन करके इस स्वतन्त्रता को आराम के बदले बेच दूँगा, तो न मेरे धर्म का महत्त्व क़ायम होगा और न सिक्ख धर्म में जान रहेगी। गुरु का दिल्लीपति को उत्तर वैसा ही महत्तायुक्त था जैसा कि इस पवित्र भूमि में संन्यासियों ने दो सहस्र वर्ष पूर्व महान् सिकन्दर को दिया था। गुरु ने कहा—

"ग्रन्थ में जो कुछ लिखा गया है वह वाहगुरु (परमेश्वर) की प्रेरणा से लिखा गया है। मैं किसी और शक्ति को प्रसन्न करने के लिए अपनी ओर से इसमें कुछ और नहीं बढ़ा सकता।"

इस निर्भीक उत्तर ने सिक्ख-आन्दोलन का रूप बदल दिया। जहाँगीर इस उत्तर से जल गया। उसे मालूम हो गया कि इस आन्दोलन में जीवन है और यह किसी दिन राजशक्ति का सामना करेगा। उसी समय उसने उसको अपनी शक्ति से कुचल डालने का निश्चय कर लिया। गुरु पर दो लाख रुपया जुर्माना किया गया। अर्जुनदेव को लाहौर में ऐसी ऐसी यातनायें सहनी पड़ीं कि उनके वर्णन से जी घबरा जाता है। अन्तिम आज्ञा यह थी कि उनको गाय की खाल पहनाई जाय। वे यातनायें सहते रहे, परन्तु उन्होंने दिल्लीपति की आज्ञा के सामने सिर न झुकाया। गुरु अर्जुन ने धर्म-सत्ता को सांसारिक सत्ता के मुक़ाबले पर खड़ा किया और धर्म के लिए अपने आपको बलिदान कर दिया।

सम्भव था, राजशक्ति सिक्ख-धर्म को कुचल डालने में कृतकार्य हो जाती, परन्तु राजशक्ति से भयभीत हो जाने से सिक्ख-धर्म के चलने की कोई आशा ही न थी। गुरु अर्जुन ने अपने आन्दोलन को जोखिम में डाल दिया। परन्तु मार्ग यही था जिसका अवलम्ब करने से यह आन्दोलन बच कर जीवित रह सकता था।

जहाँगीर के समय से दिल्ली के मुसलमान बादशाहों और सिक्ख गुरुओं में मनोमालिन्य बढ़ता ही गया। अर्जुन-देव के पश्चात् गुरु हरगोविन्द ने अपने आपको बादशाह के मुक़ाबले पर 'सच्चा बादशाह,' अपने बैठने के स्थान को 'तख़्त अकाल बुङ्गाह' और अपनी कचहरी को "दरबार" कहाना शुरू किया और आज्ञा दी कि सब सिक्ख अपने झगड़े दरबार में उपस्थित किया करें। दूसरे शब्दों में बादशाही अदालतों का बहिष्कार किया गया।

गुरु हरराय के समय में औरंगज़ेब ने उन्हें दिल्ली बुला भेजा। गुरुजी ने अपने पुत्र रामराय को बादशाह की मुलाक़ात के लिए भेज दिया। बादशाह ने रामराय से पूछा कि गुरु की वाणी में यह श्लोक क्यों है?—

मिट्टी मुसलमान की पेड़े पड़ी कम्हार।
गढ़ झण्डे इट्टाँ कियाँ जलती करे पुकार॥

रामराय घबरा गया। उसने झट कह दिया कि उस श्लोक में 'मिट्टी मुसलमान की' नहीं, बरन 'मिट्टी बेईमान की' है। गुरु हरराय को जब इस बात की ख़बर मिली तब उन्होंने रामराय को कहला भेजा कि तुमने गुरु की वाणी को झूठा बतलाया है, इसलिए मेरे मुँह न लगना।

रामराय का दोष वाणी में फेर-फार करना न था। शब्दों के फेर-फार में कोई पाप नहीं होता, बरन पाप उनकी आत्मा में था। वे बादशाह की शक्ति और प्रतिपत्ति से भयभीत हो गये। गुरु ने समझ लिया कि ऐसी डरपोक आत्मावाला मनुष्य नेता बन कर सिक्ख-धर्म का नाश कर डालेगा। इस प्रकार की एक घटना गुरु गोविन्दसिंह के साथ भी घटी थी। मोहनलाल नामक एक मनुष्य ने उनके सामने यह श्लोक पढ़ा।

नीले वस्त्र कपड़े पहरे।
तुर्क पठानी अमल भया॥

अर्थात् अब नीले कपड़ों का रवाज है और तुर्क पठानों का राज्य हो रहा है। इस पर गुरु गोविन्दसिंह ने कहा, यह श्लोक इस प्रकार नहीं, बरन दूसरी तरह है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीले वस्त्र कपड़े फाड़े।
तुर्क पठानी अमल गया॥

मोहनलाल ने कहा, आप भी रामराय की तरह गुरु की वाणी को बदल रहे हैं। गुरु ने उत्तर दिया—आपको समझ नहीं। वह और बात थी, यह परिवर्तन और बात है। तात्पर्य यह कि वह परिवर्तन सिक्खी उद्देश को नष्ट करनेवाला था, यह उसकी पूर्ति करता है।

औरङ्गज़ेब हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार करता था। संवत् १७२५ में काश्मीर से चल कर कुछ ब्राह्मण गुरु तेग़बहादुर के पास आये और धर्म को बचाने के लिए प्रार्थना की। गुरुजी ने उत्तर दिया—"इस समय किसी महात्मा के बलिदान की आवश्यकता है।

यह उत्तर हमारी समझ में नहीं आता। हज़ारों लाखों सिर तो पहले ही काटे जा चुके थे, परन्तु उनसे कुछ न हुआ। उत्तर-पश्चिमी आक्रमणों के समय रक्तपात और नर-संहार की कोई सीमा न रही थी। एक और महात्मा का वध और क्या जादू कर देता। परन्तु उत्तर यही था। उस समय उसमें सचाई भरी थी। जो शक्ति हज़ारों लाखों की मृत्यु से उत्पन्न न हो सकती थी वह एक नेता की मृत्यु से पैदा हो गई। साधारण मृत्यु और बलिदान में केवल भाव का भेद है। मृत्यु तो दोनों दशाओं में हो जाती है। एक दशा में मनुष्य जीवन के मोह में फँसा हुआ, मृत्यु के भय से काँपता हुआ मरता है, और अपने इर्द-गिर्द सब पर कायरता ही कायरता पैदा करता है। दूसरी दशा में मनुष्य जीवन से बेपरवा होकर, सिंह के समान निडर, दौड़ता हुआ मृत्यु के सामने जाता है और अपने बलिदान से देश में वीरता और मृत्यु से अभीति उत्पन्न करता है। गुरु तेग़बहादुर ने अपना सिर दे दिया। यही सिर था जिसको सिक्ख लड़ाइयों में अपने लिए लड़ता हुआ देखते थे। इस सिर ने प्रत्येक सिक्ख के हृदय में अपना स्थान कर लिया।

गुरु तेग़बहादुर के बलिदान के पश्चात् गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्ख-आन्दोलन को सैनिक रूप में बदल डाला। उन्होंने आप कहा है—

चिड़ियों से मैं बाज़ कटाऊँ।
तभी गोविन्दसिंह नाम धराऊँ॥

गुरु गोविन्दसिंह को नवीन जातीयता उत्पन्न करने के लिए जात-पाँत को तोड़ना आवश्यक हो गया था। इस्लामी आक्रमणों के नीचे जब हिन्दू-जाति के और सब दुर्ग टूट गये तब उन्होंने अपने आपको बचाने के लिए अपने गिर्द जात-पाँत का एक प्रकोट तैयार किया। इस प्रकोट के भीतर रहने के लिए ऐसे बन्धन और नियम बनाये कि जिनसे उसके भीतर रहनेवालों को उसकी दीवारों के बाहर पैर रखने का साहस न हो सके। थोड़े से दोष पर भी लोगों को जाति-च्युत कर दिया जाता था। उस समय यह धमकी सचमुच उपयोगी सिद्ध हुई, परन्तु इस जात-पाँत ने जातीय समता को भङ्ग करके असंख्य पड़ाव बना दिये, जिनसे जातीय जीवन बिलकुल नष्ट हो गया।

गुरु गोविन्दसिंह का ख़ालसा एक ऐसा सिंह था जो जात-पाँत के इन पड़ावों से परे था। गुरु ने उन्हें सिक्ख से सिंह बना दिया।

गुरुगोविन्दसिंह के समय सारा देश यवन-सत्ता से भयभीत था। पंजाब के पहाड़ी राजपूत राजे उससे पराजित होकर हिम्मत हार बैठे थे। गुरु ने उन्हें लिखा कि औरंगज़ेब के विरुद्ध मेरे साथ मिल जाओ। पर उन्होंने गुरु के ही विरुद्ध बादशाह को एक चिट्ठी लिख दी। तब गुरु ने साधारण जनता में जीवन डालना आरम्भ किया। उन्होंने स्वतन्त्रता के आन्दोलन की नींव डाली। उनका सिद्धान्त था—

शूरा सोई जानिए जो लड़े दीन के हेत।
पुर्ज़ा पुर्ज़ा कट मरे कभी न छाड़े खेत॥

गुरु गोविन्दसिंह को स्वतन्त्रता के इस युद्ध में बड़े बड़े कष्ट सहन करने पड़े। उनके दोनों लड़के जीते जी सरहिन्द में दीवार में चुनवा दिये गये। गुरु गोविन्द ने यह समाचार सुनते ही एक सवैया कहा। उसका आरम्भ इस प्रकार होता है—हाल मुरीदाँ दा कहना प्रियतम प्यारे नूँ। एक सिक्ख-सङ्गत को सम्बोधन करके उन्होंने कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सुतन के कारणे वार दिये सुत चार।
चार मरे तो क्या हुआ जब जीवित कई हज़ार॥

अर्थात् तुम लोगों के हित के लिए, जो मेरे बेटों के समान हो, मैंने चार पुत्रों की बलि दे दी है। चार के मारे जाने की कुछ चिन्ता नहीं, जब कई हज़ार जीते हैं। यह था गुरु गोविन्द का भाव। परन्तु इस पर भी उनको अपना काम अधूरा छोड़ जाना पड़ा। दक्षिण में नादीर के स्थान पर एक पठान के दो बेटों ने उन पर तलवार का वार किया। इस आघात से वे परलोक सिधारे। उनके काम को पूर्ण करनेवाला 'वैरागी वीर' था। सिक्खों ने उसे ग्यारहवां गुरु नहीं स्वीकार किया, क्योंकि गुरु गोविन्दसिंह ने जाते हुए आज्ञा दी थी कि सब सिक्ख 'ग्रन्थ' को गुरु मानें। परन्तु इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि वैरागी हिन्दू-जाति का सबसे बड़ा

वैरागी-वीर।

वीर था। हिन्दू उसे अवतार मान सकते हैं। हिन्दुओं में यह स्वभाव हो गया है कि वे नेता को गुरु या अवतार मान कर ही आनन्द प्राप्त करते हैं। इसी से उनमें श्रद्धा आती है और उनको धर्म-जीवन प्राप्त होता है।

वीर वैरागी के जीवन और महत्त्व को समझने के लिए उपर्युक्त बातों का लिखना आवश्यक था। ये उस चित्र के लिये भूमि के समान हैं।

राष्ट्रीय वीर।

लक्ष्मणदेव का जन्म कार्तिक संवत् १७२७ वि० के शुक्ल पक्ष में रामदेव राजपूत के घर पुञ्छ नामक पहाड़ी राज्य के राजोर नामक गाँव में हुआ था। उसको लड़कपन से ही शिकार का बड़ा शौक था। घोड़े की सवारी और धनुर्विद्या में वह अनुपम था। उसका बाण निशाना कभी नहीं चूकता था। जो लोग बड़े सेनापति या जगद्विजेता हुए हैं, प्रायः उन सबके जीवन में शिकार का शौक पाया जाता है। जिस प्रकार वाल्मीकि ऋषि, महात्मा बुद्ध और स्वामी दयानन्द के जीवन को एक ही घटना ने पलट दिया था, उसी प्रकार लक्ष्मणदेव के जीवन को भी एक घटना ने बदल डाला। एक दिन लक्ष्मणदेव शिकार खेलने गया। सामने एक हरिणी चौकड़ियाँ भरती हुई दिखाई दी। लक्ष्मण का बाण धनुष से छूटा। उसका लक्ष्य तो कभी चूकता ही न था। हरिणी लड़खड़ा कर गिर पड़ी। हरिणी का पेट चीरा गया। वह गर्भवती थी। पेट से कुछ बच्चे निकले और तड़प कर मर गये।

इस घटना को देख कर लक्ष्मण को संसार से वैराग्य हो गया। वह संसार को त्याग कर साधु हो गया; घूमता-घामता पञ्चवटी के वन में जा पहुँचा। वहां उसने घोर तप किया और एक महात्मा के प्रसाद से उसे सिद्धि प्राप्त हो गई। लोगों में प्रसिद्ध हो गया कि वैरागी ने जिन्न-भूत वश किये हैं, जिनसे वह असाधारण काम करा सकता है। इस गुप्त शक्ति पर मुसलमान शासकों का भी बड़ा विश्वास था। यही कारण है कि जब आगे चल कर वैरागी को मुसलमानों के साथ युद्ध करना पड़ा तब वे उसके जिन्नों के डर से भाग जाते थे। इस समय उसकी आयु बाईस वर्ष की थी, वह गोदावरी के तट पर नादीर नामक ग्राम के निकट आसन जमाये रहता था, सहस्रों लोग उसके भक्त हो गये थे।

दो वीरों का मिलाप।

यह वह समय था जब गुरु गोविन्दसिंह अपने चारों पुत्रों की बलि देने के बाद किसी सहायक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोज में पंजाब से दक्षिण पहुँचे। उस समय उनकी सहायता या तो कोई राजा कर सकता था या कोई महापुरुष। गुरुजी वैरागी की प्रसिद्धि सुन कर, जिसका नाम अब माधोदास हो गया था, उससे मिलने गये। दोनों वीरों का मिलाप एक अलौकिक मिलाप था। गुरुजी के मुख से जब माधोदास ने मातृ-भूमि के दुःखों और हिन्दू-जाति के करुणोत्पादक दशा का वर्णन सुना तो उनका हृदय टुकड़े टुकड़े हो गया। वीतराग महात्मा देश से अत्याचार और अन्याय का नाश करने के लिए ब्रह्मानन्द पर लात मारने के लिए तैयार हो गया। जिस प्रकार हरिणी की मृत्यु देख कर उसके जीवन में पहले पलटा आया था, उसी प्रकार अब मातृ-भूमि पर अत्याचारों का वर्णन सुन कर वैरागी के जीवन ने पलटा खाया। माधोदास ने अब निवृत्ति मार्ग को छोड़कर प्रवृत्ति मार्ग का अवलम्ब किया। वार्तालाप में गुरु ने वैरागी की कीर्ति और सिद्धि की प्रशंसा की। वैरागी ने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—'मैं आपका बन्दा हूँ'। गुरु ने कहा—'बन्दा हो तो अपनी माता की बन्दगी करो'। वैरागी ने आज्ञा मान ली और सिक्खों में उसका नाम 'बाबा बन्दा' पड़ गया। सिक्ख इतिहास में उसे 'बन्दा बहादुर' कहा गया है। इस समय उसकी आयु ३६ वर्ष की हो गई थी।

गुरु के कुछ सिक्खों को साथ लेकर वैरागी पंजाब की ओर चल पड़ा। परन्तु रास्ते में सिक्खों ने रुपये के लिए वैरागी को दिक करना शुरू किया। भरतपुर पहुँचने पर कुछ पंजाबी सौदागरों ने बहुत सा धन वैरागी की भेंट किया। उसने वह सब धन सिक्खों में बांट दिया। संवत् १७६४ में हिसार पहुँच कर वैरागी ने मालवा के सिक्खों के नाम परवाने लिख भेजे। उसकी प्रसिद्धि तो पहले ही फैल चुकी थी। हज़ारों की संख्या में सिक्ख उसके पास एकत्र होने लगे। वैरागी ने भिवानी का सरकारी ख़ज़ाना लूट कर सिक्खों में बांट दिया। रुपये के लालच से बहुतेरे लोग उससे आ मिले।

युद्ध का आरम्भ।

अब 'बन्दा' वैराग्य धर्म को छोड़ कर राजधर्म में प्रवृत्त हुआ। निवृत्ति-मार्ग अपने लिए मुक्ति या शान्ति प्राप्त करना है, परन्तु प्रवृत्ति-मार्ग देश और जाति के करोड़ों मनुष्यों को दासता और दुःख से छुड़ा कर सुख देता है। इनमें से कौन सा अच्छा है, यह पाठक स्वयं ही निर्णय करें। प्रवृत्ति-मार्ग में आते ही वैरागी ने मण्डी-राज्य में विवाह कर लिया। गुरु गोविन्दसिंह ने भी कहा है—तलवार क्षत्रिय का प्राण है और स्त्री उसका ईमान है।

गुरु गोविन्दसिंह के चले जाने के बाद कई सिक्ख सरहिन्द के नवाब के यहाँ नौकर हो गये थे। जब नवाब ने वैरागी का हाल सुना तब वह बड़े घमण्ड से सिक्ख सिपाहियों से कहने लगा—'तुम्हारे एक गुरु की तो यह दुर्गति हुई कि वह भागा भागा फिरता है। अब एक नया गुरु आया है। उसकी भी ऐसी ख़बर ली जायगी कि उसका कहीं पता न लगे।'

सिक्ख लोग यह अपमान-भरी बात न सहन कर सके। वे वैरागी से आ मिले। वैरागी में बिजली की शक्ति थी। ज्यों ही सेना तैयार हुई, उसने सामना के क़िले को लूट लिया। नगर की ईंट से ईंट बजा दी। लोग जङ्गलों में भाग गये। जो क़बाब खाते थे वे बेर खाने लगे। जो मख़मलों के बिछौनों पर सोते थे वे अब पत्थर का सिरहाना लगाने लगे। गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों को मरवानेवाला अलीहुसैन और गुरु तेग़बहादुर का घातक जलालुद्दीन इसी नगर के निवासी थे। इसी से यह नगर विशेष प्रकोप का पात्र बना।

अब वैरागी मुसलमानी नगरों को लूटता और माल-धन सिपाहियों में बांटता आगे बढ़ने लगा। उधर दक्षिण में औरंगज़ेब का दम निकल रहा था, इधर 'वैरागी' ने मराठों की तरह ऊधम मचा रक्खा था। साठौरे का नवाब बड़ा दुराचारी था। हिन्दुओं की बहू-बेटियों तक का उसे लिहाज़ न था। जब उसकी बारी आई तब उसने इर्द-गिर्द के बहुत से मुसलमान एकत्र कर लिये। ११ माघ संवत् १७६४ को दिन भर लड़ाई होती रही। विनोदसिंह ने वैरागी से जाकर कहा—तुम माला फेरते हो, लोग मर रहे हैं। इस पर वह क्रोध में आकर उठा और बाण-वर्षा करने लगा। बाण क्या थे, विषैले सांप थे। मुसलमान घबरा कर भाग गये। स्त्री पति को छोड़ गई, मा बेटे को छोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई। सर्ववध हुआ। नवाब वृक्ष से बाँध कर मार डाला गया।

वैरागी की धाक सारे इलाके में बँध गई। हिन्दुओं ने समझा कि हमको बचाने के लिए ईश्वर ने अवतार लिया है। वैरागी अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना के लिए आया है। जो मुसलमान अत्याचार किया करते थे वे अब भय से काँपने लगे। बहुतेरे मुसलमान भेंटें लेकर वैरागी से आ मिले और उसके भक्त बन गये, परन्तु उनका हृदय शुद्ध न था। उन्होंने सूबा को लिखा कि हम वैरागी को धोखे से मारेंगे। उनके दूत बाँस की लाठी में उनकी गुप्त चिट्ठी डाल कर सरहिन्द जा रहे थे। मार्ग में एक ऊँट चरानेवाले की साँड़नी खेत में घुस गई। भगवान् की महिमा, उसने दूत के हाथ से उस लाठी को लेकर साँड़नी को हाँका। लाठी टूट गई और उसके भीतर से वह चिट्ठी बाहर निकल कर गिर पड़ी। वैरागी ने उसे पढ़ा और उन सब मुसलमानों को बुला कर पूछा कि विश्वास-घातक के लिए क़ुरान में क्या दण्ड है? सबने कहा—उसका वध कर डालना चाहिए। तब उसने वह चिट्ठी सुनाई। सब अवाक् रह गये और रो रोकर प्राण-दान के लिए प्रार्थना करने लगे। वैरागी ने कहा—अच्छा, जितने मनुष्य इस हवेली के भीतर आ जायँगे उनको छोड़ दिया जायगा। अगणित मुसलमान उसके अन्दर जा घुसे। वे एक दूसरे पर चढ़ कर बैठ गये। सबने अपने आपको फन्दे में फँसा लिया। सबकी हत्या कर दी गई। वैरागी ने सदा के लिए निश्चय कर लिया कि वह मुसलमानों का कभी विश्वास न करेगा।

यह समाचार सुन कर हिन्दुओं के मन प्रसन्नता से फूले न समाते थे। उन्हें वैरागी गाय और ब्राह्मण का रक्षक देख पड़ता था। कुछ लोग शायद वैरागी के उपर्युक्त कर्म को बुरा समझें। परन्तु उन्हें वैरागी पर दोषारोपण करने के पहले यह समझ लेना चाहिए कि मुसलमानों ने भी हिन्दुओं पर कैसे कैसे अत्याचार किये थे। इसके सिवा युद्ध-काल में ऐसी बातें बहुत साधारण समझी जाती हैं।

इसके बाद छत्त बनोन नामक नगर के ब्राह्मण इकट्ठे होकर वैरागी के पास आये और पुकार की—महाराज की जय हो! मुसलमान हमें रहने नहीं देते। हमारी बहू बेटियाँ ले जाते हैं। गाय मार कर हमारे कूओं में लहू डाल देते हैं, हम आपकी शरण में आते हैं। बन्दा के सिपाहियों ने जाकर मुसलमानों से वह बदला लिया कि बस हद हो गई। सब पठान मार कर धराशायी कर दिये गये।

[असमाप्त]

सन्तराम

विश्लेष।

(१)

क्या छिपे ही तुम रहोगे सर्वदा?
क्या हमें है जन्म भर दुख ही बदा?
है व्यथा भी रह गई न निरी व्यथा,
वह हमारी हो गई जीवन-कथा॥

(२)

आज तक हमने नहीं जाना तुम्हें,
अगर देखा भी न पहचाना तुम्हें।
बस, बता दो यह कि आख़िर कौन हो?
हाय! निर्मल! किस लिए तुम मौन हो?

(३)

हम तुम्हें सर्वस्व अर्पण हैं किये,
जी रहे हैं और हम किसके लिए?।
यदि न इस पर भी तुम्हें सन्तोष है,
तो कहो फिर क्या हमारा दोष है॥

(४)

फिर ज़रा सुन लें कि तुमने क्या कहा,
पूँछते हो क्यों दुखों को है सहा।
क्यों भला तुम बन रहे अनजान से?
क्या स्वयं अनभिज्ञ हो निज दान से?

(५)

व्यर्थ ही का यह तुम्हारा मान है,
रात-दिन हमको तुम्हारा ध्यान है।
क्या नहीं सुनते तुम्हारे कान हैं?
गा रहे हम बस तुम्हारे गान हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६)

हम यदपि अति दीन हीन मलीन हैं,
पर तुम्हारे प्रेम में ही लीन हैं ।
हम तुम्हारे छबि-जलधि की मीन हैं ?
तुम बिना हम हो रहे गति-हीन हैं ॥

(७)

जो न होने का वही हम चाहते,
तुम हमें चाहो यही हम चाहते ।
किन्तु हम कितने अभागे हैं बड़े ?,
देखने के भी हमें लाले पड़े ॥

(८)

हाय ! यह कैसा तुम्हारा लोभ है ?,
ले चुके सब कुछ न तो भी क्षोभ है ।
छोड़ते अब भी न तरसाना हमें,
व्यर्थ ही दिन-रात कलपाना हमें ॥

(९)

हर लिया तुमने हमारे चित्त को—
(अद्वितीय अमूल्य अनुपम वित्त को)
क्या रहा बाक़ी सभी कुछ ले लिया ?,
क्यों दुखों को ही भला है तज दिया ? ॥

(१०)

हृदय लेकर क्या हमें तुमने दिया ?,
वाह ! अच्छा न्याय तुमने है किया ।
क्लेश के अतिरिक्त अब क्या शेष है ?,
बस, हमारा चिर-सखा विश्लेष है ॥

गोपालशरणसिंह

छाया-चित्रण ।

कितने ही लोग यह नहीं जानते कि छाया-चित्र कैसे लिया जाता है । इस लेख में इसी के सम्बन्ध में कुछ लिखा गया है । छाया-चित्र बहुत ही सरल है । तिस पर भी कुछ लोग इस काम में असफल होते हैं । यह तो सभी जानते हैं कि छाया-चित्र उतारने के लिए एक कैमेरा चाहिए । कैमेरा एक साधारण बक्स सा होता है । उसके एक ओर प्लेट या फ़िल्म (चित्र के नीचे देखिए) लगाया जाता है और दूसरी ओर एक ताल (लेन्ज़, lens) रहता है । ताल को ढक देने पर बक्स में कहीं से प्रकाश नहीं जा सकता । केवल ऐसे सरल

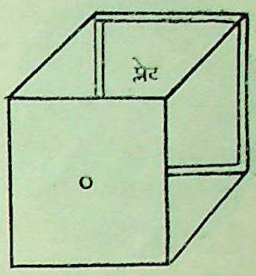

चित्र नं० १

कैमेरे से भी बहुत अच्छे छाया-चित्र लिये जा सकते हैं । (चित्र २ एक नमूना है) । दूसरे कैमेरों में भाथी और अन्य कल-पुर्ज़े कैमेरे को मोड़ कर केवल उसे छोटा करने या दूसरे सुभीतों के लिए लगे रहते हैं ।

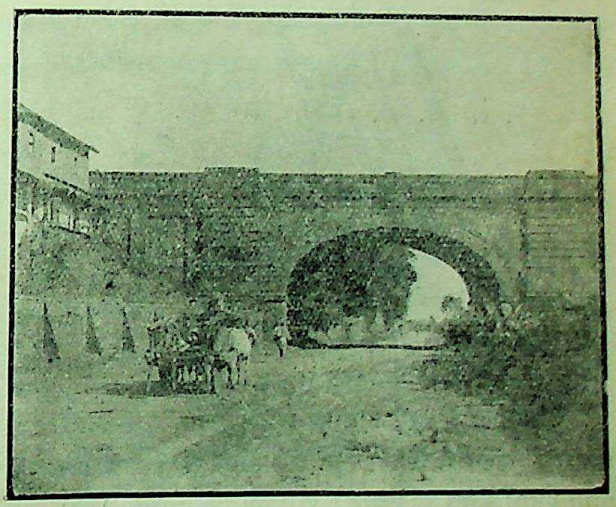

चित्र नं० २

ताल (चित्र ३) उसी प्रकार का होता है जैसा बूढ़े लोगों के चश्मों में लगा रहता है । आपने देखा होगा कि ऐसे ताल को जँगले और दीवार के बीच रखने और दीवार से ताल की दूरी को घटाने-बढ़ाने से एक विशेष दूरी पर जँगले और इसके बाहर की वस्तुओं की मूर्ति दीवार पर दिखलाई पड़ती है । यदि आपने न देखा हो तो आप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसको जब चाहें तब, जैसा चित्र ४ में दिखलाया गया है, करके देख सकते हैं। कैमेरे के ताल और प्लेट के बीच की दूरी इतनी रहती है कि कैमेरे से कुछ दूर की वस्तुओं

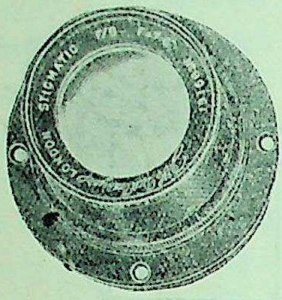

चित्र नं० ३

की मूर्ति प्लेट या फ़िल्म पर ही पड़ती है। इस काम के लिए कुछ कैमेरों में यह दूरी घटाई-बढ़ाई जा सकती है (चित्र ५)। दूरी ठीक करने को फ़ोकस कहते हैं।

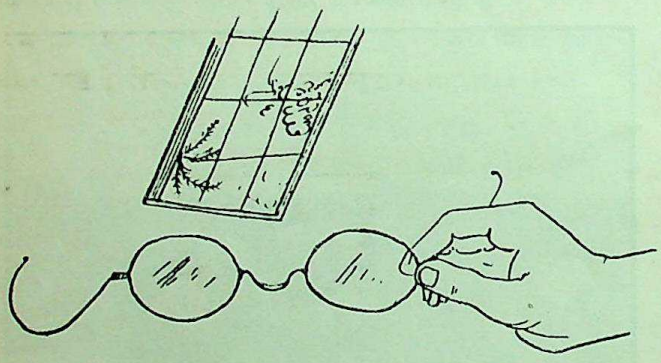

चित्र नं० ४

छाया-चित्रण इसी बात पर निर्भर है कि कुछ पदार्थ प्रकाश के लगने से बदल जाते हैं। इनमें से विशेष उपयोगी पदार्थ चाँदी का ब्रमिद (silver bromide) है। थोड़े से प्रकाश के लगने से भी यह बदल जाता है। देखने में तो यह उसी रङ्ग का रह जाता है, परन्तु इसमें ऐसी शान्ति आ जाती है कि उन रासायनिक पदार्थों के प्रयोग से जिनको फ़ोटोग्राफ़र लोग डेवेलपर (developer) कहते हैं यह काला हो जाता है। यदि इसमें प्रकाश न लगा होता तो यह डेवेलपर से काला न होता। चाँदी के ब्रमिद को जिलेटिन में मिला कर शीशे या शीशे की ही भाँति पारदर्शक सेलुलायड (celluloid) के पतले पत्र पर पोत देते हैं। शीशे पर पोतने से प्लेट बनता है और सेलुलायड पर पोतने से फ़िल्म। अवश्य ही ये अँधेरे में ही बनाये जाते हैं और इस प्रकार काले काग़ज़ और दफ़ी इत्यादि में बन्द करके बेचे जाते हैं कि इनको ज़रा सा भी प्रकाश नहीं लगने पाता।

छाया-चित्र लेने के पहले प्लेट या फ़िल्म को कैमेरे में लगाने का प्रबन्ध करना आवश्यक है। कुछ कैमेरों में

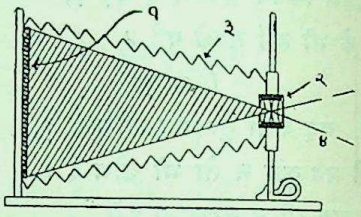

चित्र नं० ५

प्लेट या फ़िल्म एक ऐसे डिब्बे में बन्द करते हैं जिसके भीतर प्रकाश नहीं जा सकता (चित्र ६) और समय पर इस डिब्बे को कैमरे के पीठ में लगा कर इसके ढकने को खींच लेते हैं। कुछ कैमेरों के उदर में ही प्लेट या फ़िल्म लगाये जाते हैं। डिब्बे को प्लेट-घर (plate-holder या dark-slide) कहते हैं। इसमें या कैमेरे में प्लेट लगाने का काम अँधेरी कोठरी में करना पड़ता है। चाँदी के ब्रमिद में एक विशेषता यह है कि यद्यपि सफ़ेद रोशनी के लगते ही इसमें परिवर्तन हो जाता है, तो भी लाल रोशनी में इस परिवर्तन में बहुत समय लगता है। इसलिए अँधेरी कोठरी में लाल प्रकाश रक्खा जा सकता है। फ़िल्म इस प्रकार काग़ज़ में लपेटा रहता है कि इसको अँधेरी कोठरी के बाहर भी कैमेरे में चढ़ा सकते हैं।

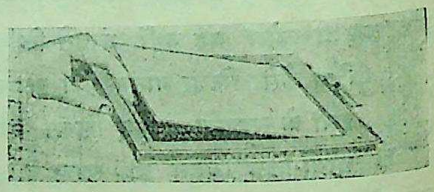

चित्र नं० ६

जिस वस्तु या प्राणी का छाया-चित्र खींचते हैं उसको विषय कहते हैं। विषय के सामने कैमेरे को स्थिर रख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर लेन्ज़, जो अब तक बन्द रक्खा गया था, थोड़े समय के लिए खोल दिया जाता है। इतने ही समय में प्लेट या फ़िल्म पर पड़नेवाली विषय की मूर्ति इसके मसाले में काफ़ी परिवर्तन कर डालती है। लेन्ज़ को खोल कर बन्द करने को प्रकाश-दर्शन (exposure) देना कहते हैं और जितने समय तक लेन्ज़ खुला रक्खा जाता

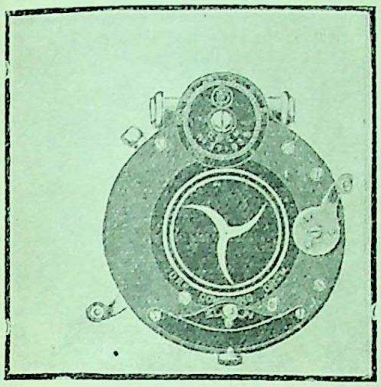

चित्र नं० ७

है उसी को प्रकाश-दर्शन-समय या केवल प्रकाश-दर्शन कहते हैं। जब प्रकाश तेज़ रहता है तब केवल $\frac{1}{50}$ सेकंड या इससे भी कम प्रकाश-दर्शन की आवश्यकता पड़ सकती है। ऐसी दशा में घड़ी के समान बना हुआ एक छोटा यन्त्र काम में लाया जाता है (चित्र ७)। इसको शटर

चित्र नं० ८

(shutter) कहते हैं और इसके घोड़े या तार के दबाने से इसकी पत्तियाँ स्वयं उठ जाती हैं और लेन्ज़ खुल जाता है, परन्तु वे तुरन्त गिर भी पड़ती हैं और लेन्ज़ बन्द हो जाता है। जब प्रकाश-दर्शन इतना कम होता है तब कैमेरे को अधिकतर हाथ में ही रख कर प्रकाश-दर्शन

चित्र नं० ९

दिया जाता है (चित्र ८)। इसी को स्नैपशौट (snap shot) या क्षणिक (instantaneous) छाया-चित्रण कहते हैं। चलती-फिरती वस्तुओं का भी फ़ोटो इसी प्रकार उतारा जा सकता है। जिन कैमेरों से इस प्रकार

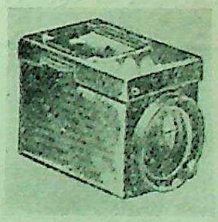

चित्र नं० १०

का काम लिया जाता है वे हैन्ड-कैमेरा कहलाते हैं। जब प्रकाश-दर्शन $\frac{1}{50}$ सेकंड से अधिक होता है तब कैमेरे को तिपाई (tripod या stand) पर रखना पड़ता है (चित्र ९), जिसमें वह हिलने न पावे। इस काम के लिए विशेष रूप से बने कैमेरे को स्टैन्ड-कैमेरा कहते हैं। सभी हैन्ड-कैमेरे तिपाई पर रख कर प्रयोग किये जा सकते हैं। हैन्ड-कैमेरा में कैमेरे के समान एक छोटा सा यन्त्र (चित्र १० देखिए), जिसको दृश्य-बोधक (view-finder) कहते हैं, लगा रहता है। इस यन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इस बात का ज्ञान होता है कि विषय का कितना भाग चित्र में आवेगा।

प्रकाश-दर्शन देने के बाद अँधेरी कोठरी में ऊपर बतलाये गये डेवेलपर में प्लेट या फ़िल्म को नियत समय तक (३ से १० मिनट तक) डुबा कर रखते हैं। ऐसा करने से इसका वह भाग जहाँ अधिक प्रकाश पड़ा था ख़ूब काला हो जाता है और जिस भाग पर सबसे कम प्रकाश पड़ा था वह लगभग सफ़ेद ही रह जाता है। अन्य भाग का गाढ़ापन इन दोनों के बीच रहता है। इसको नेगेटिव कहते हैं। चित्र ११ में एक लकड़ी का नेगेटिव दिखलाया गया है। देखिए, इसमें बाल सफ़ेद हैं और चेहरा काला है। यह न समझना चाहिए कि नेगेटिव अब तैयार हो गया, क्योंकि चाँदी के ब्रमिद का वह भाग जो कभी काला नहीं हुआ है प्लेट ही पर पड़ा है। इसको निकालने के लिए प्लेट को डेवेलपर से निकाल कर पानी से एक बार धो कर हैपो* (hypo) के घोल में १० मिनट तक रख देते हैं। इसमें चाँदी का ब्रमिद घुल जाता है। इसके बाद नेगेटिव को कई बार पानी से धोकर सुखा लेते हैं।

स्पष्ट है कि नेगेटिव से हम सन्तुष्ट नहीं रह सकते। जो मसाला प्लेट पर लगा था वही यदि काग़ज़ पर पोता

चित्र नं० ११

जाय तो हम ऐसे काग़ज़ को नेगेटिव के पीछे दबा कर कुछ प्रकाश दिखला सकते हैं। नेगेटिव के साफ़ भाग द्वारा अधिक प्रकाश जाने के कारण काग़ज़ के इस भाग में सबसे अधिक परिवर्तन होगा। इसलिए पीछे यह भाग डेवेलपर में ख़ूब काला हो जायगा। नेगेटिव के गाढ़े भाग के सामनेवाले काग़ज़ को कुछ प्रकाश नहीं लगेगा,

चित्र नं० १२

इसलिए डेवेलपर में यह सफ़ेद ही रह जायगा। अन्य भाग कम या अधिक काले हो जायँगे। इस प्रकार फ़ोटो या छाया-चित्र तैयार हो जायगा (चित्र १२)। अवश्य ही काग़ज़ को भी डेवेलनपर से निकाल कर हैपो में देना पड़ेगा और धोना पड़ेगा। ऊपर बतलाई गई रीति से बने काग़ज़ को ब्रोमाइट या गैसलाइट काग़ज़ कहते हैं।

एक प्रकार का और भी काग़ज़ होता है, जो प्रकाश के लगने से ही काला हो जाता है, इसके लिए डेवेलपर की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसे काग़ज़ को पी० ओ० पी० कहते हैं। सेल्फ़-टोनिङ्ग पी० ओ० पी० को नेगेटिव के पीछे दबा कर छापने के बाद केवल हैपो के घोल में १० मिनट तक रख कर धो डालने और तब काग़ज़ को सुखा लेने से ही फ़ोटो तैयार हो जाता है। इस पर छापना बहुत ही सरल है। फ़ोटो को दफ़्ती पर चिपकाने के विषय में लिखने की कोई ज़रूरत नहीं है।

अब आप जान गये होंगे कि फ़ोटो उतारना कितना

* एक रासायनिक पदार्थ, जो देखने में मिश्री के समान होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरल है। कोई भी क्रिया इसमें ऐसी नहीं है जिसको आप सुगमता से न कर सकें, केवल आप इतना नहीं बतला सकेंगे कि प्रकाश-दर्शन कितना ठीक होगा। पहले प्रकाश-दर्शन बहुत कठिन विषय समझा जाता था, परन्तु

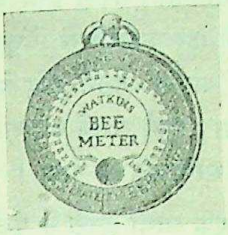

चित्र नं० १३

अब प्रकाश-दर्शन-मापक (exposure-meter) नामक एक घड़ी से भी छोटा यन्त्र मिलता है। वह प्रकाश की तेज़ी को नाप कर उचित प्रकाश-दर्शन को तुरन्त बतला देता है (चित्र १३)। इसका दाम कम है और इसके प्रयोग करने की विधि बहुत सरल है। इसके अतिरिक्त यदि आप उचित प्रकाश-दर्शन के बदले चौथाई या अठगुना प्रकाश-दर्शन दे देंगे तो भी कुछ हानि न होगी। दूसरी बात जिसमें कदाचित् आपको कठिनाई पड़े वह डेवेलप करने का समय है। बहुत ठोकर खाने पर फ़ोटो-ग्राफ़रों को, थोड़े ही वर्ष हुए, पता चला कि प्रकाश-दर्शन चाहे कुछ हो प्लेट को उतने ही समय तक डेवेलप करना चाहिए। डेवेलपर की गरमी (तापक्रम) और प्लेट का नाम जानने से ही आप डेवेलपर के साथ मिलनेवाली प्रयोग-विधि से जान जायँगे कि कितने मिनट तक डेवेलप करना ठीक होगा। कितने लोग किसी रोज़गारी फ़ोटोग्राफ़र से अपना प्लेट या

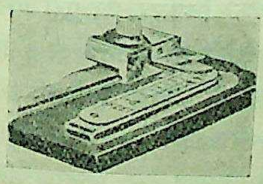

चित्र नं० १४

फ़िल्म डेवेलप करा लेते हैं। कदाचित् आपको फ़ोकस लेने में भी कठिनाई पड़े। छोटे या सस्ते कैमेरों में फ़ोकस लेने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती और जिन कैमेरों में आवश्यकता पड़ती है उनमें एक छोटा सा मापक (scale) लगा रहता है (चित्र १४)। विषय की दूरी को जान लेने पर कैमेरे के आगे के भाग में लगे हुए प्वान्टर को मापक की उसी दूरीवाले चिह्न पर लाने से ही फ़ोकस ठीक हो जाता है। सारांश यह कि अब छाया-चित्रण के सारे बखेड़े दूर कर दिये गये हैं। आठ-दस वर्ष के लड़के और लड़कियाँ भी बहुत अच्छे फ़ोटो उतार सकती हैं, हाँ, डेवेलप करने और छापने का काम किसी रोज़गारी से करवाना पड़ेगा। बारह वर्ष या अधिक आयु के लड़के और लड़कियाँ तो डेवेलप इत्यादि करने का काम भी स्वयं कर सकती हैं।

आप पूछेंगे कि छाया-चित्रण के इतने सरल होने पर भी क्यों इतने प्लेट या फ़िल्म बड़े लोगों के हाथों से भी ख़राब हो जाते हैं। उत्तर है जल्दबाज़ी,

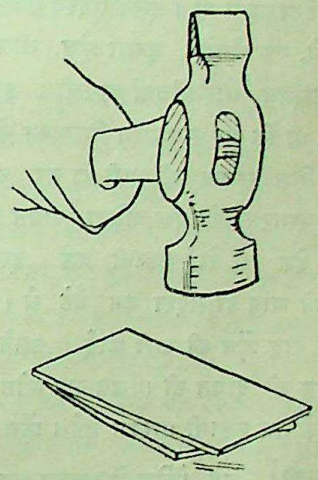

चित्र नं० १५

असावधानी या गन्दगी। जल्दबाज़ी के कारण सभी नियम तोड़ दिये जाते हैं, और परिणाम भी वैसा ही होता है, नेगेटिव को तोड़ना पड़ता है। असावधानी के कारण (चित्र १५) प्लेटों तक बाहरी रोशनी पहुँच जाती है या प्रकाश-दर्शन देते समय कैमेरा हिल जाता है। गन्दगी के कारण नेगेटिव और छाप पर तरह तरह के धब्बे, चिह्न इत्यादि पड़ जाते हैं। फिर, कितने लोग विज्ञान और खोज से नई निकली हुई बातों को न सीख कर पुराने ढर्रे पर ही चले जाते हैं। वे जानते ही नहीं कि प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी नापा जा सकता है और प्रकाश-दर्शन का प्रश्न तय किया जा सकता है। प्रकाश-दर्शन में भूल हो जाने से वे अब भी डेवेलप करने में भी ग़लती कर बैठते हैं और नेगेटिव को इस प्रकार एक-दम चौपट कर डालते हैं। यदि आप नये नियमों के पालन करने के लिए उद्यत हैं और आप में धैर्य, सावधानी और सफ़ाई है तो छाया-चित्रण में आरम्भ से ही आपको अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

'सिद्धहस्त'

पञ्च-पात्र।

[सन् १९२० की बात है। एक दिन कलकत्ता में एक विशेष समाज की स्थापना हुई। इसमें किसी प्रकार का चन्दा नहीं देना पड़ता था। इसके सदस्य केवल पाँच व्यक्ति हो सकते थे, एक अँगरेज़, दूसरा फ़्रेञ्च, तीसरा जापानी, चौथा मुसलमान और पाँचवाँ बङ्गाली। इस समाज का यह नियम था कि जब सब लोग मिल कर कोई दिन ठीक करें तब जिस सदस्य की बारी हो वह अपने देश की प्रथा के अनुसार सबको एक बढ़िया दावत दे, उसके बाद अपने ही देश की कोई कहानी कहे। इस समाज के सदस्य अपने आप ही सदस्य बन बैठे थे। अँगरेज़ और जापानी के बाद फ़्रेंच की बारी आई। उसने अपने मित्रों को फ़्रेंच ढङ्ग की दावत दी। जब सब लोग अच्छी तरह खा पी चुके तब कहानी प्रारम्भ हुई। फ़्रेंच ने कहा—]

मैं जब पेरिस में रहता था तब मिस्टर सैम्पलर नामक एक सज्जन से मेरी पहचान होगई थी। उनका स्वभाव बड़ा सरल था। उन्होंने एक दिन मुझसे अपने जीवन की सफलता की कहानी बक दी थी। वही आज मैं आपको सुनाना चाहता हूँ।

सैम्पलर की उम्र चालीस वर्ष की थी। उसका शरीर ठिंगना, पर किसी क़दर बलिष्ठ था। पेरिस के एक बड़े कारख़ाने में वह क्लार्क था। वह वहाँ पन्द्रह वर्ष से नौकर था। उसे प्रति सप्ताह एक पौंड, सात शिलिङ्ग और छः पेंस मिलते थे। इन पन्द्रह वर्षों में उसके साथ के दूसरे क्लार्कों की वेतन-वृद्धि या पदोन्नति बराबर होती रही, पर बेचारे सैम्पलर का ध्यान कभी नहीं किया गया। वह भी अपने वेतन और पद से सन्तुष्ट रह कर अपना काम सदा चुपचाप करता रहा। परन्तु इधर कुछ समय से उसकी पत्नी ने उसे अपने क्रूर कटाक्षों से विक्षुब्ध कर दिया था। अतएव अब उसे अपनी वेतन-वृद्धि की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। इसी समय सहसा एक घटना-विशेष के कारण उसका भाग्योदय हो गया।

सैम्पलर के एक साथी क्लार्क ने एक दिन उसे पढ़ने के लिए एक सामयिक पत्र दिया। वह उस पत्र को आफ़िस आते-जाते समय राह में पढ़ा करता। सब लेख अच्छी तरह पढ़ चुकने के बाद उसने विज्ञापनों का पढ़ना प्रारम्भ किया। इनको पढ़ते समय उसका ध्यान एक चित्र की ओर गया। वह चित्र मनुष्य का था। वह विज्ञापन में इस प्रकार अङ्कित किया गया था, मानो देखनेवाले की ओर घूर रहा हो और उसका एक हाथ उसकी बात की ओर इशारा कर रहा हो। विज्ञापन के सिरे पर बड़े बड़े अक्षरों में 'अपनी आकर्षण-शक्ति' लिखा था। उस विज्ञापन को एक प्रोफ़ेसर ने छपवाया था। उसने लिखा था कि मेरी बतलाई हुई विधि का अनुधावन करने पर प्रत्येक व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है। कुछ ही रक़म फ़ीस के रूप में लेकर मैं उसके गुप्त भेद बता देता हूँ।

सैम्पलर के पास उस समय पाँच पौंड थे। यह रक़म उसने अपनी स्त्री से छिपा कर बचा ली थी। अतएव उसने सन्ध्या-समय प्रोफ़ेसर से भेंट करने का निश्चय किया। आफ़िस बन्द हो जाने के बाद वह उसके पास गया। उसकी बात-चीत का सैम्पलर पर पूरा प्रभाव पड़ा। उसने सैम्पलर को एक छोटी सी किताब दी। उसमें कुछ नियम और उनके प्रयोग की विधि छपी थी। सैम्पलर ने बड़े परिश्रम कर दो-तीन दिन के भीतर वह किताब कण्ठस्थ कर ली, क्योंकि उसका उस किताब की बातों पर पूरा विश्वास हो गया था।

एक दिन सन्ध्या को सैम्पलर अपने प्रोफ़ेसर से भेंट करने गया। उसे मालूम हुआ कि सैम्पलर ने उस किताब को मुखाग्र कर लिया है। सैम्पलर को उत्साहित करते हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कहा—अब तुम पूर्ण हो गये। मुझे आज तक तुम्हारा जैसा बुद्धिमान् शिष्य नहीं मिला। तुम अपनी शक्ति का प्रयोग सफलता के साथ कर सकते हो। इस बात को भले प्रकार याद रखना कि मनुष्य की आँख ही तेज का घर है। जिसे हम प्रभाव की ज्योति कहते हैं वह उसी से उद्भूत होती है। अतएव आँख की शक्ति के बढ़ाने का अभ्यास बराबर करते रहना। अपनी आँखों में वह शक्ति पैदा करो जिससे वे तुम्हारी मनोगत इच्छा प्रकट करने में समर्थ हो सकें। किसी व्यक्ति से बातचीत करते समय उसके चेहरे पर तुम एकाग्र चित्त हो अपनी निगाह बराबर गड़ाये रहना। निस्सन्देह, तब तुम इस क्रिया को अचूक ही पाओगे। तुम्हें यह जान कर आश्चर्य होता होगा कि नाम-मात्र की फ़ीस लेकर मैं इस विचित्र विद्या को लोगों को क्यों बताता फिरता हूँ, उससे स्वयं ही क्यों नहीं लाभ उठाता। बात यह है कि मैंने परोपकार का व्रत लिया है। मैं एक-मात्र लोगों की भलाई का इच्छुक हूँ।

इस बातचीत के बाद प्रोफ़ेसर से सैम्पलर ने बिदा ली। लौटते समय राह में उसने निश्चय किया कि अवसर मिलते ही मैं अपनी विद्या की आज़माइश करूँगा। उसने इस सम्बन्ध में किसी से कुछ नहीं कहा था। यहाँ तक कि अपनी स्त्री से भी उसकी चर्चा न की थी।

घर पहुँचने पर सैम्पलर ने देखा कि उसकी स्त्री वाटर-रेट के कलेक्टर से उलझी हुई है। उनमें कड़ी बात-चीत हो रही थी। रेट-कलेक्टर शरीर से हृष्ट-पुष्ट और स्वभाव का झगड़ालू था। उसे उसकी स्त्री सदा घृणा से देखती थी। उसने डाँट कर कहा—मेरे पास रुपया नहीं है, तुमको ठहरना होगा। इस समय मेरा पति बाहर गया है। लो! वह आया। चार्ल्स, यह आदमी वाटर-रेट माँग रहा है।

वाटर-रेट भुगता देने के विचार से सैम्पलर ने जेब में हाथ डाला ही था कि उसे कुछ याद आगया, अतएव वह ठहर गया। फिर आगे आकर वह रेट-कलेक्टर के सामने डट कर चुपचाप खड़ा हो गया। अपना हाथ घुमाकर उसने अपनी रिस्टवाच देखी। इसके बाद अपनी किताब के नियमों का स्मरण कर उसने रेट-कलेक्टर से कहा—तीन मिनट तक चुपचाप ऐसे ही खड़े रहो, फिर जो तुम्हें कहना हो, कहना। तीन मिनट बीत जाने के बाद रेट-कलेक्टर कुछ कहने को अपना मुँह खोलना ही चाहता था कि सैम्पलर ने अपनी पीली-नीली आँखें उसके चेहरे पर गाड़ कर धीरे से कहा—बस, अब तुम चुपचाप मेरे मकान से निकल जाओ।

रेट-कलेक्टर—क्या कह रहे हो?

सैम्पलर—बस, अब तुम चुपचाप मेरे मकान से निकल जाओ।

इस बार सैम्पलर डपट कर बोला।

रेट-कलेक्टर—मैं चाहता—

सैम्पलर—बस—अब—तुम—मकान से—निकल—जाओ।

इस बार रेट-कलेक्टर एक क़दम पीछे हट गया। मिसेज़ सैम्पलर अपने पति की ओर आश्चर्य से देखने लगी।

बस—अब—तुम—मकान से—निकल जाओ—यह कह कर सैम्पलर एक क़दम आगे बढ़ आया।

"बहुत अच्छा, तुम पागल हो गये हो। श्रीमती, मैं अब दूसरे समय आऊँगा।" यह कह कर रेट-कलेक्टर फिर पीछे हटा। यह देख कर सैम्पलर भी आगे बढ़ आया। इस प्रकार हटते हटते जब रेट-कलेक्टर कुशलपूर्वक दरवाज़े के बाहर निकल गया तब वह घूम कर वहाँ से चल पड़ा। अपनी विजय देख कर सैम्पलर का हृदय आनन्द से भर गया, क्योंकि उसे अपनी विद्या के प्रथम प्रयोग में ही सफलता प्राप्त हुई। बेचैनी की दृष्टि से अपने पति को देख कर मिसेज़ सैम्पलर ने पूछा—चार्ल्स, तुमने उसके साथ ऐसा दुर्व्यवहार क्यों किया? सैम्पलर ने कहा—प्रिये, यह वस्तु कारगर है। अब हमारे अच्छे दिन आये। मिसेज़ सैम्पलर ने पूछा—चार्ल्स, तुम क्या कह रहे हो?

सैम्पलर अपने अनुभव की बात अपनी स्त्री को बताना ही चाहता था कि सहसा उसे अपनी किताब का सातवाँ नियम याद आ गया। वह नियम यह था—अपनी इस विद्या की बात कोई कभी न जानने पावे। उसने ज़रा ठहर कर कहा—कुछ नहीं। यह एक गुप्त बात है। उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री ने बहुतेरा पूछा, पर वह उपर्युक्त उत्तर के सिवा अधिक कुछ न जान सकी। अन्त में वह चुप हो रही।

दूसरे दिन जब सैम्पलर आफ़िस गया तब उसने वहाँ का रङ्ग-ढङ्ग अच्छा न देखा। कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर का स्वभाव विचित्र था। आज किसी बात से उसका मिज़ाज गर्म हो गया था। अतएव आफ़िस के सारे कर्मचारी थर थर काँप रहे थे। वे सभी यह सोच कर घबरा रहे थे कि देखें अब किस पर उसका क्रोध उतरता है।

सैम्पलर के अपनी जगह पर बैठ चुकने के थोड़ी देर बाद ही सीनियर क्लार्क अपने कमरे से एकाएक निकल कर आफ़िस में आकर खड़ा हो गया। उसका चेहरा उस समय तमतमा रहा था। उसने कहा—सैम्पलर, डायरेक्टर डे-बुक माँगता है, जल्दी ले जाओ।

क्षण भर के लिए सैम्पलर घबरा गया। इसके बाद उसने अपनी किताब के पाँचवें नियम की याद की। वह यह था—सदा पूर्ण शान्त बने रहो। धीरे धीरे चलो, पर शान से। उसे निश्चेष्ट देख कर सीनियर क्लार्क को कुछ आश्चर्य हुआ। उसने दूसरी बार कहा—सैम्पलर, डे-बुक जल्दी ले जाओ।

सैम्पलर पूर्वोक्त नियम के अनुसार धीरे धीरे अपने स्टूल से उठ कर खड़ा हुआ। फिर डेबुक को अपनी बग़ल में दबा कर वह चुपचाप डायरेक्टर के कमरे की ओर गया और उसका दरवाज़ा बिना खटखटाये ही भीतर घुस गया।

सैम्पलर को इस प्रकार भीतर घुस आया देख कर डायरेक्टर बोला—अपनी आँखें खोल लो। लाओ, किताब कहाँ है? आओ, चले आओ।

सैम्पलर की पुस्तक के छठे नियम में लिखा था—सारा डर छोड़ दो। पहले अपनी इच्छाओं की याद करो और उन्हें सभी दशा में निर्भय होकर प्रकट कर दो। इस नियम की स्मृति से सैम्पलर, यद्यपि डायरेक्टर की डाँट सुन कर उसका हृदय काँप गया था और पैर लड़खड़ा गये थे, हिम्मत करके धीरे धीरे आगे बढ़ा और डायरेक्टर के सामने जाकर खड़ा हो गया। सैम्पलर का ढङ्ग देख कर डायरेक्टर ने अपने सामने की डेस्क पर हाथ पटक कर कहा—जल्दी करो। तुम क्या सोच रहे हो?

सैम्पलर ने कहा—मुझे एक प्रार्थना करनी है। यह बात उसने डायरेक्टर की कड़ी आँखों से अपनी नर्म आँखें भिड़ा कर कही।

"प्रार्थना, प्रार्थनायें सुनने के लिए मेरे पास समय नहीं है। लाओ, किताब मुझे दो"।

अपनी सारी शक्ति एकत्र कर सैम्पलर ने ज़ोर देकर फिर कहा—मुझे—एक प्रार्थना—करनी—है।

डायरेक्टर ने चकित होकर सैम्पलर को घूर कर देखा। लगभग दस सेकेंड तक वह सैम्पलर को देखता रहा। इसके बाद उसने नर्म स्वर में कहा—

अच्छा, क्या प्रार्थना है? तुम नहीं देखते कि मैं इस समय काम में व्यस्त हूँ?

"मैं वेतन-वृद्धि चाहता हूँ"।

"ऐसी प्रार्थना से तुम मेरे काम में क्यों विघ्न डालते हो"?

मूर्खतापूर्ण हठ से सैम्पलर ने फिर कहा—

मैं—वेतन-वृद्धि चाहता हूँ।

"मेरी समझ में इस समय तुम्हारे होश-हवास दुरुस्त नहीं हैं। लाओ, किताब दो"।

डायरेक्टर को किताब देकर सैम्पलर वहीं चुपचाप खड़ा रहा। डायरेक्टर उसके पन्ने जल्दी जल्दी उलटने लगा। इसके बाद उसने अपना सिर ऊपर उठाकर कहा—

"अभी तक तुम यहीं खड़े हो"।

"मैं वेतन·····

"ऐसी प्रार्थना करने का यह समय नहीं है। इसके सिवा आफ़िस की ऐसी छोटी छोटी बातों से मेरा कोई सम्बन्ध भी नहीं है। हेड-क्लार्क मिस्टर स्नीवेल्स के पास जाओ और उससे अपनी प्रार्थना करो"।

हुज़ूर को धन्यवाद है—यह कह कर सैम्पलर उस कमरे से धीरे धीरे चला आया। बाहर आकर उसने बन्द विधि किवाड़ लगा दिये। उसके इस प्रकार के व्यवहार से अधीर होकर डायरेक्टर को एक बार ज़ोर से फिर क्रुद्ध होना पड़ा। परन्तु उसकी कुछ भी परवा न कर सैम्पलर सीधा हेड-क्लार्क के कमरे के सामने जा खड़ा हुआ। उसने कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मिस्टर बीटेम ने मुझे आपसे यह कहने को कहा है कि आप ही मेरी वेतन-वृद्धि करेंगे।"

"क्या उन्होंने ऐसा कहा है ?"

"हाँ।"

"कितनी"

"मैं एक पौंड प्रति सप्ताह की वृद्धि चाहता हूँ।"

यह सुन कर हेड-क्लार्क को बड़ा आश्चर्य हुआ। पहले के अवसरों की अपेक्षा आज सैम्पलर डायरेक्टर के कमरे में अधिक देर तक ठहरा था। इसके सिवा उसके चेहरे पर वैसी घबराहट भी नहीं प्रकट होती थी जैसी सदा बनी रहती थी। अतएव मिस्टर स्नीवेल्स ने अपने मन में यह निर्णय किया कि उसकी वेतन-वृद्धि अवश्य स्वीकृत होगई है। उसने कहा—

"बहुत अच्छा, मैं किताब में चढ़ा लूँगा।"

सैम्पलर ने कहा—मैं अभी चाहता हूँ। उसे अपनी पुस्तक का छठा नियम याद आ गया। उसमें लिखा था—जो तुम चाहते हो उसे तुरन्त ले लो। अपनी आवश्यकताओं की प्राप्ति में कभी विलम्ब न होने दो।

"ऐं !"

"हाँ, मैं अभी चाहता हूँ।"

हेड-क्लार्क ने उसे एक मिनट तक सन्देह की दृष्टि से देखा। इसके बाद उसने फुटकर ख़र्च के बैग से एक पौंड निकाल कर सैम्पलर के हाथ में रख दिया। सैम्पलर ने उसे लेकर चुपचाप अपने वेस्टकोट की जेब के हवाले किया और वहाँ से चल कर अपनी जगह पर आ बैठा।

मिस्टर स्नीवेल्स ने कहा—वह पौंड इसी सप्ताह के लिए है।

कैसे, यह तो बताने की कृपा कीजिए—

परन्तु इसी बीच में डायरेक्टर के कमरे की घण्टी बजी। मिस्टर स्नीवेल्स उसके कमरे की ओर झपटे।

"स्नीवेल्स, डोयमल से एक बिल का रुपया मिलना है। उसका भुगतान तुरन्त होना चाहिए। मिस्टर पिटर्सन बाहर गया है। इसलिए हमें आज किसी दूसरे आदमी को भेजना चाहिए। सैम्पलर के सम्बन्ध में तुम क्या कहते हो ?"

"हुज़ूर, मैं नहीं जानता। पर मेरी समझ में—"

"तुम क्या समझते हो, यह मैं नहीं जानना चाहता। अच्छा, तुम सैम्पलर को ही मेरे पास भेज दो। याद आ गई। क्या तुमने कल फ़र्गुसन को पत्र लिखा ?"

"नहीं हुज़ूर, मैंने समझा—"

"तुम इस प्रकार समझने-बूझने के लिए वेतन नहीं पाते। देखो, आज उसे पत्र ज़रूर लिखा जाय। मार्टिन के आर्डर के सम्बन्ध में क्या हुआ ?"

"मैं—"

"जाओ और तुरन्त ठीक प्रबन्ध करो। सैम्पलर को मेरे पास भेज दो।"

मिस्टर स्नीवेल्स पसीने पसीने होकर लौटे। इनके बाद सैम्पलर की बारी आई। वह पूर्ववत् डायरेक्टर के कमरे में घुस कर उसके सामने जा खड़ा हुआ।

मिस्टर सैम्पलर, मैं तुमको आज तकाज़े पर भेजना चाहता हूँ। मिस्टर पिटर्सन हाज़िर नहीं हैं। लो, इस काग़ज़ पर पता लिखा है। रुपया की रसीद मिस्टर स्नीवेल्स से लिखा लो। रुपया ज़रूर वसूल होना चाहिए। इस बात को याद रखना। मिस्टर डोयमल टरका देना बहुत जानते हैं। इस बात को भी न भूलना।

सैम्पलर को डोयमल के घर पहुँचने में आधा घण्टा लग गया। उसका घर पेरिस के बाहर एक गाँव की गली में था। वह गाँव उस गली के दोनों ओर आबाद था। प्रायः सभी घर एक ही प्रकार के थे।

सैम्पलर एक मकान के दरवाज़े पर जाकर खड़ा हो गया। उसने घण्टी बजाने के लिए उसका दस्ता ज्योंही अपनी ओर खींचा, त्योंही वह उसके हाथ में चला आया। यह देख कर उसने उसे जैसा का तैसा खोंस दिया और सिर हिला कर अपने मन में कहा कि क्या भेट न होगी। इसके बाद उसने अपने छाते से किवाड़ खटखटाये, पर कोई जवाब न मिला। इस पर वह और अधिक ज़ोर से खटखटाने लगा। इस बार उसे घर के भीतर से किसी के आने की पद-ध्वनि सुनाई पड़ी। वह ठहर गया। एक लड़की ने ज़रा सा दरवाज़ा खोल कर अपना मुँह बाहर किया। जब उसने भले प्रकार बाहर देख-सुन लिया तब वह भीतर से बाहर आकर खड़ी होगई। रूप-रङ्ग से वह घर की नौकरानी मालूम पड़ती थी। उसने कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम क्या चाहते हो ?"

"क्या मिस्टर डोयमल घर में हैं ?"

"नहीं हैं।"

"कब तक आवेंगे ?"

"नहीं जानती"—यह कह कर उस लड़की ने फट से किवाड़ बन्द कर लिया। अपनी किताब के नियम याद करने के लिए सैम्पलर दो-एक पग पीछे हट गया। उसे उनमें एक नियम उपयुक्त समझ पड़ा। वह नियम यह था—जब सफलता नितान्त निराशा-जनक मालूम पड़े तब खूब दत्तचित्त हो जाना चाहिए। इस नियम की शिक्षा से सैम्पलर को बड़ा उत्साह हुआ। अपना सिर उठाकर उसने ज्योंही सामने के कमरे की खिड़की में अपनी निगाह डाली, त्योंही उसे उसके मलमल के पर्दे के पीछे एक पुरुष का सिर दिखाई दिया। वह तुरन्त दरवाज़े के पास जाकर खड़ा हो गया और अपने छाते से फिर दरवाज़े पर ज़ोर ज़ोर से प्रहार करने लगा। इतने में दरवाज़ा फिर खुला और वह लड़की आकर खड़ी होगई। सैम्पलर तन कर खड़ा हो गया। उसने अपनी आँखें उस लड़की के चेहरे पर गाड़ कर कहा—

"जाओ, अपने मालिक से कहो कि एक आदमी कर्ज़ अदा करना चाहता है।"

भीतर से आवाज़ आई—मेरी, उसे आने दो।

"आइए, भीतर आइए। यहाँ हैं।"

वह लड़की सैम्पलर को एक छोटे कमरे में पहुँचा आई। वहाँ एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति आराम-कुर्सी पर बैठा था। उसके मुँह के एक ओर मिट्टी का एक गन्दा पाइप लटक रहा था। उसने कहा—मेरी, जाओ और मांस ले आओ। अच्छा, क्या आप कोई बिल चुकाने आये हैं ?

"मैं बिल चुकाने नहीं आया हूँ, किन्तु तुमसे बिल का रुपया लेने आया हूँ।"

"तुमने अभी कहा है कि एक आदमी बिल अदा करना चाहता है।"

"वह तुम्हीं हो जिसे १३० पौंड १७ शिलिङ्ग और १० पेंस मेसर्स बिटेम, हारडेग कम्पनी को अदा करना है।"

"सुनो बाबू। तुम भूलते हो। मुझे ऐसा कोई बिल नहीं अदा करना है।"

"तुम तो अभी अदा करोगे।"

"मैं नहीं अदा करूँगा।"

सैम्पलर अपना सा मुँह लेकर रह गया। अपने मन में उसने एक एक करके अपनी पुस्तक के सभी नियमों का स्मरण किया, पर एक भी अवसर के उपयुक्त न समझ पड़ा। हाँ, एक नियम कुछ जँचा। वह इस प्रकार था—अपनी ख़ास इच्छाओं को पहले जान लो और उन्हें सभी अवस्थाओं में ज़ोर देकर कार्य में परिणत करो। परन्तु इस बात का निश्चय वह न कर सका कि मैं अपने विपक्षी से कैसे मोर्चा ले सकूँगा। कहाँ मैं पाँच फ़ुट का ठिगना आदमी, कहाँ वह मोटा ताज़ा धन्धूसर। परन्तु उसने दत्त-चित्त होकर जुट जाने का ही निश्चय किया। अतएव क्रोध से अपनी भौंहें टेढ़ी कर वह कड़ी दृष्टि से डोयमल की ओर देखने लगा। यह देख कर डोयमल को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा—

"अरे उल्लू, इस प्रकार क्यों ताकता है। भाग जा, नहीं तो निकाल बाहर करूँगा।"

"रुपया—अदा—करो।"

डोयमल क्रोध में आकर अपनी कुर्सी से उठा। सैम्पलर घबरा कर इधर-उधर ताकने लगा। उसके पास ही एक डेस्क रक्खी थी। उसका एक ख़ाना खुला था, जिसमें एक रिवाल्वर रक्खा था। 'उन्हें सभी अवस्थाओं में ज़ोर देकर कार्य में परिणत करो' याद ही था, अतएव उसने लपक कर रिवाल्वर उठा लिया और उसे डोयमल की ओर सीधा कर दिया। डोयमल ने चिल्ला कर कहा—अरे मूर्ख, यह क्या करता है ? वह भरा हुआ है। अगर तू उसे इस प्रकार हिलावेगा तो वह दग जायगा।

उत्तेजना के वश सैम्पलर काँप रहा था—उसने एकाग्र होकर कहा—तुम रुपया अदा कर दो, नहीं तो मैं तुम्हें गोली मार दूँगा।

"दया करके उसे चुपचाप रख दो। यह जोखिम का काम है।"

सैम्पलर ने कहा—रुपया अदा करो।

डोयमल अपने विपक्षी के ऊपर टूट पड़ने का विचार ही करता था कि संयोगवश रिवाल्वर का घोड़ा गिर गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और गोली दग गई । पर वह डोयमल के सिर के ऊपर से निकल कर सामने दीवार पर जा लगी ।

डोयमल ने भय से चिल्ला कर कहा—अब न दागना। मैं अभी रुपया देता हूँ ।

"तो लाओ रुपया ।"

"कहता ही हूँ कि मैं अदा करता हूँ । चेक लिखने के लिए डेस्क तक तो जाने दो ।"

डोयमल की ही ओर रिवाल्वर को ताने हुए सैंपलर एक ओर हट गया और स्वप्न में जैसे खड़ा होकर इन्तिज़ार करने लगा ।

डोयमल ने अपने मन में समझा कि आज पागल आदमी से काम पड़ गया । उसने कांपती हुई अँगुलियों से चुपचाप चेक काट दिया । उसने कहा—लो भाई, दया करके अब तो रिवाल्वर रख दो । सैम्पलर ने बिना कुछ कहे-सुने चेक उठा लिया । इसके बाद वह दरवाज़े की ओर खिसका । यह देख कर डोयमल ने कहा—मेरे चेक की रसीद और मेरा रिवाल्वर तो दिये जाओ । इस पर उसने अपना एक हाथ जेब में डाल कर रसीद निकाली और उसे पास की मेज़ पर डाल दिया । उसने कहा—रिवाल्वर मकान के बाहर दूँगा ।

डोयमल उसके पीछे पीछे दरवाज़े के बाहर तक चला आया, पर बुद्धिमानी के साथ कुछ अन्तर पर ही रहा । बाहर आने पर सैम्पलर घूम कर खड़ा हो गया । उसने रिवाल्वर के चारों घरों की गोलियाँ ज़मीन की ओर दाग़ दीं । पहली आवाज़ के होते ही डोयमल उछल कर दरवाज़े के पास जा खड़ा हुआ । जब दूसरी गोली छूटी तब वह भीतर घुस गया और किवाड़ बन्द कर लिये । गोलियों के दाग देने पर सैम्पलर ने रिवाल्वर को दरवाज़े की सीढ़ी के पास फेंक दिया और घूम कर वहाँ से चल पड़ा । जब वह गली गली जा रहा था तब पास के घरों की खिड़कियों से निकले हुए अनेक सिर दिखलाई दे रहे थे । पेरिस की उस देहात के निवासी बहुत अधिक समझदार थे । जब सैम्पलर डोयमल के घर से लगभग सौ गज़ दूर निकल गया तब उसने मुड़ कर देखा । डोयमल अपने दरवाज़े के फ़र्श पर एक हाथ में एक काग़ज़ और दूसरे में वही रिवाल्वर लिये खड़ा था ।

आफ़िस में पहुँच कर सैम्पलर ने डायरेक्टर से सारा हाल कहा । डोयमल से उसने किस प्रकार रुपया वसूल किया, इसका पूरा विवरण उसने डायरेक्टर को सुना दिया । डायरेक्टर ने उसका कथन बड़े चाव से सुना । अन्त में उसने कहा—यद्यपि मैं तुमको सदा इस उपाय के प्रयोग करने की सलाह नहीं देता, तथापि तुम्हारी सफलता के लिए मैं तुमको बधाई देता हूँ । इसके बाद उसने घण्टी दी । स्नीवेल्स के आ जाने पर उसने कहा—मिस्टर स्नीवेल्स, तुम मिस्टर सैम्पलर के वेतन में प्रति सप्ताह एक पौंड की वृद्धि कर दो । कमरे से निकलते समय सैम्पलर ने कहा—अर्थात् दो पौंड प्रति सप्ताह की वृद्धि हुई ।

उस दिन सन्ध्या को घर लौटते समय सैम्पलर ने अपनी किताब के नियमों के काग़ज़ को अपने कोट की ज़ेब में टटोला, पर उसे उस काग़ज़ के स्थान में पूर्वोक्त रसीद मिली । उसने सोचा कि मैं वह काग़ज़ डोयमल को भूल से इस रसीद के बदले में दे आया । इसी से वह अपने दरवाज़े के सामने चकित सा खड़ा दिखाई पड़ा था । ख़ैर, मुझे सारे नियम कण्ठाग्र याद हैं । इस रसीद को मैं उसके पास कल भेज दूँगा ।

जब सैम्पलर घर पहुँचा तब उसकी स्त्री ने चाय के साथ खाने के लिए उसके सामने दो अण्डे रख दिये उसने रुखाई से कहा—तुम आज फिर देर करके आये । तुम्हारी प्रतीक्षा करने से मेरी चाय सदा ख़राब हो जाती है । अब से तुम अपनी चाय का प्रबन्ध स्वयं कर लिया करो ।

सैम्पलर अपनी स्त्री से क्षमा माँगना चाहता था कि उसे अपने नियमों की सुध आ गई । स्त्रियों के सम्बन्ध का उनमें केवल एक ही नियम था । वह इस प्रकार था—स्त्रियों के साथ व्यवहार करते समय तुम अपना सारा ध्यान उनकी इच्छा पर लगा दो और उसे पूर्ण करने को तत्पर हो जाओ । उसने कहा—प्रिये, क्या तुम्हें उस नीली पोशाक की याद है जिसे तुमने बहुत सुन्दर बताया था ?

"तो"

"यदि तुम जल्दी तैयार हो जाओ तो बाज़ार चल कर उसे देखें ।"

"चार्ल्स, देखने से क्या लाभ होगा ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तुम्हारे लिए उसे मोल लेना चाहता हूँ।"

"सचमुच"?

"हाँ, सचमुच।"

"तो प्यारे, जल्दी चाय पीओ। मैं तैयार हूँ।"

पूर्वोक्त प्रोफ़ेसर का यह अन्तिम नियम भी परीक्षा में पूरा उतरा।

ग्रामीण

बिजली की अँगीठी और चूल्हे।

जिस प्रकार बिजली की रोशनी साफ़-सुथरी और स्वास्थ्य-दायक है उसी प्रकार बिजली की आँच भी साफ़ और स्वास्थ्य-दायक होती है। यदि हमारे देश में बिजली का प्रचार काफ़ी हो जाय, जिससे किफ़ायत के साथ लोग अपने मकानों में बिजली के चूल्हे लगा सकें, तो हिन्दू-घरों से चौकेबाज़ी जाती रहे। क्योंकि अन्न के आग से छूने पर ही तो रसोई कच्ची हो जाती है! बिना आग और धुवें के रसोई का तैयार हो जाना हिन्दू-महिलाओं के लिए कैसे सुभीते और आनन्द की बात हो! बिजली के प्रचार से इन्हें आग और धुवें के सामने बैठ कर अपने नेत्रों और श्वास को न ख़र्च करना पड़े और न चूल्हा ही पोतना पड़े। वास्तव में बिजली के चूल्हे का प्रचार हमारे हिन्दू-गृह के लिए बड़े आनन्द की बात होगी।

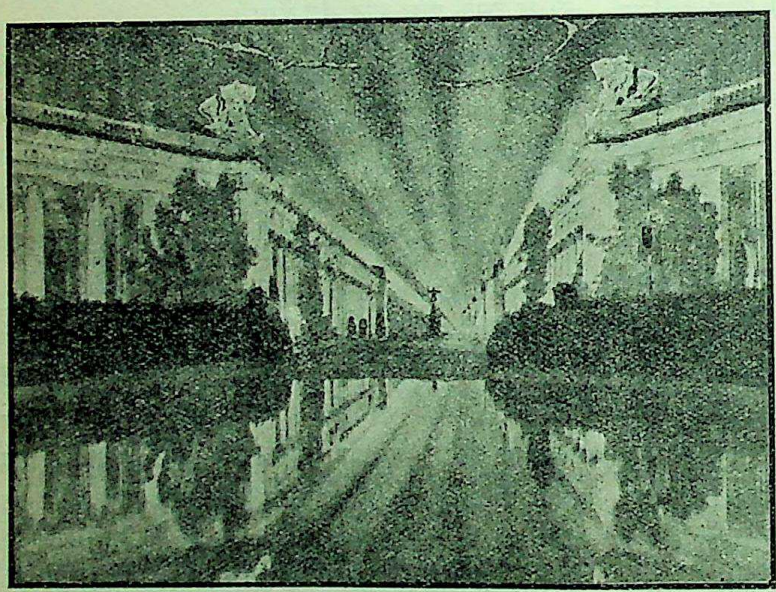

बिजली की रोशनी।

हम देख चुके हैं कि काँच के लैम्प के भीतर तारों के गर्म होने से किस प्रकार रोशनी होने लगती है। यदि हम देर से जलते हुए किसी बिजली के लैम्प को छुवें तो हमारा हाथ गर्म हो जायगा, क्योंकि लैम्प बिजली से गर्म हो जाता है। यदि काँच में न रख किसी धातु की तश्तरी में हम कुछ महीन तारों को अबरक में लपेट कर इस प्रकार रक्खें कि ये तार तश्तरी से न छूने पावें और तारों में बिजली भेजें तो उसमें इतनी गर्मी उत्पन्न होवेगी और तश्तरी की ऊपर-वाली चद्दर इतनी गर्म हो जायगी कि हम उस पर अन्न रख कर भोजन बना सकते हैं। उन धातु के तारों में अधिक गर्मी पैदा होती है जिनमें बिजली कठिनता से बह सकती है। ताम्बे के तार में बिजली बड़ी आसानी से बह सकती है, इस लिए इसमें गर्मी अधिक नहीं उत्पन्न हो सकती। लोहे या टीन के तार में बड़ी गर्मी पैदा होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त मोटे तार में बिजली अच्छी तरह बह जाती है, क्योंकि बिजली के बहने के लिए मोटे तार में कम रुकावट होती है, किन्तु पतले तार में अधिक रुकावट होने से यह बहुत गर्म हो जाता है। तार अबरक में इसलिए लपेटे रहते हैं कि अबरक गर्मी से जल नहीं सकता और न इसमें बिजली ही बह सकती है।

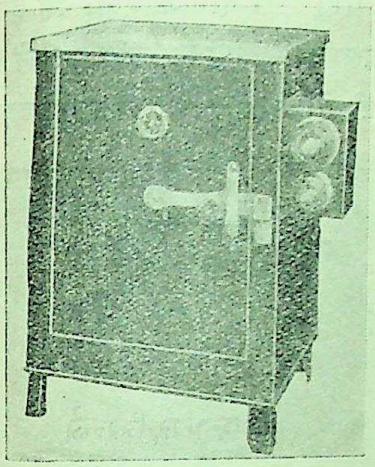

बिजली का चूल्हा।

तारों को इतना गर्म करने के लिए कि चूल्हों के पेंदे पर अन्न रखने से वह पक जाय बहुत बिजली की ज़रूरत पड़ती है, इसलिए जिन देशों में बिजली की क़ीमत कम है और लकड़ी की क़ीमत अधिक, वहाँ भोजन पकाने के लिए बिजली का बहुत व्यवहार किया जाता है। हमारे देश में बिजली महँगी है और लकड़ी सस्ती। इससे हमारे ग़रीब

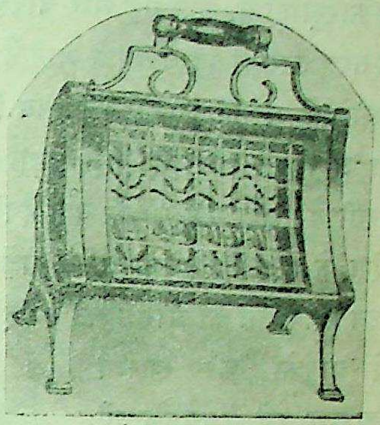

बिजली की अँगीठी।

देश के उन नगरों के निवासी भी भोजन पकाने में बिजली का व्यवहार नहीं कर सकते, जहाँ बिजली लगी हुई है। इसके सिवा विदेशों में बिजली के सारे औज़ार बनने के कारण बिजली के चूल्हों की क़ीमत इतनी अधिक है कि साधारण मनुष्य इन पर इतना रुपया नहीं ख़र्च कर सकता। किन्तु अमरीका और योरप के देशों में, जहाँ बिजली का दाम कम है, बिजली के चूल्हे बहुत अधिकता से देखे जाते हैं।

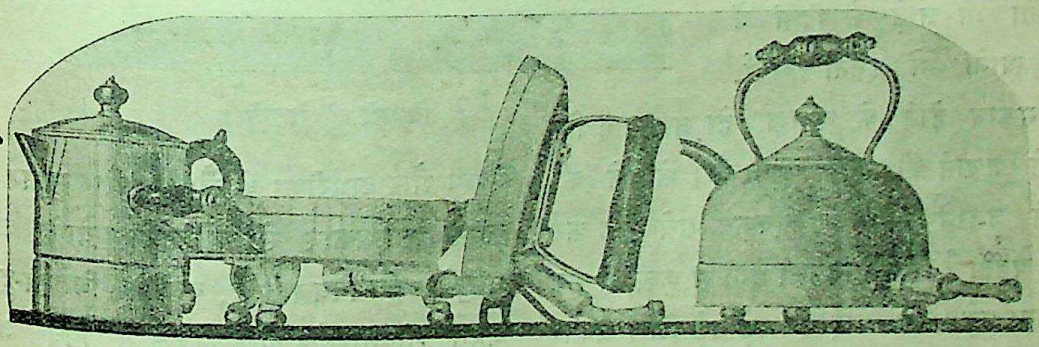

बिजली के बर्तन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका में अन्न के बहुत से ऐसे कारख़ाने हैं जिनमें अन्न पकाने का तमाम काम बिजली-द्वारा होता है। नियाग्रा के जलप्रपात के समीप एक ऐसा कारख़ाना है, जहाँ गेहूँ और चावल पका कर उनके तरह तरह के पदार्थ बनाये जाते हैं। इस बड़े कारख़ाने में पकाने का समस्त काम बिजली से लिया जाता है, जिससे चीज़ें बड़ी साफ़-सुथरी बनती हैं। ज़रा समझने की बात है कि यदि हमारे देश के हलवाई बिजली-द्वारा चीज़ें बनाने लगें तो उन हलवाइयों का और उनकी बनाई मिठाई खानेवाले ग्राहकों का स्वास्थ्य कितना अच्छा रहे, क्योंकि धुएँ का यहाँ नाम-निशान भी नहीं रहता।

इन चूल्हों के अतिरिक्त सर्द देशों में बिजली से तापने के लिए अँगीठी का काम लिया जाता है। हमारे देश में अँगीठी की उतनी ज़रूरत नहीं पड़ती जितनी योरप और अमरीका के देशों में पड़ती है। तो भी जाड़े के दिनों में बहुत स्थानों में इतनी सर्दी, खुले मकान होने के कारण, हो जाती है कि अँगीठी जलाने की ज़रूरत पड़ती है। कोयले की अँगीठी जलाने में कितनी दिक्क़त सवेरे उठ कर उठानी पड़ती है, किन्तु बिजली होने से कुछ भी कष्ट न उठाना पड़े। चारपाई पर पड़े पड़े जिस प्रकार एक बटन दबाने से रोशनी होने लगती है, उसी प्रकार बटन दबाने से अँगीठी भी खूब गर्म होने लगे।

अँगीठी और चूल्हे के अतिरिक्त बिजली का व्यवहार सुनार चाँदी और सोना इत्यादि धातु गलाने के काम में खूब लाने लगे हैं। आर्कलैम्प के सम्बन्ध में देखा जा चुका है कि जब कोयले की दो क़लमों में बिजली डाल कर उन्हें एक दूसरे के निकट ले आते हैं तब बड़ी गर्मी पैदा होती है, जिससे रोशनी होने लगती है। यदि इन क़लमों के सिरों के चारों ओर कोई धातु रख दी जाय तो वह इस गर्मी से फ़ौरन पिघल जा सकती है, यदि कोयले की क़लमें काफ़ी मोटी हों और काफ़ी बिजली डाली जाय।

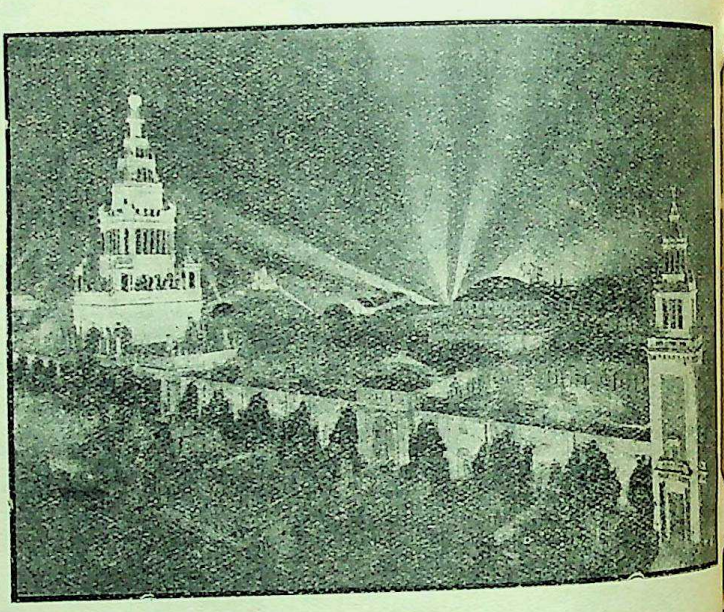

बिजली की रोशनी।

योरप और अमरीका के जौहरी और सुनार अधिकतर इसी प्रकार सोना, चाँदी इत्यादि बहुमूल्य धातुओं को पिघलाते हैं, क्योंकि बिजली-द्वारा वे बहुत शीघ्रतापूर्वक और सहज में पिघल जाती हैं और राख न होने से किसी प्रकार भी कुछ खो जाने का डर नहीं रहता।

इसके अतिरिक्त बड़े बड़े लोहे और अन्य धातु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारख़ानों में इन धातुओं के गलाने का काम भी बिजली से लिया जाता है। अभी तक कारख़ानों में लोहा मिश्रित अवस्था में गला कर गैस-द्वारा साफ़ किया जाता था, किन्तु अब अमरीका में बिजली-द्वारा लोहा इत्यादि गला कर साफ़ किया जाता है; क्योंकि बिजली-द्वारा काम अच्छा और सुथरा होता है और भट्ठियों में काम करनेवालों का स्वास्थ्य नहीं बिगड़ने पाता। भारतवर्ष में पहले लोहे के बड़े कारख़ाने में भी, जो बङ्गाल के साक्ची नामक स्थान में सर दुराबजी ताता इत्यादि ने खोला है, लोहा गलाने इत्यादि के बहुत से काम बिजली से लिये जाते हैं।

अलुमिनम धातु मिट्टी से साफ़ कर निकाली जाती है। इसके मिट्टी से निकालने और साफ़ करने का काम बिजली-द्वारा ही किया जाता है, क्योंकि बिजली में एक यह गुण है कि मिट्टी से मिली हुई अलुमिनम को पिघलाते समय बिजली धातु को साफ़ भी करती जाती है, जिससे ख़र्च बहुत कम बैठता है।

अलुमिनम को बिजली-द्वारा ख़ूब गर्म करने से लाल नामक रत्न बनाया जाता है।

रसायन-वेत्ता बिजली-द्वारा कोयले से हीरा बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। वास्तव में कोयला और हीरा रासायनिक दृष्टि से एक ही वस्तु है और यदि कोयले के टुकड़े ख़ूब अधिक गर्म किये जायँ तो वे हीरे बन जाते हैं। किन्तु हीरा बनाने के लिए इतनी अधिक गर्मी केवल बिजली ही उत्पन्न कर सकती है।

कोयले के टुकड़ों का हीरे बनाने में बड़ी सफलता भी हुई है। सोना इत्यादि धातु गलानेवाले सुनार प्याले में थोड़ा लोहा रख उसमें बिजली डाल उसे गर्म करते हैं। जब लोहा गल कर पिघल जाता है तब उसमें साधारण कोयले के छोटे छोटे टुकड़े डाल देते हैं और फिर उसमें बड़ी ही तेज़ बिजली डाल कर बड़ी गर्मी पैदा करते हैं, जिससे लोहे के साथ कोयले के टुकड़े भी पिघल जाते हैं। फिर इस प्याले को एक बारगी शीशे से भरे हुए एक कटोरे में डाल कर ठण्डा कर लेते हैं; फिर उसमें तेज़ाब डालने से लोहा तेज़ाब में मिल जाता है और कोयले के टुकड़े हीरे के छोटे छोटे टुकड़े बन जाते हैं। इस प्रकार कोयले से हीरा बनाने में बहुत दाम ख़र्च हो जाता है, जिससे वह उतना ही महँगा बैठता है जितना सच्चा हीरा होता है; इसलिए इस रासायनिक रीति से हीरा बहुतायत से नहीं बनाया जाता। जब कोई नया सस्ता तरीक़ा निकल जायगा तब कोयले से हीरा बहुतायत से बिजली-द्वारा बनने लगेगा।

जगन्नाथ खन्ना

सरलता।

(१)

सीधे को पागल कहते हैं यह किसको है ज्ञात नहीं ?
बेड़े जग में रिपु के टेढ़े जन सहते आघात नहीं।
सीधे सरल वृक्ष कटते हैं टेढ़े मेढ़े कभी नहीं,
जग में सम्मानित हो सकते बकरे-मेढ़े कभी नहीं॥

(२)

पूरे सरल शशी को ग्रसता दुष्ट राहु निःशङ्क सदा,
निष्कलङ्क निःशङ्क वही विधु रहता होकर वङ्क सदा।
इसी लिए विमुखों के सम्मुख बनना चहिए सरल नहीं,
जान बूझ कर अपने हाथों पीना चहिए गरल नहीं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३)

टेढ़े अङ्कुश के वश में है करी बली भी पड़ा हुआ,
सरल सबल के साथ निबल भी प्रतिपल रहता कड़ा हुआ।
टेढ़ापन है शक्तिमान का लक्षण कुछ सन्देह नहीं,
टेढ़ी लपट अग्नि दिखलाती, दिखला सकती खेह नहीं॥

(४)

टेढ़ा लख कर क्रूर सर्प को यह जग दूध पिलाता है,
यदपि समय पाकर निज पालक को भी वह दुखदाता है।
किन्तु नकुल से कभी स्वप्न में कोई करता बात नहीं,
उलटे जग से सीधे बन कर सुख मिलता है तात! नहीं॥

(५)

नक्र वक्र बन करके कैसा जल-विहार नित करता है?
बन कर सरल मत्स्य-दल-वधिकों के हाथों नित मरता है।
इसी लिए दुर्जन से सज्जन भी बन जाते क्रूर स्वयम्,
क्योंकि क्रूर जन क्रूरों से ही डर कर रहते दूर स्वयम्॥

(६)

जैसे को तैसा बन जाना है कलियुग की नीति यही,
प्रीति नहीं है कहीं आज-कल, कहीं सनातन रीति नहीं।
वक्र नखायुध जिस पशु को है उसे भक्ष्य क्यों कहा नहीं?
सत्य मानिए सरल जनों के लिए सुखद जग रहा नहीं॥

(७)

कभी स्वप्न में भी क्या शुक से हुई किसी की हानि कहीं?
फिर क्यों पञ्जरस्थ बन्दी बन रहता है आमरण वही।
मत्स्य-वधिक बक भक्त बने हैं रहते हैं स्वच्छन्द सदा,
हुआ सिद्ध सिद्धान्त, सरल ही सहते हैं दुख द्वन्द सदा॥

(८)

यदपि वक्रता सदा सुखद है निन्दित क्यों है तदपि वही?
या यों कहिए सरल-सुजनता कहीं जगत में रही नहीं।
बनते जो न सरल तो कैसे पादाघात विष्णु सहते?
बड़ी भूल है, कभी न बनिए जग में सरल शक्ति रहते॥

(९)

सत्ययुगी अब बात नहीं है राजा है कलिकाल हुआ,
हैं बेहाल सभी, अब जीवन भी है कठिन कराल हुआ।
उलटी-पलटी नीति चली है रहें सुजन फिर भी कैसे?
बिना वक्र के बने कभी क्यों हो सकता मन स्थिर कैसे?॥

(१०)

कल करवाल वक्र हो करके खल-दल दलित करे क्षण में,
वक्र धनुष के बिना सरुप नर विजय करे कैसे रण में?
कुटिल काल ही प्रलय-काल का दृश्य दिखाने आता है।
विरला जन भी तरल कीर्ति क्या सरल बने पर पाता है?

रामचरित उपाध्याय

शिक्षा।

रात के दस बज चुके हैं। शाम से ज़ोर की वृष्टि होते रहने के कारण वायु शीतल होगया है। दिन भर की गर्मी के पश्चात् रात की यह शीतलता बड़ी सुखदायक प्रतीत हो रही है। ऐसे ही समय में एक सुन्दर बाग़ की कोठी में छः नवयुवक बैठे हुए ताश खेल रहे हैं। कोठी में बिजली का शुभ्र प्रकाश फैला हुआ है। भूमि पर श्वेत चादर और चादर पर एक ओर तीन बड़े ऊनी क़ालीन बिछे हुए हैं। क़ालीनों पर तीन गाव-तकिये रक्खे हुए हैं। इन्हीं गाव-तकियों के सहारे सब लोग बैठे हुए हैं।

कुछ देर तक खेलते रहने के पश्चात् एक युवक ने ताश फेंक कर कहा—यार, अब ताशों में जी नहीं लगता। हटाओ इन्हें।

एक दूसरे युवक ने एक अन्य युवक से कहा—क्यों यार मोहनलाल, कहीं चकमा तो नहीं देते हो, अभी तक तो कोई आया-वाया नहीं।

मोहनलाल बोला—चकमा-वकमा नहीं, सच बात है। देखो, अभी तुम्हारे सामने पुछाये देता हूँ। घसीटे!

मोहन के पुकारते ही एक व्यक्ति, जो देखने में नौकर जान पड़ता था, सामने आकर बोला—हुज़ूर।

मोहन—क्यों भई, वह आई नहीं? क्या बात है?

घसीटे—हुज़ूर, अब आती गी। मैं तो उन्हें साढ़े नौ बजे का टेम दे आया था।

मोहन—अब तो सवा दस बज चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घसीटे—हाँ, तो अब आती ही होंगी। कपड़े-वपड़े पहनने, सिङ्गार करने में देर लग ही जाती है।

एक अन्य युवक मुसकरा कर बोला—तो भाइयो, ज़रा अपने अपने दिल थाम कर बैठो। क्यों घसीटे, है न ठीक।

घसीटे शिष्टता-पूर्वक हँसते हुए बोला—अजी हुज़ूर, मैं ग़रीब आदमी ये बातें क्या जानूँ; पर हाँ, चीज़ तो ऐसी ही है।

चौथा युवक—ओहो! यदि यह बात है तो हम लोग सारी रात प्रतीक्षा करने को तैयार हैं।

उसी समय गाड़ी के पहियों की घरघराहट सुनाई पड़ी। "लीजिए आगई" कहता हुआ घसीटे शीघ्रता-पूर्वक वहाँ से चला गया।

कुछ क्षणों में घरघराहट का शब्द अत्यन्त निकट आकर बन्द होगया—गाड़ी के द्वार के खुलने का शब्द सुनाई पड़ा—और पश्चात् एक छमाका।

छमाके को सुनते ही एक युवक ने यह शेर पढ़ा—

ख़लख़ाले पाये यार से आती है यह सदा,
मुर्दों से लीजिए वह जो ज़िन्दों का काम है।

पाँचवाँ युवक हँस कर बोला—चहकने लगे, अभी तो मरे हुए पड़े थे।

उस युवक ने, जिसने शेर पढ़ा था, तुरन्त उत्तर दिया—मसीहा आ पहुँचे अब भी मुर्दे ज़िन्दा न होंगे तो कब होंगे?

अन्य सब युवक बोल उठे—भई ख़ूब कही—बहुत सुन्दर। इसमें सन्देह नहीं—घनश्याम बड़ा हाज़िर-जवाब है।

ठीक उसी समय एक वेश्या, जो युवती तथा सुन्दरी थी, कमरे के भीतर आई। युवती श्वेत वस्त्र पहने थी। वस्त्रों से ख़स के इत्र की सुगन्धि आ रही थी।

वेश्या ने पहले सबको झुक कर 'आदाब अर्ज़' किया। तत्पश्चात् जूते उतार कर नवयुवकों के सामने कुछ दूर पर सिमट कर बैठ गई। थोड़ी देर बाद पाँच आदमी कमरे के भीतर आये, जिनमें से दो सारङ्गी, एक तबला, एक ढ़ग्गालदान तथा एक कुछ अन्य चीज़ लिये हुए था। वेश्या ने एक से पूछा—पानदान उठा लिया था?

वह आदमी—ऐं! पानदान, पानदान तो उठाना भूल ही गया।

इतना कह कर वह आदमी शीघ्रतापूर्वक बाहर चला गया और कुछ क्षण में पानदान लेकर फिर भीतर आ गया।

सब नवयुवक आँखें फाड़ फाड़ कर वेश्या की ओर देख रहे थे। उनका देखना उसी प्रकार का था जिस प्रकार कोई सुन्दर चीज़, जो प्रायः दूर से देखने को मिलती हो, यदि कभी पास से देखने को मिल जाय तो आदमी उसके देखने में सारी शक्तियाँ लगा देता है।

एक युवक ने पूछा—आपका नाम?

वेश्या ने कहा—मुझे चन्द्रभागा कहते हैं।

दूसरे युवक ने पूछा—आप कहाँ की रहनेवाली हैं?

वेश्या—इसी ज़िले की।

तीसरा—ओहो! तो आप बेड़िन हैं?

वेश्या—जी हाँ।

मोहन—आप लोग निरर्थक ये बातें पूछ रहे हैं। मैं तो ये सब पहले ही आप लोगों को बता चुका हूँ।

घनश्याम—इनके मुँह से ये बातें सुनने में जो आनन्द है वह आपके मुँह से सुनने में कहाँ?

चन्द्रभागा ने एक वक्रदृष्टि डाल कर मुसकुराते हुए पूछा—क्यों साहब, मेरे मुँह में ऐसी कौन सी बात है?

घनश्याम—इसका उत्तर आपको मोहनलाल दे सकते हैं।

मोहनलाल ने कुछ झेंप कर मुसकुराते हुए कहा—बड़े दुष्ट हो तुम।

उधर वेश्या ने भी कुछ लजा कर मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

थोड़ी देर में साज़िन्दों ने अपने साज़ मिला कर ठीक किये और गाना आरम्भ हुआ।

(२)

लगभग एक बजे तक गाना होता रहा। बीच बीच में हँसी-मज़ाक भी होता जाता था। एक बजने पर गाना बन्द करवा दिया गया। मोहनलाल के सब मित्र अपनी अपनी बाइसिकलों पर चढ़ कर अपने अपने घर चलते बने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबके चले जाने पर चन्द्रभागा ने मोहनलाल से कहा—मुझे भी आज्ञा दीजिए।

मोहनलाल—तुम इतनी रात को कहाँ जाओगी? यहीं ठहरो, सवेरे चली जाना।

चन्द्रभागा—गाड़ी तो खड़ी है।

मोहनलाल—तो उसमें तुम्हारे साज़िन्दे चले जायँगे, तुम सवेरे चली जाना।

चन्द्रभागा—मुझे जाने ही दीजिए। अम्मा राह देखती होंगी।

मोहनलाल—देखने दो, मैं नहीं जाने दूँगा। मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं।

चन्द्रभागा—क्या बातें करनी हैं?

मोहनलाल—ओहो, इस समय तो बड़ी भोली बनी हुई हैं, जानो कुछ जानती ही नहीं।

चन्द्रभागा ने हँस कर कहा—मैं तो नहीं जानती। ख़ैर, जैसा आप कहेंगे करना ही पड़ेगा।

यह कह कर चन्द्रभागा ने अपने साज़िन्दों से कहा—तुम लोग सब जाओ, ख़ाली रामू को यहाँ छोड़ जाओ। अम्मा से कह देना कि बाबूजी नहीं माने, रोक लिया, सवेरे आऊँगी।

साज़िन्दों के चले जाने पर मोहनलाल ने कहा—चलो, दूसरे कमरे में चल कर बैठें।

दोनों एक दूसरे कमरे में, जो छोटा था और ख़ूब सजा हुआ था, जाकर बैठे।

मोहनलाल कुछ क्षण तक चुप बैठे कुछ सोचते रहे। तत्पश्चात् बोले—भागे, इस प्रकार कब तक चलेगा? मेरी बात पर तुमने कुछ विचार किया?

भागा सिर झुकाये बैठी थी। उसने कुछ उत्तर न दिया।

मोहनलाल ने भागा की ठुड्ढी पकड़ कर उसका मुँह ऊपर को उठाया और बोले—मैंने जो कहा वह सुना?

भागा ने कहा—हाँ, सुना।

मोहन—फिर उसका उत्तर?

भागा—क्या उत्तर दूँ?

मोहन—जो ठीक समझो।

भागा—जो बात आप चाहते हैं वह बड़ी कठिन है।

मोहन—कुछ कठिन नहीं, विशेषतः ऐसी दशा में जब तुम भी मुझसे प्रेम करती हो। तुम चाहे अपने मुँह से न कहो, पर मुझे विश्वास है कि तुम मुझसे प्रेम करती हो।

भागा कुछ क्षण तक स्थिर दृष्टि से मोहनलाल की ओर देखती रही। तत्पश्चात् एक दबी हुई दीर्घ निश्वास लेकर बोली—मेरे प्रेम पर विश्वास कर लेने के पहले आप एक बार यह सोच लीजिए कि मैं वेश्या हूँ।

मोहनलाल ने कहा—भागा, तुम मुझे भुलाने की चेष्टा मत करो। मेरी इतनी उम्र वेश्याओं के ही साथ बीती है। तुम्हारी यह चेतावनी ही यह बात कह रही है कि तुम्हें मुझसे प्रेम है।

भागा—परन्तु लोग तो यह कहते हैं कि वेश्यायें प्रेम करना नहीं जानतीं।

मोहनलाल—हाँ, यह बात बहुत कुछ ठीक है, परन्तु तुम पर मेरा विश्वास है।

भागा—परन्तु वेश्याओं से प्रेम करनेवालों पर वेश्याओं को कम विश्वास होता है।

मोहन—ओहो, यह बात है! तो यह कहो, तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं।

भागा—मैं तो एक साधारण बात कहती हूँ। आपका नाम तो लेती नहीं।

मोहन—नाम न लो तब भी सङ्केत मेरी ही ओर है। ख़ैर, यदि तुम्हारे हृदय में यह धारणा है तो उसे दूर करना ही पड़ेगा। अच्छा बताओ, किस प्रकार मुझ पर तुम्हें विश्वास हो सकता है?

भागा—आप इन बातों को जाने ही दीजिए।

मोहन—यह तो होही नहीं सकता। चाहे मेरा सर्वस्व चला जाय, परन्तु मैं तुम्हें अपना बनाये बिना न छोड़ूँगा।

भागा ने पुनः एक दीर्घनिश्वास लिया और बोली—वेश्या के लिए यह बात बड़ी कठिन है कि वह किसी एक पुरुष की होकर रहे।

मोहन—जहाँ प्रेम होता है, वहाँ यह बात कुछ भी कठिन नहीं।

भागा—प्रेम! प्रेम कहाँ है? किसमें है? मुझे तो आज तक एक भी पुरुष ऐसा नहीं मिला जो प्रेम के जानने का दावा कर सकता हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहन—एक मैं ही तुम्हारे पास बैठा हूँ।

भागा मुसकराई। उस मुसकराहट में अविश्वास था तथा मोहन की प्रेम-अनभिज्ञता के प्रति दया थी। भागा ने कहा—मोहन बाबू, यह बात याद रखिए, बनावटी प्रेम दिखाने में आप वेश्या से अधिक चालाक नहीं हैं।

मोहनलाल अत्यन्त गम्भीर होकर बोले—भागे, तुम मेरे प्रेम की हँसी उड़ाती हो, यह बात ठीक नहीं। मैं तुम्हें दिखा दूँगा कि मैं तुमसे कितना प्रेम रखता हूँ।

भागा—जितने पुरुष हम लोगों के पास आते हैं सभी हमसे प्रेम रखते हैं, प्रेम न रक्खें तो आवें क्यों?

मोहन—यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि सभी प्रेम रखते हैं?

भागा—कम से कम वे लोग ऐसा ही कहते हैं।

मोहन—कहने से क्या होता है, लोग तो कहा ही करते हैं।

भागा—आप भी तो कहही रहे हैं।

मोहनलाल कुछ लज्जित होकर बोले—तुम तो वकीलों की तरह बहस करती हो। और लोगों के कहने में और मेरे कहने में अन्तर है, और इस अन्तर को तुम भी समझती हो।

भागा—बाबूजी, आप पढ़े-लिखे आदमी हैं—अँगरेज़ी, फ़ारसी और न जाने क्या क्या पढ़े हैं। मैं थोड़ी उर्दू और हिन्दी जानती हूँ। मैं आपसे बहस में जीत नहीं सकती। सौ बात की एक बात यह है कि जो बात आप चाहते हैं वह मेरे बस की नहीं। मैं मान भी लूँ तो अम्मा यह बात कभी नहीं मानेंगी।

मोहन—जब तुम मानलोगी तब अम्मा को झखमार कर मानना पड़ेगा।

भागा—मैं अम्मा को नाराज़ करके कोई काम नहीं कर सकती।

मोहन—मुझे यह नहीं मालूम था कि वेश्याओं में भी मातृ-भक्ति है।

भागा के हृदय पर इन शब्दों से चोट लगी। वह कुछ क्षण तक अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से मोहनलाल की ओर देखती रही। तत्पश्चात् बोली—वेश्याओं में तो कुछ भी नहीं, न प्रेम है, न दया है, न सतीत्व है, न मातृ-भक्ति है। फिर भी वे लोग वेश्याओं के आगे नाक रगड़ते हैं जो अपने हृदय में इन सब बातों के रखने का दावा करते हैं।

मोहन—नाक रगड़ते हैं केवल अपनी काम-वासना पूर्ण करने के लिए।

वेश्या—तो मैं ऐसे लोगों में और पशुओं में कोई भेद नहीं समझती।

मोहन—निस्सन्देह ऐसे लोग पशु ही हैं।

भागा—आप भी तो अभी तक यही करते रहे।

मोहन घबरा कर बोले—कौन मैं? नहीं मैं तो—हाँ, जब करता था तब करता था। परन्तु अब मैंने क़सम खाली है कि केवल काम-वासना पूर्ण करने के लिए मैं किसी वेश्या के यहाँ न जाऊँगा।

भागा—ओहो, तब तो आपने बहुत बड़ा काम किया।

मोहनलाल चन्द्रभागा का हाथ पकड़ कर बोले—और यह सब इस कारण हुआ कि मैं तुमसे प्रेम करने लगा हूँ।

भागा—ओह! फिर वही नाम। मुझे इस नाम से भय मालूम होता है। आपको मालूम नहीं, वेश्या के लिए संसार में यदि कोई दुर्भाग्य की बात है तो वह उसके हृदय में किसी के प्रति प्रेम उत्पन्न होना है। कम से कम हम लोगों में ऐसा ही समझा जाता है। मोहनलाल चुप हो गये।

(३)

मोहनलाल एक रईस के पुत्र हैं। उनके पास यथेष्ट धन तथा सम्पत्ति है। मोहनलाल की माता उसी समय स्वर्गलोक सिधार गई थी जब वे बिलकुल बच्चे थे। २० वर्ष की आयु होते होते उनके पिता का भी स्वर्गवास हो गया। मोहनलाल पिता के सामने ही, १६ वर्ष के वयस से, वेश्याराधन करने लगे थे। उनका विवाह १५ वर्ष के वयस में हुआ था परन्तु तीन ही वर्ष पश्चात् पत्नी का देहान्त हो गया। उनके पिता उनका दूसरा विवाह करने की चिन्ता में ही थे कि अकस्मात् वे भी चल बसे। अब मोहनलाल अकेले रह गये। धन की कमी न थी। अतएव वे ख़ूब खुलकर वेश्याचर्या करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन-चार वर्ष तक मोहनलाल की यही दशा रही। अन्त को वे चन्द्रभागा के घर आने-जाने लगे। चन्द्रभागा उस समय कहीं बाहर से आकर उनके शहर में बसी थी। किन्तु चन्द्रभागा से मिलने पर मोहनलाल को ज्ञात हुआ कि चन्द्रभागा के प्रति उनके हृदय की भावनायें वैसी नहीं हैं जैसी अभी तक अन्य वेश्याओं के प्रति रही हैं। चन्द्रभागा की ओर उनका हृदय अधिक आकर्षित हुआ। ज्यों ज्यों आकर्षण तथा मुग्धता बढ़ती गई, त्यों त्यों मोहनलाल के हृदय में चन्द्रभागा को अपनी बनाने की उत्कट इच्छा उत्पन्न होती गई। उन्होंने चन्द्रभागा को पाँच-छः महीने तक नौकर भी रक्खा, परन्तु इससे भी उनको सन्तोष न हुआ। वे चाहते थे कि चन्द्रभागा बिलकुल उनकी पत्नी के समान होकर रहे। अर्थात् वेश्यावृत्ति छोड़ दे। उनके घर में रहे और उसी प्रकार पर्दे में रहे, जिस प्रकार गृहस्थों की स्त्रियाँ रहती हैं। उनके मित्र उनके इस विचार को उनका पागलपन समझ कर हँसते थे, परन्तु मोहनलाल को इसकी कुछ परवा नहीं थी।

इधर मोहनलाल के हृदय में यह धारणा, केवल धारणा ही नहीं, बरन विश्वास हो गया था कि चन्द्रभागा भी उनसे प्रेम करने लगी है। इस विश्वास से उनकी उक्त इच्छा और भी अधिक प्रबल होगई।

शाम के पाँच बज चुके थे। मोहनलाल अपनी कोठी के बरामदे में बैठे थे। उसी समय उनके मित्र राधाचरण आये। राधाचरण को देखते ही मोहनलाल उठ खड़े हुए और बोले—ओहो, आज कहाँ भूल पड़े?

राधाचरण कुर्सी पर बैठ कर बोले—भूल क्या पड़ा, जी न माना, इससे आज हिम्मत करके चला आया।

मोहनलाल—क्यों, हिम्मत करने की कौन सी बात थी?

राधा—भई तुम्हारे आचरण आज-कल बड़े दूषित हो रहे हैं, इस कारण तुम्हारे पास आते डर मालूम होता है।

मोहनलाल हँस कर बोले—इसलिए कि कहीं तुम्हारे आचरण भी दूषित न हो जायँ?

राधा—अजी यह भय तो मुझे आज तक कभी हुआ ही नहीं। मैं किसी में इतनी क्षमता ही नहीं देखता कि मेरे आचरणों को बिगाड़ दे। डर केवल इस बात का है कि कहीं लोग तुम्हारे पास उठते-बैठते देख कर मुझे भी तुम्हारे जैसा न समझ लें।

मोहनलाल—ओ हो, तो क्या मैं ऐसा पतित हो गया हूँ?

राधा—यह तो तुम्हारा जी ही जानता होगा।

मोहन—ख़ैर, अब मैं आपको यह शुभ समाचार सुना रहा हूँ कि प्रायः मैं अब अपने बुरे आचरण छोड़ चुका हूँ।

राधा—यह कैसे? वेश्याराधन तो अभी तुम्हारा बन्द हुआ नहीं।

मोहन—बन्द ही समझिए।

राधा—अजी राम भजो, यह कहीं बन्द हो सकता है।

मोहन—आप मानिए।

राधा—मानूँ क्या पत्थर। अभी तक तुम उस बेड़िन—क्या नाम है उसका—देखो—भला सा नाम है।

मोहन—चन्द्रभागा।

राधा—हाँ, चन्द्रभागा, अभी तक तुम उसके पीछे पड़े हो।

मोहन—बस, चन्द्रभागा से ही अन्त है।

राधा—इसके क्या अर्थ हैं?

मोहन—मैं उसे घर में डालना चाहता हूँ।

राधा—यह और भी अच्छी सुनाई। मोहनलाल, मुझे तुम्हारी दशा पर बड़ा खेद होता है। तुम मेरे मित्र हो, इसलिए और भी। तुम अपना विवाह क्यों नहीं कर लेते?

मोहन—बस, अब तो भागा के ही साथ विवाह होगा।

राधा—यदि यहाँ तक भी हो जाय और तुम्हारी वेश्याचर्या छूट जाय तो बुरा नहीं, पर मुझे तो विश्वास नहीं कि तुम्हारी आदत छूट जायगी।

मोहन—आप भी क्या बातें करते हैं।

राधा—ईश्वर करे, मेरी धारणा ग़लत हो पर देखना अवश्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोहन—देख लीजिएगा।

थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करके राधाचरण चले गये।

उनके जाते ही मोहनलाल अपनी टेण्डम पर सवार हो कर चन्द्रभागा के घर पहुँचे। मोहनलाल को देखते ही चन्द्रभागा की माता के मत्थे पर बल पड़ गये, परन्तु तुरन्त ही वह मुख पर मुसकराहट लाकर बोली—आइए।

मोहनलाल क़ालीन पर गाव-तकिये के सहारे बैठ गये और बैठते ही इधर-उधर देख कर बोले—भागा कहाँ है?

भागा की माता बोली—ऊपर छत पर है।

मोहनलाल—अच्छा तो मैं ऊपर ही जाता हूँ।

यह कह कर मोहनलाल उठने लगे। भागा की माता उन्हें रोक कर बोली—अभी थोड़ी देर ठहर जाइए।

मोहनलाल—क्यों?

भागा की माता—ऊपर एक साहब तशरीफ़ रखते हैं।

मोहनलाल का मुख रक्तवर्ण हो गया—हूँ कहकर बैठ गये और मूँछों पर ताव देते हुए कुछ सोचने लगे। कुछ देर बाद बोले—अच्छा तो तब तक तुम्हीं से बातें कर लूँ।

भागा की माता—कहिए।

मोहनलाल—मैं भागा से भी कह चुका हूँ और आज तुमसे भी कहता हूँ। असल बात यह है कि मैं भागा को घर बिठाना चाहता हूँ।

भागा की माता अत्यन्त विस्मय प्रकट करके बोली—यह आप क्या कहते हैं?

मोहनलाल—मैं जो कुछ कहता हूँ, सच कहता हूँ।

भागा की माता—हम ग़रीबों के साथ आप ऐसा मज़ाक़ क्यों करते हैं?

मोहन—मज़ाक़ नहीं, मैं सच कहता हूँ।

भागा की माता—ऐसा भला कहीं हो सकता है?

मोहन—क्यों, होने को क्या हुआ?

भागा की माता—आप शरीफ़ आदमी, आप रंडी घर में डालेंगे तो आपको लोग क्या कहेंगे। दूसरे हमारे लिए भी यह बात ठीक नहीं। आप जानते हैं कि हम लोगों की यही कमाई है। भागा चली जायगी तो इस बुढ़ौती में मैं किसके सहारे जिऊँगी? मेरी रोज़ी का ठीकरा तो यही एक लड़की है, आज इसकी कोई छोटी-बड़ी बहन होती तो मैं कहती कि चलो ऐसा भी सही।

मोहन—तुम्हारे गुज़ारे का भी बन्दोबस्त हो जायगा।

भागा की माता—हुज़ूर आप समझदार आदमी हैं। पराये भरोसे से अपना भरोसा अच्छा होता है।

मोहन—तो यह कहो, तुम्हें मुझ पर एतबार नहीं।

भागा की माता—हुज़ूर आप भी क्या बातें करते हैं। आपके ग़ुलामों का एतबार करती हूँ, पर बात इतनी है कि अपनी अपनी समाई की बात है।

इसके पश्चात् बात टालने के लिए भागा की माता बोली—रामू, ज़रा ऊपर से पानदान तो उठा ला, बाबू साहब के लिए पान बनाऊँ। भागा से कह देना कि बाबू मोहनलाल साहब तशरीफ़ लाये हैं।

थोड़ी देर बाद रामलाल पानदान ले आया और मोहनलाल से बोला—चलिए आपको ऊपर ही बुलाया है।

भागा की माता—ऊपर जो साहब थे वह चले गये?

रामू—हाँ, चले गये। दूसरे ज़ीने से अभी गये हैं।

मोहनलाल—अच्छा, तो ऊपर जाता हूँ। पान वहीं भेज देना।

मोहनलाल ऊपर पहुँचे। छत खुली हुई थी। छत के चारों ओर इतनी ऊँची दीवार थी कि बैठे हुए आदमी को दूसरी छतों के आदमी नहीं देख सकते थे।

भागा पलँग पर बैठी थी। पलँग के पास तीन चार कुर्सियाँ पड़ी थीं। मोहनलाल जाते ही एक कुर्सी पर बैठ गये।

मोहनलाल को देखते ही भागा के मुख पर उदासी छा गई। धीमे स्वर में बोली—कहिए, आपके मिज़ाज तो अच्छे हैं?

मोहनलाल—मिज़ाज का अच्छा होना तो तुम्हारे हाथों में है।

भागा का मुख विषादपूर्ण हो गया। वह बोली—आप बड़े आदमी, मैं एक ग़रीब रंडी, मेरे हाथों में आपका मिज़ाज कैसे हो सकता है?

मोहनलाल—भागे, जब तुम्हारे लिए मैं रंडी का शब्द सुनता हूँ तब मेरा ख़ून उबलने लगता है। भला तुम रंडी होने के योग्य थी। तुम तो इस योग्य थीं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी शरीफ़ और सुन्दर युवक की हृदयेश्वरी और जीवनसङ्गिनी बनतीं। उसका घर तुम्हारी चिर उपस्थिति में देदीप्यमान रहता। यह घृणित काम तुम्हारे जैसी अप्सरा-रूपिणी स्त्री के योग्य कदापि नहीं।

भागा कुछ क्षण तक सिर झुकाये सोचती रही, तत्पश्चात् उसने सिर उठा कर एक ठण्डी साँस ली और बोली—आपका कहना ठीक है, पर उपाय क्या है? भगवान् ने जिस दशा में रक्खा है उसमें रहना ही पड़ेगा।

मोहनलाल—उपाय तो तुम्हारे हाथ है, पर तुम उससे काम ही नहीं लेतीं।

भागा—काम लेने पाऊँ तब तो; अम्मा के आगे मेरी एक नहीं चल सकती।

मोहनलाल—तुम्हारी अम्मा तो अपना मतलब देखती हैं। उन्हें तुम्हारे सुख-दुख से क्या मतलब?

उसी समय रामूँ एक तश्तरी में पान लाया और भागा के सामने रख कर चला गया।

भागा—लीजिए, पान खाइए।

मोहनलाल ने दो बीड़े उठा कर खाये और एक इलायची उठा कर उसे छीलते हुए बोले—भागा यह समझ लो, मैं तुम्हें अपना और केवल अपना बनाये बिना चैन न लूँगा, चाहे इस चेष्टा में मेरी समस्त आयु समाप्त हो जाय।

भागा की आँखों से अश्रु-धारा फूट निकली। आज तक उसने अपने प्रति इतना प्रेम, इतनी सहानुभूति, इतनी लगन, किसी पुरुष में नहीं पाई थी।

मोहनलाल ने अवसर शुभ देख कर कहा—भला भागा, सच सच बताओ, क्या तुम्हें इस व्यवसाय से कभी घृणा उत्पन्न नहीं होती।

भागा आँसू पोंछ कर बोली—घृणा! केवल घृणा ही नहीं, कभी कभी तो यही जी चाहता है कि ऐसे जीवन से तो आत्म-हत्या कर लेना अच्छा है। जिन पुरुषों से साधारणतया बात करने को भी जी नहीं चाहता, जिन पुरुषों को देख कर मन में ग्लानि उत्पन्न होती है, प्रायः उन्हीं पुरुषों को केवल रुपये के लिए गले लगाना पड़ता है। उस समय यही जी चाहता है कि आत्म-हत्या कर लूँ। जिस समय चुपचाप बैठने को चाहता है, जिस समय इच्छा होती है कि आराम पैर फैला कर सोऊँ, उस समय केवल रुपये के रात भर जागना पड़ता है, गाना पड़ता है, नाचना पड़ता है। जब हँसने को जी चाहता है तब रोना पड़ता है। जब रोने को जी चाहता है तब हँसना पड़ता है। सब काम इच्छा के विरुद्ध करने पड़ते हैं और यह केवल अच्छा खाने और अच्छा पहनने के लिए। यह सब न करें तो क्या करें?

मोहन—यदि अच्छे से अच्छा खाना और मिले और अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य न पड़े तो कैसा?

भागा—यह तो हमारे लिए स्वर्ग है। इसका तो हम लोग रात-दिन देखा करती हैं, पर मिले कैसे?

मोहन—और को चाहे न मिले, पर तुम्हारे हाथ के पास है, केवल तुम्हारे हाथ बढ़ा कर उठाने की देर है।

भागा—इन बातों को जाने ही दीजिए—जी होता है। हमारे नसीब में तो यह नरक ही बदा है। इस नरक से निकलना भी चाहूँ तो नहीं निकल सकती।

मोहनलाल—क्यों?

भागा—मैं बुढ़ापे में अम्मा को दुखी नहीं चाहती।

मोहन—उस बुड्ढी के दुख-सुख की चिन्ता क्या हो जो तुम्हें इस नरक में डाले हुए है।

भागा—कुछ भी हो, पर मेरी मा तो है। सारा जीवन भी तो इसी नरक में बीता है।

मोहन—ख़ैर, मैं फिर तुम्हें सोचने के लिए देता हूँ। ख़ूब सोच लो। आज मैंने तुम्हारे कानों में भी यह बात डाल दी है। तुम उनसे बात करना। अच्छा अब चलता हूँ।

(४)

उपर्युक्त घटना हुए छः मास व्यतीत हो गये। मोहनलाल की अभिलाषा पूरी हुई। चन्द्रभागा ने अन्त को मोहनलाल की बात स्वीकार कर ली। उसकी मा ने उसे बहुत समझाया, धमकाया, डराया,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझाया, पर कुछ लाभ न हुआ। चन्द्रभागा की माता के गुज़ारे के लिए ५०) मासिक बाँध दिये गये।

अब चन्द्रभागा गृहस्थों की तरह मोहनलाल के घर में रहती है। चन्द्रभागा के लिए यह परिवर्तन स्वर्ग-तुल्य था। अब जब कभी वह अपने पिछले जीवन पर दृष्टि डालती है तब उसका कलेजा काँपने लगता है।

इधर चार-पाँच मास तक मोहनलाल ठीक रहे, पर इसके पश्चात् उनकी वेश्याराधना के भाव ने फिर ज़ोर मारा। क्रमशः वे फिर वेश्याचर्या में लीन हुए। कुछ दिनों तक यह बात चन्द्रभागा से गुप्त रही, पर अन्त को उसे यह बात मालूम होगई।

एक दिन मोहनलाल रात को एक बजे घर लौटे। चन्द्रभागा उनकी प्रतीक्षा में जाग रही थी। मोहनलाल चन्द्रभागा के सामने पहुँचे। चन्द्रभागा ने उन्हें देखते ही पूछा—आज इतनी देर कहाँ लगी?

मोहनलाल बोले—ज़रा थियेटर देखने चला गया था।

चन्द्रभागा—सच कहते हो?

मोहन—सच नहीं तो क्या झूठ कहता हूँ।

चन्द्रभागा—हाँ, झूठ ही कहते हो।

मोहन—अच्छा, झूठ ही सही।

चन्द्रभागा ने मोहनलाल से आँख मिला कर कहा—झूठ ही सही कहने से काम न चलेगा। तुम कहाँ गये थे मुझे मालूम है।

मोहन—कहाँ गया था?

भागा—वेश्या के घर।

मोहनलाल उच्च हास्य करके बोले—भई खूब कही।

भागा—क्यों क्या वहीं गये थे?

मोहनलाल ने कहा—अच्छा गया था फिर?

चन्द्रभागा—तुम्हें अपनी पिछली बातें याद हैं?

मोहन—क्यों, याद क्यों नहीं?

चन्द्रभागा—तो फिर अब मुझमें कौन सी कमी हो गई जो तुमने फिर पुराना ढङ्ग पकड़ा।

मोहन—यदि तुम साफ़ साफ़ बातें करना चाहती हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। तुममें बहुत कुछ कमी हो गई। तुम अब पहली सी रही ही नहीं।

चन्द्रभागा—कैसे?

मोहन—न तुममें पहली सी चञ्चलता रही, न पहले जैसे हाव-भाव, न वैसा प्रम-प्रदर्शन, न वैसी सफ़ाई, न वैसा शृङ्गार—कोई बात भी पहली जैसी नहीं रही।

चन्द्रभागा मोहनलाल की बात सुन कर सुन्न हो गई। वह कुछ क्षण तक चुपचाप बैठी सोचती रही, तत्पश्चात् बोली—तुम्हें यह याद रखना चाहिए कि पहले मैं वेश्या थी, परन्तु अब वेश्या नहीं हूँ। कम से कम वेश्याओं की तरह नहीं रहती।

मोहनलाल—कारण चाहे जो हो, परन्तु तुममें जो कमी है वह मैंने बता दी।

चन्द्रभागा—तो इससे मालूम होता है कि तुम वेश्याओं के बनावटी हाव-भाव अधिक पसन्द करते हो। परन्तु मैं अब बनावटी बातों से तुम्हारा हृदय प्रसन्न नहीं कर सकती। मुझे उन बातों का स्मरण-मात्र करते लज्जा लगती है। अब तो मैं केवल अपनी हृदय की स्वाभाविक प्रेरणाओं के अनुसार चल सकती हूँ।

मोहन—यदि तुम्हारे हृदय की स्वाभाविक प्रेरणायें ऐसी ही हैं तो इन प्रेरणाओं को मैं दूर से प्रणाम करता हूँ।

चन्द्रभागा—देखो मोहनलाल, तुमने मुझे नरक से निकाल कर स्वर्ग में बिठाया है। इस कारण तुम्हें मैं अपना इष्टदेव समझती हूँ, तुम्हारी पूजा करती हूँ। ईश्वर के लिए अब ऐसा व्यवहार मत करो, जिससे मैं तुम्हें देवता के अतिरिक्त कुछ और समझूँ। तुमने मुझे प्रेम से वश में किया है तो अब उस प्रेम पर कुठाराघात मत करो।

मोहन—एक वेश्या को वश में करना कोई कठिन बात नहीं।

चन्द्रभागा पद-दलित सर्पिणी की भाँति सिर ऊँचा करके बोली—क्या कहा, वेश्या को वश में करना कठिन बात नहीं! हाँ, तुम रुपये से वेश्या का शरीर अपने वश में कर सकते हो, परन्तु उसका हृदय कदापि रुपये से वश में नहीं कर सकते। प्रेम रुपये से कभी नहीं ख़रीदा जा सकता, चाहे वेश्या का हो चाहे देवी का हो। क्या तुम समझते हो कि मैं तुम्हारे धन के कारण तुम्हारी होकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही हूँ ? यदि तुम यह समझते हो तो तुम्हारे समान बुद्धिहीन आदमी संसार में नहीं। रुपये की मुझे क्या कमी थी—तुम्हारे से सत्तर मेरे तलुवे चाटने को तैयार रहते थे—तुम्हारे जैसे दस को मोल ले सकती थी—और अभी जिस दिन बाहर जा बैठूँ उसी दिन रुपयों की वर्षा हो जाय। क्या तुम समझते हो कि यदि कल तुम भिखारी हो जाओ तो मैं तुम्हारा साथ छोड़ दूँगी अथवा तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम कम हो जायगा। यह तुम्हारे से पतित वेश्या-भक्तों का ही काम है कि आज यदि मुझमें वेश्या-पन नहीं रहा तो तुम मुझे दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंकना चाहते हो। जो तुम रंडीपने के ही भूखे हो तो जाओ जहाँ जी चाहे मुँह काला करो, परन्तु मुझसे यह आशा मत करो कि मैं वैसे घृणित आचरण करके इस स्वर्ग को कलुषित करूँगी।

इतना कहते कहते चन्द्रभागा का गला भर आया और वह आँचल से मुँह ढाँप फूट फूट कर रोने लगी।

मोहनलाल ने चन्द्रभागा की बात का कोई उत्तर नहीं दिया और वे चुपचाप दूसरे कमरे में चले गये।

दूसरे दिन से मोहनलाल ने चन्द्रभागा के पास आना-जाना भी बन्द कर दिया। अभागी चन्द्रभागा रात-दिन अकेली पड़ी रोया करती थी।

इसी प्रकार पन्द्रह दिन व्यतीत हुए। अन्त को निराश होकर चन्द्रभागा अपनी मा के पास चली गई।

(५)

मा ने पहले तो पुत्री को आड़े हाथों लिया। बोली—बड़ी मुहब्बत में डूब गई थी, अब मज़ा चक्खा! मैंने यह जूड़ा धूप में सफ़ेद नहीं किया। दुनिया देखी है। मैं इन मुए रंडीबाज़ों को ख़ूब समझती हूँ। रंडियां बेचारी तो बदनाम हुई हैं, पर ये रंडीबाज़ अव्वल दर्जे के दग़ाबाज़, बेईमान होते हैं। इनको तो ऐसा बना कर छोड़े कि टका कफ़न को न रहे, सरकारी ठेले पर लद कर जायँ। जिसने रंडीबाज़ों पर एतबार किया वह रंडी नहीं।

चन्द्रभागा ने कहा—अम्मा इन बातों से अब क्या फ़ायदा, जो मेरे भाग्य में बदा था वह हुआ।

चन्द्रभागा की मा बोली—चल निगोड़ी। भाग लेकर चली है। और मैं जो मना करती रही। तब तो अम्मा मुई काँटा सी खटकती थी। अब भाग्य बखानती है। मैं तो समझी थी कि कुछ सहूर (शऊर) आ गया, पर तू लौंडिया ही रही। अब जो उस मुए ने मेरे ज़ीने पर पैर रक्खा तो इतनी झाड़ू मारूँगी कि वह भी याद करेगा। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, उस ऐसे तीन सौ साठ तेरी ग़ुलामी करेंगे। तू घबराती क्यों है।

चन्द्रभागा—मैं अब बाज़ार में नहीं बैठूँगी।

चन्द्रभागा की माता अत्यन्त विस्मित होकर बोली—क्यों ?

चन्द्रभागा—मुझे इस पेशे से घृणा हो गई है।

चन्द्रभागा की माता—ओहो तू तो सीता-सावित्री बन कर आई है। बाज़ार में नहीं बैठेगी तो खायगी क्या—अंगारे ?

चन्द्रभागा—मैं सिलाई करके अपना पेट भर लूँगी।

चन्द्रभागा की मा नाक पर उँगली रख कर बोली—ऐ वाह री मेरी लाडो! ऐसी होती तो आज यह दिन देखना पड़ता।

चन्द्रभागा की माता ने बहुत कुछ कहा-सुना, समझाया-बुझाया, पर चन्द्रभागा ने वेश्यावृत्ति करना स्वीकार नहीं किया।

अन्त में बुढ़िया बोली—यदि बाज़ार में नहीं बैठना है तो निकल मेरे घर से, जिसने तुझे सीता-सावित्री का पाठ पढ़ाया है उसी मुए के पास जा। अब जो कभी मेरे घर आई तो टाँग तोड़ दूँगी।

बुढ़िया ने केवल धमकाने के लिए ये शब्द कहे थे, परन्तु चन्द्रभागा सचमुच ही चादर ओढ़ कर रोती हुई चल खड़ी हुई। बुढ़िया ने भी क्रोध के मारे उसे न रोका।

\+ + + +

उपर्युक्त घटना को छः मास व्यतीत हो गये। इधर मोहनलाल ने जब यह सुना कि चन्द्रभागा ने वेश्यावृत्ति ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया और इसी कारण उसकी माता ने उसे घर से निकाल दिया तब उनके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने चन्द्रभागा की बहुत कुछ खोज की, पर पता न लगा।

एक दिन मोहनलाल अपने मित्रों-सहित अपनी कोठी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बैठे थे कि एक स्त्री मैले-कुचैले कपड़े पहने उनकी ओर आती दिखाई दी। उनके नौकर ने डाँट कर पूछा—कहां जायगी ?

स्त्री ने कहा—बाबू मोहनलाल के पास।

नौकर—क्या काम है ?

स्त्री—एक चिट्ठी है।

नौकर—ला मुझे दे। तू यहीं खड़ी रह।

स्त्री—नहीं, मैं उन्हीं के हाथ में दूँगी।

नौकर—वहां जाने का हुक्म नहीं है।

मोहनलाल ने नौकर के चिल्लाने का स्वर सुना तो उसे बुला कर पूछा—क्या है ?

नौकर—हुज़ूर, एक औरत है। चिट्ठी लाई है। कहती है, बाबूजी के हाथ में दूँगी।

मोहन—बुलाओ।

नौकर—स्त्री को बुला लाया। मोहनलाल ने पूछा—कहां से चिट्ठी लाई।

स्त्री—पढ़ लीजिए।

यह कह कर उसने मोहनलाल के हाथ में एक मैला सा काग़ज़ दिया।

मोहनलाल ने खोल कर पढ़ा। उसमें लिखा था—मैं मर रही हूँ, तुम्हें देखना चाहती हूँ। यदि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रेम का कुछ भी अंश शेष हो तो इस स्त्री के साथ तुरन्त आओ।

चन्द्रभागा

मोहनलाल पत्र पढ़ कर घबरा गये। जिस प्रकार बैठे थे उसी प्रकार उठ खड़े हुए। उन्होंने नौकर से कहा—जल्दी मोटर निकलवा कर फ़ौरन ला।

नौकर घबरा कर मोटर निकलवाने के लिए भागा। इधर उनके मित्रों ने पूछा—कहो, क्या बात है ?

मोहनलाल बोले—पीछे बतलाऊँगा।

एक मित्र बोला—यार, तुम्हारी बदकारी बढ़ती जाती है। अब तो इधर-उधर से भी चिट्ठियां आने लगीं।

मोहनलाल बिगड़ कर बोले—चुप रहो। हर समय मज़ाक़ अच्छा नहीं होता।

इतने में ही मोटर आगई। मोहनलाल उस स्त्री के साथ मोटर में बैठ कर चल दिये। स्त्री के पथ-प्रदर्शनानुसार मोटर शहर की एक गन्दी गली के पास जाकर रुकी। मोहनलाल स्त्री के साथ उस गली में घुसे। थोड़ी दूर चल कर एक टूटे-फूटे मकान में घुसे। उस मकान के दालान में एक पुरानी चारपाई पर मैली दरी बिछी हुई थी। उस दरी पर एक स्त्री मैले कपड़े पहने आंखें बन्द किये पड़ी थी। मोहनलाल ने स्त्री को ध्यानपूर्वक देखा। स्त्री का मुख पीला पड़ गया था। आंखें गढ़े में चली गई थीं। शरीर सूख कर काँटा हो गया था।

स्त्री ने सिरहाने जाकर पुकारा—चन्द्रभागा, बाबूजी आगये।

चन्द्रभागा ने कठिनता से आंखें खोलीं और मोहनलाल की ओर देख कर धीरे से बोली—बैठो।

मोहनलाल ने अब भलीभांति पहचाना। अपने शिकार को दम तोड़ते हुए देख कर शिकारी की आंखों से अश्रुधारा फूट निकली। मोहनलाल चन्द्रभागा के पास बैठ गये और उसके सिर पर हाथ रख कर बोले—भागे, मैं आ गया। मेरा अपराध क्षमा कर दो। मैंने ही तुम्हें इस दशा को पहुँचाया।

चन्द्रभागा बोली—तुम्हारा कोई—अपराध—नहीं—मेरे भाग्य—में यही—लिखा था। अब—मैं—सुख—से—मरूँगी। अम्मा—की—कुछ—ख़बर—है।

मोहन—वह न जाने कहां से एक जवान लड़की ले आई है। उसी को बाज़ार में बिठाला है।

चन्द्रभागा—ख़ैर—भगवान्—उन्हें—सुखी—रक्खे।

मोहन—भागे, मेरे पाप का कोई प्रायश्चित्त है ? यदि हो तो बतलाओ।

चन्द्रभागा कुछ क्षण तक मोहनलाल की ओर देखती रही, तत्पश्चात् बोली—है।

मोहनलाल अत्यन्त उत्सुक होकर बोले—क्या ?

चन्द्रभागा—व्यभिचार—छोड़—दो—विवाह कर लो—मेरी—यही—अन्तिम—भिक्षा—है।

मोहनलाल अत्यन्त व्याकुल होकर रोते हुए बोले—भागे, मैं आज से प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजन्म कभी व्यभिचार न करूँगा। परन्तु विवाह नहीं करूँगा। तुम्हारे जैसी प्रेम करनेवाली कहां मिलेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रभागा—नहीं। ऐसा—न कहो—मैं प्रेम—करना—क्या—जानूँ—रंडी—फिर—रंडी—।

मोहनलाल ने चन्द्रभागा के मुँह पर हाथ रख दिया और बोले—यह बात मत कहो, मेरा कलेजा टुकड़े हुआ जाता है।

चन्द्रभागा—विवाह—अवश्य—करना—तुम्हें मेरी ही—क़सम—है।

इसके उपरान्त चन्द्रभागा थोड़ी देर तक मौन पड़ी स्थिर दृष्टि से मोहनलाल की ओर देखती रही। तदुपरान्त उसने अत्यन्त कष्ट से अपनी बाँह उठाकर मोहनलाल के गले की ओर बढ़ाई। मोहनलाल ने उसका तात्पर्य्य समझ कर उसकी बाँह पकड़ कर अपने गले में डाल ली। बाँह के गले में पड़ते ही चन्द्रभागा का शरीर निर्जीव हो गया।

\+ + + + +

उपर्युक्त घटना के एक वर्ष पश्चात् मोहनलाल एक षोडशी सुन्दरी के साथ अपने बाग़ में टहल रहे थे। घूमते घूमते वे दोनों संगमरमर की एक छोटी सी बारहदरी के पास पहुँचे। उसके पास पहुँचकर मोहनलाल सुन्दरी से बोले—चलो, तुम्हें एक चीज़ दिखावें।

यह कह कर मोहनलाल सुन्दरी का हाथ पकड़े हुए बारहदरी के भीतर पहुँचे। बारहदरी बहुत सुन्दर बनी थी। उसके भीतर दीवार पर एक अत्यन्त रूपवती स्त्री का तैलचित्र लगा था। चित्र की ओर उँगली उठा कर मोहनलाल ने कहा—देखो!

षोडशी कुछ देर तक चित्र को ध्यानपूर्वक देखने के पश्चात् बोली—बड़ा सुन्दर चित्र है, किसका है? कदाचित् बहनजी का होगा।

बहनजी से सुन्दरी का तात्पर्य मोहनलाल की स्वर्गीया पत्नी से था।

मोहनलाल एक दीर्घनिश्वास लेकर बोले—नहीं उनका नहीं है।

षोडशी ने पूछा—फिर किसका है?

मोहनलाल—यह चित्र उसका है जो मुझसे इतना प्रेम करती थी कि अब उतना प्रेम कोई कर सकेगा, इसमें सन्देह है। यह चित्र उसका है जिसने मेरे अत्याचारों के कारण अनेक कष्ट उठा कर प्राण त्याग दिये। यह चित्र उसका है जो मरते मरते भी मेरा इतना उपकार कर गई कि जिसके कारण मेरा जीवन सुधर गया, मैं पशु से मनुष्य हो गया। मैं एक अत्यन्त नीच तथा घृणित व्यभिचारी और वेश्यागामी था। परन्तु इसने मरते समय मुझसे व्यभिचार छोड़ देने की भिक्षा माँगी। मैंने इसकी अन्तिम प्रार्थना से प्रभावित होकर व्यभिचार सदैव के लिए छोड़ दिया। इसकी मृत्यु और इसके अन्तिम वाक्यों ने मेरे हृदय में व्यभिचार के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी। इस सुन्दरी को और इसके अन्तिम वाक्यों को मैं आजन्म नहीं भूल सकता। किसी दिन विस्तृत वृत्तान्त तुम्हें सुनाऊँगा।

कहते कहते मोहनलाल के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। षोडशी ने अत्यन्त विस्मय-पूर्ण नेत्रों से चित्र की ओर देखते हुए कहा—परन्तु यह है कौन?

मोहनलाल—यह मत पूछो। यह वह है जिसके कहने से, जिसके आग्रह से, जिसके क़सम दिलाने के कारण आज तुम मेरी जीवन-सङ्गिनी तथा अर्द्धाङ्गिनी बनी हुई इस संसार को, जिससे मुझे घृणा होगई थी, स्वर्ग-तुल्य बना रही हो।

षोडशी अत्यन्त विकल होकर बोली—परन्तु यह है कौन?

मोहनलाल ने कहा—यह? यह चन्द्रभागा नाम की एक वेश्या थी।

मोहनलाल समझे हुए थे कि वेश्या का नाम सुन कर उनकी पत्नी चौंकेगी, परन्तु उनकी पत्नी ने मुसकुरा कर कहा—नाथ, जिसने तुम्हारे साथ इतने उपकार किये, जिसके कारण आज मुझे तुम्हारी दासी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वह चाहे कोई हो, मैं उसकी चिरऋणी रहूँगी। अतएव जिस प्रकार अनजाने में मैंने इन्हें 'बहनजी' समझा था उसी प्रकार अब भी मैं इन्हें अपनी 'बहनजी' के तुल्य ही समझती हूँ।

मोहनलाल के नेत्रों से अश्रुधारा फूट निकली। उन्होंने पत्नी को हृदय से लगा लिया। दोनों ने चित्र की ओर देखा। दोनों को चित्र के मुख पर एक आनन्द की छटा दौड़ जाने का आभास सा प्रतीत हुआ।

विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर और बाहर।

विमला की आत्म-कथा।

छत के ऊपर पड़े पड़े रात बीत गई। सवेरे जब समझा कि मेरे स्वामी अब उठ कर चले गये तब सारे शरीर में शाल लपेट कर धीरे धीरे नीचे चली। उस समय मँझली रानी कलसी में जल लिये टबों में रक्खे हुए पेड़ों में पानी डाल रही थीं। मुझे देखते ही बोल उठीं—कुछ सुना है ?

मैं चुपचाप खड़ी हो गई, मेरा हृदय धड़कने लगा। जान पड़ने लगा, आँचल में बँधी हुई गिन्नियाँ शाल के भीतर से बहुत अधिक उभरी हुई हैं। जान पड़ा, अभी मेरा कपड़ा फाड़ कर गिन्नियाँ बरामदे में झनझन करके बिथर जायँगी। अपने ऐश्वर्य को चुरा कर कङ्गाल हो जानेवाले चोर को आज इस घर के नौकर-चाकर भी पकड़ लेंगे।

मँझली रानी ने कहा—तुम्हारे देवी चौधरानी के दल ने राजा भैया का ख़ज़ाना लूटने की धमकी देकर एक गुमनाम चिट्ठी भेजी है।

मैं चोर की ही तरह चुपचाप खड़ी रही।

मँझली रानी—मैं राजा भैया से तुम्हारी शरण में जाने के लिए कह रही थी। देवी प्रसन्न होओ, अपने दल-बल को रोको! हम तुम्हारे वन्दे मातरम् की सिन्नी मानती हैं। देखते ही देखते बहुत सी बातें तो हो गई हैं, अब, दोहाई है तुम्हारी, घर में सेंध न लगने देना।

मैं कुछ न कह कर जल्दी से अपने सोने के कमरे में चली गई।

पैर रख चुकी हूँ—अब ऊपर उठने की आशा नहीं, जितना ही छटपटाऊँगी उतना ही डूबूँगी।

अब ये गिन्नियाँ अपने आँचल से निकाल कर सन्दीप के हाथ में किसी तरह दे दूँ तो मुझे कल पड़े। इस बोझ को अब मैं लाद नहीं सकती। मेरी हड्डी-पसली जैसे टूटी जाती हैं।

सवेरे ही ख़बर मिली कि सन्दीप बैठे हुए मेरी राह देख रहे हैं। आज मैंने साज-सिङ्गार कुछ नहीं किया था। शाल सिर से लपेट कर जल्दी से बैठक में चली गई।

बैठक में घुसते ही देखा, सन्दीप के साथ अमूल्य भी बैठा हुआ है। जो कुछ मान-सम्भ्रम बाक़ी था, जान पड़ा, वह सब जैसे मेरे शरीर से उतर कर पैरों के तलवों से एक-दम ज़मीन के भीतर चला गया। स्त्री की सबसे बढ़ कर बेइज़्ज़ती इस बालक के सामने आज खोल देनी होगी! मेरी इस चोरी की आज ये अपने दल के बीच बैठ कर आलोचना करते हैं? इसके ऊपर ज़रा भी आबरू इन्होंने नहीं रखने दी?

मर्द को हम औरतें क्या जानती नहीं। वे जब अपने उद्देश के रथ को खींचने के लिए राह तैयार करने बैठते हैं तब विश्व के हृदय के टुकड़े टुकड़े करके रोड़े बिछाने में ज़रा भी नहीं हिचकते। वे अपने हाथ से सृष्टि करने के नशे में जब मत्त हो उठते हैं तब सृष्टिकर्त्ता की सृष्टि को चूर चूर कर देने में ही उन्हें आनन्द मिलता है। मेरी यह मर्मभेदी लज्जा उनकी नज़र के तले पड़ेगी ही नहीं—उनको किसी के प्राणों का माया-मोह नहीं—उनकी सारी व्यग्रता उद्देश के लिए ही रहती है। हाय रे, उनके आगे मैं चीज़ ही क्या हूँ? बहिया के आगे एक छोटे से फूल की तरह हूँ।

किन्तु मुझे इस तरह बुझा डालने से सन्दीप को क्या लाभ हुआ? ये पाँच हज़ार रुपये? मुझमें पाँच हज़ार रुपये से बढ़ कर क्या कुछ नहीं था? था क्यों नहीं। यही समाचार तो मैंने सन्दीप से सुना था—और वही सुन कर तो मैं संसार की सब चीज़ों को तुच्छ जान सकी थी। मैं प्रकाश दूँगी, मैं जीवन दूँगी, मैं शक्ति दूँगी, मैं अमृत दूँगी, इसी विश्वास, इसी आनन्द की झोंक में तो मैं बाहर निकल पड़ी थी। मेरे उस आनन्द को यदि कोई पूर्ण बना देता तो मैं मर कर भी सन्तोष करती—अपनी गृहस्थी को बहा देकर भी मेरा कुछ नुक़सान न होता।

आज क्या ये कहना चाहते हैं कि ये सब बातें मिथ्या हैं? मुझमें जो देवी है उसमें भक्त को वराभय देने की शक्ति नहीं है? मैंने जो स्तवगान सुना था, जिस गान को सुन कर मैं स्वर्ग से मिट्टी पर उतर आई थी वह क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मिट्टी को स्वर्ग बना देने के लिए नहीं है ? वह क्या स्वर्ग को ही मिट्टी करने के लिए है ?

सन्दीप ने मेरे मुख पर अपनी तीव्र दृष्टि स्थापित करके कहा—रुपये चाहिए रानी !

अमूल्य मेरे मुख की ओर ताकने लगा—वही बालक—वह मेरी माता के गर्भ से नहीं पैदा हुआ, किन्तु अपनी मा के गर्भ से तो पैदा हुआ है—वैसे ही उसी जाति की मा सबके होती है ! आहा यह भोला मुख, ये स्नेहपूर्ण नेत्र, यह तरुण अवस्था ! मैं स्त्री हूँ, मैं उसकी माता की जाति हूँ । वह मुझसे अगर कहे कि मुझे विष दे दो तो क्या उसके हाथ पर विष रख देना ही मुझे उचित है !

रुपये चाहिए रानी !—सुन कर क्रोध और लज्जा के मारे इच्छा हुई कि वह सोने का बोझ सन्दीप के सिर पर खींच मारूँ । मुझसे किसी तरह आँचल की गिरह नहीं खुलती थी—थरथर करके मेरी उँगलियाँ काँपने लगीं । उसके बाद टेबिल के ऊपर जब मैंने वे काग़ज़ से लपेटी बींड़ें रख दीं तब सन्दीप के मुख पर स्याही दौड़ गई । उसने यही सोचा कि इन काग़ज़ों के भीतर अठन्नियाँ हैं । कैसी घृणा की बात है ! अक्षमता के ऊपर यह कैसी निष्ठुर अवज्ञा है ! जान पड़ा, वह जैसे मुझे मार भी सकता है । सन्दीप ने सोचा—मैं शायद उसके साथ दर-दस्तूर करने बैठी हूँ—उसके पाँच हज़ार के दावे को दो-तीन सौ रुपये में टालना चाहती हूँ । एक बार जी में आया, उन बींड़ों को उठाकर खिड़की के बाहर फेंक दूँ । वह क्या भिक्षुक है ? वह तो राजा है ।

अमूल्य ने पूछा—और नहीं हैं रानीदीदी ?

उसका स्वर करुणा से भरा हुआ था । मुझे जान पड़ा, मैं शायद चिल्ला कर रो उठूँगी ! प्राणपण से हृदय को जैसे दबाकर मैंने केवल गर्दन हिला दी । सन्दीप चुप रहा—उन बींड़ों को छुआ भी नहीं, कुछ कहा भी नहीं ।

मेरे अपमान से बालक अमूल्य के हृदय को चोट पहुँची । वह एकाएक ख़ूब आनन्द का भाव दिखा कर कह उठा—यही क्या कम है ! इतना ही बहुत होगा ! तुमने हम लोगों को बचा लिया दीदीरानी !

इतना कह कर ही उसने एक बींड़ खोल डाली—गिन्नियाँ चमचमाने लगीं ।

पल भर में ही सन्दीप के मुख पर का जैसे एक काला आवरण हट गया । उसके भी मुख और आँखों में आनन्द झलकने लगा । मन के भीतर की इस एकाएक उठी हवा के झोंके को सँभाल न सकने के कारण वह एकाएक कुर्सी से उछल कर मेरी ओर चला । मालूम नहीं, उसका क्या मतलब था ! मैंने बिजली की तरह एक बार अमूल्य के मुख की ओर ताका—एकाएक जैसे एक चाबुक खाकर उसका मुख विवर्ण हो गया है । मैंने अपनी सारी शक्ति से सन्दीप को ढकेल दिया । पत्थर के टेबिल के ऊपर उसका सिर खट से बोला, उसके बाद वह ज़मीन पर गिर पड़ा—कुछ देर तक वह मुरदा-सा पड़ा रहा । इस प्रबल चेष्टा के बाद मेरे शरीर में ज़रा-सा भी ज़ोर न था, मैं कुर्सी पर बैठ गई । अमूल्य का मुख आनन्द से चमक उठा—उसने सन्दीप की ओर घूम कर देखा भी नहीं, मेरे पैरों की धूल मस्तक में लगा कर मेरे पैरों के पास बैठ गया अरे भाई, अरे बच्चे, तेरी इतनी सी यह श्रद्धा ही आज मेरे शून्य पात्र का शेष सुधाबिन्दु है । मुझसे रहा न गया, मैं रोने लगी । बीच बीच में मेरे पैरों को अमूल्य करुणापूर्ण भाव से जितना ही सहलाता था उतना ही मेरा रोना फटा पड़ता था ।

थोड़ी देर बाद सँभल कर उठ कर आँखें खोल कर देखा, जैसे कुछ हुआ ही नहीं, इस तरह के भाव से सन्दीप टेबिल के पास बैठा हुआ गिन्नियाँ रूमाल में बाँध रहा है । अमूल्य मेरे पैरों के पास से उठ कर खड़ा हो गया उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे ।

सन्दीप ने बिना किसी सङ्कोच के मेरे मुख की ओर देख कर कहा—छः हज़ार रुपये हैं ।

अमूल्य ने कहा—इतने रुपयों की तो हमें ज़रूरत नहीं है सन्दीप बाबू । हिसाब करके देखा है, साढ़े तीन हज़ार रुपये होने से ही हमारा इस समय का काम चल जायगा ।

सन्दीप ने कहा—हमारा काम तो केवल इसी समय का या यहीं का नहीं है । हमको जितने की ज़रूरत है वह असंख्य है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमूल्य ने कहा—होने दीजिए। आगे जो दरकार होगा उसका ज़िम्मा मैं लेता हूँ। आप ये ढाई हज़ार रुपये रानीदीदी को फेर दीजिए।

सन्दीप ने मेरे मुख की ओर देखा। मैं कह उठी—नहीं, नहीं, इन रुपयों को अब मैं छूना भी नहीं चाहती। उन्हें लेकर तुम्हारी जो ख़ुशी हो, करो।

सन्दीप ने अमूल्य के मुख की ओर देख कर कहा—औरतें जिस तरह दे सकती हैं उस तरह मर्द नहीं दे सकते।

अमूल्य ने उच्छ्वसित होकर कहा—स्त्रियाँ तो देवी हैं।

सन्दीप ने कहा—हम मर्द लोग बहुत जी करें तो अपनी शक्ति दे सकते हैं, स्त्रियाँ अपने आपको दे डालती हैं। वे अपने हृदय के भीतर से सन्तान को जन्म देती हैं, पालन करती हैं, बाहर से नहीं। यही दान तो सत्य दान है।

इतना कह कर सन्दीप ने मेरी ओर देख कर कहा—रानी, आज तुमने जो दिया वह अगर केवल धन होता तो मैं उसे छूता भी नहीं; तुमने अपने हृदय से भी बढ़ कर चीज़ दी है।

जान पड़ता है, मनुष्य के दो बुद्धियाँ होती हैं। मेरी एक बुद्धि यह समझ सकती है कि सन्दीप मुझे ठग रहा है, पर मेरी एक बुद्धि उसकी बातों में आ जाती है। सन्दीप के चरित्र नहीं है, सन्दीप के शक्ति है। इसी कारण वह जिस घड़ी हृदय को जगा देता है उसी घड़ी मृत्युबाण भी मारता है। देवता का अक्षय तरकस उसके हाथ में है, किन्तु उस तरकस में दानव का अस्त्र है।

सन्दीप के रूमाल में सब गिन्नियाँ नहीं आती थीं। उसने कहा—रानी, तुम अपना एक रूमाल मुझको दे सकती हो ?

मेरे रूमाल निकाल देने पर उसने वह रूमाल सिर से लगाया, और उसके बाद एकाएक मेरे पैरों के पास बैठ गया। मुझे प्रणाम करके बोला—देवी, तुमको प्रणाम करने ही के लिए मैं तुम्हारे पास आया था, तुमने मुझको धक्का देकर ढकेल दिया। तुम्हारा यह धक्का ही मेरे लिए वर है। इस धक्के को मैंने अपने सिर पर लिया है—इतना कह कर मत्थे में जहाँ पर लगा था वह जगह उसने दिखा दी।

तो क्या मैं सचमुच ग़लत समझी थी ? सन्दीप क्या दोनों हाथ बढ़ा कर उस समय मुझे प्रणाम करने ही के लिए आया था ? उसके मुख और आँखों में एकाएक जो मतवालापन छा गया था उसे तो शायद अमूल्य ने भी देख पाया था। किन्तु स्तवगान में सन्दीप ऐसा अद्भुद सुर लगाना जानता है कि मैं तर्क नहीं कर पाती, सत्य को देखने की दृष्टि जैसे किसी अफ़ीम के नशे से बन्द हो जाती है। सन्दीप को जो मैंने चोट पहुँचाई थी वह चोट उसने दूनी करके लौटा दी। उसके मस्तक का घाव मेरे हृदय में रक्तपात करने लगा। सन्दीप का प्रणाम जब मैंने पाया तब मेरी चोरी महिमान्वित हो उठी। टेबिल के ऊपर की गिन्नियाँ सारी लोकनिन्दा को, सारी धर्मबुद्धि की वेदना को, उपेक्षित करके चमक चमक कर जैसे हँसने लगीं।

मेरी ही तरह अमूल्य का मन भी बदल गया। दम-भर के लिए सन्दीप के प्रति जो उसकी श्रद्धा कुण्ठित हो गई थी वह फिर बाधायुक्त होकर उमड़ चली। मेरी और सन्दीप की पूजा के लिए उसके हृदय का पुष्पपात्र परिपूर्ण हो गया। सरल विश्वास की सुन्दर स्निग्ध सुधा तड़के के शुक्रतारा के प्रकाश की तरह उसके नेत्रों से बरसने लगी ! मैंने पूजा दी, मैंने पूजा पाई, मेरा पाप ज्योतिर्मय हो उठा। अमूल्य ने मेरे मुख की ओर ताक कर हाथ जोड़ कर कहा—वन्दे मातरम्।

किन्तु स्तुति की वाणी तो सब समय सुनने को नहीं मिलती। अपने मन के भीतर से अपने ऊपर अपनी श्रद्धा बनाये रखने की सामग्री तो मेरे कुछ भी नहीं है। अपने सोने के कमरे में जा नहीं सकती। वह लोहे का सन्दूक़ जैसे मेरी ओर भौंहें टेढ़ी करके देखता है, हमारा पलँग जैसे मेरी ओर निषेध करने के लिए हाथ बढ़ाता है। अपने हृदय में होनेवाले अपने इस अपमान से अलग भागने की इच्छा होती है—केवल यही जी चाहता है कि सन्दीप के पास जाकर अपनी स्तुति का गान सुनूँ। मेरे बहुत गहरे ग्लानि के गढ़े से जगत् में वही ज़रा सी पूजा की वेदी बची हुई है। वहाँ से जिधर पैर बढ़ाती हूँ, उधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही शून्य देख पड़ता है। इसी से दिन-रात इसी वेदी को ही पकड़े पड़े रहना चाहती हूँ। स्तुति चाहिए, स्तुति चाहिए, दिन-रात स्तुति चाहिए; यह शराब का प्याला ज़रा भी ख़ाली रहने से मुझे चैन नहीं। इसी से दिन भर सन्दीप के पास जाकर उसकी बातें सुनने के लिए मेरा हृदय उत्सुक रहता है। अपने अस्तित्व का मूल्य पाने के लिए आज पृथ्वी पर सन्दीप की मुझे इतनी ज़रूरत है!

मेरे स्वामी दोपहर को जब भोजन करने आते हैं तब मैं उनके सामने बैठ नहीं सकती। और न बैठना ऐसी अधिक लज्जा है कि वह भी मुझसे नहीं होता। मैं उनके ज़रा पीछे हट कर इस तरह बैठती हूँ कि मेरी उनकी चार आँखें नहीं होतीं। उस दिन इसी तरह बैठी हुई थी और वे भोजन कर रहे थे। इसी समय मँझली रानी ने आकर कहा—राजा भैया, तुम इन डकैतों की चिट्ठियों को हँस कर उड़ा देते हो, पर मुझे डर लगता है। हमारे रुपये अभी तक तुमने बैंक में नहीं भेजे?

मेरे स्वामी ने कहा—नहीं, फ़ुरसत नहीं मिली।

मँझली रानी ने कहा—देखो भैया, तुम बड़े असावधान हो, वे रुपये—

स्वामी ने हँस कर कहा—वे रुपये मेरे सोने के कमरे के पास की कोठरी के भीतर लोहे के सन्दूक़ में रक्खे हुए हैं।

मँझली रानी—कौन जानता है, अगर वहीं से वे उड़ा ले जायँ?

स्वामी—मेरे उस कमरे में भी अगर चोर की रसाई हो तो वे किसी दिन तुमको भी चुरा ले जा सकते हैं।

मँझली रानी—अजी मुझे कोई न ले जायगा, डरो नहीं। लेने के लायक़ चीज़ तुम्हारे ही घर में है—नहीं भैया, हँसी नहीं, तुम घर में रुपये न रक्खो।

स्वामी—सदर-ख़ज़ाने के जाने में और पाँच दिन की देर है, उसके साथ वे रुपये भी मैं कलकत्ते के बैंक में भेज दूँगा।

मँझली रानी—देखो भाई, भूल न जाना। तुम बड़े भुलक्कड़ हो।

स्वामी—उस कमरे से अगर रुपये चोरी जायँगे तो मेरे ही जायँगे, तुम्हारे क्यों जायँगे बहू रानी?

मँझली रानी—भैया, तुम्हारी इन बातों को सुन कर मेरे जैसे बुख़ार चढ़ आता है। मैं क्या मेरे-तेरे का भेद मान कर ये बातें कह रही हूँ? तुम्हारा धन अगर चोरी जाय तो क्या उसका दुःख मुझे न होगा? जले विधाता ने सब कुछ छीन कर मुझे जो लक्ष्मण सा सुलक्षण देवर दिया है उसके मूल्य को क्या मैं समझती नहीं? मैं भाई तुम्हारी बड़ी रानी की तरह दिन-रात देवतों से ही अपने मन को बहला नहीं सकती; देवतों ने मुझे जो दिया है वह मेरे लिए देवतों से भी बढ़ कर है। क्यों जी छोटी रानी, तुम क्यों एक-दम कठपुतली की तरह चुप्पी साधे बैठी हो? जानते हो राजा भैया, छोटी रानी अपने मन में समझती हैं कि मैं ख़ुशामद कर रही हूँ। सो भाई, वैसे आदमी से सामना होता तो ख़ुशामद ही करनी पड़ती। किन्तु तुम क्या मेरे वैसे देवर हो कि ख़ुशामद की अपेक्षा रक्खो? अगर तुम इस माधव चक्रवर्ती की तरह होते तो बड़ी रानी की भी देव-सेवा तशरीफ़ ले जाती—धेले-पैसे के लिए तुम्हारे हाथ-पैर जोड़ते ही सारा दिन बीत जाता। लेकिन ऐसा होता तो उनका उपकार ही होता, बना बना कर तुम्हारी निन्दा करने का इतना समय उन्हें न मिलता।

इसी तरह मँझली रानी की बातों का सिलसिला चलने लगा। बीच बीच में यह भी कहती जाती थीं कि राजाभैया, देखो कढ़ी कैसी अच्छी बनी है, थोड़ी सी और खालो; तरकारी तो तुमने कुछ खाई ही नहीं—इत्यादि। मेरा उस समय सिर घूम रहा था। अब बिलकुल समय नहीं है, कुछ न कुछ उपाय करना होगा। क्या हो सकता है, क्या किया जा सकता है, यही प्रश्न जिस समय बारम्बार मन से कर रही थी उस समय मँझली रानी की बकबक मुझे बहुत ही असह्य जान पड़ने लगी। ख़ासकर मैं यह जानती हूँ कि मझली रानी की नज़र से कुछ भी छिप नहीं सकता। वह दम दम भर पर मेरे मुख की ओर देख रही थी, मालूम नहीं क्या देख रही थी, किन्तु मुझे जान पड़ रहा था कि मेरे चेहरे पर सब हाल जैसे स्पष्ट झलक रहा है।

दुःसाहस का अन्त ही नहीं—मैंने जैसे बहुत ही सहज ढङ्ग से दिल्लगी के तौर पर हँस कर कहा—असल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात यह है कि मँझली रानी का सारा अविश्वास मेरे ही ऊपर है, चोर-डकैत आदि का तो ख़ाली बहाना है !

मँझली रानी ने मुसका कर कहा—औरतों की चोरी बड़ी सत्यानासी होती है। सो भाई मुझसे तो छिप सकेगी नहीं। मैं तो मर्द नहीं हूँ ! मुझे किस तरह बहलाओगी ?

मैंने कहा—तुम्हारे मन में अगर ऐसा ही डर हो तो मेरे पास जो कुछ है वह कहो तुम्हारे पास जमा कर दूँ, अगर कुछ नुक़सान हो तो काट लेना।

मँझली रानी ने हँस कर कहा—सुनो, ज़रा छोटी रानी की बातें सुनो। उस चोरी से मेरा ऐसा नुक़सान होगा कि यह लोक और परलोक ज़ामिन देने से भी उद्धार न होगा।

हमारी इस बात-चीत के बीच में मेरे स्वामी ने एक बात भी नहीं कही। उनका भोजन समाप्त होते ही वे बाहर चले गये, आज-कल वे विश्राम करने के लिए घर के भीतर नहीं बैठते।

मेरे अधिकांश बहुमूल्य गहने ख़ज़ांची के पास थे। तो भी मेरे पास जो कुछ था उसके दाम तीस पैंतीस हज़ार रुपये से कम न होंगे। मैं उन्हीं गहनों का बक्स लेकर मँझली रानी के पास गई और उसे खोल कर बोली—मँझली रानी, मेरे ये गहने अपने पास रहने दो। अब तुम निश्चिन्त रह सकती हो।

मँझली रानी ने आश्चर्य से गाल पर हाथ रख कर कहा—तुमने तो अवाक् कर दिया ! तुम क्या सचमुच यह समझती हो कि तुम मेरे रुपये चुरा लोगी, इस डर से मुझे रात को नींद नहीं आती ?

मैंने कहा—भय हो ही तो दोष क्या है ? संसार में कौन किसे पहचान सकता है, तुम्हीं बताओ ?

मँझली रानी ने कहा—इसी से शायद मुझे विश्वास करने की शिक्षा देने आई हो ? मैं अपने ही गहने कहां रखती हूँ, कुछ ठीक नहीं—उस पर तुम्हारे गहने रख कर पहरा दूँ, क्यों न ? चारों ओर नौकर-चाकर घूमा करते हैं—तुम अपने गहने ले जाओ भाई।

मँझली रानी के पास से आते ही बैठक में मैंने अमूल्य को बुला भेजा। देखा, अमूल्य के साथ ही सन्दीप भी आकर उपस्थित हुआ। उस समय मैं देर न कर सकती थी, देर करने का मौक़ा ही न था। मैंने सन्दीप से कहा—अमूल्य से मुझे कुछ विशेष बातें करनी हैं, आप ज़रा—

सन्दीप ने रूखी हँसी हँस कर कहा—क्या तुम अमूल्य को मुझसे अलग करके देखती हो ? तुम यदि मुझसे अमूल्य को फोड़ लेना चाहो तो मैं उसे रोक कर रख नहीं सकता।

इस बात का कुछ जवाब न देकर मैं चुपचाप खड़ी रही। सन्दीप ने कहा—अच्छी बात है, अमूल्य से विशेष बातचीत शेष करके उसके बाद मुझे भी कुछ विशेष बातें करने का मौक़ा देना होगा लेकिन, नहीं तो मेरी हार होगी। मैं सब मान सकता हूँ, लेकिन हार नहीं मान सकता। मेरा हिस्सा सबके हिस्से से अधिक है। इसी बात के लिए सदा से विधाता के साथ लड़ रहा हूँ। विधाता को हराऊँगा, मैं न हारूँगा।

अमूल्य पर तीव्र कटाक्ष-बाण चला कर सन्दीप वहां से चला गया। मैंने अमूल्य से कहा—मेरे भाई, तुमको मेरा एक काम कर देना होगा।

उसने कहा—तुम जो कहोगी उसे अपने प्राण भी देकर पूरा करूँगा—दीदी।

शाल के भीतर से गहनों का बक्स निकाल कर उसके सामने रख कर मैंने कहा—मेरे ये गहने रेहन रख-कर या बेंच कर जहां तक जल्द हो सके मुझको छः हज़ार रुपये ला दो।

अमूल्य व्यथित होकर कह उठा—नहीं दीदी नहीं, गहने रेहन रखने या बेंचने की ज़रूरत नहीं, मैं तुमको छः हज़ार रुपये ला दूँगा।

मैंने खीझ कर कहा—ये बातें रहने दो, मुझे ज़रा भी समय नहीं है। यह गहनों का बक्स ले जाओ, आज रात की गाड़ी से ही कलकत्ते जाओ, परसों तक छः हज़ार रुपये मुझे ला दो।

अमूल्य ने बक्स के भीतर से हीरे की चिक प्रकाश में उठा कर देखी और फिर खेद के साथ रख दी। मैंने कहा—इन हीरे के गहनों के ठीक दाम सहज में न लगेंगे, इसी कारण मैं तुमको इतना गहना देती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके ठीक दाम तीस हज़ार से भी अधिक हैं। ये सब चले जायँ तो भी अच्छा, लेकिन छः हज़ार रुपये मुझे अवश्य ही मिलने चाहिए।

अमूल्य ने कहा—देखो दीदी, आपसे जो छः हज़ार रुपये सन्दीप बाबू ने लिये हैं इनके लिए मैंने उनसे झगड़ा किया है। कह नहीं सकता, यह कैसी लज्जा की बात है! सन्दीप बाबू कहते हैं, देश के लिए लज्जा का त्याग करना होगा। सो शायद होगा भी। किन्तु यह जैसे एक दूसरी बात है। देश के लिए मैं मरने से नहीं डरता, मारने में दया नहीं करता, ऐसी शक्ति पा गया हूँ। किन्तु तुम्हारे हाथ से ये रुपये लेने की ग्लानि को किसी तरह अपने हृदय से हटा नहीं सकता। इसी जगह पर सन्दीप बाबू मेरी अपेक्षा बहुत कठिन हैं, उनको तिल भर भी क्षोभ नहीं है। वे कहते हैं—रुपये जिसके बक्स में थे उसी के वास्तव में थे, यह मोह दूर करना चाहिए। नहीं तो वन्दे मातरम् मन्त्र किस बात का!

यह कहते कहते अमूल्य उत्साहित हो उठने लगा। मुझे श्रोता पाकर उसका इन सब बातों के कहने का उत्साह और भी बढ़ जाता है। वह कहने लगा—गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है, आत्मा को तो कोई मार नहीं सकता। किसी को मारना, यह केवल बात की बात है। रुपये हरना भी वैसी ही एक बात है। रुपये किसके हैं? रुपयों की कोई सृष्टि नहीं करता। रुपयों को कोई साथ नहीं ले जाता, वे किसी की आत्मा का अङ्ग नहीं हैं। रुपये आज मेरे हैं, कल मेरे लड़के के हैं, और दूसरे दिन मेरे महाजन के हैं। वे ही चञ्चल रुपये जब असल में किसी के नहीं हैं तब तुम्हारे निकम्मे लड़के के हाथ में न जाकर अगर वे देश-सेवा में लगें तो ऐसा करनेवाले की निन्दा करने से ही क्या वह निन्दित हो जायगा?

सन्दीप के मुख की बात जब मैं इस बालक के मुख से सुनती हूँ तब भय से मेरा हृदय काँप उठता है। जो मदारी हैं वे तोंबी बजाकर साँप के साथ खेलें, मरना अगर हो तो वे जान-बूझ कर मरें। किन्तु ये बच्चे तो बिलकुल कच्चे हैं, सारे विश्व का आशीर्वाद निरन्तर नित्य इनकी रक्षा करना चाहता है, ये साँप को साँप न जान कर हँसते हँसते उसके साथ खेलते खेलते जब उसकी ओर हाथ बढ़ाते हैं तभी स्पष्ट समझ में आता है कि यह साँप कैसा भयङ्कर अभिशाप है! सन्दीप ने ठीक ही समझा है—मैं खुद उसके हाथ से मर सकती हूँ, किन्तु इस बच्चे को उसके हाथ से छीन कर मैं बचाऊँगी।

मैंने ज़रा हँस कर अमूल्य से कहा—तुम्हारे देश-सेवकों की सेवा के लिए भी शायद रुपयों की ज़रूरत है?

अमूल्य ने गर्व के साथ सिर उठा कर कहा—है क्यों नहीं। वही हमारे राजा हैं, दारिद्र्य से उनकी शक्ति का क्षय होता है। आपको मालूम है, हम लोग सन्दीप बाबू को अव्वल दर्जे की गाड़ी के सिवा और गाड़ी में चढ़ने नहीं देते। राजसी ठाट और भोग में वे कभी सङ्कुचित नहीं होते। उन्हें अपनी इज़्ज़त अपने लिए नहीं, हम सबके लिए बढ़ानी पड़ती है। सन्दीप बाबू कहते हैं—संसार में जो ईश्वर है, ऐश्वर्य का सम्मोहन ही उनका सबसे बड़ा अस्त्र है। दारिद्र्य-व्रत ग्रहण करना उनके लिए दुःख-स्वीकार नहीं है—आत्मघात है।

इसी समय एकाएक चुपचाप सन्दीप बैठकख़ाने में घुस आया। मैंने जल्दी से गहने के बक्स पर शाल रख दिया। सन्दीप ने व्यङ्ग्य के स्वर में पूछा—शायद अभी तक अमूल्य के साथ विशेष बात-चीत करने का तुम्हारा अभिनय पूरा नहीं हुआ?

अमूल्य ने कुछ लज्जित होकर कहा—नहीं, हमारी बात-चीत पूरी हो गई है। उसमें विशेष कुछ नहीं है।

मैंने कहा—नहीं अमूल्य, अभी मुझे कुछ और कहना है।

सन्दीप ने कहा—तो फिर दूसरी बार सन्दीप का प्रस्थान है?

मैंने कहा—हाँ।

सन्दीप ने कहा—तो सन्दीपचन्द्र का फिर प्रवेश होगा?

मैंने कहा—आज नहीं—मुझे फ़ुरसत नहीं है।

सन्दीप की दोनों आँखों से जैसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने कहा—केवल विशेष कार्य के लिए ही फ़ुरसत है, और समय नष्ट करने के लिए फ़ुरसत नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईर्ष्या ! प्रबल जहां पर दुर्बल है वहां पर अबला अपने विजय का डङ्का बजाये बिना कहीं रह सकती है ? इसी से मैंने खूब दृढ़ता के स्वर में कहा—नहीं, मुझे फ़ुरसत नहीं है।

सन्दीप का चेहरा उतर गया। वह चला गया। अमूल्य ने कुछ घबरा कर कहा—रानीदीदी, सन्दीप बाबू नाराज़ हो गये।

मैंने तेज के साथ कहा—उनके नाराज़ होने का कोई कारण भी नहीं है और उनको नाराज़ होने का अधिकार भी नहीं है। एक बात तुमसे कहे रखती हूँ अमूल्य, मेरे गहने बेचने की यह बात तुम प्राण जाने पर भी सन्दीप से न कहना।

अमूल्य—नहीं, मैं नहीं कहूँगा।

मैं—तो फिर देर न करो, आज रात की गाड़ी से ही तुम चले जाओ।

यह कह कर अमूल्य के साथ ही मैं बैठक से चली गई। बाहर आकर देखा, बरामदे में सन्दीप खड़ा हुआ है। मैंने समझ लिया, वह अभी अमूल्य को पकड़ लेगा। वही बचाने के लिए मैंने सन्दीप को बुलाया। पास आने पर कहा—सन्दीप बाबू, आप क्या कहना चाहते थे ?

सन्दीप—मेरी बात तो विशेष बात नहीं है। केवल व्यर्थ की बातें थीं। सो जब समय ही नहीं है तब—

मैं—समय है।

अमूल्य चला गया। बैठक में घुसते ही सन्दीप ने कहा—अमूल्य को तुमने एक बक्स दिया है ? उस बक्स में क्या है ?

वह बक्स सन्दीप की दृष्टि से छिप नहीं सका। मैंने ज़रा सख़्ती के साथ कहा—आपसे अगर कहने की बात होती तो आपके सामने ही न देती।

सन्दीप—तुम क्या जानती हो कि अमूल्य मुझसे नहीं कहेगा ?

मैं—नहीं, नहीं कहेगा।

सन्दीप अब अपने क्रोध को सँभाल नहीं सका। वह एक-दम आग हो उठा। बोला—तुम सोचती हो कि मेरे ऊपर प्रभुत्व करोगी, मगर न कर सकोगी। यह अमूल्य, इसे अगर मैं अपने पैरों से कुचल दूँ तो वही उसकी सुख की मौत होगी। मेरे जीते यह न हो सकेगा कि तुम उसे अपना आज्ञाकारी भक्त बना लो !

दुर्बल है ! दुर्बल है ! इतने दिनों के बाद सन्दीप की समझ में आया है कि वह मेरे निकट दुर्बल है। इसी से एकाएक ऐसा असंयत क्रोध उसे हो आया। उसकी समझ में आ गया है कि मुझमें जो शक्ति है उसके आगे ज़ोर-ज़बर्दस्ती न चलेगी। अपने कटाक्ष की चोट से उसके दुर्ग की दीवार मैं तोड़ दे सकती हूँ। मैं कुछ भी न कह कर ज़रा हँस दी। इतने दिनों के बाद मैं उसके ऊपर के दर्जे में आकर खड़ी हुई हूँ—भगवान्, मेरी यह जगह मुझसे न छूटे, मैं यहां से नीचे न उतरूँ। मेरी इस दुर्गति में भी मेरा मान कुछ बना रहे !

सन्दीप ने कहा—मैं जानता हूँ, तुम्हारा वह बक्स गहनों का है।

मैंने कहा—आप चाहे जो अनुमान करें, आपकी ख़ुशी, मैं आपसे न बताऊँगी।

सन्दीप—तुम अमूल्य पर मुझसे अधिक विश्वास करती हो ? जानती हो, वह बालक मेरी छाया की छाया है, मेरी प्रतिध्वनि की प्रतिध्वनि है। मेरे पास से हट जाने पर वह कुछ भी नहीं है !

मैं—जिस जगह पर वह तुम्हारी प्रतिध्वनि नहीं है वहीं पर वह अमूल्य है। वहीं पर मैं उस पर तुम्हारी प्रतिध्वनि की अपेक्षा विश्वास करती हूँ।

सन्दीप—माता की पूजा के लिए अपने सब गहने देने का तुम मुझसे वादा कर चुकी हो। वह बात भूलने से काम न चलेगा। उन्हें तुम दे चुकी हो।

मैं—देवता अगर मेरा कोई गहना बाक़ी रक्खेंगे तो वह मैं उनको दूँगी। मेरा जो गहना चोरी गया, उसे मैं क्यों कर दूँगी ?

सन्दीप—देखो, तुम मुझसे यों फिसल जाने की चेष्टा न करो। इस समय मुझे काम है। वह काम पहले हो जाय। उसके बाद औरतों का यह छलछन्द फैलाने का समय होगा। तब उस लीला में मैं भी शरीक होऊँगा।

जिस घड़ी मैंने अपने स्वामी के रुपये चुराकर सन्दीप के हाथ में दिये उसी घड़ी से हमारे सम्बन्ध के भीतर का सुर चला गया। केवल यही नहीं हुआ कि मैं अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारा मूल्य मिटा कर कानी कौड़ी की तरह सस्ती हो गई हूँ—मेरे ऊपर सन्दीप की भी शक्ति अच्छी तरह असर डालने की जगह नहीं पाती। जो मुट्ठी में आ जाता है उस पर तीर नहीं मारा जा सकता। इसी कारण सन्दीप की आज वह वीर की मूर्त्ति नहीं है। उसकी बातों में कलक का कर्कश इतर सुर लग रहा है।

सन्दीप मेरे मुख के ऊपर अपने दोनों उज्ज्वल नेत्र स्थापित किये बैठा रहा। देखते ही देखते उसकी आँखें जैसे दोपहर के आकाश की तृष्णा की तरह जल उठने लगीं। उसके दोनों पैर एक बार चञ्चल हो उठे। मैंने समझ लिया, वह उठूँ उठूँ कर रहा है, अभी वह उठकर मुझे पकड़ लेगा। मेरा हृदय हिल उठा। सारे शरीर की नसों में खून चक्कर मारने लगा, कानों में साँय साँय होने लगी। मैंने समझ लिया, और ज़रा बैठी रही तो उठ न सकूँगी। प्राणपण शक्ति से अपने को कुर्सी से छुड़ाकर दरवाजे की ओर दौड़ी। सन्दीप के रुँधे हुए गले से सुनाई पड़ा—कहाँ भागी जाती हो रानी?

वैसे ही वह उछल कर मुझे पकड़ने चला। इसी समय बाहर जूतों की आहट पाते ही सन्दीप जल्दी से लौट कर कुर्सी पर बैठ गया। मैं किताबों की आलमारी की ओर मुँह करके किताबों के नामों को निहारने लगी।

मेरे स्वामी के भीतर आते ही सन्दीप बोल उठा—अजी ओ निखिल, तुम्हारी आलमारी में ब्राउनिङ्ग की कविता-पुस्तक नहीं है? मैं मक्खीरानी से अपने उसी कालेज के क्लब की बातें कर रहा था। वह जो ब्राउनिङ्ग की उस कविता के तर्जुमे पर हम चार जनों में लाग-डाँट पड़ गई थी सो याद है? क्या, नहीं याद है! वही यह—

She should never have looked at me,
If she meant I should not love her!
There are plenty...men you call such,
I suppose—she may discover
All her soul to, if she pleases,
And yet leave much as she found them:
But I'm not so, and she knew it
When she fixed me, glancing round them.

—मैंने खींच-खाँच कर इसका एक बँगला-पद्य लिखा था, किन्तु वह ऐसा नहीं हुआ कि बङ्गाली लोग जिसे सदा अमृत की तरह आनन्द से पान करें। एक समय मुझे जान पड़ा था, शायद मैं कवि हो गया। अब विलम्ब नहीं है—विधाता ने दया करके मेरा—किन्तु हम लोगों का साथी दक्षिणाचरण यदि आज नमक की चुङ्गी का इन्स्पेक्टर न होता तो निश्चय कवि हो सकता। उसने इस अँगरेज़ी कविता का खासा तर्जुमा किया था—उसे पढ़ने से जान पड़ता है कि ठीक जैसे बँगला-भाषा पढ़ रहे हैं, जो देश जागरफ़ी में नहीं है ऐसे किसी देश की भाषा नहीं,—वह तर्जुमा यह है—

आमाय भालो बासबेना से एइ यदि तार छिल जाना
तबे कि तार उचित छिल आमार पाने दृष्टि हाना?
तेमन-तेमन अनेक मानुष आछे त एइ धराधामे
(यदि च भाइ आमि तादेर गणिनेक मानुष नामे)—
यादेर काछे से यदि तार खुले दित प्राणेर ढाँका,
तबू तारा रइत खाड़ा येमन छिल तेमनि फाँका।
आमि त नइ तादेर मतन से कथा से जानत मने
यखन मोरे बाँधलो धरे बिद्ध करे नयन कोणे।

[अर्थात्, मुझे प्यार न करेगी वह, यह अगर उसका जाना था
तो क्या उसे उचित था मेरे ऊपर नज़र मारना?
ऐसे ऐसे अनेक मनुष्य हैं इस पृथ्वी पर
(यद्यपि भाई मैं उनको मनुष्य नहीं समझता)—
जिनके आगे अगर वह हृदय का सब ढका हुआ खोल देती
तब भी वे वैसे ही खड़े रहते जैसे शून्य थे।
मैं उनकी तरह नहीं हूँ, यह बात वह जानती थी मन में
जब मुझे नयन-कोण से बेधकर पकड़ कर मुझे बाँध लिया।]

अजी मक्खीरानी तुम बेकार ढूँढ़ रही हो—निखिल ने ब्याह जब से हुआ तब से कविता पढ़ना एक दम छोड़ दिया है। जान पड़ता है, ब्राउनिङ्ग, शेली, लांगफेलो आदि कहीं रद्दी में पड़े होंगे। मैंने काम-काज की भीड़ में मारे कविता-प्रेम छोड़ दिया था, किन्तु जान पड़ता है अब फिर काव्य-ज्वर मुझे चढ़ेगा!

मेरे स्वामी ने कहा—मैं तुम्हें सावधान कर देने के लिए आया हूँ सन्दीप।

सन्दीप ने कहा - काव्य-ज्वर के सम्बन्ध में?

स्वामी ने इस दिल्लगी पर ध्यान न देकर कहा—कुछ दिनों से ढाके से मौलवी का आना-जाना शुरू हो गया है। इस तरफ़ के मुसलमानों को भीतर ही भीतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उभाड़ने का उद्योग हो रहा है। तुम्हारे ऊपर वे लोग कुढ़े हुए हैं, एकाएक एक न एक उपद्रव खड़ा कर सकते हैं।

सन्दीप—तो क्या भाग जाने की सलाह देते हो ?

स्वामी—मैं ख़बर देने आया हूँ, सलाह देना नहीं चाहता।

सन्दीप—मैं अगर यहाँ का ज़मींदार होता तो चिन्ता की बात मुसलमानों के लिए ही होती, मेरे लिए नहीं। तुम मुझे ही उद्विग्न न करके अगर उन लोगों पर ही उद्वेग का दबाव डालो तो वह तुम्हारे और मेरे दोनों के योग्य हो। जानते हो, तुमने अपनी दुर्बलता से पड़ोस के ज़मींदार तक को दुर्बल बना दिया है ?

स्वामी—सन्दीप, मैंने तुमको सलाह नहीं दी, तुम भी अगर मुझको सलाह न देते तो कुछ हर्ज न था। तुम्हारा सलाह देना वृथा है। मुझे और एक बात कहनी है। तुम लोग कुछ दिनों से अपने दलबल के साथ भीतर ही भीतर मेरी प्रजाओं पर उपद्रव कर रहे हो। अब न चलेगा। अब तुम लोगों को मेरा इलाक़ा छोड़ कर चले जाना होगा।

सन्दीप—मुसलमानों के भय से या और कोई भी भय है ?

स्वामी—ऐसा भय है जिस भय का न रहना ही कायरपन है। मैं उसी भय से कहता हूँ, तुमको जाना होगा सन्दीप। पाँच दिन के बाद मैं कलकत्ते जाऊँगा, उसी समय तुमको भी मेरे साथ जाना चाहिए। मेरे कलकत्ते के घर में तुम रह सकते हो, उसमें कोई बाधा नहीं है।

सन्दीप—अच्छा, पाँच दिन सोचने का समय मिला। इस बीच में मक्खीरानी, तुम्हारे मधुचक्र से बिदा होने का गुञ्जन-गान कर लिया जाय ! हे आधुनिक बङ्गाल के कवि, अपना द्वार खोलो, तुम्हारी वाणी लूट लूँ—चोरी तुम्हारी ही है—तुमने मेरे ही गान को अपना गान बनाया है—यद्यपि नाम तुम्हारा है, लेकिन गान मेरा है।

इतना कह कर अपने बेसुर मोटे गले से उसने भैरवी में गाना शुरू कर दिया—

मधुऋतु नित्य होये रइल तोमार मधुर देशे।
जाओया-आसार कान्नाहासि हाओयाय सेथा बेड़ाय भेसे।
याय ये जाना सेइ सुधु याय, फूल फूटा तो फुरोय ना हाय,
झरबे जे फूल सेइ केवलि झरे पड़े बेलाशेषे।
यखन आमि छिलेम काछे तखन कत दियेछि गान;
एखन आमार दूरे जाओया एरो किगो नाइ कोनो दान ?
पुष्पवनेर छायाय ढेके एइ आशा ताइ गेलाम रेखे
आगुन-भरा फागुनके तोर काँदाय येन आषाढ़ एसे॥

(अर्थात्, तुम्हारे मधुर देश में नित्य वसन्त-ऋतु हो रही है। जाने-आने का रोना और हँसी वहाँ हवा में उड़ी उड़ी फिरती है। जो जाता है वही केवल जाता है, फूलों का खिलना तो हाय समाप्त नहीं होता। शेष बेला में जिस फूल को झड़ना है वही केवल झड़ पड़ता है। जब मैं पास था तब कितने ही गान सुनाये हैं, इस समय मैं दूर जाता हूँ, इसका भी क्या कोई गान नहीं है ? पुष्पवन की छाया में ढक कर इसी से यह आशा रक्खे जाता हूँ, आग भरे फागुन को तेरा आषाढ़ न आकर रुलावे।)

साहस का अन्त नहीं। उस साहस का आवरण नहीं, वह एक-दम आग की तरह नग्न है। उसे बाधा पहुँचाने का समय नहीं मिलता, उसे मना करना जैसे वज्र को रोकना है, बिजली उस निषेध को हँस कर उड़ा देती है।

मैं बाहर निकल आई। घर के भीतर की ओर जब जाने लगी तब एकाएक अमूल्य न जानें कहां से आकर मेरे सामने खड़ा होगया। बोला—रानीदीदी, तुम कुछ चिन्ता न करो, मैं जाता हूँ, किसी तरह काम किये बिना न लौटूँगा !

मैंने उसके निष्ठापूर्ण तरुण मुख की ओर देख कर कहा—अमूल्य मुझे अपने लिए चिन्ता न होगी, पर तुम्हारे लिए चिन्ता बनी रहेगी।

अमूल्य चला जा रहा था, मैंने उसे बुला कर पूछा—अमूल्य, तुम्हारे मा हैं ?

अमूल्य—हैं।

मैं—बहन ?

अमूल्य—नहीं। मैं अपनी मा का अकेला लड़का हूँ। मेरे बाप मैं जब छोटा था तभी मर गये थे।

मैं—तुम जाओ, अपनी मा के पास लौट जाओ, अमूल्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमूल्य—दीदी, मैं यहाँ अपनी मा को भी देख रहा हूँ—अपनी बहन को भी देख रहा हूँ।

मैं—अमूल्य, आज रात को जाने के पहले यहाँ भोजन कर जाना।

अमूल्य—समय नहीं मिलेगा, दीदीरानी, अपना प्रसाद मुझे दे देना, मैं अपने साथ लेता जाऊँगा।

मैं—तुम्हें क्या खाना रुचता है अमूल्य?

अमूल्य—मुझे बड़े बहुत रुचते हैं और खोये की गुझिया। मा के पास जब था तब वह अक्सर बना कर खिलाती थीं। लौट कर तुम्हारे हाथ के बड़े और गुझिया खाऊँगा दीदीरानी!

(असमाप्त)

रूपनारायण पाण्डेय

चारु चयन।

१—दिल के फफोले।

चौपदे

धूल में धाक मिल गई सारी।
रह गये रोब-दाब के न पते।
अब कहाँ दब-दबा हमारा है।
आज हैं बात बात में दबते॥ १॥

देखना है अगर निकम्मापन।
तो हमें आँख खोल कर देखो।
हैं हमीं टाल-टूल के पुतले।
जी हमारा टटोल कर देखो॥ २॥

टाट कैसे नहीं उलट जाता।
रुचि बुरी चाटकी बनी चेरी।
दिन पड़े खाट पर बिताते हैं।
काहिली बाँट में पड़ी मेरी॥ ३॥

क्यों बला में न बोलियाँ पड़तीं।
जब बने जान-बूझ कर तुतले।
फूट पड़ती न वाँ बिपत कैसे।
हैं जहाँ बैर-फूट के पुतले॥ ४॥

जाति आँखों की बड़ी अक्सीर को।
हैं गया बीता समझते राख से।
देखते हम आँख भर कर क्या उसे।
देख सकते हैं न फूटी आँख से॥ ५॥

तब बला में न किस तरह फँसते।
जब बला टाल ही नहीं पाते।
हो सकेगा उबार तब कैसे।
जब रहे बार बार उकताते॥ ६॥

बेहतरी किस तरह हिली रहती।
जब रहे काहिली दिखाते हम।
भूल कैसे न तब भला होती।
जब रहे भूल भूल जाते हम॥ ७॥

किस तरह काम हो सके कोई।
जब कि हैं काम कर नहीं पाते।
किस तरह गुत्थियाँ सुलझ सकतीं।
जब रहे हम उलझ उलझ जाते॥ ८॥

हैं अगर देख-भाल कर सकते।
क्यों नहीं देख-भाल की जाती।
तब भला किस तरह भला होगा।
जब भली बात ही नहीं भाती॥ ९॥

ढङ्ग मनमार बैठ रहने का।
है गया रोम रोम में रम सा।
छूट पाईं लतें न आलस की।
है भला कौन आलसी हम सा॥ १०॥

२—अरबी-साहित्य के क्षेत्र में हज़रत अली साहब।

पढ़े-लिखे लोगों के सिवा अनपढ़ भी हज़रत अली साहब के नाम से अपरिचित नहीं हैं। अखाड़ेवाले मुसलमान बहुधा—या अली! या अली! कहा करते हैं। मुहर्रम के अवसर पर भी आपका नाम कुछ कम नहीं लिया जाता। आप हज़रत मुहम्मद के चचेरे भाई ही नहीं, किन्तु दामाद भी थे। आपके कई नाम थे, पर आपकी प्रसिद्धि अली नाम से ही है। जिन अन्य नामों का पता चलता है वे ये हैं—'मुरतज़ा', 'हैदर', 'असदुल्लाहुलग़ालिब', 'अबूतुराज़', 'अबुलहसन' और 'शेरे-ख़ुदा'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि-स्वरूप।

हज़रत अली साहब जिस प्रकार अपने शौर्य तथा सच्चरित्रता के कारण बहुत मान्य हैं और आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं, उसी प्रकार वे अपने विद्या-व्यसन के लिए भी कुछ कम मान्य नहीं हैं। आप एक उच्च कोटि के विद्वान् थे। अरबी-भाषा में आपके बहुत से गद्य-पद्य प्रचलित हैं जो अति अलङ्कृत तथा शिक्षा से भरपूर हैं। आपकी कविताओं का एक अपूर्व सङ्ग्रह 'दीवान अली' के नाम से विख्यात है, जो एक मर्म-पूर्ण काव्य-ग्रन्थ है। उसमें से ही कुछ कविताओं का अनुवाद आगे दिया जा रहा है—

सांसारिक माया।

"लोग सांसारिक पदार्थों के लिए लोभ और उद्योग करते हैं। परन्तु ए मेरी आत्मा! तेरे लिए संसार की मनोहारिणी माया अपवित्रता से मिली हुई है। ईश्वर की ओर से बँटवारे के समय, लोगों को सांसारिक चीज़ें, उनकी बुद्धि के अनुसार नहीं दी गईं, बल्कि जो कुछ मिला वह उनके भाग्य के अनुसार मिला है।

"बहुत से विद्वान् और ज्ञानवान् पुरुष ऐसे हैं, कि संसार ने उनके साथ प्रेम नहीं किया। और बहुत से मूढ़ ऐसे हैं कि सङ्कीर्ण-हृदय होने पर भी संसार को प्राप्त किये हुए हैं॥

"यदि जीविका-शक्ति पराक्रम की बदौलत मिला करती तो बाज़ पक्षी अन्य पक्षियों की जीविका झटक ले जाया करते॥"

मुवर्रद नामी विद्वान् का कथन है कि ऊपर की अनुवादित सामग्री के मूल अरबी पद्य हज़रत अली साहब की तलवार पर खुदे थे।

भक्त के उद्गार।

"हे दानशील और सर्वश्रेष्ठ परमात्मन्! केवल तू ही सारी प्रशंसा का पात्र है। तू वृद्धि करता है, जिसको चाहे उसी को सब कुछ देता है और जिसको न चाहे उसे कुछ भी नहीं देता। परमात्मन्! मेरे रचयिता! शरणदाता! मेरे आश्रय! क्या दुःख अथवा सुख में तेरा ही ध्यान मैं नहीं धरता? परमात्मन्! यदि तेरे दरबार से मुझे लाभ न हुआ और मैं यहाँ से निराश हो कर लौट गया तो भला अन्य किससे मैं आशा कर सकता हूँ और किसको तेरे यहाँ सिफ़ारिशी बना सकता हूँ।

"परमात्मन्! मेरे पाप निस्सन्देह बहुत बड़े और अधिक हैं पर तेरी कृपालुता भी तो कुछ कम नहीं है।

"हे सर्वज्ञ! सर्वान्तर्यामिन्! तू मेरा हाल रत्ती रत्ती जानता है, यहाँ तक कि हमारी काना-फूँसी भी तुझसे छिपी हुई नहीं है।

"स्वामिन्! तू चाहे मुझे हज़ार वर्ष तक दुख देता रहे, पर मैं तुझसे नाता न तोड़ूँगा।

"स्वामिन्! यदि तूने मेरी ओर कृपादृष्टि रक्खी तो मेरा क्षय न होगा, अन्यथा मेरा नाश हो जायगा।

"हे हर्ता, कर्ता! यदि पुण्यात्माओं के सिवा किसी और को तू न तारे तो जो अपने विषयों के दास हैं उनका पार लगानेवाला और कौन है!।

"हे सच्चिदानन्द-स्वरूप! मैं तेरे सिवा और किसी के द्वार पर नहीं गया, सो यदि मैं यथोचित अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकता तो क्या हर्ज?

"हे दीनदयालु! यदि तूने मेरी मनोकामना पूर्ण न की और मुझको दुतकारा तो मैं क्या कर सकता हूँ।"

यात्रा-प्रशंसा।

"उन्नति के शिखर पर पहुँचने के निमित्त, तू गृह त्याग कर और यात्रार्थ प्रस्थान कर और जान ले कि यात्रा से पाँच लाभ होते हैं—

दुःख का नाश, वृत्ति की प्राप्ति, विद्या और व्यवहार का ढङ्ग और श्रेष्ठ जनों की सङ्गति।

"हाँ, यात्रा में नाना प्रकार की आपत्तियों का मुँह देखना और जङ्गल तथा पहाड़ आदि से भी गुज़रना पड़ता है।

"ऐसी घोर आपत्तियों का भोगना तथा मर जाना भी अच्छा है, परन्तु ऐसे अपमान-जनक स्थानों में रहना अच्छा नहीं है, जहाँ डाह और द्रोह हों।"

*ईश्वरीय न्याय पर विश्वास।

"हम ईश्वर के पास न्याय के निमित्त जायँगे और

---

* इस शीर्षक में उस कविता के कुछ पदों का भाव दिया जा रहा है जिसे हज़रत अली साहब ने अपने शत्रु माविया के पास भेजा था। लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी के पास ही सारे झगड़ों का निपटारा वास्तविक रूप से होता है।

"अतः जब कि हम दोनों उसके सामने पहुँचेंगे तो तू जान लेगा कि हममें से अत्याचारी कौन है।

"तू मृत्यु के गढ़ (संसार) में सदैव रहना चाहता है। परन्तु ज्ञात रहे कि तुझसे पूर्व के लोगों ने भी ऐसी ही इच्छा की थी।

"तू मृत्यु की ओर से ग़ाफ़िल है, किन्तु मृत्यु तुझसे ग़ाफ़िल नहीं है। हे घोर निद्रा में सोनेवाले ! तू जाग उठ।

"तू क्षय को प्राप्त हो रहा है, किन्तु तुझे तनिक भी चिन्ता नहीं है। तुझे भली-भाँति ज्ञात रहे कि इस भूमण्डल की कोई भी वस्तु सदैव क़ायम नहीं रहेगी।"

*हज़रत मुहम्मद साहब के लिए शोक।

"हज़रत मुहम्मद साहब की मृत्यु तथा उनके गाड़े जाने के पश्चात् अब मैं किसी अन्य मृतक के निमित दुखी नहीं हूँगा।

"हमें अपने ईश्वरीय दूत के निमित्त दुःख मिला। अतः अब हम जब तक जीते रहेंगे मृत्यु का अन्य कोई भयानक दृश्य नहीं देखेंगे।

"हम उनके दर्शन से सन्मार्ग पाते थे और वे हममें आते-जाते थे।

"उनकी मृत्यु के पश्चात् दिन में ही हम पर अँधेरा छा गया और वह अँधेरा ऐसा है कि उसके सामने रात की अँधियारी भी कोई वस्तु नहीं है।

गद्य की भी कुछ बातें।

पद्य के सिवा गद्य में भी हज़रत अली साहब की बहुत सी अमूल्य कहावतें तथा सुभाषित हैं। उन्हीं में से उदाहरणार्थ कुछ नीचे दिये जाते हैं:—

१—विद्या नीच को भी ऊपर उठा देती है और अविद्या उच्च को भी पछाड़ डालती है।

२—अविद्या से बुरा कोई रोग नहीं।

३—अविद्या की कोई ओषधि नहीं।

४—जो मीठी वाणी बोलता है उसके बहुत से भाई हो जाते हैं।

५—किसी वक्ता की ओर न देखो, बल्कि उसकी वक्तृता की ओर ध्यान दो।

६—घमण्ड का साथ प्रशंसा नहीं देती।

७—श्रेष्ठता दुराचार का साथी नहीं।

८—डाही को सुख कहाँ।

९—सम्मति के परित्याग से भलाई कहाँ।

१०—मूढ़ मित्र से चतुर वैरी अच्छा है।

११—यदि संसार तेरे अनुकूल हो तो घमण्ड न कर और यदि प्रतिकूल हो तो अधीर न हो।

१२—केवल सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही प्रत्येक आपत्ति को टाल सकता है।

निदान पद्य और गद्य दोनों में जो मर्म तथा भाव पाये जाते हैं वे कुछ कम प्रशंसनीय नहीं हैं। आपके विचारों तथा विद्या की प्रतिभा का दिग्दर्शन आपके जीवन तथा पद्यों से ही यथेष्ट-रूप से बहुत कुछ हो जाता है।

महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल

३—अन्योक्ति-दोहावली।

तू सह सकता है नहीं, काँच ! तनिक भी आँच,
फिर क्या है अचरज भला, रहा काँच का काँच ? ॥१॥
है वसन्त ! तू भी अहो ! बस मतलब का यार।
कब तू है रुकता वहाँ, बीती जहाँ बहार ? ॥ २ ॥
जलद ! सोच मन में ज़रा, है क्या तेरा नाम।
ओले बरसाना हुआ, कब से तेरा काम ? ॥ ३ ॥
मोती ! तज अभिमान यह, मैं हूँ सुन्दर गोल।
आब छोड़ कर देख ले, क्या रह जाता मोल ॥ ४ ॥
मोती ! तूने है सहा, रत्नाकर-विच्छेद।
तुच्छ मान के हित न क्या, लिया हृदय भी छेद ? ॥ ५ ॥
किया ख़ूब अन्धेर था, तूने काली रात।
अपना सा मुँह ले चली, जब हो गया प्रभात ॥ ६ ॥

---

* हज़रत अली साहब ने हज़रत मुहम्मद साहब की मृत्यु के शोक में कई कवितायें की हैं। उन्हीं में से एक के कुछ पद्यों का भाव इस शीर्षक में दिया गया है।

लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे ले परिचय प्रेम का, जल कर शीघ्र पतङ्ग ? ।
बुझे कहीं दीपक नहीं, रङ्ग हुआ बदरङ्ग ॥ ७ ॥
उछल कूद अब खूब ही, मचा रहे दिन-रात ।
मेढक जी ! तुम थे कहाँ, जब न रही बरसात ? ॥ ८ ॥
मृग-समाज के क्या न तुम, हो रक्षक सिरताज ? ।
पर भक्षक बन कर हुए, स्वयं वध्य मृगराज ? ॥ ९ ॥
श्वान ! भूँकता व्यर्थ क्यों, है तू मूढ़ महान् ? ।
ध्यान न देगा गज कभी, सत्य बात यह मान ॥ १० ॥
क्यों इतना इतरा रही, ऊँचे चढ़ कर चङ्ग ? ।
होगा चूर ग़रूर सब, वायु बहा बेढङ्ग ॥ ११ ॥
पैदा कर तुम फूल फल, कर देते सब दान ।
पादप ! तुम सा जगत में, कौन उदार महान् ? ॥ १२ ॥
ईश-शीश पर चढ़ सुमन ? मत कर तू अभिमान ।
अल्प समय का मान है, यह तू निश्चय जान ॥ १३ ॥

गोपालशरणसिंह

४—कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र ।

बहुत से अँगरेज़ी पढ़े हुए लोगों का यह ख़याल था कि संस्कृत-साहित्य में अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी कोई ग्रन्थ ही नहीं है । संस्कृत-साहित्य तो पौराणिक कथाओं, कविताओं तथा अन्य ऐसी ही बातों का पुञ्ज है । उसमें ऐसे ग्रन्थों का अभाव है जिनसे मनुष्य का जीवन उपयोगी और श्रीसम्पन्न बन सके । हमारे देश के शिक्षित पुरुष प्रायः वही कहने लगते हैं जो उनके गुरु अँगरेज़ विद्वान् कहते हैं । यद्यपि इस देश में संस्कृत-विद्या का पठन-पाठन कम होगया है; तथापि अभी संस्कृत के ऐसे ऐसे धुरन्धर विद्वान् जीवित हैं जिनके सामने इँगलेंड, जर्मनी तथा फ्रांस के संस्कृतज्ञ बच्चों के समान हैं । उनसे कोई पूछने नहीं जाता है कि संस्कृत-साहित्य में कैसे कैसे ग्रन्थ हैं । इस विषय में प्रमाण माना जाता है पाश्चात्य पण्डितों का, जिन्होंने कुछ संस्कृत-ग्रन्थ पढ़ कर अपनी मनमानी बातों पर अँगरेज़ी में ग्रन्थ लिख डाले हैं और जो इस बात का दावा करते हैं कि जो कुछ संस्कृत-भाषा में है उन सभी को वे जानते हैं और उनके सामने देशी पण्डित कुछ भी नहीं जानते । कुछ समय हुआ कि मैसूर-राज्य में प्राचीन अर्थ-शास्त्र पर भी एक ग्रन्थ हाथ लग गया । इस ग्रन्थ को डाक्टर शामशास्त्री ने प्रकाशित कर दिया और उसका अँगरेज़ी अनुवाद भी निकाल दिया । इस पुस्तक के निकलते ही पाश्चात्य संस्कृत-विद्वानों में धूम मच गई कि संस्कृत-साहित्य में भी अर्थ-शास्त्र है और इस पुस्तक को पढ़कर हमारे देश के कुछ अँगरेज़ी शिक्षित लोग भारतीय अर्थ और नीति-शास्त्र-सम्बन्धी पुस्तकें लिखने लगे । जो ग्रन्थ मैसूर में उपलब्ध हुआ है उसका नाम है कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र । इसके रचियता हैं संसार-प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्य-मुनि, जिन्होंने नन्दराजाओं का नाश कर चन्द्रगुप्त को राज्य पर बैठाया था । इस ग्रन्थ के लिखे जाने का समय है ३२१-३०० वर्ष ईसा के पूर्व अर्थात् आज से लगभग २३०० वर्ष पहले । इसलिए ग्रन्थ बहुत प्राचीन है और उस समय की परिस्थिति बताने के लिए एक ही है । ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्त्व बहुत है । इस बात का यह भी प्रमाण है कि इस ग्रन्थ के आधार पर अँगरेज़ी में कितनी ही पुस्तकें लिखी गई हैं और इनके लेखकों की अच्छी प्रसिद्धि हुई है । इन पुस्तकों में से कुछ ये हैं—

(1) Public Administration in Ancient India by Dr. P. Banerjee.

(2) Aspects of Ancient Indian Polity by Dr. Narendra Nath Law.

(3) Corporate life in Ancient India by Dr. Mazumdar.

(4) Political institutions and Theories of the Hindus by Mr. Benoy Kumar Sarkar.

(5) Dr. D. B. Bhandarkar's Carmichael lectures.

(6) A History of Hindu Political theories by U. Ghosal, M. A., Ph. D.

इन सब पुस्तकों के मूलतत्त्व कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र से लिये गये हैं । इनमें कुछ सम्पुट कामन्दकनीति, शुक्रनीति और महाभारत के शान्तिपर्व के तत्त्वों का भी लगा दिया गया है । अर्थ-शास्त्र के रचयिता कौटिल्य ही नहीं हैं । उन्होंने तो अनेक प्राचीन आचार्यों के सिद्धान्तों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवाला दिया है; जिससे ज्ञात होता है कि इस विषय पर प्राचीन काल में बहुत से ग्रन्थ थे, जो अब अनुपलब्ध हैं। जिन आचार्यों का उल्लेख कौटिल्य ने अपने अर्थ-शास्त्र में किया है उनमें से कुछ के नाम ये हैं—भारद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कौणपदेत, वातव्याधि, बाहुदन्ती पुत्र आदि आदि—

कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र १५ अधिकरणों में विभक्त है, जिनमें तत्कालीन सभी बातों का वर्णन है। इस ग्रन्थ से प्राचीन भारत की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक परिस्थिति का पता लगता है। इसे उस काल का इतिहास कहा जाय तो अनुपयुक्त नहीं है।

इस ग्रन्थ में से हम कुछ हाल सूती तथा ऊनी कपड़ों के विषय में लिखते हैं। सूती कपड़ों में ये कपड़े प्रसिद्ध और उत्तम हैं—

१ माधुर—वह कपड़ा जो दक्षिण में मदुरा नामक नगर में बनाया जाता था।

२ अपरान्तक—वह कपड़ा जो कोंकण देश में बनाया जाता था।

३ कालिङ्गक—वह कपड़ा जो कलिङ्गदेश में बनाया जाता था। इस देश को अब उत्तरी सरकार कहते हैं और यह उड़ीसा के दक्षिण में गोदावरी तक है।

४ काशिक—वह कपड़ा जो बनारस में बनता था।

५ वाङ्गक—वह कपड़ा जो ढाका आदि बङ्गाल के शहरों में बनता था।

६ वात्सक—वह कपड़ा जो कौशाम्बी में बनता था। यह स्थान इलाहाबाद से ३०-३२ मील है।

७ माहिषक—वह कपड़ा जो माहिष्मती के आस-पास बनता था। माहिष्मती नगरी नर्मदा-नदी के तट पर विन्ध्या और ऋक्ष पर्वत-श्रेणियों के बीच में जबलपुर के आगे थी।

यों तो सूती कपड़ा सभी जगह बनता था, लेकिन जिन स्थानों का कपड़ा बड़ा नामी और प्रशस्त था उनमें से ऊपर लिखी सात जगहें हैं। अर्थात् मदुरा, कोंकण, कलिङ्ग अर्थात् उत्तरी सरकार, बनारस, वङ्गदेश में ढाका आदि, कौशाम्बी और माहिष्मती। ये नामी कपड़ों के भारतीय केन्द्र थे। केवल ढाके का कपड़ा ही मशहूर नहीं था, बल्कि इन सब स्थानों का। खेद है कि विदेशी राज्य-शासन ने इन सभी केन्द्रों की कला का नाश कर दिया।

कौटिल्य के इस ग्रन्थ से पता चलता है कि प्राचीन कालीन राजाओं के कारखानों में एक सूत्रशाला भी रहती थी। उसमें सूत्राध्यक्ष की निगरानी में कारीगर सूत, कवच, कपड़ा तथा रस्सी का काम करते थे। यह अध्यक्ष ऊन, रेशे, रुई, जूट, सन आदि का सूत कतवाता था और यह काम इन लोगों से लिया जाता था—

विधवा, अङ्गविकल, लड़की, वैरागिन, राज्यदण्डित, वेश्या की वृद्ध माता, वृद्ध राजदासी, मन्दिर की छूटी देव-दासी आदि।

यह बात बड़े मार्के की है। आज-कल इन स्त्रियों के जीवन-निर्वाह का कोई उपाय ही नहीं है। उन दिनों इनके लिए नियुक्त काम था और उसकी मज़दूरी से ये अपना जीवन भले प्रकार व्यतीत करती थीं। इनके बटे सूत की जाँच की जाती थी और उनकी मज़दूरी सूत की चिकनाहट, मोटाई तथा मध्यमपन देख कर दी जाती थी। इन्हें पारितोषिक भी दिये जाते थे और तिथि दिनों पर उन्हें अधिक मज़दूरी या मान देकर उनसे काम लिया जाता था। सूत्र-शाला के नियमों में यह भी लिखा है कि जो पर्दानशीन औरतें, विधवायें, प्रोषिता स्त्रियां अर्थात् जिनका पति परदेश में हो और अङ्गविहीन या अल्पवयस्क औरतें अपना पेट पालन करना चाहें उनसे सूत्राध्यक्ष अपनी दासियों द्वारा काम ले और बड़ी इज़्ज़त के साथ उनसे बर्ताव करे। यदि ऐसी औरतें प्रातःकाल स्वयं सूत्रशाला में अपना काम बना कर लायँ तो उनसे उनकी चीज़ें मोल ले ली जायँ और उन्हें पूरी क़ीमत दी जाय। यदि कोई औरतों से कोई असभ्य बर्ताव करता था तो उसे दण्ड दिया जाता था। देर से क़ीमत देने में देर करने पर कर्मचारियों को दण्ड दिया जाता था। सूत्राध्यक्ष का यह भी काम था कि वह सूत्रादि विषयक कार्य को ठेके देकर करवाये और इस काम के कारीगरों से मेल-जोल रक्खे। जो लोग ऐसे कारख़ाने खोलें जिनमें सन, रेशम, ऊन, रुई आदि के वस्त्र बनें तो उनको इस काम में सब प्रकार की मदद दी जाय और गन्धमाला दानादि पारितोषिकों से उन्हें प्रसन्न और सन्तुष्ट किया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊनी कपड़े—

भेड़ का ऊन तीन प्रकार का होता था—सफ़ेद, गुलाबी और कमल के समान लाल, इससे निम्न प्रकार के वस्त्र बनते थे:—

(१) खचित—ऐसा वस्त्र जिसमें बटा हुआ सूत न लगे, बल्कि ऊन जमाया जाय जैसे पशमीना, नम्दा या फ़ेल्ट।

(२) वानचित्र—भिन्न भिन्न रङ्गों के ऊन का बना।

(३) खण्ड सङ्घात्य—जो पट्टियाँ जोड़ कर बनाया गया हो।

(४) तन्तुविच्छिन्न—जो ऊन के सूत से ताना-बाना एक सदृश बुना गया हो। ऊन के कम्बल इतने प्रकार के होते हैं—

१ कौचपक—मोटा कम्बल।
२ कुलमितिका—सिर पर बाँधने योग्य।
३ सौमितिका—बैल के ऊपर डालने योग्य।
४ तुरङ्गास्तरण—घोड़े पर डालने योग्य।
५ वर्णक—रङ्गीन कम्बल।
६ तलिच्छक—बिस्तर की चादर।
७ वारवाण—कोट बनाने योग्य।
८ परिस्तोम—लम्बा कम्बल।
९ समन्तभद्रक—हाथी पर डालने का कपड़ा।
१० भिङ्गिसी—काले रङ्ग के ८ टुकड़ों से बना नैपाल का कम्बल। यह वर्षा से बचने के काम में आता है।
११ अपसारक—यह भी उपर्युक्त प्रकार का कम्बल होता है।

इन सबमें जो महीन, चिकना, कोमल और नरम कम्बल है वह उत्तम है।

इसके अतिरिक्त जङ्गली पशु का ऊन भी कई प्रकार का होता था और काम में लाया जाता था। उनके कुछ भेद ये हैं—

(१) सम्पुटिका—यह पैजामे के काम में लाया जाता था।

(२) चतुरश्रिका—नौ अङ्गुल लम्बे कम्बल के काम का।

(३) लम्बरा—लम्बा।

(४) कटवानक—पर्दे के काम का।

(५) प्रावरक—ऊपर के ऊन का ही एक भेद।

(६) सत्तलिका—गलीचे के काम का।

बङ्गाल का ऊन जो वाङ्गक कहलाता था सफ़ेद और चिकना होता था। पौंड्र—पुण्ड्रदेश का ऊन काला तथा मणि की तरह चिकना होता था।

सौवर्णकडय—सुवर्णकुडयदेश का सूर्य की तरह सफ़ेद चमकीला तथा मणि की तरह चिकना पतीले रङ्ग का चौकोन या भिन्न भिन्न रङ्ग का होता था।

सन तथा अन्य प्रकार के रेशों का कपड़ा।

इनके अलावा काशी तथा पुण्ड्रदेश के सन का बना कपड़ा भी उपर्युक्त प्रकार का होता था।

मगध, पुण्ड्र तथा सुवर्णकुडय के भिन्न भिन्न वृक्षों के पत्तों या छालों के रेशे प्रसिद्ध होते थे।

नागवृक्ष, बड़हर, मौलसरी तथा बट से ही ये रेशे निकाले जाते हैं। नागवृक्ष के पीले, बड़हर के गेहुँए, मौलसरी के सफ़ेद और अन्य वृक्षों के मक्खन की तरह सफ़ेद रेशे होते हैं। इनमें सुवर्णकुडय के सन के रेशे उत्तम होते हैं।

रेशम—

रेशम के विषय में यही लिखा है कि वह चीन भूमि का बना चीनी कपड़ा है।

उपर्युक्त विवरण का सारांश यह है कि प्राचीनकाल में भारतवर्ष में सूत, ऊन और सन के अनेक प्रकार के कपड़े बनते थे और इनके लिए भिन्न भिन्न स्थान प्रसिद्ध थे। उस समय भारतवासियों के पहनने के लिए वस्त्र अन्य देशों से नहीं आते थे, बल्कि यहाँ के कपड़े ऐसे सुन्दर और मूल्यवान् बनते थे कि उनकी माँग दूर दूर देशों में थी। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है। भारतवासी प्रायः अहिंसाधर्मानुयायी हैं। ये ऐसी वस्तुओं से बड़ा परहेज़ करते हैं जिनमें हिंसा हो। रेशमी वस्त्र हज़ारों कीड़ों की हिंसा से बनता है, इसलिए इस वस्त्र का इस देश में प्राचीन समय में प्रचार नहीं हुआ। उस समय यहाँ वृक्षों की छाल और पत्तियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेशों से कितने ही ऐसे सुन्दर वस्त्र बनाये जाते थे कि उनके सामने रेशमी वस्त्र कुछ नहीं थे। रेशमी वस्त्रों का प्रचार अधिकतर पिछले समय में ही हुआ है, यदि ध्यान-पूर्वक देखा जाय तो मुसलमानी राज्यकाल में भी रेशमी वस्त्रों का बहुत प्रचार नहीं था, क्योंकि उस समय भारतवर्ष में सूत, ऊन और सन के अनेक प्रकार के कपड़े बनते थे और उनकी धूम सारे जगत् में थी। ढाके की मलमल ही एक ऐसी थी कि उसके सामने रेशमी वस्त्र कुछ भी नहीं था। अँगरेज़ी राज्य-काल में रेशमी वस्त्र का अधिक प्रचार हुआ है। खेद है कि भारत जैसे अहिंसात्मक देश में भी इसकी अपरिमित वृद्धि हो गई। जो अहिंसाधर्म का पालन करते हैं उन्हें चाहिए कि इस पापकर्म से बचें। कीड़ों को मार कर जो रेशमी वस्त्र बनता है उसका पहनना हिन्दू-धर्म के विरुद्ध है। इस प्राचीन ग्रन्थ से पता लगता है कि पहले रेशमी वस्त्र का अधिक प्रचार नहीं था और यह वस्त्र चीन में ही बनता था और वहीं से आता था।

जैसे कपड़े के विषय में लिखा गया है वैसे ही अनेक देशी वस्तुओं के विषय में इस पुस्तक के आधार पर लिखा जा सकता है। उदाहरण—रत्न, मणि, सुवर्ण, चाँदी, अन्य खनिज पदार्थ तथा पशु, पक्षी आदि। उस समय जो जो पेशे थे और जो जो अद्भुत, अनोखी और अमूल्य वस्तुएँ भारतीय कला-कौशल से बन सकती थीं उन सभी का हाल इस पुस्तक में है। राजनैतिक विषयों का तो यह भाण्डार है। राजा का धर्म और कर्तव्य, मन्त्री और अमात्यों की योग्यता और उनके कार्य, विविध कारख़ानों का ब्योरेवार हाल, प्रजापालन और रक्षा की नीति, शत्रु-सम्बन्धी नीति तथा उस पर विजय के उपाय आदि अनेक विषय इसमें वर्णित हैं। पुस्तक पढ़ने से ही पूरा हाल मालूम हो सकता है। हम इस लेख को बढ़ाना नहीं चाहते। फिर किसी दूसरे लेख में इस पुस्तक के आधार पर प्राचीन भारतीय सभ्यता का चमत्कार दिखायेंगे। लेकिन इस समय इतना कहे बिना नहीं रह सकते कि इस पुस्तक में ऐतिहासिक सामग्री के सिवा कुछ ऐसे उपाय और साधन भी दिये हुए हैं जिनसे भारतवर्ष के विज्ञान-शास्त्रियों की विद्वत्ता का पता चलता है।

जो आविष्कार योरप के महायुद्ध के समय हुए हैं उनमें से बहुत से ऐसे हैं जो प्राचीन भारत के लोगों को मालूम थे। युद्ध के समय जर्मनवालों ने एक विषाक्त धुआँ बनाया और जब उसका प्रयोग किया तब समस्त मित्र-सेनाओं में हलचल मच गई और उससे उनकी बड़ी हानि हुई। कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र में ऐसे धुएँ के बनाने और प्रयोग करने की विधि मिलती है। अनेक अद्भुत बातें, जिनका अभी पाश्चात्य जगत् को कुछ भी पता नहीं है, भारतवासियों ने उस समय कर दिखाई थीं। इनमें से कुछ बातों को बता कर हम इस लेख को समाप्त करते हैं।

विषैले धुएँ के बनाने की क्रिया, जलती हुई अग्नि में बिना जले चले जाने का रहस्य, भवन तथा गृह को अग्नि से सदैव रक्षित रखने का उपाय, ऐसे अञ्जन जिनके लगाने से मनुष्य अदृश्य रहे और जहाँ चाहे चला जाय, ऐसी ओषधियाँ जिनके खाने से महीने भर तक भूख ही न लगे, ऐसे लेप जिनके लगाने से मनुष्य १०० योजन तक बिना थकावट के चला जाय आदि ऐसी ऐसी अनेक बातें हैं। इन बातों पर अविश्वास करने के पहले मनुष्य को चाहिए कि इनकी परीक्षा करके देख ले। बिना परीक्षा किये प्राचीन बातों का तिरस्कार करना धृष्टता है।

कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र सर्वथा पठनीय है। प्रत्येक शिक्षित मनुष्य को इसकी एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए। चीज़ बड़े काम की है।

यह पुस्तक अब तीन भाषाओं में प्राप्य है अर्थात् संस्कृत, अँगरेज़ी और हिन्दी। इसका हिन्दी-अनुवाद अभी हाल में ही छपा है। इसके प्रकाशक हैं मोतीलाल बनारसीदास, पंजाब-संस्कृत-पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहोर।

कन्नोमल एम० ए०

५—बँगलोर की सैर।

मुझे सरकारी नौकरी में रहने के कारण लगभग दो वर्ष तक बँगलोर में रहने का मौक़ा मिला है, इस स्थान के विषय में जो कुछ अनुभव मुझे हुआ है वही इस लेख में लिखने का मैं प्रयत्न करूँगा।

बँगलोर भी शिमला, नैनीताल, अलमोड़ा, दारजि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिंग तथा काश्मीर के सदृश रमणीक है। पहाड़ी देश न होने पर भी यह किसी प्रकार उक्त स्थानों से कम सुन्दर नहीं कहा जा सकता। बँगलोर मदरास से पश्चिम की ओर क़रीब दो सौ मील के फ़ासले पर है। यहाँ से मैसूर छियासी मील है। बँगलोर मैसूर-राज्य की राजधानी है। यहाँ की जन-संख्या एक लाख से कुछ अधिक है। यह दो हिस्सों में विभक्त है। एक बँगलोर नगर और दूसरा कंटूनमेंट या सिविल और मिलीटरी स्टेशन। कंटूनमेंट का हिस्सा ब्रिटिश-सरकार को सन् १८८१ में महाराज के फिर से गद्दीनशीन होने पर दे दिया गया था। यहाँ का जल-वायु स्वास्थ्य के लिए अद्वितीय है। समुद्र की सतह से यह नगर तीन हज़ार फ़ुट से कुछ अधिक ऊँचाई पर है। जुलाई में यहाँ अच्छी ऋतु आरम्भ होती है। उस समय दूर दूर के लोग यहाँ सैर-सपाटे के लिए आते हैं। लोगों का कहना है कि बँगलोर उटकमंड पहाड़ से भी अच्छा है। मई और जून के महीने में, जब प्रयाग, लखनऊ, झाँसी में उष्णता ११५ डिग्री बढ़ जाती है, यहाँ अधिक से अधिक गर्मी उस समय ९० डिग्री होती है। बरसात के दिनों में कुछ अधिक ठण्ड मालूम होती है, कारण यह कि हवा ख़ूब चलती है। पानी भी झड़ी लग कर नहीं बरसता। प्रायः शाम को पानी बरसता है। ऐसे समय में तापक्रम ७६ डिग्री हो जाता है। यहाँ ३६ इंच जल गिरता है। स्टेशन के समीप धर्मशाला है, जिसमें यात्रियों के ठहरने का अच्छा प्रबन्ध है, सवारी के लिए विक्टोरिया गाड़ी हैं, जो स्टेशन पर हर समय मिलती हैं। मामूली सवारी झटका है। झटका का प्रचार दक्षिण में सब जगह है। यह एक बैलगाड़ी के सदृश चारों तरफ़ से तोपी होती है। बैठनेवालों को कष्ट होता है, चलने से झटका लगता है, उसमें चार सवारियाँ घुस कर बैठती हैं, आगे के भाग में हाँकनेवाला बैठता है और पीछे का भाग सवारियों के चढ़ने-उतरने के लिए खुला होता है। इसमें बैठा हुआ मनुष्य क़ैदी की तरह चला जाता है और राह के दृश्यों को नहीं देख पाता। यह सवारी सस्ती है और दिन-रात दौड़ा करती है, विशेष कर कंटूनमेंट से सिटी आया-जाया करती है। कंटूनमेंट दो मील होने पर किराया एक ही आना सवारी है। झटका में एक असुविधा और भी है। वह ज़रूरत पड़ने पर अड्डे में ही मिलता है। यह बात विक्टोरिया में नहीं है, यह बहुत प्रतिष्ठित सवारी है। जगह जगह सड़कों पर रहनेवाले लोग और विशेष कर अँगरेज़ इसे रखते हैं। स्थान स्थान पर साइन-बोर्ड लटकता रहता है, जिसमें लिखा रहता है Rubber tyred victoria on hire. आदमी भेजते ही जब चाहिए आपके घर के सामने नियत समय पर यह हाज़िर हो जायगी। किराया इसका बँधा है अर्थात् १॥) में तीन घण्टे। अधिक समय लगने से प्रति घण्टा ।) के हिसाब से और देना पड़ता है। बिना रबर की गाड़ी १) में हो जाती है। यात्रियों को सामान के लिए एक बैलगाड़ी भी करनी पड़ती है। इसके सिवा कंटूनमेंट और सिटी के बीच मोटरकार भी दौड़ा करती है, इसका भी किराया एक आना सवारी है। अपनी हैसियत के अनुसार लोग सवारी करते हैं। गरम न होने के कारण प्रायः बाहर से लोग आकर यहाँ ठहरते हैं। यहाँ की सब सड़कें साफ़-सुथरी और काफ़ी चौड़ी हैं। उन पर सुर्ख़ी पिटी है, भूमि समथल न होने से पहाड़ी जगहों की तरह उतार-चढ़ाव की सड़कें बनी हैं। कोई सड़क, चाहे हिन्दुस्तानी बस्ती में ही क्यों न हो, ऐसी नहीं है जहाँ सवारी न जा सके। चोरी आदि का भय यहाँ कम रहता है। यहाँ कोई नदी नहीं है। हाँ, मैसूर के समीप श्रीरङ्गपट्टन में कावेरी नदी है। यहाँ सड़कों पर बाइसिकिल चलाने में बड़ा आनन्द मिलता है। दो एक फ़र्लांग चढ़ाव मिलने पर फिर ढाल है, जहाँ बाइसिकिल पानी की तरह बहती है। घूमने के समय राह का दृश्य बड़ा सुहावना देख पड़ता है।

यहाँ के मकान प्रायः एक मरातिब के होते हैं। बीच में आँगन नाम-मात्र को दो एक गज़ खुला रहता है। रोशनी के लिए खिड़की-दरवाज़े काफ़ी होते हैं। कारण यह कि यहाँ न तो विशेष सर्दी पड़ती है कि धूप की ज़रूरत हो और न गर्मी ही विशेष होती है कि खुली जगह की ज़रूरत हो। मकान साफ़-सुथरे और दर्शनीय होते हैं। दरवाज़ों की लकड़ी पर ख़ूब नक्क़ाशी रहती है। मकान बनवाने में अधिक ख़र्च भी नहीं पड़ता। मकानों का किराया भी यहाँ कम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इम्प्रूवमेंट-ट्रस्ट ने यहाँ अच्छा काम किया है। प्रथम इसके कि नई सड़क निकाली जाय या चौड़ी की जाय लोगों के बसने के लिए बाहर रहने लायक़ हर तरह के छोटे-बड़े मकान बनवा दिये जाते हैं। अब तक आधे दर्जन के क़रीब नई बस्तियाँ बस चुकी हैं। इन बस्तियों में अँगरेज़, हिन्दुस्तानी, अमीर-ग़रीब सबकी गुज़र के लिए मकान हैं। इन मकानों की बनावट बँगलानुमा है, अर्थात् हर एक मकान में औसत के हिसाब से खुली हुई ज़मीन चारों तरफ़ छोड़ दी जाती है और घेरे की दीवार चारों तरफ़ खींच दी जाती है। एक या दो फाटक आने-जाने के लिए रहते हैं।

बँगलोर में हिन्दू, मुसलमान और ईसाई अधिक संख्या में हैं। हिन्दू-मुसलमानों में वैमनस्य कम है। ईसाई तो केवल नाम-मात्र के ईसाई होते हैं, उनका कुल रीति-रवाज हिन्दुओं का-सा ही है। लुंगी पहरना, सिर पर बड़ी सी चोटी रखना, हिन्दुओं के बड़े बड़े त्योहारों में भाग लेना, व्याह-शादी की रीति-रस्म सब हिन्दुओं की सी हैं। हाँ, एतवार को औरत-मर्द गिरजे जाते हैं और विवाह की रस्म भी गिरजे में पादड़ी कराता है। मुर्दे यहाँ हिन्दुओं के भी गाड़े जाते हैं, पर उनके जलाने का भी बन्दोबस्त है।

बाहरी लोगों के साथ बँगलोरवालों का ऊपरी व्यवहार अच्छा होता है। पर आपस में द्वेष-भाव रखते हैं। मेहमानदारी यहाँ चाय या काफ़ी से शुरू होती है। मदरासी काफ़ी के बड़े शौक़ीन होते हैं। चाय या काफ़ी बनाने के लिए स्टोव हर समय तैयार रहता है। भोजन में दही, इमली और मिर्चा विशेष रूप से रहता है। स्वभावतः यहाँ के लोग मिलनसार होते हैं। पहनावा साधारणतः लुङ्गी और दुपट्टा है। स्त्रियाँ अठारह या बीस हाथ की साड़ी पहनती हैं। सधवा आँचल सिर पर नहीं रखतीं। मुसलमान स्त्रियाँ पर्दे में रहती हैं। स्त्रियाँ बड़ी मेहनती होती हैं। घर का सब काम प्रायः वे ख़ुद कर लेती हैं। मकान को साफ़-सुथरा रखने में उनका विशेष ध्यान रहता है। वे सूर्य निकलने के पहले घर के दरवाज़े के सामने गोबर डाल और झाड़ू लगा कर एक प्रकार का नक़्शा, जिसको मुग कहते हैं, बनाती हैं। इस नक़्शे के बनाने में उनका हाथ ख़ूब मँजा है। जिस दरवाज़े पर मुग न बना हो, समझना चाहिए कि वहाँ कुछ शोचनीय घटना हुई है। ईसाइयों के घर के सामने भी ऐसा ही होता है। यहाँ के निवासी साग-भाजी और फल के शौक़ीन हैं। प्रातःकाल सब्ज़ी-मण्डी से लोग इच्छानुसार चीज़ें ले आते हैं। यहाँ हर ऋतु में हर तरह की तरकारी और साग मिलता है और सस्ता मिलता है। फल के लिए यह जगह विख्यात है। केला, नारियल, काजू, सन्तरा, आम और शरीफ़ा बहुतायत से होता है। आम भी बहुत अच्छी जाति का होता है। शरीफ़ा बड़ा, उम्दा और सस्ता होता है। सन्तरा भी निहायत उम्दा होता है। पपीता यहाँ का बड़ा, वज़नी और दलदार होता है। पपीता तो शायद ही कहीं ऐसा मीठा होता हो जैसा यहाँ होता है। बहुत से फल जैसे लीची, खिरनी और फालसा यहाँ नहीं होते। यहाँ का मुख्य भोजन चावल है। चावल पकाने के लिए एक हाँड़ी होती है, जो साल में दो एक बार बदली जाती है। ब्राह्मणों के यहाँ लड़कियों का विवाह रजस्वला होने के पहले हो जाता है और व्याह-सम्बन्ध बहुत निकट रिश्तेवालों में होता है। अर्थात् एक नाते से मामा और भानजा दूसरे नाते से ससुर और दामाद होता है। इतर जातियों में लड़कियाँ सामर्थ्य होने पर व्याही जाती हैं। प्रथम बार रजस्वला होने पर लड़की का देखावा होता है। लड़की सज-धज के साथ एक हिंडोला या मचान पर अपनी सहेली के साथ बैठती है। इष्ट-मित्र और बिरादरी के लोग बुलाये जाते हैं, पान-सुपारी तथा नारियल बाँटा जाता है। सगाई के लिए वर की ओर से सूचना आती है। नाती होने पर इन लोगों में ख़ुशी मनाई जाती है। लड़की का पिता लड़की के यहाँ भोजन कर सकता है। हिन्दुओं के मुख्य त्योहार, जैसे दिवाली, दशहरा और होली आदि, यहाँ जान नहीं पड़ते। थोड़े से मारवाड़ी जो यहाँ बसे हैं कुछ उत्सव ऐसे समयों पर करते हैं। दिवाली में पटाका छूटता है, दशहरा में मन्दिरों में झाँकी सजाई जाती है और विजया दशमी के दिन शाम को रथ निकाल कर लोग एक स्थान पर इकट्ठा होते हैं। ईसाइयों का त्योहार बड़ा धूम से मनाया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बँगलोर का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्युत्तम है। जिधर नज़र डालिए उधर सब्ज़ी दिल और दिमाग़ को तर कर देती है। हर बँगले में आदमी के क़द के बराबर लाल, पीले, हरे और रङ्ग-बिरङ्गे करोटन के वृक्ष गुंजान में लगे रहते हैं। हर तरह के और भी फूल और लतायें वहां की शोभा को बढ़ाती हैं। बँगले और मकान तथा सरकारी इमारतें गेरुए रङ्ग से रँगी होती हैं। सड़कें उतार-चढ़ाव की होने के कारण किसी भी ऊँची जगह पर से देखने से अजीब छटा दीख पड़ती है। बँगलोर पहुँचते ही वहां की सुन्दरता तथा स्वास्थ्यकर जल-वायु का अनुभव होने लगता है। गरम हवा बहते कभी देखी ही नहीं जाती। धूप में चाहे जितनी गरमी हो, छाया में गरमी और पसीने का नाम नहीं। वहां के लोग जानते ही नहीं कि लू किसे कहते हैं। पंखे की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। स्नान नित्य गरम पानी से किया जाता है। जो अँगरेज़ विलायत वापस जाने में असमर्थ होते हैं, वे प्रायः पेंशन लेने के बाद यहीं ठहर कर अपना शेष जीवन व्यतीत करते हैं। यहां अँगरेज़ विशेष संख्या में पाये जाते हैं। इसी लिए इसका नाम 'छोटा विलायत' पड़ गया है।

बँगलोर में बहुत-सी जगहें सैर करने की हैं। उनमें से घुड़दौड़ की जगह, कबन-पार्क, लालबाग़, परेड, महाराज का महल, अठारह कचहरी, अजायबघर और विक्टोरिया अस्पताल विशेष उल्लेखनीय हैं। अँगरेज़ों के लिए होटल भी काफ़ी हैं। बिजली की रोशनी का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। रात को तमाम शहर ऐसा रोशन रहता है कि कहीं अन्धकार का नाम नहीं रहता। बिजली की शक्ति कावेरी के जल-प्रपात से भूतपूर्व दीवान सर शेषाद्रि आइयर के प्रयत्न से निकाली गई है। उसकी रोशनी ठण्ढी होती है। बड़े बड़े अस्पताल तीन या चार हैं, जिनमें रोगियों के आराम के लिए विशेष ध्यान दिया जाता है और वहां का प्रबन्ध भी अच्छा है। म्यूनिसिपैलटी की तरफ़ से स्वास्थ्य का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया गया है। सवेरा होते ही कुल शहर की सफ़ाई कर दी जाती है। यहां से कुछ दूर पर कोलर, जहां सोने की खानें हैं, देखने योग्य है। भला ऐसे स्थान में, जहां के दृश्य ऐसे मनोहर, जल-वायु इतना आरोग्यप्रद और गुणकारी, सुगन्धित फूल और फल इतने अधिक हों और स्वास्थ्य-रक्षा का इतना अच्छा प्रबन्ध हो, मनुष्य को आनन्द क्यों न मिले ?

मूलचन्द्र भट्ट

६—अमीर अमीनउल्ला।

योरपीय युद्ध की समाप्ति के समय अफ़ग़ानिस्तान में एक लोमहर्षण घटना हो गई थी। किसी ज़बरदस्त घातक द्वारा वहां के प्रजाप्रिय अमीर हबीबुल्ला का वध हो गया था। उस समय अमीर राजधानी से दूर राज्य के दौरे पर थे। इसके बाद राज्याधिकार-प्राप्ति के लिए काबुल में जो जटिल घटनायें हुईं और वर्तमान अमीर जिस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान के प्रजाप्रिय शासक बन बैठे, ये सब बातें काबुल के राजनीतिज्ञों के बुद्धि-कौशल के विलक्षण नमूने हैं। इनसे तथा वहां की वर्तमान अवस्था देख कर कहा जा सकता है कि अफ़ग़ानिस्तान में नई जागृति हुई है और यह स्थिति डेढ़ सौ वर्ष के बाद उपस्थित हुई है।

वर्तमान अमीर का नाम अमीनउल्ला है। ये स्वर्गीय अमीर के सबसे छोटे पुत्र हैं। नये अमीर के शासन-भार ग्रहण करने के बाद ही पिछला अफ़ग़ान-युद्ध हुआ था। उसके फलस्वरूप अफ़ग़ान-सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय मामले में भाग लेने की स्वतन्त्रता मिल गई। इस प्रकार अफ़ग़ानिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र राष्ट्र हो गया। इस समय अफ़ग़ानिस्तान का राजनैतिक सम्बन्ध रूस, जर्मनी, फ़्रांस और तुर्की से क़ायम हो गया है और दूसरे राष्ट्रों से भी बातचीत हो रही है। यही नहीं, अफ़ग़ान-सरकार के दूतावास विदेशों में क़ायम हो चुके हैं, तदनुसार अफ़ग़ानिस्तान में भी इस समय विदेशी राजदूतों के वासस्थान क़ायम हो रहे हैं। एशिया में पेकिन, टोकियो के सिवा काबुल भी अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व को शीघ्र ही प्राप्त करनेवाला है।

अमीर अमीनउल्ला ने अफ़ग़ानिस्तान की काया पलट दी है। इस समय वहां सभी ओर उन्नति के लक्षण देख पड़ रहे हैं। यह सब बहुत बड़े परिश्रम का फल है। जो बीज बोकर अमीर अब्दुर्रहमान ने पौधे लगाये थे और जिन पौधों को उनके पुत्र ने भले प्रकार संवर्द्धित किया वे आज उनके पौत्र के निरीक्षण में सुफल दे रहे हैं। आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काबुल का जो नाम संसार में प्रसिद्ध हुआ है वह इसी महामना शासक की कर्तव्यपरायणता का फल है।

काबुल के वर्तमान अमीर अभी युवक ही हैं, पर उनका रङ्ग-ढङ्ग आज-कल के एशियाई राजाओं जैसा नहीं है। वे स्वयं न तो आलसी और न विलासी हैं और न राज-परिवार में आलस्य और विलासिता की बू रहने देना चाहते हैं। दरबार में काम करो और सीधे-सादे ढङ्ग से रहो, इसी का जयघोष इस समय सारे अफ़ग़ानिस्तान में हो रहा है। स्वयं अमीर सादी पोशाक पहनते हैं, यहाँ तक कि उन्होंने खद्दर तक पहना है। दरबार से सजावट का बहिष्कार-सा हो गया है और जो थोड़ी बहुत सजावट शाही-भवनों में देख पड़ती है वह भी बहुत साधारण है।

अमीर अमीनउल्ला शिक्षा-प्रचार के बड़े प्रेमी हैं। शिक्षा-विभाग के व्यय की पूर्ति के लिए उन्होंने राज-भाण्डार की सारी दरियाँ बेच डाली हैं। स्कूलों की संख्या-वृद्धि हो रही है और बालिका-विद्यालय भी खोले जा रहे हैं।

अमीर के इच्छानुसार शिक्षा-विभाग अपने कार्य में पूर्णरूप से जुट गया है। शिक्षकों का अभाव भारत से शिक्षक बुला कर दूर किया गया है। उन्नत भाषाओं से अनुवाद करके पाठ्य-पुस्तकें तैयार हो रही हैं। बहुतेरे प्रतिभावान् नवयुवक फ्रांस आदि देशों में शिक्षा प्राप्त करने को सरकार की ओर से भेजे गये हैं। इनमें स्वयं अमीर के दो अल्पवयस्क पुत्र भी हैं।

अमीर राज-काज में बड़ी मुस्तैदी दिखाते हैं। राज-काज के प्रत्येक विभाग का निरीक्षण वे स्वयं करते हैं। यदि कोई कर्मचारी उनकी इच्छा के विरुद्ध काम करता है तो वह तुरन्त निकाल बाहर किया जाता है। राज-दरबार में इस समय श्रेष्ठ व्यक्ति ग़ुलाम मुहम्मद तर्जी हैं। ये वहाँ के वैदेशिक सचिव थे। इस समय फ्रांस में काबुल के राजदूत हैं। ये सबसे अधिक शिक्षित और विद्वान् पुरुष हैं। इन्होंने योरप आदि देशों का पर्यटन भी किया है। इनका अनुभव बहुत बढ़ा-चढ़ा है। इनके बाद प्रधान सेनापति नादिरख़ाँ का नाम है। ये भी बड़े विद्वान् हैं और इनका भी वहाँ बड़ा प्रभाव है। इन तथा ऐसे ही दूसरे लोगों के निरीक्षण में अफ़ग़ान-सरकार का शासन-चक्र सुन्दर रूप से चल रहा है।

इस समय काबुल में योरपियनों की भरमार है। रूसी, अँगरेज़, फरासीसी, इटालियन आदि अपनी अपनी सरकारों की ओर से वहाँ पहुँचे हैं और अफ़ग़ानिस्तान में अपने अपने मतलब की ओर प्रवृत्त हैं। पुरातत्त्व के अन्वेषण के लिए फरासीसियों को कुछ शर्तों पर अनुमति दे दी गई है। ये लोग वहाँ के प्राचीन स्थानों की खोदाई कर पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज करेंगे।

अफ़ग़ानिस्तान शीघ्र गति से उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हुआ है। भगवान् करे, वह अपने उद्देश में सफल हो।

रमाशङ्कर उपाध्याय

७—वीरता के दो एक उदाहरण।

योरपीय महायुद्ध के समय दोनों ओर के योद्धाओं ने अवसर मिलने पर कभी कभी अपने अपने शौर्य का जैसा परिचय दिया है वह काफ़ी विनोद-पूर्ण है। इनमें से कुछ का उल्लेख एडमिरल मार्ककर सी० बी०, एम० वी० ओ० ने अपने एक लेख में किया है। आप लिखते हैं—

युद्ध-काल में मैं भूमध्य-सागर के पूर्वी भाग में तीन वर्ष तक रहा हूँ। वहाँ मुझे दो अत्यन्त ही वीरतापूर्ण कार्य देखने को मिले। एक बार एक फ़रासीसी जलमग्न नौका तुर्कों के समुद्र में जाकर तट पर चली गई। अतएव तुर्कों ने उसे पकड़ लिया। उसके नाविकों को क़ैद कर उन्होंने उस नौका को अपने काम में लाने के विचार से अपने क़ब्ज़े में किया। संयोगवश उसका कोई कल-पुर्ज़ा काम नहीं देता था। जब तुर्क कारीगर उसे ठीक न कर सके तब उसका फ़रासीसी अफ़सर क़ैदख़ाने से लाया गया।

क़ैदख़ाने से आते समय वह अपने साथियों को एक पत्र दे गया था। पत्र देते समय उसने कहा था कि मेरे सम्बन्ध में जब तक तुम लोगों को कोई बात न सुन पड़े तब तक यह पत्र न खोला जाय। इसके बाद वह बड़ी प्रसन्नता के साथ वहाँ से चला। अपनी जलमग्न नौका में आकर उसने उसके पुर्ज़ा दुरुस्त कर उसे समुद्र की ओर चला दिया। उस पर शत्रु-पक्ष के नाविक सवार थे। गहरे समुद्र में पहुँचने पर जब नौका ने डुबकी लगाई तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह फिर न देख पड़ी। जब इसकी ख़बर धीरे धीरे उसके साथियों को क़ैद-ख़ाने में मिली तब उन्होंने उसके पत्र को खोल कर पढ़ा। उसमें लिखा था—"मैं नहीं लौटूँगा, सलाम।" इस प्रकार इस वीर ने अपने प्राण दे दिये, पर अपनी नौका से शत्रु को लाभ न उठाने दिया।

दूसरा वीरतापूर्ण कार्य एक इटालियन ने किया है। एक बार मैं अपने पांच क्रूज़रों के साथ ब्रिडन्सी में था। उस समय वहां जहाज़ों का बड़ा जमघट था। बन्दरगाह के एक ओर घाट था, उसकी दूसरी ओर मिट्टी के तेल का गोदाम था। बन्दरगाह में बड़ी चहल पहल रहती थी। एक दिन एकाएक सङ्केत मिला कि शत्रु का हवाई-जहाज़ आ रहा है। सङ्केत के होते ही जहाज़ भी आकाश में उड़ता हुआ दिखाई दिया। उसे रोकने के लिए जल्दी में एक हवाई-मशीन ही तैयार हो सकी। इसमें एक ही आदमी के बैठने को जगह रहती है। इसने आकाश में ऊँचे चढ़ कर शत्रु के वायु-यान पर गोले दागना शुरू कर दिया। परन्तु दुर्भाग्य से इसकी तोप धोखा दे गई। ऐसी दशा में यदि वह भागता है तो सर्वनाश उपस्थित था, क्योंकि शत्रु का वायु-यान ७०० पौंड तक के गोले बरसानेवाला था। उसके एक-दो गोले के गिरने से ब्रिंडसी का बन्दर ध्वंस हो सकता था। अतएव उस वीर इटालियन ने अपने प्राणों की ममता छोड़ अपने यान को शत्रु के वायु-यान पर झोंक दिया। इस प्रकार टकरा जाने से वे दोनों भङ्ग होकर दस हज़ार फ़ुट की उँचाई से समुद्र में आ गिरे और नष्ट हो गये। उनका एक भी आदमी न बच सका।

एड्रियाटिक में मेरे अधीन १२० ड्रिफ़्टर-नौकायें थीं। ये ओटरेंटो के मुहाने पर शत्रु-पक्ष की पनडुब्बियों को फांसने के लिए जाल डालने के काम में नियुक्त थीं। एक दिन आस्ट्रियनों के तीन क्रूज़र आये और ड्रिफ़्टर-नौकाओं की पङ्क्ति को भङ्ग करने के लिए उस पर तीन स्थानों में आक्रमण किया। वे समझते थे कि डर कर नौकायें आत्म-समर्पण कर देंगी। पर उन्हें नहीं मालूम था कि उनके नाविक स्काच और अँगरेज़ थे। इन नावों में गोवन-ली और फ़्लोंडीडी ने शत्रु का ख़ासा सामना किया। इनमें गोवन-ली के नायक वाट को विक्टोरिया क्रास का पदक मिला था।

सौ गज़ के अन्तर पर आकर शत्रु के जहाज़ ने गोवन-ली के अफ़सर से आत्म-समर्पण करने को कहा। इस पर उसने उसके नाविकों से पहले तो दो-एक हँसी की बातें कीं, फिर गोले दागने का आदेश कर दिया। उस विशालकाय क्रूज़र को देख कर वह ज़रा भी भयभीत नहीं हुआ। जब क्रूज़र के गोलों से गोवन-ली की स्थिति ठीक न रह सकी तब वह उसको छोड़ कर आगे बढ़ा। इस पर गोवन-ली के नाविकों ने अपनी गोला-बारूद ठीक कर उस जहाज़ का पीछा किया और यथासमय पहुँच कर फ़्लोंडी नामक एक दूसरी ड्रिफ़्टर की सहायता की।

शौर्य-प्रकाशन के सिवा कभी कभी दोनों पक्ष के योद्धा प्रायः परस्पर लड़ते समय मनो-विनोद भी किया करते थे। एक ऐसी ही घटना का उल्लेख यहां किया जाता है।

एक बार एक अँगरेज़ी पिलट-वायु-यान शत्रु से भिड़ने के लिए आकाश को उड़ा। उस समय वहां कोई चौदह वायु-यान उड़ रहे थे। वे भी इसी घात में थे कि कोई शिकार मिल जाय। वायु-यानों के इस बेड़े को देख कर अँगरेज़ परिचालक ज़रा भी भयभीत न हुआ। वह भिड़ गया और अपनी मशीनगन से उन पर आग बरसाने लगा। परन्तु जब उसका मसाला समाप्त हो गया और मशीन चलाने का तेल भी कम ही रह गया तब उसने घर की राह ली। लौटते समय उसने आग लगानेवाले एक अवशिष्ट पिस्टल को अपने पास के वायु-यान पर चला दिया, पर उसके ख़ाली होने से शत्रु के यान में आग न लग सकी। राह में उसे मालूम हुआ कि मेरे पास इतना तेल नहीं है कि मैं अड्डे तक पहुँच सकूँगा। अतएव उसने अपने वायु-यान को एक खेत में उतार दिया और उससे उतर कर बाहर खड़ा हो गया। इसी बीच में उसे एक जर्मन-यान अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया। वह इतना नीचे उतर आया कि उस अँगरेज़-यान-वाहक के सिर के पास से उड़ कर निकल गया। उसके चले जाने पर वही पिस्टल ज़मीन पर पड़ा मिला जिसे उस अँगरेज़-यान-वाहक ने अन्तिम बार शत्रु के यान पर फेंका था। उस पिस्टल से एक पुर्ज़ा बँधा था। उसमें सुन्दर अँगरेज़ी में लिखा था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवाई मुठभेड़ रोज़ की बात हो गई है। मैं पिस्टल को उसी ढङ्ग से वापस करता हूँ जैसे वह मुझे मिला है।

मन्मथनाथ

विविध विषय।

१—स्वदेशी वस्त्र के व्यापार में उन्नति।

इस अभागे देश में भी ऐसे सैकड़ों, हज़ारों आदमी हैं जो अपने देश की बनी वस्तुओं के प्रचार और व्यवहार के लाभों को समझते हैं। कुछ तो ऐसे भी निकलेंगे—और ऐसे कितने ही आदमियों को इस नोट का लेखक स्वयं भी जानता है—जो अपनी सज्ञान दशा से ही आरम्भ करके अपने देश की बनी हुई वस्तुओं का उपयोग करते हैं; जब वे नहीं मिलतीं तभी दूसरे देशों की वस्तुएँ काम में लाते हैं। मनुष्य के लिए भोजन और वस्त्र, ये दो चीज़ें सबसे अधिक आवश्यक हैं। भोज्य पदार्थ तो प्रायः सभी इस देश में अधिकता से उत्पन्न होते हैं। अतएव वे अन्य देशों से यहाँ, दुर्भिक्ष के समय को छोड़ कर, और कभी नहीं आते। रहे वस्त्र, सो वस्त्र भी, यहाँ पहले सब तरह के और यथेष्ट परिणाम में तैयार होते थे। पर कूट-नीति ही क्यों, स्पष्ट-नीति ने भी उनका बहुत कुछ नाश कर दिया। अतएव अपना तन ढकने के लिए हमें और देशों का मुँह ताकना पड़ा। एतदर्थ हम भारतवासियों के साठ सत्तर करोड़ रुपये हर साल दूसरे देशों को चले जाते हैं। इससे हमारी बहुत बड़ी हानि होती है। जो लोग इस बात को समझते हैं वे उपाय भर अपने ही देश का बना वस्त्र काम में लाते हैं। तथापि ऐसे समझदार आदमियों की संख्या अब तक बहुत ही कम थी। पर असहयोग की कृपा से—उसके आचार्य्य महात्मा गांधी की कृपा से—अब उनकी संख्या बहुत अधिक हो गई है। इन लोगों की सलाह है कि विदेशी वस्त्र का एक-दम परित्याग कर दो। उसके बदले केवल गाढ़ा—केवल हाथ का बुना हुआ खद्दर—काम में लाओ। विदेशी सूत का बुना हुआ गाढ़ा भी न पहनो। देश ही में काते गये सूत से तैयार हुआ खद्दर व्यवहार करो। ऐसा करने से न विदेशी कपड़े के कारख़ानेदारों ही को कुछ देना पड़ेगा और न सूत तैयार करनेवालों ही को। इससे अपना साठ-सत्तर करोड़ रुपया हर साल बच जायगा, सूत कातने और खद्दर तैयार करनेवालों का व्यवसाय चमक उठेगा। देश की दीनता धीरे धीरे दूर हो जायगी। उनकी यह दलील बहुत ठीक जान पड़ती है।

पर असहयोगियों की इस शिक्षा से देश और विदेश दोनों के पुतलीघरों के मालिकों को हानि पहुँच सकती है। ख़ैर, देशवालों की बात तो जाने दीजिए। क्योंकि श्याम, राम ऐंड कम्पनी की दूकान या कारोबार बन्द हो गया तो रामू, श्यामू, असग़र और अहमद का व्यवसाय चल निकलेगा। बात विदेशवालों की सोचिए। यहाँ जो कपड़ा आता है वह अधिकतर अँगरेज़ों ही की विलायत से आता है। वह यदि न आवे तो वहाँ के लाखों आदमी भूखों न मरें तो बेकार ज़रूर हो जायँ। अतएव भारतवर्ष के विधाता अँगरेज़ों के देश, गाँव, घर, में ही हाहाकार मचने लगे। इसी से अधिकांश लोग खुल्लमखुल्ला विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करते सकुचते हैं। कुछ लोग अच्छे, बारीक, सस्ते और तरहदार कपड़ों के आदी होने से भी गाढ़े को नहीं पसन्द करते; अतएव विदेशी वस्त्र पहनना नहीं छोड़ते। कुछ लोग अँगरेज़-अधिकारियों की अप्रसन्नता के डर से स्वदेशी गाढ़े या मोटे स्वदेशी वस्त्र को नहीं स्वीकार करते। पर यह डर और सकुच घटती जा रही है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि मैनचेस्टर से कपड़ा आना एक-दम ही बन्द हो जाय तो अँगरेज़ों की विलायत में त्राहि त्राहि ज़रूर मच जाय। असहयोगी चूँकि गवर्नमेंट के—अथवा उसकी अनेक बातों के विरोधी हैं, इससे मन ही मन वे शायद गाढ़े का प्रचार और मैनचेस्टर का बहिष्कार करके उसे या उसके गोरे कर्म्मचारियों के भाई बन्दों को छकाना भी चाहते हैं। पर यदि उनके इस कार्य्य की जड़ में द्वेष-भाव न हो—यदि वे केवल अपने देश की अर्थोन्नति के लिए ही स्वदेशी वस्त्र के प्रचार की आवश्यकता समझते हों—तो इस विषय में उनके विरोधियों को भी कुछ भी कहने-सुनने के लिए जगह नहीं। अस्तु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असहयोगियों के हृदय के भाव चाहे जैसे हों, उन्होंने विदेशी वस्त्र-व्यवसाय को चपत तो ख़ूब ही जमाया है। सरकार कहती है असहयोग मर गया अथवा मृतप्राय हो गया। उसके इस कथन की सत्यता या असत्यता का प्रमाण तो आगे चल कर, कुछ काल बाद, मिलेगा। पर इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि ३१ मार्च १९२२ तक असहयोग ख़ूब जीता-जागता था। और बातों की तो हम नहीं कहते, पर विदेशी वस्त्र के व्यवसाय के विषय में, उस समय तक, उसे बहुत कुछ सफलता हुई। यह हम अपने मन से बे-पर की नहीं उड़ाते। ख़ुद गवर्नमेंट की कही और क़बूल की हुई स्वीकारोक्ति को दुहराते हैं। उसकी यह उक्ति उसी की एक पुस्तक में विद्यमान है। इस पुस्तक का नाम है—

Annual Report on the Inland Trade of the U.P. and Oudh for the year ending 31st March 1922.

इस पुस्तक में इस प्रान्त के आन्तरिक व्यापार का सालाना लेखा है। इसमें अन्य सभी व्यापारिक वस्तुओं के साथ विदेशी सूत और विदेशी कपड़े की आमदनी का भी हिसाब है। १ अप्रेल १९२१ से ३१ मार्च १९२२ तक एक साल में, केवल अपने प्रान्त में कितना देशी और विदेशी सूत और वस्त्र आया, उसका हिसाब इस प्रकार है—

		वज़न मनों में	क़ीमत रुपयों में
सूत	देशी	२,११,८७३	१,५४,३५,३५४
	विदेशी	२,३११	३,८३,९१९
वस्त्र	देशी	७,७९,७४१	९,५६,५७,१२९
	विदेशी	१,९३,८८९	३,७७,५३,०९२

इस रिपोर्ट या पुस्तक के लेखक, काग़ज़ात देही के डिपटी डाइरेक्टर, श्रीयुत ब्रजलाल की आलोचना है कि १९२०-२१ ईसवी में रुई से तैयार की गई चीज़ों की घटती इस प्रान्त में बहुत ही कम हुई थी। अर्थात् पिछले साल से उनका वज़न २९,३३४ मन कम था, पर रिपोर्ट के साल ९९,६१४ मन माल अधिक आया। यह कुल माल की घटती-बढ़ती का हिसाब है। इसमें देशी और विदेशी दोनों तरह के माल शामिल हैं। विदेशी कम आया है, देशी अधिक। यथा—

स्वदेशी	सूत	३८,११६ मन	अधिक आया
	वस्त्र	१,२९,०६८ मन	
विदेशी	सूत	१,९०० मन	कम आया
	वस्त्र	६६,७७२ मन	

इन अङ्कों से यदि और कुछ साबित न हो तो इतना तो ज़रूर ही साबित होता है कि स्वदेशी सूत और स्वदेशी वस्त्र का व्यापार ख़ूब बढ़ा है और विदेशी का ख़ूब घटा है। यह लेखा अकेले संयुक्त-प्रान्त का है। सम्भव है, और प्रान्तों का भी हाल, थोड़ा बहुत ऐसा ही हो, विशेष कर आन्ध्र, गुजरात और पञ्जाब का।

२—मनुष्य-गणना के सुपरिंटेंडेंट और किसानों की चित्र-शाला।

संयुक्त-प्रान्त की गवर्नमेंट ने पिछली, १९२१ ईसवी की, मनुष्य-गणना अर्थात् मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट भेजने की कृपा की है। यह रिपोर्ट पहले की रिपोर्ट से कुछ छोटी है, तथापि इतनी छोटी भी नहीं कि इस पत्रिका में उसकी विस्तृत आलोचना की जा सके। हां, रिपोर्ट के महत्त्व को देखते हुए, उसकी कुछ बातों पर हमें, थोड़े में, अपना वक्तव्य अवश्य ही प्रकट करना है। कारण इसका और कुछ नहीं, केवल कर्तव्य-पालन। आज, इस नोट में, रिपोर्ट के लेखक, एडी साहब, आई० सी० एस० की एक ही आध बात पर हमें कुछ निवेदन करना है। इस प्रान्त की मनुष्य-गणना के काम के प्रधान निरीक्षक (सुपरिंटेंडेंट) आप ही थे।

समय समय पर मर्दुमशुमारी करने से बड़े लाभ हैं। इस काम से सम्बन्ध रखनेवाले नाना प्रकार के नक़्शे तैयार करने पड़ते हैं। वे सभी प्रायः अङ्कमय होते हैं। उनमें हिन्दुओं ही का आधिपत्य रहता है; मज़मून कुछ नहीं रहता। पर उन्हीं के आधार पर बड़ी बड़ी रिपोर्टें तैयार करनी पड़ती हैं और प्रान्त-वासियों के कला-कौशल, पेशे, शिक्षा, व्यापार, तन्दुरुस्ती, जन्म-मृत्यु, व्याह-शादी, निर्धनता-सधनता, शिक्षा और साक्षरता आदि का पता लगाना पड़ता है। पता लगानेवाला यदि प्रान्त-वासियों की सामाजिक, धार्म्मिक, राजनैतिक आदि सभी स्थितियों से अच्छी तरह परिचित हुआ तभी वह अपने अङ्गीकृत या प्रदत्त कार्य का निर्वाह सुचारुरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कर सकता है। जो मनुष्य देहात में देहातियों के साथ मिल-जुल कर साल दो साल भी नहीं रहा वह यदि उनकी सामाजिक स्थिति पर बड़े बड़े निबन्ध लिखने बैठे तो क्या कभी सम्भव है कि वह भूलें न करे? कल्पना कीजिए कि सालोमन नामक टापू में भारतवासियों का राज्य है। महिमारञ्जन मिश्र या मौलवी ज़रग़ामहैदर वहाँ एक ज़िले के कलेक्टर हैं। वे अपने सदर मुक़ाम पर, बस्ती से दूर, एक बँगले में रहते हैं। मामले-मुक़द्दमे के सम्बन्ध में उनके इजलास में जाने अथवा बँगले पर सलाम करने के लिए आनेवालों के सिवा टापू के अन्य निवासियों से मिलने-जुलने का उन्हें और कभी मौक़ा नहीं मिलता। हाँ, जाड़ों में, दौरे के समय भी, उन्हें वहाँ वालों के दर्शन हो जाते हैं। यदि इतने ही तजरिबे के बल पर मिश्रजी या मौलवी साहब पर उस टापू में रहनेवालों के रीति-रस्म, खेल-तमाशे, खान-पान तथा और भी सामाजिक बातों पर निबन्ध लिखने का भार डाल दिया जाय तो वह काम करना तो उन्हें ज़रूर ही पड़ेगा, क्योंकि नौकर ठहरे; पर वे उसे कहाँ तक अच्छी तरह कर सकेंगे और कहाँ तक भूलों और भ्रमों से बच सकेंगे, यह बताने की ज़रूरत नहीं। कभी कभी ईश्वरीय निर्देश बिलकुल ही उलटा होता है—जिसे जो काम न करना चाहिए उसी को वह काम करना पड़ता है, अथवा उसी से वह कराया जाता है। अपने सूबे के हाकिम एडी साहब को ज़िले की हुकूमत छोड़ कर ऐसा ही काम करना पड़ा है।

इस सूबे की आबादी (बनारस, रामपुर और टेहरी-गढ़वाल रियासतों की आबादी मिलाकर) १८ मार्च १९२१ को ४,६५,१०,६६८ थी। अर्थात् १० वर्ष पहले, १९११ में, जितनी आबादी थी उससे १४ लाख ३२ हज़ार कम हो गई थी। चाहिए तो यह था कि उस साल की अपेक्षा १४ लाख अधिक हो जाती; पर अधिक होने के बदले उतनी घट गई। इसका मतलब यह हुआ कि इस प्रान्त ने गत १० वर्षों में कोई २८ लाख ४२ हज़ार आदमी खो दिये। उसमें से अकेले इनफ़्लुयंज़ा ही २८ लाख आदमी खा गया। इस पर सुपरिंटेंडेंट साहब कहते हैं कि जो होना था सो तो हो ही गया। पर अब घबराने की बात नहीं। यदि कोई दैवी दुर्घटना न हो गई तो आबादी अब आगे बढ़ती ही जायगी। आपकी राय में घटने के नहीं, बढ़ने ही के अब सभी लक्षण पाये जाते हैं। इस आश्वासन के लिए आपको धन्यवाद। मृत्यु कम, जन्म अधिक होने से आबादी ज़रूर ही बढ़ती है। पर प्लेग, हैज़ा, इनफ़्लुयंज़ा यदि टूट पड़ा तो कोई क्या कर सकता है। उनसे बचने का कोई उपाय न तो एडी साहब ही ने बताया और न शायद सरकार ही को मालूम। क्योंकि यदि मालूम होता तो उसे सरकार ज़रूर ही काम में लाती। मृत्यु रोकना सरकार के वश की बात नहीं। दवा-पानी का प्रबन्ध करना अवश्य है। सो उसने हर ज़िले के सदर मुक़ाम में ही नहीं, कहीं कहीं अन्यत्र भी शफ़ाख़ाने खोल दिये हैं। वह और करे तो क्या करे? गाँव गाँव डाक्टर रखना तो सम्भव ही नहीं। उधर वैद्य, हकीम वैज्ञानिक चिकित्सा के ज्ञान में कोरे ठहरे, अतएव "स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे"।

मनुष्य-गणना के सुपरिंटेंडेंट एडी साहब ने, नक़्शों के आधार पर, यह निश्चय किया है कि इस प्रान्त में सब कहीं एक-सी आबादी नहीं। कहीं कम है, कहीं ज़ियादह। किसी किसी ज़िले में बहुत दूर दूर बस्तियाँ हैं; जैसे नैनीताल, गढ़वाल, झाँसी आदि में। और कहीं कहीं बहुत ही पास पास हैं; जैसे जौनपुर, बनारस, गोरखपुर आदि में। पहले प्रकार के ज़िलों में फ़ी मील मुरब्बा सौ दो सौ आदमियों से अधिक का परता नहीं पड़ता; और दूसरे प्रकार के ज़िलों में सात-आठ सौ आदमियों का परता पड़ता है। आबादी की इस विरलता और घनता के ख़याल से सुपरिंटेंडेंट साहब की राय है कि अभी इस प्रान्त में और भी बहुत से आदमियों के रहने के लिए जगह है; देशान्तर करने की अभी जल्द ज़रूरत न पड़ेगी। ७५ फ़ी सदी आदमियों की रोटी यद्यपि काश्तकारी से चलती है तथापि इस व्यवसाय से पेट पालने के लिए अभी काफ़ी गुंजायश है। आपका कथन है कि अकबर के ज़माने में जो हालत इन लोगों तथा अन्य साधारण जनों की थी उससे अब कहीं अच्छी है। उस ज़माने में इन लोगों को तन ढकने के लिए कपड़ा और पैरों की रक्षा करने के लिए जूता बहुधा नसीब न होता था। पर अब होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब तो ये लोग पीतल के बर्तन काम में लाते हैं और कम्बल ओढ़ते हैं। आपकी राय है कि यहांवाले हैं भी बड़े दमदार। जो कुछ मिल जाता है उसी पर सन्तोष कर लेते हैं। अँगरेज़ों के बच्चों के लिए खिलौनों की एक पल्टन (खिलौनेवालों की पूरी दूकान की दूकान) दरकार होती है। इन लोगों के बच्चों के लिए मिट्टी का एक ही आध खिलौना बस होता है। वह भी यदि टूट गया तो बच्चे धूल मिट्टी के गढ़ बना कर ही मरते रहते हैं। यह सब लिख कर भी आपने इन लोगों की वर्तमान ख़ुशहाली पर बहस की है और इनके कम्बलों और पीतल के लोटे-थालियों का उल्लेख किया है। यही नहीं, आपने इनके आमोद-प्रमोद की सामग्री भी, अपनी कल्पना के बल पर, बहुत बड़ी मिक़दार में मुहय्या कर दी है। आपके वचन ये हैं—

"The amusement which the peasantry gets out of attendance at the law courts and railway travelling—these two diversions are to the Indians what the picture palace is to the English proletariat—is entirely new since Akbar's day."

सो आपकी राय में जो मज़ा विलायत के आदमी चित्र-शालाओं में पधार कर प्राप्त करते हैं वही मज़ा यहां के किसान रेल के द्वारा सफ़र करके और कचहरियों में मारे मारे फिर कर प्राप्त करते हैं। अकबर के समय में मनोरञ्जन की यह सामग्री सचमुच ही न थी। इसे प्रस्तुत कर देनेवालों को सैकड़ों साधुवाद और हज़ारों आशीर्वाद।

बड़े ही अफ़सोस की बात है कि इस सूबे में ज़िले की हाकिमी करके और हज़ारों देहातियों की दुर्दशा का चित्र आंखों देख कर भी एडी साहब कचहरी जाना और रेल से सफ़र करना दीन-दुखिया किसानों के लिए आमोद-प्रमोद और मनोरञ्जन में दाख़िल समझते हैं और इन बातों को वे उनके मुतमौवल होने का प्रमाण मानते हैं। भेड़-बकरियों की तरह रेल के डब्बों में भरा जाना, धक्के खाना और ५) की दीवानी नालिश के लिए, खेती-किसानी का काम छोड़ कर, महीनों कचहरियों में मारे मारे फिरना भी यदि मनोरञ्जन और चित्रदर्शन में दाख़िल समझा जा सकता है तो २४ घंटे में एक बार रूखी-सूखी मकई की रोटी से पेट भर लेना शायद मोहनभोग का मज़ा लूटने में भी दाख़िल समझा जायगा। साहब यदि कभी दस-पांच किसानों से भी पूछने का कष्ट उठाते तो उन्हें मालूम हो जाता कि आपकी इन कल्पित सामग्रियों को वे मनोरञ्जन का कितना बड़ा साधन समझते हैं। रेल की मुसाफ़िरी और कचहरियों के कष्टों को मनोरञ्जन बताना—"क्षते क्षारावलेपनम्" के सिवा और कुछ नहीं। किसानों को यदि खाने को नसीब न हो—यदि वे साग-पात खा कर या चबेना चबाकर—किसी तरह अपने हाड़-चाम को बरकरार बनाये रहें तो यह उनकी सहनशीलता समझी जाय! यह न समझा जाय कि "मरता क्या न करता"! एडी साहब ने अपनी रिपोर्ट बड़ी योग्यता से लिखी है। आपने किसी किसी विषय में हमदर्दी भी दिखाई है और जो सिद्धान्त निकाले हैं वे भी बहुधा ठीक मालूम होते हैं। परन्तु कहीं कहीं आपने जो व्यङ्ग्य वचन कहे हैं अथवा व्यङ्ग्य-पूर्ण हास्य किया है वह बहुत खटकता है। किसानों और सर्वसाधारण जनों की ख़ुशहाली का जो अन्दाज़ा आपने लगाया है उसका आधार मोरलेंड साहब की लिखी हुई एक पुस्तक है। उसमें अकबर के समय का वर्णन है। सोचने की बात है कि इस प्रान्त के निवासियों की असली हालत जानने का प्रत्यक्ष मौक़ा मिलने पर भी जब आप रेलवे की मुसाफ़िरी को तमाशबीनी में दाख़िल समझते हैं तब सैकड़ों वर्ष पहले की बातें लिखनेवाले मोरलेंड साहब का कथन भला कैसे विश्वसनीय माना जा सकता है? अकबर के समय में लोग प्रायः नङ्गे बदन और नङ्गे पैर घूमते थे, पर अब यह बात नहीं। अतएव तब से इस समय सभ्यता और सम्पत्ति की वृद्धि हो गई है, यह कहना सर्वथा भ्रमपूर्ण है। तब इस प्रान्त की आबादी २ करोड़ थी; अब ४½ करोड़ से अधिक है। तब ज़मीन का लगान आज-कल की अपेक्षा तिहाई चौथाई ही था। तब रुपये का ३ सेर घी और २ मन गेहूँ बिकता था; अब ६ छटांक घी और ६ सेर गेहूँ बिकता है। आबादी दूनी से ज़ियादह बढ़ गई; लगान तिगुना-चौगुना हो गया; महँगी ने रुपये की क़ीमत =) कर दी। हल, फाल, बैल, मज़दूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पहले से कई गुनी अधिक महँगी हो गई। इस दशा में सभ्यता और सुख-सम्पत्ति क्या आसमान से टूट पड़ी? किसानों के पास पहले कपड़े-लत्ते न थे या कम थे तो मध्य-वित्त के आदमी ही कहाँ शर्ट, वास्कट, कोट, पैंट डटे रहते थे! वे भी तो दो धोतियों एक अँगौछे और एक अँगरखे से ही सन्तुष्ट रहते थे। पर भूखे तो न रहते थे। किसानों और थोड़ी आमदनी के आदमियों की असली हालत तो आपको तब मालूम होती जब आप उनके साथ कुछ दिन रहते और देखते कि वे क्या और कितना खाते, क्या पहनते, और कितने घड़े, लोटे और थालियाँ रखते हैं, तथा उन पर क़र्ज़ कितना है।

आपकी चाय, काफ़ी, बटन, लालटेन, सूती कम्बल, दियासलाई और सिगरेटों ने ही किसानों और मध्यवित्त जनों की दुर्गति की वृद्धि की है। उन्हें आप सभ्यता और सुख-सम्पदा की वृद्धि का सूचक भले ही समझें। परन्तु यथार्थ में उदरपूर्ति के साधनों की कमी के वही कारण हैं। यह इस तरह की झूठी सभ्यता और दिखाऊ समृद्धि इस प्रान्त और इस देश में कहाँ से घुस आई है, इसके उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं।

३—आधुनिक सभ्यता।

भारतवर्ष में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं है जो संसार के भविष्य के विषय में पूर्ण निराशावादी हैं। उनका कहना है कि इस कलियुग में किसी प्रकार का सुधार होना सर्वथा असम्भव है। महायुद्ध के कारण योरप के निवासियों में भी इसी प्रकार का निराशावाद फैल रहा है। 'सेंचुरी मैग्ज़ीन' में संसार के भावी सुधार के सम्बन्ध में एक विद्वान् ने लिखा है कि जिस मनुष्य ने वर्तमान परिस्थिति का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है उसको निराशा के कोई चिह्न नहीं दिखाई पड़ सकते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे मार्ग में ऐसी सैकड़ों बाधायें हैं जिनकी उपेक्षा करना सरासर मूर्खता होगी। किन्तु संसार के लिए आशा है, उन्नति का पथ खुला हुआ है, इसमें किसी विचारशील मनुष्य को अविश्वास नहीं हो सकता। पूर्वोक्त विद्वान् ने अपने आशावाद की पुष्टि में निम्न-लिखित कारण दिये हैं—

यह सर्वमान्य है कि संसार में जो कुछ सुन्दर और श्रेयस्कर दिखाई दे रहा है वह सब मनुष्य की आत्मा से ही प्रकट हुआ है। मनुष्य ने ही सभ्यता के प्रत्येक अङ्ग—शासक और शासित, मन्दिर और मसजिद, शिल्प और कला, पूँजी और मशीन, सभा और सङ्गठन आदि—का निर्माण किया है। मनुष्यों ने ही भाषायें बनाई हैं, मनुष्यों ने ही पुराणों की रचना की है, मनुष्यों ने ही धर्म चलाये हैं, मनुष्यों ने ही स्वर्ग और नरक की सृष्टि की है। कुरान, बाइबिल और गीता भी उसी की उपज है। ब्रह्मा, विष्णु से लेकर भूत-प्रेत तक सभी उसकी आत्मा से प्रकट हुए हैं। यह तो सच है कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है, किन्तु आज-कल बहुत से मनुष्य यह भी कहने लगे हैं कि नहीं, मनुष्य ने ईश्वर को बनाया है। कुछ भी हो, मनुष्य के लिए सबसे अधिक गौरव की यह बात है कि उसने अपने आपको जङ्गली पशुओं की श्रेणी से उठा कर मनुष्य बना लिया है, सैकड़ों वर्षों तक तो यही सन्देहयुक्त रहा होगा कि वह कभी 'अशरफ़ुल मख़लूक़ात' हो सकेगा या नहीं। किन्तु उसने धीरे धीरे विजय पाई, संसार में अपने अनुकूल आसन ग्रहण किया, और ईश्वर की सृष्टि का उत्तराधिकारी बन गया। उसने इतने से ही बस नहीं की, उसने साहित्य और विज्ञान, शिल्प और कला में आश्चर्यजनक उन्नति की। यदि वह इस समय अपने साहस और विचार के लिए गर्व करता है तो उसकी साधारण परम्परा को देखते हुए कोई उसे उद्दण्ड नहीं कह सकता। वास्तव में हीगल का यह कथन सर्वथा सत्य है कि भविष्य में ऐसा समय कभी नहीं आवेगा जब मनुष्य का यह उचित गर्व मिथ्याहङ्कार गिना जा सके।

किन्तु क्या कभी यह सम्भव है कि वह प्राणी, जिसका विकास ऐसी नम्र स्थिति से हुआ हो, जिसकी प्रगति कभी निम्नगामिनी नहीं हुई हो, बरन वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ काल तक बराबर उन्नति के पथ पर अग्रसर होती रही हो क्षणिक पराजय से एक-दम हताश होकर एकाएक अनन्त के गर्भ में विस्मृत हो जाय। हमारी वर्तमान कठिनाइयों और बाधाओं का हेतु हमको उत्तरोत्तर परिपक्व अवस्था में पहुँचाने के अतिरिक्त भला और क्या हो सकता है? भूतकाल में क्या हमारे मार्ग में बाधायें नहीं उपस्थित हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं, क्या उन पर हमारी विजय नहीं हुई है, और क्या इन पर हमारी विजय न होगी। यह सिद्ध हो चुका है कि संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं इन सबमें हमारी आत्मा सबसे अधिक दुर्दमनीय और अजेय है। यदि किसी को यह दृढ़ विश्वास है कि हमारा वर्तमान इतिहास केवल भूमिका-मात्र है, भविष्य इससे कहीं अधिक जाज्वल्यमान होगा, तो क्या वह कोरा आशा-वादी कहा जा सकता है। एक दिन था जब मनुष्य बन्दर के समान था, एक दिन वह आयेगा जब मनुष्य देवताओं की कोटि में पहुँच जायगा। आज हम अपनी यात्रा के मध्य में आगये हैं। बहुत सम्भव है अन्त तक पहुँचते पहुँचते हम अपनी वर्तमान अवस्था भूल जायँ, जिस प्रकार आज हम अपनी प्रारम्भिक दशा भूल रहे हैं। भविष्य का अनुमान करने के लिए भूतकाल पर दृष्टिपात करने के अतिरिक्त क्या और कोई अच्छा उपाय हो सकता है? प्रकृति-देवी अपने विकासवाद के द्वारा निरन्तर हमको आशा का मन्त्र पढ़ाया करती है।

आशा के अतिरिक्त हमको आत्म-विश्वास की बड़ी भारी आवश्यकता है। यह तो प्रत्यक्ष है कि हमारा मस्तिष्क और हमारा शरीर आसमान से संसार में नहीं टूट पड़ा है, हमारी अन्तरात्मा से ही इनका विकास हुआ है। मनुष्य परमात्मा का सबसे प्यारा पुत्र है। वनचर से लेकर धर्मनिष्ठ तक, गुफावासी से लेकर नागरिक तक, मांसपिण्ड से लेकर सभ्यता के शिखर तक अनेक रूपों में हमने भ्रमण किया है, यही कहानी हमारे ज्ञानकोष का असली तत्त्व है। इस सुन्दर संसार में योग्यतम को सदैव विजयश्री प्राप्त होती रही है। भले ही उसमें सैकड़ों त्रुटियाँ हों, वह संसार की सर्वोत्तम वस्तु है। उसकी कमज़ोरियां उसकी अपरिपक्व अवस्था की सूचना देती हैं। अच्छा, यदि मनुष्य ही इस ब्रह्माण्ड का सिरमौर है तो उसका कौन-सा गुण सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट कहा जा सकता है, उसकी वृद्धि का मुख्य आधार क्या हो सकता है, उसकी उन्नति का असली स्रोत क्या हो सकता है, जिससे उसके उत्तरोत्तर विकास की गारंटी की जाती है। एक शब्द में इसका उत्तर है 'प्रेम'। यही मानवी प्रकृति का केन्द्र है। मनुष्य में यही सबसे प्राचीन और सबसे अधिक शक्तिशाली वस्तु है। जहाँ देखिए वहाँ, जङ्गल में या शहर में, महल में या झोपड़ी में हर जगह इसी का साम्राज्य छाया हुआ है। वास्तव में बाइ-बिल में उन प्रेमगाथाओं के अतिरिक्त और क्या है जो मनुष्य-समाज ने समय समय पर अपने इष्टदेव के प्रेम से उन्मत्त होकर गाई हैं। बुद्ध और ईसा, पाल और जान प्रेम की शक्ति को भली-भांति जानते थे। जब हम इस शक्ति को सत्य की पूजा में लगाते हैं तब विज्ञान और दर्शन का प्रादुर्भाव होता है, जब इस शक्ति से सौन्दर्य की आराधना करने लगते हैं तब अनेक प्रकार की शिल्प-कलायें प्रकट होने लगती हैं, जब न्याय, पवित्रता और शान्ति की खोज करते हैं तब सभा-समाज, व्यवस्था, सदाचार एवं धर्म की सृष्टि होती है। आज-कल हम लोग इस अनुसन्धान में लगे हैं कि प्रेम-शक्ति का स्वास्थ्य अथवा रोग, जय अथवा पराजय पर क्या प्रभाव पड़ता है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य को स्वास्थ्य या रोगी होना सबसे अधिक उसके जीवन-प्रेम पर निर्भर है। आदिकाल से कविता, नाटक या उप-न्यास का एक-मात्र विषय प्रेम की महिमा गाना है। आप स्वयं अपने जीवन पर एक दृष्टि डालिए। संसार में एक भी मनुष्य इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता कि प्रेम ही मनुष्य के स्वभाव और व्यवहार का एक-मात्र नियामक है। अफ़लातून का तो यह कहना था कि प्रेम से ही ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। मनुष्यों में पशुओं से केवल एक यही विशेषता है कि उनमें प्रेम करने की शक्ति अधिक है। मनुष्य संसार के प्रेम में बे-तरह फँसा हुआ है, यही आसक्ति उसकी सफलताओं और असफलताओं का एक बड़ा भारी कारण है। यदि मनुष्य अपने काम से प्रेम करने लगे, जैसे मनुष्य को खेलने में आनन्द आता है; यदि उसी प्रकार काम करने में आनन्द आने लगे, जिस प्रकार आज-कल संसार काम से दूर भागना चाहता है, काम से घृणा न करे, तो संसार की सारी थकावट और अशान्ति, जो चारों ओर फैलती जा रही है, बात की बात में दूर हो सकती है। प्रेम के बराबर शायद ही और किसी वस्तु के इतने नाम, रूप, भेद, शाखायें, उपमायें हों। सृष्टि के आदिकाल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहले प्रेम की उत्पत्ति हुई, स्त्री-पुरुषों के वर्गीकरण के पहले प्रेम की सृष्टि हुई। प्रेम ने ही मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाया है, उसको परस्पर सहयोग और सहायता करना सिखाया है, किसी को सेवा का पाठ पढ़ाया है तो किसी को देश-भक्ति सिखलाई है, किसी को विश्व-प्रेम की शिक्षा दी है तो किसी को निष्काम कर्म का आदेश दिया है। प्रेम ने प्रत्येक मनुष्य को अपना व्यक्तिगत स्वार्थ गौण समझ कर समाज-सेवा करने की शक्ति प्रदान की है। आज भी बहुत से नवयुवकों के सामने अपना जीवन-धन्धा निश्चित करते समय यह प्रश्न उपस्थित होता है—कहाँ मैं सबसे अधिक भलाई कर सकूँगा, चाहे मुझे वहाँ सबसे अधिक रुपया न मिले। स्त्रियों में, जिनके हाथ में आज शक्ति आ रही है, प्रेम के अनुभव करने की शक्ति पुरुषों की अपेक्षा अधिक होती है। अतएव उनको संसार की अवस्था सुधारने के लिए उद्योगशील होना चाहिए। आज-कल मनुष्य अपना पेट नहीं भरना चाहते हैं, बल्कि अपना घर भरना चाहते हैं। इसी लालच और तृष्णा के कारण सैकड़ों बुराइयाँ संसार में फैल रही हैं, स्वार्थ और मिथ्याहङ्कार की बे-हद वृद्धि हो रही है। स्त्रियों को ऐसे सङ्कट के समय प्रेम और सेवा का आदर्श स्थापित करना चाहिए। इस वैज्ञानिक युग में ऐसा आविष्कार होना चाहिए जिससे मनुष्य को अपने प्रेम करने की शक्ति का यथार्थ अनुमान हो जाय। सभ्यता और शिक्षा का सबसे प्रथम कर्त्तव्य यह है कि मनुष्य की प्रेम-शक्ति संसार के सबसे अच्छे और सबसे ऊँचे पदार्थ में लगे और उसको प्रेम की स्फूर्ति का अनुभव होने लगे। ऐसी अवस्था में आज जो हमारे नेता बने हुए हैं वे नेता न रह जायँगे। प्रेम ही सदाचार की पराकाष्ठा है। युद्ध की समाप्ति के लिए प्रेम ही सबसे अधिक उपयोगी है। आधुनिक बुराइयों को दूर करने के लिए आज-कल जो अनेक उपाय किये जा रहे हैं, प्रेम की स्थापना होने से इन उपायों की यथार्थ जाँच हो जायगी। जो देखने मात्र में नहीं बरन सचमुच मनुष्य हैं उनके अन्तःकरण में यह शक्ति अवश्य-मेव किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। यदि उसको व्यक्त करने के लिए कोई सीधा मार्ग निकल आवे तो फिर हमको किसी सुधार की आवश्यकता न रहेगी।

योरप के जिन देशों ने महायुद्ध में भाग लिया था उनमें, विशेष कर जर्मनी के नवयुवकों में, अपनी परम्परा और पूर्वजों के आदेशों से छुटकारा पाने के भाव प्रबलता से जाग्रत हो रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि इनको अब उनके उपदेशों में विश्वास नहीं रह गया है। ये समझते हैं कि उन्हीं के उपदेशों ने संसार को शोक-सागर में डुबो दिया है। केवल हमारे नवयुवक ही यह ठीक ठीक बतला सकते हैं कि भविष्य की गति किस ओर होगी। आज जो हमारे नवयुवकों के विचार-मात्र हैं वे एक पीढ़ी के बाद आदेश का रूप धारण करेंगे। नवयुवकों को प्रेम का सबसे अच्छा अनुभव होता है। इसके प्रभाव को वही अच्छी तरह जान सकते हैं। अतएव आज हम अपने नवयुवकों से यह प्रश्न पूछना चाहते हैं कि उनकी हार्दिक इच्छा क्या है, देने की या लेने की; संसार की सेवा करने का उद्देश है या संसार को लूटने की इच्छा है। उनको ऐसा व्यवसाय पसन्द है जिसमें वे कल अधिक भलाई करने के योग्य बन जायँगे या ऐसा व्यवसाय पसन्द है जिसमें आज अच्छी आमदनी है। वे स्टर्नर नीटशे या चार्वाक के अनुयायी हैं, जिनका ध्येय अपने व्यक्तित्व को अधिकाधिक फैलाना है अथवा उन्हें क्रोपेटकिन या ट्याल्स्टाय का सिद्धान्त स्वीकार है, जो सेवा और परस्पर सहयोग का उपदेश देते हैं। वे स्पर्द्धा के उन भयङ्कर उपायों का अवलम्बन करना चाहते हैं जो आधुनिक जीवन-संग्राम में प्रचलित हो रहे हैं या परस्पर सहयोग और सहायता करना चाहते हैं, जिनके द्वारा आधुनिक संसार में विज्ञान और व्यवसाय की उन्नति तथा प्रतिष्ठा हुई है। वास्तव में व्यक्तिगत और समाजगत दोनों ही प्रकार के स्वार्थ मनुष्य के लिए श्रेयस्कर नहीं हैं। जब तक हममें मनुष्य-मात्र के प्रति प्रेम, उत्साह और सेवा के भाव जाग्रत नहीं होंगे तब तक शान्ति नहीं स्थापित हो सकती। इन भावों की जाग्रति बाह्य सङ्गठनों और आन्दोलनों से किसी प्रकार नहीं हो सकती। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तःकरण में यह प्रण करना होगा कि वह मनुष्य-मात्र की सेवा के लिए अपने आपको भेंट चढ़ाता है। यह तभी सम्भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता है जब इस बात का रहस्य उसकी समझ में आ जाय कि सङ्ग्रह की अपेक्षा त्याग में अधिक आनन्द है।

४—विज्ञान और आध्यात्मिक उन्नति।

यह तो सर्वमान्य है कि विज्ञान ने मनुष्य को बहुत सी भौतिक सुविधायें प्रदान की हैं। यातायात के साधनों में रेलवे, स्टीमर, हवाई-जहाज़ आदि के आविष्कारों से विस्मयजनक उन्नति हुई है। टेलीग्राफ़, टेलीफ़ोन, बेतार के तार के द्वारा घर बैठे हज़ारों-लाखों कोसों की दूरी पर रहनेवाले मित्र के समाचार क्षण भर में ज्ञात हो जाते हैं। मुद्रणकला के महत्त्वपूर्ण आविष्कार के द्वारा विद्या-प्रचार में बड़ी भारी आसानी हो गई। डाक्टरों ने वैज्ञानिक रीति से सर्जरी विद्या सीख कर मनुष्य को भीषण यातनाओं से बचा लिया है, विज्ञान की सहायता से ऐसे बहुत से रोगों की अव्यर्थ ओषधियाँ ढूँढ़ निकाली गई हैं जिनको मनुष्य पहले सर्वथा असाध्य समझा करते थे। वैज्ञानिक युग के पहले बहुत से सङ्क्रामक रोगों का कारण भूत-बाधा ठहराई जाती थी, अतएव लाचार होकर रोगी को असह्य वेदनायें सहनी पड़ती थीं। इस क्षेत्र में भी विज्ञान ने हमारा बड़ा भारी उपकार किया है। दूसरी ओर कल-कारख़ानों के आविष्कार से नाना प्रकार की शिल्पोन्नति होने के कारण आज जीवन बहुत ही सुखमय हो रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि इस फूल में काँटे की भाँति पूँजीवाद का जन्म हुआ है, जिसके कारण पूँजीपतियों ने श्रमजीवियों का खून चूसना अपना धर्म समझ रक्खा है। सच पूछा जाय तो कभी कभी हमको इस विज्ञान-वाटिका में फूलों की महँक से उतना आनन्द नहीं मिलता है जितना इन तीखे काँटों का डर लगा रहता है। ध्यानपूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि पूँजी-प्रधान शिल्पवाद ने इस भूतल पर प्रकाश्य रूप से अथवा अप्रकाश्य रूप से अनेक युद्ध ठान दिये हैं, अनेक पिछड़े हुए देशों को दासता और अत्याचार की भयङ्कर बेड़ियों से जकड़ दिया है। विज्ञान ने मनुष्य की उत्पादक शक्ति के साथ विघातक शक्ति को भी सैकड़ों गुना बढ़ा दिया है। किन्तु प्रश्न यह है कि विज्ञान के दुरुपयोग से जो बुराइयाँ फैल रही हैं उनके लिए विज्ञान उत्तरदायी ठहराया जा सकता है या नहीं। क्या आग इसी लिए बड़ी बुरी चीज़ है कि उसके द्वारा बहुत से दुष्टात्मा ग़रीबों के घर फूँक डालते हैं। जल्लाद की तलवार, डाक्टर का नश्तर और मिस्त्री का हथौड़ा सभी एक लोहे के बने होते हैं। इसलिए क्या कोई लोहे को बुरा कह सकता है, यदि जल्लाद अपनी तलवार से दूसरे की गर्दन काटता है तो उसमें लोहे का कौन दोष है? इसके अतिरिक्त विज्ञान तो पूँजीवाद की बुराइयों को दूर करने के लिए अनेक उपायों, जैसे सहयोग या लाभ-वितरण आदि, का अवलम्बन ले रहा है, जिससे आशा की जाती है कि धीरे धीरे ये बुराइयाँ जाती रहेंगी। विज्ञान यह सिद्ध करना चाहता है कि वैज्ञानिक पूँजी-प्रधान शिल्पवाद और मनुष्यों के पाशविक अत्याचार में कोई वास्तविक अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है।

सम्प्रति हमको यह देखना है कि विज्ञान ने मनुष्य के आध्यात्मिक मार्ग में कोई रुकावट तो नहीं डाली है, और यदि सहायक हुआ है तो कहाँ तक। सबसे पहले विज्ञान ने मनुष्य को सत्य के लिए सत्य की खोज करना सिखा दिया है। विज्ञान ने हमको यह पाठ पढ़ा दिया है कि एक ही नियम इस अनन्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। विज्ञान ने मनुष्य को उस ईश्वर के दर्शन और अनुभव करने की शक्ति प्रदान की है जिसकी इच्छा और ब्रह्माण्ड में सर्वथा एकता है। विज्ञान के कारण हमारे अन्तःकरण से उस ईश्वर की प्रतिष्ठा हटती जाती है जो मन-माने खेल-तमाशे किया करता था, जो सांसारिक प्राणियों की तरह राग-द्वेष या हर्ष-शोक, के झंझट में फँसा रहा करता था। विज्ञान ने मनुष्य के सामने ब्रह्माण्ड की अनन्तता खोल कर रख दी है, इस अनन्त ब्रह्माण्ड में उसकी और उसके झोपड़े की क्या स्थिति है, इस पर विचार करते ही उसका अज्ञान-जनित मिथ्या गर्व चकनाचूर हो जाता है, साथ ही विज्ञान ने यह बतला कर मनुष्य के सच्चे आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान की नींव डाल दी है कि मनुष्य किस अवस्था से उन्नत होकर किस अवस्था में पहुँच गया है, पशु-कोटि से उठ कर मनुष्य-कोटि में किस प्रकार पहुँच गया है। विज्ञान ने अनेक प्रकार के दुःखों का विश्लेषण किया है। उससे मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को विज्ञानातीत धार्म्मिक व्याख्याओं की अपेक्षा आशावादी बनने में अधिक सहायता मिलती है। किसी वैज्ञानिक ईश्वरवादी को उस प्रकार की घबराहट कदापि नहीं हो सकती जैसी कूपर सरीखे धर्मनिष्ठ विद्वान् को स्वेच्छाचारी ईश्वर से हुआ करती थी।

सिद्धान्त के अतिरिक्त व्यवहार में भी विज्ञान सार्वभौमिक कार्यों के सञ्चालन में हमारी बड़ी सहायता कर रहा है। विज्ञान ने उन सैकड़ों अभागे निस्सहाय प्राणियों का जीवन सार्थक बना दिया है जो पृथ्वी पर भार-रूप समझे जाते थे। पहले हम अन्धे, लूले, लँगड़ों आदि को भोजन वस्त्र आदि देकर ही सन्तुष्ट हो जाते थे। इतनी ही हमारी सामर्थ्य थी, किन्तु आज वैज्ञानिक आविष्कारों के द्वारा हम उनको शिक्षा दे सकते हैं जिससे वे केवल रुपया ही नहीं कमा सकते हैं, बरन हमारी समाज के उत्साही और उपयोगी अङ्ग बन जाते हैं।

यातायात, पत्र-व्यवहार या समाचार-वितरण के उन्नत साधनों का भी भौतिक सुविधा के अतिरिक्त एक आध्यात्मिक पहलू है। संसार भर के मनुष्य परस्पर भाई भाई हैं, यह उच्च सिद्धान्त अभी तक सिद्धान्तमात्र था, किन्तु विज्ञान को इतने से सन्तोष नहीं हो सकता, वह इन साधनों के द्वारा यह दिखलाना चाहता है कि वास्तव में संसार एक बड़ा कुटुम्ब है।

५—अपराधी और आधुनिक समाज।

प्राचीनकाल में अपराधियों को बड़े कठोर दण्ड दिये जाते थे। उस समय समाज भी उन लोगों के साथ घृणित व्यवहार करती थी। किन्तु आधुनिक सभ्य राष्ट्रों में अपराधी दूषित और दण्डनीय होने पर भी समाज का एक अङ्ग माना जाने लगा है, अतएव समाज भी उन लोगों के साथ सहृदयता, न्याय और सहानुभूति का व्यवहार करने के लिए प्रस्तुत हो रही है। वैज्ञानिक अनुसन्धान से यह ज्ञात हुआ है कि अधिकांश अपराधी तो अपने असाधारण शारीरिक या मानसिक रोगों के कारण अपराध करने के लिए बाध्य होते हैं। निकटवर्ती परिस्थिति का मनुष्य के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्रायः अपराधी ऐसी परिस्थितियों में पड़ जाते हैं कि वहाँ उनको अपने सिर पर अपराध मोल लेने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता। इन परिस्थितियों में आसानी से थोड़ा बहुत परिवर्तन हो सकता है, अतएव अधिकांश दशाओं में अपराध असाध्य रोग नहीं गिना जा सकता। यद्यपि अपराधी कुछ दिनों के लिए समाज का अनिष्ट करने लगता है, तथापि वह वास्तव में समाज का एक उपयोगी अङ्ग है। कुछ अवस्थाओं में तो दुराचरण के लिए उसके पास यथेष्ट कारण होते हैं। प्राचीनकाल की भाँति आज-कल न्यायाधीशों को दयाशून्य और विचार-हीन न्याय के नाम पर कठोर दण्ड देने में कोई आनन्द नहीं मिलता, वे विज्ञान की सहायता से अपराधी के मस्तिष्क की उस परिस्थिति का विश्लेषण करना चाहते हैं जिसके कारण अपराधी अपराध करने के लिए बाध्य होता है।

उदाहरण के लिए आधुनिक प्राणि-शास्त्र ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के अन्तःकरण में पूर्वजों की परम्परा के कारण कुछ पाशविक वृत्तियाँ अब तक चली आती हैं। वर्तमान क़ानूनों और सङ्गठनों के द्वारा इन प्रारम्भिक वृत्तियों के दबाने की जो चेष्टा की जाती है उसकी कठिनाई भी स्पष्ट हो गई है। प्राणि-शास्त्र ने हमारा ध्यान अपराधशील व्यक्तित्व की शारीरिक त्रुटियों की ओर आकर्षित किया है और अधिकतर यही त्रुटियाँ उसके अपराधों के लिए उत्तरदायी हैं। यदि पैत्रिक सम्बन्ध की ऐसी दुरवस्था रही जैसी आज-कल हो रही है तो बहुत सम्भव है कि भविष्य में सन्तानों की शृङ्खला के द्वारा ये भीषण बुराइयाँ दिन प्रतिदिन अधिकाधिक मनुष्यों पर आक्रमण करती जायँगी। प्राणि-शास्त्र ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि यदि हम इन अपराधियों की अवस्था में कोई सुधार करना चाहते हैं तो अपराधियों को ऐसे स्थानों में क़ैद करना चाहिए जहाँ उनके स्वास्थ्य में किसी प्रकार के ह्रास की सम्भावना न हो।

मनोविज्ञान की उन्नति के कारण भी इस क्षेत्र की बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात हुई हैं। प्राचीनकाल में लोगों का यह विचार था कि मनुष्य सदाचरण या दुराचरण करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र हैं और अपराधी जान-बूझ कर अपराध करते हैं, अतएव इनको सन्मार्ग पर लाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए कठोर से कठोर दण्ड देना चाहिए। किन्तु मनोविज्ञान ने अपराधियों के स्वभाव का विश्लेषण किया है और यह बतलाया है कि क्यों इन लोगों की प्रवृत्ति वर्जित कामों की ओर होती है, साधारण अपराधी के मानसिक सङ्गठन में क्या क्या रोगी वृत्तियाँ और विशेषतायें होती हैं। मनोविज्ञान ने इस विचार का सदैव के लिए मूलोच्छेदन कर दिया है कि सब अपराधियों की अवस्था एक समान होती है, अतएव अपराधों पर विचार करते समय अपराधियों को भिन्न भिन्न श्रेणी में विभक्त करना परमावश्यक है। मनोविज्ञान ने यह भली-भाँति सिद्ध कर दिया है और विज्ञान-प्रेमियों को भी यह बात मान्य हो चुकी है कि निम्नश्रेणी के अधिकांश मानसिक रोगग्रस्त अपराधियों की अवस्था सुधारना सर्वथा असम्भव है, अतएव समाज की रक्षा की दृष्टि से इस प्रकार के अपराधियों को आजन्म बन्द रखने की आवश्यकता है। साथ ही मनोविज्ञान ने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि इनके अतिरिक्त प्रायः सभी अपराधी, यदि आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार उनकी शिक्षा और स्वास्थ्य का समुचित प्रबन्ध किया जाय तो, आसानी से समाज के सभ्य नागरिक बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान ने न्यायालयों को वैज्ञानिक रीति से अपराधियों की जांच करने और उचित दण्ड निश्चित करने में भी सहायता पहुँचाई है।

इन्हीं विचारों के अनुसार समाज के भाव भी अपराधियों के प्रति बदल चले हैं। कोम्ट ने मानवसमाज के मस्तिष्क के विकास की तीन अवस्थायें निर्धारित की थीं—पहली धार्मिक, दूसरी दार्शनिक, तीसरी वैज्ञानिक। सबसे प्राचीन राजनैतिक समाज में यह समझा जाता था कि अपराधियों पर भूत-प्रेतों का आधिपत्य रहता है। दार्शनिक युग में इस विचार का उदय हुआ कि मनुष्य काम करने में पूर्ण स्वतन्त्र है और लोग जान-बूझ कर अपनी इच्छा से अपराध करते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युग में यह माना जाने लगा है कि रोग-ग्रस्त होने के कारण अपराधी दुराचरण करने के लिए बाध्य होता है। पैत्रिक प्रवृत्तियाँ और जीवन के अनुभव ही मनुष्य के कार्यों के नियामक, अतएव उत्तरदाता हैं। सबसे पहले लोमब्रोसो और उसके अनुयायियों ने वैज्ञानिक रीति से इस सिद्धान्त का निरूपण किया था कि अपराधी रोगग्रस्त होने के कारण अपराध करने के लिए बाध्य होता है। किन्तु इन वैज्ञानिकों का यह विश्वास था कि अपराधियों के शारीरिक गठन में भीषण त्रुटियाँ हुआ करती हैं। इसके बाद इस विषय के जो वैज्ञानिक हुए हैं, उन्होंने यद्यपि लोमब्रोसो के विचारों का एक-दम खण्डन नहीं किया है, तथापि उनकी अधिकाधिक यह सम्मति होती जाती है कि शारीरिक गठन की त्रुटियों की अपेक्षा दूषित मानसिक प्रवृत्तियाँ ही अपराधियों की उत्पत्ति के लिए अधिक उत्तरदायी हैं। सामाजिक विज्ञान के विद्यार्थी अपराधों की उत्पत्ति का हेतु यह बतलाते हैं कि अपराधियों में अपने जीवन के अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता नहीं होती है, इसी कारण समाज में गड़बड़ मचा हुआ है।

इन्हीं नवीन विचारों के परिणाम-स्वरूप बहुत से मनुष्यों ने कारागार-सुधार का काम अपने हाथ में ले लिया है और अपराधियों के पुनरुद्धार के लिए किन किन उपायों का अवलम्बन किया जा सकता है, इस पर विचार कर रहे हैं। आज-कल कारावास दण्ड का एक उद्देश रह गया है कि जितने समय तक अपराधी कारागार में रहे, उसको एक योग्य नागरिक बनने की शिक्षा दी जाय। प्राचीन काल में लोगों की धारणा थी कि अपराधी जान-बूझ कर पाप करते हैं, अतएव उनसे बदला लेने की इच्छा से कठोर से कठोर दण्ड देने की प्रथा प्रचलित थी, किन्तु इस प्रकार के दण्ड से उन्नति के बदले अपराधी का उत्तरोत्तर नैतिक ह्रास हुआ करता था।

६—भारतवर्ष का प्राणि-विद्या-सम्बन्धी विभाग।

भारतवर्ष के प्राणि-विद्या-सम्बन्धी विभाग का त्रैवार्षिक विवरण (सन् २०-२३ तक) प्रकाशित हुआ है। उसमें उसके सञ्चालक डाक्टर एन० अननडेल ने कई महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है। आप लिखते हैं—

मेरी सम्मति में वर्तमान श्रेणी-बद्ध प्राणि-विद्या की एक भारी त्रुटि यह है कि वह भूगोल की उपेक्षा की दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखती है, उससे एक सङ्कुचित मान-चित्र के बाहर देखने का कष्ट नहीं उठाया जाता। यद्यपि कलकत्ता समुद्र से १०८ मील की दूरी पर स्थित है, तो भी अनेक प्राणि-विद्या-विशारदों की सम्मति है कि वास्तव में कलकत्ता एक समुद्री बन्दरगाह है। मेरे पास मेरे सहायकों के ऐसे पत्र आये हैं जिनमें मुझसे जांच की सुविधा के लिए जाल इत्यादि समुद्री सामान जुटाने के लिए अनुरोध किया गया है। उनसे यही बात प्रकट होती है। दूसरी भौगोलिक बात जिस पर शायद हमारे समालोचक ध्यान नहीं देते हैं वह भारतीय साम्राज्य का महान् विस्तार है। भारतीय साम्राज्य का क्षेत्रफल लगभग १७,६६,६०० वर्गमील है और इसके निरीक्षण के लिए इस विभाग में केवल चार वैज्ञानिक स्थायी रूप से नियुक्त हैं, जिनमें से एक न एक सदैव छुट्टी लेकर योरप चला जाया करता है। ऐसी अवस्था में यह प्रत्यक्ष है कि अभी इस विभाग का काम केवल भूमिका-मात्र है। कुछ विशेष क्षेत्रों के प्राणि-समुदायों की साधारण विशेषताओं तथा नमूनों का यथाशक्ति पूर्ण परिचय प्राप्त करना भर हमारा उद्देश है। हमारे कार्यकर्त्ताओं में से जो जिस प्राणि-समुदाय का विशेषज्ञ होता है वह उस समुदाय को श्रेणियों में भी विभक्त करने का उद्योग करता है।

हमारे लिए यह एक बड़ा रोचक प्रश्न था कि इस अनुसन्धान के कार्य में सहायता करने के लिए हिन्दुस्तानी नियुक्त किये जायँ या नहीं। किन्तु थोड़े ही काल में हिन्दुस्तानियों ने यह भली भांति प्रमाणित कर दिया है कि यदि उनको उचित शिक्षा और अनुकूल परिस्थिति में काम करने का अवसर दिया जाय तो वे प्राणि-विद्या-शोध में उसी योग्यता के साथ काम कर सकते हैं जैसे कोई योरपियन। इन लोगों को योरपीय अनुभव प्राप्त करने की भी विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, क्योंकि हमारे सहायकों ने योरपीय अनुभव न होते हुए भी बहुत अच्छा काम किया है।

हमको इस कार्य में एक छोटी सी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। प्राणियों के जो नमूने शराब की बोतलों में सुरक्षित रक्खे जाते हैं उनमें से बहुत से हमारे विभाग के निम्नतर कर्मचारी चुरा ले जाते हैं। पिछले विवरण में भी इस कठिनाई का उल्लेख किया गया था और इसको रोकने के लिए हम लोगों ने कुछ प्रयत्न भी किया, किन्तु शोक है कि हम इस छोटी सी बुराई को रोकने में समर्थ नहीं हुए। दिल्लगी तो यह है कि जो छोटे छोटे कर्मचारी इनको चुराते हैं। वे इन नमूनों का महत्त्व तो समझते नहीं, केवल बोतलों के लालच से इनको छिपा ले जाते हैं। वास्तव में हमारे विज्ञानालय के वर्तमान सहायकों के लिए इन लोगों की ठीक ठीक देख-भाल करना सर्वथा असम्भव है। मेरी सम्मति में तो अब भी वैज्ञानिक कार्यकर्त्ता अपने सङ्ग्रह की देख-भाल और सुरक्षा के कार्य में आवश्यकता से अधिक समय लगा देते हैं, क्योंकि यह कार्य वैज्ञानिक शिक्षा-शून्य विश्वासपात्र मनुष्यों के द्वारा भले प्रकार कराया जा सकता है। किन्तु छोटी छोटी तनख़्वाह पानेवाले कुली लोग इस कार्य के सर्वथा अयोग्य हैं।

प्राणि-विद्या-सङ्ग्रहालय किस स्थान में रक्खा जाय? मेरी सम्मति में यह प्रश्न बहुत ही उत्तरदायित्व-पूर्ण है। सदैव से मेरा यह विचार रहा है और अब भी इस विचार पर मैं दृढ़ हूँ कि यदि साम्राज्य-सङ्ग्रहालय को कोई क्षति पहुँचाई गई तो वह मानो भारतवर्षीय प्राणि-विद्या-शोध को हानि पहुँचाना होगा। यदि हमारा सङ्ग्रहालय इस देश से हटा दिया जाय तो हमारे उद्देश को ऐसा धक्का लगेगा जिससे उसका फिर से उठना एक प्रकार से असम्भव हो जायगा। मेरी राय में कलकत्ते को छोड़ कर भारतवर्ष में हमारे सङ्ग्रहालय के लिए और कोई अधिक उपयुक्त स्थान नहीं है।

हमारे सङ्ग्रहालय में वर्तमान तीन वर्षों में गत तीन वर्षों की अपेक्षा बहुत अधिक वृद्धि हुई है। अनुसन्धान का काम पुनः प्रारम्भ कर दिया गया है। हमारे कार्यकर्त्ताओं के लिए भ्रमण करने में भी बहुत सी सुविधायें हो गई हैं। बङ्गाल की खाड़ी के पूर्वी किनारे के एक टापू से बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई है। व्यक्तिगत दाताओं ने भी बहुत सा सामान प्रदान किया है, यद्यपि भारतवर्ष में इस समय ऐसे बहुत थोड़े लोग हैं जो राष्ट्रीय सङ्ग्रहालय की सहायता देने के लिए तत्पर हैं। हम हुगली के माझियों के विशेष-रूप से ऋणी हैं, क्योंकि उन्होंने प्राणि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बहुत ही रोचक नमूने सङ्ग्रहालय को प्रदान किये हैं। किन्तु सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण नमूने हमको तिब्बत से प्राप्त हुए हैं और इसका श्रेय मिस्टर वानमेनन को है। उन्होंने इस कार्य में कई एक तिब्बत-निवासियों से सहायता प्राप्त की है, जिनमें एक भिक्षु विशेष उल्लेखनीय है। कहते हैं, यह भिक्षु जादू भी जानता है। इसने अद्भुतालय के लिए मकड़ी के जाले के सदृश ऊन के रेशों के बड़े ही विलक्षण जाले बनाये हैं। ये अधिकतर तिब्बत के मठों के द्वार पर लगाये जाते हैं। लोगों की यह धारणा है कि इनमें महान् आत्मायें और उनके अनुचर निवास करते हैं। उन्होंने बहुत ही थोड़ी क़ीमत में घरू काम-काज के औज़ारों के अत्यन्त रोचक नमूने भी मोल लिये हैं! इनमें कुछ औज़ार बहुत ही प्राचीन काल के मालूम पड़ते हैं। साधारण दूकानदारों के यहाँ इनका मिलना सर्वथा असम्भव है।

दूसरी रोचक वृद्धि हमारे सङ्ग्रहालय में क्वेटा से हुई है। वहाँ के ब्राहुई नामक वाद्ययन्त्रों का जोड़ा मोल लिया गया है। उसमें विशेषता यह है कि उसमें दोनों भारतीय और फ़ारसीय कलाओं की झलक दिखाई देती है। बहुत दिनों से तोलने और नापने के मापों को एकत्रित करने की मेरी प्रबल इच्छा थी। अभी हाल में विविध प्रकार के तोलने के डंडे भिन्न भिन्न देशों से प्राप्त हुए हैं। इनमें दक्षिणी शान रियासतें, दक्षिण भारत का गंजाम ज़िला, बंगाल के कोमिल्ला और चटगाँव ज़िले तथा बिहार का ज़ारीबाग़ मुख्य हैं।

मदरास-सरकार ने उदारता-पूर्वक हमारे सङ्ग्रहालय के लिए मदरास-प्रान्त की विविध भाषाओं से भरे हुए आमोफ़ोन के रिकर्ड प्रदान किये हैं। छोटा नागपुर की जातियों के आभूषण, वाद्ययन्त्र इत्यादि पटना अद्भुतालय में परिवर्तन में प्राप्त हुए हैं। आक्सफ़ोर्ड अद्भुतालय में भी परिवर्तन करने की चर्चा हो रही है।

कई वर्ष हुए शिक्षित दर्शकों की सहायता के लिए सङ्ग्रहालय के दो विभागों की छोटी छोटी सूचियाँ तैयार की गई थीं और ये स्थान स्थान पर लटका दी गई थीं। यद्यपि पढ़े-लिखे दर्शकों की संख्या बहुत थोड़ी होती है, तो भी इन पुस्तकों के दुरुपयोग से इनकी बड़ी दुर्दशा हो गई है, सब अच्छी अच्छी तसवीरें फाड़ ली गई हैं, इधर-उधर पान के धब्बे लगा दिये गये हैं, और यदि कोई पन्ना कोरा मिल गया है तो उस पर भद्दे भद्दे व्यक्तिगत आक्षेप लिख डाले गये हैं।

कई वर्षों से मिस्टर एस० डबल्यू० केम्प इस विभाग के अधीन एंडमन टापुओं में एक प्राणिशास्त्र-सम्बन्धी केन्द्र खुलवाने के लिए बड़ा उत्साह दिखा रहे हैं। सन् १९२० में वे इस प्रकार के केन्द्रों का निरीक्षण करने के लिए योरप गये थे। वहाँ से लौटते समय वे एंडमन के ब्लेयर बन्दरगाह में उतरे थे और वहाँ उन्होंने केन्द्र के लिए उपयुक्त स्थान भी ढूँढ़ लिया था। तदनन्तर यह स्कीम भारत-सरकार के पास भेजी गई। उसने इस स्कीम के साथ सहानुभूति प्रकट की और सम्मति के लिए उसको वैज्ञानिक-परिषद् के पास भेज दिया। परिषद् ने भी उसे सहर्ष स्वीकृत कर लिया, किन्तु साम्राज्य की आर्थिक दुरवस्था के कारण वह स्कीम एक कोने में रख दी गई।

हमारे कार्याधिकारियों ने गत वर्षों में जो भ्रमण किये हैं उनका मुख्य उद्देश यह था कि विविध स्थानों के तालाब और झीलों के प्राणि-समुदायों का पूरा पूरा हाल ज्ञात हो जाय। हम लोगों ने दो बार दक्षिणी शान रियासतों की झीलों का निरीक्षण किया है और चौधरिया कोदत नामक एक विशेष प्रकार की मछली के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात की हैं। कमाऊँ और कश्मीर की झीलों का भी दौरा किया गया है, इनमें और अन्य भारतीय झीलों में बहुत कम समानता है। ऐसा मालूम होता है कि इनकी मछलियाँ कभी मध्य-एशिया से यहाँ आई हैं। भारतीय झीलों के प्राणि-समुदाय और इँग्लेंड की झीलों के प्राणि-समुदाय में यदि कहीं समानता देख पड़ती है, तो वह इन्हीं झीलों में। उपयोगिता और रोचकता में कश्मीर की झीलें कमाऊँ की झीलों से बढ़ी-चढ़ी हैं। कमाऊँ की झीलों के प्राणि-समुदाय में कोई विशेषता नहीं है। सन् १९२२ में डाक्टर सुन्दरलाल होरा ने पंजाब के साल्टरेंज का दौरा किया था। उससे हमको एक नवीन प्रदेश के जलचर और थलचर प्राणियों के विषय में बहुत जानकारी हुई है। थलचर-प्राणि-समुदाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सम्बन्ध में डाक्टर केम्प ने शिमला और कोदईकनाल के ज़िलों का दौरा किया था, इससे हमारे सङ्ग्रहालय में कीड़े-मकोड़ों के नमूनों की बड़ी वृद्धि हुई है। सबसे महत्त्वपूर्ण दौरा आसाम के गारू पहाड़ों की सिनू नामक गुफा का हुआ है। यह भारतीय साम्राज्य की सबसे बड़ी गुफा है और वैज्ञानिकों द्वारा भारतीय गुफाओं की खोज का यह पहला अवसर है। इस गुफा से हमारे सङ्ग्रहालय में कई विचित्र वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं।

भारत-सरकार के अन्य विभागों की अपेक्षा शायद इस विभाग से सबसे अधिक भारतीयता टपकती है। यदि हम अपने भारतीय वैज्ञानिक सहायकों की गणना न करें, तो भी इस विभाग के उच्च कार्याधिकारियों में हिन्दुस्तानियों की संख्या आधी होगी और यदि सहायकों को सम्मिलित कर लें तो फिर संख्या आधे से कहीं अधिक बढ़ जाती है। मुझे अपने भारतीय सहायकों के अन्वेषण-कार्य की प्रशंसा करते हुए हर्ष होता है। मैं कह सकता हूँ कि यदि भारतवर्ष में प्राणि-विद्या-सम्बन्धी शिक्षा के लिए अधिक सुविधायें और स्वतन्त्रता हो जाय, तो इस विभाग में अधिकाधिक हिन्दुस्तानियों को सम्मिलित न करने के लिए हमारे पास कोई कारण न रह जायगा।

७—हिन्दू-मुसलिम-एकता और हिन्दू-सङ्गठन पर रवीन्द्र बाबू के विचार।

हिन्दू-मुसलिम-एकता और हिन्दू-सङ्गठन के मसले ने धीरे धीरे जटिल रूप धारण कर लिया है। देश के प्रायः सभी नेताओं का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ है। इस सम्बन्ध में जो विचार रवीन्द्र बाबू ने प्रकट किये हैं वे संक्षेप में यहाँ दिये जाते हैं—

हिन्दू-मुसलिम-एकता का प्रश्न देश के लिए एक बड़ी भारी विभीषिका है। इसके आगे देश की और कोई भी बात उतना महत्त्व नहीं रखती। अभी तक देश के नेता इस एकता को चिरस्थायी और व्यावहारिक रूप देने में समर्थ नहीं हुए हैं। और जब तक यह मसला हल नहीं होता तब तक स्वराज्य की स्थापना स्वप्न-मात्र समझना चाहिए। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों के विचार अत्यन्त अनिश्चित और बे-सिर-पैर के हैं। उन्हें विश्वास हो गया है कि विदेशी पराधीनता से मुक्त होते ही सब कठिनाइयाँ अपने आप दूर हो जायँगी। परन्तु मेरा विश्वास ऐसा नहीं है।

मुसलमानों में सभी धार्मिक बातों में एकता है। वे सङ्गठित भी हैं। ऐसी दशा में हिन्दुओं से उनका समानता का व्यवहार करना सर्वथा अस्वाभाविक है। क्योंकि हिन्दू आपसी मत-भेदों तथा जाति-विभिन्नता के कारण नीति-भ्रष्ट हो गये हैं और धर्मान्धता के मिथ्या अभिमान से अभिभूत हैं। मुसलमानों में शक्ति है और उसका उन्हें ज्ञान भी है। वे यह भी जानते हैं कि हिन्दू निर्बल हैं। आज-कल के लोगों की जैसी प्रकृति है उसे देख कर मुझे तो आशा नहीं होती कि मुसलमान लोग अपने प्राकृतिक स्वत्वों को त्याग कर हिन्दुओं के साथ उदारता-पूर्वक समानता का व्यवहार करेंगे और उन्हें सब प्रकार के स्वत्वों में अपने बराबर के साझीदार समझेंगे। मोपला-विद्रोह की समाप्ति के बाद मैं मलाबार गया था। मैंने अपनी आँखों से देखा कि वहाँ के चालीस लाख हिन्दू दस लाख मुसलमानों से भयभीत रहते हैं। हिन्दुओं की यह करुणा-जनक दशा है। वे मुसलमानों के अनुग्रह पर ही इस देश में अपना काल-यापन करते हैं।

जिन बातों से हिन्दू-मुसलिम-एकता असम्भव सी हो रही है उनमें एक यह है कि मुसलमानों का देश-प्रेम किसी देश-विशेष तक ही परिमित नहीं है। मुसलिम संसार की रचना धार्मिक बन्धुत्व के आधार पर हुई है। इसी धार्मिक बन्धन ने भूमण्डल भर के मुसलमानों को मज़बूती के साथ एकता के सूत्र में बाँध रक्खा है। अंगोरा-सरकार की वर्तमान शक्ति के प्रभाव से इस सिद्धान्त को और भी अधिक बल प्राप्त हो गया है।

अतएव ख़िलाफ़त जैसे आन्दोलन में भाग लेकर हिन्दू उपर्युक्त मसले को हल नहीं कर सकते। इन दोनों जातियों में कुछ मौलिक मत-भेद है। केवल बाहरी उपचार से उनका उन्मूलन नहीं हो सकता। हिन्दू-मुसलिम एकता के लिए हमें भीतर से काम करना होगा। इसके लिए तो मुझे सबसे अधिक और व्यावहारिक उपाय यही जँचता है कि ये दोनों जातियाँ अपनी आर्थिक स्थि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधारने के लिए सहयोग करें। देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए इन्हें गाँवों में तत्सम्बन्धी संस्थायें खोलनी चाहिए। इन संस्थाओं के प्रभाव से धीरे धीरे इन दोनों जातियों के पारस्परिक सङ्घर्षण के कारण दूर हो जायँगे। यही नहीं, उनमें ऐसी एकता भी स्थापित हो जायगी जो चिरस्थायी होगी।

हिन्दू-महासभा का कार्य हिन्दुओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अगर हिन्दू जीवित रहना चाहते हैं, अगर वे अपनी पतितावस्था से उठना चाहते हैं, तो उन्हें ऐक्य-सूत्र में बँधना ही होगा, उन्हें अपना सङ्गठन करना ही पड़ेगा और इसके मार्ग में जो कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी उनका सामना भी उन्हें करना पड़ेगा। इसमें मुसलमानों के बोलने की जगह ही नहीं है। हिन्दुओं ने मुसलमानों को इस सम्बन्ध में सदा स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य करने दिया है। अतएव उन्हें भी अपना कार्य स्वतन्त्रता-पूर्वक करने का हक़ है। मुसलमान एकता का स्थापन कर और सभा-समाज खोल सकते हैं। वे हिन्दू को मुसलमान बना सकते हैं। ये सब काम वे अब तक बराबर करते रहे हैं। हिन्दुओं ने उनके इस कार्य में कभी बाधा नहीं दी। उन्हें अपना काम बराबर स्वतन्त्रता-पूर्वक करने दिया। तब हिन्दुओं के ऐसे ही कार्यों में मुसलमानों को एतराज़ करने का कोई हक़ नहीं है।

पुस्तक-परिचय।

(१) भारतीय सम्पत्ति-शास्त्र—लेखक, अध्यापक प्राणनाथ विद्यालङ्कार और प्रकाशक, श्रीयुत शिवनारायण मिश्र वैद्य, प्रताप-पुस्तकालय, कानपुर हैं। आकार मझोला, छपाई और काग़ज़ अच्छा, रेशमी कपड़े की जिल्द सहित मूल्य ५) है।

देश की साम्पत्तिक अवस्था के ज्ञान के लिए तत्सम्बन्धी शास्त्र के अनुशीलन की कितनी अधिक आवश्यकता है, इस पर कुछ कहने की ज़रूरत नहीं। खेद की बात है कि हिन्दी में अभी तक इस शास्त्र के दो ही चार ग्रन्थ देखे जाते हैं। आलोच्य ग्रन्थ हाल में ही निकला है और इससे उनकी संख्या में वृद्धि हुई है। लेखक ने इस ग्रन्थ की रचना भले प्रकार अध्ययन करके की है। इसके प्रमाण के लिए ग्रन्थारम्भ में बहुसंख्यक अर्थशास्त्रियों या पत्रों के नामों की एक लम्बी सूची दे दी गई है। परन्तु मुख्यतः इसकी रचना के आधार फ्रेडरिक लिस्ट नामक प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री या साम्यवाद के सिद्धान्त हैं। इस ग्रन्थ में लेखक ने ज़मींदारी और भूमि-कर की पद्धति को निन्द्य ठहराया है। कृषि की समुन्नति के लिए वे कलों का उपयोग भी उपयोगी नहीं समझते। ऐसे ही कुछ अनूठे सिद्धान्तों को सन्निविष्ट करके लेखक ने अपने इस शास्त्र को समयोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। इनके सिवा बहुसंख्यक ज्ञातव्य बातों से यह पुस्तक समलङ्कृत है।

(२) यंग इण्डिया—महात्मा गांधी ने अपने 'यंग इंडिया' में असहयोग-काल में बहुसंख्यक लेख और भाषण प्रकाशित किये थे। वे सब क्रमपूर्वक सङ्ग्रह करके अँगरेज़ी में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। ऐसी ही सङ्कलित पुस्तक का अनुवाद 'यंग इंडिया' नाम से अब हिन्दी में भी सुलभ हो गया है। यह हिन्दी यंग इण्डिया तीन भागों में समाप्त हुआ है और इसे बड़ा बाज़ार कुमार-सभा, नं० ४०२ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता ने 'सुलभ साहित्य सीरीज़-द्वारा प्रकाशित किया है। इस सीरीज़-द्वारा प्रकाशित पुस्तकें मूल लागत पर ही ग्राहकों को देने का प्रबन्ध किया गया है। अतएव इन बड़ी बड़ी पोथियों का मूल्य नहीं, 'न्यौछावर' इस प्रकार है:—६०० से अधिक पृष्ठों का प्रथम भाग १) में, ८०० के लगभग पृष्ठों का द्वितीय भाग १॥) में, और १००० के क़रीब पृष्ठ-संख्या का तृतीय भाग २) में मिलता है। इसे श्रीयुत छबिनाथ पाण्डेय, बी० ए०, एल-एल० बी० ने अनुवादित किया है। अनुवाद सरल और सुन्दर हुआ है। पुस्तक सङ्ग्रह करने योग्य है।

हिन्दी-पुस्तक-भवन नं० १८१ हरिसन रोड कलकत्ता ने हिन्दी-पुस्तक-माला नाम की एक नई सीरीज़ निकाली है। इस माला का दूसरा पुष्प **(३) कर्मयोग** है। यह बङ्गाल सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत अश्विनीकुमार दत्त के कर्मयोग का अनुवाद है। इसके अनुवादक हैं श्रीयुत छबिनाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाण्डेय, बी० ए०, एल-एल० बी०। इसमें दृष्टान्त आदि द्वारा कर्मयोग के गूढ़ तत्त्व अच्छे ढङ्ग से समझाये गये हैं। पृष्ठ-संख्या १४६ और मूल्य बारह आना है। इस ग्रन्थ-माला का तीसरा पुष्प **(४) सरल गीता** है। यह श्रीयुत लक्ष्मीनारायण गर्दे द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता का सरल भाषा में अनुवाद है। श्लोकों के भाव को अच्छी तरह समझाने के लिए बीच बीच में जो लम्बी लम्बी टिप्पणियाँ दी गई हैं उनसे इस अनुवाद का महत्त्व और भी बढ़ गया है। अन्त में ४७ पृष्ठों का एक परिशिष्ट भी है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य एक रुपया चौदह आना है। पृष्ठ-संख्या ३४७ है।

इसका चौथा पुष्प **(५) मधुर-मिलन** है। यह पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी-द्वारा रचित एक मौलिक नाटक है। इसमें प्रकाशक के शब्दों में "चतुर चित्रकार चतुर्वेदीजी ने वर्तमान समाज का चित्र बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया है", परन्तु हमारी समझ में कुशल चित्रकार ने इस नाटक में वह खूबी नहीं दिखलाई है जो हम उनसे आशा करते हैं। पृष्ठ-संख्या ९८ और मूल्य दस आना है।

(६) मायापुरी—इस उपन्यास के लेखक हैं श्रीयुत चन्द्रशेखर पाठक। पाठकजी ने इस उपन्यास-द्वारा जो बात बतलाने की चेष्टा की है वह उन्हीं के शब्दों-द्वारा सुन लीजिए। "इस संसार-रूपी मायापुरी में अनेकानेक उपद्रव और पापकर्म की वेगवती सरिता बहा करती है। अतः इससे अपनी रक्षा कर आत्मानन्द के दरबार में निरपराधी प्रमाणित होने के लिए संयमरूपी मित्र, बुद्धिरूपी पिस्तौल, कर्म-पटुतारूपी क्लोरोफ़ार्म और त्याग, क्षमा, संतोष प्रभृति सिपाहियों का सहारा लेना परमावश्यक है।" इसी बात को लेकर लेखक ने इस उपन्यास की सृष्टि की है। इसके कुछ पात्र कामरूपसिंह (काम), अमर्षसिंह (क्रोध), गर्वसिंह (मद) इत्यादि हैं तो दूसरी ओर संयमसिंह, परोपकारसिंह, सन्तोषसिंह इत्यादि हैं और नायक जीवानन्द (मनुष्य विशेष) हैं। कहने का आशय यह है कि मनुष्य के हृदय में सुवृत्ति और कुवृत्ति का जो संग्राम होता है उसी को लेखक ने कहानी का रूप दिया है। इन दोनों पार्टियों के बीच द्वन्दयुद्ध का जो वर्णन है वह मार काट और ख़ून-ख़राबी से इतना भर गया है कि पढ़ते पढ़ते तबीयत ऊब जाती है।

कहानी कहानी की ही दृष्टि से सुन्दर समझी जाती है। यदि किसी शिक्षा के आधार पर कहानी की रचना की जाती है तो सचमुच एक विशेष लक्ष्य पर आश्रित होने के कारण कथाभाग का बहुत सा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, क्योंकि तब लक्ष्य वस्तु प्रधान हो जाती है और कथा भाग उस लक्ष्य का आडम्बर-मात्र ही रह जाता है। परन्तु उपन्यास में कथाभाग प्रधान होना चाहिए और शिक्षा उसका फल। 'मायापुरी' की रचना भी एक लक्ष्य के आधार पर हुई है। पाठकजी उसके कथा-भाग को मनोरञ्जक बनाने में ज़रा भी सफल न हो सके। इस उपन्यास से शिक्षा भले ही मिले, परन्तु इससे हमारा थोड़ा भी मनोरञ्जन नहीं हुआ। इस किताब में चित्र भी कई एक हैं, परन्तु सब भद्दे। प्रकाशक, आर० डी० बाहिती एण्ड० को०, नं० ४ चोरबागान, कलकत्ता हैं। पृष्ठ-संख्या ३२२ और मूल्य २॥) है।

(७) प्रेम—यह श्रीअश्विनीकुमार दत्तजी की किताब का अनुवाद है। यह अनुवाद श्रीयुत पन्नालाल जैन ने किया है और इसे हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, ९३ लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता ने प्रकाशित किया है। इसमें प्रेम का असली तत्त्व दर्शाया गया है। युवकों को इसमें प्रेम-सम्बन्धी कई शिक्षायें दी गई हैं। "क्योंकि आज-कल बाज़ारों में दुष्ट लोग प्रेम के नाम से अनिष्टकारी पदार्थ बेच रहे हैं। युवक-गण बिना समझे-बूझे उसे ही ख़रीदते हैं। युवक को सावधान करने के लिए ही लेखक ने इस प्रसङ्ग को छेड़ा है।" पुस्तक मनन करने योग्य है, चिकने काग़ज़ पर लाल स्याही से छपी हुई इस किताब की क़ीमत आठ आना है।

उपर्युक्त मूल पुस्तक का अनुवाद पण्डित रामनरेश त्रिपाठीजी ने भी किया है और हिन्दी-मन्दिर प्रयाग से प्रकाशित हुआ है। यह अनुवाद भी सुन्दर हुआ है।

(८) मेरी काश्मीर-यात्रा—इस किताब में लेखक पण्डित मथुराप्रसाद पाण्डेय ने अपनी काश्मीर-यात्रा का वर्णन किया है। इसमें आगरा से लेकर श्रीनगर तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रास्ते में जो जो देखने लायक़ स्थान हैं उन सबका वर्णन है। इसकी वर्णन-शैली अच्छी है और पढ़ने में मन लगता है। इसके प्रकाशक हैं पण्डित ओङ्कारेश्वर दीक्षित कानपुर। मूल्य दस आना है। पुस्तक के भीतर ५ सादे चित्र भी हैं।

(९) **श्रीबदरी-केदार-यात्रा**—रेलगाड़ी के कारण आज-कल यात्रियों को यात्रा में बहुत कुछ सुभीता हो गया है। परन्तु तो भी ऐसे तीर्थ स्थानों में, जहाँ पैदल यात्रा करनी पड़ती है वहाँ उन्हें बहुत तकलीफ़ भी उठानी पड़ती है। श्रीबदरी-केदार की यात्रा के लिए ऋषीकेश रोड के आगे रेलवेलाइन नहीं है। यात्रियों को पहाड़ी रास्ता के कारण बहुत झंझटें उठानी पड़ती हैं। इस पुस्तक में सिलसिलेवार हर एक पहाड़ी स्थानों का नाम और पता लिख दिया गया है, जहाँ यात्रियों को बहुत कुछ आराम मिल सकता है। यह किताब बदरिकाश्रम जानेवालों के लिए बड़े काम की है। पढ़नेवालों के लिए भी मनोरञ्जक है। लेखक, बलरामजी दुबे और प्रकाशक दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०, लखनऊ हैं। मूल्य चार आना है।

(१०) **मालतीमाधव नाटक**—महाकवि भवभूति-कृत संस्कृत के मालती-माधव नाटक का यह अनुवाद है। यह स्वर्गीय पण्डित सत्यनारायण कविरत्न की रचना है। मूलनाटक के पद्य-भाग का अनुवाद सरस व्रजभाषा में किया गया है। यह साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित हुआ है। मूल्य है एक रुपया।

(११) **नन्द-पतन**—यह एक ऐतिहासिक नाटक है। कई पुस्तकों के अध्ययन के पश्चात् इस नाटक की रचना हुई है। यह नाटक दर्शकों का बहुत कुछ मनोरञ्जन कर सकता है। स्टेज पर खेलने लायक़ है। श्रीव्रजविहारीशरण एम० ए०, बी० एल० पटना ने इसकी रचना की है और उन्होंने ही इसका प्रकाशन किया है। मूल्य १) है।

(१२) **सौर-साम्राज्य**—यह ज्योतिर्विद्या-ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प है। इसे पण्डित विन्धेश्वरीप्रसाद मिश्र ने लिखा है और गृहलक्ष्मी कार्यालय, प्रयाग ने प्रकाशित किया है। इसमें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी तथा ग्रहोपग्रहादि का सविस्तर वर्णन है। और इन सबका सम्बन्ध भी चित्रों-द्वारा समझाया गया है। ग्रह-युति और ग्रहण का भी परिचय बहुत अच्छी तरह से कराया गया है। लेखक ने बड़े परिश्रम से मराठी, अँगरेज़ी और प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् इसको लिखा है। पृष्ठ-संख्या १३९ और क़ीमत चौदह आना है।

(१३) **पत्र-सम्पादन-कला**—लेखक, श्रीयुत नन्द-कुमारदेव शर्मा और प्रकाशक, एस० आर० बेरी एंड कम्पनी, २०५ हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १५६ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में विदेशी समाचार-पत्रों के इतिहास का संक्षिप्त परिचय, भारतीय पत्रों की चर्चा एवं तत्सम्बन्धी क़ानून और पत्र-सम्पादन-कार्य की आलोचना की गई है। सम्पादन-कार्य के दूसरे उपचारों का भी दिग्दर्शन कराया गया है। मुद्रण तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी बातों का भी उल्लेख किया गया है। यह पुस्तक अपने विषय की हिन्दी में पहली है। साधारणतया अच्छी है।

(१४) **देशभक्ति की पुकार**—अनुवादक, श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०; प्रकाशक भीष्म एंड ब्रदर्स, पटकापुर, कानपुर हैं। पृष्ठ-संख्या २०२ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में लाला लाजपतराय के लेखों और भाषणों का सङ्ग्रह है। सङ्ग्रहकर्ता का यह विचार है कि लालाजी के समस्त लेख और भाषण पुस्तक-रूप में सङ्कलित किये जायँ। ऐसे ही सङ्कलन की यह पहली पुस्तक है। इसमें कुल १५ लेख हैं। पुस्तक की छपाई और काग़ज़ साधारण और जिल्द भी साधारण है। मूल्य १) है।

(१५) **भक्ति**—अनुवादक, 'ज्ञान-पिपासु' और प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी, १२६ हरिसन रोड, कलकत्ता है। इसकी पृष्ठ-संख्या ११२ और मूल्य ।=) है।

यह पुस्तक उपर्युक्त 'एजेन्सी की सस्ती ग्रन्थ-माला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का चौथा पुष्प है। मूल्य में सस्ती होने पर भी इसकी छपाई और काग़ज़ अच्छा है। यह स्वामी विवेकानन्द के भक्तियोग का भाषान्तर है। अनुवाद की भाषा सरल है।

(१६) नीति-विवेचन—श्रीमान् महाराजा गायकवाड़ ने साहित्य-सेवा के निमित्त दो लाख रुपये प्रदान किये हैं। उसके ब्याज से "श्रीसयाजी साहित्य-माला" के द्वारा अनेक विषयों के ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं। इस ग्रन्थ-माला की अधिकांश पुस्तकें मराठी और गुजराती में हैं। यह पुस्तक उपर्युक्त साहित्य-माला का ७६ वाँ पुष्प है और "नीति-विवेचन" नामक गुजराती पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। खुशी की बात है कि इस ग्रन्थ-माला में हिन्दी की भी उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं।

'नीति-विवेचन' के अनुवादक श्रीयुत कान्तिलाल केशवराय नानावटी एम० ए० और प्रकाशक जयदेव प्रदर्स, बड़ोदा हैं। इसमें हमारे शास्त्रों-द्वारा बताये गये कर्म तथा नीति के साथ पाश्चात्य देशों के नियमों का तुलनात्मक विचार किया गया है। इसमें आर्यनीति, जैननीति, बौद्धनीति, पाश्चात्यनीति, नैतिक जीवन आदि विषयों पर अच्छी विवेचना की गई है। पुस्तक अच्छे ढङ्ग से लिखी गई है। छपाई और सफ़ाई उत्तम है। कपड़े की बढ़िया जिल्द सहित किताब का मूल्य एक रुपया सात आना और पृष्ठ-संख्या २७६ है।

(१७) उपासना-प्रकाश—इस पुस्तक का प्रकाशन खड्गविलास प्रेस, पटना, से हुआ है और मूल्य ॥) है। इसमें इसके सङ्ग्रहकर्ता ने, जिनका नाम पुस्तक पर नहीं छपा है, उपासना के तत्त्वों का निरूपण बहुत ही सरल और निराले ढङ्ग से किया है। प्रारम्भ में उपासना के विषय का संक्षेप में विवेचन है, फिर पवित्र 'रामचरित' साधक की उपासना का विषय बनाया गया है और इसके लिए जगह जगह भक्त कवियों की ललित रचनायें, जिनमें रामचरितमानस का सबसे अधिक अंश है, प्रचुर परिमाण में, सङ्कलित की गई हैं। जो राम-भक्त संस्कृत न जानने अथवा सद्गुरु की सङ्गति से वञ्चित रहने के कारण अपने इष्ट की उपासना की विधि के ज्ञान से रहित हैं उनको अपनी उपासना में इस पुस्तक से पूरी सहायता मिल सकती है। यही नहीं, दूसरे इतर उपासक और सहृदयजन भी इससे लाभ उठा सकते हैं। यह हिन्दी में अपने ढङ्ग की पहली पुस्तक है और सङ्ग्रह करने योग्य है।

(१८) श्रद्धाञ्जलि—महात्मा गाँधी के नवजीवन और हिन्दी नवजीवन में पिछले दो तीन वर्षों में लोकमान्य तिलक के सम्बन्ध में कई एक भाव-पूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं। इस 'श्रद्धाञ्जलि' में उन्हीं लेखों का सङ्ग्रह हुआ है। कुल चौदह लेख हैं। इनमें दो स्वयं महात्माजी के लिखे हुए हैं, एक 'केसरी' से लिया गया है और एक कविता है। सभी लेख सुन्दर और सरस भावों से परिपूर्ण हैं। निस्सन्देह यह श्रद्धाञ्जलि श्रद्धा का पात्र है। इसका मूल्य ॥) है और नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद को लिखने से यह मिल सकती है।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २४, खण्ड २] आक्टोबर १९२३—आश्विन १९८० [संख्या ४, पूर्ण संख्या २८६

विश्व-मैत्री।

आदि काल से मनुष्य अपनी रक्षा के साधन ढूँढ़ने में अपनी विचार-शक्ति को लगाता आ रहा है, परन्तु उसे यथेष्ट फल की प्राप्ति कभी नहीं हुई। प्राचीन काल में जब संसार हिंस्रक जीव-जन्तुओं से पूर्ण था तब वह गुफा या कन्दरा में रह कर अपनी रक्षा किसी प्रकार कर लेता था, परन्तु वर्तमान काल में जब प्रायः समस्त संसार में सभ्यता का प्रचार हो गया है, उसे अपनी रक्षा के लिए बड़े बड़े जङ्गी जहाज़ बनाने और युवकों को फ़ौजी शिक्षा देने में असंख्य धन-सम्पत्ति ख़र्च करना पड़ता है। रक्षा के नाम पर संसार की सभी जातियाँ युद्ध की इतनी सामग्री एकत्र रखती हैं जिनकी राशि पर्वत को भी अतिक्रमण कर सकती है। इसका कारण जीवन के लिए उन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है, परन्तु उनके बिना जीवन के सुरक्षित न रह सकने का भय है। भय से निवृत्त होने और रक्षा पाने के अभिप्राय से लाखों मनुष्य अपने व्यवसाय से वञ्चित कर दिये जाते हैं और सैनिक बनने या जहाज़, तोप, मशीन-गन, बन्दूक़, बम, वायुयान, विषैला धुवाँ तथा अन्यान्य प्राणघातक गुप्त अस्त्र-शस्त्र बनाने के कार्य में लगाये जाते हैं। यह परिश्रम और यं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुएँ, जिनसे लाखों सुन्दर मकानों और आरोग्य-दायक विशाल नगरों की उत्पत्ति हो सकती है, मानव-जाति के जीवनाधार न होकर उनके नाश का कारण बनती हैं। आज-कल कोई भी समृद्धि-शाली देश उन वैज्ञानिकों को यथेष्ट पुरस्कार देने को तैयार है जो उनके लिए ऐसी युक्ति खोज निकाले जिससे बहु-संख्या में और अत्यन्त शीघ्रता से मनुष्य का संहार हो सके। यद्यपि ये सब कार्य नाश और अनर्थ के हेतु किये जाते हैं, तथापि लोग वैसा न कह कर उन्हें रक्षा के साधन का नाम देते हैं। जिसका उद्देश संहार है उससे भला, रक्षण का कार्य कैसे हो सकता है?

आज से सौ वर्ष पूर्व जब संसार इतनी उन्नत अवस्था में नहीं था, रक्षा के नाम पर राज्य के भीतर ही प्रजा की स्वतन्त्रता का अप-हरण कर लिया जाता था। राज्याधिकारी रक्षा की दुहाई देकर प्रजा को पकड़ बुलवाता था और रक्षा की प्राप्ति के हेतु युद्ध में उन सबका जीवन अर्पित कर देता था। इस समय राजाओं को वैसी स्वच्छन्दता नहीं है, इससे प्रजा को राज्य के अन्तर्गत रक्षा पाने का भरोसा हो गया है। परन्तु राज्य के बाहर शत्रुओं का भय ज्यों का त्यों बना हुआ है। ऐसे बड़े बड़े राष्ट्र तथा देश हैं जो प्रजा-द्वारा या नियन्त्रित सत्ता के राजा-द्वारा शासित होते हैं। वहाँ भी रक्षा के हेतु प्रजा को अपनी स्वतन्त्रता से विमुख होना पड़ता है। फ़्रांस में प्रजासत्तात्मक राज्य है और इटली में नियन्त्रित सत्ता का राजा है। इन दोनों देशों में अनिवार्य फ़ौजी शिक्षा का क़ानून जारी है, जिससे प्रत्येक नवयुवक को सेना में भरती होना और युद्ध की शिक्षा प्राप्त करना पड़ता है। जिन अन्य देशों में ऐसा नियम नहीं है, वहाँ बड़ी बड़ी जल और स्थल-सेना सर्वदा विद्यमान रहती है और उसके लिए करोड़ों रुपया व्यय किया जाता है। इतना सब होता है रक्षा के नाम पर, परन्तु फिर भी सुरक्षित कोई नहीं है।

प्राचीन काल में जब हिंस्रक जानवरों से बचने का उपाय मनुष्यों को ज्ञात हुआ तब उनके सम्मुख तीर और भाले का भय आ उपस्थित हुआ। उससे बचाने के लिए जब उन्होंने नगर के इर्द-गिर्द परकोटे खींचे तब तोप, फिर बम और अन्त में वायुयान उन्हें त्रास देने लगे। इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य के भय-स्वप्न का अन्त कभी नहीं हुआ। वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और उससे बचने का जितना अधिक उद्योग किया गया उतना ही अधिक वह उनके समीप आता गया। यद्यपि जर्मन-सेना का दर्प चूर्ण हो गया है, तथापि फ़्रांस, जो अपना ऋण चुकाने में असमर्थ है, अपना सैनिक व्यय और बड़े बड़े वायुयान का बेड़ा दिन दूना और रात चौगुना बढ़ाता जा रहा है। उसकी तरह छोटे-बड़े, नये-पुराने सभी राष्ट्र अपनी सारी पूँजी युद्ध की तैयारी में ख़र्च कर रहे हैं।

पचास वर्ष पूर्व रक्षा के नाम पर जर्मनी ने फ़्रांस पर विजय प्राप्त की थी और ज़मानत के तौर पर उसने उससे अलसेस और लोराइन प्राप्त ले लिये थे। तो भी उसे फ़्रांस का भय लगा रहा और उस भावी भय के लिए वह बड़ी बड़ी तैयारियाँ करता रहा। इन तैयारियों के साथ साथ उसका दर्प और उसकी धृष्टता भी खूब बढ़ती गई और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समय जो तैयारी फ़्रांस से सुरक्षित रहने की कही जाती थी वह संसार के भय का कारण हो गई। इसका परिणाम जर्मनी के लिए बुरा हुआ और वह अब असमर्थ बना कर जीने के लिए छोड़ दिया गया है। इतने पर भी युद्ध की अग्नि ठण्डी नहीं हुई है, सर्वत्र रक्षा की पुकार मची हुई है।

जर्मनी के भय से इस समय फ़्रांस सबसे अधिक पलटन, पनडुब्बी और वायुयान का बेड़ा एकत्र कर रहा है। जान पड़ता है कि जिस प्रकार पहले जर्मनी को फ़्रांस के बदला लेने का भय था और उससे महा समराग्नि भड़की वैसे ही, सम्भव है, फ़्रांस को जर्मनी के बदला लेने का डर हो जिससे भविष्य में दूसरी प्रचण्ड समराग्नि भड़क जाय। जर्मनी की हार से जिस सुरक्षा, जिस शान्ति, के आने की आशा थी वह न जाने किधर भटक गई और वायुयान, पनडुब्बी और विषैले धुवें के आविष्कृत होने के कारण रक्षा का रहा-सहा मूल तत्त्व भी लेश-मात्र न रह गया।

रक्षा की खोज में बार बार अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग होता आरहा है, करोड़ों रुपये भेंट चढ़ाये जा रहे हैं और लाखों मनुष्यों का बलिप्रदान किया जा रहा है, परन्तु सब व्यर्थ हो रहा है। रक्षा की प्राप्ति तो एक ओर रही, उलटा भय की मात्रा बढ़ती जा रही है। ऐसी अवस्था में क्या मनुष्यों का यह कर्तव्य नहीं होना चाहिए कि जब शताब्दियों की उन्नति से तथा शस्त्र के व्यर्थ प्रयोग से मानव-जाति को सुरक्षित रहने की युक्ति नहीं मिली तब वह शस्त्र के बदले बुद्धि से काम ले। संसार के विद्वज्जन इस विषय पर ध्यान दे रहे हैं और सोच रहे हैं कि सम्पूर्ण राष्ट्र, जिनकी उत्पत्ति मनुष्यों से हुई है और जो सभी बातों में एक दूसरे के सदृश हैं, किस युक्ति से सुरक्षित रह सकते हैं और उनका पारस्परिक भय दूर हो सकता है। इस प्रश्न को कुछ महानुभावों ने हल भी किया है। उनका मत है कि मानव-संसार की रक्षा तभी हो सकती है जब उसमें शुद्ध प्रेम प्रवाहित होने लगेगा और वह विश्वप्रेम प्रत्येक राष्ट्र और राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में तभी प्रविष्ट होगा जब भय, सन्देह, अविश्वास और द्वेष मन से उठ जायँगे। परन्तु संसार तो द्वेष और भय का दास बन बैठा है। ऐसी अवस्था में मनुष्य निर्भय और सुखी हो तो कैसे हो? हाँ, यदि वे द्वेष तथा घृणा करना छोड़ दें तो निस्सन्देह शान्ति उनकी दासी हो जायगी। उन्हीं महानुभावों का यह भी कहना है कि रक्षा के नाम से मानव-जाति के संहार के लिए युद्ध में व्यर्थ ख़र्च और व्यर्थ परिश्रम न कर उसी को संसार के उपकार में लगाना और घृणा को विश्वास के रूप में पलट देना समस्त मानव-समाज का कर्तव्य होना चाहिए। इँग्लैंड के एक मन्त्री महोदय ने भी एक समय इसी प्रकार का विचार प्रकट किया था। वह नीचे लिखा जाता है—

The English language is the richest in the world in monosyllables, and words of one syllable contain salvation for this country and the world. They are Faith, Hope, Love and Work. No Government without faith in the people, hope in the future, love of its fellow men, and without the will to work will ever bring this country,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

or Europe and the world, through into better days.

इसमें सन्देह नहीं कि श्रद्धा, आशा, प्रेम और कर्म यद्यपि दो अक्षर के शब्द हैं, तथापि उनमें गूढ़ अर्थ का समावेश है। प्राचीन काल में मानव-जाति को भय, निराशा, हार की आशङ्का अथवा सजातियों की शत्रुता का डर बहुत कम था। धीरे धीरे उनकी वृद्धि होती गई और अन्त में वे अपने असली स्वरूप में आ गये। राजनीतिज्ञों का कहना है कि इस समय सुरक्षा के लिए अथवा मानव-जाति के कल्याण के लिए या इन बुराइयों से मुक्त होने के लिए अन्य राष्ट्रों का सम्मान करने, प्रशंसा करने और उनके लोगों को समझने की शिक्षा पाने की प्रत्येक मनुष्य को बड़ी आवश्यकता है। परन्तु लोग बहुत कम यात्रा करते हैं। इससे उन्हें एक दूसरे को समझने का प्रायः अवसर हाथ नहीं लगता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक देश के लोगों को यह शिक्षा दी जाती है कि वे अन्य राष्ट्र के लोगों से श्रेष्ठ हैं। इतना ही नहीं, उन्हें यह भी बताया जाता है कि अन्य देश से उनके देश की भूमि, नदी, पर्वत, वृक्ष, पशु और पक्षी पवित्र और उत्तम हैं। ऐसे विचारों को दूर करने के लिए संसार भर के उन स्त्री-पुरुषों के आदर्श-चरित्र पढ़ाये जायँ जिन्होंने संसार की भलाई और उन्नति की है या भलाई तथा उन्नति में मन लगाया है। तभी उन्हें प्रकट हो सकता है कि बुद्धिमान्, गुणी, साहसी, शूरवीर और साधु केवल एक देश या एक राष्ट्र ही में नहीं होते, किन्तु सब देशों और सब राष्ट्रों में पाये जाते हैं। नामाङ्कित चित्रकार, कवि, लेखक, गायक, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक और शिल्पी केवल एक ही जाति में नहीं जन्म लेते, किन्तु सभी जातियों में उत्पन्न होते हैं। इस युक्ति से प्रत्येक के मन में यह बात बैठ जायगी कि संसार भर के सब मनुष्य योग्य और सम्मान के पात्र हैं, कुलीन और मित्रता के लायक़ हैं, भले और विश्वसनीय हैं आदि।

मनुष्य-मात्र पर विश्वास करने, घृणा को त्यागने, भय से दूर रहने और बुद्धि को अस्थिर रखने ही से मनुष्य जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकता है, तभी वह सुरक्षित रह सकता है और तभी उसे शान्ति मिल सकती है।

वनमालीप्रसाद शुक्ल

इतिहास में स्वतन्त्रता का विकास

इतिहास के पठन-पाठन का मुख्य उद्देश यह ज्ञात करना है कि संसार में स्वतन्त्रता का विकास किस प्रकार हुआ है। इतिहास का सच्चा विद्यार्थी इस बात की खोज में व्यग्र रहता है कि मानवी आत्मा किस प्रकार धीरे धीरे बाह्य बन्धनों से मुक्त हो रही है—मनुष्य किस प्रकार जीवन के प्रत्येक व्यवहार में अपनी आन्तरिक सदिच्छा के अनुसार पूर्ण स्वतन्त्रता-पूर्वक सोचने-विचारने बात-चीत तथा कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर रहा है। अतएव यह अनुसन्धान करना ऐतिहासिक का प्रधान कर्त्तव्य है कि भिन्न भिन्न देशों में, भिन्न भिन्न कालों में मनुष्य को स्वतन्त्रता के लिए कैसे कैसे युद्ध करने पड़े, किस प्रकार स्वतन्त्रता का उदय हुआ है और किस प्रकार कभी कभी पुनः दुगुने प्रकाश से चमकने के लिए स्वतन्त्रता का क्षणिक अस्त हो गया है। इस उद्देश को सामने रखते हुए इतिहास की पर्यालोचना करते समय उसका भौगोलिक विभाग कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है, अर्थात् भिन्न भिन्न जातियों अथवा राष्ट्रों ने अपनी रक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेतु समय समय पर घात-प्रतिघात से बचने और बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए जो जो युद्ध किये हैं उन पर हमको पृथक् पृथक् विचार करना होगा, क्योंकि समूचे विश्व के इतिहास पर एक साथ विचार करना असुविधा-जनक है। प्रत्येक देश की परिस्थिति भिन्न भिन्न है। प्रत्येक देश में पहले भिन्न भिन्न जातियों के समागम के साधनों का पूर्ण अभाव था, यहां तक कि कुछ वर्ष पहले तो मनुष्य-समाज मानो संसार की असंख्य छोटी छोटी कोठरियों में बन्द रहा करता था, एक देश से दूसरे देश में जाना मानो साक्षात् मृत्यु का सामना करना था। किन्तु हमको यह कदापि न भूलना चाहिए कि यद्यपि प्रत्येक देश पृथक् पृथक् एकाकी स्वतन्त्रता के लिए केवल अपने विपक्षी के विरुद्ध युद्ध करता हुआ दिखाई देता है, तथापि स्वतन्त्रता का युद्ध एक और अखण्डनीय है। देश-विशेष की किसी उद्देश में विजय होने से उसके उद्देश की विजय संसार भर में प्रतिष्ठित हो जाती है, संसार भर के स्वतन्त्रता के उपासक मानो एक सेना के रूप में निरन्तर आगे बढ़ते हुए चले जाते हैं। अपने ध्येय की पूर्ति के लिए हम चीन से लेकर पश्चिम की ओर बढ़ते हुए सारे संसार का चक्कर लगायेंगे और यह देखने का उद्योग करेंगे कि मार्ग में मिलनेवाले देशों ने स्वतन्त्रता के लिए क्या क्या भेंट चढ़ाई है।

चीन।

आइए, पहले चीन का ही दिग्दर्शन करें। यहां की असंख्य जनता सर्वथा शान्तिप्रिय है। वह इस विशाल उपजाऊ देश में अतीतकाल से निवास करती हुई चली आ रही है। वह मेहनती और क़ानून-प्रिय है। चीन में न जात-पांत है, न जागीरदारी है, न स्वच्छन्द राजतन्त्र है, न राष्ट्रीय-वाद है और न बड़े बड़े कल-कारख़ाने ही हैं। अतएव स्वतन्त्रता की खोज के लिए हमको इनसे भिन्न अधिक प्रारम्भिक और मौलिक क्षेत्र का अवलोकन करना पड़ेगा। चीनी लोगों ने मनुष्य-जाति के रात-दिन के शत्रु अर्थात् मृत्यु के विरुद्ध स्वतन्त्रता की घोषणा की है। चीनी विद्वानों ने अपने इतिहासकाल में, शायद बिना विचारे और अज्ञातरूप से किन्तु बड़ी वीरता और दृढ़ता से, स्वयं यमराज के विरुद्ध, जिसके द्वारा मनुष्य की स्वतन्त्रता का क्षण भर में अपहरण हो जाता है, युद्ध करने की ठानी है। इससे हमारा यह मतलब नहीं है कि अन्य जातियों ने मृत्यु के साथ, जो मानवी इच्छा की स्वतन्त्रता का अन्तिम, अकाट्य और पूर्ण विरोधी है, कभी किसी प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता नहीं की है। यह निर्विवाद है कि संसार भर के धर्मों ने आदि काल से ही मानवी आत्मा को अपने आजीवन शत्रु मृत्यु पर विजय पाने के लिए उत्साहित किया है और इसी हेतु प्रत्येक देश में आत्मा के अमरत्व, पुनर्जन्म या इसी प्रकार के अन्य किसी न किसी सिद्धान्त में मनुष्यों का विश्वास जमाया गया है। इससे पाषाणहृदय यमराज के विरुद्ध मनुष्य-मात्र का चिरन्तन विद्रोह अपने आप सिद्ध हो जाता है। एक ओर तो चीन में पश्चिमी देशों की भांति कूटनीति के द्वारा मनुष्य की स्वतन्त्रता का अप-हरण नहीं किया गया है और दूसरी ओर चीनियों का स्वभाव अतीव व्यवहारिक और साधारण है। इससे चीनियों ने मृत्यु के विरुद्ध मनुष्य-मात्र के विद्रोह में जो भाग लिया है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और विशेष रोचक हो गया है।

स्वतन्त्रता-देवी के मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिए चीनियों ने न तो किसी व्यक्तिगत अमरत्व के सिद्धान्त की खोज की है, न मनुष्य-जीवन को व्यक्तिगत रूप से दीर्घ-कालीन बनाने के लिए भीषण प्रयत्नों का विधान किया है और न दीनदुखी तथा रोग-पीड़ितों की रक्षा के लिए कोई उल्लेखनीय सार्वभौमिक दया प्रदर्शित करने का उपदेश दिया है। किन्तु उन्होंने अपने हृदय में यह विश्वास जमा रक्खा है कि मनुष्य अपनी सन्तान तथा उत्तराधिकारियों के रूप में पुनः मृत्यु के बाद जीवन धारण करता है, अतएव प्रत्येक चीनी का सबसे प्रथम यह कर्त्तव्य है कि वह अपने कुटुम्ब की श्रेणी को अबाधित रखने का प्रयत्न करे। इसी विश्वास के परिणामस्वरूप वहां पितृपूजा की प्रथा चल रही है। "चीनी लोग ईश्वर की पूजा अपने पिता, पितामह, प्रपितामह आदि के द्वारा करते हैं, क्योंकि वही उनके अस्तित्व के स्थूल कारण हैं, पूजा की इस शृङ्खला को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है, मनुष्य सन्तानोत्पत्ति के द्वारा ही ईश्वर और पूर्वपुरुषों के सामने उपस्थित होने में समर्थ हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।" धर्म और कर्त्तव्य की ऐसी भावना से निःसन्देह मनुष्य में जाति की सेवा के लिए असीम स्वार्थत्याग करने का भाव जाग्रत हो जाता है। चीन इस समय मनुष्यों से ठसाठस भरा हुआ है, चीनी लोग चिरकाल से सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयों के द्वारा पीसे जा रहे हैं। जन-संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है और जीवन-निर्वाह के साधन अपर्याप्त होते जा रहे हैं। यदि किसी वर्ष अकाल पड़ जाता है तो लाखों-करोड़ों मनुष्यों को पेट की भीषण ज्वाला से प्राणान्त करना पड़ता है। यह भी सुनने में आया है कि चीनी क़ैदख़ानों में जानबूझ कर भोजनादि की सुविधाओं का प्रबन्ध नहीं किया जाता और बड़े कठोर दण्ड दिये जाते हैं, अन्यथा ग़रीब लोग क़ैदख़ाने के भोजन को धन्य मान कर क़ैदख़ाने में बन्द होने के लिए जान-बूझ कर अपराध करने लगेंगे। इस भीषण दारिद्र्य के होते हुए भी यह उल्लेखनीय है कि साधारण चीनी का शारीरिक और मानसिक विकास साधारण गोरे मनुष्य की अपेक्षा उन्नत होता है। "मस्तिष्क-सम्बन्धी जो संख्यायें अब तक प्राप्त हुई हैं, उनसे पता चलता है कि चीनी के मस्तिष्क की तोल अन्य जाति के मनुष्य के मस्तिष्क की अपेक्षा कहीं अधिक होती है, साधारण नीग्रो के मस्तिष्क से साधारण चीनी के मस्तिष्क की तोल पूरे ६ औंस अधिक होती है और यूरोपियन के मस्तिष्क से १½ औंस अधिक।" जातीय विनाश के विरुद्ध चीनी अपनी जान लड़ा देते हैं, इसका यह एक अच्छा उदाहरण है कि चीन में कोई भी अपराधी, जिसको फाँसी का दण्ड मिला हो, अपने स्थान में फाँसी पर चढ़ने के लिए कुछ रुपये देकर किसी दूसरे व्यक्ति को तैयार कर सकता है।

चीन के व्यापारिक सङ्घ भी जातीय विनाश के विरुद्ध युद्ध के उत्कृष्ट नमूने हैं। भविष्य में जाति का विनाश न हो जाय, इसके लिए सब कुछ न्योछावर किया जाता है। "चीन के बड़े बड़े औद्योगिक सङ्घों के अधिकांश सदस्य साधारण मज़दूर हैं, उनमें किसी भी व्यवसाय के मनुष्य सम्मिलित होते हैं। सङ्घ के एजेंट और दूर दूर के ग्रामों के मज़दूरों में यह ठहराव हो जाता है कि वे एक निश्चित अवधि, प्रायः छः साल, तक केवल सङ्घ के लिए काम करेंगे, जहाँ सङ्घ भेजेगा वहाँ चले जायँगे, जो काम सौंपा जायगा उसको करेंगे, और जितने घण्टे काम लिया जायगा उतने घण्टे काम करेंगे। इसके बदले में सङ्घ उनके खाने-पीने, कपड़े-लत्ते और बीमारी और बेकारी के समय पालन-पोषण का भार अपने ऊपर ले लेता है। इस बीच में न तो उसको वेतन मिलता है, और न कोई पुरस्कार। सङ्घ निश्चित अवधि के बाद उसको अपने घर लौट जाने देने के लिए वचनबद्ध रहता है। यही नहीं, घर चले जाने पर वह उस मज़दूर को कुछ रुपया पुरस्कार-स्वरूप भी देता है। यह प्रत्यक्ष है कि सङ्घ का व्यय बहुत भारी होता है और यह भी प्रत्यक्ष है कि मज़दूर अपने घर से दूर रहने के कारण सर्वथा सङ्घ पर निर्भर रहता है। वह सुस्ती, कमज़ोरी या अन्य किसी प्रकार का बहाना करने का साहस नहीं कर सकता, क्योंकि इससे सङ्घ को अपनी शर्तें तोड़ने का अवसर मिल सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह शिथिल पड़ जाता है, उसको मेहनत के आगे अपने शरीर तक की परवा नहीं रहती। सङ्घ प्रायः छः साल से अधिक उसको नौकर भी नहीं रखना चाहता, क्योंकि इसके बाद उसके स्वास्थ्य और बल का ह्रास होने लगता है। किन्तु जब मज़दूर घर लौटने पर अपने कुटुम्बियों से मिलता है तब उसको बहुत सन्तोष होता है। वह अपनी अल्प पूँजी से अपना विवाह करता है, कुछ दिनों में स्वयं कई बाल-बच्चों का पिता हो जाता है और फिर उसको अपने प्रतिद्वन्द्वियों से ईर्ष्या नहीं रहती।"

मानवी आत्मा की स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा के लिए चीनियों ने जो कुछ उद्योग किया है, यह उसका एक अच्छा चित्र है। सम्भव है, यह किसी किसी को गुलामी की भद्दी तसवीर मालूम हो। किन्तु हमको इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वर्षों के रात-दिन के इस कठिन परिश्रम और आर्थिक कठिनाइयों के इस निर्दयी चक्र को, जिसके कारण बध्य होकर यह गुलामी स्वीकार करनी पड़ती है, चीनी लोग बड़े हर्ष और प्रेम के साथ अङ्गीकार करते हैं, केवल इसलिए कि भविष्य का प्रलय न हो जाय, उनकी जाति का विनाश न हो जाय, सङ्घ मनुष्य के ऊपर विजयी न हो जाय। कौन कह सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि भीष्मप्रतिज्ञा के समान इस अटल आत्म-समर्पण में प्राचीन रोम के भोग-विलासों की अपेक्षा कम गौरव है, जिसके कारण रोमन जाति और साम्राज्य का एक साथ समूल नाश हो गया है। क्या आधुनिक देशों के सुखमय जीवन की अपेक्षा उपर्युक्त आत्मत्याग में कम गौरव है, जहाँ दिन प्रतिदिन गिरती हुई पैदाइश के कारण यह स्पष्ट हो गया है कि जातीय ह्रास का क्रम बहुत दिनों से प्रारम्भ हो गया है ?

मानवी आत्मा के स्वातन्त्र्य-विकास को लक्ष्य करके चीनियों ने अपनी सन्तान के अस्तित्व के लिए आत्मोत्सर्ग का आदर्श स्थापित किया है। एक चीनी को रात-दिन मेहनत करके मर जाने में सन्तोष होता है, यदि उससे उसकी सन्तान और सन्तान की सन्तान को जीवन-धारण करने की स्वतन्त्रता मिलती है, यदि उससे किसी प्रकार उसकी जाति जीवित रहती है और आगे बढ़ती है।

जिस जाति का हृदय इतना विशाल है कि वह इस प्रकार अपने जातीय भविष्य के लिए स्वार्थत्याग कर सकती है उसके अभ्युदय को क्या योरप की एशिया के बहिष्कार सरीखी नीति एक क्षण भी रोक सकती है ? जातीय विकास के प्रश्न का एक-मात्र निपटारा करनेवाला पैदाइश का नियम है, न कि रहन-सहन की उच्चता या नीचता। इसमें सन्देह नहीं कि नम्र स्वभाववाले ही इस संसार के उत्तराधिकारी बनेंगे।

भारतवर्ष।

आइए, अब भारतवर्ष पर भी एक दृष्टिपात करें। यहाँ स्वतन्त्रता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा 'वर्ण-व्यवस्था' है। ऐसा मालूम होता है कि यह व्यवस्था भारतवर्ष में प्राचीन आर्य आगन्तुकों ने इसलिए प्रचलित की थी कि द्रविड़ जाति के साथ उनका किसी प्रकार मिश्रण न हो जाय। तब से बराबर आज तक यहाँ के निवासी वर्ण-व्यवस्था की दुहाई देते रहे हैं, किन्तु आज-कल वह जिस रूप में प्रचलित है वह सचमुच स्वतन्त्रता देवी की मूर्त्ति में कलङ्क-स्वरूप है। भारतवर्ष के उच्च कोटि के विद्वान् समय समय पर इसके दूषित भाव का घोर विरोध करते रहे हैं। उदाहरण के लिए जाति-व्यवस्था में सुधार के लिए कपिल, गौतमबुद्ध, रामानन्द, कबीर, नानक, राजा राममोहनराय, महात्मा गांधी आदि ने समय समय पर इसके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई है। इस्लाम के पैग़म्बर भी, जिन्होंने मनुष्य-मात्र में भ्रातृ-भाव की स्थापना का उपदेश दिया है, इन्हीं महात्माओं की श्रेणी में परिगणित हो सकते हैं।

जात-पांत की सङ्कीर्णता के विरुद्ध शायद वह दृश्य सबसे अधिक प्रभावशाली और सुन्दर था, जिस समय स्वामी रामानन्द ने कबीर नामक एक मुसलमान जुलाहे, एक नाई, एक चमार और एक स्त्री को बनावटी सामाजिक पाश से मुक्त कर सहर्ष अपना शिष्य बनाना अङ्गीकार किया था और संसार के सामने यह घोषित कर दिया था कि परमात्मा की दृष्टि में मनुष्य-मात्र समान हैं, उससे उसका यह अधिकार कदापि नहीं छीना जा सकता।

हमको मनुष्य-जाति के लिए मर मिटनेवाले ऐसे प्रेमियों की प्रभावमय वाणी का अनुभव होने लगता है, मानो परमेश्वर मनुष्य के मुँह से यह घोषणा कर रहा है कि प्राचीन रुकावटों को तोड़ डालो और प्राचीन बुराइयों का मूलोच्छेद कर दो। इसी आवाज़ ने वाईक्लिफ़ और वालटेयर के द्वारा गरज कर पश्चिम की जागीरदारी-प्रथा को चकनाचूर कर दिया था, इसी ने हेम्पडेन और डांटन के द्वारा स्वच्छन्द राज्यतन्त्र-प्रथा का अन्त कर दिया था, इसी ने विलवर फ़ोर्स और गैरीजन के द्वारा गुलामी की प्रथा का नाम संसार से उठा दिया था, इसी आवाज़ ने अमरीका के स्वातन्त्र्य की घोषणा में विजय पाई थी, इसी ने मेज़िनी के द्वारा साम्राज्यवाद का नाश किया था, और यही आवाज़ आज पुनः भारतवर्ष में रवीन्द्र के द्वारा प्रकट हो रही है।

स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा के लिए, जिसके विकास का क्रम ढूँढ़ना ऐतिहासिकों का प्रथम कर्तव्य है, भारतवर्ष ने जो जो मुख्य चेष्टायें की हैं उनमें से यह भी एक है। जात-पाँत और सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध भारत के दिव्य सुधारकों ने जो आवाज़ उठाई है वह मानव-जाति के जीवन में सदैव गौरवास्पद स्थान ग्रहण करेगी। उपर्युक्त दोनों अवतरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में जो धारणा है वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी विचार-धारा से सर्वथा भिन्न है, उसमें पश्चिमी दर्पपूर्ण व्यवहारिक हलचल की झलक का नाम तक नहीं है, जो वाईक्लिफ़ की चिल्लाहट में सुनाई पड़ती है "लार्ड्स लोग ग़रीबों के सामान को भरपेट खाने के बाद अपने मिथ्या अहङ्कार की तृप्ति में व्यर्थ नष्ट कर देते हैं।" मूर की आवाज़ में भी वही बात है—"भेड़ें आदमियों को खाये डालती हैं।" अमरीका के स्वातन्त्र्य की घोषणा में वही बात है—"परमात्मा ने सब मनुष्यों को एक समान बनाया है, हम इस सचाई को स्वयं सिद्ध मानते हैं।" डान्टन के शब्दों में "धृष्टता, हमेशा के लिए धृष्टता है" या गैरीजन के शब्दों में वही बात है "मैं ऐसा कठोर हूँ जैसे सत्य, ऐसा हठी हूँ जैसे न्याय, मैं कटिबद्ध हूँ, मैं गोलमाल बात करना नहीं जानता, मेरे यहाँ क्षमा नहीं, मैं एक पग भी पीछे नहीं हट सकता, तुम मेरी बात सुनने के लिए बाध्य होगे।" भारतीय सङ्गीत की ध्वनि इससे अधिक गम्भीर और उच्च है और स्पष्टतः उसका आधार भी स्थायी तथा अनुभवगम्य सचाई एवं तत्त्वों पर निर्भर है। भारतवर्ष ने मानव-जाति की मुक्ति में जो भाग लिया है उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश उक्त विचार के ठीक ठीक समझने से ज्ञात हो सकता है। मनुष्य के पशुत्व पर आध्यात्मिक जीवन के द्वारा विजय प्राप्त करना भारतवर्ष का एक-मात्र विषय है। इसमें रत्ती भर भी झूँठ नहीं है कि वह मनुष्य जिसका मन इच्छाओं के वशीभूत हो रहा है सचमुच गुलाम है, फिर वह इच्छा चाहे धन की हो, चाहे भोगविलास की या चाहे शराब और जुए की लालसा हो या चाहे शक्ति की तृष्णा हो। ऐसे मनुष्य को यद्यपि पृथ्वी के सबसे अधिक स्वातन्त्र्यप्रिय देश के नागरिक होने का अधिकार प्राप्त हो, उसके अधिकार वोट आदि व्यवस्था के द्वारा हर प्रकार से सुरक्षित कर दिये गये हों, तो भी इसमें तिलमात्र सन्देह नहीं कि वह गुलाम है और ऐसा गुलाम है जिस पर हमें करुणा आनी चाहिए, क्योंकि वह स्वाभाविक पशुत्व का दास बना हुआ है। भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों ने इस तत्त्व का दर्शन किया था और संसार के सामने इसको प्रकट कर दिया था। उनकी सचाई का प्रतिपादन आज तक बराबर होता रहा है, सैकड़ों और हज़ारों बार यह दुहराई गई है। मनुष्य में जो इच्छा है वही पशुत्व की द्योतक है। इच्छाओं का दास होना उस गुलामी से भी अधिक निन्दनीय और पाशविक है जिसमें अत्याचारी स्वामी कोड़े के द्वारा अपने सेवक को काम करने के लिए विवश करता है या जिसमें बाध्य होकर राजा की मनमानी आज्ञा के अनुसार सेना में सहायता देनी पड़ती है या जिसमें उच्च जातियों के प्रति नतमस्तक होकर उनकी सेवा-टहल करनी पड़ती है या जिसमें स्वार्थपरायण पूँजीवाद का आधिपत्य होने के कारण पूँजीपतियों के लिए अपना पसीना टपकाना पड़ता है, यहाँ तक कि यदि इस दासत्व को एक प्रकार से शैतानी विदेशी शासन से भी बुरा कहा जाय तो असङ्गत न होगा। इच्छाओं का इस प्रकार का दासत्व सबसे अधिक निन्द्य ही नहीं है, वरन इस समय उसकी व्यापकता बहुत बढ़ रही है, अतएव सबसे अधिक भयानक है। संसार भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों और उनके आधुनिक उत्तराधिकारियों का सदैव उस सचाई के लिए ऋणी रहेगा जो वे अपूर्व दृढ़ता के साथ प्रतिपादन करते आ रहे हैं कि "वास्तव में इच्छा ही स्वतन्त्रता अथवा मुक्ति के मार्ग में सबसे पहली और सबसे बड़ी बाधा है और इसको जीतने का एक-मात्र उपाय अव्यक्त परमात्मा की सहायता प्राप्त करना है"।

यह कैसे दुःख की बात है कि आज-कल भारतवर्ष के स्कूलों में इतिहास की शिक्षा के अर्थ की इतिश्री केवल भूतकाल के गर्भ में विस्मृत आक्रमणकारियों और लुटेरों, शानदार पूर्वी राजघरानों एवं शक्ति-सम्पन्न अँगरेज़ वायसरायों की नामावलियाँ कण्ठाग्र रटने में ही समझ ली जाती है। जैसा पहले बताया जा चुका है कि भारतवर्ष के ऋषियों ने संसार में स्वतन्त्रता की स्थापना के लिए क्या उद्योग किये हैं यही भारतीय इतिहास के अध्ययन का सच्चा और एक-मात्र विषय है। इसके सम्बन्ध में स्कूलों के विद्यार्थियों को शायद ही कभी एकाध शब्द बताया जाता हो। शायद इस कथन पर किसी किसी को आपत्ति हो, किन्तु इसकी यथार्थता में सन्देह नहीं कि भारतवर्ष का सच्चा इतिहास न तो किसी प्रकार राजनैतिक है और न व्यवस्था-मूलक। सैनिक इतिहास का तो अन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम तक नहीं है। केवल भारतीय धर्म और दर्शन-शास्त्र के विवेचन में भारतीय इतिहास का समावेश हो जाता है। हमारे लिए यह डूब मरने की बात है कि हमारे बहुत से विद्यार्थियों से लगभग बारह बारह वर्ष तक स्कूल और कालेजों में अपने देश के इतिहास के पढ़ने में घोर परिश्रम कराया जाता है, किन्तु उनको यह भी मालूम नहीं हो पाता कि हमारे देश का वास्तविक इतिहास क्या है, शायद कुल आध घण्टे से अधिक उन्होंने इस विषय पर कभी विचार ही न किया हो। उनको मुश्किल से स्वतन्त्रता के उन महान् उपासकों में से केवल दो या तीन के नाम ज्ञात होंगे जिनका यश हज़ारों वर्ष के राजनैतिक जय और पराजय, स्वच्छन्द राज्य और राजनैतिक पारतन्त्र्य की अँधेरी रात्रि में तारे की भांति चमका करता है। भारतीय इतिहास की शिक्षा का सिकन्दर, महमूद गज़नी, बाबर, क्लाइव या इसी प्रकार के अन्य व्यक्तियों से कोई प्रयोजन नहीं है, वरन उसका विषय है वर्ण-व्यवस्था के अनौचित्य के विरुद्ध प्रबल आन्दोलनों का वर्णन या उन दार्शनिकों के उपदेशों का प्रभाव, जिन्होंने इच्छाओं को जीतने की शिक्षा दी है अथवा सैकड़ों-हज़ारों महात्माओं और आप्तपुरुषों का जीवन-चरित्र, जिन्होंने आध्यात्मिक जीवन का रहस्य अपने जीवन में प्रकट कर दिखाया है। यदि पश्चिमी देशों ने स्वतन्त्रता-देवी का मन्दिर बनाने के लिए उद्योग किया है तो भारतीय ऋषियों ने स्वयं देवी की मूर्ति निर्मित करके उसकी प्राणप्रतिष्ठा की है। भारतवर्ष असीम, अलौकिक एवं स्थायी है, पश्चिम व्यवहारिक, सांसारिक और ससीम है। भारतवर्ष ने स्वतन्त्रता और सचाई का जो दिग्दर्शन कराया है, मनुष्य-मात्र को उसकी बड़ी भारी आवश्यकता है। प्रत्येक सच्चे भारतवासी के लिए यह अपमान का विषय है और उसको सच्चे दिल से अनुभव करके इसके प्रतिकार के लिए भरसक उद्योग करना चाहिए कि आज-कल भारतवर्ष के इतिहास के नाम से जो शिक्षा दी जा रही है वह राजवंशों और युद्धों का निरर्थक वर्णन-मात्र है, अतएव उसके स्थान पर विद्यार्थियों को धर्म, दर्शन और सामाजिक सुधार के लाभदायक और महत्त्वपूर्ण इतिहास का अध्ययन कराना प्रारम्भ हो जाना चाहिए।

अरब और पेलिस्टाइन।

भारतवर्ष से चल कर हम एशिया के पश्चिमाञ्चल में स्थित सुविशाल भूखण्ड में पहुँचते हैं। इसमें अरब और पेलिस्टाइन नामक देश हमारा ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। इस्लाम ने स्वतन्त्रता की स्थापना में जो योग दिया है उसका थोड़ा सा उल्लेख पहले किया जा चुका है। उसने एक बहुत ही शक्तिशाली धार्मिक और सामाजिक सङ्गठन की स्थापना की है, जिसमें मनुष्य-मात्र बराबरी के साथ भाई भाई की तरह सम्मिलित हो सकते हैं। यह अरब के लिए बड़े गौरव की बात है कि उसने ऐसे अच्छे विधान की सृष्टि की है। जिस देश में इस्लाम प्रवेश करता है वहाँ वह जात-पाँत और ऊँच-नीच के भेदभाव पर चमकीली तेज़ तलवार की भांति आघात करता है। संसार की किसी जाति का कोई भी व्यक्ति मुसलमान हो जाने पर एक ही प्रकार के धार्मिक और सामाजिक नियमों से बँधे हुए एक विशिष्ट समुदाय में बराबरी का पद ग्रहण करता है। हिन्दू-धर्म एवं अन्य देशों की सामाजिक रीति-रस्मों में स्वतन्त्रता-पूर्वक बराबरी का भाग प्राप्त करने में उसके लिए अनेक रुकावटें हैं। इन्हीं रुकावटों के कारण मनुष्य मनुष्य के बीच एक अचल दीवार खड़ी हो गई है, परन्तु इस्लाम धर्म में प्रवेश करने पर भेदभाव की तिल भर सम्भावना नहीं रह जाती। हमारे पास यह दिखलाने के लिए पर्याप्त समय नहीं है कि किस प्रकार इस युद्ध-प्रिय इस्लामी सङ्गठन की ज्वाला सातवीं शताब्दी में सारे भूमण्डल में फैल गई और उसकी लपट में सिसकते हुए साम्राज्य और कलुषित सभ्यतायें एक-दम स्वाहा हो गईं और उसके परिणाम-स्वरूप एक परमात्मा के अधीन एक नये भ्रातृमण्डल का निर्माण हुआ, जिसमें पोर्तुगाल से लेकर चीन तक की प्रत्येक जाति के मनुष्य सम्मिलित हुए।

पश्चिम की ओर आगे बढ़ने पर हमें पेलिस्टाइन मिलता है। यह एक बहुत ही छोटा देश है। इतिहासातीत काल से यह देश प्रतिद्वन्द्वी बादशाहों का युद्धक्षेत्र बना हुआ है। इस स्थल पर बैबलनवाले, मिस्रवासी, असीरियावासी, हिटीटी, सीरियन, यूनानी, रोमन, पारसी, अरबी, तुर्क, क्रूसेडर, मङ्गोल, फ़रासीसी, अँगरेज़,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मन इत्यादि अनेक जातियों ने युद्ध किये हैं। इस देश में एक और बड़ी विस्मयजनक घटना हुई है। उसकी तुलना अन्यत्र इतिहास में कठिनाई से शायद मिल सके। इस देश के आदि निवासी यहूदियों ने अपनी मातृ-भूमि पर गत २२०० वर्षों में कभी शासन नहीं कर पाया है। किन्तु उन्होंने विदेशों में रहते हुए अपनी राष्ट्रीय भावनाओं, राष्ट्रीय विशेषताओं और राष्ट्रीय धर्म में किसी प्रकार की क्षति नहीं आने दी। इन यहूदियों के प्रति हमारे हृदय में चाहे जितना आदर-भाव क्यों न हो, किन्तु इस देश ने मानवीय स्वातन्त्र्य के विकास में जो कुछ महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय योग दिया है वह इनके कारण नहीं है। हाँ, जिसके कारण यह उन्नति हुई है वह प्रारम्भ में यहूदी-मत के अन्तर्गत एक सुधार आन्दोलन-मात्र था, जिस प्रकार वैदिक धर्म के अन्तर्गत बौद्धधर्म भी प्रारम्भ में एक सुधार-मात्र था या जैसे प्रोटेस्टेंट मत पहले रोमन केथोलिक मत में कुछ सुधार करने की इच्छा से चलाया गया था। इसी सुधार-योजना को हम ईसाई-मत कहते हैं। मानवी स्वातन्त्र्य के इतिहास में ईसाई-मत का महत्त्व तीन प्रकार से है।

पहली विशेषता—ईसाई-मत भी इस्लाम की भाँति मनुष्य-मात्र के भ्रातृत्व का प्रबल पक्षपाती है। उसे भी सब मनुष्यों का एक स्वर्गीय पिता का समान पुत्र होने का अटल अधिकार स्वीकार है। उसने भी मनुष्यों को जात-पाँत, ऊँच-नीच श्रेणी, सजातीय और विजातीय भेद-भावों की प्रारम्भिक और अज्ञानजनित दीवारों से मुक्त करने की घोषणा की है। किन्तु यह तथ्य स्वीकार करने में हमें दुःख हो रहा है कि इस कार्य में इस्लाम ने तो सफलता प्राप्त की है और ईसाई-मत असफल हुआ है। यह सच है कि सापेक्ष रीति से ईसाई-मत को अधिक असभ्य लोगों में काम करना पड़ा है। उस समय मध्य-एशिया के निवासी, जङ्गली, भयानक और अतिशय युद्ध-प्रिय थे। इन लोगों ने समस्त रोमन-साम्राज्य को मटियामेट कर दिया था और उसके स्थान में जागीरदारी विधान की स्थापना की थी, जिसमें सैकड़ों मूर्खतापूर्ण और अमानुषिक विभाग और भेदभाव रक्खे गये थे। इसके विरुद्ध इस्लाम को अधिकतर उन लोगों में काम करना पड़ा था जिनको पूर्ववर्ती साम्राज्यों ने बहुत कुछ शिक्षित और सभ्य बना कर एकता के सूत्र में ग्रथित कर दिया था। कुछ भी हो, जब हम निष्पक्ष होकर सभ्यता के इतिहास का सिंहावलोकन करते हैं तब यह परिणाम निकलता है कि प्रत्येक मुसलमान मुसलमान-मात्र को भाई समझता है, उस समाज में जाति या वंश का कोई विचार नहीं किया जाता। किन्तु ईसाइयों ने ईसामसीह की स्पष्ट आज्ञा की अवहेलना करके पारस्परिक स्पर्द्धा और भेद-भाव के कारण आपस में भीषण फूट उत्पन्न कर रक्खी है।

दूसरी विशेषता—ईसाई-मत मानवी आत्मा को मृत्यु के चङ्गुल से मुक्त करने के लिए यत्नशील हो रहा है। यह बताया जा चुका है कि चीन का भी यही उद्देश रहा है। किन्तु चीनी लोग जिस मृत्यु के साथ लड़ रहे हैं वह किसी व्यक्ति विशेष की मृत्यु नहीं है, वरन उसका समष्टि-रूप से जाति की मृत्यु से अभिप्राय है, क्योंकि वहाँ तो अपनी सन्तान की भलाई की वेदी पर मनुष्यों को बिना किसी पश्चात्ताप के बलि चढ़ा दिया जाता है। इसकी पुष्टि में एक ज्वलन्त उदाहरण भी दिया गया है कि चीन में फाँसी की सज़ा पानेवाले के स्थान में बहुत से अपने कुटुम्ब को थोड़ा सा आर्थिक लाभ पहुँचाने की इच्छा से स्वयं फाँसी पर चढ़ने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। ईसाई-मत में मनुष्य, जाति की मृत्यु की अपेक्षा स्वयं अपनी मृत्यु के साथ युद्ध करता है। किन्तु यहाँ मनुष्य की शारीरिक मृत्यु अभिप्रेत नहीं है। 'मनुष्य परमेश्वर के सहवास से अमर हो जाता है', इस सिद्धान्त से ईसाइयों को मृत्यु के अन्धकारमय और अत्यन्त भयानक अत्याचारों से सदैव के लिए छुटकारा पाने का आश्वासन मिला करता है, अन्यथा उनको शारीरिक मृत्यु मानवी इच्छाओं के स्वातन्त्र्य की पूर्ण विरोधी मालूम पड़ती है। या तो उससे मनुष्य का सम्पूर्ण विनाश हो जाता है या एक नवीन व्यक्तित्व के रूप में दूसरा जन्म लेना पड़ता है, जिससे वर्तमान जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

तीसरी विशेषता—ईसाई-मत की नींव स्वार्थ-त्याग के सिद्धान्त पर स्थित होने के कारण वह एक ओर मनुष्य के स्वाभाविक पशुत्व-भाव को दबाने के लिए अत्यन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावशाली साधन बना हुआ है और दूसरी ओर जागीरदारी विधान, स्वच्छन्द राज्य-प्रथा और साम्राज्यान्तर्गत राष्ट्रवादिता के अत्याचारों को उन्मूल करने में सहायक बन रहा है। सबसे ऊँचे और सबसे शुद्ध आदर्श भी एक प्रकार से व्यर्थ हैं, यदि उसके माननेवाले उसको कार्य-रूप में परिणत करने के लिए अपने प्राणों की भेंट सहर्ष चढ़ाने को प्रस्तुत नहीं हैं। ईसाई-मत के जन्मदाता के अद्वितीय त्याग के उदाहरण से ईसाईमत में महात्माओं, विद्वानों, शहीदों तथा वीर पुरुषों की एक बाढ़ सी आगई है, जो नाना प्रकार की यातनाओं को सहते हुए रामराज्य की स्थापना में सहायक होने के हेतु सदैव विरोध, निन्दा और मृत्यु तक सहन करने के लिए तत्पर रहते हैं।

पेलिस्टाइन ने मानवी आत्मा को उत्तरोत्तर स्वतन्त्र बनाने में जो योग दिया है उसका दिग्दर्शन हो चुका। ईसाई-मत धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था के द्वारा स्वतन्त्रता की प्राप्ति में संलग्न हो रहा है। एक तो उसमें जात-पाँत, ऊँच-नीच, सजातीय-विजातीय के भेद-भावों के झंझटों से मुक्त करने का उद्योग किया जाता है, क्योंकि इन्हीं मिथ्या भेदभावों की सृष्टि के द्वारा मनुष्य के स्वाभाविक भ्रातृत्व-बन्धन का खण्डन हो जाता है, दूसरे मनुष्य की आत्मा को मृत्यु से छुटकारा देने के लिए उद्योग किया जाता है, तीसरे ऐसे निर्बल हृदयों को बलवान् बनाने के लिए प्रयत्न किया जाता है जो पाशविक इच्छाओं से घृणा करते हुए भी उनके वशीभूत रहते हैं, जो सर्वोत्तम आदर्श को पहचानते हुए भी स्वार्थ-त्याग करने से झिझकते रहते हैं, जिसके बिना आदर्श की प्राप्ति सर्वथा असम्भव है।

यूनान।

पश्चिम की ओर और आगे बढ़ने पर हमको यूनान के दर्शन होते हैं। यहीं सबसे पहले स्वतन्त्रता के स्थूल और व्यावहारिक पहलू का जन्म और लालन-पालन हुआ था। व्यवस्थाजन्य अधिकारों तथा उदार परिषदों का विकास भी सबसे पहले यहीं हुआ था। पश्चिम की यही प्रधान विशेषता है। पूर्वी आदर्श के साथ इसका कोई मेल नहीं है, क्योंकि पूर्व ने अनुभव कर लिया है कि गम्भीर, स्थायी या पारलौकिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही मनुष्य-जीवन का एक-मात्र उद्देश हो सकता है। यूनान पश्चिमी विचार, पश्चिमी साहित्य, पश्चिमी कला और पश्चिमी स्वातन्त्र्य का भी जन्मदाता है। इतिहास के सच्चे विद्यार्थियों को उसकी दो शताब्दियों का संक्षिप्त इतिहास सजीव होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और रोचक प्रतीत होता है। एक छोटी सी जाति ने अपने दिव्य गुणों के कारण एक ऐसा प्रखर ज्ञानदीपक प्रज्वलित किया था जो आज हज़ारों वर्ष की वायु के झकोरों से भी कभी नहीं बुझ सका है। हाँ, समय समय पर उसका प्रकाश अवश्य बहुत धुँधला पड़ जाता है।

स्वतन्त्रता-देवी के मन्दिर की स्थापना के लिए यूनान ने जो सबसे बड़ा स्तम्भ स्थापित किया है उसका परिचय हमको उसके छोटे छोटे नगर-राष्ट्रों की जनता और अत्याचारी राजाओं अथवा भद्रमण्डल के बीच के झगड़ों से भली भाँति मिल सकता है। व्यवस्थाजन्य स्वातन्त्र्य का विचार पहले पहल उन दिग्गज स्मृतिकारों के विधान में मिलता है जो इन आततायियों और अत्याचारियों के विरुद्ध सार्वजनिक आन्दोलनों के समय प्रकट हुए थे। इनकी व्यवस्था से कुछ पीढ़ियों तक यूनानी प्रजातन्त्र का काम बड़ी सुविधा से चलता रहा, किन्तु कुछ दिनों बाद इस असाधारण जाति के अतिशय अभ्युदय के कारण वहाँ चारों ओर अन्धकार छा गया। सोलन, लाइकरगस, क्लेसथेनीज़ के क़ानूनी विचारों से हमको सबसे पहले उस व्यवस्था का ज्ञान हुआ था जिसमें ऐसे मौलिक नियमों का समावेश किया गया है जिनके अनुसार चलना ही नागरिक अपना कर्तव्य नहीं समझते हैं, बरन जिनका वे हृदय से आदर और पूजा करते हैं; क्योंकि इसके सहारे राष्ट्र स्वच्छन्द राज्य-प्रथा, अराजकता या परस्पर फूट के चक्कर से बच जाता है।

यूनानियों को यह व्यवस्था उसी प्रकार सर्वमान्य, अटल और पवित्र थी जिस प्रकार आज एक अमरीकन को अपने संयुक्त-राज्य की व्यवस्था। यूनानियों को क़ानूनों अथवा अपने नगर-राष्ट्रों के नियमों से जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई थी वह केवल निषेधात्मक नहीं थी। व्यवस्था के द्वारा नागरिकों की केवल लूट-मार और अत्याचार से रक्षा ही नहीं होती थी, बरन उनको अपने राष्ट्र के शासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में भाग लेने का एक निश्चित अधिकार प्राप्त हो गया था। स्वतन्त्र यूनानी प्रजातन्त्रों ने अपने प्रत्येक नागरिक को अपने और अपने नगर के राजनैतिक सञ्चालन में समान अधिकार दिया था। इसलिए संसार यूनान के प्रति केवल व्यवस्था के सिद्धान्त के लिए ही ऋणी नहीं है, प्रत्युत प्रजातन्त्रवाद का सिद्धान्त भी उसने यूनान से सीखा है। जब यूनान ईरान के महान् आक्रमणों की बाढ़ से प्लावित होनेवाला था तब नवजात प्रजातन्त्रों को इस सैनिक साम्राज्यवाद के भयङ्कर भूत से अपने जीवन की रक्षा के लिए प्राणपण से लड़ना पड़ा था। इन्होंने युद्ध किया और विजय पाई। इन छोटे छोटे राष्ट्रों का संसार के सबसे बड़े साम्राज्य के विरुद्ध विजय पाने से संसार में स्वतन्त्रता के प्रसार में बहुत बड़ी सहायता मिली है। कारण स्पष्ट था। छोटे छोटे राष्ट्र स्वतन्त्र थे और साम्राज्य पर एक स्वच्छन्द सम्राट् का आधिपत्य था। इस युद्ध में स्वतन्त्रता के एक नवीन, महत्त्वपूर्ण और गौरवान्वित पहलू का विकास हुआ है, इसमें केवल अत्याचारों के विरुद्ध नागरिकों की रक्षा की गारन्टी के लिए व्यवस्था की सृष्टि नहीं की गई है और न इसमें केवल प्रजातन्त्रवाद की सृष्टि हुई है, जिसके द्वारा प्रत्येक नागरिक को अपने और अपने प्रजातन्त्र के राजनैतिक सञ्चालन में समानरूप से भाग लेने का अधिकार मिल जाता है, किन्तु इस पहलू में स्वतन्त्रता की मात्रा और भी बढ़ गई है, इसके द्वारा प्रत्येक राष्ट्र के स्वभाग्य-निर्णय के स्वयंसिद्ध अधिकार का विकास हुआ है, होम-रूल का विकास हुआ है, प्रत्येक राष्ट्र को स्वयं अपने जीवन के सम्बन्ध में निर्णय करने का सिद्धान्त स्थापित हुआ है। अतएव इसमें किसी विदेशी साम्राज्य का मन-माना हस्तक्षेप अनुचित और अन्याययुक्त माना जाने लगा है।

इस प्रकार यूनान ने तीन अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण क्षेत्रों में स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा की है। इसने पहले पहल मनुष्य-मात्र को स्वतन्त्रता के तीन मूलमन्त्रों का अर्थ बतलाया है, १—व्यवस्थावाद, २—प्रजातन्त्रवाद, ३—होमरूल या स्वराज्य। इनके अतिरिक्त उसने और भी गुरुतर सेवायें की हैं। यूनानियों में अग्रगण्य एथेन्स-निवासी सुकरात के द्वारा यूनान ने संसार को विचार की स्वतन्त्रता, वाणी की स्वतन्त्रता, हृदय की स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ बतलाया है। सुकरात को वीरता-पूर्वक बिना किसी सन्ताप के अपना प्राण त्याग करना स्वीकार था, किन्तु उसको एथेंस के प्रजातन्त्र का, जिसको वह प्राणों के समान प्रिय समझता था, अपने हार्दिक विचारों को व्यक्त करने के पवित्र अधिकार में किसी प्रकार का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं था। आत्मत्याग के उदाहरणों में, जो संसार ने अब तक देखे हैं, सुकरात की मृत्यु सबसे ऊँची और सबसे दिव्य है। इसने मनुष्यों में परमात्मा की अज्ञात शक्ति के द्वारा विचार की स्वतन्त्रता, वाणी की स्वतन्त्रता, ईश्वरीय प्रेरणा के अनुसार चलने की स्वतन्त्रता के पवित्र आदर्शों की स्थापना कर दी थी। उक्त तीनों प्रकार की स्वतन्त्रता पश्चिमी विचार की सबसे ऊँची पहुँच है, किन्तु आध्यात्मिक स्वतन्त्रता, जिसका जन्म पूर्व में हुआ था, इससे कहीं अधिक गम्भीर है।

यह सच है कि यूनान ने इन तथ्यों का अनुसन्धान भर कर पाया है, और इसी में उसकी महत्ता है। किन्तु उसने इनको कार्यरूप में परिणत करके व्यवहारिक दृढ़ता नहीं प्राप्त कर पाई थी। यह भी सच है कि उसके प्रजातन्त्र पश्चिमी प्रजातन्त्रों के स्वाभाविक घुन के कारण शीघ्र ही अस्त हो गये, क्योंकि न जाने क्यों स्वतन्त्र राष्ट्रों में अन्य राष्ट्रों पर प्रभुत्व जमाने की इच्छा उत्पन्न करती है। यह भी सच है कि एथेन्स के समान उन्नत नगर में ग़ुलामों की संख्या स्वतन्त्र नागरिकों की अपेक्षा बहुत बढ़ गई थी, यह भी सच है कि ग्रीक-जनता ने ठीक ठीक प्रतिनिधि-निर्वाचन का कोई विधान न होने के कारण प्राचीन प्रजातन्त्री शासनों की भाँति इनका शासन भी अन्त में आलसियों और हुल्लड़बाज़ों के हाथ में चला गया था, और फिर धीरे धीरे सैनिक स्वच्छन्दता को प्रभुत्व को स्वीकार करना पड़ा था। इन बातों की यथार्थता में कोई सन्देह नहीं, तो भी यूनान ने मानव आत्मा की स्वतन्त्रता के लिए जो महान् उद्योग किया है उसके लिए वह सदैव हमारी श्रद्धा और आदर का भाजन रहेगा। वास्तव में इन लोगों की उन्नति बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमत्कारपूर्ण है। इस चमत्कार की प्रखरता इस प्रकार दिनों दिन बढ़ती गई कि कुछ ही दिनों में वहां अन्धकार छा गया। इन लोगों ने अपने आदर्श-देवता प्रोमेथ्यूस की भांति स्वयं अपना पतन अङ्गीकार कर मनुष्य-मात्र को वह दिव्य सन्देश दिया है जिसके द्वारा मानवी सभ्यता उन्नति और अभ्युदय के मार्ग पर अग्रसर हो सकती है।

रोम।

जब हम रोम में पहुँचते हैं, तब हमको यहां यूनान की भांति ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती जिसकी प्रशंसा स्वतः हमारे मुँह से निकल पड़े। इसमें सन्देह नहीं कि यहां भी नगर-राष्ट्र थे, जिन्होंने व्यवस्था-जन्य स्वतन्त्रता के लिए उद्योग किया है और यूनानी राष्ट्रों के ढङ्ग से मिलते-जुलते ढङ्ग से बादशाहों और पैट्रिशियनों के हाथों से अधिकार छीन लिया था, किन्तु बहुत ही शीघ्र ये राष्ट्र सैनिक साम्राज्यवाद के प्रलोभनों में फँस गये। व्यवस्था का विकास होने के कुछ ही दिनों बाद रोमन लोगों की विचित्र सैनिक क्षमता ने उनको धीरे धीरे पहले सैनिक भद्रमण्डल तत्पश्चात् सम्राटों के हाथों में सौंप दिया। निस्सन्देह रोम ने सारे संसार पर विजय प्राप्त की है, किन्तु ऐसा करने में उसको सबसे पहले अपनी सच्ची आत्मा से हाथ धोना पड़ा है। अपनी आत्म-स्वतन्त्रता की भेंट चढ़ाकर वह सारे भूमण्डल का स्वामी बन गया था। परन्तु "उस राष्ट्र को, जिसने सारा संसार तो अपने वश में कर लिया हो, किन्तु अपनी असली आत्मा खो दी हो, क्या कोई लाभ हो सकता है?" रोम के शासन में भूमध्यसागर के देशों के लिए बहुत से क़ानून बनाये गये थे, जिनसे एक प्रकार की शान्ति सी स्थापित हो गई थी, किन्तु यह शान्ति वास्तविक शान्ति नहीं थी। न तो उसमें शासित देशों की जनता के लिए और न रोम की जनता को ही वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। हां, केवल रोमन-शासक-वर्ग को मनमाना अत्याचार करने और हर प्रकार के भोग-विलासों के उपभोग का विशेषाधिकार प्राप्त हो गया था, और इसलिए अन्त में सारा साम्राज्य सैनिक स्वच्छन्दता की भीषण चक्की में पीस डाला गया। रोमन-साम्राज्य की मृत्यु के समय उसकी दुर्दशा थी, उसमें ग़ुलामी और जातीय आत्मघात के फोड़े निकल आये थे, निरन्तर सैनिक विद्रोहों के घावों से उसका शरीर जर्जर हो गया था, शासकों-द्वारा प्रचलित जाति-व्यवस्था के भीषण बोझ से वह पिसा जा रहा था, स्थानीय और प्रान्तीय कुशासन की जोंक उसका ख़ून चूस रही थी। किन्तु यह सन्तोष का विषय है कि साम्राज्य अपनी मृत्यु के पीछे 'सार्वभौमिकता' की स्मृति छोड़ गया है। इस भाव ने कैथोलिक चर्च की बहुत बड़ी सहायता की है, क्योंकि इसी के द्वारा वह एशिया की जङ्गली जातियों को थोड़ी सी शिक्षा देने के महान् कार्य में सफल हुआ था। ये जातियां सारे साम्राज्य भर में फैल गई थीं, जिसके कारण योरप पुनः एक सहस्र वर्ष तक जङ्गलीपन के गर्त में डूबा रहा है। रोमन-इतिहास की सबसे बड़ी विशेषता इसी सार्वभौमिकता की स्मृति में है। यूनान ने और पूर्व ने मानवी आत्मा के उद्धार के निमित्त जो उद्योग किया है वह इससे सर्वथा भिन्न है। हम रोम के केवल संसार-सम्मेलन की स्मृति-मात्र के लिए ऋणी हैं। इसके अतिरिक्त उसने स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा के लिए, कोई मौलिक और विधायक कार्य नहीं किया है।

भारतवर्ष में आज-कल पश्चिमी भौतिकवाद, साम्राज्यवाद अथवा अन्य इसी प्रकार के अरोचक सिद्धान्तों की कुछ कड़ी आलोचना की जाती है, क्योंकि आलोचना करते समय शायद हम यह भूल जाते हैं कि अभी केवल ४५० वर्ष ही हुए हैं जब कुछ विद्वानों ने पहले पहल योरप को यह बतलाया था कि उसका भी एक इतिहास है, उसने भी स्वतन्त्रता के लिए कभी बलिदान किया था। हम शायद यह भी भूल जाते हैं कि अभी केवल १३० वर्ष हुए हैं जब फ़्रांस पहले पहल जागीरदारी विधान की कठोर ज़ंजीर के तोड़ने में सफल हुआ था और जो आज राष्ट्रवाद, साम्राज्यवाद और पूँजीप्रधान शिल्पवाद के वर्तमान स्वरूप का विरोध करने में पश्चिम का नायक बना हुआ है। सोचिए तो, आज भारतवर्ष की क्या दशा होती यदि उस धर्म-जिज्ञासा को प्रारम्भ हुए केवल ४५० वर्ष ही हुए होते जिसके कारण भारतवर्ष संसार का आध्यात्मिक गुरु बना हुआ है या 'वर्ण-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था' के अनौचित्य के विरोध में सबसे प्रथम आन्दोलन को उठे हुए केवल १३० वर्ष ही हुए होते। एशिया की जिन जातियों ने सन् २३६ से लेकर १६८३ तक योरप पर आक्रमण किया है उनकी लम्बी-चौड़ी सूची के प्रत्येक नाम से जङ्गलीपन की एक नवीन बाढ़ मालूम होने लगती है, जो योरप की उस स्वतन्त्रता के प्राचीन इतिहास को अधिकाधिक नीचे गढ़े में डुबोती जाती है, जिसको यूनान ने बड़ी बुद्धिमत्ता से खोजा था और जिसका रोम ने मौखिक आदर करते हुए भी वास्तव में अनादर किया था। क्या यह कम आश्चर्य की बात है कि इस थोड़ी सी बपौती से योरप ने इतने थोड़े काल में इतनी अधिक उन्नति कर ली है ?

अवशिष्ट देशों का बहुत जल्दी निरीक्षण हो सकेगा। यह दिखाया जा चुका है कि जागीरदारी विधान की बुराई को हटाने के बहाने योरप में अन्य बुराइयों—स्वच्छन्द राज्य-प्रथा, राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद—ने अपना आसन जमाया। यूनानियों ने जिस स्वातन्त्र्य-भाव का स्वप्न देखा था उसको इन सब बुराइयों के साथ घोर सङ्ग्राम करना पड़ा था। ४५० वर्ष पहले क्रान्ति होने के कारण योरप में नवीन युग की स्थापना हुई। कई शताब्दियों के अज्ञानान्धकार के बादलों को हटाकर ज्ञानसूर्य योरप पर पुनः चमकने लगा।

जर्मनी।

एथेन्स ने अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का जो स्वरूप बतलाया है उसको समझने में योरप के आधुनिक राष्ट्रों में जर्मनी का नम्बर सर्वप्रथम है। सुधार-युग के समय जर्मनी ने इसमें कुछ हेर-फेर करके अपने जीवन में इसकी प्रतिष्ठा की है और योरप के अन्य देशों को भी इसका पाठ पढ़ाया है।

इँग्लैंड और ब्रिटिश-साम्राज्य।

सन् १२१५ के मेगना कार्टा के समय से लेकर सन् १९१८ के स्त्रियों के वोटाधिकार-सम्बन्धी क़ानून तक इँग्लैंड में जो नये नये मौलिक क़ानून प्रचलित हुए हैं उनकी एक लम्बी और शानदार सूची बनती है। इनमें यूनान का वही प्राचीन विचार व्यक्त हो रहा है जिसका उद्देश साधारण नागरिक को स्वच्छन्द राजा-महाराजाओं अथवा उद्दण्ड भद्रमण्डल के अत्याचारों से बचाने की गारंटी करना था और जिसके लिए क़ानूनों की व्यवस्था की गई थी। इसी व्यवस्था का अनुकरण करके इँग्लैंड ने अन्य देशों की अपेक्षा आसानी से जागीरदारी विधान और स्वच्छन्द राज्य-प्रथा की शक्तियों को छिन्न-भिन्न कर दिया है। इस प्रकार इँग्लैंड ने स्वतन्त्रता के मार्ग में तेज़ दौड़ अवश्य लगाई थी, किन्तु इसके परिणाम-स्वरूप वहाँ कुछ दिनों तक ऐसी शिथिलता दिखाई दी जिससे यह अनुमान होने लगा कि वह अब व्यापारिक-विचार-प्रधान साम्राज्यवाद की दलदल में सना हुआ पड़ा रहेगा। किन्तु अमेरिकन क्रान्ति ने उसको भीषण धक्का दिया, जिससे उसकी निद्रा बहुत कुछ भङ्ग हो गई। अतएव बारम्बार की असफलताओं के होते हुए भी यह आशा की जाती है कि ब्रिटिश-साम्राज्य के महत्त्वपूर्ण आधुनिक इतिहास में हमको इस शर्त पर भावी संसार-साम्राज्य की झाँकी के दर्शन हो सकेंगे कि इँग्लैंड अपने साम्राज्य के अन्तर्गत प्रत्येक देश और प्रत्येक नागरिक को राजनीति के प्रत्येक क्षेत्र में हद दर्जे की स्वतन्त्रता देने से हाथ न सिकोड़े। यूनानी राजनीतिज्ञों ने पहले से ही इन क्षेत्रों की ऐसी व्याख्या कर रक्खी है कि उसमें किसी प्रकार के हेर-फेर की आवश्यकता नहीं है। उस समय यूनानियों ने जो स्वप्न देखा था वह आज ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्र प्रजातन्त्रों के द्वारा सिद्ध होता हुआ दीख रहा है, प्रत्येक प्रजातन्त्र उस सामाजिक और व्यवस्थाजन्य स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहा है जिसको उसके पूर्वजों ने अपनी मातृभूमि के छोटे से टापू में अपनी जान लड़ा कर प्राप्त किया था। प्रत्येक प्रजातन्त्र आपस में और जन्म-भूमि के साथ परस्पर सदिच्छा के बन्धनों से जकड़ा हुआ है। इस बन्धन में किसी प्रकार के दबाव अथवा निश्चित और ससीम आधिपत्य का तिल भर सम्पर्क नहीं है।

फ्रांस।

ब्रिटिश-व्यवस्था के विकास का इतिहास साधारण, अरोचक और एक प्रकार से आवेगशून्य है (यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से इसका महत्त्व बहुत बढ़ा-चढ़ा हुआ है) किन्तु उसके सबसे समीपवर्ती पड़ोसी के सम्बन्ध में हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह आपत्ति कदापि नहीं कर सकते। रिचलू के नवाबी दिमाग़ को धन्य है, जिसने देश की प्राणघातक सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए शासन की बागडोर अपने हाथ में ली थी, किन्तु वह शक्ति को पाते ही अपने उद्देश से उदासीन हो गया। स्वच्छन्द सम्राटों और भद्र सरदारों की निन्द्य और अमानुषिक सन्धियों के कारण फ्रांस १८ वीं शताब्दी के अन्त तक नारकीय यातनायें भोगता रहा है। आख़िर में क्रान्ति हुई। जो ज्वालामुखी पर्वत २२ शताब्दियों से केवल यदा कदा गरज गरज कर चुप हो रहता था वह अन्त में भयङ्कर रूप से फूट पड़ा। उससे सारा योरप थर्रा गया, उसको पुनः प्रजातन्त्र के नग्न स्वरूप के दर्शन हुए। फ्रांस एक अखण्डनीय और स्वभाग्य-निर्माता बन गया, उसके नागरिक समानाधिकार भ्रातृत्वभाव के बन्धनों से बँध गये। न तो उसमें प्राचीन रोम की तरह कोई विशेषाधिकार-प्राप्त सरदार रह गये और न इटली की भांति नगर-राष्ट्रों और जागीरदारों का अस्तित्व ही रह गया, जिसके थोड़े बहुत चिह्न इँग्लैंड में अब भी चले जाते थे, और न उसमें अमरीका की भांति गुलामी की प्रथा ही शेष रह गई थी। मनुष्यों ने थोड़ी देर के लिए वह सुन्दर दृश्य देख पाया था कि वह फिर पैशाचिकता, वैमनस्य और साम्राज्यवाद के काले बादलों के घटाटोप से एक-दम लोप हो गया। योरप ने आंख से उसके दर्शन कर लिये और आजन्म न योरप और न पृथिवी के सुदूरवर्ती निवासी कभी उस दृश्य की झलक भूल सकते हैं। सन् १७८९ में यूनान की आत्मा ने अपनी क़ब्र से उठ कर फ्रांस के रूप में दर्शन दिया। रोमन लोगों का सैनिकवाद, जागीरदारी अत्याचार और दमनप्रिय स्वच्छन्द राज्य-प्रणाली की घृणित मृत्यु के पश्चात् प्रजातन्त्रवाद पुनः पृथ्वी पर लौट आया, वह प्रजातन्त्र जिसने केवल तीन पीढ़ियों में यूनान को स्वतन्त्रता-देवी का मन्दिर बना दिया था, जिसने वहां घर घर में उन्नति और जाग्रति के भाव भर दिये थे। मानव-समाज के कुछ उत्कृष्ट उपासक इस युद्ध में काम आ गये और सादर पूजे जाने लगे। किन्तु तीन ही वर्ष के बाद कुछ पुजारियों में विद्रोह की आग भड़की और उसको सुलगाने के लिए ईंधन भी यथेष्ट मिल गया। तो भी पुनरुत्थान के थोड़े से महीनों की स्मृति भुला देना मनुष्य की शक्ति के बाहर है। आदर्श ने फ्रांस में पुनः जन्म लिया, उसको मारना नेपोलियन, मेटरनिच सरीखे दिग्गजों की सामर्थ्य के बाहर था, अतएव वह बच्चा धीरे धीरे शुद्ध हवा और अनुकूल परिस्थिति में दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता गया। यहां तक कि आज इतनी छोटी आयु में वह इतना अधिक बलवान् हो गया है कि भूतल पर शायद ही कोई ऐसा देश हो जो सन् १७८९ के सिद्धान्तों की कम से कम मौखिक उपासना न करता हो। फ्रांस का सच्चा रूप वही है जो उसने क्रान्ति के प्रारम्भ में दिखाया था। सम्भव है, आधुनिक फ्रांस भयङ्कर राष्ट्रीय स्वार्थपरता के कारण हमारे हृदय में घृणा उपजाता हो, किन्तु हमको उन लोगों की आत्मा के लिए जो एक बार स्वतन्त्रता के उस उच्च और दिव्य शिखर पर चढ़ चुके हैं कोई चिन्ता नहीं हो सकती। स्वतन्त्रता का उपासक और विश्व के उत्तरोत्तर विकास और उन्नति का विद्यार्थी यह बात अच्छी तरह जानता है कि फ्रांस के वर्तमान विकराल भेष के भीतर आज भी सन् १७८९ के फ्रांस की सुन्दर आत्मा, जो पेरीकेल्स के एथेन्स के विचारों की साक्षात् मूर्ति थी, गाढ़ निद्रा में सो रही है। उसके पुनः दर्शन करने के लिए उसको जगाने भर की देर है। जिस प्रकार इँग्लैंड ने यूनान की व्यवस्था-जन्य स्वतन्त्रता की स्थापना की है, उसी प्रकार फ्रांस ने यूनान के प्रजातन्त्र की स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा की है।

आधुनिक राष्ट्र।

चार आधुनिक राष्ट्रों को यूनान के तृतीय आदर्श 'स्वराज्य' का पुनः अनुसन्धान करने का श्रेय प्राप्त हुआ है। स्वराज्य का अर्थ है स्वभाग्य-निर्णय की स्वतन्त्रता और विदेशी साम्राज्य के हस्तक्षेप से स्वतन्त्रता। पहला तो वह बहुत ही छोटा देश है। स्पिस ने सन् १२९१ में हैप्सबर्ग के विरुद्ध स्थायी सन्धि-परिषद् की स्थापना करके १४ वीं शताब्दी में लड़ाइयों में विजय प्राप्त की थी और इस प्रकार अपने राष्ट्र को पूर्ण स्वतन्त्र बना लिया था। स्वतन्त्रता के इतिहास में ये लड़ाइयां किसी भी युद्ध से गौरव और महत्त्व में किसी प्रकार कम नहीं हैं। उक्त चार सौभाग्यशाली देशों में दूसरा नम्बर डच लोगों का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका राष्ट्र भी बहुत छोटा है। इस ग्वालों के राष्ट्र ने बराबर चालीस वर्ष तक युद्ध करके संसार के एक ऐसे बड़े भारी साम्राज्य को, जिसका आज्ञानुवर्ती आधा योरप हो रहा था, हराया ही नहीं, बरन अपने शहरों के चारों ओर कोट फेर कर और देश के चारों ओर बाँध डाल कर संसारव्यापी व्यापार और प्रभावशाली जल-सेना तैयार कर ली थी। इनके सबसे बड़े नेता 'विलियम दी साइलेंट' ने, जिसकी गणना उन अत्यन्त प्रतापी पुरुषों में की जाती है जो केवल अपने बल से संसार में युगान्तर उपस्थित कर देते हैं, एक बार अपने दीर्घस्वर में यह घोषणा की थी—जब तक हमारे देश में एक भी मनुष्य जीवित रहेगा तब तक हम लोग अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ेंगे। उन्होंने युद्ध किया और विजय प्राप्त की। अन्त में भीमाकार स्पेन को, जो अपनी शक्ति के मद में चूर रहा करता था, हालेंड जैसे बच्चे के सामने हार माननी पड़ी।

इसके बाद तीसरा नम्बर अमरीका का है। हज़ारों वर्ष पहले यूनान में जो अङ्कुर जमा था उसको सींचने और पालने-पोषने में अमरीका ने यथेष्ट उद्योग किया है। क्रान्ति के युग में जो महान् युद्ध हुआ था उसमें अमरीका ने यह भली-भाँति सिद्ध कर दिया है कि साम्राज्यवाद, चाहे उसका सञ्चालन व्यवस्थापूर्ण शासन के द्वारा होता हो, स्वतन्त्रता के मार्ग में एक बड़ी भारी बाधा है। यह सच है कि एथेन्स की भाँति अमरीका का मुँह भी बहुत दिनों तक ग़ुलामी-प्रथा के कारण काला बना रहा, किन्तु समय पाकर वास्तविक स्वतन्त्रता के प्रति अनुराग उमड़ा और ग़ुलामी का नाम संसार से सदैव के लिए उठ गया। किन्तु आज-कल अमरीका स्वार्थ के वशीभूत होने से शिल्प और कलाकौशल के क्षेत्र में उचितानुचित आधिपत्य जमाने के लिए लालायित दिखाई देता है। आशा है, समय पाकर यह बुराई भी दूर हो जायगी। इस बीच में अमरीका प्लेग-ग्रसित योरप के स्वार्थमय राष्ट्रवाद के विरुद्ध चुपचाप बड़े मनोयोग से लड़ रहा है। योरप के विविध राष्ट्रों के नागरिकों का स्वागत करके और उनको अपने राष्ट्र-सम्मेलन में सम्मिलित करके वास्तव में अमरीका एक ऐसे भावी स्वतन्त्र और संसार-व्यापी राष्ट्र की नींव डाल रहा है जो किसी प्रकार ब्रिटिश-साम्राज्य से कम न होगा।

अन्त में इटली का नाम दुहरा देना असङ्गत न होगा, क्योंकि हैप्सबर्ग के राज्य के अन्त होने के बहुत दिनों बाद यहाँ नवयुग का प्रादुर्भाव हुआ। महाराज विक्टर-इमेनुएल, जो आदर्श व्यवस्थापक था, केवर जो आदर्श राजनीतिज्ञ था, मेज़िनी, जो आदर्श राजनैतिक दार्शनिक था और सबसे अधिक गेरीबाल्डी ने, जो स्वतन्त्रता का आदर्श उपासक था, इटली में कुछ दिनों के लिए यूनान की आत्मा का पुनः साक्षात्कार करा दिया था।

मानवी स्वभाव को दिन प्रति-दिन उच्चतर बनाने के लिए हम निरन्तर ईश्वरी कृपा के ऋणी हैं।

इस प्रकार शताब्दियों से मानवी आत्मा को बन्धन-रहित करने के लिए प्रत्येक देश में समय समय पर प्रशंसनीय उद्योग होते आये हैं। प्रायः सभी देशों ने इस महान् उद्देश की पूर्ति में भाग लिया है। मनुष्य-मात्र की यह आकाङ्क्षा है कि मनुष्य को अपनी आन्तरिक सदिच्छा के अनुसार पूर्ण स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य करने में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा न रह जाय। ईश्वर करे, हम लोग भी इस सर्वोच्च उद्देश में यथेष्ट योग दे सकें।*

दीनदयालु श्रीवास्तव

अभिलाषा।

न चिन्ता हमको इसकी नेक—
एक से दुख जो हुए अनेक।
यातना हम सह लें प्रत्येक,
न छूटे कभी तुम्हारी टेक॥ १॥
हमें तो तुमसे इतनी प्रीति,
किन्तु है तुम्हें न तनिक प्रतीति।
हमें बस खलती यह अनरीति,
न दुःखों की है कुछ भी भीति॥ २॥
हुआ है कभी नहीं संयोग,
रहे पर हम वियोग-दुख भोग।
हँसें फिर क्यों न हमें सब लोग?
सत्य ही है यह अद्भुत रोग॥ ३॥
विश्व में छाया अतुल प्रकाश,
दीखता हमें शून्य आकाश।

* सङ्कलित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुमुद-बान्धव का नहीं विकास,
कुमुद को हो कैसे उल्लास ? ॥ ४ ॥
रहे हम सदा जिसे अवगाह,
प्रेम का है वह सिन्धु अथाह ।
भला हम कैसे पावें थाह ?
मिटे फिर क्यों उर की दुख-दाह ? ॥५॥
चाहता हो कुछ भी संसार,
हमें चाहिए तुम्हारा प्यार ।
ठीक हो या कि अलीक विचार,
किन्तु धुन हम पर यही सवार ॥ ६ ॥
परम जो ज्ञानवान मतिमान—
दिया क्या उन्हें दृष्टि का दान ? ।
खले फिर क्यों हमको अज्ञान ?
तुम्हें तो सब हैं एक समान । ७॥
मिलो चाहे न मिलो सरकार,
हमें तो तुम्हीं एक आधार ।
छोड़ दें कहीं तुम्हारा प्यार,
रहे तो जीवन में क्या सार ? ॥ ८ ॥
दुःख हम भोग रहे भरपूर,
हुआ अभिमान सभी विधि चूर ।
पर हमें सब कुछ है मञ्जूर,
रहो तुम यदि न दृष्टि से दूर ॥ ९ ॥
भले ही हो कुछ मन को भ्रान्ति,
हृदय में बसी तुम्हारी कान्ति ।
तुम्हीं से मिलती उसको शान्ति,
तुम्हीं में पाता वह विश्रान्ति ॥१०॥
पूछते हो क्या मन का हाल ?
देखते क्या न दशा विकराल ? ।
चलो अब और न कोई चाल,
करो बस आकर हमें निहाल ॥११॥
हो रहे बारम्बार निराश,
रहें हम क्यों न सदैव उदास ? ।
किन्तु हो भले न चित्त-विकास,
जायगी कभी न यह अभिलाष ॥१२॥

गोपालशरणसिंह ।

एक अद्भुत जीव ।

पुस्तक वितरित न की जाय ।

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च"—यह संसार का अटल नियम है । यह कभी टल नहीं सकता । जो पैदा होता है वह मरता ज़रूर है । एक भी प्राणी ऐसा नहीं जो मृत्यु के पञ्जे से बच सके । मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, सरीसृप, वृक्ष, लता आदि सभी पैदा होते और मरते हैं । परन्तु हरि के इस लीलानिकेतन विश्व में कुछ ऐसे भी अद्भुत जीव हैं जिनकी मृत्यु नहीं होती—जो सदा जीवित रहते हैं; अथवा यह कहना चाहिए कि जिनके मरने-जीने का पता मनुष्य को नहीं । सम्भव है, संसार के पूर्व-निर्दिष्ट नियम के अनुसार वे भी जन्म-मरण के जाल से न बचे हों; परन्तु वे कब, किस तरह मरते हैं, यह बात विज्ञान-वेत्ता भी अब तक नहीं जान पाये ।

जलाशयों के पेंदे में एक प्रकार के अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी रहते हैं । उनके शरीर-सङ्गठन में ज़रा भी जटिलता नहीं होती । उनकी देह सूक्ष्म-कोश-मय होती है । उसमें अङ्ग-प्रत्यङ्ग बिलकुल नहीं होते । अच्छा, यह कोश होता कैसा है ? यह एक अत्यन्त स्वल्प थैली सी होती है; उसमें किसी गाढ़े, पर तरल, पदार्थ का एक बिन्दु-मात्र भरा रहता है । कभी कभी इस थैली का भी पता नहीं लगता; केवल बिन्दुमय पतला पदार्थ ही देख पड़ता है । यह पदार्थ स्वच्छ और वर्णविरहित होता है । न यह बहुत पतला ही होता है और न जमाही हुआ । हाँ, गाढ़ा अवश्य होता है । जीवनी शक्ति का जैसा विकास इस पदार्थ में देख पड़ता है वैसा अन्यत्र नहीं । जान पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, मानों जीवन का आदि लीलाक्षेत्र यही है। अँगरेज़ी में इसे प्रोटोप्लाज़्म अर्थात् प्राणि-जीवन का मूलतत्त्व कहते हैं। इस प्रोटोप्लाज़्म से ही जीवन का विकास होता है। यदि किसी प्रकार प्रोटोप्लाज़्म तैयार किया जा सके तो मनुष्यद्वारा प्राणि-जीवन की सृष्टि करना शायद सम्भव हो जाय। योरप के विज्ञानवेत्ताओं ने आशा की थी कि रासायनिक प्रक्रिया के द्वारा जैसे अनेक जटिल रासायनिक मिश्रण तैयार किये जा सकते हैं वैसे ही प्रोटोप्लाज़्म भी तैयार किया जा सकेगा और उसकी सहायता से मनमाने पदार्थों में जीवनी शक्ति सञ्चारित की जा सकेगी। परन्तु अनवरत श्रम, उद्योग और गवेषणा करने पर भी उनकी सभी परीक्षायें अब तक व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। अतएव उनकी वह आशा अद्यावधि दुराशा ही बनी हुई है।

विज्ञानवेत्ता पहले समझते थे कि अन्यान्य रासायनिक यौगिक पदार्थों की तरह प्रोटोप्लाज़्म भी वैसा ही कोई पदार्थ है। परन्तु उनकी यह धारणा निराधार ज्ञात हुई है। वे जान गये हैं कि इस पदार्थ का रहस्य समझने में अब तक उनकी बुद्धि काम नहीं दे सकी। कोई भी वैज्ञानिक इस पदार्थ का विश्लेषण करके यह नहीं बता सका कि इसमें किन किन रसों, तत्त्वों या मूल पदार्थों का योग है। इस विषय में इसकी जटिलता देख कर बेचारे विज्ञानविशारदों की पैनी बुद्धि भी चक्कर खा रही है।

जीवन के मूलरूप को जीवनकोश कहते हैं। खुर्दबीन के द्वारा देखने से मालूम हुआ है कि जीवनकोश में तैलबिन्दु, श्वेत, सारबिन्दु आदि कई जटिल रासायनिक पदार्थों के कण मौजूद हैं। जीवनकोश के भीतर एक और भी क्षुद्र कोश होता है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म आवरण से परिवेष्टित रहता है। उसे अन्तःकोश (Nucleus) कहते हैं। उसके भीतर भरा हुआ पदार्थ और भी रहस्यमय होता है। वह जीवनकोश के रस से कुछ अधिक गाढ़ा होता है। अन्तःकोश के रस या धातु में जिन रासायनिक पदार्थों का मेल या मिश्रण रहता है वे जीवनकोश के मिश्रण से बिलकुल ही भिन्न होते हैं। अर्थात् दोनों में दो तरह के रस रहते हैं। दोनों की क्रियाशक्ति में भी भिन्नता होती है। विज्ञानवेत्ताओं को पता लगा है कि अन्तःकोश के बीच में कुछ तन्तु-सदृश पदार्थ भी होते हैं।

अन्तःकोश में जितने पदार्थ होते हैं वे सभी जीवन के आदि तत्त्व हैं। जीवनकोश, जड़ पदार्थों की तरह, निर्जीव नहीं होते। उनमें सजीवों की सी चेष्टा पाई जाती है। वे भी एक प्रकार के प्राणी हैं। जलाशयों की तह में, कीचड़ के ऊपर, इस प्रकार के चेतन-चेष्टा-विशिष्ट एक कोशी जीव ढेर के ढेर पाये जाते हैं। वे कई प्रकार के होते हैं। उनमें से सबसे अधिक सरल देहधारी जीव को आमिवा कहते हैं।

आमिवा प्राणि-जगत् की आदिम और निकृष्टतम प्रजा है। वह बड़ा ही अद्भुत जीव है। उसके एक भी अवयव नहीं होता। उसके विषय में कोई यह नहीं कह सकता कि उसका आकार क्या है। वह गोल होने पर भी लम्बा होता है। हस्तपाद-विहीन होने पर भी अनेक पाद और अनेक हस्तधारी होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मुख होने पर भी मुखमय कहा जा सकता है। यद्यपि उसके पेट नहीं, तथापि उसके उदर-युक्त होने में सन्देह नहीं। उसके नासा नहीं, तिस पर भी उसका सर्वांश नासिका का काम देता है। मतलब यह कि जिस चेतना-विशिष्ट धातु से आमिवा का शरीर बना होता है उसका कोई निर्दिष्ट आकार तो नहीं, पर काम वह सभी अवयवों के देता है।

खुर्दबीन में आँख लगाकर देखने से मालूम हुआ है कि आमिवा स्थान-परिवर्तन भी करता है। उसके पैर, पंख, डैने आदि कुछ भी दृग्गोचर नहीं। परन्तु चलता वह अवश्य है। वह अपने अद्भुत आकार का सङ्कोचन, प्रसारण और परिवर्तन करके आगे बढ़ता या पीछे हटता है। यही उसका चलना है—यही उसकी गति है।

आमिवा को काहिली या निष्क्रियता से घृणा है। वह बड़ा ही क्रियाशील प्राणी है और कुछ न कुछ किया ही करता है। कभी वह सिकुड़ता, कभी फैलता, कभी लम्बा हो जाता और कभी वर्तुलाकार बन जाता है। कभी वह चक्राकार धारण कर लेता है और कभी तारकाओं के जैसे रूप में परिवर्तित हो जाता है। वह इतना मायावी है कि इन्द्रजाल के सदृश सैकड़ों आश्चर्य्य-जनक खेल खेला ही करता है। उसके बहुरूपिये-पन का यह हाल है कि उसका नन्हा सा शरीर प्रतिक्षण भेष बदलता ही रहता है। कभी कभी वह अपनी देह से कितने ही स्पर्शकारक तन्तु, उँगलियों की तरह, बाहर निकाल देता है और फिर उन्हें ज़रा ही देर में भीतर समेट लेता है।

श्वासक्रिया के लिए आमिवा की देह में कोई अवयव या यन्त्र नहीं। परन्तु उसका श्वासो-च्छ्वास-कार्य निरन्तर और अनवरत बराबर चलता रहता है। जल में जो वायु मिली रहती है उसी से वह अपने शरीर के सर्वांश-द्वारा आक्सिजन नामक वायु ग्रहण करता है और फिर उसी शरीर ही के द्वारा अङ्गारक वायु को बाहर निकाल देता है। बस इसी तरह उसका जीवन-यन्त्र सतत चलता रहता है।

आमिवा भिन्न भिन्न आकार धारण करता हुआ अपने स्थान का परिवर्तन करता रहता है। इस परिवर्तन के समय यदि उसका कोई स्पर्श करनेवाला तन्तु या देह का अंश किसी क्षुद्र उद्भिज्ज या प्राणिज पदार्थ से छू जाता है तो वह अपनी कोमल देह उस पदार्थ की तरफ़ ठेल देता है। ऐसा करने से वह पदार्थ आमिवा की तरल देहज धातु-द्वारा पूर्णरूप से परिवेष्टित और आवृत हो जाता है। अथवा यह कहना चाहिए कि वह पदार्थ उसकी देह के भीतर चला जाता है; वह उसका खाद्य बन जाता है। आमिवा इसी तरह भोजन करता है। कुछ ही देर में वह ग्रस्त या भुक्त पदार्थ आमिवा की देह के साथ पूर्णतया न सही, आंशिक रूप से अवश्य ही सम्मिलित हो जाता है। यदि उसका कुछ अंश आमिवा की देह से संश्लिष्ट नहीं हो सकता तो वह वहाँ चिपका नहीं रहता; तत्काल ही बाहर फेंक दिया जाता है। मतलब यह कि जितनी ख़ूराक वह हज़म कर सकता है उतनी ही ग्रहण करता है; अवशिष्ट अंश को वह निकाल बाहर करता है। आमिवा के न पेट है, न मुँह। अर्थात् वह आहार्य्य पदार्थ ग्रहण करने के लिए कोई अङ्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या अवयव नहीं रखता। तथापि उसकी देह के जिस अंश से आहार्य्य पदार्थ छू जाता है वही उसका मुँह हो जाता है और उसी के द्वारा वह उसे अपने पेट या आमाशय में पहुँचा देता है। इस प्रकार आमिवा मुख-विवरहीन होने पर भी भोजन करता है और उदरदरी-हीन होने पर भी खाद्यवस्तु को हज़म कर लेता है।

आमिवा विवेक-शक्ति भी रखता है और उसकी वह शक्ति बहुत तीव्र भी होती है। वह खाद्याखाद्य वस्तुओं को खूब पहचानता है। चलते फिरते समय दैवात् यदि उसकी देह से बालू का कण, लकड़ी या तृण का कोई टुकड़ा, या और ही कोई अखाद्य वस्तु छू जाय तो वह तुरन्त पीछे हट आता है; उसे ग्रहण नहीं करता। उस निःसार पदार्थ को एक तरफ़ छोड़ कर वह दूसरी तरफ़ से आगे बढ़ता है। आमिवा के शरीर से यदि किसी उत्तेजक या अवसादक पदार्थ का संसर्ग किया जाय तो वह सहम उठता है। वह जान जाता है कि यह पदार्थ मेरे लिए घातक है। अतएव या तो वह उससे भागता है या वहीं निर्जीव सा होकर चुपचाप रह जाता है।

सुभीते के साथ भोजन मिलने और बहुत खा जाने से आमिवा की देह शीघ्र ही मोटी-ताज़ी हो जाती है। पेट के भीतर यथेष्ट भोज्य पदार्थों के जाने और हज़म होने से शरीर की पुष्टि और वृद्धि होना अवश्यम्भावी है। पर इस पुष्टि और वृद्धि की भी सीमा होती है। इसलिए आमिवा का शरीर उस सीमा का उल्लङ्घन नहीं कर सकता। कुछ दिनों तक बढ़ने के बाद उसकी देह में एक अद्भुत व्यापार सङ्घटित होता है। उसके कारण ही उसकी शरीर-वृद्धि वहीं रुक जाती है। शरीर के उपचय की सीमा का अन्त हो जाने पर आमिवा मन्थर-गति हो जाता है। उस समय उसके देह-कोश के मध्यभाग में स्थित अन्तः-कोश के दो टुकड़े हो जाते हैं। वह दो भागों में विभक्त हो जाता है। वे दोनों भाग देहकोश के दोनों ओर अलग अलग अवस्थित हो जाते हैं। इस परिवर्तन के साथ ही साथ देहकोश का मध्यभाग सङ्कुचित होने लगता है। यह सङ्कोचन क्रम क्रम से बढ़ता जाता है। फल यह होता है कि कुछ समय के उपरान्त यह बिलकुल ही लुप्त हो जाता है और एक के बदले दो देह-कोश अस्तित्व में आ जाते हैं। अर्थात् एक के दो आमिवा हो जाते हैं।

पूर्व-निर्दिष्ट दोनों आमिवा अपने मूलभूत पहले आमिवा के अर्द्धांश होते हैं। अर्थात् उनमें से प्रत्येक आमिवा मूल आमिवा के आधे आधे अंश के बराबर होता है। ये दोनों आमिवा पहले आमिवा ही के सदृश चलते फिरते और खाते पीते हैं। यथासमय बड़े होकर वे भी नई सृष्टि उत्पन्न करते हैं। अर्थात् दो के चार हो जाते हैं। यह क्रम बराबर जारी रहता है और यदि कोई दुर्घटना न हुई तो चार के आठ, आठ के सोलह, और सोलह के बत्तीस हो जाते हैं। उनका वंश-विस्तार इस तरह आगे भी होता ही जाता है। इन प्राणियों में स्त्रीत्व और पुँस्त्व का भेद नहीं होता। सन्तानोत्पादन के लिए वे नर-मादा की योजना की अपेक्षा नहीं करते।

अच्छा तो जब एक आमिवा के दो आमिवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाते हैं तब प्रथम आमिवा क्या नष्ट हो जाता है अथवा मर जाता है ? नहीं, यह बात नहीं। उसका वह अंश अवसन्न नहीं पड़ा रहता। वह अपना नित्य-नैमित्तिक काम भी नहीं बन्द करता। जिस दशा में नया रहता है उसी दशा में पुराना भी। अर्थात् बाप-बेटे तुल्य अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। बेटे के जुदा होने की तैयारी होने पर बाप को कुछ शिथिलता ज़रूर प्राप्त हो जाती है; परन्तु वह निष्क्रिय नहीं हो जाता। कुछ न कुछ वह फिर भी किया ही करता है। दोनों के जुदा जुदा हो जाने पर तो बाप-बेटे अपने अपने काम में जी जान से लग जाते हैं। इनके इस क्रिया-कलाप को देख कर यह सन्देह होता है कि कहीं ये अमर तो नहीं; क्योंकि इनकी मृत्यु का दृश्य विज्ञान-विशारदों के देखने में नहीं आया।

[सङ्कलित]

शिवगोपाल मिश्र

वैरागी वीर ।

प्रतिहिंसा का अवतार ।

अब सरहिन्द के सूबा की बारी आई। सरहिन्द वही स्थान था जहाँ गुरु गोविन्दसिंह के नन्हें बच्चे चुनवाये गये थे। वैरागी का हृदय बदला लेने के लिए जल रहा था। उसने सिक्खों को इकट्ठा करके गुरु के बच्चों के नाम पर अपील की और कहा कि बदला लेने का समय आ गया है, वीर बन कर लड़ो।

सूबेदार ने इस युद्ध के लिए बड़ी तैयारी की। अन्ततः जेठ संवत् १७६५ को वह दिन आ पहुँचा जिसकी प्रतीक्षा थी। दोनों ओर की सेनायें बड़ी वीरता से लड़ीं। तोपों के शब्द से आकाश गूँज उठा, पृथ्वी काँपने लगी, लहू की नदियाँ बह निकलीं। नवाब के पास युद्धोपकरण बहुत अधिक था। हाथ और बाण की लड़ाई में वैरागी के सिपाही सिंह के समान लड़ते थे, परन्तु उनके पास तोपें न थीं। वे तोप की मार सहन न कर सके। उन्होंने भागना आरम्भ किया। सरदारों ने ताने देना शुरू किया कि क्या भाग कर गुरु के बच्चों का बदला लोगे। वे एक बार सँभल कर फिर पीछे लौटे, परन्तु तोप के सामने मुँह कौन करे। फिर भागने लगे। वैरागी तीन मील की दूरी से लड़ाई की व्यवस्था कर रहा था। इतने में समाचार मिला कि उसकी सेना पीछे हटने लगी है। इस लड़ाई के परिणाम पर भविष्य का सब कुछ अवलम्बित था। वह चटपट घोड़े पर सवार हुआ। बिजली की तरह चमका और बरसात की तरह बाण बरसाने लगा। उसके बाणों में इतनी शक्ति थी कि वे तोप के गोलों का मुक़ाबला करते थे। तोप चलानेवाले ख़ालोग उसके तीरों का निशाना बन गये।

वैरागी बाण बरसाता, काटता-मारता बढ़ता गया। निकट पहुँच कर उसने तलवार निकाल ली। इतने में सूबेदार वज़ीर ख़ाँ दृष्टिगोचर हुआ। वैरागी ने उसे ललकारा और कहा कि क्यों निरपराध लोगों को मरवाते हो। तलवार लो। मैदान में निकलो। मेरे साथ दो दो हाथ करो। मैं तुमसे बदला लेने के लिए इतनी दूर से चल कर आया हूँ।

वज़ीरख़ाँ को साहस न पड़ा कि सामने आता। वह अपने आदमियों को उत्साह देता था। परन्तु वैरागी के नाम से मुसलमान काँपने लगे। उनकी सेना के पाँव उखड़ गये। वज़ीरख़ाँ का हाथी भागा जा रहा था कि उसका पैर एक क़ब्र में फँस गया। सूबा स्वयं नीचे गिर पड़ा। उसका पकड़ा जाना था कि उसकी सारी सेना भाग खड़ी हुई। नगर में सर्ववध की आज्ञा होगई। वज़ीरख़ाँ को जूतों पर बैठने का हुक्म हुआ। वैरागी ने कहा, तुमने एक हाथ से अत्याचार किया है, अब दूसरे हाथ से उसका बदला भोगो। वह नगर के इर्द-गिर्द फिरा कर जीते जी आग में फेंक दिया गया। उसका दीवान सूचानन्द को परिवार-सहित पकड़ बुलाया गया। वैरागी ने उससे पूछा—'तुम्हारा जन्म हिन्दू के घर हुआ है। तुममें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किस प्रकार इतना साहस हुआ कि तुमने उस महापुरुष के कलेजे में हाथ डाला जिसने हिन्दू-धर्म की रक्षा का बीड़ा उठाया था ? अब तुम्हारी दीवानी किधर है ? ईश्वर के दरबार में तुम फटकारे जाओगे। फिर वह मार डाला गया। सात दिन तक नगर के मकान गिराये जाते रहे। न कोई मसजिद रही, न मक़बरा। मुसलमानों की सब जागीरें और माफ़ियाँ ज़ब्त कर ली गईं। उन्होंने दिल्ली के बादशाह के पास आवेदन-पत्र भेजे कि वैरागी ने 'भूत' वश में कर रक्खे हैं। उनकी सहायता से वह पंजाब को विजय कर रहा है और दिल्ली को भी हिला देगा।

सरहिन्द से चल कर वैरागी राहों पहुँचा। अब उसका मार्ग निष्कण्टक हो गया। मालेर-कोटला, सुरसिंह, पट्टी, चभाल, खेमकरण, पठानकोट, काँगड़ा, फीरोज़पुर आदि को विजय कर लेने से बावन लाख के इलाक़े पर हिन्दुओं का अधिकार हो गया। हज़ारों हिन्दू उसकी सेना में आकर भरती होने लगे। मुसलमानी सेना के अफ़सर उसके सामने जाने से घबराते थे। उनको विश्वास हो गया था कि जिन्न-भूतों की सहायता से उसके तीर शत्रु-पक्ष के अफ़सरों को ही धराशायी करते हैं।

दो वर्ष से भी कम काल में एक अकिञ्चन फ़क़ीर ने अपनी धनुर्विद्या के कौशल से पंजाब के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया। उसने नालागढ़, कहलूर और नाहन आदि के पहाड़ी राजों को भी कर देने पर विवश किया। वैरागी अपने लिए कुछ न रखता था। वह सब कुछ सिक्खों को बाँट देता था। साधारणतया यह बात भी प्रसिद्ध की गई थी कि जो सिक्ख बनेगा, वैरागी की विजय के पश्चात्, उससे भूमि का लगान न लिया जायगा। इससे बहुत से जाट ज़मींदार सिक्ख बन गये। संवत् १७६७ में मण्डी का राजा सुधीरसेन वैरागी को अपने राज्य में ले गया और उसका चेला बना। अब वैरागी को विश्राम मिला। उसने बाह्य ठाठ-बाट भी बनाया। सिर पर कलगी लगाई। राजों की तरह रहना आरम्भ किया।

पहाड़ी देश में जन्म होने के कारण वैरागी को पार्वत्य प्रदेश से विशेष प्रेम था। जब उसे तनिक अवसर मिलता, वह पहाड़ों में सैर के लिए चला जाता। परन्तु उसके जाते ही सिक्खों पर सख़्ती शुरू हो जाती, मुसलमान झट अपनी शक्ति बढ़ाना आरम्भ कर देते। वैरागी के बिना सिक्खों को प्रबन्ध करना कठिन हो जाता। वे मन में वैरागी के विरुद्ध जलते थे। उसके विरुद्ध उन्होंने कई बातें उड़ा दी थीं कि वह भोगों में लिप्त हो गया है। उसका तप नष्ट हो गया है, उसने धर्म का युद्ध छोड़ दिया है और धर्म को भुला दिया है। परन्तु वास्तव में यदि वह गिर गया होता और विषय-भोग में फँस गया होता तो वह सिक्खों की सहायता के लिए क्यों बार बार आता और उसे क्यों बार बार वैसी ही सफलता होती। उसने एक विवाह अवश्य किया था, जिससे ९ आषाढ़ संवत् १७६९ को उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

मण्डी से वैरागी कुल्लू की सैर के लिए गया। किसी ने यों ही उड़ा दिया कि कुल्लू के राजा ने उसे क़ैद कर लिया है। बस, मुसलमानों के घरों में ख़ुशी के बाजे बजने लगे और हिन्दुओं के यहाँ शोक होने लगा। पन्थ अनाथ हो गया। दिल्ली से सेनायें रवाना हुईं। मुसलमानों का फिर सब जगह अधिकार हो गया। सिक्ख और हिन्दू वैरागी का स्मरण करके रोने लगे। वैरागी को इस बात की सूचना मिली। वह उड़ कर होशियारपुर आ पहुँचा। उसके आते ही मुसलमान भाग गये। सिक्खों को विजय दिलाकर वह फिर मण्डी चला गया। चम्बे का राजा उसका चेला बन गया। वहाँ वैरागी ने एक और विवाह किया। जब दिल्ली की सेनाओं ने सिक्खों को हैरान कर दिया तब वह फिर आया और मुसलमानों को भगा कर पहाड़ को वापस चला गया और साधु बन कर काश्मीर, अमरनाथ और नैपाल की यात्रा करने चला गया।

औरंगज़ेब की मृत्यु से दिल्ली की कैन्द्रिक शक्ति शिथिल हो चुकी थी। परन्तु पंजाब को वैरागी से ख़ाली देखकर मुसलमान फिर सिक्खों पर चढ़ आये। दिल्ली की सेना से घबरा कर बाबा विनोदसिंह करनाल छोड़ कर सरहिन्द आ पहुँचा। पहली लड़ाई अमीनाबाद में हुई। सिक्ख भाग निकले। घायल और मरते हुए सिक्खों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके केशों से वृक्षों पर लटकाकर फाँसी दे दी गई। वैरागी के बिना सिक्खों की ऐसी ही दशा थी जैसी दुल्हा के बिना बारात की। हिन्दुओं पर फिर अत्याचार होने लगे। देश की यह दुर्दशा सुन कर वैरागी अपनी गुप्त शक्ति के भरोसे पर पहाड़ से फिर नीचे उतरा। वन में सिंह की गर्ज होने से हरिणादिक जङ्गली जीव भागना शुरू कर देते हैं। वैरागी का मैदान में आना मुसलमानों के लिए सिंह का गर्जन था। प्रत्येक अपने अपने प्राण लेकर भागने लगा। सिक्खों का उत्साह बढ़ने लगा। वैरागी का आना ही था कि सारा इलाक़ा स्वयमेव सर हो गया। अबकी बार वैरागी ने सहारनपुर, नजीबाबाद, अम्बोरा और ननोत आदि मुसलमान नगरों को भी विजय करके लूट लिया।

पाठकों को आश्चर्य होगा कि वैरागी आँधी के सदृश सबको कैसे जीत लेता था। परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। महमूद गज़नवी के समय में जैसी दुर्बलावस्था हिन्दुओं की थी, वैसी ही इस समय मुसलमानों की थी। वे अपनी रक्षा आप न कर सकते थे। कैन्द्रिक राजसत्ता नष्ट हो चुकी थी। इसलिए वैरागी का मुक़ाबला करनेवाला कोई न था। वैरागी ने संवत् १७७० में अमृतसर में एक बड़ा भारी दरबार किया। गुरुदासपुर में एक दृढ़ दुर्ग बनवाया। उसे एक बार फिर सरहिन्द पर चढ़ाई करनी पड़ी। सूबेदार हमीदख़ाँ ने खूब मुक़ाबला किया। तोपों ने सिक्खों के अन्दर खलबली सी डाल दी। इतने में केहरसिंह नामक एक युवक ने सूबे को नमाज़ पढ़ते देखा। वह फ़ौरन झपटा और उसका सिर काटकर वैरागी के पास ले आया। इससे मुसलमान भाग गये। वैरागी अब अधिकतर गुरुदासपुर में ही रहने लगा। वैरागी की एक बड़ी भूल यह थी कि वह बार बार विजय करता था, परन्तु राजसत्ता अपने हाथ में न रखना चाहता था। वह शासनकार्य दूसरों को सौंप देता था। सिक्खों में शासन सँभालने की योग्यता नहीं थी। केवल तभी पंजाब में शान्ति रह सकती थी यदि वैरागी शासन की बागडोर अपने हाथ में रखता, पर इससे वह सदा परहेज़ करता रहा।

इस समय दिल्ली के सिंहासन पर फ़र्रुख़सियर विराजमान था। जब उसने देखा कि युद्ध में वैरागी को विजय करना असम्भव है तब उसने एक चाल चलने का निश्चय किया। दिल्ली में उस समय गुरु गोविन्दसिंहजी की दो स्त्रियाँ माता सुन्दरी और साहबदेवी रहती थीं। बादशाह ने उनको लालच और ख़ुशामद से अपने पक्ष में कर लिया और उनसे वैरागी के नाम एक पत्र लिखवाया। उसका विषय यह था—तुम गुरु के सच्चे सिक्ख साबित हुए हो। तुमने 'पन्थ' की बड़ी सेवा की है। इसे डूबने से बचा लिया है। परन्तु बादशाह अब जागीर देने पर उद्यत है। अब जागीर स्वीकार कर लो। हमारा कहा मान लो और लूट-मार बन्द कर दो।

पत्र पढ़ कर वैरागी का मुखमण्डल क्रोध से लाल हो गया। उसने तत्काल दरबार किया और कहा कि माई तुर्कों के छल को नहीं समझती हैं। उसने उसका उत्तर यों लिखा—

"आपका मुझे ऐसा लिखना व्यर्थ है। मुझ पर आपका क्या दावा है? आप सिक्ख हैं, मैं वैरागी साधु हूँ। मैं कभी गुरु का सिक्ख नहीं हुआ। गुरु गोविन्दसिंहजी मुझसे मिले ज़रूर थे। एक दिन मुझसे कहा कि मेरे बच्चों का बदला लो। मैंने अपनी तलवार और धनुष-बाण के प्रताप से देश-विजय किया है। इसी तलवार की शक्ति से लाहौर और दिल्ली विजय करूँगा। न मैं किसी की जागीर लेना चाहता हूँ, न किसी का आभार मानूँगा। मैं इन बेईमान बादशाहों का विश्वास कभी न करूँगा। आप हमको मुसलमानों के अधीन कराना चाहती हैं? आप भूल में हैं। जब तक हमारे हृदय में गुरु के बच्चों की याद बाक़ी है, अपनी इच्छा को कभी दुर्बल न होने देंगे।"

देश का दुर्भाग्य! कैकेयी, राघोबा की स्त्री आनन्दीबाई और रणजीतसिंह की रानी जिन्दाँ की तरह इन स्त्रियों ने भी बने बनाये काम को बिगाड़ दिया। दोनों ने वैरागी के इस उत्तर को अपना अपमान समझा। आग पर तेल डालनेवाले पास ही उपस्थित थे। उन्होंने सिक्ख सरदारों को चिट्ठियाँ लिख दीं कि आपमें से जो कोई गुरु का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिक्ख है वह इस वैरागी का साथ न दे, क्योंकि वह अपने आपको सिक्ख नहीं मानता।

इस आदेश को पाते ही बहुत से सिक्ख वैरागी से अलग हो गये और उसके शत्रु बन कर उसका असबाब लूटने लगे। यह समाचार पाते ही बादशाह मारे ख़ुशी के फूला न समाया। उसने अवसर समझ कर एक बड़ी भारी सेना वैरागी से लड़ने भेजी। नैनाकोट के समीप भारी मुक़ाबला हुआ। वैरागी के साथ थोड़े से सिक्ख और हिन्दू थे। परन्तु फिर भी बादशाही सेना के पैर उखड़ गये। बादशाह को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। वैरागी को विजय तो प्राप्त हुई, परन्तु उसकी शक्ति बहुत घट गई। तभी से सिक्खों में हिन्दुओं से पृथक् रहने का भाव काम करने लगा और वे अपने को "तत्त्व-खालसा" कहने लगे।

तत्त्व-खालसा के साथ बादशाह की सन्धि।

मन्त्रियों ने बादशाह को सलाह दी कि वह अकेला अजगर को न मार सकेगा। विष को विष से ही मारा जा सकता है। अतएव बादशाह को खालसा के पास अपना दूत भेजना चाहिए। खालसा अक़्ल से कोरा है। सब काम दुरुस्त हो जायगा। बादशाह ने चटपट एक चिट्ठी खालसा के नाम भिजवा दी। उसमें लिखा—

"खालसा मेरे साथ शत्रुता करना छोड़ दे। बाबर और बाबा (नानक) एक ही बात है। वैरागी उपद्रव का मूल है। वह स्वयं सिंहासन पर बैठना चाहता है। उसने माताओं का अपमान किया है। इस विष-वृक्ष को उखाड़ डालना चाहिए। आप लोग अमृतसर में बैठे बैठे दस सहस्र मासिक मुझसे लिया करें और सन्धि कर लें।"

खालसा विष मिला हुआ दूध का प्याला पी गया और ये शर्तें तय हुईं—

१—सिक्ख बादशाही राज्य में कभी लूट मार न करेंगे।

२—कोई सिक्ख वैरागी का साथ न देगा।

३—यदि कोई शत्रु लाहौर पर चढ़ाई करेगा तो वे लाहौर के शासक की सहायता करेंगे।

बादशाह की ओर से ये शर्तें थीं—

१—कोई बादशाह सिक्खों की जागीर न छीन सकेगा।

२—किसी हिन्दू को बलात् मुसलमान न बनाया जायगा।

३—कोई मुसलमान किसी हिन्दू के सामने गाय की हत्या न करेगा।

ये सब शर्तें केवल मायाजाल थीं। सिक्ख सरदार उसमें फँस गये। नानकसिंह और फ़तेसिंह आदि कई सरदार बादशाही फ़ौज में नौकर हो गये। बादशाह का काम बन गया। वैरागी को बादशाह की सफलता पर बड़ा आश्चर्य हुआ। वैरागी ने अब अन्तिम पग उठाने का विचार किया। उसने लाहौर पर अधिकार करने का निश्चय किया। वह अपनी टूटी-फूटी सेना को लेकर लाहौर पर चढ़ आया। यह बड़े भारी साहस का काम था। शालामार के निकट मुक़ाबला हुआ। असलमख़ाँ सूबेदार के पास दस हज़ार फ़ौज थी। उसकी फ़ौज के साथ तो वैरागी की सेना बड़ी वीरता से लड़ी, परन्तु सूबे ने खालसा की पाँच सहस्र सेना अपनी सहायता के लिए बुला ली और लड़ाई में उनको आगे कर दिया। यह देखते ही वैरागी के सिपाहियों का दिल टूट गया। जिन लोगों के साथ मिल कर उन्होंने कई वर्ष अनेक लड़ाइयों में तलवार चलाई थी, अब उन पर तलवार का प्रहार करना उनका हृदय सहन न कर सका। वैरागी की सेना ने पैर पीछे हटा लिया और गुरुदासपुर वापस आ पहुँची।

इस पराजय से देश का भाग्य फूट गया। संवत् १७७५ इस घटना के लिए सदा स्मरण रहेगा।

वैरागी की आशा।

वैरागी ने आशा नहीं छोड़ी। उसने खालसा को प्रसन्न करने का यत्न किया। उसने उन्हें लिखा कि तुम धोखा खा गये हो। हमारे शत्रु हमें फोड़ कर नष्ट कर डालेंगे। गुरु गोविन्दसिंह का उपदेश तुमने मिट्टी में मिला दिया है। मैं तो फ़क़ीर हूँ, मेरा क्या बिगड़ जायगा। तुर्क तुम्हारे धर्म को और तुमको नष्ट कर देंगे। गुरुओं का नाम-निशान तक न रहेगा। अब भी समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाओ। मैं तुमसे जुदा नहीं हूँ। कहना मानो। शत्रुओं का साथ छोड़ दो। आओ शत्रु का फ़ैसला कर लें। इसका उत्तर निहङ्ग सिक्खों ने यह दिया कि यदि तू हमसे मिलना चाहता है तो 'कलगी उतार दे और "अमृत" चख ले', अर्थात् सिक्ख बन जा।

वैरागी के लिए ऐसा करना नैतिक मृत्यु थी। इससे उसकी सारी प्रतिपत्ति उड़ जाती, और उसके रौब में ही शक्ति थी। उसने निश्चय किया कि मैं देखूँगा, मैं अकेले ही क्या कर सकता हूँ।

अब उसने पहले कलानौर को जीता। फिर वहाँ से वज़ीराबाद, गुजरांवाला, अड़प, धन्नी पोठोहार को विजय करके वहाँ स्वतन्त्रता का झण्डा फहराया। परन्तु इस सारे प्रदेश के लोग प्रायः निर्जीव से थे। ये उसे कोई सैनिक सहायता न दे सके।

गुरुदासपुर का घेरा।

वैरागी की बढ़ती हुई शक्ति को देख कर बादशाह अधीर हो उठा। उसने संवत् १७७६ में अब्दुस्समदख़ाँ को तीस सहस्र सेना देकर दिल्ली से भेजा। जालन्धर और लाहौर से भी सेनायें आ गईं। गुरुदासपुर का घेरा डाल लिया गया। भीतर जाने का कोई मार्ग न छोड़ा। क़िले के भीतर की रसद समाप्त हो गई। पाँच सौ मनुष्य खाद्य सामग्री लाने के लिए दुर्ग से बाहर निकले। परन्तु यवन-सेना को पता लग गया। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। वे बड़ी वीरता से लड़ कर सबके सब वीरगति को प्राप्त हुए। दुर्ग में भूख की नौबत यहाँ तक पहुँची कि लोग घोड़ों को खा गये। पर वे भी पर्याप्त न हुए। लाहौर के हाकिम ने आज्ञा दी कि जो सिक्ख शाही झण्डे के नीचे आ जायगा उसको प्राण-दान दिया जायगा। बहुतेरे सिक्ख क़िले से निकल कर शाही-सेना में जा मिले। वैरागी ने एक बार अपने साथी इकट्ठे करके धावा किया, परन्तु इतनी बड़ी सेना के सामने कुछ पेश न गई।

जब अधीनता स्वीकार करने के सिवा और कोई उपाय न रह गया तब विवश होकर दुर्ग के द्वार खोल दिये गये। मुसलमान-सेना दुर्ग में दाख़िल हुई। वैरागी भूखों के मारे सूख कर हड्डियों का पञ्जर रह गया था। परन्तु किसी सिपाही को उसके निकट जाने का साहस न होता था। वैरागी ने समझ लिया कि जो कुछ होना था वह हो गया। उसने आप ही अपना धनुष-बाण दूर रख दिया। तब मुसलमान सिपाहियों ने ज़ंजीरें डाल कर उसे क़ैद कर लिया।

इस विजय से मुसलमानों के घर उत्सव होने लगे। हिन्दुओं की आशाओं पर पानी फिर गया। स्त्रियाँ फूट फूट कर रोती थीं कि हमें सहारा देनेवाला चला गया। वैरागी एक देदीप्यमान तारे की तरह चौदह वर्ष तक भारत को आलोकित करके टूट गया।

दिल्ली में वैरागी के बलिदान का अनुपम दृश्य।

दिल्ली ने रक्तपात और हत्या के अनेक दृश्य देखे हैं, परन्तु जो दृश्य अभी हमारे सामने आने को है वैसा न कभी दिल्ली में हुआ और न शायद कभी होगा। दिल्ली की कौन कहे, इसका दृष्टान्त संसार के इतिहास में कहीं नहीं मिलता। एक महावीर और सच्चा त्यागी लोहे के पिँजरे में बन्द करके देहली लाया गया। उसके साथ सात सौ चालीस और साथी थे। ये उसकी सेना का निचोड़ थे। इन्होंने तत्त्व-खालसा के अलग हो जाने पर भी उसका साथ दिया था। सबको काली भेड़ों की खालें पहनाई गईं और गधों पर सवार किया गया। वैरागी का मुँह काला किया गया। इन सबको गली-कूँचों में फिराया गया। क़ाज़ियों ने कहा कि इस्लाम ग्रहण कर लो, तुम्हें प्राण-दान दिया जायगा। इस प्रस्ताव को इन वीरों ने अपना अपमान समझा। तब इनको हत्या की आज्ञा सुनाई गई। सबके मुखमण्डल प्रसन्नता से चमक उठे। प्रति दिन एक सौ वीर कोतवाली के सामने लाये जाकर मारे जाते थे। आठवें दिन वैरागी की बारी आई। मुहम्मद अमीन नामक एक अमीर ने कहा—तुम्हारे जैसे समझदार मनुष्य ने ऐसा कर्म क्यों किया जिसका दण्ड तुम आज भुगतने को हो? वैरागी ने कहा—मैं तो प्रजापीड़कों को दण्ड देने के लिए ईश्वर के हाथ में एक शस्त्र था। क्या तुमने सुना नहीं है कि जब संसार में अभिमान और अत्याचार सीमा का उल्लङ्घन कर जाते हैं तब मुझ जैसा दण्डदाता उत्पन्न होता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादशाह ने वैरागी से पूछा कि तुमको किस मौत मारा जाय ? वैरागी ने उत्तर दिया—जैसे तुम्हारी इच्छा हो, मारो। मेरे लिए सब मौतें एक सी हैं। मैं तो इस शरीर को ही दुःख का कारण समझता हूँ।

वैरागी के चारों ओर नेज़ों की क़तारें खड़ी की गईं, उन पर उसके साथियों के सिर टँगे हुए थे। उसका छोटा सा पुत्र उसकी जाँघों पर रक्खा गया। बादशाह ने छुरा देकर आज्ञा दी कि अपने हाथ से इसकी हत्या करो। जब वैरागी ने इनकार किया तब जल्लाद ने उस बालक की हत्या कर डाली। उसका लहू से भरा हुआ कलेजा निकाल कर वैरागी की छाती पर दे मारा। तत्पश्चात् लोहे की गरम सलाख़ों से वैरागी को मारना आरम्भ किया। गरम जम्बूरों और चिमटों से खींच खींच कर उसके मांस के लोथड़े बाहर निकाल लिये। यहां तक कि शरीर की हड्डियां दिखाई देने लगीं। अन्तिम श्वास तक उसके मन में यह घमण्ड था कि मैंने अन्याय और अत्याचार के पेड़ की जड़ों को उखाड़ दिया है। उसके मुख-मण्डल पर न मलिनता की कोई रेखा थी और न हाहाकार का शब्द उसके मुँह से निकलता था। जब उसकी बोटियां नोची जा रही थीं वह जनक की तरह प्रशान्त भाव से बैठा था। नजीबुद्दौला मन्त्री ने पूछा—क्या बात है कि इतने कष्ट और यातनायें मिलने पर भी तुम प्रसन्न प्रतीत होते हो ? वैरागी का उत्तर था—जो आत्मा को जानता है वह जानता है कि आत्मा इन सब दुखों से परे है।"

कहते हैं कि इतनी यातनाओं के पश्चात् उसे हाथी के पांव के नीचे कुचलवा कर मरवा डाला गया और उसका मृत शरीर एक खाई में फेंक दिया गया।

वैरागी की भविष्यद्वाणी पूरी हुई।

वैरागी की आंख बन्द होते ही सिक्खों पर फिर से अत्याचार होने लगे। वह सन्धि-पत्र एक ओर रख दिया गया। लाहौर के सूबे ने समझ लिया कि खालसा का सिर मैंने काट लिया है। अब वे कुछ नहीं कर सकते। उसने उनकी जागीरें ज़ब्त कर लीं और घोषणा कर दी कि जिन जिन लोगों का धन सिक्खों ने लूटा था वे सब आवेदन-पत्र भेजें। बस, सिक्खों की जायदादें छीन छीन कर मुसलमानों को मिलने लगीं। अब सिक्खों को मालूम हुआ कि हम क्या भूल कर बैठे हैं। पर अब पछताने से क्या हो सकता था। सिक्खों के सिर दस दस रुपये को बिकने लगे। लोग फिर से मुसलमान बनने शुरू हो गये। खालसा पंजाब छोड़ कर राजपूताने की ओर भाग गया। इसके कई वर्ष बाद सिक्खों की बारह मिसलें बनीं, जिन्होंने तलवार के बल से पंजाब में अपना राज्य स्थापित किया। इन्हीं मिसलों में से एक डेरे का सरदार महासिंह था। उसी का बेटा रणजीतसिंह हुआ*।

सन्तराम

दुर्विचार।

(१)

दुर्जनता हम करें सुजनता जनता उसको जाने,
विविध दुःख हम दें, पर अपने मन में वह सुख माने।
धनी रहें हम, दीन रहे वह, विहँसे हम, वह रोवे,
उसका सर्वस हम लूटें, वह—मोह-नींद में सोवे॥

(२)

विनयी बन कर अनय करें हम बुरा न माने कोई,
जो चाहें सो करें, हमारा भेद न जाने कोई।
हमसे समता करे न कोई गोरा हो या काला,
दण्ड हमारा सहे रहे जो आँख उठानेवाला॥

(३)

काम क़साई के करके भी सज्जन बने रहें हम,
चूँ न करे कोई भी सबको कटु दुर्वाक्य कहें हम।
हम जिसके प्रतिकूल रहें वह हो अनुकूल हमारे,
जिसे शूल सहना हो आवे घर पर भूल हमारे॥

(४)

गोरे अङ्ग हुए हम तो क्या हृदय हमारा काला,
पहचानेगा वही पड़ा है हमसे जिसका पाला।
भोले-भाले सीधे-सादे मनुजो ! आओ आओ,
मानव होकर दानव के कर पशुता के फल पाओ॥

---

* यह लेख प्रसिद्ध देशभक्त भाई परमानन्दजी-कृत "वैरागी वीर" की सहायता से लिखा गया है। श्रीमान् भाईजी शीघ्र ही इस पुस्तक को हिन्दी में प्रकाशित करने वाले हैं। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५)

अपने देश, वेश, अनुभव को भूल सभी यदि जाते,
नरता छोड़ वानरी मति से मेरी नक़ल बनाते।
चेले उन्हें बना कर तो मैं गुरु बन जाता जग में,
प्रतिबन्धक फिर एक न रहता कोई मेरे मग में॥

(६)

सभी शिल्प वाणिज्य सभी व्यवसाय हमीं कर लेते,
सबको दीन दुखी करके हम अपना घर भर लेते।
सबको देख कलपते रोते हम निज मन में हँसते,
सभी उजड़ जाते तो फिर हम खूब फैल कर बसते॥

(७)

कँगले सब रहते तो बँगले पर हम चैन उड़ाते,
पर के मुख का ग्रास छीन कर प्रेम-सहित हम खाते।
दुराचार हम करते रहते तदपि प्रशंसित रहते,
हाथ हमारे दुख सहते सब पर न किसी से कहते॥

(८)

धर्म हमारा कर्म हमारा यदि सबके मन भाता,
तब तो विश्व हमारे वश में अनायास आ जाता।
कपट-रूप हम निष्कण्टक हो मौज उड़ाते रहते,
भू पर सबके ऊपर हो हम भौंह चढ़ाते रहते॥

(९)

मद-दर्पित मद पान करें हम होकर आमिषभोगी,
तो भी हमको कहा करे जग ज्ञानीवर गुरु योगी।
चाहे जैसा काम करें हम तदपि सभ्य कहलावें,
पशुता करके भी जनता को धर्म-कर्म सिखलावें॥

(१०)

कूट नीति से कूट कूट कर फूट .खूब फैलावें,
जिन्हें लूट हम खावें वे ही सुयश हमारा गावें।
जब तक होता रुष्ट नहीं जग, होते तुष्ट नहीं हम,
दुर्बल दीन जहाँ पर रहते रहते पुष्ट वहीं हम॥

(११)

हमसे हानि जिसे हो हमको लाभ वही पहुँचाता,
जिसे घृणा से देखें हम वह हमसे जोड़े नाता।
जिसको ठोकर हम मारें वह हमको अपना जाने,
अपमानित हम करें जिसे वह हमको शुचि सम्माने॥

(१२)

बोकर अन्न अन्य उपजाते हम ढोकर ले जाते,
रोकर मन में वे रह जाते कर मल कर पछताते।
सोने चाँदी रत्न जिसे हम फुसला करके लेते,
बदले में थोथी बातों से उसको बहला देते॥

(१३)

ऊँचे पद पर हम रहते सबको नीचा दिखलाते,
दास-वृत्ति की विद्या सबको प्रभु बन कर सिखलाते।
मेरे इन्द्रजाल में फँस कर जग अन्धा हो जाता,
केवल उदर-भरण भर जग का ध्रुव धन्धा हो जाता॥

(१४)

अवनति सबकी होती भू पर मेरी उन्नति होती,
सब निज स्वत्व मुझे देते, ऐसी सबकी मति होती।
हमसे वाहवाही ले करके सब निर्धन हो जाते,
देश वेश को भूल सभी 'अन्धन्तम' में सो जाते॥

(१५)

हम यदि अत्याचार करें तो सदाचार सब जानें,
हम सबको पददलित करें पर हमको सब सम्माने।
हम जो चाहें कहें न कोई अपनी जीभ हिलावे,
कड़ी कमाई करके सर्वस सब हमको दे जावे॥

(१६)

नित अनहित अपना करके जो मेरा हित करते हैं,
जो धन-धाम फूँक कर केवल नाम-हेतु मरते हैं।
वे ही मेरे मन भाते हैं वे ही कुरसी पाते,
अल्पकाल तक बाबू बन कर फिर भूखे मर जाते॥

(१७)

भाई भाई लड़ें परस्पर हमको पञ्च बनावें,
कभी हार कर कभी जीत कर अपने जन्म गवावें,
लड़ते लड़ते निर्धन होवें निधन अन्त में होवें,
पूजा पावें पञ्च बने हम मञ्जु मञ्च पर सोवें॥

(१८)

मेल मिलाप देख औरों में हिलता हृदय हमारा,
यदि समस्त हों अस्त तभी तो होगा उदय हमारा?।
है विभेद ही नीति हमारी स्वार्थ भरा है जिसमें,
जैसा हममें छल का बल है वैसा बल है किसमें?॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१९)

हम थोड़े होकर अधिकों पर भी ममता करते हैं,
ज्यों जुगनू नभ में नक्षत्रों से समता करते हैं।
दुर्भर निरवधि शेवधि के सम है गुरु लोभ हमारा,
अन्योत्कर्ष देख कर मन में जगता क्षोभ हमारा॥

(२०)

जैसे तैसे यदि त्रिभुवन के हम स्वामी हो जाते,
क्रूर कर्म करते रहते पर शुभ नामी हो जाते।
सब बातों में सबके ऊपर रहते प्रबल हमीं हम,
पाप-निरत होकर भी पाते सुख के सुफल हमीं हम॥

(२१)

बर्बर थे, नरवर बन बैठे, जग-गुरु-वर बन जाते,
सरवर करके सुरवर के सम भी सत्वर बन जाते।
सश्रम तभी उपक्रम का क्रम होता सफल हमारा,
अविकल विकल रहे जग तब हो यह जग सकल हमारा॥

रामचरित उपाध्याय

एकता कैसे हो।

संसार की भिन्न भिन्न जातियों का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध दिन पर दिन घनिष्ठ और सरल होता जा रहा है। इससे, सम्भव है, लोग यह समझने लगें कि अब सब जातियों को भेद-भाव भुला कर सदा के लिए एकता के सुदृढ़ सूत्र में बँध जाना चाहिए। परन्तु वास्तविक बात यह है कि ज्यों ज्यों भिन्न भिन्न जातियों के बीच बाहरी रुकावटें दूर होती जा रही हैं, त्यों त्यों उन जातियों का पारस्परिक भेद-भाव और भी बढ़ता जा रहा है। पहले लोगों का यह विश्वास था कि बाहरी रुकावटें होने से ही संसार की जातियाँ एक दूसरे के विरुद्ध और एक दूसरे से अलग हैं। पर अब ये बाहरी रुकावटें बहुत कुछ दूर हो गई हैं, तो भी संसार की भिन्न भिन्न जातियों के बीच वास्तविक भेद-भाव हटते हुए नहीं दिखलाई पड़ते।

जो छोटी छोटी जातियाँ अब तक किसी न किसी बड़ी शक्ति के साथ मिल कर या उसका पुछल्ला बन कर रहने ही में सन्तुष्ट थीं वे अब उन शक्तियों से स्वतन्त्र होकर अपने ही पैरों पर खड़ी होने के लिए उत्सुक दिखलाई पड़ती हैं। नारवे और स्वीडन ये दोनों छोटे छोटे देश, जो अब तक परस्पर-सम्बद्ध थे, अब एक दूसरे से अलग हो गये हैं। आयरलैंड, इँग्लैंड से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए कितने ही वर्षों से निरन्तर उद्योग कर रहा है। बेल्जियम में भी, जहाँ अब तक फ्रेंच-भाषा का दौरदौरा था, फ्लेमिंग लोगों ने अपनी भाषा और सभ्यता के लिए एक स्वतन्त्र स्थान प्राप्त करने में महान् उत्साह प्रकट किया है। जो छोटी छोटी जातियाँ अब तक आस्ट्रियन-साम्राज्य के कब्ज़े में थीं वे भी आज अपना बन्धन तोड़ कर स्वतन्त्र हो गई हैं। रूस भी न जाने कितने दिनों से फ़िनलैंड को हड़प जाने की कोशिश में था। पर अब उसे पता लगा है कि निगल जाना तो आसान था, पर पचाना मुश्किल है। जिन दिनों तुर्क-साम्राज्य संसार के बहुत बड़े हिस्से में निष्कण्टक फैला हुआ था और अनेक जातियाँ उसके अधिकार में थीं, उस समय कितना ही खून बहाने पर भी वह उन जातियों का भेद-भाव न मिटा सका। इँग्लैंड पर भी यह भूत सवार है कि हमारे साम्राज्य के भिन्न भिन्न सब अङ्ग, जो समुद्र-पार के देशों में बिखरे हुए हैं मिल कर पूरी तरह से एक हो जायँ। बहुधा यह सवाल उठा करता है कि अँगरेज़ी साम्राज्य के भिन्न भिन्न अङ्ग किस तरह एक केन्द्र-शक्ति के द्वारा सुसङ्गठित होकर एक सङ्घ बन सकते हैं। जब कभी यह सवाल उठता है तब वे सब देश यह समझ कर कि इससे हमारी स्वतन्त्रता को धक्का पहुँचेगा इस प्रस्ताव का कड़ा विरोध करते हैं।

अब तक यह सिद्धान्त माना जाता रहा है कि भिन्न भिन्न जातियों के एक हो जाने में ही शक्ति है। एक दूसरा सिद्धान्त यह भी अब तक माना जाता रहा है कि जिस जाति या देश की जन-संख्या जितनी ही अधिक होगी वह उतनी ही महान् और शक्तिशाली समझी जायगी। पर अब ये दोनों सिद्धान्त ग़लत साबित हो गये हैं। वास्तविक भेद होने पर उसकी ओर जान-बूझ कर आँखें बन्द कर लेना और यह समझ बैठना कि इससे एकता और भी दृढ़ होगी केवल सत्य की अवहेलना करना है। जब वास्तविक भेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दबा दिये जाते हैं तब वे मौक़ा पाकर बारूद की तरह ज़रा सी बात पर भड़क उठते हैं। सच्ची एकता बनाये रखने का सबसे अच्छा रास्ता यही है कि भिन्न भिन्न भागों में जो वास्तविक भेद हैं उनकी ओर उचित ध्यान दिया जाय और उनकी ओर से मुँह न मोड़ा जाय।

जब मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का अनुभव होता है तब उसके हृदय में महत्त्व या बड़प्पन प्राप्त करने की इच्छा बढ़ती है। उसकी यह महत्त्वाकांक्षा तभी सिद्ध हो सकती है जब वह बहुत से दूसरे व्यक्तियों के साथ अपना गहरा सम्बन्ध स्थापित करे। जिसे अपने व्यक्तित्व अथवा अपनेपन का ज्ञान नहीं है वह साधारण जन-समूह में मिल कर अपना निजत्व भूल जाता है। साधारण जन-समूह के साथ उसका ऊपरी सम्बन्ध होने से वह अपने महत्त्व की प्राप्ति नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसी हालत में उसे कोई ऐसा अवसर नहीं मिलता जिससे वह स्वेच्छा से कोई नया जीवन पैदा कर सके या कोई बड़ा कार्य हाथ में ले सके। सोते हुए मनुष्यों में कोई भेद-भाव नहीं दिखलाई पड़ते, परन्तु जागने की हालत में यही भेद-भाव स्पष्टतया प्रकट हो जाते हैं। कली की हालत में फूल की पँखुड़ियाँ इकट्ठा मुँदी रहती हैं। जब हर एक पँखुड़ी अलग अलग पूरी तरह से खिल जाती है तभी सब मिल कर एक पुष्प की सुन्दर आकृति में प्रकट होती हैं। इसी में उनके जीवन की सार्थकता है। इसी तरह आज संसार की भिन्न भिन्न जातियों की एक दूसरे के साथ टक्कर होने से सब ओर जागृति दिखलाई पड़ने लगी है और प्रत्येक देश अपने अपने विकास के लिए प्रयत्न कर रहा है।

अब सवाल यह उठता है कि इन भिन्न भिन्न टुकड़ियों के आन्दोलनों का परिणाम क्या होनेवाला है। परिणाम इसके सिवा और क्या होगा कि मनुष्यों में अपने व्यक्तित्व का पूर्ण अभिमान पैदा हो जायगा और वे महान् होने के लिए कष्ट सहन करने से दूर न भागेंगे। तभी मनुष्यों में सच्ची, सुदृढ़ और स्थायी एकता भी पैदा हो सकती है। जिनके भाव कुचल दिये गये हैं, जिनके जीवन का उद्देश नष्ट कर दिया गया है और जो दूसरों पर आश्रित हैं तथा उनसे दबाये जा रहे हैं उनका सङ्गठन और उनकी एकता बेमेल चीज़ों के ढेर के समान केवल कृत्रिम और निरर्थक है।

बङ्गाल के स्वदेशी आन्दोलन के समय हम लोगों में मुसलमानों के साथ एका करने का भाव पैदा हुआ था, परन्तु इस उद्योग में हमें सफलता नहीं मिली। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि मुसलमानों के साथ मेल पैदा हो जाता तो हमारे बहुत से कार्य सरल हो जाते। पर किसी कार्य का सरल हो जाना ही उस कार्य की सिद्धि के लिए काफ़ी नहीं है। यदि हिन्दुओं और मुसलमानों में वास्तविक भेद हैं तो वे किसी जादू के ज़ोर से दूर नहीं किये जा सकते। यदि हम अपने कार्य को सरल बनाने की चिन्ता में वास्तविक बात की अवहेलना करेंगे तो उससे हमारा कार्य सरल नहीं हो सकता। हम उस समय मुसलमानों से इसलिए नहीं मिलना चाहते थे कि उनका हमारे साथ मिलना पारस्परिक सहानुभूति और सार्वजनिक सेवा के लिए अनिवार्य था, बल्कि हम उनसे कोई मतलब सिद्ध करने के लिए मिलना चाहते थे और इसी लिए हम असफल हुए।

यह सच है कि अभी हाल में दोनों जातियों के बीच का भेद-भाव इतने प्रबल रूप से प्रकट न था, क्योंकि हम दोनों इस समय जिस हालत में थे उस हालत में हमारे भेद-भाव उभड़ न सकते थे। बल्कि उस हालत में हमें एक दूसरे के विरोध का विचार ही न रह गया था। परन्तु इस भेद-भाव के दबे रहने से यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय हमारी हालत अब से कुछ अच्छी थी। इससे तो यही प्रकट होता है कि उस समय हममें किसी बात की कमी थी और वह कमी जीवन का अभाव था। हमारे हृदयों में राजनैतिक आकांक्षाओं के जाग्रत होने के साथ ही साथ हिन्दुओं में अपना पुनरुद्धार करने का आन्दोलन भी खड़ा किया गया, जिसका उद्देश यह था कि हमारे जीवन और हमारे हृदय पर पाश्चात्य सभ्यता का जो प्रभाव पड़ा है उसका विरोध किया जाय। परन्तु इस नये युग में जब कि हिन्दुओं में अपनी सभ्यता और गौरव का अभिमान पैदा हुआ उसी समय मुसलमानों में भी इस्लाम के गौरव का भाव जाग्रत हुआ। यदि मुसलमान हिन्दुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उद्देश में मिल जाते तो इससे हमें निस्सन्देह बड़ी आसानी होती। पर जिन कारणों से हिन्दुओं में हिन्दू-सभ्यता का गौरव जाग्रत हुआ उन्हीं कारणों से मुसलमानों में भी इस्लाम के गौरव का भाव आविर्भूत हो गया था।

परन्तु दुःख की बात यह है कि दोनों जातियों में शान्ति तभी तक क़ायम रहती है जब वे एक दूसरे से उदासीन रहते हैं या जब उन्हें विदेशी राज्य का डर रहता है या जब उस विदेशी राज्य के प्रति समान रूप से घृणा का भाव प्रकट करने में दोनों ही जुटे रहते हैं। ऐसे स्वार्थसाधन के उद्देश में थोड़े समय के लिए वे चाहे मेल कर लें, पर जिस तरह उन देशों की राजनैतिक मित्रता बहुत दिनों तक टिकाऊ नहीं रह सकती जो सदा से एक दूसरे के विरोधी होते आये हैं उसी तरह स्वार्थसाधन के उद्देश से किया गया मेल न केवल क्षणिक होता है, बल्कि उससे सदा यह डर बना रहता है कि कहीं अन्त में वह मेल भयानक विरोध में न बदल जाय। क्योंकि जो मेल किसी विशेष आशा पर निर्भर रहता है वह या तो ज़रा सी निराशा पर भयानक फूट पैदा कर देता है या उस आशा के पूरी हो जाने पर अपने आप टूट जाता है। भारतवर्ष के लिए सबसे कठिन समस्या यह है कि जब हिन्दुओं और मुसलमानों को अपने अपने व्यक्तित्व का पूर्ण ज्ञान हो जाता है तब, जैसा कि आज-कल स्वाभाविक रीति पर हो रहा है, दोनों परस्पर एक दूसरे के विरोधी और एक दूसरे से अलग हो जाते हैं।

यदि हालत ऐसी है तो समझना चाहिए कि हमारी रहन-सहन और विचारों में कोई बड़ी भारी त्रुटि है। यह सब इस बात का परिणाम है कि हमारी दृष्टि सङ्कुचित है और हम एक दूसरे पर अविश्वास करते हैं। इस कारण हम मनुष्य-मात्र के प्रति अपनी सहानुभूति नहीं प्रकट कर सकते।

मनुष्य में व्यक्तित्व का होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसी के द्वारा हम विश्व-प्रेम का अनुभव कर सकते हैं। यदि हम किसी ऐसे सत्य को मानें जो हमारी आत्मा को सङ्कुचित करनेवाला है तो हमारी हालत पिँजड़े में बन्द पक्षी की तरह होगी। ऐसा जीवन हमारे लिए केवल भार-स्वरूप होगा। दुर्भाग्य से संसार में बहुत से लोग ऐसे हैं जो अपनी विचित्रताओं का ढोल पीटने में बड़ा गौरव मानते हैं और यह समझते हैं कि हम हमेशा अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाते रहेंगे। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि इस संसार के मधुर सङ्गीत में उनकी विचित्रतायें बेसुरे तान के समान हैं।

धर्म का उद्देश यह होना चाहिए कि हम उसके द्वारा इस विश्व-व्यापी सत्य का आदर्श समझें और उसकी पवित्रता सदा बनाये रक्खें। पर मनुष्यों ने बहुधा अपने धर्म का दुरुपयोग किया है और उसके द्वारा भेद की ऊँची ऊँची दीवारें खड़ी करके संसार में अपनी विभिन्नता और भी दृढ़ कर दी है। यद्यपि सांसारिक बातों में भी दूसरों के साथ हमारे निजी सम्बन्ध की सीमा दृढ़ रहती है तथापि वह इतनी दृढ़ नहीं रहती कि घट बढ़ न सके। उदाहरण के तौर पर जिस मनुष्य से आज मैं बिलकुल अपरिचित हूँ, कल उसी के साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकता है। जो मनुष्य आज मेरा शत्रु है, कल वही मेरा परम मित्र हो सकता है। पर यदि हम अपने पारस्परिक भेद-भाव को धर्म की बुनियाद पर खड़ा कर लें तो उसका मिटना या उसमें कुछ भी परिवर्तन होना बहुत कठिन होगा।

धर्म का सम्बन्ध केवल उन्हीं आध्यात्मिक बातों से होना चाहिए जो अनादि और अनन्त हैं। मनुष्य के सांसारिक जीवन की अनेक बातों में धर्म को बन्धन-स्वरूप न होना चाहिए। जब ऐसा होगा तभी मनुष्य स्वतन्त्रता का अनुभव विवेक और शान्ति के साथ कर सकेगा। इस परिवर्तनशील संसार में हमारी विवेक-बुद्धि समय की आवश्यकता के अनुसार, हमारा मार्ग सदैव उन बातों के सम्बन्ध में निर्दिष्ट किया करती है जो हमारे विचार में पहले कभी नहीं आई थीं। ज्यों ज्यों नई नई बातों से इसका सम्बन्ध होता जाता है, त्यों त्यों इस विवेक-बुद्धि की शक्ति भी बढ़ती जाती है। किन्तु जो धर्म हमें आध्यात्मिक संसार में मोक्ष की ओर ले जाने वाला है वह यदि सांसारिक बातों में विवेक-बुद्धि का स्थान ग्रहण करने का प्रयत्न करे तो इससे संसार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकर्मण्यता और असफलता के सिवा क्या परिणाम निकल सकता है ?

योरप में भी एक समय ऐसा था जब धर्म लोगों के सम्पूर्ण जीवन को सब तरफ़ से जकड़े हुए था। इतिहास से पता लगता है कि योरप में धर्म के नाम पर कैसे कैसे भयानक अत्याचार हुए हैं। इसी धर्म के बहाने लोग समाज से बहिष्कृत किये गये और वैज्ञानिक आविष्कारों तथा नई नई बातों को दबाने की चेष्टा की गई। परन्तु योरप के लोगों ने अपनी बुद्धि के प्रभाव से इस मानसिक बन्धन को तोड़ कर अपने जीवन में ऐसी स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है जिससे वे सत्य को किसी भी रूप में देख और ग्रहण कर सकते हैं।

मनुष्यों का पारस्परिक सम्बन्ध केवल ऊपरी नहीं बल्कि हार्दिक होना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब मनुष्यों में मानसिक स्वतन्त्रता हो। जब धर्म मनुष्यों को मानसिक स्वतन्त्रता देने की अपेक्षा उनके मन को सङ्कुचित रीति-रवाजों के घेरे में जकड़ देता है तब उससे जातियों की सच्ची मित्रता और सच्चे मेल में सबसे बड़ी बाधा पड़ती है। ईसाई-धर्म को ही लीजिए। जब से यह अपने विश्वव्यापी और उदार आध्यात्मिक तत्त्व को भूल कर केवल सङ्कुचित धार्मिक व्यवस्थाओं और रीतियों को ही अनुचित महत्त्व देने लगा है तब से एक प्रकार का मानसिक बन्धन और सङ्कुचित हृदय उसके अनुयायियों में उत्पन्न हो गया है। इसी कारण ईसाई-धर्म के माननेवाले अन्य धर्मावलम्बियों के साथ सहानुभूति नहीं कर सकते, बल्कि उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं। आज योरपीय जातियों के द्वारा संसार की अन्य जातियों पर जो राजनैतिक, आर्थिक और अन्य प्रकार के अत्याचार होते हैं उनका कारण यही है कि योरपवालों के हृदयों में अन्य जातियों और धर्मों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न किया जाता है—यहाँ तक कि छोटे छोटे बच्चों की पाठ्य पुस्तकों में भी ऐसी बातें लिखी जाती हैं जिनसे उनके हृदयों में अन्य जातियों और धर्मों के प्रति दुर्भाव पैदा हो। फिर भी यह सङ्कुचित भाव उनमें इतना अधिक नहीं है, और इसी लिए यह सम्भावना है कि आगे चल कर कदाचित् संसार की जातियों में एक दूसरे के बीच अब से अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो जाय।

यद्यपि यह देखा जाता है कि योरप राजनीति तथा व्यापार के मामलों में अनेक अन्याय करता है और अनेक नये नये नाम और रूप से संसार में गुलामी का प्रचार करता है, तथापि उसी योरप में उसी के अन्यायों और अत्याचारों के विरुद्ध हमेशा आवाज़ उठा करती है। वहां लोग सदा सत्य और न्याय के लिए अपना बलिदान करने के लिए तैयार रहते हैं। उनके बलिदानों से उन अत्याचारों और अन्यायों का प्रायश्चित्त हो जाता है जो उन्हीं के भाइयों के द्वारा किये जाते हैं। योरपवालों की विशेषता यह है कि वे किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय पर निर्भर न रह कर सत्य की खोज में सदा तत्पर रहते हैं; और इस सत्य को वे विज्ञान और विश्वप्रेम के रूप में खोजते हैं। इस सत्य की खोज और हृदय की उदारता का बड़ा प्रभाव उनके नैतिक चरित्र पर पड़ा है। इसी लिए योरप में बहुधा देखा गया है कि जो लोग अपने को धार्मिक कहते थे उन्होंने अत्याचारियों का साथ दिया है और स्वतन्त्रता के दमन में हाथ बटाया है, पर स्वतन्त्र विचार के लोगों ने, जो नास्तिक कहे जाते थे, मनुष्यों के अधिकार और न्याय का समर्थन बड़ी दृढ़ता और साहस के साथ किया है।

इससे हमारा यह मतलब नहीं है कि जो सत्य की खोज में लगे हैं उन्हें हमेशा सत्य मिल ही जाता है। हम बहुधा यह देखते हैं कि पाश्चात्य देशवासी विज्ञान के नाम पर अपने पक्षपात-पूर्ण उद्देशों को सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। बहुत से विद्वानों का विचार है कि डारविन के सिद्धान्त और साम्राज्यवाद में स्पष्ट सम्बन्ध है, अर्थात् उनके मन में साम्राज्यवाद डारविन के सिद्धान्तों से सिद्ध होता है। कुछ पाश्चात्य ग्रन्थकारों ने विज्ञान से यहाँ तक सिद्ध करने की चेष्टा की है कि संसार पर शासन करने की योग्यता केवल योरप की उत्तरी जातियों में ही है। इसके लिए वे इन जातियों की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि इसी गुण के द्वारा वे समस्त संसार पर शासन कर सकते हैं। पर हमें यह याद रखना चाहिए कि ये झूठे सिद्धान्त सच्चे विज्ञान के सामने कभी नहीं ठहर सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नदी में जल के प्रवाह के साथ बालू भी आकर जमा हो जाती है, पर यदि नदी बहती रहती है तो जल का प्रवाह उस बालू को वहां से भी बहा ले जाता है। इसी तरह यदि हमारी बुद्धि उचित मार्ग पर लगी है तो हमें ग़लतियों से न डरना चाहिए। यही कारण है कि पश्चिमी संसार के लोग अपने और दूसरे लोगों के बीच कोई ऐसी रुकावट नहीं रखते जो दूर न की जा सके। सम्भव है उनमें कुछ पक्षपात हो, पर वे कोई ऐसी विवेक-रहित व्यवस्था या नियम को नहीं मानते जो उन्हें संसार के सम्पर्क से अलग रख सके।

जो मुसलमानी धर्म को माने वही मुसलमान गिना जाता है। पर धर्म में केवल आध्यात्मिक तत्त्व ही नहीं रहता; उसमें बहुत कुछ ऐसी ऊपरी बातों और रीति-रवाजों का भी समावेश रहता है जिनकी उत्पत्ति अनेक ऐतिहासिक कारणों और घटनाओं के द्वारा होती है। धर्म की ऊपरी बातें और रीति-रवाज मनुष्यों में भेद डालनेवाले और एक जाति को दूसरी जाति से जुदा करनेवाले होते हैं। अन्य धर्म या सम्प्रदाय के लोग इन ऊपरी बातों को अपनी नहीं मान सकते। इसलिए यही दीवारें हैं जो मनुष्यों को अलग अलग रखती हैं और जब तक लोग सच्चे धर्म की अपेक्षा उन्हें अधिक महत्त्व देते रहेंगे तब तक उनसे जातियों में पारस्परिक विरोध होता रहेगा। इसी लिए जो लोग केवल अपने सम्प्रदाय के नाम से पहचाने या पुकारे जाते हैं और जिनके मन तथा आचरण धर्म के इन ऊपरी आडम्बरों से जकड़े हुए हैं उनके लिए यह बहुत कठिन है कि वे दूसरे धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायियों से कोई गहरा सम्बन्ध क़ायम कर सकें।

बहुधा मनुष्य अविवेकी देखे जाते हैं। पर जैसे जैसे उनके जीवन में परिवर्तन होता जाता है वैसे वैसे उनके अविवेक में भी परिवर्तन होता रहता है। यह अविवेक शिक्षा और अनुभव से लगातार कम होता जाता है। लेकिन जब धर्म विवेक के विरुद्ध आ खड़ा होता है तब उससे विवेक पर ऐसा अन्धकार का पर्दा पड़ जाता है कि वहां कुछ भी प्रकाश नहीं पहुँच सकता। जिस तरह कुहरे से सूर्य का प्रकाश सदा के लिए नहीं छिपा रहता उसी तरह सत्य के विरुद्ध यदि मूर्खता या पक्षपात का विरोध हो तो वह विरोध सदा के लिए क़ायम नहीं रह सकता। परन्तु जब धर्म अपनी कुल शक्ति और प्रभाव के साथ सत्य के विरुद्ध आ खड़ा होता है तब उन मनुष्यों की दशा शोचनीय होती है जो सत्य की बिलकुल परवा न करके अपना मस्तक कट्टर धर्म की भयानक अन्धशक्ति के सामने झुका देते हैं।

हिन्दू भी अपने विशेष गुणों से पहचाने जाते हैं। पर उनके विशेष गुण धर्म से उतना सम्बन्ध नहीं रखते जितना कि सामाजिक रीति-रवाजों से। हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान अपने व्यक्तिगत जीवन के मामलों में, जैसे कि खान-पान, शादी-ब्याह और मेल-व्यवहार में, अधिक स्वतन्त्र हैं। एक कट्टर हिन्दू की अपेक्षा मुसलमान को अपना व्यवसाय निश्चित करने की अधिक स्वतन्त्रता है। व्यवसाय निश्चित करने की सङ्कुचित सीमा के कारण हिन्दुओं के जीविकोपार्जन के द्वार ही कम नहीं हो जाते, बल्कि जो उद्देश सबों के लिए समान हितकर हैं उन्हें प्राप्त करने में भी वे दूसरों का साथ नहीं दे सकते। अपने प्रति दिन के जीवन की छोटी छोटी बातों में भी हिन्दू अपने को चारों ओर अनेक प्रकार के बन्धनों से जकड़ा हुआ पाता है, जिससे उसका जीवन काल-कोठरी में क़ैद किये गये क़ैदी की तरह हो जाता है। हिन्दू संसार में आने का रास्ता केवल एक है अर्थात् वह केवल जन्म से हिन्दू हो सकता है, पर उस संसार से निकल जाने के द्वार उसके लिए चारों तरफ़ खुले हुए हैं। हिन्दू-धर्म के कट्टर नियम अपने अनुयायियों को संसार की दूसरी जातियों के साथ सम्पर्क रखने से रोकते हैं, जिससे उनके हृदय सङ्कुचित हो जाते हैं और वे मनुष्य-मात्र की भलाई के कामों में भी दूसरों के साथ मिल कर काम नहीं कर सकते।

हमें यह सदा के लिए समझ लेना चाहिए कि हमारा जो धर्म सड़े-गले नियमों और रीति-रवाजों के आधार पर स्थित है और जिसने हमारे कुल जीवन को सब तरफ़ से जकड़ रक्खा है उसी से प्रधानतया जातियों में भिन्नता दिखलाई पड़ रही है और उसी से हमारे समाज में वे सब त्रुटियाँ हैं जिनके द्वारा हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधःपतन हो रहा है। अछूत जाति का प्रश्न हमारे इस भयङ्कर रोग का एक चिह्न-मात्र है। ऊपरी उपायों के द्वारा इन चिह्नों के दबा देने से हमारी बीमारी दूर नहीं हो सकती। हमारा सामाजिक क्षेत्र विवेक का बहिष्कार करनेवाले धर्म के कारण ऊसर बन रहा है और उसमें चारों तरफ़ से कुरीतियों की कांटेदार झाड़ियाँ फैलती जा रही हैं। इनमें से कुछ झाड़ियों के उखाड़ देने से ही हमारे सामाजिक क्षेत्र का सुधार नहीं हो सकता।

सभ्यता उसे समझना चाहिए जिसमें मनुष्य अधिक से अधिक लोगों के साथ अधिक से अधिक सच्चे और उदार भाव के साथ मिल सके। पर दुर्भाग्य से हिन्दू-धर्म का हाल का इतिहास इसके विपरीत घटनाओं से भरा हुआ है। हाल के हिन्दू-धर्म के इतिहास से प्रकट है कि उसने अपने आपको दूसरों के सम्पर्क से बचाये रखने के लिए न केवल महान् और सुसङ्गठित प्रयत्न किया, बल्कि उसने अपने समाज को भी अनेक छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त कर दिया। संसार का अधिकांश भाग उसकी दृष्टि में अपवित्र है। पग पग पर उसे अपवित्र और भ्रष्ट हो जाने का डर लगा रहता है। इस अपवित्रता से बचने के लिए उसका एक-मात्र उपाय यह है कि वह संसार के सम्पर्क से अछूत बन कर रहे। अतएव उसने न केवल अपने अनुयायियों को समुद्र-यात्रा करने से ही रोका है, बल्कि अपने इतिहास और साहित्य में विदेशियों के साथ उसका जो सम्पर्क हुआ है उसका कहीं वर्णन तक भी नहीं किया है। यद्यपि यूनानी, तिब्बती, चीनी और दूसरी जातियों के ग्रन्थों से हमें पता लगता है कि भारतीय सभ्यता भारतवर्ष की सीमा पार कर दूसरे देशों और जातियों पर भी अपना प्रभाव डाल रही थी, तथापि हम भारतीय ग्रन्थों में ऐसा कोई वर्णन नहीं पाते जिससे पता लगे कि उनके साथ कभी हमारा किसी प्रकार का सम्बन्ध था। हमारी सभ्यता और हमारे जीवन की यह पुरानी प्रवृत्ति अब भी चली जा रही है और हम अब भी अपने सङ्कुचित समाज के घेरे के बाहर जितना संसार है सबको घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार के हर एक हिस्से में इस तरह के सङ्कुचित बन्धन भिन्न भिन्न नामों से देखे जाते हैं। हर एक देश के समाज में ऐसे रीति-रवाज और प्रणालियाँ पाई जाती हैं जिनका अब कोई प्रयोजन नहीं रह गया है और जिनसे मनुष्य-मात्र के पारस्परिक सम्बन्ध में केवल व्यर्थ की अड़चन पड़ती है। जहाँ कहीं इस तरह के फ़ज़ूल सामाजिक रीति-रवाजों के खड्ड और गड्ढे पाये जाते हैं वहीं नैतिक बीमारी के कीड़े पैदा हो जाते हैं। जब किसी जगह इस तरह की नैतिक बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं तब उस जगह के मनुष्यों का हृदय कठोर और कलुषित हो जाता है। पाश्चात्य देशों में राष्ट्रीयता का भाव इस तरह की एक दूसरी नैतिक बीमारी है। इस राष्ट्रीयता के भाव की बदौलत एक जाति दूसरी जाति की शत्रु बन जाती है और उन जातियों के व्यक्तियों की आत्मा अधःपतित होने लगती है। अन्त में इस राष्ट्रीयता के भाव की बदौलत जातियाँ अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारती हैं। यह बात हाल में योरपीय महायुद्ध के भयानक अत्याचारों तथा शान्ति-महासभाओं की कुटिल चालों से सिद्ध होगई है।

जब हम देखते हैं कि किस तरह पश्चिमी जातियाँ अपनी राष्ट्रीयता के ज़ोम में आकर दूसरों पर पाशविक अत्याचार करती हैं, किस तरह उन्होंने हाल के महायुद्ध में भयङ्कर मार-काट की है, किस तरह वे नीग्रो लोगों के साथ अमानुषिक बर्ताव करती हैं, किस तरह वे योरपीय सिपाहियों के द्वारा असहाय और निहत्थे भारतवासियों पर कायरता से भरा आक्रमण होने देती हैं, किस तरह चीन के "बाक्सर युद्ध" में उन्होंने पेकिन में लूट-पाट और अन्धेर मचाया था, तब हम समझ सकते हैं कि ऐसी सभ्यता की और उसके विश्व-प्रेम की प्रशंसा करना हमारे लिए कितना असम्भव है। विचित्रता यह है कि ये सब अत्याचारी जातियाँ अपनी ही जैसी एक दूसरी अत्याचारी जाति को "हूण" के घृणित नाम से पुकारती हैं। फिर भी हमारी यह राय है कि पाश्चात्य जीवन में बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनमें विचार की पूरी स्वतन्त्रता है और जिनसे उन स्वतन्त्र विचारों का प्रभाव समस्त संसार में फैल सकता है। इस विचार की स्वतन्त्रता से यह आशा की जा सकती है कि एक न एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन योरपीय जातियों के अन्याय और उनके मानसिक दुर्भाव तथा कुविचार अवश्य हट जायँगे।

यद्यपि हाल का चला हुआ कट्टर हिन्दू-धर्म ऐसे भावों से मुक्त है जिनसे दूसरी जातियों और धर्मों पर आघात पहुँचता हो तथापि स्वयं अपने अनुयायियों पर वह बहुत हानिकर प्रभाव डालता है, क्योंकि इससे व्यक्तियों की मानसिक स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है; और जब मनुष्यों की मानसिक स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है तभी वे हर एक प्रकार के बन्धन, हर एक प्रकार की परतन्त्रता और हर एक प्रकार के अपमान सहन कर सकते हैं। हम लोग इस तरह की परतन्त्रता के आदी हो गये हैं, अतएव कदाचित् अपने जीवन के इन बन्धनों से उत्पन्न होनेवाले अपमान का अनुभव हम नहीं कर सकते। सम्भव है, हम अपने झूठे अभिमान में आकर ऐसी हालत को बड़े गौरव की दृष्टि से देखते हों। परन्तु यदि हम चाहते हैं कि भारतवर्ष में एक राष्ट्र का निर्माण हो और हिन्दुस्तान की भिन्न भिन्न जातियाँ एक होकर देश की उन्नति करें तो हमें समझ लेना चाहिए कि जब तक हम अपने बहुत से वाहियात बन्धनों को सदा के लिए त्याग कर इन सड़े-गले रीति-रवाजों से अपने विचारों को स्वतन्त्र न कर लेंगे तब तक हिन्दू और मुसलमानों में सच्ची एकता नहीं हो सकती।

मैं केवल राजनैतिक आवश्यकता को कोई महत्त्व नहीं देता, अर्थात् जो काम केवल राजनैतिक उद्देश की सिद्धि के लिए किया जाता है वह मेरी समझ में किसी महत्त्व का नहीं है। हमें अपने मनुष्यत्व के लिए अर्थात् अपनी आत्मा के पूर्ण विकास के लिए अपना मन उस उद्देश की ओर लगाना चाहिए जिससे संसार में मनुष्य-मात्र के बीच आध्यात्मिक आधार पर एकता का भाव उत्पन्न हो। दूसरों के स्पर्श-मात्र को अपवित्र समझ कर उनकी छुआछूत से अपनी रक्षा करने में नहीं बल्कि उदारता के साथ समस्त संसार का स्वागत और सत्कार करने में हमें अपनी सामाजिक शक्ति लगाना चाहिए, चाहे इससे हमें कितने ही बड़े बड़े सङ्कटों का सामना क्यों न करना पड़े। हमें चाहिए कि हम उस ज़िम्मेदारी को साहस के साथ स्वीकार करें जो इस प्रकार की नैतिक स्वतन्त्रता से हम में आ सकती है। जब हममें नैतिक स्वतन्त्रता का भाव जाग्रत हो जायगा तब हम पुराने और सड़े-गले रीति-रस्मों के बन्धनों को घृणा की दृष्टि से देखने लगेंगे। जो लोग सच्ची बात के लिए साहस का काम करने से डरते हैं और सत्य की खोज में अपने को जोखिम में नहीं डालना चाहते वे जीवन के किसी विभाग में कभी स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर सकते। स्वतन्त्रता उनके लिए नहीं है जो स्वतन्त्रता देवी के पुजारी नहीं हैं और जो केवल कोई क्षणिक उद्देश सिद्ध करने के लिए उस देवी को अपने हृदय-मन्दिर के बाहर एक कोने में स्थान दे देते हैं, पर उस हृदय-मन्दिर के अन्दर अन्ध-भक्ति और अन्ध-विश्वास के भावों को स्थापित कर उनकी पूजा किया करते हैं।

कट्टर हिन्दू-धर्म का यह भाव समयानुकूल नहीं है, क्योंकि वह भूतकाल की बातों पर स्थित है और उसका भविष्य निराशाजनक है। जो धर्म सड़ी-गली संस्थाओं और निरर्थक व्यवस्थाओं के बन्धनों में जकड़ा हुआ है और जो बुद्धि तथा विवेक के अनुसार चलने से दूर भागता है वह केवल माया है। सच्चा धर्म तो वह है जिसमें कोई भी बाहरी बन्धन न हो।

संसार के इतिहास में बहुधा देखा गया है कि जब कभी कहीं मनुष्य की आत्मा को पतित करनेवाले और उसे बन्धनों में डालनेवाले बहुत से कारण एकत्र हो जाते हैं तब वहाँ किसी ऐसे महापुरुष का अवतार होता है जो इन सब बन्धनों को हटाने के लिए सत्य के किसी महान् सिद्धान्त को संसार के सामने रखता है और उसे दुःख से मुक्त करता है। आज-कल भारतवर्ष में भी जातियों और सम्प्रदायों की विभिन्नता के कारण एकता का अभाव है और एकता के न होने से हमारी वर्तमान समस्यायें प्रायः असाध्य मालूम पड़ती हैं, इससे आशा की जाती है कि वर्तमान भारतवर्ष में किसी ऐसे महान् पुरुष का आविर्भाव होगा जो निरर्थक और विवेक-रहित सिद्धान्तों को दूर कर भारतवासियों को प्रकाशमय भविष्य की ओर ले जायगा।

हमारे बहुत से भाई ऐसे हैं जो इन पुरानी बातों को बड़े अभिमान और गौरव की दृष्टि से देखते हैं। पर उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह दृष्टि बड़ी ही सङ्कुचित है। इस सङ्कुचित दृष्टि के कारण वे यह नहीं देख सकते कि जिन बातों पर वे अभिमान करते हैं वे हमारे अधःपतन के ज़माने में बनाई गई थीं। जो बातें हमारे अधःपतन के समय में स्थापित की गई थीं उन्हीं के कारण हमारे और दूसरी जातियों के बीच भेद की दीवारें खड़ी होगई हैं और हम अनेक टुकड़ों में बँट कर छिन्न-भिन्न हो गये हैं। इन्हीं बातों से हम कमज़ोर हो गये हैं और इन्हीं के कारण हमें अपने हाल के इतिहास में पग पग पर लज्जा के मारे सिर झुकाना पड़ा है। काल की कैसी कुटिल गति है कि हन गई बीती बातों को हिन्दू-सभ्यता का सच्चा अङ्ग समझ कर हम उन्हें बनाये रखना अपना पवित्र उद्देश मानने लगे हैं।

हम अब भी अपने धार्मिक ग्रन्थों को उस समालोचनात्मक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं देखते और उनके गुण-दोष की जाँच नहीं करते जिस दृष्टि से पाश्चात्य लोग अपने ग्रन्थों की जाँच करते हैं। संसार में हर जगह जिन ऐतिहासिक और वैज्ञानिक नियमों से काम लिया जाता है वे नियम भारतवर्ष की सीमा के भीतर प्रवेश नहीं पा सकते। तभी तो हमारा इतिहास अनादि है और उसमें विज्ञान और बुद्धि का कोई दख़ल नहीं है! हिन्दू-जाति किसी देवता को अपना व्याकरण बनानेवाला मानती है, किसी दूसरे देवता को अपने रसायन-शास्त्र का रचयिता समझती है और किसी अन्य देवता को अपने आयुर्वेद का आविर्भाव करनेवाला मानती है! इस विचित्र देश में जितनी बातें हैं सब सदा के लिए देवताओं और ऋषियों की ही चलाई हुई मानी जाती हैं! देवताओं और ऋषियों की चलाई हुई बातों में किसकी मजाल है कि वह दख़ल दे और उसमें कोई त्रुटि निकाल सके! यही कारण है कि हमारे बहुत से शिक्षित भाई भी पौराणिक और कपोल-कल्पित बातों को इतिहास का अङ्ग मानने से नहीं हिचकते।

इस लिए हिन्दू-धर्म की बातों में कोई शङ्का या प्रश्न करना पाप समझा जाता है। जहाँ यह समझा जाता हो कि हमारी सब बातें दोष-रहित हैं और जहाँ सब काम शास्त्र की आज्ञा ही के अनुसार होते हों वहाँ भला शङ्का और समाधान कैसा? इसलिए जब इस बात पर बहस चलती है कि समुद्र-यात्रा अच्छी है या बुरी तब हमें इसका निर्णय करने के लिए शास्त्र के पन्ने पलटने पड़ते हैं। यदि हम यह जानना चाहते हैं कि कमरे में किसी ख़ास व्यक्ति के रहते पानी अपवित्र तो नहीं हो जायगा तो इसका निर्णय करने के लिए हम पण्डितजी के पास जाते हैं। यदि हम यह प्रश्न करने का साहस करते हैं कि जिसका छुआ हुआ दूध, घी और गुड़ खा सकते हैं उसका छुआ हुआ पानी क्यों नहीं पी सकते या जिन विदेशियों की बनाई हुई शराब या दवा पी सकते हैं तब उनका छुआ हुआ भोजन क्यों नहीं खा सकते तो शास्त्रों की धमकी से हमारा मुँह बन्द कर दिया जाता है।

जो आचार-विचार विवेक के अनुकूल नहीं है पर साम्प्रदायिक धर्म पर स्थित है उससे मनुष्य में भेद-भाव बढ़ने के सिवा और क्या हो सकता है। हमारा परस्पर का मेल केवल विवेक के आधार पर स्थित रह सकता है, क्योंकि जो वस्तु विवेक के विरुद्ध है वह केवल ऊपरी और दिखावटी है। उससे हमेशा विरोध उत्पन्न होता रहेगा। जब किसी समाज में रीति-रवाज धर्म की आड़ में प्रचलित रक्खे जाते हैं तब उस समाज के लोगों का कुल ज्ञान, आचार और व्यवहार वहीं पर समाप्त हो जाता है और उससे पास पास रहनेवाले पड़ोसियों तक में गहरा भेद और विरोध उत्पन्न हो जाता है।

उन्नतिशील हिन्दू-समाज का आदर्श हमारी दृष्टि के सामने कभी पूरी तरह से नहीं आया। इसी से हम लोग इस बात को अच्छी तरह नहीं समझ सकते कि हिन्दुओं ने प्राचीन समय में क्या किया था और आगे भविष्य में वे क्या कर सकते हैं। इस हमारी सङ्कुचित दृष्टि ने हमारे सामने से हमारे आदर्श को हटा ही नहीं दिया, बल्कि उसे प्रायः नष्ट ही कर दिया है। इसी से अब हम यह समझने लगे हैं कि हिन्दू-समाज का आदर्श केवल स्नान करना, व्रत करना, माला फेरना, प्रायश्चित्त इत्यादि से शरीर को सुखाते रहना और दुनिया से अलग किसी कोने में सिकुड़ कर बैठे रहना ही है।

हम लोग अब यह भूल गये हैं कि हिन्दू-सभ्यता कभी ख़ूब बढ़ी-चढ़ी और जीवित थी। तब हिन्दू लोग समुद्र-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार जाकर विदेशों में अपने उपनिवेश क़ायम करते थे और संसार से अनेक बातें सीखते और सिखाते थे। उस समय भारतवर्ष कला, व्यापार आदि में ख़ूब बढ़ा-चढ़ा था। नये नये विचारों और आदर्शों को यहाँ स्थान मिलता था। यहाँ सामाजिक तथा धार्मिक परिवर्तन प्रायः हुआ करते थे। यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं, साहस के काम करती थीं और सामाजिक जीवन में भाग लेती थीं। महाभारत के प्रत्येक पृष्ठ पर हमें इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि उस ज़माने की हिन्दू-सभ्यता जात-पाँत के जटिल नियमों से जकड़ी हुई नहीं थी। उस समय के हिन्दू कठ-पुतली की तरह सब काम नहीं किया करते थे। वे अपनी ग़लतियों से फ़ायदा उठा कर उन्नति के रास्ते में आगे बढ़ते थे। वे जाँच और प्रयोग के द्वारा नये नये आविष्कार करते थे और बड़े परिश्रम के साथ सत्य के अनुसन्धान में लगे रहते थे। उस समय का हिन्दू-समाज स्वतन्त्र और सजीव था और अत्यन्त उत्साह के साथ नित्य नये नये साहस के कार्य किया करता था।

आज-कल के कट्टर हिन्दू ऐसे समाज को कदाचित् हिन्दू न मानेंगे, क्योंकि कट्टर हिन्दू-धर्म के अनुसार वह धर्म धर्म के नाम से नहीं पुकारा जा सकता जिसमें विचार और शङ्का, ग्रहण और परित्याग तथा उन्नति और परिवर्तन को स्थान मिलता हो। जब मनुष्य की मानसिक शक्ति कमज़ोर पड़ जाती है तभी वह जीवन की सजीव बातों से डर कर अलग भागता है और उन्हीं मुर्दा बातों को अपनाता है जो उसके निश्चेष्ट और आलसी जीवन में कोई विघ्न नहीं डालतीं। पर हमें यह जान लेना चाहिए कि जीवित मनुष्य अपने जीवन का भार आप ही वहन करता है और मुर्दा आदमी दूसरों के लिए केवल भार-स्वरूप होता है। न जाने कितने ज़माने से हमारे देश पर इसी तरह के मुर्दा आदमियों का बोझ लदा हुआ है। क्या आप इस बात पर विश्वास करते हैं कि जब तक हमारी पीठ पर इस तरह की सामाजिक अकर्मण्यता और आलसी जीवन का भार लदा हुआ है तब तक हम दुर्गम कठिनाइयों को पार करके राजनैतिक स्वतन्त्रता के उच्च शिखर पर पहुँच सकते हैं?

अब यह प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया है कि मनुष्य के हृदय में रहनेवाली ईश्वरी शक्ति अब बहुत दिनों तक इस सङ्कुचित अन्धकार में नहीं रह सकती। अब वह समय आ गया है जब वह दिव्य शक्ति संसार के साधारण जनों के सुख-दुःख में भाग लेने के लिए उनके बीच प्रकट होगी। हमें चाहिए कि हम उस शक्ति का स्वागत करने के लिए अभी से तैयार हों। हममें से कुछ के साधन प्रबल होंगे और कुछ के निर्बल, पर सबको उसका स्वागत करने के समान अधिकार प्राप्त होगा। ईश्वर हमें ऐसी शक्ति दे कि हम इस महान् उद्योग में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकें।

जनार्दन भट्ट

अर्थशास्त्र की कुछ प्रारम्भिक बातें।

आधुनिक अर्थशास्त्र का ज्ञान हमें पाश्चात्य देशों से हुआ है। अर्थशास्त्र का सम्बन्ध मानव-समाज से है। अतएव यह सम्भव नहीं कि प्राचीनकाल में अर्थशास्त्र का अस्तित्व ही न रहा हो। पण्डित शाम शास्त्री-द्वारा प्रकाशित कौटिलीय अर्थशास्त्र से अर्थशास्त्र की सार्वकालीन महत्ता तथा राज्य-प्रबन्ध में उसकी उपयोगिता प्रमाणित हो जाती है। आधुनिक युग में अर्थशास्त्र ने एक व्यापक रूप धारण कर लिया है। यहाँ उसके इसी स्वरूप की चर्चा की जाती है।

अर्थशास्त्र को अँगरेज़ी में Economics या Political Economy कहते हैं। जिन ग्रीक शब्दों से यह नाम बना है उनके अर्थ से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस शास्त्र का विषय एक साधारण कुटुम्ब के नियमों और सिद्धान्तों को समाज के सञ्चालन में प्रयुक्त करना है। अर्थशास्त्र की कितनी ही व्याख्यायें की गई हैं, पर वे सन्तोषजनक नहीं हैं। प्रारम्भ में पाश्चात्य तत्त्ववेत्ताओं ने अर्थशास्त्र में सम्पत्ति के उत्पादन (Production) को इतना प्राधान्य दिया कि उसके नाम ही पर बुरा प्रभाव पड़ा। रस्किन और कार्लाइल जैसे प्रसिद्ध साहित्यिक लेखकों ने इस शास्त्र की बड़ी निन्दा की है। अब भी साधारण मनुष्य

---

* श्रीयुत डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "The path to unity" नामक लेख का भावानुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को यह भ्रम है कि अर्थशास्त्र मनुष्य को केवल स्वार्थपरता की शिक्षा में दीक्षित करता है।

कुछ विद्वान् अर्थशास्त्र की व्याख्या करते हुए उसे बहुत व्यापकरूप दे देते हैं। उनके मत में अर्थशास्त्र ही सभ्यता का मूल-मन्त्र है, और सब सामाजिक उन्नति का केन्द्र भी वही है। इसके विपरीत अन्य लेखक इस शास्त्र को अत्यन्त सङ्कुचित कर देने की भूल करते हैं। इनके कथनानुसार अर्थशास्त्र केवल विनिमय (Exchange), व्यापार (Commerce) तथा वाणिज्य (Trade) मात्र के सिद्धान्तों का नाम है।

आधुनिक विचार के अनुसार अर्थशास्त्र का विषय "सम्पत्ति" अथवा "अर्थ" है। इस "सम्पत्ति" शब्द की विशेष रूप से व्याख्या किसी और अवसर पर की जायगी, क्योंकि साधारणतया प्रत्येक मनुष्य जानता है कि सम्पत्ति या अर्थ किसे कहते हैं। पर अर्थशास्त्र की सीमा सम्पत्ति तक ही नहीं है। जहां तक मनुष्य का सम्बन्ध सम्पत्ति से है वहां तक वह मनुष्य को भी अपने अन्तर्गत करती है। मनुष्य की आवश्यकताओं, उनकी सन्तुष्टि तथा सम्पत्ति के उत्पादन—विनिमय—वितरण इत्यादि में मनुष्य का जो कार्य रहता है उन सबकी पर्यालोचना करना अर्थशास्त्र ही का विषय है। संक्षेप से, अर्थशास्त्र का विषय सम्पत्ति ही नहीं है, परन्तु सम्पत्ति और मनुष्य तथा समाज का आन्तरिक सम्बन्ध भी है। मतलब यह कि मनुष्य के साधारण जीवन के कार्यक्रम का अध्ययन करना अर्थशास्त्र का उद्देश है।

इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि अर्थशास्त्र एक सामाजिक शास्त्र है। वह समाज-शास्त्र का एक मुख्य अङ्ग है। उसी के अन्य अङ्ग, नीति-शास्त्र—राजनीति तथा आचार-नीति—धर्मशास्त्र, इतिहास, प्रजननशास्त्र Eugenics आदि हैं। इनमें से प्रत्येक का विषय मनुष्य-जीवन के अंश-विशेष से सम्बन्ध रखता है। धर्मशास्त्र का विषय मनुष्य का धार्मिक जीवन है—वह शिक्षा देता है कि किस प्रकार आचरण करने से पारलौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। राजनीति में मनुष्य को राज्य का अङ्ग मान कर उसकी इस स्थिति पर विवेचना की गई है। उसमें यह भी बतलाया गया है कि प्रत्येक मनुष्य का राज्य में क्या स्थान है और भिन्न राज्यों के प्रजागण से उसका क्या सम्बन्ध है। प्रजनन-शास्त्र में बतलाया गया है कि किस प्रकार मनुष्य दीर्घायु और पुष्ट बन सकता है और किस आचरण से वह अपनी भविष्य सन्तति को सुधार कर मनुष्य-जाति की उन्नति कर सकता है। इसी प्रकार अन्य शास्त्रों के भी भिन्न भिन्न विषय हैं। पर यह समझ लेना अत्यन्त भ्रमात्मक होगा कि ये सब शास्त्र एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। यथार्थ में ये सभी शास्त्र समाज-शास्त्र के अङ्ग हैं, अतः इनका आपस में सम्बन्ध होना तथा एक दूसरे की सीमा पर उपरोध करना स्वाभाविक है। ऐसी बहुत सी समस्यायें हैं जिनके विषय में यह निश्चित करना असम्भव ही सा है कि वे किस शास्त्र के अन्तर्गत होनी चाहिए।

ऊपर यह बतला दिया गया है कि साधारण समाज-शास्त्र तथा अर्थशास्त्र का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध है। इस विषय पर प्राचीन लेखकों में मतभेद रहा है। कुछ कहते थे कि समाज के सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि केवल किसी एक अङ्ग को लेकर उसकी आलोचना करना असम्भव है। इस कारण अर्थशास्त्र समाजशास्त्र से भिन्न नहीं किया जा सकता, क्योंकि मनुष्य का आर्थिक जीवन उसके सामाजिक जीवन का केवल एक अंश है। इस मत के अनुसार समाजशास्त्र एक सर्वाङ्गपूर्ण शास्त्र हो सकता है, पर उसके भिन्न भिन्न अङ्ग शास्त्र-रूप ग्रहण नहीं कर सकते। ठीक इसके प्रतिकूल दूसरे मतवाले कहते थे कि समाज-शास्त्र से अर्थशास्त्र का कुछ प्रयोजन ही नहीं। उसका विषय सम्पत्ति है और सामाजिक व्यवस्था से उसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यथार्थ में अर्थशास्त्र समाजशास्त्र का अङ्ग है, पर वह उससे पृथक् भी किया जा सकता है। किसी अङ्गी के अङ्गों को पृथक् पृथक् अध्ययन करना बिलकुल युक्ति-सङ्गत जान पड़ता है। अर्थशास्त्र में समाज की आर्थिक व्यवस्था की समालोचना की जा सकती है। उसकी धार्मिक, आध्यात्मिक, तथा नैतिक व्यवस्थाओं का विचार अन्य शास्त्र कर सकते हैं। ऐसा करते हुए एक शास्त्र का वर्णन दूसरे में न आना आवश्यक नहीं है। आवश्यक इतना ही है कि जिस शास्त्र का अध्ययन हो रहा है उसमें उसी के विषय को प्राधान्य दिया जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार ज्ञान की वृद्धि भी हो सकती है। सर्वाङ्ग-पूर्ण समाजशास्त्र का निर्माण करना किसी एक मनुष्य की शक्ति के बाहर है। अतएव अर्थशास्त्र समाजशास्त्र का एक अङ्ग होने पर भी समाजशास्त्र से पृथक् उसका अध्ययन करना उचित है। उसका विशिष्ट विषय समाज की आर्थिक व्यवस्था है।

अर्थशास्त्र तथा राजनीति दोनों ही समाजशास्त्र की सन्तति हैं। यदि अर्थशास्त्र मनुष्य और सम्पत्ति के अन्तःसम्बन्ध की विवेचना करता है तो राजनीति मनुष्य तथा राज्य के पारस्परिक सम्बन्ध की आलोचना करती है। इन दोनों शास्त्रों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। बहुत सी सामाजिक समस्यायें ऐसी हैं जो अर्थशास्त्र तथा राजनीति दोनों ही के अन्तर्गत होती हैं और जिनका विचार दोनों में विषयानुसार आर्थिक और राजनैतिक पक्ष पर हो सकता है—यथा, रेलवे-शासन, व्यवसाय-नियम, व्यापार-संयमन इत्यादि के आर्थिक और राजनैतिक पक्ष स्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त राजकीय संस्थाओं पर आर्थिक व्यवस्था का बड़ा प्रभाव पड़ता है—यथा, तीन भिन्न भिन्न देशों की, जिनमें से एक गोप-वृत्ति का, दूसरा कृषक-वृत्ति का, और तीसरा वणिक्-वृत्ति का अनुयायी हो, राज्य-प्रणाली भी अवश्य भिन्न होगी। इसी प्रकार राजकीय संस्थायें भी आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करती हैं—यथा, जिस देश में धन-स्वत्व तथा व्यापार-स्वातन्त्र्य प्रचलित हों उसमें सम्पत्ति के उत्पादन, विनिमय तथा वितरण की क्रियायें और प्रकार होंगी, और जहाँ धन पर राज्य का स्वत्व हो तथा व्यापार-प्रबन्ध भी राज्य की ओर से नियमित हो वहाँ के आर्थिक सङ्गठन का दूसरा ही रूप होगा। इसी प्रकार दुर्बल तथा अन्यायी राज्य की अपेक्षा किसी सुशासित राज्य में सम्पत्ति के उत्पादन तथा वितरण की क्रियायें अच्छी तरह सम्पन्न हो सकेंगी।

अर्थशास्त्र तथा आचार-नीति का सम्बन्ध भी विचारणीय है। विज्ञान-रूप में अर्थशास्त्र आर्थिक व्यवस्थाओं के कारणों को खोजता है, और उस खोज में उसे इस बात का विचार करना पड़ता है कि सभ्य मनुष्य-समाजों में आचार-सिद्धान्तों का सम्पत्ति के व्युत्पादन, विनिमय, वितरण तथा विनाश पर क्या प्रभाव पड़ता है और कला-रूप में अर्थशास्त्र सम्पत्ति का एक आदर्श वितरण प्रस्तुत करता है, जिसका निरीक्षण आचार-सिद्धान्तों के द्वारा किया जाता है। प्रचलित सम्पत्ति-वितरण की आचार-सिद्धान्तपरता के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। इसी विवाद-क्षेत्र में साम्यवाद, समष्टिवाद इत्यादि अनेक क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का जन्म हुआ है।

अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान का सम्बन्ध एक प्रकार से आधाराधेय सम्बन्ध है। मनोविज्ञान के विषय मन, बुद्धि, अहङ्कार इत्यादि हैं और अर्थशास्त्र के विषय मनुष्य की आवश्यकता, उनकी पूर्त्ति के हेतु प्रयत्न तथा उनकी सन्तुष्टि हैं। आवश्यकता, प्रयत्न, सन्तुष्टि सब मन की प्रक्रियायें हैं। अतः अर्थशास्त्र मनोविज्ञान पर निर्भर है। वह मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को सिद्ध नहीं करता पर उन्हें सिद्ध मान कर उन्हें अपने मौलिक सिद्धान्त बना लेता है, और उनसे तर्क-द्वारा नये सिद्धान्त निकालता है—यथा, सम्पत्ति के उत्पादन में मनोविज्ञान का यह सिद्धान्त है कि ज्यों ज्यों प्रयत्न बढ़ता है, त्यों त्यों श्रम भी बढ़ता जाता है; सम्पत्ति के विनिमय और विनाश का मूलमन्त्र मनोविज्ञान का दूसरा सिद्धान्त है कि किसी भी वस्तु के बाहुल्य के साथ साथ तज्जनित सन्तोष का ह्रास होता जाता है। इस प्रकार मनोविज्ञान के सिद्धान्त अर्थशास्त्र के आधार-भूत हैं।

ठीक इसी प्रकार अर्थशास्त्र प्रकृति-विज्ञान का आश्रय भी है। प्रतिलब्धि-लघुता का सिद्धान्त (Law of Diminishing Returns) वस्तुतः प्रकृति-विज्ञान का सिद्धान्त है, पर इसने अर्थशास्त्र की मीमांसा में कुछ स्थान प्राप्त कर लिया है।

प्रजननशास्त्र अर्थशास्त्र के सम्पत्ति के उत्पादन के लिए अत्यावश्यक है। उसके सिद्धान्तों-द्वारा श्रमजीवियों की संख्या तथा योग्यता पर बड़ा चिरस्थायी प्रभाव पड़ सकता है, और श्रमजीवी सम्पत्ति के उत्पादन का एक मुख्य कारण है। यह प्रभाव आयुर्वेद से भी होगा। उससे सम्पत्ति के विनाश का भी क्रम बदल सकता है, क्योंकि वह हित और अहित भोग्य द्रव्यों का ज्ञान सिखाता है।

पदार्थ-विज्ञान अर्थशास्त्र के बड़े काम का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा देश की बहुत अधिक आर्थिक उन्नति हो सकती है। नये नये आविष्कार होने से वाणिज्य-व्यापार की असीम वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार अन्य प्राकृतिक विज्ञानों से भी अर्थशास्त्र का बड़ा उपकार सम्भव है।

गणनाशास्त्र भी अर्थशास्त्र के लिए अत्यन्त उपयोगी है। वह तर्कद्वारा आर्थिक सिद्धान्तों की परीक्षा कर उनकी सत्यता अथवा असत्यता को सिद्ध करता है, नये सिद्धान्त निकालता है, और उत्पादन-वृत्ति, मूल्य आदि की गणना करके वह किसी देश की आर्थिक व्यवस्था का स्थूल वर्णन कर सकता है।

गणित-शास्त्र से भी अर्थशास्त्र सहायता लेता है। अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को स्पष्टरूप से समझाने के हेतु आजकल अङ्कगणित (प्रधानतः सम्पत्ति के विनिमय में) और मुख्यतः रेखागणित से बहुत काम लिया जाता है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि गणित अर्थशास्त्र की आत्मा है। उसके बिना अर्थशास्त्र का निश्चयात्मक होना एवं उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचना सर्वथा असम्भव है।

अर्थशास्त्र और भूगोल का परस्पर सम्बन्ध तो बहुत ही प्रत्यक्ष है। किसी देश-विशेष की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करते समय उसकी धरती की उपज-शक्ति, उसका जल-वायु, तथा उसकी प्राकृतिक अवस्था का ज्ञान आवश्यक है, और इन बातों का प्रभाव वहाँ के निवासियों के आचार-व्यवहार तथा मनोवृत्ति पर भी बहुत पड़ता है, इस कारण भी इनका जानना अर्थशास्त्र के लिए आवश्यक है।

इतिहास भी अर्थशास्त्र का सहायक है। मुख्यतः इतिहास का आर्थिक अर्थात् वाणिज्य-व्यवसायात्मक अङ्ग तो अर्थशास्त्री के लिए बहुत ही आवश्यक है। व्यवसायात्मक इतिहास का ज्ञान अर्थशास्त्र को कला और विज्ञान दोनों रूपों में समझने के लिए आवश्यक है। उससे ज्ञात होता है कि किस प्रकार आधुनिक आर्थिक स्थिति विकसित हुई है, और किस प्रकार इसका विकास भविष्य में होगा।

इतनी समालोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि अर्थशास्त्र कितने ही शास्त्रों से मिश्रित रूप में सम्बद्ध है। पर यह सब होने पर भी वह पृथक् रूप से एक शास्त्र है। अतः अब यह जानना उचित है कि उसका विशेष प्रान्त क्या है।

किसी भी शास्त्र की सीमा निश्चित करते समय दो प्रश्न उठते हैं। प्रथम यह कि उस शास्त्र की विषयभूत वस्तु क्या और किस प्रकार की है और द्वितीय यह कि उस वस्तु के विषय में किस प्रकार का ज्ञान उस शास्त्र का ध्येय है। हम यह जानते हैं कि अर्थशास्त्र की विषयभूत वस्तु सम्पत्ति तथा तत्सम्बन्धी मनुष्य का कार्य है। अब यह जानना शेष है कि इस वस्तु के विषय में किस प्रकार का ज्ञान अर्थशास्त्र को इष्ट है। यह जानने के पूर्व एक सूक्ष्म भेद का दिग्दर्शन करा देना आवश्यक है।

शास्त्र मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—एक विज्ञानात्मक, दूसरे कलात्मक। "विज्ञान" शब्द बहुत ही भ्रममूलक है। इसकी व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। साधारणतः विज्ञान की उपाधि उस सम्प्रबद्ध ज्ञान-भाण्डार को दी जाती है जिसमें किसी वस्तु-विशेष के विषय में सिद्धान्तालोचना रहती है। "कला" सम्प्रबद्ध ज्ञानभाण्डार तो है, पर वह प्रक्रिया पर होता है। विज्ञान का कार्य समझाना है, पर कला किसी वस्तु को समझाती नहीं—वह वस्तु-विषयक किसी इष्ट पद की प्राप्ति के हेतु नियमावली की रचना करती है। शिल्प प्रक्रियात्मक है, इस कारण वह कला है। राजनीति का महत्तम अङ्ग राज्य-सञ्चालन की कला-मात्र है। परन्तु ज्योतिष-शास्त्र विज्ञान है, क्योंकि वह नक्षत्र-तारागण इत्यादि की गति तथा पारस्परिक सम्बन्ध को समझाने का प्रयत्न करता है। कला-शास्त्रों को कभी कभी प्रक्रियात्मक, प्रयोगात्मक विज्ञान भी कहते हैं।

विज्ञानात्मक शास्त्र भी दो प्रकार के होते हैं—एक विधानात्मक (Positive) दूसरे विधेयात्मक (Normative)। विधानात्मक विज्ञान-शास्त्र उन्हें कहते हैं जिनमें विश्व की वस्तुओं का अध्ययन केवल उनकी नैसर्गिक (अर्थात् अबाधित और केवल काल-क्रमागत) स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए होता है, अर्थात् उनकी भूत, वर्तमान तथा भविष्य नैसर्गिक अवस्था को समझाना ही उसका ध्येय है। जितने प्रकृति-विज्ञान हैं (यथा—भूवि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान, ज्योतिष, गणित, पदार्थ-विज्ञान, प्राणिशास्त्र, वनस्पति-शास्त्र) वे सब विधानात्मक हैं। विधेयात्मक विज्ञानशास्त्र वे हैं जिनमें आदर्श निश्चित किये जाते हैं। उनका कार्य वस्तुओं की स्थिति का समझाना नहीं होता, प्रत्युत यह बतलाना होता है कि किस प्रकार उस स्थिति में परिवर्तन होना चाहिए जिससे वह आदर्शस्वरूप धारण करे। अतः आचारशास्त्र विधेयात्मक शास्त्र है, क्योंकि वह शिक्षा देता है कि मनुष्य को कैसा आचरण ग्रहण करना चाहिए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि विधेयात्मक विज्ञानशास्त्र कलाशास्त्र से भिन्न है क्योंकि विधेयात्मक विज्ञानशास्त्र का कार्य तो किसी वस्तु के विषय में आदर्शस्थिति की खोज है, परन्तु कलाशास्त्र उस स्थिति की प्राप्ति के हेतु नियमों को निबद्ध करता है। विधेयात्मक विज्ञानशास्त्र यह बतला देगा कि कैसी स्थिति अत्यन्त हितकर हो सकती है, पर किस प्रकार वह स्थिति प्राप्त की जाय, यह बतलाना कलाशास्त्र का विषय है।

अब यह देखना है कि अर्थशास्त्र कलात्मक है या विज्ञानात्मक, और यदि विज्ञानात्मक है तो वह विधानात्मक है या विधेयात्मक। इन सूक्ष्म भेदों पर मनन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बहुधा कोई भी शास्त्र पूर्णतया किसी एक कोटि में नहीं रक्खा जा सकता। अर्थशास्त्र भी ऐसा ही है। न तो वह विशुद्ध रीति से विज्ञानात्मक ही है और न कलात्मक ही, और जितने अंश में विज्ञानात्मक है भी उतने में केवल विधानात्मक या केवल विधेयात्मक नहीं है, प्रत्युत वह कुछ अंशों में दोनों की प्रकृति को ग्रहण करता है। प्रायः सभी आधुनिक अर्थशास्त्रवेत्ता इस बात पर सहमत हैं कि अर्थशास्त्र का ध्येय उसकी वस्तु (अर्थात् सम्पत्ति या अर्थ) के विषय में तीन प्रकार के ज्ञान का प्राप्त करना है। प्रथम तो भूत, वर्तमान तथा भविष्य नैसर्गिक आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन (विधानात्मक विज्ञान); द्वितीय, आदर्श आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन (विधेयात्मक विज्ञान); तृतीय, उस आदर्श आर्थिक स्थिति की प्राप्ति के हेतु उपायों का अध्ययन (कला)। यद्यपि यथोचित स्थान पर उन तीनों में से किसी न किसी पक्ष का विचार आ ही जाता है तथापि मुख्यतः प्रथम ही को अर्थशास्त्र के अध्ययन में प्राधान्य दिया गया है।

अर्थशास्त्र की सीमा के विषय में इस प्रकार की निश्चित सम्मति सदैव से नहीं थी। इस विषय पर बड़ा मतभेद रहा है और आज भी यह समस्या पूर्णरूप से निश्चित नहीं कही जा सकती। सबसे प्रथम अर्थशास्त्र राज्यशासन ही का अङ्ग माना गया था, और समाज तथा व्यक्तियों की आवश्यकता-पूर्ति के लिए प्रत्येक वस्तु का प्रबन्ध करना, और व्यक्तियों के रीति-रवाज, प्रथा, स्वभाव तथा उनकी स्वतन्त्र अथवा परतन्त्र राजनैतिक स्थिति पर उचित ध्यान रखते हुए उन्हें इस आवश्यकता-पूर्त्ति रूपी इष्ट-साधन में प्रयुक्त करना ही शासक का मुख्य कार्य समझा जाता था। पर अठारहवीं शताब्दी के अन्त होते होते अर्थशास्त्र की सीमा के विषय में जो प्रचलित विचार था उसमें बड़ा अन्तर आ गया। इसके कारण फ्रांस देश का प्रकृतिवादी विचारमार्ग (Physiocratic School) तथा अर्थशास्त्र के प्रवर्त्तक इँग्लेंड के एडम स्मिथ थे। प्रकृतिवादी मार्ग का नाम ही इस कारण पड़ा कि उसके अनुयायी निरपेक्ष बुद्धि से प्रकृति के उपासक थे—प्राकृतिक गति ही सर्वश्रेयस्करी है, यह उनका अटल सिद्धान्त था और उस गति का प्रतिरोध करना वे पाप समझते थे। एडेमस्मिथ भी, यद्यपि वे अर्थशास्त्र को राज्यशासन का अङ्ग मानते थे, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "जातियों की सम्पत्ति" में कहते हैं कि अर्थशास्त्र का उद्देश राज्य की ओर से व्यापार-व्यवसाय आदि को सर्वथा नियमबद्ध करना नहीं है, प्रत्युत उनमें किञ्चिन्मात्र भी हस्तक्षेप न करना ही शासक का कार्य है। उनका विश्वास था कि व्यवसाय-व्यापार की प्राकृतिक गति में थोड़ा भी निरोध करना अत्यन्त हानिकर है और उस गति को स्वतन्त्र छोड़ देने से ही व्यापार की वृद्धि सम्भव है। इस प्रकार अर्थशास्त्र का जन्म-लब्ध कला-रूप निर्मल वाद ने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

इसके बाद अर्थशास्त्र के दो विभाग किये गये—प्रथम सिद्धान्तात्मक अथवा विज्ञानात्मक जिसका विषय सम्पत्ति, उसका उत्पादन, वितरण इत्यादि को समझाना है; और द्वितीय प्रक्रियात्मक अथवा कलात्मक जिसका उद्देश आ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा हितकर आर्थिक संस्थाओं की खोज तथा प्राप्ति के उपाय निश्चित करना है। परन्तु कुछ काल के अनन्तर अर्थशास्त्र की सीमा सिद्धान्तात्मक विभाग तक ही निश्चित की गई और प्रक्रियात्मक विभाग राजनीति को सौंप दिया गया, क्योंकि उसमें न केवल आर्थिक ही, परन्तु नीति तथा आचार-सम्बन्धी, विचारों को भी स्थान देना पड़ता है। इस प्रकार अर्थशास्त्र अपना प्राचीन रूप बदल कर नये वैज्ञानिक रूप में आ उपस्थित हुआ। इस वैज्ञानिक मार्ग के अनुयायी अब भी हैं, और उनका एक दल तो अर्थ-शास्त्र का मूल सिद्धान्त यह मानता है कि प्रत्येक मनुष्य का उद्देश—चाहे वह किसी भी प्रकार सिद्ध हो—यही है कि उसके सुख की मात्रा जितनी ही बढ़ सकती हो बढ़े, और दुःख की मात्रा जितनी ही घट सकती हो घटे।

इस ऐतिहासिक समालोचना से अर्थशास्त्र की गौरव-हानि के प्रधान कारण बीज रूप से निर्दिष्ट हो जाते हैं। प्रथम तो नैसर्गिक गति को स्वतन्त्र छोड़ देने के कारण हानिजनक स्वार्थ तथा स्पर्धा के वेग की प्रतिबाधक सब विघ्न-बाधायें मिट गईं और समाज-जीवन में नाना प्रकार के अत्याचार होने लगे। स्त्रियों तथा बालकों से अत्यन्त श्रम कराया जाने लगा और व्यापारी लोग लोभ-ग्रस्त होने के कारण स्वार्थ के सामने परमार्थ को बिलकुल भूल गये। दूसरे, जब अर्थशास्त्र की सीमा केवल अर्थ-विज्ञान तक ही परिमित कर दी गई तब वह नीरस और शुष्क भी हो गया। इन कारणों से अर्थशास्त्र पर स्वार्थ-परता का दोष आरोपित किया गया।

यदि वास्तव में देखा जाय तो यह कलङ्क अधिक अंश में असङ्गत ही है। किसी शास्त्र का शास्त्रत्व इससे नहीं जाता कि उसका विषय अच्छा नहीं है। शास्त्र का शास्त्रत्व इसी में है कि वह अपने विषय का ज्ञान भले प्रकार करा सके। यदि कोकशास्त्र का विषय मनुष्य की कामप्रवृत्ति है तो क्या वह शास्त्र बुरा हो गया? कदापि नहीं। यदि उस शास्त्र ने अपने विषय का भली भांति ज्ञान प्राप्त किया है और उस क्षेत्र में कुछ कार्य-कारण सम्बन्धों को खोज निकाला है तो उसका एक प्रकार का वैज्ञानिक मूल्य है, चाहे उसकी विषयभूत वस्तु कितनी ही अश्लील अथवा अन्य किसी प्रकार बुरी क्यों न हो। इस बात को दृष्टिगोचर रखते हुए अर्थशास्त्र को अनर्थकर बतलाना भूल ही जान पड़ती है। क्या यह उसके वश की बात है कि उसके विषय सम्पत्ति तथा मनुष्य हैं? फिर अर्थशास्त्र मनुष्य की स्वाभाविक चित्त-वृत्तियों को मनोविज्ञान से ग्रहण करता है। वह उनको सिद्ध नहीं करता और न उन पर आचरण करने ही की शिक्षा देता है। वह तो उनको अपने मौलिक सिद्धान्त मान कर आगे कुछ कार्य-कारण सम्बन्धों की खोज करता है। इस प्रकार शुद्ध विज्ञान-स्वरूप में अर्थशास्त्र दुर्भावना से सर्वथा रहित एवं अनिन्दनीय है।

अर्थशास्त्र के कला-रूप की बात विचारणीय है। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपनी शिक्षा के अनुसार भला-बुरा बन सकता है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, निसर्गवाद के प्रभाव से समाज में अत्याचार बढ़ गया, इसका उत्तरदायित्व अवश्य अर्थशास्त्र के ऊपर है। हर्ष का विषय है कि कठोर और निर्दय आक्षेपों ने अर्थ-शास्त्र का ध्यान इस ओर आकर्षित करा दिया है और समाजोन्नति के हेतु अर्थशास्त्र के कलात्मक-पक्ष की ओर आधुनिक विद्वानों की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। विज्ञा-नात्मक सिद्धान्त-ग्रन्थों में भी अर्थशास्त्र का विषय केवल सम्पत्ति ही नहीं, परन्तु मनुष्य भी माना जाता है; और वह मनुष्य कोई गर्हणीय, स्वार्थपर, काल्पनिक, "आर्थिक" व्यक्ति नहीं है, प्रत्युत वास्तविक, स्वाभाविक, साधारण, "प्रकृत" मनुष्य है। पहले भी कहा जा चुका है कि मनुष्य के साधारण जीवन के कार्यक्रम का अध्ययन करना ही अर्थशास्त्र का कार्य है। अब साधारण जीवन का कार्य केवल स्वार्थ ही नहीं होता। प्रेम, दया, धर्म, देशभक्ति इत्यादि सभी भावों का थोड़ा थोड़ा अंश उसमें रहता है और इनमें से किसी का भी प्राधान्य व्यक्ति-विशेष के स्वभाव पर निर्भर है। अर्थशास्त्र यह नहीं कहता कि भौतिक सुख तथा अर्थ ही केवल पुरुषार्थ है। क्योंकि रुपये के द्वारा ही, किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा, सब पुरुषार्थ अधिक सुभीते से मापे जा सकते हैं, इस कारण अर्थशास्त्र ने रुपये को अपनी तुला बना लिया है। भावों का मापना अर्थशास्त्र को निश्चित स्वरूप देने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेतु अनिवार्य है। एक प्रसिद्ध लेखक का कथन है कि "जिस प्रकार पदार्थविज्ञ की सूक्ष्म तुला ने पदार्थ-विज्ञान को दूसरे प्राकृतिक विज्ञानों की अपेक्षा अधिक निश्चित बना दिया है, ठीक उसी प्रकार अर्थशास्त्री की इस (रुपया-रूप) अपूर्ण एवं अधूरी ही तुला ने अर्थशास्त्र को भी समाजशास्त्र के अन्य अङ्गों की अपेक्षा अधिक निश्चित कर दिया है"। अतः अर्थशास्त्र से केवल इस कारण घृणा करना कि उसमें रुपये का वर्णन है सर्वथा अयुक्त है।

अर्थशास्त्र अगर्हणीय है, केवल इतना ही कहना यथेष्ट नहीं। प्रत्युत यह बात भी जानने योग्य है कि अर्थशास्त्र एक अत्यन्त ही उपयोगी शास्त्र है। उसकी उपयोगिता विज्ञान तथा कला दोनों ही स्वरूपों में समान है। शुद्ध विज्ञान की दृष्टि से अर्थशास्त्र हमें मनुष्य तथा सम्पत्ति-सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों की शिक्षा देता है। मानसिक शिक्षा के लिए भी अर्थशास्त्र अन्य किसी शास्त्र से कम नहीं, प्रत्युत बहुतों से इसका स्थान उच्च ही है। यथा—गणितशास्त्र केवल भाव-प्रधान होने के कारण मन तथा मस्तिष्क को प्रक्रियात्मकत्व-हीन एवं वास्तविक बातों के विचारने में अशक्त बना देता है। परन्तु अर्थशास्त्र का विषय ही मनुष्य और समाज तथा जीवन और सम्पत्ति का अन्तः सम्बन्ध है, जो स्पष्ट ही प्रकृत और वास्तविक है। उसे ध्यान देकर इन बातों का निरीक्षण करना पड़ता है, तदनन्तर सन्तोष-सहित उनका विवेचन तथा कार्यकारण-सम्बन्ध का अन्वेषण करना होता है; इस प्रकार वह निरीक्षण में सावधानता, विवेचन में सन्तोष, तथा तर्क में शुद्धता एवं अप्रमत्तता की शिक्षा देता है।

इससे भी अधिक उपयोगिता अर्थशास्त्र के कलात्मक स्वरूप की है। इस रूप में अर्थशास्त्र अत्यन्त जटिल सामाजिक समस्याओं को सरल बनाने में बड़ी सहायता देता है। यथा, आर्थिक स्वतन्त्रता की बुराई तथा भलाई को क्रमशः घटाने और बढ़ाने के उपाय सोचना; समाज तथा व्यक्ति में परस्पर उचित सम्बन्ध को बतलाना; सम्पत्ति के श्रेष्ठ उत्पादन, उपभोग तथा उपयोग की शिक्षा देना; और सबसे मुख्य समाज की भिन्न भिन्न कक्षाओं में सम्पत्ति तथा कर-भार के यथासम्भव समान वितरण की समस्या के विषय में विचार करना; इत्यादि सब अर्थशास्त्र की समस्यायें हैं। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र का प्रक्रियात्मक ज्ञान राज्य-प्रबन्ध-कर्ताओं, महाजनों, व्यापारियों, तथा अन्य जीवियों के लिए अत्यन्त ही आवश्यक और उपयोगी है। और यदि सम्पत्ति के असमान वितरण और तज्जात दरिद्रता तथा उसके घोर परिणामों की ओर तनिक भी ध्यान दिया जाय तो अर्थशास्त्र-विषयक ज्ञान की महत्ता और भी अधिक स्पष्टरूप धारण कर लेती है। अकिञ्चनता क्या है? उसका परिणाम क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर में एक प्रसिद्ध अँगरेज़ विद्वान् का कथन है कि "दरिद्रता बहुत बड़ा अपराध है; अन्य सब अपराध उसके सामने सद्गुण हो जाते हैं और सब अपमान उसके सम्मुख सम्मान बन जाते हैं। दरिद्रता सुन्दर नरों को विरूप बना देती है, बीभत्स रोगों को फैलाती है, और दर्शन, श्रवण, तथा जिघ्रण-मात्र से ही आत्मा को मृत प्राय बना देती है। जिनको अपराध की उपाधि मिली है वे वास्तव में इतने हानिकारक नहीं हैं। अधिक अधिक उन्हें हम जीवन की आकस्मिक व्याधियाँ कह सकते हैं। पर जगत् में लाखों मनुष्य ऐसे हैं जो निर्धन हैं, हताश हैं, गन्दे रहते हैं, जिन्हें खाने को भोजन और पहनने को पर्याप्त कपड़ा तक नहीं मिलता, यथार्थ में हमारे शारीरिक तथा आध्यात्मिक जीवन में विष घोलते हैं; वे समाज के शान्ति-सुख का नाश कर डालते हैं और वही स्वयं हमको अपनी स्वातन्त्र्य-रक्षा के हेतु उनके प्रतिकूल ऐसा निर्दय आचरण करने को विवश करते हैं जिससे हमारा यह भय निकल जाय कि कदाचित् वे प्रबल होकर हमसे विद्रोह न कर बैठें और हमें भी उसी अन्धकूप में न घसीट लें। अपराध से केवल मूर्खों को भय होता है, पर दरिद्रता से सारा समाज भय मानता है।" एक अन्य अमेरिकन विद्वान् का विचार है कि उन्नति और दरिद्रता यमजा भगिनी हैं और सदा एक सङ्ग ही रहती हैं। ये उक्तियाँ सत्य से सर्वथा दूर नहीं हैं। "निर्धनता ही निर्धनों का विनाशक है" इस कथन में किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। एक प्राचीन संस्कृत कवि ने भी लिखा है:—

दारिद्र्यात् ह्रियमेति ह्रीपरिगतः सत्त्वात्परिभ्रश्यते
निस्सत्त्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्विण्णः शुचमेति शोकनिहतो बुद्ध्या परित्यज्यते।
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम्॥

यह बात अकाट्य है कि निर्धनों की शारीरिक, आध्यात्मिक तथा भौतिक अवनति के यद्यपि अन्य कारण भी हैं तथापि उसका प्रधान और मूल कारण निर्धनता ही है। मनोविकास तथा आत्मोन्नति के लिए न तो उन्हें अवकाश ही मिलता है और न सामग्री ही। इस कारण समाज पर दारिद्र्य का बहुत हानिकर और सुदूरवर्त्ती तथा चिरस्थायी प्रभाव पड़ता है। बहुधा पाश्चात्य देशों में गत शताब्दी के भीतर निर्धन श्रमजीवियों की दशा में बहुत कुछ सुधार हो गया है। वास्तव में अर्थशास्त्र का प्रक्रियात्मक रूप में उद्देश ही यह है कि उसके द्वारा हमें निर्धनता की जटिल समस्या के निवारण करने में सहायता मिले। अतः अर्थशास्त्र समाज-सुधार के लिए अत्यन्त उपयोगी है। प्रधानतः भारतवर्ष जैसे निपट दरिद्र देश के लिए तो अर्थशास्त्र के अध्ययन को जातीयता का जीवन कहने से कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

राधाकृष्ण

बालकों के छाया-चित्रण पर कुछ विचार।

कला में सर्वत्र भाव की प्रधानता है। छाया-चित्रकार के लिए भी सबसे अधिक आवश्यक वस्तु भाव है। उसी की अभिव्यक्ति के लिए वह सोत्कण्ठ रहता है। परन्तु भाव सहज में हाथ में आनेवाली वस्तु नहीं है। वह सूक्ष्म है परन्तु वही कला का सर्वस्व है। चित्रों का सौष्ठव उसी पर निर्भर है। भाव के परिवर्तन से मुख की आकृति ही बदल जाती है, सच तो यह है कि कोई भी चित्रकार भाव की उपेक्षा नहीं कर सकता।

सच्चे भावों का चित्रण मनोरञ्जक तो होता ही है, परन्तु वह हमारे लिए लाभदायक भी है। भावोद्गम होते ही उसका चित्र ले लेना सम्भव नहीं है। कौन ऐसा होगा कि किसी शोक-पीड़ित मनुष्य के कमरे में कैमेरा लेकर घुसेगा अथवा सदैव कैमेरा लिये यही ताकता रहेगा कि कब कोई आनन्द से विह्वल या क्रोध से उत्तप्त हो कि मैं उसका स्नैप-शाट लूँ। हमारे लिए कृत्रिम भाव के ही चित्र सुगम होते हैं, परन्तु कोई कितना ही चतुर नट हो, कृत्रिम भाव कृत्रिम ही हैं और कोई भी, जिसने सच्चे भावों को ध्यानपूर्वक देखा है, बतला सकता है कि इनमें कितनी त्रुटियाँ हैं।

प्रायः छाया-चित्रों में भावों का पूरा अभाव रहता है। कदाचित् तैयारी करते करते जब फ़ोटो खींचने का समय आता है तब तक बैठनेवाले का भाव ही उड़ जाता है और वह शून्य-मनस्क हो कैमेरे की ओर घूरता रह जाता है।

विनोद।

यही कारण है कि उन बच्चों का भावपूर्ण चित्र खींचना सरल है जो अभी कैमेरे की शक्ति को नहीं जानते। यदि कोई उन्हें खेल में लगा देता है तो वे आँख उठा कर यह देखने की चिन्ता नहीं करते कि हमारा फ़ोटो खींचने की कैसी तैयारी हो रही है। वे खेल ही में लीन हो जाते हैं। भाव-चित्रण में शिक्षा-प्राप्ति के लिए छोटे बालकों के चित्र खींचने से अधिक सुगम दूसरा विषय नहीं है।

बालकों के छाया-चित्रण पर कुछ विचार करने के पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निश्चय कर लेना आवश्यक है कि बच्चों के किन चित्रों को अच्छा कहना चाहिए। प्रश्न सरल मालूम होता है, परन्तु ऐसे सरल प्रश्न का भी उत्तर देना कठिन हो गया है, क्योंकि भिन्न भिन्न लोगों के भिन्न भिन्न मत होते हैं।

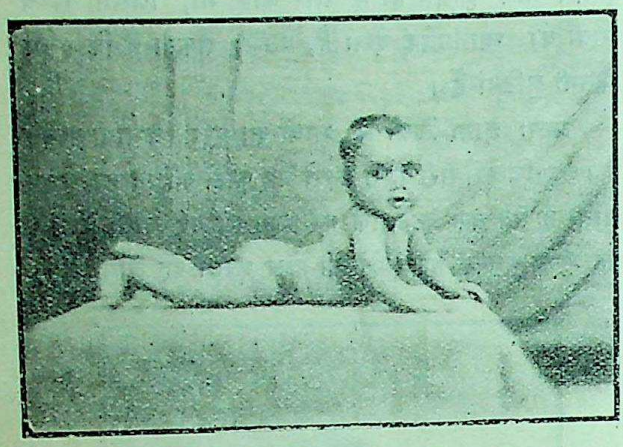

स्वच्छन्दता।

चित्रण-कला के सौष्ठव पर सर्वसाधारण की सम्मति ऐसी विचित्र है कि कभी कभी लोग उन चित्रों की तो प्रशंसा करते हैं जिन्हें स्वयं चित्रकार किसी काम का नहीं समझता है और उन चित्रों की निन्दा करते हैं जिनको देख कर चित्रकार को गर्व होता है। लोक-रुचि कैसी भी हो, इतना तो प्रायः सभी लोग मान लेंगे कि बच्चों के चित्रों को स्वाभाविक और सरल होना चाहिए। चित्र में बच्चे को छोड़ कर मन को अपनी ओर खींच लेनेवाले अनावश्यक बातों को यदि हम न आने दें तो हमारा चित्र अधिक मनोहर अवश्य हो जायगा।

हमारा उद्देश है स्वाभाविकता। अब हमें यह देखना चाहिए कि हम इसको चित्रों में किस प्रकार ला सकते हैं। यह तो प्रत्यक्ष है कि बच्चे से यह न कहना चाहिए कि उसका चित्र खींचा जायगा और इसलिए उसको प्रसन्न-मुख हो कैमेरे के सामने जा बैठना चाहिए। उसको किसी दूसरे विषय में बहलाये रखना चाहिए और इसके लिए एक तीसरे व्यक्ति से बड़ी सहायता मिलती है। बच्चे को कहानी-क़िस्से, मनोरञ्जक बात-चीत या खेल-कूद में उलझाये रहना चाहिए, जिसमें फ़ोटोग्राफ़र को अवसर मिलने पर केवल शटर चलाने का काम ही शेष रह जाय। बच्चों को एक स्थान में रखने का भार भी इसी तीसरे व्यक्ति पर है।

बच्चों को किस ढङ्ग से बिठला कर उनका चित्र उतारना चाहिए? मान लीजिए कि हमने किसी बच्चे से धीरे धीरे फूल तोड़ने को कहा। वह फूल तोड़ने लगा और हम यह देखने लगे कि उसका कौन सा ढङ्ग सबसे अधिक मनोरम होता है। ज्यों ही उसका ढङ्ग सबसे अच्छा जँचा त्योंही हमने उसे रुकने को कहा और उसको उसी स्थिति में दो चार सेकंड ठहराने की चेष्टा की। तब हम देखेंगे कि उसके खड़े होने का ढङ्ग अस्वाभाविक होता जा रहा है। पैर कड़ा हुआ जा रहा है, पीठ तनती जा रही है और हाथ ऐसा हो रहा है कि उसको मानो दर्द हो रहा हो। उस समय वह बच्चा पत्थर की प्रतिमा बन जाता है। उस समय उसका ढङ्ग सौन्दर्य-रहित ही नहीं रहता, परन्तु बच्चों की प्राकृतिक छवि का उपहास करने लगता है। कई एक चित्र इसी प्रकार तैयार हो जाते हैं। उनमें कृत्रिमता आ जाती है। परन्तु यह निराश होने की बात नहीं है। यदि लड़कों को कुछ काम

निश्चिन्तता।

को दे दिया जाय तो उनकी स्वाभाविकता लौट आती है। यदि उनको फूल तोड़ना है तो उनको वास्तव में फूल तोड़ना चाहिए। ऐसा करने के बहाने से काम न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलेगा। बड़ों की बात दूसरी है, परन्तु छोटे लड़के भावों की नक़ल नहीं कर सकते।

कभी कभी लड़कों के माता-पिता उन्हें ख़ूब शिक्षा देकर और कई दिनों से अभ्यास कराकर उनको कैमेरे के सामने बैठने के लिए पक्का करके फ़ोटोग्राफ़र के पास लाते हैं। केवल इतना ही नहीं, फ़ोटो खींचते समय भी "ऐसा बैठ" "मुँह बन्द कर" "अच्छी तरह देख" इत्यादि आज्ञायें देते हैं। ऐसे समय में स्वाभाविक चित्र खींचना पूर्णतया असम्भव है और चित्रकार का पहला कर्तव्य यह है कि वह ऐसे माता-पिता को निकाल बाहर करे। उनसे मीठी बोली में कह दीजिए कि वहाँ उनकी आवश्यकता नहीं है। फिर बात-चीत करके या तीसरे व्यक्ति की बात-चीत की सहायता से बच्चे के इस विश्वास को हटा दीजिए कि उसका फ़ोटो खींचा जाता है। यदि

हास्य।

वह इसको सहज में नहीं भूलता है तो आप एक दो बार यों हीं प्रकाश-दर्शन देने का दिखावा कीजिए और कह दीजिए कि अब सब फ़ोटो लिये जा चुके। आप देखेंगे कि तुरन्त सब तनाव मिट जाता है, अस्वाभाविकता जाती रहती है और आपको अच्छे चित्रों के लेने का अवसर मिल जाता है। कभी कभी लड़कियों को ऐसा समझा देने

मेरी गुड़िया।

से कि उनकी गुड़ियों का फ़ोटो लेने में आप उनसे सहायता चाहते हैं, आपका काम निकल जायगा, क्योंकि वे नहीं समझतीं कि लेन्ज़ उनकी गुड़ियों के साथ साथ उनको भी शामिल कर रहा है।

इतनी बातें तो स्वाभाविकता के लिए हुईं। सरलता के विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। कौन ऐसा है जो लड़कों को रङ्गभूमि के नटों की तरह नक़ल करते हुए टेढ़े मेढ़े ढङ्ग से खड़ा कराकर चित्र उतारना चाहेगा?

वस्त्रों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। ये भी चित्र को बना या बिगाड़ सकते हैं। कपड़े साधारण होने चाहिए। बच्चों का फ़ोटो उतरवाने के लिए मातायें अधिकतर उनको नये नये कपड़े और जूते पहनाती हैं। गहनों की भी कमी नहीं रहती। पर अच्छे चित्रों के लिए साधारण कपड़ों को छोड़ कर और कुछ भी न चाहिए। गहने सुरुचि-द्योतक नहीं हैं। इसके सिवा, दो घण्टे से शृङ्गार कराने, नये कपड़े और गहने पहनाने से लड़के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी वही नहीं रह जाते। कुछ तो चिड़चिड़े हो जाते हैं और कुछ घमण्ड में फूल कर दूसरे ही लड़के हो जाते हैं।

सफ़ेद या बहुत हल्के रङ्ग के कपड़ों से चित्र में लड़के हबशी से प्रतीत होते हैं। इसलिए कपड़ों को लड़कों के रङ्ग से गाढ़ा ही होना चाहिए या यदि कुछ हल्का हो तो अन्तर बहुत कम होना चाहिए। प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़र) को कम रखने के लिए कोई भी वस्तु काले या ख़ूब गाढ़े रङ्ग की न हो तो अच्छा है। बहुत तेज़ प्रकाश में लड़कों को रखने से उनकी आँखों को चकाचौंध लगता है और स्वभावतः उनकी आँखों में सिकुड़न पड़ जाती है। दालान अच्छा स्थान है। प्रकाश-दर्शन ½ सेकंड से अधिक न हो तो अच्छा है। बच्चों को ध्यानपूर्वक देखने से आपको पता चलेगा कि चञ्चल से चञ्चल बालक भी कई बार एक आध सेकेंड के लिए स्थिर हो जाता है। इसी समय यदि भाव अच्छा हो तो प्रकाश-दर्शन देना चाहिए। पीछे का पर्दा एकरङ्गा रहना अच्छा है। यदि पृथ्वी पर एक सफ़ेद चादर बिछा दी जाय तो यह प्रकाश को ऊपर की ओर फेंककर छाया के कालेपन को कम करने के कारण प्रकाश-दर्शन को कुछ घटा सकेगा। तेज़ से तेज़ प्लेट और लेन्ज़ का सबसे बड़ा छेद प्रयोग करना अच्छा है।

फ़ोटग्राफ़ी के इस विभाग में अच्छे रिफ़्लेक्स कैमेरे से बड़ी सहायता मिलती है। इसका तेज़ अनैस्टिगमैट लेन्ज़ प्रकाश-दर्शन को बहुत कम कर देता है। फिर प्लेट चढ़ाने और इसके सामने से ढकने को हटा लेने पर भी फ़ोकस करने के सुभीते से बड़ी सहायता मिलती है। परन्तु ऐसे कैमेरे के न रहने से निराश न होना चाहिए। सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है "धैर्य"।

सिद्धहस्त

मौलिकता का स्वरूप।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने।

आज-कल हिन्दी-संसार में इस विषय पर बड़ी चर्चा हो रही है कि मौलिक ग्रन्थ किसे कहना चाहिए, उनका निर्माण क्यों नहीं हो रहा है और किन उपायों से वे तैयार हो सकते हैं। अमुक ग्रन्थ मौलिक है अथवा नहीं, इस विषय पर भी मतभेद हुआ करता है। इस लेख में इन्हीं प्रश्नों पर विचार किया जावेगा।

अँगरेज़ी में एक कहावत है—There is nothing new under the Sun अर्थात् इस पृथ्वीतल पर कोई भी वस्तु नई नहीं है। हमारे अध्यात्म-शास्त्र का भी यही सिद्धान्त है कि सृष्टि के समय जितने मूल-तत्त्व थे वही सृष्टि के अन्त तक रहेंगे। पहले की वस्तुओं के स्वरूप बदल देने से और मूलभूत पदार्थों का परस्पर मिश्रण कर देने से संसार में सदैव नई चीज़ें बनती रही हैं, नये आविष्कार हो रहे हैं और मानव-समुदाय को सुख-शान्ति की नई नई साधन-सामग्री मिल रही है। यह नाम-रूपात्मक सृष्टि सदैव नाम-रूप बदलती और नवीनता धारण करती जा रही है। जड़ और चेतन प्रकृति में यह क्रिया निर्बाध गति से हो रही है। उपर्युक्त सिद्धान्त की सत्यता साहित्य-संसार में भी देखने में आया करती है। संसार की स्वाभाविक परिवर्तन-शीलता से साहित्य-क्षेत्र भी मुक्त नहीं। प्रत्येक लेखक अथवा ग्रन्थकार कहीं से कुछ पढ़ता है, कहीं से कुछ भाव लेता है, कहीं से कुछ तर्कशैली लेता है, कहीं से कुछ सिद्धान्त लेता है, परन्तु उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावों और सिद्धान्तों को अपने साँचे में ढाल कर अपने निजी तरीक़े से व्यक्त करता है। विश्व के इसी रुचि-वैचित्र्य, हेतु-विभिन्नता और नाम-रूप-परिवर्तन में मौलिकता का बीज है। ऐसा कोई ग्रन्थकार अथवा विद्वान् नहीं जो संसार के पुराने अनुभव से लाभ न उठाता हो—पूर्वकालीन विद्वानों की बातों का मनन न करता हो।

मौलिकता एक विशिष्ट गुण, मानसिक अवस्था और विचार-शैली का नाम है। किसी विषय की नई प्रतिपादन शैली, विचारों की नई दिशा बतलाना, नये सिद्धान्तों का जन्म देना, प्रतिपाद्य विषय को देश-काल-पात्र के अनुसार नया रूप-रङ्ग देना, अनोखी सूझ, रचना-चातुर्य, चित्ताकर्षणशीलता, परिपक्वता, सजीवता और सरसता ही मौलिकता के लक्षण हैं। 'मौलिक' शब्द की उत्पत्ति 'मूल' शब्द से हुई है, अतएव जो ग्रन्थ किसी विषय के मूल, जड़ या तह तक पहुँच जाते हैं वही मौलिक कहे जा सकते हैं।

मौलिकता स्थूलरूप से दो प्रकार की होती है; असाधारण और साधारण। यदि कोई बालक पाँच वर्ष की अवस्था में ही उत्तम गायन-वाद्य जानता हो, यदि कोई मनुष्य सबसे पहले कोई ऐसे सिद्धान्त अथवा वस्तु का निर्माण कर सकता हो जिसे संसार उसके बतलाने के पहले न जानता था तो यह असाधारण अथवा प्राकृतिक मौलिकता होगी। साधारण मौलिकता समय पाकर शिक्षा, सत्सङ्ग और सतत परिश्रम के द्वारा प्राप्त होती है। वैज्ञानिक दृष्टि से ये दोनों भेद और भी सूक्ष्म और श्रेणीबद्ध उपविभागों में बाँटे जा सकते हैं, परन्तु इस समय हमारा उद्देश उन पर विचार करना नहीं है।

एक उदाहरण से उपर्युक्त भेदों का स्पष्टीकरण हो जायगा। पश्चिमी देशों में अपने द्वारा आविष्कृत पदार्थों के सब अधिकार सुरक्षित—पेटेन्ट—करा लेने की प्रथा है। मान लीजिए कि संसार में घड़ी नाम की कोई वस्तु नहीं है। वहाँ किसी बुद्धिमान् मनुष्य को इस बात की चिन्ता हो गई कि कोई ऐसा यन्त्र बनाया जाय जिससे लोगों को ठीक समय मालूम करने में सुभीता हो। वर्षों तक विचार और प्रयोग करते करते उसने अन्त में एक समय-सूचक यन्त्र का आविष्कार कर ही डाला और उसका नाम तथा रूप भी निश्चित कर दिया। वह तुरन्त शासकों के पास जाता है और उसको पेटेन्ट करा लेता है। घड़ी में जिन पदार्थों—लोहा, पीतल, टीन, काँच आदि—की आवश्यकता हुई वे सबके सब संसार में पहले से ही मौजूद थे, परन्तु उन सबको एकत्रित कर एक नूतन उद्देश के लिए अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से उसने एक नया नाम-रूप दे दिया। बस, वह उस वस्तु का मूल आविष्कर्ता हो गया। उसकी मौलिकता असाधारण थी, क्योंकि उसने संसार को जेब-घड़ी नाम की एक ऐसी वस्तु दे दी जो पहले कहीं देखी या सुनी न गई थी। एक दूसरा बुद्धिमान् पुरुष उस जेबी घड़ी में कुछ न्यूनता, फ़ैशन की कमी, दोष अथवा महँगापन देखता है और झट एक सस्ती, हल्की और ख़ूबसूरत मेज़-घड़ी बना कर उसे अपने नाम पर पेटेन्ट करा लेता है। एक तीसरे मनुष्य को दीवार-घड़ी बनाने की सूझती है और वह दीवार-घड़ी बना कर अपने नाम पर पेटेंट करा लेता है। मतलब यह है कि मेज़-घड़ी और दीवार-घड़ी बनानेवालों ने जहाँ संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नई वस्तुएँ दी हैं वहाँ उन्होंने पहले की जेब-घड़ी की बनावट के अनुभव से लाभ उठा कर उसके नाम और रूप को एक नये उद्देश से सिर्फ़ बदल दिया है अतएव उनकी मौलिकता साधारण कोटि की थी। परन्तु थी वह भी मौलिकता ही, क्योंकि उनके पहले किसी ने मेज़-घड़ी या दीवार-घड़ी नहीं बनाई थी।

अब साहित्य के उदाहरण लीजिए। आप गोस्वामी तुलसीदासजी और लोकमान्य तिलक को मौलिक ग्रन्थकार कहेंगे या अनुवादक और सङ्ग्रहकर्ता? गुसाईंजी की रामायण में जो कथा* है उससे बहुत कुछ मिलती-जुलती कथा महर्षि वाल्मीकि ने हज़ारों वर्ष पहले तैयार कर रक्खी थी। लोकमान्य तिलक के युगान्तरकारी ग्रन्थ—गीतारहस्य—में अनेक ग्रन्थकारों और ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। पाठक जानते हैं कि लोकमान्य ने गीता नहीं, उसका 'रहस्य' लिखा है। 'गीतारहस्य' की प्रस्तावना में तो वे खुले शब्दों में कहते हैं कि 'सन्तों की **उच्छिष्ट** उक्ति है मेरी बानी।' तो क्या इसी से गुसाईंजी और लोकमान्य के ग्रन्थ मौलिकता-रहित हो सकते हैं? कभी नहीं। विषय कहीं का और कुछ भी हो, उसे पाठकों की सेवा में उपस्थित करते समय ग्रन्थकार यदि अपनी ओर से भी भाषा, भाव, व्यक्तित्व आदि की स्थायी, महत्त्वपूर्ण और लोकोपयोगी नवीनता मिला सकता है—यदि वह उस 'उच्छिष्ट' को एक नये स्वाद के साथ ग्राह्य नाम-रूप देकर परोस सकता है—तो वह ग्रन्थकार और उसका ग्रन्थ अवश्य ही मौलिक है। मौलिक ग्रन्थकार और मधुमक्खी का कार्य एक ही है। मधुमक्खी सभी फूलों के सुरस और सौरभ को चूस कर एक नवीन अमृत वस्तु बनाती है। मौलिक ग्रन्थकार भी प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों के अनेक ग्रन्थ-पुष्पों से ज्ञानरूपी सुरस के कणों का सञ्चय करता और समाज को अपने भाव और दृष्टि-कोण से भरा हुआ एक स्वतन्त्र ग्रन्थ-रत्न देता है।

असाधारण कोटि के मौलिक ग्रन्थ संसार की किसी बाह्य शक्ति की प्रेरणा से नहीं बनते। बड़े से बड़े पुरस्कार का लोभ, ग्रन्थप्रकाशकों का अत्यन्त मोहक विज्ञापन, पूँजीपतियों का चकाचौंध करनेवाला वैभव और सभा-सम्मेलनों का सुगठित प्रस्ताव ऐसे ग्रन्थों का निर्माण नहीं करा सकता। पृथ्वी-तल पर आज जिन इने-गिने सौ-पचास ग्रन्थ-रत्नों का अटल साम्राज्य है वे किसी के कहने पर नहीं बनाये गये थे। वेद, महाभारत, रामायण, गीता, क़ुरान, बाइबिल, ज़ेन्दावेस्ता और कालिदास, मेकाले, शेक्सपियर आदि की रचनायें इस बात के उदाहरण हैं। 'गीताञ्जलि' लिखने पर किसी को नोबुल प्राइज़ भले ही मिल जाय पर नोबुल प्राइज़ की प्रेरणा 'गीताञ्जलि' की रचना नहीं करा सकती। यही कारण है जिससे भारतवर्ष के श्रेष्ठ ग्रन्थकारों का आदर्श निर्धनता, कुटी और लँगोटी ही रहा है।

अद्वितीय ग्रन्थ अपने समय पर ही बनते हैं। वे न तो पूर्व-निश्चित पृष्ठ-संख्या की बेड़ियों में

---

*स्वयं गुसाईंजी कहते हैं—

'नाना पुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।'

लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँधे जा सकते हैं और न परिमित अवधि का बन्धन ही स्वीकार करते हैं। जिस तरह साधु-सन्तों, धार्मिक सम्प्रदायों और विशेषज्ञ राजनीतिज्ञों के निर्माण का कोई समय होता है उसी तरह अद्वितीय ग्रन्थों के निर्माण का भी एक विशेष युग होता है। मुग़ल-बादशाहों के ज़माने में हिन्दू-धर्म पर आघात होता था। उस समय परिस्थिति और आवश्यकता हृदयवान् पुरुषों को धर्म-रक्षा के क्षेत्र में आह्वान करती थी। उस समय प्रान्त-प्रान्त में अनेक सम्प्रदायों और सच्चे साधु-सन्तों का निर्माण हुआ और देशी भाषाओं में उच्च कोटि के अनेक धार्मिक ग्रन्थ तैयार हुए। जब इस देश में घी-दूध की नदियाँ बहती थीं और भौतिक सुख-शान्ति सम्पन्न भारतवासियों के चरणों पर लोटती थी उस समय भारतवर्ष ने वेदान्त, काव्य, ज्योतिष, उपनिषद् और पुराणों की गङ्गा बहा दी थी। वर्तमान युग ने केवल 'गीता-रहस्य' का निर्माण किया है।

समय के आदेशों को समझनेवाले ज्ञानी और ईश्वरी सङ्केतों को देखनेवाले सत्पुरुष ही अद्वितीय ग्रन्थ बना सकते हैं। ऐसे ग्रन्थ हृदय के उद्गार और अन्तरात्मा की प्रबल प्रेरणा के प्रवाह हैं—शब्दों की ठूँस-ठाँस, तुक्कड़बाज़ी और लिक्खाड़-पन के परिणाम नहीं। इनकी रचना अपने जीवन के ध्येय पर तन्मय रहनेवाले अवतारी पुरुष, प्रकृति की गोद में शिक्षा लेनेवाले योगी, अपने विचारों की धुन में तल्लीन रहनेवाले सत्यशोधक पागल, आजीवन तपस्या करनेवाले साधु, नीतिमत्ता और तत्त्वप्रेम को दैनिक जीवन की मामूली बातें बना डालनेवाले सत्पुरुष, एकान्त में चिन्तन तथा मनन करनेवाले स्वाध्यायी, बौद्धिक दासता का तिरस्कार करनेवाले मनस्वी और मानव-समाज का सूक्ष्म निरीक्षण करनेवाले जिज्ञासु ही कर सकते हैं। उच्च सिद्धान्तों और मौलिक विचारों को जन्म देना प्रतिभाहीन लेखक और श्रीमानों के चापलूसों का काम नहीं है। जिसके हृदय में स्फूर्ति होगी—जिसके अन्तःकरण में विचारों और भावों का समुद्र हिलोरें लेता होगा—वही इस काम को सफलता से कर सकता है।

अभी हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में उच्च कोटि के स्वतन्त्र ग्रन्थों के निर्माण होने का युग नहीं आया है। इसका एक ताज़ा प्रमाण तो यही है कि बिहारी-सतसई पर टीका लिखनेवाले सज्जन को १२०० रुपयों का पुरस्कार दिया गया है। इसके उल्लेख करने में मेरा उद्देश उस टीका को किसी तरह हीन सिद्ध करना अथवा उसके विद्वान् टीकाकार का अनादर करना कदापि नहीं है। मेरा तात्पर्य केवल यही है कि हिन्दी-भाषा के वर्तमान क्षेत्र में ऐसे अनेक कारण और बुराइयाँ हैं जो स्वतन्त्र ग्रन्थों के निर्माण में बाधा-स्वरूप हैं और जिनके शीघ्र ही दूर होने की आशा नहीं है। उनमें से मुख्य कारणों का उल्लेख नीचे किया जाता है—

(१) पहला कारण है लेखकों और ग्रन्थकारों की जीवन-चिन्ता। यहाँ मेरा मतलब विशेषतः उन सिद्धहस्त विद्वानों से है जो आदर्श ग्रन्थकार हो सकते हैं। उनमें से अधिकांश जीवन-निर्वाह की भयङ्कर चपेटों में—'तिल, तण्डुल, लवण और इन्धन की ही चिन्ता में'—पड़े रहते हैं। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे रोटी के प्रश्न को हल करने में व्यस्त हो जाते हैं तो तत्त्वान्वेषण नहीं कर सकते। और चिन्तन, मनन तथा एकान्त-सेवन करनेवाले यदि अपनी बहुत सी शक्ति द्रव्योपार्जन में लगा दें तो वे कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं लिख सकते। राजा भोज के ज़माने में एक श्लोक पर लाख मुद्रा मिलने की कथा प्रसिद्ध है। और आज-कल हिन्दी-पुस्तकों के बड़े से बड़े प्रकाशक ग्रन्थकारों से यह आशा करते हैं कि छपी हुई पुस्तक की सौ-पचास प्रतियाँ देकर उस पर सदा के लिए "सर्व-स्वत्व-स्वाधीन" का सिक्का लगा दिया जाय! उत्तम से उत्तम ग्रन्थ-कार को उसके परिश्रम का केवल उचित पुरस्कार नहीं मिलता—अधिक की बात तो दूर रही। जब तक हिन्दी में लेखन-कार्य, पश्चिमी देशों की तरह, जीवन-निर्वाह के लिए निश्चिन्त और आदर-णीय व्यवसाय की अवस्था में न पहुँचेगा तब तक शिक्षित समुदाय में विशुद्ध विद्या-व्यसन और ग्रन्थ-लेखन-प्रेम अधिकता से उत्पन्न हो नहीं सकता।

(२) लेखन, सम्पादन और ग्रन्थ-निर्माण-कला की वैज्ञानिक पद्धति से शिक्षा देनेवाला कोई विद्यालय समस्त भारतवर्ष में, जहाँ तक पता लगता है, एक भी नहीं है। यहाँ तो दशा ही विचित्र है! जिसने दो आने की क़लम पकड़ी वही लेखक और जिसने सौ पृष्ठों का रायल अठ-पेजी उपन्यास गोदगाद डाला वही ग्रन्थकार हो जाता है!! लेखनी की शक्ति के आगे तलवार सिर झुका देती है। बड़े बड़े प्रबल अत्याचारियों को सजीव लेखनी ने खोद कर बहा दिया है। क्या एक निर्जीव लकड़ी का टुकड़ा भी यह काम कर सकता है?

(३) गुणग्राही और निष्पक्ष समालोचकों का अभाव भी एक बड़ा खटकनेवाला दोष है। अच्छे आलोचकों के न होने और व्यक्तिगत ईर्ष्याद्वेष के कारण मनमानी समालोचना करने से साहित्य पर बड़ा वज्राघात हुआ करता है। गुण को गुण और दोष को दोष कहनेवाले विद्वानों की बड़ी आवश्यकता है। 'छपाई-सफ़ाई अच्छी है' और 'पाँचवें पृष्ठ पर 'साम्हने' और 'चाहिये' के स्थान पर 'सामने' और 'चाहिए' होना चाहिए' लिख कर ही अपने को समालोचक मान बैठनेवालों की संख्या कम नहीं है। सुशिक्षित विद्वानों के ग्रन्थों की अनाप-सनाप निन्दा का अनधिकार-चर्चा करनेवाले वृथाभिमानी पत्र-सम्पादकों की गति जब तक न रोकी जावेगी तब तक साहित्य उन्नति की ओर अग्रसर हो नहीं सकता। गन्दी पुस्तकों की तीव्र टीका करने की जितनी आवश्यकता है उससे अधिक आवश्यकता अच्छे ग्रन्थों की विस्तृत और विचारपूर्ण आलोचना होने की है।

(४) समर्थ प्रकाशक और हिन्दी के धनवान् शुभचिन्तक मौलिक ग्रन्थों के प्रकाशित न होने की शिकायत कर व्यर्थ चिल्लाहट मचाने के बजाय अधिकारी विद्वानों से ग्रन्थ लिखवाने में अधिक ध्यान दें तो हिन्दी-साहित्य की कायापलट हो सकती है। अभी इस विशाल देश में अपने विषय के ऐसे विशेषज्ञ विद्वान्, विज्ञानाचार्य, राजनीतिज्ञ, साहित्यसेवी, अर्थ-शास्त्री, इतिहास आदि काफ़ी तादाद में मिल सकते हैं जो अपनी से अच्छे ग्रन्थ, अपने सुभीते और अपनी शर्तों पर, लिख सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) साहित्य को प्रबल राजाश्रय का अभाव होना, अधिकांश पाठकों में उच्च कोटि की साहित्यिक रुचि का न होना, व्यक्तियों और संस्थाओं के द्वारा पात्रता का विचार न होकर मनमानी उपाधि-वर्षा होना, अधिकांश लेखकों और प्रकाशकों का उद्देश केवल द्रव्य-प्राप्ति होना, और अधिकांश उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों में मातृ-भाषा-प्रेम का न होना भी ऐसे ज़बर्दस्त कारण हैं जिनसे अच्छे अच्छे मौलिक ग्रन्थों के निर्माण में बड़ी बाधा होती है। विस्तारभय से इनका यहाँ उल्लेख-मात्र कर दिया गया है।

यह पुस्तक वितरित न की जाय।

उपर्युक्त कारणों से मालूम हो सकता है कि अभी अद्वितीय ग्रन्थ वर्षों तैयार नहीं हो सकते। यह साहित्यिक भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि अद्वितीय ग्रन्थ-रचना करने की योग्यता रखनेवाले जो थोड़े से विद्वान् यहाँ हैं उनमें से प्रायः सभी दूसरी उलझनों में फँसे रहते हैं। यदि उन्हें कभी समय और सुभीता मिल भी जाता है तो उन्हें सद्ग्रन्थ-रचना से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगे रहना पड़ता है। इसलिए अभी असाधारण कोटि के ग्रन्थों की आशा करना दुराशा-मात्र है। परन्तु साधारण कोटि के स्वतन्त्र और लोकोपयोगी ग्रन्थों की भी तो हमारे यहाँ बेहद कमी है। संसार के नित्य के व्यावहारिक कार्यों के लिए भिन्न भिन्न विषयों पर अभी हिन्दी में द्वितीय श्रेणी के हज़ारों मौलिक और अनुवादित ग्रन्थों की आवश्यकता है। व्यय, परिश्रम और मानव-शक्ति से जितना साध्य है उसका शतांश-सहस्रांश भी अभी नहीं किया गया है। भौतिक-शास्त्र, पश्चिमी विज्ञान, शासन-शास्त्र, राष्ट्रीय इतिहास, शिक्षा आदि नितान्त उपयोगी विषयों पर हिन्दी में कितने ग्रन्थ तैयार हैं जो अच्छे और मौलिक समझे जा सकते हैं? क्या इस दिशा में एक बहुत बड़ी मंज़िल तय करना बाक़ी नहीं है? क्या भविष्य में अभी बहुत समय तक हिन्दी-साहित्य-सेवियों को अर्ध-मौलिक और अनुवाद-ग्रन्थ ही तैयार न करना पड़ेगा? अन्य भाषाओं में अनन्त ज्ञानभाण्डार भरा पड़ा है। हिन्दी-हितैषी अधिकांश लेखकों और ग्रन्थकारों को उत्तम ग्रन्थों के अनुवाद का काम ही, निस्सङ्कोच भाव से, वर्षों करना चाहिए।

आरम्भ के श्लोक में नीतिकार ने बतलाया है कि प्रत्येक शैल में माणिक्य, प्रत्येक हाथी में गज-मुक्ता, प्रत्येक स्थान में साधु-पुरुष और प्रत्येक जङ्गल में चन्दन नहीं मिल सकते। बात सच है। पर इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं। संसार के अनेक कार्य बनावटी रत्न, नक़ली मोती और कृत्रिम चन्दन से ही चलते हैं। पुरुषार्थ और अभ्यास-जन्य मौलिकता संसार का बड़े से बड़ा कल्याण कर रही है। 'प्रकृति' हमारे लिए केवल गन्ने तैयार कर देती है—वह गुड़, शक्कर और मिठाई कभी नहीं बनाती। इन वस्तुओं को 'पुरुष' अपनी बुद्धि से बनाता है। मनुष्य व्यय, श्रम, अनुसन्धान और साधना से प्रतिदिन अपूर्णता से पूर्णता की ओर अग्रसर हो रहा है। अब हिन्दी में भी कभी कभी भिन्न भिन्न श्रेणियों के मौलिक ग्रन्थ निकल जाया करते हैं। परन्तु उनकी उत्पत्ति का कारण बहुधा व्यक्तिगत प्रयास ही रहता है। विद्वानों के सम्मिलित प्रयास से राष्ट्रीय साहित्य-रचना की ओर ऐसी सफलता मिल सकती है जिससे आगामी पीढ़ियों को अभिमान तथा सन्तोष हो और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यिक सर्वाङ्गीणता की दृष्टि से स्वावलम्बन की शिक्षा मिले।

मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

जयपुर के तीन ऐतिहासिक व्यक्ति।

(१)

ख़ुशहालीराम।

आज से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व जयपुर के समीप एक छोटे से गाँव (वोहरा के नागल) में वोहरा ख़ुशहालीराम एक ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुए थे। इनका जन्म अठारहवीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। दरिद्र माता-पिता के घर जन्म लेकर भी ये बड़े बुद्धिमान, प्रतिभा-सम्पन्न, कूटनीतिज्ञ और विख्यात व्यक्ति हुए। इनके जन्म के पीछे इनके पिता की साम्पत्तिक स्थिति की लोकोत्तर वृद्धि हुई थी।

उन दिनों माचेरी-राज्य जयपुर-राज्य के ही अन्तर्गत था। जयपुर के तत्कालीन महाराज माधवसिंह ने प्रतापसिंह नरूका को पहले माचेरी के सामन्त-पद पर आरूढ़ किया था, किन्तु पीछे किसी अपराध के कारण उनको पदच्युत कर दिया। तब उन्होंने भरतपुर के जाटराजा का आश्रय लिया। इस समय ख़ुशहालीराम उनके साथ थे।

जिस समय जाटराज जवाहिर पुष्कर-यात्रा से लौटते हुए गर्वान्वित होकर जयपुर-राज्य का अपमान करके युद्ध करने को सन्नद्ध हुए उस समय ख़ुशहालीराम ने तुरन्त ही अपने आश्रय-दाता का पक्ष परित्याग करके अपनी जन्मभूमि के अधिपति जयपुराधीश का पक्ष लिया और चौमूँ-नरेश श्रीरणजीतसिंह आदि सामन्तों को सहायता देकर जयपुर-राज्य को विजयश्री प्राप्त करवाई।

जयपुर-नरेश महाराज माधवसिंह के पृथ्वीसिंह और प्रतापसिंह नामक दो पुत्र थे। ये भिन्न भिन्न रानियों से उत्पन्न हुए थे। माधवसिंह की मृत्यु के

ख़ुशहालीराम बोहरा।

पीछे पृथ्वीसिंह की छोटी अवस्था होने से प्रताप-सिंह की माता ने प्रतिनिधिरूप से राज्य-शासन ग्रहण किया था। उस समय आरतराम मंत्री और ख़ुशहालीराम सहकारी हुए थे। [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हालीराम उच्च श्रेणी के नीतिज्ञ होकर भी रानी के कृपापात्र फ़ीरोज़ख़ाँ के प्रभुत्व से कुछ कर-धर न सकते थे।

पृथ्वीसिंह की मृत्यु के पीछे उनके औरस मानसिंह मौजूद थे, तो भी उनके भाई प्रतापसिंह अपनी माता के प्रताप से राज्याधिकारी हुए। उस समय ख़ुशहालीराम प्रधान मन्त्री हो गये थे और राजा कहलाते थे। इस नियुक्ति का फल यह हुआ कि धीरे धीरे फ़ीरोज़ख़ाँ का प्रभुत्व सहज ही निष्प्रभ और निश्शेष हो गया और ख़ुशहालीराम ने अपना आधिपत्य भले प्रकार जमा लिया।

आरम्भ ही में कहा गया है कि ख़ुशहालीराम कूटनीति में कुशल थे। माचेरी-राज्य, जो जयपुर-राज्य की शृङ्खला में आबद्ध था, इन्हीं की कूटनीति के कारण उच्छृङ्खल हो सका था। जयपुर से अलग किये जाकर जाट-राज का आश्रय लेना और फिर उसी जाट-राज को परास्त करवा कर धीरे धीरे जयपुर-राज्य के प्रधान मन्त्री का पद तक प्राप्त करना तथा फिर उसी राज्य के संयुक्त अंश को स्वाधीन बनाना आदि लीलायें उनकी कूटनीति की ही द्योतक हैं।

टाड साहब के मतानुसार ख़ुशहालीराम प्रथम श्रेणी के स्वाभिमानी, स्वामिभक्त और कूटनीतिज्ञ थे। जिस समय दिल्ली-सम्राट् के सेनापति नज़फ़ख़ाँ आगरे में जाटों के आक्रमण रोक रहे थे उस समय राजा ख़ुशहालीराम बोहरा ने अपने पूर्व प्रभु माचेरी के सामन्त प्रतापसिंह से उनको सहायता दिलाई और जाटों को हटाया। इस प्रकार सम्राट् को प्रसन्न करके जयपुर के अधीन माचेरी-राज्य के सामन्त को स्वाधीन शासक की सनद दिलवा दी। इस सफलता को प्राप्त करके दूसरे अवसर पर माचेरी के रावराजा से षड्यन्त्र रचकर उनको आमेर के सर्वेसर्वा बनाने का भी उद्योग किया। किन्तु जब उनका वह उद्योग चल न सका तब उन्होंने प्रतापराव को फ़ीरोज़ का परम विश्वासी मित्र बना कर उन्हीं के हाथ से उसे विषपान-द्वारा मरवा दिया और आप निष्कण्टक होगये।

कहा जाता है कि ख़ुशहालीराम शाही दरबार के अधीश्वरों के सम्मुख भी अपने दोनों घुटने पृथ्वी से टेक कर बैठते थे। इस प्रकार बैठने का कारण वे यह बतलाते थे कि हिन्दवानी और तुर्की दोनों शक्तियों को दाब कर बैठता हूँ। यदि इस प्रकार न बैठूँ तो किसी एक शक्ति के उच्छृङ्खल हो जाने का डर है। वास्तव में इनका विलक्षण साहस तथा गाम्भीर्य ऐसा ही लोकोत्तर था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इनके अनुगामी रहते थे और युद्ध आदि के अवसर पर इनके सङ्केत के अनुसार काम करने के लिए दोनों जाति की सेनायें सदैव उद्यत रहती थीं।

जयपुर के महाराज प्रतापसिंह जब तक अपने प्रतापादित्य का प्रकाश फैलाने में समर्थ न हुए तब तक बोहरा ख़ुशहालीराम ने अनेक ऐसे भी कार्य किये जिनसे महाराज का मन इनसे फिर गया। किन्तु ज्योंही महाराज ने अपने स्वरूप का अनुभव किया, त्योंही सबसे पहले बोहरा ख़ुशहालीराम को पार्वत्य प्रदेश के एक क़िले में क़ैद करके जयपुर-राज्य में शान्ति का स्थापन किया। थोड़े दिनों पीछे उन्होंने इनको क़ैद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मुक्त करके मुक्ति-लाभ करने का अवसर दिया। क़ैद से छूटने के बाद ख़ुशहालीराम ने ईश्वर-भजन में मन लगाया। इन्होंने बहुत दिनों तक भगवद्भजन किया। इन्होंने जयपुर के पुराने घाट पर भगवान् का एक सुविशाल मन्दिर भी बनवाया। यह मन्दिर आज भी नया मालूम होता है। सवा सौ डेढ़ सौ वर्ष का पुराना हो जाने पर भी अभी उसमें किसी प्रकार की जीर्णता के चिह्न नहीं देख पड़ते।

(२)

रोड़ाराम ख़वास।

ख़वास—रोड़ाराम, जयपुर।

ख़वास रोड़ाराम जाति के दर्ज़ी थे। बुद्धि-चातुर्य, साहस और कार्यसाधन की प्रवीणता, ये गुण इनमें यथोचित थे। जयपुर-नरेश महाराज जगतसिंह के ज़माने में मुख्य मुसाहबों में इनकी गणना थी। एक बार इनको एक दिन के लिए जयपुर के प्रभुत्व का पद भी प्राप्त हुआ था। ये लार्ड लेक की सेवा में दूत बन कर भी एक बार उपस्थित हुए थे। वर्तमान ख़वास बालाबख़्श इन्हीं के वंशधर हैं।

(३)

संघी झूँताराम।

वर्तमान व्यवस्थाओं को देख कर बहुधा लोग कुण्ठित हुआ करते हैं। किन्तु कुण्ठित होने का कोई कारण नहीं। काल-चक्र के परिभ्रमण में सदा सुकार्य ही होते रहते हैं।

संघी झूँताराम सच्चरित्र नहीं था। उसकी जीवन-घटनाओं में दुश्चरित्रों की दुर्गन्ध ही अधिक थी। किन्तु उन दिनों के राजभक्त कैसे निर्भीक, प्रतिभासम्पन्न और विघ्नोन्मत्त होते थे, यह दिखाने को ही इसके चरित्र का उल्लेख करना पड़ता है।

लब्धप्रतिष्ठ और वीर क्षत्रियों में अग्रगण्य नाथावतों ने जयपुर-राज्य को अपनी पैत्रिक सम्पत्ति समझ कर उसे आगन्तुक और उपस्थित आपत्तियों से बचाये रखने के लिए समय समय पर समयोचित प्रयत्न सदैव किये हैं। जब कभी वे राज्य के प्रधान पद से पृथक् रहे और विजातीय मन्त्रियों ने उनके साथ असङ्गत बर्ताव किया तब भी वे राजभक्त बने रहने में, अपनी राजभक्ति में उन्होंने कभी त्रुटि नहीं होने दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह संवत् १८७६ के पौष में परलोकवासी हुए। उस समय राज्य की स्थिति डावाँडोल हो रही थी। उनकी विधवा रानी सगर्भा थीं, तो भी एक नाज़िर के मोह-जाल में आकर नरवर के एक राजकुमार राज्यासन पर आरूढ़ हो गये। गवर्नमेंट भी इस भ्रान्ति-कर्म से म्लान हुई। इस अनौचित्य से मन्त्रि-मण्डल तथा सामन्तगण में समरानल को प्रज्वलित

नारकीय झूँतालाल संघी।

देख कर नाथावतों को बड़ी चिन्ता हुई। सामोद के रावल वैरीसाल और चौमूँ के ठाकुर कृष्ण-सिंह आदि के प्रयत्न करने से यह निश्चय हुआ कि रानी अवश्य गर्भवती हैं। इस निश्चय से सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गई।

भगवान् की कृपा से आशार्थियों की आशा सफल होने के लिए संवत् १८७७ की वैशाख शुक्ल २ को भटियानी रानी के गर्भ से महाराज जयसिंह तृतीय का जन्म हुआ। यद्यपि रानी ने पुत्र के नाम से शासन करना आरम्भ कर दिया था तथापि गवर्नमेंट ने जयपुर-राज्य की मङ्गल-कामना से महा बुद्धिमान् रावल वैरीसाल को वहाँ का प्रधान मन्त्री नियत किया। इस पद पर प्रतिष्ठित होकर रावल वैरीसाल ने जयपुर-राज्य को जयपुर की प्रजा को और गवर्नमेंट को मन्त्रमुग्ध की तरह बहुत सन्तुष्ट रक्खा। किन्तु कुचक्रियों के कारण यह सुख-शान्ति अधिक दिन तक नहीं रही। थोड़े ही दिनों पीछे संघी झूँताराम ने षड्यन्त्र के प्रभाव से उस मन्त्रिपद को प्राप्त कर लिया और अपने अनुगामी कर्मचारियों को नियुक्त करके स्वेच्छाचारिता से राज्य के प्रत्येक प्रान्त में उत्पात और अत्याचारों के अड्डे खड़े कर दिये, जिनसे स्थिति फिर भयङ्कर होगई।

जब तक भटियानी रानी जीवित रहीं तब तक वे गवर्नमेंट की सन्धि की सम्मान-पूर्वक रक्षा करती रहीं और प्रतिवर्ष नियमित कर भिजवाती रहीं। इससे कोई उपद्रव प्रकट नहीं हुआ। परन्तु संवत् १८९० में उनके परलोकवास करते ही संघी के कारण यहाँ का रङ्ग बिलकुल बदल गया। संघी झूँताराम ने सोचा कि गुप्त और प्रकटरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से किये हुए पापों की राशि बहुत बढ़ गई है और सम्भव है कि किसी दिन नवयुवक महाराज जयसिंह शासनाधिकार ग्रहण करके इन पापों का प्रायश्चित्त करावें। अतः उनके मित्र-सम्मिलन आदि में भी वह बाधा डालने लगा। उसको विश्वास था कि राज्य-रक्षकों में नाथावत सर्वोत्कर्ष हैं। कदाचित् महाराज का उनसे एकान्त हो जायगा तो शीघ्र ही दुर्गति के दिन देखने पड़ेंगे। अतः उसने नाथावतों से उनको कभी नहीं मिलने दिया। कहा जाता है कि नाथावतों के वासस्थान चौमूँ और सामोद से महाराज यहाँ तक अपरिचित रहे थे कि दस कोस की दूरी को भी वे बहुत दूर समझते थे। अस्तु।

मनुष्य, पाप से जैसा भयभीत और निर्बुद्धि हो जाता है वैसा अन्य कारणों से नहीं होता। संघी भूँताराम ने पाप ही के प्रभाव से विशेष निर्बुद्धि हो कर आनेवाली आपदाओं से बचने के लिए महाराज जयसिंह को विषपान के द्वारा मरवा दिया। इस महा अनर्थकारी कार्य को उसने महलों की परिचारिका रूपां बड़ारन के साहचर्य से सिद्ध किया। महाराज जयसिंह उस समय सिर्फ़ सत्रह वर्ष के थे। युवावस्था के सुखों का रसास्वाद भी वे बहुत नहीं ले सके थे। ऐसी अवस्था में उस दुष्ट ने अकाल ही में उनके प्राण लिये। महाराज दो वर्ष के एक पुत्र को छोड़ कर संवत् १८९३ के माघ में मृत्यु को प्राप्त हुए।

इस गुप्त पाप के भारी भार से भूँताराम और भी भयभीत हुआ। उसने निश्चय किया कि महाराज की आकस्मिक मृत्यु का समाचार सुन कर नाथावत अनाहूत अवस्था में भी अवश्य आवेंगे और वे इसका प्रतिफल बिना दिये भी न रहेंगे। अतएव उसने उनके मार्गावरोध के लिए चाँदपोल दरवाज़े के बाहर बहुत दूर तक श्रेणीबद्ध सशस्त्र सेना के मोर्चे लगवा दिये।

संघी के अत्याचारों से जयपुर की प्रजा पीड़ित हो रही थी। महाराज के विषय में उनको विषूचिका होने के शङ्काजनक समाचार सुनने से प्रजा के प्राण और भी सूखे जा रहे थे। ऐसे अवसर पर जयपुर की सम्पूर्ण प्रजा नाथावतों के आह्वान के लिए अपनी अन्तरात्मा से बारम्बार आग्रह कर रही थी।

जयपुर में नाथावतों के हित साधक, सहायक, गुप्तचर और विश्वासपात्र उस समय भी बहुत थे। तुरन्त ही महाराज की आकस्मिक मृत्यु का समाचार चौमूँ और सामोद के नरेशों को सूचित किया गया, और साथ ही उनके मार्गावरोध में खड़ी हुई सुसज्जित सेना का हाल भी सुना दिया गया। ठाकुर कृष्णसिंह और रावल वैरीसाल दोनों ने महासाहस करके अपने सहचर वर्ग को साथ लेकर चौमूँ और सामोद से शीघ्र ही पृथक् पृथक् प्रस्थान किया और वहाँ से आठ कोस की दूरी पर अमानीसाह के नले में आकर उपस्थित हुए।

उन दिनों उपर्युक्त सामन्तों के पास बड़े बड़े कार्य-कर्त्ता, साहसी, धीर-गम्भीर, चतुर-शिरोमणि, बुद्धिमान्, प्रणपालक, राजभक्त, पूरे चालाक, पक्के जासूस और महाबलशाली अनेक भद्र पुरुष थे। उन्हीं लोगों के भरोसे पर वे मार्गावरोध का कुछ विचार न करके अनाहूत ही जयपुर आये थे। उस समय उसके पास पाँच सौ अश्वारोही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर थे। अमानीसाह के नले में मार्गावरोध भङ्ग करने की व्यवस्था स्थिर करके उन्होंने अनियत मार्ग से आकर जयपुर की सेना को सहसा आक्लान्त किया और उसे अपने अधीन करके जयपुर में निष्कण्टक रूप से पदार्पण किया। उनके आते ही 'नाथावत आगये' का जनरव जयपुर में बिजली की तरह अति शीघ्र सर्वत्र व्याप्त हो गया। इस अघटित घटना के सङ्घटित होने को सुन कर रूपाँ बड़ारन अन्तःपुर के बहुमूल्य आभूषणों को एकत्र करके फटे पुराने वस्त्रों से दीन-दुखिया के वेश में चम्पत होने की तैयारी कर रही थी। दूरदर्शी नाथावतों ने उसके ऐसा करने के पहले ही कल्पना करके सबसे प्रथम उसे ही अपने क़ब्ज़े में किया और वे यथास्थान स्थित हुए।

महाराज की ऐसी आकस्मिक मृत्यु का अनुसन्धान करने के लिए गवर्नमेंट की ओर से गवर्नर जनरल के एजेंट कर्नल अलविस आये थे। उन्होंने आते ही सर्वप्रथम झूँताराम संघी को पदच्युत करके रावल वैरीसाल को पुनः प्रधान मन्त्री के पद पर प्रतिष्ठित किया। और शिशु महाराज के अभिभावक की योजना तथा शासन-सम्बन्धी सुधारों के निमित्त प्रबल विधि की व्यवस्था प्रारम्भ की। ऐसी परिस्थिति में भी संघी झूँताराम ने एजेंट साहब के मारने का षड्यन्त्र रचा और उनके सहकारी मिस्टर ब्लेक सचमुच ही षड्यन्त्रकारियों के द्वारा मारे गये। उनका मारनेवाला बालानन्दजी की मोरी की ओर के नगर-प्राकार पर से कूद कर भाग गया था। किन्तु पीछे वह पकड़ा गया।

अन्त में रावल वैरीसाल ने ऐसे प्रजापीड़क राजविद्रोही पुरुषों का अच्छी तरह अनुसन्धान करके यथोचित दण्ड-द्वारा उनका निपात किया और संघी झूँताराम को पकड़ कर मरण-पर्यन्त के लिए चुनारगढ़ के क़िले में क़ैद करवा दिया।

हनूमान शर्मा

कवि की स्त्री।

(१)

सत्यवान—

छात्रावस्था में मैं और मणिराम साथ ही साथ पढ़े थे। उस समय हम एक दूसरे पर प्राण देते थे। वे बचपन के दिन थे। जब तक एक दूसरे को देख न लेते, शान्ति न मिलती। उस समय हमें बुद्धि न थी। पीछे से प्रेम का स्थान वैर ने ले लिया था, दोनों एक दूसरे के लहू के प्यासे हो गये थे। तब हम शिक्षित हो चुके थे। एफ़० ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात् हमारे रास्ते अलग अलग हो गये। मणिराम मेडिकल-कालेज में भर्ती हो गया। मैंने साहित्य-संसार में पाँव रक्खा। मुझे रुपये-पैसे की परवा न थी, पूर्वजों की सम्पत्ति ने इस ओर से निश्चिन्त कर दिया था। दिन-रात कविता के रस में लवलीन रहता। कई कई दिन घर से बाहर न निकलता। इन दिनों मेरे सिर पर यही धुन सवार रहती थी। एक एक पद पर घण्टों ख़र्च हो जाते थे। अपनी रचना को देख कर मैं गर्व से झूमने लग जाता था। कभी कभी मुझे अपनी कविता में तुलसीदास की उपमा और सूरदास के रूपकों का स्वाद आता था। जब मेरी कवितायें पत्रों में निकलने लगीं तब मेरा कवित्व का मद उतरने लगा। मद उतर गया, परन्तु उसका नशा न गया। यह नशा प्रख्याति, कीर्ति और यश का नशा था। थोड़े ही वर्षों में मेरा नाम हिन्दी-संसार में प्रसिद्ध हो गया। मैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब कुछ काम न करता था। केवल बड़े बड़े लोगों को पार्टियां दिया करता था। अब इसके बिना मुझे चैन न मिलती थी। कविता में उतना मन न लगता था। पहले मेरा सारा समय इसी की भेंट होता था, बस वह जी-बहलावे की चीज़ हो गई थी। परन्तु जब कभी कुछ लिखता तब रङ्ग बांध देता था। तुच्छ से तुच्छ विषय को भी लेता तो उसमें जान डाल देता था।

उधर मणिराम चिकित्सा के ग्रन्थों के साथ सिर फोड़ता रहा। पांच वर्ष बाद एसिस्टेंट सर्जरी की परीक्षा पास करके उसने अपनी दूकान खोल ली। परीक्षा का परिणाम निकलने के समय उसका नाम एक बार समाचार-पत्र में निकला था। इसके पश्चात् फिर कभी उसका नाम पत्रों में नहीं छपा। इधर मेरी प्रशंसा में प्रति दिन समाचार-पत्रों के पृष्ठ भरे रहते। वह दूकान पर सारा दिन बैठा रोगियों की बाट देखता रहता था। परन्तु उसका नाम कौन जानता था? लोग उधर जाते हुए झिझकते थे। मैं उसकी ओर देखता तो घृणा से मुँह फेर लेता, जिस प्रकार मोटर में चढ़ा हुआ मनुष्य पैदल जानेवालों को घृणा से देखता है।

(२)

एक दिन एक पत्र आया। उसमें मेरी कवित्व-कला की बहुत ही प्रशंसा की गई थी। मेरा अस्तित्व देश और जाति के लिए सम्मान और गौरव का हेतु बताया गया था। मेरे पास ऐसे पत्र प्रायः आते रहते थे, यह कोई नई बात न थी। कभी कभी तो ऐसे पत्रों को देख कर झुँझला उठता था। परन्तु यह पत्र एक स्त्री की ओर से था। हम पुरुषों की ओर से उपेक्षा कर सकते हैं, परन्तु किसी कोमलाङ्गी के साथ यह व्यवहार करने का जी नहीं चाहता। और यह भी किसी साधारण स्त्री की ओर से नहीं था। इसकी लेखिका देहरा-दून के प्रसिद्ध रईस ठाकुर हृदयनारायण की शिक्षित लड़की सावित्री थी जिसने इसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा पास की थी। उसके सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में कई लेख निकले थे, परन्तु मैंने उन्हें पढ़ने की आवश्यकता न समझी थी। इस पत्र ने सब कुछ याद करा दिया। मैंने उसी समय लेखनी पकड़ी, और जवाब लिखने बैठ गया। परन्तु हाथ जवाब दे रहे थे। ऐसी लगन से कोई विद्यार्थी अपनी परीक्षा के पर्चे भी न लिखता होगा। एक एक शब्द पर रुकता था, और नये नये शब्द ढूँढ़ कर नये नये विचार लेखनी के अर्पण करता जाता था। मैंने सावित्री और उसकी विद्वत्ता की प्रशंसा में कोष के सम्पूर्ण सुन्दर शब्द समाप्त कर दिये। अपनी तुच्छता को भी अङ्गीकार किया—आप मेरी प्रशंसा करती हैं, यह आपका बड़प्पन है, अन्यथा मेरी कविता में धरा ही क्या है। न कल्पना में सौन्दर्य है, न शब्दों में मिठास। रसिकता कविता का प्रधान अङ्ग है, वह मेरी कविता से कोसों दूर है। हम कवि बन बैठते हैं, परन्तु कवि बनना आसान नहीं। इसके लिए देखनेवाली आंख और सुननेवाले कान दोनों की आवश्यकता है, इत्यादि। कहने की आवश्यकता न होगी कि अपनी प्रशंसा करने का यह एक सभ्य ढङ्ग है।

कुछ दिन के पश्चात् इस पत्र का उत्तर आया—यह जो कुछ आपने लिखा है आप जैसे महा-पुरुषों के योग्य ही है, अन्यथा मैं तो आपको टेनिसन और वर्डस्वर्थ से बढ़ कर समझती हूँ। आप कहते हैं कि आपकी कविता रस-हीन है, होगी। परन्तु मुझ पर तो वह जादू का काम करती है। घण्टों रस-सागर में डुबकियां लगाती हूँ, खाना-पीना भूल जाता है। जी चाहता है, आपकी लेखनी चूम लूँ।

यह पत्र शराब की दूसरी बोतल थी। अन्तिम बात ने हृदय में आग लगा दी। मैंने फिर उत्तर दिया, और पत्र में हृदय खोल कर रख दिया। कवि अपने चाहनेवालों को आकाश पर चढ़ा देता है। मैंने भी सावित्री की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक कर दिया। लिखा—कालिदास का कथन है कि कवि केवल वही नहीं जो कविता कर सकता है, प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति, जो कविता समझ सकता है और उसके मर्म तक पहुँच सकता है, कवि है। इस रूप में तुम भी कवि हो। मैंने अच्छों अच्छों को देखा है, कविता के महत्त्व को नहीं समझ सकते। परन्तु तुम तो बाल की खाल निकालती हो। तुम्हारी योग्यता पर मुझे आश्चर्य्य होता है। धन्य है भारतभूमि, जिसमें तुम जैसी देवियां खेलती हैं।

मैंने सैकड़ों उपन्यास पढ़े थे, अच्छी से अच्छी कविताएं देखी थीं, परन्तु जो रस, जो स्वाद सावित्री के पत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसकरा दिया। इस मुसकराहट में बिजली थी, मेरा धैर्य छूट गया। दूकान पर जी न लगा, सारा दिन सांझ की प्रतीक्षा करता रहा। पल पल गिनते दिन समाप्त हुआ और मैं घर को वापस लौटा। पैर भूमि पर न पड़ते थे। इस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, जैसे किसी को कुछ मिलने-वाला हो। सत्यवान के मकान के पास पहुँचा तो पैर आपसे आप रुक गये, आँखें दरवाज़े पर जम गईं। सहसा वह अन्दर से निकली और दरवाज़े के साथ लग कर खड़ी हो गई। उसने मुँह से कुछ न कहा, परन्तु आंखों ने हृदय के पर्दे खोल दिये। इन आंखों में कैसा प्रेम था, कैसा चाव और उनके साथ स्त्रियों की स्वाभाविक लज्जा। चटनी में खटाई के साथ शक्कर मिली हुई थी। मैं मतवाला सा हो गया और झूमता झामता घर पहुँचा, जैसे किसी ने शत्रु का दुर्ग विजय कर लिया हो।

कई दिन बीत गये। नयनों का प्रेम-पाश दृढ़ होता गया। अब उसे देख कर जी न भरता था। ओस की बूँदों से किसी की प्यास कब बुझी है। तृष्णा अपने पैर आगे बढ़ा रही थी। अन्तःकरण सावधान करता था, जैसे भय के समय कोई लाल झंडी दिखा दे। परन्तु कामदेव उस ड्राइवर के समान परवा न करता था जिसने शराब पी ली हो। यह शराब साधारण शराब न थी। यह वह शराब थी जो धर्म-कर्म सब चूल्हे में झोंक देती है और मनुष्य को बलात् भय के मुँह में डाल देती है। यह कामवासना की शराब थी।

एक दिन बहुत रात गये घर लौटा। चित्त दुखी हो रहा था, जैसे कोई भारी हानि हो गई हो। परन्तु सावित्री दरवाज़े पर ही खड़ी थी। मैं गद्गद प्रसन्न हो गया। घाटा पूरा हो गया था। सारा क्रोध और दुख दूर हो गया। सावित्री ने कहा, "आज आपको बड़ी देर हो गई।"

परन्तु आवाज़ थरथरा रही थी।

मेरा कलेजा धड़कने लगा। शरीर पसीना पसीना हो गया। छात्रावस्था में हमने सैकड़ों मुर्दे चीरे थे। उस समय भी यह अवस्था कभी न हुई थी। एक एक अङ्ग कांपने लगा। मैंने बड़ी कठिनता से अपने आपको सँभाला और उत्तर दिया—जी हां, कुछ मरीज़ देखने चला गया था, आप दरवाज़े पर खड़ी हैं, क्या किसी की प्रतीक्षा है?

"हां, उनकी राह देख रही हूँ।"

"क्या आज कोई कवि-सम्मेलन है?"

"कवि-सम्मेलन तो नहीं। एक जलसे में गये हैं, वहां उन्हें अपनी नवीन कविता पढ़ना है।"

"तो बारह बजे से पहले न लौटेंगे।"

सावित्री ने तृषित नयनों से मेरी ओर देखा, और एक मधुर कटाक्ष से ठण्डी सांस भर कहा—घर में जी नहीं लगता।

"अभी तो आठ ही बजे हैं।"

"जी चाहता है, घड़ी की सुइयां घुमा दूँ।"

मेरे पैर न उठते थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो कोई विचित्र नाटक हो रहा है। परन्तु कोई देख न ले, इस विचार से पैर उठाने पड़े। हमें धर्म का विचार हो न हो, परन्तु निन्दा का विचार अवश्य होता है। सावित्री ने मेरी ओर ऐसी आंखों से देखा, मानो कह रही है, क्या तुम अब भी नहीं समझे।

मैं आगे बढ़ा, परन्तु हृदय पीछे छूटा जाता था। वह मेरे वश में न था। घर जाकर चित्त उदास हो गया। सावित्री की मूर्त्ति आंखों में फिरने लगी। उसकी मधुर वाणी कानों में गूँजने लगी। मैं उसे भूल जाना चाहता था। मुझे डर था कि इस कूचे में पैर रखने से निन्दा होगी। मुझ पर उँगलियां उठने लगेंगी। लोग मुझे भलामानस समझते हैं। यह करतूत मेरा सर्वनाश कर देगी। लोग चौंक उठेंगे। कहेंगे, कैसा भलामानस प्रतीत होता था, परन्तु पूरा गुरु-घण्टाल निकला। प्रैक्टिस भी कम हो जायगी। वह विवाहिता स्त्री है। उसकी ओर मेरा हाथ बढ़ाना बहुत ही अनुचित है। परन्तु ये सब युक्तियां, सब विचार जल की तरङ्गें थीं। जितनी जल्दी उठती हैं उससे जल्दी टूट जाती हैं। वायु का हल्का सा थपेड़ा उनका चिह्न तक मिटा देता है। मनुष्य कितना दुर्बल, कितना बेबस है।

दूसरे दिन मैं सत्यवान के घर पहुँचा। परन्तु पैर लड़खड़ा रहे थे, जैसे नया नया चोर चोरी करने जा रहा हो। उस समय उसका हृदय किस प्रकार धड़कता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं कोई देख न ले। मुँह का रङ्ग भेद न खोल दे। कभी कभी भलमंसी का विचार भी आ जाता था। पैर आगे रखता था, हृदय पीछे हट जाता था। परन्तु मैंने एक फलांग भरी और अन्दर चला गया। इस समय मेरे होंठ सूख रहे थे।

सत्यवान ने मुझे देखा तो कुर्सी से उछल पड़ा, वह बड़े आदर से मिला। देर तक बातें होती रहीं। सावित्री भी पास बैठी थी। मेरी आँखें बराबर उसके मुख पर अटकी रहीं। पहले चोर था, अब डाकू बना। सावित्री की झिझक भी दूर हो गई। बात बात पर हँसती थी। अब उसे मेरी ओर देखने में सङ्कोच न था। लज्जा के स्थान पर चपलता आ गई थी। यहाँ से चला तो ऐसा प्रसन्न था, जैसे इन्द्र का सिंहासन मिल गया हो। तत्पश्चात् रास्ता खुल गया। दिन में कई बार सावित्री के दर्शन होने लगे। रात को दो दो घण्टे उसके पास बैठा रहता। मेरा और सावित्री का आँखों आँखों ही में मन मिल गया। पर सत्यवान को कुछ पता न था। कल्पना-सागर से विचारों के मोती निकालनेवाला कवि बहुत दूर तक दृष्टि दौड़ानेवाले क्रान्तिदर्शी विद्वान् अपने सामने की घटना को नहीं समझता था। उसकी कविता दूसरों को जगाती थी, परन्तु वह स्वयं सोया हुआ था। उस अनजान यात्री के समान जो नौका में बैठा दूर के हरे हरे खेतों और ऊँची ऊँची पहाड़ियों को देख देख कर झूमता है, परन्तु नहीं जानता कि उसकी नाव भयानक चट्टान के निकट पहुँच रही है। सत्यवान विनाश की ओर बढ़ रहा था।

(८)

सावित्री—

कितना अन्तर है। मणिराम की आँखें हृदय में आग लगा देती थीं। निकट आते तो मैं इस प्रकार खिँची जाती, जैसे चुम्बक लोहे की सुई को खींच लेता है। कैसा भोला-भाला लगता था, जैसे मुख में जीभ न होगी। परन्तु मेरे पास आकर इस प्रकार चहचहाता है, जैसे बुलबुल फूल की टहनी पर चहचहाता है। उनके बिना अब जी नहीं लगता था। मकान काटने को दौड़ता था। चाहती थी, मेरे पास ही बैठे रहें। किसी ने मुँह से नहीं कहा, परन्तु आँखों से पता चला कि महल्ले की स्त्रियाँ सब कुछ समझ गई हैं। मेरी ओर देखतीं तो मुसकराने लगतीं। इतना ही नहीं, अब वह भी अपने विचारों से चौंक उठे। कवि थे, कुछ मूर्ख नहीं। बेपरवा थे, पर बेसमझ न थे। अब हाथ मलमल कर पछताने लगे। संसार जीतते थे, परन्तु घर गँवा बैठे। सदैव उदासीन रहते थे। रात को सो नहीं सकते थे। बात करती तो काटने को दौड़ते। आँखों में लहू उतर आता था। न खाने की ओर ध्यान था, न पीने की ओर। कई कई दिन स्नान न करते थे। अब मुझे उनके कपड़े बदलवाने का शौक़ न था, न उनके खाने-पीने का प्रबन्ध करती थी। कभी इन बातों में आनन्द आता था, अब इनसे जी घबराता था। कुछ दिन पश्चात् प्रयाग के एक प्रसिद्ध मासिक पत्र में उनकी एक कविता प्रकाशित हुई। जिसका पहला पद था—

भयो क्यों अनचाहत सों सङ्ग।

कविता क्या थी, अपनी अवस्था का चित्र था। मेरी आँखों से आग बरसने लगी। शेरनी की नाईं बिफरी हुई उनके सामने चली गई, और बोली—यह क्या कविता लिखने लगे हो अब।

उन्होंने मेरी ओर ऐसी आँखों से देखा, जो पत्थर को भी मोम कर देतीं, शोक और निराशा का पूरा नमूना थीं। धीरे से बोले—क्या है?

"यह कविता पढ़ कर लोग क्या कहेंगे।"

"कवि जो कुछ देखता है, लिख देता है। इसमें मेरा दोष क्या है।"

मैंने तनिक पीछे हट कर कहा—तुमने क्या देखा है?

"सावित्री! मेरा मुख न खुलवाओ। अपने अञ्चल में मुँह डाल कर देखलो, मुझसे कुछ छिपा नहीं।"

मैंने क्रोध से कहा, गालियाँ क्यों देते हो?

"गालियाँ इससे लाख गुना अच्छी होतीं।

"तो तुम्हें मुझ पर सन्देह है।"

"सन्देह होता तो रोना काहे का था। अब तो विश्वास हो चुका। कान धोखा खा सकते हैं, परन्तु आँखें भूल नहीं करतीं। मुझे यह पता न था कि मेरा घर इस प्रकार चौपट हो जायगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। पर प्रकृति, जहां दुराचार को जाना होता है वहां, निर्लज्जता को पहले भेज देती है। ढिठाई से बोली—तुम कविता लिखो, तुम्हें किसी से क्या ?

"घावों पर नमक छिड़कने आई हो।"

"मेरी ओर देखते ही न थे। उस समय बुद्धि कहां चली गई थी।"

"मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था। नहीं तो आज हाथ न मलता।"

"परन्तु लोग तो तुम्हें वाहवा कह रहे हैं। जिस पत्र में देखो, तुम्हारी ही चर्चा है, पढ़ कर प्रसन्न हो जाते होगे।"

यह सुन कर वे खड़े हो गये। नेत्रों में पागलों की सी लाली चमक रही थी, चिल्ला कर बोले, अपनी मौत को न बुलाओ, मैं इस समय पागल हो रहा हूँ।

"तो क्या मार डालोगे। बहुत अच्छा, यह भी कर डालो। अपने जी की इच्छा पूरी कर लो।"

उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा, जिस प्रकार सिंह अपने आखेट को मारने से पहले देखता है, और झपट कर अलमारी की ओर बढ़े। मेरा कलेजा धड़कने लगा। दौड़ कर बाहर निकल गई। मेरा विचार था, वे मेरे पीछे दौड़ेंगे, इसलिए घर के सामने मैदान में जा खड़ी हुई। परन्तु सांस फूली हुई थी। मृत्यु को सामने देख चुकी थी। परन्तु वे बाहर न आये। थोड़ी देर पीछे दन का शब्द सुनाई दिया। मैं दौड़ती हुई अन्दर चली गई। देखा, वे फ़र्श पर पड़े तड़प रहे थे। मृत्यु का दृश्य देख कर मैं डर गई। परन्तु मुझे दुःख नहीं हुआ। कहीं मुकद्दमे की लपेट में न आ जाऊँ, यह चिन्ता अवश्य हुई।

दो मास बीत गये थे। मैं अपने आंगन में बैठी मणिराम के लिए नेकटाई बुन रही थी। मैंने लोकाचार की परवा न करके उससे विवाह का निश्चय कर लिया था। लोग इस समाचार से चौंक उठे थे। परन्तु मैं उसके मरने से प्रसन्न हो रही थी। समझती थी, जीवन का आनन्द अब आयगा, अचानक नौकर ने आकर डाक मेरे सामने रख दी। इसमें एक पैकट भी था। मैंने पहले उसे खोला। यह मेरे मृतक पति की कविताओं का सङ्ग्रह था। मैंने एक दो कवितायें पढ़ीं। हृदय में हलचल मच गई। कैसे ऊँचे विचार थे, कैसे पवित्र भाव, संसार की मलिनता से रहित। इनमें छल न था, कपट न था। इनमें आध्यात्मिक सुख था, शान्ति थी। मेरी आंखों से आंसू बहने लगे। एकाएक तीसरे पृष्ठ पर दृष्टि गई। यह समर्पण का पृष्ठ था। मेरा लहू जम गया। पुस्तक मेरे नाम समर्पित की गई थी। एक एक शब्द से प्रेम की लपटें आ रही थीं। परन्तु इस प्रेम और मणिराम के प्रेम में कितना अन्तर था। एक चन्द्रमा की चांदनी के समान शीतल था, दूसरा अग्नि के समान दग्ध करनेवाला। एक समुद्र की नाईं गहन-गम्भीर, दूसरा पहाड़ी नाले के समान वेगवान। एक सचाई था परन्तु निशब्द, दूसरा झूठा था पर बड़बोला। मेरी आंखों के सामने से पर्दा उठ गया। सतीत्व के उच्च शिखर से कहां गिरने को थी, यह मैंने आज अनुभव किया। उठते हुए पैर रुक गये। मैंने पुस्तक को आंखों से लगा लिया और रोने लगी।

इतने में मणिराम अन्दर आये। मुख आनेवाले आनन्द की कल्पना से लाल हो रहा था। उनके हाथ में एक बहुमूल्य माला थी, जो उन्होंने मेरे लिए बम्बई से मँगवाई थी। वह दिखाने आये थे। मुझे रोते देख कर ठिठक गये और बोले—क्यों रो रही हो ?

"मेरी आंखें खुल गई हैं।"

"यह अपनी माला देख लो। कल विवाह है।"

"अब विवाह न होगा।"

"सावित्री, पागल हो गई हो ?"

"परमात्मा मुझे इसी प्रकार पागल बनाये रक्खे।"

मणिराम आगे बढ़ा। परन्तु मैं उठ कर पीछे हट गई, और दरवाज़े की ओर सङ्केत करके बोली—"उधर।"

उस रात मुझे ऐसी नींद आई, जैसी इससे पहले कभी न आई थी। मैंने पति को ठुकरा दिया था, परन्तु उसके प्रेम को न ठुकरा सकी। मनुष्य मर जाता है, उसका प्रेम जीता रहता है।

सुदर्शन

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पेन में।

एशियाई पर्यटक को जितना सुख और आनन्द स्पेन के भ्रमण में मिल सकता है उतना योरप के किसी दूसरे देश में नहीं मिल सकता। इसका मुख्य कारण यह है कि स्पेन में एशिया की छटा पद पद पर देखने को मिलती है। क्या वहाँ की इमारतें, क्या लोगों की रहन-सहन और क्या उनका रीति-व्यवहार, प्रायः सभी बातों में एशिया का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य देखने को मिलेगा। वर्तमान विज्ञान-युग का जो कुछ प्रभाव स्पेन पर पड़ा वह वहाँ के बड़े बड़े नगरों पर। ऐसे नगरों में फ्रांस आदि देशों के ढङ्ग पर बाज़ार और कारख़ाने खुल चुके हैं और तद्रूप व्यावसायिक प्रवृत्ति भी लोगों में जाग्रत हो चुकी है, तो भी सबका सब स्पेन पाश्चात्य-सभ्यता का शिकार अभी तक नहीं हुआ है। वहाँ के छोटे छोटे नगरों के अधिवासियों की जीवन-चर्या निरीक्षण करने से इस कथन का प्रत्यक्ष

मूरों के ग्रीष्म-राजभवन से ग्रनाडा का एक दृश्य।

प्रमाण आप ही आप मिल जाता है। भारत की भाँति स्पेन भी प्राचीनता का प्रेमी है।

स्पेन अफ़्रीका को योरप से जोड़ता है। वह अफ़्रीका के बहुत ही निकट स्थित है। कहा जाता है कि स्पेन-वाले योरपीय पिता और हबशी माता की सन्तान हैं। इस कथन में बहुत कुछ तथ्य है क्योंकि स्पेनवासियों

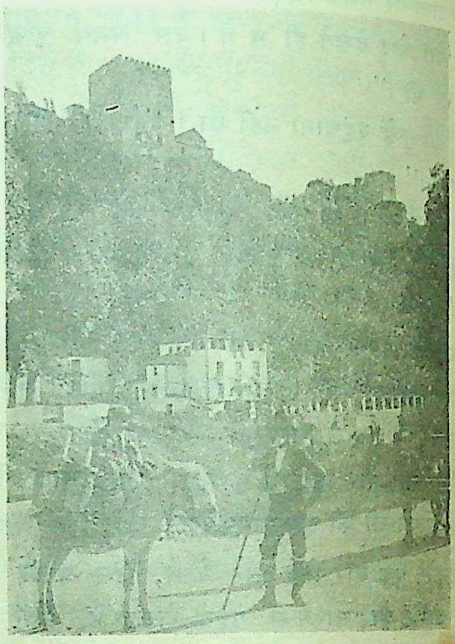

अलहम्ब्रा राजमहल का प्राचीर और बुर्ज, ग्रनाडा।

की शारीरिक गठन तथा स्वभाव में उत्तरी अफ़्रीका के बर्बर लोगों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी से ये लोग प्राच्य जातियों से कुछ बातों में अधिक मेल खाते हैं और यह मेल और भी अधिक रूप में वहाँ की स्त्रियों में पाया जाता है। हमारे देश-वासियों की तरह ये लोग भी भड़कीली और रङ्गीन पोशाक पहनने के लिए शौक़ीन तथा पारस्परिक व्यवहार में मिलनसार होते हैं।

स्पेन पर एशिया की छाप मुसलमान विजेताओं ने लगाई है। इसे जीत कर उन्होंने यहाँ कोई आठ सौ वर्ष तक राज्य किया है। उत्तरी अफ़्रीका के समुद्री किनारों को जीतते और उनके निवासियों को मुसलमान बनाते हुए अरब के मुसलमान विजेता मरक्को तक जा धमके और सन् ७११ में जिब्राल्टर का मुहाना पार कर उन्होंने स्पेन पर चढ़ाई कर दी। दो वर्ष के भीतर ही सारा स्पेन उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार में चला गया। वे लोग सन् १४९२ तक वहां बने रहे। इस दीर्घ काल में स्पेन-वासियों पर मुसलमानी सभ्यता का बहुत भारी प्रभाव पड़ा। यही कारण है जो आज भी हमें वहां की प्रायः प्रत्येक बात में प्राच्य की मुहर अङ्कित देख पड़ती है।

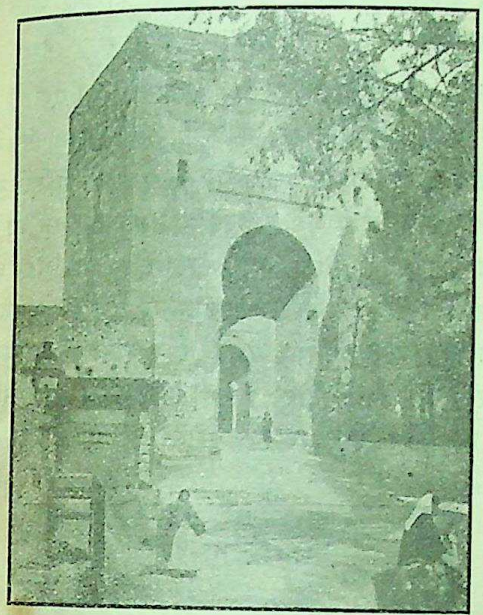

अलहम्ब्रा राजमहल का प्रवेश-द्वार।

स्पेन में मुसलमानों का अधिकार हो जाने से वहां एक नये जीवन का सञ्चार हुआ। आक्रमणकारी नये धर्म की दीक्षा से अधिक भावपूर्ण हो गये थे। अतएव स्पेन में आकर उन्होंने उसकी उत्कृष्ट बातों को ग्रहण किया और उन्हें नये सांचे में ढाल कर अधिक विकसित कर दिया। कला, विज्ञान, उद्यम, आविष्कार आदि बातों में उन्होंने बड़ी उन्नति की। अपनी प्रजा को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर उन्होंने अपने औदार्य का परिचय दिया। इसी से स्पेन में मुसलमानों का शासन-काल स्वर्णयुग कहलाता है।

स्पेन से मुसलमानों को निकले चार सौ वर्ष हो गये। तब से वहां ईसाई-सत्ता का एकाधिपत्य है। तो भी अभी मुसलमानों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। वहां की पुरानी इमारतों और बाग़ों में उसका प्रत्यक्ष रूप देख पड़ता है। मुसलमानों के बसाये हुए नगर बाग़ीचों और जलाशयों से परिपूर्ण रहते थे। यद्यपि अब उनमें अधिकांश विनष्ट हो गये हैं, तो भी जो बाग़ और इमारतें अथवा उनके ध्वंसावशेष मौजूद हैं उनको देखने से हमें स्पेन में मुसलमानों के गौरव का पूर्ण परिचय मिल जाता है। कर-डोवा और ग्रनाडा उनकी सभ्यता के केन्द्र थे। स्पेन जा कर कोई भी यात्री बिना इनका पर्यटन किये नहीं लौटता। ग्रनाडा का अलहम्ब्रा नामक राजभवन और उसके चारों ओर का अलमिदा नामक उपवन तथा वहां का जेनातल अरीफ़ नामक बाग़ संसार की अप्रतिम वस्तुओं में हैं।

अलहम्ब्रा मुसलमानों की कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। बार बार के भूकम्पों से ग्रनाडा की बहुतेरी आधुनिक इमारतें धराशायी हो गईं, पर अलहम्ब्रा अपने स्थान पर अभी तक ज्यों का त्यों खड़ा है। वह लाल पत्थर का बना है। उसकी रक्त-प्रभा उसके निर्माताओं की अभिरुचि और उनके कला-नैपुण्य का ज्ञान, आज तक प्रकट करती आ रही है। अलहम्ब्रा की पच्चीकारी अपनी चमक-दमक अब तक बनाये रख कर अपनी सच्ची कारीगरी का परिचय प्रदान करती है। इस समय भी

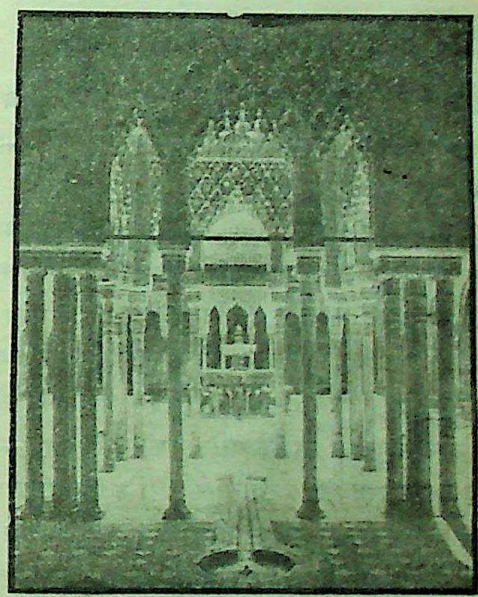

अलहम्ब्रा राजमहल का दरबार-भवन, ग्रनाडा।

दर्शक उसे असली पत्थरों का काम समझ कर धोखा खा जाते हैं। उजाड़ खण्ड के बीच में एक-मात्र इस चमचमाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए राजमहल में पदार्पण करते ही दर्शक के ध्यान में यह बात आती है कि इस स्थान में देवता निवास करते रहे होंगे। इसकी रचना विश्वकर्मा ने की होगी। निस्स-

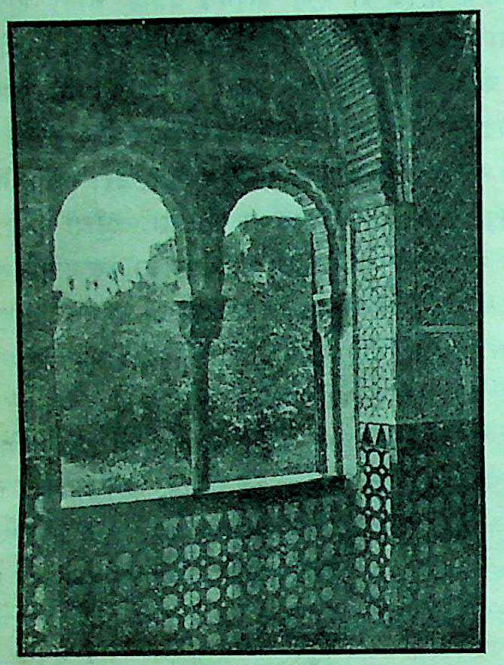

अलहम्ब्रा राजमहल का बेगम-महल और बाग़।

न्देह इसका अवलोकन करने पर सहस्ररजनी-चरित्र की बातें सच प्रतीत होने लगती हैं। अलहम्ब्रा मुसलमानी क्षमता और प्रतिभा का संसार में एक देदीप्यमान रत्न है।

ग्रनाडा की तरह करडोवा भी स्पेन में मुसलमानी सभ्यता का केन्द्र था। यह वहाँ के ख़लीफ़ाओं की राजधानी था। परन्तु समय ने इस नगर को ऐसा ध्वंस कर दिया है कि यह अपने प्राचीन गौरव का कोई पुष्ट प्रमाण उपस्थित करने में अब समर्थ नहीं है। यहाँ पहुँच कर यात्री केवल मेज़क्वीटा नामक मस्जिद का दर्शन कर सन्तोष करते हैं। परन्तु जब इस स्थान से यहाँ के ख़लीफ़ा सारे स्पेन पर अपना शासन-दण्ड परिचालित करते थे तब यह नगर स्पेन के नगरों का मुकुट गिना जाता था। इसके उस गौरव की स्मृति के लिए अब यहाँ मेज़क्वीटा ही शेष रह गई है। परन्तु ग्रनाडा के अलहम्ब्रा की भाँति यह मस्जिद भी शिल्प-कला का एक अप्रतिम नमूना है। जैसी भव्य कारीगरी का स्वरूप यह उपासना-मन्दिर दर्शक के सामने उपस्थित करता है वैसा दृश्य ग्रनाडा के प्रासाद-राज में भी देखने को नहीं मिलता। इसके लम्बे-चौड़े प्राङ्गण में नारङ्गियों के सघन कुञ्जों में जिस मनोहर और भव्य शान्ति का अनुभव होता है उससे दर्शक को तत्काल प्राच्य देशों की स्मृति हो जाती है। यहाँ के प्रसिद्ध अलमिदा फ़व्वारे में स्त्री-पुरुषों को जल भरते देख कर भारत के पनघटों की सुध आ जाती है।

स्पेन का टोलेडो नगर भी अपने ढङ्ग का एक ही है। स्पेनी नगरों की भाँति यह भी एक ऊँची पहाड़ी पर घोड़े की नाल के आकार में बसा है। जिस दशा में इसे मुसलमान शासक छोड़ गये हैं उसी रूप में यह आज भी देख पड़ता है। अरबी और ईसाई-सभ्यता का यह नगर केन्द्र रहा है। यहाँ गली गली गिरजा-घर देख कर भारत की काशी नगरी की याद आ जाती है। यहाँ की अधिकांश इमारतों में अरबी और ईसाई शिल्पकला का सम्मिश्रण हो गया है, तथापि पुराने ज़माने के दो एक

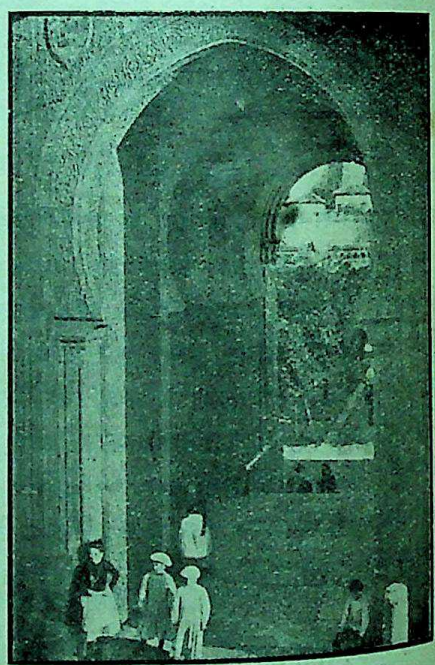

मूरी ढङ्ग का एक प्राचीन फाटक, करडोवा।

गिरजा और मस्जिदें भी अपनी अपनी कला के नमूने के रूप में यहाँ खड़ी हैं। प्रायः सभी मस्जिदें गिरजा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बना डाले गये हैं। केवल एक मस्जिद शेष रह गई जो गिरजा-घर में परिणत हो जाने से बच रही है।

उपर्युक्त नगर मुसलमानी सभ्यता के निदर्शक हैं। पुरातत्त्वप्रेमी यात्री इन नगरों का परिदर्शन अवश्य करता

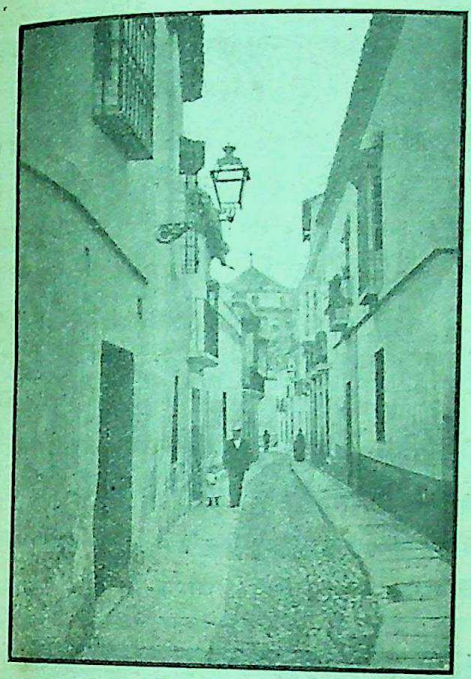

मज़क़ीटा मस्जिद के सामने की गली, करडोवा।

है। परन्तु जो यात्री स्पेनवासियों के गुण-दोष जानने की इच्छा रखता हो उसे सेविली में कुछ दिन तक ठहरना पड़ेगा।

सेविली न तो करडोवा की तरह शान्ति के भाव में मग्न है, न टोलेडो की तरह अपने कँगूरों और बुर्जों से अपनी अजेयता का दर्प प्रकट करता है और न ग्रनाडा के सदृश अपने ध्वंसावशेषों से शोक-सन्तप्त देख पड़ता है। इस नगर में सजीवता का राज्य है। क्या सूर्य के प्रकाश में और क्या रात्रि के अन्धकार में सभी समय और सर्वत्र यहां स्पेन की जीवन-कलिका विकसित ही देख पड़ती है। यह नगर व्यापार की मण्डी है। इस कारण भी इसकी नदी के किनारे ख़ासी चहल-पहल रहती है। सुन्दरता में स्पेन का कोई नगर इसका मुक़ाबिला नहीं कर सकता। कहावत है कि सेविली में उसी का जन्म होता है जिस पर ईश्वर का विशेष अनुग्रह होता है। वास्तव में यह नगर आनन्द की प्रतिमूर्ति है। क्या नदी के किनारे नारङ्गी के सघन कुञ्जों में और क्या बीच बाज़ार में सर्वत्र प्रसन्नता फूटी सी पड़ती है। जिधर देखो उधर आबाल वृद्ध वनिता सभी हँसते हुए आते-जाते रहते हैं।

सेविली में क्या अमीर और क्या ग़रीब सभी के घर छायादार प्राङ्गण के चारों ओर बने हुए हैं। प्राङ्गण में खजूर, अनार, चमेली आदि वृक्ष और पौधे लगे रहते हैं। इसी प्राङ्गण की ओर सबके घरों के दरवाज़े और खिड़कियां लगी रहती हैं। लोग अपने घर के सामने प्राङ्गण में उठते बैठते तथा अपना काम-काज करते हैं।

सेविली-निवासियों के बीच में पहुँचने पर प्रत्येक यात्री की यही इच्छा होगी कि चलो, अब यहीं बस जायँ। वास्तव में उन के घरों में विनय और प्रेम का राज्य है। उनके कुटुम्ब में जिस आनन्द का अस्तित्व है वह उनकी ख़ास चीज़ है। वे लोग रात-दिन बैल की तरह काम में ही नहीं जुटे रहते और न उनको रद्दी पुस्तकों के पढ़ने का ही रोग होता है। अपने घर के लोगों से बातें

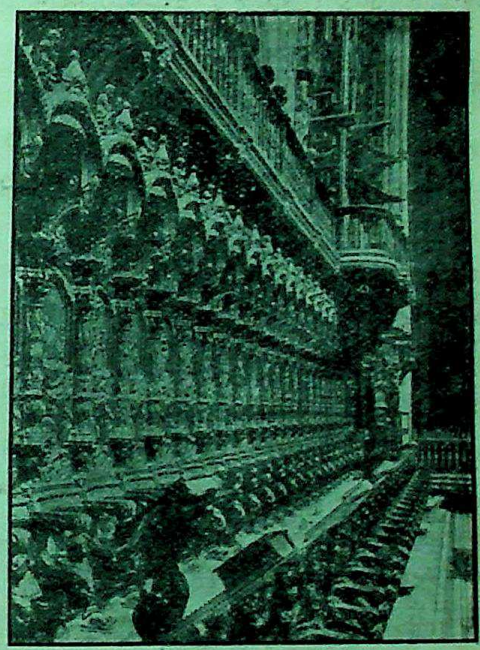

मस्जिद में नक्क़ाशी का काम, करडोवा।

करते हुए वे घण्टों बैठे सिगरेट पिया करते हैं। हां, उनको बातों का रोग अवश्य होता है। दुनिया की शायद ही कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी जाति उनके समान प्रगल्भ हो। यदि मौक़ा पड़ जाय तो वे सिगरेट पीते और बातें करते सारी रात की रात बिता डालें और उनका मन न ऊबे।

स्पेन की राजधानी मेड्रिड एक आधुनिक नगर है। इस बात में यह स्पेन के दूसरे नगरों से सर्वथा भिन्न है। योरप के दूसरे देशों के आधुनिक नगरों की भाँति यहाँ के भी निवासी वैज्ञानिक युग का प्रसाद उपभोग कर रहे हैं, नये नये कल-कारख़ानों में अपना जीवन-यापन कर नये जीवन का आनन्द लूट रहे हैं। रात दिन काम जारी रहता है। विश्राम के लिए अवकाश नहीं मिलता। जब यात्री दूसरे नगरों की यात्रा करता हुआ मेड्रिड पहुँचता है तब उसे इस बात का अनुभव होता है कि वास्तव में मैं अब किसी योरपीय नगर में आया हूँ। उसे यहाँ सेविली का सा आमोद-प्रमोद और कर्डोवा तथा टोलेडो की सी चिर शान्ति देखने को नहीं मिलती। इस नगर की पुरानी बस्ती में एक ऐसा बाज़ार अवश्य लगता है जो इस समय भी मध्ययुग का चित्र आँखों के सामने खड़ा कर देता है। संसार में यही सबसे बड़ा गुदड़ी-बाज़ार है।

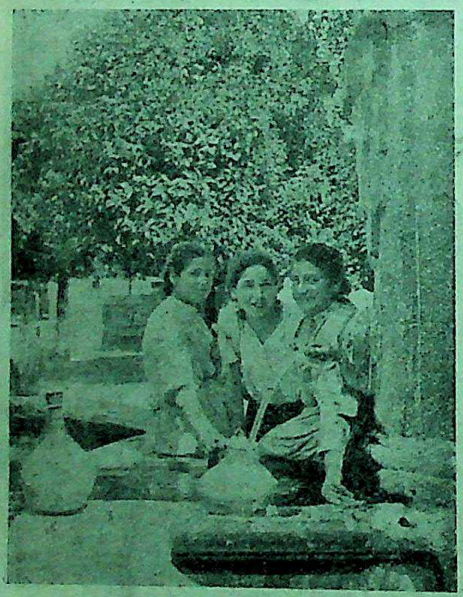

अलमिदा फ़व्वारा, करडोवा।

मेड्रिड की गलियाँ साफ़-सुथरी और सड़कें चौड़ी हैं। यहाँ ऊँचे ऊँचे मकान और बाज़ार में दूकानें क़रीने से लगी हैं। यहाँ के बाग़, चाय-पानी के विश्राम-घर आदि भी नये ढङ्ग के हैं। प्रेडो नामक चौक में सन्ध्या-समय स्त्री-पुरुष वायु-सेवन को एकत्र होते हैं। उनकी पोशाक पेरिस

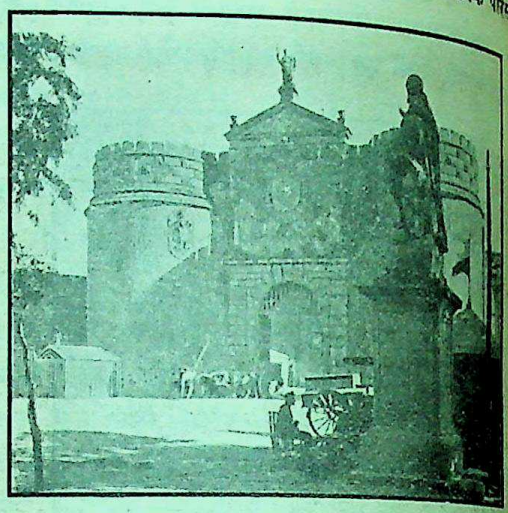

नवीं सदी का एक अरबी फाटक, टोलेडो।

के निवासियों जैसी होती है। गर्मी के कारण स्त्रियाँ पङ्खे लिये रहती हैं। एक भी ऐसी स्त्री न देख पड़ेगी जिसके हाथ में पङ्खा न हो। यहाँ के नाटक-घर और अजायब-घर

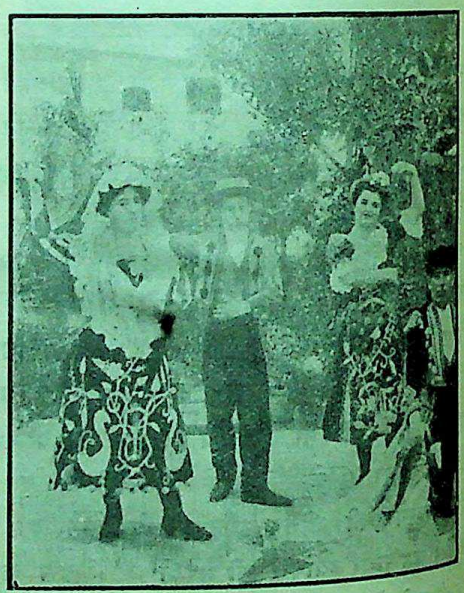

फ़ेरिया-मेले में स्पेनी नर्तक-नर्तकियाँ।

भी बहुत प्रसिद्ध हैं। नाटकों का प्रचार स्पेन में बहुत ही पुराने समय से है। स्पेन की स्त्रियाँ नाट्यकला में अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यहाँ नाटकों का शौक इतना बढ़ा-चढ़ा है कि घोर गर्मी के दिनों में भी नाटक-घर दर्शकों से ठसाठस भरे रहते हैं। मेड्रिड के अजायब-घरों में सब प्रकार का सङ्ग्रह महत्त्व-पूर्ण और दर्शनीय है। यहां की चित्रशाला में स्पेन

एक गृहस्थ के दरवाज़े का दृश्य, सेविली।

के कलाधरों के चित्रों के भव्य नमूने एकत्र किये गये हैं। रोमन कैथलिक बादशाहों को ललितकलाओं से विशेष प्रेम था। १६ वीं और १७ वीं सदी में स्पेन का योरप के दूसरे देशों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस कारण भी प्रायः सभी नामी नामी चित्रकारों के उत्कृष्ट चित्रों का सङ्ग्रह यहां देखने को मिलता है।

स्पेनवासियों के जीवन के सम्बन्ध में यहां कुछ उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न होगा। स्पेनवालों के स्वभाव की परख शीघ्र ही नहीं की जा सकती। यदि उनके स्वभाव का ज्ञान कोई प्राप्त करना चाहे तो उसे पूर्वोक्त सेविली-नगर की यात्रा अप्रेल के मध्य में करनी चाहिए। उस समय वहां एक बड़ा भारी मेला लगता है। इस मेले में स्पेन के सभी प्रान्तों के निवासी एकत्र होते हैं। तीन दिन तक आमोद-प्रमोद की धूम रहती है। नाच-गाना, खेल-कूद और दावतों के हृदयग्राही दृश्य देखने में आते हैं। इस मेले का नाम फ़ेरिया है। इसमें पशुओं की बड़ी बिक्री होती है। इस मेले में स्पेनवालों के आनन्दपूर्ण उदार हृदय का पूर्ण परिचय मिल जाता है। कहीं किसी तरह के झगड़े-झञ्झट की आवाज़ तक नहीं सुनाई पड़ती। सर्वत्र प्रसन्नता और प्रेम का फ़ुहारा उछलता दिखाई देगा।

फ़ेरिया के सिवा ईस्टर में जो धार्मिक महोत्सव सेविली में होता है वह भी स्पेनियों के स्वभाव का पूर्ण परिचायक है। उन्होंने धर्म को कैसे आनन्द का जामा पहना दिया है और उनमें कैसा गम्भीर धर्म-भाव है, इसका पता इस अवसर पर भले प्रकार लग जाता है। जैसे प्रयाग में दशहरे के समय विमान निकलते हैं वैसे ही सेविली-निवासी ईस्टर-सप्ताह के रविवार को अपने विमान निकालते हैं। इस उत्सव को भी देखने के लिए स्पेन के प्रत्येक प्रान्त के लोग एकत्र होते हैं, इस कारण बड़ा भारी मेला लग जाता है।

अतिथि-पूजा का प्रचार स्पेन में खूब है। उसके आदर्श दृश्य सेविली में उपर्युक्त मेले के अवसर पर प्रचुर

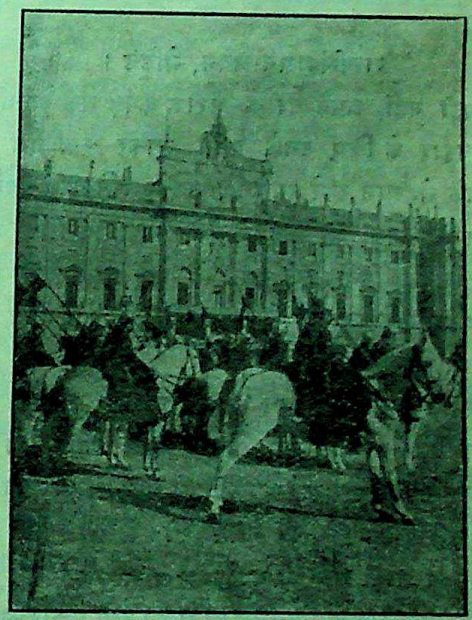

स्पेन का राज-भवन, मेड्रिड।

संख्या में देखने को मिलते हैं। इन मेलों के समय प्रायः सेविली-निवासी अपना सारा घर का घर मेहमानों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए ख़ाली कर देते हैं और स्वयं दिन भर इधर-उधर रह रात अपने घर के एक कोने में बैठ कर बिता देते

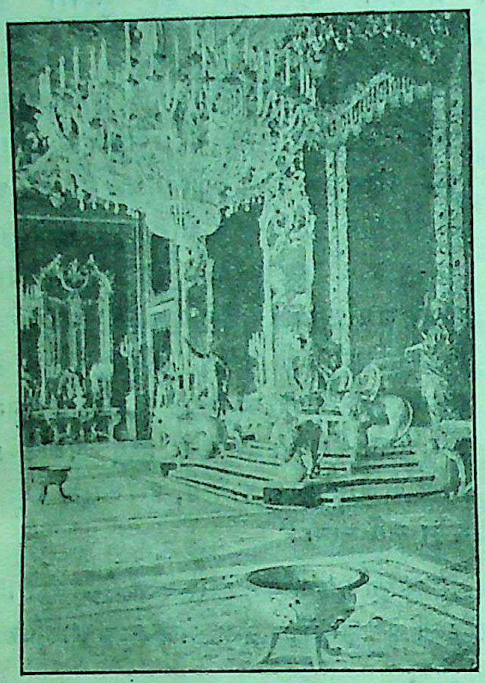

राजसिंहासन-भवन, मेड्रिड।

हैं। यही नहीं, अपने घर के धराऊ कपड़े तक अतिथियों के व्यवहार के लिए उनके आगे लाकर रख देते हैं। जब तक मेहमान ठहरे रहते हैं, उनको बढ़िया से बढ़िया भोजन और वह भी मुफ़्त वे देते हैं। इसके सिवा उनके पास बैठ कर विनोदपूर्ण बातों से उन्हें प्रसन्न करते रहते तथा यह देखते रहते हैं कि हमारे अतिथि को किस किस वस्तु की आवश्यकता है।

स्पेनियों का गार्हस्थ्य जीवन अत्यन्त सुखमय है। वे रात-दिन काम में जुटे रहना अपने जीवन का एक-मात्र उद्देश नहीं समझते। इसी से वहाँ समय का कोई मूल्य नहीं है। भारत की भाँति स्पेन में भी यात्री रेलवे स्टेशनों पर गाड़ी आने के घण्टों पहले जा बैठते हैं। स्पेन-वालों में अत्यधिक अपत्य-स्नेह होता है। उसी प्रकार सन्तान भी अपने माता-पिता का सम्मान करना अपना एक-मात्र धर्म समझती है। इस स्थिति का प्रत्यक्ष प्रमाण तो स्वयं वहाँ के बच्चे हैं जिनके मुख पर आठों पहर प्रसन्नता झलकती रहती है।

स्पेनी लोग दीन-दुखियों के साथ दयापूर्ण व्यवहार करते हैं। दरवाज़े से भिक्षुक को विमुख लौटा देना वे मनुष्यता के बाहर समझते हैं। एक बात उन लोगों में बड़ी विचित्र होती है कि वे अपने मित्र के लिए प्राण देने के लिए सदा तैयार रहते हैं। वे लोग अपने इस गुण के लिए परम्परा से विख्यात हैं।

स्पेनियों के नृत्य-प्रेम की चर्चा किये बिना यह लेख अधूरा ही रह जायगा। नृत्य-कला की ही बदौलत उनके जीवन की सजीवता निरन्तर टपका करती है। दक्षिणी स्पेन का अनडालुसिया प्रान्त नृत्य-कला का केन्द्र है। यहाँ कई प्रकार के नृत्य प्रचलित हैं और प्रायः सबमें अरबी-सभ्यता की छाप लगी हुई है।

एक बात अवश्य आक्षेप-योग्य है। वह है साँड़-युद्ध। यह सचमुच क्रूर कृत्य है। इनके साँड़-युद्ध को देख कर बाहरी यात्री इनकी सारी सहृदयता और भावुकता को नमस्कार करने को तैयार हो जाते हैं। आश्चर्य तो यह देख कर होता है कि ऐसे जघन्य कर्म में स्त्रियाँ तक योग देती हैं। साँड़-युद्ध स्पेन की एक जातीय प्रथा है। इस अवसर

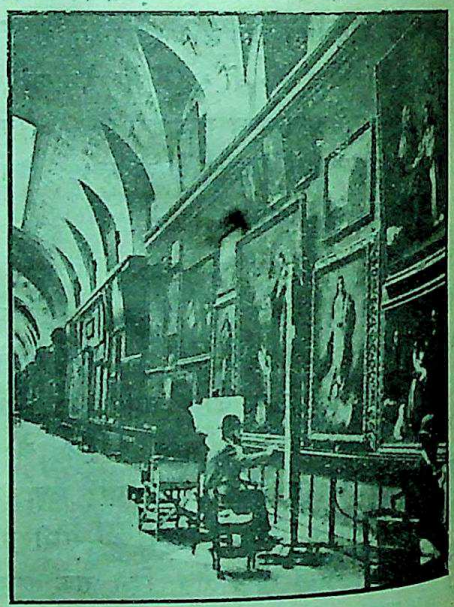

राजकीय चित्र-शाला, मेड्रिड।

पर साँड़ का बड़ी निर्दयता से वध किया जाता है। प्रायः सभी शहरों में इसके अखाड़े हैं। स्पेनियों ने साँड़-युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म का रूप दे दिया है। पवित्र सप्ताह में रविवार के दिन सांड़-युद्ध होता है। इसके अखाड़े में प्रायः सर्वत्र छोटे छोटे गिरजे होते हैं। इसको देखने के लिए बड़ी भीड़ लगती है। ग़रीब लोग अपने कपड़े तक बेच कर अखाड़े का टिकट ख़रीदते हैं। सांड़-युद्ध का प्रचार भी अरबों ने ही किया है। सांड़ भी अफ़्रीका से लाये गये थे। इसमें

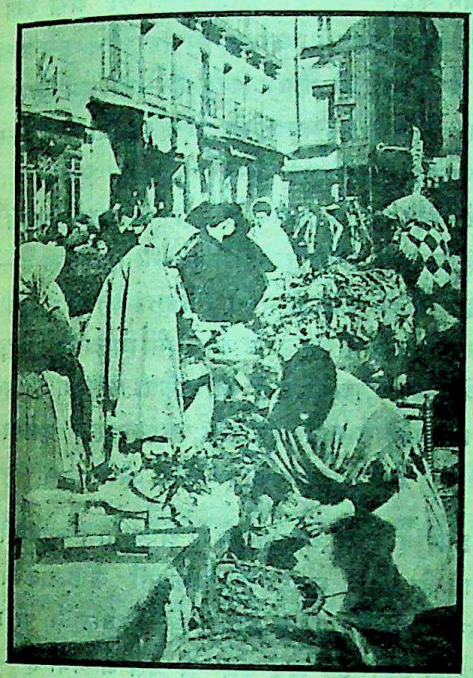

मेड्रिड का प्रसिद्ध गुदड़ी-बाज़ार।

सन्देह नहीं कि स्पेनी लोग पशुओं के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार करते हैं। वे अपने बैलों और ख़च्चरों को प्रायः मारते मारते बेदम कर देते हैं। पक्षियों को पकड़ कर उन्हें उधेड़ कर फेंक देना वहाँ के लड़कों का एक तमाशा है। परन्तु इतने क्रूर कर्म करते रहने पर भी स्पेनी लोग दयाशून्य नहीं कहे जा सकते। इनके स्वभाव में निष्ठुरता और दयालुता का विलक्षण सम्मिश्रण पाया जाता है।

गिरीशचन्द्र घोषाल

———

घर और बाहर।

निखिलेश की आत्म-कथा।

मास्टर साहब से मालूम हुआ कि सन्दीप हरिशकुण्डू के साथ मिल कर ख़ूब धूम-धाम से महिष-मर्दिनी की पूजा की तैयारी कर रहा है। इस पूजा का ख़र्च हरिशकुण्डू अपनी प्रजा से उगाहने लगा है। हमारे कविरत्न और विद्यावागीश महाशय से एक ऐसी स्तुति बनवाई जा रही है जिसके दो अर्थ हों।

इसी बात पर मास्टर साहब के साथ सन्दीप की बहस भी हो चुकी है। सन्दीप कहता है—देवता का एक एवोल्यूशन (क्रमविकास) है। पितामह ने जिस देवता की सृष्टि की थी उसी देवता को पौत्र अगर अपने ढङ्ग का न बना ले तो वह नास्तिक हो उठेगा। पुरातन देवता को आधुनिक बना डालना ही मेरा मिशन है, देवता को अतीत के बन्धन से मुक्ति देने के लिए ही मेरा जन्म है। मैं देवता का उद्धार करनेवाला हूँ।

लड़कपन से ही देखता आ रहा हूँ, सन्दीप आइडिया का जादूगर है—सत्य का आविष्कार करने की उसे कुछ ज़रूरत नहीं, सत्य की 'लाग' बना कर दिखाने में ही उसे आनन्द है। मध्य-आफ़्रिका में अगर उसका जन्म होता तो 'नर-बलि देकर नर-मांस भोजन करना ही मनुष्य को मनुष्य का अन्तरङ्ग बनाने की श्रेष्ठ साधना है' इस बात को नवीन युक्ति से प्रमाणित करके पुलकित हो उठता। भुलाना ही जिसका काम है वह अपने को भूले बिना रह नहीं सकता। मुझे विश्वास है, सन्दीप बातों के मन्त्र से जितनी बार नवीन नवीन मायाजाल की सृष्टि करता है, हर बार वह ख़ुद समझता है कि मैं सत्य को पा गया—उसकी एक सृष्टि के साथ दूसरी सृष्टि का चाहे जितना विरोध हो।

विमला के सामने ही मैंने सन्दीप से कहा है—तुमको मेरे घर से चले जाना होगा। इससे शायद विमला और सन्दीप दोनों ही मेरे मतलब को ठीक ठीक न समझेंगे। किन्तु इस ग़लत समझने के भय से मुक्ति चाहिए। विमला भी मुझे ग़लत ही समझे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढाके से धर्मप्रचारक मौलवी का आना-जाना जारी है। मेरे इलाक़े के मुसलमान गोहत्या को प्रायः हिन्दुओं ही की तरह घृणा की दृष्टि से देखते थे। किन्तु दो एक जगह क़ुर्बानी की ख़बर सुन पड़ी है। मैंने अपनी मुसलमान प्रजा से ही पहले यह ख़बर सुनी है और उन्होंने इसे बुरा काम कह कर इसका प्रतिवाद भी किया है। मैं समझता हूँ, अब की मुसलमानों को सँभालना कठिन होगा। इस मामले की जड़ में एक कृत्रिम हठ है। बाधा डालने से क्रमशः वह अकृत्रिम हो उठेगा। यही तो हमारे विरुद्ध पक्ष की चाल है।

अपनी हिन्दू प्रजा के मुखियों को बुला कर बहुत तरह समझाने की चेष्टा की। कहा—अपने धर्म की रक्षा हम कर सकते हैं, पराये धर्म पर हस्तक्षेप करने का हमें अधिकार नहीं। मैं वैष्णव हूँ, इसलिए शाक्त तो रक्तपात करना बन्द नहीं करता। उपाय क्या है? मुसलमान भी अपने धर्ममत के अनुसार चलेंगे ही। तुम गड़बड़ न करो।

उन्होंने कहा—महाराज, इतने दिनों तक तो यह उपद्रव नहीं हुआ।

मैंने कहा—वे ऐसा न करते थे, यह उनकी इच्छा की बात थी। फिर जिसमें खुशी से ही वे इस काम से मुँह मोड़ लें, वही ढङ्ग करो। झगड़ा करने से तो यह बात हो नहीं सकती।

उन्होंने कहा—नहीं महाराज, अब वह समय नहीं है। दण्ड दिये बिना यह बात नहीं रुक सकती।

मैंने कहा—दण्ड देने से गो-हिंसा तो रुकेहीगी नहीं, उलटे मनुष्य की प्रतिहिंसा बढ़ जायगी।

उनमें एक आदमी अँगरेज़ी-पढ़ा था। उसने यहाँ की बोली बोलना सीख लिया है। उसने कहा—देखिए, यह तो केवल संस्कार की बात नहीं है, हमारा देश कृषि-प्रधान है, इस देश में गऊ-बैलों पर—

मैंने कहा—इस देश में भैंसें भी दूध देती हैं, भैंसे भी खेतों में काम आते हैं, किन्तु उन्हीं भैंसों का सिर काट कर जब तुम देवी को बलि देते हो तब धर्म की दोहाई देकर मुसलमानों के साथ झगड़ा करने से धर्म मन ही मन हँसता है—केवल झगड़ा ही प्रबल हो उठता है। केवल गऊ ही अगर अवध्य हो और भैंसें अगर अवध्य न हों तो वह धर्म नहीं, अन्ध-संस्कार है!

अँगरेज़ी-पढ़े आदमी ने कहा—इसकी आड़ में कौन है, सो क्या आप देख नहीं पाते? मुसलमानों को यह मालूम होगया है कि उनको दण्ड नहीं दिया जायगा—आपने सुना है, पांचुड़े में उन्होंने क्या कर उठाया है?

मैंने कहा—यह जो मुसलमानों को अस्त्र बना कर हम पर उसका प्रयोग सम्भव हो रहा है—इस अस्त्र को हमने अपने हाथ से तैयार किया है—सो धर्म इसी तरह विचार करता है! हमने इतने दिन से जो जमा किया है वह हमारे ही ऊपर ख़र्च होगा।

अँगरेज़ी-पढ़े आदमी ने कहा—अच्छा, अच्छी बात है, वह ख़र्च हो। किन्तु इसमें हमें भी एक सुख है—अब की हमारी ही जीत है—जो आईन उनकी सबसे बढ़ कर शक्ति हो उसी को हमने मिट्टी में मिला दिया है; अब तक वे राजा थे, अब उनसे भी डकैती करावेंगे। यह बात इतिहास में कोई नहीं लिखेगा, लेकिन हमें हमेशा याद रहेगी।

× × × ×

इधर हर एक अख़बार में मैं अख्याति (बदनामी) में विख्यात हो पड़ा। सुनता हूँ, चक्रवर्ती के इलाक़े में नदी के किनारे मसानघाट में देश-सेवकों के दल ने मेरा कुछ का पुतला बना कर ख़ूब धूम से उसे जलाया है—उसके साथ और भी बहुत कुछ अपमान की तैयारी थी। ये लोग कपड़े की मिल खोल कर कम्पनी खड़ी करने का इरादा ज़ाहिर करके मुझसे ख़ूब बड़ा हिस्सा ख़रीदने के लिए प्रार्थना करने आये थे। मैंने कहा था—अगर मेरे इतने रुपयों का ही नुक़सान होता तो कुछ खेद न था, किन्तु तुम लोग अगर कारख़ाना खोलोगे तो बहुत से ग़रीबों के रुपये मारे जायँगे। इसी से मैं शेयर न ख़रीदूँगा।

वे लोग—क्यों साहब, देश का हित क्या आपको पसन्द नहीं है?

मैं—कारोबार करने से देश का हित हो भी सकता है, किन्तु देश का हित करेंगे, यह कहने ही से तो कारोबार नहीं होता। जब हम ठंडे थे तब हमारा व्यवसाय चला नहीं—अब हम क्रोध से पागल हो उठे हैं, इसी से क्या हमारा रोज़गार चल निकलेगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे लोग—आप साफ़ साफ़ यह कहिए कि शेयर ख़रीदिएगा या नहीं ?

मैं—जब तुम्हारे रोज़गार को रोज़गार समझूँगा तब ख़रीदूँगा। तुम्हारे यहाँ आग जल रही है इसलिए हांडी भी चढ़ेगी, इसका तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाण देख नहीं पड़ता।

× × × ×

यह क्या ख़बर है ! हमारी चकुया की कचहरी में डाका पड़ गया है ! कल रात को सदर-ख़ज़ाने की साढ़े सात हज़ार रुपये की एक किश्त वहाँ जमा हुई थी, आज सवेरे नाव पर ख़ज़ाना जाने की बात थी ! भेजने में सुभीता होगा, इसलिए नायब ने ट्रेज़री में रुपये भेज कर दस दस बीस बीस रुपये के नोट मँगा लिये थे। आधी रात को डकैतों ने बन्दूकें-पिस्तौलें लिये आकर मालख़ाना लूट लिया। क़ासिम सर्दार पिस्तौल की गोली से ज़ख़्मी हो गया है। आश्चर्य की बात यह है कि डाकू केवल छः हज़ार रुपये लेकर बाक़ी डेढ़ हज़ार रुपये के नोट वहीं फेंक गये। वे सभी रुपये अनायास ले जा सकते थे। जो कुछ हो, डाकुओं का अभिनय हो गया, अब पुलिस की लीला शुरू होगी। रुपये तो गये ही, अब शान्ति भी न रहेगी।

घर के भीतर जाकर देखा, वहाँ डाके की ख़बर पहुँच गई है। मँझली रानी ने आकर कहा—राजा भैया, यह कैसी भयानक ख़बर है ! यह कैसा सर्वनाश है !

मैंने बात उड़ा देने के लिए कहा—सर्वनाश में इस समय भी बहुत कुछ बाक़ी है। अभी कुछ समय तक खा-पहन कर ज़िन्दा रह सकूँगा।

मँझली रानी—नहीं भाई, हँसी नहीं, तुम्हीं पर ये लोग इतने चिढ़े क्यों हैं ? राजा भैया, तुम न हो उनका मन रख कर ही न चलो ! सारे देश के लोगों को क्या—

मैं—देश भर के लोगों की ख़ातिर से देश तक को तो मैं डुबा न सकूँगा।

मँझली रानी—मैंने सुना है, उस दिन नदी के किनारे तुम्हारे लिए असगुन की बातें की हैं। छी छी ! मैं तो भय से मरी जा रही हूँ ! छोटी रानी ने तो मेम से पढ़ा है, उन्हें डर नहीं लगता—मैं तो पुरोहितजी को बुला कर शान्ति-स्वस्त्ययन कराऊँगी तब मेरे जी में जी आवेगा। तुम्हें मेरे सिर की क़सम राजा भैया, तुम कलकत्ते चले जाओ—यहाँ रहने से न-जानें किस दिन वे क्या कर बैठें।

मँझली रानी के भय और चिन्ता ने आज मेरे हृदय में मानों अमृत की वर्षा की ! अन्नपूर्णा, तुम्हारे हृदय के द्वार पर हमारी भीख किसी दिन ख़ाली न जायगी।

मँझली रानी—राजा भैया, तुमने अपने सोने के कमरे के पास ये जो रुपये रख छोड़े हैं सो यह तुम अच्छा नहीं करते। किसी तरफ़ से उन्हें ख़बर मिल जायगी और अन्त को—मैं रुपयों के लिए चिन्ता नहीं करती भाई—क्या जानें—

मैंने मँझली रानी को ठंडा करने के लिए कहा—अच्छा, वे रुपये निकाल कर अभी खज़ाञ्ची के पास भेजे देता हूँ। परसों ही कलकत्ते के बैंक में जमा कर आऊँगा।

इतना कह कर सोने के कमरे में गया। देखा, पास की कोठरी के किवाड़ बन्द हैं। दरवाजे में धक्का देते ही विमला ने कहा—मैं कपड़े उतार रही हूँ।

मँझली रानी ने कहा—अभी सवेरे ही से छोटी रानी का साज-सिङ्गार हो रहा है। तुमने तो अवाक् कर दिया ! आज शायद इन लोगों के वन्दे मातरम् की बैठक है ! अजी ओ देवी चौधरानी, लूट का माल जमा हो रहा है क्या ?

थोड़ी देर बाद आकर सब ठीक कर दूँगा—कह कर बाहर आकर देखा, वहाँ पुलिस के दारोग़ा साहब मौजूद हैं। मैंने पूछा—क्या ख़बर पाई ?

दारोग़ा—सन्देह तो करता हूँ।

मैं—किस पर ?

दारोग़ा—इसी क़ासिम सरदार पर।

मैं—यह क्या ? वही तो ज़ख़्मी हुआ है।

दारोग़ा—ज़ख़्म-वख़्म कुछ नहीं है—पैर का चमड़ा घिस कर ज़रा सा ख़ून निकाल लिया है—यह ख़ास उसी का काम है।

मैं—क़ासिम पर मैं किसी तरह सन्देह नहीं कर सकता—वह विश्वासी है।

दारोग़ा—विश्वासी है, यह मानने को राज़ी हूँ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि विश्वासी होने के कारण ही वह चोरी नहीं कर सकता। यह भी देखा है कि जिसने पच्चीस वर्ष तक ईमानदारी से काम किया उसी ने एक दिन एकाएक—

मैं—अगर आप जो कहते हैं वही बात हो तो भी मैं उसे जेल नहीं करा सकता। अच्छा, क़ासिम ने छः हज़ार रुपये लेकर बाक़ी नोट वहीं क्यों छोड़ दिये ?

दारोग़ा—अपनी सफ़ाई के लिए उसने यह चाल चली है। आप चाहे जो कहें, आदमी पक्का उस्ताद है। वह आप की कचहरी में पहरा देता है, और उधर आस-पास जितनी चोरियाँ डकैतियाँ हुई हैं उनमें भी शरीक़ है।

इन्स्पेक्टर ने इसके अनेक दृष्टान्त दिखा दिये कि पहरे की नौकरी करनेवाले लठैत लोग पचीस तीस मील दूर पर डाका डाल कर उसी रात को किस तरह लौट आकर अपने मालिक की कचहरी में हाज़िरी लिखा सकते हैं।

मैंने पूछा—क़ासिम को आप लाये हैं ?

दारोग़ा—नहीं, वह थाने में है—अभी डिपुटी बाबू तहक़ीक़ात करने आवेंगे।

मैं—मैं क़ासिम को देखना चाहता हूँ।

क़ासिम से भेंट होते ही वह मेरे पैर पकड़ कर रोते रोते कहने लगा—ख़ुदा की क़सम हुज़ूर, मैंने यह काम नहीं किया।

मैं—क़ासिम, मैंने तुम पर सन्देह नहीं किया। तुम्हें कुछ डर नहीं—बिना दोष के तुमको सज़ा न होने दूँगा।

क़ासिम डकैतों का अच्छी तरह वर्णन न कर सका—केवल ख़ूब अत्युक्ति से काम लेने लगा—चार-पाँच सौ आदमी थे, इतनी बड़ी बड़ी बन्दूकें तलवार इत्यादि लिये थे। मैंने समझ लिया, ये सब फ़ज़ूल बातें हैं। या भय की दृष्टि से वह वर्णन बढ़ गया है या हार की लज्जा छिपाने के लिए जान-बूझ कर यों बढ़ा कर बयान कर रहा है। उसकी धारणा यह है कि हरिशकुण्डू के साथ मेरी शत्रुता है, यह उसी का काम है—यहाँ तक कि कुण्डू के यहाँ के हुसैनी सरदार की आवाज़ भी उसने स्पष्ट सुनी है—यही उसका विश्वास है।

मैंने कहा—देखो क़ासिम, सिर्फ़ अन्दाज़ के ऊपर यक़ीन करके ख़बरदार दूसरे का नाम न ले। हरिशकुण्डू इस डाके में शामिल है, यह बना कर कहने की ज़रूरत नहीं है।

घर लौट आकर मास्टर साहब को बुला भेजा। उन्होंने सिर हिलाकर कहा—अब ख़ैर नहीं है। धर्म को हटा कर उसकी जगह पर लोगों ने देश को बिठाया है—अब देश का सब पाप उद्धृत होकर फूट निकलेगा—उसे अब कुछ लज्जा न रहेगी।

मैं—आप क्या समझते हैं, यह काम—

मास्टर—मैं नहीं जानता, किन्तु पाप की आँधी बह खड़ी हुई है। निकाल दो, निकाल दो, अपने इलाक़े से उन लोगों को अभी निकाल दो।

मैं—और एक दिन का समय दिया है—परसों सब चले जायँगे।

मास्टर—देखो, मैं एक बात कहता हूँ, विमला को तुम कलकत्ते ले जाओ। यहाँ से वह 'बाहर' को सङ्कीर्ण दृष्टि से देखती है—सब मनुष्यों का, सब चीज़ों का, ठीक परिमाण समझ नहीं पाती। उसे तुम एक बार पृथ्वी दिखला दो। मनुष्य को, मनुष्य के कर्मक्षेत्र को, वह एक बार बड़ी जगह से देख ले।

मैं—मैं भी यही बात सोच रहा था।

मास्टर—किन्तु अब देर न करो। देखो निखिल, मनुष्य का इतिहास पृथ्वी के सब देशों और सब जातियों को लेकर तैयार हो रहा है, इसी कारण पालिटिक्स में भी धर्म को बेंच कर देश को बढ़ाना चल नहीं सकता। मैं जानता हूँ, इस बात को योरप जी से नहीं मानता, किन्तु इसी कारण मैं यह मानने को तैयार नहीं कि योरप ही हमारा गुरु है। सत्य के लिए मनुष्य मर कर अमर होता है, कोई जाति भी अगर मरे तो मनुष्य के इतिहास में वह भी अमर होगी। उसी सत्य का अनुसरण जगत् के बीच, शैतान के अभ्रभेदी अट्टहास के बीच भारतवर्ष में ही विशुद्ध हो उठे! किन्तु विदेश से यह कैसी पाप की महामारी आकर हमारे देश में प्रविष्ट हुई है ?

* * *

सारा दिन इन्हीं सब तरह तरह के झगड़ों में बीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। थक कर रात को सोने गया। मैंने सोचा, वे रुपये आज रात को न निकाल कर कल सवेरे ही सन्दूक से निकालूँगा।

रात को एकाएक आँख खुल गई। कमरे में अन्धकार था। एक तरह का शब्द जैसे सुन पड़ा। शायद कोई रो रहा है।

रह रह कर बदली की रात की हवा के झोंकों की तरह आँखों के जल से भरी लम्बी साँस सुन पड़ती है। मुझे जान पड़ा, मेरे इस कमरे के हृदय के भीतर का यह रोना है!

मेरे कमरे में और कोई नहीं है। विमला कुछ दिनों से पास की किसी कोठरी में सोती है।

मैं बिछौने पर से उठ बैठा। बाहर के बरामदे में जा कर देखा, विमला ज़मीन पर पट पड़ी हुई है।

ये बातें लिखी नहीं जा सकतीं। यह क्या है, सो केवल वही जानते हैं जो विश्व के भीतर बैठ कर जगत् की सारी वेदना को ग्रहण करते हैं। आकाश गूँगा है, तारे चुप हैं, रात सन्नाटे में है—उसी के बीच में यह एक निद्राहीन रोना है!

हम इस सब सुख-दुःख को संसार के साथ शास्त्र के साथ मिला कर भला-बुरा एक-न-एक कुछ नाम देकर चुका डालते हैं! किन्तु अन्धकार के हृदय को भिगोता हुआ व्यथा का यह जो फुहारा उठ रहा है इसका क्या कोई नाम है! उस अर्धरात्रि में उन लाखों-करोड़ों तारों की चुप्पी के बीच खड़े होकर मैंने जब विमला की ओर देखा तब मेरा मन भय के साथ कह उठा, मैं इसका विचार करनेवाला कौन हूँ। हे प्राण, हे मृत्यु, हे असीम विश्व, हे असीम विश्व के ईश्वर, तुम्हारे बीच जो रहस्य है उसे मैं हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ।

एक बार सोचा, लौट जाऊँ। किन्तु लौट न सका। चुपचाप विमला के सिरहाने के पास बैठ कर उसके सिर पर हाथ रक्खा! पहले उसका सारा शरीर काठ की तरह कठिन हो उठा—उसके उपरान्त ही उस कठिनता को जैसे तोड़-फोड़ कर उससे रोना सहस्र धाराओं से बह चला। सोचने से भी यह समझ में नहीं आता कि मनुष्य के हृदय में इतना रोना कहाँ समाया रहता है।

मैं धीरे धीरे विमला के सिर पर हाथ फेरने लगा। उसके बाद न-जाने किस समय टटोल टटोल कर उसने मेरे दोनों पैर खींच लिये—और उन्हें छाती में इस तरह दबा लिया कि मुझे जान पड़ा, उसी आघात से उसका हृदय फट जायगा।

विमला की आत्म-कथा।

आज सवेरे अमूल्य कलकत्ते से लौटने को कह गया है। नौकर से मैंने कह रक्खा है कि उसके आते ही मुझे ख़बर दे। किन्तु एक जगह स्थिर होकर मुझसे बैठा नहीं जाता। बाहर बैठकख़ाने में जाकर बैठ रही।

अमूल्य को जब अपने गहने बेंचने के लिए मैंने कलकत्ते भेजा उस समय शायद अपनी बात के सिवा और किसी बात का ख़याल ही न था। यह बात एक बार भी मेरे ख़याल में नहीं आई कि वह लड़का है, इतने क़ीमती गहने कहीं बेंचने जाने से सभी उस पर सन्देह करेंगे। हम औरतें इतनी असहाय हैं कि अपनी विपत्ति और के सिर डालने के सिवा हमारे लिए कोई उपाय ही नहीं है। हम मरने के समय पाँच जनों को डुबा कर मरती हैं।

बड़ा अहङ्कार करके कहा था कि मैं अमूल्य को बचाऊँगी। जो आप ही डूबा जा रहा है वह भला दूसरे को बचावेगा! हाय हाय, मैंने ही शायद उसे मारा! मेरे भाई, मैं तेरी ऐसी बहन हूँ। जिस दिन मैंने तेरे मस्तक में भैयादूज का तिलक दिया था उसी दिन शायद यमराज मन ही मन हँसे थे। मैं आज अकल्याण का बोझा ही लिये फिरती हूँ।

मुझे आज जान पड़ता है, कभी कभी जैसे मनुष्य को अमङ्गल का प्लेग धर दबाता है, एकाएक कहीं से उसके बीज आ पड़ते हैं, एक रात ही में मृत्यु आकर घेर लेती है उस समय सारे संसार से ख़ूब दूर पर कहीं वह हटा रक्खा नहीं जा सकता क्या? स्पष्ट देख रही हूँ, उस·····बहुत ही भयानक है! वह विपत्ति की मशाल की तरह है, संसार में आग लगाने ही के लिए ख़ुद जला करती है।

नौ बजे। मुझे मालूम पड़ रहा है, अमूल्य विपत्ति में पड़ गया है, उसको पुलिस ने पकड़ लिया है। मेरे गहने के बक्स के कारण थाने में हलचल मच गई है। किसका बक्स है, उसने उसको कहाँ पाया, इसका जवाब तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त को मुझे ही देना पड़ेगा। सारी पृथ्वी के आदमियों के सामने! क्या जवाब दूँगी? मँझलीरानी, इतने दिनों से तुम्हारी बड़ी ही अवज्ञा मैंने की है! आज अवज्ञा करने का तुम्हारा समय आया है! तुम आज सारी पृथ्वी का रूप धारण करके बदला लोगी। हे भगवान्, अब की बार मुझे बचाओ—मेरा सब अहङ्कार चूर चूर होकर मँझलीरानी के पैरों के तले होगा।

अब रहा न गया—उसी समय घर के भीतर मँझली-रानी के पास जाकर उपस्थित हुई। वे उस समय बरामदे में धूप में बैठी पान लगा रही थीं, पास थाको दासी बैठी थी। थाको को देख कर दमभर के लिए मेरा मन सकुच गया। उसी समय उस सङ्कोच को दूर कर मँझली-रानी के पैरों पर गिर कर उनके पैरों की धूल मैंने अपने मस्तक में लगाई।

वे कह उठीं—यह क्या करती हो छोटी रानी, तुम्हें हो क्या गया है? एकाएक ऐसी भक्ति क्यों उमड़ पड़ी?

मैंने कहा—दीदी, आज मेरी जन्मतिथि है! मैंने तुम्हारे अनेक अपराध किये हैं, दीदी आशीर्वाद दो कि अब कभी किसी दिन तुमको कोई दुःख मुझसे न पहुँचे। मेरा मन बहुत ही ओछा है!

इतना कह कर उन्हें फिर प्रणाम कर मैं वहाँ से जल्दी से उठ आई। वे पीछे से कहने लगीं—अरे ओ छोटी रानी, यह बात तुमने पहले से क्यों नहीं बताई कि आज तुम्हारी जन्मतिथि है? आज दोपहर को मेरे यहाँ तुम्हारी दावत रही। बहन, भूलना नहीं!

भगवान्, ऐसा कुछ करो जिसमें आज मेरी जन्मतिथि हो। एक-दम नई क्या मैं नहीं हो सकती? सब धो-पोंछ कर और एक बार आदि से परीक्षा करो, प्रभो!

बाहर बैठकखाने के भीतर घुस रही थी, इसी समय सन्दीप आकर उपस्थित हुआ। खीझ के मारे सारा मन मानो ज़हरीला हो उठा। आज सवेरे के प्रकाश में उसका जो मुख देखा उसमें प्रतिभा का जादू ज़रा भी न था। मैं कह उठी—आप यहाँ से जाइए!

सन्दीप ने हँसकर कहा—अमूल्य तो है नहीं, अब तो विशेष बात-चीत का पाला मेरा ही है।

हाय रे जले भाग्य! जो अधिकार मैंने ही दिया है उस अधिकार को आज कैसे रोकूँ? मैंने कहा—मुझे इस समय अकेले रहने की ज़रूरत है।

सन्दीप—रानी, और एक आदमी के पास रहने पर भी अकेले रहने में विघ्न नहीं होता। मुझे तुम भीड़ का एक आदमी न समझो—मैं सन्दीप हूँ, मैं लाख आदमियों में भी अकेला हूँ।

मैं—आप फिर आइएगा, आज सवेरे मैं—

सन्दीप—अमूल्य के लिए अपेक्षा कर रही हो?

मैं खीझ कर वहाँ से उठ कर चले जाने का उद्योग कर रही थी, इसी समय सन्दीप ने अपने शाल के भीतर से मेरे गहनों का बक्स निकाल कर पत्थर के टेबिल पर रख दिया।

मैं चौंक उठी। बोली—तो अमूल्य गया नहीं?

सन्दीप—कहाँ नहीं गया?

मैं—कलकत्ते।

सन्दीप ने ज़रा हँसकर कहा—नहीं।

जान बची! मेरा भैयादूज का तिलक सफल हुआ। मैं चोर हूँ, विधाता का दण्ड यहीं तक पहुँचे—अमूल्य बच जाय!

सन्दीप ने मेरे मुख का भाव देख कर व्यङ्ग्य के स्वर पर कहा—इतनी ख़ुशी रानी? गहनों के बक्स का इतना मूल्य! तो फिर किस जी से देवी की पूजा के लिए इन गहनों को देना चाहा था? तुमने तो इन्हें दे डाला है, अब क्या देवता के हाथ से इन गहनों को फेर लेना चाहती हो?

अहङ्कार मरते मरते भी नहीं छोड़ता—जी चाहता दिखा दूँ कि इन गहनों पर रत्ती भर भी मुझे ममता नहीं है। मैंने कहा—इन गहनों का अगर आपको लोभ है तो आप इन्हें ले न जाइए।

सन्दीप ने कहा—आज बङ्गाल में जहाँ जितना धन है उस सबका मुझे लोभ है। लोभ के समान इतनी बड़ी वृत्ति क्या और भी है? पृथ्वी के जो इन्द्र हैं, लोभ ही उनका ऐरावत है। तो ये सब गहने मेरे हैं?

इतना कह कर सन्दीप ने जैसे वह बक्स शाल में लपेटा वैसे ही अमूल्य भीतर घुस आया। उसकी आँखों के नीचे काले दाग़ पड़ गये हैं, मुँह सूखा हुआ है, बाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूखे और बिखरे हुए हैं—एक ही दिन में मानो उसकी किशोर अवस्था का लावण्य झड़ गया है। उसको देखते ही मेरे हृदय के भीतर जैसे किसी ने बकोटा ले लिया।

अमूल्य ने मेरी ओर देखे बिना ही एक-दम सन्दीप के पास जाकर कहा—आप गहने का बक्स मेरे ट्रङ्क से निकाल लाये हैं ?

सन्दीप—गहने का बक्स क्या तुम्हारा है ?

अमूल्य—नहीं, लेकिन ट्रङ्क मेरा है।

सन्दीप हाः हाः करके हँस उठा। बोला—ट्रङ्क के सम्बन्ध में मैं-तुमका विचार तो तुम्हारा बड़ा सूक्ष्म है, अमूल्य ! मैं देखता हूँ, तुम भी मरने के पहले धर्म-प्रचारक होकर मरोगे।

अमूल्य कुर्सी पर बैठ गया और दोनों हाथों से मुख ढक कर उसने अपना सिर टेबिल पर रख दिया। मैंने उसके पास आकर उसके सिर पर हाथ रख कर कहा—क्या हुआ अमूल्य ?

तब उसने खड़े होकर कहा—दीदी, मेरी इच्छा थी कि यह गहने का बक्स मैं खुद अपने हाथ से लाकर तुमको दूँगा—सन्दीप बाबू यह जानते थे—इसी से उन्होंने झटपट—

मैंने कहा—यह गहने का बक्स लेकर मैं क्या करूँगी—वह जाय न, उसमें हानि क्या है ?

अमूल्य ने विस्मित होकर कहा—जायगा कहाँ ?

सन्दीप ने कहा—यह गहना मेरा है—यह मेरी रानी का दिया हुआ अर्घ्य है।

अमूल्य पागल की तरह कह उठा—नहीं, नहीं, नहीं, कभी नहीं ! दीदी, यह तुम्हें लौटाकर ला दिया है, इसे तुम और किसी को दे न सकोगी !

मैंने कहा भैया, तुम्हारा दान मुझे सदा याद रहेगा, किन्तु गहने का जिसे लोभ है उसे ले न जाने दो !

अमूल्य तब खूनी जानवर की तरह सन्दीप की ओर देख कर फुफकारता हुआ बोला—देखिए, सन्दीप बाबू, आप जानते हैं, मैं फाँसी को नहीं डरता। यह गहने का बक्स अगर आप लेंगे—

सन्दीप ने व्यङ्ग्य की हँसी हँसने की चेष्टा करके कहा—अमूल्य, तुमको भी यह जान लेना चाहिए कि तुम्हारी धमकी से मैं नहीं डरता। मक्खीरानी, यह गहना लेने के लिए नहीं, बल्कि तुमको देने के लिए ही मैं आया था। किन्तु मेरी चीज़ तुम अमूल्य के हाथ से लोगी, इसी अन्याय को न होने देने के लिए पहले इस बक्स पर अपना दावा स्पष्ट करके तुम्हारे मुख से कहला लिया। अब अपनी यह चीज़ मैं तुमको देता हूँ—यह बक्स रक्खा है ! अब तुम इस बालक के साथ सलाह करो, मैं जाता हूँ। कुछ दिनों से तुम दोनों में विशेष बात-चीत हो रही है, मैं उसके बीच में नहीं हूँ, अगर कोई विशेष घटना हो जाय तो तुम मुझे दोष न दे सकोगी। अमूल्य, तुम्हारा ट्रङ्क, पुस्तक जो कुछ असबाब मेरे यहाँ था सो सब मैंने तुम्हारे डेरे में भेज दिया है। तुम्हारी कोई चीज़ मेरे यहाँ नहीं रह सकती।

इतना कह कर सन्दीप झटपट वहाँ से चल दिया।

मैंने कहा—अमूल्य, जब से मैंने तुमको गहने बेंचने के लिए दिये थे तब से मुझे चैन नहीं था।

अमूल्य—क्यों दीदी ?

मैं—मुझे डर मालूम पड़ रहा था कि इस गहने के बक्स के कारण कहीं तुम आफ़त में न पड़ जाओ—कहीं कोई तुम्हें चोर समझ कर पकड़ न ले। मुझे छः हज़ार रुपये न चाहिए। इस समय मेरी एक बात तुमको सुननी होगी—अब तुम घर जाओ—अपनी मा के पास जाओ।

अमूल्य ने चादर के भीतर से एक पुटली निकाल कर कहा—दीदी, छः हज़ार रुपये ले आया हूँ।

मैंने पूछा—कहाँ पाये ?

इसका कुछ उत्तर न देकर उसने कहा—गिन्नियों के लिए बहुत कोशिश की, नहीं मिल सकीं, इसी से नोट लाया हूँ।

मैं—अमूल्य, तुम्हें मेरे सिर की क़सम, सच कहो, ये रुपये कहाँ पाये ?

अमूल्य—सो मैं आपसे न कहूँगा।

मेरी आंखों के आगे जैसे अँधेरा छा गया। मैंने कहा—तुमने क्या किया है अमूल्य ? ये रुपये क्या—

अमूल्य बीच ही में बोल उठा—मैं जानता हूँ, तुम कहोगी कि ये रुपये मैं अन्याय करके लाया हूँ—अच्छा वही मुझे स्वीकार है। किन्तु जितना बड़ा अन्याय उतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही भारी दाम, सो दाम मैं दे चुका हूँ। अब ये रुपये मेरे हैं।

इन रुपयों का पूरा हाल सुनने को फिर मेरा जी न चाहा। सब नसें सङ्कुचित होकर मेरे शरीर को मानो गठरी का आकार देने लगीं। मैंने कहा—ले जाओ अमूल्य, ये रुपये जहाँ से ले आये हो वहीं अभी दे आओ।

अमूल्य—यह तो बहुत ही कठिन बात है।

मैं—नहीं, कठिन नहीं है भाई। किस कुसाइत में तुम मेरे पास आये थे! सन्दीप भी जितना बड़ा तुम्हारा अनिष्ट नहीं कर सका सो मैंने किया!

सन्दीप के नाम ने जैसे उसके एक खोंचा मारा। उसने कहा—सन्दीप! तुम्हारे पास आने से ही तो मैं उसे पहचान सका हूँ। जानती हो दीदी, तुम्हारे पास से वह उस दिन जो छः हज़ार रुपये की गिन्नियाँ ले गया है उनमें से उसने एक पैसा भी नहीं ख़र्च किया। यहाँ से जाकर घर के भीतर घुस कर दरवाज़ा बन्द कर रूमाल से सब गिन्नियाँ फ़र्श पर डाल कर ढेर करके मुग्धदृष्टि से उनकी ओर वह देखता रहा। कहने लगा—ये गिन्नियाँ नहीं हैं, ऐश्वर्य कल्पवृक्ष के फूलों की पँखड़ियाँ हैं,—ये अलकापुरी की वंशी से सुर की तरह निकल निकल कर कठिन हो गई हैं। इन्हें देकर बैंक के नोट लेना तो हो नहीं सकता। ये तो सुन्दरी के कण्ठ का हार होकर रहने की कामना कर रही हैं। ओ रे अमूल्य, तुम इसे स्थूल दृष्टि से न देखना, यह है लक्ष्मी का हास्य, इन्द्राणी का लावण्य,—नहीं, नहीं, इस अरसिक नायब के पास पड़े रहने के लिए इनकी सृष्टि नहीं हुई। देखो अमूल्य, नायब ने बिलकुल झूठ कहा है, पुलिस को उस नाव के डूबने की ख़बर तक नहीं मिली—वह इस सुयोग में कुछ वसूल कर लेना चाहता है। नायब के पास से वे तीनों चिट्ठियाँ किसी तरह उड़ा देनी चाहिए। मैंने पूछा—किस तरह? सन्दीप ने कहा—ज़ोर करके, भय दिखा कर! मैंने कहा—मैं राज़ी हूँ, मगर वे गिन्नियाँ फेर देनी होंगी। सन्दीप ने कहा—अच्छा, यही करूँगा। इसके बाद किस तरह भय दिखा कर नायब से वे चिट्ठियाँ निकाल कर जला डाली हैं—सो बड़ा भारी क़िस्सा है। उसी रात को मैंने सन्दीप के पास आकर कहा—अब कुछ डर नहीं है, गिन्नियाँ मुझे दीजिए, कल सवेरे ही मैं दीदी को दे आऊँगा। सन्दीप ने कहा—यह कैसा मोह तुमको हो गया है! शायद दीदी के आँचल में देश को तुमने भुला दिया! कहो वन्दे मातरम्! मोह दूर हो जाय! तुम तो जानती हो दीदी, सन्दीप कैसा मन्त्र जानता है! गिन्नियाँ उसी के पास रह गईं। मैं अँधेरी रात को तालाब के घाट पर चबूतरे के ऊपर बैठ कर वन्दे मातरम् जपने लगा। कल जब तुमने गहने बेंचने को दिये तब सन्ध्या के समय फिर उसके पास गया। अच्छी तरह समझ गया कि वह उस समय क्रोध के मारे मुझ पर जल रहा है। उसने क्रोध प्रकट नहीं किया। कहा—देखो, यदि मेरे किसी बक्स में गिन्नियाँ हों तो ले जाओ। यह कह कर उसने मेरे ऊपर चाभियों का गुच्छा फेंक दिया। गिन्नियाँ कहीं भी न थीं। मैंने कहा—कहाँ रक्खी हैं, बतलाइए? सन्दीप ने कहा—पहले तुम्हारा मोह दूर हो तब मैं बतलाऊँगा। अभी नहीं। मैंने देखा—किसी तरह गिन्नियाँ इससे न निकलेंगी। तब मुझे दूसरा उपाय करना पड़ा। इसके बाद भी उसे छः हज़ार रुपये के नोट दिखा कर उन गिन्नियों के लेने की मैंने बहुत कुछ चेष्टा की। गिन्नियाँ लाने का बहाना करके मुझे धोखा दिया और अपने सोने की कोठरी से मेरे ट्रङ्क को तोड़ कर गहनों का बक्स लेकर तुम्हारे पास आया—यह बक्स मुझे तुम्हारे पास लाने नहीं दिया। उस पर कहता है कि वह गहना उसी का दूत है! मैं किससे कहूँ कि उसने मुझे कितना बड़ा धोखा दिया है। इसे मैं कभी माफ़ नहीं कर सकता। दीदी, उसके मन्त्र का असर एक-दम जाता रहा है। तुम्हीं ने उसे दूर कर दिया।

मैंने कहा—मेरे भाई, मेरा जीवन सार्थक हुआ। किन्तु अमूल्य, अभी कुछ बाक़ी है। केवल माया दूर होने से काम न चलेगा, जो स्याही मैंने पोती है उसे धो डालना होगा। देर न करो, अमूल्य, अभी जाओ। ये रुपये जहाँ से लाये हो वहीं रख आओ। प्यारे भाई, क्या तुमसे यह न होगा?

अमूल्य—तुम्हारे आशीर्वाद से दीदी, मैं सब कुछ कर सकता हूँ।

मैं—इसमें अकेले तुम्हारा ही कर सकना नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं ही कर सकती थी। किन्तु मैं स्त्री हूँ, बाहर निकल नहीं सकती। नहीं मैं तुमको कभी न जाने देती। मैं खुद जाती। मेरे लिए यही सबसे कठिन दण्ड है कि मेरा पाप तुमको सँभालना पड़ता है।

अमूल्य—यह न कहो दीदी! मैं जिस राह पर चला था वह तुम्हारी राह नहीं है। वह राह दुर्गम है, इसी से मेरा मन उधर झुका था। दीदी, अब तुमने अपनी राह में मुझे बुलाया है—यह राह मुझे और भी हज़ार गुनी दुर्गम हो, किन्तु तुम्हारे चरणों की धूल मस्तक में लगाकर बेखटके चला जाऊँगा—कुछ डर नहीं है! तो तुम्हारी यही आज्ञा है कि ये रुपये जहां से लाया हूँ वहीं दे आऊँ?

मैं—मेरी आज्ञा नहीं भैया, उस ईश्वर की आज्ञा है।

अमूल्य—सो मैं नहीं जानता। वह ईश्वर की आज्ञा मुझे तुम्हारे मुख से मिली है, यही मेरे लिए यथेष्ट है। किन्तु दीदी, तुमने आज मुझे न्योता दिया है। उसे आज खाकर जाऊँगा। आज प्रसाद देना होगा। उसके उपरान्त हो सकेगा तो शाम होने के इधर ही काम कर आऊँगा।

हँसने चली, पर आँखों से आँसू निकल आये। मैंने कहा—अच्छा।

(असमाप्त)

रूपनारायण पाण्डेय

चारु चयन।

१—उलझन।

कहीं आते नहीं बनता कहीं जाते नहीं बनता,
अजब कुछ हाल है ऐसा कि बतलाते नहीं बनता ॥१॥
हमें था गर्व इसका हम ज़रा डरते न दुःखों से,
कहें कैसे किसी से हम कि ग़म खाते नहीं बनता ॥ २ ॥
बिना देखे सुने ही लग गई ऐसी लगन कैसे?
समझते हैं न बनता और समझाते नहीं बनता ॥३॥
नहीं जो बोलता तक है उसी से याचना करना—
शरम की बात है पर हाय! शरमाते नहीं बनता ॥४॥
हमारे प्रेम में अब भी न क्यों सन्देह हो उसको?
हृदय का हाल उसके पास पहुँचाते नहीं बनता ॥५॥
हमारे दुःख निष्फल हैं भली विधि जानते हम हैं,
मगर मन हो गया ऐसा कि बहलाते नहीं बनता ॥६॥
यही वह चाहता शायद भुला दें हम उसे मन से,
मगर यह हुक्म है ऐसा बजा लाते नहीं बनता ॥७॥
उसे हम देखने को मर रहे पर वह अगोचर है,
पड़ा कैसा कठिन झगड़ा कि निपटाते नहीं बनता? ॥८॥
विरह की वेदना भारी सही अब है नहीं जाती,
मगर यह दान उसका हाय! लौटाते नहीं बनता ॥९॥
मनाते हम उसे जितना मचलता वह अधिक उतना,
उलझ मन है गया ऐसा कि सुलझाते नहीं बनता ॥१०॥

गोपालशरणसिंह

२—अश्वघोष के सम्बन्ध में कुछ बातें।

गौतम-बुद्ध और उनके धर्म्म से जिन लोगों को प्रेम है वे संस्कृत के प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ बुद्ध-चरित को अवश्य जानते हैं। बुद्ध-चरित के रचयिता अश्वघोष माने जाते हैं। अश्वघोष केवल बौद्ध कवि ही नहीं थे, किन्तु संस्कृत-कवियों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है।

अश्वघोष की जन्म-तिथि का निश्चय अभी तक ठीक ठीक नहीं किया जा सका है। प्राचीन काल में 'अश्वघोष' नाम अनेक कवि और लेखक हो गये हैं। फिर भी यह पता लग गया है कि अश्वघोष महाराज कनिष्क के धर्मोपदेशक तथा सभा-कवि थे। अतः वे सन् ईसवी की प्रथम शताब्दी में जीवित थे। चीनी यात्री हूयनसंग ने लिखा है कि 'संसार को चार सूर्य्य प्रकाशित करते हैं'। ये चार सूर्य्य थे—देव, नागार्जुन, कुमारिल भट्ट और अश्वघोष। सन् ६७३ ईसवी में हूयनसंग ने भारत से प्रस्थान किया था। परन्तु इत्सिंग ने अश्वघोष का अधिक पता बताया है। इत्सिंग ६७३ ईसवी में भारतवर्ष आया था। उसने लिखा है कि अश्वघोष ने दो ग्रन्थों की रचना की है—(१) अलङ्कार-शास्त्र और (२) बुद्ध-चरित काव्य। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने भगवान् बुद्ध, अमिताभ तथा अवलोकितेश्वर नामक देव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताओं की प्रशंसा में अनेक मन्त्रों की रचना की थी, जो स्तूपों की सान्ध्य प्रार्थना के समय पढ़े जाते थे। एम० फुजिशाम (M. Fujisham) ने एक बार लिखा था कि 'भारतवर्ष के पाँच देशों में तथा दक्षिणी समुद्र के देशों में ये मन्त्र पढ़े जाते हैं, क्योंकि इन कविताओं में भावों की निधि है और थोड़े शब्दों में ये व्यक्त किये गये हैं।'

अश्वघोष महायान पन्थ के जन्मदाता माने जाते हैं। जान पड़ता है कि अश्वघोष पहले वैदिक ब्राह्मण थे और उन्होंने पीछे से बौद्ध-धर्म्म को स्वीकार किया था। इनके तिब्बती जीवन-चरित में लिखा हुआ है कि 'ऐसी कोई समस्या न थी जिसे वे हल नहीं कर सकते थे; ऐसी कोई भी युक्ति न थी जिसका वे खण्डन नहीं कर सकते थे; वे अपने विपक्षियों को उतनी सुगमता से जीत लेते थे जितनी सुगमता से प्रबल पवन खोखले वृक्षों को नष्ट कर देती है।' इसी जीवन-चरित में यह भी लिखा हुआ है कि उन्हें सङ्गीत का भी बहुत अभ्यास था। वे गीतों की रचना करते और अपनी सङ्गीत की मण्डली के साथ गाँवों में जाते और उन्हें गा गाकर लोगों को सुनाया करते। उनके गीतों को सुनकर लोग मुग्ध हो जाते थे।

बुद्ध-चरित खण्डित है। दूसरे कवियों ने उसकी पूर्ति की है। संसार में इस समय इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ हैं पर उनमें से एक भी भारतवर्ष में नहीं है। संस्कृत-साहित्य हमारा है और हमारे कवियों ने उसे अनेक ग्रन्थ-रत्नों से सुशोभित किया है, पर हम भारतीय इतने अक्षम हो गये हैं कि हम अपने साहित्य की रक्षा तक नहीं कर सकते। योरपीय विद्वानों के परिश्रम पर विचार कीजिए। इन्होंने हमारे साहित्य, हमारे धर्म्म तथा हमारे दर्शन की जितनी खोज की है उसके शतांश का श्रेय हमें नहीं मिल सकता। राजेन्द्रलाल मित्र, भाण्डारकर आदि भारतीयों ने यद्यपि खोज की है तथापि संस्कृत-साहित्य का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि अभी उन्हीं के सदृश अनेक विद्वानों की आवश्यकता है, यह सन्तोष की बात है कि अब अनेक विद्वान् इसकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। अस्तु।

इन तीन हस्तलिखित प्रतियों में एक प्रति तो पेरिस के नेशनल पुस्तकालय में रक्खी हुई है, दूसरी केम्ब्रिज के यूनिवर्सिटी पुस्तकालय में और तीसरी इसके अनुवादक मिस्टर इ० बी० कावेल के पास है। कावेल महाशय लिखते हैं कि इन प्रतियों में पाठान्तर है। जो प्रति उनके पास है उसका सम्पादन प्रोफ़ेसर वेन्डेल की प्रार्थना पर काठमाण्डू के एक स्थानीय पण्डित ने किया है। कावेल महाशय ने यद्यपि इसी प्रति को प्रामाणिक माना है तथापि उन्होंने उन तीनों प्रतियों की सहायता से इस काव्य का सम्पादन किया है जिसे आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने प्रकाशित किया है। हम नहीं जानते कि किसी भारतीय प्रकाशक ने इस काव्य को प्रकाशित किया है या नहीं। प्रयत्न करने पर भी हमें इस काव्य की ऐसी प्रति न मिली जिसका प्रकाशन भारतवर्ष में हुआ हो। इसलिए आक्सफ़ोर्ड प्रेस की ही प्रति हमें ख़रीदनी पड़ी। ऐसा जान पड़ता है कि हिन्दी या किसी भारतीय भाषा में इस सुप्रसिद्ध ग्रन्थ का अनुवाद अभी तक नहीं हुआ है। और देशी भाषाओं के विषय में तो हम नहीं कह सकते, परन्तु हमारी समझ में बँगला और हिन्दी भाषा में अभी तक इस ग्रन्थ का अनुवाद नहीं किया गया है।

पेरिस के नेशनल पुस्तकालय में रक्खी हुई प्रति की लिपि देवनागरी है और अन्य दो प्रतियाँ नैपाली लिपि में हैं। देवनागरी-लिपि में लिखी हुई प्रति में अनेक अशुद्धियाँ हैं। इसका कारण देवनागरी-लिपि के प्रति नैपालियों की अनभिज्ञता है। नैपाली-लिपि में लिखी हुई प्रतियों में पाठान्तर नहीं पाया जाता।

बुद्ध-चरित महाकाव्य कहलाता है। इसके कई एक श्लोक दूसरे संस्कृत ग्रन्थों में ले लिये गये हैं। अमर-कोष की एक टीका में तथा अनादि सूत्रों की एक टीका में निम्न-लिखित श्लोक पाया जाता है—

इदं पुरं तेन विवर्जितं वनं
वनं च तत्तेन समन्वितं पुरम्।
न शोभते तेन हि नो विना पुरं
मरुत्वता वृत्रवधे यथा दिवं॥
सर्ग ८, श्लो० १२

सुभाषितावली नामक ग्रन्थ में भी इस काव्य के अनेक श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह काव्य सातवीं या आठवीं शताब्दी में तिब्बती-भाषा में अनूदित किया गया था। चीनी-भाषा में भी इसका अनुवाद पाया जाता है। पर इन दोनों अनुवादों में २८ अध्याय पाये जाते हैं। चीनी-अनुवाद की अपेक्षा तिब्बती-अनुवाद मूल-ग्रन्थ से अधिक मिलता है। चीनी-अनुवाद ज़रा अस्पष्ट और अबोध है।

तिब्बती-अनुवाद का प्रथम अध्याय चीनी अनुवाद से मिलता-जुलता है, पर इन दोनों में मूलग्रन्थ के प्रथम चौबीस श्लोक नहीं लिखे गये हैं। तिब्बती-अनुवाद में इनके बाद के सारे श्लोक तेरहवें सर्ग तक संस्कृत ग्रन्थ से बिलकुल मिलते हैं, परन्तु संस्कृत के चौदहवें सर्ग के अन्तिम श्लोकों से अन्तिम सर्ग के अन्तिम श्लोक तक तिब्बती तथा चीनी अनुवाद में पद्य बिलकुल ही नहीं पाये जाते।

केम्ब्रिज के यूनिवरसिटी पुस्तकालय में रक्खी हुई हस्त-लिखित प्रति के सत्रहवें सर्ग के बाद निम्न-लिखित दो श्लोक लिखे हुए हैं—

शून्यबाणाङ्कयुग्वर्षे मार्गे मासेऽसिते स्मरे।
अमृतानन्देन लिखितं बुद्धकाव्यं सुदुर्लभम् ॥१॥
सर्वत्रान्विष्य नो लब्ध्वा चतुःसर्गं च निर्मितं
चतुर्दशं पञ्चदशं षोडशं सप्तदशं तथा ॥२॥

इसके पश्चात् हस्तलिखित प्रति के अन्तिम पृष्ठ पर हिन्दी-भाषा में २४ पङ्क्तियाँ लिखी गई हैं। इन पङ्क्तियों में लिखनेवाले का नाम नहीं पाया जाता। इन हिन्दी पङ्क्तियों में श्रीराजेन्द्रविक्रम, उनके पुत्र श्रीसुरेन्द्र-विक्रम और उनके मन्त्री भीमसेन की कीर्ति गाई गई है। डाक्टर राइट (Dr. Wright) कृत 'नैपाल का इतिहास' नामक ग्रन्थ में श्रीराजेन्द्रविक्रम का उल्लेख किया गया है। सन् १८१६ ईसवी में ये नैपाल के राजा बनाये गये थे और भीमसेन, जिन्हें जनरल और क़ाज़ी की उपाधि दी गई थी, उनके प्रधान मन्त्री थे। राजेन्द्रविक्रम सन् १८४७ ईसवी में गद्दी से उतार दिये गये और उनके स्थान में उनके पुत्र श्रीसुरेन्द्रविक्रम, जिनका जन्म सन् १८२९ ईसवी में हुआ था, राजसिंहासन पर आसीन किये गये।

परन्तु अब यह जानना चाहिए कि अमृतानन्द कौन थे जिन्होंने उन अन्तिम चार सर्गों की रचना की। 'नैपाल का बौद्ध-साहित्य' नामक अँगरेज़ी ग्रन्थ में राजेन्द्र-लाल मित्र लिखते हैं कि अमृतानन्द ने तीन समालोचना-ग्रन्थों की रचना की है। प्रथम दो ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में तथा तीसरा ग्रन्थ नैपाली-भाषा में है। रायल एशि-याटिक सोसायटी के पुस्तकालय में द्वितीय ग्रन्थ की नक़ल रक्खी हुई है। उसके अन्त में 'अमृतानन्द-विर-चिता' यह लिखा हुआ है। और दूसरे ग्रन्थ अर्थात् करुणा पुण्डरीक-महायान सूत्र में 'अमृतानन्दनोलिखित'—यह लिखा हुआ पाया जाता है। इन सब प्रमाणों से हम यह कह सकते हैं कि अमृतानन्द रचयिता तथा नक़ल-नवीस थे। जान पड़ता है कि अमृतानन्द ने सन् १७९६ ईसवी से १८३० ईसवी तक इन दोनों पदों का कार्य्य किया है, क्योंकि उपर्युक्त 'अमृतानन्देन लिखिता' के बाद नैपाली संवत् ९१६ का भी उल्लेख किया गया है। नैपाली संवत् अँगरेज़ी ईसवी से ८८० वर्ष पीछे है, अर्थात् नैपाली संवत् ९१६ अँगरेज़ी संवत् १७९६ से व्यक्त किया जा सकता है। उपर्युक्त दो श्लोकों के 'शून्यबाणाङ्कयुग्वर्षे' का अर्थ ९५० निकलता है, जिसमें ८८० वर्ष जोड़ देने से अँगरेज़ी सन् १८३० निकल आता है। जान पड़ता है कि ये अमृतानन्द नैपाल के पण्डित गुणानन्द के पिता थे, जिनके इन्द्रानन्द नामक पुत्र शायद अब तक जीवित हैं और राज-सभा में किसी पद पर सुशोभित हैं।

इससे हम कह सकते हैं कि बुद्ध-चरित के अन्तिम चार सर्गों के रचयिता अमृतानन्द ही थे। केम्ब्रिजवाली हस्तलिखित प्रति में लिखे हुए उपर्युक्त दो श्लोकों की तीसरी पङ्क्ति में पहले 'सर्गत्रयम्' लिखा हुआ था। किन्तु यह काट दिया गया और इसके ऊपर 'चतुःसर्गं' लिखा हुआ है। कावेल महाशय का मत है कि 'चरित' के वे तीन अन्तिम सर्ग जो तिब्बती तथा चीनी-अनुवादों में नहीं पाये जाते इन्हीं अमृतानन्द पण्डित के द्वारा रचे गये हैं। चौदहवें सर्ग का पूर्वांश, जो तिब्बती तथा चीनी अनुवादों में पाया जाता है, किसी फटी-पुरानी मूल हस्त-लिखित प्रति से लिया गया है और उत्तरांश अमृतानन्द के द्वारा जोड़ दिया गया है। इन अन्तिम तीन सर्गों की रचना-शैली उन तेरह सर्गों की शैली से बिलकुल ही भिन्न है। इनमें अलङ्कार की बहुत कम मात्रा पाई जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कहीं कहीं तो व्याकरण-विषयक दोष भी पाये जाते हैं। चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें सर्ग के श्लोक अनुष्टुप् छन्द में लिखे गये हैं। परन्तु कहीं कहीं लघु शब्द अधिक जोड़ दिये गये हैं। सत्रहवाँ सर्ग दण्डक छन्द में तो लिखा गया है, परन्तु उसके भी यहाँ अनेक रूप पाये जाते हैं, जैसे कुसुमस्तबक, मत्तमातङ्गलीलाकर। जान पड़ता है कि अन्तिम अर्थात् सत्रहवें सर्ग की रचना नैपाल में हुई है, क्योंकि इस सर्ग में यह लिखा हुआ है कि गौतम-बुद्ध राहुल, गौतमी प्रभृति से अहोरात्र, लक्षचैत्य, शार्ङ्गभैर्य तथा वसंधारिका नामक कर्म करने के लिए कहते हैं। यह श्लोक सत्रहवें सर्ग का अठाईसवाँ श्लोक है। राजेन्द्रलाल मित्र के 'नैपाल का बौद्धसाहित्य' नामक ग्रन्थ में इन चार कर्मों का नाम आया है।

उनतीसवें श्लोक में उत्तरी बौद्धों के १२ ग्रन्थों की नामावली दी गई है। इनके नाम ये हैं—

(१) गेय (२) गाथा (३) निदान (४) अवदान (५) (महायान) सूत्र (६) व्याकर (शुद्ध शब्द व्याकरण) (७) इत्युक्त (८) जातक (९) वैपुल (या वैपुल्य) १० अद्भुत (११) उपदेश और (१२) उदानक।

इन प्रमाणों से यह निश्चय हो जाता है कि अश्वघोष ने बुद्ध-चरित के प्रथम तेरह तथा चौदहवें सर्ग के पूर्वांश की रचना की थी।

मनोहरप्रसाद मिश्र

३—ही और कभी।

(१)

ही शब्द उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रचलित है। इसके बिना काम नहीं चल सकता। परन्तु शोक है कि उर्दू में साधारणतया और हिन्दी में विशेषकर इस शब्द का प्रयोग ठीक नहीं किया जाता। मैंने अच्छे अच्छे लेखकों के लेख पढ़े हैं, मगर यह भूल वे भी कर जाते हैं। "ही" शब्द ज़ोर देने के लिए है। जिस शब्द के साथ आवेगा उसे ही दूसरों से अलग कर देगा, या उस पर ज़ोर देगा। जैसे:—

(क) कमला ही ऐसी पत्रिका है, जो हिन्दी में सबसे पहले सज-धज के साथ निकली और लोग चौंक पड़े।

(ख) जब तुम जा ही नहीं सकते, तो फिर चिन्ता क्यों करते हो?

यहाँ "ही" का प्रयोग ठीक वैसा ही हुआ है, जैसा होना चाहिए। परन्तु हिन्दी के कई धुरन्धर लेखक भी इस शब्द के प्रयोग में प्रायः भूल कर जाते हैं। बात साधारण है, मगर भाषा के सौन्दर्य्य को ग्रहण लग जाता है। इस शब्द का प्रयोग करते हुए कई सज्जन लिख देते हैं:—

(१) महाराज रामचन्द्र ने ही बाली को मारा था।

यहाँ "ही" के प्रयोग का प्रयोजन केवल यह है कि रामचन्द्र पर ज़ोर दिया जाय, ताकि पढ़नेवाला सहज ही में यह समझ जावे कि बाली को किसी अन्य वीर ने नहीं मारा, परन्तु रामचन्द्र ही ने मारा है। इसलिए ही शब्द रामचन्द्र के साथ आना चाहिए न कि ने के साथ। ने के साथ ही लगाने का यह अर्थ है कि हम 'ने' पर ज़ोर दे रहे हैं। मगर किसी भी लेखक का तात्पर्य्य यह नहीं होता। इसलिए लिखना चाहिए—महाराज रामचन्द्र ही ने बाली को मारा था।

(२) कई सज्जन लिख देते हैं:—

धर्म्मराज युधिष्ठिर पर ही वनवास का सङ्कट नहीं पड़ा था।

यहाँ पर भी वही ग़लती है। हमें ज़ोर युधिष्ठिर पर देना है न कि "पर" पर। इसलिए ठीक इस तरह लिखना चाहिए:—धर्म्मराज युधिष्ठिर ही पर वनवास का सङ्कट नहीं पड़ा था।

यह उदाहरण कल्पित हैं। अब हम उच्च कोटि की पत्रिकाओं के लेखों से दर्शायेंगे कि इस शब्द के प्रयोग में कैसी असावधानी की जाती है।

सितम्बर की प्रभा में एक महाशय ने एक स्थान पर लिखा है:—

दर्शकों की कल्पना-शक्ति पर ही ऐसे नाटक के अभिनय की सफलता निर्भर है। यहाँ ही का प्रयोग ठीक नहीं हुआ। यों लिखना चाहिए था दर्शकों की कल्पना शक्ति ही पर ऐसे नाटक के इत्यादि।

माधुरी की तुलसी-संख्या में जो सबसे पहला लेख श्रीयुत हीरालाल का प्रकाशित हुआ है उसमें "ही" का प्रयोग बड़ी सावधानी से किया गया है। कहीं भी यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाई नहीं देती । परन्तु एक दूसरे सज्जन अपने लेख में लिखते हैं:—

सिर्फ़ स्टेशन पर ही नहीं बल्कि हर जगह जहां भीड़ ज़्यादा होती है वहां के लोग ऐसा ही करते हैं। यहां पहली ही स्टेशन के बाद आनी चाहिए, न कि पर के बाद।

जुलाई की सरस्वती में एक लेख छपा है, जिसमें यह शब्द आये हैं:—वहां की रुई का सम्बन्ध केवल जापान के बाज़ार से ही है। अब यदि बाज़ार पर ज़ोर देना है तो लिखना चाहिए:—वहां की रुई का सम्बन्ध केवल जापान के बाज़ार ही से है। और यदि जापान पर ज़ोर देना हो तो इस तरह लिखना चाहिए:—वहां की रुई का सम्बन्ध केवल जापान ही के बाज़ार से है। आशा है, इन उदाहरणों से पाठक मेरा तात्पर्य्य समझ गये होंगे। यदि वे मेरे साथ सहमत हों तो इस बात का ध्यान रक्खें। पहले मैं आप भी इस विषय में भूल करता रहा हूँ। भविष्य में सावधान रहूँगा।

(२)

सभी, जभी, तभी, कभी एक ही श्रेणी के शब्द हैं। इनमें से हर एक के दो टुकड़े किये जा सकते हैं—सभी को सब ही, जभी को जब ही, तभी को तब ही और कभी को कब ही में विभक्त किया जा सकता है। जब हम कहते हैं, सभी लोग आ गये हैं, तो हमारा तात्पर्य्य यह होता है कि सब ही अर्थात् सारे लोग आ गये हैं। जब हम कहते हैं, जभी आप हँसने लगे थे, तो हमारे कथन का अर्थ यह लिया जाता है, कि जब ही या ज्यों ही आप हँसने लगे थे। इसी प्रकार तब ही या उसी समय तुमने क्यों पुस्तक न ख़रीद ली के स्थान में तभी तुमने पुस्तक न ख़रीद ली कह देते हैं। परन्तु "कभी" की बनावट का पता नहीं चलता। इस शब्द के भी दो हिस्से हैं, कब और ही। क्या जब हम कहते हैं कि हम वहां कभी नहीं गये, तो इसका यह अर्थ है कि हम वहां कब ही नहीं गये। यदि यही अर्थ है, जो वास्तव में है, तो साफ़ ज़ाहिर है कि इस कभी शब्द के वह अर्थ "कभी" नहीं जो साधारणतया लिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ आज तक किसी ने नहीं किया। इससे तो यह मालूम होता है कि यह शब्द सिरे ही से ग़लत है, और इसके प्रयोग में बड़ी भूल होती रही है। मैं चाहता हूँ कि कोई सज्जन इस पर अपने विचार प्रकट करें ताकि इस शब्द की विवेचना हो सके।

सुदर्शन

४—ताजमहल-निर्माण।

अर्द्ध शताब्दी पूर्व कर्नल आर० पी० एनडर्सन ने फ़ारसी-भाषा की एक हस्तलिखित पुस्तक से आगरा के सुविख्यात ताजमहल के निर्माण की कहानी सङ्कलित करके 'कलकत्ता रिव्यू' में प्रकाशित की थी। उसका मर्म आगे दिया गया है।

सम्राट् शाहजहां के चार पुत्र और चार कन्यायें थीं। प्रथम पुत्र का नाम दाराशिकोह (मर्यादा में श्रेष्ठ), दूसरे का शाहसुजा (वीर राजा), तीसरे का मोहम्मदमुरादबख़्श, और चौथे का औरङ्गज़ेब आलमगीर (पृथ्वीजयी एवं पृथ्वीभूषण) था। शाहजहां की कन्याओं के नाम—अर्जुमन आरा (सभा की शोभा), ज़ेबुन्निसा, जहान आरा (सम्राज्ञियों की शोभा) और दहर आरा बेगम थे।

दहर आरा बेगम ने अपने भूमिष्ठ होने के कुछ समय पूर्व ही जननी के गर्भ में रोदन किया था। शिशु का यह अस्वाभाविक रोदन सुनते ही जननी मुमताजमहल अपने जीवन से हताश होगई। उसी समय शाहजहां को पास बुला कर वह रोदन करते हुए कहने लगी—आपके निकट से हमारे चले जाने का समय आ गया है। हमारे भाग्य में आज दुःख और विच्छेद लिखा था। हमारे विच्छेद का यही दिन है। यह सब कोई जानते हैं कि जब शिशु माता के गर्भ में रोदन करता है तब माता की जीवन-हानि निश्चित है। इसी लिए हे सम्राट्, मेरी सब त्रुटियां और अपराध क्षमा करिए, क्योंकि मेरे बिदा लेने का समय निकट आगया है और बिदा लेकर इस क्षणभङ्गुर जगत् से उस जरा-मृत्यु-हीन देश में जाना होगा जहां शान्ति ही शान्ति विराजमान है।

अपनी प्रियपत्नी के मुख से महायात्रा की विषादपूर्ण बात सुन कर शाहजहां को अत्यन्त दुःख हुआ। वे अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्नी से अत्यन्त प्रेम करते थे। दारुण दुःख से वे उच्च स्वर से रोदन करने लगे।

सम्राट्-पत्नी बानू बेगम पुनः रोते रोते कहने लगी—हे सम्राट्, मेरी आत्मा जितने दिन तक इस पृथ्वी में बन्द थी उतने समय तक मैं केवल आपकी वेदना का अंश ग्रहण करती रही। आज जिस प्रकार विधाता के अनुग्रह से आप सम्राट हैं, उसने विश्व का साम्राज्य आपको अर्पण किया है, उसी प्रकार आज पृथ्वी से बिदा लेते हुए मुझको अत्यन्त दुःख होता है। इस समय मेरे मन में दो इच्छायें हैं। आशा है, आप मेरी इच्छाओं से सहमत होंगे और उन्हें पूर्ण करेंगे।

सम्राट ने उसी समय उन इच्छाओं को सम्राज्ञी से पूछा। सम्राज्ञी ने कहा—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने मेरे गर्भ से आपको चार पुत्र और चार पुत्रियाँ दी हैं। वंश-रक्षा के लिए इतना यथेष्ट है। मेरी प्रथम इच्छा यही है कि भगवान् अब आपको कोई पुत्रादिक न दे। कारण कि दूसरी बेगमों से उत्पन्न सन्तानें मेरे पुत्रादिकों से सदा कलह किया करेंगी। मेरी द्वितीय इच्छा यह है कि मृत्यु के बाद मेरे शरीर के ऊपर इस प्रकार का मनोमोहक, सुन्दर और दुर्लभ समाधि-मन्दिर बनाया जाय जिसको देख कर लोग कहें कि इसकी तुलना नहीं है। सम्राट् ने दोनों इच्छाओं की पूर्ति का वचन दिया।

दहरआरा बेगम जिस समय भूमिष्ठ हुई उसी समय सम्राज्ञी की मृत्यु हो गई। सम्राज्ञी की मृत्यु के पश्चात् ६ मास तक शव एक खुले हुए स्थान में रक्खा रहा, वर्तमान समाधिक्षेत्र में तत्काल ही नहीं रख दिया गया था। प्रख्यात शिल्पीगण समाधि-मन्दिर का नक़्शा अङ्कित करके सम्राट् के समक्ष परीक्षा के लिए उपस्थित करने लगे। जब एक नक़्शा पसन्द हो गया तब प्रथम उसके अनुरूप एक लकड़ी का समाधि-मन्दिर बनाया गया। उसके पश्चात् दुर्लभ एवं बहुमूल्य प्रस्तरादि-द्वारा यह ताजमहल निर्मित हुआ। इसके निर्माण करने में १७ वर्ष लगे थे। (सुप्रसिद्ध इतिहास-अध्यापक श्रीयुत यदुनाथ सरकार ने लिखा है—मुमताजमहल का शव प्रथम बुरहानपुर के निकट ताप्ती नदी के तीर पर एक उद्यान में रक्षित हुआ था। उनकी मृत्यु के बाद पहली दिसम्बर को मृत-देह भूगर्भ से निकाल कर शाहज़ादा शुजा के तत्त्वावधान में आगरा लाई गई थी। शुजा २० दिसम्बर को आगरा पहुँचा था)।

सम्राट् शाहजहाँ और सम्राज्ञी मुमताजमहल की यह विदा-कहानी समसामयिक ऐतिहासिक अब्दुलहमीद लाहोरी के ग्रन्थ में नहीं है। उसके ग्रन्थ का नाम पादशाह-नामा है। समाधि-मन्दिर में जिस प्रकार के पत्थर आदि व्यवहृत हुए थे उसकी तालिका आगे दी जाती है—

पत्थर का नाम	किस स्थान से सङ्ग्रहीत	पत्थर का परिमाण (मन)
कर्नेलियन	बग़दाद	६१०
,,	कायमन-प्रदेश	२४०
टार्किमिस	तिब्बत	४४०
लेपिसलज़ौली	सिंहल	२८०
प्रवाल	समुद्र	११०
अगेट और ओनिक्स	दाक्षिणात्य	५४०
पोर्सलीन	कनारा	इसका परिमाण कम होता है।
लहसूनिया	नीलनद	६१५
रूबी के समान नक़ली पत्थर	गङ्गा नदी	२४५
स्वर्ण के समान पत्थर	पर्वतमाला	६७०
ग्वालियर का पत्थर	ग्वालियर	इसका परिमाण कम होता है।
दुर्लभ पत्थर	सूरत	५०१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्थर का नाम	किस स्थान से सङ्ग्रहीत	पत्थर का परिमाण (मन)
काला पत्थर	जेहरी	८४५
ओपल (opal)	,,	४५
श्वेत पत्थर	मकरान	इसका परिमाण कम होता है ।
लाल पत्थर	भिन्न भिन्न स्थानों से	४५
नाख़ूद	,,	२२५

प्रतिघन गज़ में जिस परिमाण से प्रस्तरादि व्यवहृत हुए थे उसकी तालिका यह है—

संगमरमर प्रस्तर	प्रतिघन गज़ में	४० मन
पोर्सलीन	,,	७९
काला	,,	४८
लाल	,,	३०
अत्याश्चर्य पत्थर	,,	४२
दानादार पत्थर	,,	८५
गुलाब के रङ्ग के समान पत्थर	,,	४५

अन्यान्य बहुमूल्य पत्थरों की तालिका—

रबी—५४ मन; ऐमरल्ड—९७ मन; हरितवर्ण का पत्थर—१२५ मन; सैफ़ायर १४५ मन; ग्वालियर का पत्थर—९४५ मन; द्युतिमान पत्थर—७५ मन; चुम्बक—७७ मन; रबी के समान नक़ली पत्थर—१७५ मन; काश्मीर का संगमरमर पत्थर—(परिमाण का पता नहीं)

श्रीयुत यदुनाथ सरकार महाशय ने कुछ अन्य पत्थरों का भी उल्लेख किया है, जो भिन्न भिन्न देशों से सङ्ग्रहीत हुए थे ।

अब ताजमहल के निर्माणकर्त्ताओं के नाम और उनका मासिक वेतन सुनिए ।

१—रोम नगर का एक ईसाई । यह नक़शा (Plan) बनाने और चित्राङ्कन में अद्वितीय था । मासिक वेतन १०००) मुद्रा ।

२—अमानतख़ाँ—शीराज़-निवासी । यह राजकीय लेखक था । इसका मासिक वेतन १०००) मुद्रा ।

३—महम्मद ज़नफ़ख़ाँ—कार्य-परिदर्शक और परिचालक । मासिक वेतन ५००) मुद्रा ।

४—महम्मद शरीफ़ नामक एक ईसाई शिल्पी । मासिक वेतन ५००) मुद्रा ।

५—इस्माइलख़ाँ—गुम्मज़-निर्माता । मासिक वेतन ५००) मुद्रा ।

६—मोहम्मदख़ाँ—बग़दाद-निवासी । यह एक कुशल लिपिकार था । मासिक वेतन ९००) मुद्रा ।

७—मोहनलाल—तक्षण-शिल्पी था । मासिक वेतन ५००) मुद्रा ।

८—मनोहरलाल (लाहोर का अधिवासी)—मासिक वेतन ५००) मुद्रा ।

९—मोहनलाल (लाहोर का अधिवासी) मासिक वेतन ५००) मुद्रा ।

१०—ख़त्मख़ाँ (लाहोर का अधिवासी)—गुम्मज़-निर्माता । मासिक वेतन २००) मुद्रा ।

ताजमहल के निर्माण कराने में ४ करोड़ ११ लाख ४८ हज़ार ८२६ रुपया सात आना छः पाई व्यय हुआ था ।

श्रीयुत यदुनाथ सरकार महाशय ने निम्न-लिखित शिल्पियों का उल्लेख किया है—

कार्य-परिदर्शक—मुकारद्दामतख़ाँ एवं मीर अब्दुल-क़ासिम ।

शिल्पीगण—अमानतख़ाँ शीराज़ी । यह कन्दहार से लाया गया था ।

उस्ताद मिस्त्री—ईशाक ।

उस्ताद सूत्रधार—पीरा (दिल्लीनिवासी) ।

तक्षणकार—बनूहार अटमल एवं जवाहिर (दिल्ली-निवासी) ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुम्मज़-निर्माता—इस्माइलख़ाँ रूमी।

उद्यान-रचयिता—रायमल (काश्मीर-निवासी।

मुमताजमहल की मृत्यु के बारह वर्ष पश्चात् सम्राट् शाहजहाँ ने ताजमहल की रक्षा और फ़क़ीरों के व्यय-निर्वाह के लिए आगरा और नगर चीन परगना के ३० गाँव दान किये थे। इन गाँवों से प्रति वर्ष एक लक्ष मुद्रा की आमदनी होती थी। ताजमहल के निकट-वर्त्ती सराय एवं दूकान इत्यादि भी इस कार्य के लिए निर्दिष्ट हुई थीं। सरायों और दूकानों से भी प्रतिवर्ष एक लक्ष मुद्रा की आय थी।

सन् १६४८ ईसवी में एक रुपये का मूल्य ३ शिलिंग ३ पेन्स था। इस समय एक रुपये का जितना मूल्य है, उस समय इसका मूल्य सात गुने से भी अधिक था। श्रीयुत यदुनाथ सरकार महाशय ने लिखा है कि ताज-महल के निर्माण करने में ५० लक्ष मुद्रा व्यय हुआ था। पादशाहनामा, के मत से भी यही व्यय हुआ था। दिवाने अफ़ज़ीदी के मत से ९ करोड़ १७ लाख रुपये व्यय हुए थे। एनडर्सन साहब का जो मत है वह ऊपर दिया जा चुका है*।

राजाराम भार्गव

५—प्राचीन भारत में ख़ुफ़िया पुलीस।

योरप के महायुद्ध के समय यह मालूम हुआ था कि जर्मनी की ख़ुफ़िया पुलीस का प्रबन्ध बड़ा सुव्य-वस्थित और आश्चर्यपूर्ण है। कोई स्थान ऐसा न था जहाँ जर्मनी के गुप्तचर न हों। मित्र-सेना के अन्तर्गत भी ये मौजूद थे और लड़ाई के गुप्त समाचार बड़ी होशि-यारी से जर्मन-सेनाधिकारियों को देते थे। यद्यपि फ़्रांस-वाले इस विषय में अपने को बड़े प्रवीण समझते हैं तथापि जर्मनी के जासूसों ने उनके छक्के छुड़ा दिये थे। सभी योरपवालों को मानना पड़ा था कि जर्मनी के जासूस बड़े विकट हैं और उनसे निगाह बचा कर काम करना दुस्साध्य है। यह बात तो हुई १९ वीं शताब्दी की, जिसमें योरपवाले सभ्यता की बड़ी डींग मारते हैं। हम आपको ढाई हज़ार वर्ष पहले की कथा सुनाते हैं और दिखाते हैं कि उस समय इस विषय में भारतीय नरेशों का कैसा महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध था। यह हाल हम कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र के आधार पर लिखते हैं, जो सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के समय लिखा गया था और जिसके लेखक चाणक्य मुनि हैं। यह वही चाणक्य हैं जिन्होंने नन्दवंश का विध्वंस करके चन्द्रगुप्त को भारत का सम्राट् बनाया था। अपनी कुटिल नीति के कारण ये कौटिल्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जीवन-काल ईसा से लगभग ३५० वर्ष पूर्व का है, क्योंकि ईसवी सन् के ३२१ वर्ष पहले तो इन्होंने चन्द्रगुप्त को ही राजसिंहासन पर बैठाया था। कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र में ख़ुफ़िया पुलीस का जो हाल लिखा है वह सम्भवतः सम्राट् चन्द्रगुप्त के राज्य-शासन का ही है। सुनिए, उस समय की ख़ुफ़िया पुलीस के अनेक अङ्ग थे, जिनमें से कुछ के नाम ये हैं—१ कापटिक; २ उदास्थित; ३ गृह-पतिक; ४ वैदेहक; ५ तापस; ६ सत्री; ७ तीक्ष्ण; ८ रसद; ९ भिक्षुकी इत्यादि।

(१) कापटिक-ख़ुफ़िया में चालाक विद्यार्थी रहते थे। उन्हें राज्य की ओर से गुप्त-रीति से वेतन मिलता था। वे विद्यार्थियों के वेश में रह कर गुप्त समाचार लेते थे। लोग समझते थे कि वे कोरे विद्यार्थी ही हैं, लेकिन वे सबमें मिलजुल कर सब बातों की ख़बर लेते और उन्हें राजमन्त्रियों को पहुँचाते रहते थे।

(२) उदास्थित लोग सदाचारी उदासी संन्यासियों के वेश में रहते थे। ये लोग बहुत से विद्यार्थियों को अपने साथ लेकर अथवा धन लेकर खेती-बारी, पशु-पालन तथा दूसरे व्यवसाय किया करते थे। जो कुछ आमदनी होती थी उससे इनके खाने-पीने और कपड़े-लत्ते का काम चलता था। ये घूम-फिर कर गुप्त समाचार प्राप्त करते और उन्हें राज्याधिकारियों के कानों तक पहुँचाते थे।

(३) गृहपतिक—ये लोग ग़रीब बेकार किसानों के वेश में रहते थे और प्रकट रूप से खेती-बारी करते हुए प्रजा की गुप्त बातों की ख़बर लिया करते थे। इन्हें इस काम के लिए राज्य से वेतन मिलता था।

(४) वैदेहक—ये लोग बनियों का काम करते थे

---

* सङ्कलित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् आटा-दाल, नोन मिर्च आदि चीज़ें बेचते थे। प्रकट रूप में बड़े सदाचारी और बुद्धिमान् होते थे, लेकिन छिपे छिपे ख़ुफ़िया का काम देते थे और इसके लिए इन्हें राज्य से धन की सहायता मिलती थी।

(५) तापस—सिरमुण्डे या जटाधारी तपस्वी के वेश में रहनेवाले लोग। वे बहुत से चेलों को साथ लेकर शहर के आस-पास रहते और ऐसा ढोंग रचते कि लोग समझते कि वे महीने दो महीने बाद थोड़ा सा शाक-पात या अन्न खाते हैं। पर छिप कर वे भर पेट खाया करते थे। वैदेहक ख़ुफ़िया के आदमी अर्थात् बनिये तथा अन्य मिले हुए लोग उनसे ख़ूब मिलते जुलते रहते थे और लोगों में यह विख्यात करते थे कि वे बड़े पहुँचे हुए साधु हैं और उन्हें अलौकिक सिद्धियां प्राप्त हैं। वे लोग दर्शनार्थ आये हुए मनुष्यों को ऐसी ऐसी बातें बताते थे। आग कहां लगनेवाली है—घाटा किसको होनेवाला है—चोरी किस घर होगी—राजा किन किनको इनाम देगा—किन किनको कब दण्ड देगा—कौन सा कर्मचारी किस काम में बदला जायगा इत्यादि—मन्त्री लोग, जो इन ख़ुफ़िया तपस्वियों से मिले होते थे, कुछ काम इनकी भविष्यवाणी के अनुसार कर डालते थे, जिससे लोगों का इन पर पूरा विश्वास हो जाय।

(६) सत्री—इस ख़ुफ़िया-विभाग में ऐसे लोग होते थे—राज्य से खाना-पीना कपड़ा आदि पानेवाले अनाथ, ऐसे लोग जो हाथ देख कर फल बतावें, बाज़ीगर जो मुँह से गोला या आग निकाले, जादूगर, फलित ज्योतिषी अथवा ऐसे लोग जो दूसरों के साथ मिलने-जुलने का प्रयत्न करते रहें।

(७) तीक्ष्ण—जो लोग धन-प्राप्ति की इच्छा से हाथी, शेर आदि को लड़ावें या जो सब प्रकार निडर और साहसी लोग हों वे तीक्ष्ण कहलाते थे।

(८) रसद—ये लोग ज़हर देनेवाले होते थे। प्रायः ये लोग बड़े क्रूर, आलसी, अपने इष्ट-मित्रों तथा बन्धु-बान्धवों से द्वेष रखनेवाले होते थे। इनमें प्रेम, दया आदि सद्-भावों का कोई अंश नहीं रहता था।

(९) भिक्षुकी—ऐसी दरिद्र विधवा ब्राह्मणी जो बातूनी हो, नौकरी की तलाश में हो, और राजा के अन्तःपुर में सत्कार पानेवाली हो और जो संन्यासिनी के वेष में ख़ुफ़िया का काम करती हो। यह भिक्षुकी राज-मन्त्री तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों के घरों में आ-जाकर वहाँ के सब गुप्त समाचार ले आती थी।

(१०) मुण्डा—सिरमुँडी स्त्री जो उपर्युक्त प्रकार का काम करे।

(११) वृषली—दासी के वेष में ख़ुफ़िया का काम करनेवाली स्त्री।

इसी प्रकार ख़ुफ़िया के और भी अनेक अङ्ग हैं।

पूर्वोक्त अङ्गों में से पहले पाँच प्रकार के लोग राज-कर्मचारियों की भलाई-बुराई जानने की चेष्टा में लगे रहते थे। ये लोग कहाँ आते-जाते हैं और किनसे मिलते-जुलते हैं, इस बात की ख़बर तीक्ष्ण लोगों के द्वारा लगती रहती थी। इनमें ऐसे लोग होते थे जो कर्मचारियों के छाते, अतरदान, गुलाबपाश, पङ्खे, खड़ाऊँ, घोड़ागाड़ी आदि के काम करते थे। इनसे जो समाचार हाथ लगते थे उन्हें सत्री लोग अपने अपने विभाग में पहुँचा देते थे।

कहार, नाई, अतर लगानेवाला, स्नान करानेवाला, पानी भरनेवाला, दाल बनानेवाला, गुलाब-जल छिड़कने वाला—आदि आदि लोगों के वेष में रसद लोग रहते थे।

कुबड़े, बौने, किरात (जङ्गली लोग), गूँगे, बहरे, बेवकूफ़, अन्धे, नट, नर्तक, गवैये, बनिये, भांड़, कवि आदि आदि कर्मचारियों की गुप्त बातों को लेकर भिक्षुकियों-द्वारा असली हाल अपने विभाग में पहुँचा देते थे।

ख़ुफ़िया के भिन्न भिन्न विभागों के अफ़सर गुप्तचरों को इशारों से अथवा गुप्त लिपि के द्वारा अपने अपने कामों पर लगाते थे। जहाँ भिक्षुकी की पहुँच न होती थी, वहाँ द्वारपाल, कारीगरिन, दासी आदि गुप्त लिपि या इशारों से अन्दर की बात बाहर पहुँचा देती थीं। अगर मामला बड़ा होता तो इनमें से कोई बीमारी का बहाना बताकर अथवा आग लगाकर या ज़हर देकर बाहर निकल जाया करती थी।

जब तीन विभागों का समाचार एक सा होता था तब वह सत्य माना जाता था। यदि समाचार भिन्न भिन्न होते तो झूठ समाचार देनेवाले ख़ुफ़िया मनुष्य को गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीति से दण्ड दिया जाता था, यहाँ तक कि वह कभी कभी मरवा भी दिया जाता था।

शत्रु-राजा के समाचार जानने के लिए गुप्तचरों को उसके राष्ट्र में बसाया जाता था। ख़ुफ़िया पुलीस शत्रु, मित्र, साधारण जनता तथा राज-कर्मचारी—सभी के पीछे लगाई जाती थी। महलों के अन्तःपुर में ख़ुफ़िया का काम कुबड़े, बौने, पाखण्डी, नाच करनेवाली, गानेवाली तथा बाजा बजानेवाली औरतें, गूँगे, म्लेच्छ आदि लोग करते थे। क़िलों के भीतर बनिये, व्यापारी आदि ख़ुफ़िया का काम करते थे। क़िलों के बाहर साधु, वैरागी और तपस्वी गुप्तचर रहते थे। गाँवों में किसान, राष्ट्र-सीमा पर ग्वाले, गड़रिये, जङ्गलों में जङ्गली लोग ख़ुफ़िया का काम करते थे। शत्रु के भेजे हुए गुप्तचरों की देख-रेख स्वराष्ट्र के गुप्तचर करते थे। इस काम के लिए सच्चे राज-भक्त गुप्तचर राष्ट्र के सीमान्त में बसाये जाते थे। नगर और गाँव में रहनेवालों की देख-रेख भी ख़ुफ़िया-द्वारा रक्खी जाती थी। तीर्थ, सभा, शाला, यात्री-सङ्घ या व्यापारी-दल तथा भीड़-भाड़ में गुप्तचर जाते और आपस में झगड़ा करके लोगों के भावों का पता लेते थे। इनके गुप्त समाचारों से राज्य-प्रबन्ध के जो दोष नज़र आते वे दूर कर दिये जाते थे। जो लोग राजा से नाराज़ होते उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा की जाती। जो राजा के हितैषी और शुभेच्छु होते उनका किसी रीति से उपकार किया जाता। ऐसे लोग यदि प्रसन्न किये जाने पर भी प्रसन्न न हों तो वे देश से बाहर कर दिये जाते थे या राजकुमार तथा अन्य प्रतिष्ठित कुलीन पुरुष से लड़ा दिये जाते थे। इस पर भी यदि वे शान्त न होते तो वे लोग राज्य-कर वसूल करने तथा राज्य-दण्ड देने के काम पर लगाये जाते थे जिससे वे जनता को कष्ट पहुँचायें। तब उनको उचित दण्ड दिया जाता था। उन्हें शत्रुओं का सहारा लेने का मौक़ा न दिया जाता था। उन्हें खानों की चीज़ों का प्रबन्ध करने के बहाने जङ्गलों और पहाड़ों में भेज दिया जाता था और उनके बाल-बच्चों की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया जाता था।

यह बात स्वयं सिद्ध है कि शत्रु अपना काम प्रायः क्रुद्ध, लोभी, भयभीत और मानी लोगों के द्वारा सिद्ध करता है। ऐसे लोगों की देख-रेख मुहूर्त निकालनेवाले, शकुन बतानेवाले, तथा भाग्यफल बतानेवाले ज्योतिषियों के वेष में ख़ुफ़िया पुलीस को करनी चाहिए। यह बता देना भी ज़रूरी है कि पूर्वोक्त चार वर्गों के कौन कौन से लोग होते थे। देखिए।

क्रुद्ध वर्ग में ये लोग रहते थे। ऐसे आदमी जिन्हें किसी वस्तु के देने का वचन देकर धोखा दिया गया हो, जिनका एक सा काम करने पर भी कारीगरी में दोष निकाल कर अपमान किया गया हो, जिन्हें राजदरबारियों ने तङ्ग कर रक्खा हो, जिन्हें बुलाकर फटकार बताई गई हो, जो बहुत काल परदेश में रहने से कष्ट उठा चुके हों, जो अति व्यय करने से नुक़सान में हों, जो अपने पैत्रिक भाग से वञ्चित रक्खे गये हों, जो राज्याधिकार से पदच्युत किये गये हों। अथवा जिनकी प्रतिष्ठा बिगड़ गई हो, जो समान पदाधिकारियों या रिश्तेदारों की चाल से बढ़ने से रोक दिये गये हों, जिनकी स्त्री का अनादर किया गया हो, जो जेल में डाले गये हों, जो गुप्त रीति से पिटवाये गये हों या जिन्हें सज़ा दी गई हो, जो अपराध करते समय पकड़ लिये गये हों, जिनका माल-असबाब कुर्क़ कर लिया गया हो, जिनको बहुत काल जेल में पड़े रहने के कारण कष्ट हुआ हो, अथवा जिनके बन्धु-बान्धवों में से किसी को देश-निकाला दिया गया हो।

भीतवर्ग में वे सब लोग हैं जो अपनी भूल से हानि उठा चुके हों, जो दूसरों के द्वारा अपमानित किये गये हों, जिनके दुष्ट कर्म सबको ज्ञात हो गये हों, जो समान अपराध करनेवाले को दण्ड पाते हुए देख कर घबरा गये हों, जिनकी भूमि छिन गई हो, जो राजदण्ड से सीधे किये गये हों, जिन्होंने बहुत से पदों पर रह कर बहुत धन इकट्ठा किया हो, जो अपने सम्बन्धी की सम्पत्ति हड़प लेना चाहते हों, और जो राजा के साथ द्वेष करते हों अथवा जिनसे राजा स्वयं अप्रसन्न हो।

लोभी ये हैं—जो धनवान् से दरिद्र हो गये हों, जो बहुत सा धन खो चुके हों, जो कञ्जूस हों, दुर्व्यसनों में फँसे हों अथवा जिन्होंने अपने ऊपर बहुत बड़ा काम ले लिया हो।

मान चाहनेवाले वे लोग हैं जो अपने ही को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ समझते हों, इज़्ज़त इज़्ज़त ही की डींग मारते हों, बराबरवाले को सम्मानित होते देख कर चिढ़े हुए हों, जो तेज़ स्वभाव के हों, जो साहसी कामों में हाथ डालते हों, जो भोग-विलास से तृप्त न हुए हों और जिनका आदर नीच लोग करते हों।

ख़ुफ़िया पुलीस सिरमुँडे या जटाधारी साधु के वेष में इन लोगों को उसी ढङ्ग की बात सुझाये जिस ढङ्ग के वे हों। क्रुद्ध लोगों से अपने राजा के अत्याचार की बातें कहे और उन्हें दूसरे बलवान् राजा का सहारा लेकर इस अपकार को दूर करने को कहे। डरे हुए लोगों से कहे कि यह राजा तुम पर सन्देह रखता है, तुम दूसरे देश को चले जाओ। लोभी मनुष्यों से कहे कि यह राजा नीच आदमियों ही की क़दर करता है, अच्छा है कि तुम दूसरे की नौकरी कर लो। मानी पुरुषों को यह कह कर भड़कावे कि इस राजा के पास आप जैसे उच्च महानुभावों की क़दर नहीं है। दूसरा राजा ऐसे लोगों की बड़ी क़दर करता है। आप भी वहीं चले जायँ।

जो जो लोग ऐसी बातों में आजायँ उनका दल ख़ास निगरानी में रक्खा जाय और ख़ुफ़िया उनकी ख़ूब देख-रेख करे। इनके साथ साम, दाम, दण्ड, भेद साधनों का प्रयोग किया जाय, जब तक ये सब क़ाबू में न आजायँ, और शत्रु से न मिल सकें। जो सन्तुष्ट लोग हैं उनके साथ अच्छा बर्ताव किया जाय। उन्हें धन और मान दोनों देकर प्रसन्न रखना चाहिए। डाकू-चोरों के साथ ख़ुफ़िया सन्त्री-वेष में अथवा पुराने चोरों के वेष में मिल जाय और उन्हें पकड़वा दे। इसी प्रकार सब दुष्टकर्मों को करनेवालों की ख़बर ख़ुफ़िया रक्खे, उन्हें राज-दण्ड दिलवाये और प्रजा में शान्ति स्थापित करे।

हमने इस विषय में जो कुछ यहाँ लिखा है वह अति संक्षेप में लिखा है और यह संक्षेप भी इस विषय के सभी अङ्गों का नहीं है, क्योंकि इसमें अभी उन गुप्तचरों के कृत्यों का विवरण नहीं है जो सङ्ग्राम-काल में शत्रु के देश में जाकर उसके सब गुप्त भेदों का पता लगाते हैं और सेनाबल और युद्ध-क्रिया की छिपी हुई बातों को अपने सेनापतियों को बताते हैं।

कन्नोमल, एम० ए०

६—मगरों का रोज़गार।

संसार में सभी कुछ सम्भव है। हमारे देश में शायद जीवित मगरों को किसी के हाथ बेचे या ख़रीदे जाते किसी ने न देखा होगा। किन्तु अमेरिका में यह रोज़गार भी चल गया। वहीं की एक पत्रिका में एक महाशय ने एक ऐसे मगर के व्यवसायी का पूरा वर्णन दिया है।

मगर के ये व्यापारी महाशय फ़्लोरिडा में रहते हैं। इनका असली नाम तो है कैम्पबेल, किन्तु अपने इस भयङ्कर व्यवसाय के कारण एलीगेटर जो के नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं। इन्होंने मगरों को इतना वशीभूत कर लिया है कि ये उन पर चढ़ कर चलते हैं।

जिस समय उपर्युक्त लेखक महाशय इनके मकरालय को देखने गये थे उस समय वहाँ ६००० से भी अधिक मगर थे। इनमें सभी तरह के थे। कुछ तो ६ वा ८ इञ्च के बच्चे थे। बहुत से आठ आठ नौ नौ हाथ के थे। तोल में भी बारह मन से लेकर अठारह मन तक के थे। उनमें कितने ही ७०० वर्ष ८०० वर्ष के हैं। सबसे बड़े मगर का नाम रक्खा गया है 'ओकलावाहा' (Oklawaha)। यह १३½ फुट लम्बा और तोल में क़रीब १८ मन के है। मगरों की उम्र का पता लगता है इनकी नाक की चौड़ाई से। जब मगर १० फुट लम्बा हो जाता है तब हर एक पचास वर्ष में इसकी नाक ¼ इञ्च बढ़ती है।

साल भर में मगर-व्यापारी महाशय १०,००० मगरों से भी अधिक बेच डालते हैं। ख़रीदते हैं तमाशेवाले, सरकसवाले, अजायबघरवाले, प्राणितत्त्व-विद्यालय और शौक़ीन बाग़ीचेवाले। हज़ारों पार्सल से डाक-द्वारा भेजे जाते हैं! जो मगर तोल में पचीस सेर से कम होते हैं और लम्बाई में बीस इञ्च से कम वे टोकरों में मज़बूती से बाँधकर आसानी से भेजे जा सकते हैं।

अब मगरों के मूल्य का हाल सुनिए। पन्द्रह से बीस इञ्च तक लम्बा छोटा मगर डेढ़ डालर अर्थात् क़रीब पाँच रुपया में बिकता है। ६ फुट लम्बा २५ डालर (क़रीब ८० रुपया) में बिकता है, किन्तु जो लम्बाई में १० फुट से अधिक होते हैं, उम्र में डेढ़ सौ वर्ष से अधिक होते हैं और तोल में हज़ार पौंड (५०० सेर) से अधिक होते हैं वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौ डालर के मूल्य पर बिकते हैं। किन्तु बड़े जल्दी मिलते नहीं, क्योंकि इनका पकड़ना कठिन है। और पकड़ कर रक्खे हुए बच्चे उतना नहीं बढ़ सकते हैं।

इनके रहने के लिए तालाब बनाये गये हैं। छोटे से तालाब में क़रीब पौने तीन सौ मगर जाड़े की छुट्टी मनाते रहते हैं। इनमें कई बहुत बड़े बड़े भी हैं। कई तेरह फुट तक के हैं। तोल में भी ये १४ मन से अठारह मन तक के हैं।

मगरों को खाने के लिए मछली और मांस दिया जाता है। गर्मी के समय इन छः हज़ार मगरों के खाने में क़रीब १५० मन मांस लगता है। किन्तु जाड़े में, जब उनमें अधिकांश बदहोश से रहते हैं, केवल २८ मन के क़रीब लगता है। इनको एक समय पूरा भोजन देने का नियम है। सबसे बड़ा मगर एक बार में बीस-बाईस सेर मांस खा जाता है। धन्य ये मगर और इनके पालक 'जो' महाशय!

बालेन्द्र

विविध विषय।

१—सर जॉन मार्शल की एक नई पुस्तक।

उत्थान और पतन प्रकृति का अनिवार्य नियम है। उत्थान होने पर किसी दिन पतन भी होता है। जन्म होने पर मृत्यु अवश्यम्भावी है। पर हिन्दुओं का विश्वास है कि मृत्यु हो जाने पर मृत का पुनर्जन्म भी होता है। यदि यह ठीक हो—यदि प्रकृति मृतों का पुनर्जन्म भी करती हो—तो बहुत सम्भव है कि पतन होने पर सभी वस्तुओं का पुनरुत्थान भी होता हो, फिर चाहे वह चिरात् हो चाहे अचिरात्। हमारा देश, भारत, भी कभी ऊर्ज्जितावस्था में था। इस समय तो उसकी पतितावस्था है। इसका प्रमाण यह है कि यहाँ निरक्षरता का आधिक्य है, निरन्नता का दौर-दौरा है, अपौरुष और नैर्बल्य का आधिपत्य है, और जनन की अपेक्षा मरण ही की मात्रा अधिक है। इनके सिवा और भी कितनी ही बातें ऐसी हैं जो उसके अधःपात की परिचायक हैं। पर उनके उल्लेख की आवश्यकता नहीं। जिस देश की आमदनी का अधिकांश फ़ौज-फाटा रखने ही में ख़र्च हो जाय; शिक्षादान, व्यवसाय-वृद्धि, रोगनाश और कृषि की उन्नति के लिए बहुत कम ख़र्च करने के लिए रुपया बचे वह देश क्या समृद्ध या उन्नत कहा जा सकता है? नहीं, वह तो पतित या अनुन्नत ही माना जायगा।

पतितों को उत्थित करने की जो रामबाण-औषधियाँ हैं उनमें से पूर्वजों के कीर्तिकलाप की रक्षा भी है, क्योंकि उसके स्मरण से देशवासियों के हृदयों में फिर उठ बैठने की इच्छा उद्भूत हो सकती है। ये कीर्ति-कलाप पूर्व-पुरुषों के निर्म्मित ग्रन्थों, मन्दिरों, स्तूपों, मसजिदों आदि के दर्शन से जाग्रत रहते हैं। इसी से इनकी रक्षा की बड़ी ज़रूरत रहती है। इस देश की गवर्नमेंट ने यह काम अपने एक महकमे के सिपुर्द कर रक्खा है। पर ख़र्च की कमी के कारण वह अपना काम चींटी की चाल से कर रहा है। फल यह हुआ है कि हमारे पूर्वजों की कीर्ति के अनेक चिह्न नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं। यह महकमा बहुत कम इमारतों की रक्षा कर सकता है। अब हमारे दुर्भाग्य को देखिए। देश के बढ़े हुए ख़र्च को घटाने की युक्तियाँ बताने के लिए गवर्नमेंट ने, कुछ दिन हुए, कुछ जानकारों की एक कमीटी बना दी थी। लार्ड इर्विन उसके प्रधानाधिकारी थे। उन्होंने जहाँ और अनेक महकमों में ख़र्च कम करने की सिफ़ारिश की है वहाँ पुरातत्त्व-वस्तु-रक्षक (आर्कियोलाजिकल) महकमे में भी ख़र्च कम कर देने की तजवीज़ पेश की है। सरकार यदि इस तजवीज़ के अनुसार ख़र्च घटा दे तो हमारी बहुत बड़ी हानि होगी, क्योंकि योहीं इस महकमे का काम, धन की कमी के कारण बहुत ही स्वल्प परिमाण में होता है, यहाँ तक कि सर रतन ताता इत्यादि से उसे ख़ैरात लेनी पड़ती है; यदि उसमें भी कमी हो जायगी तो उसके काम की परिधि और भी सङ्कुचित हो जायगी।

लार्ड कर्ज़न की बदौलत जब से इस महकमे का पुनर्जीवन या जीर्णोद्धार हुआ और सर जॉन मार्शल इसके प्रधानाधिकारी नियत हुए तब से इसने बहुत उत्तम काम कर दिखाया है। यह बात इस महकमे की रिपोर्ट पढ़ने से अच्छी तरह ज्ञात हो सकती है। सर जॉन ने और कामों के सिवा अनेक उपयोगी पुस्तकें भी लिख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा दूसरों से लिखा कर प्रकाशित कर दी हैं। कई अजायब-घरों में रक्खी हुई वस्तुओं की सूचियाँ और परिचय-पुस्तकें भी आपकी कृपा से तैयार हो गई हैं। आपने अभी हाल में एक और भी बड़ी अच्छी पुस्तक प्रकाशित की है। वह अँगरेज़ी में है और सचित्र है। नाम है—Conservation Manual पुस्तक है तो छोटी ही, अर्थात् कोई सौ ही सफ़े की, पर है बड़े काम की। पुस्तक में दो भाग या प्रकरण हैं। पहले भाग में आपने प्राचीन इमारतों की रक्षा के सम्बन्ध में, सरकारी आज्ञाओं तथा अन्य सिद्धान्तों के आधार पर, मोटी मोटी बातें लिखी हैं। रक्षण-योग्य इमारत किसे कहते हैं; उसके विषय में गवर्नमेंट की नीति क्या है; किसी नई इमारत या वस्तु का पता लगने पर क्या करना चाहिए; धार्म्मिक मन्दिरों और स्तूपों आदि की रक्षा करने में तत्सम्बन्धी धर्म्म के अनुयायियों के साथ किस तरह का व्यवहार करना चाहिए—इस तरह की और भी अनेक बातों का उल्लेख आपने उसमें किया है। पुस्तक के दूसरे भाग में उन्होंने अपने अधीन कर्म्मचारियों को अनेक उपयोगी सूचनायें दी हैं। मरम्मत किस तरह करना चाहिए; रङ्ग किस तरह बनाना चाहिए; पतितोन्मुख स्तम्भों को किस तरह यथास्थान खड़ा रखना चाहिए; प्राचीन चित्रों की कैसे रक्षा करनी चाहिए; चूना और सिमेंट इत्यादि बनाने में कौन कौन मसाला डालना चाहिए; दीवारों पर चित्रित चित्र यदि उखड़ रहे हों तो उन्हें किस तरह चिपकाना चाहिए—इत्यादि सैकड़ों सूचनायें आपने की हैं। मरम्मत करने के ढङ्ग का ठीक ठीक ज्ञान न होने से आज तक सैकड़ों अनमोल चित्र, मूर्तियाँ, तोरण, छज्जे आदि नष्ट हो गये। आशा है, आपकी इस पुस्तक की सहायता से आपके महकमे के कर्म्मचारी अब अपने काम को पहले की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह कर सकेंगे। डर इतना ही है कि गवर्नमेंट इस महकमे में भी तख़फ़ीफ़ करके कहीं इसके चलते हुए थोड़े से काम को और भी थोड़ा न कर दे।

२—जङ्गली जानवरों के द्वारा नर-नाश।

संस्कृत में एक मसला है जो बहुत ठीक मालूम होता है—कम से कम इस देश के सम्बन्ध में कहा गया है—

अजापुत्रं बलिं दद्याद्देवो दुर्बलघातकः।

बात यह कि दुर्बलों की जान के सभी प्यासे रहते हैं। भारतवासियों में कोई तीन चौथाई जन-संख्या दीनों, दुर्बलों, दुखियों और मरभुखों ही की है। जूड़ी, प्लेग, बुख़ार, हैज़ा और इनफ्लुयंज़ा के शिकार यही लोग अधिकतर होते हैं। पेट भर खाने को न मिलने और आराम से रहने के साधनों से वञ्चित होने के कारण दुर्बलता और कमज़ोरी का पट्टा लिखाकर ही इनकी सन्तान जन्म लेती है। और, दुर्बलों ही को रोग अधिक सताते हैं और वही अधिक मरते भी हैं। ये ७५ फ़ी सदी भारतवासी देहात में रहते हैं और किसानी या मिहनत मज़दूरी करके ही किसी तरह अपना अस्थि-चर्म्म शरीर के ढाँचे पर बना रखते हैं। इन लोगों का दैव-दुर्विपाक यहीं नहीं ख़तम हो जाता। इन्हें मारने के और अनेक सुभीते कर देने पर भी भगवान् को शायद सन्तोष नहीं। इसी से उसने इस देश में शेर, बाघ, हाथी, रीछ, मगर, घड़ियाल, भेड़िये और साँप आदि, हज़ारों की संख्या में, पैदा कर रक्खे हैं और उन्हें हुक्म दे रक्खा है कि दुर्बल जनों ही का शिकार करके तुम अपनी जीवन-यात्रा निभाते रहो। सो रोग, शोक, भूख और दुर्भिक्ष की चपेट से जो बच जाते हैं उनमें से भी हज़ारों को ये जानवर, हर साल, ठिकाने लगा देते हैं। करुणा-सागर भगवान् की करुणा तो देखिए। उन्होंने ऐसे जानवर न पैदा किये जो शहरों में रहनेवाले हृष्ट, पुष्ट, सबल और तुन्दिल जनों का शिकार करते। पैदा किये बाघ और भेड़िये, लकड़बग्घे और रीछ जो दुर्बल देहातियों ही का संहार किया करते हैं।

भगवान् के कारुण्य-पारावार का तो यह हाल है, सरकार की दया के दरिया का भी हाल सुन लीजिए। दैव प्रतिकूल होने से, मनुष्य भला कैसे अनुकूल हो सकता है। सरकार भी तो मनुष्यों या कर्म्मचारियों के समुदाय से ही बनी है। जङ्गलों, नदियों, तराइयों और घाटियों के पास रहनेवालों को भी उसने बन्दूक़ रखने की इजाज़त नहीं दे रक्खी। यदि गाँव पीछे एक भी बन्दूक़ दी जाती तो उससे भी जङ्गली जानवरों को मार भगाने का बहुत कुछ सुभीता होता। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना लैसंस लिये बन्दूक़ रखना जुर्म क़रार दिया गया है। यदि कोई लैसंस लेना भी चाहे तो ५) साल फ़ीस दे और सदर जाकर अनेक झंझट उठावे। फिर भी इस बात का निश्चय नहीं कि माँगने पर भी लैसंस मिल ही जायगा।

हर साल गवर्नमेंट एक लेखा प्रकाशित करती है। उसमें वह साल भर का हिसाब देती है कि इतने मनुष्यों ने, जङ्गली जानवरों की बदौलत, निर्व्वाण पाया। साथ ही, अब तक, वह यह भी बताती रही है कि इस साल बन्दूकें रखने के लिए इतने लैसंस दिये गये और वे पिछले साल से कम हैं या अधिक। पर २५ अगस्त १९२३ के गैज़ट आव् इंडिया में प्रकाशित, १९२२ ईसवी के लेखे में, लैसंसों की संख्या नहीं दी गई। क्यों? इसका कारण सरकार ही बता सकती है। लैसंसों की संख्या कम होने से लोग चीं-चपड़ करने लगते हैं, यह कारण तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि सर्व-समर्थ सरकार को दस पाँच भारतवासियों की विरल चीं-चपड़ से कुछ भी हानि नहीं पहुँच सकती। अस्तु।

अच्छा तो, देखिए, १९२२ ईसवी में जङ्गली जानवरों और साँपों आदि ने कितने भारतवासियों का भार वहन करने से भारत-भूमि को बचा लिया। सरकारी लेखा कहता है—

(१) बाघों ने	१६०३	मनुष्य मारे
(२) तेन्दुओं ने	५०९	,,
(३) भेड़ियों ने	४६०	,,
(४) रीछों ने	१०५	,,
(५) हाथियों ने	५५	,,
(६) लकड़बग्घों ने	९	,,
(७) जङ्गली सूअरों ने	९०	,,
(८) मगरों और घड़ियालों ने	२२५	,,
(९) और जानवरों ने	२०७	,,
कुल	३,२६३	

ख़ुशी मनाना चाहिए कि १९२१ ईसवी की अपेक्षा १९२२ में ९७ मनुष्य कम मारे गये। क्योंकि उस साल मारे गये लोगों की संख्या ३,३६० थी। एतदर्थ परम कारुणिक कमलाकान्त को सैकड़ों साधुवाद!

हाँ, साँपों की सपूती का उल्लेख करना तो हम भूल ही गये। भगवान् उनका भला करे, उन्होंने २०,०१९ आदमियों को मारकर जीवन-जञ्जाल से छुट्टी दिला दी। पिछले साल, अर्थात् १९२१ में, उन्होंने अपने दंशन से १९,३९६ ही आदमियों पर दया दिखाई थी; पर १९२२ में उन्होंने छः सात सौ अधिक आदमियों को महिषवाहन के मुल्क को पहुँचा देने का पुण्य प्राप्त किया। सो कुल मरे हुओं की संख्या ३,२६३ + २०,०१९ मिलकर २३,३५३ हो गई। ख़ैर, ३१ करोड़ आदमियों की आबादी में २३ हज़ार का कम हो जाना दाल में नमक के बराबर ही है। है न!

इस लेखे से यह न समझिए कि सरकार इस सम्बन्ध में चुप है। वह अपनी दीन, दुर्बल और बन्दूक़-विहीन प्रजा की रक्षा और उसके भक्षकों के नाश में काफ़ी प्रयत्नवान् है। उसने प्राणहारक प्राणियों को मारने के लिए इनाम देने की योजना कर रक्खी है और इस मद में हर साल, लाखों रुपया बाँट देती है। चुनांचे उसके इस इनाम के आकर्षण से आकृष्ट होकर, १९२२ में, बन्दूक़चियों ने २३,२६८ जङ्गली जानवर मार डाले। उनमें से कुछ की तफ़सील लीजिए—

बाघ	१,७६६
तेंदुवे	६,१०८
रीछ	३,१८८
भेड़िये	१,६२९

इस सेवा के लिए सरकार ने उन्हें १,८४,१३५ रुपया इनाम दिया। यह रक़म १९२१ ईसवी की अपेक्षा २६ हज़ार रुपया कम है। पर इसका कारण सरकार की कंजूसी नहीं। वह क्या करे, अधिक जानवर मारे ही न गये।

रही बात अब साँपों की। सो ५८,३७० की संख्या में उनकी हत्या हुई और हत्याकारियों ने १,२५० रुपया सरकार से इनाम में पाया।

३—समुद्र-तल का तथ्य-ज्ञान।

जो अज्ञ, अल्पज्ञ, या अज्ञान हैं, वे एक हिसाब से बहुत अच्छे हैं। वे अपने घर, अपने गाँव, अपने देश या अपने देश के ही थोड़े बहुत ज्ञान से सन्तुष्ट रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उनकी दृष्टि बहुत ही सङ्कुचित होती है। वह एक परिमित सीमा के बाहर जाती ही नहीं। उनसे आप पूछिए, मुलतान कहाँ है और कितनी दूर है। वे नहीं जानते। ऐसे आदमी समुद्र की लम्बाई या गहराई आदि जानने की क्यों परवा करने लगे। वे तो कह देंगे कि हमें इन बातों से क्या मतलब ? तुलसीदास कब हुए, यह जानने की उन्हें ज़रूरत नहीं। वे केवल तुलसीदास की रामायण पढ़ेंगे; तुलसीदास कौन थे, कहाँ रहे, कब मरे, इसके ज्ञान-सम्पादन की वे कुछ भी चेष्टा न करेंगे। सारांश यह कि वे आम खायँगे, पेड़ न गिनेंगे।

सज्ञानों और विज्ञान-वेत्ताओं की बात जुदी है। ज्ञान से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान है अनन्त। अतएव ज्ञान की मात्रा जिसमें जितनी ही अधिक है वह उतना ही अधिक ज्ञान-प्राप्ति की चेष्टा करता है। ज्ञानाधिक्य से ही परमात्मा की लीलाओं का आभास मिलता है और उसकी अधिकाधिक अवगति से ही उसके पास तक पहुँच जाने का मार्ग प्रशस्त होता है। इसी लिए विद्वान् ज्ञानार्जन की चेष्टा में सदा रत रहते हैं और इस ब्रह्माण्ड की रचना आदि पर विचार करके अपनी ज्ञान-दृष्टि की सीमा को बढ़ाते हैं।

पण्डितों का अनुमान है कि हमारी पृथ्वी किसी समय भट्टी में गले हुए लोहे के तरल द्रव के रूप में थी। धीरे धीरे उसमें गैस (बाष्प) की उत्पत्ति हुई। उसके अनन्तर उसका पृष्ठ-देश जलीय द्रव्यों से पूर्ण हो गया। यह भू-गोलक जैसे जैसे ठण्डा होता गया वैसे ही वैसे इस पर उद्भिज्जों और जीवधारियों की उत्पत्ति होती गई। जो अंश इसका बहुत दब गया उसमें सर्वत्र जल भर गया। जो ऊँचा रहा, नीचे को धँसा नहीं उससे जल सिमिट कर नीची जगहों में चला गया। फल यह हुआ कि सूखी जगह प्राणियों के बसने योग्य होगई। सो इस भूतल पर कहीं तो जल हो गया और कहीं थल। थल कम रहा, जल अधिक।

यह बहुत पहले की कथा—करोड़ों वर्ष की पुरानी—है। उसके अनन्तर भी भू-पृष्ठ पर बराबर परिवर्तन होते गये और अब भी होते रहते हैं। भूगर्भ में भीतर ही भीतर उत्पात होने से कोई जगह धँस जाती है, तो कोई ऊपर उठ आती है। कभी तट से समुद्र कोसों दूर चला जाता है, कभी सूखी ज़मीन पर कोसों तक समुद्र-जल फैल जाता है। यहाँ तक कि नये नये टापू समुद्र-गर्भ से निकल आते हैं और पुराने टापू जलमग्न हो जाते हैं। विद्वानों का अनुमान तो यहाँ तक है कि जहाँ इस समय अटलांटिक महासागर है वहाँ किसी समय कोई महादेश था। अर्थात् योरप, अमेरिका और आफ़्रिका, ये तीनों महादेश प्रायः एक दूसरे से संलग्न थे। अटलांटिक महासागर उतना पुराना नहीं, जितना कि पैसेफ़िक, अर्थात् प्रशान्त महासागर है। इसी से वह उतना गहरा भी नहीं। इस महासागर में जो पुराने द्वीप हैं उनके आदिम निवासियों की रहन-सहन की कोई कोई बात और उनके किसी किसी औज़ार की शकल-सूरत, अन्य देशों की बातों और शकल-सूरत से मेल खाती है। इस समानता से यह अनुमान और भी दृढ़ हो जाता है कि अटलांटिक महासागर की जगह पहले कोई देश था और वहाँवालों का आवागमन अन्य संलग्न देशों में होता था अथवा इन सभी देशों में प्रायः एक ही प्रकार की सभ्यता का आवास था।

थल पर जो कुछ है उसे तो हम चर्म्म-चक्षुओं से देख सकते हैं। पर जल के भीतर क्या है, यह जानना हमारे लिए सम्भव नहीं। और जिस पृथ्वी पर हमारा वास है उसका अधिकांश जल-पारावार ही से परिपूर्ण है। फिर वह जल भी कैसा कि कभी वह दूर चला जाता है, कभी पास आ जाता है, कभी अपने पेट से थल को ऊपर फेंक देता है और कभी बड़े बड़े स्थल-खण्डों को समूचा निगल जाता है। इसी से अज्ञेय या अज्ञात जलगर्भ के भीतरी दृश्य देखने या उनका थोड़ा-बहुत ज्ञान-सम्पादन करने की इच्छा का होना विज्ञानियों के लिए सर्वथा स्वाभाविक है। वे यह जानना चाहते हैं कि महासागरों की गहराई कितनी है; उनके भीतर कहाँ कहाँ पर्व्वत और पर्व्वत-श्रेणियाँ हैं; और कहाँ किस प्रकार के प्राणी उसमें रहते हैं।

खोज करने से विद्वानों को इस बात का पता तो, बहुत समय हुआ, लग चुका था कि समुद्र-गर्भ में अनन्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणियों का वास है। वे प्राणी अनन्त प्रकार के हैं और उनमें से कितने ही बड़े भयङ्कर और कितने ही बड़े विलक्षण भी हैं। पर उसका तलदेश कैसा है—कहां कितना ऊँचा-नीचा है—यह वे अब तक न जान सके थे। पर योरप के गत महायुद्ध में वैज्ञानिक विद्वानों को इस बात के जानने के साधन भी बहुत कुछ प्राप्त हो गये।

जब जलान्तर्गामिनी नौकायें अर्थात् सब-मेरीन नावें, बहुत उत्पात मचाने लगीं और जहाज़ों को तोड़ने-फोड़ने लगीं तब उनकी स्थिति का ज्ञापक एक यन्त्र तैयार किया गया। वह यन्त्र तटवर्ती विशेष विशेष स्थानों पर लगाया गया और विद्युद्वाहक तार-द्वारा उसका सम्बन्ध समुद्र से कर दिया गया। वह यन्त्र समुद्र के भीतर होनेवाले शब्द को पकड़ कर उसकी दूरी बताने लगा। इससे यह ज्ञात होने लगा कि इतनी दूर पर समुद्र के भीतर सब-मेरीन है। अतएव उसका नाश करने अथवा उससे बचने के उपाय किये जाने लगे। यह बात यहीं तक रही।

इसके बाद एक वैज्ञानिक ने इस यन्त्र में कुछ फेर-फार करके एक और यन्त्र बनाया। उससे समुद्र की गहराई जानने का साधन सुलभ हो गया। इस यन्त्र के सहारे किया गया आघात या शब्द समुद्र-तल तक चला जाता है और वहां ठोकर खाकर फिर यन्त्र में लौट आता है। उसे जाने और लौट आने में जितना समय लगता है उसी के अनुपात से समुद्र की गहराई जानी जाती है।

यह साधन सम्पन्न हो जाने पर संयुक्त-देश, अमेरिका, के विज्ञान-विशारदों को एक बात सूझी। उन्होंने कहा, लाओ समुद्र-तल की खोज करें। इसलिए अमेरिका के राजकीय नाविक-विभाग के कर्णधारों ने स्टुअर्ट नाम के एक जहाज़ को सजा कर समुद्र की थाह लेने भेजा। यह जहाज़ न्यू-पोर्ट नाम के बन्दरगाह से रवाना हुआ और जिबराल्टर तक चला गया। इस तरह उसने कोई सवा तीन हज़ार मील की यात्रा की और जगह जगह समुद्र की गहराई नापी। यह काम करके उस पर गये हुए विज्ञान-विशारदों ने एक नक़शा तैयार कर दिया। उनकी खोज से मालूम हुआ कि जिस मार्ग से वह जहाज़ गया था उस मार्ग में समुद्र की गहराई कम से कम ५४ फ़ुट और अधिक से अधिक १६,२०० फ़ुट है। इसका मतलब यह हुआ कि कहीं कहीं पर समुद्र लगभग ४ मील गहरा है। अर्थात् यदि लोहे का एक गोला समुद्र में डाला जाय तो जल के भीतर ही भीतर ४ मील तक जाने पर कहीं वह समुद्रतल पर पहुँच सके! इस खोज से यह भी मालूम हुआ कि न्यू-पोर्ट से आज़ोरस नामक टापू तक समुद्र के भीतर एक विस्तृत पर्वत-श्रेणी डूबी हुई है। उसके कुछ शृङ्ग उतने ही ऊँचे हैं जितने कि हिमालय के हैं। आज़ोरस नाम का टापू उन्हीं शृङ्गों के ऊपर है। यह पर्वतमाला इस टापू के पास सबसे अधिक ऊँची है। सम्भव है, किसी समय यहीं पर कोई महादेश रहा हो। इस टापू के ठीक आगे समुद्र सबसे अधिक गहरा है। फिर धीरे धीरे उसकी गहराई कम होती गई है और जिबराल्टर के पास समुद्र की इतिश्री होकर स्थलरूप महादेश के दर्शन होते हैं।

अटलांटिक महासागर की गहराई का तो यह हाल है, प्रशान्त महासागर की गहराई और भी अधिक है। सम्भव है, कहीं कहीं पर वह दस-पन्द्रह मील गहरा हो। फिलीपाइन नाम के द्वीप-पुञ्ज के पास की गई खोज से मालूम हुआ है कि वहां पर समुद्र ३२ हज़ार फ़ुट अर्थात् ६ मील से भी अधिक गहरा है। याद रखिए, सूर्य्य का प्रकाश समुद्र के भीतर केवल ३ हज़ार फ़ुट तक ही जा सकता है। आगे, उस घोर अन्धकार में, समुद्र-तल कैसा होगा, इसका पता अगले विज्ञान-वेत्ता ही शायद लगा सकें। हां, एक बात जो जानी गई है वह यह है कि जैसे जैसे समुद्र की गहराई बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे उसके जल की शीतलता भी बढ़ती जाती है। यहां तक कि अधिक गहरी जगहों का तापमान इतना कम हो जाता है जितना कि भूतलवर्ती उन स्थलों का जहां शीत के कारण पानी जम कर बर्फ़ हो जाता है।

४—स्वर्गीय पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र का, काशी में, कैलाशवास हो गया। आप भारतेन्दु बाबू के समकालीन हिन्दी के सुलेखकों में से हैं। आप कलकत्ते के निवासी थे। इधर कई वर्ष से आप कलकत्ता छोड़ कर काशीवास कर रहे थे। इस तीर्थ-सेवन-काल में भी आप हिन्दी की सेवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पराङ्मुख नहीं हुए थे। काशी में जो हिन्दी-साहित्य-विद्यालय स्थापित हुआ था वह आप ही के प्रयत्न का फल था। उसके प्रधान आचार्य का पद-भार ग्रहण कर आप विद्यार्थियों को विद्यादान करते थे।

स्वर्गीय पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र।

पण्डित गोविन्दनारायणजी का जन्म कलकत्ते में संवत् १८१६ में हुआ था। आप सारस्वत ब्राह्मण थे। आपके पिता पण्डित गङ्गानारायण मिश्र अँगरेज़ों की कोठियों में दलाली का काम करते थे। वे थोड़ी-बहुत संस्कृत पढ़े थे। अतएव उन्होंने अपने पुत्र को संस्कृत पढ़ाने का विचार किया और इसके लिए काशी से एक पण्डित बुला कर घर में ठहराया। घर में कुछ पढ़ लेने के बाद आप संस्कृत-कालेज में भर्ती हुए। इसी समय आपने प्राकृत व्याकरण और प्राचीन हिन्दी का अध्ययन किया था।

संस्कृत-कालेज से सम्बन्ध त्याग कर पण्डित गोविन्दनारायण ने अपने पिता की मृत्यु के बाद दलाली का काम प्रारम्भ कर दिया। पर आप अपने काम में सफल नहीं हुए। अन्त में आपने दलाली छोड़ दी और हिन्दी-साहित्य की सेवा-द्वारा अपनी जीविका का मार्ग निश्चित किया। उस समय कलकत्ते से पण्डित छोटूलाल मिश्र और दुर्गाप्रसाद मिश्र के प्रयत्न से हिन्दी के दो एक पत्र निकलने लगे थे। भारत-मित्र के प्रकाशन के बाद पण्डित दुर्गाप्रसाद की प्रेरणा से साप्ताहिक सारसुधानिधि का जन्म हुआ। इसे आपके फुफेरे भाई पण्डित सदानन्दजी ने सन् १८७८ में प्रकाशित किया। आप भी उनके हिस्सेदार होकर सारसुधानिधि के सहकारी सम्पादक हो गये। इस प्रकार हिन्दी से आपका सम्बन्ध स्थापित हुआ।

सारसुधानिधि बारह वर्ष तक चल कर बन्द हो गया। पण्डित सदानन्दजी के सदा रुग्ण रहने के कारण प्रायः पत्र के सम्पादन का भार पण्डित गोविन्द-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारायणजी ही पर रहता था। जब तक सारसुधानिधि चला तब तक उसका सम्पादन समय की दृष्टि के अनुसार बहुत अच्छा रहा। उसका श्रेय आप ही को है। अपने पत्र का सम्पादन करने के सिवा आप दूसरे पत्रों में भी लेख लिखा करते थे। आपके लेख उस समय के उचितवक्ता, धर्मदिवाकर आदि पत्रों में छपते रहते थे। आप अपने लेखों के अन्त में नाम नहीं देते थे। साहित्यक्षेत्र से प्रत्यक्ष सम्बन्ध भङ्ग हो जाने के बाद भी आप जब तब अवकाशानुसार पत्रों में लेख लिखते ही रहते थे। आपका 'विभक्ति-विचार' नामक प्रसिद्ध निबन्ध ऐसे ही लेखों में है। पहले पहल वह उचितवक्ता में निकला था। अब वह पुस्तकाकार प्रकाशित हो गया है। संवत् १९६१ में सारस्वत-सर्वस्व नाम की जो पुस्तक आपने प्रकाशित की थी उससे भी आपका अच्छा नाम हुआ था।

मिश्रजी संस्कृत और हिन्दी के पण्डित तो थे ही, आप अँगरेज़ी, बँगला, मरहठी और पञ्जाबी आदि भी जानते थे। आपको पढ़ने-लिखने का व्यसन था। इसी कारण आप कई एक प्रान्तीय भाषायें सीख लेने में समर्थ हुए थे। संस्कृत के पण्डित होकर तथा पुरोहिती की वृत्ति करते हुए भी आप नई हलचल से अलग नहीं रहते थे। प्रायः हिन्दी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वानों और लेखकों से आपका परिचय था। हिन्दी-साहित्य तथा हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी चर्चा तथा सभा-समाजों से आपकी सहानुभूति रहती थी। यथाशक्ति इनमें भाग लेकर आप तत्सम्बन्धी अपने अनुराग का परिचय दिया करते थे।

मिश्रजी प्रगल्भ वक्ता थे। आप बड़ी बड़ी सभाओं में विद्वत्तापूर्ण भाषण देकर श्रोताओं को मुग्ध कर लेते थे। आपकी आवाज़ ऊँची और मधुर थी। इसके सिवा एक गुण आप में यह भी था कि आप निडर और स्पष्टवक्ता थे। भरी सभा में अपने विरोध को स्पष्ट भाषा में कह डालने में आप ज़रा भी नहीं हिचकिचाते थे।

मिश्रजी शैव स्मार्त थे। हिन्दू-धर्म पर आपकी पूर्ण श्रद्धा थी। आपने चारों धामों की यात्रा की थी। आप सदा शिवाराधन तथा दूसरे धार्मिक कृत्यों में लगे रहते थे। आप एक नैष्ठिक ब्राह्मण थे और जीवन भर शास्त्रीय पद्धति के अनुसार धर्म्माराधन में तत्पर रहे।

यद्यपि हिन्दी-साहित्य में मिश्रजी की कोई स्थायी कृति नहीं है, तो भी आप हिन्दी के अपने ढङ्ग के एक ही विद्वान् थे। आप हिन्दी के प्रौढ़ लेखक और निर्भीक तथा स्पष्ट समालोचक थे। परन्तु आप बहुत कम लिखते थे और लिखते भी थे तो नाम छिपा कर। शायद इसी कारण सर्व-साधारण में आपकी उतनी प्रसिद्धि नहीं हुई जितनी होनी चाहिए। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन के अवसर पर उसका सभापतित्व आपको प्रदान कर सम्मेलन के कर्णधारों ने आपका यथोचित सम्मान किया था।

५—लखनऊ की बाढ़।

हाल में लखनऊ में और उसके आस-पास गोमती की बाढ़ से जो दुरवस्था हो गई थी वह अपने ढङ्ग की

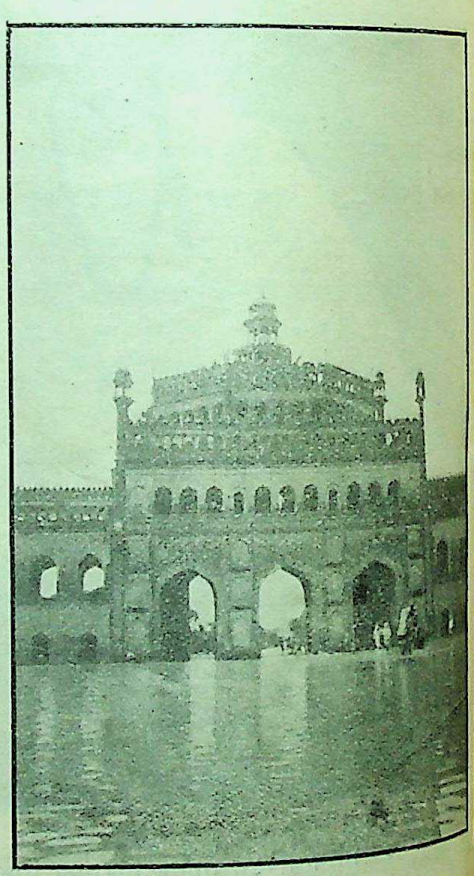

रूमी दरवाज़ा।

अपूर्व थी। बड़े बूढ़ों की सुध में ऐसी बाढ़ वहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी नहीं आई। इस सम्बन्ध में लखनऊ के डिप्टी-कमिश्नर और वहां की म्यूनिसिपल्टी के चेयरमैन ने मिल कर जो घोषणा-पत्र निकाला था उसमें लिखा गया है कि इस बाढ़ का कारण अज्ञात है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि २७ वीं सितम्बर की रात को खीरी में २४$\frac{१}{८}$ इंच जल-वृष्टि हुई थी।

गोमती की बाढ़ के पहले गङ्गा और यमुना में भी इसी प्रकार जुलाई और अगस्त में अचानक बाढ़ आई थी। उससे भी खूब प्राण-हानि और सम्पत्ति का विनाश हुआ था। बाढ़ के जल से डूबे हुए भूभागों में हाहाकार मच गया था।

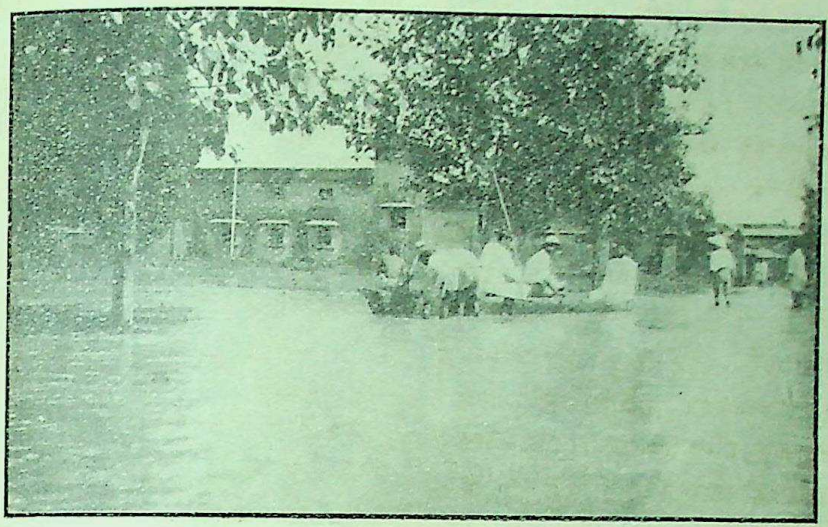

टी० जी० होस्टल की नाव।

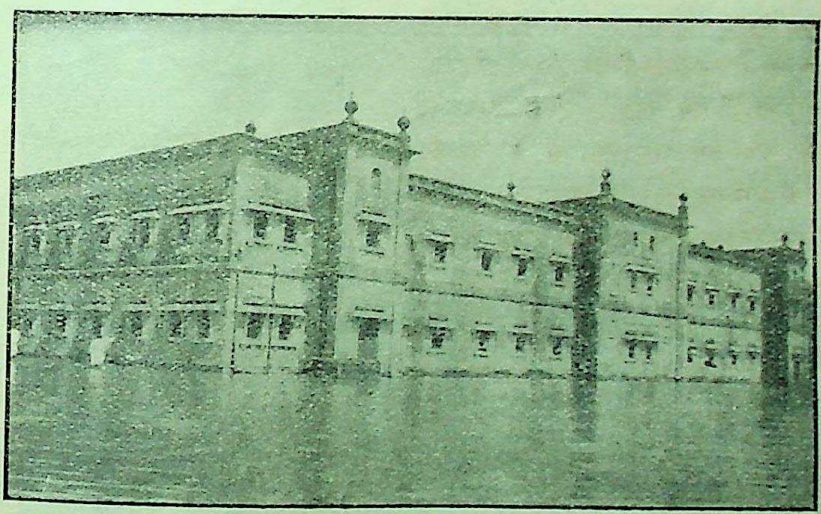

टी० जी० होस्टल।

परन्तु इस बार लखनऊ में जो बाढ़ आई थी उसमें गोमती का जल बहुत ऊँचा चढ़ गया था, यहाँ तक कि वह सन् १८९४ की बाढ़-सीमा को भी अतिक्रमण कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था। इस कारण वहाँ इस बार बहुत ही अधिक हानि हुई है। बाढ़ के समय सेवा-समितियों और ज़िला

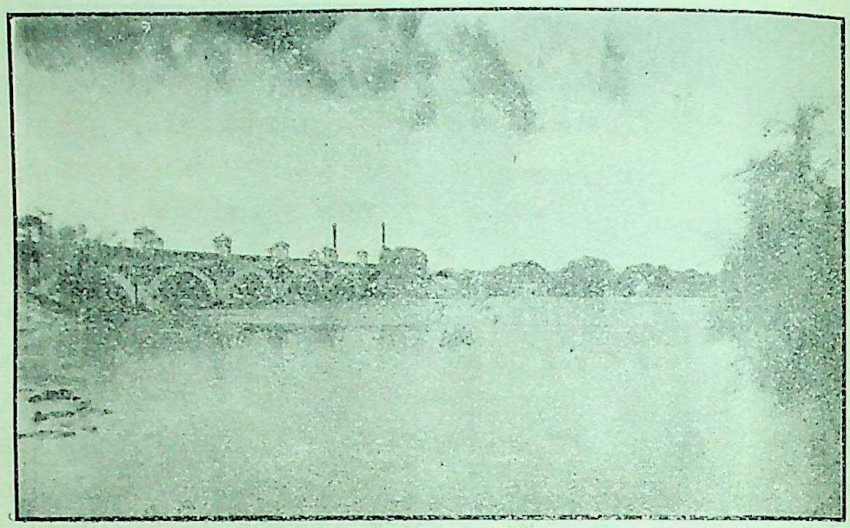

मेडिकल कालेज का पुल।

तथा नगर के म्यूनिसिपल-कर्मचारियों ने नगर में तथा देहात के बाढ़-पीड़ित स्थानों तक पहुँच कर यथा-शक्ति सहायता पहुँचाई।

उपस्थित कर देती हैं। इधर कई वर्षों से इन नदियों में मामूली से अधिक भीषण बाढ़ आने लगी है। बिहार और उड़ीसा-प्रान्त में भी गङ्गा, घाघरा और सोन की असाधारण बाढ़ ने कुछ कम भीषण रूप नहीं धारण किया था। इसी से चिन्तित होकर वहाँ की प्रान्तिक सरकार को एक

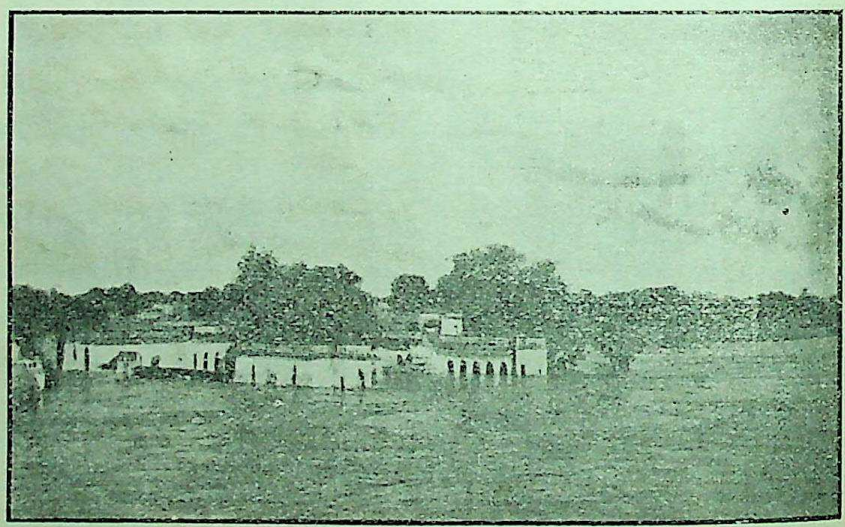

लोहे के पुल के पास हिन्दू-मन्दिर।

यह हमारे दुर्भाग्य की बात है कि इधर कुछ समय से बाढ़ की बाढ़ होने लगी है। जब देखो तब गङ्गा और यमुना सहसा बढ़ कर जहाँ-तहाँ विनाश का भयङ्कर दृश्य

कमिटी की रचना करनी पड़ी है। यह कमिटी इन असाधारण बाढ़ों के कारणों की जाँच करेगी और उनसे रक्षा पाने के उपाय निश्चित करेगी। संयुक्त-प्रान्त की सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी कम से कम इन बाढ़ों के कारण जांचने के लिए कुछ न कुछ प्रयत्न अवश्य करना चाहिए।

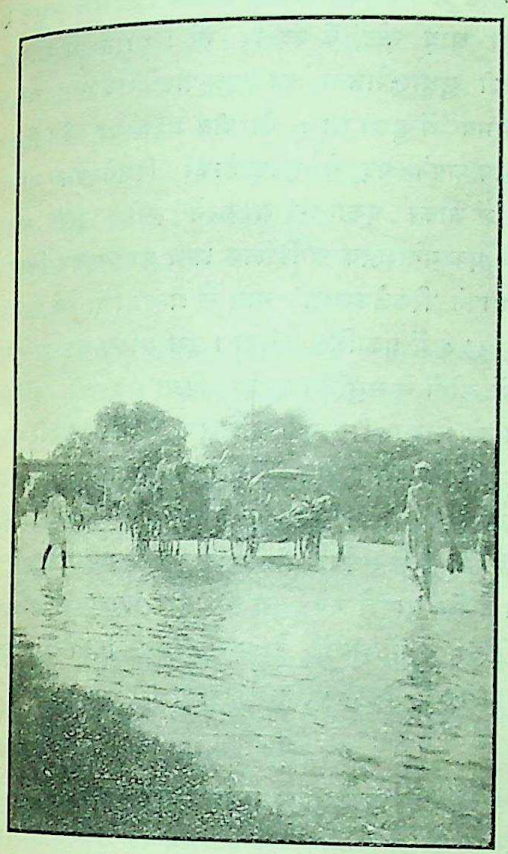

मच्छीभवन रोड।

लखनऊ में बाढ़ शहर में कहां तक पहुँची थी उसी के द्योतक कुछ चित्र यहां प्रकाशित किये जाते हैं।

६—राम-लीला।

आश्विन का शुक्ल पक्ष हिन्दू-जाति के लिए महोत्सव का पर्व है। इसी समय जगद्धात्री दुर्गा की पूजा होती है और इसी समय राम-लीला का भी उत्सव होता है। राम और सीता हिन्दू-समाज के लिए किसी काव्य अथवा नाटक के पात्र नहीं हैं। यह सच है कि राम-लीला में रामायण का अभिनय किया जाता है। परन्तु यह अभिनय किसी नाटक का अभिनय नहीं है। नाटक के अभिनय में मनोविनोद ही प्रधान लक्ष्य होता है। परन्तु राम-लीला में धार्मिक भाव की प्रधानता रहती है। उसमें हिन्दू अपने आराध्यदेव को मूर्तिमान् कर प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं। यही कारण है कि जो बालक राम-लीला में राम, लक्ष्मण तथा सीता का अभिनय करते हैं वे सर्व-साधारण से पूजित होते हैं।

प्रयाग में प्रति वर्ष राम-लीला होती है। राम-लीला की समाप्ति हो जाने पर राम के सैन्य-दल के साथ अन्य देवी-देवताओं की चौकियां निकाली जाती हैं। उनमें अब ऐतिहासिक तथा सामयिक घटनाओं की द्योतक चौकियों का भी समावेश होने लगा है। उदाहरण के लिए इस साल जो चौकियां निकली थीं उनमें महाराणा प्रतापसिंह और अछूतोद्धार की चौकियां भी थीं। ऐसी चौकियों से सर्व-साधारण में सद्भाव ही का प्रचार होता है। अतएव उनका प्रदर्शन सर्वथा अभिनन्दनीय है।

हमारा अनुमान है कि राम-लीला से कदाचित् शिक्षित भारतवासियों का मनोरञ्जन न होता होगा। परन्तु राम-लीला देख कर बङ्गाल के एक प्रसिद्ध विद्वान् को बड़ा हर्ष हुआ था। उन्होंने एक बार राम-लीला के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये थे वे नीचे दिये जाते हैं—

बहुत दिनों के बाद हमने राम-लीला का उत्सव देखा। चर्म-चक्षु बाह्य दृश्य देखने में लगे थे। यद्यपि वे भी वाष्पाकुल हो कभी कभी झप जाते थे। परन्तु अन्त-श्चक्षु देख रहे थे कि भारत के प्रतिनिधि-स्थानीय, पूजनीय राम और लक्ष्मण किस प्रकार शत्रु के हाथ से भारत-लक्ष्मी-रूपिणी सीता का उद्धार करके उसे ला रहे हैं। जब तक राम और लक्ष्मण ने सीता का उद्धार नहीं किया तब तक वे तपस्वी के वेश में रहे। राम-लीला में उनके अनु-चर भी तपस्वी के वेश में रहते हैं। भारत की सन्तानों को भी तब तक तपस्या करनी होगी जब तक वे भारत-लक्ष्मी का उद्धार कर उसे स्वाधीन नहीं कर सकते। तपस्वी के बाह्य चिह्न, जटा, भस्म आदि धारण करने से लाभ नहीं होगा। हृदय से तपस्वी बनना होगा। जब तक भारत-लक्ष्मी का पुनरुद्धार न हो तब तक विलास-व्यसन, आमोद-प्रमोद और स्वार्थ-चिन्ता को छोड़ कर उसी में एकाग्रचित्त होना होगा।

सीता को हमने भारत की लक्ष्मी कहा है। कोई भी भारतवासी लक्ष्मी को रुपयों की थैली नहीं समझेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीता रुपयों की थैली नहीं थी। उसके जीवन में धर्म, ज्ञान, शुचिता, चरित्र, साहस, स्वाधीनता, सौन्दर्य और राज्यलक्ष्मी की श्री थी।

सीता के उद्धार में रामचन्द्र ने वानर, भालू तथा शत्रु-पक्ष के विभीषण की भी सहायता का तिरस्कार नहीं किया। उन्होंने बड़े आदर से उनकी सहायता ग्रहण की थी। उन्होंने सबके साथ मैत्री की थी। सुग्रीव के साथ भगवान् रामचन्द्रजी की मैत्री एक महत् उद्देश के साधन के लिए आर्य और अनार्य का पारस्परिक मिलन सूचित करती है। भारत-लक्ष्मी के पुनरुद्धार में भारतीयों को आर्य तथा अनार्य और स्पृश्य तथा अस्पृश्य की भावना को छोड़ कर सभी से मैत्री जोड़नी होगी। यही नहीं, उन्हें शत्रु-पक्ष के लोगों से भी प्रेम-पूर्वक मिलना होगा। इसी में उनका कल्याण है।

७—लार्ड मार्ले का देहावसान।

भारत के भूतपूर्व स्टेट-सेक्रेटरी लार्ड मार्ले का ८८ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। आप उदार-दल के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और अपने समय के उच्च कोटि के साहित्यिक थे। ग्लैडस्टन का जीवन-चरित लिख कर आपने साहित्य-क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की। आपके जीवन-काल में शायद ही ऐसा कोई लेखक हुआ हो जिसने अपने जीवन में आपके समान सफलता प्राप्त की हो। पिछले योरपीय महासमर के प्रारम्भ होते ही आपने अपने सरकारी पद का सहसा परित्याग कर दिया। आप युद्ध के विरोधी थे; अतएव आप अपनी आत्मा के विरुद्ध ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल के कार्य से सहयोग करने को नहीं तैयार हुए।

मार्ले महोदय का जन्म लङ्काशायर के ब्लैकबर्न नामक स्थान में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा आपको चेटेनहम में मिली। इसके बाद आप आक्सफ़ोर्ड को चले गये। आक्सफ़ोर्ड में शिक्षा ग्रहण करते समय आपने साहित्यिक लेख लिखना प्रारम्भ किया। अल्पकाल में ही आपका साहित्य-क्षेत्र में नाम हो गया। राजनीति में योग देकर जब सन् १८८३ में आप पार्लियामेंट के मेम्बर हो गये तब साहित्यिक लोगों को आपके इस परिवर्तन का खेद हुआ था। परन्तु पार्लियामेंट के सदस्य रह कर भी आपने साहित्य-कार्य से अपना सम्बन्ध भङ्ग नहीं किया, बरन और भी अधिक उत्साह से उसका कार्य करते रहे।

लार्ड मार्ले सन् १९०५ से १९१० तक भारत के सेक्रेटरी आव् स्टेट के पद पर रहे। भारत में शासन-सम्बन्धी सुधार-योजना का सूत्र-पात सर्वप्रथम आपके ही समय में हुआ था। योरपीय महासमर के छिड़ते ही आप अपने पद से पृथक् होकर विमबेल्डन नामक स्थान में जाकर एकान्त-वास करने लगे। इसी समय आपने एक मनोरञ्जक साहित्यिक ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसे आपने 'रिकलेक्शन्स' नाम से ग्रन्थमाला के रूप में सन् १९१७ में प्रकाशित कराया। इस माला का साहित्य-क्षेत्र में लोगों ने समुचित आदर किया। इसकी भूमिका में आपने लिखा है—युद्ध के कारण मुझे सरकारी कार्य से छुट्टी लेनी पड़ी। संसार भयङ्कर परीक्षाओं में से होकर एक नये युग में पदार्पण कर रहा है। यह युग हम लोगों के युग से सर्वथा भिन्न है। अभी यह सिद्ध नहीं हुआ है कि तुम्हारे नये युग की इस भयङ्कर विपत्ति ने हमारे युग के सिद्धान्तों को उन्मूल कर दिया है। यही एक प्रकार से, उनके अन्तिम शब्द हैं।

पुस्तक-परिचय।

१—रामचरितमानस—टीकाकार, पण्डित महावीरप्रसाद मालवीय और प्रकाशक बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या १४५० और मूल्य ८)।

गोस्वामी तुलसीदासजी का रामचरितमानस हिन्दी-साहित्य का सबसे श्रेष्ठ रत्न है ही, हिन्दी के पुस्तक-प्रकाशकों के लिए भी उससे बढ़ कर अमूल्य ग्रन्थ दूसरा कोई नहीं है। हिन्दी में अभी तक कितने ही विद्वानों ने रामचरितमानस की टीकायें लिखी हैं और हिन्दी के अनेक पुस्तक-प्रकाशकों ने उन्हें ख़ूब सुन्दर रूप में प्रकाशित किया है। तो भी हिन्दी के पुस्तक-प्रकाशक रामचरितमानस के नये नये संस्करण निकालते ही जा रहे हैं। इसी से उसकी लोक-प्रियता का अनुमान किया जा सकता है।

बेलवेडियर प्रेस का यह रामचरितमानस भी अच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकला है। टीका की भाषा सरल है। अक्षर स्पष्ट हैं। कई चित्र हैं, सादे और रङ्गीन। एक गोस्वामीजी का चित्र है। इसमें गोस्वामीजी की जीवनी भी छापी गई है। उसमें अनेक ज्ञातव्य बातें हैं। मानस-पिङ्गल भी इसकी एक विशेषता है। मतलब यह कि रामायण के प्रेमियों के लिए यह भी सङ्ग्रह करने योग्य है। कहने की आवश्यकता नहीं कि तुलसीदासजी के रामचरितमानस का जितना ही अधिक प्रचार होगा उतना ही अच्छा है।

(२) हिन्दी-साहित्य-मन्दिर, बनारस सिटी की तीन पुस्तकें—

(१) दिव्य जीवन—अनुवादक, श्रीसुखसम्पत्तिराय भण्डारी, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १३६ और मूल्य ॥।) है।

यह एक प्रसिद्ध अँगरेज़ लेखक की एक निबन्ध-पुस्तक का अनुवाद है। इसमें कुल २२ निबन्ध हैं। सभी निबन्ध शिक्षादायक और सुपाठ्य हैं। अनुवाद सरल और बोधगम्य है।

(२) तरुण भारत—अनुवादक, श्रीयुत रामचन्द्र वर्मा और श्रीयुत कन्हैयालाल खन्ना, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १७७ और मूल्य ।) है।

यह पुस्तक लाला लाजपतराय की यंग इंडिया नामक अँगरेज़ी पुस्तक का अनुवाद है। इसे लालाजी ने अपने अमरीका-प्रवास में लिखा था। इसमें भारत की राजनैतिक अवस्था तथा उसके इतिहास की पर्याप्त विवेचना की गई है। इसे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास समझना चाहिए। यद्यपि इस पुस्तक में गत ७-८ वर्षों की राजनैतिक चर्चा का उल्लेख नहीं है, तो भी राष्ट्रीय आन्दोलन का पूर्वरूप जानने के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। अनुवाद भी सुन्दर भाषा में हुआ है।

(३) गुलामी—लेखक, श्रीयुत पण्डित कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल-एल० बी०, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २० + १०१ और मूल्य ॥।=) है।

यह पुस्तक महात्मा टाल्स्टाय की Slavery of our own times नामक पुस्तक का अनुवाद है। प्रारम्भ में टाल्स्टाय की संक्षिप्त जीवनी भी है। पुस्तक सङ्ग्रह करने योग्य है।

३—जीवन-विज्ञान—लेखक, श्रीयुत शम्भूदयाल मिश्र, बी० एस-सी०, एम० बी०, बी० एस०, इटावा, आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १८१ और मूल्य १।) है।

इस पुस्तक में शरीर रचना और उसके स्वास्थ्य के सरल नियमों का वर्णन है। इन विषयों पर हिन्दी में कई एक अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। यदि लेखक उनका अवलोकन कर इस पुस्तक का प्रणयन करते तो यह और भी अधिक उपयोगी होती। कम से कम पारभाषिक शब्द तो शुद्ध रूप में प्रयुक्त होते। इस पुस्तक की लेखन-शैली जटिल और भाषा सदोष है।

४—कालिदास और शेक्सपियर—यह एक समालोचनात्मक पुस्तक है। काशी में एक ज्ञानोदय-ग्रन्थमाला-कार्यालय खुला है। उसका उद्देश, प्रकाशक के शब्दों में, स्थायी साहित्य पर यथा-साध्य मौलिक ग्रन्थ भेंट करना है। यह ग्रन्थ उसी माला का पहला पुष्प है। इसके प्रणेता पण्डित छन्नूलाल द्विवेदी हैं। पुस्तक २८१ पृष्ठों में समाप्त हुई है। मूल्य २) है।

बाबू रामदास गौड़ ने पुस्तक के प्रारम्भ में एक अनुवचन लिखा है। 'समय की अत्यन्त सङ्कीर्णता में' आपको इस पुस्तक का थोड़ा सा ही अंश देखने का अवसर मिला। उसी को पढ़ कर आप फड़क उठे। अन्य विद्वानों ने भी इस पुस्तक के सम्बन्ध में ऐसी ही सम्मतियां दी हैं। अतएव पुस्तक के महत्त्व-पूर्ण होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं। पुस्तक के अन्त में प्रणेता ने उन ग्रन्थों के कर्ताओं तथा पत्रों के सम्पादकों को अनेक धन्यवाद दिये हैं जिनसे आपको बहुत सहायता मिली है। दूसरे पत्रों की बात तो हम नहीं जानते, पर सरस्वती के लेखों पर आपने खूब धावा मारा है। कई लेखों को आपने ज्यों के त्यों, बिना एक शब्द भी बदले, उठा कर ग्रन्थ में रख दिये हैं। यदि ऐसे ही सहायता सभी पत्रों से आपने ली है, तो आपके ग्रन्थ की मौलिकता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता और सभी को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि रत्नाकरजी ने आपके परिश्रम और अनुसन्धान की उचित प्रशंसा की है। यदि हम इस पुस्तक से सिर्फ़ सरस्वती के लेखों को निकाल डालें तो इसका अधिकांश भाग निकल जाय। ऐसा मौलिक ग्रन्थ लिख कर पण्डित छन्नूलालजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने सचमुच, बाबू रामदास गौड़ के शब्दों में, ज़मीन और आसमान का कुलाबा अवश्य बड़ी योग्यता से मिलाया है। गौड़जी के अनुवचन से यह भी सूचित होता है कि बिहारी की सतसई के बाद इसी का नम्बर है। गौड़जी मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक के परीक्षक रह चुके हैं। अतएव यदि साहित्य में यही मौलिक ग्रन्थ पुरस्कार के योग्य समझा जाय तो कोई आश्चर्य नहीं।

५—वीर-केसरी शिवाजी—यह बड़ा ग्रन्थ है। पृष्ठ-संख्या ७०० से अधिक है। कलकत्ता (१२६, हरिसन रोड) की हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी ने इसका प्रकाशन किया है। इसके लेखक पण्डित नन्दकुमारदेव शर्मा हैं। मूल्य ४)।

हिन्दी में कदाचित् इतना बड़ा चरित्र किसी का प्रकाशित नहीं हुआ है। शिवाजी के सम्बन्ध में अभी तक जो पुस्तकें लिखी गई हैं वे सभी छोटी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उस आकार में शिवाजी के चरित्र की सभी बातों का संक्षेप में समावेश होना कठिन है। लेखक ने अपने ग्रन्थ में मौलिकता का दावा नहीं किया है। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि आपने यह चरित अच्छे ढङ्ग से लिखा है। इसके प्रथम परिच्छेद में 'महाराष्ट्र की विशेष विशेषतायें' बतलाई गई हैं। हमारी राय में इसमें शिवाजी के पूर्व की परिस्थिति की विशद विवेचना होनी चाहिए थी।

इसी प्रकार 'मृत्यु के पीछे परिस्थिति' शीर्षक परिच्छेद में भी अच्छी विवेचना नहीं की गई है। ऐतिहासिक व्यक्ति के चरित्र का पाठ कर यदि पाठक को उसके चरित्र की कुछ घटनाओं का ही ज्ञान प्राप्त हुआ तो उससे अधिक लाभ नहीं हुआ। हमारी समझ में लेखक ने शिवाजी की जीवन-कथा बतलाने में जितना प्रयास किया है उतना उनके पूर्व की परिस्थिति या समकालीन परिस्थिति का विवेचन करने में नहीं किया है। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक मनोरञ्जक है। शैली भी सुन्दर है। ऐसी अच्छी पुस्तक लिख कर शर्मा जी ने हिन्दी-प्रेमियों का उपकार किया है। अतएव वे धन्यवाद के पात्र हैं।

६—भारतीय वीरता—अनुवादक वैद्यनाथसहाय, और प्रकाशक हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी, १२६ हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या २६८ और मूल्य १।॥) है।

यह पुस्तक श्रीरजनीकान्त गुप्त की बँगला-पुस्तक का अनुवाद है। इसमें भारतीय वीर वीराङ्गनाओं की वीरता का मनोहर वर्णन है। वर्णन-शैली हृदयग्राही है। कहीं कहीं दो एक भूलें रह गई हैं, पर इन भूलों से पुस्तक का महत्त्व कम नहीं पड़ता।

७—भक्ति—अनुवादक 'ज्ञान-पिपासु' और प्रकाशक हिन्दी-पुस्तक-एजेंसी, १२६ हरिसन रोड, कलकत्ता। छोटा आकार, पृष्ठ-संख्या ११२ और मूल्य ।=) है।

यह पुस्तक उपर्युक्त एजेंसी की सस्ती ग्रन्थमाला का चौथा पुष्प है। यह स्वामी विवेकानन्द की भक्तियोग नामक प्रसिद्ध पुस्तक का अनुवाद है। अनुवाद सुन्दर हुआ है।

८—धर्मगीताञ्जलि—लेखक हैं न्याय-विशारद-न्यायतीर्थ मुनि श्रीन्यायविजय और प्रकाशक श्रीजैन-श्वेताम्बर आनन्दवर्धक-मण्डल, उज्जैन। पृष्ठ-संख्या ६४, पुस्तक 'अमूल्य' है।

यह शास्त्र-विशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्म सूरि की पद्यात्मक जीवन-कथा है। प्रकाशक के शब्दों में यह उनका कोई जीवन-चरित्र नहीं है। यह स्तोत्र के रूप में उनकी पूजा-सामग्री है। अतएव इसकी पद्य-रचना के सम्बन्ध में चुप रह जाना ही अच्छा है।

९—विश्व-बोध—लेखक, श्रीयुत मनोहरप्रसाद मिश्र। प्रकाशक हिन्दी-ग्रन्थ-भाण्डार कार्यालय, बनारस। पृष्ठ-संख्या ३२ और मूल्य ।)।

यह एक छोटी सी आध्यात्मिक नाटिका है। छोटी होने पर भी यह नाटिका पढ़ने योग्य है।

१०—पण्डित जीवाराम (किसरौल, मुरादाबाद) की **संस्कृत-शिक्षा** नाम की एक किताब ६ भागों में लिखी है। संस्कृत सीखने की इच्छा रखनेवाले विद्यार्थियों के लिए यह बड़े काम की किताब है। मूल्य प्रथम भाग का ≡), द्वितीय का ।), तृतीय का ।-), चतुर्थ का ।), पञ्चम का ।-)॥ और षष्ठ भाग का ॥) है।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २४, खण्ड २] नवम्बर १९२३—कार्तिक १९८० [संख्या ५, पूर्ण संख्या २८७

मर्दुमशुमारी की "हिन्दुस्तानी" भाषा।

अपनी भाषा सभी को प्यारी होती है। भाषा अच्छी हो या बुरी, उन्नत हो या अनुन्नत, शब्दश्री-सम्पन्न हो या शब्दश्री-हीन, बिना उसके सांसारिक व्यवहार नहीं चल सकता। पशु-पक्षियों की भी भाषा होती है और उसके द्वारा वे भी सुख और दुःख, हर्ष और विषाद, भय और शोक प्रकट करते हैं। परन्तु अपनी भाषा के पूर्ण महत्त्व को सभ्य और शिक्षित जातियाँ ही समझती हैं। वे जानती हैं कि जिनकी भाषा, जिनका धर्म्म, जिनका आचार और जिनका वस्त्र-परिच्छद एक सा नहीं वे कभी अपनी जातीयता अक्षुण्ण नहीं रख सकतीं। यही बातें हैं जो मनुष्यों के समुदाय को दृढ़तापूर्वक एक ही बन्धन से बद्ध सा कर देती हैं। इनके अस्तित्व के आधार पर ही एकता, देश-भक्ति, पारस्परिक सहानुभूति आदि की सृष्टि होती है और वह उत्तरोत्तर बढ़ती भी है। जिनकी भाषा भिन्न है, जिनका धर्म्म भिन्न है, जिनका वस्त्राच्छादन भिन्न है उनसे दूसरों का मन अच्छी तरह नहीं मिल सकता; उनमें परस्पर भ्रातृभाव नहीं उत्पन्न हो सकता; हज़ार प्रयत्न करने पर भी वे एक नहीं हो सकते। इसी से दूर-दर्शी जन और जन-समुदाय अपनी भाषा का इतना आदर करते हैं। और देशों की बातें जाने दीजिए। अपने ही देश के दो एक उदाहरणों पर विचार कीजिए। आठ नौ सौ वर्ष हुए जब पहले पहल मुसलमानों ने इस देश में क़दम रक्खा था। धीरे धीरे वे इस देश के अधीश्वर हो गये। उस समय इस देश के निवासी न गूँगे थे और न बिना भाषा ही के थे। उनकी भी अपनी निज की भाषा थी। अथवा यों कहना चाहिए कि प्रत्येक प्रान्त में एक एक प्रधान भाषा बोली जाती थी और इन भाषाओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलनेवालों की संख्या भी करोड़ों थीं। उधर मुसल्मान उनके मुक़ाबले में बहुत ही थोड़े थे। फ़ी एक लाख भारतवासियों के पीछे मुसल्मान शायद एक सौ से भी कम ही रहे होंगे। अतएव एक लाख के सुभीते के लिए एक सौ को चाहिए था कि वे उन एक लाख मनुष्यों की भाषा और लिपि सीखते और उन्हीं का प्रचार करते। परन्तु उन्हें अपनी भाषा इतनी प्यारी थी कि उन्होंने उसे न छोड़ा। उलटा यहाँ के लाखों आदमियों को अपनी भाषा और अपनी लिपि सीखने के लिए मजबूर किया।

यही हाल अँगरेज़ों का भी है। उनकी संख्या तो मुसल्मानों से भी कम है—वे तो केवल मुट्ठी भर हैं। पर उन्होंने भी यहाँ की भाषाओं को प्रधानता न दी। जहाँ तक उनसे हो सका उन्होंने उलटा यहाँवालों को ही अपनी भाषा सिखाई। यहाँवालों की भाषा या बोली उन्होंने मजबूरन सीखी भी तो बस काम चलाने भर को, अधिक नहीं। कचहरियों और दफ़्तरों में, जहाँ प्रान्तिक भाषाओं में काम होता है वहाँ भी, वे, यदि उनका बस चलता तो, अपनी ही भाषा प्रचलित कर देते; पर उतने अँगरेज़ीदाँ आते कहाँ से। इसी से विवश होकर उन्हें यहाँ की भाषा से भी काम लेना पड़ा।

जातीयता, एकता, सहानुभूति और पारस्परिक भ्रातृ-भावना की उत्पत्ति, रक्षा और वृद्धि के लिए जिस भाषा की इतनी आवश्यकता है उसके विषय में अवहेलना या भेदनीति से काम लिया जाता देख किस विवेकशील सज्जन को सन्ताप न होगा?

और और प्रान्तों में प्रायः एक ही एक देशी भाषा का प्राधान्य है। मदरास में अलबत्ते कई देशी भाषायें प्रचलित हैं। पर उन सबके क्षेत्र जुदा जुदा हैं—तामील, तैलगू, मलयालम अपने अपने ज़िलों में ही बोली जाती हैं। उनकी खिचड़ी नहीं पकती। जहाँ कनारी है वहाँ उसी की मुख्यता है; जहाँ तामील है वहाँ उसी की। यही हाल कुछ अन्य भाषाओं का भी है। गुजरात में गुजराती, महाराष्ट्र में मराठी और बङ्गाल में बँगला भाषा बोली जाती है। लिखने और बोलने की भाषायें वहाँ वही हैं। इसी तरह मध्यप्रदेश और बिहार में हिन्दी का प्रचार है। इन दोनों प्रान्तों की शासन-रिपोर्टों और मर्दुमशुमारी की भी रिपोर्टों में वहाँ की भाषा बोलनेवाले हिन्दी-भाषा-भाषी ही माने गये हैं और अब भी माने जाते हैं। परन्तु आपको सुन कर आश्चर्य्य होगा कि यदि बिहार और मध्यप्रान्त के दो चार हज़ार—इतने ही क्यों, लाख दो लाख भी—आदमी संयुक्तप्रान्त में, मर्दुमशुमारी के दिन, काशी, प्रयाग, हरद्वार या और कहीं ठहरे मिलें तो उनकी बोली हिन्दी के बदले "हिन्दुस्तानी" हो जाय। इस अघटनशील घटना का गुरुत्व या महत्त्व थोड़ा न समझिए। उसकी गुरुता वही अच्छी तरह समझ सकेंगे जो अपनी भाषा के महत्त्व को जानते हैं।

इन प्रान्तों में दो भाषायें बोली जाती हैं। एक उर्दू, दूसरी हिन्दी। शहरों और क़सबों में रहनेवाले मुसल्मानों, कुछ कायस्थों और काश्मीरियों, और कचहरियों तथा सरकारी दफ़्तरों के मुलाज़िमों को छोड़कर अन्य सभी की भाषा या बोली हिन्दी है। इनके सिवा यदि और भी कुछ लोग उर्दू बोलनेवाले होंगे तो उनकी, तथा जिनका नाम निर्देश यहाँ पर किया गया उन सबकी, सम्मिलित संख्या हिन्दी बोलनेवालों के मुक़ाबले में शायद फ़ी सदी पच्चीस से अधिक न होगी। पर सरकार इस अकेले प्रान्त में एक के बदले दो भाषाओं से बहुत घबराती सी है। मदरास में तीन तीन चार चार बोलियाँ या भाषायें बोली जाती हैं; परन्तु वहाँ की गवर्नमेंट उन सबका लेखा-जोखा रखने का झंझट उठा लेती है। बम्बई की गवर्नमेंट भी मराठी और गुजराती भाषा बोलनेवालों का हिसाब अलग अलग रखती है। ऐसा करने में यदि किसी को कुछ तकलीफ़, झंझट या सङ्कोच होता है तो संयुक्त-प्रान्त की गवर्नमेंट को। वह चाहती है कि भाषा-विषयक द्वैधीभाव यहाँ न रहे। इस से वह, दो एक दफ़े, मदरसों के छोटे छोटे दरजों की पाठ्य पुस्तकों की भाषा एक कर डालने की चेष्टा भी कर चुकी है। उसकी इस भाषा या बोली का नाम कुछ लोगों ने सरकारी बोली रक्खा है। मगर उसकी यह चेष्टा अभी तक पूर्णरूप से सफल नहीं हुई। ख़ैर।

मदरसों की पुस्तकों की भाषा एक कर डालने की चेष्टा में सरकार को यद्यपि पूरी सफलता नहीं हुई, तथापि वह अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए बराबर यत्न करती चली जा रही है—उसकी रगड़ बराबर जारी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक मर्दुमशुमारी के काग़ज़ात में हिन्दी और उर्दू, दोनों ही भाषायें बोलनेवालों की संख्या जुदा जुदा बताई जाती रही है। पर इस दफ़े, पिछली मनुष्य-गणना के समय, उसने इस भेद-भाव को एक-दम ही दूर कर दिया है। उसने हिन्दी को भी अर्धचन्द्र दे दिया है और उर्दू को भी। उन दोनों की जगह उसने "हिन्दुस्तानी" को दे दी है। सो अब सब लोगों को यह कल्पना कर लेनी चाहिए कि न इन प्रान्तों में कोई हिन्दी ही बोलनेवाला है और न उर्दू ही बोलनेवाला। जो भाषा या बोली यहाँ बोली जाती है वह "हिन्दुस्तानी" है। हिन्दुओं को अब हिन्दी भूल जाना चाहिए और मुसल्मानों को उर्दू। सरकार के लिए तो यह बहुत बड़े सुभीते की बात हुई, पर जो साहब समस्त भारत की मनुष्य-गणना पर आलोचनात्मक रिपोर्ट लिखेंगे या लिखी होगी उन पर क्या गुज़री होगी या गुज़रेगी, यह हमें अब तक नहीं मालूम हुआ; क्योंकि उनकी रिपोर्ट अब तक हमारे देखने में नहीं आई। बात यह है कि अन्य प्रान्तों की—विशेष करके बिहार और मध्य-प्रदेश की—मनुष्य-गणना के अध्यक्ष अपने अपने नक़शों में ज़रूर ही हिन्दी बोलनेवालों की संख्या दिखावेंगे। क्योंकि अन्य सभी प्रान्तों में थोड़े बहुत हिन्दी बोलनेवाले ज़रूर ही निकलेंगे। इस दशा में उन सबका लेखा ज़रूर ही प्रकाशित करना पड़ेगा। हिन्दी-उर्दू बोलनेवालों के अनस्तित्व का पता यदि कहीं के नक़शों में मिलेगा तो परम सुधारक संयुक्त-प्रदेश ही के नक़शों में मिलेगा। सो इस प्रदेश की विशेषता की रक्षा के लिए भाषा-विषयक नक़शे या नक़शों में एक ख़ाना "हिन्दुस्तानी" का भी रखना पड़ेगा। सो जहाँ और अनेक भाषायें या बोलियाँ इस देश में प्रचलित हैं वहाँ एक काल्पनिक भाषा "हिन्दुस्तानी" भी बढ़ानी पड़ेगी।

अच्छा, यह हिन्दुस्तानी भाषा है क्या चीज़? इसका नाम कुछ ही समय से सुन पड़ने लगा है। यह कोई नई भाषा तो है नहीं। जो लोग हिन्दी या उर्दू अच्छी तरह नहीं बोल सकते—उदाहरणार्थ मदरासी, महाराष्ट्र और सबसे अधिक हमारे साहब लोग—उन्हीं की भ्रष्ट भाषा यदि हिन्दुस्तानी कही जा सके तो कही जा सकती है। यही लोग टूटी-फूटी हिन्दी बोल कर किसी तरह अपना काम चलाते हैं। इसी अर्थ में "हिन्दुस्तानी" आख्या चरितार्थ हो सकती है। इसी अर्थ में वह सारे हिन्दुस्तान की भाषा हो सकती है। पर भ्रष्ट, अपभ्रष्ट या ग़लत-सलत भाषा बोलने से क्या किसी नई भाषा की सृष्टि भी हो सकती है? यदि इँगलेंड में रहनेवाले जापानी लस्टम-पस्टम अँगरेज़ी बोलें तो संयुक्त-प्रान्त की मनुष्य-गणना के बड़े साहब उनकी उस अँगरेज़ी को क्या कोई नया नाम देने को तैयार होंगे? परन्तु तर्क, युक्ति और औचित्य को यहाँ पूछता कौन है और उनकी क़दर करता कौन है? मर्दुमशुमारी के साहब ने इन प्रान्तों की सरकार से सिफ़ारिश कर दी कि हिन्दी-उर्दू का झमेला ठीक नहीं; दोनों की जगह "हिन्दुस्तानी" को दे दी जाय। बस सरकार ने "तथास्तु" कह दिया और क़लम के एक ही स्वल्प सञ्चालन से हिन्दी और उर्दू दोनों ही उड़ गईं। "हिन्दुस्तानी" पर तो सरकार पहले ही से फ़िदा है। उसकी पसन्द की हुई स्कूली किताबें, उसके मुतरजिमों की तर्जुमा की हुई क़ानून की किताबें, उसके गैज़टों और इश्तहारों की बहुत ही चुस्त और दुरुस्त इबारतें उसके हिन्दुस्तानी-प्रेम का पूरा प्रमाण है।

ऊपर ही ऊपर देखने से तो "हिन्दुस्तानी" का प्रयोग हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं के पृष्ठपोषकों की दृष्टि से एक सा हानिकारक है; क्योंकि इस नये नाम ने उन दोनों भाषाओं के नाम को उड़ा दिया है। पर इसके भीतर एक रहस्य है। कुछ समय से साहब लोगों तथा कुछ और भी दूरदर्शी महात्माओं ने हिन्दुस्तानी को उर्दू का ही वाचक मान रक्खा है। अतएव ऐसे लोग यदि यह समझें कि इन प्रान्तों में एक भी हिन्दी बोलनेवाला नहीं, समस्त प्रान्त हिन्दुस्तानी उर्फ़ उर्दू ही बोलता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह धारणा हो जाने पर भविष्यत् में क्या क्या गुल खिल सकते हैं और हिन्दी को आच्छादित कर लेने के लिए उस पर कैसी कैसी भ्रमोत्पादक घटायें घिर सकती हैं, इसका अनुमान अच्छी तरह किया जा सकता है।

बात ज़रा दूर तक विचार करने की है। देहात के निवासी जानते हैं कि एक ही ज़िले में, दो दो चार चार कोस पर भी, बोली में कुछ न कुछ अन्तर पड़ जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लखनऊ ज़िले के लोगों की बोली इलाहाबाद ज़िले के लोगों की बोली से और भी अधिक दूर हो जाती है। इसी तरह सहारनपुर और बलिया या गाज़ीपुर की बोली में तो सैकड़ों शब्द ऐसे पाये जाते हैं जो दोनों ज़िलों में एक से नहीं बोले जाते। पर क्या इस भेद-भाव के कारण भाषा ही बदल जाती है? यदि बदल जाय तो कहीं कहीं हर ज़िले में दो दो तीन तीन बोलियों या भाषाओं की कल्पना करनी पड़े। बोली में जैसे यहां, थोड़ी थोड़ी दूर पर, अन्तर हो गया है वैसे ही इँगलेंड में भी हो गया है। यह बात मर्दुमशुमारी के सुपरिंटेंडेंट स्वयं भी स्वीकार करते हैं। पर वहां अँगरेज़ों की अँगरेज़ी अँगरेज़ी ही बनी हुई है। उसमें भेद-कल्पना नहीं की गई। तथापि इस देश की सरकार के द्वारा नियत किये गये डाक्टर ग्रियर्सन ने यहां की भाषाओं की नाप-जोख करके संयुक्त-प्रान्त की भाषा को चार भागों में बाँट दिया है—(१) माध्यमिक पहाड़ी (२) पश्चिमी हिन्दी (३) पूर्वी हिन्दी और (४) बिहारी। आपका वह बाँट-चूँट वैज्ञानिक कहा जाता है और इसी के अनुसार आपकी लिखी हुई भाषा-विषयक (Luguistic Survey) रिपोर्ट में बड़े बड़े व्याख्यानों, विवरणों और विवेचनों के अनन्तर इन चारों भागों के भेद समझाये गये हैं। पर भेद-भाव के इतने बड़े भक्त डाक्टर ग्रियर्सन ने भी इस प्रान्त में "हिन्दुस्तानी" नाम की एक भी भाषा को प्रधानता नहीं दी।

ज़रा दिल्लगी तो देखिए। उधर तो सरकार ही के एक बहुत बड़े कर्म्मचारी, डाक्टर ग्रियर्सन, जो भाषाओं के तत्त्वदर्शी समझे जाते हैं, एक के बदले यहां चार चार भाषाओं का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। इधर सरकार ही के अन्यतम कर्म्मचारी, मर्दुमशुमारी के सुपरिंटेंडेंट, एडी साहब, हिन्दी और उर्दू, इन दो भाषाओं का भी भेद दूर करके एक "हिन्दुस्तानी" ही रखना चाहते हैं। अब किसकी बात ठीक मानी जाय या किसकी तारीफ़ की जाय? डाक्टर साहब की या एडी साहब की?

सुपरिंटेंडेंट साहब की शिकायत है कि १९२१ ईसवी की मर्दुमशुमारी में, भाषा-विषयक विवाद ने बड़ा उग्ररूप धारण किया था। शुमारकुनिन्दा लोगों को भुलावे दिये गये थे; वे ख़ुद भी, जिसकी जैसी मौज थी या जो जिस भाषा का पक्षपाती था, उसी को उसने नक़्शों में दर्ज किया था। इससे भाषा के सम्बन्ध में मनुष्य-गणना ठीक ठीक नहीं हुई। इसी दोष को दूर करने के लिए इस दफ़े आपने यह "हिन्दुस्तानी" तोड़ निकाली है। नतीजा यह हुआ है कि इस प्रान्त में फ़ी दस हज़ार आदमियों में से ९,९७४ मनुष्य हिन्दुस्तानी बोलनेवाले निकल आये हैं और इस लेखे में रत्ती, बादाम, छुहारा की भी भूल नहीं।

सुपरिंटेंडेंट साहब को भाषा-विषयक वाद-विवाद इसलिए भी पसन्द नहीं कि उर्दू और हिन्दी के हामी इस पर धार्मिक रङ्ग चढ़ा दिया करते हैं। आपका यह कथन किसी हद तक ठीक भी है। पर इस रङ्ग को आप कहां कहां धोते फिरेंगे। इसने तो सारे भारत को ही सराबोर कर दिया है। जब आप मुसल्मानों के लिए शिक्षा का अलग प्रबन्ध करते हैं, जब आप उनके और हिन्दुओं के लिए कौंसिलों में कुरसियों की संख्या अलग अलग निर्दिष्ट करते हैं, जब आप डिपटी कलक्टरी के उम्मेदवारों में भी धार्मिक बाँट-चूँट किया करते हैं तब आप भाषा-विषयक विवाद से क्यों इतना घबराते हैं? एक विषय में तो एकाकार, अन्य विषयों में विभेद-योजना! आपकी यह नीति साधारण जनों की समझ में तो आती नहीं, असाधारणों की समझ में चाहे भले ही आ जाय।

रही यह बात कि १९११ की मर्दुमशुमारी के आंकड़े सही नहीं थे, क्योंकि हिन्दी-उर्दू के पक्षपातियों ने पक्षपात से काम लिया था। सो इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि आपको इससे क्या? जो अपनी भाषा हिन्दी बतावे उसे आप हिन्दी-भाषी समझें; जो अपनी भाषा उर्दू बतावे उसे उर्दू-भाषी। वह सच कहता है या नहीं, इसके पीछे आप इतने हैरान क्यों? यह बात आप बतानेवाले के दीनो-ईमान पर क्यों न छोड़ दें? कोई टैक्स तो आपको वसूल करना नहीं, जो सच बात न कहने से टके कम मिलेंगे। अच्छा, आपही कहिए, आपने मर्दुमशुमारी के नक़्शों में उम्र के हिसाब से यहां के निवासियों की जो गिनती की है वह क्या लोगों के जन्मपत्र या बप्तिस्मे के रजिस्टर देख कर की है? जिसने अपनी उम्र ५० वर्ष की बताई उसकी सचाई जाँचने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की कसौटी भी कोई आपने रक्खी ? वह सच कह रहा है या नहीं, इसकी शहादत भी आपने उससे मांगी ? नहीं मांगी और उसकी बात पर ही विश्वास कर लिया तो भाषा-विषयक उक्तियों पर क्यों न विश्वास किया जाय ?

इस विषय पर जितना ही अधिक विचार किया जायगा उतना ही अधिक विरोध के लिए जगह निकलती आवेगी। सरकार ने हिन्दी और उर्दू दोनों को निकाल कर उनके आसन पर जो "हिन्दुस्तानी" को बिठा दिया है, यह बात इस प्रान्त के प्रत्येक विवेकशील मनुष्य के हृदय में खटक पैदा करनेवाली है। बड़े ही परिताप की बात है कि इस इतने महत्त्व की घटना या दुर्घटना पर, जहां तक हम जानते हैं, किसी ने अब तक चूँ तक नहीं किया। हां, एक मासिक पत्रिका में दो चार सतरें ज़रूर देखी गई हैं।

सहदेवसिंह वर्म्मा

जौहरी या जादूगर ?

सवीं जनवरी, १९२१ को हिन्दुस्तानी अख़बारों के किसी कोने में एसोशियेटेड प्रेस का भेजा हुआ एक तार छपा था। उसका आशय था कि एक रोज़ पहले बम्बई में ए० एम० जेकब नामक जौहरी की मृत्यु हो गई थी। समाचार इतना संक्षिप्त था—मरने के कई बरस पहले से मिस्टर जेकब ऐसे साधारण व्यक्ति बन गये थे, उनकी अवस्था इतनी दीन-हीन हो गयी थी—कि बहुत कम लोगों को यह जानने का कुतूहल हुआ होगा कि यह रत्न-व्यवसायी कौन था और क्यों एसोशियेटेड प्रेस ने दुनिया को यह ख़बर देना ज़रूरी समझा था। फिर भी किसी ज़माने में जेकब का नाम प्रसिद्धि की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था, और भारत-सरकार तक को नचाने के लिए उनका इशारा काफ़ी माना जाता था। भारतवर्ष आश्चर्यों की खान है, पर लोग कहते थे कि इस देश में भी ऐसा विचित्रतामय जीवन शायद ही किसी दूसरे का हुआ हो !

जेकब संसार के उन व्यक्तियों में थे जिनकी संख्या हाथ की अँगुलियों पर गिनी जा सकती है। बचपन में वे रोटियों को मुहताज थे। बरसों उन्हें दूसरे की ग़ुलामी करनी पड़ी थी। पर उनके जीवन में एक दिन ऐसा भी आया जब उनके धन की इयत्ता बताना असम्भव हो गया। उनसे ख़रीद-बिक्री करने की नहीं, उनके दर्शन करने की इच्छा से आनेवाले लोगों की संख्या महीने में हज़ारों तक पहुँचती थी। और इनमें कितने ऐसे होते थे जिन्हें अपनी उद्देश-सिद्धि के लिए सैकड़ों कोस का सफ़र करना पड़ता था। लन्दन से न्यूयार्क, किम्बर्ले से समरक़न्द तक के धनी और गुणी समाज में, जेकब के उपासक मौजूद थे, और इतनी दूर से वे उन्हें अपनी भक्तिपुष्पाञ्जलि समर्पण करने को उनके पास पहुँचते थे। यह दूसरी बात है कि जिस समय उनके जीवन-नाटक का अन्तिम पर्दा गिरा उस समय उनकी बन्द होती हुई आँखों को एक भी 'दर्शक' नज़र न आया ! आश्चर्य्य की बात है कि ऐसे परमप्रसिद्ध पुरुष के जीवन का इति-वृत्त संसार में किसी को मालूम नहीं। इतने राजों-महाराजों, सेठ-साहूकारों, हाकिम-हुक्कामों से उनकी मित्रता हुई—देश-विदेश के इतने यात्रियों, व्यवसायियों और * साहित्यिकों को जेकब से

* मेरियन क्राफ़ोर्ड के Isaacs नामक उपन्यास के नायक जेकब ही हैं। किपलिङ्ग ने भी अपने Kin में उन्हें **"लरगन साहब"** (Lurgan Sahib) के रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया है। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने और घण्टों वार्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ—पर उन्होंने इस विषय में कभी किसी से एक शब्द तक न कहा कि उनका शैशव कहाँ व्यतीत हुआ, वे कहाँ से और कैसे भारतवर्ष आये और क्योंकर यहाँ बात की बात में कुबेर के ऐसे कृपापात्र बन गये। पूछने पर वे टाल-मटोल कर देते। कह देते 'मैं कुछ जानता ही नहीं'। उनके विषय में अनेक अनुसन्धान हुए, उनके प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में दो-एक मोटी बातों का पता भी लगा—पर स्वयं उन्होंने इस कार्य्य में न तो किसी की कुछ सहायता की, न यह बताया कि उस उपलब्ध इतिहास में सत्य का अंश कितना था।

जेकब के जीवन का जो भाग भारतवर्ष के बाहर व्यतीत हुआ था उस पर आज तक विशेष प्रकाश न पड़ सका। जेकब अपने को तुर्क बताते थे, यद्यपि वे थे यहूदी धर्म्म के माननेवाले। उनका जन्म कुस्तुन्तुनिया के आस-पास किसी स्थान में हुआ था। बचपन उन्होंने इटली में, और बाद, तुर्की में बिताया। उनके मा-बाप हद से ज़्यादा ग़रीब थे। उनसे इस बालक का भरण-पोषण न हो सका। जिस समय उसकी अवस्था दस बरस की थी उस समय उन्होंने उसे दास के रूप में किसी धनी पाशा के हाथ बेच दिया। जेकब तीक्ष्ण-बुद्धि बालक था। कर्तव्यनिष्ठ भी वह ख़ूब था। उसने अपने गुणों के कारण अपने मालिक के हृदय में घर कर लिया। वह पाशा उसके साथ और क्रीत दासों की तरह व्यवहार न करता। वह एक रोज़ जेकब को मकतब में बिठा आया, और घर पर भी उसके पढ़ने-लिखने का सुभीता कर दिया। जेकब ने उसके आश्रय में रह कर तुर्की भाषा और साहित्य में अच्छी व्युत्पत्ति प्राप्त की। इस अध्ययन-काल में ही उसे तन्त्र-मन्त्र से बड़ा प्रेम हो गया, और वह खोज खोज कर इस विद्या के जाननेवालों की सङ्गति करने लगा।

मालिक के मर जाने पर जेकब को ग़ुलामी से रिहाई मिली। वह अपने भाग्य की आज़माइश करने के लिए दुनिया देखना चाहता था। हज के यात्री के वेश में वह मक्का होता हुआ जद्दा नामक स्थान में पहुँचा। वहाँ से किसी प्रकार बम्बई आया। उस समय उसके पास फूटी कौड़ी भी न थी। वहाँ उसे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जेकब को अरबी-भाषा का अच्छा ज्ञान था। उसने इस आपत्काल में उसका बड़ा उपकार किया। हैदराबाद में किसी रईस को एक अरबी जाननेवाले की ज़रूरत थी। जेकब को यह मालूम हुआ और वे उसके यहाँ जा हाज़िर हुए। उन्हें नौकरी जाते ही मिल गयी। जेकब हैदराबाद में एक बरस भी न रह पाये थे कि उनके सम्बन्ध में तरह तरह की अफ़वाहें फैलने लगीं। कोई कहता वे जादूगर हैं, कोई कहता वे पहुँचे हुए फ़कीर हैं। बात अचरज की थी भी। जिस समय वे हैदराबाद पहुँचे थे उस समय खाली हाथ थे। पर एक ही दो बरस बाद उनकी लाखों की हैसियत हो गयी, उनके पास रत्नों का अपूर्व सङ्ग्रह हो गया। जेकब को यह रत्न-राशि कहाँ और कैसे मिली? आज तक इसका पता न लग सका, पर लोगों का विश्वास था कि जेकब में पदार्थ को एक स्थान से उड़ा कर दूसरे स्थान में पहुँचा देने की शक्ति थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब उन्हें नौकरी करने की क्या ज़रूरत थी ! जेकब हैदराबाद से दिल्ली चले गये और वहीं चाँदनी चौक में हीरे-जवाहरात की दूकान खोली। उनका व्यवसाय चल निकला। पर दिल्ली में उन्हें कार्य्यक्षेत्र सङ्कुचित देख पड़ा, इससे कुछ बरस बाद वे वहाँ से अपनी दूकान उठा कर शिमले ले गये। तब से जब तक व्यवसाय चला बराबर वहीं रहे। शिमले से ही जेकब की कीर्ति-कौमुदी दिग्दिगन्त में फैली थी। वहाँ उन्होंने लाखों-करोड़ों रुपये पैदा किये। शाही ठाठबाट से रहते थे। रोज़ ही उनके यहाँ बड़े से बड़े लोगों का आना-जाना होता, उनकी आवभगत में हज़ारों रुपये ख़र्च होते। यात्रियों और व्यवसायियों की बराबर भीड़ ही लगी रहती। रात रात भर जेकब अपने मेहमानों से तरह तरह के विषयों पर—किन्तु विशेषतः पूर्व की पिशाच-विद्या पर—बातें करते, और सारा समय इसके साथ खानपान भी जारी रहता !

जेकब हीरे-जवाहरात के बड़े ही अच्छे पारखी थे। उनका व्यवसाय-सम्बन्ध दूर दूर के धनाधीशों से था। उच्च से उच्च शासकों से उनकी घनिष्ठता थी। शिमले में उनका निवासस्थल वल्वीडियर था। उनके मकान की सजावट देखते ही बनती थी, यद्यपि उसको सजने में उन्होंने कहीं पाश्चात्य पद्धति का अनुकरण न किया था। जिस कमरे में वे सम्भ्रान्त व्यक्तियों से मिलते थे वह रत्नों से जगमगाता रहता था। पर इतना सब कुछ होने पर भी जेकब सादगी के अवतार थे। उनका संयम देख कर लोग आश्चर्य्य करते। शराब-कबाब उन्होंने हाथ से न छुआ। सिगरेट तक न पीते थे। अस्तबल में अच्छे से अच्छे घोड़े मौजूद रहते भी, वह ख़ुद एक पहाड़ी टाँघन पर ही सवारी करते थे।

बरसों यही सिलसिला जारी रहा। अन्त में एक दिन ऐसा भी आया जब मिस्टर जेकब पर सहसा विपत्ति के बादल उमड़ पड़े और सबके देखते देखते उनकी सारी सम्पत्ति न मालूम कहाँ विलीन हो गई। न उसे किसी ने आते देखा था, न किसी ने जाते देखा। ख़ाली हाथ वे जहाज़ से बम्बई में उतरे थे, और फिर ख़ाली हाथ बम्बई में ही जाकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे। कारण यह था:—

शिमले में जेकब को एक दिन समाचार मिला कि प्रसिद्ध Imperial नामक हीरा इस देश में बिकनेवाला है। समाचार पाते ही वे तत्कालीन निज़ाम सर महबूब अलीख़ाँ से जा मिले और उन्हें वह हीरा ख़रीदने को राज़ी कर लिया। निज़ाम ने उस हीरे के लिए ४० लाख रुपये देना मञ्जूर किया। आधा दाम उन्होंने जेकब को दे भी दिया। पर जेकब को वह हीरा २० लाख में ही मिल गया, और वह निज़ाम से पूरा दाम अर्थात् ४० लाख माँगने लगे। उधर निज़ाम को जब हक़ीक़त मालूम हुई तब उन्होंने उस सौदे को ही नट दिया। उलटे जेकब पर दरबार ने दग़ाबाज़ी कर २० लाख रुपये ले जाने का इल्ज़ाम लगाया। कलकत्ता-हाईकोर्ट में मामला चला। दुनिया भर में सनसनी फैल गई। जिस वक़्त मुक़द्दमा खुला, हाईकोर्ट में कहीं तिल रखने की जगह न थी। लगातार ५७ दिन तक मामला चला और बराबर यही हाल रहा। दोनों ओर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाखों रुपये ख़र्च हुए। हाईकोर्ट के फ़ैसले से जेकब निरपराध साबित हुए, पर इस मुक़द्दमे ने उन्हें बरबाद कर डाला। उनका कहना था कि निज़ाम १७ लाख में सौदा तै करने को तैयार हो गये थे, पर चूँकि सरकारी अदालतों का देशी राज्यों में ज़ोर नहीं पहुँचता, वे दरबार पर नालिश न कर सके। जेकब पर दग़ा साबित न हुई, पर निज़ाम के रुपये की डिगरी चुकाने के लिए उन्हें अपना लाखों का माल बेंचना पड़ा। यही उनके सर्वनाश का संक्षिप्त इतिहास है।

जिस समय जेकब का सितारा आसमान में ऊँची से ऊँची जगह पर था उस समय बड़े लाट इत्यादि से उनका हेलमेल देख कर कुछ लोग सन्देह करते थे कि वे भारत-सरकार के भेदिया थे। कहा जाता है कि उनके ज़रिये सरकार को भारी से भारी भेद मालूम हो जाते हैं, और इसलिए सरकार से उन्हें साल में लाखों रुपये ज़रूरी ख़र्च करने को मिलते हैं। बात निराधार थी। हेलमेल का कारण उनका सम्पत्तिशाली होना था, पर जेकब शिमले आने के बहुत पहले सुख-समृद्धि के शिखर पर पहुँच चुके थे। बल्कि उन्हें आजन्म इस बात की शिकायत रही कि हैदराबाद-वाले मामले में भारत-सरकार ने ही निज़ाम को उभाड़ा था। किसी उच्चातिउच्च पदाधिकारी से उनका किसी कारणवश वैमनस्य हो गया था, और उसने यह मौक़ा पाकर उनसे बदला लिया था। उनकी उन्नति का रहस्य किसी की समझ में न आया, और यही कारण है कि उनके सम्बन्ध में तरह तरह की अफ़वाहें उड़ती रहती थीं।

मुक़द्दमे से छुटकारा पाकर, उसकी आग में अपने धन-रत्न-समूह की आहुति देकर, जेकब बम्बई चले गये। उस समय उनकी अवस्था कितनी शोचनीय रही होगी, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। निज़ाम को उन पर बड़ी दया हो आयी, और उन्होंने ज़िन्दगी भर के लिए उनकी एक पेन्शन मुकर्रर कर दी। उसी पर जेकब ने अपना शेष जीवन बिताया।

५५ बरस की अवस्था में जेकब अपनी सम्पत्ति से हाथ धोकर और उसकी स्मृतिमात्र अपने साथ लेकर बम्बई गये थे। मरने के समय उनकी अवस्था ७१ बरस की थी। उनके ये १६ बरस बम्बई से थोड़ी दूर पर एकान्त-वास में बीते। वहाँ जो उनसे मिलने जाते थे उनका कहना था कि जेकब के स्वभाव पर इस अवस्थान्तर का कुछ भी असर न पड़ा था। वे अब भी पहले की ही तरह हँसमुख और मिलनसार थे। उस मुक़द्दमे की चर्चा चलने पर कहते कि हमारी आत्मा के विकास के लिए हमारा फिर निर्धन होना अत्यन्त आवश्यक था। अपने मित्रों से कई बार उन्होंने यह भी कहा था कि हम मृत्यु के रहस्य के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर रहे हैं और कुछ गूढ़ तत्त्वों का आविष्कार भी कर लिया है! डायरी वे इस समय भी नियमित रूप से लिखते थे और लोगों को यह आशा थी कि वह कभी प्रकाशित होगी और उससे उन आविष्कारों पर प्रकाश पड़ेगा। पर, यद्यपि उन्हें मरे तीन बरस होने आये, आज तक उस डायरी के विषय में कुछ सुनने में न आया।

जेकब के मरने पर, उनके व्यक्तित्व-विषयक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख या पत्र प्रकाशित हुए थे उनमें कुछ बड़े ही मनोरञ्जक थे। उनकी "अद्भुत शक्तियों" के सम्बन्ध में एक अँगरेज़ लेखक का अनुभव सुनने लायक़ है। उससे जेकब की पुरानी जान-पहचान थी। एक बार वह उनसे मिलने बम्बई गया। वहाँ किसी होटल में उतरा, और दूसरे दिन भाड़े की गाड़ी में बैठ जेकब के स्थान पर जा उपस्थित हुआ। जेकब ने बड़ी हार्दिकता से उसका स्वागत-सम्मान किया। घण्टों दोनों की बातें होती रहीं। जब उनके मित्र ने चलने की इच्छा प्रकट की तब जेकब ने कहा, अपनी आँखें बन्द कर लो। उसने आँखें बन्द कर लीं। फिर उसे किसी की आवाज़ सुन पड़ी कि आँखें खोलो! जो खोलता है तो देखता है कि वह होटल में अपने कमरे में बैठा हुआ है और गाड़ीवाला उससे भाड़ा माँग रहा है। उसने घड़ी देखी तो आने में एक मिनिट की भी देर न हुई थी! गाड़ीवाला भी हैरान था कि वह वहाँ कब और कैसे गाड़ी समेत आ गया।

अँगरेज़ी में कहते हैं कि प्रकृत जीवन की बातें कभी कभी क़िस्से-कहानी की बातों से भी कहीं अधिक आश्चर्योत्पादक होती हैं। जेकब का जीवन इस उक्ति की सत्यता का बड़ा अच्छा प्रमाण था। पर इसका क्या कारण है कि उनके उत्थान और पतन,—और पतन के बाद के जीवन से भी हैदराबाद का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध था?

पारसनाथसिंह

हमारा जीवन-सर्वस्व।

वह हमारे मुदित मानस-मानसर का हंस है,
अखिल आभामय हमारा बस वही अवतंस है।
वह हमारे हृदय-तरु का सरस सुन्दर फूल है,
सर्वथा सारे सुखों का वह हमारे मूल है॥ १॥

वह हमारी भावनाओं का विमल आदर्श है,
सब विचारों का हमारे बस वही निष्कर्ष है।
केन्द्र है वह कल्पना का प्रेम-पारावार है,
उच्च भावों का हमारे बस वही आधार है॥ २॥

वह हमारे लोचनों का ज्योति-रूप प्रकाश है,
वह हमारे चित्त का अति प्रेमपूर्ण विकाश है।
जटिल जीवन का हमारे बस वही आनन्द है,
वह हमारे उर-गगन का अति मनोहर चन्द है॥ ३॥

बस उसी की मूर्त्ति बसती है हमारे ध्यान में,
स्वर मिला रहता उसी का ही हमारे गान में।
बस उसी छविमान की छवि लोचनों में छा रही,
है हृदय-तन्त्री उसी का गुण निरन्तर गा रही॥ ४॥

उर-मरुस्थल में हमारे विमल जल-धारा वही,
विश्व-सागर में हमारा अटल ध्रुवतारा वही।
है हमारा प्राण-धन भी प्राण-सम प्यारा वही,
है सहारा भी हमारा बस निपट न्यारा वही॥ ५॥

बस उसी से तो हमारे प्रेम का सम्बन्ध है,
बस वही जीवन-सुमन का सरस सुखमय गन्ध है।
है हमें अवलम्ब उसका ध्यान ही इस लोक में,
बस वही है सान्त्वना का स्रोत हमको शोक में॥ ६॥

वह चरम सीमा हमारे है परम अनुमान की,
त्यों पराकाष्ठा वही बस है हमारे ज्ञान की।
अब अधिक कितना कहें हम है अलं कहना यही,
है अखिल सर्वस्व जीवन का हमारे बस वही॥ ७॥

गोपालशरणसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंडो-सीदियन जाति की सभ्यता।

किसी समय मध्य-एशिया के शक और हूण आदि नामक प्राचीन जातियों ने भारत पर आक्रमण कर यहां अपने कई एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये थे। इन राज्यों के राज-घरानों का सभ्यता के इतिहास में क्या स्थान है, इसका निरूपण माडर्न रिव्यू में प्रकाशित एक लेख में किया गया है। उसी का सारांश यहां दिया जाता है—

ईसाई सन् प्रारम्भ होने के पूर्व तथा पश्चात् की शताब्दियों में इंडो-सीदियन नामक कुछ विदेशी जातियों ने भारत के कुछ भागों पर आक्रमण किया था। उन्होंने यहां छोटे-बड़े कई स्वाधीन राज्य भी स्थापित कर लिये थे। सुराष्ट्र, मालवा, मथुरा और तक्षशिला में शकों का प्राधान्य स्थापित हो गया था। उत्तर-भारत के एक लम्बे चौड़े प्रदेश पर कुशन-राजवंश अधिक समय तक शासन करता रहा। प्राचीन चीनी-साहित्य से भी मालूम होता है कि शक और कुशन लोग मध्य-एशिया से भारत आये थे। परन्तु हम यह नहीं जानते कि भारत में इनके भारतीय हो जाने के पहले ये कौन थे, किस जाति के थे और कौन भाषा बोलते थे। यह जानने का भी कोई प्रयत्न कभी नहीं किया गया है कि भारतीय सभ्यता के विकास में इन विदेशी शासकों ने क्या काम किया है।

इंडो-सीदियन-सम्बन्धी भिन्न भिन्न प्रश्नों का निराकरण अनेक विद्वानों ने किया है। पिछले कई वर्षों में इन लोगों के सम्बन्ध की बहुतेरी नई बातें प्रकट हुई हैं। अतएव आधुनिक खोज के परिणामों के विषय में यहां कुछ उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा, क्योंकि इन लोगों का पूर्ण विवरण देना असम्भव है।

योरप में इंडो-सीदियन लोगों की चर्चा बहुत पहले से है। सम्भवतः प्राचीन यूनानी तथा लेटिन विद्वान् इन लोगों के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानते थे। उन्होंने लिखा है कि बैक्ट्रिया में यूनानियों के शासन की समाप्ति इन्होंने ही की थी। परन्तु इन लोगों का जो इतिहास या इनकी जातियों का जो विवरण उन्होंने लिखा था उनके केवल कुछ खण्डित अंश ही अब उपलब्ध हैं, अवशिष्ट नष्ट हो गये हैं।

स्ट्रैबो ने कुछ जङ्गली जातियों का उल्लेख किया है। ये जातियां उन लोगों से भी अधिक प्रसिद्ध थीं जिन्होंने यूनानियों से बैक्ट्रिया जीत लिया था। उसने इनके एशिओई, पैशिआनोई, तोखराई और शकरनलोई आदि नाम दिये हैं।

लेटिन-इतिहासकार पाम्पियस ट्रोगस सम्राट् आगस्टस के समय में जीवित था। उसने इंडो-सीदियन लोगों के इतिहास का पूर्ण विवरण लिखा था, पर अब वह नष्ट हो गया है। उसके बाद के एक लेखक ने उसकी पुस्तक के मुख्य मुख्य विषयों का उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है। इससे विदित होता है कि उसने अपने इतिहास के ४१ वें खण्ड में बैक्ट्रिया की दशा का वर्णन किया था, जहां ईसा के पूर्व तीसरी सदी में डिओडोटस ने अपना राज्य स्थापित किया था। उसने अपने वर्णन में यह भी उल्लेख किया था कि डिओडोटस को शरनकाई और एशियानी नामक उन सीदियन लोगों से किस प्रकार लड़ना पड़ा था जिन्होंने अन्त में उससे बैक्ट्रिया और सोगदिआना जीत लिया था।

स्ट्रैबो और ट्रोगस दोनों की बातें मिलती हैं, साधारणतया उनमें मतभेद नहीं है। स्ट्रैबो के एशिओई से ट्रोगस के एशियानी का मेल मिलता है और ट्रोगस के शराकाई का स्ट्रैबो के शकरनलोई से। हां स्ट्रैबो के तोखरोई लोगों के सम्बन्ध में ट्रोगस ने कुछ अधिक बातें लिखी हैं। ट्रोगस ने लिखा है कि एशियानी लोगों ने तोचरी लोगों को अपने अधीन कैसे कर लिया और शराकाई लोगों का संहार कैसे हुआ।

मध्य-एशिया की उपर्युक्त जातियों की अनेक बातों का पता चीन के इतिहास से भी बहुत कुछ मिल सकता है। चीनी इतिहास से पता लगता है कि अति प्राचीन काल में चीन के सीमावर्ती कंसू देश में ता-हिआ नाम की एक जाति निवास करती थी। कंसू देश चीनी मरुभूमि की सीमा पर स्थित था। इस जाति के सिवा एक दूसरी जाति का भी नाम चीनी इतिहास में आया है। इसका नाम यू-ची था। यू-ची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग कंसू की पश्चिमोत्तरी सीमा पर स्थित एक दूसरे भूभाग में निवास करते थे। इन दोनों जातियों में ता-हिआ लोग शान्तिप्रिय व्यवसायी थे, पर यू-ची-जाति उद्धत और युद्ध-प्रिय थी। कालान्तर में बर्बर जातियों के आक्रमणों से इन प्राचीन जातियों को अपनी निवास-भूमि को छोड़ कर भाग जाना पड़ा। इस घटना के बहुत दिन बाद इनका नाम इतिहास में फिर आया। उस समय ये लोग चीन-साम्राज्य से बहुत दूर एक दूसरे देश में निवास करते थे।

ईसा के १७६ वर्ष पूर्व हथूंग-नू नाम की एक जङ्गली जाति के राजा मोदुक ने चीन-सम्राट् को यह सूचना दी कि मैंने यू-ची तथा पड़ोस की दूसरी जातियों को जीत कर उन्हें अपने अधीन कर लिया है। कहा जाता है कि यू-ची लोग अपनी जन्म-भूमि का परित्याग कर पश्चिम ओर चले गये और तिअनशान पहाड़ के किनारे किनारे मारे मारे फिरते रहे। वहाँ एक दूसरी जाति से उनकी भेंट हो गई। इसे चीनी लोग सै-वांग अर्थात् शक-स्वामी कहते थे। इन्हीं लोगों के देश पर यू-ची लोगों ने अधिकार कर लिया। इस पर सै-वांग लोग दक्षिण की ओर चले गये और उन्होंने की-पिंग अर्थात् अफ़ग़ानिस्तान तथा पश्चिमी भारत के हिस्सों पर अपना अधिकार जमाया। जो भारतीय कथाओं में सुक-मुरुन्द के नाम से प्रसिद्ध हैं वे यही सै-वांग लोग ही थे। मुरुन्द शक शब्द मुर्त का एक पिछला रूप है। इसका अर्थ स्वामी है और चीनी वांग शब्द का भी यही अर्थ है। भारतीय शिलालेखों तथा सिक्कों में इसी शब्द के अनुवाद में स्वामिन् शब्द का प्रयोग किया गया है। शायद इस शब्द का वही अर्थ है जो ईरानी शब्द से निकले हुए क्षत्रप शब्द का है।

कुछ समय बाद ईसा के लगभग १६० वर्ष पूर्व यू-ची लोगों पर एक दूसरी जाति ने आक्रमण किया। इसका नाम यू-सन था। इस आक्रमण के कारण यू-ची लोग अपनी नई निवास-भूमि को छोड़ कर पश्चिम ओर बढ़ गये और अन्त में बैक्ट्रिया जा पहुँचे। यहाँ ता-हिआ लोग पहले से ही आबाद थे। इन्हें पराजित कर यू-ची लोगों ने बैक्ट्रिया को अपने अधीन किया।

चीनी लोग बैक्ट्रिया के ता-हिआ लोगों को अपने प्राचीन पड़ोसी कंसू देश के निवासियों से भिन्न समझते हैं। परन्तु मारकुअर्ट और फ़्रांके जैसे अर्वाचीन विद्वान् इन दोनों को एक ही मानते हैं और उनका यह मत ठीक भी है। बैक्ट्रिया के ता-हिआ लोग भी शान्ति-प्रिय व्यवसायी थे। यह बात कंसू देश के ता-हिआ लोगों के सम्बन्ध में भी कही गई है। शायद फ़्रांके का यह समझना भी ठीक है कि प्राचीन काल में चीन और योरप के बीच का सम्बन्ध ता-हिआ लोगों ने ही स्थापित किया था। क्योंकि योरप से चीन का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था।

बैक्ट्रिया के ता-हिआ लोगों को यू-ची लोगों ने अपने अधीन किया था। इस घटना का मिलान उन विवरणों से किया गया है जिन्हें यूनानी और लेटिन विद्वानों ने उन सीदियन जातियों के सम्बन्ध में लिखा था जिन्होंने बैक्ट्रिया को यूनानी शासकों से जीत लिया था। यू-ची और तोचरी एक जाति के लोग माने जाते हैं। परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि चीनियों के ता-हिआ और तोखार लोग एक ही हैं। यह मत भी ठीक है। मुसलमान लेखकों ने तोखारिस्तान के निवासियों को शान्ति-प्रिय लिखा है। इसी प्रकार चीनी लेखक भी ता-हिआ लोगों को शान्ति-प्रिय बताते हैं। यह भी कहा जाता है कि इन दोनों जातियों का कोई दृढ़ राजनीतिक सङ्गठन नहीं था। ये लोग छोटे छोटे राज्यों में बँटे थे। इनकी कोई दृढ़केन्द्र सरकार नहीं थी। इसके सिवा पुराने समय में चीनी लोगों ने तोखार शब्द को ता-हिआ बना लिया होगा। क्योंकि वे प्रायः विदेशी नामों के लिए दो चिह्नों से अधिक चिह्नों का उपयोग नहीं करते हैं। बाद को जब वे ऐसे शब्दों की रचना में अधिक सावधानी करने लगे तब उन्होंने तोखार को तु-हो-लो किया होगा।

यदि ता-हिआ लोग और लेखकों के तोचरी या तोखरोई एक ही जाति के लोग हों तो हम सम्भवतः ता-हिआ देश पर यू-ची लोगों की विजय के चीनी विवरण से ट्रोगस के कथन की तुलना कर सकेंगे। ट्रोगस ने लिखा है कि तोचरी लोग एशियानी लोगों के अधीन थे या हो गये थे। इस दशा में हम यू-ची और लेखकों की एशिओई या एशियानी जाति को एक जाति मान सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनी वृत्तान्तों से यूनानी या लेटिन खण्डित लेखांशों की तुलना यहाँ तक सम्भव है। परन्तु सीदियन लोगों की जाति के सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं बता सकते। हाँ, हमें एक दूसरी दिशा से कुछ बातें अवश्य ज्ञात हुई हैं। मध्य-एशिया की आधुनिक खोजों से अनेक बातें प्रकट हुई हैं। इनका इंडो-सीदियन लोगों की बातों से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

यह तो एक प्रसिद्ध बात है कि चीनी तुर्किस्तान में जो खोदाई और खोज हुई है उससे प्राचीन काल के नगरों और गाँवों का पता लगा है। इन नगरों और गाँवों के अस्तित्व का पता जिस भूभाग में लगा है वह इस समय बालू की मरु-भूमि से आवृत है। वहाँ मनुष्य का निवास करना असम्भव है। खोज में ऐसी अगणित बातों का पता लगा है जिनसे कहा जा सकता है कि इन स्थानों के प्राचीन निवासियों की सभ्यता उच्च कोटि की थी। यहाँ के शिल्पी और चित्रकार अपनी कला का निदर्शन योग्यता और बुद्धिमानी से करते थे। उनका साहित्य भी उन्नतावस्था को प्राप्त था। यहाँ जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनमें से अधिकांश का सम्बन्ध भारतीय सभ्यता से है और दूसरी वस्तुएँ ईरानी सभ्यता का प्रभाव व्यक्त करती हैं। परन्तु उनसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ चीनी विचारों तथा संस्थाओं का पूर्ण प्रभाव था। इसके सिवा ईसाई जातियाँ भी वहाँ बहुत पहले फूली-फली थीं, इस बात के भी प्रमाण मिले हैं।

चीनी तुर्किस्तान की खोज की खोदाई में जो प्राचीन वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं उनमें हस्तलिखित प्रतियों तथा उनके खण्डितांशों की संख्या बहुत अधिक है। हमें यह जान कर आश्चर्य न करना चाहिए कि किसी समय मध्य-एशिया के इस भाग में भी संस्कृत का प्रचार था, क्योंकि खोज में जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनसे इस कथन की सत्यता विदित हो जाती है। संस्कृत के कई एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ, जो भारत में लुप्तप्राय थे, इस मरुभूमि से खोज निकाले गये हैं। यहाँ ये अब तक आश्चर्यजनक रीति से सुरक्षित पड़े रहे। जो प्राचीनतम हस्त-लिखित संस्कृत-ग्रन्थ अब तक उपलब्ध हुए हैं वे सब तुर्किस्तान में ही मिले हैं। संस्कृत के सिवा हमें एक प्रान्तिक भाषा का भी पता मिलता है। यह पश्चिमोत्तर भारत में बोली जाती थी। यह भारतीय भाषा थी और ईसाई सन् की प्रारम्भिक सदियों में चीनी तुर्किस्तान की राज-भाषा के रूप में उसके दक्षिण भाग में व्यवहृत होती थी। मध्य-एशिया की सभ्यता पर भारत का कितना अधिक प्रभाव था, यह इस बात से भी जाना जा सकता है।

हमें उपर्युक्त खोज में चीनी, तिब्बती, तुर्की पुरानी फ़ारसी के प्रचलित होने के समय की भाषाओं में लिखी गई अगणित खण्डित पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। जिस भूभाग में खोज हुई है वह चीन, तिब्बत, भारत और फ़ारस के बीच में स्थित है। इस समय वहाँ तुर्क-जातियाँ निवास करती हैं। अपने इतिहास के प्रारम्भ-काल से ही ये वहाँ निवास करती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण इस देश का महत्त्व बढ़ गया था, इस सम्बन्ध की बातों का भी आभास खोज से मिलता है। वहाँ ऐसे भी हस्त-लिखित ग्रन्थ और पत्र प्राप्त हुए हैं जो किसी अपूर्व भाषा में हैं। अभी तक इन्हें कोई नहीं पढ़ सका है। निस्सन्देह पूर्वोक्त भारतीय भाषा को पदच्युत कर उसका स्थान इसी भाषा ने ग्रहण किया होगा। सारांश यह कि ये बोलियाँ किसी समय पूर्वी तुर्किस्तान की जातीय भाषायें रही होंगी।

प्रारम्भ में उपर्युक्त पुस्तकों का अर्थ समझने तथा अनुवाद करने में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। धीरे धीरे वे पढ़ ली गईं और उनका साधारण मतलब समझ में आ गया। इनसे ऐसी दो नई भाषाओं का पता लगा जिनमें से एक तो स्पष्ट रूप से तुर्किस्तान के पूर्वोत्तरी भाग में बोली जाती थी और दूसरी का प्रचार उसके सम्पूर्ण दक्षिण-भाग में मालूम पड़ता है। ये दोनों इंडो-योरपियन भाषायें हैं।

इंडो-योरपियन भाषाओं में पूर्वोक्त पूर्वोत्तरी भाषा का अपना स्वतन्त्र स्थान है। इसके साथ ही वह कुछ बातों में केल्टो-इटालियन बोली से भी मिलती-जुलती है। स्वीडन के प्रसिद्ध विद्वान् कारपेंटिस ने तो यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि वह प्राचीन केल्टिक जाति की भाषा है। परन्तु उनका कथन ठीक नहीं जँचता। यह तो हम जानते ही हैं कि उस भाषा का नामकरण कैसे हुआ। यूगर्स ने उसे तोखी कहा है अर्थात् तोखारी लोगों की भाषा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोखारी। हस्तलिखित पुस्तकों में उसका नाम आर्शी दिया गया है। यह आर्शी शब्द स्ट्रैबो के एशिओई और ट्रोगस के एशियानी से मिलता है। अतएव हमें उस भाषा का पता लग गया जिसे तोखारी लोग बोलते थे और वह इंडो-योरपियन बोली थी।

उपर्युक्त दक्षिणी भाषा एक ईरानी बोली है। इसका सम्बन्ध मध्य-युग की ईरानी से है और विशेष कर उस बोली से जिससे पामीर की आधुनिक बोलियाँ निकली हैं। इसके नाम भिन्न भिन्न रीति से रक्खे गये हैं, जैसे उत्तरी आर्य-भाषा, पूर्वी ईरानी और खोटानी अर्थात् खोटान के ओसिस की भाषा। परन्तु इनमें एक नाम भी उपयुक्त नहीं है। उत्तरी आर्य-भाषा कहने से यह बोध होता है कि वह ईरानी नहीं है। पूर्वी ईरानी से अवस्ता की भाषा का भी सङ्केत होता है। खोटानी नाम भी ठीक नहीं है, क्योंकि वह भाषा खोटान के ओसिस के बाहर बहुत विस्तृत देश में बोली जाती थी। परन्तु यह बात हमारे लिए अधिक महत्त्व की नहीं है कि इनमें हमें कौन नाम पसन्द करना चाहिए।

पूर्वी तुर्किस्तान में जो प्राचीन साहित्यिक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनसे विदित होता है कि जिस जाति को यूनानी तथा लेटिन लेखकों ने तोखरोई या तोचरी लिखा है वह इंडो-योरपियन बोली बोलती थी। अतएव वे सम्भवतः इंडो-योरपियन जाति के लोग थे। जो ता-हिआ तोखरोई लोग थे वे किसी समय मध्य-एशिया की मरुभूमि की सीमा पर कानेन-प्रदेश में निवास करते थे। चीनी यात्री ह्वेंसांग प्राचीन तो-हो-लो प्रदेश अर्थात् तोखारी लोगों की प्राचीन आवास-भूमि को कोनिया और चर्चिन के बीच तकला मकां नामक मरुभूमि के दक्षिणी सीमा पर स्थित बताता है। यह भी विदित होता है कि इस प्रदेश के दक्षिण में तोखारी लोगों को खदेड़ कर एक दूसरी जाति आबाद हो गई थी। ये लोग ईरानी बोली बोलते थे। हमारी राय में इस जाति का एक वंश तोखारी लोगों पर शासन करने को आया था और उसी ने इन्हें देश छोड़ने को बाध्य किया था। यही ईरानी शासक स्ट्रैबो और ट्रोगस के एशिओई या एशियानी लोग थे। इनकी पदवी या नाम तोखारी ग्रन्थों में आर्शी दिया हुआ है। यह कथन ठीक ही है कि आर्शी शब्द से तोखारी भाषा का ही मतलब है और दक्षिण की उस ईरानी जाति की बोली से नहीं है जिसे हम एशिओई के नाम से जानते हैं। फलतः हमें यह बात मान लेनी पड़ेगी कि असल में एशिओई या एशियानी लोग तोखारी ही थे। हमारी राय में यह हाल वैसा ही है जैसा कि आधुनिक फ्रांस और रूस का है। फ्रेंच जर्मन लोगों की बोली नहीं है। उन्होंने अपनी बोली का भी नाम जर्मन रख दिया है और रूसी भाषा भी स्वीडन की बोली नहीं है, यद्यपि प्राचीन रूसी स्वीडन-लोग ही थे।

जिन कारणों से हम उपर्युक्त परिणाम पर पहुँचे हैं उनमें से मुख्य मुख्य कारणों का उल्लेख आगे किया जाता है।

हम जानते हैं कि जब बैक्ट्रिया की ता-हिआ जाति पर यू-ची लोगों का आधिपत्य हो गया तब इसके बाद के भारतीय इतिहास पर इस घटना का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। बैक्ट्रिया की एक जाति ने, जिसे चीनी लोग कूई-स्वांग कहते हैं, दूसरी जातियों को जीत कर दिग्विजय का कार्य प्रारम्भ कर दिया। फलतः भारत और अफ़-ग़ानिस्तान में एक नये साम्राज्य की स्थापना हुई। भारत में इसके सम्राट् कुशन नाम से प्रसिद्ध हुए। कुशन शब्द को ही चीनियों ने कूई-स्वांग बना लिया है। कुशन-राजवंश का शासन उत्तरी भारत में चौथी सदी तक विद्यमान था। यहां यह राज-वंश शकों का उत्तराधिकारी हुआ और उनके प्रारम्भ किये हुए कार्य को इसने जारी रक्खा।

कुशन-शासकों में से कुछ ने अपने सिक्कों पर उस भाषा का प्रयोग किया है जो दक्षिणी तुर्किस्तान की ईरानी बोली से मिलती है। इसके सिवा तुर्किस्तान के इस भाग में वे राजकीय पदवियाँ भी प्रचलित थीं जिनका उपयोग कुशन-शासकों ने किया है, यहाँ तक कि स्वयं कुशन शब्द भी वहीं का है। बैक्ट्रिया के जिन तोखारी लोगों ने भारत को जीता था वे उसी ईरानी जाति के नेता थे जो किसी समय दक्षिणी तुर्किस्तान में निवास करती थी। भिन्न भिन्न कारणों से मैं इनको चीनियों के यू-ची लोग समझता हूँ। ऐसा परिणाम क्यों न निकाला जाय, इसका कोई समुचित कारण मुझे नहीं देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता। यदि भारत को तोखारी-जाति के ही नेताओं ने जीता था तो यह बात हमारी समझ में नहीं आती है कि उन्होंने अपनी भाषा को छोड़ कर दक्षिणी तुर्किस्तान की ईरानी बोली का उपयोग अपने सिक्कों पर क्यों किया था। इसके सिवा तोखारी लोगों के सम्बन्ध में जो बातें हमें मालूम होती हैं उनसे यही प्रकट होता है कि वे केवल सीधे-सादे व्यापारी थे और दिग्विजय जैसे सैनिक-कार्य करने को वे सर्वथा असमर्थ थे। तोखारी लोगों का उल्लेख भारतीय साहित्य में हुआ है। इनका भारतीय नाम तुखार है। भारतीयों ने इस शब्द का प्रयोग कुशन लोगों के सम्बन्ध में कभी नहीं किया है। हाँ, कभी कभी इसके प्रयोग के साथ इस बात का जिक्र आ गया है कि तुखार लोग व्यवसायी थे और भारत में चीन से रेशम लाया करते थे। कहीं कहीं इस शब्द का प्रयोग तोखारिस्तान के तुर्कों के लिए भी किया गया है।

जहाँ तक हम निश्चय कर सकते हैं, विशेष कर चीनी प्रमाणों के आधार पर, वहाँ तक हम यही कह सकते हैं कि इतिहास में तोखारी लोगों का स्थान व्यवसाय-क्षेत्र तक ही परिमित है। व्यापारियों और व्यवसायियों के रूप में वे जिन भिन्न भिन्न राष्ट्रों से व्यवसाय करते थे उनके बीच वे एक दूसरे के विचारों तथा सभ्यता के आदान-प्रदान के साधन थे। बलशाली ईरानी-राजाओं की अधीनता में हो जाने के कारण वे भी इनके साथ भारत तथा उसके सीमावर्ती देशों में आये थे।

अतएव भारत तथा भारतीय सीमावर्ती देशों के इंडो-सीदियन शासक सम्भवतः ईरानी थे। हम कुशन लोगों को ईरानी सिद्ध कर लेंगे। ऐसा ही शकों के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है, क्योंकि उनकी भाषा कुशन लोगों की भाषा से बहुत मिलती है। पर यह कोई प्रमाण नहीं है। शकों और कुशन लोगों के नेतृत्व में जिन जाति-समूहों ने भारत पर आक्रमण किया था वे सम्भवतः एक जाति के लोग नहीं थे। उनमें विभिन्न जातियों के लोग थे। परन्तु सीदियन लोगों की भारत-विजय सरलता-पूर्वक ईरानी विजय कही जा सकती है।

उपर्युक्त ईरानी विजेताओं ने सभ्यता के इतिहास में जो काम किया है उसका बहिरङ्ग ही अब हमें देखने को मिल सकता है। उन्होंने अपनी सभ्यता का विकास किया था, यह बात नहीं मालूम होती है। जिन भिन्न जातियों से उनका सम्बन्ध हुआ था उन्हीं की सभ्यता को उन्होंने स्वच्छन्द रीति से अपना लिया था। अर के सिद्ध शिलालेख में एक कुशन-नरेश ने चीनी पदवी 'देवपुत्र', फ़ारसी पदवी 'राजातिराज' और रोमन पदवी 'कैसर' धारण की है। इससे विदेशी सभ्यताओं के प्रति उनके साधारण भाव का ख़ासा पता लगता है। परन्तु सबसे अधिक प्रभाव उन पर भारतीय सभ्यता का पड़ा है। यही हाल उन सभी दूसरी विदेशी जातियों का हुआ है जो प्राचीन भारत में आईं, चाहे वे ईरानी, यूनानी या जर्मन जातियाँ क्यों न रही हों। जो तोचरी व्यापारी इंडो-सीदियन लोगों के शासन में रहते थे वही लोग शायद विदेशी सभ्यताओं के इस सम्मिश्रण के साधन बने हों। परन्तु निश्चित रूप से कोई परिणाम निकालना असम्भव है। पर यह बात कही जा सकती है कि भारतीय इतिहास में इंडोसीदियन-काल उन्नति का काल रहा है।

मध्य-भारत में शक-शासक उज्जैन में निवास करते थे। जिन मुख्य मुख्य स्थानों से यूनानी विज्ञान और यूनानी विचार भारत में फैलते थे उनमें एक उज्जैन भी है। यहीं भारतीय ज्योतिषियों ने यूनानी ज्योतिष सुसंस्कृत करके उसे वैज्ञानिक भारतीय ज्योतिष के रूप में विकसित किया था।

उधर उत्तर में सीदियन शासकों ने यूनानी राजाओं द्वारा भारत में यूनानी शिल्प प्रचलित करने के प्रारम्भ किये हुए कार्य को उठा लिया था। यह प्रसिद्ध बात है कि यूनानी कला और भारतीय विचारों के सम्मिश्रण का प्रभाव एशिया के शिल्प की उन्नति पर बहुत अधिक पड़ा है। परन्तु भारत ने जो बातें योरप से ग्रहण की हैं उन सबमें यह बात देख पड़ती है कि उनकी आत्मा भारतीय है, यहाँ तक कि उन बातों में भी जो प्रत्यक्ष रूप से यूनानी कला के प्रत्यक्ष प्रदर्शन हैं। यूनानी प्रभाव के पड़ने से परम्परा से प्रचलित कुछ सङ्कुचित विचार दूर हो गये और विकास का रूप अधिक उदार और स्वच्छ हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी बातों में भी यह देख पड़ना सम्भव है कि इंडो-सीदियन-काल में परम्परागत बन्धनों को ढीला करने तथा शिक्षित समाज को आगे बढ़ानेवाले भावों का आदान-प्रदान ही एकमात्र साधन रहा है। बौद्धिक जीवन एक पक्षीय नहीं रह गया, वह अधिक उन्नत हो गया। यह केवल संयोग की बात नहीं है कि प्राचीनतम भारतीय महाकाव्य का रचयिता प्रसिद्ध अश्वघोष कुशन राजाओं में से एक अत्यन्त प्रसिद्ध राजा का राज-कवि था। नाटककारों में भी अश्वघोष का ही नाम प्राचीनतम है और सम्भवतः उच्चकोटि के नाटक देश के उसी भाग में अस्तित्व में आये जहां इंडो-सीदियन शासकों का राज्य था। इनमें निम्नश्रेणी के लोगों का लोकप्रिय प्रदर्शन किया जाता था। उच्च साहित्य के क्षेत्र में इनकी गणना हो गई थी। बिना किसी बड़े आन्दोलन के ऐसा होना कभी नहीं सम्भव था। और यह आन्दोलन इंडो-सीदियन-शासन-काल में विदेशियों के सम्मिश्रण से हुआ था। जिस बौद्धिक आन्दोलन ने इंडो-सीदियन-शासन-काल में कविता को धर्म के बन्धन से मुक्त कर दिया था उसके बिना भास और कालिदास जैसे कवियों को साहित्यिक संस्कृत में अपने अमर काव्य रचने का सौभाग्य प्राप्त होता, इस बात में सन्देह है।

विदेशियों के संसर्ग से भारतीय सभ्यता का विकास होता गया और कुछ सदियों के बाद विदेशी प्रभाव के प्रत्येक चिह्न लुप्त हो गये। परन्तु उसकी दृष्टि विस्तृत और स्वाधीन अवश्य हो गई। इंडो-सीदियन लोगों का शासन व्यर्थ नहीं गया। उसने इस उन्नति को पुरस्सर किया।

इंडो-सीदियन लोग स्वयं भारतीय हो गये। अपनी भारतीय प्रजा की भांति उन्होंने सोचना और समझना सीखा। प्रसिद्ध कुशन-राज कनिष्क भारतीय बौद्धधर्म का बड़ा भारी संरक्षक था। अपने आपको भारतीय विचारों और भावों के अनुरूप बनाने के लिए इंडो-सीदियन लोग मध्य-एशिया की अपनी आवास-भूमि में सभ्यता फैलाने के साधन बने थे। तुर्किस्तान से सम्बन्ध-भङ्ग नहीं किया गया था। यही नहीं, किन्तु शक्तिशाली भारतीय राजाओं से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए शीघ्र ही सुदूर चीन से प्रयत्न किये गये थे।

अतएव सीदियन विजेताओं का धर्म बौद्धधर्म था। वह उनके दरबार से चीनी तुर्किस्तान और उसके आगे चीन में बहुत पहले ही प्रचलित हुआ था। सम्पूर्ण पूर्वी तुर्किस्तान अधिक समय तक बौद्ध-धर्म का अनुयायी बना रहा और बौद्ध-धर्म की प्रथम सूचना चीन में ईसा के समय के ही लगभग पहुँची थी। भारतीय बौद्धों ने चीन की सभ्यता पर जो बहुत अधिक प्रभाव डाला है उसके सम्बन्ध में यहां कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। वे बातें बहुत प्रसिद्ध हैं। हमें केवल यही याद रखना चाहिए कि पूर्व में बौद्ध-धर्म का आन्दोलन इंडो-सीदियन लोगों के द्वारा ही हुआ था।

बौद्ध-धर्म के उदय-काल में भारतीय विचार और भारतीय संस्थायें चीनी तुर्किस्तान में जा पहुँची थीं। एक भारतीय भाषा वहां की राज-भाषा तक हो गई थी। भारतीय राजनीतिक ढङ्ग चीनी विचारों से मिल कर एक ऐसी पद्धति में परिणत हो गये थे जिससे दूर देश का शासन पूर्णरूप से सुन्दरता के साथ किया जा सकता था।

बौद्ध-विहारों में साहित्य और बौद्धिक खोज के कार्य समुन्नत थे। ललित कलायें भी विकसित हो गई थीं। मध्य-एशिया की सभ्यता की जो उन्नति बौद्ध-काल में हुई थी वैसी कभी नहीं हुई है। पड़ोसी देशों में, गमनागमन का मार्ग सुरक्षित था, अतएव व्यापार की वृद्धि हुई। प्राच्य और पाश्चात्य सभ्यतायें परस्पर मिल सकीं और अपना अपना प्रभाव डाल सकीं। अनेक बातों की उन्नति का रूप व्यक्त करने के लिए हमारे पास पर्याप्त साधन नहीं हैं, परन्तु उस बौद्धिक उन्नति की प्रशंसा करने के लिए हमारे पास काफ़ी प्रमाण हैं जो इंडो-सीदियन लोगों की प्राचीन आवास-भूमि में प्रकट हुई थी।

बौद्ध-धर्म के द्वारा यूनानी भारतीय शिल्प मध्य-एशिया में और उसके आगे चीन में पहुँचा, जहां बौद्ध-भिक्षुओं ने उसके लिए पहले से ही मार्ग परिष्कृत कर रक्खा था। चीनी तुर्किस्तान में बौद्ध-कला के बहुत अधिक चिह्न प्रकाश में आये हैं। प्रत्येक वस्तु से यह बात सूचित होती है कि बौद्ध-धर्म के प्रचलित हो जाने से वहां भारतीय सभ्यता का प्रभाव पड़ा, जिससे सुन्दर शिल्प का प्रचार हुआ। इस शिल्प की बारीक बातों से अब भी यूनानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रकारों और शिल्पियों के प्रभाव की सूचना मिलती है। परन्तु इनकी सजीवता भारतीय प्रभाव का ही द्योतन करती है। चीनी कारीगरी भी अपना प्रभाव क्रमशः डालती रही है, पर भारतीय छाप बिलकुल ही मिट नहीं गई है।

इंडो-सीदियन लोगों के बीच में पड़े बिना ललित कलाओं का यह विकास सम्भव नहीं था। कला-विद लोग तो इस कथन के भी आगे बढ़ गये हैं। वे कहते हैं कि तांग-काल का समुन्नत चीनी शिल्प इंडो-ग्रीक शिल्प का ऋणी है। इसे इंडो-सीदियन लोग मध्य-एशिया के ओसिसों में ले गये थे।

ऐसे भी चिह्न उपलब्ध हुए हैं जो यह प्रकट करते हैं कि जो बौद्ध-कला इंडो-सीदियन-काल में प्रचलित हुई थी उसने योरप में कला-सम्बन्धी विकास पर अपना प्रभाव डाला है। तुर्किस्तान में भारत, ईरान और चीन की सभ्यताओं से प्राचीन ईसाई-समाजों का संयोग हुआ था। अतएव वह विचारों और आदर्शों के पारस्परिक परिवर्तन के लिए एक विस्तृत क्षेत्र था। परन्तु हम अभी यह निश्चित करने की स्थिति तक नहीं पहुँचे हैं कि पूर्वी तुर्किस्तान ने योरप में एशियाई विशेष कर भारतीय ग्राम्य कथाओं के फैलाने में कहाँ तक कार्य किया है। हम जानते हैं कि अगणित लोकप्रिय भारतीय कहानियाँ योरप के प्रत्येक कोने में जा पहुँची हैं। उनमें से कुछ साहित्य के द्वारा गई हैं और यह तो सभी जानते हैं कि इन कहानियों का एक बड़ा भारी भारतीय सङ्ग्रह एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद होता हुआ जा पहुँचा है। उनमें से अधिकांश एक दूसरे की ज़बानी सुन कर चली गईं और अब वे योरप के प्रत्येक देश में जातीय कहानियों के रूप में कही और सुनी जाती हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि मध्य-एशिया से होकर जो व्यापार होता था वही इन कहानियों के फैलाने का साधन था यही हाल योरपीय स्थापत्य, लकड़ी की कारीगरी, कपड़ा-बुनाने आदि की कला और सौन्दर्य का भी समझना चाहिए। ये अपना उत्पत्ति-स्थान एशिया को ही इङ्गित करते हैं। यह बात तो प्रायः निश्चित है कि ईसाई-कला कुछ हद तक मध्य-एशियाई बौद्ध-कला का ऋणी है।

ईसाई सन् की पूर्ववर्ती पिछली सदियों में मध्य-एशिया में नई जातियों का बड़ा भारी आगमन हुआ था और उसका क्रम आगे की कुछ सदियों तक जारी रहा। इस घटना का परिणाम-स्वरूप कई प्राचीन जातियों को देश छोड़ कर भागना पड़ा और महत्त्व-पूर्ण राजनीतिक परिवर्तन हुए। मध्य-एशियाई जातियाँ भारतीय सीमावर्ती प्रदेशों में आकर बस गईं और उन्होंने वहाँ तथा स्वयं भारत में भी अपने राज्य तथा साम्राज्य स्थापित किये। यद्यपि वे भारत में भारतीय सभ्यता के वशीभूत हो गईं, तथापि ईरान, यूनान और चीन के प्रभाव भी उन पर पड़े। अतएव वे लोग इन भिन्न भिन्न सभ्यताओं का परस्पर संयोग स्थापित करने के साधन हुए। इस प्रकार उनका नवीन भारतीय देश पहले की अपेक्षा विदेशों के सम्बन्ध में अधिक आ गया। नवीन विचारों के फैल जाने से बौद्धिक प्रगति का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया और परम्परा की रूढ़ियों के बन्धन टूट गये। सर्व साधारण की बौद्धिक और शिल्पीय प्रगति ने ऊँचे दर्जे की सभ्यता की स्थिति को प्राप्त कर लिया। विकास की गति अधिक स्वच्छन्द और वेगवती हो गई।

मध्य-एशिया के उपर्युक्त आक्रमणकारी धीरे धीरे बलशाली शासक हो गये। इन्होंने अपनी प्राचीन आवास भूमि तथा चीन-साम्राज्य पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। इस प्रकार भारतीय विचार एवं नवीन भारतीय शिल्प मध्य तथा पूर्वी एशिया में फैला और वहाँ उसने बौद्धिक विकास को पुरस्सर किया।

सीदियन जातियों का मानव-सभ्यता के इतिहास में अपना स्थान अलग है। यद्यपि इन्होंने अपने निज विचारों या बौद्धिक प्रगति के द्वारा अपनी प्रतिभा का परिचय नहीं दिया है, तथापि भिन्न भिन्न एशियाई देशों तथा एशिया और योरप के बीच पारस्परिक भाव-परिवर्तन का सुयोग उपस्थित किया और ऊँची सभ्यता के प्रसार के लिए एक नवीन क्षेत्र की सृष्टि की। कोई जाति केवल अपने ही स्वतन्त्र कार्य से मानव-जाति की उन्नति नहीं कर सकती है। मानव-उन्नति उन लोगों की भी ऋणी है जो दूसरी जातियों द्वारा विकसित की गई सभ्यता का प्रसार करते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति से दूसरी जाति को नये विचारों तथा नवीन संस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कराते रहते हैं। संसार के इतिहास में इंडो-सीदियन लोगों का यही मिशन रहा है।

ये प्राचीन राजे तथा सरदार किस जाति के थे, इस बात का कोई महत्त्व नहीं है। उनका महत्त्व एक ही है, चाहे वे सेमिटिक हों, मंगोल हों या इंडो-योरपीय हों। परन्तु यह हमारे लिए प्रसन्नता की बात अवश्य है कि इंडो-सीदियन लोग उसी जाति में उत्पन्न हुए हैं जिससे अधिकांश योरपीय जातियां, भारतीयों और ईरानियों की उत्पत्ति हैं। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मानव-जाति की उन्नति सेमिटिक और हेमिटिक जातियों का बहुत ऋणी है। परन्तु इस उन्नति में इंडो-योरपियन लोगों का भी बहुत बड़ा भाग है। जिसकी प्राचीन सभ्यता का स्वागत सदा प्रशंसा-पूर्वक रहा है, जिसका वह पात्र है, उस भारत के लिए तथा ईरान के भी लिए, जिसके बलशाली शासकों ने ईरानी रङ्ग-ढङ्गों को समग्र प्राचीन संसार में आदरणीय किया था, उपर्युक्त बात कही जा सकती है। हिटिटीज़ इंडो-योरपियन थे, यह बात हम नहीं जानते। परन्तु वे निरसन्देह आर्यों की संस्थाओं तथा उनके विचारों से थोड़ा बहुत परिचित थे। जिन देशों की सभ्यता को हम सेमिटिक सभ्यता कहने के अभ्यस्त हो गये हैं वहां के प्राचीन इतिहास में भी हम आर्य देवताओं और आर्य वीरों का उल्लेख बार बार पाते हैं। अब मध्य-एशिया की खोदाई से यह प्रकट हुआ है कि संसार की बौद्धिक तथा शिल्पीय समुन्नति को पुरस्सर करने के काम में पिछले समयों में इंडो-योरपियन जातियों ने भी बहुत कुछ भाग लिया था।

रमाशङ्कर उपाध्याय

रायसाहब गोविन्दललाजी पुरोहित, पुष्करणेन्दु ।

प्राचीन भारत के ऋषि-मुनि ग्रन्थकारों ने साहित्य में चरित्र का स्थान बहुत ऊँचा रक्खा है। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र-लेखक मुनिपुङ्गव वाल्मीकिजी ने यह बहुत ही यथार्थ लिखा है कि रघुकुल-कमल-दिवाकर श्रीरामजी के चरित्र का एक एक अक्षर उसके पाठक का महदुपकार करने को समर्थ है। उपन्यास और नाटकों के पारायण से उतना लाभ होने की सम्भावना नहीं रहती जितना एक सच्चरित्र सज्जन के चरित्र-पाठ से रहती है। उक्त साहित्य-विभाग के लेखकों को अधिकार रहता है कि वे अपनी कृति को अपनी कल्पना-शक्ति की पटुता के अनुसार सुसज्जित कर सकते हैं, किन्तु चरित्र-लेखक को यह अधिकार नहीं है। उसे तो चरित्र-नायक के जीवन की घटनाओं का यथार्थ उल्लेख कर देने भर का अधिकार रहता है। चरित्रवान् पुरुषों के यथार्थ चरित्र का पाठ, पाठकों के चरित्र-सङ्गठन में बहुत कुछ सहायक और शिक्षाप्रद हो सकता है। आजकल हमारे यहां के बहुत से धनी पुरुष लाख के घर को खाख में मिला देते हैं। इसका एक-मात्र नहीं तो प्रधान कारण यही है कि वे अपने उन पूर्व पुरुषों के यथार्थ चरित्रों को नहीं जानते कि उन्होंने किस उद्योग, किस परिश्रम, किस अध्यवसाय और योग्यता के साथ धन-सम्पत्ति एकत्र कर अपने उत्तराधिकारी को सुखी रखने का यत्न किया था। जो समझदार धनाढ्य होते हैं वे अपनी धन-सम्पत्ति के साथ अपनी जीवनचर्य्या का वृत्तान्त भी अपने उत्तराधिकारियों को दे जाते हैं, जिससे उन्हें बहुत लाभ पहुँचता रहता है। रायसाहब गोविन्दलालजी पुरोहित अपने पुत्रों के लिए अपने पूर्वजों के चरित्र का संक्षिप्त वर्णन छोड़ गये हैं। उसी के आधार पर यहां उनके जीवन की दो एक प्रधान प्रधान घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।

पुरोहितजी के पूर्व पुरुष उदयपुर-राज्य के निवासी थे। जब बीकाजी ने बीकानेर बसाने के लिए आस-पास के राज्यों के लोगों को वहां बसने के लिए आमन्त्रित किया तब पुरोहितजी के पूर्व पुरुष भी बीकानेर में जाकर बस गये। वे अपनी पुरोहित खांप के अनुसार पुरोहिती कर्म्म किया करते थे। भारत के ब्राह्मणों की विद्या-प्रियता एक समय इतनी चढ़ी-बढ़ी थी कि 'ब्राह्मणस्य धनं तात सद्विद्या साधुसङ्गमः' रोज़ की बोल-चाल की कहावत हो गई थी। संसार का यह अनिवार्य्य नियम है कि जो बढ़ता है वह घटता भी है। इस नियमानुसार ब्राह्मणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में 'ब्राह्मण का धन केवल शिक्षा' के स्थान में 'ब्राह्मण का धन केवल भिक्षा' का प्रचार होने लग गया। परिणाम यह हुआ कि जो ब्राह्मण अपनी विद्या तथा तप के बल से बड़े बड़े चक्रवर्ती लोगों से अपना आदर-सत्कार कराते थे उनकी सन्तान केवल भिक्षुक मानी जाने लगी। इस दुरवस्था की ओर पुरोहितजी के पूर्व पुरुष जगमनदासजी का ध्यान उनकी बाल्यावस्था में ही गया। उनके पिता लछमनदासजी चाहते थे कि वे अपने पुत्र को पुरोहिती की शिक्षा देकर उसे उस विद्या का चूडान्त पण्डित बना दें। पर बालक जगमनदास चाहता था कि जिस विद्या को पढ़ कर भिक्षुक के अनादर को सहना पड़ता है उसे सीख कर उसके स्थान में उस विद्या को सीखना चाहिए जिसकी कृपा से लोग बड़ी बड़ी कोठियों के मुनीम और स्वामी बन सकते हैं। यह भावना बालक जगमनदास के मन में उत्तरोत्तर दृढ़ होती गई। उसी समय उसके पिता का देहावसान हो गया। अब उसकी माता को यह चिन्ता हुई कि मेरा ज्येष्ठ पुत्र कब पुरोहिती सीखे और उससे घर का खर्च चलाने योग्य धन कमाने लगे। अतः वह जगमनदास की पढ़ाई की ओर बहुत ध्यान देने लगी। इधर उसका मन पुरोहिती पढ़ने में नहीं लगता था। एक दिन उसने अपनी माता से अपने मन की बात स्पष्टरूप से कह दी। उसे सुन माता को अपरिमित दुःख हुआ। क्योंकि जिस वाणिज्य-व्यवसाय तथा खाता-बही की विद्या को जगमनदास सीखना चाहता था उसकी शिक्षा देनेवाली न तो उस समय पाठशालायें ही थीं और न कोई प्रकृति-सुलभ उदार ब्राह्मण ही उस विद्या को जानता था। उस समय जिन वैश्यों के हाथ में वह विद्या थी वे उसे ब्राह्मणों को देना नहीं चाहते थे। इस परिस्थिति को देख माता का अधिकाधिक चिन्तित होना स्वाभाविक ही था। क्रोधवश माता कभी कभी भला-बुरा बहुत कुछ कह भी डालती थी, पर बालक जगमनदास के मन की लगन उससे शिथिल नहीं होने पाती थी, किन्तु वह और अधिक बढ़ती जाती थी। मन की लगन कार्य्य-सिद्धि की कुञ्जी हुआ करती है। यह बात तब बालक जगमनदास को भले ही न मालूम रही हो, पर उसका फल उसे अवश्य मिला।

जगमनदास की माता एक बड़े पीयूषपाणि वैद्य की बेटी थी। पिता के सत्समागम के कारण उसे बालकों की चिकित्सा का ख़ासा ज्ञान हो गया था। एक दिन बीकानेर के एक बड़े भारी धनी का एक बालक बहुत बीमार हो गया। वह जगमनदास की माता की चिकित्सा से अच्छा हो गया। उस धनी ने पुरस्कार-स्वरूप बहुत सा धन देकर उसे सन्तुष्ट करना चाहा। पर माता ने उस धन के बदले में यह चाहा कि वे उसके पुत्र जगमनदास को वाणिज्य-व्यवसाय और खाता-बही की शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध कर दें। उपकार बुरे से बुरे मनुष्य को भी दबा देता है। उस सेठ को जगमनदास की माता की प्रार्थना स्वीकृत करने के लिए बाध्य होकर, उसे अपनी जयपुर की कोठी पर तदर्थ भेजना ही पड़ा। सेठजी की चिट्ठी लेकर बालक जगमनदास जयपुर तक तो पहुँच गया। पर उस कोठी के प्रधान मुनीम को क्या मालूम था कि उसके मालिक जगमनदास की माता के कितने उपकृत हैं। वह उसके साथ यों ही मामूली बर्ताव किया करता था। भवितव्यतावश वह मुनीम एक ऐसे दूषित रोग से पीड़ित हुआ और उसके मल-मूत्र में इतनी तीव्र दुर्गन्ध उत्पन्न हो गई कि उसके प्यारे से प्यारे लोग भी उसके पास एक क्षण के लिए भी नहीं ठहर सकते थे। ऐसी अवस्था में उसकी सेवा के लिए उसके पास बालक जगमनदास के सिवा अन्य कोई नहीं देख पड़ता था। जगमनदास की इस सेवा का प्रभाव मुनीम के चित्त पर बहुत प्रबल पड़ा। जब वह नीरोग होकर पुनः अपनी गद्दी पर बैठा तब उसने जगमनदास की सेवा से उऋण होने के अभिप्राय से उसे सोने की एक कण्ठी पहरानी चाही। उसे न लेकर होनहार बालक जगमनदास ने बड़ी नम्रता के साथ कहा कि आप मेरे गले में वाणिज्य-व्यवसाय-विषयक शिक्षा की कण्ठी को पहरा दीजिए, जिससे मेरा जीवन जगमगा उठे। जगमनदास की यह प्रार्थना उस मुनीम को लगी तो बुरी, पर जगमनदास के उपकार के बोझ ने उसे इतना दबाया कि उसे विवश हो उसकी प्रार्थना स्वीकृत करनी ही पड़ी। वह मुनीम जगमनदास को निष्कपट-भाव से वाणिज्य-व्यवसाय-कला की शिक्षा देने लगा। बालक जगमनदास की बुद्धि ने भी उसे बहुत सहायता दी। थोड़े ही समय में वह उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या का स्नातक होकर अपने घर बीकानेर लौट आया। घर आने पर उसने विसनदास और किसनदास नामक अपने दोनों छोटे भाइयों को उस विद्या की शिक्षा दी। उनके साथ उसने अपने पास-पड़ोस के अन्यान्य ब्राह्मण-कुमारों को भी उसकी शिक्षा दी और गुरु-दक्षिणा में अपने छात्रों से यह प्रतिज्ञा करा ली कि वे कम से कम एक ब्राह्मण-कुमार को उस विद्या की शिक्षा देंगे। आज-कल के बी० ए०, एम० ए० मारवाड़ी ब्राह्मण जगमनदास के उक्त उद्योग की सराहना करने में भले ही सङ्कोच करें, पर इतिहास उसके उक्त गुण की घोषणा तारस्वर से किये बिना नहीं रहेगा। जगमनदासजी, आप धन्य हैं! आपने अपने अखण्ड परिश्रम से अपनी जाति में उस विद्या का प्रचार कर दिया जो उस जाति को 'भिखमङ्गा' कहे जाने से बचाती है।

जगमनदासजी ने अपने समय की अर्थकरी और मान-सम्मानप्रद विद्या में पूर्ण प्रवीणता और दक्षता प्राप्त कर कलकत्ता, बम्बई, लाहोर, दिल्ली, मिरज़ापुर और रायपुर आदि नगरों में रह कर ख़ासा धन और मान-सम्मान प्राप्त किया। बीकानेर के तत्कालीन धनी मानी सेठ अबीरचन्दजी, जगमनदासजी की कुशाग्र बुद्धि और कार्य्य-साधन-पटुता पर मुग्ध होकर उन्हें अपने साथ कामठी ले गये थे। सेठजी ने उन्हें यथेष्ट आदर-सम्मान के साथ अपने पास बहुत दिनों तक रक्खा। जो लोग केवल धन के भक्त होते हैं उन्हें उसके सिवा दूसरे की भक्ति नहीं भाती। जगमनदासजी श्रद्धालु ब्राह्मण थे। अतः वे नित्यप्रति अपना कुछ समय ईश्वराराधन में लगाया करते थे। ज्यों ही उन्हें ज्ञात हुआ कि सेठजी को उनकी पाठ-पूजा कुछ अखरती है, त्यों ही वे उनसे अलग होकर अपने छोटे भाई किसनदासजी के पास रायपुर चले गये। रायपुर में उनके छोटे भाई किसनदासजी ने उस समय इतनी सम्पत्ति और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी कि वे महाराजा किसनदासजी के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे।

इन्हीं महाराज किसनदासजी की तृतीय सन्तति मुकुन्दलालजी की धर्म्म-पत्नी की कोख से हमारे चरित्र-नायक राय साहब पण्डित गोविन्दलालजी पुरोहित ने कार्त्तिक कृष्णचतुर्दशी संवत् १९३४ को रायपुर में जन्म ग्रहण किया। उस समय आपके पितामह और पितामही आदि गुरुजन जीवित थे। वही लोग आपका लालन-पालन किया करते थे। माता केवल दूध पिला देती थी। इसी प्रकार पिता मुकुन्दलालजी भी अपने होनहार पुत्र का गुरुजनों के परोक्ष में कभी कभी प्यार कर लेते थे। आज-कल यह प्रथा बुरी मानी जाती है, पर उस समय यह आदर की दृष्टि से देखी जाती थी।

पांच वर्ष की अवस्था हो जाने पर बालक गोविन्दलाल की शिक्षा का आरम्भ घर पर कराया गया। अपने विद्या-प्रेम के कारण आप बराबर उन्नति करते गये। आपकी छात्रावस्था की एक बात उल्लेख करने योग्य है। जब आप एंट्रेंस की कक्षा में पढ़ते थे तब आपने अपने बाल-सखाओं के परामर्श से काग़ज़, कलम, रोशनाई आदि बेंचने की एक छोटी सी दूकान खोली थी। उस दूकान की देख-भाल और लिखा-पढ़ी आप बड़ी सावधानी और दक्षता के साथ किया करते थे। उसकी सब आय निःसहाय विद्यार्थियों को दी जाती थी। यह घटना है तो साधारण, पर हमारे चरित्र-नायक के विद्याप्रेम तथा उच्चाशय का परिचय देने के लिए बहुत प्रबल है। मारवाड़ी के बालक के हृदय में इस उच्च भाव का उदय होना निःसन्देह एक अनोखी बात है!

जिस समय आप एंट्रेंस की परीक्षा देने के लिए जबलपुर आये हुए थे उसी समय आपके पितृ-देव का स्वर्गवास हो गया। जबलपुर से लौटने पर आपको पिताजी के देहावसान के समाचार रायपुर के स्टेशन पर मिले थे। उन्हें सुन आप सहसा संज्ञाशून्य हो गये थे। पिता की अन्त्येष्टि क्रिया से निवृत्त होने पर जब आपने सुना कि आपके पितृव्य बंसीलालजी तथा घर के अन्य जेठे-बड़ों ने यह निश्चित किया है कि गोविन्दलाल तो अब अपने पिता के जनरल मर्चेन्ट की दूकान को सँभालें और उनके छोटे भाई गिरधारीलाल पढ़ें तब आपके विद्या-लोलुप हृदय को बहुत पीड़ा हुई। बड़े बूढ़ों के आग्रहवश आपको पढ़ना छोड़ कर व्यवसाय में प्रविष्ट होना पड़ा।

पिता की दूकान का काम-काज सँभालते ही सर्वप्रथम जिस बात की ओर पुरोहितजी का ध्यान गया वह यह थी कि आपके पिता के सौंजिया कादरभाई बहोरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राहकों के साथ सज्जनोचित व्यवहार नहीं करते थे। यह बात अकेले कादरभाई में ही न थी। बहोरा-जाति के प्रायः सभी लोगों में ग्राहकों की उपेक्षा और अवहेलना पाई जाती है। बहोरे की दूकान पर एक बार जाकर कोई भी आत्माभिमानी सज्जन फिर दूसरी बार उसकी दूकान पर जाने की इच्छा न करेगा। पुरोहितजी को कादरभाई का व्यवहार बहुत खटका। आपने उसका सुधार आरम्भ कर दिया। आपकी दूकान पर जो ग्राहक आता उसके साथ आप इतनी मीठी मधुर और मनोहारिणी भाषा में पर्य्याप्त आदर-सत्कार के साथ बात-चीत करते और वस्तुओं का मूल्य इतना यथार्थ बता देते कि बड़े से बड़े संशयात्मा ग्राहकों को लौट कर पुरोहितजी की दूकान पर आकर अपनी अभीष्ट वस्तु को लेना पड़ता था। निःसन्देह, आपने यह बड़ा भारी सुधार किया। हमारे प्रान्त के व्यवसायी लोगों का बड़ा भारी समूह आज दिन भी उक्त सुधार की आवश्यकता और उपयुक्तता समझने के लिए अक्षम है। निःसन्देह यह बड़े दुःख की बात है। हमारे प्रान्त के प्रत्येक व्यवसायी का यही लक्ष्य रहा करता है कि उससे जहाँ तक बन सके घटिया चीज़ को अधिक से अधिक मूल्य पर ग्राहक के हाथ बेंचे। पुरोहितजी का यह लक्ष्य था कि उत्तम से उत्तम वस्तु अपनी दूकान में रक्खे जिसे देखते ही ग्राहक का चित्त तत्क्षण प्रसन्न हो जाय और उसके पश्चात् भी प्रसन्न बना रहे, और उसे इतने उचित दाम पर बेंचे कि ग्राहक समूचे बाज़ार में फिर आवे तो भी उससे कम दाम में वह वस्तु उसे कहीं न मिल सके। व्यवसायी-वृन्द में इस सुधार की बड़ी भारी आवश्यकता है। इस सुधार के कारण पुरोहितजी की आशातीत ख्याति और प्रसिद्धि थोड़े ही समय में होगई। रायपुर के सभी श्रेणी के लोग आपकी दूकान पर आने लगे और आप पर अपनी प्रसन्नता तथा कृपा प्रकट करने लगे। हमारे प्रान्त के व्यवसायी लोगों को पुरोहितजी की उक्त कृति से आवश्यक शिक्षा लेनी चाहिए। कादरभाई ने बालक गोविन्दलाल से इस दिशा में बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण की। गोसाईंजी ने बहुत ही यथार्थ लिखा है, "शठ सुधरहिं सत्संगति पाई।"

पुरोहितजी की यह उत्कट इच्छा थी कि उनके छोटे भाई गिरधारीलाल उच्च श्रेणी की शिक्षा प्राप्त कर उसके स्नातक बनें। पर उनका मन दूसरे ही मसाले का बना हुआ था। उन्हें शिक्षा से तादृश प्रेम नहीं था। जब पुरोहितजी ने इस परिस्थिति को देखा तब उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें अपने पिता के सच्चे मित्र और सौंजिया कादरभाई के अधीन कर आप उस दूकान से अलग हो गये। गिरधारीलाल ने व्यवसाय-क्षेत्र में खासा धन कमाया। मरते समय वे एक लाख रुपये का दान कर गये। उनकी धर्म्मशाला और सदावर्त्त उस दान से चल रहा है।

दूकान से अलग होते ही राय बहादुर बंसीलालजी अबीरचन्दजी की रायपुर की कोठी के तत्कालीन मुनीम राय साहब पण्डित कपूरचन्दजी आचार्य्य ने आपको अपनी दूकान पर बुला लिया और दूकान के चार काम—रोकड़िया, ख़ज़ांची, मुख़तार और अँगरेज़ी का पत्र-व्यवहार—आपको सौंपे। आपने इन चारों कामों की सम्पादन-विधि में ऐसे उत्तमोत्तम सुधार कर लिये जिससे आप उक्त सब कामों को बहुत सुगमता सरलता और पूर्ण दक्षता के साथ करते रहते थे। उक्त कोठी के तत्कालीन स्वामी सर सेठ कस्तूरचन्दजी डागा जब रायपुर की दूकान का निरीक्षण करने को आये तब उन्हें अपने मुनीम साहब से यह सुन कर विश्वास नहीं हुआ कि पुरोहितजी उक्त चारों कामों को कर सकते होंगे। पर जब दूसरे दिन गुण के सच्चे परीक्षक सेठ साहब ने उनके काम की जाँच की तब उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। सेठ साहब ने उनके काम को देख कर अपने मन में निश्चय कर लिया कि इन्हें मैं अपनी किसी दूकान का सदर मुनीम शीघ्र ही बनाऊँगा।

सत्य की महिमा जाननेवाले मनुष्य और नीच स्वार्थ के अन्धे भक्त में आकाश-पाताल का अन्तर रहा करता है। प्रसङ्गवश कपूरचन्दजी ने पुरोहितजी से एक ऐसी अदालती काररवाई करने को कहा जिसे उनकी सत्यप्रियता ने उन्हें नहीं करने दिया। परिणाम यह हुआ कि उन्हें उक्त पदों के कामों को त्याग कर उनसे अलग हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना पड़ा। सर कस्तूरचन्दजी उक्त समाचार को जान कर दुखी अवश्य हुए, पर उन्होंने अपने निश्चय को स्थिर रक्खा।

नौकरी से अलग होकर पुरोहितजी ने स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करने के अभिप्राय से रायपुर में 'भारत-भाण्डार' नाम की एक दूकान खोली। इस दूकान के समाचार को सुन नगर के प्रतिष्ठित लोग बहुत प्रसन्न हुए। ग्राहकों के साथ सद्व्यवहार करने की कला में आपने जो दक्षता प्राप्त कर ली थी उसकी सहायता से आपके भारत-भाण्डार की बहुत शीघ्र ही ख़ासी उन्नति हो गई। रायपुर-ज़िले के राजा तथा ज़मींदार लोग आपके सौजन्य तथा सच्चे व्यवहार से मन्त्रमुग्ध हो गये। तात्पर्य, उन्नति की इच्छा रखनेवाला, सचाई के साथ व्यापार कर अपनी मान-प्रतिष्ठा को बढ़ा कर अर्थलाभ किस प्रकार कर सकता है उसे पुरोहितजी ने अपने चरित्र-बल से रायपुर के लोगों को प्रत्यक्ष करा दिया।

जो सच्चे गुणज्ञ होते हैं वे यथार्थ गुणी की ताक में सदा रहा करते हैं और ज्यों ही उन्हें उनके सङ्ग्रह का अवसर मिलता है, त्यों ही वे उससे लाभ उठा लेते हैं। रायपुर की दूकान का निरीक्षण करते समय सर कस्तूरचन्द्रजी डागा ने पुरोहितजी में जिन गुण-रत्नों का अस्तित्व पाया था उनके कारण वे उनका सङ्ग्रह करने के लिए लोलुप हो रहे थे। सच्ची इच्छा को ईश्वर पूर्ण किया करता है। सन् १९०९ में सेठ साहब के पास ज्यों ही समाचार पहुँचे कि उनकी जबलपुर की कोठी के सदर मुनीम का पद रिक्त हो गया है, त्यों ही आपने उस पद को गोविन्दलालजी को देने की इच्छा प्रकट की और उनसे पत्र-द्वारा पूछा कि आप उसे स्वीकृत करने को प्रस्तुत हैं या नहीं? मित्रों की सम्मति से पुरोहितजी ने काम करना स्वीकार कर लिया। तब सेठ साहब ने पुरोहितजी को अपनी जबलपुर की कोठी के सदर मुनीम के पद पर नियत कर दिया। उक्त पद के नियुक्ति-पत्र के पाने पर बहुत कुछ सोच-विचार कर पुरोहितजी ने अपने प्यारे भारत-भाण्डार को मिरज़ापुर के सेठ भीषमचन्दजी के कर-कमलों में अर्पित कर, जबलपुर पहुँच कर अपने पद का कार्य्यभार ले लिया।

इसके बाद पुरोहितजी ने व्यवसाय, जबलपुर की जनता और सरकारी कर्म्मचारी-गणों की ओर ध्यान दिया और बहुत थोड़े समय में सबसे यथेष्ट आदर-सत्कार पाकर आप सबके स्नेहभाजन होगये। इस लोकप्रियता के कारण आप म्युनिसिपालटी लोकलबोर्ड और डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के मेंबर चुने गये और पीछे से डिस्ट्रिक्ट कौंसिल के प्रेसिडेंट चुने गये।

अपनी सत्यप्रियता और न्यायनिष्ठा से पुरोहितजी शीघ्र ही आनरेरी मजिस्ट्रेट और माननीय चीफ़ कमिश्नर के दरबार के दरबारी हो गये। महाजनी जटिल झगड़ों के सुरझाने में आपकी दक्षता को देख सरकार ने आपको अपने दीवानी मुक़दमों का आरबीट्रेटर बना दिया। आप लोगों के वाद का निर्णय इतनी उत्तमता के साथ करते थे कि वादी-प्रतिवादी दोनों उससे सन्तुष्ट हो जाते थे। गत योरपीय महासमर के समय आपने सरकार की जो सेवा की उसके उपलक्ष्य में सरकार ने आपको रायसाहब की उपाधि से सुशोभित किया था। आगे चल कर आप मध्यप्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेंबर चुने गये थे। कौंसिल में आप जब तक रहे प्रजाहित के ही काम करते रहे। हिन्दुस्तानी म्युचुअल बेनीफ़िट नामक कम्पनी ने आपकी वाणिज्य-व्यवसाय-विषयक गुणावली पर मुग्ध होकर आपको अपनी जबलपुर-शाखा का डायरेक्टर और चेअरमेन बनाया था।

राजपूताना तथा सिन्ध के पुष्करणा ब्राह्मणों ने आपकी कीर्त्ति का यशोगान सुन आपको अपनी जातीय सभा के जोधरपुरवाले प्रथमाधिवेशन का सभापति बनाया था और आपकी कार्य्य-दक्षता से प्रसन्न हो आपको 'पुष्करणेन्दु' की उपाधि से अलङ्कृत किया था। आपने पुष्करणा ब्राह्मणों में विद्याप्रचारार्थ ५०००) का प्रशंसनीय दान इसी अवसर पर दिया था।

पुरोहितजी हिन्दी-भाषा के बड़े पक्षपाती और सच्चे सहायक थे। जबलपुर में अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जो अधिवेशन हुआ था उसे आपने बहुत सहायता दी थी। जबलपुर के साप्ताहिक कर्मवीर पत्र को पुरोहितजी उदारतापूर्वक सहायता न देते तो गर्भ में ही उसकी मृत्यु हो जाती। आपकी ही सहायता से उसने जन्म पाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उसके जन्मोत्सव पर शङ्ख तथा भेरी-नाद करनेवालों के जहाँ तहाँ चले जाने पर भी वह अभी तक चला जा रहा है। जबलपुर में 'सम्मेलन-पुस्तकालय' नामक एक पुस्तकालय है। वह भी पुरोहितजी के ही हिन्दी-प्रेम का फल है। आप विद्यार्थियों को बहुत सहायता दिया करते थे। जबलपुर के धन-कुबेरों के यहाँ से जो विद्यार्थी विफलमनोरथ हो जाते थे उन्हें आप कृतकार्य्य कर दिया करते थे। आप विद्या और सत्सङ्ग के प्रगाढ़ प्रेमी थे। आपको वास्तु-विद्या और उद्यान-रचना से स्नेह था। आपने जबलपुर में कई बँगले बनवाये हैं, जिनके रचना-चातुर्य्य को देख उस विद्या के पारगामी मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा करते थे। आप सङ्गीत के बड़े प्रेमी थे। पर आप उसे वार-वनिता के मुख से सुनने के घोर विरोधी थे। आपने अपने जीवन में उस उत्सव में कभी भाग नहीं लिया जिसमें वेश्या के नृत्यगान की व्यवस्था रहती थी।

पुरोहितजी में एक दोष भी बड़ा भारी था। वह यह कि जान-बूझ कर भी आप घोर पापी को दण्ड देने में हिचका करते थे। इस दोष के कारण आपको कई बार हानियाँ उठानी पड़ीं। उन्हें आपने सहा, पर प्रतारक दुष्टों को अपने मुख से कभी अपशब्द तक नहीं कहे तब दण्ड देने की बात तो दूर की वस्तु है।

गत श्रावण के शुक्ल पक्ष में आपका देहावसान हुआ।

मारवाड़ से मध्यप्रदेश में कई कौड़ीमल आये जो अपनी व्यवसाय-पटुता के कारण करोड़ीमल होगये, हो रहे हैं और आगे भी होंगे। पर राय साहब पण्डित गोविन्दलाल जैसा सच्चरित्र, विद्यानुरागी, सत्सङ्ग-लोलुप, विद्वानों का आदर-सत्कार करनेवाला, दीनों पर दया करनेवाला, सर्वजन-प्रिय, देश-दशा को जान कर उसके लिए आँसू बहानेवाला कोई नहीं आया। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मध्यप्रदेश में अनेक गोविन्दलाल पुरोहित पैदा करे।

पुरोहितजी गोसाईंजी के नीचे लिखे हुए दोहे को सार्थक कर गये।

तुलसी जब पैदा भये जग हाँसत तुम रोय।
ऐसी करनी कर चलो तुम हाँसो जग रोय॥

गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री

जापान में भूकम्प।

जापान बहुत ही सुन्दर देश है। जब से उसने अपने व्यवसाय की उन्नति की है तब से उसकी ओर सारा संसार आकृष्ट है। लोग उसकी सामरिक शक्ति देख कर चकित होते थे और उसकी पार्थिव समृद्धि से विस्मय-विमुग्ध होते थे। अभी हाल में वहाँ जो भयानक भूकम्प हुआ है उससे उसकी अपरिमित हानि हुई है। यहाँ उसी का सविस्तर वर्णन दिया जाता है।

इधर कुछ समय से भूकम्पों और ज्वालामुखी पहाड़ों ने प्रकट होकर भूमण्डल पर प्रलय के युग का आविर्भाव कर दिया है। इस युग का प्रारम्भ चिली के भूकम्प से

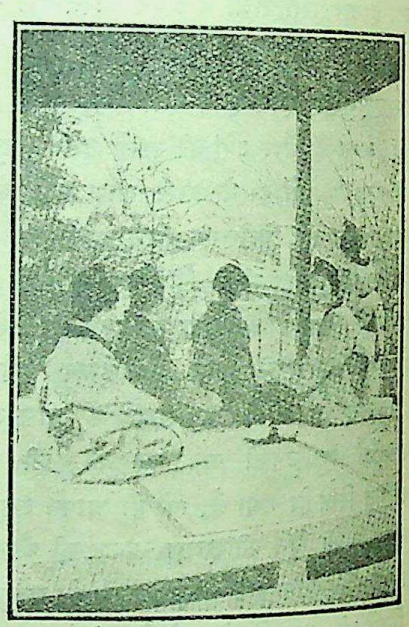

उद्यान में (भूकम्प के पहले)।

समझना चाहिए, जो गतवर्ष के नवम्बर के मध्य में सङ्घटित हुआ था। उस समय 'न्यूयार्क हेरल्ड' में छपा था कि चिली के अटोफ़ोगस्टा, कोपिआपो, और लासेरेना आदि नगरों तथा उनके आस-पास एक विशाल भूखण्ड को भूकम्प से घोर हानि पहुँची है और साथ ही प्राण-हानि भी बहुत हुई है। चिली के जिस भाग में भूकम्प हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था वह उसकी चोट से सँभलने भी नहीं पाया था कि दस दिन बाद भूकम्प का दूसरा दौरा हुआ। इस बार भी ख़ासी हानि हुई। उत्तरी और दक्षिणी अमरीका के समग्र पश्चिमी किनारे पर इस पिछले धक्के का प्रभाव पड़ा था, यहाँ तक कि संयुक्तराज्य के भीतर मिसीसिपी नदी के किनारे तक इसकी धमक पहुँची थी। यद्यपि उसका यह पिछला धक्का उतना भीषण नहीं था, तो भी उसका प्रभाव बहुत दूर तक पड़ा था।

पूर्वोक्त भूकम्प के सङ्घटित होने के कुछ समय बाद एक मछली मारनेवाला जहाज़ सन अंब्रोसिओं और सन फ़ेलिक्स नामक टापुओं को गया। ये दोनों टापू चिली के किनारे से कुछ ही दूर समुद्र में हैं। इनमें आबादी नहीं है। मछुओं ने देखा कि इन टापुओं का लगभग आधा भाग धँस गया है और अवशिष्ट भी बहुत कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। इसी समय समाचार-पत्रों में यह ख़बर छपी थी कि दक्षिण-ध्रुव का ईस्टर द्वीप समुद्र के गर्भ में लीन हो गया है और उसके साथ ही चिली-सरकार के द्वीपान्तरवास के क़ैदियों

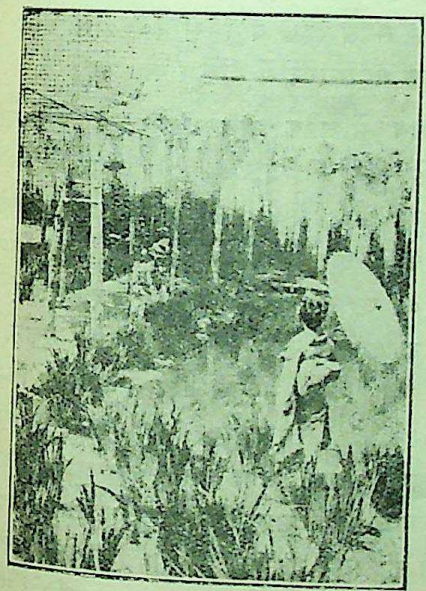

सौन्दर्य-निरीक्षण (भूकम्प के पहले)।

की बस्ती भी जलमग्न हो गई है। परन्तु बाद को इस समाचार का खण्डन कर यह छापा गया कि टापू जलमग्न तो नहीं हुआ है, पर भूकम्प से नष्ट-भ्रष्ट बहुत हो गया है। यदि यह द्वीप समुद्र के गर्भ में लीन हो गया होता तो संसार से एक अज्ञात प्राचीन जाति के स्मृति-चिह्न

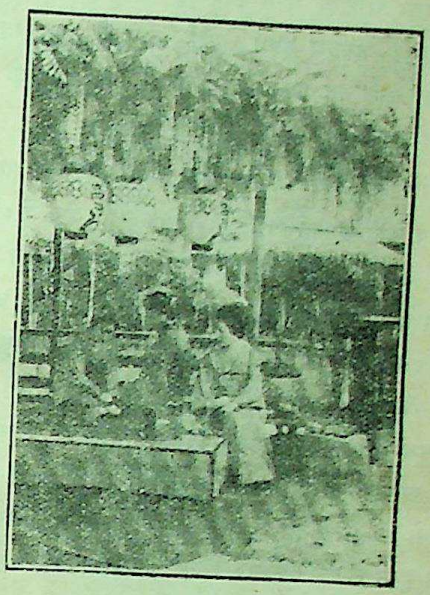

अपराह्न की चाय (भूकम्प के पहले)

सदा के लिए मिट गये होते। इस टापू में उसके ये चिह्न पत्थर की विशाल मूर्तियों के रूप में अभी तक मौजूद हैं।

उधर प्रशान्त महासागर की दूसरी ओर तब से कुछ न कुछ गड़बड़ प्रायः नित्य ही होती रही। इनमें से अधिकांश का सिस्मोग्राफ़ यन्त्र पर कभी कोई चिह्न तक नहीं अङ्कित हुआ, किसी गड़बड़ के समय केवल कभी कभी उस पर दाग़ सा पड़ जाता था। इन गड़बड़ों की प्रक्रिया भूमण्डल के कितने विस्तृत क्षेत्र पर जारी रही, इसका कुछ भी पता नहीं। क्योंकि कुछ टापुओं पर मनुष्य बसते नहीं या वे व्यापारी मार्गों से इतनी दूर स्थित हैं कि वहाँ का कोई समाचार ही नहीं प्राप्त हो सका। नये वर्ष के लगने पर फ़रवरी में भूकम्प फिर आया और उसके धक्के लगातार जारी रहे। इस भूकम्प का प्रारम्भ प्रशान्त महासागर के सोसायटी द्वीप से हुआ। यहाँ से प्रारम्भ होकर यह दक्षिणी समुद्रों तक फैला और फिर हवाई द्वीप-समूह से होता हुआ सुदूर उत्तर में अल्यूशियन टापुओं तक जा पहुँचा। कोई पाँच हज़ार मील लम्बे क्षेत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इसका प्रभाव पड़ा। जब इसका आक्रमण हुआ था, प्रशान्त महासागर में स्थित प्रायः सभी जहाज़ हिलने लगे थे। बन्दरगाहों की दीवारों, डकों आदि को हानि पहुँची थी। इसका अधिक ज़ोर काहूजुई और हवाई द्वीपों के मौई टापू में मालूम हुआ। मौई टापू के बन्दरगाह पर समुद्र का जल चढ़ आया था, जिससे उसकी बड़ी हानि हुई और कुछ लोगों के प्राण भी गये।

पूर्वोक्त भूकम्प के समय सन फ़्रांसिस्को के समीपस्थ मेरी द्वीप की वेधशाला के अध्यापक टी० जे० जे० सी ने घोषणा की थी कि प्रशान्त महासागर में एक नया तूफ़ान उठ रहा है। प्रायः समग्र महासागर में भूकम्प के धक्कों के जारी रहने के कारण इस नये तूफ़ान ने अधिक भयङ्कर रूप धारण किया। उनसे इसे सहायता सी मिल गई। अप्रेल तक भूकम्प के धक्के अमरीका महाद्वीप में फिर हुए। उनका अधिक ज़ोर मेक्सिको के सन लुइ पोटोसी नामक स्थान में मालूम हुआ, जिससे उस जवार में आतङ्क छा गया। इसी समय इक्वेडर-राज्य के ग्वायाक्वेल स्थान के समीप एक ज्वालामुखी पहाड़ प्रकट हो गया। एन्डीज़ पहाड़ पर तथा हवाई द्वीपों के पहाड़ों में भी ज्वालामुखी पहाड़ों के प्रज्वलित हो उठने के लक्षण देख पड़ने लगे।

प्रशान्त महासागर के उपर्युक्त भूकम्पों के साथ ही इटली के वेसूवियस के फूट पड़ने की घटना भी ध्यान देने योग्य है। इस प्रसिद्ध प्राचीन ज्वालामुखी पहाड़ ने एक ऐसे भयङ्कर धक्के के साथ ९ जून को अपने मुँह से आग उगलनी शुरू की कि उससे आस-पास का सारा देश हिल गया। लोग भयभीत तो बहुत हुए, पर हानि साधारण ही हुई। इसका उपद्रव कुछ ही दिन तक जारी रह सका। इसके बाद सिसली के एटना का नम्बर आया। १७ वीं जून को उसके मुँह से लावा की धारा बह चली और आस-पास का भूभाग उससे तोप गया। टापू-वासी अपना घर-द्वार छोड़ छोड़ प्राण लेकर भाग चले। इस समय एटना के जो फ़ोटो लिये गये हैं उनसे सभ्य जगत् अब जाकर यह जान सका है कि ज्वालामुखी के प्रकट होने पर उसका कैसा विकराल स्वरूप हो जाता है, धुआं राख किस मात्रा में निकलती है और लावा की धारा की भयङ्करता कैसी होती है।

एटना से लावा की जो धारा निकली थी वह साधारण धारणा के विपरीत थी। वह द्रवरूप में नहीं बही थी तो भी आसपास मीलों तक फैल गई थी। उसके भीतर घर-गाँव जो कुछ आ गये, सब विनष्ट हो गये। कोई छः गाँवों का तो चिह्न तक न रहा, हज़ारों आदमी बे-घरबार हो गये और लाखों की सम्पत्ति स्वाहा हो गई।

उपर्युक्त घटनाओं से जो विनाश सङ्घटित हुआ था उसे देख कर लोग विचार करने लगे थे कि लोक-संहार अपनी सीमा को पहुँच चुका है, अब शान्ति हो जायगी। परन्तु इधर जापान में जो भयङ्कर दुर्घटना उपस्थित हो गई उसका समाचार पाकर सारा सभ्य संसार स्तम्भित हो गया। इस दुर्घटना ने आपदाओं की उस जंज़ीर में एक कड़ी और बढ़ा दी जिसका सूत्रपात गत वर्ष के नवम्बर में हुआ था। उस समय पृथ्वी के चारों ओर के दो तिहाई भाग के सिस्मोग्राफ़ यन्त्र पर भावी विपद् की सूचना मालूम पड़ी थी। इटली से लेकर जापान तक उसके उपस्थित होने की आशङ्का की गई थी। परन्तु इस विस्तृत क्षेत्र में कई एक स्थल अछूते रह गये और गड़बड़ का क्षेत्र पृथ्वी के केन्द्र के समीप ही सीमाबद्ध रहा। जापान की इस दुर्घटना का सङ्केत सबसे पहले वहाँ से २००० मील के अन्तर पर प्रशान्त महासागर में मालूम पड़ा था।

जापान में अनेक भूकम्प आ चुके हैं। वहाँ सन् १८९६ के भूकम्प में १३,०७३ तेरह हज़ार तिहत्तर मकान ध्वस्त हुए और २७,१२२ मनुष्यों के प्राण गये थे। इसके पाँच वर्ष के पहले के भूकम्प में ७,२७३ मनुष्य और २,२२,५०१ घर स्वाहा हो गये थे। पन्द्रहवीं सदी का कोई एक भी दशक वहाँ ऐसा नहीं बीता जिसमें भूकम्प ने कुछ न कुछ विनाश का भयङ्कर दृश्य न उपस्थित किया हो। सन् १७५५ की १ ली नवम्बर को जापान में एक बड़ा ही भीषण भूकम्प आया था। उस समय पुर्तगाल की लिस्बन नगर भी उसका शिकार हुआ था। बीच नगर में पृथ्वी फट गई थी और नगर के अधिकांश मकानों में आग लग गई थी। कोई साठ हज़ार आदमियों की प्राण हानि हुई थी।

जापान में जो भूकम्प अभी हाल में हुआ है उसका विवरण अमरीका के एक अख़बारनवीस ने लिखा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उस समय टोकियो में उपस्थित था। उसने लिखा है—

"हम लोग टोकियो के इम्पीरियल होटल में भोजन की तैयारी कर रहे थे कि सहसा रोशनी झिलमिला उठी और एक भारी धक्का सा हुआ। हम लोग भोजन की मेज़ के सामने से उठ कर भाग भी नहीं सके कि कमरे की सुन्दर पुख़्ता फ़र्श फट गई, छत से लटकती हुई झाड़ें ज़ोर से हिलने लगीं और हमारे चारों ओर दीवारों की ढीली-ढाली ईंटें भी गिरने लगीं। इस घटना के सहसा उपस्थित हो जाने से बहुत ही अधिक भय मालूम हुआ। किसी तरह ठोकर खाते हुए हम चौखटे लगे हुए दरवाज़े तक पहुँचे, वे हमसे २० फुट के अन्तर पर थे। कमरे की फ़र्श समुद्र के तूफ़ान की तरह उठ बैठ रही थी, प्रायः सभी दरवाज़े टूट गये थे। उस समय भोजन के कमरे में हम चार आदमी थे। घबराहट में हम चारों दरवाज़ों से होकर पीछे के एक छोटे बाग़ को भागे। ज़मीन उभड़ती

विनोद (भूकम्प के पहले)।

और धँसती थी, इस कारण पैर तक रखना मुश्किल हो गया। उधर नगर की इमारतों के हिलने और ध्वस्त होने से धूल उड़ कर आकाश में छा गई थी। शीशे की खिड़कियों की झनझनाहट से हवा गूँज रही थी। हवा भी अत्यधिक तेज़ बह रही थी। ज्यों त्यों दौड़ कर हम लोगों ने गली के किनारे एक ऊँचे स्थान पर आश्रय लिया। हमें ऐसा मालूम होने लगा कि सारा द्वीप का द्वीप आकाश में उड़ जायगा।

ज्वालामुखी का स्फोट।

"जिस सर्व-प्रथम धक्के से भयङ्कर विपत्ति के उपस्थित होने की सूचना मिली थी उसके कुछ ही क्षण बाद दफ़्तरों, मकानों और दूकानों से भयभीत नर-नारी और बाल-बच्चे निकल निकल कर भागने लगे। कम से कम छः मिनिट तक अत्यन्त ही भीषण धक्कों का क्रम जारी रहा। जिस आश्रय-स्थान पर हम लोग खड़े थे उस ओर आनेवाले लोगों में से हमने कई एक को मुँह के बल गिरते और आकाश में उछलते हुए पत्थरों से चोट खाते देखा। होटल के पिछवाड़े ईंट की जो इमारत थी वह ध्वस्त होने के पहले भयङ्कर रूप से एक बार डगमगाई। उसी समय जल के नल टूट गये और पानी बहने के कारण शीघ्र ही हम लोगों के पैरों के नीचे कई इंच मोटा कीचड़ हो गया। ज़मीन में जो दरारें और छिद्र हो गये थे उनमें जल झर झर कर जाने लगा।

"टेलीफ़ोन के खम्भे हमारे देखते ही देखते भूशायी हो गये, उनके तार एक दूसरे से फँस कर जाल के बव-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पडर के रूप में अधर में लटके हुए दिखाई देने लगे। टोकियो एलेक्ट्रिक कम्पनी की विशाल इमारत भी बोल गई। नागरिकों के काठ के मकान हिल हिल कर गलियों में ध्वस्त होने लगे। उस समय धूल का तूफ़ान सा आया था। जिस ऊँचे स्थान पर हमने आश्रय लिया था वह भी फट गया। अतएव हम लोग भाग कर पास की गली के बीच में जा खड़े हुए। यह गली त्रस्त और घबराये हुए मनुष्यों से भर गई थी। भयाकुल होने से वे एक दूसरे से टकराते, गलियों में पड़े हुए मकानों के ध्वंसावशेषों में उलझते और जब जब ज़मीन हिलती, इधर-उधर गिरते-पड़ते सबसे अधिक समीप की खुली जगह की ओर भागने लगते थे।

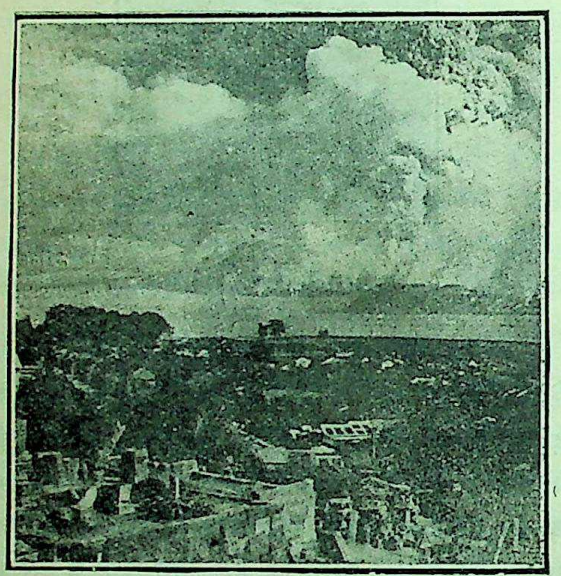

भूकम्प का एक दृश्य।

"हम चारों भी पहले बहुत घबरा गये थे, यह मैं मानता हूँ। पीछे से परिस्थिति का शान्तिपूर्वक सामना करने के लिए हमारी व्यग्रता धीरे धीरे कम पड़ने लगी। पर इसी समय इम्पीरियल होटल की विशाल इमारत को पत्ती की तरह हिलते देख कर हम लोग एक दूसरे से लिपट गये और एकाएक चिल्ला पड़े—असम्भव है, यह सब एक भयङ्कर स्वप्न है। पर परिस्थिति का ज्ञान शीघ्र ही फिर हो गया। उस समय जो दृश्य हम अपनी आँखों के सामने देख रहे थे वह मनुष्य की कल्पना के क्षेत्र के बाहर की बात थी।

"अब हम लोग धीरे धीरे भीड़ को पार करते हुए हीबिया पार्क की ओर रवाना हुए। राह में टेढ़ी-मेढ़ी पड़ी हुई टूटी-फूटी चीज़ों में उलझते हुए ज्यों त्यों करके पार्क में पहुँचे। उसके फाटक के स्तम्भ ध्वस्त होकर भीड़ को रोके पड़े थे। पहले ही से हज़ारों आदमी अपनी प्राण-रक्षा के लिए यहाँ भाग आये थे। इस समय हमें चारों ओर धुआँ ही धुआँ दिखाई देने लगा, दक्षिणी हवा के थपेड़े खा खाकर वह आकाश-मण्डल को पूर्ण करने लगा।

एक धड़ाके की आवाज़ के साथ पार्क का बोसुरो रेस्टूरेंट नामक नवीन भवन धराशायी हो गया और साथ ही उसमें आग भी लग गई। इस भवन से तीस स्त्रियाँ भाग नहीं सकीं। वे जल कर मर गईं। हीबिया-मन्दिर की छत भी ज़ोर से हिल कर ध्वस्त हो गई। इस मन्दिर की छत के नीचे टोकियो के रईसों के विवाह होते रहे हैं। मन्दिर के पीछे के मकानों की पंक्ति ढह पड़ी। इनके ढहने पर बड़ा धुआँ उठा और आग लग गई। इस आग में यूराचूची का महल्ला, नगर के पुलीस-विभाग की इमारतें और इम्पीरियल-थियेटर जल कर स्वाहा हो गये। इम्पीरियल होटल ने भूकम्प के धक्कों का अच्छा सामना किया। उसका निर्माण भी इस बात को दृष्टि में रख कर किया गया था। भूकम्प से तो इसकी कुछ विशेष क्षति नहीं हुई थी, केवल उसके कुछ भागों के पत्थर के बारीक काम तथा प्रवेशद्वार के तोरण ही नष्ट हुए थे पर दो दिन बाद आग लग जाने से इस मज़बूत इमारत का भी संहार हो गया।

"ज्यों ही ज़मीन का डगमगाना बन्द हुआ, त्यों ही मैं अपने मित्रों को पार्क में छोड़ इधर-उधर का कुछ हाल लेने के लिए मारूनोची की ओर चला। मार्ग में जब ज़मीन फिर हिलने लगती थी तब ठहर जाता था। अधिकांश पुरानी इमारतों ने ढह कर गली को तोप लिया था। मारूनोची, एन० वाई० बी० की इमारत और मित्सूबीशी बैंक के भवन आदि सभी बोल गये थे। गली में कई एक लोगों ने बताया कि इनमें अधिकांश इमारतें भीतर से विनष्ट हो गई हैं। आग बुझाने के इंजन चारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर से यूराचूचो महल्ले की ओर आने के लिए भीड़ में अपनी राह कर रहे थे। इस महल्ले में आग ने भयङ्कर-रूप धारण किया था।

"भूकम्प का दूसरा भीषण धक्का उस समय हुआ जब मैं कीजो नामक इमारत के सामने से जा रहा था। उस समय जो हज़ारों आदमी उस स्थान पर खड़े थे उन्हीं के साथ मैं भी भाग कर पुलीस-स्टेशन के सामनेवाली खुली जगह में जा खड़ा हुआ। एक बार फिर भूमि भीषण वेग से हिली, सभी इमारतें लड़खड़ा उठीं। इस समय आग भीषण रूप धारण करती जा रही थी, चारों ओर काला धुआँ छाया हुआ था। फ़ोटो लेनेवाले अपने बड़े बड़े कैमरा पीठ पर लादे हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे, कभी ठहर कर किसी विद्रूप ध्वंसावशेष का फ़ोटो उतारने लग जाते थे। उस समय वे भयाकुल आने-जानेवालों को चिल्ला चिल्ला कर डाँटते और इधर-उधर हट जाने को कहते थे, जिसमें वे फ़ोटो ले सकें। जल्दी जल्दी मैं पार्क को फिर लौट आया। मेरे मित्र वहीं खड़े थे। अब हम लोग मोटर पर सवार होकर याकोहामा को रवाना हुए। पार्क का फाटक पार करने के बाद जब हम टोकियो स्टेशन और इम्पीरियल थियेटर के सामने पहुँचे तब हमारे सामने ही वे दोनों सुन्दर विशाल इमारतें आग में भस्मीभूत हो जाने के कारण धराशायी हो गईं। इस दृश्य को देख कर हम स्तम्भित हो गये। क्योंकि ये सब असम्भव दृश्य थे।

"केवल दो ही घण्टा पहले हमने टोकियो की विस्तृत सुन्दर सड़कों पर भ्रमण किया था। उनके दोनों ओर स्थित भव्य इमारतों के सौन्दर्य का अनुभव कर अपने मन में कहा था कि इस नगर के व्यापार-केन्द्र की इमारतें इसके अभिमान के योग्य हैं। परन्तु अब हम देखते हैं तो चारों ओर सर्वनाश का दृश्य ही देख पड़ता है, गलियों में घायल मनुष्य पड़े कराह रहे हैं और मृतकों की लाशें इधर-उधर पड़ी हुई हैं। घायलों में से जो कढ़िल-घसिल कर हीबिया पार्क पहुँच गये उनके भाग्य की सराहना करनी चाहिए।

"दो पहर भर हाहाकार मचा रहा, धक्के पर धक्के आते रहे और जगह जगह आग लगती गई। आम सड़क के दोनों ओर भयङ्कर हानि हुई। मकानों की छतें गलियों में आ गिरी थीं। जो कुछ देख पड़ता था वह सब सर्वनाश का ढेर था। गृह-स्वामी अपने मकानों के गिर जाने पर वहीं चुपचाप चटाइयों पर बैठे हुए थे। जो मूल्यवान् वस्तुएँ उनके हाथ आ गई थीं उन्हें उन्होंने अपने पास रख लिया था।

"याकोहामा की ओर दो घण्टे तक यात्रा करने पर मार्ग में पुलों के नष्ट हो जाने, सर्वत्र आग लग जाने तथा

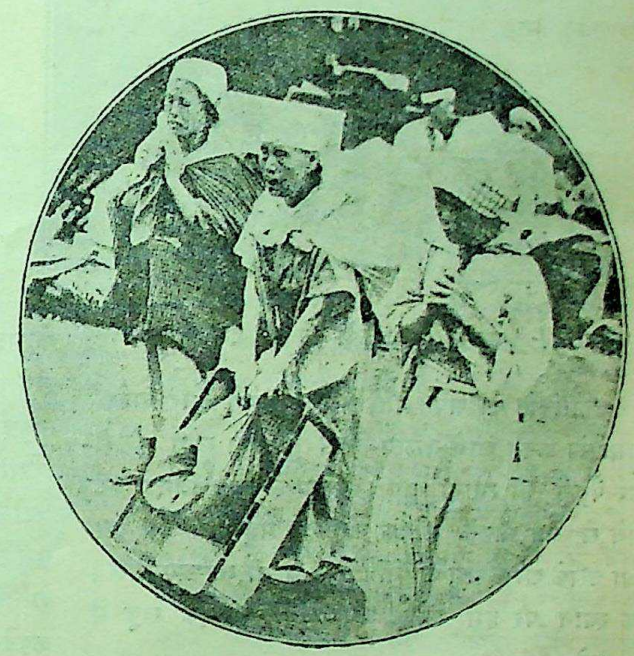

भय-ग्रस्त स्त्री-पुरुष।

सड़क में बड़ी बड़ी दरारें फट जाने के कारण हमें बाध्य होकर लौटना पड़ा। जब हम लोग लौट कर टोकियो के समीप पहुँचे तब क़रीब क़रीब अँधेरा हो गया था। यहाँ से याकोहामा अठारह मील था, परन्तु वहाँ का धुआँ, जिसके नीचे कुछ लाली झलक रही थी, टोकियो से स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। हम अपनी मोटर-गाड़ी ओयमा, योत्स्या और ययोग से होकर ले गये। इन स्थानों में नगर के दूसरे भागों की अपेक्षा कम क्षति हुई थी। इसके बाद हमने भिन्न भिन्न ऊँचे ऊँचे स्थानों पर जाकर उस भयङ्कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि-लीला के विस्तार का निरीक्षण किया जो टोकियो नगर को चारों ओर से घेर लेने के लिए प्रयत्नशील हो रही थी। सर्वत्र फ़ौजी-क़ानून की घोषणा हो गई थी। बाहर के किसी भी स्थान से टोकिया का कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था। अतएव नौ विभाग तथा वैदेशिक विभाग में भी इस बात का पता न लग सका कि योकोसुका और याकोहामा की कैसी दशा है।

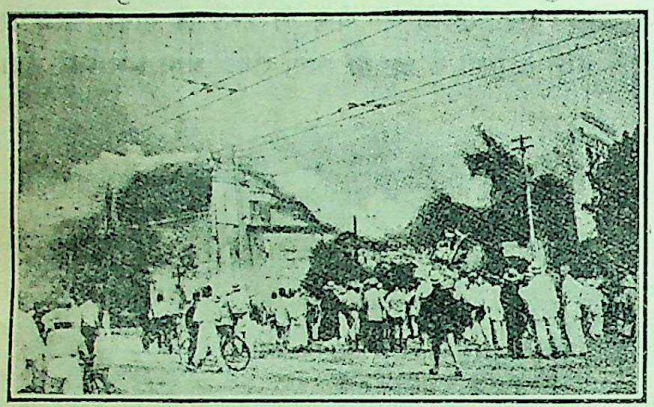

भूकम्प में टोकियो का एक दृश्य।

"टोकियो को अपने पीछे जलता छोड़ते और याकोहामा को अपने आगे जलता देखते हुए हम लोग दूसरी बार पैदल ही रवाना हुए। सड़क के जगह जगह फट जाने से वह चलने लायक नहीं रह गई थी। उस पर तथा उसके आस-पास जो गाँव मिले वे भी नष्ट-भ्रष्ट मिले। एक स्थान पर हम लोग अनजान में ही एक खड्ड में धँस गये।

"हम अपने असबाब का पुलिन्दा अपने कन्धों पर लादे हुए थे। हम लाल रङ्ग के धुएँ के बादलों का लक्ष्य कर पूर्व ओर को जा रहे थे। रात का सुन्दर समय था, आकाश अन्धकार से पूर्ण था, नक्षत्र चमक रहे थे, सेमिस नामक चिड़ियाँ चहक रही थीं सान्ध्यकालीन ओस का अभी तक गिरना नहीं बन्द हुआ था, वायु ताज़ी और पुष्पों की सुगन्ध से परिपूर्ण थी। आधीरात के समय हम लोग एक नष्टप्राय गाँव के किनारे पहुँचे। उस गाँव के व्यथित निवासियों ने हम लोगों का स्वागत किया और बैठने के लिए चटाइयाँ दीं। यही नहीं, उन्होंने हमें चाय और रोटी भी खिलाई। हम लोगों ने यहीं रात भर विश्राम किया। यहाँ से याकोहामा बारह मील था।

"सवेरे हम लोग याकोहामा को चले। जब दोपहर होते होते हम वहाँ पहुँचे तब हमें वह रात के सदृश अन्धकारपूर्ण देख पड़ा। सर्वत्र लोग भागते हुए दिखाई दे रहे थे—सभी लोग देश के भीतर की ओर भागे जा रहे थे। उन भयभीत लोगों में से अधिकांश के चेहरे काले पड़ गये थे, किसी किसी के ख़ून बह रहा था और किसी किसी के बाल झुलस गये थे।

"सकूरागिचो स्टेशन के समीप के खुले स्थान में सैकड़ों लाशें पड़ी हुई थीं, उनमें से कुछ आहतों में प्राण थे और वे पड़े हुए कराह रहे थे। वहाँ ठहरने को हमारी हिम्मत ही नहीं पड़ी। हम लोग सीधा बन्दर की ही ओर बढ़ते चले गये। इधर मुश्किल से एक दो जीवित आदमियों से भेंट हुई। अपने सिरों पर कोट किये हुए और गीला रूमाल मुँह पर लपेटे हम लोग याकोहामा के भग्नावशेषों से होकर समुद्र के किनारे की ओर जाने लगे। भाग्यवश हमें वहाँ एक 'सम्पान' मिल गई। समुद्र का किनारा भी बिलकुल ध्वस्त हो गया था। किसी भी परिचित स्थान का चिह्न तक न रह गया था। 'स्टील नेवीगेटर' नामक जहाज़ के कर्मचारियों ने हम हम लोगों का सादर स्वागत किया। इस जहाज़ पर रोगियों की यथासम्भव सहायता की जाती थी, उन्हें कपड़े-लत्ते भी दिये जाते थे। जहाज़ के अधिकारी और नाविक सभी शरणागतों को, चाहे वे किसी भी देश के निवासी हों, अपना भोजन और कपड़ा देकर सहायता प्रदान करते थे। उनका व्यवहार सर्वथा स्तुत्य रहा।"

उपर्युक्त भूकम्प के बाद जापान से पहले पहल लिकोन नामक जहाज़ कोलम्बो २ री अक्टूबर को पहुँचा था। भूकम्प के समय वह याकोहामा के बन्दरगाह में उपस्थित था। उसके कप्तान मिस्टर ए० ल० गार्डन ने याकोहामा के संहार का जो हाल बताया है वह और भी भयङ्कर है। उनका कथन इस प्रकार है—

"१. ली सितम्बर के सवेरे लिकोन किनारे से आध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मील के अन्तर पर लङ्गर डाले खड़ा था। उस समय टैफ़ोन-तूफ़ान का वेग था। दोपहर के दो मिनिट पहले एका-एक भीषण धक्का हुआ। मैंने समझा कि जहाज़ को कोई दुर्घटना हुई है। बाहर निकल कर देखा तो याकोहामा ही ग़ायब पाया। कुछ ही क्षणों में उसका संहार हो गया। मानो वह खिलौनों का नगर था, जिसे किसी लड़के ने हाथ के एक ही झटके में विनष्ट कर दिया हो।

"भूकम्प की गति ऐसी भीषण थी, मानो पृथ्वी के नीचे कोई विशालकाय कीड़ा हिल रहा था। इसके साथ ही सभी वस्तु रात्रि के समान काली देख पड़ने लगी, वायु भूरी धूल से इस प्रकार भर गई कि उसने चारों

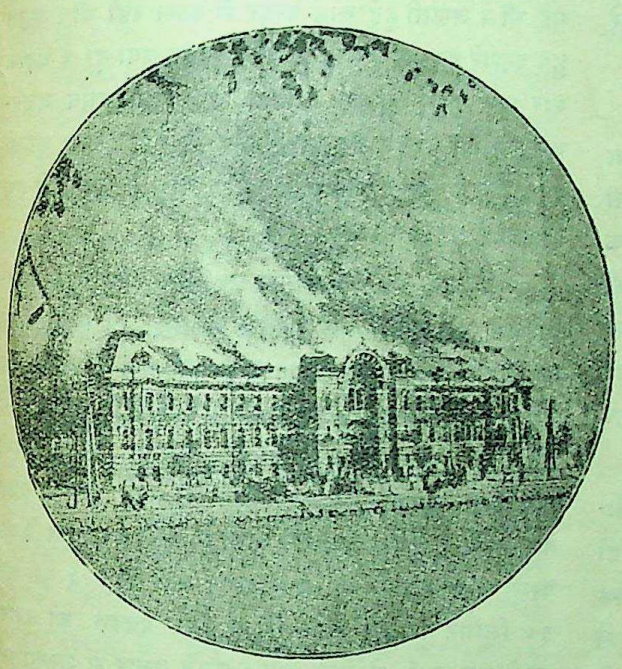

टोकियो में अग्नि-लीला।

ओर प्रत्येक वस्तु को तोप लिया। बन्दरगाह में जो जहाज़ खड़े थे वे इधर-उधर बह रहे थे। इस गड़बड़ में वृद्धि करने के लिए दो घण्टे बाद भाटा आ गया।

"जब धूल कुछ कुछ साफ़ हुई तब याकोहामा हमें कुछ अधिक दिखाई देने लगा। परन्तु इसी समय उसमें आग लग गई।

"गैस-भाण्डार, जल-भाण्डार और तेल की टङ्कियाँ बह गईं। टङ्कियों से तेल बह कर बन्दरगाह में आगया। जो लोग आग से बचने के लिए जहाज़ों पर भाग जाना चाहते थे और जो जहाज़ शरणागतों को चढ़ा लेना चाहते थे इन दोनों की कठिनाइयाँ बन्दर में तेल के बह आने से और भी बढ़ गईं। साफ़ बात तो यह है कि वास्तविक घटना का वर्णन करना असम्भव है। किनारे के दृश्य कल्पनातीत थे। अनेक आदमी मकानों के नीचे ही दब गये और जो आधे-धूधे दबे और किसी प्रकार अपने आपको निकाल न सके वे दबे के दबे रह गये और जीवित ही आग में जल कर राख हो गये। उदाहरण के लिए मिस्टर कोमर की स्त्री उनके सामने ही जल कर राख हो गई और वे ताकते के ताकते रह गये। उनकी स्त्री मकान के गिरने से कमर तक दब गई थी। उसे खोद कर निकाल देने के लिए मिस्टर कोमर दस हज़ार येन देने को तैयार थे, पर कोई आदमी न तैयार हुआ। अन्त में आग लग जाने पर वह जीवित ही जल कर मर गई। एक स्त्री गरदन तक दब गई थी, पर उसके हाथ ऊपर निकले रह गये थे। उससे निकलने के लिए व्यर्थ प्रयास करते करते उसके हाथ की अँगुलियों के दो दो पोर घिस गये थे।

"इस संहार के बाद कोई बीस मील तक सारा समुद्री किनारा प्रज्वलित अग्नि का ढेर सा मालूम पड़ रहा था। यद्यपि लिकोन किनारे से आध मील दूर था तो भी ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वह किसी प्रज्वलित बड़ी भारी भट्टी के आगे खड़ा हो। लिकोन के सभी अधिकारियों और नाविकों के चेहरों पर फफोले से पड़ गये थे। एक्सप्रेस आव् आस्ट्रेलिया और ऐंड्री लेबन नामक जहाज़ों के किनारे गर्म लोहे के समान लाल हो गये थे। पर वे जहाज़ बच गये, इसे करामात समझना चाहिए।

"जब लिकोन याकोहामा से रवाना हुआ तब उसे कोई दस मील तक तेल के ही ऊपर से आना पड़ा। मालूम होता है कि तेल का कोई बड़ा डिपो बिलकुल ही नष्ट हो गया है। ख़बर उड़ी थी कि ओशीया टापू समुद्र के गर्भ में लीन हो गया है, पर यह बात ग़लत है। मैंने उसे देखा है। पर हाँ, वहाँ का लाइट हाउस बिलकुल नष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया है। और वही क्यों, त्सूरूगासकी के उत्तर सभी लाइट हाउस ध्वस्त हो गये हैं।

"इस विपद् के समय कुछ ग़रीब जाति के जापानियों ने बड़ी शूरता दिखाई। एक प्रख्यात जापानी रमणी की प्राण-रक्षा एक रिक्शा-कुली ने की थी। उसने उसका साथ उस समय तक न छोड़ा जब तक वह सही सलामत जहाज़ पर चढ़ न गई। वह स्वयं भयङ्कर रूप से आहत हो गया था।

"इस दैवी दुर्घटना से याकोहामा का पूर्णरूप से संहार हो गया है। इस नगर के पुनर्निर्माण में मुझे सन्देह है। जिस स्थान पर नगर आबाद था वहाँ बड़े बड़े खड्ड हो गये हैं। इनमें से कुछ बहुत ही अधिक गहरे मालूम पड़ते हैं।"

इस विपत्ति की स्पष्ट कथा दूसरी इस प्रकार है—

"१ सितम्बर को ११ बज कर ५८ मिनिट पर हम याकोहामा बन्दरगाह के १४ नम्बर के बोया में थे। इसी समय जहाज़ को एक भीषण धक्का लगा। और ठीक पाँच मिनट तक धक्के पर धक्के लगते गये। जहाज़ की कोठरियों की खुली चीज़ें उछल उछल कर इधर-उधर गिरने लगीं। मुख्याधिकारी और मैं जहाज़ के डेक पर थे। हम दोनों यह समझ कर दौड़ कर आगे गये कि लङ्गर में कोई घटना हुई है।

"इसके बाद हमने अपनी आँखों के सामने याकोहामा नगर को विध्वंस होते देखा। घाट आदि नष्ट हो गये और वहाँ ठहरे हुए सभी जहाज़ इधर-उधर बह चले। हम लोग तुरन्त धूल और धुएँ के गहरे बादल से ढक गये। इसी समय टैफ़ोन-तूफ़ान भी चल पड़ा। इसने विनाश में और भी सहायता दी। हवा दक्षिण-पश्चिम थी और बैरोमीटर का पारा २९.४८ पर था। मिस्टर नेल्सन पहले ही धावे में जहाज़ से उतरे। वे शरणागतों से भरी एक नाव लेकर लौटे। धुआँ और धूल कुछ कुछ हटी। अब हमें देख पड़ा कि सारा नगर विध्वंस हो गया है। बन्दरगाह का अधिक भाग धँस गया था और मुख्य घाट तथा नगर में आग लग गई थी। तेज़ हवा के कारण आग शीघ्रता से सारे नगर में फैल गई। जहाज़ के ऊपर असह्य गर्मी थी। एक बज कर ४५ मिनिट पर भाटे की एक लहर आई। इसने बन्दर में और भी अधिक गड़बड़ उपस्थित कर दिया। हमने तुरन्त अपना जहाज़ हवा के रुख़ के विपरीत चलाने का प्रयत्न किया, परन्तु स्टीम से परिपूर्ण इंजनों ने कुछ भी काम न दिया।

"हम अपने जहाज़ के रोकने और लन्दन मारू नामक जहाज़ की टक्कर बचा जाने के प्रयत्न में थे कि लन्दन मारू हमारे जहाज़ से टकरा ही गया, जिससे हमारे जहाज़ के ऊपरी कुछ भाग में एक छेद हो गया। दूसरी बार जो छूटकता हुआ उसका धक्का लगा उससे भी हमारे जहाज़ के किनारे का भाग टेढ़ा हो गया। इस समय बन्दरगाह में बड़ा गड़बड़ था। धुआँ और धूल के मारे आँखें अन्धी हो गई थीं। जलती हुई नावें बन्दर में उतरा रही थीं। जलते हुए अङ्गारे हवा में उड़ रहे थे और समीप तथा दूर के धड़ाके बार बार स्पष्ट सुनाई पड़ रहे थे। यथासम्भव जलनेवाली सारी वस्तुएँ डेक पर से हटा दी गईं। नगर की जो दशा हुई है उसकी झलक भर बीच बीच में धुआँ में हमें दिखलाई पड़ जाती थी।

"२ बज कर ३० मिनिट पर हवा का रुख़ उत्तर-पश्चिम हो गया। वह धीमी भी पड़ गई। बैरोमीटर का पारा २९-४६ पर था। धुआँ भी कुछ हट गया और जहाज़ बन्दर में इधर-उधर बहते हुए दिखाई दिये। उनमें जो थोड़ी बहुत स्टीम थी उसकी सहायता से वे अपनी स्थिति के सुधारने या बन्दरगाह से हट जाने का प्रयत्न कर रहे थे। तीन बजे हमने बोया से हटने का प्रयत्न किया, परन्तु चक्कर लगाने को वहाँ जगह नहीं थी। ३ बज कर ३० मिनिट पर हमें मौक़ा मिला और प्रकाश का प्रबन्ध करके हम वहाँ से चल पड़े। हमने बन्दर में शरणागतों से भरी हुई एक नाव देखी। उस पर लोग चढ़ रहे थे। घने धुआँ से निकल जाने पर जब हमने लङ्गर डाला तब हमें, जहाँ तक हमारी निगाह पहुँची, किनारे पर विनाश और भयङ्कर अग्नि-लीला का दृश्य देख पड़ा।

"सन्ध्या के बाद ८ बजे शरणागतों के बचाने में सहायता देने के लिए हमारे जहाज़ से दूसरे इंजीनियर और दूसरे अधिकारी के निरीक्षण में दो नावें किनारे को भेजी गईं। शरणागत बीच बीच में जहाज़ पर आते रहे। लांच नौका ११ बजे लौटी। मुझसे कहा गया कि रात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में नाव फिर भेजी जाय। उस समय तक सभी अधिकारी कुशलपूर्वक जहाज़ पर लौट आये थे। कप्तान फ़िलिप्सेन और मिस्टर क्लेरेंस मार्टिन ने दो पहर और सन्ध्या को लोगों के बचाने के काम में बड़ी बहादुरी दिखाई थी।

"एम्प्रेस आव् आस्ट्रेलिया' खुलनेवाला था। जो सैकड़ों आदमी अपने बन्धु-बान्धवों को पहुँचाने आये थे वे पियर पर खड़े थे। उनमें से कुछ जहाज़ पर भी चढ़े थे। उसके खुलने में अभी कुछ देरी थी, क्योंकि उसके पीछे 'स्टील इन्वेंटर' खड़ा था। 'एंड्रेस लिबन' घाट की दूसरी ओर खड़ा था, उसकी मिशनरी ही नष्ट हो गई थी। किनारे पर होने के कारण वह अपने स्थान से नहीं हिल सकता था।

"उपर्युक्त दोनों जहाज़ों के बीच में अधिकांश शरणागत बाल बाल बच गये और सबके सब जहाज़ पर चढ़ आये। साबित कपड़ा किसी की देह पर न था। डोंगला नाम का जहाज़ सबसे अधिक समीप था, अतएव भयङ्कर रूप से आहत लोगों को बचाने में वही समर्थ हुआ।

"बीच बीच में रात में भी धक्के हुए, सम्पूर्ण घटनास्थल अग्नि के प्रकाश में जगमगा रहा था। सौभाग्यवश २ री सितम्बर की रात्रि में शान्ति रही।

"कोयला और पानी दे चुकने के बाद हार्लें नामक हमारा लॉंच दूसरी नौकाओं के साथ किनारे पर गया। फ़िलिप्सेन और मार्टीन ने जहाज़ों के पास जा जाकर शरणागतों की अदला-बदली की और वे विभिन्न प्रकार से उनकी सहायता करने लगे। इसके पीछे मैंने दूसरे अँगरेज़ कप्तानों के पास जाकर भविष्य कार्यवाही के सम्बन्ध में सलाह की। यह निश्चय हुआ कि सभी बचे बचाये लोग जहाज़ों पर चढ़ा लिये गये हैं। अब हमें उनको कोबी पहुँचा देना चाहिए। वहाँ आहतों की चिकित्सा में सुविधा है और उनके खाने-पीने आदि का भी समुचित प्रबन्ध हो सकेगा।

"सन्ध्या को पाँच बजे नोना बंडा हमारी और डोंनगोला की एक एक नाव किनारे को खींच ले गया। वह इस विचार से गया था कि यदि किसी को किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता हो या कोई जहाज़ पर ही आना चाहता हो तो उसकी सहायता की जाय। उसके द्वितीय अधिकारी ने यह सूचना दी कि इस समय किनारे पर जुर्म और हत्या प्रारम्भ है, रक्षक लोगों के नियुक्त हो जाने से व्यवस्था का स्थापन किया जा रहा है। इस सूचना की पुष्टि नेल्सन ने भी की, जो ७ बजे जहाज़ पर लौट आया था।

"रात में ११ बज कर ५० मिनिट पर एक बड़ा भारी धक्का फिर हुआ। नगर में बड़ी इमारतों के जो अवशेष भाग गिरने से बच रहे थे वे इस बार ढह गये। सभी शरणागत एकत्र किये गये। उनसे कह दिया गया कि वे अपने इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं। चाहे वे हमारे जहाज़ों पर ही सवार रहें, चाहे अपने अपने देश के जहाज़ों पर चले जायँ या यदि सम्भव होगा तो किनारे पर या उन

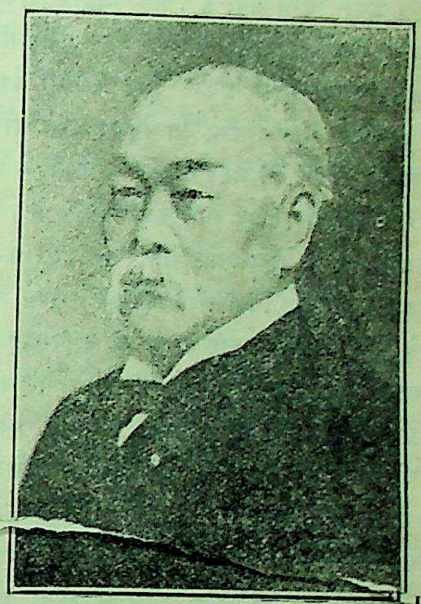

कौंट मत्सुकती।

(भूकम्प में कितने ही प्रसिद्ध व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। इन्हीं में कौंट मत्सुकती हैं। ये दो बार जापान के प्रधान सचिव हो चुके थे)

जहाज़ों पर उतार दिये जा सकते हैं जो याकोहामा में ठहरे रहेंगे।

"पिछली रात की तरह सर्वत्र आग जलती रही और धड़ाके होते रहे। बन्दरगाह जलते हुए तेल से प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। ९ बजे रात को फ़ीस्ट जहाज़ पर लाया गया। वह बहुत ही थक गया था, परन्तु देख-रेख करने पर वह शीघ्र ही सँभल गया। उसने लगातार ५ घण्टे तक पानी में रह कर काम किया था।

"३ री सितम्बर को सवेरे ७ बज कर ४५ मिनिट पर हमने याकोहामा छोड़ा और दूसरे दिन सवेरे हम कोबी पहुँचे। हमने यहाँ शरणागतों को उतारा। इसके साथ ही याकोहामा का १०० टन माल भी उतारा गया। इसके बाद हम तीन बजे दूसरे पहर मीके होते हुए रवाना हो गये।"

जापान के भूकम्प में जो लोमहर्षण घटनायें सङ्घटित हुई हैं उनकी कथा अकथनीय है। इस भीषण भूकम्प से बच निकलनेवालों में एम्प्रेस आव् आस्ट्रेलिया का उल्लेख ऊपर किया गया है। यह जहाज़ याकोहामा के बन्दरगाह से अपने आरोहियों और शरणागतों को लेकर कुशलपूर्वक जिस प्रकार बच आया वह एक अनोखी घटना है। जब भूकम्प का पहला धक्का आया तब वह जहाज़ खुलने को ही था। उसने उस धक्के के आघात को सह तो लिया, पर पड़ गया बड़ी विपत्ति में। घाट में आग लग गई थी। कप्तान केंट, जो उससे उतर कर घाट पर टहल रहे थे, बड़ी विपत्ति में पड़ गये। धक्के की चोट खाकर वे घाट के ध्वंसावशेष के बीच समुद्र में जा गिरे। जब उन्हें होश हुआ तब उन्होंने एम्प्रेस पर चले जाने का निश्चय किया। उन्हें बन्दरगाह की एक एक बात मालूम थी। अतएव जहाज़ को उस विपत्ति से निकाल ले जाने में उनसे बड़ी सहायता मिली। उस समय उसका उसके टग से सम्बन्ध भङ्ग हो गया था और वह जलते हुए घाट तथा एक जहाज़ के बीच में खड़ा था। इस जहाज़ का कप्तान मर चुका था। कप्तान केंट ने यह निश्चय किया कि विपत्ति से बचने का यही उपाय है कि एम्प्रेस आव् आस्ट्रेलिया को एक दूसरा जहाज़ बन्दरगाह से बाहर खींच ले जाय। अतएव वे उस जहाज़ पर चले गये और ऐसी कार्रवाई की कि उस भयङ्कर चिन्तापूर्ण रात के बीत जाने पर सूर्योदय के कुछ समय बाद वे दोनों जहाज़ धीरे धीरे उस स्थान से हट जाने में सफल हुए जहाँ उनका विनाश अनिवार्य था। नार्थ चायना हेरल्ड ने एम्प्रेस आव् आस्ट्रेलिया के अधिकारियों तथा नाविकों के धैर्य एवं कप्तान केंट के शौर्य की बड़ी प्रशंसा की है। यद्यपि वे सब लोग घाट की भीषण आग से अन्धे हो रहे थे, तो भी उन्होंने ३५०० शरणागतों के प्राण बचाये। यही नहीं, उन्होंने दूसरों को भी उत्साहित किया, जिससे किसी प्रकार का ऊधम या गड़बड़ न होने पाया।

जापान में गत भीषण भूकम्प के समय जो लोमहर्षण काण्ड सङ्घटित हुआ है उससे समग्र सभ्य संसार विक्षुब्ध हुआ है। संसार के हाल के इतिहास में यह भूकम्प अभूतपूर्व हुआ है। प्रशान्त महासागर का यह विचित्र रूप से सुन्दर द्वीप, जिसमें एक प्रसिद्ध उद्यमशील और धैर्यशाली जाति निवास करती है प्रलयकारी भूकम्प का शिकार हुआ है। उससे उसकी राजधानी, जिसमें २२ लाख मनुष्य निवास करते थे, क़रीब क़रीब विनष्ट हो गई और उसके एक अत्यन्त ही उन्नतिशील बन्दरगाह का, जिसमें पचास हज़ार आदमी बसते थे प्रायः नाम-निशान ही मिट गया है। लाखों आदमियों और करोड़ों की सम्पत्ति का विनाश हो गया है। भूकम्प के बाद आग लग जाने से टोकियो और याकोहामा का ही संहार नहीं हुआ है, किन्तु देश का एक विस्तृत भू-भाग, जिसमें अगणित क़स्बे और गाँव आबाद थे, विनष्ट हो गया है। जापान भूकम्प का घर है। वहाँ सदियों पहले से भूकम्प आते रहे हैं। कभी कभी उन्होंने भीषण रूप भी धारण किया है। जापानी यह बात भले प्रकार जानते हैं कि वे ज्वालामुखी के मुँह पर बसते हैं।

परन्तु इस पिछले भूकम्प ने जापान में बहुत ही अधिक परिमाण में संहार-कार्य किया है। इसका प्रभाव ओसाका और कोबी से लेकर सेंडाई तक पड़ा। कोई छः सौ मील भूभाग को इसने कम्पायमान कर दिया, परन्तु इसका भीषण रूप उपर्युक्त भूभाग के मध्य में फूजीयामा नामक जापान के प्रसिद्ध ज्वालामुखी के आस-पास के प्रदेश में प्रकट हुआ था। इस प्रदेश में जापान का सबसे अधिक उद्यमशील क्षेत्र पड़ जाता है और इसी में प्राच्य देशों का सबसे बड़ा और सुन्दर नगर टोकियो भी स्थित है तथा वह प्रसिद्ध उन्नतिशील बन्दरगाह भी जो कुछ ही वर्षों बाद अपनी समृद्धि में कलकत्ता और बम्बई को भी मात दे देता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जाता है कि अकेले टोकियो में ही पचास हज़ार आदमियों की प्राणहानि हुई है। याकोहामा में चालीस हज़ार आदमी बचे हैं। शेष मर गये या भाग गये हैं। भूकम्प से जापान का जो प्रदेश आक्रान्त हुआ है वहां इस समय लाखों आदमी बे-घरबार हो गये हैं। यही नहीं, एक रोटी के एक टुकड़े के लिए वे मोहताज हो गये हैं। इसके सिवा उन्हें सहायता पहुँचाने के साधनों का भी अभाव है। टोकियो, याकोहामा तथा दूसरे नगर इस समय खण्डहरों के ढेर बन गये हैं। इस भूकम्प से होनेवाली हानि का जो विवरण अब तक प्राप्त हुआ है वह यह है—१,०३,००० आदमी मर गये, १,२५,००० आदमी घायल हो गये, २,३५,००० आदमियों का पता नहीं है, ५,३४,००० मकान जल कर राख हो गये और लगभग १० अरब येन तक की हानि हुई।

गिरिजाशङ्कर वाजपेयी

पञ्च-पात्र ।

[सन् १९२० की बात है। एक दिन कलकत्ता में एक विशेष समाज की स्थापना हुई। इसमें किसी प्रकार का चन्दा नहीं देना पड़ता था। इसके सदस्य केवल पाँच व्यक्ति हो सकते थे, एक अँगरेज़, दूसरा फ्रेंच, तीसरा जापानी, चौथा मुसलमान और पाँचवाँ बङ्गाली। इस समाज का यह नियम था कि जब सब लोग मिल कर कोई दिन ठीक करें तब जिस सदस्य की बारी हो वह अपने देश की प्रथा के अनुसार सबको एक बढ़िया दावत दे, उसके बाद अपने ही देश की कोई कहानी कहे। इस समाज के सदस्य अपने आप ही सदस्य बन बैठे थे। अँगरेज़, जापानी और फ्रेंच के बाद बङ्गाली की बारी आई। उसने अपने मित्रों को बङ्गाल की प्रथा के अनुसार दावत दी। जब सब लोग अच्छी तरह खा-पी चुके तब कहानी प्रारम्भ हुई। बङ्गाली ने कहा—]

आप लोगों ने शायद गोविन्दराम का नाम सुना होगा। हिन्दी के बाबू गोपालराम की बदौलत उनकी विलक्षण बुद्धि की कथा हमारे देश के सभी उपन्यास-प्रेमी जान गये हैं। जब मैं कालेज में पढ़ता था तब मैं भी उनकी कहानियाँ पढ़ा करता था। भाग्यवश कलकत्ता आने पर मुझे एक मित्र की बदौलत उनके साथ कई वर्ष तक रहना पड़ा। मैंने भी उनके साथ रह कर उनकी विलक्षण बुद्धि के कई एक करिश्मे देखे। उन्हीं में से एक की कहानी आज आप लोगों को सुनाता हूँ।

एक दिन एक विज्ञापन को 'पत्रिका' में फिर छपा देख कर मैंने कहा—मालूम होता है, अभी हज़रत हवा ही खा रहे हैं।

सिर उठा कर गोविन्दराम ने पूछा—देखें तो क्या है?

"वही सन्दूकवाला आदमी। उस दिन मैंने आपको विज्ञापन पढ़ कर सुनाया तो था। आज फिर छपा है। लिखा है—माल के कमरे में तनसुखराम शङ्करलाल का जो सन्दूक रह गया है वह यदि आज से सप्ताह भर के भीतर नहीं ले लिया जायगा तो उसे नीलाम कर होटल का किराया वसूल कर लिया जायगा—गङ्गादास, काश्मीरी होटल, बर्दवान विज्ञापन की इबारत से तो अन्तिम सूचना सी मालूम पड़ती है, पर पिछले महीने से यह जब तब छपता आ रहा है। पहले विज्ञापन की मियाद लगभग तीन सप्ताह पहले समाप्त हुई थी। प्रश्न यह है कि गङ्गादास ने सन्दूक को क्यों नहीं नीलाम किया।"

गोविन्दराम ने कहा—शायद किसी क़ानूनी पेंच के कारण उसकी हिम्मत न पड़ी हो।

"देखना है कि वह कितना ख़र्च निकालता है और सन्दूक का क्या मूल्य बताया जाता है।"

इसके दो एक दिन बाद ही हमारे कमरे में एक दिन एक घबराया हुआ सज्जन घुस आया। उसने अपना नाम मनसुखराम शङ्करलाल बताया। बिना सूचना दिये ही भेंट करने आने के लिए क्षमा माँगते हुए उसने कहा—

मैं अपने वकील की सलाह से आपके पास आया हूँ। मेरा भाई तनसुखराम शङ्करलाल एक अत्यन्त ही असाधारण और भयङ्कर मामले में फँस गया है। वह इस समय पुलीस की हिरासत में है और उस पर खून करने का जुर्म लगाया गया है।

गोविन्दराम ने कहा—मामला तो सङ्गीन मालूम पड़ता है। अच्छा हो, यदि आप मुझे शुरू से ही सब हाल सुना दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनसुखराम ने कहा—"अच्छा, सुनिए। मेरा भाई जवाहरात की एक फ़र्म का ट्रैवेलिंग एजंट था। ग्राहकों को नमूने दिखलाने के लिए उसके पास कुछ माल भी रहता था। बाहर जाते समय वह उसमें से कुछ माल एक बेग में रख कर ले जाता था। बाक़ी माल घर की तिजोरी में रख जाता था। सप्ताह के अन्तिम दिन वह अपना बेग भरने के लिए घर को लौट आता था।

"मेरे भाई को दौरे पर गये लगभग दो महीने हुए। इस बार वह अपने माल के नमूने एक बड़ी सन्दूक़ में भर कर ले गया था और घर की तिजोरी ख़ाली छोड़ गया था। उसने ऐसा क्यों किया, यह मैं नहीं जानता। उसका रङ्ग-ढङ्ग बड़ा विचित्र था। एक दिन वह यहाँ से बर्दवान गया। वहाँ वह काश्मीरी होटल में ठहरा। उसने अपना सन्दूक़ होटल के माल के कमरे में रखवा दिया था। दो एक दिन बाद वह वहाँ से कलकत्ते लौट आया। यहाँ उसे अपना मकान बेंचना था। वह रात की गाड़ी से यहाँ आया था। दूसरे दिन ही वह सहसा एक जाल के मामले में फँस गया।

"बात यह हुई कि तनसुखराम एक सुनसान गली से जा रहा था। उसे वहाँ एक थैली पड़ी मिली। वह किसी पारसी रमणी का बटुआ था। उसने उसे उठा कर देखा, पर यह पता न लगा कि वह किसका है। अतएव उसने उसे अपनी जेब में इस विचार से डाल लिया कि आगे चल कर पुलीस के थाने में जमा कर दूँगा। उस गली से निकल कर वह ट्रामगाड़ी पर सवार हो गया। उसके पीछे एक सुन्दर पारसी रमणी भी उसमें आ चढ़ी और उसके पास ही कुछ हट कर बेंच पर बैठ गई। इतने में ही कंडक्टर को किराया लेने के लिए आते देख वह अपनी जेब घबराहट से टटोलने लगी। इसके बाद उसने तनसुखराम से ज़ोर से कहा कि मेरा बटुआ दे दो। तनसुखराम ने कहा कि मेरे पास तुम्हारा बटुआ नहीं है। इस पर उस स्त्री ने ट्राम खड़ी करने और पुलीस बुलाने को आवाज़ दी।

"कंडक्टर ने गाड़ी रोक दी। उसके साथ ही एक कांस्टेबल गाड़ी पर चढ़ आया। पहले उसने गाड़ी में इधर-उधर झाँक-झूँक कर देखा, पर बटुआ न दिखाई दिया। तब उसने कंडक्टर का नाम और नम्बर नोट कर मेरे भाई और उस स्त्री को ट्राम से उतार लिया और उन्हें थाने ले गया। थाने में उस स्त्री ने अपने बटुए के सम्बन्ध में बयान दिया। उसे सुन कर मेरा भाई चकित हो गया क्योंकि उसने अपने बटुआ की जो हुलिया बताई वह उस बटुए से ज्यों की त्यों मिल गई जो उसे पूर्वोक्त गली में पड़ा मिला था। अतएव उसने तुरन्त बटुए को अपनी जेब से निकाल कर दारोग़ा के आगे रख दिया और जिस प्रकार वह उसे मिला था, सब हाल थोड़े में कह सुनाया। पर दारोग़ा को उसके बयान पर विश्वास न हुआ। तब यह समझ कर कि मैं अवश्य सजा पा जाऊँगा, मेरे भाई ने अपना कल्पित नाम बताया और पता देने से इन्कार किया। उस पर वह रात भर हिरासत में रक्खा गया, दूसरे दिन मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित किया गया। मजिस्ट्रेट ने ज़मानत लेनी न स्वीकार की और उसका मामला अलीपुर की अदालत को भेज दिया। मुक़द्दमें की पेशी एक महीने तक बढ़ती रहने के कारण उसे तब तक जेल की हिरासत में रहना पड़ा।

"परन्तु इस बीच में उक्त पारसी रमणी कलकत्ते से न मालूम कहाँ चली गई। पुलीस के बहुत कुछ पता लगाने पर भी उसका पता न लगा। अतएव मेरे भाई के ऊपर से मुक़द्दमा उठा लिया गया और वह साफ़ छूट गया। घर आते समय मार्ग में उसने पत्रिका की एक कापी ख़रीदी। ट्राम पर बैठे बैठे उसने ज्यों ही उसे खोल कर पढ़ना चाहा, त्यों ही उसकी नज़र सबसे पहले एक विज्ञापन पर जा पड़ी—

मैंने कहा—उसी सन्दूक़ के सम्बन्ध का?

"हाँ, वही। क्या आपने उसे पढ़ा है? अच्छा, सुन। देख कर उसका चिन्तित होना स्वाभाविक था, क्योंकि सन्दूक़ में क़ीमती चीज़ें थीं। ट्राम से उतर कर उसने तत्काल काश्मीरी होटल के मैनेजर के नाम बर्दवान को तार दिया। उसने सूचना दी कि मैं कल अपना सन्दूक़ लेने आऊँगा। अतएव दूसरे दिन सवेरे की गाड़ी से वह बर्दवान गया। वहाँ पहुँचने पर वह सीधा काश्मीरी होटल गया। वहाँ उसकी प्रतीक्षा पहले से ही की जा रही थी। मैनेजर के कमरे में घुसते ही उसे वहाँ पुलीस के तीन अधिकारी देख पड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने तुरन्त उसे ख़ून के अपराध में गिरिफ़्तार कर लिया। परन्तु इस अपराध का विवरण बतलाने के पहले मैं आपको उसकी गृहस्थी का कुछ हाल बता दूँ तो आप इस मामले को भले प्रकार समझ सकेंगे।

"खेद के साथ कहना पड़ता है कि मेरे भाई ने एक स्त्री रख ली थी। पहले उसका उस स्त्री के साथ विवाह करने का विचार हुआ था, परन्तु न मालूम क्या सोच-समझ कर उसने वैसा दुस्साहस नहीं किया। वह स्त्री बड़ी भयङ्कर निकली। उसके कारण मेरे भाई को बड़ी ज़िल्लत उठानी पड़ी। वह बड़ी उद्धत स्वभाव की थी, बहुत शराब पीती थी। शराब के नशे में वह बड़ा उपद्रव करती थी, कभी कभी तो मेरे भाई के साथ हाथा-पाई तक कर बैठती थी। वह नाटक-मण्डलियों में काम कर चुकी थी, उसका दूसरे लोगों के साथ भी निन्दाजनक सम्बन्ध हो गया था। उनमें से एक का नाम परशुराम था।

"मेरा भाई उस स्त्री के साथ वर्षों तक रहता रहा। इधर उसका परिचय एक दूसरी स्त्री से हो गया। यह बड़ी योग्य स्त्री थी। इसने कहा कि यदि तुम सद् गृहस्थ की भाँति भले प्रकार रोज़ी-धन्धों में लग जाओ तो मैं तुम्हारे साथ विवाह कर लूँगी। अतएव एक दिन जब मेरे भाई के साथ वह स्त्री, जिसका नाम चमेली बाई था, फिर झगड़ पड़ी और उसने बड़ा हो-हल्ला मचाया तब मेरे भाई ने उसे घर से निकाल दिया और कहा कि बस, आज से मेरा तुम्हारा सारा सम्बन्ध टूट गया। जहाँ तुम्हारा जी चाहे, जाकर रहो।

"परन्तु वह स्त्री एक ही थी। वह मेरे भाई के पीछे पड़ गई। पिछली बार जब वह उसके घर गई तब दरवाज़े पर अड़ गई और इतना अधिक हो-हल्ला मचाया कि महल्ले भर के आदमी एकत्र हो गये। यह देख कर उसको लाचार होकर घर का दरवाज़ा खोल देना पड़ा। उस दिन वह मेरे भाई के घर में कई घण्टे तक रही और रात में दस बजे के लगभग चुपचाप घर से फिर चली गई। उसे घर से जाते किसी ने नहीं देखा। यही ग़ज़ब की बात हुई। क्योंकि जब से वह घर से गई, अभी तक उसको किसी ने कहीं नहीं देखा है। उस रात को वह अपने रहने के स्थान को नहीं गई। वह लोप सी हो गई। उसका जो कुछ पता लगा वह बर्दवान के काश्मीरी होटल में।

"चमेली के ख़ून के अपराध में जब मेरा भाई गिरिफ़्तार किया गया तब उसे उसके अपराध की कुछ बातें बताई गई थीं। तार पाने पर जब मैं बर्दवान दौड़ा गया तब मुझे भी कुछ बातों का पता मिला। वे सब मैं आपको बताता हूँ। मेरे भाई के कलकत्ते लौट आने के कोई पन्द्रह दिन बाद एक दिन यात्रियों ने होटल के मैनेजर से कहा कि जिस कमरे में हम लोगों का माल-असबाब रक्खा जाता है उसमें बड़ी ख़राब बू आ रही है। इस पर मैनेजर ने जाकर देखा, बात सच निकली। यह पता भी शीघ्र ही लग गया कि मेरे भाई के सन्दूक़ से बदबू निकल रही है। सन्दूक़ के वहाँ पन्द्रहियों से पड़ा रहने के कारण उसे और भी सन्देह हो गया। उसने तत्काल पुलीस को सूचना दी। वहाँ की पुलीस ने कलकत्ता की पुलीस को टेलीफ़ोन किया। यहाँ जाँच करने पर मेरे भाई का घर बन्द मिला और उसका पता भी उन्हें कुछ न मिला।

"इस जाँच के बाद बर्दवान की पुलीस ने उस सन्दूक़ को खोल डाला। उसमें उन्हें एक स्त्री का बायाँ हाथ मिला और ख़ून के दाग़ लगे कुछ कपड़े भी मिले। इस पर उन लोगों ने उपर्युक्त विज्ञापन अख़बारों में दिया। वे गुप्त-रीति से अपनी जाँच भी करते रहे। जाँच से मालूम हुआ कि मेरा भाई बर्दवान में कुछ समय तक रह कर वहाँ के रईसों से अपने कारबार के सम्बन्ध में भेट करता रहा। कभी कभी वह सन्ध्या-समय शहर के बाहर एक सुनसान तालाब के किनारे पर हवा खाने को आया-जाया करता था। इस ख़बर को पाकर पुलीस ने उस तालाब में जाल डलवाये। वहाँ उन्हें एक लाश का दाहना हाथ और एक पैर जिसके तीन खण्ड कर दिये गये थे मिले। ये भी किसी स्त्री के ही मालूम पड़ते हैं।

"जो हाथ सन्दूक़ में मिला था उस पर एक फूल के ऊपर च० बा० और नीचे ज० बा० वर्ण गुदे थे। कुछ ही जाँच करने पर यह पता लग गया कि चमेली के बायें हाथ पर ऐसा ही गोदना गुदा था। कुछ आदमियों को, जो उससे परिचित थे, वह हाथ दिख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाया गया। उन्होंने देखते ही कह दिया कि इस प्रकार का चिह्न चमेली के हाथ पर था। और पता लगाने से यह बात प्रकट हुई कि चमेली को जीवित दशा में अन्तिम बार लोगों ने मेरे भाई के घर में घुसते देखा था। इस सूचना पर पुलीस ने उसके घर में घुस कर तलाशी भी ली।

गोविन्दराम ने पूछा—क्या पुलीस को वहाँ कुछ मिला?

मनसुखराम ने कहा—मैं नहीं कह सकता, पर मुझे समझ पड़ता है कि पुलीस के हाथ कुछ ज़रूर लगा है। बर्दवान में तो उनका व्यवहार अच्छा रहा, परन्तु कोई बात बताने से उन्होंने साफ़ इनकार कर दिया। ख़ैर, जाँच के समय हमें बहुत कुछ हाल मालूम हो जायगा।

गोविन्दराम ने पूछा—आपको बस इतना ही कहना है?

मनसुखराम ने कहा—हाँ, इतना काफ़ी है। अब प्रश्न यह है कि क्या आप अपराधी की ओर से इस मामले की जाँच करेंगे?

गोविन्दराम ने कहा—अधिक से अधिक जो मैं कर सकता हूँ वह इस मामले की खोज है। यदि खोज के परिणाम से आपके भाई के विरुद्ध सन्देहों की ही पुष्टि हुई तो मैं इस मामले को वहीं से छोड़ दूँगा। तब आप फ़ौजदारी मामले के किसी साधारण बैरिस्टर को कर लीजिएगा। और यदि ऐसे समुचित प्रमाण मिल गये जिनसे आपका भाई मुझे निर्दोष जँचेगा तो मैं इस मामले की पूरी जाँच करूँगा। परन्तु दो एक बातें साफ़ हो जानी चाहिए। पहले आप यह बतलाइए कि आपके भाई ने इस सम्बन्ध में कुछ बताया है कि उसके सन्दूक़ में वे चीज़ें कैसे पहुँचीं।

"उसका अनुमान है कि काश्मीरी होटल में किसी ने जवाहरात की चीज़ें निकाल कर उनके स्थान में उन्हें सन्दूक़ में रख दिया है"।

गोविन्दराम ने कहा—यह तो सम्भव है। परन्तु ऐसा काम किसने किया होगा, इस सम्बन्ध में भी आपके भाई ने क्या कुछ अनुमान किया है? क्या ऐसा कोई आदमी है जो चाहता हो कि वह स्त्री मार डाली जाय?

मनसुखराम ने कहा—नहीं। उस स्त्री से अनेक लोग रुष्ट थे, परन्तु मेरे भाई को छोड़ कर ऐसा एक भी नहीं हो सकता है जिसका विचार उसे मार डालने का रहा हो।

"आपने एक आदमी का उल्लेख किया है, जिससे उस स्त्री की घनिष्ठता थी। क्या इन दोनों में कोई झगड़ा या मैत्री-विच्छेद कभी हुआ था?"

"नहीं। उनमें गहरी साँठ गाँठ थी। इसके सिवा परशुराम पर उसकी किसी बात की ज़िम्मेदारी भी नहीं थी।"

गोविन्दराम ने पूछा—क्या आप परशुराम के सम्बन्ध में कुछ जानते हैं?

"बहुत कम। वह एक जगह पर कभी नहीं रहा है, सब प्रकार के काम कर चुका है। वह धुआँ खाई हुई मनुष्य की खोपड़ियाँ भी अजायब-घरों में बेंचा करता था। उसको इस व्यवसाय का अनुभव पहले से रहा होगा"।

गोविन्दराम ने कहा—परन्तु अङ्ग-विच्छेद करने का नहीं। जैसा आप कहते हैं, परशुराम को चमेली के मारने का कोई उद्देश नहीं हो सकता। चाहे ऐसा करने को उसे अवसर भी मिला हो। परन्तु आपके भाई के सम्बन्ध में दोनों बातें थीं—उसका उद्देश भी था और उसे अवसर भी था। क्या आपके भाई ने उस स्त्री को कभी धमकाया भी था?

मनसुखराम ने कहा—हाँ, कई बार और लोगों के समक्ष भी मेरे भाई ने उसे ख़तम कर डालने को कहा था। निस्सन्देह, उसने वैसा करने का विचार कभी नहीं किया। वह वास्तव में बड़ा सरलचित्त था। परन्तु ऐसा काम करना बड़ी मूर्खता की बात थी।

गोविन्दराम ने कहा—अच्छा, मैं इस मामले पर विचार करूँगा। परन्तु मैं यह बात आपको बतला देना चाहता हूँ कि मामले का रुख़ उत्साहजनक नहीं है।

कुर्सी पर से उठते हुए मनसुखराम ने कहा—मैं यह सब समझता हूँ। परन्तु हमें अच्छे परिणाम की ही आशा करनी चाहिए। यह कह कर उसने अपने नाम का कार्ड मेज़ पर रख कर उदासी से हाथ मिलाया और वह चुपचाप चला गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मनसुखराम चला गया तब मैंने कहा—परन्तु मामले को जैसा का तैसा मान लेने से काम नहीं चलेगा। इतना अधिक निराशा-जनक मामला, मेरी समझ में, हमें कभी नहीं मिला।

गोविन्दराम ने कहा—पर सवाल यह है कि मामले का जैसा रूप देख पड़ता है क्या उसका असली रूप यही है। यदि वह ऐसा है तब तो मुक़द्दमे की पैरवी क्या होगी। एक रस्म सी पूरी की जायगी।

मैंने कहा—क्या आप अपनी खोज बर्दवान से शुरू करेंगे?

गोविन्दराम ने कहा—हाँ, वहीं से। जो बातें मालूम हुई हैं पहले उन्हें जाँचेंगे। यदि वे ठीक निकलीं तो सम्भवतः हमें इस मामले को वहीं से छोड़ देना पड़ेगा। अब हमको अधिक समय नष्ट न करना चाहिए। आज का काम हमें मुलतबी कर बर्दवान के लिए तुरन्त रवाना होना चाहिए।

बात की बात में हम लोग तैयार हो गये। गोविन्दराम ने खोज-सम्बन्धी अपना बेग सँभाल कर ले लिया। अपने सहकारी गङ्गोली बाबू को रसायन-शाला-सम्बन्धी आवश्यक काम समझा कर मैं भी तैयार हो गया। फिर हम लोग हवड़ा को रवाना हुए।

बर्दवान पहुँचने पर टिकट देकर ज्योंही हम स्टेशन से बाहर निकले, त्यों ही हमें मिस्टर मिलर एक ओर से अपनी ओर आते दिखाई दिये। पास आकर उन्होंने आश्चर्य से कहा—अच्छा, बड़ी ख़ुशी की बात है, आप लोगों से अनायास ही भेट हो गई। कहीं आप यहाँ के सन्दूक़वाले मामले के सम्बन्ध में तो नहीं आये हैं?

गोविन्दराम ने कहा—हाँ।

मिलर ने कहा—तब तो आपका समय ही नष्ट होगा। इसके सिवा यश-प्राप्ति की भी आशा नहीं है। मैं आपको एक गुप्त बात बता देना चाहता हूँ कि मैंने कलकत्ते में शङ्करलाल के घर की तलाशी ली थी। यद्यपि यह उतनी आवश्यक नहीं थी, तथापि इससे उसके फाँसी पर लटकने के लिए और भी पुष्टि हो गई।

गोविन्दराम ने पूछा—आपको उसके घर में क्या मिला?

मिलर ने कहा—हमें उसके सोने के कमरे में अलमारी के भीतर 'हाइओसीन' की एक बोतल मिली। वह एक तिहाई ख़ाली थी। ख़ैर, यह कोई वैसी बात नहीं थी। परन्तु जब हम एक कोठरी के भीतर गये तब हमें वहाँ कुछ बदबू सी मालूम पड़ी, जैसे कहीं कोई मुर्दा गड़ा हो। अतएव हम अपने दाहने-बाँये जाँच करने लगे। कोठरी की फ़र्श पत्थर की थी। उसकी कोई पटिया उखाड़ी गई सी भी नहीं मालूम दी। हम उसे खोद कर देखना नहीं चाहते थे। अतएव हमने एक घड़ा जल मँगाया और उसे फ़र्श पर उँड़ेल दिया। इसके बाद हम वहाँ खड़े होकर ध्यान से देखने लगे। क्षण ही भर में बीच की एक बड़ी पटिया पर का पानी सूख गया, पर दूसरी पटियों पर पानी जैसा का तैसा पड़ा रहा। मैंने तुरन्त उस पटिया को खोदवाया। उसके नीचे एक बंडल सा मिला, जिसमें किसी की लाश के कुछ अवयव बँधे थे।

गोविन्दराम ने पूछा—क्या हड्डियाँ थीं?

"नहीं। सीने पर के कुछ अङ्गविशेष। हमने उन्हें सरकारी विशेषज्ञों के हवाले किया। उन्होंने जाँच कर बताया कि वे किसी बीस वर्ष उम्रवाली स्त्री की लाश के हैं। चमेली की भी लगभग यही उम्र थी। उन्होंने यह भी बताया कि भिन्न भिन्न अवयवों में 'हाइओसीन' भी अधिक परिमाण में मिला है, जो उसको मारने के लिए काफ़ी से अधिक था। मामले का ऐसा रुख़ है। यदि आप इस मामले में हाथ लगायेंगे तो इसमें आपको कीर्ति-लाभ की अधिक सम्भावना नहीं है।

गोविन्दराम ने कहा—मिस्टर मिलर, इस गुप्त बात के बतलाने के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। यद्यपि मैंने अभी मुक़द्दमा नहीं लिया, तो भी इससे बड़ी सहायता मिलेगी। मैं केवल मामले की जाँच करने के लिए आया हूँ। और जब मैं आ ही गया हूँ तब सब बातें देख ही क्यों न लूँ। अच्छा तो वे सब चीज़ें कहाँ देखने को मिलेंगी?

"मुर्दा-घर में। आइए। मेरे पास उसकी चाभी है। मैं आपको दिखला दूँगा।"

हम लोग मिस्टर मिलर के साथ मुर्दा-घर गये। वहाँ पहुँच कर उसने दरवाज़ा खोला और हम लोगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर करके उसे बन्द कर लिया। इसके बाद एक मेज़ की ओर इशारा करके उसने कहा—जो कुछ देखना था, मैंने देख लिया है। वे सब उसी पर रक्खी हैं। यह कह कर वह एक कोने में जा खड़ा हुआ और सिगार पीने लगा।

लाश के उपलब्ध अवयवों से कुछ भी पता नहीं लगा। जो कुछ जाँच हुई, मुख्यतः उसी बायें हाथ की हुई। उसके गोदना को मैंने भी ख़ूब ध्यान से देखा। एक फूल के ऊपर नीचे सुडौल बड़े बड़े दो दो अक्षर साफ़ देख पड़ते थे। ऊपर के च० बा० से चमेली बाई का नाम समझा जा सकता था; पर ज० बा० से किसका अनुमान किया जाय, यह समझ में न आया। अतएव मैं भी मिलर के पास जाकर खड़ा हो गया। यह मामला बहुत ही लचर था। अपराध स्पष्ट सिद्ध था। इस कारण मैं उस पर और अधिक विचार करने को न प्रवृत हुआ।

परन्तु गोविन्दराम ने मेरी तरह इस मामले को नहीं लिया था। वे उन चीज़ों को बड़े गौर से देख रहे थे, उन्होंने एक एक चीज़ देखी और उन्हें नाप-जोख कर उनके नोट ले लिये। यही नहीं, उन्होंने हाथ की एक एक अँगुली बड़े ध्यान से देखी और प्रत्येक की अलग अलग छाप ले ली। उन्होंने उस गोदने के फूल और वर्णों को तो और भी अधिक ध्यान से देखा। यही नहीं, एक बार छोटे सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र से और दूसरी बार एक बहुमूल्य सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र निकाल कर उसकी जाँच की।

गोविन्दराम को एक ऊँचे दर्जे के सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र के उस गोदने पर लगाते देख कर सुपरिंटेंडेंट ने मुझसे धीरे से कहा—अक्षय बाबू, इस प्रकार सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र के प्रयोग की आपके मित्र को धीरे धीरे आदत सी पड़ती जाती है। जिन अक्षरों को कोई २० फ़ुट की दूरी से स्पष्ट पढ़ सकता है उन्हें देखो, आप अपने सूक्ष्म-वीक्षण-यन्त्र से कितने ध्यान से पढ़ रहे हैं।

परन्तु गोविन्दराम ने इस कटाक्ष की ओर ध्यान ही नहीं दिया। वे अपनी जाँच में पूर्ववत् लगे रहे। मेज़ पर रक्खी हुई चीज़ों की जाँच करके वे सन्दूक़ को देखने-भालने लगे। उन्होंने अपने नोट-बुक में सन्दूक़ बनानेवाले और उसमें लगे हुए तालों के बनानेवाले के नाम लिख लिये। इस प्रकार एक एक चीज़ को ख़ूब अच्छी तरह देख-भाल कर उन्होंने अपनी जाँच समाप्त करके पूछा—यहाँ से काश्मीरी होटल कितनी दूर होगा?

मिलर ने कहा—आइए, थोड़ी ही दूर तो है। चलो, मैं वहाँ भी आपकी जाँच का सुभीता कर दूँगा। परन्तु गोविन्द बाबू आप अपना समय व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं। मुर्दा घर में ताला लगा चुकने के बाद उसने फिर कहा—तनसुखराम का कथन कहाँ तक विश्वसनीय हो सकता है, ज़रा सोचो तो, एक आदमी एक सन्दूक़ में किसी की लाश के अवयव भर कर काश्मीरी होटल जैसे स्थान में लाता है और उसे माल के कमरे में जमा करने के बाद उसके भीतर की चीज़ें निकाल कर उन्हें दूसरे के सन्दूक़ में रख देता है। क्या कोई यह सब कार्रवाई उस स्थान में सफलतापूर्वक कर लेगा? मेरी समझ में तो यह बात नहीं धँसती।

होटल में पहुँचने पर मैनेजर ने हम लोगों को सादर ग्रहण किया। जब उसे हमारे आगमन का कारण मालूम हुआ तब वह हमें एक एकान्त कमरे में ले गया। सबके बैठ जाने के बाद गोविन्दराम ने कहा—मैं यह जानना चाहता हूँ कि तनसुखराम का कथन कहाँ तक सम्भव हो सकता है। क्या उस कमरे में एक सन्दूक़ से कुछ निकाल कर दूसरे में रख देना सम्भव हो सकता है? होटल के मैनेजर ने स्पष्ट शब्दों में कहा—बिलकुल असम्भव है। उस कमरे में कोई न कोई प्रत्येक समय अवश्य बना रहता है। दिन में तो वैसा करना कदापि सम्भव नहीं और रात में तो और भी असाध्य समझिए, क्योंकि उस समय हमारा ताला पड़ जाता है।

"तनसुखराम के चले जाने और सन्दूक़ का भेद खुलने के बीच के समय में क्या कोई अपरिचित आदमी आपके होटल में आकर ठहरा था?"

"हाँ, द्वारकादास नामक एक सज्जन आये थे। उनके दो ट्रङ्क भी माल के कमरे में रक्खे गये थे। श्रीमती सावित्री देवी नाम की एक विदुषी महिला भी आई थीं। उनका सामान भी माल के कमरे में रक्खा गया था। एक दो और सज्जन भी आये थे। उनके नाम आप रजिस्टर में देख सकते हैं। मैं उसे लिये आता हूँ।"

रजिस्टर देखने और उससे यात्रियों के नाम-धाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोट कर लेने के बाद गोविन्दराम ने कहा—चलो, अब उस कमरे को भी देख लें ।

जब हम लोग कमरे को देख कर लौटने लगे तब राह में गोविन्दराम ने मिलर से पूछा—इस नाटक का मुख्य पात्र तनसुखराम कहाँ है ?

मिलर ने कहा—नहीं, आज वह यहीं पुलीस-स्टेशन की हवालात में है । क्या आप उससे भी मिलना चाहते हैं ? पुलीस-स्टेशन तक चलना पड़ेगा ।

हम लोग तनसुखराम से मिलने के लिए पुलीस-स्टेशन गये । वह थाने की हवालात में बन्द था । उससे हमारा परिचय देकर मिलर पहरेवाले को भी अपने साथ लेकर वहाँ से हट गया । गोविन्दराम ने पूछा—तनसुखरामजी, यदि आप यह चाहते हों कि मैं आपके मामले की पैरवी करूँ तो मुझे उसकी सब बातें मालूम होनी चाहिएँ । इस मामले का जो हाल मुझे आपके भाई ने बताया है उससे अधिक यदि आप कोई बात बताना चाहें तो बता दें ।

तनसुखराम ने अपना सिर हिलाकर कहा—मैं इस मामले में आपसे अधिक नहीं जानता । सबका सब जाल है । परन्तु कोई इस पर क्यों विश्वास करने लगा, क्योंकि मेरे विरुद्ध प्रबल प्रमाण हैं । मैं ईश्वर को साक्षी करके कहता हूँ कि मेरा इस मामले से ज़रा भी सम्बन्ध नहीं है । मेरे सन्दूक़ में जवाहरात के नमूने ही थे और जब से मैंने उसे होटल में रक्खा तब से उसे फिर नहीं खोला ।

"क्या आप किसी ऐसे आदमी को जानते हैं जो चमेली को मार डालना चाहता हो" ?

तनसुखराम ने कहा—नहीं, एक भी नहीं । उसके सभी परिचित उससे सन्तुष्ट थे । एक मुझी को उसने नचनी नाच नचाया था । मैं नहीं समझता कि उसका कोई शत्रु होगा ।

गोविन्दराम ने कहा—आपके घर में कुछ 'हाइओसीन' मिला है । उसके सम्बन्ध में आप क्या कहते हैं ?

"हाँ, दाँत का दर्द होने पर मैंने उसे मँगाया था । परन्तु उसका उपयोग मैंने कभी नहीं किया । मेरे डाक्टर ने मुझे दन्त-चिकित्सक के पास जाने की सलाह दी । अतएव उसकी बोतल तक मैंने कभी नहीं खोली । उसमें १०० टिकियाँ थीं ।"

गोविन्दराम ने पूछा—और वह सन्दूक़ आपके पास कब से है ?

"उसे छः महीने हुए मैंने मेहता कम्पनी से ख़रीदा था ।"

"तो आपको मुझसे कुछ भी नहीं कहना है ।"

तनसुखराम ने उत्तर दिया—नहीं, पर एक बात पूछना चाहता हूँ । क्या आप मेरे मामले में कोशिश करेंगे ? मुझे तो बहुत कम आशा है, पर एक बार प्रयत्न करके अवश्य देखना चाहिए ।

मैंने गोविन्दराम की ओर इस मतलब से देखा कि देखें वे क्या उत्तर देते हैं । उनका उत्तर सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ । उन्होंने कहा—तनसुखरामजी, इस प्रकार हताश होने का कोई कारण नहीं है । मैं आपके मुक़द्दमे की जाँच करूँगा । मुझे आपके छूट जाने की पूरी आशा है ।

गोविन्दराम बहुत समझ-बूझ कर बात करते थे । वे जो बात कहते थे उसे पूरी करते थे । मुझे तत्काल विश्वास होगया कि तनसुखराम के बरी हो जाने के लिए कोई प्रमाण अवश्य मिल गया होगा । उनकी बात सुन कर मिस्टर मिलर बड़े चकित हुए, क्योंकि उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि मैं इस मामले की जाँच करूँगा । सुपरिंटेंडेंट को इस प्रकार चक्कर में डाल कर हम लोग लौटती गाड़ी से कलकत्ते उसी दिन चले आये ।

बर्दवान-स्टेशन से गाड़ी के छूटते ही मैंने गोविन्दराम से पूछा—रिहा हो जाने का भरोसा आपने तनसुखराम को किस बुनियाद पर दिया है ? मुझे तो उसके छूटने की ज़रा भी सम्भावना नहीं देख पड़ती ।

मेरी ओर गम्भीरता से देख कर गोविन्दराम ने कहा—अक्षय बाबू, आपने इस मामले पर विशेष ध्यान नहीं दिया है । अगर आपने मनसुखराम के कथन को ध्यान से सुना है तो आपको मालूम हुआ होगा कि उसमें कुछ विचित्र और स्पष्ट सङ्केत हैं और यदि आपने लाश के अवयवों को ध्यान से भले प्रकार देखा है तो उनसे उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्केतों का समर्थन बड़े ही विचित्र ढङ्ग से होता हुआ आपको मालूम होगा।

मैंने कहा—मनसुखराम के बयान में तो केवल मावरी सिरों की ही एक ऐसी बात है जिस पर कुछ ध्यान दिया जा सकता है। परन्तु आपने ही यह भी कहा था कि उनका व्यवसायी अङ्ग-विच्छेद की क्रिया नहीं करता है।

कुछ अधीरता के साथ गोविन्दराम ने अपना सिर हिला कर कहा—अक्षय बाबू, यह बात नहीं है। कोई भी मूर्ख लाश को काट सकता है जैसे कि यह लाश काटी गई है। मनसुखराम के कथन से यह बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि तनसुखराम ने इस स्त्री का वध नहीं किया और न उसकी लाश ही काटी-कूटी है। लाश के प्राप्त अवयवों से भी इसका पूर्णरूप से समर्थन होता है। मनसुखराम के कथन पर ध्यान देने से आपके ध्यान में मेरी बात जम जायगी।

परन्तु इस मामले में गोविन्दराम कल्पना से बहुत अधिक काम ले रहे थे। मनसुखराम के कथन पर मैं दो एक दिन बाद तक विचार करता रहा। और जितना ही अधिक मैं उस पर विचार करता, उतना ही अधिक तनसुखराम मुझे अपराधी समझ पड़ता।

इसके बाद मैंने गोविन्दराम को इस मामले के सम्बन्ध में कोई कार्रवाई करते नहीं देखा। मैंने सोचा कि शायद वे जाँच की प्रतीक्षा में हों। यह सच है कि एक दिन जब वे मेरे साथ शहर गये और मुझे बड़ा बाज़ार के नुक्कड़ पर छोड़ कर शैलेन्द्र कम्पनी की दूकान में जा घुसे तब मुझे इस बात का विचार हुआ कि वे निस्सन्देह तनसुखराम के सन्दूक़ के ताले की जाँच कर रहे हैं। इसी प्रकार जब एक दिन मैंने अपनी रसायनशाला के सहकारी गङ्गोली बाबू को बग़ल में छाता दबाकर चुपचाप दूकान से बाहर जाते देखा तब भी मैंने यही सोचा कि शायद वे भी तनसुखराम के मामले की जाँच के सम्बन्ध में भेजे गये हैं। परन्तु गोविन्दराम से मुझे कुछ भी नहीं मालूम हुआ।

तहक़ीक़ात की तारीख़ बढ़ा दी गई थी। आशा हुई थी कि शायद लाश के कुछ और अङ्ग मिल जायँ। इस तारीख़ के चार छः दिन पहले एक दिन सन्ध्या-समय कमरे में मेज़ और कुर्सियाँ झाड़-पोंछ कर करीने के साथ रक्खी जाने लगीं। यह रङ्ग-ढङ्ग देख कर मुझे तुरन्त मालूम हो गया कि आज कोई आनेवाला है। मुझे चकित सा देख गोविन्दराम ने कहा—मिस्टर मिलर को मैंने आज चाय पीने को बुलाया है। वे आते ही होंगे। मैंने तनसुखराम के मामले की जाँच कर ली है। अब मैं उसे अपने हाथ में लेता हूँ।

मैंने कहा—क्या आप बाज़ी मार ले जायँगे? मान लीजिए कि पुलीस को तब भी विश्वास न हो, वह आपके तर्कों को काट दे।

गोविन्दराम ने कहा—वह ऐसा नहीं करेगी, कर भी नहीं सकती। मिथ्या कल्पना पर यदि यह मामला चलाया जायगा तो बड़ा भारी अन्याय होगा। लो, मिस्टर मिलर भी आ गये।

मिलर को देखते ही हम लोगों ने उसका स्वागत किया। कमरे के भीतर जाकर वह एक कुर्सी पर बैठ गया। शिष्टाचार के रूप में पहले सीगार दिये जाने की प्रतीक्षा न कर उसने अपनी जेब से एक लिफ़ाफ़ा निकाला। फिर वह गोविन्दराम की ओर आश्चर्य-भरी दृष्टि से देखने लगा। उसने कहा—

गोविन्द बाबू, आपके इस पत्र का मतलब तो मेरी समझ में कुछ भी नहीं आया। आप तनसुखराम के मामले का यथार्थ हाल हमें बताने को कहते हैं। परन्तु उसे तो हम पहले से ही जानते हैं। हमें विश्वास है कि वह अपराधी सिद्ध होगा।

मन्द मन्द मुसकाते हुए गोविन्दराम ने उत्तर दिया—मैं अपनी बात थोड़े में कहे देता हूँ। मिस्टर मिलर, आपने यथार्थ अपराधी को क़ैद नहीं किया, आपको असली सन्दूक़ नहीं मिला और लाश भी आपने दूसरे की ही पाई है।

यह सुन कर सुपरिंटेंडेंट अचकचा गया। मेरा भी वही हाल हुआ। वह गोविन्दराम के शान्त मुख की ओर कुछ क्षण तक चुपचाप आश्चर्य से ताकता रहा। इसके बाद बोला—

परन्तु जनाब डाक्टर साहब, यह सरासर मूर्खता है। कम से कम जान तो ऐसा ही पड़ता है, यद्यपि मैं जानता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हूँ कि ऐसा नहीं हो सकता । अच्छा, पहले लाश ही से चलो । आप कहते हैं कि वह असली लाश नहीं है ।

"हाँ, चमेली कुछ बड़ी थी । वह पाँच फ़ुट सात इंच थी । परन्तु जिस स्त्री की यह लाश है वह पाँच फ़ुट चार इंच से अधिक ऊँची नहीं थी ।"

मिलर ने कहा—वाह ! आप लाश के टुकड़ों से यह अन्तर नहीं निकाल सकते । आप तो उसका गोदना भूले ही जाते हैं । वह पहचान का एक दृढ़ प्रमाण है । उसके आगे एक भी सन्देह नहीं ठहर सकता ।

गोविन्दराम ने कहा—आप ठीक कहते हैं । गोदना सचमुच एक प्रबल प्रमाण है । चमेली के बाँये हाथ पर गोदना था, पर इस स्त्री के हाथ पर नहीं था ।

मिलर चीख़ सा उठा । आवेश में आकर वह कुर्सी के बिलकुल किनारे आ गया था । मुझे भय हुआ कि यदि वह ज़रा भी आगे फिर खिसका तो ज़मीन पर जा पहुँचेगा । उसने कहा—नहीं था ! क्यों नहीं, मैंने देखा है । और आपने भी देखा है ।

गोविन्दराम ने कहा—मैं उस स्त्री के सम्बन्ध में कह रहा हूँ, उसके शरीर के सम्बन्ध में नहीं । जो गोदना आपने देखा है वह मृत्यु के बाद बनाया गया है । इससे सिद्ध होता है कि जीवितावस्था में वह नहीं था ।

सुपरिंटेंडेंट ने कहा—भगवन् ! अच्छा, क्या आपको इस बात का पूरा विश्वास है कि वह मृत्यु के बाद बनाया गया है ।

"बेशक ! बढ़िया सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र से देखने में भूल नहीं हो सकती । आप जानते हैं कि गोदना कैसे गोदा जाता है । पहले चमड़े पर रङ्ग पोत दिया जाता है । फिर उसे बारीक सुइयों से कोंचते हैं । जीवित चमड़े के सुई के छेद तुरन्त भर आते हैं और बाद को उनका चिह्न तक नहीं रह जाता, परन्तु मुर्दा चमड़े के छेद जैसे के तैसे बने रहते हैं और सूक्ष्म-वीक्षण यन्त्र से उन्हें कोई भी सहज ही देख सकता है । इस मामले में चमड़ा ख़ूब अच्छी तरह धोया गया है और उस पर कोई चिकनी वस्तु जमा दी गई है, तो भी सुई के छेद स्पष्ट दिखाई देते हैं । यही नहीं, उनके भीतर रङ्ग तक अभी मौजूद है ।

मिलर ने कहा—अच्छा, मैं माने लेता हूँ । पर मैंने ऐसी बात आज तक नहीं सुनी कि लाश के भी गोदना गोदा जाता है ।

गोविन्दराम ने कहा—मैं समझता हूँ कि शायद ही किसी ने सुना होगा । परन्तु एक प्रकार के लोगों को इसका हाल मालूम है । वे मावरी-सिरों का व्यवसाय करते हैं ।

मिलर ने पूछा—इससे उनका क्या सम्बन्ध है ?

गोविन्दराम ने कहा—साधारणतया मावरी-सिर बहुत ही अधिक गोदे रहते हैं और गोदने के अनुसार ही उनका मूल्य लगता है । जब इन सिरों की माँग बढ़ी तब इनके व्यवसायी सादे सिरों को स्वयं गोद कर उनके सङ्ग्रहकर्ताओं को ठगने और उनसे असली सिर का मूल्य वसूल करने लगे ।

सुपरिंटेंडेंट ने कहा—ऐसी बात है ! अक्षय बाबू, संसार में कैसे दुष्ट लोग हैं ?

मैंने भी यों ही हाँ कह दिया । मैं उस समय लज्जित सा हो रहा था, क्योंकि मनसुखराम के कथन से मैं इस परिणाम को नहीं निकाल सका था ।

मिलर ने फिर कहा—अच्छा, अब आप सन्दूक़ के सम्बन्ध में क्या कहते हैं ? आप उसे भी तो असली नहीं मानते । यह कैसे ?

गोविन्दराम ने कहा—यह तो और भी प्रत्यक्ष है । असली सन्दूक़ बर्दवान का बना है । जब तनसुखराम ने उसे मेहता-कम्पनी से मोल लिया तब उसने अपने नाम के आदि अक्षर उस पर लिखा लिये थे । यह बात कम्पनी के रजिस्टर में अप्रेल को दर्ज की गई है । उस सन्दूक़ के ताले घोष एंड ब्रादर्स के बनाये हैं । वे ऊँचे दर्जे के ताले हैं । उन पर उनका नम्बर पड़ा है । जो सन्दूक़ आपके पास है उसके ताले का नम्बर ५००७ है और घोष एंड ब्रादर्स के रजिस्टर से पता लगा कि मेहता कम्पनी ने उसे उनसे जुलाई की १३ वीं तारीख़ को ख़रीदा था । अतएव यह तनसुखराम का सन्दूक़ नहीं है ।

मिस्टर मिलर ने कहा—निस्सन्देह नहीं है । पर है वह किसका सन्दूक़ ? और तनसुखराम का सन्दूक़ कहाँ गया ?

गोविन्दराम ने कहा—मेरी समझ में वह सावित्री देवी के असबाब के साथ चला गया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुपरिंटेंडेंट ने पूछा—यह सावित्री देवी कौन है ?

गोविन्दराम ने कहा—पहले यह चमेलीबाई के नाम से प्रसिद्ध थी।

मिलर ने आश्चर्य से पूर्ण होकर कहा—वही मृत ! तब ये अवयव किसकी लाश के हैं ?

गोविन्दराम ने कहा—इस बात पर भी विचार किया जायगा। अब हमें उस आदमी पर विचार करना चाहिए जो हिरासत में है।

मिलर ने कहा—अवश्य। यदि वह सन्दूक़ उसका नहीं है और लाश भी चमेली की नहीं तो उसे रिहा हो जाना चाहिए। परन्तु अभी तो वे अवयव शेष ही हैं जो उसके घर की कोठरी में मिले हैं। उनके सम्बन्ध में आप क्या कहते हैं ?

गोविन्दराम ने कहा—"इसके उत्तर के लिए मैं शुरू से सारे मामले पर विचार करता हूँ। मैंने कहा है कि वह सन्दूक़ तनसुखराम का नहीं है। वह किसी दूसरे का ही है। अर्थात् तनसुखराम की जगह पर कोई दूसरा आदमी अपराधी ठहरता है। इसी प्रकार जब वह लाश चमेली की नहीं है तब कोई दूसरी ही स्त्री उसके स्थान में आ खड़ी होती है। अब हम शुरू से मामले को लेते हैं।

"आप थैलीवाला मामला जानते ही हैं। वह सरासर जाल था। राह में जान-बूझ कर थैली डाल दी गई थी। षड्यन्त्र ही रचा गया था। पर इस षड्यन्त्र का मतलब क्या था ? इसका मतलब यह था कि तनसुखराम कुछ समय के लिए रोक लिया जाय, जिसमें बर्दवान के होटल में उसका सन्दूक़ बदल लिया जाय और उसके स्थान में दूसरा रख दिया जाय। इसके सिवा लाश के अङ्ग-प्रत्यङ्ग इधर-उधर पूर्व निर्दिष्ट स्थानों में रक्खे जा सकें। तब षड्यन्त्रकारी कौन थे ?

"यदि वे एक से अधिक रहे होंगे तो उनकी पहुँच मृत या जीवित चमेली तक ज़रूर रही होगी, क्योंकि उन्हें उसके गोदने की नक़ल उतारनी थी। वे मुर्दा के गोदने की क्रिया भी जानते रहे होंगे। वे तनसुखराम के घर भी आते-जाते रहे होंगे। और जब उनके पास किसी स्त्री की लाश रही है तब कोई स्त्री अवश्य ही ग़ायब हुई है।

"इन सब बातों का उत्तर कौन दे ? चमेली के पास तनसुखराम के घर की कुञ्जी थी। उसकी परशुराम से घनिष्टता थी। यह आदमी पहले मावरी-सिरों का व्यवसाय करता था, अतएव यह लाश पर गोदना गोदने की क्रिया अवश्य जानता होगा। मैंने यह भी पता लगा लिया है कि इसकी स्त्री का पता नहीं है। अब हमें तारीख़वार इस मामले पर विचार करना चाहिए।

"२९ वीं जुलाई को तनसुखराम बर्दवान से कलकत्ते आया। ३० वीं को वह थैली चुराने के मामले में गिरिफ़्तार किया गया। ३१ वीं को उसके मामले की पेशी हुई। २ री अगस्त को परशुराम की स्त्री देहात चली गई। उसे किसी ने रवाना होते नहीं देखा, पर लोगों का कहना है कि गई वह उसी दिन। ५ वीं अगस्त को सावित्री देवी पटने के कश्मीरी होटल में ठहरी और एक सन्दूक़ वहाँ के माल के कमरे में जमा किया। वह सन्दूक़ १३ वीं जुलाई से लेकर ४ थी अगस्त तक किसी दिन ख़रीदा गया होगा। १४ वीं अगस्त को पुलीस ने उस सन्दूक़ को खोला। १८ वीं अगस्त को तनसुखराम के घर में लाश के कुछ टुकड़े पाये गये। २७ वीं अगस्त को तनसुखराम थैलीवाले मामले से मुक्त हुआ। २८ वीं अगस्त को वह बर्दवान के काश्मीरी होटल में ख़ून के मामले में गिरिफ़्तार किया गया। मिस्टर मिलर, अब आप इस तारीख़वार घटनाक्रम पर विचार करें।"

कहने की ज़रूरत नहीं कि मिलर को गोविन्दराम की बात स्वीकार करनी पड़ी, तनसुखराम छूट गया। यथा समय सच्चे अपराधी भी पकड़ लिये गये और उन्हें सज़ा हुई।

ग्रामीण

जन्मान्ध।

(१)

किसको अँधेरा या उजेला कह रहा यह लोक है ?
मुझको न भेद-ज्ञान दोनों का हुआ, यह शोक है।
समदर्शिता मुझको मिली यह पुण्य से या पाप से,
उद्भ्रान्त हूँ भगवन् ! विवश हो काँपता हूँ ताप से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२)

है नील नभ किस भाँति का, है श्वेत जल किस ढङ्ग का ?
पत्ते हरे किस तौर के, रवि प्रात का किस रङ्ग का ?
व्याकुल हुआ है चित्त इनको देखने को नित्य ही,
दिन उष्ण है, शीतल निशा, बस ज्ञान है मुझको यही ॥

(३)

गजगामिनी कुल-कामिनी को देख कब हूँगा सुखी ?
कहते किसे हैं कमलनयनी कनकवर्णी विधुमुखी ?
बक श्वेत होते, श्याम पिक, इस भेद को कैसे कहूँ ?
जगदीश ! जग देखे बिना बतलाइए कैसे रहूँ ?

(४)

कैसे भयङ्कर रूप लख रोमाञ्च होता अङ्ग में ?
दर्पान्ध जन का विकृत मुख रहता सदा किस ढङ्ग में ?
इसका विवेचन मैं करूँ किस भाँति कहिए तो सही ?
अथवा बड़ा अच्छा हुआ देखा उसे मैंने नहीं ॥

(५)

काले असुर होते रहे, श्वेताङ्ग भी होने लगे,
जो सो रहे थे जग गये, जो थे जगे सोने लगे।
देखा उन्हें मैंने न, केवल सुन रहा हूँ कान से,
जिससे न हो प्रत्यक्ष, उसको लाभ क्या अनुमान से ?

(६)

पीयूष-पय जिसके पयोधर ने पिलाया है मुझे,
जिसने खेलाया है मुझे जिसने जिलाया है मुझे।
हा शोक ! उसका पद-कमल मैंने कभी देखा नहीं,
है जीवितों के मध्य में जन्मान्ध का लेखा नहीं ॥

(७)

सुन कर प्रशंसा विश्व के वैचित्र्य की, उद्विग्न हूँ,
मैं भी उसे कैसे लखूँ इस हेतु चिन्ता-मग्न हूँ।
जब दृग नहीं विभु ने दिया तब कान भी देता नहीं,
जिसका न सुनता नाम उस पर ध्यान भी देता नहीं ॥

(८)

किस भाँति नारी-नेत्र-शर से नर-हृदय विध जायगा ?
देखे बिना स्त्री-रत्न को कैसे हृदय घबरायगा ?
विश्वास उस पर क्यों रहे जिसका न हो अनुमान भी,
होता नहीं क्या व्यर्थ औषधि के बिना अनुपान भी ?

(९)

शुचि शस्य-श्यामा स्वर्ग से भी जन्म-धरती सुन्दरी,
यह बात कैसी है सुखद श्रुति के लिए अमृत-भरी।
पर देखने के हेतु उसको चित्त व्याकुल हो रहा,
क्या युक्ति है, क्या यन्त्र है, कुछ भी नहीं जाता कहा ॥

(१०)

है गन्ध ही से ज्ञात होता भेद चन्दन-पङ्क में,
निर्गन्ध माला फूल की है व्याल-सम मम अङ्क में।
कुछ ज्ञान पश्चिम-पूर्व का मुझको कभी होता नहीं,
कहिए विभो ! किस भाँति कर मल कर भला रोता नहीं ?

(११)

जब स्वप्न में भी निज करों को देख मैं सकता नहीं,
तब देश-देशान्तर-छटा मेरे लिए है व्यर्थ ही।
है दमकती किस भाँति घन की गोद में हा दामिनी ?
किस भाँति खिलती है मिली राका-शशी से यामिनी ?

(१२)

दर्शन रमापति के सुदर्शन का मिलेगा क्यों कभी ?
निर्जल मरुस्थल में जलज सुखकर खिलेगा क्यों कभी ?
जन्मान्ध जन को जन्म ही जगदीश ने निष्फल दिया,
निर्माण में उसके परिश्रम व्यर्थ ही विभु ने किया ॥

रामचरित उपाध्याय

हिन्दी में नाटक और अभिनय।

थोड़े दिन की बात है, लखनऊ में ही नहीं, जहाँ कहीं हिन्दी-भाषा बोली जाती थी, पारसी कम्पनियां और उनके असीरे हिर्स और ख़ूबसूरत बला का बोलबाला था। अब वह समय है कि लखनऊ में ही व्याकुल भारत, किर्लोस्कर और सूरविजय कम्पनियों ने सरल हिन्दी में लिखे हुए नाटकों का अभिनय कर जनता को उपदेश देते हुए प्रसन्न भी किया है और ख़ूब लाभ भी उठाया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें तीनों नाट्य-कम्पनियों के खेलों के देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अधिक नाटक देखने का तो अवसर नहीं मिला—क्योंकि दर्शन के साथ भेंट देना आवश्यक था—परन्तु बानगियाँ अवश्य देखीं। इन्हीं के आधार पर हमें इस लेख में नाट्यकला तथा उसके हिन्दी-संसार में प्रचार करने के विषय में कुछ विचार करना है।

इन कम्पनियों ने इतना तो साबित ही कर दिया है कि यदि नाट्यकारों में कुछ भी योग्यता हो, यदि नटों को गाना आता हो, यदि पर्दों और पोशाक़ों पर काफ़ी ख़र्च किया जा सके और नाच तथा कलाबाज़ियों में निपुण दो चार नट मिल सकें तो हिन्दी में नाटक के अभिनय का सफल होना दुष्कर नहीं।

यह सब कुछ है। हम चाहते हैं कि हिन्दी-भाषा-भाषी समाज में उन्हीं की भाषा-द्वारा नाटक दिखाये जायँ। परन्तु जो कुछ इन कम्पनियों ने कर दिखाया है, उससे हम सन्तुष्ट नहीं हैं। यदि हमें इस सम्बन्ध में कुछ कड़ी बातें लिखना है तो वे इसलिए कि ये कम्पनियाँ रुपया ही न कमायें। हिन्दी में एक स्थायी नाट्य-साहित्य को उत्पन्न करना और नाट्य-कला को उच्च श्रेणी का बनाना उतना ही आवश्यक है जितना कि रुपया कमाना।

यह हम मानते हैं कि साधारण जनता में नाट्यकला, नाट्यकार के शब्दों के भाव तथा गायन के गूढ़ रहस्यों के समझने की योग्यता नहीं होती। परन्तु कुछ ही समय तक आप पर्दों और पोशाक़ों की भड़क के पीछे अपने नाट्यकार तथा अपनी नाट्यकला के दोषों को छिपाये रख सकते हैं। काठ की हाँड़ी अधिक समय तक आग पर नहीं चढ़ी रह सकती। कोई समय था काउसजी, गौहरजान और सोराबजी इत्यादि ने पारसी कम्पनियों-द्वारा नाट्य-संसार पर उर्दू का सिक्का जमा दिया था। हैम्लेट के उर्दू अनुरूप ख़ूने नाहक़ के विषय में विद्वानों का मत था कि इसमें काउसजी का पार्ट हेनरी इर्विंग के पार्ट से किसी दशा में कम न था। ऐसे ही लोगों की कमाई उर्दू कम्पनियाँ बहुत दिन तक खाती रहीं। इनमें नाट्यकला का ह्रास होता रहा, परन्तु जनता पर उस्तादों का इतना अधिक जादू जम चुका था कि कुछ समय तक रद्दी कम्पनियों की भी रोज़ी चलती रही।

उर्दू में नाट्यकला के ह्रास का यह फल था कि जनता ने हिन्दी में नाटक दिखानेवाली इन नई कम्पनियों का स्वागत किया। इसी लिए हमारा निवेदन है कि जो कुछ सफलता हुई है उसे स्थायी न समझिए। जो हाल उर्दू के नाटकों का इतने समय पश्चात् हुआ है, वही, उससे बुरा, और बहुत जल्द, हिन्दी के नाटकों का होनेवाला है यदि नाट्यकला और नाट्यकार दोनों एक दूसरे का साथ देकर जनता को अपने गुणों से वशीभूत न कर लेंगे।

मैंने इन कम्पनियों के तमाशे देखे। कहीं पर्दों की विशेषता, कहीं रङ्ग-बिरङ्गी रोशनी का प्रबन्ध, कहीं गाना अच्छा, कहीं नाचनेवालों और कलाबाज़ों का जमाव। परन्तु न तो नाट्यकार के शब्दों में प्रायः बल था, न नटों के उनके उच्चारण करने में कोई प्रतिभा थी। एक ही भाव है—पुरुष लड़े मरते हैं, और स्त्रियाँ रोये देती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर-रस के व्यक्त करने में तो बिना अतिशयोक्ति इन नटों का काम ही नहीं बनता। शान्ति-भाव के व्यक्त करने के लिए भी चिल्लाने की आवश्यकता समझी जाती है। हास्य में मधुरता नहीं; करुणा में आँसू नहीं; बीभत्स में ग्लानि नहीं। गाने के लिए कोई मौक़ा भी ठीक है। राजा-साहब का दरबार लगा है। एक कठिन समस्या पर विचार करना है, परन्तु गाना हो रहा है। राजा-साहब को भी भरे दरबार में गाने से एतराज़ नहीं। रानी साहबा अपनी सखियों के बीच गायें तो कोई हर्ज़ नहीं। परन्तु उन्हें आप, राजासाहब के सामने, बात-चीत के सिलसिले में, जब वे चाहें, गाने से नहीं रोक सकते। फिर यह भी विचार नहीं रक्खा जाता कि कौन नट किस पात्र के योग्य है।

हम यह मानते हैं कि अनेक कारणों से नाटक-कम्पनियों में स्त्री-पात्रों के लिए स्त्रियों का रखना हानिकारक है। परन्तु इसके माने यह नहीं है कि उन पात्रों के लिए योग्य अवस्था के लड़के भी न रक्खे जायँ। हमने एक बार एक ऐसी द्रौपदी के दर्शन किये जिसके स्त्रीत्व का अनुभव करने के लिए काफ़ी कल्पना-शक्ति की आवश्यकता थी।

अभाग्यवश हमारे यहाँ जो कुछ मौलिक नाटक हैं उनमें से प्रायः सभी ऐसे हैं जो आप ही अन्धकार में हैं, नटों को क्या मार्ग दिखायेंगे। 'बेताब', हमने सुना है, अच्छे नाट्यकार रह चुके हैं; परन्तु हमें अभी तक उनके किसी नाटक के पढ़ने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। बदरीनाथजी भट्ट की तारीफ़ सुनी थी। उनके नाटक प्राप्य थे। सभी पढ़े। किसी में कोई विशेषता नहीं, भावशून्य तुक-बन्दी की भरमार, विचारों का निष्कण्टक बहाव, भाषा-सम्बन्धी ग़लतियाँ। सन्देह होता था कि किसी धन-लोलुप कच्चे लेखक ने भट्टजी के नाम से अपनी योग्यता की बानगी दिखाई है। हम उनके फ़ुटकर लेखों तथा कविताओं में जिस प्रतिभा का दर्शन किया करते थे उसका कहीं नामोनिशान भी नहीं। हाल में एक और बड़े लेखक के 'संग्राम' के देखने का मौक़ा मिला। उसमें भी वही बात। पढ़ते हुए सन्देह होता था कि लेखक महाशय ने कभी कोई नाटक देखे भी हैं।

बात यह है कि अभी तक नटों के प्रति जनता के कुछ ऐसे घृणा-सूचक भाव हैं कि योग्य प्रतिभाशाली पुरुष नाट्य-द्वारा जीवन-निर्वाह करने में अपनी मान-हानि समझते हैं। वस्तुतः साधारण बुद्धि के, अधिकतर बिगड़े हुए लड़के, इस व्यवसाय में प्रवेश करते हैं। इनमें से थोड़े बहुत अनुभव-द्वारा नाट्यकला में प्रवीण हो जाते हैं, परन्तु नाटक-निर्माण की योग्यता के लिए साहित्य से परिचित होने की आवश्यकता पड़ती है। इसका प्रायः इनमे अभाव रहता है। इसलिए इस श्रेणी के नटों में से नाट्यकारों का निकलना दुष्कर है। शिक्षित नवयुवक-मण्डलियों के शौक़िया अभिनयों-द्वारा हम मध्यम श्रेणी की जनता में इस व्यवसाय के विरुद्ध जो कुछ विचार हैं उन्हें दूर कर सकते हैं। हमें यह समझा देना है कि जहाँ विचार फैलाने के वक्तृता या समाचार-पत्र जैसे अन्य मार्ग हैं वहाँ एक नाटकाभिनय भी है। सच पूछिए तो इस देश में जहाँ विद्या का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना अभाव है वक्तृता तथा नाटकाभिनय-द्वारा विचारों का जितना प्रचार हो सकता है उतना लेखों से नहीं। फिर वक्तृताओं से आप अधिकतर लोगों के विचारों ही की पुष्टि कर सकते हैं। परन्तु यदि भावों की पुष्टि करना है, यदि जातीयता का अदृश्य मन्त्र उनके कान में फूँकना है, यदि उनके हृदय में स्त्री-जाति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना है, और यदि उन्हें सच्चे गार्हस्थ्य प्रेम तथा स्वार्थ-त्याग का परिणाम दिखाना है, तो हमें नाट्यकार और नट की कला का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

यह तो हुई जनता को समझाने की बात। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जब तक उसके विचारों में परिवर्तन न हो तब तक हमारे पढ़े-लिखे नवयुवक नाट्यशाला में पैर ही न रक्खें। हिन्दी-नाट्य-साहित्य का उद्धार-कार्य जनता के विचार-परिवर्तन की बाट नहीं जोह सकता। और उद्धार की एक ही सूरत है। थोड़े दिनों की बात है, बेकन के कुछ भक्तों ने यह साबित करना चाहा कि जिन नाटकों के निर्माता शेक्सपियर कहे जाते हैं वे वास्तव में बेकन के लिखे हुए हैं। सब दलीलों के एक उत्तर ने उन्हें शान्त कर दिया और वह यह कि ये नाटक बेकन के नहीं हो सकते, क्योंकि इनमें एक स्वाभाविकता है, जो नाट्यकार के बिना नाट्याभिनय की परीक्षा पास किये हुए आ ही नहीं सकती। बिना नट बने नाट्यकार नहीं हो सकते। इसलिए हिन्दी-प्रेमी नवयुवकों से हमारा निवेदन है कि यदि उनमें नाट्य-कला की ओर रुचि है, यदि वे गाना गा सकते हों, यदि उनमें कवित्व-शक्ति हो, यदि वे भावों को नाट्य-शाला में व्यक्त कर सकते हों, तो वे अवश्य इस व्यवसाय की ओर ध्यान दें। दफ़्तर या शिक्षा-विभाग की नौकरी से इस व्यवसाय में उन्हें अधिक लाभ तो होगा ही, शायद उनमें से कुछ ऐसे प्रतिभाशाली लेखक भी निकलें जो हिन्दी में एक स्थायी नाट्य-साहित्य की सृष्टि कर सकें। क्या द्विजेन्द्रलालजी ने जो देश-सेवा अपने नाटकों द्वारा की है वह किसी भी बड़े नेता की सेवा से कम है? माना कि उनकी प्रतिभा को पाना कठिन है। तो क्या प्रयत्न करने से जैसे नाटक आज-कल लिखे जाते हैं उनमें भी उन्नति नहीं हो सकती? अध्यवसाय की आवश्यकता है, प्रतिभा भी उसका साथ देगी।

नाटक कैसे हों, किन भावों का उनमें समावेश हो, क्या क्या उनमें गुण हों, इसके विवरण करने की जगह इस छोटे लेख में नहीं है। फिर हमें इसका अधिकार भी नहीं है। नाट्य-शास्त्र के पढ़ने से ही अच्छे नाटक नहीं बन जाते। मार्ग वही है जिसे सूचित करने का साहस हमने यहाँ किया है।

कालिदास कपूर

वातावरण।

पृथ्वी का अन्त उसके पृष्ठ-भाग तक ही नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टि से पृथ्वी के चारों ओर जो वायु का वेष्टन है वह भी उसी के अन्तर्गत माना जाता है। इस वायु-वेष्टन या वातावरण ने पृथ्वी को चारों ओर से जकड़ सा लिया है। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के कारण वह उससे पृथक नहीं हो सकता। पृथ्वी के साथ ही साथ वह भी घूमता रहता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लोग वातावरण-रूपी समुद्र के तल में स्थित हैं। इस समुद्र के पृष्ठभाग पर जाना, इस समय तो, मानवजाति के लिए असम्भव है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वातावरण पृथ्वी से कितनी उँचाई तक फैला हुआ है। उल्कायें (Meteors) अन्तरिक्ष में अपने अपने मार्ग पर घूमा करती हैं। अपने मार्ग पर अग्रसर होती हुई वे कभी कभी पृथ्वी के इतने पास आजाती हैं कि पृथ्वी की आकर्षणशक्ति से वे उसकी ओर को खिंच आती हैं। पृथ्वी के वातावरण में प्रविष्ट होते ही वायु के सङ्घर्ष से वे एकदम जल उठती हैं और यही कारण है कि उनका जलना हम देख सकते हैं। इसे ही हम तारों का टूटना कहते हैं। कभी कभी दो सौ मील की उँचाई पर भी उल्का जलती हुई देखी जाती हैं। इससे यह अनुमान किया गया है कि वातावरण की उँचाई कम से कम दो सौ मील तक तो अवश्य है। सम्भव है कि परमाणु पृथ्वी की आर्षणशक्ति की अन्तिम सीमा तक फैले हुए हों और शायद कुछ परमाणु इस वायुवेष्टन से पृथक् होकर अन्तरिक्ष में घूम रहे हों।

वायु-मण्डल में ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, कार्बानिक ॲसिड और जल-वाष्प भिन्न भिन्न परिमाण में पाये जाते हैं। वायु में $\frac{4}{5}$ भाग से कुछ कम नाइट्रोजन और $\frac{1}{5}$ भाग के लगभग ऑक्सिजन है। शेष दो वायु में अत्यन्त अल्प परिमाण में पाये जाते हैं। इसके सिवा हवा में भिन्न भिन्न प्रकार के सूक्ष्म रजःकण सदैव उड़ते रहते हैं। इनकी संख्या कल्पनातीत है। इनमें कुछ कण ऐसे भी हैं जो पृथ्वी के पृष्ठभाग से उड़ कर गये हैं। परन्तु कुछ रजःकणों के अस्तित्व का कारण उल्कापात भी है। वातावरण में प्रवेश करने पर वायु के सङ्घर्ष से उल्का बिखर जाती है और उसके परमाणु अलग होकर वायुमण्डल में उड़ते रहते हैं।

वायु का महत्त्व सभी जानते हैं। संसार के सभी सचेतन पदार्थों के लिए वायु की—विशेषतः ऑक्सिजन की—ज़रूरत होती है। कह सकते हैं कि यही उनका जीवन है। अपने रक्त की शुद्धि के लिए प्राणियों को वायु की आवश्यकता होती है। ऑक्सिजन से ख़ून साफ़ हो जाता है, जिससे वह पुनः शरीर-पोषण के उपयुक्त बन जाता है। श्वास के साथ शरीर में प्रविष्ट होने पर अशुद्ध रक्त के तत्त्वों से ऑक्सिजन वायु का संयोग होता है, जिससे कार्बानिक ॲसिड वायु बनता है। वनस्पति हवा से कार्बानिक ॲसिड ग्रहण करती है। वह सूर्य-प्रकाश की सहायता से अपने शरीर के 'क्लोरोफ़िल' नामक पदार्थ के योग से उसका विश्लेषण कर 'कार्बन' ग्रहण कर लेती है और ऑक्सिजन का विसर्जन कर देती है। प्राणियों के शरीर में भी कार्बन अधिक परिमाण में पाया जाता है। परन्तु वे उसे वायु-मण्डल से ग्रहण नहीं कर सकते और इसलिए उनको शाकाहार या शाकाहारी प्राणियों का आहार करना पड़ता है। इस प्रकार प्राणी और वनस्पति परस्पर अवलम्बित हैं। प्राणियों-द्वारा त्यक्त कार्बानिक ॲसिड ग्रहण कर वनस्पति 'कार्बन' रख लेती है और निरुपयोगी ऑक्सिजन वायु पुनः वायुमण्डल में छोड़ देती है। इसी ऑक्सिजन पर प्राणियों का जीवन निर्भर रहता है।

यह तो निर्विवाद है कि जीवधारियों के लिए हवा की अत्यन्त आवश्यकता है। परन्तु हवा की गैसों का किसी परिमाण में मिश्रण होना इष्ट नहीं। यदि हवा के अधिकांश अंश में ऑक्सिजन होगा तो जीवधारी जल कर भस्म हो जायँगे और कार्बानिक ॲसिड की अधिकता से दम घुटकर वे काल के गाल में चले जायँगे। ऊपर लिख आये हैं कि वातावरण में $\frac{4}{5}$ भाग नाइट्रोजन है। अन्य किसी पदार्थ से इसका संयोग सहसा नहीं होता, जिससे हवा में उसका परिमाण सदा एक सा बना रहता है, और इसी से ऑक्सिजन की तीव्रता बहुत घट जाती है। यही कारण है कि प्राणि-वर्ग को आक्सिजन जीवन के लिए आवश्यक परिमाण में मिलता रहता है। यह अत्यन्त आवश्यक ही नहीं किन्तु अनिवार्य है कि वातावरण में की गैसों का वर्तमान परिमाण सदा अस्तित्व में रहे।

जिस प्रकार ग्रीष्मकालीन प्रखर सूर्य-किरण से बचने के लिए छाते का उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार वातावरण प्रखर धूप से पृथ्वी की रक्षा करता है। सूर्य को ढकनेवाला बादल कितना ही छोटा और पतला क्यों न हो, परन्तु उससे सूर्य की प्रखरता बहुत कुछ घट जाती है। उसी प्रकार बहुत ही पतला और दो सौ मील मोटा वातावरण सूर्य की उष्णता के एक बड़े भाग को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूपृष्ठ तक नहीं आने देता। वातावरण का वायु और रजःकण सूर्य की उष्णता का क़रीब ६/७ भाग बीच में ही रोक रखते हैं। यही कारण है कि सूर्य का ताप बहुत ही सौम्य मालूम होता है। वातावरण न होता तो उष्णता अत्यधिक उग्ररूप धारण कर लेती। वातावरण के अभाव में रुकावट न होने के कारण सूर्य की किरणें सीधी भूपृष्ठ पर पड़ती रहतीं, जिससे गर्मी बहुत अधिक पड़ती और तापक्रम भी बढ़ जाता। इस उष्णता से जीवधारी जल कर भस्म हो जाते, जल वाष्परूप में अन्तरिक्ष में अन्तर्हित हो जाता और समुद्र का जल उबलने लगता और उष्णता इतनी बढ़ जाती कि कदाचित् चट्टानें भी पिघल जातीं।

जिस प्रकार वातावरण दिन में उष्णता की प्रखरता कम करता है, उसी प्रकार रात को वह पृथ्वी की उष्णता को बनाये रख कर शीत की तीव्रता को भी बढ़ने नहीं देता। हवा—मुख्यतः उसमें पाई जानेवाली जलवाष्प और कार्बानिक ऑसिड गैस पृथ्वीतल पर से अन्तरिक्ष की ओर जानेवाली उष्णता के एक बड़े भाग को मार्ग में ही रोक कर पुनः पृथ्वीतल पर लौट जाने को बाध्य करती है। हमारा अनुभव है कि जिस रोज़ आकाश निरभ्र नहीं होता उस रोज़ ठण्ढ कम पड़ती है। इसका कारण है उष्णता का न्यून अंश में आकाश में उड़ जाना। उसी प्रकार शुष्क वायुवाले प्रदेशों में, दिन और रात के उष्णता मान में, अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक भेद रहता है। क्योंकि जलवाष्प उष्णतामान में अधिक अन्तर नहीं पड़ने देता। सारांश, वातावरण पृथ्वी की, शीत और उष्णता से, रक्षा करता रहता है।

वातावरण का जलवाष्प भूपृष्ठ के उष्णतामान को सम बनाये रखने का प्रयत्न करता रहता है। जलवाष्प की प्रत्येक बिन्दु को उष्णता का महान् सञ्चय कह सकते हैं। एक सेर जलवाष्प के ठण्ढे होकर जल में बदलने से जो उष्णता उत्पन्न होगी वह एक सेर लोहे को गला डालेगी। ज्यों ज्यों सूर्य की उष्णता बढ़ती जाती है, त्यों त्यों अधिकाधिक जल वाष्प-रूप ग्रहण कर वातावरण में मिलता जाता है। वातावरण में जलवाष्प का परिमाण बढ़ जाने से उष्णता के मार्ग में रुकावट पहुँचती है। जलवाष्प का परिमाण बढ़ जाने पर वह बादल का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार उष्णतामान कम हो जाने से शीतलता बढ़ जाती है और तब बादल जलरूप में गिर पड़ते हैं। फल यह होता है कि सूर्यकिरणों के मार्ग की रुकावट कम हो जाने से गर्मी बढ़ जाती है।

कार्बानिक वायु का महत्त्व भी इसी प्रकार का है। इस वायु के परमाणुओं के मार्ग में पड़ते ही उष्णता का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। अधिकांश मार्ग न मिलने के कारण लौट जाता है। कार्बानिक वायु के परमाणु उष्णता को रोक कर दिन में सूर्य की प्रखरता को बहुत कुछ कम कर देते हैं। उसी प्रकार रात को भी वह भूपृष्ठ की उष्णता को अन्तरिक्ष में अन्तर्हित होने से रोक कर, उसे पुनः पृथ्वी पर विसर्जन करके, पृथ्वी की उष्णता को एक बड़े अंश में बनाये रखता है। वातावरण में इस वायु का बहुत ही कम अंश—$\frac{४}{१००}$ भाग—पाया जाता है। परन्तु अन्य गैसों के मान से अतिन्यून होने पर भी पृथ्वी के तापक्रम पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है।

यदि हवा में कार्बानिक का अस्तित्व न रहे तो क्या परिणाम होगा? पृथ्वी की उष्णता सदा के लिए अन्तरिक्ष में चली जायगी और तापक्रम लगभग ४ अंश घट जायगा। तापक्रम के घट जाने से हवा की जलवाष्प-ग्राहिका-शक्ति इतनी न्यून हो जायगी कि उसका अधिकांश जलवाष्प पानी के रूप में गिर पड़ेगा। फल यह होगा कि भूपृष्ठ की उष्णता विसृष्ट होकर और भी अधिक परिमाण में अन्तरिक्ष में चली जायगी, जिससे तापक्रम उतना ही और घट जायगा। विज्ञानवेत्ताओं का अनुमान है कि हवा में इस वायु के परिमाण के घटने-बढ़ने से ही भूपृष्ठ के तापक्रम में परिवर्तन होता है। यदि इस वायु का परिमाण दूना हो जाय तो तापक्रम ८ अंश बढ़ जायगा। इसके अतिरिक्त यह भी अनुमान किया जाता है कि कार्बानिक ऑसिड गैस कम हो जाने से पृथ्वी के भिन्न भिन्न देशों के वर्तमान तापक्रम का अन्तर बढ़ जायगा।

वातावरण—विशेषतः उसमें के रजःकण—सूर्य के तेज को कम कर देता है। सूर्यास्त और सूर्योदय के समय सूर्य का तेज इतना सौम्य हो जाता है कि हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी ओर अच्छी तरह देख सकते हैं। इस समय सूर्य-किरणें न बहुत उष्ण और न तीव्र होती हैं। दोपहर में पृथ्वी के पृष्ठ पर पहुँचने के लिए सूर्य की किरणों को वातावरण की मुटाई से होकर जाना पड़ता है, जिससे उसकी उष्णता और तेज का एक बड़ा भाग रजःकण रोक रखते हैं। फिर भी उनमें इतनी उष्णता और प्रकाश रह जाता है जिससे पदार्थ गरम हो जाते हैं और प्रकाश से आँखें चकाचौंध हो जाती हैं। अस्तोदय के समय सूर्य क्षितिज पर रहता है। इस समय किरणों को वातावरण का अधिक हिस्सा पार करना पड़ता है, अर्थात् उनका मार्ग बढ़ जाता है क्योंकि पृथ्वी गोल है। यही कारण है कि वायु के परमाणु और रजःकण किरणों की उष्णता और प्रकाश का एक बड़ा भाग हरण कर लेते हैं, जिससे पृथ्वी के पृष्ठ-भाग पर पहुँचने तक वे अतिशय सौम्य हो जाती हैं। सूर्यकिरणों के वातावरण के मार्ग के कम तथा अधिक होने से जब इतना भेद पड़ जाता है तब वातावरण के अभाव में क्या दशा होगी, यह बात पाठक स्वयं विचार लें। सूर्य-किरणों के मार्ग में रुकावट न होने से उष्णता और प्रकाश ज़मीन तक पहुँच जायगा। फल यह होगा कि प्रकाश इतना तीव्र हो जायगा कि आँख उठा कर देखना असम्भव हो जायगा। क्षितिज पर हो या आकाश के मध्य भाग में—सूर्य एक सा ही प्रकाशमान दीख पड़ेगा। उदयास्त के समय सूर्य-किरणें कुछ तिरछी पड़ेंगी, अतएव उस समय उष्णता और प्रकाश की तीव्रता कुछ कम रहेगी। किन्तु यह अन्तर इतना न्यून होगा कि जाना ही न जा सकेगा।

वातावरण के सूक्ष्म परमाणु और रजःकण का सूर्य-प्रकाश पर एक और महत्त्व का परिणाम होता है। सूर्य-प्रकाश तीन वर्णों के प्रकाश के सम्मिश्रण से बनता है। ये तीन रङ्ग हैं—लाल, हरा और नीला। इन्हीं तीनों रङ्गों का न्यूनाधिक परिमाण में मिश्रण करने से शेष सभी प्रकार के रङ्ग बनाये जा सकते हैं। काँच के झूमर के लोलक को प्रकाश में रख कर देखने से यही तीन रङ्ग दिखाई देते हैं। प्रकाश इस लोलक में से निकलता है। इसी समय उसका पृथक्करण होता है, जिससे उक्त रङ्ग दिखाई देते हैं। सूर्य-प्रकाश वातावरण के जलकण से होकर भीतर प्रवेश करता है। इसी समय उसका वक्रीभवन (Refraction) होकर भीतर की ओर को परावर्तन होता है और पुनः हवा में प्रवेश करते समय वक्र होकर वह देखनेवाले की ओर जाता है। इसी से भिन्न भिन्न सात रङ्ग नज़र आते हैं। जब कोई प्रकाश प्रकाशित पदार्थ से निकल कर हमारी ओर आता है तब वह तरङ्ग-रूप में होता है। भिन्न भिन्न रङ्गों की प्रकाश-तरङ्गें भिन्न भिन्न लम्बाई की होती हैं। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि प्रकाश-तरङ्गों की लम्बाई जितनी ही कम होगी उनके मार्ग में उतनी ही अधिक रुकावट होगी। जिस प्रकार जलप्रवाह के मार्ग में एक छोटे से पत्थर के आ जाने से कई छोटी छोटी लहरें उससे टकरा कर लौट जाती हैं या नष्ट हो जाती हैं—आगे नहीं बढ़ पातीं। यदि लहरें बड़ी होंगी तो वे पत्थर की रुकावट से नष्ट न होकर आगे चली जायँगी। यही बात प्रकाश-तरङ्गों में भी पाई जाती है। रक्तवर्ण की प्रकाश-तरङ्गें सबसे बड़ी और नीलवर्ण की सब से छोटी होती हैं, जिससे किरणों-द्वारा प्रकाश के सब अंश समान परिमाण में नहीं आते, नीलवर्ण का प्रकाश न्यून परिमाण में आता है। जिस समय सूर्य क्षितिज पर रहता है उस समय सूर्य-किरणों का वातावरण का मार्ग मध्याह्न की अपेक्षा अधिक लम्बा होता है। इसी से उस समय नीले वर्ण का परिमाण कम पाया जाता है। यही कारण है कि उदयास्त के समय लाल और हरे रङ्ग से उत्पन्न होनेवाले पीले रङ्ग की छटा दृष्टिगोचर होती है। अस्तोदय के समय किरणों के मार्ग के बढ़ जाने से लाल रङ्ग की प्रधानता हो जाती है, जिससे सूर्य-किरणें आरक्त हो जाती हैं। लाल प्रकाश को प्रतिबन्ध तो होता है, परन्तु अन्य वर्ण के प्रकाश की अपेक्षा कम।

सूर्य-किरण की नीली प्रकाश-तरङ्ग का कुछ भाग रजःकणों पर पड़ कर परावर्तन (reflection) होने से उन रजःकणों के ऊपर के रजःकणों से टकराकर उनका विकीरण होता है। इस प्रकार कई बार परावर्तन होने पर थोड़ा सा नीला प्रकाश कुछ रजःकणों पर से होकर हम तक आ पहुँचता है। यह एक सिद्धान्त है कि पदार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का रङ्ग उस पर से होकर आनेवाले प्रकाश पर अवलम्बित रहता है। यदि पदार्थ स्वयं प्रकाशित हुआ तो अच्छा ही है, यदि नहीं तो किसी स्वयं प्रकाशित या परप्रकाशित पदार्थ से उसको प्रकाश मिलता है। प्रकाश मिलने पर उसके कुछ घटकों का जिस पदार्थ पर प्रकाश पड़ता है उस पदार्थ के गुणधर्मानुसार अपशोषण (absorption) होकर शेष का विकीरण हो जाता है। और तब वे पदार्थ से निकल कर चारों ओर फैल जाते हैं। किसी पदार्थ से, फिर चाहे वह स्वयं प्रकाशित हो या पर-प्रकाशित, रङ्ग-विशेष की प्रकाश-तरङ्गें निकल कर देखनेवाले की आँखों पर पड़ती हैं, जिससे उस पदार्थ के रङ्ग का ज्ञान होता है। सूर्य-प्रकाश हरी घास पर पड़ता है। किरणों का नीला और लाल प्रकाश उस घास में विलीन (absorbed) हो जाता है और सिर्फ़ हरे रङ्ग का प्रकाश ही उससे निकल कर चारों ओर फैलता है, जिससे घास हरी नज़र आती है। रात को दीपक की रोशनी में किसी पदार्थ का रङ्ग ठीक ठीक नहीं पहचाना जा सकता। इसका कारण सहज ही समझ में आ सकता है। सूर्य-प्रकाश श्वेत रङ्ग का होता है। सूर्य-प्रकाश में पदार्थ जिस रङ्ग का नज़र आता है वह उसी रङ्ग का माना जाता है। सूर्य-प्रकाश और दीपक के प्रकाश में कुछ अन्तर है। दीपक के प्रकाश में नीले रङ्ग का परिमाण कम और लाल रङ्ग का परिमाण अधिक रहता है। लाल रङ्ग की अधिकता के कारण ही दीपक के प्रकाश में किसी पदार्थ के रङ्ग की ठीक ठीक पहचान नहीं हो सकती।

वातावरण के कारण आकाश नीला दिखलाई देता है। हवा के रजःकण से विकीरण होकर आनेवाले नीले वर्ण का ज्ञान नेत्रों-द्वारा होता है, जिससे रजःकण नीले मालूम होते हैं। परन्तु वस्तुतः ये कण अत्यन्त सूक्ष्म हैं। चर्म-चक्षुओं से इनके अस्तित्व का पता पाना अशक्य है। परन्तु इनकी संख्या असंख्य है और ये हवा में चारों ओर फैले हुए हैं। यही कारण है कि आकाश नीला नज़र आता है। वातावरण के अभाव में आकाश बिलकुल काला मालूम होगा। काला वर्ण कोई स्वतन्त्र रङ्ग नहीं है। यह प्रकाश के अभाव का ही द्योतक है। यदि वातावरण का अस्तित्व न रहे तो सूर्य-किरणें बिना किसी प्रकार की रुकावट के पृथ्वी तक आ पहुँचेंगी और सूर्य दृग्गोचर होगा। परन्तु नक्षत्रों के सिवा और कहीं से प्रकाश का आना सम्भव न होने के कारण आकाश में पूरा अन्धकार छा जायगा और तब दोपहर में तारे नज़र आने लगेंगे। ऊपर लिख आये हैं कि उदयास्त के समय किरणों का भूपृष्ठ पर आने का मार्ग अधिक हो जाता है, जिससे सूर्य-प्रकाश की हरित और रक्तवर्णीय तरङ्गों के मार्ग में अधिक रुकावट पहुँचती है। यही कारण है कि पहले उनका परिवर्तन होता है और तब विकीरण होने के बाद वे भूपृष्ठ पर आती हैं। इन तरङ्गों का भिन्न भिन्न परिमाण में मिश्रण होने के कारण क्षितिज-प्रान्त में इनके भिन्न भिन्न रङ्गों की मनोहर छटा दृष्टिगोचर होती है।

सूर्य के अस्त हो जाने के बाद भी बहुत समय तक उपर्युक्त दृश्य विद्यमान रहता है। उसी प्रकार सूर्योदय के बहुत समय पूर्व भी वह दृश्य नज़र आने लगता है। यही कारण है कि दिन—सूर्योदय से सूर्यास्त तक का समय—बहुत बड़ा हो जाता है। विषुववृत्त पर या उसके आस-पास के प्रदेशों में सन्ध्या का मनोहर दृश्य अल्पकालीन होता है। परन्तु ज्यों ज्यों हम ध्रुव की ओर बढ़ते जाते हैं, यह समय भी बढ़ता जाता है और ध्रुव के पास तो सूर्य कई घण्टों तक क्षितिज पर दिखाई देता रहता है। पृथ्वी की धुरी उसके मार्ग से समकोण न बना कर कुछ कम अंश का कोण बनाती है। इसी से ध्रुव-प्रदेशों में छः मास का दिन और छः मास की रात होती है। नीचे दिये हुए प्रयोग से यह बात चट ध्यान में आ जायगी कि किरणों के वक्रीभवन के कारण सूर्य क्यों दिखाई देता है।

एक कटोरी में रुपया डाल कर इतनी दूरी पर खड़े हो जाओ कि वह कुछ कुछ नज़र आता रहे। तब एक दूसरे व्यक्ति से उसमें इस तरह धीरे से पानी डालने को कहो कि रुपया हिलने न पाये। थोड़ा सा पानी डालते ही रुपये का कुछ भाग दिखाई देने लगेगा। और कुछ पानी डालने से रुपया आगे हटता हुआ मालूम होगा। प्रारम्भ में रुपये से निकलनेवाली कुछ किरणें बर्तन के कुछ भाग के कारण रुक जाती हैं और कुछ किनारे पर से सीधे ऊपर को जाकर सिर के ऊपर की ओर से निकल जाती हैं, जिससे रुपया नहीं दिखलाई देता। पानी डालने से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किरणें हवा से आती हुई कुछ झुक कर उसी दिशा में आगे को बढ़ती हैं और आँखों की पहुँच के अन्दर आते ही रुपया दिखाई देने लगता है। यही बात सूर्य के लिए है। उदय होने के पहले और अस्त होने के बाद सूर्य क्षितिज के नीचे होता है। परन्तु उसकी किरणें आकाश से हवा में प्रवेश करने के बाद पृथ्वी की ओर को मुड़ जाती हैं और तब उसी दिशा में आगे बढ़ने पर वे हमारे दृष्टि-पथ में पड़ जाती हैं, जिससे सूर्य दिखाई देने लगता है।

वातावरण की ही कृपा से सन्धि-प्रकाश की अपूर्व छटा का आनन्द लूटने का सौभाग्य प्राप्त होता है। उदय होने के पूर्व और अस्त होने के बाद कुछ समय तक सूर्य क्षितिज से इतना नीचे रहता है कि उसकी किरणें आकाश में सीधा बहुत ऊपर तक चली जाती हैं और वक्रीभवन होने पर भी वे नीचे की ओर हमारे पास तक नहीं पहुँच सकतीं। इसी से सूर्य उस समय हमको नहीं दिखलाई देता। तथापि रजःकणों पर पड़ने से किरणों का विकीरण-परावर्तन होने के कारण जो थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ता है वही सन्धि-प्रकाश है। यदि सूर्य क्षितिज से १८ अंश नीचे हो तो किरणें क्षितिज के वातावरण में बहुत कम आती हैं, जिससे प्रकाश नहीं पड़ता और इसी से सन्धि-प्रकाश का काल मर्यादित होता है। विषुववृत्त पर और उसके आस-पास के प्रदेशों में सूर्य क़रीब क़रीब आकाश के मध्यभाग पर से गुज़रता है, अतएव क्षितिज से उसके १८ अंश नीचे जाने में अवकाश नहीं लगता। इसी लिए वहाँ सन्धि-प्रकाश बहुत कम समय तक ठहरता है। विषुववृत्त से दूरवाले प्रदेशों में सूर्य का आकाश में का मार्ग कुछ झुका हुआ होता है, जिससे अस्त होने के बाद सूर्य को क्षितिज से १८ अंश नीचे जाने के लिए अधिक समय लगता है। ज्यों ज्यों हम ध्रुव की ओर बढ़ते जाते हैं, सन्धि-प्रकाश का समय भी बढ़ता जाता है एवं ध्रुव के पासवाले प्रदेशों में तो सन्धि-प्रकाश कई घण्टों तक बना रहता है। सन्धि-प्रकाश की अवधि बढ़ने का एक और कारण भी है। जिस समय सूर्य विषुववृत्त के पास घूमता रहता है उस समय जितनी अधिक अवधि तक सन्धि-प्रकाश रहता है उससे अधिक अवधि तक सन्धि-प्रकाश तब रहता है जब सूर्य उत्तरायण या दक्षिणायन होता है। यही कारण है कि हमारे यहाँ मार्च और सितम्बर की अपेक्षा जून और दिसम्बर में सन्धि-प्रकाश अधिक समय तक रहता है।

वसन्त-सम्पात (Vernal Equinox) से सूर्य उत्तर की ओर को जाकर शरत्सम्पात (Autumn Equinox) में वापस आने तक उत्तर गोलार्ध में—विशेषतः उच्च अक्षांशों के प्रदेशों में—दिन दीर्घकालीन होते हैं। सूर्य-किरणों के वक्रीभवन होने के कारण सूर्योदय शीघ्रता से और सूर्यास्त विलम्ब से होता है, जिससे दिन बड़े होते हैं। यह सच है कि सूर्य के शरत्सम्पात से दक्षिण ओर जाकर शरत्सम्पात तक वापस लौट आने तक, अर्थात् शीतकाल में, वहाँ विषुववृत्तवाले प्रदेशों की अपेक्षा दिन अधिक छोटा होता है। तथापि वक्रीभवन के कारण दिन उतना छोटा नहीं होता जितना होना चाहिए। परन्तु सूर्य के विषुववृत्त से दक्षिण की ओर चले जाने के कारण रात ज्यों ज्यों बड़ी होती जाती है, त्यों त्यों सन्धिप्रकाश की अवधि भी बढ़ती जाती है और सूर्य-किरणें बारह घण्टे तक दिखाई न भी दें तो भी लगभग उतने ही या उससे कुछ अधिक समय तक प्रकाश रहता है।

प्रकाश और उष्णता निर्वात प्रदेश से भी जा सकते हैं। यह कोई आवश्यक नहीं है कि उनके मार्ग में जड़-पदार्थ होना ही चाहिए। क्योंकि वातावरण से ऊपर अन्तरिक्ष में कोई पदार्थ नहीं है। फिर भी नक्षत्र, सूर्य आदि का प्रकाश और उष्णता उस शून्य स्थान से होकर पृथ्वी तक आते ही हैं। एक आध काँच के बर्तन को वाताकर्षक यन्त्र पर रख कर उसकी हवा निकाल लेने पर भी उष्णता और प्रकाश उससे होकर आता रहता है। परन्तु यदि उसी बर्तन में एक घण्टी रख कर हवा निकाल ली जाय और तब घण्टी बजाई जाय तो उसकी आवाज़ सुनाई न देगी। ध्वनि-तरङ्गों के उत्पत्ति-स्थल से कर्णपटल तक पहुँचाने के लिए किसी वाहक पदार्थ का होना आवश्यक है। ईथर (आकाश तत्त्व) एक अजड़ और गुरुत्वहीन परन्तु सर्वव्यापी पदार्थ है। यही वाहक बन कर तरङ्गों-द्वारा उष्णता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रकाश को इधर-उधर पहुँचाता है। यही कारण है कि शून्यावकाश और अन्तरिक्ष में उसे मार्ग मिल जाता है। प्रत्येक जड़ पदार्थ में ईथर विद्यमान रहता है। इसी से उष्णता और प्रकाश काँच से जा सकते हैं। भिन्न भिन्न पदार्थों के कारण ईथर के गुण-धर्म बदल जाते हैं, जिससे वे न्यूनाधिक परिमाण में उनसे आ जा सकते हैं—कभी कभी नहीं भी आते। परन्तु ध्वनि-तरङ्ग ईथर में उत्पन्न नहीं हो सकती। अतएव इस काम के लिए ईथर निरुपयोगी है। हवा के ध्वनि-वाहक का कार्य-भार सँभारने के कारण ही शब्द सुनाई देता है। वातावरण न हो तो ध्वनि-शब्द का अस्तित्व ही मिट जाय। अन्य पदार्थों में भी ध्वनि-तरङ्गें पैदा तो होती हैं, परन्तु शब्द सुनाई नहीं देता। क्योंकि शब्द-ज्ञान हमको तभी होता है जब ध्वनि-तरङ्गें कर्णपटल तक पहुँच कर उस पर आघात करती हैं। अतएव यह आवश्यक है कि कर्णपटल से ध्वनिवाहक का प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो। इसके लिए हवा ही एक उपयुक्त पदार्थ है। हवा को छोड़ कर अन्य पदार्थों में ध्वनि-तरङ्गों का उत्पन्न होना न होना बराबर है। अतएव वातावरण के अभाव में सारे संसार में भीति-प्रद शान्तता का घोर साम्राज्य छा जायगा। बोलने पर ओठों का हिलना ज़रूर दिखाई देगा, परन्तु शब्द बिलकुल सुनाई न देगा। आधुनिक गगनभेदी तोपों की आवाज़ किसी को सुनाई न देगी। समुद्र-तरङ्गें शान्तभाव से किनारे पर टकराती रहेंगी। ऊँचे ऊँचे पहाड़ों से गिरनेवाले निर्झर मौनव्रत धारण कर अपना मार्ग अतिक्रमण करते रहेंगे। चपल चपला की चमचमाती हुई चमक दृष्टिगोचर तो होगी, किन्तु वारिदों का गम्भीर गर्जन न सुनाई देगा। वनराज का भयप्रद गर्जन किसी को भयभीत न कर सकेगा एवं टेलीफ़ोन, तार, बेतार के तार, मायक्रोफ़ोन, ग्रामोफ़ोन, आदि सभी प्रकार के 'फ़ोन' यन्त्र बेकार हो जायँगे।

जीवन-व्यापार को सुचारुरूप से सम्पन्न करने के लिए आक्सिजन की ज़्यादा ज़रूरत होती है। अन्य कार्यों के लिए भी आक्सिजन का अस्तित्व अनिवार्य है। ज्वलन-क्रिया भी इसी पर अवलम्बित रहती है। जलनेवाले पदार्थों के द्रव्यों—मुख्यतः कार्बन और हायड्रोजन-का आक्सिजन के साथ संयोग होने से उष्णता उत्पन्न होती है, जिससे वे पदार्थ जलने लगते हैं। आक्सिजन का अस्तित्व न रहे, तो पदार्थों का जलना रुक जाय—अर्थात् अग्नि का अस्तित्व ही मिट जाय। संसार के सभी कारख़ाने और यन्त्र बेकार हो जायँ। अस्तु। नाइट्रोजन के योग से हवा का आक्सिजन कुछ सौम्य हो जाता है। आजकल वातावरण के नाइट्रोजन से अमोनिया और नाइट्रिक असिड तैयार किया जाता है, जिससे नाइट्रोजन-युक्त खादें सस्ती बिकने लगी हैं। ये खाद फ़सल को बहुत फ़ायदा पहुँचाती हैं।

वातावरण की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न लोगों का भिन्न भिन्न मत है। कुछ विद्वान् उसकी उत्पत्ति 'तेजोमेघ-सिद्धान्त' (nebular theory) के आधार पर मानते हैं। कुछ उल्कावाद को (Meteoric Hypothesis) सिद्ध कर उसी से वातावरण के उत्पन्न होने की कथा कहते हैं। हमें यहाँ यह बात सिद्ध कर दिखाने का अवकाश नहीं है कि उक्त दोनों मतों में कौन मत ग्राह्य है। तथापि प्रचलित मत के अनुसार वातावरण की उत्पत्ति पर कुछ लिखना अप्रासङ्गिक न होगा। उल्कावाद का मत है कि पृथ्वी (अन्य ग्रह, सूर्य और नक्षत्र भी)—असंख्य उल्काओं के एक स्थान पर एकत्र होने से बने हैं। प्रारम्भ में पारस्परिक आघात-प्रत्याघात से अत्यधिक उष्णता उत्पन्न हुई होगी, जिससे सर्व उल्कासमूह तप्त होकर सूर्य के समान जलता रहा होगा। कालान्तर में उस समूह में गिरनेवाली उल्काओं की संख्या घटती गई होगी, जिससे अधिक उष्णता उत्पन्न न होकर जितनी उष्णता उस समूह में होगी वह विसृष्ट किरणरूप में (radiation) अन्तरिक्ष में चली गई होगी, जिससे सबका सब समूह ठण्ढा होकर पृथ्वी की समान अवस्था को प्राप्त होगया होगा। परीक्षा करने पर मालूम हुआ है कि उल्का के सूक्ष्म रन्ध्रों में वायु के परमाणु बन्द रहते हैं। इसमें हायड्रोजन, नाइट्रोजन और कार्बानिक ॲसिड ही अधिकतर पाया जाता है। भूगर्भ की उल्काशिला में कार्बानिक ॲसिड और नाइट्रोजन तो जैसे के तैसे रहते हैं, परन्तु हायड्रोजन भिन्न भिन्न पदार्थों के आक्सिजन के साथ रासायनिक संयोग हो जाने के कारण जलवाष्प में परिणत हो गया। यही तीनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायु ज्वालामुखी पर्वतों के मुख-द्वारा या अन्य साधनों-द्वारा वहाँ से निकल कर भूपृष्ठ पर आकर वातावरण में परिणत हो गये होंगे। प्रारम्भ में केवल तीन ही वायु थे। यदि आक्सिजन होगा भी तो बहुत ही कम परिमाण में होगा। यह कार्बनयुत वातावरण वनस्पति की वृद्धि के लिए पूर्णरूप से उपयुक्त था। इसलिए उस युग में वनस्पति की ख़ूब ही वृद्धि हुई। वनस्पति के जीवन-व्यापार के कारण कार्बानिक वायु का शोषण और आक्सिजन का विसर्जन होता रहने से धीरे धीरे कार्बानिक वायु का परिमाण घटता गया और आक्सिजन का परिमाण बढ़ता गया। एवं प्राणि-संसार की उत्पत्ति के अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर प्राणियों की सृष्टि हुई।

ऊपर वातावरण की उत्पत्ति की बात लिख आये हैं। यदि उसे ग्राह्य मान लें तो यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी कि चन्द्र पर भी वातावरण है और वहाँ उद्भिज और प्राणिवर्ग विद्यमान है। क्योंकि चन्द्र भी तो पृथ्वी के समान अन्तरिक्ष में सञ्चार करनेवाला गोलक है और वातावरण की उत्पत्ति करनेवाले प्रचण्ड ज्वालामुखी भी वहाँ मौजूद हैं। उल्कावाद ग्राह्य मान लेने से यह भी मानना पड़ेगा कि चन्द्र उल्काशिला से बना हुआ है। अतएव वहाँ भी ज्वालामुखी पर्वतों के मुख से यहाँ की तरह ही कार्बानिक ॲसिड आदि उद्भिज कोटि के अनुकूल वायु बाहर निकलते रहे होंगे। एवं उद्भिज संसार के अस्तित्व में आने के बाद प्राणिसंसार अवश्य ही उत्पन्न हुआ होगा। परन्तु ऐसा होना पाया नहीं जाता। यह बात पूर्णरूप से सिद्ध की जा चुकी है कि चन्द्र पर उद्भिज और प्राणिवर्ग का अस्तित्व एक-दम असम्भव है। गणितज्ञों ने निश्चित किया है कि चन्द्र पृथ्वी से बहुत ही छोटा है, जिससे उसकी आकर्षण-शक्ति भी बहुत ही कमज़ोर है। यही कारण है कि चन्द्र का पिण्ड ज्वालामुखी से बाहर निकलनेवाली वायु को पृष्ठ-भाग पर रोक रखने में असमर्थ है। इसलिए ज्वालामुखी से बाहर निकलनेवाली वायु जिस तेज़ गति से बाहर निकलती है उसी तेज़ गति से वह अन्तरिक्ष में चली जाती है। और यही कारण है कि वहाँ वातावरण का बनना शक्य नहीं। और वातावरण के अभाव में वनस्पति और प्राणि-संसार का अस्तित्व एक-दम असम्भव है।

ऊपर लिखे हुए वातावरण के इतिहास को पढ़ कर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि प्राचीन काल में पृथ्वी का वातावरण बिलकुल भिन्न प्रकार का था और समय पाकर उसमें परिवर्तन हो गया तो क्या भविष्य में वर्तमान वातावरण में परिवर्तन होना सम्भव नहीं? यदि परिवर्तन होना अनिवार्य है तो यह जीवन-क्रिया के प्रतिकूल बन कर सचेतन संसार का अन्त कर देगा। वातावरण में कार्बानिक ॲसिड गैस का परिमाण दिन पर दिन घट रहा है या बढ़ रहा है, यह प्रश्न प्राणि-संसार के लिए बड़े महत्त्व का है। उसका परिमाण बढ़ जाने से हवा अशुद्ध हो जायगी, जिससे जीवन-व्यापार सुचारुरूप से सम्पन्न करना असम्भव हो जायगा। यदि उसका परिमाण घट जायगा तो जीवन-व्यापार तेज़ी से चलने लगेगा और कार्य-शक्ति बढ़ जायगी। आक्सिजन का परिमाण बढ़ जाने से प्राणिवर्ग को (वनस्पति को भी) कष्ट पहुँचेगा। परन्तु डरने का कोई कारण नहीं। यदि मान भी लिया जाय कि ऑक्सिजन का परिमाण बढ़ गया तो प्राणिवर्ग की वृद्धि ज़ोरों से होने लगेगी और उनकी श्वासोच्छ्वास की क्रिया से आक्सिजन का व्यय अधिक होने लगेगा और कार्बानिक गैस भी अधिक परिमाण में तैयार होती रहेगी। और तब आक्सिजन वायु की वृद्धि में रुकावट पहुँचेगी। परन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं। हवा में नाइट्रोजन मौजूद है और ऑक्सिजन की उत्पत्ति के अन्यसाधन न होने के कारण सब दारोमदार कार्बानिक वायु के कम ज़्यादा होने पर ही निर्भर है। परन्तु असल बात तो यह है कि आक्सिजन की वृद्धि होना एकदम असम्भव है। कार्बानिक वायु की वृद्धि की बहुत कुछ सम्भावना है। क्योंकि प्राणि-मात्र प्रतिक्षण कार्बानिक ॲसिड वायु तैयार करता रहता है। इसके सिवा ज्वालामुखी पर्वत, सड़नेवाले पदार्थ, विद्युद्दीपक के सिवा अन्य सभी प्रकार के दीपक, अग्नि आदि भी इसकी वृद्धि करते रहते हैं। परन्तु उद्भिज-वर्ग का प्रयत्न इससे बिलकुल प्रतिकूल दिशा में जारी है। वह कार्बानिक ॲसिड का कार्बन ग्रहण कर हवा में आक्सिजन छोड़ता रहता है। यही कारण है कि इन दो गैसों के परिमाण में अन्तर नहीं पड़ने पाता। उद्भिज सृष्टि-द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्बानिक ॲसिड का शोषण पर्याप्त परिमाण में न होने के कारण इसके परिमाण की वृद्धि होना बहुत कुछ सम्भव है। यदि ऐसा हो भी जाय तो सागर की प्रतिक्रिया-द्वारा वह पुनः मर्यादित किया जा सकता है। पानी में यह वायु बहुत अधिक परिमाण में मिल कर (dissolved) रहता है। सोडा-वाटर की बोतल में अधिक दबाव से पानी में मिलाया हुआ कार्बानिक ॲसिड वायु रहता है। बोतल का ढक्कन हटाते ही यह दबाव हट जाता है, जिससे पानी का कुछ वायु बाहर निकल आता है। यद्यपि श्वासोच्छ्वास की क्रिया के लिए यह वायु हितकारक नहीं है तो भी पानी के साथ पेट में जाने से पचन-क्रिया को अच्छी सहायता पहुँचता है। लेमोनेड, जिंजर, आदि अन्य पेय में भी यह भरा रहता है। और यही कारण है कि बोतल का ढक्कन हटाते ही यह वायु बाहर आने लगता है, जिससे फदफदाना शुरू हो जाता है। इसी प्रकार लहरों के उठने से समुद्र के जल में इस वायु का शोषण होकर वह उसमें मिल जाता है। वर्तमान युग में वातावरण में यह वायु जितने परिमाण में पाया जाता है उससे २७ गुना अधिक वायु समुद्र-जल में भरा हुआ है। यह बात प्रयोगों-द्वारा सिद्ध हो चुकी है। समुद्र के जल में इससे भी कई गुना अधिक और वायु रह सकता है। वातावरण में इस वायु का परिमाण बढ़ते ही समुद्र इसका शोषण कर लेगा, जिससे वह पुनः मर्यादित हो जायगा। वातावरण के सम्बन्ध में और भी बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु विस्तार भय से उस पर यहाँ और अधिक विचार नहीं किया जा सकता।

हवा वज़नदार होती है। प्रत्येक पदार्थ के चारों ओर उस पदार्थ के आकारमान से हवा का भार विद्यमान रहता है। इसी भार के कारण पंप की सहायता से कुएँ से पानी खींचा जा सकता है। नलों-द्वारा शहरों की गली गली में पानी पहुँचाया जाता है। हवा के भार को नाप कर यह बात जानी जा सकती है कि वातावरण में क्या क्या परिवर्तन हुए हैं। हमारे अधिकांश पाठक इन बातों से परिचित होंगे, अतएव इस विषय को यहीं छोड़ कर रजःकण पर संक्षेप में कुछ लिख कर इस लम्बे लेख को सम्पूर्ण करेंगे।

ऊपर लिख आये हैं कि हवा में अनन्त रजःकण हैं, जिनमें से कुछ उल्कापात से अस्तित्व में आये हैं। प्रतिदिन चौबीस घण्टे में क़रीब दो करोड़ उल्कायें पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश करती हैं, जिनमें से अधिकांश सङ्घर्षण के कारण ऊपर ही ऊपर नष्ट हो जाती हैं। भूपृष्ठ पर के ज्वालामुखी पर्वतों से धूँआ ज़ोर से ऊपर की ओर उठता रहता है। इसके भी बहुत से कण हवा में उड़ते रहते हैं। घर, कारख़ाने, आग जलने आदि के द्वारा भी बहुत सा धुँआ गगनमण्डल की ओर को जाता रहता है। इसमें के कारबन के कण भी वायुमण्डल में उड़ते रहते हैं। हवा के कारण धूल के कण भी वायुमण्डल में जा मिलते हैं। हवा के ये रजःकण नेत्रों से दिखाई नहीं देते, परन्तु एक आध छेद में से होकर आनेवाले सूर्य-प्रकाश को देखने से ये रजःकण उसमें उड़ते हुए नज़र आते हैं। अनुमान किया गया है कि एक घन इंच वायु में आठ लाख से बारह लाख तक रजःकण पाये जाते हैं।

बड़े बड़े नगरों में जहाँ कारख़ानों की संख्या अधिक है, इन रजःकणों की संख्या एक करोड़ तक पहुँच जाती है। ज़मीन से बहुत दूरी पर स्थित महासागर के मध्य-भाग में इनकी संख्या प्रति घन इंच में तीस हज़ार तक पाई जाती है। चारों ओर रजःकण का अटल प्रभुत्व छाया हुआ है। पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक उनका प्रवास अक्षुण्ण बना रहता है।

रजःकण अति क्षुद्र मालूम होते हैं, परन्तु इनकी महिमा अपरम्पार है। इन्हीं सूक्ष्म कणों के कारण आकाश का रङ्ग नीला दिखाई देता है। इन्हीं के कृपा-कटाक्ष से सन्धि-प्रकाश के मनोमुग्धकारी दृश्य को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है और इन्हीं की सुदया से उदयास्त के समय क्षितिज पर प्रतिक्षण बदलनेवाले मनोरम रङ्गों की अपूर्व छटा देख कर मनुष्य का मन मुग्ध हो जाता है। रजःकण के कारण ही जलवाष्प बादल का रूप धारण करता है। वातावरण में जलवाष्प अदृश्य रूप में रहता है। हवा के अदृश्य जलवाष्प का परिमाण मर्यादित रहता है और वह ताप-क्रम पर निर्भर रहता है। ताप-क्रम के बढ़ जाने पर जलवाष्प का परिमाण भी बढ़ जाता है। इस परिमाण के अत्यधिक बढ़ जाने अर्थात् हवा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जलवाष्प-सञ्चय के अधिक बढ़ जाने पर वह—हवा, वाष्पाति-सम्पृक्त हो जाती है। और तब वाष्प जल-रूप से ज़मीन पर गिर पड़ता है। रजःकणों के नज़दीक होने से उस वाष्प के सूक्ष्म जलकण बन कर उनके सहारे वे हवा में तैरते रहते हैं। एक स्थान पर अधिक जलकणों के जम जाने से वे सफ़ेद दिखाई देने लगते हैं और इन्हें ही 'बादल' कहते हैं। यदि यह जल-कण-सञ्चय भूमि के पास होता है तो उसे 'धुँध' कहते हैं। जलवाष्प के अदृश्य रहने पर एक-दम तापक्रम के घट जाने से हवा सीमा से अधिक सम्पृक्त हो जाती है, जिससे रजःकण के योग से बादल बन जाते हैं। सूर्य की गरमी से जलाशयों का जल वाष्परूप धारण कर हवा में मिल जाता है। हलका होने के कारण वाष्प ऊपर को चढ़ जाता है और वहाँ का तापक्रम घट जाने के कारण रजःकण का आश्रय लेकर वह मेघ का रूप धारण कर हवा में तैरता रहता है। वाष्प के सूक्ष्म कणों का हवा में रहना न रहना रजःकण पर निर्भर है। उनके अभाव में जलवाष्प का हवा में रहना एक-दम असम्भव है। और तब बादल और वर्षा का नाम ही न रहेगा। जलवाष्प हमेशा तैयार होता रहेगा और हवा के सम्पृक्त होने से जिस पदार्थ से उसका संयोग होगा उसी पदार्थ पर वाष्प शीतल होकर जलरूप धारण कर लेगा, जिससे वह गीला हो जायगा और सदा पानी की बूँदें टपकती रहेंगी। छाते का उपयोग भी न किया जा सकेगा। कारण कि हवा मानव-प्राणियों के शरीर को स्पर्श कर उसे तर-बतर कर देगी। इतना ही नहीं—घर के सभी पदार्थ—दीवारें तक हमेशा गीली बनी रहेंगी।

रजःकण की कृपा से कई कीटाणु भी (स्वशक्ति से नहीं) हवा में घूमते रहते हैं। किसी स्थान की हवा को लेकर देखने से उसमें असंख्य सूक्ष्म जन्तु नज़र आवेंगे। हवा के कीटाणुओं के ही कारण दूध अधिक समय तक रख छोड़ने से ख़राब हो जाता है। हवा के कीटाणु दूध में प्रवेश कर जाते हैं। वहाँ उनकी खूब बाढ़ होती है और उनकी वृद्धि के कारण दूध फट जाता है। हवा निकाली हुई बोतल में भर कर रखने से दूध कई दिन तक ख़राब नहीं होता। परन्तु इस बात पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए कि दूध भरते समय और निकालते समय उसे हवा के सम्पर्क से जितना हो सके उतना बचाना चाहिए। अमरीका में दूध यन्त्रों से दुहा जाता है, अतएव वहाँ ऐसा किया जा सकता है।

फंगस नामक वनस्पति के बीज भी हवा में उड़ते रहते हैं और अनुकूल स्थान पाकर जड़ पकड़ लेते हैं। कई प्रकार के रोगोत्पादक कीटाणु भी वायु में उड़ते रहते हैं। इस सम्बन्ध में इस लेख में कुछ लिखना अप्रासङ्गिक होगा। अतएव यह विषय यहीं समाप्त किया जाता है।

शङ्करराव जोशी

आकांक्षा की निवृत्ति।

अहमद आठ साल के बाद घर लौटा। मनुष्य समझता है कि वह जो कुछ करता है अपनी इच्छा से करता है। परन्तु कौन कह सकता है कि उसकी इच्छा किसी अदृष्ट शक्ति की प्रेरणा नहीं है। हम वर्तमान से ही सन्तुष्ट रहते हैं। परन्तु वर्तमान में ही भविष्य का बीज छिपा रहता है। कभी कभी हमारे दैनिक जीवन के साधारण कृत्य का भी परिणाम इतना विलक्षण होता है कि हम उसे देखकर चकित हो जाते हैं। काम कुछ होता है और फल दूसरा होता है। क्या इसे हम अदृष्ट शक्ति का प्रभाव नहीं कहेंगे? जब अहमद ने घर छोड़ा था तब वह नहीं जानता था कि उसे फिर अपना घर देखने का सौभाग्य प्राप्त होगा। उस समय वह निराश्रय था। पिता की मृत्यु के बाद कुछ दिनों तक तो उसने अपने मामा के घर में पेट पाला। पर एक दिन उसे अपने मामा के घर में रहना असह्य होगया। उसी दिन वह चुपचाप घर से निकल गया। दो चार रोज़ तक लोगों ने उसकी खोज की, पर जब उसका पता न चला तब किसी ने भी उसके लिए खेद प्रकट नहीं किया। उसी गाँव में उसकी एक विधवा फूफी रहती थी। वह ग़रीब थी, किसी तरह अपना निर्वाह करती थी। वही कभी कभी उसकी याद किया करती थी। आठ साल के बाद उसी के नाम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक चिट्ठी आई। चिट्ठी रंगून से आई थी। विधवा ने उसे दूसरे से पढ़वा कर सुना। मालूम हुआ कि अहमद की चिट्ठी है। यह भी मालूम हुआ कि अहमद अब ग़रीब नहीं है। उसने अच्छी रक़म पैदा करली है और अब वह रंगून से घर लौट कर आरहा है। अपने भतीजे की श्री-वृद्धि का हाल सुन कर विधवा की आँखों से स्नेह के आँसू झरने लगे। उसने अपने भतीजे की मङ्गल-कामना के लिए दरगाह में जाकर भेट चढ़ाई। गाँव भर में यह बात फैल गई। सभी लोगों ने अहमद के सौभाग्य से सन्तोष प्रकट किया। इस प्रकार जब गाँव के सभी लोग उत्सुकता से उसकी राह देख रहे थे तब एक दिन अहमद भी आ पहुँचा। जब उसने घर छोड़ा था तब उसकी उम्र सिर्फ़ १६ वर्ष की थी। इस समय वह २४ वर्ष का युवक था। शरीर बलिष्ठ और कान्तिमान् था। लोग देख कर दङ्ग रह गये। विधवा फूफी के आँसू थमते नहीं थे। उसने बड़े स्नेह से अपने भतीजे को घर में रक्खा।

दूसरे दिन ईद थी। अहमद ईदगाह से घर आरहा था। अपने घर के पास उसने दो लड़कियों को देखा। दोनों एक ही उम्र की जँचती थी। एक का गौरवर्ण था और दूसरी कुछ साँवली थी। गौरवर्ण की लड़की बड़ी रूपवती थी। उसके चेहरे से लावण्य टपका पड़ता था। साँवली लड़की उतनी सुन्दर नहीं थी। तो भी उसकी सौम्यमूर्ति को देखते ही हृदय उसकी ओर आप से आप खिँच जाता था। अहमद को देख कर दोनों लड़कियाँ ठिठक सी गईं। अहमद भी उनका रूप देख कर चुपचाप खड़ा रह गया। थोड़ी देर के बाद साँवली लड़की ने लजाती हुई कहा—मुझे तो पहचानते नहीं होगे? मैं हमीदा हूँ। यह मेरी छोटी बहन गुलशन है।

अहमद की पूर्व-स्मृति जाग पड़ी। उसने हँस कर कहा—तुम्हीं हमीदा हो। मेरी हमीदा तो ज़रा सी लड़की थी, जो छिपा कर मेरे लिए हुक्का लाती थी और मैं उसे अमरूद देता था। अब तुम अमरूद खाती हो या नहीं?

हमीदा ने भी हँसकर कहा—तुमने तो ख़रीद कर कभी मुझे अमरूद दिये नहीं।

दोनों हँसने लगे।

अहमद ने पूछा—इधर तुम कहाँ जा रही हो?

हमीदा—तुम्हारे ही घर जा रही हूँ। तीनों इधर-उधर की बातें करते करते घर आये।

उस दिन रात को अहमद को नींद नहीं आई। बड़ी देर तक उसकी आँखों के सामने हमीदा की सौम्यमूर्ति घूमती रही। हमीदा अब्दुलहुसैन की लड़की थी। अब्दुलहुसैन गाँव में धनाढ्य आदमी कहा जाता था। हमीदा मातृ-हीना थी। उसकी मा तभी मर गई थी जब वह साल भर की थी। उसके बाप ने दूसरा विवाह किया था। गुलशन उसकी दूसरी स्त्री की लड़की है। अहमद ने मन ही मन निश्चय किया कि यदि अब्दुलहुसैन अस्वीकार न करे तो वह हमीदा से विवाह करेगा।

दूसरे दिन फूफी ने खुद लड़कियों की चर्चा छेड़ दी। बात ही बात में वह समझ गई कि अहमद किसको चाहता है। उसी दिन शाम को वह अब्दुलहुसैन के घर गई और वहाँ उसने हमीदा से अहमद का विवाह एक प्रकार से पक्का कर लिया। विवाह का दिन निश्चित नहीं हुआ। अहमद नया मकान बनवा रहा था। इसलिए यह सोचा गया कि मकान बन जाने के बाद किसी दिन विवाह हो जायगा।

एक दिन प्रातःकाल ख़ूब तड़के अहमद पोखरे की ओर घूमने के लिए चला गया। वहाँ उसने गुलशन को किनारे पर बैठे हुए देखा। उस समय सूर्योदय नहीं हुआ था। चारों ओर बिलकुल शान्ति थी। गुलशन भी चुपचाप बैठी पानी की ओर ताक रही थी। अहमद ने गुलशन को कई बार देखा था। पर इस सौन्दर्य की कल्पना तक उसने नहीं की थी। वह बिलकुल विमुग्ध होकर उस अपूर्व रूप-राशि को देखने लगा। थोड़ी देर में गुलशन का ध्यान भङ्ग हुआ। उसने लौट कर देखा तो अहमद खड़ा हुआ उसकी ओर सतृष्ण दृष्टि से देख रहा है। क्षण भर के लिए गुलशन का मुख लज्जा से लाल हो गया। इसके बाद वह उठ कर चुपचाप चली गई। अहमद उसको देखता रहा। जब वह दृष्टि के बाहर होगई तब अहमद की तन्द्रा लौट आई। लज्जा से उसका शरीर पसीना पसीना हो गया। वह सोचने लगा कि गुलशन ने मुझे इस अवस्था में देख कर क्या समझा होगा। थोड़ी देर तक वह इसी चिन्ता में पड़ा रहा। इसके बाद वह घर लौट आया। आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी फूफी ने हमीदा के विषय में अनेक बातें कहीं, पर अन्यमनस्क होने से वह उन बातों को अच्छी तरह सुन भी नहीं सका।

अहमद प्रायः प्रति दिन अब्दुलहुसैन के घर जाता था। अब्दुलहुसैन और उनकी स्त्री दोनों उससे बड़े ख़ुश थे। पर दो दिन तक वह उनके घर जाने का साहस नहीं कर सका। तीसरे दिन उसे जाना ही पड़ा। वह रास्ते में सोचता जाता था कि गुलशन मुझे देख कर क्या कहेगी। ज्यों ही उसने घर के भीतर पैर रक्खा त्यों ही सबसे पहले गुलशन ही पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह दरवाज़े के पास ही खड़ी थी। अहमद उसे देख कर रुक गया। गुलशन ने पास आकर कहा—आज तो तीन दिन के बाद आये हैं? क्या कुछ तबीयत ख़राब हो गई थी?

अहमद ने धीरे से उत्तर दिया—जी नहीं, मैं एक काम में लगा हुआ था।

गुलशन—घर में तो अभी कोई नहीं है। हमीदा को लेकर अम्मा मामा के घर गई हैं। अब आती ही होगीं। बाबा इन्स्पेक्टर से मिलने के लिए गये हैं। आप यहीं बैठिए।

अहमद चुपचाप गलीचे के एक कोने में बैठ गया। परन्तु उसका हृदय धड़क रहा था। एक बार उसने साहस करके सिर उठाया। देखा, गुलशन उसे देख कर हँस रही है। अहमद ने फिर सिर नीचा कर लिया। गुलशन कहने लगी—क्यों साहब, आप इतना शरमाते क्यों हैं?

गुलशन के इतना कहने पर अहमद ने सिर उठा कर उसकी ओर देखा! इस बार गुलशन ने सिर नीचा कर लिया। अहमद कुछ देर तक उसकी ओर चुपचाप निर्निमेष दृष्टि से देखता रहा। फिर उसने धीरे से कहा—गुलशन, मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। पर क्या तुम मुझे क्षमा करोगी? मैं नहीं कह सकता कि मुझे क्या हो गया है। पर अब तुम्हारे बिना—

अहमद आगे कुछ नहीं कह सका। किसी के आने की आहट मालूम हुई। वह चुपचाप जहाँ का तहाँ बैठ गया। गुलशन भी कुछ शङ्कित सी खड़ी रही। इसके बाद वह कमरे के बाहर चली आई।

उसी दिन रात को अहमद ने अपनी फूफी से अपनी इच्छा स्पष्ट कह दी। फूफी अवाक् हो गई। उसने कहा—बेटा, मैंने तो यह समझा था कि तुम हमीदा से विवाह करना चाहते हो। इसी से मैंने उसी से तुम्हारा विवाह ठीक किया था। मुझसे इतनी भूल ज़रूर हुई कि मैंने तुमसे साफ़ साफ़ पूछा नहीं। पर बेटा, हमीदा बड़ी सुशील लड़की है, यों तो गुलशन भी अच्छी है।

अहमद ने कुछ उत्तर नहीं दिया। पर उस दिन से वह विषण्ण सा रहने लगा। आख़िर एक दिन उसकी फूफी ने कहा—बेटा, मैं जाती हूँ, ज़रा गुलशन की मा से बात चीत कर आऊँ।

अहमद बड़ी व्यग्रता से अपनी फूफी की राह देखने लगा। जब वह लौट कर आई तब सङ्कोच के कारण अहमद ने कुछ पूछा नहीं, पर उसकी फूफी ने ख़ुद ही कहा—बेटा, अगले जेठ में गुलशन के साथ तुम्हारा विवाह पक्का है। आज तुम्हारे भावी ससुर ने तुमको बुलाया है। और भी लोग आवेंगे।

उस दिन अहमद ९ बजे रात को लौटा। चाँदनी छिटकी हुई थी। उसका चित्त भी प्रफुल्लित था। वह नदी के किनारे टहलता टहलता क़बरस्तान की ओर निकल पड़ा। जब वह क़बरस्तान के पास पहुँचा तब उसे वहाँ कोई स्त्री सी दिखलाई पड़ी। उसको कुछ आश्चर्य हुआ कि यहाँ इतनी रात को कौन स्त्री आई है। वह चुपचाप एक पेड़ की आड़ में खड़ा हो गया। थोड़ी देर में चन्द्रमा का उज्वल प्रकाश मेघ से निर्मुक्त हो क़बरस्तान पर अच्छी तरह फैल गया। अहमद ने देखा कि हमीदा अपनी मा की क़बर पर सिर नीचा किये बैठी है। अहमद के हृदय में चोट सी लगी। थोड़ी देर में हमीदा क़बरस्तान के बाहर निकली। उसका मुख बिलकुल शान्त था, न उसमें हर्ष और न विषाद। उसके बाहर निकलते ही अहमद से न रहा गया। उसने कम्पित स्वर से कहा—हमीदा।

हमीदा पहले चौंक पड़ी। परन्तु ज्यों ही उसने अहमद को देखा, त्यों ही वह शान्त हो गई। उसने बड़े मीठे स्वर से कहा—कौन है भैया अहमद।

अहमद ने कहा—हाँ, हमीदा, मैं ही हूँ। तुम यहाँ कैसे आई?

हमीदा ने शान्त स्वर से उत्तर दिया—मैं अम्मा की क़बर पर फूल चढ़ाने आई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमद ने आगे बढ़ कर गद्गद कण्ठ से कहा—हमीदा, मैंने यदि तुम्हारे हृदय को किसी तरह की चोट पहुँचाई है तो मुझे क्षमा करो। मैं सच कहता हूँ, मुझसे बढ़ कर नीच दूसरा कोई नहीं होगा।

हमीदा ने प्रेम से कहा—भाई मेरे, आज से तुम मेरे भाई हुए हो और मैं तुम्हारी बहन हुई हूँ। भला, भाई क्या बहन का कोई अपराध करेगा और उससे क्षमा माँगेगा।

अहमद ने कहा—तुम स्त्री नहीं, देवी हो।

जिस दिन गुलशन के साथ अहमद का विवाह हुआ उसी दिन हमीदा का विवाह विलासपुर के एक धनी ज़मीदार नज़ीरहुसेन के साथ निश्चित हुआ। थोड़े दिनों के बाद हमीदा का विवाह होगया और वह विलासपुर चली गई।

कहते हैं कि एक के जीवन के साथ दूसरे का जीवन सम्बद्ध रहता है। स्वयं कुछ न कर के भी कोई एक किसी दूसरे के भाग्य का विधाता होता है। यदि यह बात न होती तो हमीदा का विवाह अहमद से ही क्यों न हुआ।

(२)

अहमद के कुछ दिन तो गाँव में कट गये। पर अधिक समय तक वह वहाँ नहीं रह सका। इसी समय उसके एक परिचित व्यापारी ने उसे अपकी दूकान में एक जगह देनी चाही। अहमद ने उसको स्वीकार कर लिया। भाग्यवश उसको विलासपुर में जगह मिली। वहीं वह अपनी स्त्री को लेकर रहने लगा।

गुलशन को अपने सौभाग्य का बड़ा गर्व था। वह अपने पति की प्रियतमा थी। उसने कभी किसी प्रकार के अभाव का अनुभव नहीं किया। जब वह विलासपुर में आकर रहने लगी तब वह धनिकों का वैभव देखने लगी। उसने वैसा ऐश्वर्य कभी नहीं देखा था। इससे वह पहले पहल चकित सी हो गई। परन्तु उसने उस ऐश्वर्य की कामना कभी नहीं की। उसे अपने पति के स्नेह-धन के सामने विलासपुर की समस्त सम्पत्ति तुच्छ जान पड़ती थी।

विलासपुर में कुछ महीने रहने के बाद एक दिन उसने हमीदा के घर जाना चाहा। जब से वह आई थी तब से उसने कई बार हमीदा से भेंट करने की इच्छा की। परन्तु उसको मौक़ा कभी नहीं मिला। हमीदा के पति नज़ीरहुसेन प्रायः अपने गाँव में ही रहते थे। उसकी दूकान का काम नौकर देखते थे। साल में दो ही चार महीने वह विलासपुर में रहता था। जब से गुलशन विलासपुर आई थी तब से हमीदा एक दिन के लिए भी विलासपुर नहीं आ सकी। आख़िर एक दिन वह आई। गुलशन ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया। थोड़ी देर बैठने के बाद उसने गुलशन को अपने घर चलने के लिए कहा। गुलशन को कोई काम तो था नहीं। वह हमीदा के साथ चलने के लिए राज़ी हो गई।

बाहर आने पर उसने देखा कि एक सुन्दर फ़िटन गाड़ी खड़ी है। पूछने से मालूम हुआ कि वह गाड़ी हमीदा की ही है। उस समय न जाने क्यों गुलशन के हृदय में कुछ चोट सी लगी। जब वह हमीदा के घर पहुँची तब उसने देखा कि मकान छोटा तो है, परन्तु बहुत सुन्दर बना है। घर में असबाब भी काफ़ी है। उनको देखने से यह साफ़ मालूम पड़ता था कि इस घर का मालिक श्री-सम्पन्न है। उन सब चीज़ों को देख कर गुलशन के हृदय में कितने ही प्रकार के भाव उठने लगे। वह इतनी नीच नहीं थी कि वह हमीदा से ईर्ष्या करे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने घर को हमीदा के घर से किसी प्रकार कम नहीं देखना चाहती थी। आजतक वह अभी अपनी स्थिति से असन्तुष्ट नहीं हुई थी। परन्तु अब उसके हृदय में असन्तोष का भाव फैलने लगा। उसने मन में प्रतिज्ञा की कि चाहे जो हो, मैं भी एक फ़िटन गाड़ी रक्खूँगी और अपने घर को इसी तरह सजाऊँगी। जब वह घर लौटने लगी तब रास्ते में वह इसी उधेड़बुन में पड़ी रही।

जब अहमद काम से लौटा तब गुलशन ने उससे हमीदा के आने की बात कही। बात ही बात में उसने पूछा—भला, यह तो बताओ, तुमने कभी हमीदा का घर देखा है।

अहमद—देखा क्यों नहीं है? मैं तो वहाँ कई बार गया हूँ। वहाँ की एक एक चीज़ पहचानता हूँ।

गुलशन—उसके लिए उन्होंने कितना ख़र्च किया होगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहमद—यही दस-बारह हज़ार लगे होंगे।

गुलशन—दस बारह हजार ! मेरे पास तो सब मिला कर तीन हज़ार से अधिक की सम्पत्ति न होगी।

अहमद ने हँस कर पूछा—क्या तुम्हारी भी इच्छा वैसा ही घर बनवाने और वैसा ही असबाब ख़रीदने की है।

गुलशन ने अहमद का हाथ पकड़ कर कहा—सच कहती हूँ। जब से मैंने उसका घर देखा है तब से मेरी यही लालसा है कि मैं भी उसी तरह क्यों न रहूँ जिस तरह वह रहती है।

अहमद—गुलशन, तुम तो अपने रूप से ही उसके सारे घर की चमक को दूर कर सकती हो। भला, तुम्हें यह चाह क्यों हुई ?

गुलशन—तुम तो हँसी करते हो। पर यदि मेरे पास वैसा ही सामान हो जाय तो मेरी सारी लालसायें पूरी हो जायँ।

अहमद—अगर मैं तुम्हारी लालसायें पूरी कर दूँ तो ?

गुलशन—सच कहते हो ? झूठी बात। तुम इतना रुपया कहाँ पाओगे ?

अहमद—रुपया पाना कठिन ज़रूर है, पर असम्भव नहीं है। कोशिश करने से दस हज़ार रुपया इकट्ठा करना बड़ी मुश्किल बात नहीं है।

गुलशन—सच ! अच्छा कितने दिनों में तुम दस हज़ार रुपया पैदा कर लोगे।

अहमद—अगर ख़ुदा की मर्ज़ी होगी तो एक ही साल के भीतर मैं दस हज़ार ला दूँगा। पर एक बात है।

गुलशन—वह क्या ?

अहमद—मुझे रंगून जाना पड़ेगा।

गुलशन—रंगून ! सो तो होने का नहीं। मैं तो तुम्हें रंगून न जाने दूँगी। जीवन भर ऐसी ही बनी रहूँ, यह मुझे स्वीकार है। पर तुम्हें आँखों के ओट न करूँगी।

अहमद—क्यों, मैं तो रंगून हो आया हूँ। वहाँ छः साल तक रह भी चुका हूँ। वहाँ क्या डर है ?

गुलशन—नहीं नहीं। मुझे कुछ नहीं चाहिए। तुम यहीं रहो।

अहमद—सुनो, गुलशन। आज तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मुझे भी अब कुछ पैदा करना चाहिए। सिर्फ़ कमाने-खाने से काम नहीं चलेगा। इसलिए अगर तुम इजाज़त दो तो मैं सचमुच रंगून जाऊँगा। वहाँ मेरे लिए अनेक सुविधायें हैं। एक साल की बात है। उसके बाद तुम्हें किसी प्रकार की कमी नहीं रहेगी।

गुलशन रोने लगी। पर बहुत समझाने-बुझाने पर वह राज़ी हो गई।

दूसरे ही दिन अहमद अपने जाने का बन्दोबस्त करने लगा। भाग्य उसके अनुकूल था। थोड़े ही दिनों में उसे एक अच्छा मौक़ा मिल गया। अपने मालिक की सहायता से उसने कलकत्ते के एक व्यापारी से बात चीत करके सब ठीक कर लिया। निश्चय यह हुआ कि पन्द्रह दिन के बाद अहमद रंगून के लिए रवाना हो जायगा। जब वह यह समाचार लेकर घर लौटा तब वह यह समझता था कि गुलशन यह सुन कर ख़ूब ख़ुश होगी। पर ज्योंही उसने गुलशन को सब हाल सुनाया, त्योंही वह फूट फूट कर रोने लगी। अहमद ने उसे ख़ूब समझाया। ये पन्द्रह दिन गुलशन के लिए अच्छे नहीं थे। उसका चेहरा कुम्हला गया। वह शङ्कित भी रहने लगी। अन्त में विदा का दिन आया। सजल नेत्रों से उसने पति को विदा किया। उसका दिल टूटा जाता था। पर किसी तरह वह अपने को सम्हाले रही। ज्योंही अहमद रवाना हुआ, त्योंही वह बिस्तर पर लेट कर फूट फूट कर रोने लगी।

हमीदा का विवाह अहमद से क्यों न हुआ, और यदि उससे न हो सका तो बिलासपुर के नज़ारहुसैन से ही क्यों हुआ ?

(३)

एक वर्ष अधिक नहीं होता।

किसी तरह एक वर्ष व्यतीत हुआ। महीने में दो बार अहमद की चिट्ठी आती थी। उसी से वह सन्तोष कर लेती थी। अन्तिम पत्र में अहमद ने अपने आने की सूचना दी। यह भी लिखा कि उसकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। उसने यथेष्ट सम्पत्ति एकत्र कर ली है। जिस दिन अहमद लौट कर आया उस दिन गुलशन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र दशा हो रही थी। इधर हर्ष था तो उधर एक वर्ष का छिपा हुआ वियोग-दुःख उमड़ पड़ा था। वह हँसती थी और रोती थी। मुख में हँसी थी और नेत्रों में जल था।

कुछ ही दिनों में गुलशन की लालसा पूरी हो गई। एक फ़िटन गाड़ी भी हो गई। अच्छा मकान बन गया। असबाब आ गया। गुलशन की लालसा पूरी हो गई। उसने समझा कि यदि उसकी वैसी लालसा न होती तो कदाचित् यह समृद्धि भी हाथ न आती। परन्तु क्या लालसा का अन्त समृद्धि में ही होता है। लालसा सभी करते हैं, परन्तु किसी किसी की लालसा पूरी होती है। क्यों होती है, यह कौन जानता है?

गुलशन का समय सुख से व्यतीत होने लगा। एक वर्ष के बाद उसको एक पुत्र हुआ। पुत्र जन्म के उत्सव में अहमद ने ख़ूब ख़र्च किया। हमीदा भी आई। उसको भी एक लड़का था। दोनों बहनें बड़े प्रेम से बातें करती रहीं। बात ही बात में गुलशन ने नज़ीरहुसेन का हाल-चाल पूछा। तब उसे मालूम हुआ कि वह आज-कल किसी चिन्ता में पड़ा हुआ है। सम्भव है कि उसकी सारी सम्पत्ति बिक जाय। अन्त में हमीदा ने कहा—बहन, ख़ुदा मालिक है। जिसने पैदा किया है वही हम लोगों को खाने के लिए भी देगा। यह नहीं कहा जा सकता कि हमीदा का हाल सुन कर गुलशन को हर्ष हुआ। उसको दुख अवश्य हुआ। पर अपनी स्थिति से उसको अधिक सन्तोष हुआ।

इसके बाद हमीदा से गुलशन भेट न कर सकी। नज़ीरहुसेन किसी काम से बाहर चला गया। पर जब वह लौटा तब वह अतुल सम्पत्तिशाली होकर लौटा। हमीदा गुलशन को अपने घर लिवा ले गई थी। वहाँ गुलशन ने जो कुछ देखा उससे उसका सिर घूमने लगा। हमीदा। का लड़का राजकुमार की तरह घूम रहा था। उसी की देख-रेख के लिए दो नौकर लगे थे। गुलशन अपना सारा दर्प भूल गई। वह चुपचाप घर लौट आई। घर में अहमद ने पूछा—कहो, हमीदा का क्या हाल-चाल है।

गुलशन चुप रही। गुलशन को चुप देख कर अहमद ने हँस कर कहा—जान पड़ता है, तुम फिर उसके रोब में आ गई हो। गुलशन, ख़ुदा की जो मर्ज़ी होती है वही होता है।

गुलशन ने कहा—यह सच है। परन्तु मैं यह नहीं सह सकती कि उसका लड़का राजकुमार की तरह घूमे और मेरा बच्चा भिखमङ्गे की तरह उसके सामने खड़ा हो।

इतना कह कर गुलशन रो पड़ी। अहमद चुपचाप कुछ सोचता रहा। कुछ देर के बाद उसने सिर उठा कर कहा—गुलशन, क्या तुम इतना धन चाहती हो जितना किसी के पास कभी न हो।

गुलशन ने पति का हाथ पकड़ कर कहा—मैं क़सम खाकर कहती हूँ, मैं किसी से ईर्ष्या नहीं करती। परन्तु मैं कह नहीं सकती, आज उसके लड़के को राजकुमार की तरह देख कर अपने बच्चे के लिए मुझे तरस आ गया।

अहमद ने उठ कर गुलशन के सिर पर हाथ रक्खा और कहा—गुलशन, इस बार फिर जाऊँगा। कहाँ जाऊँगा, यह मैं तुम्हें नहीं बतलाऊँगा। नहीं, तुम रोको मत। मैं जाऊँगा और तुम्हारे लिए वह सम्पत्ति लाऊँगा जितनी आज तक किसी ने देखी न होगी। पर गुलशन, इस बार मैं यह नहीं कह सकता कि मैं कब लौटूँगा। सम्भव है, दो वर्ष में लौटूँ, सम्भव है चार वर्ष में लौटूँ। पर मैं लौटूँगा ज़रूर, याद रखना।

गुलशन ने उसे रोकने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह चला गया।

एक वर्ष व्यतीत हुआ, दूसरा वर्ष बीत गया। अहमद नहीं आया। गुलशन घबराने लगी। तीसरा वर्ष घबराहट में चला गया। अहमद का कुछ पता नहीं चला। गुलशन प्रतिदिन दरगाह जाती, पति की मङ्गल-कामना से कितनी ही भेटें चढ़ाती, फ़क़ीरों से दुआ माँगती फिरती। पर चौथा, पाँचवाँ वर्ष भी बीत गया। अहमद का हाल किसी ने कुछ नहीं बतलाया। गुलशन पगली सी हो गई।

हमीदा ने नज़ीरहुसेन से अहमद का पता लगाने के लिए कहा। नज़ीरहुसेन ने बड़ी दौड़-धूप की। एक दिन कलकत्ते में उनसे एक आदमी से भेंट हो गई। उसकी बातों से मालूम हुआ कि वह रंगून में रहता है। नज़ीरहुसेन ने उससे अहमद का हाल पूछा। उसने कहा—अहमद? वही अहमद तो नहीं जिसका घर बिलासपुर में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नज़ीरहुसेन का हृदय धड़क उठा। उसने कहा—हाँ साहब, मैं उसी अहमद की बात पूछता हूँ।

वह बोला—कोई सात वर्ष की बात है, अहमद रंगून के लिए जहाज़ पर चढ़ा। पर वह जहाज़ रास्ते में डूब गया।

इसके बाद हमीदा गुलशन को अपने घर ले गई। पहले तो वह राज़ी नहीं हुई। वह समझती थी कि ये लोग मुझे बहका कर मेरे पति से अलग रखना चाहते हैं। अन्त में वह किसी तरह राज़ी हुई। पर रोज़ सन्ध्या के समय वह अपने घर में आकर दिया जला कर बैठी रहती। उसे विश्वास था कि उसका पति अवश्य आवेगा। उसकी आशा अनन्त थी।

कौन जानता है, इस आशा का अन्त कहाँ होगा? इस आकांक्षा की निवृति कहाँ होगी?

हृषीकेश

भारत के बन्दरगाह।

भारत विशाल देश है, उसकी जन-संख्या ३१,५०,००,००० है। उसका क्षेत्र-फल १७,००,००० वर्गमील है। उसकी प्राकृतिक सम्पत्ति अनन्त है। प्राचीन काल में वह अपने व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध था। तब बन्दरगाह भी अनेक थे। अब वह कृषि-प्रधान देश है। इस समय बन्दरगाह भी पाँच छः हैं। परन्तु सन्तोष की बात यह है कि जो बन्दरगाह हैं वे एक दूसरे से इतने अन्तर पर स्थित हैं कि भारत के व्यापार में कोई विशेष कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

भारत का सबसे बड़ा बन्दरगाह बम्बई है। उसकी लम्बाई १२ मील है और इसी कारण अनेक वर्षों से भारत का अधिकांश व्यापार उसी के द्वारा होता आया है। दूसरा नम्बर कलकत्ते का है। यह हुगली नदी के किनारे पर है, इसलिए इसकी भी स्थिति बड़ी अच्छी है। कराची एक छोटे आकार का प्राकृतिक बन्दरगाह है। विचक्षण इञ्जीनियरों ने इसे एक विशाल बन्दरगाह का रूप दिया है। मदरास भी एक सुरक्षित बन्दरगाह है। अब एक और नवीन बन्दरगाह के निर्माण का आयोजन विजिगापट्टन में किया जा रहा है। विजिगापट्टन कलकत्ता और मदरास के मध्य में स्थित है। यद्यपि इस स्थान में उतनी प्राकृतिक सुविधायें नहीं हैं जितनी कलकत्ता और बम्बई में हैं, तथापि थोड़े ही व्यय में बहुत उन्नति की आशा की जाती है। इन्हीं बन्दरगाहों के विषय में यहाँ कुछ चर्चा की जाती है।

बम्बई।

संसार में ऐसे बहुत ही थोड़े बन्दरगाह हैं—और भारत में तो ऐसा एक भी बन्दरगाह नहीं है—जिन्होंने हाल में इतनी उन्नति की हो जितनी बम्बई ने। उसका सौन्दर्य भी अपूर्व है। सूर्यास्त के समय समुद्र की छटा देखने ही योग्य होती है। बम्बई का बन्दरगाह लम्बा और सङ्कीर्ण है। ऊपरी किनारे पर तो वह इतना सङ्कीर्ण हो जाता है कि वह एक नदी की धारा सा बन जाता है। इससे जहाज़ों के खड़े होने में बड़ी सुविधा होती है। सन् १९१३-१४ में ही बम्बई भारत में सबसे बड़ा बन्दर हो गया था। गत योरपीय महासमर के छिड़ जाने पर तो मेसोपोटामिया को सब सामग्री यहीं से भेजी जाती थी। इसी कारण इसकी और भी अधिक उन्नति हुई। जहाज़ों पर सामान चढ़ाने और उतारने की सुविधायें बढ़ गईं। इससे अब व्यापारियों को अधिक लाभ हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बम्बई का बन्दरगाह किस प्रकार इस उन्नत अवस्था को पहुँचा और इस बड़े बन्दरगाह का

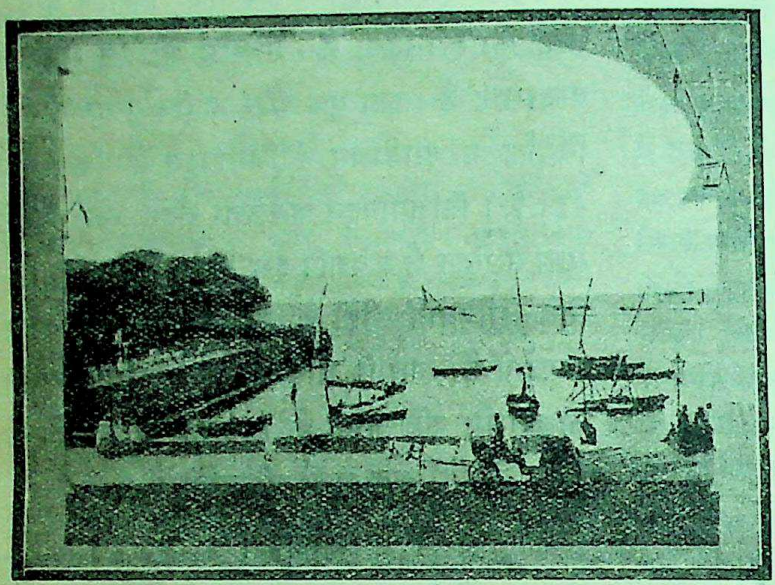

बम्बई के अपोलो बन्दर का एक दृश्य।

किस प्रकार प्रबन्ध होता है, इसका कुछ हाल सुनिए। सन् १८६२ में सरकार ने एक कम्पनी को २५० एकड़ भूमि देने का वचन इस शर्त पर दिया कि वह सरकार को एक रेलवे-स्टेशन बनाने के लिए १०० एकड़ भूमि साफ़ कर दे। उसी भूमि पर जी० आई० पी० रेलवे का विक्टोरिया टरमीनस स्टेशन बना। संसार के इने-गिने सुन्दर रेलवे-स्टेशनों में इसकी भी गणना है। कुछ समय के पश्चात् सरकार कम्पनी से पूर्वोक्त भूमि मोल लेने के लिए बाध्य हुई। इसी समय पोर्ट-ट्रस्ट का सूत्रपात हुआ। और बन्दर पर अब उसी का पूर्ण अधिकार है, वही उसका सब प्रबन्ध करता है। इस ट्रस्ट के सभापति तथा कतिपय सदस्यों की नियुक्ति सरकार करती है और शेष सदस्य वहाँ के व्यापार, जहाज़ और रेल के सङ्घों और पोर्ट के प्रान्तिक सरकार के प्रतिनिधियों-द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं।

बम्बई के बन्दर का पहला डॉक सन् १८७० में खोला गया था। इसका नाम 'प्रिंस डॉक' है, क्योंकि इसकी विन्यास-शिला सम्राट् एडवर्ड ने, जब वे प्रिंस आव् वेल्स के रूप में भारत आये थे, रक्खी थी। इसके पश्चात् 'विक्टोरिया डॉक' बना। जब सम्राट् जार्ज सन् १९०५ में प्रिंस आव् वेल्स के रूप में भारत आये थे तब उन्होंने एक और डॉक की विन्यास-शिला रक्खी और उसका साम्राज्ञी अलक्ज़ेंड्रा के नाम पर नामकरण हुआ। यह सन् १९१४ में बन जाने

बम्बई के बन्दरगाह में सूर्यास्त का दृश्य।

पर उपयोग में आने लगा। अलकज़ेंड्रा डॉक का घाट तीन मील है। प्राच्य देशों के बन्दरगाहों में सबसे बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही डॉक है और इसकी गिनती संसार के कतिपय अत्युत्तम डॉकों में की जाती है। राजकीय जंगी बेड़े का कोई भी बड़ा जहाज़ आधुनिक सामान से पूर्ण-रूप से सज्जित होकर इस डॉक से होकर जा सकता है। पानी की एक धारा-द्वारा इस डॉक को यहाँ के अन्य डॉकों के साथ जोड़ने का प्रबन्ध किया जा रहा है। इससे यह लाभ होगा कि जहाज़ किसी भी डॉक में घुसने पर अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जायँगे।

पोर्ट-ट्रस्ट ने बन्दरगाह के आस-पास कोई ५८३ एकड़ ज़मीन साफ़ करा दी है। यहाँ रुई, अन्न और तेल की बड़ी बड़ी खत्तियाँ बन गई हैं। इनमें करोड़ों मन माल एकत्र रहता है। इनके अतिरिक्त यहाँ व्यापार की अन्य वस्तुओं के रखने के लिए भी विशाल भवन बन गये हैं। यहाँ यह पूछा जा सकता है कि इतने अधिक परिमाण में रुई, अन्न-प्रभृति भारत के दूर दूर भागों से कैसे यहाँ आता है। जी० आई० पी० तथा बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे को पोर्ट-ट्रस्ट ने परस्पर जोड़ दिया है और फिर इन्हें डॉकों से सामान उतारने और चढ़ाने की जगह से जोड़ दिया है, जिसमें व्यापार की वस्तुएँ लाने और ले जानेवाली गाड़ियाँ बड़ी सुविधा और शीघ्रता से शंट की जा सकें। अब यहाँ बिजली-द्वारा चलनेवाली रेल का प्रबन्ध हो रहा है, जो बन्दरगाह के उत्तरी भाग की बड़ी बड़ी खत्तियों को मुख्य शहर से जोड़ देगी।

उपर्युक्त तीन डॉकों के अतिरिक्त एक और डॉक के निर्माण की योजना हो गई है, जिसमें बड़े से बड़े जहाज़ के लिए एक सूखा डॉक बनेगा। एक और प्रशंसनीय कार्य्य जो पोर्ट-ट्रस्ट ने किया वह यह है कि एक गाँव की नीव डाली गई है, जिसमें बन्दरगाह पर काम करनेवाले मज़दूर रहेंगे।

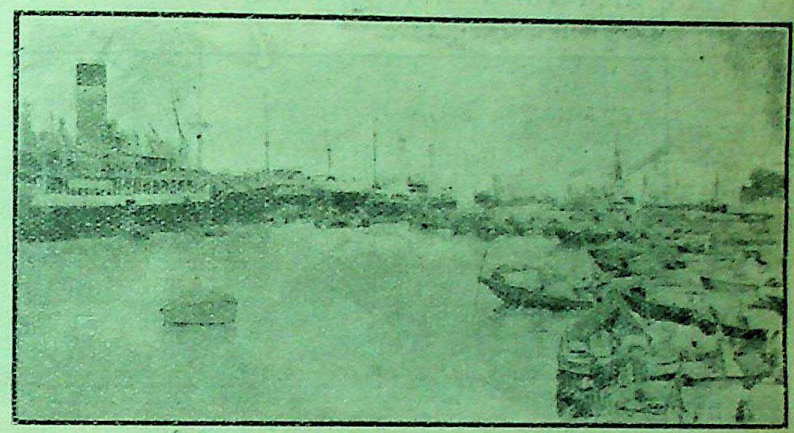

कलकत्ता के बन्दरगाह का एक दृश्य। वितरित न की जाय।

कलकत्ता।

बम्बई की भाँति कलकत्ते को भी कुछ विशेष सुविधायें प्राप्त हैं। कलकत्ता भी बहुत पहले से व्यापार का केन्द्र रहा है। पहले यहीं से ढाका और मुर्शिदाबाद की मलमल विदेशों को भेजी जाती थी। परन्तु अब उसका स्थान कोयले ने ले लिया है। बङ्गाल की कोयले की खानें भारत में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। हाल में वहाँ लोहे के खान से निकालने और उसका पक्का माल बनाने के काम में बहुत उन्नति हुई है। जमशेदपुर में ताता की कम्पनी लोहा और स्टील बनाने के साथ खान से कोयला भी निकालती है। इस कम्पनी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार-बार बहुत विस्तृत है। संसार में ऐसी बहुत ही थोड़ी कम्पनियाँ हैं जिनकी तुलना इससे की जा सके। इसके अतिरिक्त बङ्गाल और आसाम की चाय और जूट का व्यापार कलकत्ते से ही होता है। यह बड़ी अच्छी रेलों-द्वारा संयुक्त-प्रान्त तथा मध्यप्रान्त से जुड़ा हुआ है। इन रेलों-द्वारा अन्न तथा और और कच्चे माल विदेशों को भेजने के लिए यहाँ आते हैं और विदेशों से आया हुआ माल भी देश के भिन्न भिन्न भागों को यहाँ से ले जाया जाता है। हाँ, जहाज़ों के ठहरने के लिए यहाँ डॉक इतने अच्छे और विशाल नहीं हैं जितने बम्बई में। पर व्यापार की उन्नति के कारण उनकी अवस्था बहुत कुछ सुधर गई है। गत वर्ष २३३ जहाज़ जैटियों में और ६८ डॉकों में खड़े हुए थे और ३४,४६,०२१ टन माल जहाज़ों के द्वारा आया।

कलकत्ते के बन्दरगाह में बहुत बहुत उन्नति की जा सकती है। बङ्गाल-सरकार ने १९१३ में इस काम के लिए एक कमेटी नियुक्त की थी। कमेटी ने रेलों को डॉकों तक ले जाने, डॉकों का निर्माण करने, हुगली पर एक पुल बनाने और एक नहर निकालने की सम्मति दी थी। परन्तु यह योजना बिना अधिक धन के कार्य्यरूप में परिणत नहीं की जा सकती थी। इसलिए डॉकों तक रेलों के ले जाने और प्रस्तुत डॉकों की उन्नति करने के लिए एक नवीन कमेटी की नियुक्ति हुई। ज्योंही यह काम आरम्भ हुआ, योरप में महासमर छिड़ गया। इससे सब काम मुलतवी कर दिये गये, क्योंकि न तो सामान ही प्राप्त हो सकता था और न सरकार के पास पर्याप्त धन ही था। इन सब बाधाओं के होते हुए भी डॉकों की उन्नति का काम जारी रहा और पुल का भी श्रीगणेश हो गया। पर यह कहना ही पड़ेगा कि कलकत्ते के बन्दर की उन्नति आधुनिक ढङ्ग पर इतनी नहीं हुई जितनी बम्बई की।

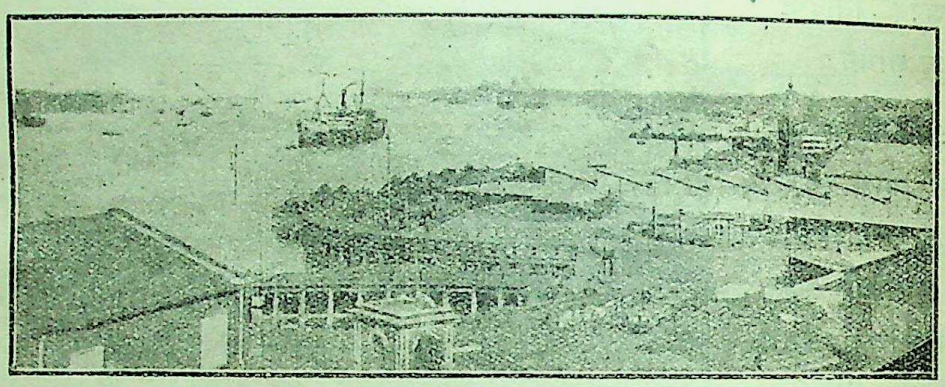

कलकत्ता का खिदिरपुर डाक।

कराची।

कराची बम्बई को छोड़ कर ईरान की खाड़ी और बङ्गाल के मध्य में सबसे बड़ा बन्दरगाह है। प्रकृति ने ही उसे बन्दरगाह बनाया है। उसकी समुद्र-तट की स्थिति ही ऐसी है। उसकी पिछले बीस वर्षों की उन्नति पर दृष्टिपात करने से बड़ा आश्चर्य तथा अभिमान होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका मुख्य कारण पञ्जाब में नहरों के द्वारा करोड़ों मन गेहूँ और कपास का उत्पन्न होना है, क्योंकि ये दोनों चीज़ें कराँची से ही विदेशों को

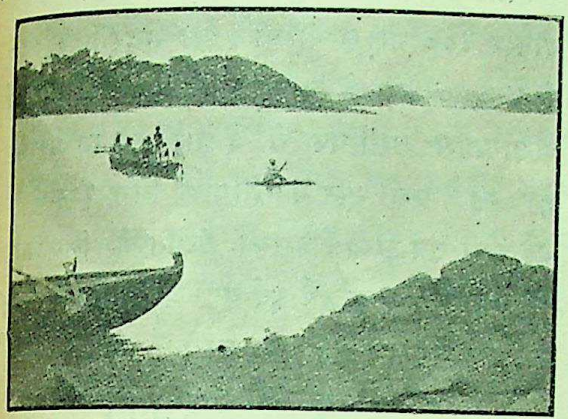

कलकत्ता का एक दृश्य।

जहाज़ों पर लद लद कर जाती हैं। विदेशी व्यापार के साथ ही साथ आन्तरिक व्यापार की भी उन्नति हुई है। कराँची की विशेष उन्नति का एक कारण तो बम्बई के व्यापार का कराँची होकर होना है और दूसरा तथा अधिक महत्त्वपूर्ण देश का अधिक समृद्धिशाली होना है। उसकी अभी तक जो कुछ उन्नति हुई है भविष्य में उससे अधिक उन्नति होने की आशा की जाती है, क्योंकि वह उत्तर-पश्चिमी भारत का द्वार है। सिन्ध-प्रान्त में सिन्धु नदी पर बाँध बनाने की योजना पर विचार हो रहा है। उसके बन जाने से सिन्धु का जो पानी आज-कल व्यर्थ बह जाता है वह एकत्र होकर आवश्यकता के समय काम में लाया जायगा। इसका फल यह होगा कि उस सब भूमि पर जिसमें पानी की कमी के कारण कुछ उत्पन्न नहीं होता, उच्च कोटि की कपास पैदा होने लगेगी और वह सब कराँची-द्वारा विदेशों को भेजी जायगी। पञ्जाब में हैड्रो एलेक्ट्रिक के उत्पन्न होने की सम्भावना है। काश्मीर, पञ्जाब, बिलोचिस्तान और राजपूताने के कुछ भाग रेलों-द्वारा कराँची से जुड़े हुए हैं। एक और रेल कराँची से दिल्ली को जायगी। इस प्रकार कराँची का एक बहुत बड़ा बन्दर हो जाना अवश्यम्भावी है।

पोर्ट-ट्रस्ट आज-कल बन्दरगाह की उन्नति में लगा हुआ है। धन की कमी के कारण उन्नति के काम जितनी जल्दी होने चाहिए नहीं हो रहे हैं। वैस्ट वारफेज योजना में ३,५०,००० पौंड व्यय

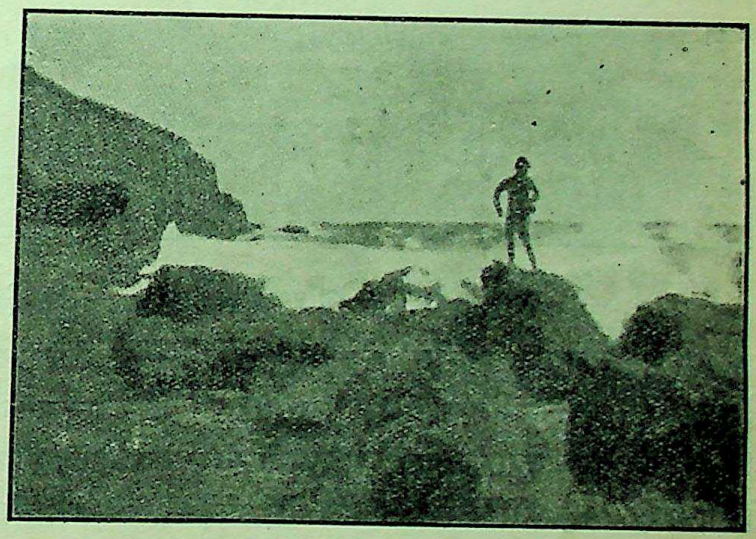

कराँची के समुद्र-तट का एक दृश्य।

होंगे। सन् १९१५ में सरकार ने बन्दरगाह की उन्नति के लिए २,००,००० स्टरलिंग की स्वीकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे दी है। इससे जहाज़ के रास्ते की गहराई ३२½ फ़ुट की जायगी। तब वे सब जहाज़ जो स्वेज़ नहर से निकल सकेंगे, उसमें भी आ सकेंगे।

मदरास।

केवल मदरास ही कलकत्ता और बम्बई के मध्य मुख्य बन्दर है। वह बम्बई की भाँति प्राकृतिक नहीं है। परन्तु समुद्र के बीच में एक दीवार बनाकर वह एक कृत्रिम बन्दरगाह निर्मित किया गया है। पचीस वर्ष पूर्व रंगून तथा कराँची से मदरास का व्यापार बढ़ा-चढ़ा था, परन्तु उनसे अब वह पिछड़ गया है। दक्षिणी भारत का

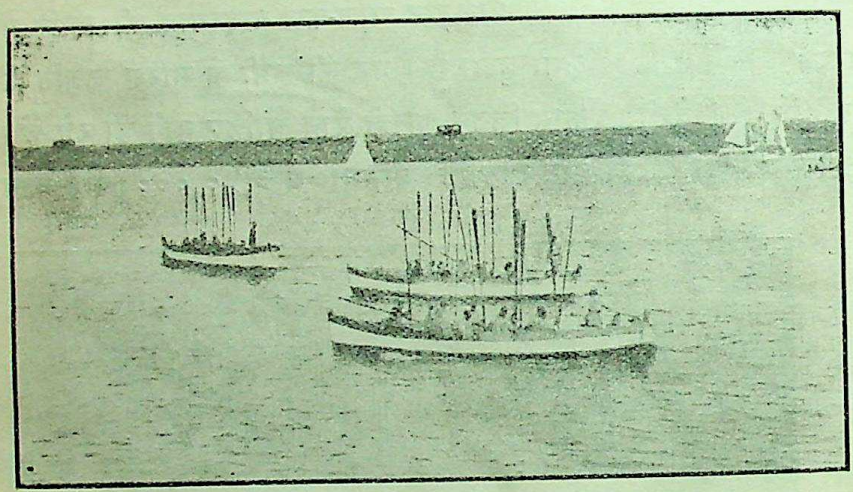

मदरास के बन्दरगाह का एक दृश्य।

एक-चौथाई व्यवसाय मदरास के द्वारा होता है। यहाँ का व्यापार बम्बई और कराँची की भाँति किसी एक अथवा दो मुख्य चीज़ों का नहीं होता, प्रत्युत बहुत सी चीज़ें यहाँ से थोड़े थोड़े परिमाण में आती और जाती हैं। इनमें रुई, चमड़ा और मसाले मुख्य हैं। चाय, क़हवा और नील गौण है। यह बन्दर रेलों-द्वारा कलकत्ता, बम्बई और मध्य-प्रायद्वीप से जुड़ा हुआ है।

मदरास के बन्दरगाह की आधुनिक ढङ्ग से उन्नति करने के लिए पहली बार सन् १८६२ में उद्योग किया गया था। कुछ समय पश्चात् दो समानान्तर दीवारें समुद्र में खड़ी की गईं। प्रत्येक दीवार ५०० गज़ लम्बी थी। इस बन्दर में ३,००० से ५,००० टन के जहाज़ आ सकते थे, परन्तु अभाग्यवश उसी वर्ष वे दीवारें तूफ़ान में नष्ट हो गईं। एक ट्रस्ट की नियुक्ति सन् १८८६ में हुई और तब से वह उसकी उन्नति के लिए काम कर रहा है। कुछ वर्ष पूर्व यह बन्दरगाह २८-३२ फ़ुट तक गहरा किया गया था।

रंगून।

वास्तव में बर्मा का एक-मात्र बन्दर रंगून है और उसी के द्वारा उस प्रान्त का सब व्यापार होता है। रंगून जल-मार्गों और रेलों के द्वारा प्रान्त के आन्तरिक भागों से जुड़ा हुआ है। वह समुद्र के निकट तीन नदियों के सङ्गम पर है। इस नौकाश्रय को इस वर्तमान उन्नत अवस्था में पहुँचाने का श्रेय ब्रिटिश-सरकार को है। बर्मा में प्रतिशत ६२ मनुष्य कृषि से जीवन-निर्वाह करते हैं। वहाँ का मुख्य निर्यात चावल है। साखू, मिट्टी का तेल, रबर, रुई और क़ीमती पत्थर आदि व्यापार की अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुएं हैं।

सन् १९०५ में बन्दर के शासन के लिए एक ट्रस्ट की नियुक्ति हुई। इस ट्रस्ट का मुख्य काम सन् १९१४ में पूरा हुआ। इसके बनने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाज़ों के ठहरने की जगह में पानी ख़ूब गहरा रहता है। पोर्ट ट्रस्ट ने २,००० एकड़ भूमि साफ़ की है, इसमें कृषि होती है। रंगून की उन्नति के लिए ब्रिटिश एडमिरल्टी ने विशाल तेल-घर की योजना की है। उसका विचार २० तालाब बनवाने का है जिनमें २,४०,००० टन तेल आ सकेगा। इसके अतिरिक्त जहाज़ों का सामान चढ़ाने-उतारने की सुविधाओं का प्रबन्ध किया जायगा। इस काम के लिए ३९०७ एकड़ भूमि ली गई है और १,००० फ़ीट नदी का किनारा इसमें पड़ता है।

विज़गापट्टन।

उपर्युक्त बन्दरगाहों के अतिरिक्त एक और नवीन बन्दरगाह के बनाने का विचार किया जा रहा है। यह बंन्दर विज़गापट्टन में बनेगा। तूफ़ान के समय मदरास में जहाज़ों की रक्षा नहीं होती, इसी लिए विज़गापट्टन में एक नये बन्दर-गाह के निर्माण की योजना की गई है। नई रेलें निकालने के विचार से भी इस स्थान की स्थिति बहुत अच्छी है। प्राकृतिक बन्दर का द्वार बहुत ही सङ्कीर्ण है। उसकी लम्बाई ६ फ़र्लाङ्ग है। बन्दर की सङ्कीर्णता उसका एक विशेष गुण है। यह उत्तर और दक्षिण से उच्च भूमि के द्वारा रक्षित भी है। सबसे अच्छी बात तो यह है कि दक्षिण-पश्चिमी मानसून हवा उसके ऊपर की पहाड़ियों के कारण उसे कुछ हानि नहीं पहुँचा सकती।

इस बन्दर का निर्माण-कार्य्य बङ्गाल-नागपुर रेलवे के अधिकारियों ने अपने हाथ में ले लिया है। इस कार्य्य के लिए पूँजी एकत्र करने के लिए कम्पनी ने सरकार की स्वीकृति ले ली है। बन्दर का सब काम एक-दम ही आरम्भ नहीं कर दिया गया। अभी जहाज़ों के लाने के लिए डॉक और सामान लाने तथा ले जाने के लिए रेलें बनाई जा रही हैं। इसमें लगभग ढाई करोड़ रुपया व्यय होगा। वहाँ तेल की दूकानें और जहाज़ों की मरम्मत के लिए दूकानें बनाने को बहुत ही अच्छा स्थान मिल गया है। बी० एन० आर० रेलवे ने ४,००० एकड़ भूमि बन्दर और उसके पड़ोस की उन्नति के लिए प्राप्त कर ली है और उसमें २० लाख रुपया व्यय कर दिया है। नाविक डॉक बनाने के लिए एक बहुत ही अनुभवी इञ्जीनियर कर्नल कार्टरायट रीड नियुक्त किये गये हैं।

यह अनुमान किया जाता है कि प्रायद्वीप के अन्न आदि का व्यापार, पहाड़ों की खनिज सम्पत्ति और मध्य-प्रान्त की मैंगनीज़ तथा गेहूँ का व्यापार सब विज़गापट्टन के द्वारा होगा। विज़गापट्टन-पोर्ट-योजना का मुख्य भाग रायपुर से बन्दर तक रेल का बनाना है। विज़गापट्टन से सिंगरेनी की कोयले की खानें २०० मील और तलचर की खानें ३०० मील की दूरी पर हैं। इन जगहों को रेल बनाना बी० एन० आर० ने पहले ही से आरम्भ कर दिया है। हाल में बन्दर की गहराई २८ फ़ुट होगी और भविष्य में आवश्य-कतानुसार बढ़ा ली जायगी क्योंकि ४० फ़ुट पर्य्यन्त पत्थर नहीं हैं।

इस लेख के आरम्भ में इस बात की ओर सङ्केत किया गया है कि प्राचीन-काल में भारत में बड़े बन्दरों की संख्या कम नहीं थी। कर्नल कार्टरायट रीड को, जो कि बी० एन०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेलवे के प्रसिद्ध इञ्जीनियर हैं, बिहार-उड़ीसा की सरकार ने वहाँ के व्यवस्थापकों की सिफ़ारिश के अनुसार इस बात की जाँच करने के लिए नियुक्त किया था कि कटक एक विशाल बन्दर में परिवर्तित किया जा सकता है या नहीं ? कर्नल कार्टरायट अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि बिहार-उड़ीसा के व्यापार की प्रस्तुत आवश्यकताओं के विचार से न तो किसी बड़े बन्दर की आवश्यकता है और आवश्यकता होने पर भी ऐसे बन्दर का बनना सम्भव नहीं है। इनका कहना है कि जम्बू नदी पर तो बन्दर बन ही नहीं सकता। हाँ, धर्म्म नदी पर अवश्य एक साधारण आकार का बन्दर बनाया जा सकता है। अतएव भारत में विशाल बन्दरगाह के लिए बहुत कम स्थान है, इस सिद्धान्त का समर्थन एक प्रकार से उपर्युक्त कर्नल महोदय ने किया है।

सियाराम चतुर्वेदी बी० ए०

घर और बाहर।

विमला की आत्म-कथा।

अमूल्य के चले जाते ही मेरा हृदय जैसे बैठ गया। किस मा के लड़के को मैंने विपत्ति के मुख में झोंक दिया! भगवान्, इस प्रकार के सत्यानासी ढङ्ग से क्यों मेरे पापों का प्रायश्चित्त कराया जाता है ? इतने लोगों का गला फँसाने की ज़रूरत है ? अकेले मुझसे पूरा नहीं पड़ता ? इतने मनुष्यों पर उसका बोझ डालोगे ? आहा, इस बच्चे को क्यों आफ़त में डालूँ ?

मैंने अमूल्य को पुकारा। किन्तु मेरे मुख से ऐसी कमज़ोर आवाज़ निकली कि उसने सुना ही नहीं। दरवाज़े के पास जाकर फिर पुकारा—अमूल्य! उस समय वह बाहर पहुँच चुका था!

मैं—नौकर, नौकर!

नौकर—क्या रानीजी ?

मैं—अमूल्य बाबू को पुकार दे।

क्या जानें, नौकर अमूल्य का नाम भूल गया, इसी से उसने थोड़ी देर में सन्दीप को लाकर खड़ा कर दिया। बैठक में घुसते ही सन्दीप ने कहा—जब तुमने भगा दिया था तभी मैं समझा था कि फिर बुलाओगे। जिस चन्द्रमा के आकर्षण से 'भाटा' है, उसी चन्द्रमा के आकर्षण से 'ज्वार' है। मुझे तुम्हारे बुलाने का ऐसा निश्चय था कि मैं दरवाज़े के पास बैठा अपेक्षा कर रहा था। जैसे ही तुम्हारे नौकर को देखा, वैसे ही उसके कुछ कहने के पहले ही मैं जल्दी से कह उठा—अच्छा, अच्छा, मैं आता हूँ, मैं आता हूँ!—भोजपुरी जमादार आश्चर्य के मारे आँखें फाड़ फाड़ कर मेरी तरफ़ देखने लगा। उसने सोचा, यह आदमी कोई मन्त्र-सिद्ध किये हुए है। मक्खीरानी, यह मन्त्र की लड़ाई ही संसार में सबसे बढ़ कर लड़ाई है। सम्मोहन सम्मोहन में भिड़न्त होती है। इसका बाण शब्दभेदी बाण है—और चुपचाप चोट करनेवाले बाण भी हैं! इतने दिनों बाद इसी लड़ाई में सन्दीप का समकक्ष देख पड़ा है। तुम्हारे तर्कश में अनेक बाण हैं रणरङ्गिनी! पृथ्वी पर मैंने देखा, केवल तुम्हीं सन्दीप को अपनी इच्छा के माफ़िक चला-फिरा सकीं—अपनी ओर खींच सकीं। शिकार तो आ गया है। अब इसका क्या करोगी, बतलाओ ? एक-दम बिलकुल मार ही डालोगी या अपने पिँजड़े में पाल रक्खोगी ? किन्तु पहले ही से कहे रखता हूँ रानी, इस जीव को मार डालना जैसा कठिन है, बाँध कर रखना भी वैसा ही कठिन है! अतएव तुम्हारे हाथ में जितने दिव्य अस्त्र हैं उनकी परीक्षा करने में विलम्ब न करो।

सन्दीप के मन के भीतर एक हार का संशय आ गया है, इसी से वह आज इस तरह अनर्गल बकता चला गया। मुझे विश्वास है, उसे यह मालूम था कि मैंने अमूल्य को ही बुलाया है—सर्वथा सम्भव है कि नौकर ने अमूल्य का ही नाम लिया होगा, सन्दीप उसे धोखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर खुद चला आया है। उसने मुझे यह कहने का मौक़ा ही नहीं दिया कि मैंने अमूल्य को बुलाया है, तुमको नहीं। किन्तु यह डींग—यह शेख़ी मिथ्या है—अब मैंने दुर्बल को अच्छी तरह देख पाया है। अब मैं जीत कर पाई हुई जगह सुई की नोक भर नहीं छोड़ सकती।

मैंने कहा—सन्दीप बाबू, आप इस तरह आप ही आप इतनी बातें किस तरह बक जाते हैं? शायद पहले से घोख कर आते हैं?

दम-भर में ही सन्दीप का मुख लाल हो उठा। मैं कहने लगी—सुना है, कथा बाँचनेवालों के पास तरह तरह के वर्णन के लम्बे लम्बे खर्रे लिखे रहते हैं, जब जिसकी ज़रूरत होती है तब उसका वर्णन करने लगते हैं। आपके पास भी क्या उसी तरह के खर्रे हैं?

सन्दीप एक अपूर्व ढङ्ग से कहने लगा—विधाता की कृपा से तुम लोगों के तो हाव-भाव और छल-बल का अन्त नहीं है, उस पर दर्ज़ी की दूकान और सुनार की दूकान तुम्हारी सहायता करती हैं। मगर मैं पूछता हूँ, क्या विधाता ने हमको ही ऐसा निरस्त्र कर रक्खा है कि—

मैं बोल उठी—सन्दीप बाबू, खर्रा देख आइए—आपकी ये बातें बेढंगी जँचती हैं! मैं देखती हूँ, आप उलटी-पुलटी बातें कह बैठते हैं—खर्रे रटने में यही एक बड़ा भारी दोष है!

अब सन्दीप से रहा नहीं गया—वह एक-दम गरज उठा—तुम! तुम मेरा अपमान करोगी! तुम्हारी कौन सी बात मुझसे छिपी है? तुम्हारे—

सन्दीप के मुख से आगे बात नहीं निकली। सन्दीप तो मन्त्रव्यवसायी है, जहाँ उसका मन्त्र काम नहीं करता वहाँ उसका फिर ज़ोर नहीं चलता—राजा से एक-दम रङ्क हो जाता है! दुर्बल है! दुर्बल है! वह जितना ही रूखा होकर कठोर बातें कहने लगा उतना ही आनन्द से मेरा हृदय परिपूर्ण हो उठा। उसका मुझे बाँधने का नागपाश अब चुक गया है—मैं छुटकारा पा गई। बच गई, बच गई। अपमान करो, मेरा अपमान करो, यही तुम्हारा सत्य है, मेरी स्तुति न करो, वही मिथ्या है।

इसी समय मेरे स्वामी बैठक में आये। और दिन सन्दीप दम-भर में जिस तरह अपने को सँभाल लेता था उस तरह सँभलने की शक्ति आज उसमें न थी।

हम दोनों जने ही सन्नाटे में बैठे रहे। यह देख कर ज़रा इधर-उधर कर मेरे स्वामी कुर्सी पर बैठ गये। बोले—सन्दीप, मैं तुमको ही खोज रहा था, ख़बर मिली, तुम यहीं हो।

सन्दीप ने कहा—हाँ, मक्खीरानी ने सबेरे ही मुझे बुला भेजा था। मैं तो मधुचक्र की दास-मक्खी हूँ। इसी से आज्ञा पाते ही सब काम छोड़ कर चले आना पड़ा!

स्वामी—कल कलकत्ते जाता हूँ। तुमको भी चलना होगा।

सन्दीप—क्यों? मैं क्या तुम्हारा अनुचर हूँ?

स्वामी—अच्छा, तुम्हीं कलकत्ते चलो, मैं तुम्हारा अनुचर होऊँगा।

सन्दीप—कलकत्ते में मुझे कुछ काम नहीं है।

स्वामी—इसी से तो तुम्हारे कलकत्ते जाने की ज़रूरत है। यहाँ तुमको बहुत अधिक काम है।

सन्दीप—मैं तो यहाँ से हिलता नहीं हूँ।

स्वामी—तो तुमको हिलना पड़ेगा।

सन्दीप—ज़ोर से?

स्वामी—हाँ ज़ोर से।

सन्दीप—अच्छी बात है, मैं हिलूँगा। किन्तु कलकत्ता और तुम्हारा इलाक़ा, ये ही दो स्थान तो जगत् में हैं नहीं। नक़्शे में और भी जगहें हैं।

स्वामी—तुम्हारे ढङ्ग देख कर तो जान पड़ता था कि जगत् में मेरे इलाक़े को छोड़ कर और कोई जगह ही नहीं है।

तब सन्दीप ने खड़े होकर कहा—मनुष्य की ऐसी भी अवस्था आती है जब सब जगत् थोड़ी सी जगह के रूप में सिमट जाता है। तुम्हारे इस बैठकख़ाने के भीतर मैंने अपने विश्व को प्रत्यक्ष रूप से देखा है—इसी कारण यहाँ से नहीं हिलता। मक्खीरानी, मेरी बात को ये कोई समझ न सकेंगे—शायद तुम भी न समझोगी। मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। मैं तुम्हारी ही वन्दना करने जाता हूँ। तुमको देखने के बाद से मेरा मन्त्र बदल गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वन्दे मातरम् नहीं, वन्दे प्रियाम्, वन्दे मोहिनीम्। मा हम लोगों की रक्षा करती हैं—प्रिया हम लोगों का विनाश करती हैं—वह विनाश बड़ा ही सुन्दर है। तुमने मेरे हृदयपिण्ड में उसी मरण-नृत्य के नूपुर की झनकार गुँजा दी है! इस कोमला सुजला सुफला मलयजशीतला वङ्गभूमि का रूप तुमने इस भक्ति की दृष्टि में दम-भर में बदल दिया है। दया मया तुम्हारे कुछ नहीं है—तुम मोहिनी अपना विषपात्र लेकर आई हो—वही विष पीकर—उसी विष से जर्जर होकर या तो मरूँगा, और या मृत्युञ्जय हो जाऊँगा! माता का दिन आज नहीं है—प्रिया, प्रिया, प्रिया, देवता, स्वर्ग, धर्म, सत्य सब तुमने तुच्छ कर दिया है, पृथ्वी के और सब सम्बन्ध आज छाया के समान हैं—नियम-संयम के सब बन्धन आज छिन्न हैं! प्रिया, प्रिया, प्रिया, तुम जिस देश में दोनों पैर रक्खे खड़ी हो उसके बाहर की सारी पृथ्वी में आग लगा कर उसी की राख के ऊपर आनन्द से ताण्डव-नृत्य कर सकता हूँ!—ये भले आदमी हैं, ये बहुत ही भले हैं—ये सबका भला करना चाहते हैं—जैसे सभी सत्य हैं। कभी नहीं, ऐसा सत्य विश्व में और कहीं नहीं है, यही मेरा एक-मात्र सत्य है। मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ—तुम्हारे प्रति निष्ठा ने मुझे निष्ठुर कर दिया है, तुम्हारे प्रति भक्ति ने मुझमें प्रलय की आग जला दी है। मैं भला नहीं हूँ, मैं धार्मिक नहीं हूँ, मैं पृथ्वी पर कुछ नहीं मानता, मैंने जिसे सबसे अधिक प्रत्यक्ष कर पाया है, केवल उसी को मानता हूँ!

आश्चर्य है! अभी कुछ देर पहले ही मुझे सन्दीप पर पूर्ण-रूप से घृणा होगई थी! जिसको मैंने राख के रूप में देखा था उसी के भीतर से आग जल उठी। यह तो एक-दम विशुद्ध आग है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। विधाता इस तरह दुरङ्गा मनुष्य क्यों उत्पन्न करते हैं? क्या केवल अपना अलौकिक इन्द्रजाल दिखाने के लिए? आध घण्टा पहले ही मैं अपने मन में सोच रही थी कि एक दिन भ्रम-वश मैंने इस मनुष्य को सचमुच का राजा समझ लिया था, किन्तु यह तो नाटक के तमाशे का नकली राजा है।—लेकिन यह बात नहीं है, यह बात नहीं है। नाटकी पोशाक में भी कभी कभी राजा छिपे रहते हैं। इस सन्दीप में लोभ बहुत है, यह बहुत स्थूलदर्शी है, इसमें बहुत से छिद्र हैं—तह की तह मांस में ये सब बातें ढकी हैं, किन्तु तो भी—हम नहीं जानते, हम अन्त तक की बात नहीं जानते, यही स्वीकार करना अच्छा है। मनुष्य बड़ा ही विचित्र है—उसके द्वारा कैसा प्रचण्ड रहस्य तैयार हो रहा है सो वह रुद्र-देवता ही जाने—मैं तो बीच ही से जल गई! प्रलय! प्रलय के देवता ही शिव हैं, वही आनन्द-मय हैं—वही बन्धन से मुक्त करेंगे।

कुछ दिनों से बारम्बार यही जान पड़ता है कि मेरी दो बुद्धियाँ हैं। मेरी एक बुद्धि सन्दीप के इस प्रलयरूप को भयङ्कर समझती है—और दूसरी बुद्धि कहती है, यही तो मधुर है। जहाज़ जब डूबता है तब चारों ओर जो लोग तैरते हैं उनको खींच लेता है—सन्दीप मानो वही मरण की मूर्ति है—भय पीछे अपने काबू में करता है, पहले उसका प्रचण्ड आकर्षण ही अपने काबू में कर लेता है। वह सम्पूर्ण प्रकाश से, सारे कल्याण से, आकाश की मुक्ति से, निश्वास के वायु से, चिरदिन के सञ्चय से, प्रति दिन की चिन्ता से दम-भर में घसीट कर एक घने सर्वनाश के भीतर ले जाकर एक-दम लुप्त कर देना चाहता है। किस महामारी का दूत होकर वह आया है—अशिव मन्त्र पढ़ते पढ़ते रास्ते में चला जा रहा है, और देश के सब बालक, सब युवक उसके पास दौड़े चले आ रहे हैं। वङ्गदेश के हृदय-कमल में जो माता बैठी हुई हैं, वह रो रही हैं—उनके अमृत-भाण्डार का द्वार तोड़ कर वहाँ पर इन्होंने शराब की बोतल लिये मद्यपान की सभा जोड़ी है—ये सब अमृत धूल पर गिरा देना चाहते हैं, चिरकाल के सुधा-पात्र को चूर चूर कर डालना चाहते हैं! सब समझती हूँ, पर मोह को तो नहीं रोक रख सकती! सत्य की कठोर तपस्या की परीक्षा करने के लिए सत्यदेव का ही यह काम है—मतवालापन स्वर्ग का साज पहन आकर तापसों के आगे नृत्य करने लगता है—कहता है, तुम मूढ़ हो, तपस्या में सिद्धि नहीं होती, उसकी राह लम्बी है, उसके समय की गति धीमी है—इसी से वज्रधारी ने मुझे भेजा है—मैं तुम लोगों को वरण करूँगी,—मैं सुन्दरी हूँ, मैं मत्तता हूँ, मेरे आलिङ्गन से ही दम-भर में सब सिद्धि प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़रा देर चुप रह कर सन्दीप ने फिर मुझसे कहा—अब दूर जाने का समय आया है देवी ! अच्छा ही हुआ । तुम्हारे पास आने का मेरा काम हो चुका है । उसके बाद भी अगर ठहरूँ तो एक एक करके फिर सब नष्ट हो जायगा । पृथ्वी पर जो सबसे बढ़ कर है उसे लोभ में पड़ कर सस्ता करने में ही सर्वनाश होता है—मुहूर्त्त के अन्तर में जो अनन्त है उसे काल के बीच व्याप्त करने में ही उसे सीमाबद्ध करना होता है । हम उसी अनन्त को नष्ट करने बैठे थे, ठीक इसी समय तुम्हारा ही वज्र उद्यत हुआ—तुमने अपनी पूजा की और अपने इस पुजारी की रक्षा की । आज मेरे इस विदा होने में ही तुम्हारी वन्दना सबसे बड़ी हो उठी । देवी, मैंने भी आज तुमको छुटकारा दिया । मेरे मिट्टी के मन्दिर में तुम समा नहीं सकती थीं,—यह मन्दिर हर एक पल में अब टूटा, अब टूटा, ऐसा जान पड़ता था—आज बड़े मन्दिर में तुम्हारी बड़ी मूर्त्ति की पूजा करने जा रहा हूँ ! तुमसे दूर रह कर ही सचमुच तुमको पाऊँगा । यहाँ तुमसे प्रश्रय पाया था, वहाँ तुमसे वर पाऊँगा !

टेबिल के ऊपर मेरा गहने का बक्स था । मैंने उसे उठा कर कहा—अपना यह गहना मैं तुम्हारे हाथ से जिसे देती हूँ उसके चरणों में तुम इसे पहुँचा देना ।

मेरे स्वामी चुप रहे । सन्दीप निकल कर चला गया ।

अमूल्य के लिए अपने हाथ से भोजन बनाने बैठी थी, इसी समय मँझली रानी ने आकर कहा—छोटी रानी, जान पड़ता है, अपनी जन्म-तिथि में अपने ही खाने-पीने की तैयारी हो रही है ?

मैंने कहा—अपने सिवा और किसी को खिलाना नहीं है क्या ?

मँझली रानी ने कहा—आज तो तुम्हारे खिलाने का दिन नहीं है, आज तो हम तुमको खिलावेंगे । उसकी तैयारी भी मैं कर रही थी । इसी समय यह ख़बर सुन कर कि हमारी किसी कचहरी में पाँच छः सौ डाकू आकर छः हज़ार रुपये लूट ले गये हैं, मेरी तो जान सूख गई । लोग कहते हैं, अब वे हमारे घर पर डाका डालेंगे ।

ख़बर सुन कर मेरे हृदय का बोझ जैसे उतर गया । तो अमूल्य जो नोट लाया था वे मेरे ही यहाँ के हैं । अभी अमूल्य को बुला कर उससे कह देना चाहिए कि ये छः हज़ार रुपये के नोट मेरे सामने मेरे स्वामी को वह फेर दे; उसके बाद मुझे जो कहना है वह मैं उनसे कह लूँगी !

मँझली रानी ने मेरे मुख का भाव लख कर कहा—तुमने तो ग़ज़ब कर दिया ! तुम्हें ज़रा भी डर नहीं लगता ?

मैंने कहा—मैं इस पर विश्वास नहीं कर सकती कि डाकू मेरा घर लूटने आवेंगे !

मँझली रानी—विश्वास नहीं कर सकती ! कचहरी लूट ली जायगी, इसी पर कौन विश्वास कर सकता ?

कुछ जवाब न देकर सिर नीचे करके मैं गुझियों में खोया भरने लगी । मेरे मुख की ओर ज़रा देर देख कर उन्होंने कहा—जाती हूँ, राजा भैया को बुला भेजूँ । हमारे वे छः हज़ार रुपये अभी निकाल कर कलकत्ते भेज देने होंगे, अब देर करना ठीक नहीं ।

इतना कह कर जैसे वह चली गईं वैसे ही गुझियों की थाली अलग हटा कर जल्दी से मैं उसी कोठरी में गई जहाँ लोहे का बक्स रक्खा था । जाकर भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया । मेरे स्वामी ऐसे भुलक्कड़ हैं कि उनके जिस वास्केट की जेब में चाभियों का गुच्छा रहता है वह उस समय भी खूँटी में टँगा हुआ था । चाभियों के छल्ले से मैंने लोहे के सन्दूक़ की चाभी निकाल ली और उसे अपनी सदरी की जेब में छिपा कर रख दिया ।

इसी समय बाहर से दरवाज़े में धक्का पड़ा । मैंने कहा—कपड़े उतार रही हूँ ।—सुन पड़ा, मँझली रानी ने कहा—अभी कुछ देर हुई गुझिया बनाते देखा था, अब देखती हूँ, साज-सिँगार की धूम पड़ गई है ! कितनी लीलायें देखने को मिलेंगी ! आज जान पड़ता है, इन लोगों के वन्दे मातरम् की बैठक होगी । अजी ओ देवी चौधरानी, लूट का माल रक्खा जा रहा है क्या ?

न-जाने क्या सोच कर मैंने एक बार धीरे धीरे लोहे का सन्दूक़ खोला । शायद यह सोचा था कि यदि सब घटना स्वप्न हो;—यदि एकाएक वह छोटी दराज़ खींच कर खोलते ही देखूँ, वे काग़ज़ में लिपटी गिन्नियों की बीड़ें ठीक उसी तरह रक्खी हुई हैं ! हाय रे, विश्वासघातक के नष्ट विश्वास की तरह सभी शून्य पड़ा है !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झूठमूठ कपड़े उतारने ही पड़े। कुछ ज़रूरत न होने पर भी फिर से जूड़ा बाँधा। मँझली रानी का सामना होते ही उन्होंने पूछा—इतना साज आज काहे का है—मैंने कहा—जन्म-तिथि का।

मँझली रानी ने हँस कर कहा—एक कुछ बहाना पाते ही साज करने लगती हो! बहुत औरतें देखी हैं, पर तुम्हारी तरह ऐसी बनावट-पसन्द औरत नहीं देखी!

अमूल्य को बुलाने के लिए कहार की खोज कर रही थी, इसी समय कहार ने आकर पेंसिल से लिखी एक छोटी सी चिट्ठी मेरे हाथ में रख दी। उसमें अमूल्य ने लिखा है—तुमने न्योता दिया था, पर मैं सब्र नहीं कर सका। पहले तुम्हारी आज्ञा का पालन कर आऊँ पीछे तुम्हारा प्रसाद खाऊँगा। शायद लौट कर आने में सन्ध्या हो जायगी।

अमूल्य किसके हाथ में रुपये फेरने गया, फिर किस जाल में अपने को फँसाने गया! मैं उसे केवल तीर की तरह चला ही सकती हूँ, किन्तु लक्ष्य में भूल होने पर उसे फिर किसी तरह लौटा नहीं सकती।

इस समय यह बात स्वीकार करना मुझे उचित था कि इस अपराध के मूल में मैं हूँ। किन्तु स्त्रियाँ संसार के विश्वास के ऊपर ही रहती हैं—वही तो उनका जगत् है, उसी विश्वास को छिपा कर मैंने धोखा दिया है, यह बात जताकर उसके बाद संसार में टिक रहना हम लोगों के लिए बड़ा कठिन है। जो हम तोड़ेंगी ठीक उसी के ऊपर हमको खड़े होना होगा—उस टूटी चीज़ का खोंचा हिलते-डुलते हर घड़ी हमारे आगे खटकता रहेगा। अपराध करना कठिन नहीं है, किन्तु उस अपराध का संशोधन करना औरतों के लिए जितना कठिन है उतना और किसी के लिए नहीं।

कुछ दिनों से स्वामी के साथ ख़ूब सहज ढङ्ग से बातचीत करना बन्द हो गया है। इसी से बहुत सोच-विचार करके भी मैं यह ठीक न कर पाई कि एकाएक इतने बड़े दुस्साहस की बात किस तरह और किस समय उनसे कहूँ। आज वह बहुत देर करके खाने आये—उस समय दो बजे होंगे। अन्यमनस्क होने के कारण उनसे कुछ भी खाया न गया। अनुरोध करके कुछ खाने के लिए कहने का अधिकार भी मैंने अपने हाथों खो दिया है। मुँह फेर कर आँचल से आँसू पोंछे।

एक बार सोचा, सङ्कोच दूर करके कहूँ—घर के भीतर ज़रा आराम कर लो, आज तुम बहुत ही थके और व्यग्र देख पड़ते हो!—ज़रा खाँसकर जैसे ही मैंने बोलना चाहा, वैसे ही कहार ने आकर ख़बर दी कि दारोग़ा साहब क़ासिम सरदार को लेकर आये हैं। मेरे स्वामी घबराये हुए भाव से उठ कर चले गये।

उनके बाहर जाने के बाद ही मँझली रानी ने आकर कहा—राजा-भैया जब खाने आये थे तब मुझे ख़बर क्यों नहीं दी? आज उनके खाने के लिए आने में देर देख कर मैं नहाने चली गई थी—इसी बीच में न-जानें कब—

मैं—क्यों क्या, चाहिए!

मँझली रानी—सुनती हूँ, तुम लोग कल कलकत्ते जाते हो। तब तो भाई मुझसे यहाँ रहा न जायगा। बड़ी रानी अपने राधावल्लभ ठाकुर को छोड़ कर कहीं हिलेंगी नहीं। किन्तु इस डकैती के ज़माने में मुझसे यह न होगा कि तुम्हारे इस सूने घर की रखवाली के लिए रह कर भयंकर समाचारों से चौंक चौंक मरूँ। कल ही जाने का तो निश्चय है?

मैंने कहा—हाँ।

अपने मन में मैंने सोचा कि उस यात्रा के पहले इतने ही से समय में न-जानें क्या का क्या हो जायगा। उसके बाद चाहे कलकत्ते जाऊँ, चाहे यहीं रहूँ, सब बराबर है। कौन जाने, उसके बाद से संसार कैसा हो जायगा—जीवन क्या हो जायगा! सब धुँआ और स्वप्न के समान हो जायगा।

मेरे अदृष्ट के दृष्ट होने में यह जो और कई घंटे की देर है—इस समय को कोई एक दिन से और एक दिन तक हटा हटा कर खींच खींच कर सुदीर्घ नहीं बना दे सकता? तो मैं इसी बीच में धीरे धीरे सब बातें एक बार यथाशक्ति सुधार लूँ—कम से कम इस धक्के के लिए अपने को और संसार को तैयार कर रक्खूँ। प्रलय का बीज जब तक मिट्टी के नीचे रहता है तब तक बहुत समय लेता है—वह इतना समय होता है कि जान पड़ता है, भय का कोई कारण नहीं है—किन्तु मिट्टी के ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे ही एक बार अंकुर देख पड़ता है वैसे ही देखते-देखते बढ़ उठता है—तब उसे आँचल से, हृदय से, प्राण से दबाने का—ढकने का—समय नहीं मिलता।

इरादा करती हूँ कि कुछ न सोचूँगी, चुपचाप पड़ी रहूँगी, उसके बाद सिर पर जो आफ़त आनी है आपड़े! परसों के भीतर ही तो जो होना है वह हो जायगा—जानना-सुनना, हँसना, रोना-धोना, प्रश्न, प्रश्न का उत्तर, सब कुछ!

किन्तु बालक अमूल्य का वह आत्मोत्सर्ग की दीप्ति से सुन्दर मुख तो किसी तरह नहीं भूलता। उसने तो चुपके बैठे रह कर भाग्य की प्रतीक्षा नहीं की—वह तो विपत्ति के बीच में दौड़ा गया है। मैं अधम नारी उसे प्रणाम करती हूँ। वह मेरा बालक-देवता है, वह मेरे कलङ्क के बोझ को खेल के मिस से अपने सिर लादने आया है, वह मेरे दण्ड को अपने सिर लेकर मुझे बचावेगा, भगवान् की ऐसी भयानक दया को मैं किस तरह ग्रहण करूँगी? मेरे भाई, तुझे प्रणाम है, मेरे बच्चे तुझे प्रणाम है,—तू निर्मल है, तू सुन्दर है, तू वीर है, तू निर्भय है, तुझे प्रणाम है—मैं यही वर चाहती हूँ कि जन्मान्तर में तू मेरा लड़का होकर मेरी गोद में आ।

इसी बीच में चारों ओर तरह तरह की अफ़वाहें उड़ने लगी हैं, पुलिस का आना-जाना जारी है, घर के नौकर-चाकर सब घबराये हुए हैं। क्षेमा दासी ने मुझसे आकर कहा—छोटी रानी बहू, मेरी यह सोने की तिलड़ी और बाजू-बन्द अपने लोहे के सन्दूक़ में रख छोड़ो। यह किससे कहूँ कि इस घर की छोटी रानी ही यह दुर्भावना का जाल तैयार करके उसमें आप फँस गई है? क्षेमा का गहना, थाको के जमा किये हुए रुपये मुझे भलेमानुस की तरह अपने पास रखने के लिए लेने पड़े। हमारे घर की ग्वालिन एक टीन के बक्स में एक बनारसी सारी और अपनी क़ीमती चीज़ें मेरे पास रख गई। बोली—रानी जी, यह बनारसी सारी तुम्हारे ही ब्याह में मैंने पाई थी।

कल जब मेरे ही घर का लोहे का सन्दूक़ खोला जायगा तब यही क्षेमा, यही थाको, यही ग्वालिन—रहने दो उस बात की कल्पना करके क्या होगा! बल्कि यह सोचना चाहिए कि कल के दिन के बाद और एक साल बीत गया है—और एक माह बदी तीज का दिन आगया है। उस दिन भी क्या मेरा यह पारिवारिक घाव ऐसा ही बना रह जायगा?

अमूल्य ने लिखा है, वह आज शाम तक लौटेगा। इतनी देर तक घर में अकेले चुपचाप बैठी नहीं रह सकती। फिर गुझिया बनाने गई। जितनी गुझिया और तिकोने बना चुकी हूँ उतने काफ़ी हैं, लेकिन और भी करने होंगे। इतनी सामग्री कौन खायगा? घर के सब नौकर-चाकरों को खिला दूँगी। आज रात को ही खिला दूँगी। आज रात तक मेरे दिन की सीमा है, कल का दिन मेरे अधिकार के बाहर होगा।

लगातार गुझिया बनाने में लगी हूँ, ज़रा भी विश्राम नहीं है। बीच बीच में जान पड़ता है, जैसे ऊपर मेरे कमरे की तरफ़ कुछ हलचल सी मच रही है। शायद मेरे स्वामी लोहे का सन्दूक़ खोलने के लिए उसकी चाभी ढूँढ़े नहीं पाते। इसी कारण मँझली रानी नौकर-चाकरों को बुला कर पूछताछ कर रही हैं। नहीं, मैं नहीं सुनूँगी, कुछ नहीं सुनूँगी, दरवाज़ा बन्द किये रहूँगी। दरवाज़ा बन्द करने के लिए उठी, इसी समय देखा, थाको दासी झपटी हुई आ रही है। उसने हाँफते हुए कहा—"छोटी रानी बहू!"—मैं कह उठी—जा, जा, परेशान न करना, मुझे इस समय फ़ुरसत नहीं है।—थाको ने कहा—मँझली रानीजी के भाँजे नन्द बाबू कलकत्ते से एक कल लाये हैं, वह आदमी की तरह गाती है, इसी से मँझली रानीजी ने तुमको बुलाने के लिए मुझे भेजा है!

यही सोच रही हूँ कि हँसूँ या रोऊँ! इस समय भी ग्रामोफ़ोन! उसमें जितनी बार कूक भरी जाती है, वही थियेटर का नक़ी सुर निकलता है—उसे कोई चिन्ता नहीं! यन्त्र जब जीवन की नक़ल करता है तब वह इस तरह विषम विडम्बना हो ही उठता है!

सन्ध्या हो गई। जानती हूँ कि अमूल्य आते ही मुझे ख़बर भेजने में विलम्ब न करेगा—तब भी रहा न गया—कहार को बुला कर कहा, अमूल्य बाबू को बुला लाओ।—कहार ने आकर कहा—अमूल्य बाबू नहीं हैं।

बात साधारण थी, लेकिन उसी से मेरे हृदय में जैसे हलचल मच गई। "अमूल्य बाबू नहीं हैं" यह उक्ति उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्ध्या के अन्धकार में जैसे किसी के विलाप की तरह प्रतिध्वनित हो उठी। नहीं है, वह नहीं है! वह सूर्यास्त की सुवर्ण-रेखा के समान दिखाई देकर चला गया—अब वह नहीं है! सम्भव और असंभव कल्पनायें मेरे मस्तिष्क में चक्कर मारने लगीं। मैंने ही उसे मृत्यु के मुख में भेजा है, वह कुछ भी नहीं डरा, यह उसी का महत्त्व है। किन्तु इसके बाद मैं जीवित कैसे रहूँगी?

अमूल्य का कुछ भी चिह्न मेरे पास न था—केवल थी वही भैयादूज के तिलक की दक्षिणा—वही पिस्तौल! जान पड़ा, इसमें दैव का इशारा है। मेरे जीवन के मूल में जो कलङ्क लगा है, बालक-वेशधारी मेरे नारायण उसे मिटा देने का उपाय मेरे हाथ में रख कर ही कहीं अदृश्य हो गये हैं। कैसा स्नेह का दान है! कैसा पावन मन्त्र इसके भीतर निहित है!

बक्स खोल कर पिस्तौल निकाल कर दोनों हाथों से उठा कर अपने मस्तक में लगाया। ठीक उसी घड़ी हमारे ठाकुरद्वारे में आरती का घंटा बज उठा। मैंने पृथ्वी पर गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया।

रात को सब लोगों को भोजन कराया। मँझली रानी ने आकर कहा—आप ही आप खूब धूम करके अपनी जन्म-तिथि मना ली—क्यों? जान पड़ता है, हमें कुछ न करने दोगी?—

इतना कह कर उन्होंने अपने ग्रामोफ़ोन में दुनिया भर के गानेवाले और गानेवालियों के चढ़े-उतरे सुर की दून-चौगुनों की कसरत सुनाना शुरू कर दिया। जान पड़ने लगा, गन्धर्व लोक के सुरवाले घोड़ों के अस्तबल से चींचीं करके हिनहिनाना सुन पड़ रहा है!

खिलाने-पिलाने में बहुत रात बीत गई। इच्छा थी कि आज रात को अपने स्वामी के पैरों में प्रणाम करके उनकी चरण-रज मस्तक से लगाऊँगी। सोने के कमरे में जाकर देखा, वह सुख से सो रहे थे। आज दिन भर अनेक चिन्ताओं में दौड़-धूप करके ही उन्होंने बिताया है। खूब सावधानी के साथ ज़रा सी मसहरी खोल कर उनके पैरों के पास धीरे से सिर रक्खा। बालों के लगने से नींद के झोंक में उन्होंने अपने पैर से मेरे मस्तक को ज़रा सा ठेल दिया।

पश्चिम के बरामदे में जाकर बैठी। दूर पर एक सेमर का पेड़ अन्धकार में हड्डियों के ढांचे की तरह खड़ा हुआ है—उसके सब पत्ते झड़ गये हैं—उसी के पीछे सप्तमी का चन्द्रमा धीरे धीरे अस्त हो गया।

मुझे एकाएक जान पड़ा, आकाश के सब तारागण मानो मुझे भय की दृष्टि से देख रहे हैं—रात्रि के समय का यह विशाल जगत् मानो मेरी ओर छिप छिप कर देख रहा है। क्योंकि मैं अकेली हूँ। अकेले आदमी के समान सारी सृष्टि से निराला और कुछ भी नहीं। जिसके सब आत्मीय स्वजन एक एक करके मर गये हैं वह भी अकेला नहीं, मृत्यु की आड़ से भी वह सङ्ग पाता है। किन्तु जिसके सब अपने आदमी पास रहने पर भी पास नहीं हैं, जो मनुष्य-परिपूर्ण परिवार से एक-दम भ्रष्ट हो गया है, जान पड़ता है, जैसे अन्धकार में उसके मुख की ओर देखने से सारे नक्षत्रलोक के रोमाञ्च हो आता है। मैं जहां पर हूँ उसी जगह पर नहीं हूँ। जो लोग मुझे घेरे हुए हैं उन्हीं के पास से मैं दूर हूँ। एक विश्वव्यापी वियोग के ऊपर मैं पद्मपत्र के ऊपर ओस के बूँद की तरह चलती-फिरती हूँ, जीवित हूँ।

किन्तु मनुष्य जब बदल जाता है तब उसका आदि से अन्त तक क्यों नहीं बदल जाता? हृदय की ओर निहार से देख पाती हूँ जो था वह सब है, केवल उलट-पुलट गया है। जो क़ायदे से रक्खा हुआ था वह आज अस्त-व्यस्त हो गया है,—जो कण्ठ के हार में गुँथा हुआ था वह आज धूल में पड़ा हुआ है। इसी कारण तो छाती फटी जाती है। जी चाहता है, मर जाऊँ, किन्तु हृदय के भीतर तो सभी जीवित है—मरने ही में तो अन्त देख नहीं पाती। मुझे जान पड़ता है, मरने में जैसे और भी भयानक रोना है। जो कुछ चुका देने का है उसे जी का ही चुका सकती हूँ—अन्य उपाय नहीं है। केवल इस बार मुझे माफ़ करो, हे मेरे प्रभु! जो कुछ तुमने मेरे जीवन का धन कह कर मेरे हाथ में दे दिया था उसको मैंने अपने जीवन का बोझ बना डाला है। आज उसे न ढोई रह सकती हूँ और न फेंक ही दे सकती हूँ। और किसी एक दिन तुमने मेरे सबेरे के रङ्गीन आकाश के किनारे खड़े होकर जो वंशी बजाई थी वही वंशी बजाओ, सब समस्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहज हो जाय—तुम्हारे उस वंशी के स्वर के सिवा कोई भी टूटे को जोड़ नहीं सकता, अपवित्र को कोई उज्ज्वल नहीं बना सकता। उस वंशी के स्वर से तुम मेरे संसार को नया बना दो। नहीं तो मुझे और कोई उपाय नहीं देख पड़ता।

ज़मीन पर पेट के बल लेट कर रोने लगी। कहीं से कुछ-न-कुछ दया चाहिए, कोई आश्रय—कोई क्षमा का आभास चाहिए, ऐसा आभास कि सब मिट भी जा सके। अपने मन में मैंने कहा—प्रभु, मैं दिन-रात धन्ना दिये पड़ी रहूँगी—मैं अन्न न खाऊँगी, जल न पियूँगी जब तक तुम्हारा आशीर्वाद आकर न पहुँचेगा।

इसी समय पैरों की आहट सुन पड़ी। मेरा हृदय भीतर से हिल उठा। कौन कहता है, देवता देख नहीं पड़ते? मैं मुख उठा कर न देख सकी। इस ख़याल से कि कहीं मेरी दृष्टि उन्हें असह्य न हो। आओ, आओ, आओ, तुम्हारे पैर मेरे मस्तक में आकर लगे, मेरे इस हृदय की धड़कन के ऊपर आकर खड़े होओ, प्रभु, मैं इसी दम मर जाऊँ।

मेरे सिर के पास आकर बैठ गये। कौन? मेरे स्वामी! मेरे स्वामी के हृदय में उसी देवता का सिंहासन डोल उठा है जिनसे मेरा रोना सहा नहीं गया। जान पड़ा, मूर्च्छा आ जायगी। उसके बाद मेरी नसों के बन्धन को जैसे तोड़ डाल कर मेरे हृदय की वेदना रोने के 'ज्वार' में बह चली। हृदय में उनके पैरों को दबा लिया—इन पैरों का चिह्न चिरजीवन के लिए क्या यहाँ पर अङ्कित नहीं हो गया?

इस समय तो सब बातें खोल कर कह देने से सब झगड़ा चुक जाता! किन्तु इसके बाद भी क्या कोई और बात हो सकती थी? मेरी बात पड़ी रहे; कुछ हानि नहीं!

वह धीरे धीरे मेरे सिर पर हाथ फेरने लगे। आशीर्वाद मिल गया। कल जो अपमान मेरे लिए आ रहा है उस अपमान की डाली सबके सामने सिर पर उठा कर अपने देवता के पैरों में सरल भाव से प्रणाम कर सकूँगी।

किन्तु यह सोच कर मेरी छाती फटी जाती है कि आज नव वर्ष पहले जो नौबत बजी थी वह अब इस जन्म में किसी दिन नहीं बजने की। इस घर में मैं सादर लाई गई थी। इस जगत् में किस देवता के पैरों में सिर दे मारने से उसी नई बहू के रूप से फिर इस घर में आकर खड़ी हो सकती हूँ?—उसी नव वर्ष पहले के दिन तक लौट कर पहुँचने में और कितने दिन, कितने युगयुगान्तर लगेंगे? देवता नई सृष्टि कर सकते हैं, किन्तु टूटी-फूटी सृष्टि को फिर से गढ़ कर खड़े करने की शक्ति भी क्या उनमें है?

(असमाप्त)

रूपनारायण पाण्डेय

चारु चयन।

१—कथा-रहस्य।

ज्यों ही बालक का कण्ठ फूटा त्योंही उसने कहा—कहानी कहो।

दादी ने कहना शुरू किया—एक राजपुत्र था, उसके चार मित्र थे, एक मन्त्री का लड़का, दूसरा सौदागर का लड़का, तीसरा—

इसी समय गुरु जी ने चिल्ला कर कहा—तीन चौके बारह।

परन्तु गुरुजी का हुङ्कार कहानी के राक्षस के हुङ्कार के आगे दब गया। वह लड़के के कानों तक पहुँचा नहीं।

जो बालक के शुभचिन्तक थे उन्होंने उसको एक कमरे में बन्द कर बड़े गम्भीर स्वर से कहा—देखो, तीन चौके बारह, यह तो सत्य है और राजपुत्र या मन्त्री पुत्र की बात बिलकुल झूठी है। इसलिए—

उस समय बालक का मन मानस चित्र के उस समुद्र को पार कर रहा था जिसका पता किसी नक़्शे में नहीं लग सकता। तीन चौके बारह उसके पीछे पीछे दौड़ता रहता है परन्तु मृगजल की तरह उससे पानी नहीं मिलता।

शुभचिन्तकों ने समझ लिया कि लड़का पूरा बदमाश है। बेत की चोट से ही वह सुधर सकता है।

इधर गुरुजी का रुख़ देख कर दादी चुप हो गई। पर विपत्ति का अन्त योंही नहीं हो जाता। एक जाती है तो उसकी जगह दूसरी आती है। दादी के चुप हो जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद पौराणिकजी ने आकर आसन जमाया और उन्होंने राम-वनवास की कहानी शुरू कर दी।

जब सूर्पनखा की नाक काटी जा रही थी तब शुभ-चिन्तकों ने आकर कहा—इतिहास में इसका कोई प्रमाण नहीं है। जो बात प्रमाणित हो सकती है वह है तीन चौके बारह।

उस समय हनूमान आकाश में इतने ऊँचे उड़ रहे थे कि इतिहास उनका पल्ला नहीं पकड़ सकता था।

पाठशाला के बाद स्कूल में और स्कूल के बाद कालेज में लड़के के मानसिक सुधार की योजना होने लगी। परन्तु चाहे कुछ भी किया जाय यह बात मिट नहीं सकती कि कहानी की स्पृहा ही न रहे।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि केवल शैशव-काल में ही नहीं, सभी अवस्थाओं में मनुष्य की पुष्टि कथा से होती है। इसी से पृथ्वी पर मनुष्य के घर-घर में, मुख-मुख में, ग्रन्थ-ग्रन्थ में जो जमा होता है वह मनुष्य के सभी सञ्चयों से बढ़ जाता है।

शुभचिन्तक यह बात भूल कर भी नहीं सोचते कि कहानी का नशा ही विधाता का सबसे अन्तिम नशा है। जब तक उसका सुधार नहीं किया जायगा तब तक मनुष्य के सुधार की आशा नहीं है।

एक दिन विधाता अपने कारख़ाने में अग्नि से जल और जल से मिट्टी गढ़ने लगे। उस समय सृष्टि बाष्प-भार से आकुल थी। धातुओं और पत्थरों के पिण्ड क्रमशः गूँथे जा रहे थे। उनमें मसाला छोड़ा जाता था और वे दमादम पीटे जाते थे। उस दिन विधाता को देखने से यह बात किसी तरह ध्यान में नहीं आ सकती थी कि इनमें कहीं भी मनुष्य है। उस समय का कारख़ाना कहा जाता है सारवान्।

इसके बाद प्रारम्भ हुई प्राण की सृष्टि। घास उगी, पेड़ बढ़े, पशु दौड़े और पक्षी उड़े। कोई मिट्टी के बन्धन से आकाश में अञ्चलि देने के लिए खड़ा हुआ। कोई स्वतन्त्र हो अपने को पृथ्वी पर विस्तृत करने के लिए चला। कोई जल की यवनिका पर चुपचाप नृत्य करता हुआ पृथ्वी की प्रदक्षिणा में ही व्यस्त हुआ। कोई आकाश में पर फैला कर सूर्यालोक के वेदी-तल में सङ्गीत की अर्घ्य-रचना के लिए उत्सुक हुआ। इसी समय से विधाता के मन में हलचल शुरू हुई।

इस तरह कितने युग व्यतीत हुए। हठात् एक दिन विधाता के मन में कोई विचार उठा और उसने अपने कारख़ाने में उनचास पवनों को तलब किया। उन सबको लेकर उन्होंने मनुष्य की रचना की। इतने दिनों के बाद कथा की बारी आई। इतना समय विज्ञान और शिल्प में कटा, अब साहित्य शुरू हुआ।

मनुष्य को उन्होंने कहानियों में ही व्यक्त किया। पशु-पक्षी का जीवन है आहार, निद्रा और सन्तान-पालन। मनुष्य का जीवन है कथा। कितनी वेदना, कितनी घटनायें, सुख-दुख, संयोग-वियोग, अच्छे-बुरे के कितने घात-प्रतिघात होते हैं। इच्छा के साथ इच्छा का, एक के साथ दस का, साधना के साथ स्वभाव का, कामना के साथ घटना का, सङ्घर्षण होने से कितना आवर्तन होता है। जिस प्रकार नदी जल की धारा है उसी प्रकार मनुष्य कथा का प्रवाह है। इसी से ज्यों ही हम एक दूसरे से पूछते रहते हैं—क्या हाल है, क्या ख़बर है, इसके बाद क्या हुआ। इसी 'इसके बाद' से मनुष्य की कथा गूँथी हुई है। उसी को हम जीवन की कहानी कहते हैं। उसी को हम मनुष्य का इतिहास कहते हैं।

विधाता-रचित इतिहास और मनुष्य-रचित कहानी, इन्हीं दो से मनुष्य का संसार है। मनुष्य के पक्ष में केवल अशोक या अकबर की कथा ही सत्य नहीं है। जो राजपुत्र सात समुद्रों को पार कर सात राज्यों का धन खोजने के लिए निकला है वह भी सत्य है। हनूमान के वीरत्व की कथा भी सत्य है। उनके गन्धमादन को उखाड़ कर ले आने की बात पर कोई सन्देह नहीं हो सकता। मनुष्य के लिए औरङ्गज़ेब उतना ही सत्य है जितना दुर्योधन। किसके लिए अधिक प्रमाण है और किसके लिए कम, इस दृष्टि से इस सत्य की परीक्षा नहीं हो सकती। देखना यही है कि कहानी की दृष्टि से वह असल है या नहीं। उसके लिए यही सबसे बढ़ कर सत्य है*।

अनुवादक, हृषीकेश

———

* रवीन्द्र बाबू का एक लेख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२—लालसा।

दर्शनार्थ खड़ा हुआ हूँ द्वार में,
भर रहा हूँ मैं तुम्हारे प्यार में।
खोल दो, अब तो ज़रा पट खोल दो ?
बोल दो, निर्मम ! तनिक तुम बोल दो ॥ १ ॥
सोच लो कब से तुम्हारी चाह में ?
बह रहा हूँ प्रखर प्रेम-प्रवाह में।
यदपि पूर्ण हुई न अभिलाषा कभी,
पर लगी है चित्त में आशा अभी ॥ २ ॥
जन्म भर मैं खोज कर के सब कहीं,
हूँ यहाँ पहुँचा किसी विधि अब कहीं।
कर चुका कितने दुखों का सामना ?
पूर्ण कर दो आज मेरी कामना ॥ ३ ॥
यदपि सौरभ-हीन नीरस तुच्छ हैं,
पर हृदय के पुष्प के ये गुच्छ हैं।
क्या न चरणों पर तुम्हारे मैं धरूँ ?
फिर भला मैं भेंट क्या तुम को करूँ ॥ ४ ॥
बह रही जो अश्रु-जल की धार है,
वह बनाती मोतियों के हार है।
क्या न होंगे वे तुम्हें स्वीकृत यहाँ; ?
हाय ! ले जाऊँ उन्हें मैं फिर कहाँ ? ॥ ५ ॥
लो, करो स्वीकार मेरी भक्ति को,
फिर प्रदान करो मुझे उस शक्ति को।
जन्म भर का श्रम सफल मैं कर सकूँ,
और सुख-पूर्वक यहाँ मैं मर सकूँ ॥ ६ ॥
एक बार तुम्हें यहाँ मैं देख लूँ,
धन्य अपने भाग्य को मैं लेख लूँ।
बस यही अब लालसा है रह गई,
और सब तो प्रेम-नद में बह गई ॥ ७ ॥

गोपालशरणसिंह

३—यशः-स्तम्भ।

किसी शक्तिशाली वीर पुरुष के जीवन में या किसी जाति के उत्थान और पतन में यदि कोई असाधारण घटना घटती है तो उसके स्मृति-स्वरूप कीर्ति-चिह्न स्थापित करने के लिए मनुष्यों के हृदय में स्वभावतः अभिलाषा होती ही है। इस प्रकार कीर्ति-चिह्न स्थापित करने की आकांक्षा किसी देश अथवा जाति-विशेष में परिमित नहीं है। संसार की प्रत्येक जाति एवं प्रत्येक देश में कभी कोई न कोई असाधारण घटना अवश्य घटी है और उसको चिरस्थायी करने के लिए उस जाति ने उद्योग भी किया है। यही कारण है कि आज अनेक स्थानों में कितने ही स्तम्भ, मन्दिर, मीनार, प्रभृति किसी विशेष घटना के स्मृति-स्वरूप निर्मित होकर, मनुष्यों को उसकी सुधि दिला रहे हैं। परन्तु जो इमारतें वीरों की विजयों की स्मृति में बनाई गई हैं वे सर्वप्रधान हैं। कलकत्ते के मैदान में आकृरलोनी मानूमेन्ट और अमरीका के संयुक्त-राज्य में वाशिंगटन मेमोरियल इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

सभी समय असाधारण घटनाओं के ही स्मृति-रक्षार्थ कीर्ति-मन्दिर नहीं बने। अनेक समय साधारण लोगों के नाम को अक्षय करने के उद्देश से ही कितने ही उल्लेख-योग्य स्मृति-चिह्न बने हैं। कहीं प्रिया के विरह से कातर प्रेमी अपनी प्रेमिका की पारलौकिक मङ्गल-कामना अथवा अपने हृदय के प्रेम को व्यक्त करने के लिए अपरिमित धन-व्यय करके स्मृति-चिह्न स्थापित कर गये हैं, जो आज भी दर्शकों को चकित कर रहे हैं। कहीं शक्तिशाली विदेशी शत्रुओं के आक्रमण से राजा और प्रजा ने मिलकर कितने स्तम्भों का निर्माण किया है जिनकी गणना पृथ्वी के अन्यतम आश्चर्य पदार्थों में की जाती है। यहाँ कुछ ऐसे ही स्मृति-चिह्नों का विवरण दिया जाता है।

प्राचीन समय में भारतवर्ष में अनेक युद्ध-घटनायें हो चुकी हैं। परन्तु उनमें से आज किसी का भी स्मृति-चिह्न वर्तमान नहीं है। ऐतिहासिक काल से आज तक जो स्मृति-चिह्न हैं, उनमें प्रायः सभी धर्मोद्देश से स्थापित किये गये हैं। हिन्दू, मुसलमान और अँगरेज़ों के शासन-काल में युद्ध कम नहीं हुए। रामायण-महाभारत की युद्ध-घटनाओं को छोड़ कर भारत के इतिहास में अनेक युद्ध-घटनायें पाई जाती हैं। यदि किसी ने विजयी होने के उपलक्ष में स्मृति-चिह्न स्थापित भी किया तो अब वे नष्ट हो गये हैं। इतिहास से विदित होता है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्जाब के राजा अनङ्गपाल ने मुसलमानों पर विजयी होने के कारण उसकी स्मृति के लिए एक स्तम्भ स्थापित किया था, लेकिन उसका चिह्न तक आज वर्तमान नहीं है। किस स्थान पर यह स्तम्भ बना था, इसे कोई भी निश्चित रूप से नहीं कह सकता। इस स्मृति-स्तम्भ के विषय में कोई विवरण भी नहीं मिलता। केवल कहानी वर्तमान है। लेकिन अनङ्गपाल के सहस्रों वर्ष पहले महाराज अशोक का बनवाया हुआ लौह-स्तम्भ दिल्ली के निकट खड़ा हुआ दर्शकों के हृदय को चकित कर रहा है।

महाराज अशोक ईसा से २७२ से लेकर २३१ वर्ष पहले राज्य करते थे। इसलिए उनका उपर्युक्त लौह-स्तम्भ २००० वर्ष से अधिक प्राचीन सिद्ध होता है। २००० वर्ष बीत गये किन्तु यह जैसे का तैसा ही बना हुआ है। इस पर पालीभाषा में जो लेख उत्कीर्ण है वह अब भी स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। इसकी लम्बाई ४२ फुट ७ इंच और परिधि १० फुट १० इंच है। यह ढाल कर बनाया गया है। इतना बड़ा स्तम्भ ढालने के लिए कितने बड़े कारख़ाने की आवश्यकता हो सकती है, इसे तैयार करने के लिए कितने वैज्ञानिकों के ज्ञान की आवश्यकता पड़ सकती है, इसका विचार कर बीसवीं सदी के सुविज्ञ वैज्ञानिक भी चकित होते हैं। प्राचीनकाल में भारत में विज्ञान की चर्चा कितनी उन्नत थी, इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि दिल्ली का अशोक-स्तम्भ भारत की विज्ञानोन्नति का साक्षी-स्वरूप अब भी वर्तमान है।

सम्राट् अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए खूब प्रयत्न किया था। उसने स्तम्भों पर बौद्ध-धर्म के चौदह नियमों को खुदवा कर भिन्न भिन्न स्थानों में उन्हें स्थापित कराया था और जन-साधारण को उनका पालन करने के लिए उपदेश दिया था। दिल्ली के स्तम्भ पर भी बहुत से नियम खुदे हुए हैं।

यह स्तम्भ पहले यमुना के किनारे एक स्थान में था। पीछे से फ़ीरोज़शाह तुग़लक ने इसे वहाँ से ला कर दिल्ली के निकट फ़ीरोज़ाबाद नामक अपने नये नगर में स्थापित किया। तब से यह उसी स्थान पर है। स्वर्गीय मिस्टर हेनरी प्रिंसेप ने इस स्तम्भ के लेखों को पढ़ कर प्राच्य विद्या-विशारदों का बड़ा उपकार किया है। फ़ीरोज़ाबाद आज-कल उजड़ा पड़ा है, लेकिन यह स्तम्भ उसके ध्वंसावशेष में ज्यों का त्यों वर्तमान है। बौद्ध-धर्म के जो नियम इस पर खुदे हुए हैं उनसे उस धर्म्म के मूल लक्षण जाने जा सकते हैं। इसकी नागरी भाषा के लेख से सन् १५२४ की लिपि का ज्ञान होता है। बारहवीं शताब्दी में हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक जो दिग्विजय-यात्रा सम्राट् विशालदेव ने की थी उसका भी हाल इसमें उत्कीर्ण है।

दिल्ली में सर्वसाधारण, विशेषकर भ्रमणकारियों, के चित्त को जो इमारत अपनी ओर आकर्षित करती है वह वहाँ का प्रसिद्ध कुतुबमीनार है। कुतुब-मीनार की कथा कई प्रकार से कही गई है। आज-कल जितने कीर्ति-स्तम्भ वर्तमान हैं उनमें कुतुबमीनार की भी गिनती है। दिल्ली से ग्यारह मील दक्षिण प्राचीन दिल्ली के पास कुतुबमीनार स्थित है। इन्द्रप्रस्थ नगर यहीं आबाद था। वहाँ की प्रायः सभी इमारतें गिर गई हैं। केवल यही मीनार खण्डहरों के बीच आज भी अजर-अमर खड़ा है।

कुतुबमीनार भी एक विजय-स्तम्भ है। इसका नाम भी यही बताता है। लेकिन इसकी बनावट को देखकर हिन्दू-सभ्यता के शिल्प का स्मरण हो आता है। अतएव लोगों का विश्वास है कि यह मीनार किसी हिन्दू-राजा का बनवाया हुआ है। चाहे जो कुछ हो, पर दिल्ली के प्रथम मुसलमान बादशाह कुतुबुद्दीन के नाम से यह भारत ही में नहीं, सारे संसार में प्रसिद्ध है। कुतुबुद्दीन ने चाहे इसे बनवाया न हो, पर दिल्ली-विजय करने के बाद उसने इस मीनार को अपनी विजय के स्मृति-स्वरूप अपने नाम से प्रसिद्ध कर दिया। इसकी ऊँचाई २४० फुट है। इसकी अपेक्षा अधिक ऊँचे दुनिया में केवल दो स्तम्भ हैं। पहला फ़्रांस का ईफ़ेल टावर और दूसरा अमरीका का वाशिंगटन मेमोरियल।

हिरण-मीनार कोई विजय-स्तम्भ नहीं है। इसे अकबर सम्राट् ने अपने प्रिय हाथी के समाधि के ऊपर बनवाया था। यह मीनार फ़तहपुर सीकरी में है। जिस हाथी की समाधि के ऊपर यह स्तम्भ बनवाया गया था उस पर बड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सम्राट् अकबर शिकार खेलने जाया करते थे। वह हाथी बड़ा साहसी था। कहा जाता है कि इस हाथी की चतुरता, साहस तथा बुद्धि-बल से शेर के शिकार में सम्राट् के प्राणों की रक्षा कई बार हुई थी। इस कारण सम्राट् को वह बहुत प्रिय था। सम्राट् ने उसकी मृत्यु पर कृतज्ञता-स्वरूप उसकी समाधि पर यह मीनार बनवा दिया। यह मीनार जङ्गल में स्थित है। बादशाह के अनुचर जङ्गल को घेर कर पशुओं, विशेषकर हिरणों, को इस मीनार के पास भगा लाते थे और सम्राट् मीनार पर बैठ कर उनका शिकार करते थे। इसी से इसका नाम हिरण-मीनार पड़ गया। यह पत्थर का बना हुआ है। इसमें नीचे से ऊपर तक हाथीदांत के आकार की बनी हुई बहुत सी कीलें जड़ी हुई हैं। इसकी ऊँचाई ७० फुट है।

मेवाड़ का चित्तौर-दुर्ग प्रसिद्ध है। यहाँ एक विजय-स्तम्भ है, जो गिरी-पड़ी अवस्था में अभी तक खड़ा हुआ है। इस स्तम्भ की ऊँचाई १२२ फुट है। यह कलकत्ते के मैदान में स्थित आक्टर लोनी मानूमेन्ट की अपेक्षा २ फुट अधिक ऊँचा है। सन् १४५० के एक युद्ध-विजय के स्मारक-स्वरूप यह स्तम्भ बनवाया गया था। उस समय राणा कुम्भा चित्तौर के राज-सिंहासन पर विराजमान थे। मालवा और गुजरात देश के मुसलमान शासकों ने मिल कर चित्तौर पर आक्रमण किया। राणा कुम्भा ने उनको पराजित कर दिया। युद्ध-विजय के ग्यारह वर्ष बाद उसके विजय-स्मृति-स्वरूप इस का निर्माण आरम्भ हुआ और दस वर्ष में बन कर तैयार हुआ। इस स्तम्भ पर इस युद्ध का हाल उत्कीर्ण है।

भारत के धर्म्म-केन्द्र काशी में गङ्गा के किनारे एक बहुत ऊँची मस्जिद और उसके दो बड़े बड़े मीनार दिखलाई पड़ते हैं। कहते हैं, पहले वेणीमाधव का ध्वजा नामक एक मन्दिर इस स्थान पर था। उस मन्दिर को तोड़ कर बादशाह औरङ्गज़ेब ने मन्दिर की दीवारों के ऊपर इस मस्जिद का निर्माण कराया। इसके दोनों मीनारों की ऊँचाई १५० फुट होगी।

इनके सिवा एक और कीर्तिस्तम्भ उल्लेखयोग्य है। निज़ाम के राज्य में दौलताबाद नाम का एक पहाड़ी क़िला है। इसका पुराना नाम देवगिरि है। दिल्ली के बादशाह महम्मद तुग़लक ने इस स्थान का नाम दौलताबाद रक्खा था। इसे अपनी राजधानी बनाने के लिए उसने दो बार प्रयत्न किया, किन्तु दोनों बार उसे असफल होना पड़ा। इसी के पहाड़ी क़िले में एक मीनार है। इसकी ऊँचाई १२० फुट है।

अब हम भारतवर्ष को छोड़ कर दुनिया के दूसरे देशों की ओर अपनी दृष्टि डालते हैं। पहले हम चीन को लेते हैं। चीन में सु-चो नाम का एक नगर है। चीनी लोग इसे पवित्र स्थान मानते हैं। यह नगर बड़ा सुन्दर है। इस नगर में जन्मग्रहण करने से चीनी लोग अपने को बड़ा भाग्यवान् समझते हैं। हो-लुयां नामक एक व्यक्ति ने इस नगर को बसाया था। उसकी समाधि पर लोगों के मिट्टी फेंकते फेंकते व्याघ्र-पहाड़ नाम का एक पहाड़ सा बन गया है। उसी पहाड़ पर नवतले का एक मीनार है। इसको बने १३० वर्ष हो गये, किन्तु अभी वह ज्यों का त्यों बना हुआ है।

फ़ारस में तेहरान के मार्ग पर दामघान नाम का एक नगर था। वह प्राचीन काल में बड़ा समृद्धिशाली था, लेकिन काल-चक्र से इस समय वह नगर खण्डहर के रूप में परिणत हो गया है। उसी के ध्वंसावशेष के मध्य एक बहुत प्राचीन मीनार स्थित है। फ़ारस के मुसलमानों के पहले यह स्तम्भ तैयार हुआ था। सत्रहवीं शताब्दी में क्रमपूर्वक दो दुर्घटनाओं के हो जाने के कारण वह नगर नष्ट हो गया था। इस मीनार की कारीगरी और सुन्दरता देखने योग्य है। जिन दो कारणों से नगर का विनाश हुआ था उनमें पहला प्राकृतिक और दूसरा मानवकृत था। एक प्रबल भूकम्प के आने से सब घर नष्ट हो गये और चार हज़ार मनुष्यों की मृत्यु हुई। इसके बाद अफ़ग़ानों ने इस नगर पर आक्रमण किया, जिसमें सात हज़ार मनुष्य मारे गये। क्रमानुसार यह नगर ध्वंसावशेष में परिणत हो गया, केवल उसका स्तम्भ किसी तरह बच गया है।

मध्य एशिया में बोख़ारा का राज्य रूस के अधिकार में है। इस राज्य की राजधानी का नाम भी बोख़ारा है। बोख़ारा नगर के प्रधान बाज़ार के एक ओर, एक प्रसिद्ध मस्जिद है। आगरा और दिल्ली की जुम्मा मस्जिद की तरह यहाँ भी प्रति शुक्रवार को दस सहस्र आदमी एकत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर नमाज़ पढ़ते हैं। इसी मस्जिद के निकट मीनार कलान या (महामीनार) नाम का एक ऊँचा स्तम्भ है। यह मीनार गोलाकार है। इसके नीचे की परिधि ३६ फुट और ऊँचाई २१० फुट है। यह खुदी हुई ईंटों का बना हुआ है। दर्शकों पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। जब बोख़ारा समृद्धिशाली रहा होगा तब इसका निर्माण हुआ होगा। उस समय प्राणदण्ड से दण्डित मनुष्य इसी मीनार के ऊपर से दूसरी ओर बाज़ार में गिरा दिये जाते थे। २१० फुट ऊँचे स्थान से गिरते ही वे चूर चूर हो जाते थे। इसके बनवाने का पहले चाहे जो कुछ उद्देश रहा हो, किन्तु जिस प्रकार यह व्यवहार में लाया जाता था उसे देख कर इसको स्मृति-चिह्न अथवा कीर्ति-स्तम्भ कहना अनुचित है। स्तम्भ होने के कारण यह दर्शकों के चित्त को आकर्षित करता है। क्रमशः सभ्यता की वृद्धि तथा रूस के प्रभाव से अब वह प्रथा नहीं रही। इस स्तम्भ पर अब कोई चढ़ने नहीं पाता, क्योंकि इसके चारों ओर गृहस्थों के घर हैं और वहाँ परदे की प्रथा है।

अफ़्रीका के उत्तर-पूर्व में मिस्र नाम का एक देश है। इसके उत्तर भूमध्य सागर के किनारे अलेकज़ेन्ड्रिया नामक एक प्राचीन शहर है। इस नगर में पाम्पिज़ पिलर नामक एक स्तम्भ है। यह स्तम्भ पत्थर काट कर बनाया गया है। इसकी लम्बाई १२० फुट है। मिस्र राज्य का सौभाग्य-सूर्य्य जिस समय अस्त हुआ उसी समय अलेकज़ेंडिया नगर का भी पतन हुआ। रोम-साम्राज्य उस समय पूर्ण उन्नत था। योरप, अफ़्रीका तथा अन्यान्य देशों में उसकी विजयपताका फहरा रही थी। पाम्पी नामक एक रोमन सेनापति ने उस समय अनेक देश विजय करके यश प्राप्त किया था। पाम्पी का नाम सुनते ही पहले यह जान पड़ता है कि यह स्तम्भ किसी रोमन सेनापति का कीर्ति-चिह्न है, किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। इस स्तम्भ के साथ रोमन सेनापति के नाम के सिवा और कोई सम्बन्ध नहीं है। सातवीं शताब्दी में मुसलमानों ने ईसाइयों को पराजित करके मिस्र में अपना राज्य स्थापित किया। विजयी मुसलमान राजा तथा सेनापति के आज्ञानुसार अलेकज़ेंड्रिया का विख्यात पुस्तकालय, जिस में युगयुगान्तर से बहुमूल्य पुस्तकें संग्रह की गई थीं, जला दिया गया। अलेकज़ेंड्रिया के गौरव के नाश होने के साथ साथ नगर का भी विध्वंस हो गया। मुसलमानों ने कैरो नगर में अपनी राजधानी स्थापित की। प्रायः १०० वर्ष हुआ मिस्र में पुराने ध्वंसावशेषों के बगल में नये अलेकज़ेंड्रिया नगर की स्थापना हुई। ग्रीक वीर अलेकज़ेंडर बहुत से स्थानों से **ओबेलिस्क** संग्रह करके लाया था। उसने कुछ परिवर्तन करके अलेकज़ेंड्रिया नगर की स्थापना की थी। वही ओबेलिस्क पाम्पीपिलर के नाम से प्रसिद्ध होकर अलेकज़ेन्डर के कीर्ति-स्तम्भ वर्तमान है।

कैरो नगर के पास हेलिओपेलिस नामक एक छोटा और प्राचीन नगर था। हेलिओपेलिस शब्द का अर्थ सूर्य्य-नगर जान पड़ता है, क्योंकि इस नगर का दूसरा नाम "सूर्य्य-नगर" था। यह नगर पुराने समय के मिस्री लोगों का स्थापित किया हुआ है। मिस्री लोग सूर्योपासक थे। सूर्य्य देव के नाम पर सङ्गमरमर पत्थर के बने हुए चौकोर स्तम्भ अब भी मिस्र के पुराने स्थानों में पाये जाते हैं। हेलियोपेलिस या सूर्य्य-नगर के गिरे-पड़े समूहों के बीच अब भी दो एक ओबेलिस्क और सूर्य्यस्तम्भ वर्तमान हैं। इनकी ऊँचाई ३६ फुट के लगभग है। यहाँ एक बड़ा सूर्य्यमन्दिर भी स्थापित हुआ था, किन्तु नगर के साथ साथ वह मन्दिर भी नष्ट हो गया।

सूर्य्यस्तम्भ की बात आजाने से उड़िया के सूर्य्यस्तम्भ का स्मरण हो आता है। मिस्रियों की तरह हिन्दू लोग भी सूर्य्योपासक थे। उड़िया के अन्तर्गत कनारा में एक बड़ा सूर्य्यस्तम्भ और सूर्य्य-मन्दिर था। स्तम्भ तो इस समय पुरी में भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर के निकट स्थापित है। यह भी पत्थर का बना है। मिस्र के ओबेलिस्क और उड़िया के सूर्य्य-स्तम्भ के निर्माणोद्देश और व्यवहार में बिलकुल अन्तर नहीं है।

मिस्र के ओबेलिस्क के ऊपर प्राचीन समय की चित्र-लिपि में स्तम्भ बनने का समय, उद्देश और बनानेवाले का नाम इत्यादि लिखा है। मिस्र के ये ओबेलिस्क लगभग ४००० वर्ष पहले बने थे।

कनारा के सूर्य्यस्तम्भ के निर्माण-काल का अभी तक पता नहीं चला। १८ वीं शताब्दी में मराठों ने इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तम्भ को उठा कर पुरी में स्थापित किया था। इसकी ऊँचाई ३३ फ़ुट ९ इंच है। यह सम्भवतः चौकोर आकार का पहले बना था, किन्तु इस समय उसमें सोलह कोने हो गये हैं।

इटली की राजधानी रोम-नगर के पास पुराने रोम-नगर ध्वंसावशेष में ट्रोज़न कालम उल्लेखनीय है। ट्रोज़न रोम का एक सम्राट् था। उसका रूस के साथ युद्ध हुआ था। उसी के स्मृति-रक्षार्थ यह स्तम्भ बनाया गया था। ट्रोज़न नाम का एक बाज़ार भी था। उसी के बीच यह स्तम्भ स्थापित किया गया था और वहीं अभी तक स्थापित है।

पिसा नगर का तिर्छा मीनार भी देखने योग्य है। यह आठ तल्ले का है और गोलाकार है। उसका प्रत्येक तल्ला स्तम्भों की श्रेणियों से भूषित है। सारा मीनार सङ्गमरमर पत्थर का बना हुआ है। उसकी ऊँचाई १८० फ़ुट है। सन् १२८४ में इसका बनना आरम्भ हुआ था। जब यह बन गया तब सीधा ही खड़ा था, लेकिन जिस भूमि के ऊपर यह स्थित है वह दृढ़ नहीं है इससे यह धीरे धीरे तिरछा होता जाता है। इसको सीधा करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये, किन्तु यह सीधा नहीं हुआ।

वेनिस नगर का सेन्टपाल गिर्जा पृथ्वी की एक विख्यात इमारत है। इस गिर्जे के सामने की पृथ्वी पर प्रातःकाल तथा सायङ्काल लोग घूमने आते हैं। इसके एक तरफ़ कैम्प नाइल नाम का एक ऊँचा चौकोर स्तम्भ है। यह सन् १९०२ ई० में गिर पड़ा था, क्रमशः इसका बनना फिर आरम्भ हो गया है।

टर्की की राजधानी कान्सटैन्टिनोपल का जो अंश सबसे अधिक प्राचीन है वहाँ हिपोड्राम का सर्कस था। उसी स्थान के चारों ओर सङ्गमरमर के चट्टानों पर बैठ कर लोग जीव-जन्तुओं का तमाशा देखते थे। इस हिपोड्राम का दृश्य आश्चर्यजनक है। इसके बीच में दो स्तम्भ हैं। ये दोनों ओबेलिस्क के नाम से प्रसिद्ध हैं। जो निकट ही दिखलाई पड़ता है वह हेलिओपेलिस के एक स्थान से लाया गया है। दूसरे के विषय में यह कहा जाता है कि यह जब तक स्थित रहेगा तभी तक तुर्क साम्राज्य क़ायम रहेगा। इसके नाश होते ही तुर्क साम्राज्य का भी नाश सम्भव है। क्या टर्की का पतन तब तक इस स्तम्भ में गुप्त भाव से रक्षित है?

सन् १८८९ में फ़्रांस की राजधानी पेरिस नगर में एक विराट शिल्प-प्रदर्शिनी स्थापित हुई। इसी प्रदर्शिनी की शोभा के लिए ईफ़ेलटावर बनाया गया था। यह पृथ्वी में सर्वोच्च स्तम्भ है। जब प्रदर्शिनी बन्द हुई तब सारी चीज़ें हटा ली गईं। केवल यह स्तम्भ प्रदर्शिनी के गौरवस्वरूप रह गया है। इसकी ऊँचाई ९८४ फ़ुट है। इसके पहले अमरीका के यूनाइटेड स्टेट के अन्तर्गत वाशिंगटन नगर में जार्ज वाशिंगटन के स्मृति-स्वरूप जो स्तम्भ बनाया गया था वही पृथ्वी में सर्वोच्च स्तम्भ था। उसकी ऊँचाई केवल ५५५ फ़ुट है। इसलिए ईफ़ेलटावर उसकी अपेक्षा ४२९ फ़ुट अधिक ऊँचा है। इस टावर पर चढ़ने के लिए वैद्युतिक (Lift) लिफ़्ट और सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। सन् १८८७ के जनवरी मास में इसका बनना आरम्भ हुआ था और सन् १८८९ ई० में यह बन कर तैयार हो गया था।

ऊँचाई की दृष्टि से दुनिया में वाशिंगटन मेमोरियल का दूसरा नंबर है। किन्तु सम्मान की दृष्टि से वह ईफ़ेलटावर की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इस स्तम्भ के बनवाने में ३७ वर्ष लगे हैं। सन् १८४८ में इसकी नीव रक्खी गई। इसके ऊपर जाने के लिए ९८० सीढ़ियों से युक्त एक अधिरोहिणी है। कल के द्वारा भी इसके ऊपर चढ़ा जाता है।

ऊँचाई में ईफ़ेलटावर सर्वश्रेष्ठ है और यह अर्वाचीन भी है। इससे यह मालूम होता है कि मनुष्यों में उच्चाभिलाषा क्रमशः बढ़ती ही जाती है। पृथ्वी में यदि कोई नया स्तम्भ बने तो वह शायद इससे भी अधिक ऊँचा हो। कहा जाता है लङ्का के राजा रावण ने एक बार स्वर्ग की सीढ़ी निर्माण कराने के लिए विचार किया था, जिससे जीव सहज में ही स्वर्ग पहुँच जायँ। जीवों के दुर्भाग्य से रावण अपनी इच्छा पूरी करने के पहले ही राम के हाथों से मारा गया सीढ़ी के द्वारा स्वर्ग जाने की इच्छा सिर्फ़ रावण ने ही नहीं की थी। इतने बड़े गगनचुम्बी स्तम्भों को बनते देख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मालूम होता है कि उससे सब मनुष्यों की हार्दिक सहानुभूति है और सुयोग पाकर इसकी पूर्ति भी होगी।

मिस्र के स्तम्भों के विषय में कुछ कहा नहीं गया, इसलिए इस छोटे प्रबन्ध में उनके विषय में दो चार बातें कहना आवश्यक है। मिस्र के स्तम्भ पृथ्वी के सप्ताश्चर्यों में गिने गये हैं। इनके निर्माण-कर्ताओं ने अपनी शक्ति के अनुसार इनको बहुत अच्छा बनाया था। अब भी उनका आकार-प्रकार अच्छा दिखलाई पड़ता है। प्राचीन समय में मिस्र के राजा अपनी अपनी समाधि के ऊपर एक एक स्तम्भ बनवा गये हैं वे स्तम्भ उन राजाओं के शव को अपने भीतर धारण कर सहस्रों वर्ष से अभी तक वर्तमान हैं और भ्रमण-कारियों को श्रद्धा, विस्मय तथा अनेक भावों से चकित कर रहे हैं। इन स्तम्भों का वृत्तान्त निकल चुका है। इसलिए यहाँ केवल स्तम्भों का उल्लेख-मात्र किया जाता है।

(बँगला से सङ्कलित)

ज—

४—मुक्ति का स्वरूप।

(जैन-धर्म के अनुसार)

शब्द की निरुक्ति से वस्तु के स्वरूप और मनुष्य के सनातनभाव का पता लगता है। मुक्ति या मोक्ष शब्द की व्युत्पत्ति मुञ्च धातु से है। इसका अर्थ छुटकारा होना है। इससे यह मालूम होता है कि एक वस्तु दूसरी वस्तु के बन्धन में है, और इस बन्धन के टूटने पर जो अवस्था होती है उसे मोक्ष कहते हैं, अर्थात् यह माना जाता था और माना जाता है कि जीव किसी दूसरी वस्तु के बन्धन में है, जिससे उसका सम्बन्ध भङ्ग होने पर वह मुक्त कहलाता है।

मोक्ष पर विचार करने में मोक्ष किसे कहते हैं, कौन बन्धन में है और किसके बन्धन में है, मोक्ष की क्या ज़रूरत है, बन्धन किस तरह से होता है, बन्धन का क्या स्वरूप है, बन्धन कब से है, क्या बन्धन से छुटकारा हो सकता है, अगर हो सकता है तो कैसे, छुटकारा होने पर मुक्त कहाँ और किस हालत में रहता है, क्या मुक्त फिर बन्धन में आ सकता है, मोक्ष में मुक्तों की क्या संज्ञा है, इत्यादि प्रश्न उठते हैं। इनके समाधान से मुक्ति का साधारण ज्ञान अवश्य हो जायगा।

यहाँ पहले द्रव्यों के गुणों और उनके पर्यायों पर विचार किया जाता है। द्रव्य में अनेक शक्तियाँ होती हैं, इन शक्तियों को गुण कहते हैं, गुणों का समुदाय द्रव्य कहलाता है। द्रव्य से भिन्न गुण नहीं और गुणों से भिन्न द्रव्य नहीं है। द्रव्य अनादि, अकृत्रिम और अविनश्वर हैं। वे हमेशा से हैं, किसी के बनाये हुए नहीं हैं और हमेशा रहेंगे। जिस पदार्थ का अस्तित्व नहीं है वह अस्तित्व में नहीं आ सकता, इसलिए किसी परमेश्वर को कर्त्ता मानना केवल भ्रम है। संसार में दो तरह के द्रव्य हैं—एक जीव और दूसरे अजीव। अजीव में पुद्गल, आकाश, काल, धर्म, अधर्म, (Matter, Space, Time, Medium of Motion and Medium of Rest) शामिल हैं। इनमें से सिर्फ़ पुद्गल द्रव्य मूर्तिक पदार्थ हैं। बाक़ी सब अमूर्तिक हैं, मगर वे अस्तित्व द्रव्यत्व प्रमेयत्व इत्यादि गुणों से रहित नहीं हैं। जीव और पुद्गल में एक गुण ऐसा है जिसको वैभाविकी शक्ति कहते हैं। इसके कारण इन दोनों का अशुद्ध परिणमन होता है। इसी अशुद्ध परिणमन को बन्धन कहते हैं। इससे यह मालूम हुआ कि जीव का बन्धन पुद्गल के साथ ही होता है, किसी दूसरे द्रव्य के साथ नहीं। परन्तु संसार में जितने पुद्गल परमाणु हैं उन सबके साथ जीव का बन्धन नहीं होता है। जिनसे जीव संयोग करता है और जो जीव को बाँध लेते हैं उनसे बन्धन होता है। इसलिए (१) जीव (२) अजीव (३) पुद्गल के जीव के बाँधने के कारण या तरीक़े, (४) बंध का स्वरूप, (५) बन्धन के कारणों की बन्दिश या रुकावट, (६) बन्धन के टूटने या तोड़ने के तरीक़े और (७) बन्धन से मुक्ति इन सात तत्त्वों के द्वारा, जिनको जैन-सिद्धान्त में जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष कहते हैं, जीव और उसकी शुद्ध और अशुद्ध दशाओं का बोध होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्ष का विवेचन करनेवाले जीव के वर्तमान अस्तित्व और उसकी भविष्य अवस्था को मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि जीव पुद्गल या प्रकृति से भिन्न पदार्थ है और उसके ज्ञान का लक्षण दर्शनमय चेतना है। परन्तु संसार में कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनको जीव के अस्तित्व में ही शङ्का है और कुछ ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि जीव का अस्तित्व गर्भ से लेकर मरणपर्यन्त ही प्रतीत होता है और गर्भ से पहले और मरण के पश्चात् जीव का अस्तित्व प्रतीत नहीं होता। यदि ये लोग कुछ विचार करें तो इनको यह मालूम होगा कि मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ, मैं राजा हूँ मैं रङ्क हूँ, इत्यादिक स्वसंवेदन प्रत्यक्ष में "मैं" शब्द का वाच्य इस शरीर से भिन्न जीव ही है, अर्थात् जिसको सुखदुखादिक का अनुभव होता है वह भी पुद्गल या शरीर से भिन्न कोई पदार्थ है, जिसको जीव कहते हैं। इसलिए जीव पदार्थ का अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है। फिर यह भी देखा जाता है कि जीवित शरीर आत्मा-सहित है, क्योंकि वह श्वासोच्छ्वासवाला है। जो पदार्थ श्वासोच्छ्वास-सहित नहीं हैं वे आत्मा-सहित भी नहीं हैं, जैसे घटादिक। जहां जहां श्वासोच्छ्वास है, वहां वहां जीव अवश्य है, आकांक्षा, इच्छा और स्मृति से भी जीव का अस्तित्व प्रकट होता है। इन प्रमाणों से यह भी ज्ञात होता है कि जीव एक स्वतन्त्र, असंयुक्त, अखण्ड पदार्थ है और वह स्कन्धों का बना हुआ नहीं है, जो कभी टूट-फूट जाय या अलग हो जाय। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीव एक द्रव्य है, और हम द्रव्य को पहले अनादि, अकृत्रिम और अविनश्वर बता चुके हैं, अतएव जीव भी अनादि, अकृत्रिम और अविनश्वर द्रव्य है। जीव हमेशा से है और हमेशा रहेगा, अर्थात् गर्भ के पहले और मरण के पश्चात् भी जीव होता है। यह बात अब Psychic Research Society की खोज से भी साबित हो गई है।

जीव-द्रव्य की सत्ता को माननेवाले जीव की मुक्ति को भी मानते हैं, मगर ये लोग मुक्ति का स्वरूप अपने जीव-विषयक विचार के अनुसार मानते हैं। कहने का मतलब यह कि जिसका विचार जीव के बारे में ग़लत है उसका मुक्ति-विषयक विचार भी ग़लत है। बहुत से लोग यह मानते हैं कि जीव का अस्तित्व पहले नहीं होता, परमात्मा जीव को उसके जन्म या गर्भ के समय पैदा करता है और क्रिया में स्वतन्त्र होने के कारण वह पुण्य तथा पाप करता है। पुण्य के कारण मरण के पश्चात् वह परमात्मा के साथ सम्बन्ध कर लेता है और फिर सुखी रहता है। कोई यह मानते हैं कि मरण के पश्चात् तुरन्त यह सुख मिल जाता है और कोई यह कहते हैं कि आक़बत के दिन तक ठहरना होता है और फिर ख़ुदा के इन्साफ़ करने पर वह जज़ा या सज़ा भोगता है। कोई इसमें एक नजात दिलानेवाले और उसमें यक़ीन लाने की ज़रूरत समझते हैं, दूसरे जिनको यह बात नहीं जँचती इस ख़याल के हैं कि जीव को कोई परमात्मा पैदा भी कर सकता है और वे जीव को अनादि मानते हैं। मगर वे यह कहते हैं कि चेतन द्रव्य के दो भेद हैं—एक परमात्मा और दूसरा जीवात्मा। परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सर्व-शक्तिमान्, अनादि, शुद्ध, जगत् का कर्ता-हर्ता, जीवात्मा से नितान्त भिन्न, सच्चिदानन्द है, और जीवात्मा अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न-सहित अनेक द्रव्य है। यह जीव अपने कर्मों के अनुसार ईश्वर के दिये हुए फल भोगता है। और वेदोक्त कर्मों के करने से मुक्ति प्राप्त कर सुख भोगता है। ये दोनों विचार ग़लत हैं, क्योंकि ऐसे ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। फिर ऐसे लोग हैं जो जीव को कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते। उनका कहना है कि एक ब्रह्म के सिवा और कुछ नहीं है। यह सब माया और भ्रम है, भ्रम के दूर होने पर यह माना हुआ जीव ब्रह्म हो जाता है और इसका माना हुआ सुख-दुख दूर होने पर सच्चिदानन्द-स्वरूप होने को मोक्ष कहते हैं। परन्तु जिस विचार में अनेक, प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले जीवों की सत्ता नहीं मानी जाती वह अनुभव और न्याय से कितनी दूर है, यह बात स्वयं स्पष्ट है।

जैन-सिद्धान्त में माने हुए छः द्रव्यों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। उनसे यह मालूम हो गया होगा कि जैन-धर्म में चेतन द्रव्य एक जीव ही है। यह भी कहा जा चुका है कि जीव अखण्ड, असंयुक्त पदार्थ है। जीव अनेक हैं, जैन-सिद्धान्त में भी जीव अनादि और अनन्त हैं, उनका स्वरूप सच्चिदानन्द है और जीव सत्तावाले, चैतन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आनन्दवाले होते हैं। मगर जैन-सिद्धान्त के अनुसार वे जीव, जिनकी सत्ता जन्म-मरण-मय होती है, जिनकी चेतना अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शनमय नहीं होती, और जिनका आनन्द अनन्त सुख नहीं होता, संसारी हैं और वे जीव, जो अमर, अनन्त ज्ञान और अनन्त सुखमय होते हैं मुक्त कहलाते हैं।

अब हम यह कह सकते हैं कि जीव के आवागमन से रहित होने को मुक्ति कहते हैं और यह स्पष्ट है कि जीव के सांसारिक दुख के दूर होने और अनन्त सुख के प्राप्त होने को मोक्ष कहते हैं।

जीव का अमर, अनन्त ज्ञान और अनन्त सुखवाला होना भी सिद्ध होता है या नहीं, यह देखना है। हर मज़हबवाले अपने परमेश्वर में ये गुण मानते हैं और जीव भी वैसा ही चेतन द्रव्य है जैसा कि परमेश्वर। सो जीव में भी ये गुण मानने पड़ेंगे। हाँ, यह कहा जा सकता है कि सिर्फ़ शुद्ध जीव में ये गुण प्रकट होते हैं और औरों में शक्तिरूप से हैं। जीव एक द्रव्य है और द्रव्य नश्वर नहीं, इसलिए जीव अमर है। अगर जीव संयुक्त पदार्थ अर्थात् स्कन्धों से बना हुआ होता तो उसका अलग अलग हो जाना, टूट जाना, बिखर जाना सम्भव था। मगर अखण्ड चैतन्य, प्रयत्नशीलता, स्मृति, धारणा, परिणामदर्शिता इत्यादि शक्तियाँ जीव में देखी जाती हैं। इनसे सिद्ध होता है कि जीव एक है, वह खण्ड और असंयुक्त पदार्थ है, उसके टुकड़े नहीं हो सकते, इसलिए जीव अमर है। जीव के कर्मों के कारण जो आवागमन और जन्म-मरण होता है उसके बन्द होने पर जीव पूर्णरूप से अमर हो जाता है।

जीव के अनन्त ज्ञान का प्रमाण यह है कि लोक और अलोक के सारे पदार्थ ज्ञेय हैं। ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो कभी किसी न किसी से जाना नहीं गया या कभी किसी न किसी से जाना न जायगा, क्योंकि जो कभी जाना ही न गया या जाना ही न जायगा उसकी सिद्धि ही नहीं हो सकती और इस कारण वह सत्तावान ही नहीं है। जीव एक से हैं। जो एक जीव जानता है वह दूसरा जीव भी जान सकता है, अतएव एक जीव उन सबको जान सकता है जो दूसरे सब जीव जानते हैं या जान सकते हैं। पदार्थ भी अनन्त हैं और जीव भी अनन्त हैं, इसलिए यह सिद्ध हुआ कि जीव में अनन्त ज्ञान है, इसका विकास ज्ञान की बाधक चीज़ों के दूर होने पर होता है; अर्थात् जब जीव शुद्ध अवस्था में होता है तब अनन्त ज्ञानमय होता है।

जब जीव अनन्तज्ञानवाला हुआ तब उसे दुःख क्यों होने लगा? दुःख अज्ञान से होता है, अनन्त ज्ञान के सदृश अनन्त सुख भी जीव का स्वभाव है। सभी लोग परमात्मा की अवस्था को सुख की अवस्था मानते हैं, थोड़ा ही विचार करने से यह विदित हो जायगा कि सुख और दुख जीव की चेतना की एक अवस्था है। सुख जीव में से ही प्रकट होता है और जीव में ही होता है। जीव के बाहर संसार में कहीं भी सुख का स्थान नहीं है। दुख का मूल कारण इच्छा है। जब एक इच्छा पूरी हो जाती है तब जीव को सुख का भास होता है। परन्तु ज्यों ही वह दूसरी इच्छा के पूरी करने की आकुलता में फँसता है, दुखी हो जाता है। इस तरह आकुल होने के कारण जीव दुखी होता है और जब उसकी कोई आकुलता मिट जाती है तब वह थोड़ी देर के लिए सुखी होता है और जब सब इच्छाओं का पूर्ण रीति से अभाव हो जाता है तब सब आकुलता मिट जाती है, अर्थात् जीव अनन्त सुख को प्राप्त करता है।

जीव के आकार पर विचार करने से यह मालूम होगा कि जीव का आकार शरीर के आकार से कम नहीं हो सकता। यदि हमारी अँगुली में पीड़ा हो तो हमें अँगुली में ही पीड़ा का अनुभव होता है अन्यत्र नहीं। ऊपर उल्लेख हो चुका है कि दुख और सुख जीव के ही परिणाम हैं और जीव में ही होते हैं। अगर जीव अँगुली में नहीं होता तो उसको अँगुली में पीड़ा का अनुभव न होता। यदि यह कहा जाय कि जीव हृदय में अणुप्रमाण है और जीव को अँगुली के दुख का ज्ञान नसों-द्वारा होता है, तो जीव को अँगुली के शारीरिक पीड़ा का हाल मालूम नहीं हो सकता, उसको सिर्फ़ मानसिक दुख हो सकता है। दूसरे यह हमारे अनुभव की बात है कि अँगुली में पीड़ा मालूम होती है और हृदय में नहीं, इसलिए जीव शरीर प्रमाण है। जो यह मानते हैं कि जीव विभु है और वह अलग अलग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है, केवल एक ब्रह्म है, उनका यह सिद्धान्त भी अनुभव के विरुद्ध है, क्योंकि अगर ऐसा होता तो मेरा दुख-सुख आपका दुख-सुख होता और मेरे आम खाने से आप सबको आम का मज़ा आ सकता। बस, यह सिद्ध हुआ कि जीव का आकार शरीर-प्रमाण है और इसमें एक सङ्कोच-विस्तार-शक्ति है जिससे यह शरीर के अनुरूप छोटा-बड़ा हो जाता है।

इस प्रकार विचार करने से यह सिद्ध हुआ कि संसार में जीव अशुद्ध अवस्था में होते हैं, अर्थात् वे बन्धन में होते हैं। वे प्रकटरूप में शरीर के बन्धन में होते हैं। सांसारिक जीवों को विशेष करके इन्द्रियज्ञान ही होता है-वे स्वयं अमूर्तिक हैं और शरीर मूर्तिक है। अपने साथ शरीर का घनिष्ट निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होने के कारण वे अपने में और शरीर में भिन्नता नहीं देखते, इस कारण वे निरन्तर अनेक इच्छाओं को लिये हुए इन्द्रियों के विषयों में तीव्र या मन्द कषाय-युक्त-रागादि-सहित भाव और क्रियायें करते रहते हैं। इस तरह अशुद्ध अर्थात् पुद्गल के प्रभाव में आया हुआ जीव पुद्गल पर कार्य्य करता है और पुद्गल जीव पर अपना प्रभाव डालता है। उन पुद्गल परमाणुओं को, जो जीव पर प्रभाव डालते हैं अर्थात् जीव को बांधे हुए होते हैं, जैन-सिद्धान्त में कर्म कहते हैं। कर्म का कुछ स्वरूप आगे स्पष्ट किया जायगा। इन कर्मों से छुटकारा पाने की ज़रूरत यह है कि इनकी कुसङ्गति में होकर जीव संसार में अनेक घोर दुःख भोगता है, आवागमन में मारा मारा फिरता है और निजआनन्दरूपी रस से वञ्चित रहता है।

जीवों की परिणति तीन तरह की होती है—एक शुभ अर्थात् अच्छे काम, दूसरी अशुभ अर्थात् बुरे काम, और तीसरी शुद्ध अर्थात् वैराग्यरूप। शुभ परिणति से पुण्य-बन्धन होता है, जिससे सांसारिक सुख की प्राप्ति होती है और अशुभ परिणति से पाप-बन्धन होता है, जिससे संसार में दुख की सामग्री मिलती है और दुख भोगना होता है। शुद्ध या वैराग्यवाली परिणति से जीव के पुण्य-पापरूपी बन्धन हलके होते होते दूर हो जाते हैं और जीव में शुद्ध परम सच्चिदानन्द अवस्था का आविर्भाव होता है।

इन शुभाशुभ परिणतियों या पुण्य-पापरूपी बन्धनों के कारण विशेष करके चार होते हैं, एक मिथ्यात्व अर्थात् मिथ्या श्रद्धा दूसरा अविरत अर्थात् हिंसा और इन्द्रिय तथा मन के विषयों में प्रवृत्ति, तीसरा तीव्र और तीव्रतर, मन्द और मन्दतर भेदवाले चार क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय और नोकषाय और चौथा मन, वचन, काय नामक तीन योग जो कर्मों के आगमन के मुख्य कारण हैं। यहां यह भी समझ लेना होगा कि लोभ अर्थात् इच्छा पाप (जिसका यहां बन्धन से मतलब है) का कारण है। लोभ के उदय से जीव प्रकृति से संयोग करता है और पुद्गल पदार्थों के न मिलने से दुखी होता है। अगर वे मिल जाते हैं तो उसे सुख का भास होता है, और उन पदार्थों पर अधिकार करके वह मान करता है, फिर उनको रखने या और इकट्ठे करने के लिए माया करता है। अगर कोई उनको उससे ले ले या उनके सङ्ग्रह करने में बाधा डाले या उसके मान की हानि करे तो वह क्रोध करता है; ये क्रियायें मानसिक भी होती हैं।

इस तरह कर्मों का आगमन होता है। परन्तु कर्म जीव पर तभी प्रबल होते हैं जब जीव इच्छा के वश में, दीनता की दशा में, अपने स्वाभाविक शुद्धोपयोग रूप निज बल को छोड़ कर निर्बल होता है।

ऐसे पुद्गल के अति सूक्ष्म परमाणु जीव के भावों और क्रियाओं के निमित्त से उसके बन्धन होते हैं। इन कर्मवर्गों में बन्धन के चार विशेषण होते हैं, एक प्रकृति-बन्धन (Quality of Karmic matter) जिसके अनुसार कर्मवर्गों में भिन्न भिन्न प्रकार की शक्तियां होती हैं, दूसरे प्रदेशबन्धन (Extent of Karmic matter) जिसके अनुसार आत्मप्रदेशों से कर्मप्रदेशों का सम्बन्ध होता है, तीसरे स्थितिबन्धन (Duration of Karmic matter) जिसके अनुसार कर्मवर्गों की सत्ता या उदयकाल का प्रमाण होता है, और चौथे अनुभागबन्धन (Quantity or Intensity of Karmic matter) जिसके अनुसार कर्मवर्गों में फलदायक शक्ति होती है।

प्रकृति और प्रदेशबन्धन योगों के अनुसार होते हैं और स्थिति और अनुभाग बन्धन कषायों के अनुसार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव के भावों की हालत योगों और कषायों का जैसा फल हो वैसी होती है।

कर्म आठ प्रकार के होते हैं—(१) ज्ञानावरणीय जो जीव के ज्ञान को ढकते हैं, (२) दर्शनावरणीय जो जीव के देखने की शक्ति को ढकते हैं, (३) मोहनीय जो आत्मा को भ्रम-रूप करते हैं, (४) अन्तराय जो वाञ्छित कार्य में विघ्न पहुँचाते हैं, (५) आयु जो किसी नियत समय तक एक गति में स्थिति रखते हैं, (६) नाम जो शरीरादिक बनाते हैं, (७) गोत्र जो कुलों की शुभाशुभ अवस्थाओं में कारण होते हैं और (८) वेदनीय जो सुखदुखरूप सामग्री के कारण होते हैं।

ऐसे द्रव्य-कर्मों से भाव-कर्म होते हैं और भाव-कर्मों से द्रव्य-कर्म बँधते हैं। इस प्रकार अनादि सन्तान-क्रम से पूर्वबद्ध कर्मों के फल से विकृत परिणामों को प्राप्त होकर जीव अपने ही अपराध से आप नवीन कर्मों का बन्धन प्रस्तुत करता है। इन्हीं नवीन बन्धन-कर्मों के उदय से पुनः इसके विकृत परिमाण होते हैं और उनसे पुनः पुनः नवीन नवीन कर्मों का बन्धन प्रस्तुत करता हुआ वह अनादि काल से इस संसार में पर्यटन करता है।

जीव सन्तान-क्रम से बीज-वृक्षवत् अनादि काल से अशुद्ध है। ऐसा नहीं है कि वह पहले शुद्ध था और पीछे अशुद्ध हो गया, क्योंकि यदि वह पहले शुद्ध होता तो बिना कारण बीच में अशुद्ध कैसे हो जाता और यदि बिना कारण ही बीच में अशुद्ध हो गया है तो इससे पहले अशुद्ध क्यों नहीं हो गया? विना कारण के कार्य नहीं हो सकता, यह नियम है, अतएव जीव अनादि से अशुद्ध है। इस पर शायद यह कहा जाय कि जो हमेशा से अशुद्ध है उसे हमेशा अशुद्ध रहना चाहिए और तब ये मोक्ष की बातें कैसी? इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि धान का बीज-वृक्ष-सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। परन्तु जब धान पर से छिलका उतर जाता है तब चावल अनेक प्रयत्न करने पर भी नहीं उगता, उसी प्रकार जीव के भी अनादि सन्तान-क्रम से विकृत भावों से कर्म-बन्धन और कर्म के उदय से विकृत भाव होते चले आये हैं। परन्तु जब छिलकारूपी विकृत भाव जुदा हो जाते हैं तब फिर चावलरूपी शुद्ध जीव को अङ्कुरोत्पत्तिरूपी कर्म-बन्धन नहीं होता।

बन्धन का स्वरूप और उससे छुटकारा होने की सम्भावना मालूम कर लेने के बाद यह भी जान लेना आवश्यक है कि छुटकारा किसी परमात्मा के कर्म-फल देने या पैग़म्बर के दिलाने से होता है या जीव ही अपने पुरुषार्थ से बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

यदि परमात्मा की ज़रूरत कर्म-फल देने के लिए है तो यह देखना चाहिए कि विषादिक भक्षण करने-वालों को मरणादिक फल बिना किसी फल-दाता के ही मिल जाता है। अगर यह कहा जाय कि विष खाने का फल भी ईश्वर ही देता है क्योंकि जीव कर्मों के करने में तो स्वतन्त्र है, परन्तु उनके फल भोगने में परतन्त्र है तो यह भी ठीक नहीं। किसी धनाढ्य ने ऐसा कर्म किया जिसका फल उसे उसका धनहरण होने से मिल सकता है। ईश्वर स्वयं तो उसका धन चुराने के लिए आता नहीं, किन्तु किसी चोर के द्वारा उसका धनहरण कराता है। ऐसी अवस्था में अर्थात् जब चोर ने एक धनाढ्य का धन चुराया तब इस क्रिया से धनाढ्य को पूर्वकृत कर्म का फल मिला और चोर ने नवीन कर्म किया। अब बताइए कि चोर ने धनाढ्य के धनहरण-रूप जो यह क्रिया की है उसे उसने स्वतन्त्रता से की है या ईश्वर की प्रेरणा से। यदि उसने उसे स्वतन्त्रता से की है और उसमें ईश्वर की कुछ भी प्रेरणा नहीं है, तो धनाढ्य को जो कर्म का फल मिला वह ईश्वर-कृत नहीं हुआ। और यदि ईश्वर की प्रेरणा से चोर ने धन चुराया है, तो चोर कर्म के करने में स्वतन्त्र नहीं रहा और वह निर्दोष है, पर उसी चोर को वही ईश्वर राजा के द्वारा चोरी का दण्ड दिलाता है। पहले तो उसने स्वयं उससे चोरी करवाई और फिर स्वयं ही उसको दण्ड दिलाता है, इससे ईश्वर के न्याय में बड़ा भारी बट्टा लगता है। संसार में जितने अनर्थ होते हैं उन सबका विधाता ईश्वर-ठहरेगा, परन्तु उन सब कर्मों का फल बेचारे निर्दोष जीवों को भोगना पड़ेगा। कैसा अच्छा न्याय है। अपराधी ईश्वर और दण्ड भोगें जीव!

जो लोग किसी पैग़म्बर को मुक्ति दिलानेवाला मानते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं वे यह कहते हैं कि जीव इतना पापी है कि वह अपने आप पाप से निवृत्त नहीं हो सकता है। यदि ऐसा हो तो एक श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पुरुष, जिसको ऐसे नजात दिलानेवाले पैग़म्बर के नाम-निशान का पता नहीं है मुक्ति से अथवा स्वर्ग-राज्य से निर्दोष वञ्चित रह जायगा। यह कितना बड़ा ज़ुल्म होगा। असल में इनके दार्शनिक यह नहीं समझे हुए हैं कि जीव अपने परिणामों के निमित्त से पूर्व बँधे कर्मों का भी उत्कर्षण, अपकर्षण, सङ्क्रमण आदि करता है और इससे उनकी शक्ति को अपने पुरुषार्थ से उपदेश आदि के निमित्त से धर्म-कार्य में प्रवृति करके हीन करता है।

ऊपर बताये हुए जिन कारणों से नवीन बन्धन होता है उनका अभाव होने से नवीन बन्धन का होना रुक जाता है और जो सञ्चित कर्म हैं वे अपनी स्थिति पूरी करके अपने आप समाप्त हो जाते हैं और उनको जीव तप आदि से भी छिपा देते हैं। जब नवीन कर्मों का आश्रव नहीं होगा और पूर्व-बद्ध कर्मों की निर्जरा हो जायगी तब आत्मा से सब कर्मों के पृथक् होने के कारण आत्मा शुद्ध हो जायगा और उसकी इस शुद्ध अवस्था को ही मोक्ष कहते हैं। मोक्ष में आत्मा से सब कर्म पृथक् हो गये, इसलिए कर्मजनित विकार भी आत्मा से दूर हो गये। ये विकार ही नवीन बन्धन के कारण हैं, इसलिए मोक्ष प्राप्त होने के बाद कर्म फिर मल से लिप्त नहीं होते, अर्थात् मुक्त जीव मुक्ति से वापस नहीं आ सकते। जिस मुक्ति से वापस आना पड़े वह मुक्ति कैसी? आवागमन तो बना ही रहा। जो लोग मुक्ति से वापस आना मानते हैं वे तो मुक्ति शब्द का प्रयोग करके संस्कृत-भाषा का भी खून करते हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर जीव को वेदोक्त ज्ञान-सहित वेदोक्त कर्मों के करने का फल भोगने के लिए मुक्ति देता है। और कर्म मर्यादा-सहित होते हैं, उनका मुक्ति-रूप फल भी मर्यादा-सहित होता है, अर्थात् जीव मुक्ति में अपने कर्मों का फल भोग कर कुछ थोड़े से बचे हुए कर्मों के कारण जन्म-मरण करता हुआ संसार में फिर पर्यटन करता है। उन्हें यह सोचना चाहिए कि मुक्ति तो जीव के सर्वथा कर्म-रहित होने को कहते हैं और कर्मों के फल तो संसार में आवागमन करके ही भोगे जाते हैं।

जैन-धर्म में यह माना जाता है कि इस मध्यलोक और सिद्ध-शिला (जहां मुक्त जीव रहते हैं) के बीच में १६ स्वर्ग हैं। उन स्वर्गों में जीव अपने पुण्योदय से दीर्घायु-वाली देव-गति पाकर देव अथवा देवाङ्गना बनकर सांसारिक सुख भोगते हैं, और आयु पूरी होने पर वहां से अपने कर्मानुसार भ्रमण करते हैं। शायद मुक्ति से लौट आना माननेवालों का मतलब ऊपर के स्वर्गों से ही हो और उनको मोक्ष के सच्चे स्वरूप का पता ही न हो।

जैन-धर्म में "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" कहा है अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की एकता ही मोक्ष-मार्ग है। जितने जितने अंशों में जीव की सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान और सच्चा चरित्र होता है उतने ही उतने अंशों में जीव मोक्ष की ओर झुकता है। सम्यग्दर्शन से मतलब ऊपर बताये हुए सात तत्त्वों की सच्ची भावना करना है। अर्थात् जीव, परमात्मा और जीव से परमात्मा होने के उपाय इत्यादि की सच्ची भावना करना, जीव और जीवादिक और जीव के मोक्ष होने के उपायों के ज्ञान को सम्यग्ज्ञान और उन उपायों में प्रवृत्तिरूप क्रियाओं को सम्यक्चारित्र कहते हैं। धर्म दो प्रकार का होता है एक गृहस्थों का दूसरा साधुओं का। गृहस्थ व्यवहार-धर्म का पालन करते हुए निश्चय मोक्षमार्ग की तैयारी करते हैं और साधु इच्छाओं पर सर्वथा विजय पाने के लिए ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहते हैं। धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ही मोक्ष के मुख्य कारण होते हैं और बाक़ी सब जीव को ध्यान में निश्चल बनाने के उपाय हैं।

ज्ञानावरण-कर्म के अभाव से अनन्तज्ञान, दर्शनावरण-कर्म के अभाव से अनन्त दर्शन, अन्तराय के अभाव से अनन्त वीर्य, दर्शन-मोहनीय के अभाव से शुद्ध सम्यक्त्व और चारित्र-मोहनीय के अभाव से शुद्ध चारित्र, और इन समस्त कर्मों के अभाव से अनन्त सुख होता है, मगर शेष के चार कर्मों के बाक़ी रहने से जीव ऐसी ही जीवन-मुक्त अवस्था में संसार में रहता है और इसी अवस्थावाले सर्वज्ञ वीतराग तीर्थङ्कर भगवान् से सांसारिक जीवों को सच्चे धर्म का उपदेश मिलता है, और यही सर्वज्ञोपदेशित सबका हितकारी जैन-धर्म है।

ऊपर के चार अघातीया—अर्थात् वेदनीय, गोत्र,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम और आयु-कर्मों की स्थिति पूरी होने पर जीव अपने ऊर्ध्वगमन-स्वभाव से जिस स्थान पर कर्मों से मुक्त होता है उस स्थान से सीधा पवन के झकोरों से रहित अग्नि की तरह ऊर्ध्वगमन करता है और जहाँ तक ऊपर बताये हुए गमन सहकारी धर्म-द्रव्य का सद्भाव है वहाँ तक वह गमन करता है। आगे धर्म-द्रव्य का अभाव होने से अलोकाकाश में उसका गमन नहीं होता। इस कारण समस्त मुक्त जीव लोक के शिखर पर विराजमान रहते हैं। यहाँ जिस शरीर से मुक्ति होती है उस शरीर से जीव का आकार किञ्चित् न्यून होता है।

यदि यहाँ कोई यह शङ्का करे कि जब जीव मोक्ष से लौट कर आते नहीं तथा नवीन जीव उत्पन्न होते नहीं और मुक्त होने का सिलसिला हमेशा जारी रहता है तो एक दिन संसार के सब जीव मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे और संसार शून्य हो जायगा। परन्तु जीव-राशि अक्षय, अनन्त है, जिस तरह आकाश-द्रव्य सर्वव्यापी अनन्त है। किसी एक दिशा में बिना मुड़े निरन्तर यदि कोई गमन करता चला जाय तो आकाश का अन्त कभी नहीं होता है, अन्यथा वह सर्वव्यापी नहीं हो सकता था। इसी प्रकार जीवराशि का अन्त नहीं होगा।

इस तरह मोक्ष में अनन्त शुद्ध जीव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त सुखवाले अनन्त परमात्म-रूप अपनी अपनी सत्ता में सच्चिदानन्द-स्वरूप होकर हमेशा परमानन्द में रहते हैं। आत्म-कल्याण के चाहनेवाले जीव ऐसे परमोत्कृष्ट वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा को अपना आदर्श बनाकर उसकी पूजा-स्तुति करके शुभ-कर्म उपार्जन करते हैं, शुद्धोपयोग में प्रवृत्त रहते हैं और क्रम से विशुद्ध होते होते अपने प्रयत्न से एक दिन स्वयं परमात्म-पद को प्राप्त कर लेते हैं।

जैन-धर्म के मोक्ष का यही सच्चा स्वरूप है। इसी का सर्वज्ञों ने उपदेश किया है और यह न्याय से सिद्ध है। यह आत्मधर्म किसी एक समाज या जाति की पैत्रिक सम्पत्ति नहीं है, बल्कि सब जीवों का हितकारी है।

रघुवरदयाल जैन

विविध विषय।

१—साहित्य और धर्म।

साहित्य पर धर्म का प्रभाव सदैव विद्यमान रहता है। साहित्य ही क्यों, भाषा भी धर्म के प्रभाव से बच नहीं सकती। साहित्य में जाति के उच्चतम भाव प्रकट होते हैं और भाषा ही उन भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। किसी भी जाति को लीजिए, उसके धार्मिक विश्वासों में ही उसकी श्रेष्ठ भावनायें रहती हैं। साहित्य के आदर्श हमारे धार्मिक आदर्श ही होते हैं। विचारणीय यह है कि साहित्य में जो चिरन्तन भाव पाया जाता है उसका उद्गम कहाँ से हुआ। हमारे धार्मिक विश्वासों में परिवर्तन होते रहते हैं। इसके सिवा भिन्न भिन्न धर्मों के भिन्न भिन्न आदर्श होते हैं। परन्तु धर्म का वह सनातन रूप कैसा है जो सभी देशों में और सभी युगों में विद्यमान रहता है। मनुष्य-समाज का विकास होता रहता है और उसके साथ धर्म और साहित्य का भी विकास होता है। इस विकास में धर्म का कौन सा सनातन-भाव सदैव विद्यमान रहता है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें पहले यह विचार करना चाहिए कि धर्म का विकास किस प्रकार होता है—

विकास का मूल सिद्धान्त यह है कि बाह्य अवस्था के साथ आभ्यन्तरिक अवस्था का सामञ्जस्य कर प्रकृति का क्रमशः विकास होता है। जितना ही यह सामञ्जस्य विस्तृत और पूर्ण होगा उतना ही प्रकृति का विकास होगा। संसार में उन्नति का मूल मन्त्र यही सामञ्जस्य-विधान की चेष्टा है। अन्तर्जगत् और बाह्यजगत्, इन दोनों का योग ही विश्व-प्रकृति है। उसमें ये दोनों ही सत्य हैं और दोनों एक दूसरे की अपेक्षा करते हैं। इन दोनों में जैसा सम्बन्ध स्थापित होता है उसी से विश्व में विकास और परिवर्तन होते हैं। प्रकृति के सभी कार्यों में सत्य की विद्यमानता है। विश्व के विकास में भी सत्य है। अभी तक संसार का जैसा विकास होता गया है वह अमूलक नहीं है। उच्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीच का भेद अवश्य है। बाह्यजगत् और अन्तर्जगत् में जो सम्बन्ध स्थापित होता है वह जितना ही पूर्ण होता है उतना ही उत्कृष्ट उसका विकास होता है। प्राणिजगत् में बाह्य अवस्था के लिए निकृष्ट जीवन के शरीर-यन्त्र जितने उपयोगी हैं उससे अधिक उपयोगी उत्कृष्ट जीवन के शरीर-यन्त्र हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध की पूर्णता के ऊपर ही विकास का उत्कर्ष और अपकर्ष निर्भर है। इसी नियम के अधीन जगत् में भिन्न भिन्न जीवों की उत्पत्ति, स्थिति और उन्नति होती है। शारीरिक, मानसिक और नैतिक, सभी अवस्थाओं के विकास में यह उपयोगिता न्यूनाधिक भाव से रहती है। बाह्य अवस्था हमारी प्रकृति पर सदैव अपना प्रभाव डालती है और उसी के अनुरूप हमें बनाना चाहती है। यह प्रभाव प्रकृति में जैसा प्रतिफलित होता है वैसा ही उसका विकास होता है। अतएव हमारी प्रकृति के विकास में बाह्य अवस्था प्रवर्तक के रूप में वर्तमान रहती है। इसी से बाह्य अवस्था पर ध्यान रखकर धर्म के भी विकास की व्याख्या करनी होगी। हम लोगों का उन्नत इन्द्रिय-समूह, उत्कृष्ट सहजबुद्धि, पवित्र नैतिकबल, ये सब साधारण जीवन-व्यापार के ही परिणाम हैं। यदि हम किसी परिणाम अथवा परिवर्तन को समझना चाहते हैं तो हमें बाह्य विषय के साथ उसका सम्बन्ध देखना होगा। इसी सम्बन्ध-सूत्र से विकास के समस्त रहस्य का उद्घाटन हो जाता है। जगत् के सभी परिणामों का मूल अतीत में विद्यमान है। अतीत के सम्बन्ध-बन्धन से ही जीवन का समस्त व्यापार शृङ्खला-बद्ध है। इस प्रकार हम सभी परिणामों में विकास की अनवच्छिन्न धारा—भूतकाल से वर्त्तमानकाल तक—देख सकते हैं। किसी भी परिणाम का यथार्थ रूप देखने के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना पड़ेगा—(१) उसके मूल का बाह्य विषय (२) उसके विकास की धारा (३) उसका वर्तमान रूप। इसी रीति से अनुसन्धान करके विद्वानों ने प्राकृतिक विज्ञान की रचना की है। परन्तु मनुष्य का जो नैतिक और धार्मिक विकास हुआ है उसके मूल में बाह्य विषय को उपलब्ध करना सहज नहीं है। इसी से इसके सम्बन्ध में कोई भी परिष्कृत सिद्धान्त निश्चित नहीं हुआ है। हर्बर्ट स्पेन्सर ने यह स्थिर किया है कि पृथ्वी पर ऐसा कोई भी विकास नहीं है जो बाह्य विषय-मूलक न हो। प्रकृति के किसी भी विभाग में ऐसा कोई भी परिणाम प्रत्यक्ष नहीं है जिसका अवलम्बन बाह्य विषय न हो। किन्तु नैतिक तथा धार्मिक भाव प्रत्यक्ष नहीं है। इसी से बाह्य विषय से उनका सम्बन्ध ढूँढ़ना कठिन हो जाता है। परन्तु प्रत्यक्ष विषय के दृष्टान्त से मूल का अनुसन्धान करने पर बाह्य विषय से उनका सम्बन्ध लक्षित होने लगता है।

आदि काल से मनुष्य-समाज में नीति और धर्म-ज्ञान का परिचय पाया जाता है। पृथ्वी पर ऐसी कोई असभ्य जाति नहीं हुई है जिसमें इन दोनों भावों का अङ्कुर नहीं देखा गया हो। अब विचारणीय यह है कि पहले किस बाह्य विषय के उपलक्ष्य से इन दोनों संस्कारों की उत्पत्ति हुई। नैतिक विकास का कारण है समाज की स्थिति और उन्नति। इन भावों का लोप हो जाने से समाज में उच्छृङ्खलता फैल जाती है। समाज के कल्याण के लिए मनुष्यों की कुछ मनोवृत्तियाँ अनुकूल हैं और कुछ प्रतिकूल, अनुकूल मनोवृत्तियों की स्फूर्ति से मनुष्य का नैतिक जीवन सङ्गठित होता है। एक कारण और भी है। वह है अपार्थिव-जगत् की भावना। सर्व-साधारण का यह विश्वास चिरन्तन है कि मानव-जीवन की समाप्ति यहीं नहीं होती। इह लोक के बाद भी कोई पर-लोक है। परलोक की इस धारणा से नैतिक-ज्ञान में एक परिपूर्णता आ गई है, परलोक का अस्तित्व न मानने से हमारा जीवन लक्ष्य-हीन प्रतीत होने लगता है। उस समय यह जान पड़ता है कि वर्तमान ही एक-मात्र जीवन का सार है और तब जीवन एक क्षण स्थायी, आकस्मिक पार्थिक व्यापार हो जाता है। परलोक का अस्तित्व मानने से कर्म-फल भी सम्भव होता है। उसी से मानव-जीवन नीति के उच्च शिखर की ओर क्रमशः आकर्षित होता जाता है। इस नीति-सोपान को आरोहण कर अन्त में ईश्वर के साथ योग स्थापित करना पड़ता है। सभी नीति के ऊपर ईश्वर का आसन है। नीति ईश्वर-प्रदत्त है। इसी से मनुष्य उसे नत-मस्तक हो स्वीकार कर लेता है। मतलब यह कि धर्म-ज्ञान के तीन उपादान हैं (१) ईश्वर का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास (२) अदृष्ट लोक का विश्वास (३) पाप-पुण्य की धारणा।

फिस्के नामक विद्वान् ने धर्म-विज्ञान के विकास को इस प्रकार वर्णन किया है—पृथ्वी के इतिहास में उस समय एक विशेष परिवर्तनकाल उपस्थित हुआ जब मानव-जीवन में प्रेम का आविर्भाव हुआ तब मनुष्य के विकासोन्मुख आत्मा में पाप और पुण्य की धारणा का उद्गम होने लगा। परिवार का सङ्गठन होने लगा। समाज-बन्धन प्रारम्भ हुआ। निराकार भावों ने साकार भाषा का रूप ग्रहण किया। इसी समय मनुष्य का विकास उच्चतम अवस्था की ओर अग्रसर होने लगा और शारीरिक विकास के साथ सभ्यता का संयोग हुआ। इसी के बाद हम मानवीय आत्मा को संसार के अस्थिर व्यापार को छोड़ अज्ञात रूप से एक नित्य सत्ता की ओर प्रयाण करते हुए देखते हैं। अदृष्ट जगत् से एकता स्थापित कर मनुष्य अपने अन्तर्गत भावों को निश्चित करने की चेष्टा करने लगा। इसमें सन्देह नहीं कि उसके मानसिक भाव पूर्णावस्था को नहीं पहुँच सके थे। उनकी अभिव्यक्ति में विलक्षणता भी थी। परन्तु मुख्य बात यह है कि जीवन के प्रारम्भकाल में ही मनुष्य एक अतीन्द्रिय नैतिक जगत् से अपना सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करने लगा। यह बात उपेक्षणीय नहीं है, क्योंकि मानव-समाज के विकास में इसी धार्मिक भावना का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। यदि जीवन के आदिकाल में इस धार्मिक भावना का उद्गम न होता तो मनुष्य-समाज किस दशा को पहुँच जाता, इसका अनुमान तक हम नहीं कर सकते। यह सभी को स्वीकार करना पड़ता है कि मानव-समाज के अस्तित्व का मुख्य कारण धर्म है। तभी तो कहा गया है—धारणाद्धर्म-मित्याहुः।

मानव-जाति के आदिकाल से ही उसके जीवन में ईश्वर का अस्तित्व, अदृष्ट जगत् की विद्यमानता और पाप-पुण्य की धारणा, ये तीनों भाव काम करने लगे थे। इनसे उसके जीवन का दुच्छेद्य-सम्बन्ध है। सभी धर्मों के इतिहास में यही बात पाई जाती है।

अब विचारणीय यह है कि क्या अदृष्ट जगत् की यह भावना सर्वथा निस्सार है। जब मानव-जीवन के प्रारम्भ काल से ही मानवीय आत्मा और अदृश्य जगत् में सम्बन्ध होगया है तब यह कहना कि इसमें सिर्फ़ ज्ञाता ही सत् है और ज्ञेय असत्, हमारी समझ में भ्रम है।

अब प्रश्न यह होता है कि ईश्वर प्रत्यक्ष तो है नहीं, फिर एक अप्रत्यक्ष के लिए मनुष्य साधना में प्रवृत्त क्यों होता है। जो अदृष्ट है, जो अनुभव-गम्य नहीं है उसके लिए वह इतना प्रयास क्यों स्वीकार करता है? अदृष्ट जगत् का अस्तित्व मान कर उसके लिए वह इतना व्याकुल क्यों होता है? विद्वानों का कथन है कि ससीम मनुष्य ने असीम को पाने के लिए जन्म लिया है। अपूर्ण मनुष्य पूर्ण पुरुष में ही जाकर सम्पूर्णता लाभ करता है। अनन्त की आकांक्षा स्वाभाविक है। मानवात्मा की स्वाभाविक गति अनन्त की ओर है। अनन्त की आकांक्षा से ही मनुष्य में धर्म-भाव की उत्पत्ति होती है। मेक्समूलर ने इसी सिद्धान्त की पुष्टि में लिखा है कि सभी धर्मों के मूल में अनन्त की धारणा विद्यमान है। जिस प्रकार 'ज्ञान' इन्द्रिय-ग्राह्य और सीमा-बद्ध पदार्थ के तत्त्वानुसन्धान में व्याप्त है उसी प्रकार 'विश्वास' असीम के अनुसन्धान में व्यस्त है। अस्तु।

अनन्त की इच्छा मानव-जीवन में बिलकुल प्रविष्ट हो गई है। दार्शनिकों का कथन है कि ज्ञान, प्रेम और इच्छा, इन्हीं से मनुष्य-जीवन है। इन तीनों की गति किस ओर है? क्या ज्ञान की कभी तृप्ति होती है! प्रतिदिन नये नये सत्यों का आविष्कार होता जा रहा है। तो भी विद्वान् सत्य के अनुसन्धान में संलग्न है। बात यह है कि सत्य का यथार्थ स्वरूप अनन्त ईश्वर में है। इसी से ज्ञान का अन्त नहीं है। यही बात प्रेम और इच्छा के विषय में कही जा सकती है। प्रेम और इच्छा की तृप्ति किसी असीम वस्तु से सम्भव नहीं है। यही कारण है कि मनुष्य अनन्त ईश्वर पर विश्वास करता चला आ रहा है।

अनन्तकाल से मनुष्य उसी अलक्षित जगत् रहस्या-गार को देखने के लिए व्याकुल हो रहा है। वह जानता है कि इह जगत ही उसका सर्वस्व नहीं है। यहीं उसकी जीवन-यात्रा की समाप्ति नहीं होती। परन्तु उसका मन्तव्य-स्थान कहाँ है, यह उसे ज्ञात हो या अज्ञात, वह आगे ही बढ़ता जायगा। उसका सारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयास उसी के लिए है। प्राचीन साहित्य की अलौकिक कल्पना में उसी अनन्त का आभास पाया जाता है। मध्य-कालीन साहित्य के भक्तिवाद में उसी का दिग्दर्शन हुआ है। आधुनिक साहित्य में भी उसी की ओर कवियों की प्रवृत्ति है। यही प्रयास उसके साहित्य में प्रकट होती है। यही उसकी कला में दर्शित होता है। विज्ञान और दर्शन-शास्त्र में उसी की चिन्ता रहती है। मैत्रेयी की तरह मनुष्य की आत्मा यही कहती रहती है—मैं उसे लेकर क्या करूँ जिससे मैं अमृत नहीं हो सकती। साहित्य का यही चिरन्तन भाव है। धर्म का यही सनातन भाव है। यहीं साहित्य और धर्म का सम्मिलन होता है।

२—साहित्य-निर्माण और मौलिकता।

हिन्दी-साहित्य में मौलिक ग्रन्थों और लेखों की बड़ी मांग है। कम से कम अनुवादों के प्रति लोगों की कुछ विरक्ति सी हो गई है। मौलिक साहित्य से जाति की कर्तृत्व-शक्ति प्रकट होती है। हम संसार से लेते हैं तो हमें भी उसे कुछ देना चाहिए। यह इच्छा स्वाभाविक है। हिन्दी-साहित्य में प्राचीन कवियों के ऐसे ग्रन्थ विद्य-मान हैं जिन्हें वह सगर्व संसार को दे सकता है। आधु-निक साहित्य में अभी ऐसे ग्रन्थों का अभाव है। इस अभाव का कारण है कर्तृत्व-शक्ति का अभाव। इस शक्ति के विकास के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने साहित्य में यथेष्ट ज्ञान-सम्पत्ति सञ्चित करें। जो वृक्ष पृथ्वी से रस ग्रहण करता है वही समय आने पर यथेष्ट फल देता है। कोई वृक्ष अपने आप ही रस नहीं प्राप्त करता। हिन्दी में इतिहास, विज्ञान, राजनीति, दर्शन-शास्त्र, समाज-शास्त्र आदि आवश्यक विषयों की अभी यथेष्ट प्रारम्भिक पुस्तकें नहीं बनी हैं। अतएव इन विषयों में अभी मौलिक ग्रन्थों की आशा रखना दुराशा-मात्र है, जब विद्वान् किसी विषय का यथेष्ट अध्ययन कर लेता है तब वह दूसरों को शिक्षा देने में समर्थ होता है। परन्तु हिन्दी में साहित्य के कितने ही ऐसे ठेकेदार हैं जिन्होंने समस्त ज्ञान का ठेका ले लिया है। वे राजनीति, दर्शन, वैद्यक, नाटक, कविता सभी लिख सकते हैं। हिन्दी में सबसे अधिक आवश्यक है ज्ञान का प्रचार करना और सुरुचि की वृद्धि करना। हमारा विश्वास है कि मौलिकता के नाम से गन्दी किताबों को और निस्सार लेखों को पाठकों के गले में मढ़ना श्रेयस्कर नहीं है। उस दिन हमने एक नाटक पढ़ा। प्रस्तावना में लेखक ने कहलाया है कि यह नाटक असाधारण है। इससे आनन्द का सञ्चार, समाज का सुधार, देश का उपकार, कुरीतियों का संहार तथा नवीन भावों का प्रचार होने की सम्भावना है। हमारी समझ में इसमें एक भी ऐसा मुख्य पात्र नहीं है जो काशी के किसी भी उपन्यास के पात्रों से विशेषता रखता हो। इसमें नाटककार की ऐसी कोई भी विशेषता नहीं है जिससे यह कहा जा सके कि उनमें कर्तृत्व-शक्ति है। तो भी इसके प्रकाशक हिन्दी का भाण्डार भरने के लिए इसे लेकर दौड़ पड़े हैं। वे अभी तक राजनैतिक और धार्मिक किताबें प्रकाशित करते थे, परन्तु इस नई चीज़ ने उन्हें विवश कर दिया और वे हिन्दी का अभाव दूर करने के लिए उद्यत हो गये। ऐसे मौलिक नाटकों से विशेष लाभ नहीं होने का। अच्छा यह होगा कि अन्य भाषाओं के प्रसिद्ध नाटकों और उपन्यासों के अनुवाद किये जायँ। उनसे ज्ञान की वृद्धि होगी और सुरुचि का प्रचार होगा। जब लोग जानने लगेंगे कि सत्साहित्य क्या है तब ऐसे निकम्मे नाटकों को कोई प्रकाशित करने का साहस भी नहीं करेगा। साहित्य में प्रतिभा टके सेर नहीं बिकती है। सभी देशों के साहित्य में प्रतिभाशाली लेखक दो ही चार जन्म लेते हैं। यदि हम अपने साहित्य की श्रीवृद्धि करना चाहते हैं तो हमें इन सभी प्रतिभाशाली लेखकों को अपनाना होगा। दान्ते की जन्मभूमि इटली में तुलसीदास का रामचरितमानस चला गया, परन्तु हमारे हिन्दी-साहित्य में अभी एक भी विदेशी विश्व-कवि की रचना विद्यमान नहीं है। सड़े-गले मौलिक नामधारी ग्रन्थों को लेकर सन्तोष प्रकट करना सचमुच आश्चर्य की बात है। परन्तु जब कोई उन्हीं ग्रन्थों का गर्व करता है तब उसकी सुबुद्धि पर दया आती है।

हिन्दी के कुछ मौलिक नामधारी पुस्तकों की एक विशेषता और है। कुछ समय से हिन्दी के पुस्तक-प्रकाशकों ने विद्वानों से उनकी प्रस्तावना लिखाना प्रारम्भ किया है। अधिकांश प्रस्तावना-लेखकों को समय की इतनी सङ्कीर्णता रहती है कि वे किताब को पढ़ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं सकते। तो भी वे प्रस्तावना में अतिशयोक्ति का इतना अधिक आश्रय लेते हैं कि उनके सामने हिन्दी के विज्ञापन भी थोथे जँचते हैं। एक ही विषय के कई ग्रन्थ निकलते हैं। परन्तु सभी के लेखक यह कहते हैं कि हमी ने हिन्दी का अभाव दूर करने का बीड़ा उठाया। यह हर्ष की बात अवश्य है कि हिन्दी के सब लेखक हिन्दी की दयनीय दशा से द्रवित हो अपनी लेखनी उठाते हैं। कीर्ति अथवा धन की इच्छा उनको छू तक नहीं गई है। कुछ लेखकों की यह परोपकार-वृत्ति और भी बढ़ी-चढ़ी है। वे अपने विषय से अनभिज्ञ होने पर भी ग्रन्थ-निर्माण का परिश्रम-भार उठाते हैं, क्योंकि वे देखते हैं कि जो लोग समर्थ हैं उनकी प्रवृत्ति इधर है ही नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि अपने इस निष्काम व्रत के कारण उनको अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है। विषय की अनभिज्ञता को दूर करने के लिए उन्हें पहले कई ग्रन्थों का पारायण करना पड़ता है। तब कहीं वे हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिए उस विषय का ज्ञान सुलभ कर सकते हैं। ऐसे लेखकों को सबसे बड़ा दुःख यह देख कर होता है कि उनके पहले जिन लोगों ने उसी विषय पर पुस्तक लिखने का प्रयास किया उनकी रचनायें हिन्दी-साहित्य का अभाव नहीं दूर कर सकीं। तो भी उनको सन्तोष यह है कि उनकी कृति से हिन्दी का रिक्त भाण्डार पूर्ण तो होगा।

हम मौलिक ग्रन्थ लिखने की चेष्टा करनेवाले लेखकों के विरोधी नहीं हैं। हमारा विश्वास है कि साहित्य की उन्नति के लिए जो कुछ भी किया जाता है वह व्यर्थ नहीं है। हिन्दी के जो प्रतिभाशाली लेखक हैं उनकी मौलिक रचनाओं का हमें गर्व है। पर मौलिकता का दावा करने से ही सभी ग्रन्थ मौलिक नहीं हो जाते। और न मौलिक होने से ही ग्रन्थ साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाता है। यही कारण है कि मौलिक काव्य, नाटक या उपन्यास के प्रकाशन से हमें जितना हर्ष होता है उतना ही किसी श्रेष्ठ ग्रन्थ के अच्छे अनुवाद से होता है। अभी हाल में हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी ने दो श्रेष्ठ उपन्यासों का अनुवाद प्रकाशित किया है। एक का नाम चरित्र-हीन है और दूसरे का रागिणी। इन्हें पढ़ कर हमें प्रसन्नता हुई। एक बात देख कर हमें अवश्य दुःख हुआ। वह यह कि एक मराठी उपन्यास का अनुवाद होने पर भी हमने रागिणी में एक भी पात्र को मरहठे के रूप में नहीं देखा। हमें ऐसा जान पड़ता है कि हिन्दी के अधिकांश अनुवादकों की प्रथा का अनुसरण कर रागिणी के अनुवादक महोदय ने भी पात्रों के नाम बदल दिये। यदि हमारी यह सम्भावना सच है तो हम अनुवादक के इस कार्य का समर्थन नहीं कर सकते। उपन्यासों से सबसे बड़ा लाभ यह है कि उनमें हम समाज का जीवित चित्र देख सकते हैं। जब तक हमें महाराष्ट्र-जीवन का ज्ञान नहीं है तब तक उससे हमारी अधिक सहानुभूति भी नहीं हो सकती। वर्तमान राष्ट्रीययुग में तो इस बात की विशेष आवश्यकता है कि हम भारतवर्ष की सभी जातियों से परिचित हो जायँ। यह काम उपन्यास से क्यों न लिया जाय? जिन लोगों की यह धारणा है कि विजातीय समाज का चित्र देने से उपन्यास कम मनोरञ्जक हो जायगा उन्हें अब अपनी यह धारणा दूर कर देनी चाहिए। हाल में विक्टर ह्यूगो और अनाटोल फ्रांस के उपन्यासों के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। जिन लोगों ने उन्हें पढ़ा होगा उनकी यही राय होगी कि फ्रांस का चित्र देने से ही उपन्यास मनोरञ्जक हुआ है। यदि उस ग्रन्थ के अनुवादक चाहते तो वे भी उसे भारतीय जामा पहना सकते थे। परन्तु ऐसा करने से ग्रन्थ का महत्त्व नष्ट हो जाता। चरित्र-हीन में बङ्गाल का सामाजिक जीवन अङ्कित है। यदि उसके भी अनुवादक उसको बदल देते तो क्या इससे उस ग्रन्थ का महत्त्व बढ़ जाता? आशा है, हिन्दी के विद्वान् अनुवादक इस पर विचार करेंगे।

३—इलाहाबाद के विश्वविद्यालय में वायसराय।

नवम्बर की पहली तारीख़ को वायसराय महोदय इलाहाबाद में पधारे थे। विभिन्न सरकारी संस्थाओं के निरीक्षण के सिलसिले में आप यूनीवर्सिटी में भी गये थे। इस अवसर पर इन प्रान्तों के गवर्नर सर विलियम मारिस ने यूनीवर्सिटी के चैन्सलर की हैसियत से जो एडरेस दिया था उसमें आपने कहा है—

इस यूनीवर्सिटी को स्थापित हुए छत्तीस वर्ष बीत गये। विस्तृत बौद्धिक क्षेत्र की आवश्यकताओं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था करना ही इसका आदर्श रहा है। और सदा अपने आदर्श के अनुरूप रह कर इसने अपना उपर्युक्त

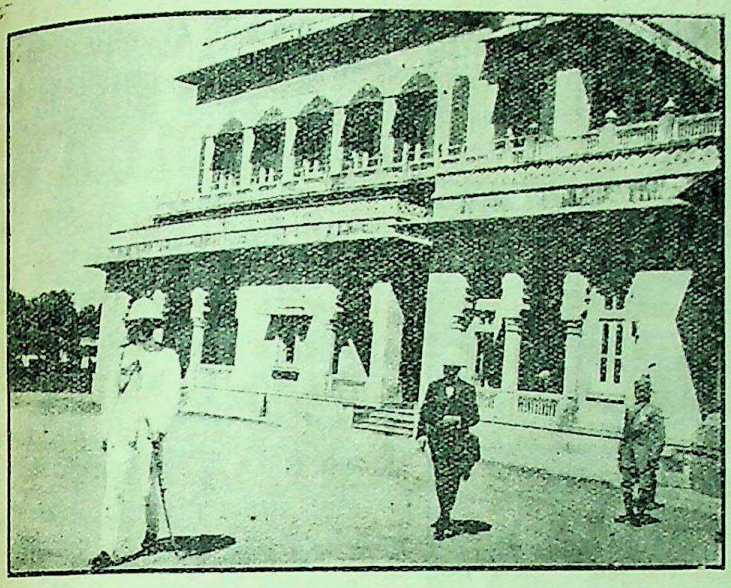

इलाहाबाद के विश्वविद्यालय में वायसराय।

समय व्यतीत किया है। इसी केन्द्र से बनारस, अलीगढ़ और लखनऊ की नई यूनीवर्सिटियाँ निकली हैं। इसकी जड़ राजपूताना और मध्यप्रदेश होकर बरार तक जा पहुँची है। इसने एक विस्तृत भू-भाग की बहुत अधिक समय तक सफलतापूर्वक सेवा की है, जिसका हमें गर्व है और जिसे हम लोगों से पृथक् होते हुए अपने विश्वविद्यालय के स्थापन-समारोह के समय मध्यप्रदेश ने भी उदारतापूर्वक स्वीकार किया है।

हमारी यूनीवर्सिटी का पुनःसङ्गठन हाल में ही हुआ है। इस प्रान्त ने विद्यालय-सम्बन्धी क्षेत्र में जो परिवर्तन और सुधार कर गुज़रने में अग्रभाग लिया है उनका महत्त्व अभी से निर्धारित नहीं किया जा सकता। हम लोग अभी परिवर्तन के युग में हैं। यदि हमें प्राचीन परम्पराओं से लाभ है, तो हम कुछ उन्हीं के कारण प्राचीन विश्वासों के भारी बोझ के भी नीचे दबे हुए हैं। हमें नई परम्पराओं की रचना करनी है, परन्तु इस कार्य में हमें उन प्रसिद्ध व्यक्तियों की स्मृति से बल मिलता है जिन्होंने भूतकाल में इस यूनीवर्सिटी की तन, मन से सेवा की है, जिन्होंने अपने पाण्डित्य से अपनी इस मातृरूप विद्यापीठ की कीर्ति को बढ़ाया है, जिनका जीवन विश्वविद्यालय की सजीवता का एक अचूक साधन रहा है। यही किसी विश्वविद्यालय के सच्चे लक्षण हैं।

एडरेस के उत्तर में हिज़ एक्सेलेंसी लार्ड रीडिंग ने जो व्याख्यान दिया उसमें एक जगह आपने कहा है—

एक प्राच्य-साहित्य-ग्रन्थ की अरबी भूमिका में मैंने एक बार एक वाक्य पढ़ा था। मेरी समझ में उस वाक्य से यूनीवर्सिटी के प्रभाव और उसकी शिक्षा का असली रहस्य खुल जाता है। वह

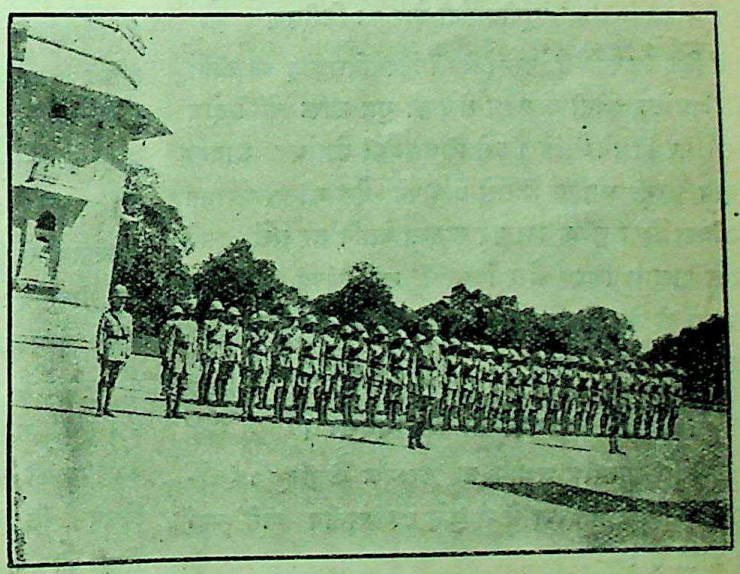

यूनीवर्सिटी-कोर।

वाक्य परमेश्वर के प्रति प्रारम्भिक वन्दना था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो इस प्रकार की गई थीः—"उस परमेश्वर को धन्यवाद है जिसने अर्थ का मोती पाण्डित्य के समुद्र में छिपा दिया है।" अतएव उस मोती को प्राप्त करने का गुप्त भेद जानने के लिए हमें आदर्श यूनीवर्सिटी की खोज करनी चाहिए। शिक्षा और ज्ञान सभी यूनीवर्सिटियों में मिल सकता है। शिक्षा-प्रदान करते रहना उनका

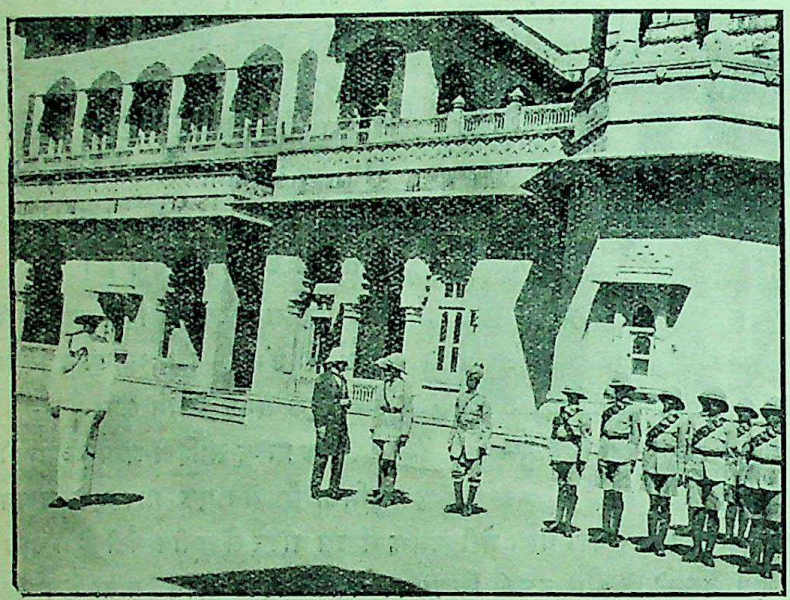

यूनीवर्सिटी-कोर का निरीक्षण।

प्रति दिन का कार्य है, परन्तु किसी विश्वविद्यालय की कीर्ति की बात उस मोती के खोज लेने की गुप्त शक्ति के प्रदान करने पर ही निर्भर है। उसे शिक्षार्थियों को वह भावना प्रदान करनी चाहिए जिससे वे अपने देश की परम्परागत विशेषता को अक्षुण्ण रख कर स्वतन्त्र उन्नति कर सकें। इसके बिना पाश्चात्य शिक्षा और विचारों का प्राच्य की प्राचीन सभ्यता से मेल केवल दुःख और निराशा ही उत्पन्न करने का कारण हो सकता है।

४—लखनऊ का अजायबघर।

संयुक्त-प्रान्तीय अजायबघर लखनऊ के सन् १९२२-२३ के वार्षिक विवरण में से कुछ उल्लेखनीय बातें यहाँ दी जाती हैं :—

प्रचार कार्य—इस वर्ष व्यवस्थापक ने अपने निरीक्षण में भारतवर्षीय अजायबघर, (कलकत्ता) के लिए मथुरा की जैन-मूर्तियों के आठ साँचे और सात मिट्टी की प्रतिमूर्तियाँ तैयार करवाईं और इनके स्थान में वहाँ से कुछ अति प्राचीन और महत्त्वपूर्ण मूर्तियों के लाने का उद्योग किया। अजायबघर के प्रति लोगों का अनुराग बढ़ाने के लिए समय समय पर कला, ज्योतिष, नैसर्गिक इतिहास एवं अन्य वैज्ञानिक चित्रों के संग्रह उन स्थानीय स्कूलों और कालेजों को दिये गये जो मैजिक लालटेन के द्वारा अपने विद्यार्थियों को व्याख्यान देना चाहते थे। साथ ही मैजिक लालटेन के चित्रों की एक सूची भी प्रकाशित कर दी गई है। यह आशा की जाती है कि इस प्रकार की सहायता से अजायबघर छात्र-समाज में अधिकाधिक प्रसिद्ध होता जायगा। प्राचीन राजाओं के इलेक्ट्रो-टाइप किये हुए ऐतिहासिक सिक्के भी विद्यार्थियों को दिखाने के लिए बराबर दिये जाते रहे। समय समय पर व्यवस्थापक ने स्वयं अजायबघर की वस्तुएँ विद्यार्थी को दिखलाई हैं और कभी कभी अजायबघर में ही विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को व्याख्यान दिलाने का प्रबन्ध किया गया है। उदाहरण के लिए लखनऊ-विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास के प्रोफ़ेसर ने अजायबघर में दो महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिये हैं। उस समय व्यवस्थापक ने विद्यार्थियों को असली सिक्के भी दिखलाये थे। इन व्याख्यानों से विद्यार्थियों को बड़ा लाभ हुआ था। इस वर्ष भारतीय प्राचीन-मुद्रान्वेषक समिति के प्रस्तावानुसार टेलर पुस्तकालय, जिसमें प्राचीन मुद्राओं और सिक्कों के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें हैं, अजायबघर में आगया है। इसके आ जाने से अजायबघर में प्राचीन सिक्कों के अध्ययन की बड़ी भारी सुविधा हो गई है। और हर्ष का विषय है कि इसका श्रीगणेश भी हो गया है। जौनपुर के सिक्कों की एक सूची तैयार की गई है, द्वितीय चन्द्रगुप्त के स्वर्ण-मुद्राओं का भी अध्ययन किया गया है, दिल्ली के सुलतानों और मुग़ल बादशाहों के सिक्कों की भी सूचियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार हो गई हैं। इसी प्रकार अजायबघर में सङ्गृहीत बौद्धकालीन दर्शनीय वस्तुओं की सूची भी तैयार हो गई है।

पुरातत्त्व-विभाग—इस वर्ष कुल चौदह समूचे और खण्डित मूर्तियाँ, पाँच खुदे हुए पत्थरों के टुकड़े, तीन धातु-विग्रह और चार प्राचीन पत्र अजायबघर में सङ्गृहीत हुए हैं। सबसे सुन्दर मूर्ति मद्रास-प्रान्त के अमरावती नगर से प्राप्त हुई है। यह सङ्गमरमर की बनी है। इसके दो भाग हैं, ऊपरी भाग में धर्म-चक्र की और नीचे के भाग में बोधी वृक्ष की मूर्ति है। महत्त्व में दूसरा नम्बर ब्राह्मी-लिपि में लिखी हुई तीन शिलाओं का है जो इलाहाबाद ज़िले के कोसम और मुसरफा ग्राम में मिले हैं। काले पत्थर पर खुदा हुआ एक और लेख मिला है जो लिपि-विज्ञान के आधार पर पठानकाल का मालूम होता है। उसमें ख़ान—ए—आज़म और ख़ाक़ान—ए—मुअज़्ज़म आदि शब्द खुदे हैं, किन्तु इस पर कोई तिथि नहीं है। धातु-विग्रहों में अवलोकितेश्वर की एक सुन्दर पीतल की मूर्ति है। उसमें अवलोकितेश्वर खड़े हुए हैं, इनके ११ शिर हैं और आठ हाथ हैं, सबसे ऊपर के दोनों हाथ इस प्रकार जुड़े हुए हैं मानो ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं, बीच के दोनों हाथों में तीर और मालाएँ हैं, शेष तीन बाएँ हाथों में कलश, धनुष और कमल का फूल है। षट् भुजाओंवाली वसुन्धरा की ताँबे की मूर्ति भी दर्शनीय है। देवी कमलासन पर बैठी हुई हैं, दाहना पैर लटक रहा है, बाँया पैर कमलासन पर रखी हुई चौकी से टिका हुआ है। सबसे नीचे के बाँयें हाथ में कलश है, उससे ऊपर के हाथ में धान्यमंजरी है—यह उनकी उदारता का चिह्न है—और तीसरे हाथ में प्रेत परिमिता नामक पुस्तक है। सबसे नीचे के दाहने हाथ में कमल का फूल है, दूसरे हाथ में एक मणि है, तीसरे हाथ से मानो शिक्षा दे रही हैं। इस पर कुछ वाक्य भी अङ्कित हैं। जो प्राचीन पत्र मिले हैं उनमें से एक तो मुग़ल सम्राट् औरंगज़ेब का फ़रमान है जिस पर १०७९ हिजरी संवत् दिया हुआ है और दूसरा मुहम्मदशाह का है जिस पर ११३८ संवत् हिजरी लिखा हुआ है।

मुद्रा-विभाग—गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी मुद्रा-सङ्ग्रह में अच्छी वृद्धि हुई है; ७ सोने के, ७१ चाँदी के और ५२ ताँबे के सिक्के प्राप्त हुए हैं। इनमें से ४७ तो परिवर्तन द्वारा प्राप्त हुए हैं, ६ मोल लिये गये हैं, ७७ लोगों ने या संस्थाओं ने अजायबघर को भेंट किये हैं। सोने के सिक्कों में एक अबूबकर शाह की मुहर है, शम्सुद्दीन के चाँदी के सिक्के की नक़ल के बदले में मिली है, एक अति प्राचीन श्रीकार्तवीर्य की मुहर है, चार शाहजहाँ के समय की मुहरें हैं, एक द्वितीय मुहम्मद अकबर के महेन्द्रपुर की टकसाल की मुहर है। चाँदी के सिक्कों में एक मुहम्मद बिन फ़िरोज़ का रुपया है, २३ बङ्गाल के सुलतानों के, ३२ मुग़ल बादशाहों के और १४ फुटकर रुपये हैं। बङ्गाल के रुपयों में तीन बिलकुल नये नमूने हैं, अधिकतर शम्सुद्दीन, इलियास शाह, सिकन्दर शाह, बिन इलियास शाह, ग़यासुद्दीन, आज़म शाह, सैफ़ुद्दीन, हमज़ाशाह, शहाबुद्दीन, बयाज़ीद शाह, और जलालुद्दीन मुहम्मदशाह के सिक्के हैं। मुग़ल बादशाहों के सिक्कों में शाहजहाँ, औरङ्गज़ेब, शाहआलम बहादुर, फ़रुख़सियर, मुहम्मदशाह, अहमदशाह बहादुर, द्वितीय शाहआलम, और द्वितीय मुहम्मद अकबर के सिक्के सम्मिलित हैं। इस वर्ष १० सिक्कों की नक़ल ढाका विश्वविद्यालय के हाथ बेंची गईं। मुद्रा-सङ्ग्रहालय की विस्तृत सूची परिचय-सहित छपाई जा रही है, इससे सिक्कों के अध्ययन में बड़ी सहायता मिलेगी।

प्राकृतिक-विभाग—सबसे बढ़िया सङ्ग्रह इस वर्ष बैकल नामक पक्षी का हुआ है, यह अजायब-घर ने अपने कोष से मोल लिया है। फ़रवरी सन् २३ को मिस्टर जे० एम० टर्नर ने शाहजहाँपुर के मुतयघाट पर इसको मारा था। वास्तव में यह एक चीनी बतख़ है जो भारतवर्ष में बहुत कम पाई जाती है। स्टुअर्ट बेकर ने भी अपनी 'भारतवर्ष, लङ्का और ब्रह्मा की शिकारी चिड़ियाँ' नामक पुस्तक में भारतवर्ष में इसके बहुत कम मिलने की बात लिखी है। गाज़ीपुर अफ़ीम फैक्टरी के जिल ने गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी ३१ चिड़ियों का संग्रह भेजा है। इस वर्ष अमरीकन म्यूज़ियम के कुशल कारीगर पक्षियों के नमूने सङ्ग्रह करने के लिए इस प्रान्त में आये थे। उन कारीगरों के साथ हमारे कारीगरों ने बराबर तीन महीने तक काम किया है। इससे इन लोगों को बड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता मिली है। इस वर्ष भी रुपयों की कमी के कारण चिड़ियों की विस्तृत सूची तैयार नहीं हो सकी है।

चित्रालय—लार्ड कर्ज़न ने उदारता-पूर्वक ३३ सुन्दर चित्र अजायबघर को भेंट किये हैं, इनमें अधिकतर उत्तर-भारत के मनोहर दृश्यों और प्राचीन इमारतों के चित्र हैं। ये अच्छी तरह चौखटे में जड़ दिये गये हैं, और एक पीतल के टुकड़े पर दाता का नाम अङ्कित कर दिया गया है। एक चित्र में राजकुमार मुराद शिकारी के रूप में चित्रित किया गया है। दो चित्र अवध के वज़ीरों के हैं। एक अवध के प्रथम बादशाह ग़यासुद्दीन हैदर का मन्त्री था और दूसरे का नाम अमीनुद्दौला है जो अवध के चौथे बादशाह अमजद अलीशाह का मन्त्री था।

सामाजिक विभाग—इस विभाग की ओर जनता का बड़ा उत्साह रहता है, क्योंकि यहाँ पर भिन्न भिन्न जातियों के रीति-रस्मों का अच्छा दिग्दर्शन होता है। इस वर्ष यह विभाग दूसरे प्रकार से सजाया गया है। हस्त-लिखित सूचक-पत्रों के स्थान में छपे हुए सूचक-पत्र लगा दिये गये हैं। दो और दर्शनीय चित्रों का सङ्ग्रह हुआ है। मद्रास सरकार के अजायबघर से दो लकड़ी की मूर्तियाँ मँगाई गई हैं। यह एक विवाहित स्त्री-पुरुष का जोड़ा है। कुछ देवी-देवताओं की लकड़ी की मूर्तियाँ भी सङ्गृहीत हुई हैं, इनमें कई एक विष्णु के अवतारों की मूर्तियाँ हैं। प्रान्तीय सरकार ने उदारतापूर्वक संयुक्त-प्रान्त और हिमालय की तराई में बोली जानेवाली ३३ भिन्न भिन्न भाषाओं के ग्रामोफ़ोन रिकर्ड अजायबघर को प्रदान किये हैं। जो संस्थाएँ पहाड़ी जातियों के अध्ययन के लिए इनको लेना चाहें, उनको सहर्ष ये उधार दिये जा सकते हैं। अवध में जो तोप मिली थी, ठीक उसी प्रकार की किन्तु छोटी छोटी दो तोपें आज़मगढ़ ज़िले में मिली हैं। मिस्टर यूसुफ़ हुसैन बैरिस्टर ने उर्दू और फ़ारसी की ६ हस्त-लिखित पुस्तकें अजायबघर को प्रदान की हैं। इनमें से तीन तो भले प्रकार सुरक्षित की जा सकती हैं। ये ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। एक तो अवध का ही इतिहास है। इसमें लखनऊ शहर की प्रसिद्ध प्रसिद्ध इमारतों के बनने की तिथियाँ दी हुई हैं।

साधारण—इस वर्ष व्यवस्थापक ने इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर और बाँदा ज़िले में दर्शनीय वस्तुओं का सङ्ग्रह करने के लिए दो बार दौरा किया। कालिंजर के क़िले में जो चन्देली राजाओं की राजधानी थी, बड़ी सुन्दर सुन्दर मूर्तियाँ अस्त-व्यस्त दशा में पड़ी हुई हैं। उन्होंने इनके आठ फ़ोटो लिये और अङ्कित शिलालेखों के पढ़ने का भी उद्योग किया। उन्होंने मध्यकालीन युग की दो सुन्दर मूर्तियों को लखनऊ-अजायबघर में लाने का प्रस्ताव किया किन्तु वहाँ के पुजारियों और स्थानीय लोगों ने अपने सहज स्वभावानुसार इसका विरोध किया।

उपर्युक्त विवरण से यह कहा जा सकता है कि लखनऊ के अजायबघर की उन्नति सन्तोष-प्रद है।

५—विश्व-भाषा।

भाषा से ही मनुष्यों का समाज सङ्गठित होता है और भाषा के ही व्यवधान से मनुष्य-जाति कितने ही भागों में विभक्त हो जाती है। राष्ट्र-निर्माण में भाषा एक मुख्य साधन है। यही कारण है कि भारतवर्ष में राष्ट्रीयता के प्रचारक एक राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता पर ज़ोर दे रहे हैं। यदि हमारे देश के सभी विद्वान् एक ऐसी भाषा स्वीकार करलें जिसमें हमारे सभी राष्ट्रीय भाव व्यक्त हो सकें तो हमारे देश में प्रान्तीयता का भाव बहुत कुछ नष्ट हो जाय और देश एक राष्ट्र के रूप में परिणत हो जाय। अधिकांश विद्वानों ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा स्वीकार कर लिया है। कुछ लोग उसके विरोधी भी हैं। परन्तु ऐसे विरोधियों की संख्या घट रही है। हमारे देश में अभी राष्ट्रीय भाषा की समस्या हल नहीं हुई और योरप वाले एक विश्व-भाषा की कल्पना कर रहे हैं। उनका कथन है कि भिन्न भिन्न प्रान्तों को एक राष्ट्र का रूप देने के लिए राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता है। उसी प्रकार यदि हम भिन्न भिन्न राष्ट्रों को एक करना चाहें तो क्या हमें एक विश्व-भाषा का निर्माण नहीं करना पड़ेगा? कुछ समय से योरप में राष्ट्रीयता का भाव इतना सङ्कुचित हो गया है कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की अवनति से अपनी उन्नति समझता है। पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के कारण उनमें विरोध का भाव अत्यन्त उग्र हो गया है। इसी लिए वहाँ के श्रेष्ठ विद्वान् विश्व-मैत्री का प्रचार करने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे विद्वानों में फ़्रांस के रोमन रोलैंड का नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध है। उन्होंने विश्व-भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। नीचे उसी का मर्म दिया जाता है।

मनुष्य-जाति की दो मुख्य स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। एक आत्मोन्नति की और दूसरी आत्मरक्षा की। इन्हीं दो प्रवृत्तियों के द्वन्द्व-युद्ध से मनुष्य-जाति का इतिहास बना है। जीवन की स्वच्छन्द गति के लिए यह आवश्यक है कि ये दोनों साम्यावस्था को प्राप्त हों। मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह ग्रहण करने की इच्छा करता रहता है। ग्रहण करने के बाद वह उसकी रक्षा के लिए चेष्टा करता रहता है। इसी प्रवृत्ति के वशीभूत हो वह जिसे ग्रहण करता है उसे वह दृढ़तापूर्वक पकड़ लेता है और उसे आत्मसात् कर डालता है। वह उसी में आबद्ध हो जाता है। इसी के साथ एक दूसरी प्रवृत्ति है आत्मोन्नति की। यह प्राण का आवेग है जो सदैव सभी व्यवधानों को दूर करने की चेष्टा करता है। यह प्राण का आह्वान है जो मनुष्य को सदैव अग्रसर होने के लिए प्रेरित करता है। परन्तु मनुष्य की सदैव उन्नति नहीं होती रहती। यदि एक युग में वह आगे बढ़ता है तो उसके बाद जो युग आता है उसमें उसे पीछे हटना पड़ता है। परन्तु वह रुकता इसी लिए है कि वह पुनः आगे बढ़े।

आज-कल हम ऐसे युग में हैं जब मानव-जाति काल के प्रत्याघात से रुक कर पुनः अग्रसर होने की चेष्टा कर रही है। इस समय सर्वत्र राष्ट्रीयता के सङ्कुचित प्राचीरों के बीच पड़कर मनुष्य की गति अवरुद्ध हो रही है। इस सङ्कीर्णता में पड़कर उसका दम घुट रहा है। परन्तु अब सभी इन सङ्कीर्ण प्राचीरों से अलग होकर विश्व के विस्तृत क्षेत्र में प्रविष्ट होने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

जब योरप में महायुद्ध का आरम्भ हुआ तब सभी लोग जातीय विद्वेष और विरोध के कुण्ड में कूद पड़े। उस समय ऐसे थोड़े ही लोग दिखाई देते थे जिन्हें मनुष्य-जाति की एकता पर श्रद्धा थी। जो थे भी वे देश के शत्रु कहे जाते थे। परन्तु ऐसे लोग कम नहीं थे। संसार के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक ऐसे कितने ही लोग थे जो वसुधा को कुटुम्ब मानते थे, जिनके लिए मानव-जाति की एकता राष्ट्रीयता से अधिक उच्च थी। यदि विश्व-प्रेम के ये उपासक पृथक् पृथक् न रह कर एक हो जायँ तो उनके लिए कोई भी काम असाध्य नहीं। विचारणीय यह है कि इनके सम्मिलन में बाधक कौन है। देश की स्थिति अथवा आचार-व्यवहार की भिन्नता से बाधा नहीं होती। बाधा है भाषा की भिन्नता। प्रत्येक जाति एक ही उद्देश से काम कर रही है। परन्तु उसकी कृतियों से संसार की अन्य जातियों को लाभ नहीं होता क्योंकि बहुधा उनकी कृति को जानने-वालों की संख्या परिमित होती है। ज्ञान का आदान-प्रदान न होने से मनुष्य-शक्ति की बड़ी हानि होती है। एक ही मनुष्य-जाति की सन्तान होने पर भी जब लोग एक जगह मिलते हैं तब भाई भाई को नहीं पहचान सकता। जो लोग यह चाहते हैं कि मनुष्यों में पारस्परिक विद्रोह न रहे उन्हें एक विश्व-भाषा का निर्माण करना पड़ेगा। तभी मनुष्यों में भ्रातृ-भाव का प्रचार शीघ्रता से होगा।

६—गेटी की शिक्षा।

गेटी जर्मनी का सर्व-श्रेष्ठ कवि है। उसकी इन शिक्षाओं पर हमें ध्यान देना चाहिए—

ज्ञान की जो कुछ बातें हैं उन पर पहले ही विचार कर लिया गया है। हमारा काम है उन पर फिर विचार करना।

जो हमारी बुद्धि को मुक्त तो कर देता है, परन्तु हमें आत्मसंयम की शक्ति नहीं देता वह हमारे लिए अनिष्टकर है।

जो अच्छा है वही करना कार्य-कुशल मनुष्यों के लिए उचित है। परन्तु जो अच्छा है वही किया गया है अथवा नहीं, इसकी विवेचना में अपने को क्षुब्ध कर डालने की आवश्यकता नहीं।

कितने ही लोग दीवाल के ऊपर हथौड़ी ठोकते रहते हैं। वे यही समझते हैं कि प्रत्येक आघात ठीक कील के ऊपर ही पड़ रहा है।

जो लोग किसी सत्य को दबाने के लिए उसके विरुद्ध चेष्टा करते हैं वे मानो जलते अङ्गार पर चोट करते हैं। फल यह होता है कि उनके चोट करने पर वह छिटक कर उसके चारों ओर फैल जाता है।

पृथ्वी पर मनुष्य सबसे श्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु वह सबसे बड़ा तभी हो सकता है जब उसका महत्त्व पार्थिव की आवश्यकताओं से बढ़ जाता है।

अत्यन्त सद्भाव और घनिष्ठता रहने पर भी हम अपने पड़ोसी को सरलता से नहीं जान पाते। जब परस्पर असद्भाव है तब तो सभी विकृत हो जाते हैं।

छोटी अवस्था में भूल हो जाने से विशेष क्षति नहीं होती, परन्तु हमें सावधान रहना चाहिए कि कहीं अवस्था बढ़ जाने पर वही भूलें फिर न लौट आयें।

मनुष्य ऐसा विलक्षण और विपरीतबुद्धि का जीव है कि यदि ज़बर्दस्ती उसका कल्याण करने के लिए जाओ तो यह उसके लिए असह्य हो जाता है। परन्तु जिसमें उसकी हानि है ऐसे कितने ही बन्धनों को उसने स्वीकार कर लिया है।

सत्य को साहस से प्रकट करना ऐसा है जैसा खेल में नेता बन कर चलना। वह नेता तो आरम्भ में ही मर जाता है परन्तु अन्त में विजय उसी की होती है।

सत्य का सम्बन्ध मनुष्य से है और भ्रम का काल से। सत्य मनुष्य की वस्तु है और भ्रम काल की।

जिस सत्य को दूसरों ने स्वीकार किया है उसको स्वीकार करने से हमारी स्वतन्त्रता का ह्रास होगा, ऐसी शङ्का करने की भूल बुद्धिमान् नहीं करते।

७—एक शताब्दी के बाद।

सौ वर्ष के बाद क्या होगा, साधारण मनुष्य को इस विषय में अधिक उत्साह नहीं हुआ करता है, क्योंकि यह एक इतना लम्बा समय है कि उसके सम्बन्ध में कोई निश्चित अनुमान भी नहीं किया जा सकता है। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से एक शताब्दी कुछ मिनटों के ही बराबर है, क्योंकि सृष्टि के अनन्त जीवन में शताब्दी को मिनटों की उपमा देना किसी प्रकार अनुपयुक्त नहीं है। आज सन् १९२३ और २०२३ के बीच में जो कुछ मिनट बीतना है, उनमें संसार विकास-मार्ग में कहाँ तक पहुँच जायगा, उसके विषय में विद्वान् बड़े ही रोचक अनुमान बाँध रहे हैं। प्रोफ़ेसर ला नाईन्टीन्थ सेंचुरी में अपना अनुमान इस प्रकार बतलाते हैं—

आधुनिक उन्नतिशील व्यवसायियों की धारणा है कि समय ही रुपया है, अतएव उनको जीवन की वर्तमान अवस्था से अधिक सन्तोष नहीं होता है क्योंकि अधिकांश समय खाने-पीने, खेलने-कूदने, सोने या घूमने में बिताना पड़ता है। जब लोगों का यह दृढ़ सिद्धान्त है कि जो समय के अपव्यय से जितना ही अधिक बचेगा, वह उतना ही अधिक सफल होगा, तब यह निश्चित है कि इस आदर्श की प्राप्ति में दिन प्रति दिन उन्नति होती जायगी। यह एक प्रकार से प्रत्यक्ष है कि आगामी शताब्दी में यातायात के साधनों में कल्पनातीत उन्नति होनेवाली है, जिससे समय की भारी बचत हुआ करेगी। सोने के समय में भी कमी करने के विरुद्ध कोई बाधा नहीं दिखाई देती है। तीन तीन बोतल साफ़ करनेवाले मनुष्य तो बहुत दिन हुए इस संसार से उठ गये। अभी कुछ वर्ष पहले तक यह प्रथा थी कि व्यवसायियों को अपने इष्ट-मित्रों के साथ भोजन करने में घंटों बिता देना पड़ते थे। किन्तु आज-कल डबल रोटी और बिस्कुट में ही उनकी तृप्ति हो जाती है। अतएव सौ वर्षों में कार्यालय की टेबिल पर बैठे बैठे ही जलपान कर लेना उनके लिए पर्याप्त होगा। वास्तव में आज व्यवसायी को किसी व्यर्थ काम में समय नष्ट करना बड़ा अखरता है। अभी टेलीफ़ोन के द्वारा वह अपने मित्र के साथ केवल मिलने का समय निश्चित कर पाता है, किन्तु उसका जी चाहता है कि कोई ऐसी युक्ति निकल आवे जिससे वह टेलीफ़ोन के द्वारा ही अपने मित्र को अपने पास बुला सके। सौ वर्षों में कम से कम टेलीफ़ोन उसकी मोटरकार और टमटम, भोजनालय और शयनागार में सर्वत्र लगा दिया जा सकेगा और वह मौज से अपने मित्रों के साथ बातचीत किया करेगा। और आज-कल की तरह उसको काम छोड़ कर 'सुनो' 'सुनो' की आवाज़ पर टेलीफ़ोन के पास न दौड़ना पड़ेगा। सम्भव है, वह अपने मित्र के साथ केवल बात-चीत ही न कर सके, प्रत्युत उसके दर्शन भी कर सके, हज़ारों कोसों की दूरी पर बैठ कर व्याख्यान सुन लेना तो कोई बात ही न रह जायगी। उस समय आधुनिक खेलों में लोगों को आनन्द नहीं आयगा, दूसरों के कामों में उत्साह दिखाना ही व्यवसायियों का खेल होगा। आज-कल की तरह हज़ारों रुपयों का चन्दा करके अन्तर्राष्ट्रीय अखाड़ों में भाला-बर्छा चलानेवालों को तैयार करना मूर्खता समझी जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार-शक्ति को सँभालने भर के लिए शारीरिक शक्ति की आवश्यकता रह जायगी, पट्टों को आवश्यकता से अधिक बढ़ाना जङ्गली भीलों और बन्दरों का काम समझा जायगा।

हमारी सड़कों का एक दूसरा ही रूप होगा, लन्दन की आमदरफ़्त का प्रबन्ध करने के लिए नई नई सड़कों का निर्माण करना पड़ेगा। आज भी लन्दन में यदि अमरीका की भाँति मोटरकारों का प्रचार हो जाय तो एक नई समस्या उपस्थित हो। न जाने धरातल के नीचे कितनी सड़कें खोदना पड़ें। फ़र्श पर चलना हमारे लिए अति कठिन हो जायगा, बाज़ार में एक से दूसरी दुकान पर आने-जाने के लिए चलती-फिरती सीढ़ियों की आवश्यकता होगी। सम्भव है, बड़ी बड़ी सड़कों पर छत डाल दी जाय, क्योंकि बहुत ही थोड़े मूल्य में पिकेडेली सरीखी सड़कें पाटी जा सकेंगी।

धीरे धीरे कड़ी धूप, अधिक शीत या वर्षा में बाहर निकलना हमारे लिए असम्भव हो जायगा। शायद बिना चश्मे के किसी का काम ही न चले। वायुयानों के द्वारा ही हम सारे संसार में दौड़ा करेंगे, उस समय आज-कल की तरह चार पाँच मील दूर किसी स्टेशन पर नहीं उतरना होगा, वरन् हम सीधे सुन्दर सड़क के किनारे किसी रम्य होटल की छत पर उतर सकेंगे। सड़कों पर गन्दगी का नाम नहीं रहेगा, रात्रि भर बिजली की रोशनी जगमगाती रहेगी, कुहरे की धुन्ध रोकने का भी प्रबन्ध हो जायगा और शोर गुल भी मिट जायगा। तब भला कौन आदमी इन सड़कों को छोड़ना चाहेगा?

इसी प्रकार हमारे घर भी अधिक सुन्दर होते जायँगे, शीत से हमारी पूर्ण रक्षा हो सकेगी। मनुष्य-मात्र की आराम चाहने की प्रवृत्ति दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है। मोटरकार में परदे के बिना अब काम नहीं चल सकता क्योंकि उसके बिना हवा असह्य हो जाती है।

केन्द्रस्थानों में बिजली के बड़े बड़े सङ्ग्रहालय बन जायँगे, जहाँ से यथेष्ट बिजली की शक्ति मिल सकेगी। सड़कों की घड़ियाँ, और सम्भव है हमारी जेब-घड़ियाँ भी, उसी शक्ति के द्वारा चला करें। कपड़े पहनने में आध घंटे से अधिक समय न लगेगा और आवश्यकता होगी, तो बिजली के द्वारा उनमें गरमी भी पहुँचाई जा सकेगी। मोटरकारों में हर प्रकार का आराम होगा, सङ्ग्रहालयों से उनमें बिजली की शक्ति भर ली जाया करेगी। साधारण गाड़ियों की भी चाल बढ़ जायगी और वायुयान तो इस तेज़ी से चलेंगे कि यातायात के वर्तमान साधन उसी प्रकार प्रतीत होने लगेंगे जिस प्रकार आज-कल बैल गाड़ी। विचार-परिवर्तन किस द्रुत-गति से होगा, यह अभी कल्पना के बाहर है। सम्भव है, इँगलेंड से महाद्वीप पर जाने के लिए कोई रास्ता खोदा जाय क्योंकि टापू उन्नति की दौड़ में दौड़ने के लिए पर्याप्त नहीं है।

एक शताब्दी के बाद शासन-व्यवस्था का क्या रूप होगा? वर्तमान राजनैतिक प्रगति को देखते हुए इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता है। शासितों को स्वतन्त्रता प्राप्त होगी अथवा नहीं, यह अभी सन्देहजनक है। वर्तमान प्रजासत्तात्मक प्रणाली के अनुसार प्रजा को शासन में वास्तविक अधिकार प्राप्त हो सकेंगे, यह कहना महा कठिन है। हाँ, एक बात प्रत्यक्ष सी है कि फिर शीघ्र ही एक संसारव्यापी महासमर होगा, और बड़ा भयङ्कर समर होगा, इतना भयङ्कर कि विगत योरपीय महायुद्ध उसके आगे बच्चों का खेल मालूम होगा। विज्ञान के फूल में यह एक बड़ा भारी काँटा है। गैस और बिजली के द्वारा मनुष्य के प्राण हर लेना तो कोई बात ही न रह जायगी। शीघ्र से शीघ्र और घोर से घोर प्रलयकारी यन्त्रों का निर्माण होगा, वैज्ञानिक उन्नति से उदात्त वृत्तियों की अपेक्षा वृत्तियों को अधिक उत्तेजना मिलने की सम्भावना है।

समाज में भी भीषण परिवर्तन की सम्भावना है। सन् २०२३ तक स्त्रियों के स्वातन्त्र्य-युद्ध का यदि और कुछ परिणाम न हुआ तो कम से कम इतना तो होगा कि वे पुरुषों के समान कपड़े अवश्य पहनने लगेंगी। अपराधियों को, सम्भव है, कठिन दण्ड देने की प्रथा बिलकुल उठ जाय। यह भी सम्भव है कि अमरीका की वर्तमान अवस्था के अनुसार मनुष्य दिन प्रति दिन एक दूसरे से अधिकाधिक उदासीन होते जायँ। कुछ भी हो, जिस प्रकार आज हम कहते हैं कि हमारे पुरखा बड़े भोले-भाले थे, आश्चर्य नहीं यदि उसी प्रकार १०० वर्ष के बाद हमारे बाल-बच्चे हमारी अल्पज्ञता पर हँसने का दावा करने लग जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८—परलोक-विद्या की काँग्रेस।

गत अगस्त में परलोक-विद्या की कांग्रेस का अधिवेशन बेलजियम में धूमधाम से हुआ। परलोक-विद्या के इतिहास में यह चिरस्मरणीय प्रसङ्ग हुआ होगा। इस काँग्रेस में संसार भर के परलोक-विद्या के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वान् उपस्थित हुए थे। संसार के प्रायः सभी देशों के प्रतिनिधि इसमें शामिल हुए थे। परन्तु भारत का एक भी प्रतिनिधि इसमें नहीं उपस्थित हुआ था। यह बड़े खेद की बात है। परलोक-विद्या का जन्मस्थान भारत है, किन्तु भारतीयों की उदासीनता से इस महत्त्वपूर्ण सभा में योग देने के लिए भारत से कोई प्रतिनिधि नहीं भेजा गया। परन्तु इस सभा में उपस्थित होने का सामर्थ्य न होने से मैंने भारत की ओर से एक लेख काँग्रेस के सभापति को भेज दिया था। आगामी वसन्त-ऋतु में इटली में अब जो अन्तर्राष्ट्रीय काँग्रेस का अधिवेशन होगा उसमें भारत की तरफ़ से पाँच प्रतिनिधि नियत किये गये हैं।

परलोक-विद्या की काँग्रेस के गत अधिवेशन का सभापतित्व जगत्प्रसिद्ध परलोक-विद्याविद् सर आर्थर कनन डायल ने सुशोभित किया था। पिछले दिनों आपने पूर्वी अमरीका के भिन्न भिन्न नगरों की यात्रा कर परलोक-विद्या का ख़ूब प्रचार किया था। इसके बाद आपने इस काँग्रेस का सभापतित्व ग्रहण किया। आपकी धर्म-पत्नी लेडी कनन डायल भी काँग्रेस में उपस्थित हुई थीं। अपने पति के समान आप भी परलोक-विद्या के प्रसारार्थ निरन्तर परिश्रम करती रहती हैं। काँग्रेस में विविध भाषा-भाषी प्रतिनिधियों ने योग दिया था। अतएव भाषणों का भाषान्तर करने के लिए छः दुभाषिए नियुक्त किये गये थे। स्वागत-सभा के सभापति ने अँगरेज़ी में भाषण देकर सर कनन डायल और अँगरेज़ तथा फ़्रेंच प्रतिनिधियों को धन्यवाद दिया। सर कनन डायल का भाषण फ़्रेंच भाषा में हुआ। आपने भाषण के प्रारम्भ में बेलजियम के सुप्रसिद्ध परलोक-विद्या-विद् मिस्टर जोफ़ टार्टे के अकाल परलोकगमन के सम्बन्ध में विस्तार-पूर्वक दुःख प्रदर्शित किया। इस सभा से परलोकगत टार्टे महोदय की पूर्ण सहानुभूति थी, इसका उल्लेख आपने अपने भाषण में किया। मैडम बेरी ने अपने भाषण में सभा के उच्च स्थान पर और सभापति के समीप बैठे हुए परलोक-विद्या-प्रवर्तक अँलन कार्डेक की प्रशंसा की।

मिडियम के प्रयोग, मैजिक लैटर्न-द्वारा परलोक-वासी मनुष्यों के फ़ोटो तथा प्रत्यक्ष दर्शन का दृश्य आदि बातें इस काँग्रेस में बतलाई गईं।

इस कांग्रेस में अन्तर्राष्ट्रीय परलोक-विद्या के जो छः सिद्धान्त निश्चित हुए हैं वे ये हैं—

१ सर्व-कर्तृत्व-शक्तियुक्त ईश्वर का अस्तित्व और उसकी मानवी आकार-विरहितता।

२ द्रवरूपात्मक शरीर-द्वारा स्थूल देह-युक्त आत्मा का अस्तित्व।

३ आत्मा का अमरत्व और द्रवरूपात्मज शरीर से उसका अभेद्य सम्बन्ध।

४ परलोकगत मनुष्य से मिडियम द्वारा वार्तालाप करने की शक्यता।

५ प्रगतिमय मरणोत्तर जीवन-सातत्य।

६ कर्मपरिपाक और स्वाचरण के बारे में प्रति जीव की ज़िम्मेदारी।

उपर्युक्त सिद्धान्त हिन्दू-धर्मसम्मत है। इससे कई लोग इनका महत्त्व कम समझेंगे, किन्तु पाश्चात्य संशोधकों ने नये साधनों से ये सिद्धान्त निश्चित किये हैं। इसलिए हर एक आर्यधर्माभिमानी को प्रसन्न होना चाहिए, क्योंकि इनसे उसकी धर्म-श्रद्धा अवश्य दृढ़ होगी। चतुर्थ सिद्धान्त से दृश्य संसार का अदृश्य संसार से अधिक सम्बन्ध होकर मानवी-ज्ञान की अधिक वृद्धि सम्भव है। विविध धर्मों की विभिन्नता इस प्रकार नष्ट होकर कोई विश्व-धर्म स्थापन करने का कार्य सहज हो जायगा और असली बन्धु-प्रेम का युग शीघ्र समीप आयगा। परलोक-विद्या के प्रसार से यह एक बड़ा लाभ होगा।

इस काँग्रेस ने पेरिस में एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ स्थापित किया है। इस सङ्घ की सभा का अधिवेशन अगले वर्ष अगस्त में होगा और सन् १९२५ में परलोक-विद्या की काँग्रेस का अधिवेशन होगा। आशा है, दोनों अवसरों पर इस बार भारत से प्रतिनिधि अवश्य भेजे जायँगे। इटली की सायकिक काँग्रेस को कोपन हेगन-सायकिक-कमिटी द्वारा नियत किये हुए प्रतिनिधि भारत की तरफ़ से जायँगे।

बि० दा० ऋषि, बी० ए०, एल-एल० बी०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९—कला और छाया-चित्रण ।

छाया-चित्रण पर 'सिद्धहस्त' जी के दो लेख हमने प्रकाशित किये हैं। हमें विश्वास है कि छाया-चित्रण के प्रेमियों ने उन्हें पसन्द किया होगा। चित्रकार और छाया-चित्रणकार, दोनों में कला-नैपुण्य चाहिए। कहा जाता है कि कला के लिए कल्पना-शक्ति चाहिए और छाया-चित्रण के लिए कल्पना की आवश्यकता नहीं है। परन्तु कल्पना का आधार सदैव प्रत्यक्ष जगत् ही रहता है। चित्रकार अपनी कला की अभिव्यक्ति के लिए प्रत्यक्ष जगत् से ही उपादान सङ्ग्रह करता है। वह संसार में जिस सौन्दर्य की कल्पना करता है वह सौन्दर्य संसार से पृथक् नहीं होता। तो क्या छाया-चित्रणकार चित्रकार की सौन्दर्य-कल्पना से लाभ नहीं उठा सकता ? क्या वह

उत्कण्ठिता ।

ध्यानमग्ना ।

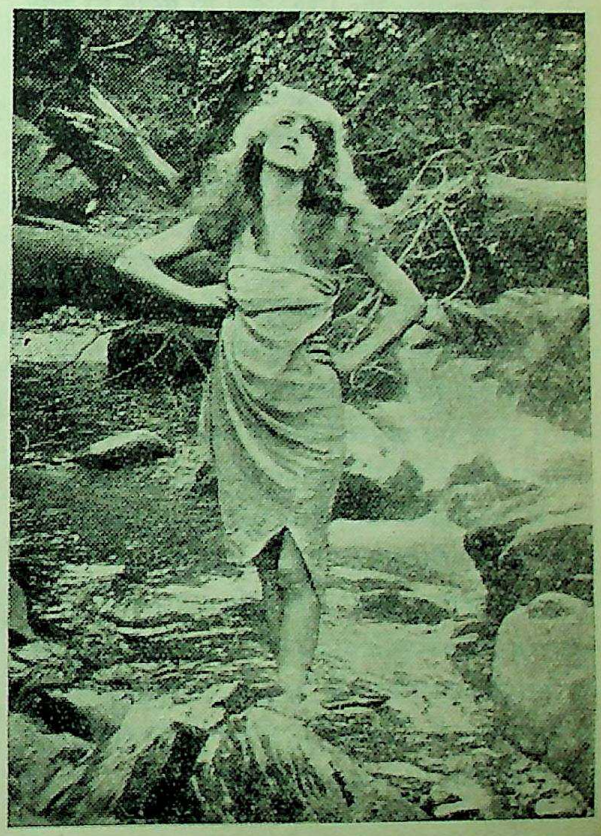

एकाकिनी ।

उन स्थितियों को प्रत्यक्ष नहीं कर सकता जिसे चित्रकार अपने मानसिक जगत् में देखता है ? जब से छाया-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रण में कवि-कल्पित सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने की चेष्टा की जाने लगी है तब से छाया-चित्रण ने एक विशेष कला का रूप धारण कर लिया है। जो लोग सिनेमा जाते हैं उन्हें छाया-चित्रण की यह विशेषता अच्छी तरह दिखलाई देती है। यहाँ हम तीन ऐसे ही चित्र प्रकाशित करते हैं जिनमें भावों की अभिव्यक्ति अच्छी तरह हुई है। ये छाया-चित्रण-कला के अच्छे नमूने हैं।

पुस्तक-परिचय।

१—दो उपन्यास—कलकत्ता (१८१ हरिसन रोड) में कोई हिन्दी-पुस्तक-भवन स्थापित है। उससे हमें अभी हाल में दो उपन्यास प्राप्त हुए हैं, (१) **विषाक्तप्रेम**, (२) **अहङ्कार**। विषाक्तप्रेम के लेखक श्रीचारुचन्द्र वन्द्योपाध्याय हैं। अनुवादक हैं पण्डित छविनाथ पाण्डेय बी० ए०, एल-एल० बी०। २७१ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य १।) है। यह हिन्दी-पुस्तकमाला का सातवाँ पुष्प है। इसके प्रकाशन का श्रेय हिन्दी-पुस्तक-भवन को ही है। दूसरी पुस्तक, अहङ्कार, का प्रकाशन बड़ा बाज़ार कुमार-सभा के मन्त्री श्रीयुत राधाकृष्ण नेवेटिया ने किया है। हिन्दी-पुस्तक-भवन उसे बेंचता है। यह सुलभ साहित्य-सीरीज़ का चौथा ग्रन्थ है। पृष्ठ-संख्या २२६ और मूल्य ॥)। यह भी अनुवाद है। इसके लेखक हैं अनाटोल फ्रांस और अनुवादक हैं श्रीप्रेमचन्द। पहली पुस्तक एक बँगला-उपन्यास का अनुवाद है और दूसरी पुस्तक एक फ्रेंच-उपन्यास का। अहङ्कार के प्रकाशक महोदय का कथन है कि आज-कल हिन्दी के प्रकाशक बँगला-उपन्यासों के पीछे बुरी तरह पड़े हैं। आप अब 'उस झरने की ओर गये हैं जहाँ से बँगला-स्रोत बहता है।' हिन्दी-साहित्य पर आपने यह बड़ी कृपा की है। हमें आशा है कि अब आपकी दया से हिन्दी में अँगरेज़ी, रूसी तथा फ्रेंच भाषाओं के उन धुरन्धर लेखकों के उपन्यास सुलभ हो जायँगे 'जिनका बँगलावालों ने अभी तक स्वप्न भी नहीं देखा है'।

अनुवादों के सम्बन्ध में हमें विशेष कुछ नहीं कहना है। कहना है तो यही कि कोई भी भाषा हो, अनुवाद उन्हीं ग्रन्थों का किया जाना चाहिए जो हमारे लिए सचमुच उपयोगी हैं। हमें नवीनता के फेर में पड़ कर सुरुचि से हाथ नहीं धो बैठना चाहिए। इन दो उपन्यासों में विषाक्तप्रेम के अनुवादक महोदय ने उपन्यास के नाम-परिवर्तन में बड़ी कुशलता प्रदर्शित की है। मूल पुस्तक का नाम हेरफेर था परन्तु 'उससे पुस्तक का विषय स्पष्टरूप से व्यक्त नहीं होता था'। इसलिए अनुवादक महोदय ने इसका नाम विषाक्तप्रेम रखना उचित समझा। सो उन्होंने अच्छा ही किया। खेद यही है कि उपन्यास पढ़ जाने पर हमने उसमें भावों का हेरफेर तो देखा पर किसको अनुवादक ने विषाक्तप्रेम कहा है वह हमारी समझ में नहीं आया। कथा साधारण है। इसमें ऐसी विशेषता नहीं है जिससे यह हिन्दी में अनुवाद करने योग्य समझा जाय।

अहङ्कार हिन्दी के लिए नया उपन्यास है। प्रेमचन्दजी ने अपनी भूमिका में उसकी अच्छी समालोचना की है। समालोचना के अन्त में आपने लिखा है 'हमने इसका अनुवाद केवल इसलिए किया है कि हमें यह पुस्तक सर्वाङ्गसुन्दर प्रतीत हुई। हमें यह कहने में सङ्कोच नहीं है कि इससे सुन्दर साहित्य हमने अँगरेज़ी में नहीं देखा। हमें अँगरेज़ी साहित्य का इतना ज्ञान नहीं है कि हम लेखक के इस मत के विरुद्ध कुछ कहने का साहस कर सकें। परन्तु हमारी समझ में लेखक के इस कथन में अतिशयोक्ति है। कम से कम कथा के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है। यदि अनुवादक महोदय ने मूल फ्रेंच ग्रन्थ में कोई विशेष साहित्य-छटा देखी हो तो दूसरी बात है। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह उपन्यास पढ़ने योग्य है।

२—कैवल्यशास्त्र—इस शास्त्र के रचयिता श्रीयुत ज्वालाप्रसाद सिंहल, एम० ए० हैं। सत्ज्ञान-प्रकाशक मन्दिर, मामूभाँजा, अलीगढ़ सिटी से यह मिल सकता है। पुस्तक पर मूल्य नहीं लिखा गया है।

इस पुस्तक में १७ अध्याय हैं। उनमें जड़-चैतन्य, परब्रह्म, जीवात्मा, मुक्ति, जीवनोद्देश, शुद्धि, दैनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम आदि विषयों की विवेचना की गई है। विवेचना विद्वत्ता-पूर्ण है। लेखक की प्रस्तावना से यह बात मालूम हुई कि इस पुस्तक का एक अँगरेज़ी संस्करण इँग्लेंड और अमरीका में प्रकाशित हो रहा है। उर्दू में भी इसका अनुवाद किया जा रहा है। यह भी ख़ुशी की बात है। किताब सुन्दर छपी है। बड़े बड़े विद्वानों ने इसकी प्रशंसा भी की है। दर्शन-शास्त्र के प्रेमियों को इस शास्त्र से लाभ उठाना चाहिए।

३—भारत में कृषि-सुधार—लेखक, प्रोफ़ेसर दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०। प्रकाशक हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी १२६, हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या २३६। मूल्य १॥।)।

प्रोफ़ेसर दयाशङ्कर दुबे हिन्दी के उन होनहार लेखकों में से हैं जिनसे हिन्दी-साहित्य की गौरव-वृद्धि हो सकती है। इस पुस्तक में आपने जिस विषय की विवेचना की है उसके आप मर्मज्ञ हैं। अतएव आपकी विवेचना में अपूर्णता का दोष नहीं आया है। इसमें सन्देह नहीं कि आज-कल भारतीय किसानों की बड़ी दुर्दशा है। दुबेजी ने इस पुस्तक में यह बतलाने का यत्न किया है कि उनकी असुविधायें किस प्रकार दूर की जा सकती हैं और उनकी दरिद्रता का निवारण किस प्रकार किया जा सकता है। पुस्तक छोटे छोटे बारह अध्यायों में विभक्त है। हमारे देश में अनाज की कितनी कमी है, कितने लोग आधा पेट भोजन पाते हैं, यह अनाज की कमी किस प्रकार दूर हो सकती है ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर इसमें दिया गया है। इसके परिशिष्ट भी उपयोगी हैं। उनमें खाद, कपास और गन्ना की चर्चा की गई है। एक परिशिष्ट में यह बतलाया गया है कि अन्य देशों में किस प्रकार कृषि-सुधार किया जा रहा है। मतलब यह कि पुस्तक के सभी अंश उपयोगी हैं। भाषा सरल और विचार स्पष्ट है।

४—कृष्णचरित्र—यह वङ्गभाषा के प्रसिद्ध लेखक बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय के कृष्णचरित्र का अनुवाद है। भाषान्तरकार हैं पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी। कलकत्ता (१८१ हरिसन रोड) के हिन्दी-पुस्तक-भवन से वह प्रकाशित हुआ है। मूल्य २॥) है।

श्रेष्ठ लेखकों की सभी रचनायें श्रेष्ठ नहीं होती हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनकी किसी भी रचना का अनादर नहीं हो सकता। बङ्किमचन्द्र वङ्गभाषा के साहित्य-सम्राट् माने गये हैं। अतएव उनकी यह कृति भी आदरणीय है। परन्तु हमारी धारणा यह है कि कृष्ण-चरित्र के समान ग्रन्थों की रचना करके उन्होंने वङ्गभाषा में यह उच्च स्थान प्राप्त नहीं किया है। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से जिस भाव-जगत् की सृष्टि की है उसी से उनका नाम अक्षय है। कृष्णचरित्र में उनकी प्रतिभा की झलक है परन्तु इसमें उनकी वह कर्तृत्वशक्ति नहीं है जो उनके अन्य ग्रन्थों में पाई जाती है। अनुवादक महोदय का निवेदन है कि आज-कल हिन्दी बोलनेवालों में भी भगवान् श्रीकृष्ण को अवतार न मानने की हवा वह चली है। इसी लिए आपने कृपाकर हिन्दी में इसका उल्था करने का प्रयास उठाया है। परन्तु हमारी समझ में जो लोग कृष्ण को अवतार मानते हैं वे उस कृष्ण के उपासक नहीं हैं जिसका चरित्र इस ग्रन्थ में वर्णित हुआ है। आज-कल कुछ विद्वान् कृष्ण-लीला की वैज्ञानिक और आध्यात्मिक व्याख्या करने में बड़ी निपुणता दिखला रहे हैं। यह भी एक ऐसी ही विद्वत्ता-पूर्ण व्याख्या है। परन्तु श्रीमद्भागवत की जो कथायें लेखक की राय में कल्पित हैं, उन्हीं पर विश्वास कर कृष्ण-भक्त कृष्ण की पूजा करते हैं। उनकी सत्यता अथवा असत्यता का निर्णय करने की आवश्यकता उन्हें नहीं है। श्रीकृष्ण की लीलाओं की दार्शनिक व्याख्याओं से उन्हें लाभ नहीं होने का। जो श्रीकृष्ण को अवतार नहीं मानते हैं वे भी इन व्याख्याओं को पढ़ कर उनके ईश्वरत्व को स्वीकार नहीं कर लेंगे। यदि उन्होंने श्रीकृष्ण को ईश्वर मान भी लिया तो उनके श्रीकृष्ण वैष्णवों के श्रीकृष्ण से सर्वथा भिन्न रहेंगे।

हमारी समझ में इस ग्रन्थ का महत्त्व इसी में है कि यह बङ्किम बाबू की रचना है। इससे मनोविनोद हो सकता है पर भक्ति का उद्रेक नहीं होता। इससे ज्ञान की वृद्धि हो सकती है, परन्तु वह भावोन्माद नहीं उत्पन्न हो सकता जिसमें पड़कर भक्त अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है।

५—सुधारणा और प्रगति—पुस्तक के नाम से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम हो जाता है कि यह किसी मराठी ग्रन्थ का अनुवाद है। अनुवादक श्रीसूरजमल जैन हैं और प्रकाशक श्रीराजपूताना-हिन्दी-साहित्य-सभा झालरापाटन। मूल्य २॥)।

इस पुस्तक में एक अँगरेज़ तत्त्ववेत्ता के विचार प्रदर्शित हुए हैं। अनुवादक का कथन है कि प्रत्येक तत्त्ववेत्ता ने अपने मतानुसार 'संस्कृति' के कुछ तत्त्व निश्चित किये हैं। किसी ने आधिभौतिक शास्त्रों की उन्नति को ही समाज का सादृश्य माना है और किसी ने आध्यात्मिक तत्त्व का अवलम्बन किया है। किसी ने उत्क्रान्तिवाद का आश्रय लिया है और किसी ने नैतिक उन्नति को श्रेष्ठ माना है। परन्तु इस ग्रन्थ के मूल-लेखक ने सबसे पहले समाज की सर्वाङ्गीण 'चिकित्सा' की है।

इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक का विषय महत्त्व-पूर्ण है। परन्तु अनुवादक ने मराठी शैली का अनुकरण कर अपनी भाषा को बहुत नीरस और दुर्बोध बना डाला है।

६—**आत्मोपदेश**—लेखक, श्रीनरेन्द्रनारायणसिंह, प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-भवन, १८१ हरिसन रोड, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १११ और मूल्य ॥=) है।

यूनान के प्राचीन दार्शनिक एपिक्टेटस के उपदेशों का यह सङ्ग्रह है। इसका सङ्कलन विषय-क्रम के अनुसार हुआ है। इसकी भाषा सरस और सरल है, छपाई भी सुन्दर है। पुस्तक उपयोगी है।

७—**खेती-पौंड़ा गन्ना ऊख**—लेखक ठाकुर रामनरेशसिंह, प्रकाशक कार्याध्यक्ष कृषिभवन, इलाहाबाद, पृष्ठ-संख्या ८६, मूल्य ॥) है।

यह पुस्तक ठाकुरसाहब की उर्दू में लिखी गई पुस्तक का हिन्दी भाषान्तर है। इसमें पौंडा, गन्ना, ऊख तथा उनकी खेती के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातों का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार की पुस्तकों के प्रचार से लाभ की ही सम्भावना है अतएव यह कृषकों के सङ्ग्रह करने योग्य है।

८—**मालाबार और आर्यसमाज**—इसके सङ्ग्रह-कर्त्ता, मन्त्री, आर्य्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर और प्रकाशक, सत्यव्रत शर्मा, शान्ति प्रेस, मोती कटरा, आगरा हैं। ।-) में उक्त प्रेस के मैनेजर को लिखने से मिलती है। सन् १९२१ में मालाबार में जो भीषण बलवा हुआ था और उस समय विद्रोही मोपलाओं ने हिन्दुओं पर जो भीषण अत्याचार किये थे उन्हीं की यह एक प्रामाणिक विवरण-पत्रिका है। आरम्भ में मालाबार के प्राचीन इतिहास एवं देश की सामाजिक स्थिति का परिचय दे देने से इस पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। इसकी भूमिका प्रसिद्ध आर्य-नेता लाला हंसराजजी ने लिखी है। पुस्तक सङ्ग्रह करने योग्य है।

९—**स्त्री-दर्पण**—यह स्त्रियोपयोगी मासिक पत्रिका है। पहले यह प्रयाग से निकलता था, अब फ़ीलख़ाना, कानपुर से निकलने लगा है। अब इसका सम्पादन-भार दो विदुषियों ने उठाया है, श्रीमती सुमति देवी बी० ए० और श्रीमती फूलकुमारी मेहरोत्रा ने। वार्षिक मूल्य ३) है। इसमें प्रतिमास अच्छे अच्छे लेख, कवितायें और कहानियाँ निकलती हैं। अक्टूबर के अङ्क में श्रीमती सुप्रभा घोष की लिखी हुई 'कंगाल के देवता' शीर्षक कहानी बड़ी अच्छी है। हमें विश्वास है कि इस पत्र के द्वारा हमारे प्रान्त की स्त्रियों में साहित्य-प्रेम की वृद्धि होगी।

१०—**आदर्श-बलिदान**—सङ्कलन-कर्ता, श्रीयुत अतरसेन जैन, प्रकाशक, नेशनल बुकडिपो मेरठ और मूल्य ।=) है।

इसमें तीन शिक्षा-जनक कहानियों का सङ्कलन किया गया है। तीनों कहानियाँ मनोरञ्जक और सुपाठ्य हैं।

११—**रूप सुन्दरी**—अनुवादक, मास्टर भागमल शर्मा, प्रकाशक, श्रीआत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला शहर। मूल्य =)॥ है।

यह एक शिक्षाप्रद कहानी है, एक गुजराती पुस्तक से अनुवाद कर ट्रैक्ट रूप में प्रकाशित हुई है।

१२—**सरल होमियोपैथिक चिकित्सा**—प्रणेता, श्रीयुत हृदयरञ्जन घोष, एम० डी० पटना। पृष्ठ-संख्या ३८४ और मूल्य ३) है।

इस पुस्तक में होमियोपैथिक चिकित्सा की क्रिया का वर्णन सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक दो परिच्छेदों में विभक्त है। पहले में ओषधियों का वर्णन और दूसरे में रोग-निरूपण के साथ उनकी प्रयोग-विधि बतलाई गई है। होमियोपैथिक-प्रेमी चिकित्सकों के काम की है।

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २४, खण्ड २] दिसम्बर १९२३—मार्गशीर्ष १९८० [संख्या ६, पूर्ण संख्या २८८

वर्ष के अन्त में।

दिखला हमें दो फिर हरे ! वह दृश्य सुषमागार,
होकर मुदित फूले फले सुख से सकल संसार।
मिट जाय क्लेश-कुहिर तथा सब भीति-शीत अपार,
अब हो निरङ्कुशता-शिशिर का सर्वथा संहार॥

हो जायँ निर्मल स्वच्छ अब सबके हृदय-कासार,
सद्भाव-सरसिज खिल उठें सुख-शान्ति के भाण्डार।
हो भ्रातृ-भाव-समीर का अब सब कहीं विस्तार,
स्वातन्त्र्य-सौरभ का करे सर्वत्र जो सञ्चार॥

हो नव-विवेक-विचार-पल्लव की अतुल भरमार,
हो विश्व-प्रेम-प्रसून अब सबके गले का हार।
हो आत्म-त्याग-पराग का सञ्चार सर्व-प्रकार,
हो मन-मधुप निर्भय करे मृदु तर्क का गुञ्जार॥

हो ज्ञान-दिनमणि की प्रभा का निर्विकार प्रसार,
आत्मा-मयङ्क-विकाश का उन्मुक्त हो अब द्वार।
हो शान्ति-रूपी कौमुदी का सब कहीं प्रस्तार,
शुचि सत्य-सोता की बहे अविकल विमल कल धार॥

हो प्रकृति-प्रकृति उदार पावन प्रेम-पारावार,
कर ग्रहण सेवा-व्रत करे सबका सदा उपकार।
सौजन्य-शोभन-सुमन ही सबका बने शृङ्गार,
निज-कर्म-पादप-सुफल पर सबका रहे अधिकार॥

गोपालशरणसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीर्थ-रेणु।

(कबीर)

भी मुझसे पूछते हैं—तुम कहाँ से आये हो? तुम्हारा स्थान कहाँ है? तुम्हारी जाति क्या है? तुम्हारे स्वामी का नाम क्या है? मैं कहता हूँ—मैं अमरलोक से आया हूँ। सुख-सागर मेरा धाम है। अजाति मेरी जाति है। मेरे स्वामी का नाम अगम पुरुष है। आत्मा मेरी जाति है। प्राण मेरा नाम है। अलख मेरा इष्ट पुरुष है। गगन मेरा निवास है।

मैं जहाँ से आया हूँ वह अमर देश है। वहाँ न ब्राह्मण है, न शूद्र है, न शेख़ है। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कोई नहीं है। वहाँ न योगी है, न जङ्गम है, न दर्वेश है। सार स्वर को ग्रहण कर उसी देश को चलिए।

मार्ग लम्बा है। गन्तव्य स्थल भी दूर है। विकट पथ में विपत्तियाँ भी अनेक हैं।

किन्तु सत्य-पथ पर चलते चलते यदि कोई गिर भी पड़े तो कोई दोष नहीं।

यह पथ बिना पैर का है, पद से गन्तव्य नहीं है। अन्तर्लोक में उसका स्थान है। एक तो पथ ही विकट है, फिर मार्ग पर कितने ही दुर्गम स्थान पड़ते हैं। केवल साधक-सुजन ही वहाँ पहुँच पाते हैं।

यदि पथिक ही विचार कर नहीं चलता तो राह का क्या दोष? वह बेचारी क्या करेगी? पथिक ही सत्य-पथ को छोड़कर असत्य-पथ पर भटकते रहते हैं।

मैंने हिन्दू का हिन्दूत्व देख लिया और मुसलमानों का मुसलमानत्व। ये दोनों राह पर नहीं हैं। तब हम किस मार्ग से चलें?

सभी अपना अपना मान चाहते हैं। इसी से वे झूठे प्रपञ्च को भी सत्य समझते हैं।

कोई अपने को ज्ञानी कहता है और कोई अपने को त्यागी। कोई अपने को जितेन्द्रिय मानता है। कोई कहता है कि मैं दाता हूँ और कोई समझता है कि मैं तपस्वी हूँ। अहङ्कार में सभी डूबे हैं। अपना तत्त्व-नाम कोई भी निश्चय-पूर्वक नहीं जानता। इसी से सभी भ्रम में पड़े हुए हैं। मैं तो अपने स्वामी का सेवक हूँ। मैं अपने पद पर पहुँच गया।

मैं गुरु नहीं हूँ और न चेला हूँ। न मुरीद हूँ, न पीर हूँ। मैं न एक हूँ, न दो। इसी में मेरा विलास है। हिन्दू मन्दिरों में ध्यान करते हैं और मुसलमान मस्जिदों में। परन्तु मैं तो वहीं ध्यान लगाता हूँ जहाँ दोनों की प्रतीति हो। मुझे हिन्दू कहो तो मैं हिन्दू नहीं हूँ और मुसलमान समझो तो मुसलमान भी नहीं हूँ। पाँच तत्त्वों का बना हुआ मेरा यह शरीर है सही, परन्तु मुझमें अदृश्य रहस्य का खेल हो रहा है। यह रहस्यमय जीवन महारहस्य से यहाँ आया है। इसमें सीमा और खण्डता के जो कुछ दोष हैं वे यहीं आकर लगे हैं। यदि मैं फिर उसी महारहस्य में जाकर लीन हो जाऊँ तो ये दोष नहीं रह सकते।

मुसलमान मस्जिद जाते हैं और हिन्दू मन्दिर जाते हैं। यदि ख़ुदा मस्जिद में ही है तो बाह्य जगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसका मुल्क है ? यदि राम तीर्थ की मूर्ति में आबद्ध हैं तो संसार की रक्षा कौन करता है ? पूर्व दिशा हरि की हो गई और पश्चिम दिशा अल्लाह की। अपने हृदय के भीतर तो एक बार खोज कर देखो। वहीं राम हैं और वहीं करीम। जितने स्त्री-पुरुष हैं वे सब, हे देव, तुम्हारे ही रूप हैं। मैं उसी अल्लाह-राम की सन्तान हूँ। वही मेरा गुरु है और वही मेरा पीर।

तीर्थ में तो सिर्फ़ पानी है। मैंने स्नान करके देख लिया, उससे कुछ नहीं होता। मूर्तियाँ सभी जड़ हैं। पुकारने से वे बोलती नहीं। पुराण और क़ुरान कथा-मात्र हैं। मैंने इस घट का पर्दा खोल कर देखा है। मैं प्रत्यक्ष अनुभव की बात कहता हूँ। तुम सत्य की ओर आँख उठाकर देखो। सब घटों को—सब रूप और आकारों को—ज्योतिर्मय करके स्वयं ब्रह्म अपनी वाणी को उद्घोषित करते हैं। पुस्तक में उनकी वाणी नहीं है। अपनी वाणी वे स्वयं कहते हैं।

मैं आँख नहीं मूँदता। न कानों को ही बन्द रखता हूँ। शरीर को कष्ट भी नहीं देता। मैं तो आँखें खोलकर, हँस हँस कर, देखता हूँ और भगवान् के सुन्दर रूप का दर्शन करता हूँ। जो कहता हूँ वही मेरा जप है, जो सुनता हूँ वही मेरा स्मरण है, जो कहता हूँ वही मेरी पूजा है, जहाँ जहाँ जाता हूँ वहीं प्रदक्षिणा होती है। जो कुछ भी करूँगा वही उसकी सेवा होगी।

सब घटों में मेरा स्वामी है। कोई भी घट ख़ाली नहीं है। धन्य है वह घट जिसमें वह प्रकट होता है।

संसार में खुलकर, मुक्त होकर, खेलो। कोई तुम्हें बाँध नहीं सकता।

जब साधक स्वाभाविक होता है तभी वह विश्व के आनन्द-सागर में डूब कर आनन्द-रस से पूर्ण होता है। उलटा घड़ा जल में नहीं डूबता। सीधा घड़ा ही जल में डूबता है और तब उसमें जल भरता है। जिस कारण से मनुष्यों में भिन्नता है वह गुरु की कृपा से दूर होता है।

वही सन्त सत् गुरु है जो हमें अलक्ष्य को दिखलाता है। वह न दरवाज़े को बन्द करता है और न पवन को रोकता है। वह संसार से हमारा विच्छेद नहीं कराता। वह ऐसी स्थिति ला देता है कि मन जहाँ तक जाता है वहाँ वह परमात्मा को ही देखता है। जो भीतर है उसी को वह बाहर देखता है। उसे और दूसरा कुछ भी नहीं दिखलाई देता।

बहता पानी ही निर्मल रहता है। बँधा पानी गन्दला हो जाता है। यदि साधक चलता ही रहे, यदि उसकी गति मुक्त ही रहे, तो उसको दाग़ नहीं लग सकता। तभी वह निर्मल रहेगा।

हीरों का ढेर नहीं होता। मलयागिरि की पङ्क्ति नहीं होती। सिंहों का दल नहीं होता। ये सभी अकेले रहते हैं। इसी प्रकार साधुओं की जमात नहीं होती।

संसार में जो ज्वाला है उसकी शान्ति धर्म की शान्ति-धारा से होती है। यदि धर्म में ही अग्नि लग जाय तो वह ज्वाला दूर कैसे होगी ? समुद्र में आग लग गई तो जङ्गल जल ही जायँगे।

धर्म से ही भेदों का अन्त होता है। परन्तु यदि उसी से भेद बढ़ा तो सत्यानाश ही होगा। खेत की रक्षा के लिए बेड़ा लगाया जाता है। देखा जाता है कि बेड़ा ही खेत को खा रहा है। तीनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक संशय में पड़े हैं। मैं किसको समझा कर कहूँ। अब तो समुदाय ही धर्म को खा रहा है।

प्रत्येक धर्म में एक सत्य है। उसे रखना होगा। उसका विशेषत्व ही उसका सत्य है। मुसलमान प्रदीप का तेल है और हिन्दू उसकी बत्ती है। जब मन्दिर में इसी प्रदीप से भगवान् की आरती होती है तभी वे रीझते हैं। मुसलमान वीणा की तुम्बी है और हिन्दू उसके तार हैं। इसी वीणा से प्रेम और वैराग्य का पूर्ण स्वर उत्थित होता है। उसी सङ्गीत से स्वामी रीझते हैं।

मैं सभी से एक, निरन्तर, होकर रहता हूँ। किसी से मेरा विच्छेद नहीं। मैं सभी में हूँ। यदि मैं सभी में नहीं हूँ तो मैं हूँ भी नहीं।

यह तो प्रेम का घर है, खाला का घर नहीं है। जो लोभ और गर्व को दूर कर सकता है वही इसमें प्रविष्ट हो सकता है।

जितने ही घट हैं उतने ही मत हैं। संसार में बहुत वाणी हैं और बहुत भेष हैं। परन्तु सब घटों को व्याप्त कर रहा है वही एक असीम और अलक्ष्य देव। आज जाति के द्वार पर जाति उपस्थित है।

जाति के मन्दिर में आज जाति अतिथि हो कर आई है। स्वामी सभी जातियों के हैं। वे सभी घटों में व्याप्त हो रहे हैं। मैं भी बालक की तरह सभी घटों में खेल रहा हूँ। मैं जो चाहता हूँ, करता हूँ। डर मुझे किसी का नहीं है।

तू प्रेम-दृष्टि से देख, वही ब्रह्माण्ड को पूर्ण कर रहे हैं। यदि तू हृदय में सोच-समझ कर देखेगा तो यही देखेगा कि यह जगत् हमारा जगत् है। सारा जगत् ही सत्य का धाम है। ये टेढ़े-मेढ़े पथ हमारे चित्त को मुग्ध किये रहते हैं। जो वहाँ पहुँचता है वह बिना पैरों से चले हुए ही पहुँच जाता है। यही तो एक अपार खेल है। उन्होंने इसी रूप और रेखा की मूर्ति—लोक—को प्रेम से ही विकसित किया है। नवीन नवीन रूपों की धारा से सत्य-पुरुष आनन्द का स्रोत बहा रहे हैं। स्वामी हमारे सभी रूपों को पूर्ण कर रहे हैं। पन्थ-वीणा से सत्य की रागिनी उठ रही है जो हृदय में जाकर उसे विद्ध करती है। जन्म-जन्मान्तर की अमृत-धारा इसी से उद्गत हो रही है। यही तो असीम अमृत का फ़व्वारा है।

मानव-मन्दिर में शिव अतिथि होकर खड़ा है। तू यह क्या प्रमाद कर रहा है? देवता आ गये हैं। अब भी तू उनकी सेवा नहीं करता। रात्रि आ रही है। कितने युगों तक वे इसी मन्दिर के बाहर प्रतीक्षा करते थे। अब यहाँ उनका मन लगा है। बिना प्रेम और वैराग्य के यह परमानन्द सागर सूझता नहीं।

हे अनगढ़, अप्रतिष्ठित, स्थापना-विहीन देव, तुम्हारी सेवा कौन करेगा? सभी अपने अपने स्थापित देवों की पूजा करते हैं, उन्हीं के सामने नित्य अपनी सेवा का उपहार लाते हैं। वे पूर्ण ब्रह्म, अखण्डित स्वामी को नहीं पहचानते। जिसने उसकी रागिनी को सुन लिया वही सब सीमाओं को पार कर गया।

हाथ, पैर, सिर आदि सभी अङ्गों के तुमने भिन्न भिन्न नाम रक्खे हैं। बतलाओ तो, इन सब अङ्गों में से किस अङ्ग में तुम्हारा नाम है। मैं विचार कर कहता हूँ मेरा नाम सभी अङ्गों में है। मैं सबकी बात कहता हूँ। सबकी बात से मेरी बात पृथक्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर नहीं कही जा सकती। मैं पूर्व की बात कहता हूँ और वह पश्चिम में जाकर लीन होती है।

अनुवादक, सुशीलकुमार।

माहाता शैसा।

जिन पुरुषों ने घोर परिश्रम, सतत उद्योग, व्यवहार-दक्षता एवं सत्यता, इत्यादि गुणों से अपना भाग्योदय किया और दीन-हीन स्थिति से कुबेर-समान सम्पत्ति उपार्जित की है उनमें माहाता शैसा की गणना असङ्गत नहीं होगी। शैसा न तो साहसी अमेरिकन, न दीर्घउद्योगी अँगरेज़ और न आशावादी जर्मन थे। वे सिंहलद्वीप अर्थात् लङ्का के एक छोटे से गाँव के बौद्धधर्मावलम्बी, अत्यन्त दरिद्र परिवार में पैदा हुए थे।

माहाता शैसा के चरित्र का परिचय देने के पहले यहाँ लङ्का के पूर्व-इतिहास का थोड़ा सा उल्लेख आवश्यक है। लङ्का में पहले हिन्दू-राजा राज्य करते थे। हिन्दू-सत्ता नष्ट होने पर मुसलमानों का राज्य स्थापित हुआ। उनके बाद पोर्तगीज़ आये। इनसे यह द्वीप डच जाति के अधिकार में गया। डच-लोगों ने लङ्कावासियों को ईसाई बनाने का सङ्कल्प किया। एक हाथ में क़ुरान और दूसरे हाथ में तलवार लेकर इस्लाम-धर्म की दीक्षा देनेवाले मुसलमानों का ज़ुल्म डच-लोगों के अत्याचार के सामने शर्म खाने लगा। इतिहास इस बात का साक्षी है। लङ्कावासी बौद्धों को ईसाई बनाने के सम्बन्ध में ग़रीब दुर्बल प्रजा के साथ डच लोगों ने जो व्यवहार किया उसका स्मरण करते ही शरीर पर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यद्यपि डचों की सत्ता आज लङ्का से उठ गई है, तथापि बौद्धों पर किये गये अत्याचारों का विस्मरण कदापि नहीं हो सकता। उनके राक्षसी विधानों का एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। वह इस प्रकार है—

"जो व्यक्ति ईसाई-धर्म को नहीं स्वीकार करेगा उसे कभी किसी प्रकार की कोई भी सरकारी ऊँची नौकरी नहीं मिलेगी। ग़ैर-ईसाई को उद्योग-धन्धा करने के लिए परवाना नहीं दिया जायगा। ग़ैर-ईसाई के घर, खेत, गाय, बैल, घोड़ा, बकरा, भैंस वग़ैरह पशुओं पर, उसी प्रकार घर के बालकों सहित प्रत्येक व्यक्ति पर कर बैठाया जायगा। ग़ैर-ईसाई को शस्त्रास्त्र का लायसन्स भी नहीं दिया जायगा। ग़ैर-ईसाई तरुण को प्रति-लग्न १० रु० कर देना पड़ेगा"।

ऐसे अत्याचारों के सामने निरुपाय होकर बहुसंख्यक लोग ईसाई हो गये, परन्तु उनके चित्त में राजपुरुषों एवं शासकों के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया। जिन्होंने ईसाई-धर्म स्वीकार नहीं किया उन्हें राज-कर्मचारी विविध कष्ट देते थे। अन्त में इन अत्याचारों का परिणाम वही हुआ जो सदा से होता आया है। शीघ्र ही राज-सञ्चालकों के प्रति प्रजा के मन में विद्रोह के भाव भर गये।

ग़ैर-ईसाई बौद्धों पर तो राजद्रोह की मुहर लग ही चुकी थी, किन्तु जो लोग ठोंक-पीट कर ईसाई बनाये गये थे वे लोग भी भीतरी तौर से क्रान्तिकारियों में शामिल थे। डच सरकार से यह बात छिपी नहीं थी। यथासमय लङ्का के एक छोर से दूसरे छोर तक राज-द्रोह की प्रचण्डाग्नि धधक उठी। अखिल प्रजा में क्रान्ति फैल गई। राज-सत्ताधारियों को यहाँ तक नहीं सूझता था कि किसे फाँसी दें, किसे काटें, किसे मारें? सभी क्रान्तिकारी थे। लाचार होकर डच-लोगों को मुँह की खानी पड़ी और प्रजा से सन्धि करने का निश्चय किया। विद्रोहियों ने सन्धि का प्रस्ताव अप्रसन्नता से स्वीकार किया। पाश्चात्य लोग जब हार जाते हैं तब वे अपनी झेंप छिपाने की सदा कोशिश करते हैं। सन्धि के शब्द ही इस बात के प्रमाण हैं। सन्धि की ये शर्तें थीं—

"ईसाई-धर्म के प्रचारार्थ सरकार ने शुद्ध-हेतु से क़ानून बनाये थे, किन्तु प्रजा की उन क़ायदों के प्रति ग़लत फ़हमी तथा इस सम्बन्ध में प्रजा की स्पष्ट अनिच्छा प्रतीत होते देख कर अपनी राजनिष्ठ प्रजा के सन्तोष के लिए डच-सरकार क़ानून बनाती हैं कि भविष्य में ईसाई-धर्म स्वीकार करना अथवा अस्वीकार करना प्रजा की इच्छा पर निर्भर है। किसी पर अब सख़्ती नहीं की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायगी। आज से राजा-प्रजा दोनों की सम्मति से राजकीय धर्म-सम्बन्धी क़ानून स्टेट-बुक से निकाल दिये गये हैं। ये क़ानून आज से मृतप्राय समझे जायँगे। सरकार और प्रजा की अनुमति से यह क़ायदा बनाया जाता है कि भविष्य में सिंहलद्वीप की बौद्ध-प्रजा का प्रत्येक व्यक्ति उसी प्रकार उनकी उत्तरोत्तर सन्तान अपने बौद्ध नाम के साथ साथ एक दूसरा ईसाई नाम भी धारण करे, दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों की अनुमति और सही से आज गुरुवार के दिन, सेण्ट वर्थालोमिओ चर्च में, हमारे प्रभु के राज्य के वर्ष १६६८, जुलाई महीने की २४ तारीख़ को यह क़ानून स्वीकृत हुआ"*।

इस प्रकार सरकार और प्रजा में सन्धि हो जाने पर सिंहल-द्वीप की बौद्ध-प्रजा पुनः शान्ति का अनुभव करने लगी, परन्तु उन्हें अपने बौद्ध नाम के साथ एक अथवा अधिक ईसाई नाम रखना स्वीकार करना पड़ा। इस काम के लिए डच-सरकार ने गाँव गाँव आफ़िस खोले। प्रत्येक पुरुष को इस आफ़िस में ईसाई-नाम रजिष्टर करवाना पड़ता था। जैसे महाराष्ट्र-देशीय ईसाइयों में एमिली करमरकर, जार्ज-माधव पटवर्धन, या पिटर सुमन्तराव पवार इत्यादि ईसाई-मराठी-मिश्रित नाम कभी कभी कर्णगोचर होकर कुतूहल उत्पन्न करते हैं, उसी तरह सिंहलद्वीप के बौद्धों का नामकरण भी एक कौतुक की वस्तु हो गया।

कई वर्ष तक सिंहलद्वीप में डच-नादिरशाही का बोलबाला रहा। अन्त में उसका भी भाग्य अस्त हुआ। 'भागते-भूत की लँगोटी भली' वाली उक्ति चरितार्थ कर कुछ लक्ष रौप्य मुद्राओं में सिंहलद्वीप की स्वतन्त्रता अँगरेज़ों के हाथ बेच कर डच-लोग बोरिया-बिस्तर बाँध कर अपने देश को चले गये। अँगरेज़ों के आते ही प्रजा को धर्म की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। तो भी ईसाई-नाम धारण-विधि क़ायम ही रही। सुशिक्षित तथा अशिक्षित बौद्धों में अभी तक सैकड़ा पीछे पचहत्तर मनुष्य बौद्ध होकर भी ईसाई नाम ग्रहण करते हैं, बौद्धों के ईसाई नाम से लोगों को प्रायः भ्रम हो जाता है। जो कुछ हो, माहाता शैसा के पूर्वजों पर अनेक सङ्कट आने पर भी उन्होंने स्वधर्म का परित्याग नहीं किया, परन्तु उपर्युक्त रीत्यनुसार माहाता शैसा के पिता को भी डी० कोस्टा दिवाकर शैसा नाम धारण करना पड़ा था।

दिवाकर शैसा घोर दारिद्र्य से पीड़ित था। कामचलाऊ शिक्षा प्राप्त कर वह जड़ी-बूटियाँ बेचने लगा। इसी की आय से वह अपने परिवार का पालन करता था। माहाता शैसा दिवाकर का ज्येष्ठ पुत्र था। शैसा के अतिरिक्त दिवाकर को और भी ३ लड़के तथा ६ लड़कियाँ थीं। अतएव सुबह की कमाई शाम को ख़तम हो जाती थी, सदा यही चिन्ता लगी रहती थी कि कल क्या होगा? कभी कभी तो दिन दिन फाँके करने पड़ते थे। ऐसी दशा में दिवाकर के लिए बालकों को उच्च शिक्षा की बात तो दूर रही प्राथमिक शिक्षा भी देना अशक्य था। तथापि उद्योगशील शैसा ने अपने पिता तथा पड़ोसियों की मदद से सिंहली भाषा की वर्णमाला सीख ली। फिर सतत परिश्रम कर वे मातृभाषा में लिखना-पढ़ना भी सीख गये। तदनन्तर अँगरेज़ी भाषा का भी साधारण ज्ञान प्राप्त किया। बड़ा लड़का होने के कारण उन्हें अपने पिता को घर के काम में भी सहायता देनी पड़ती थी। पिता की शिक्षा से उन्हें वैद्यक का भी थोड़ा ज्ञान हो गया। पिता की अनुपस्थिति में वे लोगों के साधारण रोगों की चिकित्सा भी कर दिया करते थे। सिंहली भाषा में अनुवादित वाग्भट, चरक, सुश्रुत इत्यादि वैद्यक-ग्रन्थों का माहाता शैसा ने अध्ययन किया। इस प्रकार पिता-पुत्र का धन्धा यथाविधि से शुरू हुआ; इतना होने पर भी उनकी आय खेदजनक थी। रात बेरात, धूप-ठण्ड की परवा न कर, क्षण भर भी विश्रान्ति न लेते। पिता-पुत्र दोनों जो धनोपार्जन करते थे, वह उनके पेट भरने के लिए भी पर्याप्त नहीं था। उनकी आमदनी और ख़र्च की साधारण कल्पना वृद्ध दिवाकर के मरने पर बची हुई पैत्रिक सम्पत्ति से भले प्रकार हो सकती है। गृह का सारा भार असहाय बालक शैसा पर छोड़ कर जब दिवाकर मरा तब उसकी पुरानी, टूटी पेटी में ३६ रुपये, ४७ बड़ी बोतलें, २६ छोटी बोतलें, मिट्टी के १२ बर्तन, ओढ़ने-बिछाने के ३ जोड़ा वस्त्र, १ दरी और ५ चटाई के अतिरिक्त कुछ नहीं था।

*The Ancient History of Ceylon, Trubuer and Co. Vol. II Chapter IX (Vide St. Bartholom's church.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि दूसरे टूटे-फूटे बर्तनों और कपड़ों की क़ीमत भी लगा ली जाय तो वह २५) से ज़्यादा न निकलेगी।

शैसा की उम्र पिता की मृत्यु के समय केवल १८ वर्ष की थी। पास में पैसा नहीं, न पूर्वजोपार्जित कोई सम्पत्ति, न द्रव्योपार्जन का कोई मार्ग, इसके अतिरिक्त घर में खानेवाले ११ मनुष्य, ऐसे सङ्कट के समय में इस बालक की मनःस्थिति उसी के प्रौढ़वयस्क होने पर लिखे हुए स्वचरित्र से ठीक प्रतीत होगी। शैसा ने लिखा है:—

"छोटे छोटे कई भाई-बहिन सहित मुझे और मेरी विधवा माता को नितान्त निर्धनावस्था में छोड़ कर मेरा बाप मेरी उम्र के १८ वें वर्ष में परलोक सिधारा। फुटकर वैद्यकी के सिवा मुझे उदर-पोषण करने की कोई भी विद्या मालूम नहीं थी, इस वैद्यकी में प्राप्ति नाम-मात्र की थी। हमारे गाँव में उस समय स्वदेशी और विदेशी वैद्य बहुत थे। अतएव नामाङ्कित वैद्यों के रहते मेरे समान लड़के के पास कौन आने लगा? अपरञ्च मेरे पिता से मत्सर करनेवाले कितने ही वैद्यों ने जैसे तैसे चलनेवाले मेरे धन्धे को भी बिलकुल डुबोने पर कमर कसी, "अरे यह लौंड़ा! वैद्यकी का इसे यत्किञ्चित् भी ज्ञान नहीं! इस अनाड़ी से दवा लेना जान जोखिम में डालना है!" इत्यादि नमक-मिर्च लगा कर मेरे शत्रु, लोगों को बहकाने लगे। उनके युक्तिवाद का परिणाम भी हुआ। मुझे कभी कभी जो चार आठ आने मिल जाते थे वे भी बन्द हो गये। यहाँ तक दशा पहुँची कि मेरे साथ साथ किसी न किसी को घर में फाके करने का प्रसङ्ग आने लगा। तथापि मैं कभी हताश नहीं हुआ। जिस साल मेरा पिता मरा उस साल सिंहलद्वीप में भयङ्कर अकाल पड़ गया। सिंहलद्वीप-वासियों का मुख्य आहार चावल है, लेकिन लङ्का में बहुतायत से न पैदा होने से वह मदरास से ही आता है। इस वर्ष चावल ज़्यादा महँगा था, इसलिए उसके एवज़ में दूसरा धान्य ज़्यादा आया। मेरी विधवा माता लोगों के घर जाकर अन्न पीसकर ६ आने पैसे रोज़ लाने लगी। जिस दिन मेरे पास कोई रोगी नहीं आता उस दिन मैं भी किसी का फटा-पुराना कपड़ा सीकर अथवा कुर्सी बुन कर चार आठ आने कमा लाता। मेरे पिता ने वैद्यकी के अतिरिक्त मुझे ये दो धन्धे भी सिखाये थे। अपने छोटे भाई-बहनों के लिए मैंने कार्य निश्चित कर दिया था। उनकी शाला में निःशुल्क पढ़ने की व्यवस्था कर दी थी। छुट्टी में भाई फूल तोड़ लाते और बहन उनकी मालाएँ गूँथती। इस प्रकार मालाओं से भी दो चार आने आ जाते थे। इस तरह बड़े सङ्कट से कुछ न कुछ उद्योग करके जैसे तैसे हम अपना गुज़र-बसर करते थे। मेरा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था, दारुण चिन्ता दिन-रात जलाती रहती थी, तो भी मैं निराश कभी नहीं हुआ। अकातर परिश्रम करके उपस्थित सङ्कट का सामना कर, जैसे तैसे मैंने वे दिन काटे। आत्म-हत्या करना मैं घोर पाप समझता हूँ। कैसा ही दुःखी प्राणी क्यों न हो, मैं उसे आत्महत्या करने की सलाह कभी नहीं दूँगा, तथापि भिक्षा माँगने की अपेक्षा आत्महत्या करना कितना श्रेयस्कर है? भिक्षा को मैं आत्महत्या के पातक से भी अधिक समझता हूँ, इसलिए विपत्ति के समय भिक्षा माँगनेवाले पर मुझे अन्तःकरण से घृणा होती है। मुझ पर बड़े बड़े सङ्कट आये, तो भी मैंने एक क्षण के लिए भी इस निन्द्य मार्ग का अवलम्बन नहीं किया। प्राप्त-सङ्कट से धैर्य और सतत उद्योग से टक्कर ली, और अपने अविरल परिश्रम की बदौलत मैं लक्षाधीश के पद पर आरूढ़ हुआ।"

पिता की मृत्यु के कई दिन बीत जाने के बाद एक दिन माहाता शैसा को एक पत्र मिला। उसमें यह लिखा था—

"आपके पिता कई वर्ष से हमारे घराने के कुटुम्ब-वैद्य थे। उनकी मृत्यु का समाचार सुन कर आज मैं उनकी जगह पर आपकी नियुक्ति करता हूँ। हमारे घराने की रीति के अनुसार आपको कोई वार्षिक वृत्ति नहीं मिलेगी, परन्तु जब कभी हमारे कुटुम्ब का कोई आदमी बीमार पड़ेगा तब आपसे ही हम चिकित्सा करावेंगे, उस वक़्त का जो कुछ बिल होगा सो देंगे। कई पीढ़ी-दर-पीढ़ी का यह सम्बन्ध है। इसे आप भी अबाधित रक्खेंगे। साम्प्रत मैं क्षयरोग से पीड़ित हूँ। मैं आशा करता हूँ कि पत्र मिलते ही आप इधर आवेंगे"।

यह पत्र लारेटो बेंजामिन नामक एक श्रीमान् सिंहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईसाई ने भेजा था। लारेटो का पितामह डच लोगों की ज़्यादती से सन्त्रस्त हो बौद्ध-धर्म त्याग कर ईसाई हो गया था। लारेटो और शैसा घराने का प्रीति-सम्बन्ध पुराना था। लारेटो का पत्र पहुँचते ही शैसा उसके गाँव को गया। उसके रोग का निदान किया। किन्तु वह ओषधि के उपचार से ठीक होने लायक़ न था। किसी मानसिक चिन्ता से रोगी सूखता जा रहा था। तो भी शैसा ने अपनी दवा शुरू की और उसके गाँव पर बहुधा जाने लगा। लारेटो के घर के निकट एक पुराना बाग़ीचा था। इस बाग़ीचे में वनस्पति के शोध के लिए शैसा कभी कभी जाया करता था। उसके अन्दर की कई इमारतें गिर गई थीं, कहीं चबूतरे ही शेष रह गये थे, जगह जगह जङ्गल खड़ा हो गया था; सर्प-सियार तथा पक्षी रात-दिन धूम मचाये रहते थे; सहसा कोई भी मनुष्य इस भयानक स्थान की तरफ़ दृष्टि नहीं डालता था। माहाता शैसा एक दिन इस बाग़ीचे में आया। एक खण्डहर में वह घूम रहा था कि उसके पैर के नीचे की जमीन अचानक अन्दर धस गई। अकस्मात् उसकी दृष्टि एक ताम्बे के हण्डे पर गिरी। उसने हण्डे के आस-पास की मिट्टी हटाई तो उसे और भी कई हण्डे नज़र आये। कठिन प्रयत्न के बाद वह एक हण्डे का ढँकना हटाने में समर्थ हुआ तो क्या देखता है कि हण्डा सुवर्ण-मुद्राओं से लबालब भरा है। अब तो शैसा को विश्वास हो गया कि दूसरे हण्डों में भी सुवर्णमुद्रायें हैं।

उपर्युक्त बाग़ में कोई कभी नहीं आता था। शैसा के अतिरिक्त इस विपुल-धन-राशि का पता किसी को भी नहीं था। यदि शैसा चाहता तो सब द्रव्य बिना किसी फ़िसाद के चुपचाप अपने घर ले जा सकता था। वह नितान्त निर्धन भी था। अपनी उम्र में उसने कभी सौ रौप्य-मुद्राओं की ढेरी भी न देखी होगी। ऐसी स्थिति में बिना प्रयास ही प्राप्त लक्ष्मी का भला कौन निरादर करेगा? सहज-उपलब्ध लक्ष्मी को लात मारनेवाला इस पृथ्वी-तल पर मानव-प्राणियों में कोई विरला ही महात्मा हो तो हो। यहाँ तो लोग सार्व-जनिक संस्थाओं की चवन्नी तक मार बैठने से नहीं चूकते। फिर अगणित द्रव्य की बात तो दूर रही। उसके लिए तो ख़ून-ख़राबी तक की नौबत पहुँच जा सकती है। परन्तु माहाता शैसा ने उस द्रव्य का लोभ नहीं किया। वह पृथ्वी पर देवरूप से अवतीर्ण हुआ था, उसने सोचा—"जिसकी यह भूमि है वही इस धन का स्वामी है। उसकी अनुमति बिना इसे छूना भी महापाप है। ज़मीन लारेटो की है। वही इस धन का सच्चा अधिकारी है, मैं लारेटो को जाकर सब वृत्तान्त कहूँगा।"

इस तरह दृढ़सङ्कल्प सत्यनिष्ठ शैसा ने लारेटो से जा कर सारा हाल कहा। लारेटो की सारी व्याधि धन-चिन्ता थी। अपने रोग की यह रामबाण ओषधि पाते ही तीन महीने से खटिया का सेवन करनेवाला लारेटो विलक्षण शक्तियुक्त होकर बिछौने से उठ बैठा, और लकड़ी टेकते हुए बाग़ में गया। सुवर्ण-मुद्राओं से भरे हुए हण्डे देख कर लारेटो ने आवेश में आकर कहा—मेरा रोग गया, यदि कुछ शेष भी रह गया होगा तो अब बड़े बड़े वैद्य बुलवा-कर शीघ्र ही आरोग्य लाभ करूँगा।"

विपुल द्रव्य मिलने से लारेटो के आनन्द की सीमा न रही। उसने शैसा को अनुग्रहरूप से कुछ धन देना चाहा। शैसा ने साफ़ इनकार कर दिया, तो भी उसकी इच्छा के विरुद्ध लारेटो ने उसे २०० सुवर्ण-मुद्रायें और ५०० रौप्य-मुद्रायें बड़े अनुनय-विनय के साथ अर्पण कीं। दूसरे दिन शैसा अपने घर के लिए रवाना हुआ। मार्ग में जो घटना घटी उसका हाल शैसा अपने जीवन-चरित्र में लिखता है—

"धन सुरक्षित रीति से मेरे घर पहुँचाने की नीयत से लारेटो ने अपने तीन आदमी मेरे साथ कर दिये। उन्हें हम पहाड़ी से लगे हुए सघन जङ्गल से रास्ता तय कर रहे थे, अकस्मात् भादुई नाम के जङ्गली लोगों ने हम पर छापा मारा और हमें यथेच्छ ठोंक-पीट कर हमारा सब द्रव्य हरण कर लिया। यहाँ तक कि हमारे वस्त्र भी छीन लिये। जैसे तैसे ख़ाली हाथ और नङ्गे-बदन हम घर आये। अदृष्ट पर मेरा पूर्ण विश्वास है। प्राचीन काल से अदृष्ट पर बौद्धों का परम विश्वास रहा है। घर आते ही सारा हाल मैंने मा से कहा। मा ने 'भाग्य में जो होगा वही मिलेगा' कह कर मेरा समाधान किया।"

उपर्युक्त घटना के डेढ़ साल बाद लारेटो ने शैसा को फिर बुलवा भेजा। शैसा ने जाकर देखा कि लारेटो का मकान राजभवन बन गया है, सर्वत्र लक्ष्मी की लीला दृष्टिगोचर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो रही है, दरवाज़े पर हाथी झूम रहे हैं, नङ्गी तरवार का पहरा है, बाग़ में घोड़े हिनहिना रहे हैं। लारेटो का वैभव देख कर शैसा चकित होगया। जैसे ही लारेटो ने शैसा को आते देखा, वैसे ही वह उठ कर उसके स्वागत के लिए आगे बढ़ा, उसका बड़ा आदर किया और कहने लगा—शैसा जो कुछ तू देख रहा है, सब तेरी ही कृपा का फल है।"

ऊपर जो कहा जा चुका है कि लारेटो और शैसा के घराने का स्नेह-सम्बन्ध पहले से ही था। शैसा ने लारेटो को अगणित सम्पत्ति प्रदान की थी। लारेटो को मार्ग में उसके लुट जाने का हाल मालूम होगया था। लारेटो इस बात की प्रतीक्षा में था कि कब शैसा आवे और मैं उसे न केवल यथेच्छ धन ही, बरन धन से भी प्रिय अपनी एकलौती सद्गुणी पुत्री उसे अर्पण करूँ। परन्तु शैसा तो दूसरी ही कोटि का आदमी था। स्वावलम्बी शैसा दूसरे के कृतज्ञता-पाश में कब बँधनेवाला था? जिसका प्रयत्न ही भाग्य है, जो भिक्षा माँगना पाप समझता है, वह सत्वधीर तरुण बिना आमन्त्रण, लारेटो के घर क्योंकर जाता? लारेटो के बुलाने पर जब शैसा उसके घर पहुँचा तब उसने बहुत सा द्रव्य और अपनी सुशीला पुत्री अर्पण करने की इच्छा प्रकट की। शैसा ने तत्क्षण लारेटो का धन लेने से इनकार किया, परन्तु दूसरी वस्तु अस्वीकार करने की उसकी इच्छा नहीं हुई। लारेटो की लड़की से उसका पहले से ही परिचय था और दोनों में परस्पर प्रेम भी पैदा होगया था; परन्तु लारेटो के समान श्रीमान् की लड़की की प्राप्ति उसके समान निर्धन पुरुष को आकाशपुष्पवत् दुर्लभ थी। इस कारण वह अब तक चुपचाप रहा था और इस विषय की कोई भी चर्चा न की थी। उधर उस लड़की का भी ऐसा ही हाल था। भाग्यवश लारेटो की कन्यादान की इच्छा जान कर शैसा ने उसके इस प्रस्ताव को बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। लारेटो की पुत्री को भी अपनी इच्छा फलवती देखकर उसी प्रकार आनन्द हुआ।

लारेटो की कन्या अत्यन्त सुन्दर और गुणवती थी। बड़े समारम्भ से शीघ्र ही उसका माहाता शैसा के साथ विवाह हुआ। बौद्धों में जाति-भेद नहीं है। यहाँ तक कि बौद्ध-ईसाइयों तक का विवाह सिंहलद्वीप में प्रचलित है। अपने विवाह के सम्बन्ध में शैसा लिखता है:—

"मैं बौद्ध-धर्म का त्याग किये बिना ही लारेटो की कन्या से विवाह कर सकता था, लेकिन अपनी अनुपम सुन्दर और गुणवती भार्या के आग्रह और विनय पर ध्यान देकर मैंने ईसाई-धर्म की दीक्षा ले ली और ईसाई-धर्मानुसार हमारा विवाह हुआ। मरुटीया नाम के गाँव के गिरजाघर में विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ था। मेरा ससुर इसी गाँव में रहता था। मैंने इसी गाँव में शैसा-कालेज की स्थापना की है। जिस समय मैंने ईसाई-धर्म की दीक्षा ली, उस समय मुझे इस धर्म के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं मालूम था। इस धर्म के प्रति मुझमें पूज्य-भाव नहीं पैदा हुआ था, तो भी मैंने ईसाई-धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली। विवाह के बाद मेरे ससुर ने मेरी स्त्री को छः हज़ार रुपये स्त्री-धन-स्वरूप दिये और मुझे भी विपुल धन देने का हठ करता रहा। पर मैंने उसके देनगी प्रस्ताव को अस्वीकृत करते हुए कहा कि मैं दूसरे के धन से श्रीमान् होना नहीं चाहता। मैं पसीना बहा कर जो कमा सकूँगा वही मेरी सम्पत्ति होगी। इसके अतिरिक्त मैं ऐसे धन को भिक्षा समझता हूँ और भिक्षा ग्रहण करना मैं मरणपर्यन्त भी स्वीकार नहीं करूँगा।"

अपने दामाद के उद्गार सुन कर लारेटो को कितनी ख़ुशी हुई होगी? कहाँ तो लारेटो समान धनशाली ससुर के साग्रह विपुल सम्पत्ति अर्पण करने पर भी स्वावलम्बी, उद्योग एवं कर्मण्यता पर बलि होनेवाला निर्धन दामाद माहाता शैसा अगणित द्रव्य पर लात मारता है और कहाँ आज-कल के धन-लोलुप, नराधम, सुशिक्षित, पुच्छ-विषाण-हीन नर-पशु दामाद! अस्तु; माहाता शैसा कहता है—

"मैंने अपनी प्रिय भार्या से एक पैसा तक उधार नहीं लिया, न एक पैसे की मदद ली। अपने परिश्रम से ही मैं धन-कुबेर एवं कोश्वधीश बना, ससुर की मदद से नहीं।"

नव-वधू लेकर शैसा अपने गाँव आया। माता के चरणों पर मस्तक रख कर नव-दम्पती ने उसका आशीर्वाद ग्रहण किया। माता के सम्मुख शैसा ने अपनी पत्नी को जो उपदेश दिया था वह इस प्रकार है—

"हे सहधर्मिणि! मैं जानता हूँ तू कुलीन और श्रीमान् की दुलारी कन्या है। शैशवावस्था से आज पर्यन्त तू ऐश्वर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पली है। परन्तु मैं ठहरा दरिद्री, पूर्ण दारिद्र्य ही मेरी सम्पत्ति है। तू भी देख रही है। यही मेरी पर्णकुटी, यही मेरे प्रिय-परिजन का निवासस्थान, यह सब चित्र तेरे ध्यान में आगया होगा? मैं दरिद्री होकर तेरा पति हुआ हूँ और तू श्रीमान् की प्यारी पुत्री होकर मेरे दुःख-सुख की हिस्सेदार हुई है। आज से तुझे अपने पिता का राज-महल भूल जाना चाहिए, यह झोपड़ी ही तेरा वास्तविक गृह है। पति के दुःख-सुख का भार ग्रहण करना ही पत्नी का धर्म है, मुझ दरिद्र के घर तुझे हाथ पर हाथ रख कर बैठने को नहीं मिलेगा। ग़रीब की स्त्री को जो गृहकार्य करना चाहिए वे सब तुझे करने पड़ेंगे। बूट, साक्स चढ़ाकर, सुन्दर-वेश रचना कर, लेवेंडर छिड़क कर, निरुद्योगी बनकर तुझे आराम का अवसर नहीं मिलेगा। बाप का सब वैभव भूल जा। 'मेहनत करो और खाओ' यही मेरा सिद्धान्त है। तुझे इसी सिद्धान्त को स्वीकार करना पड़ेगा। गृहकार्य चपलता और चतुरता से सम्पादन करना गृहिणी एवं सती स्त्री का धर्म है, नाक सिकोड़ना, मुँह बनाना, आलस्य और सुखभोग में समय व्यतीत करना वाराङ्गना के कर्म हैं"।

माहाता शैसा के यहाँ तक के चरित्र-क्रम से उसके स्वभाव, सतत परिश्रम, सामर्थ्य इत्यादि गुणों की कल्पना सहज ही हो सकती है। घर में आबाल-वृद्ध सहित वह घोर दारिद्र्य से तुमुल-युद्ध करता था। वह कभी नहीं थका; कभी नहीं निराश हुआ। ऐसी दशा में यदि इस तेजस्वी पुरुष को यशःप्राप्ति हुई तो कोई आश्चर्य की बात नहीं! उसका चिकित्सा-व्यवसाय अब अच्छी तरह चलने लगा। घर में सभी कुछ न कुछ उद्योग करते ही थे। इससे कुछ कुछ धन-सञ्चय भी होने लगा। माहाता शैसा को उच्च शिक्षा नहीं मिली थी। अतएव अब वह इस ओर ध्यान देने लगा और जब उसे समय मिलता, वह ज्ञानोपार्जन में ही लगा रहता। नाना प्रकार के देशी-विदेशी सामयिक पत्रों का पठन-पाठन भी वह ध्यानपूर्वक करता था। विदेशी पत्र पढ़ते पढ़ते उसने अपने तर्क और बुद्धि से यह अनुमान किया कि योरप या अमरीका में घनघोर युद्ध मचेगा, उसमें लाखों मन हड्डियों की माँग होगी। इस तर्क पर विश्वास कर वह गाँव गाँव से हड्डियाँ इकट्ठी करने में भिड़ गया। तीन महीने तक सतत परिश्रम कर, उसने कोलम्बो में १२ गोदाम हड्डियों से भर दिये। हड्डी के व्यापारियों ने भी हड्डियाँ सङ्ग्रह कर रक्खी थीं। शैसा ने मुँह-माँगा दाम देना स्वीकार कर उन्हें भी ख़रीद लिया। इस तरह पास की पूँजी से उसने १२ गोदाम हड्डियों से भर लिये, शेष माल सट्टे से ख़रीद कर अपने हस्तगत कर लिया। शैसा का अनुमान ठीक निकला। लड़ाई छिड़ी, और योरप तथा अमरीका से सिंहलद्वीप के योरपियन-व्यापारियों को हड्डी ख़रीद कर भेजने के लिए तार पर तार आने लगे। व्यापारियों ने सारी लङ्का ढूँढ़ डाली, लेकिन सारे द्वीप का माल तो शैसा ने कोलम्बो में पहले से ही एकत्र कर लिया था। दैवयोग से वर्षा भी आगई। योरपियन व्यापारियों ने गाँव गाँव जाकर हड्डी एकत्र करने का विचार भी स्थगित कर दिया। निरुपाय होकर शैसा से ही उन्हें हड्डी ख़रीदनी पड़ी। शैसा ने इस अवसर का उपयोग कर, भरपूर दाम पर, अपना माल योरपियन व्यापारियों को बेच दिया। इस व्यापार में उसको १ लाख ८७ हज़ार लाभ हुआ।

शैसा के अभ्युदय एवं व्यापार का यह श्रीगणेश था। प्रायः इस दो लाख की पूँजी से उसने अपना व्यापार बढ़ाया और अपने व्यवसाय में वह दूरदर्शिता, सामर्थ्य, साहस एवं सचाई के कारण सदैव यशस्वी ही होता चला गया। थोड़े ही समय में वह नील के २३ और चाय के १७ बाग़ीचों का स्वामी बन गया और सिंहलद्वीप के देशी-विदेशी व्यवसाय का बड़ा भारी व्यापारी हो गया। वहाँ के बड़े बड़े नगरों में उसकी दूकानें खुल गईं, और उसके अढ़तिया जगह जगह घूमने लगे। गाँव गाँव में ज़मीन ख़रीदने, जगह जगह बैंक खोलने, आदि के कारण "शैसा" का नाम लोगों की ज़बान पर एक साधारण बात हो गई। घर घर उसके नाम का उच्चारण होने लगा। जहाँ देखो, वहाँ उसकी चर्चा होने लगी। जब कभी कोई रईस द्रव्य-सङ्कट में फँसता या व्यापारी पैसे बिना अटक रहता, या किसी ज़मींदार को राजस्व देना होता तब वह तुरन्त ही शैसा की शरण लेता और उदार-चित्त शैसा सबका उद्धार करता। उसकी कीर्ति सुन कर डाकुओं तक ने अपना निन्द्य व्यवसाय छोड़ दिया। इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह पुस्तक वितरित न की जाय।

ही नहीं, सिंहलद्वीप के निवासी इस बात का अभिमान करने लगे कि शैसा के पवित्र नाम से आज शेर-बकरी एक घाट पानी पीते हैं। उसकी सिफ़ारिश से लोग ऊँची ऊँची नौकरी पाने लगे और उसके एक शब्द से फांसी की सज़ा नामञ्ज़ूर की जाने लगी। गवर्नर से लेकर मामूली सिपाही तक उसके भवन में आने लगे। शैसा की गाड़ी के सड़क से निकलते ही लोग अपना अपना काम-काज छोड़ कर बड़े आदर के साथ प्रेमपूर्ण अन्तःकरण से उसका अभिवादन करते थे। दीन-हीन दरिद्र शैसा लङ्का का अनभिषिक्त राजा बन गया था।

शैसा साम्प्रत इस संसार में नहीं है, तथापि वह मृत होते हुए भी अमर है। ऐसे परोपकारी महापुरुष की मृत्यु कभी सम्भव भी है?

लोक-प्रवाद है कि माहाता शैसा को ऊँची से ऊँची पदवी प्रदान करने की स्वीकृति विलायत से आगई थी, किन्तु शैसा ने उसका स्वीकार नहीं किया। इन विदेशी पदवियों को अस्वीकृत कर शैसा ने लङ्काद्वीप के महानुभावों एवं प्रजा से सादर सप्रेम दी हुई "लङ्केश्वर" की पदवी ग्रहण की। सिंहल-द्वीप में महान् पुरुष को 'माहाता' कहने की रीति है। यह शब्द शायद संस्कृत के 'महात्मा' शब्द का सिंहली अपभ्रंश हो। जनता-द्वारा समर्पित 'माहाता' पदवी शैसा ने सादर स्वीकृत की और विशेषतः वह इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ। सरकार के विशेष आग्रह से आख़िर में उसे कौंसिल का मेम्बर बनना और बाद को कलोनियल गवर्नमेंट के वाइस प्रेसिडेंट का पद भी स्वीकार करना पड़ा था। इस पद पर रह कर उसने बहुत दिन तक काम किया। वह पहला सिंहली था जिसे सरकार में इतना उच्च पद प्राप्त हुआ।

केवल स्वपराक्रम से जिस प्रकार माहाता शैसा ने कुबेर-समान अगणित सम्पत्ति प्राप्त की, उसी तरह नाना भाषाओं एवं शास्त्रों का अध्ययन कर उनमें भी प्रवीणता सम्पादित की। वैद्यक और सङ्गीत-शास्त्र के उत्कर्ष के लिए उसने लाखों रुपये ख़र्च किये। उसी प्रकार कृषि-कर्म-शास्त्र के उद्धार के लिए भी अगणित द्रव्य व्यय किया, जिसकी सफलता की प्रसंसा योरप अमरीका के विद्वानों ने की है।

शैसा के कर्तृत्व का वर्णन करना अशक्य है। उसके दान-सम्बन्धी महत्कार्यों का उल्लेख यहाँ किया जाता है—

		वार्षिक ख़र्च	रुपया
१	मरुटाया शैसा कालेज	,,	२० हज़ार
२	निगम्बो कोली शाला	,,	२ ,,
३	पारदोनिया कृषि-कालेज	,,	१ लाख
४	कोलम्बो कन्याशाला ३	,,	६ हज़ार
५	कोलम्बो शैसा कालेज	,,	२४ ,,
६	मरुटाया ईसाई-मन्दिर व सभा	,,	१३ ,,
७	कोलम्बो ईसाई-समाज	,,	१० ,,
८	कोलम्बो, कन्डी, अनन्तपुर गाल बन्दर सड़क-सुधार	,,	३½ ,,
९	कन्डी कालेज	,,	१२०० सौ
१०	त्रिकालीबन्दर अनाश्रित दुःख-निवारण सभा	,,	२½ हज़ार
११	तदवत् गाल-बन्दर सभा	,,	२½ ,,
१२	बौद्ध कांगाली सभा	,,	१२ ,,
१३	ईसाई कांगाली सभा	,,	१३ ,,
१४	सिंहली ईसाई पांथशाला	,,	६ ,,
१५	सिंहली भाषा के उत्तेजनार्थ	,,	२ ,,
१६	चार अस्पताल	,,	१ लक्ष
१७	सङ्गीत कालेज	,,	१२ हज़ार
१८	देशी वैद्यक शाला	,,	१ ,,
१९	अनाथाश्रम	,,	१० ,,

शैसा के समग्र दान का वर्णन करना शक्य नहीं, न इतना यहाँ स्थान ही है। जिसकी मा ६ आने के पैसे पर दिन भर लोगों का आटा पीसती थी वही माहाता शैसा दीर्घ परिश्रम से कुबेर बन गया। यह कथा लोक कल्याणकारी एवं उद्योग के फल का ज्वलन्त उदाहरण है।

मृत्यु समय माहाता शैसा ने अपने बड़े लड़के को २७ करोड़ रुपये नक़द दिये थे। इसके अतिरिक्त जवाहिरात, सामान, ज़मीन, जायदाद, चाय और नील के बाग़ीचे, और व्यापार में लगी हुई करोड़ों रुपयों की पूँजी अलग थी। लङ्का में ऐसी कोई भी महत्त्व की जगह नहीं थी जहाँ किसी न किसी रूप में शैसा की सम्पत्ति न हो।

शैसा के केवल पाँच बालकों की शादी में ६१ लाख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपये ख़र्च हुए थे। शेष बालकों की शादी का ख़र्च यहाँ देकर हम इस लेख को नहीं बढ़ाना चाहते। पाठक अनुमान कर सकते हैं कि शैसा की सम्पत्ति कितनी होगी जब सिर्फ़ उसकी स्त्री के अङ्ग पर १७ करोड़ के अलङ्कार थे। माहाता शैसा का नश्वर शरीर आज इस संसार में नहीं है, तथापि इस पुण्य-पुरुष का अमर नाम, विमल यश, और पवित्र चरित्र शुष्क गुलाब पुष्प के समान आज भी सर्वत्र सुगन्ध फैला रहा है, शैसा के समान पुरुष जिस भूमि में पैदा होते हैं, वह भूमि धन्य है।

रामकृष्ण राजवैद्य

मैडेगास्कर-द्वीप के मूल निवासी।

संसार में सैकड़ों जङ्गली जातियाँ वास करती हैं। ऐसा एक भी महादेश, देश या द्वीप न होगा जहाँ कुछ न कुछ जङ्गली और असभ्य आदमी न रहते हों। हमारे देश में भी ऐसी जातियों की कमी नहीं। उनमें से कई जातियों का हाल, सरस्वती में, बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुका है। आज हम भारतवर्ष के बाहर की एक जङ्गली जाति का हाल पाठकों को सुनाते हैं।

अफ़रीक़ा के दक्षिण-पूर्व में मैडेगास्कर नाम का एक द्वीप है। यह द्वीप बहुत बड़ा है। इसकी चौड़ाई कोई एक सौ मील और लम्बाई तीन सौ मील होगी। यह टापू चारों तरफ़ घने जङ्गलों से घिरा हुआ है। इसलिए इसमें हिंस्र-जन्तुओं की कमी नहीं। इसके सिवा कोई चालीस पचास प्रकार के बन्दर भी इस टापू में आनन्द से विहार किया करते हैं। प्रकार से यहाँ मतलब जाति से है। सो एक एक जाति के बन्दरों ही की संख्या लाखों होगी। सब जातियों के बन्दरों की संख्या यदि गिनने को मिले तो शायद वह करोड़ों तक पहुँचे। बन्दरों की इन जातियों में एक जाति लेमर्स नाम के बन्दरों की है। इस जाति के बन्दर बड़े ही भयानक होते हैं। वे वहाँ बड़ी कसरत से पाये जाते हैं।

मैडेगास्कर में अनेक जातियों के लोग निवास करते हैं। उनमें हबशी, अरब और सकालवा मुख्य हैं। ये पिछले, अर्थात् सकालवा जाति के ही लोग, इस टापू के मूल-निवासी हैं। ये लोग मैडेगास्कर टापू के पश्चिमी समुद्र-तट पर अधिक रहते हैं। ये हबशियों ही के सदृश काले होते हैं। इनकी शरीर-कान्ति सुपक्व जम्बूफल के रङ्ग को भी मात करती है। ये लोग सुदृढ़ और बलवान् भी ख़ूब होते हैं। होना ही चाहिए। निर्बलता और कोमलता तो सभ्यता ही की सगी बहनें हैं। सभ्यता महारानी के सुराज्य में ही उन्हें आश्रय मिल सकता है, अन्यत्र नहीं। सकालवा जाति के मनुष्यों के बाल लम्बे और घुँघराले होते हैं। आँखें बड़ी—आकर्णतटायत—और गहरी होती हैं। नथुने भी ख़ूब लम्बे-चौड़े होते हैं।

समुद्र के किनारे रहनेवाले सकालवा लोग धीवरों अर्थात् मछुओं का काम करते हैं। यही उनका मुख्य व्यवसाय है। मछली खाना उन्हें पसन्द भी बहुत है। जो लोग समुद्र से दूर रहते हैं और खेती करते हैं वे भी अपने सजातीय मछुओं से मछली मोल लिये बिना नहीं रहते। पर बदले में कोई सिक्का न देकर अपनी खेती की उपज, धान या चावल, आदि ही देते हैं। नमक भी वे इसी तरह स्वयं उत्पादित धान्य से बदल कर अपना काम निकालते हैं। शराबख़ोरी, चोरी और लड़ना-भिड़ना इनकी आदत में दाख़िल है। प्रत्येक सकालवा अपने पड़ोसी से भी सदा डरता रहता है। वह समझता है, कहीं ऐसा न हो जो धन के लोभ से वह उसे मार डाले या ग़ुलाम बनाकर बेच ले। इस जाति में कहीं कहीं मनुष्यों के ख़रीद-फ़रोख़्त की प्रथा अब तक जारी है।

मैडेगास्कर के इन मूल-निवासियों में एक बड़े ही अद्भुत ढँग का रणनृत्य होता है। जब ये आक्रमण, युद्ध, हर्ष-प्रकाशन आदि का आदेश अपने सहयोगियों या साथियों को देते हैं तब एक विचित्र रीति से अङ्ग-सञ्चालन करते हैं; मुँह से कुछ नहीं कहते। इनकी बन्दूकें ख़ूब लम्बी होती हैं। उनके ऊपरी भाग पर काँसे का एक काँटा लगा रहता है। वह शायद शिस्त लेने के लिए लगाया जाता है। नाच के समय ये लोग अपनी अपनी बन्दूकें लिये रहते हैं। उन्हें ये एक हाथ से उछालते और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे हाथ से रोकते हैं। उछालते समय जो हाथ ख़ाली हो जाता है उससे ये अपने अपने रूमाल हिलाने लगते हैं।

इस जाति के जो मूल निवासी समुद्र के पूर्वी तट की तरफ़ रहते हैं वे प्रायः शान्त और नम्रस्वभाव होते हैं। परन्तु उनके सिर के बाल देख कर डर लगता है। वे सुअर के बालों की तरह सीधे खड़े रहते हैं। वासस्थान के अनुसार इन लोगों के समुदायों के नाम भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। यथा—जङ्गलों में रहनेवाले जङ्गली, मैदानों में रहनेवाले मैदानी और झीलों के किनारे रहनेवाले झीलवाले कहाते हैं।

मैडेगास्कर में जो प्रान्त समुद्र-तट से दूर हैं वहाँ होवास नाम की एक जाति रहती है। इस जाति के मनुष्य भी इस टापू के मूल निवासी हैं। यह राज-जाति है। यही जाति समस्त मूल निवासियों पर शासन करने का गर्व रखती है। वह कहती है, हम राज-वंशी हैं। अतएव शासन का अधिकार हमको छोड़ कर और किसी को नहीं। परन्तु सकालवा लोग इनका शासन नहीं मानना चाहते। वे कहते हैं—हम चुनां दीगरे नेस्त। होवास होते कौन हैं? उन्हें राजा बनाया किसने? इस कारण इन दोनों जातियों में सदा झगड़े-बखेड़े हुआ करते हैं। नृवंश-विद्या के ज्ञाताओं का अनुमान है कि होवास लोग मलयवंशी हैं। प्राचीन समय में कुछ जावा-निवासी मैडेगास्कर में जा बसे थे। ये लोग उन्हीं की सन्तति हैं। इनका रङ्ग गोरा, क़द नाटा और बदन मोटा होता है। बाल मुलायम और काले होते हैं। दाढ़ी छोटी और आँखें लाल लाल होती हैं। अतएव रूप-रङ्ग और शरीर-सङ्गठन में ये लोग सकालवा जाति के आदमियों से नहीं मिलते। फिर भला वे लोग इन गोरों का शासन क्यों स्वीकार करें? संसार में गोरों की धींगाधींगी चलती ज़रूर है, पर सदा और सर्वत्र नहीं।

सकालवा लोग कोई छः हाथ लम्बा और डेढ़ हाथ चौड़ा कपड़ा कमर में लपेटते हैं। स्त्रियाँ भी ऐसा ही करती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही एक सा वस्त्र व्यवहार करते हैं। याद रहे, इन लोगों ने अपने राजे अलग बना रक्खे हैं। मलय-वंशी जाति के आदमियों के राजा को ये अपना राजा नहीं मानते। इनके राजा लाल रङ्ग के कपड़े पहनते हैं। रानियाँ भी इसी रङ्ग के कपड़ों से अपने शरीर की सुन्दरता बढ़ाती हैं। जब वे घूमने निकलती हैं तब उनके सिर पर लाल ही रङ्ग का एक छत्र लगाया या मुकुट रक्खा जाता है। मार्ग में लोग झुक झुक कर उन्हें प्रणाम करते और आशीर्वाद देते हैं—"चिरजीवी रहें सदा रानी हमारी"।

स्त्रियाँ अपने बाल बहुत कम बाँधती या गूँथती हैं। बात यह है कि यह काम बड़े परिश्रम और बड़े कष्ट का समझा जाता है। तीन तीन चार चार घण्टे की लगातार मिहनत से कहीं एक स्त्री के बाल सँवारे, गूँथे और बाँधे जा सकते हैं। इतना झंझट करे कौन? वर्ष छः महीने बाद कभी, हमारी होली-दिवाली के त्योहार की तरह, इनके केश-प्रसाधन का त्योहार भी मना लिया जाता है। स्त्रियाँ, प्रसाधन के समय, अपने सिर के बालों को पहले २४ भागों में बाँटती हैं। फिर प्रत्येक भाग को अलग अलग सँवार कर उसका जूड़ा बनाती हैं। इसी तरह २४ जूड़ों का एक समूह बना कर और उसे मज़बूती से गूँथ कर लटका लेती हैं। कहीं कहीं जूड़ा न बनाने की भी चाल है। वहाँ समस्त केशपाश की २४ वेणियाँ बना कर वही सिर के इधर-उधर लटका ली जाती हैं।

सकालवा लोगों का प्रधान खाद्य तो चावल है; पर वे लोग मांसभोजी भी हैं। शाक-सब्ज़ी और चावल के सिवा वे गाय, बैल, सुअर, बकरी आदि का मांस भी खाते हैं। वे दिन में दो दफ़े भोजन करते हैं—दोपहर को, और फिर कुछ रात बीतने पर। इन लोगों का मेदा चावल अच्छी तरह नहीं हज़म कर सकता। यदि किसी ने ज़रा भी अधिक खा लिया तो पेट चलने लगता है। भोजन करते समय पुत्र के सामने माँ बैठी ही नहीं रहती। वह उसके पेट पर ढीला करके फीते की तरह कपड़े की एक चिट बाँध देती है। खाते खाते बच्चे के पेट से ज्यों ही फीता लग जाता है त्योंही माँ बच्चे के सामने से खाद्य पदार्थ खींच लेती है। मतलब यह कि बच्चा इतना न खा जाय कि हज़म न कर सके।

सकालवा लोग नास के बड़े शौकीन हैं। वे दिन-रात नास सूँघा नहीं, किन्तु फाँका करते हैं। सब जानते हैं कि हमारे देश में नास सूँघा जाता है। परन्तु सकालवा लोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे नाक से नहीं सूँघते। वे उसे मुँह में डालते और धीरे धीरे चूसा करते हैं। वे बाँस काट कर उसी की नासदानियाँ बनाते हैं।

हम लोगों की तरह सकालवा भी अपने अपने घरों में छप्पर छाते हैं। उनके छप्पर घास के होते है। दीवारें लाल मिट्टी की होती हैं। घरों के दरवाज़े छोटे होते हैं; सीधा खड़ा होकर आदमी घर के भीतर नहीं जा सकता। जब कोई सकालवा किसी और के घर जाता है तब एक-दम घुसता नहीं चला जाता। वह दरवाज़े पर रुक जाता है और खड़े खड़े आवाज़ देता है—"क्या मैं भीतर आ सकता हूँ?" यह सुनते ही गृहिणी उत्तर देती है—"शुभागमन। आइए।" यह कहती हुई वह बाहर निकल आती है और अभ्यागत को घर के भीतर ले जाती है। वहाँ वह उसे सादर बिठाती और आगमन का कारण इत्यादि पूछती है। ये लोग आतिथ्य करना ख़ूब जानते हैं। अभ्यागतों का दिल कभी नहीं दुखाते।

सकालवा लोग चटाइयाँ बनाने में बड़े पटु हैं। वे उसी पर बैठते और सोते हैं। उनके घर लम्बाई में पन्द्रह बीस गज़ से अधिक नहीं होते। वे बहुत गन्दे रहते हैं। कारण यह कि सोने, बैठने, भोजन बनाने, चीज़-वस्तु रखने और पशु बाँधने के लिए उनमें अलग अगल स्थान नहीं रहते। वहीं, उसी छोटे से घर में, सब काम होते हैं। जहाँ खाना बनाते हैं वहीं सो जाते हैं। जहाँ बैठते उठते हैं वहीं पशु बाँध देते हैं।

ये लोग शुभाशुभ का बड़ा विचार करते हैं। इन्होंने कुछ दिन शुभ मान रक्खे हैं, कुछ अशुभ। इनका ख़याल है कि अशुभ दिन सन्तानोत्पत्ति होने से वह माता-पिता के लिए क्लेशदायक होती है। अतएव यदि किसी के घर बुरे दिन बच्चा होता है तो वह तत्काल ही पानी में डुबो कर मार डाला जाता है। पर कहीं कहीं इस रीति में कुछ अपवाद भी है। वहाँ अशुभ दिन में उत्पन्न हुआ बच्चा किसी गाय या बैल के आगे फेंक दिया जाता है। दैवात् यदि वह पशु बच्चे को नहीं कुचलता तो समझा जाता है कि बच्चा सुलक्षणी है, मार डालने की ज़रूरत नहीं। तब बच्चे के घरवाले उसे उठा लाते हैं और आनन्द मनाते हैं। यदि पशु ने उसे कुचल दिया और वह मर गया तो माता उसे कपड़े से ढक कर एक नई हाँडी में रख देती है और उस हाँडी को ज़मीन में गाड़ देती है।

सुलक्षण-संयुक्त बच्चा जन्म के बाद सातवें दिन घर से बाहर निकाला जाता है। फिर उसे माता-पिता किसी अहीर के यहाँ ले जाते हैं। अहीर से मतलब उस सकालवा से है जिसके यहाँ पशु बहुत होते हैं। वहाँ पर अहीर, और कहीं कहीं बच्चे का पिता, बच्चे को सम्बोधन करके कहता है—"तुम्हारा व्रत या व्यवसाय गोपालन हो। तुम ख़ूब धनवान् हो। तुम बहुत से बाल-बच्चेवाले हो"। इस रस्म के अदा हो जाने पर, माता-पिता बच्चे को लेकर अपने घर लौट आते हैं। इसके कुछ ही समय पीछे बच्चे का नामकरण-संस्कार होता है। बच्चों के नाम उनकी भाषा में, सदा उनकी आकृति के अनुसार रक्खे जाते हैं। यथा—गौरकाय, श्याममूर्ति, चिपिटाक्ष, दीर्घनास, लम्बोष्ठ, लोलजिह्व, शूर्प-कर्ण, कम्बुकण्ठ, उन्नतोदर आदि।

सन्ततिमती मातायें जब कहीं बाहर जाती हैं तब बच्चों को कपड़े से पीठ पर बाँध लेती हैं। कभी कभी ऐसा दृश्य देखने को मिलता है कि स्त्री अपने सिर पर तो जल से भरा हुआ एक बड़ा सा घड़ा रक्खे है और पीठ पर छः सात वर्ष का एक बच्चा भी लादे है। सकालवा जाति के बच्चे अपनी माता से पहले पहल जो शब्द सीखते हैं उनका अर्थ है कि अपने साथ हमें भी ले चलो।

इन लोगों की स्त्रियाँ, भारतीय स्त्रियों की तरह, कभी बेकार नहीं बैठतीं। भोजन तैयार करने के बाद या तो वे धान कूटती हैं या सूत कातती, कपड़ा बुनती, अथवा टोपी, खाट, मचिया, टोकरी आदि बनाती हैं। कभी कभी खेती के काम में वे अपने पतियों की मदद भी करती हैं।

मैडेगास्कर के मूल निवासी नाचना बहुत पसन्द करते हैं। आमोद-प्रमोद में स्त्री-पुरुष सभी शरीक होते हैं। परन्तु अँगरेज़ों की तरह वे इकट्ठे नहीं नाचते। नाचने के समय पैर बहुत नहीं हिलाते; हाथों का सञ्चालन ही अधिक करते हैं।

बहुत समय से मैडेगास्कर में स्त्रियाँ ही शासन करती हैं। जिस समय जो रानी होती है उस समय वह अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए एक नया ही राज-भवन निर्माण कराती है। राज-प्रासाद एक छोटी सी पहाड़ी पर बनाया जाता है। बनावट में वह साधारण घरों ही की तरह होता है। पर, हाँ, कुछ बड़ा अवश्य होता है और उसमें कुछ राजसी ठाट के सामान भी होते हैं।

किसी समय इस टापू में मूर्तिपूजा प्रचलित थी। नाना प्रकार की मूर्तियाँ पूजी जाती थीं। उनमें एक मूर्ति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। उत्सव के दिन लोग उसे लोहे के एक अद्भुत वर्म्म किंवा जालीदार वस्त्र से ढक कर जगह जगह घुमाते थे। मूर्ति के आगे आगे एक आदमी, भीड़ को हटाता हुआ, दौड़ता था। सकालवा लोगों का विश्वास था कि मूर्तियों की प्रसन्नता और सन्तुष्टि पर ही देश का मङ्गल अवलम्बित है।

इस कराल कलिकाल में ईसाई-धर्म्म-प्रचारकों को यदि सर्वव्यापक कहें तो भी कुछ अत्युक्ति नहीं। ये सारे संसार को पुण्यात्मा बनाने और उसे स्वर्ग के सिंहासन पर बिठाने के लिए दिन-रात फिक्रमन्द रहते हैं। अपने देश, अपने प्रान्त, अपने नगर, यहाँ तक कि अपने घर तक में भी प्रभु ईसामसीह की सुन्दर शिक्षाओं पर चाहे मनों हरताल क्यों न पोता जाता हो, उसकी इन्हें उतनी फिक्र नहीं। उन लोगों को धर्म्मभीरु और धर्म्माचरणरत बनाने की ओर इनका ध्यान उतना नहीं जाता जितना कि एशिया और अफ़रीक़ा के विधर्म्मियों, अतएव पाप-परायणों, को धर्म्मनिष्ठ बनाने की ओर जाता है। अतएव इस तरफ़ ऐसा कोई भी देश या टापू नहीं जहाँ परोपकारव्रत के व्रती पादरियों के क़दम शरीफ़ न पहुँचे हों। इसी सद्बुद्धि की प्रेरणा से, १८२० ईसवी में, मैडेगास्कर में भी कुछ पादरी पहुँचे। वहाँ के तत्कालीन राजा ने उनका अच्छा आदर-सत्कार किया। यथासमय उस राजा की मृत्यु हुई। उसके बाद उसकी रानी ने राज्य-भार ग्रहण किया। जिस दिन वह राजासन पर बैठी उसी दिन लोहे के आभरणों से आवृत दो मूर्तियाँ उसके सामने लाई गईं। उन पर हाथ रखकर रानी ने कहा—"हम तुम पर विश्वास करती हैं। हमारी रक्षा तुम्हारे ही हाथ है"। इधर इसके पहले ही बहुत से मैडेगास्कर-वासी, ईसाइयों के पेच में पड़ कर, ईसाई हो चुके थे। रानी ने उन्हें दण्ड देने का निश्चय किया। किसी को उसने क़ैद कर लिया, किसी को फाँसी दे दी और किसी को जीता ही गड़ा दिया। पर स्वयं रानी ही का एक लड़का, जो ईसाई हो गया था, किसी तरह बच गया।

पूर्वोक्त रानी के मरने पर दूसरी रानी गद्दी पर बैठी। कुछ दिनों बाद, वह खुद ही ईसाइन हो गई। इस कारण उसने राज्य भर में मनादी करवा दी कि जितनी मूर्तियाँ हैं सब तोड़ डाली या जला डाली जायँ। इस आज्ञा का यथासाध्य परिपालन किया गया। फल यह हुआ कि तब से ईसाई-धर्म्म ही की तूती वहाँ बोल रही है। इस समय मैडेगास्कर में छोटे बड़े सौ सवा सौ गिरजे होंगे। अधिकांश सकालवा लोग हज़रत ईसा की पवित्र भेड़ों के ग़ल्ले में शामिल हो गये हैं और सातवें आसमान पर चढ़ा दिये जाने का रास्ता देख रहे हैं। प्रभो, मसीह, उनकी कामना फलवती कीजियो!

शिवगोपाल मिश्र

अन्योक्तिमणिमाला।

(कुण्डलिया)

१

सरस (१) अमृत (२) दायक सुखद अति उदार अभिराम।
जगजीवन (३) आधार तुम कामरूप (४) घनस्याम॥
कामरूप घनस्याम सुजस दिसि दिसि में छाये।
यहै जानि व्रत ठानि रहै चातक चितलाये॥
रटै तिहारो नाम तृषा सहि जो तजि सरवर।
'जनसीदन' सुधि लेहु न क्यों ताकी एहि अवसर॥

२

सागर, सरवर, कूप जग जदपि अनेक लखात।
तउँ चातक तुअ आस करि अनत न जाचन जात॥
अनत न जाचन जात रात दिन तुअ गुन गावै।
स्वाती की इक बूँद हेतु निजकंठ सुखावै॥
दै तेहि जीवन (५) दान प्रान पालहु धाराधर!
'जनसीदन' तनतापसमन तुम करुनासागर।

---

१ रससहित, जलसहित। २ मोक्ष, जल। ३ जीवन, जल। ४ कामदेव, रूप, इच्छारूपी। ५ प्राण, जल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

पर उपकारी अवसि तुम रसमय सुखद अथोर।
जीवनदाता जगत के जस जाहिर चहुँ ओर॥
जस जाहिर चहुँ ओर मोर मन मोद बढ़ावत।
कोमल अति कमनीय तोय (१) दै ताप नसावत॥
पै जनसीदन भूल एक यह कहा तिहारी।
करत न पात्र विचार जदपि घन पर उपकारी॥

४

अतिप्रसन्न श्री को सदन (२) सुमन-वृन्द-सिर-ताज।
कोमल परम सरोज! तुम बरनत सुकविसमाज॥
बरनत सुकविसमाज भुवनभूषन (३) मनभावन।
सरस सहित आमोद सुखद तनताप नसावन॥
केहि कारन तजि तदपि तोहि यह मधुप मन्दमति।
जनसीदन बनकुटज सेवि सन्ताप सहत अति॥

५

जानत जग जाहिर अहै तेरो सुजस महान।
हरिपद को उपमान दै करत सुकवि गुन-गान॥
करत सुकवि गुन-गान गुनी सिरमौर (४) सरस अति।
लखत न कछु निज हानि कमल क्यों भये भ्रान्तमति॥
निरखि सीत को स्वच्छ, धारि सिर हित करि मानत।
जनसीदन परिनाम कहा ह्वै है नहि जानत॥

६

जब लगि अम्बुज! मानसर जल सम्बन्ध लखात।
तब लगि जानहु मित्र कर परस (५) जनित सुख गात॥
परस जनित सुख गात फूलि मधुमद बस झूमहु।
जानि ताहि निज बन्धु प्रेम सों कर (६) गहि चूमहु॥
दै है अति परिताप वही बनि तपन (७) रूप तब।
"जनसीदन" जल हीन दीन लखि है तों कों जब॥

७

बसि अभिमानी भेक सँग निज गुन गरिमा भूलि।
मत्त मधुप झंकार तैं गयो तनिक में फूलि॥

१ जल। २ शोभा का या लक्ष्मी का गृह। ३ जल का या संसार का भूषण। ४ गुणियों का मुकुट या तन्तु-मानों का शिरोभूषण। ५ मित्र का करस्पर्श (सेकिंड हैन्ड) या सूर्य की किरण का स्पर्श। ६ हाथ या किरण। ७ चण्डकर।

गयो तनिक में फूलि हंसपति वंश उजागर (१)।
मधु सुवास दै ताहि कछुक सोच्यौ न गुनागर॥
"जनसीदन" रस चूसि रह्यौ वह कोप मध्य फँसि।
हटत न मलिन मलिन्द रमा कहँ लहै चैन बसि॥

८

मधुकर जो मकरन्द लहि रहे कमल बन भूमि।
गहे गैल नहि और के निज प्रियतम पग चूमि॥
निज प्रियतम पग चूमि गूँजि सौभाग्य जनायो।
लहि आमोद-प्रमोद कबहु कछु दुःख न पायो।
"जनसीदन" लखि ताहि तुहिनकृत (२) दीन हीन तर।
ढूँढ़त कुटजप्रसून धन्य सन्तोषी मधुकर॥

९

विधि वस पल्वल (३) पंक में प्रकट्यौ पंकज आय।
निज महिमा सुनि भेक सों विकस्यौ हिय हुलसाय॥
विकस्यौ हिय हुलसाय धन्य अपने कों मानै।
ताकों जानि गुनज्ञ मधुर मधु दै सनमानै॥
"जनसीदन" अविवेक देखि तेरो यह रसनिधि।
रहै भृङ्ग केहि भाँति जहाँ अस भेक भजनविधि॥

१०

क्यों बरजै कोऊ तुम्हें कमलिनि! कमला गेह।
करहु केलि मिलि मधुप सँग तजि निज नायक नेह॥
तजि निज नायक (४) नेह, देह की जलन बुझावो।
रस चखाय भरि रैन चैन सों चित हुलसावो॥
मधुमदमाती रहै, राग-रसिकन ढिग लरजै।
"जनसीदन" तुम धन्य वृथा कोऊ क्यों बरजै॥

११

पावतहू जल फल मधुर रटत राम दिन रात।
रहि सुबरन के पींजरा कीर(५) अधिक अकुलात॥
कीर अधिक अकुलात, जदपि नृप करतें लालित।
रहै मौन गहि सुमिरि वास निज गमन अवारित॥
'जनसीदन' लहि बन्धव्यथा, आदर नहि भावत।
कैसे ह्वै हैं स्वजन सोचि यह कल नहि पावत॥

१ ब्रह्मा के वंश को उज्ज्वल करनेवाला। २ पाला। ३ गढ़ा। ४ कमलिनी-नायक सूर्य। ५ सुग्गा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२

फल्यौ न जो इक साल यह सुखदायक सहकार (१)।
रसलोभी कोयल तऊँ तजत न ताकी डार ॥
तजत न ताकी डार बैठि मृदु वचन सुनावै।
'जनसीदन' गुन गाय धीर धरि समय बितावै ॥
सेवन चहत न निम्ब, सोचि यह मन बिचल्यौ ना।
फलि है कुछ दिन बाद फेरि जो अबै फल्यौ ना ॥

१३

है यह वही रसालतरु सुन्दर सुखद महान।
जासु मधुर फल चाखि तुम करत रहे गुन गान ॥
करत रहे गुन गान आन की आस न राखी।
पाय विविध सम्मान दान, कीरति बहु भाखी ॥
'जनसीदन' पिक ! देख आज वह दैव-दलित है।
दलविगलित(२) लखि ताहि तोहि तजिबो न उचित है ॥

१४

सोभा चहुँ दिस घाट की भले रहे सरसाय।
सलिल (३) स्वच्छ सोभित सदा रमासदन(४)समुदाय(५)।
रमासदन समुदाय सेवि अलिगन गुन गावैं।
उछलैं भेक (६) समाज मीन कौतुक दरसावैं ॥
'जनसीदन' पुनि लसैं सदा बक वृन्द अछोभा।
पै सरवर ! विन राजहंस तेरी नहि सोभा ॥

१५

सरवर जल सूखन लगे पहुँचे सूकर वृन्द।
लगे चवाने चाव सों खोदि कमल के कन्द ॥
खोधि कमल के कन्द मूल जहँ लगि जो पाये।
खाये भरि भरि पेट पंक (७) में लेटि अघाये ॥
जीवन (८) जो कुछु रह्यौ बाँचि सोउ भयो मलिनतर।
जनसीदन अब हंस जोग यह रह्यौ न सरवर ॥

१६

कहत दुखी ह्वै मानसर-सेवी विमल मराल।
करहु कृपा घनस्याम (९) अब सूखन चाहत ताल ॥
सूखन चाहत ताल तप्त लगि तेज तपन के।
सरन कौन एहि अगति कमल आमोद भवन (१) के ॥
'जनसीदन' यह सोचि चैन चित नेकहु न गहत।
जातें बहुसुख लह्यौ ताहि कस लखूँ शोकहत ॥

१७

अतिअगाध जल स्वच्छ, सुख पायो विविध विधान।
जब देखी पङ्किल दसा लगे मीन अकुलान ॥
लगे मीन अकुलान प्रान कैसे अब बचि है।
करि है नहि घनस्याम, कृपा ! सर ताप न तचि है ॥
पै पङ्कहु लखि सुखी भेक उमगत कृतघ्न मति।
"जनसीदन" कलहंस कृसित सर देखि दुखी अति ॥

१८

लखि सर सूखे भेक को विकल काग भयभीत।
गयो तुरत लै मानसर हंस जगत को मीत ॥
हंस जगत को मीत दया करि प्रान बचाये।
सहि कलेस तन आप ताप सब तासु दुराये ॥
'जनसीदन' दुख लह्यौ भेक सुस्वाद सलिल चखि।
धिक् ! मानस (२) जिहि बीच कीच(३) नहि पड़ै नेक लखि ॥

१९

दियो हंस ने काग को फल रक्षण को भार।
आपु करत निश्चिन्त ह्वै मानस माँहि विहार ॥
मानस माँहि विहार करत उत साधु विचारे।
इत अघाय फल खाय काग काँचहि कचि डारे ॥
ता तरु पै पुनि वास कियो मिलि काकवंस ने।
जनसीदन का समुझि भार एहि दियो हंस ने ॥

२०

विचरत पङ्कज-कुञ्ज में मोती चुनि चुनि खात।
रहत मानसर में सदा कबहु न दुखी लखात ॥
कबहु न दुखी लखात समय सुख ही में बीत्यौ।
जासु गमन गम्भीर नृपतिगन की गति जीत्यौ ॥
जनसीदन वह हंस हाय ! भेकन सँग विहरत।
क्यों पल्वल जल बीच आज व्याकुल ह्वै विचरत ॥

जनार्दन झा

---

१ अति सुगन्धित आम। २ पत्रविगलित, सैन्य-समाज-रहित। ३ पानी। ४ लक्ष्मी का गृह, कमल। ५ समूह। ६ मेढक। ७ कीचड़, पाप। ८ पानी, प्राण। ९ श्रीकृष्ण, काली घटा।

१ सुगन्ध का या हर्ष का गृह। २ मानसर या मन। ३ कादों या मालिन्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्च-पात्र।

[सन् १९२० की बात है। एक दिन कलकत्ता में एक विशेष समाज की स्थापना हुई। इसमें किसी प्रकार का चन्दा नहीं देना पड़ता था। इसके सदस्य केवल पाँच व्यक्ति हो सकते थे, एक अँगरेज़, दूसरा फ्रेंच, तीसरा जापानी, चौथा मुसलमान और पाँचवाँ बङ्गाली। इस समाज का यह नियम था कि जब सब लोग मिल कर कोई दिन ठीक करें तब जिस सदस्य की बारी हो वह अपने देश की प्रथा के अनुसार सबको एक बढ़िया दावत दे, उसके बाद अपने ही देश की कोई कहानी कहे। इस समाज के सदस्य अपने आप ही सदस्य बन बैठे थे। अँगरेज़, जापानी, फ्रेंच, और बङ्गाली के बाद मुसलमान की बारी आई। उसने अपने मित्रों को मुसलमानी ढङ्ग की दावत दी। जब सब लोग अच्छी तरह खा-पी चुके तब कहानी प्रारम्भ हुई। मुसलमान ने कहा—]

मैं उन दिनों की बात कहता हूँ जब मैं हांगकांग में था। वहीं एक विचित्र शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति से मेरी मैत्री हुई। उसका नाम था ज़हूर अहमद। उसी की बदौलत कई बार मेरे प्राणों की रक्षा हुई। पेकिन में एक बार मैं और मेरी स्त्री पादड़ियों के एक जाल में फँस गये थे। बड़ा ख़तरनाक मौक़ा था। पर ज़हूर अहमद ने ठीक समय में आकर हमारी रक्षा की और पादड़ी साहब को ही अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि ख़ुदा ने मेहरबानी कर मेरे लिए एक दोस्त भेज दिया था। हम लोगों की यह कथा बड़ी लम्बी है। उसे कहने से अधिक लाभ भी नहीं। आज मैं आप लोगों को उसी के बाद की एक कथा कहता हूँ।

हम लोग करांची जाने के लिए जहाज़ पर बैठे। जहाज़ के छूटने का भोंपू बजते ही ज़हूर अहमद ने एक ठण्डी सांस ली। हम दोनों डेक पर पास पास खड़े बन्दरगाह का दृश्य देख रहे थे। जहाज़ रवाना हो गया। धीरे धीरे उससे बन्दर का अन्तर बढ़ने लगा। ज़हूर अहमद मेरी ओर मुख़ातिब होकर एकाएक बोले—मियाँ, यह जहाज़ भी ठीक वैसा ही है जिस पर हम लोगों ने करांची से यात्रा की थी। इसके स्मोकिंग-रूम का आदमी भी उसी जहाज़ का सा मालूम पड़ता है।

मैंने हँस कर कहा—आपने तो मौनव्रत सा धारण कर लिया था। आध घण्टा बाद अब आपका मुँह खुला है। और सो भी इस तरह।

ज़हूर अहमद ने मेरी ओर ग़ौर से देख कर कहा—मियाँ, लतीफ़न बीबी कुशल से तो है न?

मैंने चकित होकर कहा—हाँ, वह अपनी केबिन में बड़े मियाँ की स्त्री के साथ है। आप इस प्रकार क्यों पूछ रहे हैं?

ज़हूर—ख़ैर, जो बात मैंने आपसे बम्बई में कहनी मुनासिब नहीं समझी थी उसे मैं अब बता देना ग़ैर मुनासिब नहीं समझता। साफ़ बात यह है कि पिछले दो दिन मुझे बड़ी बेचैनी से बिताने पड़े।

मैंने पूछा—बात क्या है? बताओ तो।

ज़हूर—वही चर्च-यार्ड के खड्ड की बात। मैं जानता हूँ, आप कहेंगे—वहाँ कोई नहीं था, वहाँ से हम लोग चुपचाप खिसक आये थे, किसी को कानों कान ख़बर भी नहीं हुई थी। मगर मियाँ, आप उन लोगों से वाक़िफ़ नहीं हैं। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। कुशल हुई कि लतीफ़न बीबी बच गई और उन पाजियों के एक मुखिया की जान गई तो गई। पर वे पाजी ऐसे हादसे को कभी माफ़ नहीं कर सकते। जब बम्बई में मुझे धमकी का टाइप किया हुआ उनका एक ख़त मिला तब मुझे बिलकुल तअज्जुब न हुआ।

मैंने ज़ोर से कहा—पर उस समय मुझे क्यों नहीं बताया?

ज़हूर—"आप कुछ भी नहीं कर सकते थे। इसके सिवा मैं आपकी लड़की को डराना भी नहीं चाहता था"।

मैं—"किस बात की धमकी दी गई है"?

ज़हूर अहमद ने हँस कर कहा—उसमें लिखा है कि हादसे के विचार से तुम सबकी जान मौक़ा मिलते ही ली जायगी।

मैंने ज़रा घबरा कर कहा—ऐं ऐसी बात! तब तो हमें सावधान रहना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़हूर—"मुझे तो उनकी धमकी की कुछ भी परवा नहीं है। हम लोग वहाँ से चले आये हैं। यद्यपि किसी प्रकार की विपत्ति के आने का अवसर बिलकुल जाता रहा है, तो भी हम लोग अभी बिलकुल उसके बाहर नहीं हो गये हैं। शायद वह कोरी धमकी ही हो। और जब बम्बई में हम लोगों पर उन्होंने कोई वार नहीं किया तब मेरी समझ में वह धमकी कोरी धमकी ही है। परन्तु आप इन पाजियों को नहीं जानते। जहाँ एक बार इन धर्मान्धों से साबक़ा पड़ा कि फिर अपनी ख़ैर न समझो।

पानी पी चुकने के बाद डेक पर टहलते हुए ज़हूर अहमद ने फिर कहा—लेकिन हमें अभी अपनी ओर से कोई कार्रवाई नहीं करनी है। हमें सिर्फ़ यही देखना चाहिए कि क्या होता है।

मैंने कहा—यह भी सम्भव है कि यह धमकी सिर्फ़ डराने के लिए दी गई हो।

गम्भीरता से ज़हूर अहमद ने कहा—सम्भव है। यदि ऐसा ही है तो वे अपने उद्देश में सफल-मनोरथ हुए हैं। मैं इसी धमकी के कारण अड़तालीस घण्टे से बेचैन हूँ। ख़ैर, आपकी पत्नी तो सुरक्षित हैं। इस बात की सूचना न पाने से उसे भय का भी अनुभव नहीं करना पड़ा।

जहाज़ पर अधिक भीड़-भाड़ नहीं थी। यात्री आराम से या तो इधर-उधर टहल रहे थे या खेल-कूद रहे थे। जब ज़हूर अहमद की जहाज़ के कप्तान से भेट हुई तब वह उनका परिचित निकला, अतएव हम लोग उसके पास बैठने उठने लगे। मुझे याद पड़ गया कि शंघाई में ज़हूर अहमद और यह कप्तान एक गुप्त घटना में शामिल थे, पर उसका भेद सन्तोषजनक रीति से कभी नहीं प्रकट हुआ। एक दिन कप्तान ने हम लोगों को एक भारतीय ईसाई—मिस्टर पिटमैन—से परिचित कराया।

कप्तान ने कहा—वह एक सुन्दर नौजवान है। उसके धन का अन्दाज़ नहीं है। कलकत्ता में उसका एक महल है। पर ज़्यादातर वह दौड़े पर ही रहता और अपनी कोठियों की देख-भाल करता रहता है। मुझे आश्चर्य होता है कि आपसे उसकी बम्बई में भेट नहीं हुई। वह तो आपका हमपेशा और देश-वासी है।

इसी समय मिस्टर पिटमैन आ पहुँचा। उसे देखते ही मुझे कप्तान का कथन अक्षर अक्षर ठीक जँचा। उसकी पोशाक बहुत ही साफ़-सुथरी थी, वह ख़ास लन्दन की बनी हुई थी। उसके मुख की आकृति मनोमोहक थी। वह अत्यधिक सुन्दर था। हँसते समय उसके दाँत मोती की लड़ी की तरह दमक उठते थे। बात-चीत करने पर उसकी योग्यता का परिचय मिला। उसे अनेक विषयों का पूर्ण ज्ञान था। मतलब यह कि वह जैसे सजीला जवान था वैसा ही उसका मस्तिष्क भी परिष्कृत था।

परिचय हो जाने पर ज़हूर अहमद और मुझसे मिस्टर पिटमैन की बात-चीत शुरू हुई। वह संसार भर की यात्रा कर चुका था, इस कारण उसका अनुभव बहुत बढ़ा चढ़ा था। अतएव मेरे मित्र ज़हूर अहमद की उससे ठीक बैठ गई। यद्यपि ज़हूर अहमद पिटमैन की बराबरी नहीं कर सकते थे, तो भी कम से कम वे योरप-अमरीका आदि देशों से पूर्णरूप से परिचित थे। मुझे कप्तान से मालूम हुआ था कि पिटमैन केवल एक अनुभवी यात्री ही नहीं हैं, किन्तु वह चीन के प्राचीन इतिहास का ज्ञाता, बिजली के काम में विशेषज्ञ और बेला बजाने में उस्ताद हैं।

मैं जहाज़ के डेक पर टहल रहा था कि ज़हूर अहमद आते हुए दिखाई दिये। उनके चेहरे का रङ्ग देखते ही मैं तुरन्त समझ गया कि कोई विशेष बात हुई है। चारों ओर सावधानी से देख कर उन्होंने मुझे एक काग़ज़ दिया और कहा—मियाँ, यह काग़ज़ मुझे अपने तकिये के नीचे पड़ा मिला है। उस पर अँगरेज़ी में सिर्फ़ एक वाक्य लिखा था—याद रक्खो, तुम्हें अपनी जान गँवानी पड़ेगी।

उसे पढ़ते ही मैं घबरा गया। मैंने पूछा—यह वहाँ कैसे पहुँचा ?

ज़हूर अहमद ने कहा—मैं नहीं जानता। इसे पाते ही मैंने लस्कर को तुरन्त बुलाया, उससे बहुतेरा पूछा पाछा, यहाँ तक की ख़ूब धमकी भी दी, पर सब व्यर्थ। वह साफ़ इनकार कर गया। मुझे भी यही समझ पड़ा कि उसे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं मालूम है। यह कह कर उन्होंने सिगरट जलाई, उसे पीते हुए वे क्षण भर के लिए ध्यान में डूब गये। इसके बाद उन्होंने कहा—इसका मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तकिये के नीचे पहुँच जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मौक़ा मिलने पर मेरी केबिन में कोई भी चला जा सकता और इस काग़ज़ को वहाँ रख सकता है। वहाँ यह 'कैसे' पहुँचा, इसकी मुझे उतनी चिन्ता नहीं। मुझे चिन्ता है तो इस बात की कि यह वहाँ पहुँचा क्यों। क्या यह भी उसी कोरी धमकी के सिलसिले में है या उनका मंशा कुछ कर गुज़रने का है।

मैंने कहा—मिस्टर पिटमैन से क्यों न पूछा जाय? इस मामले में उसकी राय अवश्य लेनी चाहिए।

ज़हूर अहमद ने ग़ौर करके कहा—अच्छा तो है। उससे सारा क़िस्सा कह देना चाहिए। आओ उसके पास चलें।

हम दोनों पिटमैन के पास गये। वह अपने कमरे में बैठा कुछ लिख रहा था। यह जान कर हमें कुछ सलाह लेनी है वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ। उसने विनम्रता से कहा—मैं पत्र लिखना बन्द कर सकता हूँ। कोई वैसा ज़रूरी पत्र नहीं है। आओ चल कर पहले कुछ ह्विस्की-सोडा पियें। इसके बाद जो आज्ञा होगी उसके लिए मैं तैयार हूँ।

ज़हूर अहमद ने मिस्टर पिटमैन से चर्चयार्ड के पास के खड्ड की घटना ज्यों की त्यों कह दी। उसने बतलाया कि कामान्ध पादड़ी ने लतीफ़न के साथ किस प्रकार अत्याचार करना चाहा और अन्त में उसकी क्या दशा हुई। उसने जो बात कही बिना नमक मिर्च लगाये कही, पर कही दर्प के साथ। बीच बीच में मैं भी उन्हें सहारा देता जाता था। हम लोगों का कथन समाप्त हो जाने पर पिटमैन ने पूछा—

"क्या आपने स्वयं उस पादड़ी को खड्ड में धकेल दिया था?"

ज़हूर अहमद ने कहा—हाँ, मैंने ही। और यदि समय मिलता तो एक को भी न छोड़ता। पर प्रश्न यह है कि ये पत्र कोरी धमकियाँ हैं या इनका कुछ मतलब भी है?

पिटमैन ने तुरन्त जवाब दिया—इन्हें कोरी धमकियाँ ही न समझिए। मैं उस सम्प्रदाय के लोगों को जानता हूँ। मेरी बात मानिए, आपका केवल उसके बाहरी लोगों से ही सामना हुआ है। परन्तु तो भी आपने उसके एक ऐसे पादड़ी को मार डाला है जिसकी बड़ी इज़्ज़त थी। यह बात वे लोग कदापि नहीं भूल सकते। यहाँ इतनी दूर भारत में वे अपना कार्य करने में सफल होंगे या नहीं, यह दूसरी बात है। पर वे अपना प्रयत्न करने से कभी नहीं बाज़ आयँगे।

ज़हूर अहमद ने कहा—क्या हम सबके मार डालने का?

पिटमैन ने धीरे से कहा—हाँ। और यह बात इस प्रकार ज़ोर देकर कहने के लिए मुझे खेद है। मुझे ज़रा भी आश्चर्य न होगा, यदि वे अपने प्रयत्न में सफल-मनोरथ हो जायँ।

यह सुन कर ज़हूर अहमद हक्का-बक्का हो गये। उन्होंने धीरे से कहा—ख़ैर, हम देख लेंगे। परन्तु इस बीच में हमें क्या करना चाहिए, यह तो बताओ।

पिटमैन ने कहा—करना क्या है। वे आपको शीघ्र ही या कुछ समय बाद अपने आप ढूँढ़ लेंगे। आप चाहे जहाँ जाकर छिपें, उनकी निगाह से आप लोग नहीं जा सकते।

ज़हूर अहमद ने पिटमैन की ओर घूर कर आश्चर्य से कहा—छिपें! हम लोग छिपेंगे! आपकी यह छिपने की बात तो विचित्र रही। हम लोग छिपेंगे क्यों?

हाथ हिला कर खेद सा प्रकट करते हुए पिटमैन ने कहा—मेरे दोस्त, उससे आपकी वीरता को ठेस पहुँचाने का मेरा मतलब नहीं रहा है। कप्तान ने आपकी वीरता की बड़ाई मुझसे की है। मेरा मतलब—इतना कह कर वह ठहर गया और अपने सोने के केस से उसने सावधानी से चुन कर एक सिगरेट निकाली।

ज़हूर अहमद ने धीरे से कहा—मिस्टर पिटमैन, मैं आपको वचन देता हूँ कि मेरा विचार छिप जाने का नहीं है। परन्तु प्रश्न यह है कि लतीफ़न बीबी की रक्षा का क्या उपाय किया जाय। और यदि आप यह समझते हों कि उसकी जान ख़तरे में है तो बेहतर होगा कि हम लोग उसकी रक्षा का कोई प्रबन्ध अभी से करें। उसे इन धमकी के पत्रों का हाल बिलकुल ही नहीं मालूम है। बिना मतलब उसे भयभीत करना हम लोगों ने उचित नहीं समझा, इसलिए इनकी बात उसे नहीं बताई गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिटमैन ने कहा—आपने बहुत ही ठीक काम किया है। यह कह कर वह अपनी कुर्सी की पीठ के बल उढ़क गया। इसके बाद अपने मुँह से सिगरेट के धुएँ का एक लम्बा सुरसुरा छोड़ते हुए उसने फिर कहा—अच्छा अब मेरी राय सुनिए। सम्भव है मेरा विचार ग़लत हो। यदि ऐसा समझ पड़े तो उस दशा में आप उसके अनुसार कुछ भी न करें। और यदि ग़लत न हो और आपको मालूम पड़े कि वे लोग हमारा पीछा कर रहे हैं, तो मेरे पास आइएगा। मैं अपना पता आपको बतला दूँगा। सम्भव है, मैं आपकी सहायता कर सकूँ। इस समय कोई उपाय सोचने से कुछ भी लाभ नहीं है, क्योंकि हमें अपनी किस बात से अपनी रक्षा करनी चाहिए, इसका तो पता ही नहीं। जब तक किसी बात की सुगसुग न लग जाय तब तक इस ओर सरपच्ची करना व्यर्थ होगा। और किसी बात के पता लग जाने पर उसके प्रतीकार के लिए दो आदमियों की अपेक्षा तीन आदमियों का सलाह-मशविरा बेहतर होगा।

ज़हूर अहमद ने कहा—हमें आपकी सलाह पसन्द है। इसके लिए हम आपके कृतज्ञ हैं। क्यों न मियाँ अशरफ़ अली ?

मैंने कहा—अवश्य। और इस बीच में लतीफ़न को इस मामले से परिचित कराना या उसकी रक्षा के लिए कोई विशेष सावधानी रखना आप उचित नहीं समझते ?

पिटमैन ने कहा—हाँ, यदि वे लोग कोई उपद्रव करेंगे तो कराँची में। यहाँ नहीं। मेरी समझ में यही बात ठीक जँचती है। यह कह कर वह उठा और हमें वहीं छोड़ कर अपने कमरे की ओर चला गया।

ज़हूर अहमद ने मुझसे कहा—मियाँ, आप भी अजब धुन के आदमी हैं। करना क्या है ? मुझे तो विश्वास है कि हमें इसकी सहायता की आवश्यकता ही न पड़ेगी।

कराँची पहुँचने के बाद जब दो तीन दिन तक कोई घटना न हुई तब मैंने समझ लिया कि कहीं कुछ न होगा। इसी विचार से हम लोग निश्चिन्त भी हो गये। पेकिन के पतित पादड़ियों की लीला की बात याद आते ही मैं आश्चर्य में पड़ जाता। सोचता कि क्या ऐसा भी सम्भव है। पादड़ी की दीक्षा ग्रहण करके भी क्या मनुष्य में पशु-वृत्ति शेष रह सकती है ? कभी कभी यह इच्छा होती कि किसी दिन मित्र-मण्डली की गोष्ठी में उस घटना की कथा कहूँगा, ख़ासी चुहुल होगी।

अस्तु, एक दिन कराँची में जो घटना सङ्घटित हुई उसके आगे पूर्वोक्त पेकिन की घटना कुछ भी नहीं थी। उसका पेकिन जैसे नगर में सङ्घटित हो जाना सम्भव है, पर इस घटना का कराँची जैसे भारतीय नगर में सङ्घटित हो जाना समझ के बाहर की बात है। यद्यपि इस घटना को मैं एक प्रकार के दर्शक के रूप में देखता रहा, तो भी जो दृश्य देखने में आया वह कोई खेल नहीं था, किन्तु एक भयङ्कर वास्तविक घटना सङ्घटित हो रही थी।

कराँची पहुँचने के एक हफ़्ता बाद हम पर वार हुआ। उस दिन मैं लतीफ़न को अपने साथ लेकर दोपहर के बाद चौक गया था। वहाँ बड़ी देर तक सौदा-सुलुफ़ करता रहा। यह भी तय हो चुका था कि आज रात में थियेटर देखा जाय। बाज़ार से वापस आने पर घर में ज़हूर अहमद से भेट हुई। आप मेरे इन्तिज़ार में पहले से ही बैठे थे। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। उन्होंने मुझे देखते ही ज़ोर से कहा—मैं तो यह समझता था कि आज आप लौटेंगे ही नहीं। चलो, मुझे आपसे एकान्त में कुछ बात करनी है।

एक एकान्त कमरे में ले जाकर मैंने पूछा—बात क्या है ? क्या कोई नई बात हुई है ?

ज़हूर अहमद ने सिर हिला कर कहा—हाँ, आपको मालूम ही है कि मैंने पिटमैन को अपना पता दे दिया था। आज दोपहर के पहले तक उसकी मुझे कोई ख़बर नहीं थी और न इधर ही कोई वैसी बात हुई जिससे उसको मैं सूचित करता। वास्तव में मेरी यह धारणा हो चली थी कि यह सारा मामला एक तमाशा भर है। परन्तु घण्टा भर बीता कि उसने मुझे टेलीफ़ोन किया।

मैंने अधीरता से पूछा—उसने क्या कहा ?

"मेरे घण्टी देने पर उसने कहा, ईश्वर को धन्यवाद है कि आप जीवित हैं। इस समय आप बड़ी विपत्ति में हैं। मुझे एक अत्यन्त ही विश्वसनीय सूचना मिली है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका जानना आपके लिए बहुत आवश्यक है। इसलिए आप आकर मुझसे तुरन्त मिलें"।

मैंने पूछा—तो क्या अभी चलोगे ?

"नहीं, अभी नहीं। उसने सन्ध्या-बाद नौ बजे बुलाया है। उस समय उसका चीनी बटलर भी चला जायगा और उसके बँगले पर कोई नहीं रह जायगा। यह प्रबन्ध उसने अपने बचाव की दृष्टि से किया है। उसे स्वयं इस बात का डर है कि यदि यह बात उन्हें मालूम हो जायगी कि वह हम लोगों को सावधान कर रहा है तो उसकी जान पर आ बनेगी। जब मैंने लतीफ़न के सम्बन्ध में पूछा तब उसने कहा कि बारह घण्टे तक उसे किसी बात का डर नहीं है। उसने स्पष्ट कह दिया है कि हम लोगों का उसके घर पर जाना किसी को न मालूम होने पावे।"

मैंने कहा—अच्छी बात है। तो मैं लतीफ़न से जाकर कह आऊँ कि आज थियेटर देखने नहीं जाऊँगा। अब आप भी घर न जायँ। यहाँ खाना खा लीजिएगा।

खाना खाते समय हम दोनों तरह तरह के अनुमान करते रहे, पर कैसी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा, इसका अन्दाज़ न कर सके। इसी समय नौकर ने आकर कहा—हुज़ूर, एक साहब आपसे भेंट करना चाहता है। मैंने ज़हूर अहमद की ओर देखा, पर कुछ न कहा, और उठ कर चुपचाप नौकर के पीछे हो लिया।

नौकर ने भेंट करने के कमरे का दरवाज़ा खोल कर कहा—हुज़ूर, साहब यहाँ बैठा है। पर जब उसने कमरे में चारों ओर निगाह डाली तब वहाँ कोई नहीं दिखाई दिया। वह सकुच कर एक ओर खड़ा हो गया और बोला—हुज़ूर, यहाँ तो वह नहीं है। मैंने भी देखा, कमरा ख़ाली पड़ा था। दरबान से पूछने पर उसने कहा कि मैं नहीं जानता कि कहाँ चला गया। बाहर के दूसरे नौकरों ने भी ऐसे ही उत्तर दिये, पर यह बात सबने स्वीकार की कि एक साहब आया था और वह मुझे पूछता था।

जब हम लोग पिटमैन के बँगले पर जाने की तैयारी कर रहे थे तब भी नौकरों में साहब के आने की बात की चर्चा जारी थी। ज़हूर अहमद ने कहा—मियाँ, वे लोग हमारे पीछे लगे हुए हैं। वह साहब हम लोगों का पता ही लेने आया था। इसलिए बेहतर होगा कि हम लोग चक्कर लगा कर पिटमैन के बँगले को जायँ, जिसमें उन लोगों को पता न मिले कि हम कहाँ जा रहे हैं।

जब ज़हूर अहमद ने गाड़ीवाले से थियेटर-घर ले चलने को कहा तब मैंने अपने चारों ओर देखा। मुझे वहाँ एक भी आदमी न दिखाई दिया। कुछ दूर जाने के बाद हमने गाड़ीवाले से बन्दर की ओर ले चलने को कहा। जब हमारी गाड़ी पिटमैन के बँगले के पास से निकली तब हमने गाड़ी खड़ी करवाई और उसे वहीं से लौटा दिया। यहाँ से हमने पिटमैन के बँगले को पैदल ही जाने का विचार किया।

ज़हूर अहमद ने एकाएक पूछा—क्या आप अपना रिवाल्वर लाये हैं ?

मैंने कहा—नहीं तो। आज रात में हमें उसकी कोई ज़रूरत भी तो नहीं मालूम पड़ती।

ज़हूर अहमद ने धीरे से हँस कर कहा—नहीं, मैं भी समझता हूँ कि उसकी ज़रूरत न पड़ेगी। परन्तु यह मेरी पुरानी आदत है। मैं जब निकलता हूँ तब रिवाल्वर अवश्य ले लेता हूँ। न मालूम यह ऊँट किस करवट बैठे।

मैंने कहा—चलो, अभी मालूम हुआ जाता है। नौ बजने में पाँच मिनट बाक़ी हैं। लो, हम ठीक समय पहुँच भी गये।

बँगले का प्रवेश-द्वार स्वयं पिटमैन ने ही खोला। हम लोगों को भीतर करके उसने उसे झट बन्द कर लिया। वह रात की पोशाक पहने हुए था। अतएव हमने अपनी मामूली पोशाक के लिए शिष्टाचार के रूप में उससे क्षमा माँगी। उसने कहा—महोदय, कृपा कर चुपचाप मेरे पीछे चले आइए। एक क्षण भी खो देने की गुंजायश नहीं है। यह कह कर वह हमें हाल के बीच से होकर उसके दूसरे सिरे के दरवाज़े पर ले गया जिस पर हरी बनात का एक मोटा पर्दा पड़ा हुआ था। उससे होकर दो ही सीढ़ियाँ नीचे उतरने पर एक और दरवाज़ा मिला। पिटमैन ने अपनी जेब से कुञ्जी निकाल कर ज्यों ही उसे खोला और हमारी निगाह उस कमरे के भीतर पड़ी, त्यों ही हम लोग चकित हो गये। वास्तव में क्षण भर के लिए हम लोग अपने आने के असली उद्देश तक को भूल गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह एक बड़ा भारी कमरा था। लोहे की एक सुन्दर जाली से वह दो भागों में बँटा हुआ था। इसके सुन्दर साज-सामान और अद्भुत प्रकाश को देख कर ही हम लोग अचकचा गये थे। इनके कारण यह कमरा परी-लोक की कहानियों में वर्णित कमरों जैसा जगमगा रहा था।

हम लोगों को चकित देख कर पिटमैन ने धीरे से मुसकरा दिया। उसने कहा—इस कमरे के सजाने में मैंने बहुत धन और समय दोनों लगाये हैं। मैं समझता हूँ, यह आप लोगों को नापसन्द न होगा। इसे मैंने अपने कराँची-प्रवास के लिए बनवाया है। मैं घमण्ड नहीं करता, किन्तु इस कमरे की कुछ चीज़ें अनोखी हैं। मुझे एक कुर्सी पर बिठाकर उसने कहा—मिस्टर अशरफ़ अली, एक इस कुर्सी को ही लीजिए। इसका महत्त्व आपको अभी मालूम हुआ जाता है। ज़रा आप अपने दोनों हाथ जाँघों पर रख कर आराम के साथ बैठें तो।

उस समय ज़हूर अहमद कमरे के दूसरे भाग को बड़े ध्यान से देख रहा था। पिटमैन के आदेश के अनुसार मैं अपने हाथ जाँघों पर रख कर आराम के साथ बैठ गया। मैंने कहा—अब ठीक है न ?

"हाँ, बहुत ठीक है। अब मैं आपके सिर के पीछे कुर्सी में लगे हुए लीवर को घुमाता हूँ। अब इसका रहस्य आपको मालूम होगा।"

कुर्सी के दोनों बाजुओं में किसी धातु का एक एक तस्मा लगा हुआ था, पर दिखाई न देता था। लिवर के घुमाते ही वे दोनों तस्में भीतर की ओर एकाएक घूम आये। उन्होंने धीरे से मेरे दोनों हाथों को दाब लिया। यद्यपि उनकी दाब नाम-मात्र को थी, तथापि असर वैसा कम नहीं था। उनके इस प्रकार घूम आने से मैं अपने हाथ उनके भीतर से निकाल कर ऊपर को नहीं फैला सकता था। मेरी टिहुनियाँ उधर अलग कुर्सी से चिपक सी गई थीं। इस कारण भी मैं अपने हाथ हिला-डुला नहीं सकता था। मतलब यह कि मैं अपने हाथ किसी भी प्रकार नहीं निकाल सकता था। मैं एक प्रकार से क़ैदी की तरह उस कुर्सी पर बिठा कर बाँध दिया गया था।

मैंने कहा—वाह ! यह तो सचमुच एक असाधारण तमाशा है।

उसी समय एक धीमी सी झङ्कार हुई और जाली के जिस द्वार से ज़हूर अहमद कमरे के दूसरे भाग में गये थे वह बन्द हो गया।

पिटमैन ने प्रसन्न होकर मुझसे कहा—इसकी असाधारणता तो आपके सामने ही है।

एक या दो क्षण के लिए कमरे में बिलकुल सन्नाटा सा हो गया। जाली की दूसरी ओर ज़हूर अहमद खड़े खड़े झूम से रहे थे। वे तुरन्त जाली के द्वार पर आकर जाली को हिलाने लगे, पर वह टस से मस न हुई।

ज़हूर अहमद ने धीरे से पूछा—मिस्टर पिटमैन, क्या यह कोई खेल है ?

"मैं नहीं जानता कि आप भी इसे खेल समझेंगे। मेरे लिए तो खेल ही है और मैं आज इसका पूरा मज़ा लेना चाहता हूँ, पर आपको शायद इसका मज़ा न मिल सके।"

ज़हूर अहमद ने ग़ौर करके कहा—यह कोई कपट तो नहीं है ? आपकी क्या मंशा है, यह मुझे नहीं समझ पड़ता। पर बेशक देर तक यही हाल नहीं रह सकता।

पिटमैन ने कहा—आप बिलकुल ठीक कहते हैं। वास्तव में मैं आपको अपनी मंशा बता देना चाहता हूँ। जब आप कमरे के उस हिस्से में गये थे तब वह ठीक एक मामूली कमरा था। आप वहाँ किसी भी कुर्सी पर बैठ सकते थे। उन दोनों सोफ़ाओं पर आप आराम से लेट सकते थे। फ़र्श पर जहाँ चाहते, खड़े रह सकते थे। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि अब वहाँ की हालत पहले जैसी नहीं रही है।

यह कह कर पिटमैन एक आराम-कुर्सी पर टाँगें फैला कर उढ़क गया और सिगरेट पीने लगा। उसने कहा—मिस्टर अहमद, आपने सुना होगा कि मैं बिजली का विशेषज्ञ हूँ। इस हफ़्ता भर मैं बिजली की एक स्कीम को कार्य में परिणत करने में ही लगा रहा हूँ। अब आप चर्चयार्ड के समय के खड्ड की घटना याद करें। मुझे विश्वास है, आप मुझसे इस बात में सहमत होंगे कि आपको उसका बदला देना है।

ज़हूर अहमद ने कहा—तो क्या आप भी उन्हीं में से हो ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिटमैन बोला--निस्सन्देह।

अपने हाथों के छुड़ाने का व्यर्थ प्रयत्न करते हुए मैंने गरज कर कहा—दग़ाबाज़!

पिटमैन धीरे से बोला—इस कमरे के बाहर आवाज़ नहीं जा सकती। इसलिए यदि मैं आपसे धीरे धीरे बोलने को कहूँ तो इसका मतलब यह समझना चाहिए कि मैं आपकी बात सुनना चाहता हूँ। मिस्टर अहमद, आप लतीफ़न बीबी की याद कर अपने मन को दुखी न करना। मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ आपके पीछे उसकी देख-रेख करूँगा।

ज़हूर अहमद को अपनी जेब में धीरे से हाथ डालते देख कर पिटमैन ने धीरे से हँसकर कहा—उसे निकाल लो और मुझसे बातचीत करो।

क्रोध करके ज़हूर अहमद ने कहा—ऐं मेरे रिवाल्वर को क्या हो गया! मेरी जेब में उसे कौन खींच रहा है।

ज़हूर अहमद अपनी जगह पर खड़े और मुट्ठी बाँधे झूमने लगे। उनके चेहरे से आश्चर्य झलकता था। वे अकेले खड़े थे। उनके पास कोई नहीं था। तो भी मुझे स्पष्ट देख पड़ता था उनकी वह जेब जिसमें रिवाल्वर था बाहर निकली आती है, मानो कोई अदृश्य हाथ उसे बाहर खींच रहा हो।

पिटमैन ने कहा—मैं आपसे कह चुका हूँ कि मैंने बिजली की एक स्कीम कार्य में परिणत की है।

पिटमैन की बात पूरी होने के बाद ही ज़हूर अहमद ने अपना रिवाल्वर छुड़ा लिया। यह देख कर पिटमैन ने आगे झुक कर झट एक बटन दबा दिया।

मुझे ऐसा मालूम पड़ा, मानो किसी ने ज़हूर अहमद के हाथ से रिवाल्वर छीन लिया हो। वह उनके पैर के पास फ़र्श पर खटाक से गिर पड़ा और वे चकित होकर उसकी ओर देखने लगे। वे उसे उठा लेने को झुके, उसे उठा लेने को उन्होंने अपना सारा ज़ोर लगा दिया, पर वह अपनी जगह से नहीं हिला, जैसा का तैसा पड़ा रहा।

पिटमैन ने फिर धीरे से मुसकरा कर कहा—प्रिय ज़हूर अहमद, चुम्बक की शक्ति बिलकुल ही एक साधारण वस्तु है, वह बहुतेरी तकलीफ़ों से बचाती है।

मैंने ज़हूर अहमद के माथे पर पसीने की बूँदें निकलती देखीं। जाली के भीतर से पिटमैन को घूर कर देखते हुए उन्होंने पूछा—इन सब बातों का मतलब क्या है?

"मैंने आपसे पहले ही कह दिया है कि आज रात को मैं एक खेल देखना चाहता हूँ"

एकाएक ज़हूर अहमद उत्तेजित हो उठे। वे जाली के द्वार की ओर झपट पड़े और उसे पकड़ कर बड़े ज़ोर से हिलाने लगे। परन्तु शीघ्र ही दर्द से चिल्ला कर पीछे कूद कर फिर जा खड़े हुए। उन्होंने कहा—यह शैतान कौन था?

पिटमैन ने कहा—बिजली का एक चोखा धक्का, वह आपको वास्तविक हानि नहीं पहुँचा सकता था। परन्तु उससे आपको मालूम हो गया होगा कि मेरी स्कीम की बात कोरी गप ही नहीं है। क्या आप विद्युत्शक्ति के सिद्धान्तों से परिचित हैं? यह कह कर उसने दूसरी सिगरेट जलाई और अपनी कुर्सी पर वह आराम से पड़ गया। उसने कहा—

"बेशक आपको इसका हाल स्कूल में पढ़ते समय मालूम हुआ होगा। उदाहरण के लिए यह बात आप ज़रूर जानते होंगे कि बिजली की बैटरी की चोंगियाँ अपने हाथों से पकड़ने पर उसका धक्का लगता है। वही बात यहाँ भी हुई। केवल एक यही अन्तर था कि आप चोंगीरूपी एक वस्तु पर खड़े और दूसरी को एक हाथ से पकड़े थे। मैं हफ़्ते भर करता क्या रहा? मैंने कमरे के इस भाग में सर्वत्र बिजली की ऐसी ही चोंगियाँ लगा दी हैं। उदाहरण के लिए, आपके पीछे जो कुर्सी रक्खी है उसमें भी दो चोंगियाँ लगी हैं। आप कुछ देर तक आराम के साथ उस पर बैठ सकते हैं। परन्तु जहाँ इधर-उधर हिले, तहाँ बिजली की धारा बह कर आपको अपने अस्तित्व का परिचय दे देगी।"

ज़हूर अहमद ने घुड़क कर कहा—तो क्या मैं यह समझूँ कि मुझे आप इस कमरे में इसी प्रकार झुमाते रख कर बिजली के धक्के खिलाते रहेंगे?

यह कह कर ज़हूर अहमद ने ज्यों ही जाली की ओर फिर झपटना चाहा, त्यों ही वे पिटमैन के रोकने पर सहसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुक गये। पिटमैन ने कहा—भगवान् के लिए, अभी ठहरो। मैं इतनी जल्दी आपको अपने हाथ से जाने देना नहीं चाहता।

ज़हूर अहमद ने कहा—आपका मतलब क्या है ?

"बात यह है कि जब पहली बार आपने इस जाली को हिलाया था तब इसमें बिजली की धारा का केवल पचासवाँ भाग था। परन्तु अब वह बात नहीं है, इसमें उसकी पूरी धारा बह रही है। यदि आप इस बार स्पर्श कर लेते तो शीघ्र ही टें बोल जाते और मेरा खेल अधूरा ही रह जाता।"

ज़हूर अहमद चुपचाप स्थिर खड़े रह गये। पिटमैन ने फिर कहा—

"इस समय बिजली की धारा सारे कमरे में बह रही थी। यदि आप अपना दाहना पैर इधर-उधर एक इंच भी बढ़ाते तो आपकी तत्काल मृत्यु हो जाती। मैं बिलकुल सत्य ही कह रहा हूँ। अब आप उसकी धारा से एक गज़ के अन्तर पर हैं। यदि आप कमरे में घूमें तो कभी गर्मी और कभी सर्दी मालूम होगी। उस समय मैं आपका तमाशा देखूँगा कब तक आपकी मृत्यु हो सकती है ? एक मिनट में ही आप बोल जा सकते हैं या यह भी हो सकता है कि घण्टे भर से अधिक समय लग जाय। मृत्यु के कुछ स्थान मैं जानता हूँ और कुछ नहीं भी जानता। उनको किसी दूसरे आदमी ने लगाया है।"

यह कह कर पिटमैन ने एक बटन दबा दिया। तत्क्षण एक चीना बटलर शराब और कबाब लेकर आ पहुँचा और उन्हें मेज़ पर रख कर वह चुपचाप जैसे आया था लौट गया। ज़हूर अहमद अचल होकर अपनी जगह पर खड़े खड़े पिटमैन की ओर घूरते रहे। पिटमैन ने कहा—

निस्सन्देह, जहां आप खड़े हैं, मज़े से खड़े रह सकते हैं। इस ढङ्ग का यह मेरा पहला प्रयोग है, अतएव इसमें मुझे बहुत अधिक दिलचस्पी है। आप कब तक खड़े रहेंगे—चार घण्टे, पाँच घण्टे ? रात तो अभी शुरू ही हुई है। परन्तु शीघ्र ही या कुछ देर बाद आपको अपनी जगह से हटना ही पड़ेगा, नींद आवेगी ही और इस कमरे में सो जाना आपके लिए एक बड़ी जोखिम की बात होगी। यद्यपि वह आपके लिए जोखिम हो, तथापि मुझे उससे आनन्द प्राप्त होगा।

बड़ी देर तक चुप रहने के बाद ज़हूर अहमद ने धीरे से कहा—इस सारी कार्रवाई से आपका मतलब क्या है ?

"मुख्यतः मज़ा लेना—मज़ा और बदला। एक तो तूने हमारे चर्चयार्ड को अपवित्र कर डालने का साहस किया और ऊपर से अधिकारियों को हमारी रिपोर्ट कर दी—"

यह कह कर भेड़िये की तरह अपने दाँत काढ़ कर पिटमैन अपनी कुर्सी से उठा और जाली के समीप क्रोध के साथ जाकर खड़ा हो गया। ज़हूर अहमद अपनी जगह पर खड़े जमुहा रहे थे।

पिटमैन ने कहा—तूने एक पवित्र पादड़ी की हत्या की है जिसका मूल्य तेरे देश भर के निवासियों के प्राण लेने से वसूल नहीं हो सकता। उस गुरुतर अपराध का दण्ड मृत्यु ही है, जैसा मैंने तुझसे कह दिया है।

ज़हूर अहमद ने कहा—तो तूने ही वह धमकी लिख कर भेजी थी, कमीना दोग़ला।

इस अपमान से क्रुद्ध होकर पिटमैन ने अपनी मुट्ठी बाँध कर चिल्ला कर कहा—हाँ, मैंने भेजी थी। आज शाम को तेरे घर तक मैं ही गया था। जब तूने गाड़ीवाले को थियेटर-घर ले चलने को कहा था तब मैं ही उस स्थान पर मौजूद था। इस स्थान में बिजली का प्रवाह पर्याप्त परिमाण में है। उससे तुम दोनों की मृत्यु हो सकती है। इसके बाद उसने मेरी ओर मुँह करके कहा—जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, मैं लतीफ़न बीबी की देख-रेख करूँगा।

बड़े प्रयत्न के बाद पिटमैन अपना क्रोध शान्त कर सका। वह खाना खाने के लिए फिर बैठ गया। एक बार फिर निस्तब्धता छा गई। मूर्ति की तरह अचल ज़हूर अहमद अपनी जगह पर चुपचाप खड़े रहे पर उनकी निगाह पिटमैन के चेहरे पर बराबर डटी रही।

मैं लाचार था, चुपचाप बैठा ज़हूर अहमद के मुँह की ओर ताक रहा था। मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि यह कोरी धमकी ही नहीं है। ज़हूर अहमद को अपने जीवन में और पहले कभी ऐसी भयङ्कर विपत्ति से सामना नहीं पड़ा था। मैं सोचता था कि शीघ्र ही या कुछ देर बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे ज़रूर ही हिलेंगे तब उनकी मृत्य अनिवार्य है। परन्तु उस दशा में भी उनका वह हाथ चट्टान की तरह स्थिर था। जिससे वे अपनी सिगरट जला रहे थे। उन्होंने शान्ति-पूर्वक सिगरट पी। पिटमैन बैठा उन्हें ताकता रहा, जैसे बिल्ली चूहे को ताकती हो। परन्तु यह दशा अधिक देर तक नहीं रह सकती थी, यह हम सभी जानते थे। उसे समाप्त करना ही है और ज्यों ही ज़हूर अहमद अपनी जगह से उछल कर एक ओर कूद गया, त्योंही पिटमैन अपनी कुर्सी से उठ कर जाली के पास जा खड़ा हुआ। उसके चेहरे पर भयङ्कर चिन्ता का भाव स्पष्ट देख पड़ता था और वह अपने दोनों हाथ ताने हुए था।

ज़हूर अहमद ने मेरी ओर देख कर गम्भीरता से कहा—बड़े मियाँ, अब इस तमाशे की समाप्ति है। इस कमीने फिरङ्गी की मौज के लिए मैं खड़ा नहीं रह सकता। अब मैं बैठ जाना चाहता हूँ।

यह कह कर ज़हूर अहमद एक बड़ी कुर्सी की ओर जाकर उस पर बैठ गये। और चुपचाप अपना चश्मा साफ़ करते हुए उन्होंने धीरे से कहा—यह तो अच्छी कुर्सी है। इतना कहने के बाद ही वे एकाएक अपनी कुर्सी से उछल कर मुँह के बल फ़र्श पर आ गिरे और वहीं ऐंठ कर रह सा गये। यह भयङ्कर दृश्य देख कर मैं सहम गया। क्षण भर के लिए मैं यह भूल गया कि अब मेरी भी यही गत होगी। पिटमैन ने मुझसे कहा—अब आपकी बारी। ठहरो लाश हटा लूँ यह कह कर उसने दीवार में लगी एक कील दबाई। सहसा एक नीली लपक सी हवा में चमक गई। इसके बाद जाली के दरवाज़े को उसने खोल दिया। उसने कहा—प्रिय अहमद, इस बार आपने अधिक देर तक तमाशा नहीं किया। बड़ी जल्दी कर दी। इस बार जान गये होगे कि किस जगह पर न जाना चाहिए।

इसके बाद ही यह भयङ्कर आवाज़ हुई—तुम्हारे खेल करने की अपेक्षा अधिक जल्दी नहीं हुई है। इसके साथ ही पिटमैन चीख़ पड़ा, क्योंकि उसका गला ज़हूर अहमद ने खूब ज़ोर से दाब लिया था। उन्होंने कहा—दोग़ला, तू ही एक अकेला आदमी नहीं है जो डींग मार सकता है।

गला इतने ज़ोर से दाब लिया गया था कि पिटमैन पागल की तरह उसे छुटाने के लिए छटपटाने लगा। एका-एक वह सुस्त पड़ गया। तब ज़हूर अहमद ने उसे उठा कर कुर्सी पर पटक दिया, जहाँ वह पड़ा पड़ा घसिलता रहा। इसके बाद अपना रिवाल्वर लेकर वे मेरे पास आये और मुझे बन्धन से छुड़ाकर कहा—मैं जानता हूँ, वह कोरी डींग ही नहीं मार रहा था। मुझे उसकी तीक्ष्ण निगाह से उसका भयङ्कर उद्देश स्पष्ट मालूम पड़ता था। अब हम उसका खेल देखेंगे। यह कह कर उन्होंने कील को जाकर घुमा दिया। उसके साथ ही पहले की भांति फिर चमक हुई और एक ज़ोर की आवाज़ के साथ जाली का द्वार बन्द हो गया। पिटमैन अभी तक उसी कुर्सी पर बेहोश पड़ा हुआ छटपटा रहा था। ज़हूर अहमद ने कहा—जो बात मुझे उचित समझ पड़ी वही मैंने की। यदि मैं उस समय चूक जाता तो अवश्य मर जाता। अल्लाह की मेहरबानी से मेरी जान बच गई।

उधर पिटमैन की बुरी दशा थी। वह कुर्सी पर सिर के बल उलट गया था। इतने में ही धड़ाम से वह फ़र्श पर आ गिरा और टें बोल गया। उसकी दशा देख कर ज़हूर अहमद ने कहा—नहीं, यह कोरी डींग नहीं थी।

मैं नहीं जानता कि पिटमैन पागल था। उसकी मृत्यु के समय जो जाँच हुई उसमें गवाहों के बयान से प्रकट हुआ कि किसी की पीड़ा देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ करता था। हाँ, उन्होंने अपने बयान में यह बात नहीं कही कि उसकी मृत्यु के समय उसके बँगले पर दो मुसलमान उपस्थित थे। जो चीना बटलर उसका खाना लाया था वह इतना मूर्ख नहीं था कि पूर्वोक्त बात कह कर अपने को झञ्झट में डालता। आकस्मिक मृत्यु बताकर इस मामले की इतिश्री कर दी गई।

ग्रामीण

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्थान और पतन ।

संसार के इतिहास में ऐसी कोई भी जाति नहीं है जिसने अपनी शक्ति को सदैव अक्षुण्ण रक्खा हो। उत्थान के बाद सभी का पतन हुआ है। कभी किसी जाति ने उन्नति की है तो कभी किसी जाति ने। परन्तु उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच कर अन्त में सभी का अधःपतन हुआ है। प्राचीन मिस्र का गौरव अब उसके ध्वंसावशेषों में है। कभी भारत की ऊर्जितावस्था थी। अब भारतीय आर्य जाति की गौरव-कथा उसके प्राचीन साहित्य में ही विद्यमान है। प्राचीन ग्रीस की विश्व-विजयिनी शक्ति नष्ट हो गई है। रोम का साम्राज्य अतीत-काल की कथा-मात्र है। मुसलमानों की प्रचण्ड शक्ति के आगे संसार नत हो चुका था। अब उसे ही अपने अस्तित्व की रक्षा की चिन्ता है। आज-कल योरपीय जातियों का प्राधान्य है। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनका अभ्युदय चिरस्थायी है। कितने ही पाश्चात्य विद्वानों ने आधुनिक योरपीय सभ्यता की समीक्षा कर उसके भविष्य के विषय में अपनी आशङ्का प्रकट की है। विचारणीय यह है कि किसी जाति के उत्थान और पतन के कारण क्या हैं।

प्राचीन काल में कितनी ऐसी जातियाँ थीं जिनका अब अस्तित्व तक नहीं है। उनके उत्थान-पतन के इतिहास में हम कार्य-कारण का कुछ विलक्षण ही सम्बन्ध पाते हैं। हम यह देखते हैं कि कार्य का उद्देश कुछ था और उसका परिणाम कुछ दूसरा ही हुआ। धर्म की उन्नति के लिए तो आन्दोलन हुआ, पर उसका फल हुआ एक प्रबल जाति की सृष्टि। जाति उठी तो दूसरों को सत्पथ दिखाने के लिए, किन्तु स्वयं विपथगामिनी हो गई। वह अपना उद्देश भूल गई और स्वयं अपने नाश का कारण हो गई। जाति की उन्नतावस्था में उसके पराभव के कारण उत्पन्न हुए और जाति की दुरवस्था में उसकी उन्नति के साधन प्रस्तुत हुए। तब क्या यह कहा जा सकता है कि मनुष्य-जाति का उत्थान-पतन काल-चक्र का परिणाम-मात्र है? कुछ लोग इसी बात को मानते हैं। उनका कथन है कि जिस प्रकार मनुष्य-जीवन का विकास और ह्रास होता है उसी प्रकार जाति की उन्नति और अवनति होती है। मनुष्य बाल्यावस्था से युवावस्था और युवावस्था से वृद्धावस्था को प्राप्त हो कर अन्त में मृत्यु के चक्र में पड़ता ही है। उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। इसी प्रकार जाति की अवस्था भी परिवर्तित होती रहती है और अन्त में उसका क्षय होता ही है। परन्तु बात यह है कि जाति में वृद्धावस्था कभी आनी ही नहीं चाहिए, क्योंकि जाति में युवक सदैव वृद्धों का स्थान लेते रहते हैं। एक जाता है तो उसके स्थान में दूसरा आता है। इस प्रकार जाति के जीवन का अन्त ही नहीं हो सकता। यदि किसी जाति का क्षय हुआ है तो हमें यही समझना चाहिए कि पूर्वजों की अपेक्षा उनकी सन्तानों की शक्ति क्षीण होती गई है अथवा अन्य प्रबल जातियों के सङ्घर्षण से वह जाति अपनी रक्षा नहीं कर सकी है। जाति की यही अन्तःस्थिति और बाह्य स्थिति है जिनमें परिवर्तन होने से उसकी उन्नति या अवनति होती है। अब हम इनमें से एक एक की आलोचना करेंगे। पहले हम बाह्य स्थिति को लेते हैं।

बाह्य परिस्थितियों में सबसे पहले देश का प्रभाव पड़ता है। देश की प्राकृतिक स्थिति और जल-वायु के कारण जाति में कुछ ऐसी विशेषता आ जाती है जो अन्य देशों के रहनेवाली जातियों में नहीं पाई जाती। जो लोग समभूमि में रहते हैं उनकी अपेक्षा पार्वत्य-देश के निवासी अधिक कष्ट-सहिष्णु होंगे। इसी प्रकार जो लोग सजला-सफला भूमि में कम परिश्रम से अपने जीवन की आवश्यक सामग्री प्राप्त कर लेते हैं उनकी शारीरिक शक्ति उन जातियों की अपेक्षा कम होगी जो मरु-भूमि में रह कर कठिन परिश्रम से अपने जीवन का निर्वाह कर लेते हैं। इसके सिवा सजला-सफला भूमि में भिन्न भिन्न जातियों का सङ्घर्षण अवश्य होता रहेगा, क्योंकि सभी मनुष्य वैसे ही देश पाने की कामना करेंगे जहाँ अनायास उनका जीवन-निर्वाह हो जाय। अतएव समभूमि और शस्य-सम्पन्न देश के निवासियों के लिए जाति-सम्मिश्रण के कारण जीवन में अधिक जटिलता रहेगी। इस जटिलता का प्रभाव जाति के अशन-वसन, आमोद-प्रमोद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा जीवन के साधारण कृत्यों पर भी पड़ता है। जब जीवन में सरलता रहती है तब मोटा पहनना और मोटा खाना यथेष्ट रहता है। परन्तु यह जीवन की जटिलता में सम्भव नहीं रहता। आमोद-प्रमोद के कितने ही उपकरण उस समाज के लिए आवश्यक हो जाते हैं जहाँ सङ्घर्ष अधिक है। मानसिक शक्ति पर भी इसका प्रभाव देखा जाता है। जो जाति अपने जीवन के लिए अपनी शारीरिक शक्ति पर अवलम्बित है उसे जड़ पदार्थ ही अधिक सारवान् प्रतीत होंगे। अतएव जो सभ्यता वह निर्मित करेगी वह जड़ानुगत होगी। जिन कलाओं से जीवन में सुख-स्वच्छन्दता, सुविधा और विलास की वृद्धि होती है उन्हीं की पुष्टि उसमें होगी। इन्द्रिय की परितृप्ति तथा जीवन की शारीरिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने की योजना में ही उसकी सभ्यता के आदर्श निर्मित होंगे। इसके विपरीत जो जाति अनायास ही अपने जीवन का निर्वाह कर लेती है वह शारीरिक सुखों की अपेक्षा मानसिक सुखों की प्राप्ति के लिए अधिक चेष्टा करेगी। अतएव उसकी सभ्यता आध्यात्मिक होगी। इसी आध्यात्मिक सभ्यता के कारण कभी कभी जाति संसार की इतनी उपेक्षा करने लगती है कि वह अकर्मण्य हो जाती है। इसी अकर्मण्यता का फल पतन है। जब भिन्न भिन्न जातियों का सङ्घर्षण होता है तब एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है। इससे वे एक दूसरे से कितनी ही बातें ग्रहण कर लेती हैं। इनसे भी जाति की गति उन्नति अथवा अवनति की ओर अग्रसर होती है।

अब हम जाति की अन्तःस्थिति पर विचार करते हैं। जातियों के पतन का कारण बतलाते हुए विद्वानों ने विलासिता-वृद्धि-द्वारा जातीय चरित्र-हानि, अज्ञानता की वृद्धि, वैराग्य और अकर्मण्यता आदि कारणों का उल्लेख किया है। ये सब कुशिक्षा के प्रभाव कहे जा सकते हैं। एक और कारण है जिसे हम प्राकृतिक निर्वाचन का अभाव कहेंगे। यही जाति की अन्तःस्थित व्याधि का द्योतक है। इसकी व्याख्या एक विद्वान् ने इस प्रकार की है।

जातीय उन्नति या अवनति का मतलब है जाति के व्यक्ति-वर्ग की उन्नति या अवनति। व्यक्ति-वर्ग का अच्छा या बुरा होना दो बातों पर निर्भर है। पहली बात यह है कि उसके जन्म-सिद्ध संस्कार कैसे हैं। दूसरी बात यह है कि उसे शिक्षा कैसी मिली है। जब कोई जन्म लेकर आता है तब वह अपने शरीर के साथ कुछ संस्कार भी लेता आता है। यह सभी जानते हैं कि भिन्न भिन्न बालकों में शक्ति की समानता नहीं रहती। किसी में कोई शक्ति अधिक है तो किसी में कोई शक्ति। शक्ति की तरह स्वभाव में भी भिन्नता रहती है। कोई स्वभाव से दयालु होता है तो कोई स्वभाव से निष्ठुर। किसी की बुद्धि तीक्ष्ण होती है तो किसी की मन्द। कहा जाता है कि गदहा ठोंक-पीट कर घोड़ा नहीं बनाया जा सकता। इस कथन में सत्यता है। तो भी यह मानना पड़ेगा कि शिक्षा का भी बड़ा प्रभाव होता है। यहाँ शिक्षा से मतलब उन बातों से है जिन्हें मनुष्य अपने पार्श्ववर्ती सहचर-वर्ग से सीखता है। बालकों को अपने सहवासियों से जो शिक्षा मिलती है वह उसके चरित्र-निर्माण में बड़ा काम करती है। जो बालक स्वभाव से दयालु होता है वह भी निर्दयों की सङ्गति में पड़ कर क्रूर हो जाता है। इसी प्रकार कितना तीक्ष्ण बुद्धि का बालक क्यों न हो, यदि उसे शिक्षा बिलकुल न दी जाय तो वह मूर्ख हो जायगा। जो बालक विलास की गोद में पले हैं वे विलास-प्रिय अवश्य होंगे। इसी तरह जिन्हें दारिद्र्य का अनुभव करना पड़ा है वे परिश्रमी और कष्ट-सहिष्णु होंगे। मतलब यह कि चरित्र-निर्माण के लिए जिस प्रकार स्वाभाविक वृत्ति आवश्यक है उसी प्रकार उन स्वाभाविक वृत्तियों के विकास के लिए शिक्षा की भी आवश्यकता है। एक के अभाव से दूसरे का विकास असम्भव है। गणित के एक उदाहरण से यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। मान लीजिए, स्वाभाविक वृत्ति 'क' है, शिक्षा 'ख' और मनुष्य का व्यक्तित्व 'ग'। फल यह होगा क × ख = ग। अब क चाहे कितना ही कम क्यों न हो, यदि ख अधिक है तो उसका गुणन-फल ग कम नहीं होगा। परन्तु यदि क (०) शून्य है तो ख कितना ही अधिक क्यों न हो उसका गुणन-फल शून्य ही रहेगा। इसी प्रकार यदि ख शून्य होगा तो क के बड़ा रहने पर भी गुणन-फल शून्य ही होगा। मतलब यह कि यदि किसी जाति की हीनावस्था है तो उसका कारण जानने के लिए हम देखेंगे कि उस जाति के व्यक्तियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्वाभाविक वृत्तियों का ह्रास हुआ है अथवा उनके विकास के लिए उचित अवस्था का अभाव हुआ है।

मनुष्यों की कितनी ही मानसिक वृत्तियाँ—जैसे चिन्ता-शक्ति, दया, साहस या स्वार्थ-परता, निष्ठुरता, विषय-लिप्सा—वंश-परम्परा से चली आती हैं। शारीरिक आकार तथा वर्ण की तरह हम उन्हें भी अपने माता-पिता से पाते हैं। कहना नहीं होगा कि योग्य माता-पिता की सन्तान में योग्यता प्रदर्शित होगी। प्राकृतिक निर्वाचन का फल यह है कि निम्नावस्था से भी जाति उन्नतावस्था को पहुँच जाती है। इसी प्राकृतिक निर्वाचन के कारण प्राचीन काल की कितनी ही असभ्य जातियाँ उन्नत होगई हैं। बात यह होती है कि असभ्यावस्था में निर्बल आपसे आप नष्ट हो जाते हैं और सबल ही जीवित रहते हैं और उन्हीं से वंश की रक्षा होती है। इसी से समाज में योग्य व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जाती है और पारिपार्श्विक अवस्था से सङ्ग्राम करते करते समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर होता जाता है। सभ्यावस्था में प्राकृतिक निर्वाचन का ह्रास होने लगता है। सभ्य समाज में निर्बल और रुग्ण व्यक्तियों की भी रक्षा होती है। निर्बुद्धियों को भी आश्रय मिलता है। धन, मान, आदि कृत्रिम भेदों की सृष्टि होने से प्राकृतिक निर्वाचन का द्वार ही बन्द हो जाता है। रुग्ण, निर्बोध, पापात्मा व्यक्ति भी धनी या उच्च-पदस्थ होने के कारण अपने वंश की वृद्धि करते हैं। अयोग्य व्यक्तियों की वंश-वृद्धि से सभ्य-समाज में अयोग्य व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जाती है। फल यह होता है कि प्राकृतिक निर्वाचन के अभाव से जाति की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास होता जाता है। इससे न तो उन्नति के अनुकूल स्वाभाविक वृत्ति का आविर्भाव होता है और न उनके विकास के लिए उचित अवस्था ही हो सकती है। अतएव जाति का पतन अनिवार्य है। जाति में वर्णसङ्करता का दोष आ जाने से यह पतन शीघ्र हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जाति के उत्थान और पतन में सबसे बड़ा कारण भिन्न भिन्न जातियों का पारस्परिक सङ्घर्षण है। जब दो जातियों का पारस्परिक सङ्घर्षण होता है तब उसका फल यही होता है कि जो जाति सबल होती है वह दूसरी निर्बल जाति को दबा देती है। यदि यही सङ्घर्ष दो समान-बल जातियों में हुआ तो दीर्घ-कालव्यापी युद्ध अवश्यम्भावी है। जातीय उन्नति पर युद्ध का बड़ा ही घातक परिणाम होता है। युद्ध में प्रायः वही लोग सम्मिलित होते हैं जो शक्ति-सम्पन्न हैं। परिणाम यह होता है कि जाति के शक्ति-शाली वीरों का तो संहार युद्ध में हो जाता है और जाति की वंश-रक्षा का भार निर्बल और अयोग्य व्यक्तियों पर पड़ता है जो जीवित रहते हैं। उनकी सन्तानों में शक्ति-हीनता बढ़ती जाती है और अन्त में जाति सर्वथा शक्ति-हीन हो जाती है। तुर्क-जाति की शक्ति के ह्रास का एक प्रधान कारण यही दीर्घ-काल-व्यापी युद्ध है। ग्रीस और रोम के जातीय अधःपतन के भी यही कारण हैं। बेरी नामक एक विद्वान् ने लिखा है कि रोम में युद्धों के बाद रोमनों की संख्या अत्यन्त कम हो गई थी। संख्या-वृद्धि हुई दासों की, जो युद्ध में सम्मिलित नहीं होते थे। यह संख्या इतनी कम हो गई थी कि सम्राट् आगस्टस ने जन-संख्या की वृद्धि के लिए धन देना आरम्भ किया था। सच तो यह है कि ग्रीस, रोम, कार्थेज, मिस्र, अरब आदि सभी देशों का पतन इसी कारण से हुआ। शक्ति-शाली व्यक्तियों का क्षय और निकृष्ट श्रेणी के व्यक्तियों की प्रधानता होने से जाति में दुर्बलता बढ़ती ही जायगी और उसका पतन अवश्यम्भावी है।

भारतवर्ष के इतिहास में जातीय उत्थान और पतन के कितने ही उदाहरण मिलते हैं। यहाँ हम उपर्युक्त सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए भारतीय इतिहास की पर्यालोचना करेंगे।

वैदिक-युग में आर्यों से अनार्यों का सङ्घर्षण हुआ। आर्यों ने अनार्यों को पराजित कर पञ्जाब को स्वायत्त किया। अनार्य जातियाँ शारीरिक सौन्दर्य, मानसिक वृत्ति और नैतिक बल में आर्य-जाति से हीन थीं। इनसे आर्यों का व्यवहार तीन प्रकार से हो सकता था। पहला यह कि अनार्य जाति को बिलकुल उन्मूल कर देना। चाहे इच्छा से हो अथवा अनिच्छा से, अमरीका और आस्ट्रेलिया में योरपीय जातियों ने इसी नीति का अनुसरण किया है। दूसरा ढँग है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्विवाह द्वारा इन दोनों जातियों का सम्मिश्रण हो जाना। मुसलमानों ने विजित जातियों से ऐसा ही सम्बन्ध किया था। परन्तु इससे उनमें निकृष्ट विजित जातियों के दोष आगये और फल यह हुआ कि उनका वंश निकृष्ट हो गया। तीसरा यह कि अपने ही समाज में उनको निम्न-स्थान देकर उनकी रक्षा करना। भारतीय आर्यों ने यही किया। आर्य और अनार्य जाति में वर्ण-सङ्करता का निवारण करने के लिए वर्णभेद की सृष्टि हुई।

पहले-पहल भारतीय आर्यों की एक ही जाति थी। क्रमशः समाज की उन्नति से उसमें श्रम-विभाग हुआ। जो समाज का उत्कृष्ट अंश था वह ज्ञान-चर्चा और शासन-कार्यों में निरत हुआ। अवशिष्ट लोग कृषि, शिल्प, वाणिज्य आदि में संलग्न हुए। इस प्रकार आर्यों में तीन वर्णों की सृष्टि हुई, किन्तु उनमें परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध प्रचलित था। क्रमशः वैश्यों से ब्राह्मण और क्षत्रियों का वैवाहिक सम्बन्ध कम होने लगा। परन्तु ब्राह्मणों और क्षत्रियों में यह सम्बन्ध बना ही रहा। रामायण और महाभारत में कितने ऐसे ऋषियों का उल्लेख किया गया है जिन्होंने राज-कन्याओं का पाणि-ग्रहण किया था। उनकी सन्तान वर्णसङ्कर जाति में नहीं गिनी जाती थी। परन्तु शूद्रों और द्विजों के सम्मिश्रण से जो वर्णसङ्कर जाति उत्पन्न होती थी वह हेय समझी जाती थी। भगवान् मनु ने लिखा है—

> यत्र त्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः।
> राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति॥

इसी लिए वर्ण-भेद की सृष्टि कर कृत्रिम निर्वाचन के द्वारा ब्राह्मण-वंश में पाण्डित्य, क्षत्रिय-वंश में शौर्य और वैश्य-वंश में कला-नैपुण्य की रक्षा की गई। कहना नहीं होगा कि इसी प्रथा के कारण हिन्दू-जाति विजातीय सङ्घर्षण को सह कर अब तक जीवित रह सकी है।

अब विचारणीय यह है कि हिन्दू-जाति की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास क्यों हुआ। प्राचीन काल में उसने बड़ी उन्नति की थी, उसकी शक्ति अप्रतिहत थी, उसका वैभव अतुल था। उसने अपनी वंश-रक्षा की ओर भी ध्यान दिया। फिर उसकी अवनति क्यों हुई? बात यह है कि जो सभ्यता एकता-मूलक नहीं है वह जाति-समस्या को दूर नहीं कर सकती। उससे केवल भेदों की वृद्धि होती जायगी। यह सच है कि भारत ने प्राचीन-काल में उस बृहत् सत्य का आविष्कार कर लिया था जिससे सभी अनैक्यों में एकता हो जाय। यह भाव उसकी सभ्यता के मूल में था। किन्तु भारतीय सभ्यता का यह आदर्श जो एकता-मूलक था समाज में कभी प्रचलित नहीं हो सका। समाज के संरक्षण के लिए वर्ण-व्यवस्था अवश्य अनुकूल थी। परन्तु उससे जाति-भेद की समस्या दूर नहीं हो सकती। संरक्षण-नीति आत्म-रक्षा के लिए उचित है, किन्तु हिन्दू-समाज को सदैव आत्म-रक्षा की चिन्ता तो थी नहीं। जब तक बाह्य सङ्घर्षण है तब तक समाज में संरक्षण-नीति सफल हो सकती है। परन्तु बाह्य सङ्घर्षण के दूर होते ही वही नीति समाज को सङ्कुचित कर देती है। अल्प-संख्यक आर्यजाति ने बहुसंख्यक अनार्यजातियों पर अपनी उच्च शारीरिक और मानसिक शक्ति से विजय प्राप्त कर ली। उसने एक बृहत् सत्य का आविष्कार कर उनको अपनी जाति में सम्मिलित भी कर लिया। परन्तु वर्ण-भेद बना ही रहा। फल यह हुआ कि आर्यजाति के साथ अनार्य-जातियों की भी संख्या-वृद्धि होने से समाज में भेदों की संख्या बढ़ती ही गई। आर्य-जाति उस बृहत् सत्य को तो भूल गई—जिसमें सभी भेदों का सामञ्जस्य हो सकता है—और वह भिन्नता ही पर ज़ोर देने लगी। अतएव भारत में सङ्घर्षण सदैव विद्यमान रहा। भिन्न भिन्न युगों में कितने ही महात्माओं ने जन्म लेकर इसी भेद को दूर कर एकता स्थापित करने की चेष्टा की। परन्तु यह एकता केवल आध्यात्मिक जगत् में रही। व्यावहारिक जगत् में उन महात्माओं की चेष्टा से नये नये पन्थों और नई नई जातियों की ही सृष्टि हुई। भिन्न भिन्न समाजों की सृष्टि से समाज की सीमा सङ्कुचित हो जाती है और अत्यन्त सङ्कुचित हो जाने के कारण समाज की श्रेष्ठ शक्ति का पूर्ण विकास नहीं हुआ। कहीं शक्ति का अति-सञ्चय होने से उसका अपव्यय होता था तो कहीं उदीय-मान शक्ति के विकास के लिए अनुकूल अवस्था ही नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि जिस वर्ण-व्यवस्था से हिन्दू-जाति आत्म-रक्षा कर सकती थी उसी से उसकी उन्नति की गति अवरुद्ध हो गई। समाज के सङ्कुचित होने का एक दुष्प-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिणाम है विलासिता। विलासिता की वृद्धि तभी होती है जब किसी क्षुद्र सीमा में शक्ति का अतिसञ्चय हो जाता है। पुराणों में यदुवंश की पतन-कथा इसका बड़ा अच्छा उदाहरण है। महाराज रघु के श्रेष्ठ वंश का भी पतन इसी शक्ति के अतिसञ्चय से हुआ। दूसरी बात यह है कि ऐसे समाज पारस्परिक विरोध पर अधिक ध्यान देते हैं। इसका फल सङ्घर्षण है और पारस्परिक सङ्घर्षण के कारण शक्ति का सदैव अपव्यय होता है। इससे भी जाति की शक्ति क्षीण होती जाती है। जाति के अशक्त होने पर उसमें वर्णसङ्करता का दोष अवश्य आता है। यही कारण है कि महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने अपनी जाति के भविष्य के विषय में जो आशङ्का प्रकट की थी वह ठीक ही उतरी। प्राचीन भारतीय इतिहास में मौर्यों अथवा गुप्तों का साम्राज्य अस्थायी ही रहा। इसका कारण समाज-भेद, वर्णसङ्करता और विलासिता-वृद्धि है।

मध्ययुग में मुसलमान-जाति के आगमन से भारत में एक समस्या और बढ़ गई। हिन्दू-जाति ने वर्ण-व्यवस्था के कारण अपने अस्तित्व को अवश्य अक्षुण्ण रक्खा। परन्तु उसमें जातीयता का भाव लुप्त हो गया। धार्मिक सम्प्रदायों और समाज-भेदों ने उसे दासत्व में ही रक्खा। इसी से उसने कभी जातीय भाव से प्रेरित हो उठने की प्रबल चेष्टा नहीं की। इसका कारण यही हो सकता है कि उनमें एक-जातीयता का भाव था ही नहीं। राजपूत, मरहठे और सिक्खों ने अपनी अपनी उन्नति के लिए स्वतन्त्र चेष्टायें कीं। इन्होंने उन्नति तो अवश्य की। परन्तु उनका अभ्युदय क्षण-स्थायी ही रहा। इसका कारण है सङ्कुचित सीमा में शक्ति का प्रसार। गुरु गोविन्द ने सिक्खों को एक जाति के रूप में परिणत अवश्य बना दिया। परन्तु उसी शक्ति से उनका पतन भी हुआ। मरहठों और राजपूतों की भी यही दशा हुई। सङ्घर्षण बना ही रहा और उसमें शक्ति का अपव्यय होता रहा।

भारत की यह जाति-समस्या अभी तक विद्यमान है। उसके विषय में रवीन्द्रनाथ ने लिखा है कि भारत ने विधि-निषेध-द्वारा भिन्न भिन्न जातियों के पारस्परिक संघात को दूर करने की चेष्टा की है। परन्तु इस प्रकार का अभावात्मक आयोजन दीर्घकाल तक ठहर नहीं सकता। मानव-समाज यन्त्र की तरह परिचालित नहीं हो सकता। जिन जातियों का इतिहास स्वतन्त्र है, जिनके सामाजिक और नैतिक आचारों में भिन्नता है, उनका पारस्परिक सङ्घर्ष तभी बन्द हो सकता है जब एकता की भित्ति प्रेम-मूलक हो। भारतवर्ष में ऐसा भावात्मक, ऐक्य-मूलक आध्यात्मिक आदर्श है। सुप्त होने पर भी वह प्राणहीन नहीं हुआ है। उसमें यह शक्ति है कि वह सभी बाह्य अनैक्यों को स्वीकार करके भी अन्तर्गत एकता को देखता है। भारतवर्ष के ज्ञान के कारखाने में वह सोने की कुञ्जी तैयार है जो एक दिन सभी द्वारों को कस देगी और चिरकाल से विच्छिन्न जातियों को प्रेम के महानिमन्त्रण में सम्मिलित करेगी। भगवान् करे, कवि की यह आशा फलवती हो।

विनायक विश्वनाथ वैद्य

तिमिर में आलोक।

संसार में अन्धकार भी है और प्रकाश भी है। जो लोग प्रकाश में रहते हैं उन्हें अन्धकार का अनुभव नहीं हो सकता। वे यह नहीं जान सकते कि संसार में अधिकांश लोगों का जीवन अन्धकारमय है। जहाँ वैभव है वहाँ दारिद्र्य भी है। एक ओर हास्य-ध्वनि हो रही है तो दूसरी ओर चीत्कार हो रहा है। यदि एक अट्टालिका में स्वर्गीय सुखों की सामग्री एकत्र है तो सैकड़ो घरों में जीवन की आवश्यक चीज़ें भी नहीं हैं। पाप का एक बड़ा कारण है दारिद्र्य। ऐसे दरिद्रों और पतितों को उठाने की चेष्टा जो करते हैं वे सचमुच दीन-बन्धु हैं। ऐसे ही महात्माओं की दया से कितने ही अन्धकारमय गृहों में उज्ज्वल प्रकाश फैलता है। यहाँ एक ऐसी ही करुणामयी देवी का कार्य-कलाप वर्णित किया जाता है जिसने इँग्लेंड के तमोमय स्थानों में आलोक फैलाने की चेष्टा की थी—उसका नाम था सरा मार्टिन।

सरा मार्टिन का जन्म इँग्लेंड के "नौर्फोक" नगर में सन् १७८१ ईसवी के जून मास में हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पिता एक छोटे से सौदागर थे और जूतियाँ बेंचा करते थे। वह अपने मा-बाप की एक-मात्र सन्तान थी, परन्तु बालपने में ही माता-पिता का देहान्त हो गया था। इस कारण सरा मार्टिन को इनकी कुछ भी सुध नहीं रही। इस बालिका को उसकी दादी ने बड़े प्रेम से पाला।

इन दिनों इँग्लेंड की ग्रामीण पाठशालाएं प्रायः वैसी ही थीं जैसे आज-कल इस देश के देहाती स्कूल हैं। जो मनुष्य और किसी काम का न हो, जिसको और किसी दूसरे प्रकार की सरकारी नौकरी मिलने की आशा न हो, जो आजीविका का कोई और उपाय न जानता हो, वह गाँव की पाठशाला का अध्यापक बनता था। इस विषय को अँगरेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक चार्ल्स डिकन्स ने अपनी एक पुस्तक "निकौलस निकलबी" में अच्छी तरह दिखाया है।

सरा मार्टिन ने एक गाँव की पाठशाला में भर्ती हो कर बहुत थोड़ा विद्योपार्जन किया। वास्तव में जो कुछ उसने सीखा वह उसके स्वयं परिश्रम का फल था।

बाल्यावस्था ही से सरा मार्टिन को धार्मिक विषयों में बड़ी ही रुचि थी। जब उसकी दादी "बाइबिल" से कोई शिक्षा उसको देती तब वह बड़ी उत्कण्ठा से उसको ग्रहण करती थी। परन्तु यह दशा केवल १२ बरस की अवस्था तक रही। उस समय उसका परिचय एक "पबलिक लायब्रेरी" से हो गया। फिर दो वर्ष तक उसने इस पुस्तकालय की सभी पुस्तकें छान डालीं। परन्तु "बाइबिल" से उसको एक प्रकार की घृणा सी हो गई। जब उसकी अवस्था १४ बरस की हुई तब दादी ने उसको एक दर्ज़ी की दूकान में काम सीखने के लिए नियत किया।

इँग्लेंड में सब मनुष्य सरकारी नौकरी के ही भरोसे नहीं बैठे रहते। अधिकतर मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकार के पेशों को सीखते हैं। परन्तु वहाँ यह नियम है कि बिना काम सीखे कोई मनुष्य किसी कार्य्य में अपने भाग्य की जाँच करने को हाथ नहीं डालता। पहले उन दूकानों में काम सीख लिया जाता है जहाँ बड़े प्रवीण मनुष्य हों। कभी कभी पाँच छः बरस काम सीखने में ही बीत जाते हैं।

जब सरा मार्टिन अपने कार्य्य में निपुण हुई तब उसने स्वयं एक दूकान खोली। जो कुछ समय वह दूकान के काम से बचा सकती उसको वह किताबों की देख-भाल में लगाती थी। जो पुस्तक उसको मिल जाती उसी को वह बड़ी रुचि से पढ़ती थी। केवल धार्म्मिक-ग्रन्थों से उसे घृणा हो गई। "बाइबिल" तो वह देखना तक नहीं चाहती थी। उसके पास माता के समय की दो बाइबिल पड़ी थीं, उनको भी उसने छिपा दिया। उसके इस अरुचि का एक कारण यह था। उसका यह विचार था कि यदि "बाइबिल" में जो कुछ लिखा है सो सत्य हो तो अन्त को मेरा क्या परिणाम होगा। परन्तु इस पुस्तक से दूर भागने का मुख्य कारण यह था कि इनके पड़ोस में एक स्थविर रहते थे जो नास्तिक थे। इनसे सरा मार्टिन का परिचय अधिक हो गया। सङ्गति का प्रभाव पड़ता ही है। अतएव सरा मार्टिन पर उस नास्तिक का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसी से वह बाइबिल से घृणा करने लगी।

सरा मार्टिन की यही दशा १८ बरस की अवस्था तक रही। इस समय दैवसंयोग से एक छोटी सी बात ने इसके जीवन में बड़ा उलट-फेर कर दिया। एक दिन वह घूमने के लिए यार्मथ नगर में गई। वहाँ वह एक गिरजा-घर में जा पड़ी और एक पादरी साहब का व्याख्यान उसने सुना। उस पर इस व्याख्यान का ऐसा अच्छा प्रभाव पड़ा कि घर लौटते समय वह व्याख्यान की ही बातें सोचती रही और उसकी रुचि फिर ईश्वर की ओर पलटी। जो बाइबिल दृष्टिमात्र से घृणा उत्पन्न करती थी उसको सरा मार्टिन ने ढूँढ़ा। पहले तो इस पुस्तक के पढ़ने में भय होता था। परन्तु पढ़ते पढ़ते उसी से प्रेम हो गया।

बहुत दिनों के पीछे शान्ति मिलने पर सरा मार्टिन ने अपने को कृतकार्य नहीं समझ लिया। उसे यह उत्कण्ठा हुई कि जो परमानन्द मुझको मिला है उसे मैं औरों को भी दूँ। यही ज्ञान का लक्षण भी है। ज्ञानी मनुष्य अपने ही सुख का विचार करके जीवन नहीं बिताते। वे परोपकार को अपना मुख्य उद्देश्य समझते हैं, और ज्यों ज्यों वे परोपकार में अधिक व्यग्र होते हैं त्यों त्यों उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द की सीमा भी बढ़ती जाती है। इससे यह प्रतीत होता है कि मुक्ति या मोक्ष-लाभ उसी मनुष्य को होता होगा जिसमें अपने-पराये का भेद न रह गया हो। इस दशा को प्राप्त करना कठिन तो अवश्य है किन्तु असम्भव नहीं दीख पड़ता। परोपकार के विषय में यह कथन मिथ्या है कि ईश्वर ने हमको दीन बनाया है, हमको अपना ही पेट पालना कठिन है, परोपकार हम क्या करेंगे। जिनको परोपकार में सच्ची रुचि हो गई हो उनको सहस्रों उपाय दीख पड़ते हैं। इस विषय में सरा मार्टिन आदर्श है। वह सिलाई करके तो अपना निर्वाह कठिनाई से करती थी, परन्तु इस स्त्री ने यह निश्चय किया कि इतवार के दिन "सन्डे स्कूलों" में पढ़ा कर दीन बालकों को सहायता दें। ऐसा सोच-विचार कर उसने परोपकार का बीड़ा उठाया और आजन्म शुभ कार्यों को करती रही। इस काम में सफल होने से इसका मन और भी बढ़ गया, और अनाथ दीन रोगियों की चिकित्सा में सहायता देने लगी। तन-मन से सरा मार्टिन ने इन दुखियों की सहायता की। रोगी बारम्बार इस आशा में रहते थे कि कब इस दयादेवी का दर्शन हो। किसी को वह दवा पिलाती, किसी के घाव धो देती, और किसी को बाइबिल सुनाकर सन्तोष देती थी। परन्तु दिन भर दूकान का काम करके सायङ्काल रोगियों की टहल करने में उसको कुछ भी खेद नहीं होता था। सदा उसकी यही इच्छा बनी रहती थी कि कब दूकान बन्द कर रोगियों की सेवा में जाने का अवकाश मिले। परोपकार में यही एक अनोखा गुण है कि उपकारी और उपकार से लाभ उठानेवाले दोनों को सुख मिलता है। परोपकार में क्लेश उन्हीं को होता है जो सच्चे मन से इस कार्य्य को नहीं करते किन्तु सामाजिक नियमों से बाध्य हो अथवा प्रशंसा के लिए दूसरों की सहायता करते हैं।

सौ बरस पहले इँग्लेंड के जेल बड़ी शोचनीय दशा में थे। "दीवानी" और "फ़ौजदारी" बन्दी सब एक ही साथ रक्खे जाते थे। इस बात का विचार नहीं किया जाता था कि लुटेरे और डाकू छोटे छोटे अपराधवाले बन्दियों से अलग रहें। इन लोगों के सुधार के निमित्त न कोई शिक्षा दी जाती थी, न कोई दस्तकारी का काम इनको सिखाया जाता था। बन्दी लोग अश्लील उपहास अथवा गाली-गलौज में अपना समय बिताते थे। इनके रहने के स्थान बड़े मैले-कुचैले होते थे। यारमथ का जेल और जेलों से निकृष्ट दशा में था। सरा मार्टिन कई बार इस जेल से होकर निकली और बहुधा उसके सचेतन हृदय में ऐसे भाव उत्पन्न हुए कि भीतर जाकर दुःखियों की सहायता करें। परन्तु उसको यह डर लगा रहता था कि कदाचित् मुझको भीतर जाने की अनुमति न मिले, अथवा मैं अपने प्रयत्न में सफल न हो सकूँ। एक दिन यह सुनने में आया कि एक माता ने अपने बालक को अति कठोरता से पीटा और उसकी बड़ी दुर्दशा की। इस कारण उसको कारागार का दण्ड मिला। सरा मार्टिन के करुणामय हृदय में यह विचार आया कि मैं जेल के भीतर जाकर इस माता से भेंट करूँ और उसको समझा-बुझा कर सुमार्ग में ले आऊँ। परन्तु भीरु स्वभाव के कारण उसने अपनी दादी से भी अपना विचार प्रकट नहीं किया। एक दिन जेलर साहब की सेवा में उपस्थित होकर उसने भीतर जाने की आज्ञा मांगी। परन्तु उक्त महाशय ने अनुमति नहीं दी। सरा मार्टिन भीरु स्वभाव तो थी परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ भी थी। उसके उत्साह का भङ्ग नहीं हुआ। फिर उसने दुबारा प्रयत्न किया और वह कृतकार्य्य हुई। भीतर जाते ही उसी अभागिनी माता से उसने भेंट की। उसको सरा मार्टिन के आने से बड़ा आश्चर्य हुआ कि जान न पहिचान यह कैसे मेरे पास चली आती है! परन्तु जब सरा मार्टिन ने अपने आने का ब्यौरा पूरा पूरा कह सुनाया और सच्ची सहानुभूति प्रकट की तब कठोर माता का हृदय भी पसीज गया, रोना छोड़ और उससे कुछ न बन पड़ा। इसके पीछे सरा मार्टिन ने उसको "सेन्टल्यूक" पुस्तक का २३ वां अध्याय पढ़ कर सुनाया, और दीन माता को दृढ़ निश्चय करा दिया कि ईश्वर बड़ा दयालु है और यदि कोई सच्चे मन से अपने अपराधों की क्षमा मांगे तो वह अवश्य अभय-दान देता है। एक ही दिन की भेंट में उसने इस दुखिया को सुधार दिया।

इस माता के सुधार से सरा मार्टिन का उत्साह और भी बढ़ गया, और जो कुछ समय दूकान के काम से बचता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको वह जेलवालों की सेवा में लगाती थी। परन्तु इससे भी उसको पूरा पूरा सन्तोष नहीं हुआ। अब उसने यह ठाना कि इतवार के सिवा एक और दिन प्रति सप्ताह बन्दियों की सेवा में लगावें। क्रम क्रम से सरा मार्टिन ने बन्दियों को पढ़ना-लिखना भी सिखाया और जो लिखना-पढ़ना जानते थे उनको अनपढ़ों का अध्यापक बनाया। कठिनाइयाँ बहुत थीं परन्तु शुद्ध और प्रेमी मन ने जिस काम का बीड़ा उठाया था उसको पूरा पूरा निभाया। फिर उसने बन्दियों को यह शिक्षा दी कि नित्य कुछ वाक्य बाइबिल से कण्ठ करें। इस बात को कितने बन्दियों ने न माना। परन्तु इस वीर स्त्री ने निराश होकर कार्य को छोड़ नहीं दिया। बन्दी यही कहते थे कि धर्म-पुस्तक को कण्ठ करने से हमें क्या लाभ होगा। इसका उत्तर सरा मार्टिन ने यों दिया कि वह नित्य थोड़े से वाक्य बाइबिल के स्वयं कण्ठ करने लगी और उसने बन्दियों से कहा कि यदि इस कार्य्य से मुझको लाभ होता है तो तुमको भी अवश्य होगा। इस बात से सब लोग रीझ गये और उसकी आज्ञा का पालन करने लगे।

जब मनुष्य परोपकार करने लगता है तब थोड़े से कार्य्य में उसको सन्तोष नहीं होता। चित्त की उमङ्ग बढ़ती जाती है और सर्वस्व दान करने में ही परमानन्द मिलता है।

उन दिनों जेलों की यह दशा थी कि इतवार के दिन को बन्दी लोग पवित्र नहीं जानते थे। जिस प्रकार सप्ताह के ६ दिन बुरे कर्मों में बिताते थे वैसे ही इतवार भी बीतता था। इस कारण सरा मार्टिन ने उनसे यह कहा कि प्रातःकाल और सन्ध्या-समय ईश्वर की प्रार्थना करना आवश्यक है। परन्तु बिना सरा मार्टिन के आये काम का निभना कठिन था। इसलिए प्रातःकाल की पूजा में भी वह बन्दियों का साथ देने लगी। सायङ्काल जेलवाले अपने आप कार्य्य कर लेते थे। परन्तु कुछ दिनों के पीछे इन्होंने सन्ध्या का कृत्य छोड़ दिया। इस पर सरा मार्टिन दोनों समय आकर बंदियों से ईश्वर की आराधना कराने लगी। इतना ही नहीं, वह घर से उत्तम लेख भी लिख लाती और प्रार्थना के पीछे जेलवालों को पढ़ सुनाती थी। ये लेख ऐसे कठिन नहीं होते थे जैसे बहुधा पादरी लोगों के हुआ करते हैं। पादरी लोगों को तो अपनी पण्डिताई को प्रकाश करने की इच्छा भी होती है, परन्तु सरा मार्टिन का यह उद्देश नहीं था। इस कारण उसके लेख उसके सत्य और प्रेम की एक-मात्र मूर्ति होते थे। जैसी सरल स्वभाव वह थी वैसे ही सुगम उसके लेख भी होते थे। कुछ दिनों के पीछे उसने मौखिक व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। एक बार पाठशालाओं के इन्स्पेक्टर इस स्त्री के काम को देखने आये, उन्होंने भी व्याख्यानों को सुना और मुक्तकण्ठ से अपनी रिपोर्ट में सरा मार्टिन को सराहा।

बन्दियों के सुधार में सरा मार्टिन को इनका ध्यान तीन बातों पर सविशेष दिलाना पड़ा। एक तो उसने यह सिखाया कि पाप और दुःख का सम्बन्ध ऐसा है जैसे कार्य्य और कारण का होता है। पाप चाहे छोटा हो अथवा बड़ा, उसका फल अवश्य मिलता है। इस बात के समझने में क़ैदियों को कुछ श्रम न करना पड़ा होगा। चोर, लुटेरे, डाकू सब कोई इस बात को भली भांति जानते होंगे कि पाप का फल उनको कैसा ठीक ठीक मिला। बहुतेरों को बालकपन से लेकर सब पुरानी बातें स्मरण आई होंगी। पहले पहल तो एक छोटी सी चूक हुई होगी, कदाचित् किसी ने बिना अपने माता-पिता के आज्ञा के एक सेव या नारङ्गी चुराई होगी। उस समय तो उस मनुष्य ने अपनी बड़ी सराहना की होगी कि कैसी निपुणता से मैंने फल चुरा लिया। परन्तु इस छोटी सी चूक के कारण आज जेल में आने की नौबत आई।

दूसरी बात सरा मार्टिन ने इन दीनों को यह बताई कि जैसा गाढ़ा सम्बन्ध पाप और दुःख का होता है वैसा ही पुण्य और सुख का भी है। जो कुछ भला काम मनुष्य करता है उसका फल अवश्य मिलेगा। हमारे मन में भी भली अथवा बुरी भावनाएं जो आती हैं उनका भी नाश नहीं होता। वे भी अपना फल दिखाती हैं। मनुष्य को अपने शारीरिक कार्य्यों की अपेक्षा अपने मन का विचार अधिक करना चाहिए। जिसका मन मैला हो वह चाहे समाज के डर से अथवा अवकाश न मिलने से कुकर्म भले ही न करे परन्तु समय पाकर वह अवश्य अनर्थ करेगा। यदि मन शुद्ध हो तो शारीरिक कर्मों में भी चूक न होगी।

तीसरी बात इन दुखियों को यह जताई गई कि ईश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयालु है, वह कभी हमसे बदला नहीं लेगा, भला हम लोग उसके सामने हैं ही क्या वस्तु। लड़ाई-भिड़ाई वैर-द्वेष तो केवल बराबरवाले से हो सकता है। निर्बुद्धि दीन बालक से कोई नहीं भिड़ता। यदि ऐसा बालक अनुचित करे तो उसके गुरुजन उसको सचेत कर देवेंगे। हम ईश्वर के बराबरी के नहीं। बराबरी कैसी, हम उसी के बनाये हुए हैं, और जो कुछ उसका दिया हुआ है उसी के भरोसे अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इसलिए वह कभी क्रोधवश हो हमको दण्ड नहीं देगा। जो कुछ दुःख हमको सहने पड़ते हैं वे सब हमारे सुधार के हेतु हैं। वे एक प्रकार की सूचनायें हैं। ईश्वर ने दो प्रकार के उपाय मनुष्य के सुधार के हेतु रचे हैं। एक तो वे नियम जो धर्म-शास्त्रों में लिखे हैं। उक्त नियम प्रत्येक मनुष्य से यह कहते हैं कि अमुक कार्य्य उत्तम है और अमुक निकृष्ट, यदि तुम अनुचित काम को करोगे तो तुमको दुःख मिलेगा। जो मनुष्य इन वचनों का अनुकरण करके कुकर्मों को करते ही नहीं उनको कभी दुःख झेलने नहीं पड़ते। दूसरा उपाय भी हमारे सुधार के लिए ईश्वर ने रचा है। जो मनुष्य नियमों के अनुसार नहीं चलते और कुमार्ग में फँस जाते हैं उनको अवश्य दुःख भोगने पड़ते हैं। इन दुःखों से मनुष्य को अनुभव होता है। बड़े बूढ़ों के कहने से जो बात उन्होंने नहीं मानी थी उसे अब अनुभव की पाठशाला में सीखनी पड़ी। दुःख झेलने से उनको निश्चय होगा कि अमुक काम बड़ा अधम है और जन्म जन्मान्तरों तक यह अनुभव उनकी सहायता करेगा।

इन करुणामय उपदेशों से पादरी लोगों के व्याख्यानों की अपेक्षा बन्दियों को अधिक लाभ हुआ। कारण यह है कि पादरी लोग तो नरक का भय दिखा कर मनुष्यों को सुधारना चाहते हैं। परन्तु सरा मार्टिन ने यह दर्शाया कि ईश्वर दयासागर है, केवल उसके समीप जाने की देर है, जो सच्चे मन से गया वह कृतकृत्य हुआ।

इसी प्रकार के उपदेश सरा मार्टिन ने भी दिये, और तीन बरस तक तन-मन-धन से वह बन्दियों की सेवा में तत्पर रही। वह अपना निर्वाह सिलाई करके करती थी। परन्तु जिस समय वह कपड़े सीती थी उस समय भी उसका चित्त बन्दियों की सहायता के लिए नये नये उपाय सोचने में लगा रहता था। अब उसके चित्त में यह विचार आया कि केवल लिखना-पढ़ना और व्याख्यान सुनना ही उपयुक्त नहीं। बन्दियों का समय आलस्य, निद्रा और झगड़ों में बीतता था। इसलिए सरा मार्टिन ने सोचा कि जब तक कोई काम इन लोगों से न लिया जाय पढ़ने-लिखने से पूरा पूरा लाभ न होगा। पहले स्त्रियों के लिए काम निकाला गया। दो भले आदमियों ने २२) रु० बन्दियों के लाभ के लिए दिये थे। इस द्रव्य की सहायता से पहले बालकों के कपड़े सिये जाने लगे। क्रम क्रम से और और कपड़ों की काट-छाँट और सिलाई भी सिखाई गई, इस काम में दिन प्रतिदिन वृद्धि होने लगी। हिसाब लगाने से जान पड़ता है कि सरा मार्टिन के मरने से कुछ पहले तक प्रायः ६०००) रु० के कपड़े कैदियों ने सिये और बेचे।

इतने ही से सरा मार्टिन को सन्तोष नहीं हुआ। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को आलस्य दूर करने के लिए काम में लगे रहने की अधिक आवश्यकता थी। इनसे भी भिन्न भिन्न प्रकार के काम लिये गये। कोई टोपी बनाते तो कोई हड्डी की चम्मच या मोहर बनाते थे। किसी की रुचि चित्रकारी की ओर हुई तो उसको चित्रकारी भी सिखाई गई। इस प्रकार भिन्न भिन्न कार्य्यों को करने से बन्दियों का जीवन सफल किया गया।

मनुष्य का स्वभाव ईश्वर ने ऐसा रचा है कि जिस कार्य की ओर उसकी प्रवृत्ति होती है चाहे वह भला हो या बुरा उसी में वृद्धि होती जाती है। चार्ल्स लैम्ब साहब ने मदिरा-पान के विषय में लिखा है कि पहले पहल तो मनुष्य एक आध प्याला क्षण-मात्र के सुख के लिए पीता है। फिर क्रम क्रम से प्यालों की संख्या बढ़ती जाती है, यहां तक कि ज्यों ही एक प्याले का नशा उतरा तुरन्त दूसरे की इच्छा हो जाती है। फिर अन्त को यह दशा हो जाती है, पीना और न पीना समान जान पड़ते हैं। चैन किसी में नहीं मिलता। प्रायः ऐसी ही दशा परोपकार की भी है। परोपकारी का उत्साह दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है। भेद इतना ही है कि परोपकारी पुरुष को बेचैनी नहीं होती, उसका हर्ष बढ़ता ही जाता है और परिणाम यह होता है कि सर्वस्व त्याग करने में भी उसको ग्लानि नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरा मार्टिन का सहृदय चित्त उन क़ैदियों को कब भूल सकता था जो क़ैदख़ाने से छूट कर अपने घर चले गये हों। वह सदा इस बात को देखा करती थी कि जेल से छूटने के बाद उनकी क्या दशा है। वह अपनी शक्ति भर उनको सहायता देती जाती थी। एक मनुष्य के घर में छः प्राणी खानेवाले थे और आजीविका का मूल एक गदहा था, जिस पर मछली लाद के गाँव गाँव फेरी करके वह मनुष्य अपने बाल-बच्चों को पालता था। उस मनुष्य को किसी अपराध में कारागार का दण्ड मिला। उसकी स्त्री ने बाल-बच्चों को पालने के हेतु गदहे को बेच डाला। घर में एक सूअर भी था, वह भी बिक गया। जब वह मनुष्य जेल से छूटा तब उसका परिवार बड़ी ही दीन दशा में था। यदि सरा मार्टिन उसकी सहायता न करती तो वह पक्का चोर अथवा लुटेरा हो जाता। बड़े प्रयत्न से सरा मार्टिन ने उसके लिए एक गदहा मोल ले दिया और कई दिन तक वह उसकी देख-भाल करती रही। इस प्रकार कई बन्दियों से उसने ऐसा ही बर्ताव किया और उनको कुमार्ग से बचाया।

कभी कभी वह सन्ध्या-समय किसी मित्र के घर जाकर दो एक घड़ी विश्राम लेती थी। परन्तु इस विश्राम में भी वह परोपकार को नहीं भूलती थी। वहाँ भी जेल-वालों के उपकार के हेतु कुछ न कुछ बात निकाल ही लेती थी। वह अपने मित्रों से यह भी कहती थी कि जिस पदार्थ को तुम व्यर्थ समझते हो उसको बाहर न फेंक देना, मेरे लिए रख छोड़ना, मैं उससे क़ैदियों को लाभ पहुँचाऊँगी। यहाँ तक कि सूती अथवा ऊनी कपड़ों की कतरन को भी मित्रों के घर से वह उठा लाती थी।

सरा मार्टिन को यह बात बहुत प्रिय थी कि जब उसके हाथ परोपकार के लिए काम कर रहे हों कोई मनुष्य किसी उत्तम पुस्तक को पढ़ सुनावे।

जब दिन भर का काम पूरा करके सन्ध्या-समय वह घर आती तब गृहस्थी का सब काम उसको अपने हाथों करना पड़ता था। इतनी समाई नहीं थी कि वह एक नौकर काम करने को रक्खे। चौका-बरतन, खाना-पकाना सब उसे आप ही करना पड़ता था। इतना सब करके फिर भी निश्चिन्त सोने का अवसर उसे नहीं मिलता था, क्योंकि वह क़ैदियों के लेखों को घर लाकर शोधन करती थी। इसके पीछे आय-व्यय का हिसाब उसे करना पड़ता था। कभी कभी आधी रात तक सरा मार्टिन कठिन परिश्रम करती थी। फिर भी कभी उसके मन में खेद नहीं आता था।

बहुत से स्थान ऐसे होते हैं कि वहाँ जाने से चित्त अपने आप प्रसन्न हो जाता है। ऐसे स्थानों में कठिन परिश्रम करने पर भी खेद नहीं होता, और स्वच्छ वायु के सेवन से शरीर नीरोग हो जाता है। किन्तु सरा मार्टिन को इसके विपरीत बड़े ही मैले-कुचैले स्थानों में काम करना पड़ता था। उन दिनों विलायत के जेलों में सफ़ाई का ऐसा प्रचार न था जैसा आज-कल है। बन्दी भी बड़े मैले थे।

जिन बन्दियों के बीच सरा मार्टिन काम करती थी वे सफ़ाई में पशुओं से उत्तम न थे इससे भी उसके चित्त में बड़ी ग्लानि होती थी।

इस उत्तम कार्य्य के करने में इस स्त्री को असंख्य कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी थीं। परन्तु वह दृढ़-चित्त थी और इसी कारण उसने अपने कार्य्य को पूरा किया। एक जमादार साहब के जी में आया कि सरा मार्टिन के कार्य्य में बाधा डालें। वे यहाँ तक पीछे पड़े कि आपने क़ैदियों को यह सीख दी कि तुम लोग सरा मार्टिन का आदर न करो। परन्तु इनके उपदेश का अधिक फल नहीं हुआ। किन्तु एक दूसरा विघ्न आ पड़ा। सरा मार्टिन बन्दियों को यह उपदेश दिया करती थी कि तुम लोग निरुद्यमी मत बैठो, ख़ाली बैठे हो तो कुछ लिखा ही करो। क़ैदी ऐसा ही किया करते थे। परन्तु दारोग़ा साहब को यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा कि सरकारी स्याही का व्यर्थ व्यय होता है और ऐसे वे रूठ गये कि उन्होंने बन्दियों की कुल कापियाँ छीन लीं। इन कारणों से कुछ कुछ बन्दी सरा मार्टिन के विरुद्ध भी होगये। एक दिन वह एक बन्दी को समझा रही थी कि यह अच्छी बात नहीं कि तुमने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया। तब उसने यह उत्तर दिया कि पढ़ने-लिखने से मुझको कोई लाभ नहीं होगा। सरा मार्टिन ने कहा कि मेरे कथन की पुष्टि बाइबिल से होती है। इस पर क़ैदी झुँझला के बोला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि बाइबिल आदर के योग्य नहीं है, हमको पेट पालने के लिए रोटी चाहिए। और कैदी भी रोटी रोटी पुकार उठे। यह सुन सरा मार्टिन को बड़ा खेद हुआ और बड़े खेद से उसने कैदियों से कहा कि यदि मेरे आने से आप लोगों को कोई लाभ न हो तो मैं अपना आना-जाना बन्द कर दूँ। इस पर उक्त ढीठ कैदी को छोड़ सबने मुक्तकण्ठ से कहा कि आपकी सहायता से अवश्य हम लोगों का उपकार होता है। इस प्रकार के दुःखों को झेलती हुई सरा मार्टिन अपने कर्तव्य कर्मों को करती जाती थी, कभी कभी बहुत दुःखित होकर वह ईश्वर से प्रार्थना करती थी कि हे नाथ, अब मेरे प्राण हर ले। कभी कभी वह परमेश्वर की सेवा में अपने अपराधों की क्षमा मांग कर कहती थी कि मुझको क्रोध करना उचित न था, जो कैदी मेरे विरुद्ध आचरण करते हैं मुझको उनकी मूर्खता पर विचार कर उन पर अधिक दया करना उचित है। कुछ दिनों के पीछे वह ढीठ कैदी भी सुधर गया और सुशील बन गया।

हम पहले कह चुके हैं कि सरा मार्टिन प्रति सप्ताह दो दिन जेलवालों को देती थी। अब काम इतना बढ़ गया कि अपनी दूकान के लिए वह बहुत कम समय बचा सकती थी। अन्त को दूकान बन्द हो गई। सन् १८२६ ई० में इसकी दादी का परलोक हो गया। वह कुछ द्रव्य छोड़ गई थी। परन्तु इस रुपये से केवल २००) रु० साल सूद का मिलता था। इस पूँजी से निर्वाह होना बहुत कठिन था। जिस घर में सरा मार्टिन रहती थी उसका सालाना किराया भी प्रायः २००) रु० वार्षिक था।

सरा मार्टिन को अब यह बिचारना पड़ा कि अपनी दूकान को वह सँभाले अथवा परोपकार की अग्नि में स्वार्थ का होम करे। कई प्रकार के भाव चित्त में उत्पन्न हुए। अन्त को यही निश्चय हुआ कि जेलवालों की सेवा को छोड़ना उचित नहीं। जिस ईश्वर ने जन्म दिया है वह अवश्य कुछ न कुछ उपाय खाने का सोच लेगा। ईश्वर ने उसकी सहायता भी की। एक स्त्री ने उसका कुछ मासिक ठहरा दिया जिससे भोजन भर चल जाता था।

कई बरसों तक सरा मार्टिन बड़ी बड़ी कठिनाइयां झेलती हुई अपना बहुमूल्य समय जेलवालों की सेवा में लगाती रही। परन्तु उसको अपनी यह दशा देख कर कुछ भी खेद नहीं होता था। खेद होता क्यों। वह इस आशा से इस कार्य्य को नहीं करती थी कि लोग मेरी प्रशंसा करें। केवल प्रेम की उत्तेजना से उसने इस काम में हाथ डाला था। उसके मित्र उसके अलौकिक कार्य्य को देख कभी कभी द्रव्य भी भेजते थे परन्तु यदि पत्र में यह न लिखा हो कि यह द्रव्य तुम्हारे निज व्यय के अर्थ है तो वह उस रुपये को जेलवालों की सेवा में लगा देती थी।

नगर की म्युनिसिपैलिटी का यह कर्तव्य था कि जेलवालों के पठन-पाठन और धर्म-शिक्षा का प्रबन्ध करे। किन्तु उक्त कमेटी ने इस कार्य्य को अब तक खटाई में डाल रक्खा था। जब उन्होंने देखा कि बरसों से एक दीन दुखिया इस कार्य्य को कर रही है तो उनको कुछ लज्जा आई, और उन्होंने एक पत्र सरा मार्टिन के पास भेजा कि तुमको प्रायः २००) रु० वार्षिक वेतन मिलेगा। सरा मार्टिन को इस पत्र के आने से बड़ा खेद हुआ। यदि उसको द्रव्य ही प्यारा होता तो क्यों वह अपनी दूकान का काम छोड़ती। यह बात उसको अत्यन्त खेदकारी थी कि वह वेतन लेकर परोपकार करे। यह विचार भी उसके मन में आया होगा कि जिस श्रद्धा और प्रेम से जेलवाले मेरे व्याख्यानों को सुनते और मेरी आज्ञा पालन करते रहे हैं वैसा आदर सरकारी नौकर का नहीं करेंगे। यह सब सोच विचार कर उसने वेतन को स्वीकार नहीं किया। परन्तु, म्युनिसिपलवाले भला कब इस बात को मान सकते थे कि उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन हो। उन्होंने सख्ती से उत्तर दिया कि यदि तुमको वेतन लेना स्वीकार नहीं है तो हम तुम्हें जेल के भीतर नहीं आने देंगे। प्रायः १८ बरस बिना मोल दासी बनने का यह फल सरा मार्टिन को मिला। अब उसको इस बात के समाधान करने में बड़ा कष्ट हुआ कि वेतन ग्रहण करना उचित है अथवा प्रिय कार्य्य को छोड़ना। ऐसे अवसरों में धर्माधर्म का निर्णय करना कठिन होता है। घमंड से सरा मार्टिन यह नहीं कहती थी कि हम वेतन न लेंगी। घमंड कैसा, उसके पास पेट पालने का सहारा भी तो पूरा पूरा न था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु वह यह नहीं चाहती थी कि उसको परोपकार का मोल मिले। जब उसने देखा कि म्युनिसिपलवाले सहृदय नहीं हैं उसको उनकी आज्ञा पालन करनी पड़ी। और प्रायः दो वर्ष तक उस नियम के अनुसार उसने बन्दियों की सेवा की।

इस कार्य्य में सरा मार्टिन को बड़ा ही कठिन परिश्रम करना पड़ता था। दिन प्रति दिन ६।७ घण्टे जेल में वह काम करती थी। किसी को पढ़ाना, किसी को लिखाना, किसी को धर्म उपदेश देना, किसी को सीना-पिरोना सिखाना, ऐसे ऐसे बहुत से काम उसको करने पड़ते थे। कुछ दिनों जेल का काम पूरा करके वह एक पाठशाला के प्रबन्ध को देखने जाया करती थी। इसके पीछे दीन रोगियों की वह सुध लेती थी, उसके करुणामय मुख के दर्शन से ही रोगी का कुछ दुःख दूर हो जाता था। किसी को दवा पिलाती, किसी को धर्मपुस्तक सुनाती और किसी को वह पथ्य खिलाती थी। सार यह कि उसका क्षण-मात्र भी व्यर्थ व्यतीत नहीं होता था।

म्युनिसिपैटिली की आज्ञा पालन करने का उसको बड़ा दुःख था, परन्तु कोई उपाय इस दुःख के दूर होने का न था।

सन् १८४२ ई० के जाड़ों में सरा मार्टिन पर रोग ने अपना बल दिखाया। अब उसको दिन प्रति दिन जेल जाने में भी क्लेश होता था। १७ अप्रैल सन् १८४३ को रोग ऐसा बढ़ गया कि चारपाई से उठना भी कठिन था। रोग भी ऐसा कठिन था कि रात-दिन त्राहि त्राहि करते बीतते थे। केवल औषधियों के प्रयोग से उसे नींद आती थी। अकतूबर तक यही दशा रही। १५ तारीख़ के दिन सरा मार्टिन ने उस स्त्री से, जो उसको दवा पिलाती थी, यह कहा कि मुझको कुछ ऐसी दवा दीजिए कि मेरी असह्य बाधा कम हो। परन्तु उस स्त्री ने कहा कि औषधि कुछ नहीं कर सकती, तुम्हारे कूच का समय आ गया है। इस पर सरा मार्टिन ने कहा—ईश्वर को धन्यवाद है। यही उसके अन्तिम शब्द थे। उसी समय इस असार संसार से वह बिदा हुई।

संसार को सभी मनुष्य असार कहते हैं, परन्तु इस का यह अर्थ नहीं है कि संसार मिथ्या है। भला, ईश्वर का कार्य्य भी कभी मिथ्या हो सकता है? इसको असार इसलिए कहते हैं कि संसार स्थिर नहीं है, यह परिवर्तनशील है, परन्तु संसार वृथा नहीं रचा गया है। जैसे बीज के उगने के लिए भूमि की आवश्यकता है, वैसे ही आत्मा की वृद्धि के लिए इस संसार की। इस असार संसार में सार वस्तु परोपकार है, जिसको मनुष्य-मात्र कर सकते हैं। इस कार्य्य के लिए द्रव्य की भी बड़ी आवश्यकता नहीं है। सरा मार्टिन कैसी दीन थी, परन्तु उसने ऐसे कार्य्य कर दिखाये जो बड़े बड़े धनी भी नहीं करते, यह कहना ठीक नहीं कि द्रव्य से ही परोपकार होता है। महाभारत में यह लिखा है—

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा
वरं तस्य निरीहता॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य
दूरादस्पर्शनं वरम्॥

दुर्गादत्त जोशी, बी० ए०।

स्पेन।

(२)

किसी समय स्पेन के ईसाई राजाओं की योरप में तूती बोलती थी, परन्तु अपने निर्बल और अयोग्य शासकों की बदौलत वह अब अपना पूर्व गौरव नष्ट कर चुका है, उसकी गणना योरप के अवनतिशील देशों में की जाती है। उसके जिन निवासियों ने अपना रक्त बहा कर स्वदेश को मुसलमानों की पराधीनता से मुक्त कर उसके नाम को गौरवान्वित किया था उनकी सन्तान अब आत्मतुष्ट हो कर दारिद्र्य वहन करने में ही अपने को कृतार्थ समझती है। उसके भूत इतिहास से उसकी वर्तमान दशा से तुलना करने पर सहृदय निरीक्षक का हृदय विक्षुब्ध हो जाता है। जिन स्पेनियों ने एक समय योरप के अधिकांश भाग पर शासन-दण्ड परिचालित किया था और अमरीका के प्राचीन निवासियों का सर्व संहार कर अपने देश को स्वर्णराशि से भर दिया था उन्हीं के वंशधर इस समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि-कर्म और दूसरे देशों के लिए कच्चा माल तैयार करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं।

यद्यपि इस समय भी स्पेन में ख़ानदानी रईस-घरानों की कमी नहीं है तथापि उनका जीवन अहङ्कार-पूर्ण और

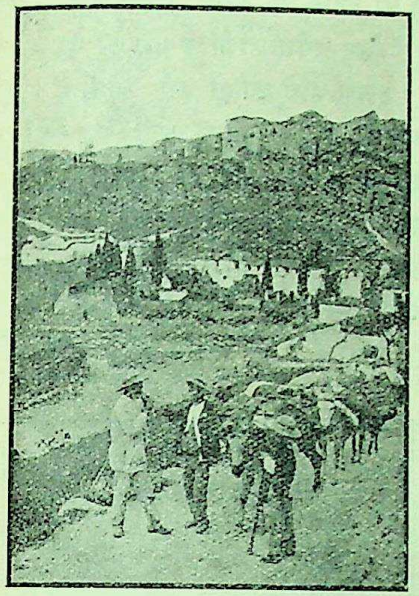

एक प्राचीन क़सबे का दृश्य।

दिखाऊ है। सर्व-साधारण प्रजा की दशा आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त ही सङ्कटपूर्ण है।

स्पेनी लोग वीर, सांड़-युद्ध-प्रेमी, धार्मिक, सुजन और परिश्रमशील होते हैं। वे स्वाधीनता-प्रेमी, अहम्भावधारी और अपने फ़िर्के के पक्षपाती होते हैं। परन्तु मुख्य बात तो यह है कि वे धर्म और परम्परागत रूढ़ियों के अन्धभक्त होते हैं। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे अपनी वर्तमान दैन्यावस्था का भार सुख के साथ वहन कर रहे हैं। उनकी प्रकृतिगत असली भावना का परिचय टोलेडे के टाउन-हाल के शिलालेख से मिलता है। उसमें लिखा है—'टोलेडो पर शासन करनेवाले न्यायी लोगो, आप अपने मानसिक विकार—प्रेम, भय और लाभ की इच्छा—इसी स्थान पर छोड़ जाओ। सर्व-साधारण के लाभ के लिए व्यक्तिगत हित की प्रत्येक बात आप लोग भुला दें और ईश्वर की सेवा करें। उसने आप लोगों को इस श्रेष्ठ स्थान का स्तम्भ बनाया है, अतएव मज़बूत और सीधा खड़े रहिए'। निस्सन्देह स्पेनी लोग बड़े भावुक होते हैं और धर्म पर उनकी अटल श्रद्धा रहती है। वे धर्म के लिए आत्मोत्सर्ग करने को सदा प्रस्तुत रहते हैं। हर्षपूर्वक मृत्यु को स्वीकार करना उनके लिए एक साधारण बात है।

उनको आत्मोत्सर्ग करने की शिक्षा मुसलमानों से मिली है। इसी की बदौलत वे वीर, धर्म पर मर मिटनेवाले और कठोरहृदय हुए। इससे उनमें बल और कमज़ोरी दोनों बातें आईं। बल से उन्होंने स्पेन को भूतकाल में उच्च स्थान पर बिठाया और कमज़ोरी से वे वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुए। कमज़ोरी के सम्बन्ध में एक उदाहरण भिखारियों का ही काफ़ी है। प्रत्येक नगर की गलियों में ये लोग जगह जगह भीख मांगते हुए घूमते रहते हैं। भीख मांगना एक प्रकार का पेशा हो गया है। भीख मांगने में किसी को ज़रा भी लज्जा नहीं मालूम पड़ती। किसी जाति का पराभव इससे बढ़ कर और क्या हो सकता है।

सराय।

स्पेन में शिक्षा का बड़ा अभाव है। इसी कारण वहां की देहातों में नई सभ्यता का प्रवेश अभी नहीं हुआ है। अतएव स्पेन का असली परिचय हमें वहां की देहात के भ्रमण से पूर्णरूप से प्राप्त हो सकता है। यदि किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को किसी देश के निवासियों का वास्तविक परिचय प्राप्त करना हो, तो उसे उस देश की देहात के किसी गाँव में

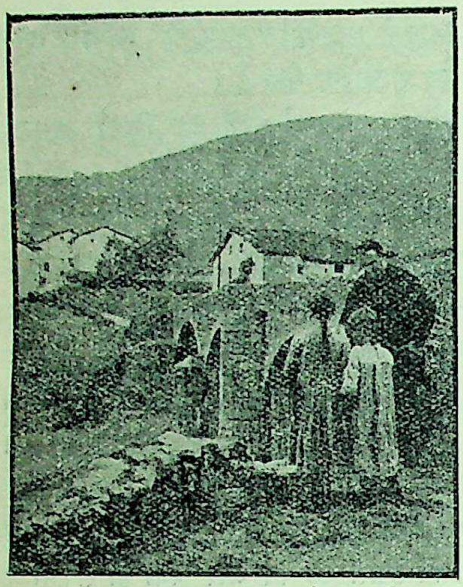

उत्तर स्पेन के ग्रामीण गृहों का दृश्य।

जाकर कुछ समय तक ठहरना चाहिए। इस प्रकार

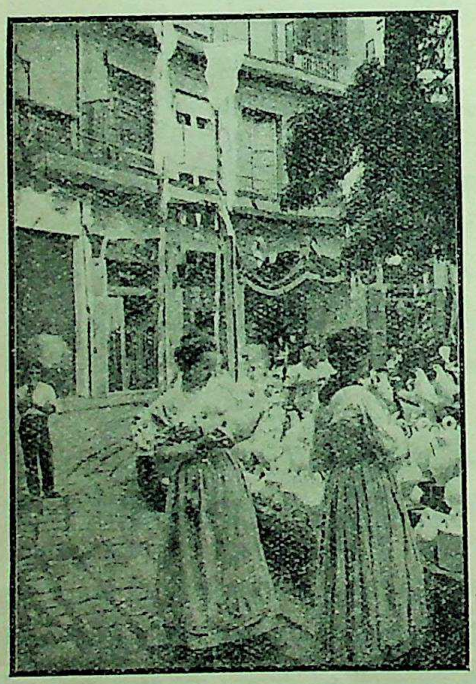

बाज़ार में मिट्टी के बर्तनों की दूकान।

अनुभव प्राप्त करने में यात्री को अनेक प्रकार की असुविधायें और कठिनाइयाँ अवश्य झेलनी पड़ती हैं, परन्तु उससे उसका उद्देश्य सफल हो जाता और वह वहाँ के निवासियों का स्वभाव और उनकी चाल-ढाल जान लेने में पूर्णरूप से समर्थ होता है।

स्पेन की देहात में प्रायः प्रत्येक गाँव में अतिथियों के ठहरने के लिए धर्मशालाओं के ढङ्ग का एक मकान बना रहता है। इसके आगे ड्योढ़ी सी रहती है। प्रवेश-द्वार के एक ओर शराब की दूकान रहती है। वहाँ गाँव के लोग बैठ कर शराब पीते और शोर-गुल करते रहते हैं। उनका रङ्ग-ढङ्ग देख कर विदेशी यात्री के मन में भय का सञ्चार हो जाता है, पर वहाँ ठहरने के बाद उन लोगों की आव-भगत देख कर वह अल्पकाल में ही उनसे सन्तुष्ट हो जाता है। इस मकान के ऊपर की मञ्ज़िल में

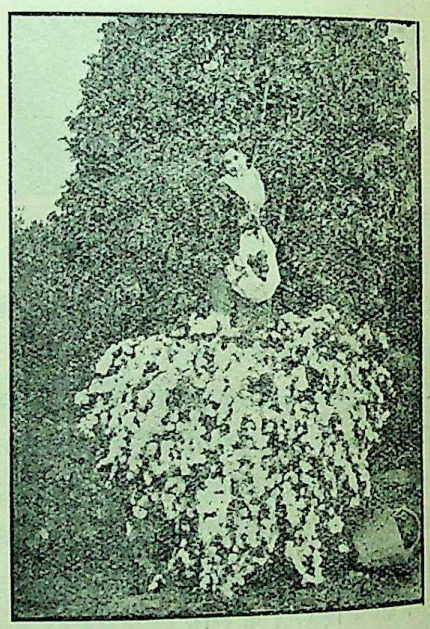

नारङ्गी तोड़ी जा रही है।

यात्रियों के ठहरने के लिए कमरे बने रहते हैं। शराब की दूकान के सामने दूसरी ओर ख़च्चर, गधे और बैल बाँधे जाते हैं। अतएव ड्योढ़ी की गन्दगी और बदबू यात्रियों को असह्य हो जाती है। इसके सिवा जब वह मकान के ऊपर या बाहर जाने लगता है तब ज़ीने के दरवाज़े को मुर्ग़ियाँ, सूअर या मेंमने रोके हुए खड़े ही मिलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, रहने के कमरे साफ़-सुथरे अवश्य रहते हैं। शहरों की छोटी छोटी सरायों के कमरों के सदृश इनमें अधिक गन्दगी नहीं रहती। ये सफ़ेदी से पुते रहते हैं और उनका फ़र्श भी उसी प्रकार चमकता रहता है। इनमें यदि पर्दे पड़े रहते हैं तो वे भी सफ़ेद ही होते हैं। कहीं कहीं इन घरों के कमरों में अच्छे रङ्गीन धार्मिक चित्र भी टँगे रहते हैं। कमरों में साज-सामान नहीं सा रहता है। केवल एक बड़ी मेज़, कुछ कुर्सियाँ और एक दो सन्दूक़ रक्खे रहते हैं। स्पेनियों को अँगेठी की उतनी ज़रूरत नहीं रहती है। अतएव कमरों में वे नहीं रहती हैं। स्पेनी लोग भी भारतीयों की भाँति कपड़ा ओढ़ रह कर ही जाड़ा काटते हैं।

स्पेनी परिवारों में गृह पर गृहिणी का अधिकार रहता है। उसकी सर्वे सर्वा वही होती है। सवेरे से लेकर अधिक रात बीते तक वह घर भर में नाची नाची फिरती है और सारा काम करती और देखती-भालती रहती

लड़की और बैलगाड़ी।

है। इतने पर भी थकावट के चिह्न उसके चेहरे पर नहीं देख पड़ते। इसके विपरीत वह हँसती सी रहती है और सदा सन्तुष्ट देख पड़ती है। यदि बीच बीच में उसके काम की प्रशंसा होती रहे और उसके अतिथि उसके सद्व्यवहार से उसे प्रसन्न मालूम पड़ें तो उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती। जो अतिथि स्पेनियों के घर में ठहरता है वही उनके सद्व्यवहार का अनुभव प्राप्त कर

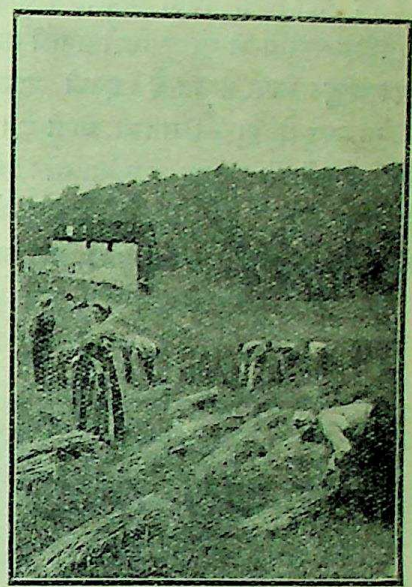

खेत।

सकता है। स्पेनी लोग अपने अतिथि को सब प्रकार का सुख पहुँचाने के लिए कोई बात उठा नहीं रखते।

सप्ताह के किसी दिन प्रायः प्रत्येक गाँव में बाज़ार लगता है। बाज़ार गाँव के बाहर वृक्षों की छाया में लगता है। यहाँ फल-फूल, शाक-भाजी, बर्तन आदि रोज़मर्रा की आवश्यक वस्तुएँ बिकती हैं। आस-पास के कृषक लोग आकर सौदा-सुलुफ़ करते हैं। क्रेता-विक्रेता खड़े खड़े हँस हँस कर बातें करते जाते हैं, साथ ही चीज़ों का मोल-तोल और उनकी बिक्री भी होती जाती है। बाज़ार के एक किनारे मेहराबदार मड़ैया के भीतर माता 'मेरी' की पत्थर की एक मूर्ति रक्खी रहती है। उसके आगे एक चिराग़ जला करता है। जो लोग उसके सामने से निकलते हैं वे क्षण भर के लिए ठहर जाते हैं और देवी को प्रणाम और उसकी वन्दना करते हैं। ख़च्चर और बैलगाड़ियाँ बाज़ार के बाहर खड़ी रहती हैं। ये बाज़ार ठीक वैसे ही लगते हैं जैसे उत्तरी भारत के देहात में लगते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पेन के उत्तरी भाग में फ्रांस की सीमा पर बस्क्यू लोगों का देश है। ये लोग अपने को योरप की प्राचीनतम जाति समझते हैं। इन लोगों में अत्यन्त ही प्राचीन काल की कुछ रीति-रस्में अब तक मौजूद हैं। उनमें से एक यह है कि यहाँ किसी किसी जवार में सबसे बड़ी लड़की ही पैत्रिक सम्पत्ति की अधिकारिणी समझी जाती है। ये लोग एक अद्भुत भाषा बोलते हैं। इनकी भाषा योरप की सभी भाषाओं से प्राचीन समझी जाती है। इनका देश उपजाऊ नहीं है। अतएव ये लोग स्पेन के दूसरे प्रदेशों में जाकर मज़दूरी या छोटे-मोटे रोज़ी-धन्धे करके अपना जीवन-निर्वाह करते रहते हैं। जो लोग अमरीका जाकर आबाद हो गये हैं उनकी दशा अधिक अच्छी है।

घर का भीतरी दृश्य।

स्पेन में भेड़ें बहुत पाली जाती हैं। अनेक गड़रियों के पास पचास पचास हज़ार तक भेड़ें होती हैं। देहात में उनकी दशा बहुत अच्छी कही जा सकती है। स्पेन में प्रतिवर्ष हज़ारों मन ऊन होता है, जो दूसरे देशों को भेजा जाता है। वहाँ भी ऊन का कपड़ा बुना जाता है, जो रूप-रङ्ग में सुन्दर होता है। ऊन की मिलों के एक रवाज से भी स्पेनियों के धर्म-भाव का पता मिलता है। ऊन की मिल का मालिक अपने कुछ ऊन का मूल्य दान के खाते

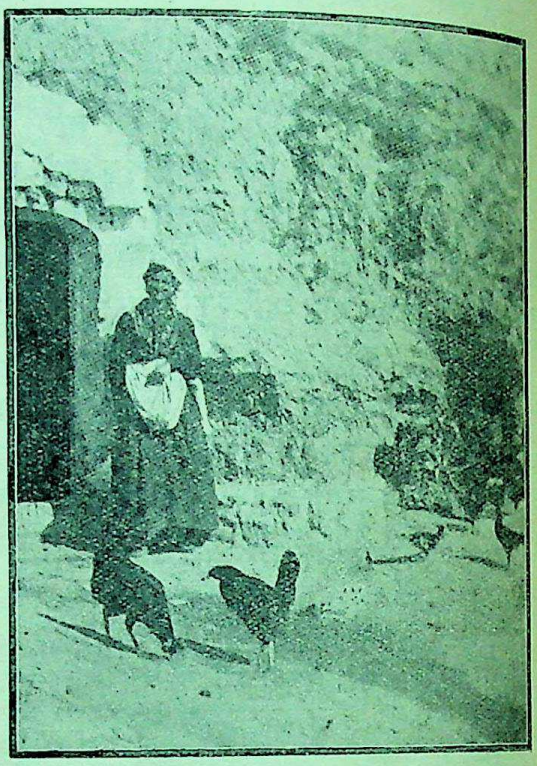

गिप्सी का घर।

में दे देता है। जैसे भारत में मारवाड़ी-व्यवसायी अपने व्यापार के लाभ का कुछ अंश दानार्थ निकाल देते हैं, उसी प्रकार यहाँ ऊन की कोठियों के स्वामी भी करते हैं। ऊन के व्यवसाय के सिवा स्पेन में शराब बहुत अच्छी बनती है, जो बाहर जाती है। यहाँ की बढ़िया शराब और फलों के व्यवसाय से देश को बड़ी आय है। इनके व्यवसाय से हज़ारों आदमियों की जीविका चलती है। स्पेन के सौन्दर्य-निकेत सेविली तथा दक्षिण के दूसरे नगरों में नारंगियों का व्यवसाय होता है। देश के इस भाग में नारंगियों के बाग़ों का बाहुल्य है। फ़सल के समय जब नारंगियाँ बाहर को भेजी जाने लगती हैं तब उनके ढेर देखते ही बनते हैं। नारंगी तोड़ने का काम प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं। बढ़िया बढ़िया नारंगियाँ छाँट छाँट कर काग़ज़ से लपेट कर भेजी जाती हैं। स्पेन में मिट्टी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्तन बहुत सुन्दर बनते हैं और सस्ते बिकते हैं। इन्हें बाज़ारों में स्त्रियाँ बेचा करती हैं। दक्षिणी स्पेन में फ़िनीशीयन लोगों का प्राचीन नगर इस समय भी मौजूद है। इसका नाम अलमीरियाँ है। स्पेनी किसानों के दोष-गुण

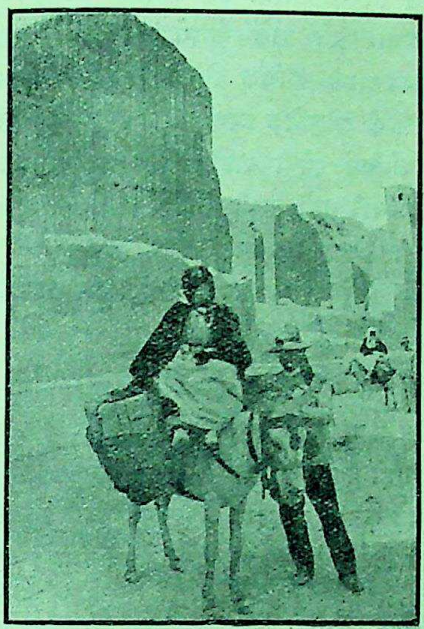

दक्षिण स्पेन का एक दृश्य।

जानना हो तो इस जवार की सैर अब करनी चाहिए। रोंडा नामक दर्शनीय नगर भी इसी प्रदेश में है।

स्पेन में मज़दूरी बहुत कम देनी पड़ती है, मज़दूर सस्ते हैं। स्त्रियाँ भी मज़दूरी करती हैं और हर प्रकार का काम करती हैं। मज़दूरी कम मिलने के कारण मज़दूरों को उनका कञ्जूसपन और रहन-सहन का सादा ढङ्ग जीवन-निर्वाह करने में बड़ी सहायता देते हैं। कम मज़दूरी पाने पर भी वे कठिन परिश्रम करते हैं और उनका मन मलीन कभी नहीं होता। वे सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट ही देख पड़ते हैं। बड़े नगरों के छोटे छोटे कारख़ानों में जो मज़दूर लोग रस्से, टोकरियाँ आदि नाना प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ बनाते हुए देख पड़ते हैं उन्हें देख यह जाना जा सकता है कि वे कितने प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं। इन मज़दूरों में भी धर्म का भाव ख़ासा होता है, क्योंकि कारख़ानों में इनके लिए पूजा की एक वेदी प्रायः प्रत्येक कमरे में अलग एक कोने में बनी रहती है। वह फूलों से सजी रहती है। जब कोई मज़दूर उसके सामने से निकलता है तब वह उसको प्रणाम करने से कभी नहीं चूकता।

मज़दूर लोग रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहन कर काम करते हैं। वे काम करते समय परस्पर बातें करते रहते हैं। बात-चीत कभी बन्द नहीं होती। मालूम होता है, बात-चीत उन्हें काम करने में सहायता प्रदान करती है। प्रायः स्त्रियाँ अपने छोटे छोटे बच्चे लेकर काम पर जाती हैं। उनमें से कुछ बड़े बच्चे वहाँ एक दूसरे के साथ खेलते-कूदते रहते है। कारख़ानों में मज़दूरों को प्रसन्नतापूर्वक अपना अपना काम करते देख कर उनके धैर्य और सन्तोष की प्रशंसा करनी ही पड़ती है।

सेविली में मज़दूर अपना एक त्यौहार प्रति वर्ष मनाते हैं। इस समय एक प्रकार का मेला लग जाता है। सुन्दर रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहन कर मज़दूर लोग दूकान लगाते हैं, पर इन दूकानों में प्रायः गपशप ही अधिक होती है, माल की बिक्री की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता। यह

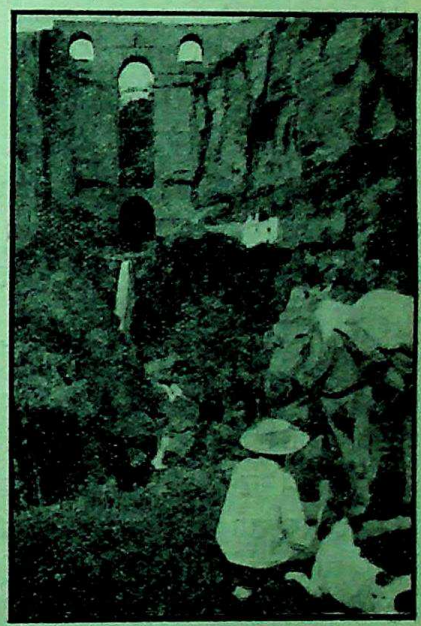

श्रान्त स्पेनिश पथिक।

मेला बाग़ीचों में लगता है। दिन भर चहल-पहल मची रहती है। बाग़ीचे के बीच में एक विशेष स्थान पर नाच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी होता रहता है। बात यह है कि सभी श्रेणी के स्पेनी उत्सव-प्रेमी होते हैं।

देहाती स्पेनी भी नगर-निवासियों की ही भाँति शिष्ट और उदार होते हैं। यही नहीं, उनकी शिष्टता और उदारता ग्रामीणता के आवरण में और भी अधिक

बालकों की क्रीड़ा।

उदात्त प्रतीत होती है। किसी भी यात्री से भेंट होते ही उनके सरलहृदय का परिचय तत्क्षण हो जाता है। वे ऐसे प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं जिनसे यह मालूम होने लगता है, मानो किसी अत्यन्त ही दयालु व्यक्ति से भेंट हुई हो। आप कहाँ रहते हैं, आपका क्या नाम है, आप विवाहित हैं, कितने बाल-बच्चे हैं आदि प्रश्नों का ताँता बँध जाता है। भारतीय यात्री को तो ऐसे अवसर पर अपने देश की रेलयात्रा की स्मृति हुए बिना नहीं रहती है। योरप में स्पेन ही एक ऐसा देश है जहाँ के निवासी विदेशियों को बड़े आव-भाव से लेते हैं। यदि कोई उनकी किसी वस्तु को देख कर प्रशंसा करने लगता है तो वे तत्क्षण उसे उसकी भेंट करने को तैयार हो जाते हैं। और फिर चाहे जितनी नाहीं-नूहीं की जाय उस वस्तु को स्वीकार ही करना पड़ता है। इसी प्रकार भोजन करते समय भी वे अपने पास बैठे हुए लोगों को भोजन करने को आह्वान करते हैं। उनको पूछे बिना वे भोजन कदापि नहीं करेंगे। वे लोग एक दूसरे की सहायता करना अपना प्रधान धर्म समझते हैं। उनके इस औदार्य का पूर्ण अनुभव यात्रियों को भी प्रायः हुआ करता है। उनके साथ यात्रा करनेवाले विदेशी यात्री को वे मार्ग में अपने देश की अनेक प्रकार की बातें बताते रहते हैं। वहाँ की रेलगाड़ियों की चाल अधिक तेज़ नहीं रहती। इस कारण आस पास के प्राकृतिक दृश्यों और ऐतिहासिक स्थलों का विशेष परिचय स्पेनी सहयात्रियों की सहायता से हो जाता है। यही नहीं, कभी कभी ऐसा भी अवसर उपस्थित हुआ है जब उन्होंने अपनी यात्रा बीच में ही भङ्ग कर दी है और विदेशी यात्री के साथ उतर कर उसे किसी दर्शनीय स्थान के देखने-भालने में समुचित सहायता प्रदान की है।

स्पेन के पहाड़ी भाग तथा देश के दूसरे भागों में भी रेलगाड़ी का प्रचार अभी नहीं हुआ है। इन स्थानों में बड़े बड़े क़सबों से देहात के मुख्य मुख्य गाँवों को सप्ताह के नियत दिनों में एक प्रकार की बे-ढंगी गाड़ी आया-

स्पेन की नर्तकी।

जाया करती है। इस गाड़ी में प्रायः छः ख़च्चर जोते जाते हैं। इसका वाहक रङ्ग-बिरङ्गी सुन्दर पोशाक पहने रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और गाड़ी हाँकते समय ख़ूब चिल्लाता जाता है। वह ख़च्चरों पर कोड़े बरसाता ही रहता है। गाड़ी ख़ूब तेज़ जाती है। पहाड़ी स्थानों में उसको दौड़ते जाते देख कर बहुत डर मालूम पड़ता है, पर दुर्घटनायें बहुत कम सुनाई पड़ती हैं। ये गाड़ियाँ बड़ी बे-ढङ्गी होती हैं और सुखप्रद नहीं होतीं। स्पेन की देहात के इस वर्णन के साथ यदि वहाँ के कंजड़ों का भी यहाँ उल्लेख कर दिया जाय तो अनुचित न होगा। ये लोग स्पेन में प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं। दक्षिणी प्रान्तों में और ग्रनाडा में भी ये लोग पहाड़ की कन्दराओं में रहते हैं। इनमें नृत्यकला

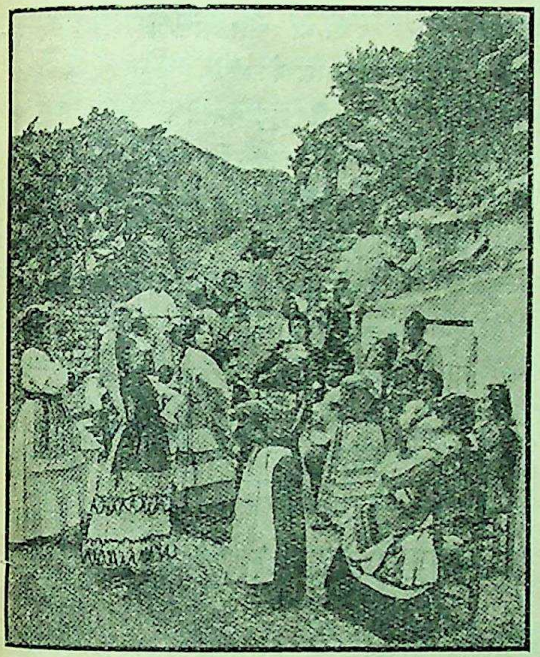

विनोद।

का अत्यधिक प्रचार है। यही नहीं, अनेक श्रेष्ठ नर्तक और नर्तकियाँ इन लोगों में पाई जाती हैं।

स्पेन शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ है। परन्तु साहित्य, सङ्गीत और ललित कलाओं में इसने अपनी उन्नतावस्था में पूर्ण भाग लिया था और अपनी जैसी-तैसी वर्तमान दशा में भी वह उनसे उदासीन नहीं है। यद्यपि वहाँ उत्कृष्ट शिल्पकला की द्योतक अनेक अद्भुत इमारतें हैं, तो भी वे उसकी जातीयकला के नमूने नहीं मानी जा सकतीं। स्पेन की जातीय उन्नति का प्रारम्भ १५ वीं सदी से समझना

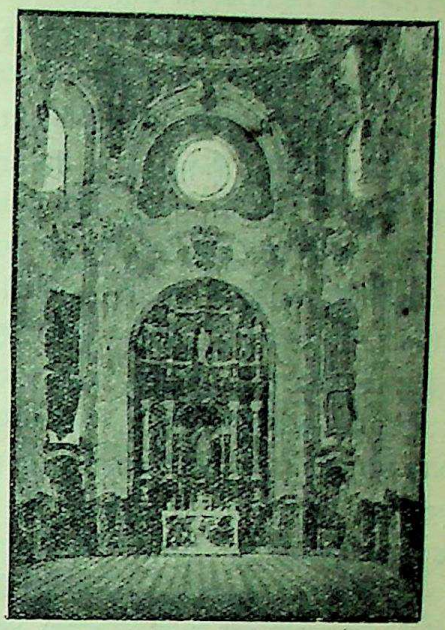

गिरजाघर का भीतरी दृश्य।

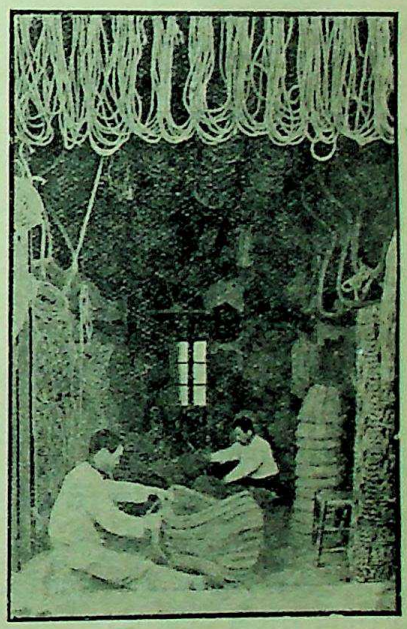

रस्सी बनाने का एक कारख़ाना।

चाहिए। इसके साथ ही यह भी जान लेना चाहिए कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस पर रोमन, गाथिक और अरबी सभ्यता का पूर्ण प्रभाव विद्यमान है। इतने पर भी उसमें स्पेन की जातीयता का विशेषत्व स्पष्टरूप से झलकता है। यह बात उसकी ईसाई-काल की इमारतों, साहित्य और ललित कलाओं के निरीक्षण तथा पर्यालोचन से विदित हो जाती है। बरगोस के गिरजाघर में स्पेन के स्वाधीन भाव का परिचय किसी भी दर्शक को तत्क्षण मिल सकता है। यद्यपि इसके प्राचीन भागों में गाथिक शैली की गम्भीरता का मान होता ही है, तो भी पीछे से बनाये गये भागों में स्पेनी कारीगरों की चञ्चल भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है। १५ वीं सदी में स्पेन में लकड़ी और पत्थर की नक्काशी तथा लोहे की ढलाई के काम में पूरी उन्नति हुई थी। इस समय के बने हुए लकड़ी, पत्थर और लोहे के सुन्दर और बारीक़ काम यदि दूसरे देशों की अपेक्षा बढ़ कर नहीं हैं, तो वे किसी प्रकार घट कर भी नहीं हैं। इसी समय स्पेन ने चित्र-कला में भी उन्नति की थी। एल ग्रीपो, वेलाज़क्यूज़ और गोया की गणना संसार के प्रसिद्ध चित्रकारों में की जाती है।

गिरीशचन्द्र घोषाल

मकड़ी।

मूर्ति यत्न की, प्रतिमा प्रण की,
सहज सखी साहस की।
ध्रुव उपासिका आत्म-शक्ति की,
नहीं दैव के बस की॥
हम समझे, मुनि संयत-मुख है,
चाह छोड़ कर यश की।
मक्खी कहती, छाया ही है,
दैव क्रूर कर्कश की॥
प्राकृत परिकर बाँधकर,
अड़ी अटल उत्साह से।
गिर गिर कर फिर चढ़ रही,
रहे विघ्न हट राह से॥ १॥
एक-मात्र सुस्मृति अतीत की,
तेरी कला दिलाती।
भूत भविष्य ज्योति भारत की,
तू ही है बतलाती॥
आप कातती सूत आप ही,
जाला बुनती जाती।
मूल मंत्र भारत-स्वराज्य का,
तू ही बस सिखलाती॥
जग-वैभव को तुच्छ कर,
निर्भय बैठ दिवाल में।
सत्साहस ही बुन रही,
तू तो अपने जाल में॥ २॥
ज्ञानी तव दृष्टान्त दिखा कर,
सुन्दर सीख सिखाते।
अपने कर्म-पाश में पामर,
देखो यों फँस जाते॥
अपने हाथों काल-कोठरी,
अपनी मूढ़ बनाते।
किन्तु नहीं वे प्रभु-पद-रति का,
है शुभसूत्र गँवाते॥
जब चाहा भव-पाश में,
कर्मकाय जकड़ी रही।
प्रभु-रति-सूत्र रहा जहाँ,
जाल-मुक्त मकड़ी रही॥ ३॥

चमूपति 'चातक' एम० ए०

भाषाओं का श्रेणी-विभाग।

पृथ्वी की भाषाओं का श्रेणी-विभाग दो प्रकार से हो सकता है—(१) उनकी गठन-शैली के अनुसार (morphological classification) और (२) उनके वंश के अनुसार (genealogical classification)। यहाँ भाषाओं की गठन-शैली के अनुसार उनका श्रेणी-विभाग किया जायगा।

इस प्रकार के श्रेणी-विभाग के लिए देखना चाहिए कि विभिन्न भाषाएँ किस प्रणाली से मनोभावों को प्रकाशित करती हैं, किस प्रकार से वे अपने उपादानों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध स्थापित करती हैं, किस प्रकार से उनके शब्द तथा वाक्य निर्मित होते हैं। कुछ भाषाओं की शब्द तथा वाक्य-निर्माण-प्रणाली में सम्पूर्ण सादृश्य है, कुछ की प्रणाली में आंशिक ऐक्य है और कुछ में किसी प्रकार की समानता नहीं है। इस प्रणाली से भाषाओं का निरपेक्ष तथा शुद्ध श्रेणी-विभाग करना असम्भव है, क्योंकि किसी एक भाषा का अन्य एक भाषा के साथ किसी किसी विषय में सादृश्य लक्षित होता है, परन्तु एक तृतीय भाषा के साथ अपर विषयों में सादृश्य पाया जाता है। इस अवस्था में किसके साथ वह श्रेणी-बद्ध होगी, यह स्थिर करना कठिन है। भाषाओं के वर्गीकरण में वही एक वर्ग के अन्तर्गत हो सकती हैं जिनकी मूल प्रकृतियां तथा गठन-शैलियां एक सी हैं। यदि हमें भाषाओं की प्राथमिक अवस्था निश्चित रीति से ज्ञात रहती तो वर्गीकरण सहज होता। यह अभी तक निर्द्धारित नहीं हुआ है कि पृथ्वी में जितनी भाषाएँ हैं सभी एक मूल भाषा से उत्पन्न हुई हैं या कई एक मूल भाषाओं से। बहुत लोग कहते हैं कि आदि में एक ही भाषा थी, परन्तु एक श्रेणी के पण्डितों का मत है कि आदि में कई एक भाषाएँ थीं। एक एक आदि भाषा से जो जो भाषाएँ पीछे उत्पन्न हुई हैं वे एक एक वर्ग की हैं और उनकी गठन-शैली में सादृश्य है।

अब भाषाओं की प्रकृति का कुछ परिचय दिया जाता है।

हर एक भाषा दो उपादानों में विभक्त हो सकती है—शब्द तथा विभक्तियां। एक एक शब्द केवल एक एक भाव का प्रतिनिधि है, यथा वृक्ष, होना, करना। ये वस्तु, अवस्था तथा कार्य्य के शाब्दिक चित्र हैं। परन्तु विभक्ति जब तक शब्द से अलग रहती है तब तक वह किसी भाव का प्रकाशक नहीं होती। जब यह किसी शब्द के साथ संयुक्त होती है, तभी यह समय, काल तथा अन्यान्य सम्बन्धों को प्रकाशित करती है।

शब्द के साथ उसकी विभक्ति के संयोग का परिमाण भिन्न भिन्न भाषाओं में भिन्न भिन्न प्रकार का होता है—किसी में तो विभक्ति केवल शब्द के बगल में बैठती है और किसी में दोनों ऐसे मिल जाते हैं कि वे पृथक् नहीं किये जा सकते। इस संयोग की प्रकृति और परिमाण ही के अनुसार भाषाओं का श्रेणी-विभाग किया जाता है, और इसी से हर एक भाषा की प्रकृति का परिचय मिलता है।

भाषा की सबसे पहली अवस्था में विभक्तियां स्वतन्त्र शब्द हुआ करती हैं। चीनी इत्यादि एकाक्षर (monosyllabic) भाषाओं में देखा जाता है कि मुख्य शब्द के बगल में दूसरा शब्द जोड़ दिया जाता है और पीछे का शब्द विभक्ति का काम करता है। दोनों किसी प्रकार से मिल नहीं जाते।

उपसर्ग तथा प्रत्यय के द्वारा मूल-शब्द के अर्थ में परिवर्तन होता है। जब तक उपसर्ग तथा प्रत्यय पृथक्, स्वाधीन शब्द रहा करते हैं, तब तक उनका एक प्रकार का अर्थ रहता है, परन्तु जब वे दूसरे शब्दों से जोड़ दिये जाते हैं तब उनके आकार का परिवर्त्तन हो चाहे न हो, अर्थ का परिवर्त्तन हो जाता है।

निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात खुल जायगी।

चीनी भाषा में 'त्सुंग' शब्द क्रिया है और जब यह अलग रहता है तब इसका अर्थ है "अनुवर्तन करना"।

'लई' शब्द भी क्रिया है और जब यह अलग रहता है तब इसका अर्थ है "आना"।

जब किसी शब्द के पहले "त्सुंग" और पीछे "लई" लगा दिये जाते हैं तब उपसर्ग और प्रत्यय दोनों मिल कर "से" का अर्थ प्रकाशित करते हैं। जैसे "त्सुंग पीकिंग लई" जिसका अर्थ है "पीकिंग से"। यहां देखा जाता है कि दो स्वतन्त्र शब्दों के द्वारा 'पीकिंग' शब्द के भाव का परिवर्तन होता है। ये न तो परिवर्तित होते हैं और न पीकिंग शब्द के साथ मिल जाते हैं।

"युंग यि-पा-तऊ" का अर्थ है "तलवार के द्वारा"। इसमें "युंग" क्रिया है और उसका अर्थ है "व्यवहार करना"; "यि" का अर्थ है, 'एक" और "पा-तऊ" का अर्थ है "तलवार"। सब शब्दों से अर्थ निकलता है "एक तलवार का व्यवहार करो।"

चीनी भाषा में क्रिया के कालवाचक या अन्य लकारबोधक रूप नहीं हैं। इसके साथ अन्य क्रिया-वाचक शब्द जोड़ कर कालादि सूचित होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे "त्सेऊ"—चलना

त्सेऊ-लिश्रऊ (= चलना + समाप्त करना) = चला

इ-की-त्सेऊ (= पहले ही + समाप्त करना + चलना) = चला है।

यऊ-त्सेऊ (= चाहना + चलना।) = चलेगा।

भाषा की सबसे पहले की अवस्था यही है। परवर्ती अवस्था में अर्थात् भाषा की द्वितीय अवस्था में जिन शब्दों के द्वारा उपसर्ग या विभक्ति या प्रत्यय का काम लिया जाता है वे पृथक् शब्द नहीं रहते और उनका पृथक् अर्थ नहीं रहता। वे केवल उपसर्ग या विभक्ति या प्रत्यय का काम करते हैं। चीनी भाषा में भी ऐसी एक-आध विभक्ति मिलती है, जैसे शब्दों के पीछे 'ती' लगाने से सम्बन्धकारक बन जाता है। 'ती' हिन्दी 'का' का काम करता है, परन्तु इसकी पृथक् स्थिति नहीं है।

भाषा की द्वितीय अवस्था का सबसे परिचित उदाहरण तुर्की भाषा है। इस भाषा में शब्दों के अङ्ग (Stem) के साथ प्रत्यय ऐसे जोड़ दिये जाते हैं कि वे सहज से पहचाने जाते हैं या पृथक् किये जा सकते हैं। जैसे विशेष्य के उत्तर "इन्" लगाने से "इन्" का अर्थ होता है "का"; "एह्" लगाने से "एह्" का अर्थ होता है "को", और "दन्" लगाने से "दन्" का अर्थ होता है "से"। "एव्" का अर्थ है "घर", "एविन" का अर्थ है "घर का"; "एवेह्" का अर्थ है "घर को"; और "एव्दन्" का अर्थ है "घर से"। अब यदि हम एव् के बाद बहुवचन-वाचक "लेर" जोड़ दें, तो "एवलेर" शब्द का अर्थ होगा "घर सब" और इसका यों रूप होगा—

एवलेरिन् = घरों का
एवलेरेह् = घरों को
एवलेरदेन् = घरों से

"इम्" का अर्थ है "मेरा"। यह विशेष्य तथा क्रिया दोनों में जोड़ा जाता है। "एविम्" का अर्थ है "मेरा घर"। इसका यों रूप होगा।

एविमिन्—मेरे घर का
एविमेह्—मेरे घर को
एविम्दन्—मेरे घर से

"एवलेरिम" का अर्थ है "मेरे सब घर" और इसका यों रूप होता है।

एव्लेरिमिन्—मेरे घरों का
एव्लेरिमेह्—मेरे घरों को
एव्लेरिम्दन्—मेरे घरों से

शेषोक्त शब्द के विश्लेषण से तुर्की भाषा की विशिष्टता स्पष्ट हो जाती है। देखते हैं कि इस शब्द का प्रत्येक अंश अपरिवर्तनीय है, परन्तु इनको एकत्र करने से अर्थ का अभीष्ट परिवर्त्तन मिलता है। जैसे 'एव' = घर, 'लेर' (= बहुवचन-वाचक प्रत्यय, 'इम्') = मेरा, 'दन' = से, इनसे जो सम्पूर्ण शब्द मिलता है उसका अर्थ है घर + ओं + मेरे + से = मेरे घरों से।

क्रियाओं में भी यही नियम है। जैसे = ओल्मक् = होना, इसका वर्त्तमान "ओलोरम्" = "मैं हूँ" है। इसमें ओल् = होना, "ओर" = वर्त्तमान कालवाचक प्रत्यय, और अम् ('इमके' स्थान में) = मेरा। सम्पूर्ण शब्द = होना + अब + मेरा = अब मेरा होना = मैं हूँ। बहुवचन में यह अधिक स्पष्ट हो जायगा। जैसे हम = बिज़, तुम सब = सिज़, वे = अन्लर्; इनको "ओल् ओर" (= वर्त्तमान में होना) के साथ मिलाने से पाया जाता है—

ओलोरिज़ = हम हैं।
ओलोर्-सिनिज = तुम लोग हो
ओलोर लर = वे हैं।

ऊपर लिखे हुए सूक्ष्म विवरण से तुर्की भाषा के शब्द-निर्माण का परिचय मिलता है। इसमें प्रयोजन के अनुसार एकाक्षर (monosyllables) जोड़ कर बड़े शब्द बनते हैं और हर एक एकाक्षर का अर्थ है। यह संयोगी भाषाओं का एक उदाहरण है।

ऐसी भी संयोगी भाषाएँ हैं जिनमें सब एकाक्षरों (syllables) का अर्थ नहीं मिलता। परन्तु उनमें अङ्ग (stem) प्रत्ययों से अलग किया जा सकता है। तेलुगु भाषा इसका उदाहरण है। इसमें विशेष्य के आकार का परिवर्त्तन नहीं होता। धातु (root) या अङ्ग (stem) के उत्तर विशेष्यवाचक प्रत्यय लगा देने से विशेष्य के नाना रूप बनते हैं, और क्रियावाचक प्रत्यय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा देने से क्रिया के नाना रूप बनते हैं। "गुर्रमु" शब्द का अर्थ है घोड़ा। इस पर प्रत्यय लगाने से इसके कारक के रूप पाये जाते हैं, जैसे—

गुर्रमु-नु=घोड़े को। कर्म।
गुर्रमु-कु=घोड़े को। सम्प्रदान।
गुर्रमु-चेता=घोड़े से। करण।
गुर्रमु-योक्का=घोड़े का। सम्बन्ध।
गुर्रमु-लो=घोड़े में। अधिकरण।

विशेष्य और विभक्ति के बीच में "ला" लगाने से बहुवचन के रूप मिलते हैं, जैसे गुर्रमु-ला-चेता= घोड़ों से।

सर्वनामों में भी यही नियम है, केवल इतना ही प्रभेद है कि अधिक व्यवहार के कारण विभक्ति लगाने के समय इनके आकार में कुछ परिवर्त्तन हो जाता है, जैसे कर्त्ता-कारक "नेनु"=मैं, सम्प्रदानकारक "ना—कु"= मुझको; कर्त्ताकारक "नीवु",=तू, करणकारक "नी-चेता"=तुझसे।

क्रिया बनाने के लिए अङ्ग (stem) पर नाना प्रकार के प्रत्यय लगते हैं। क्रिया अकर्मक या सकर्मक, भाववाचक या अभाववाचक कर्तृ-वाच्य-बोधक या कर्म-वाच्य-बोधक, अथवा प्रेरणार्थक हो सकती है। "पम्पु"=भेजना, यह सकर्मक, भाववाचक तथा कर्तृ-वाच्य-बोधक है। पम्पु+आ=पम्पा=न भेजना (-अभाव-वाचक) पम्पु+इञ्चु=पम्प् + इञ्चु= भेजवाना "पम्पु" पर "बडु" धातु, जिसका अर्थ है "सहना", जोड़ने से कर्म-वाच्य हो जाता है। खाने के अर्थ का धातु जोड़ने से भी कर्म-वाच्य बनता है। हिन्दी में "मार खाना" इत्यादि कर्म-वाच्य-बोधक क्रिया सम्भवतः ठेठ द्राविड़ी भाषा से लिया गया है।

वर्तमान, अतीत, अनुज्ञा इत्यादि लकारार्थ-बोधक क्रियाओं के रूप भी अङ्ग पर प्रत्यय जोड़ कर बनाते हैं, जैसे पम्पु=भेजना, इस पर 'तु' जोड़ने से वर्तमान काल प्रकाशित होता है। पम्पुतु में उत्तम पुरुष एकवचनार्थक 'नानु' जोड़ने से पम्पु-तु-न्नानु=भेजना+अभी+मैं=मैं भेजता हूँ। पम्पुतु न्नावु=भेजना+अभी+तू=तू भेजता है। इसी प्रकार से अन्यान्य लकार के रूप भी बनते हैं।

इस श्रेणी की भाषाओं से मालूम होता है कि उच्चारण के सुविधा के लिए शब्दों के बनानेवाले प्रत्यय कुछ बदलने लगे हैं। कहीं एकाध वर्ण का लोप भी हो रहा है, एक स्वरवर्ण के स्थान में दूसरे का व्यवहार होने लगा है। परन्तु अङ्ग का परिवर्तन नहीं होता और अङ्ग से प्रत्यय अलग किया जा सकता है।

भाषा की तृतीय अवस्था में अङ्ग के साथ प्रत्यय ऐसा सट जाता है कि न वह अलग किया जा सकता और न पहले उसका असल रूप क्या था इसका ही पता चलता है। भाषा की इस अवस्था को विभक्ति-प्रधान (inflectional) कहते हैं। जितनी आर्य्य भाषाएँ हैं सब इसके उदाहरण हैं। इनमें विभक्तियाँ बहुशः अलग की जा सकती हैं, परन्तु उनके मूल क्या हैं इसका ठिकाना नहीं मिलता। जैसे संस्कृत अस्मि=मैं हूँ, यह अस् धातु से बना, जिस में मि प्रत्यय जोड़ दिया गया। प्रमाणित किया जा सकता है कि "मि" प्रत्यय का अर्थ है "मैं", परन्तु संस्कृत भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं मिलता।

ग्रीक भाषा में "एइमि" शब्द का भी यही अर्थ है, परन्तु कोई अलग शब्द 'एइ' या 'मि' नहीं मिलता। 'एस्' (=संस्कृत अस्) का परिवर्तित आकार है 'एइ'। लैटिन में 'सम्' का यही अर्थ है। इसका 'स' ग्रीक 'एस्' (=सं अस्) से आया। गाथिक में 'इम्' का भी यही अर्थ है। यह 'इस्'=सं-अस् से बना।

ऊपर की लिखी हुई किसी भाषा में प्रत्यय मूलरूप में नहीं पाया जाता और प्रायः सबमें अङ्ग (stem) का भी परिवर्तन हो गया है।

भाषा की एक और अवस्था है, जिसमें प्रत्यय ऐसे लुप्त हो जाते हैं कि उनका कोई चिह्न तक नहीं रहता। इस अवस्था में अर्थ समझना मुश्किल है। अर्थ-बोध के लिए शब्दों के साथ नये शब्द जोड़ने पड़ते हैं। कारकों को प्रकाशित करने के लिए पूर्वस्थ अव्ययों (Prepositions) वा परस्थ अव्ययों (Postpositions) का प्रयोजन होता है। अँगरेज़ी भाषा में पूर्वस्थ अव्ययों का और हिन्दी, बँगला इत्यादि में परस्थ अव्ययों का व्यवहार होता है। भाषा की इस अवस्था में ऐसा मालूम होता है कि यह फिर आदिम या पद-विन्यासमूलक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(syntactical) अवस्था में आ पहुँची है। उदाहरण, संस्कृत रामाय=हिन्दी राम के लिए, संस्कृत हस्तेन= हिन्दी हाथ के द्वारा इत्यादि। इस अवस्था में वाक्य में शब्दों के अवस्थान के अनुसार अर्थ-ग्रहण होता है।

ऊपर में भाषाओं का जो विवरण दिया गया है उससे उनकी गठन-शैली का कुछ परिचय मिलता है। अब पृथ्वी की सब भाषाओं का श्रेणी-विभाग किया जाता है। गठन-शैली के अनुसार श्रेणी-विभाग में दो नियम पाये जाते हैं।

(१) कुछ ऐसी भाषाएँ हैं जिनका एक एक शब्द एक एक एकाक्षरमूलक धातु है। इन शब्दों का कुछ परिवर्तन नहीं होता। न वे भीतर से बदलते हैं, न उनके ऊपर कोई विभक्ति या प्रत्यय या उपसर्ग लगता है। वे साधारण अर्थ में व्यवहृत होते हैं। वाक्य में शब्दों के अवस्थान के अनुसार वे क्रिया, विशेष्य या विशेषण तथा कर्ता, कर्म्म इत्यादि व्याकरण के सम्बन्धों के सूचक होते हैं। यदि हम धातु को संक्षेप में 'ध' कहें, धातुमध्यस्थ परिवर्तन को 'म' कहें, प्रत्यय को 'प' कहें, उपसर्ग को 'उ' कहें, उपसर्गों या प्रत्ययों की संख्या को 'स' कहें तो इन भाषाओं के एक एक शब्द का साङ्केतिक चिह्न (formula) धा + धा + धा + ··· होगा। चीनी, तिब्बती, बर्म्मी, स्यामी भाषाएँ इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। तिब्बती में 'दस' के लिए 'चु' धातु का और 'दो' शब्द के लिए 'न्यि' धातु का व्यवहार होता है। इन दोनों धातुओं के संयोग से 'न्यिचु' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है 'बीस'। इस श्रेणी का नाम एकाक्षर (monosyllabic) या निरवयवी (Inorganic) दिया जा सकता है।

(२) अधिकांश भाषाओं में धातुओं में नाना प्रकार के परिवर्तन पाये जाते हैं। हम इनका नाम अवयवी (Organic) दे सकते हैं। अवयवी भाषाओं की तीन श्रेणियाँ हैं—(पहली श्रेणी का नाम है) पूर्ण संयोगी (amalgamating) या विभक्तिप्रधान (inflexional)। इनमें धातु, प्रत्यय, विभक्ति इस प्रकार से मिले रहते हैं कि उनको अलग करना कठिन होता है। इनके एक एक शब्द का साङ्केतिक चिह्न है धाम, उधाप, उधाम पप, उउ धाम पप, धाप, उधाम। इन भाषाओं के भी दो विभाग हैं—

पहले में वे हैं जिनके धातुओं का भीतरी परिवर्तन अपनी स्वाधीन शक्ति से नहीं होता परन्तु बलप्रयोग (accent) तथा उच्चारण की सुविधा के लिए होता है। जितनी आर्य्य भाषाएँ हैं वे इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। इन भाषाओं की दो अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था संश्लेषक है, अर्थात् विभक्तियों का संयोग ही उनका प्रधान लक्षण है। संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, गाथिक, पुरानी अँगरेज़ी, रूसी में यह लक्षण पाया जाता है। दूसरी अवस्था विश्लेषक (analytic) है, अर्थात् संश्लेषक अवस्था की विभक्तियाँ नहीं रहतीं। उनके बदले में नया उपाय अवलम्बन किया जाता है, जैसे कहीं पूर्वस्थ अव्ययों (Prepositions) और कहीं परस्थ अव्ययों (Postpositions) का व्यवहार होता है। हिन्दी, बँगला, फ्रेंच, अँगरेज़ी इत्यादि में यह लक्षण पाया जाता है।

दूसरे भाग की भाषाओं के धातुओं में भीतरी बदल अपनी स्वाधीन शक्ति से होता है। इन भाषाओं की प्रकृति ही ऐसी है कि परिवर्तन एक नियम के अनुसार आपसे आप होता है, किसी बाहरी प्रभाव से नहीं। सेमेटिक नाम की जितनी भाषाएँ हैं वे इसी श्रेणी की हैं। अरबी, हीब्रू (फिनिशिअन इससे सम्बन्ध रखती थी), अरमेइक या सिरियन, असीरियन, अबिशिनियन इत्यादि सेमेटिक भाषाएँ हैं। इन भाषाओं के धातु प्रायः तीन व्यञ्जन वर्णों से बनते हैं। इन्हीं व्यञ्जनों में स्वरों के हेर-फेर तथा आदि, अन्त या मध्य में वर्णों के संयोग से शब्द बनते हैं। इन भाषाओं में क्रियाओं की भिन्न भिन्न अवस्थाओं का अर्थात् काल, विधि इत्यादि का विकास अच्छी तरह नहीं हुआ है।

संस्कृत तथा अरबी दोनों पूर्ण संयोगी अवयवी (inflected organic) भाषाएँ हैं; परन्तु इनमें शब्दों के गठन का बहुत प्रभेद है। नीचे लिखे उदाहरणों से स्पष्ट होगा—

हिन्दी	संस्कृत	अरबी
करना	कृ (धातु)	फअ़ल् (धातु)
किया	चकार	फअ़ल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी	संस्कृत	अरबी
करता है / करेगा	करोति / करिष्यति	यफ़्अलो
करता हुआ	कुर्वत्	फाअ्लो
किया गया	कृतः	मफअ्लो

पुस्तक (एकवचन) पुस्तकम् किताब

पुस्तकें (बहुवचन) पुस्तकानि कुतुब

ऊपर के उदाहरणों से देखा जाता है कि संस्कृत में विभक्ति के संयोग से पद बनते हैं। शब्दों के भीतर कहीं कहीं जो परिवर्तन देखे जाते हैं वे बाहरी कारणों से अर्थात् उच्चारण की सुविधा के निमित्त होते हैं। परन्तु अरबी में परिवर्तन का बाहरी कोई कारण नहीं है। भाषा की प्रकृति ही ऐसी है कि वज़न या निर्दिष्ट साँचे के अनुसार परिवर्तन अवश्य होगा। किसी किसी वज़न में धातु के भीतर बाहरी अक्षरों का आगम होता है परन्तु आगम के कारण धातु का प्रायः परिवर्तन नहीं होता। क्रिया के दो ही कालसूचक रूप पाये जाते हैं।

सेमेटिक भाषाएँ भी संश्लेषक तथा विश्लेषक अवस्थाओं में पाई जाती हैं। अरबी संश्लेषक है और हीब्रू वा इब्रानी विश्लेषक है।

अवयवी (Organic) भाषाओं की दूसरी श्रेणी का नाम संयोगी (Agglutinating) दिया जा सकता है। इनमें धातुओं के साथ व्याकरण के भिन्न भिन्न सम्बन्धसूचक और भिन्न भिन्न अर्थसूचक प्रत्यय मिल कर शब्द बनते हैं परन्तु शब्द का प्रत्येक अंश उससे पृथक् किया जा सकता है। ये तीन प्रकार के हैं—

(क) प्रत्ययसंयोगी (Suffixagglutinating). इनमें द्राविड़ी भाषाएँ, अर्थात् तामिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नाद, गौंड, ओराओं, ब्राहुई हैं; कोल भाषाएँ अर्थात् मुण्डारी, हो, सन्ताली हैं; उरल-अल्टाई भाषाएँ अर्थात् तुर्की, मोंगोल, बुरियात, तुंगुस, मांचू हैं; हंगेरियन और फिनिश हैं; तथा जापानी इत्यादि हैं। यदि हम वचन-सूचक प्रत्ययों को 'व' कहें और कारकसूचक प्रत्यय को 'क' कहें, तो हंगेरियन, तुर्की इत्यादि भाषाओं के शब्दों का साङ्केतिक आकार 'धक' होगा और बहुवचन में 'धकव' होगा। इस प्रकार से अनेक प्रत्यय संयुक्त हो सकते हैं। जापानी के प्रत्ययों को विभक्तियाँ या परस्थ अव्यय (Postposition) भी कह सकते हैं। तुर्की भाषा के प्रत्ययसंयोग के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	एव्	एव्-लेर्
कर्म	एव्-इ	एव्-लेर्-इ
सम्प्रदान	एव्-ए	एव्-लेर्-ए
अपादान	एव्-देन्	एव्-लेर्-देन्
सम्बन्ध	एव्-इन्	एव्-लेर्-इन्
अधिकरण	एव्-दे	एव्-लेर्-दे

अङ्ग में 'ए' रहने से उसके अन्तर्गत प्रत्यय का स्वर 'ए' होगा और 'आ' रहने से प्रत्यय का स्वर 'आ' होगा। अतएव स्वरों में सामञ्जस्य है। एल=हाथ, एल-इम=मेरा हाथ, एल-इम-दे=मेरे हाथ में। आर्य्य भाषाओं या द्राविड़ी भाषाओं में अन्तर्गत प्रत्यय नहीं रहता।

जापानी और तुर्की इत्यादि में बहुत प्रभेद है। जापानी में धातुओं की द्विरुक्ति से बहुवचन सूचित होता है।

द्राविड़ी भाषाएँ पूर्ण संयोगी नहीं हैं परन्तु विभक्ति-प्रधान हैं, जैसे

एकवचन	तेलुगु	तामिल	मलयालम	कन्नाद
प्र०	गुर्रम् (वृक्ष)	मरम्	मरम्	मरम्
द्वि०	गुर्रमनु, गुर्रम	मरत्ते	मरत्तिने, मरत्त	मरमम, मरनम्
च०	गुर्रमुनकु	मरत्तिर्कु	मरत्तिन्नु	मरके, मरक्के
प०	गुर्रमु, गुर्रमुयोक्क	मरत्तिनदु, मरत्तिन	मरत्तिन्द्रे, मरत्तिरांड़े	मर्द, मरदा
बहुवचन				
प्र०	गुर्रमुलु गुर्रालु	मरंगळ	मरङ्ङळ	मरगळ
द्वि०	गुर्रमुलनु गुर्रालनु	मरंगळेइ	मरङ्ङळे	मरगळम
प०		मरंगलिनदु मरंगळ्निय	मरङ्ङळुडे	मरगळ

(ख) उपसर्गसंयोगी (Prefix-agglutinating) इसमें बान्तू, जूलू, सुआहिली इत्यादि दक्षिण और मध्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफ्रिका की भाषाएँ हैं। इनके शब्दों का साङ्केतिक आकार हैं उध उउध इत्यादि। वान्तु के वाक्यों में शब्द पृथक् रहते हैं। अर्थ के परिवर्तन तथा व्याकरण के सम्बन्ध उपसर्गों के द्वारा प्रकाशित होते हैं। इनमें किसी परिमाण से क्रियाओं के पहले कर्म्मसूचक सर्वनाम मिले रहते हैं।

(ग) उपसर्ग-प्रत्यय-मध्यागम-संयोगी (Prefix-suffix and infix-agglutinating) इनमें मलय, मलक्का, जावा, वोर्निओ, फारमोसा आदि द्वीपों की भाषाएँ हैं। जावा, की भाषा संस्कृतज भाषाओं से सम्बन्ध रखती है। इस श्रेणी के तीन विभाग हैं (१) मलेयन (२) मेलानेसियन और (३) पौलिनेसियन। पौलिनेसियन में व्याकरण के सम्बन्ध अव्ययों के द्वारा व्यक्त होते हैं। मेलानेसियन में सम्बन्धकारकसूचक सर्वनाम शब्दों के साथ संयुक्त हो जाते हैं। मलेयन में उपसर्ग, प्रत्यय तथा मध्यागम संयुक्त होते हैं। उपसर्गों की संख्या अधिक है। इनके धातु प्रायः द्व्यक्षरात्मक (Dissyllabic) हैं, और धातु तथा शब्द में कुछ प्रभेद नहीं है। अव्यय शब्द तथा द्विरुक्त धातु भी पाये जाते हैं। मध्यागम के विषय में सेमेटिक भाषाओं के साथ इनका कुछ सादृश्य है। इनके शब्दों के सङ्केत उधा, उधाव, धाआ, धाआआ उधाआप इत्यादि।

(३) अवयवी भाषाओं की तीसरी श्रेणी में वे भाषाएँ हैं जिनका एक एक शब्द दो या अधिक पदों के संयोग से बनता है (polysynthetic) वे दो प्रकार के हैं—(क) जिनमें एक एक वाक्य के सब पद मिलकर एक एक शब्द बनता है (sentence incorporating) जैसे अमेरिका के आदिम निवासियों की भाषाएँ; और (ख) जिनमें धातु के साथ सर्वनाम (कर्त्ता तथा कर्म्म) (pronoun-incorporating) जैसे बास्क (Basque) भाषा। पहली श्रेणी की भाषाएँ, जो अमेरिका के आदिम निवासियों में पाई जाती हैं और जिनकी संख्या क़रीब ८०० की है, क्रिया के साथ कर्त्ता, कर्म्म, समयवाचक, स्थानवाचक, प्रकारवाचक, नास्तिवाचक, प्रेरणावाचक इत्यादि सङ्केतों को संयुक्त कर लेती हैं। योग होते होते कभी कभी शब्द अतिदीर्घ हो जाते हैं। इस संयोग में कभी कभी उपादान बहुत परिवर्तित हो जाते हैं। किसी आर्य्य भाषा का एक सरल वाक्य कर्त्ता, कर्त्ता के विशेषण, क्रिया, क्रिया के विशेषण, कर्म्म, कर्म्म के विशेषण से बनता है, परन्तु अमेरिका की इन भाषाओं में ये सब शब्द मिल कर एक शब्द बन जाते हैं। आर्य्यभाषाओं में भी समास से कभी कभी ऐसे शब्द बनते हैं। संस्कृत-काव्यों में ऐसे शब्दों के असंख्य उदाहरण हैं जैसे देवी-करकमल-चालित-चेलाञ्चलानिल-ससंज्ञः अर्थात् देवी के कमल के सदृश करों से चलाये हुए वस्त्र के अञ्चल से उत्पन्न वायु से संज्ञा पाई। यह समास-युक्त शब्द विशेषण है। यह किसी उपयोगी विशेष्य (यथा राजा) के पहले बैठ सकता है या किसी वाक्य का विधेय भी हो सकता है। संस्कृत में समास के भीतर सर्वनाम किसी क्रिया का कर्त्ता या कर्म्म होकर नहीं बैठ सकता। बास्क भाषा में केवल कर्त्ता, क्रिया और मुख्य तथा गौणकर्म्म एकत्र मिले रहते हैं। जब कर्त्ता या कर्म्म सर्वनाम होता है तभी ये क्रिया के साथ मिलते हैं। अपर विषयों में यह भाषा प्रत्ययसंयोगी-विभक्तिप्रधान कही जा सकती है।

नलिनीमोहन सान्याल

घर और बाहर।

निखिलेश की आत्म-कथा।

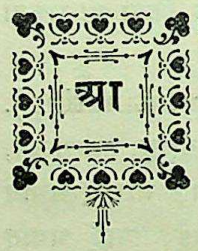

आज हम लोग कलकत्ते जायँगे। बैठे रहना मिथ्या है, सञ्चय करना मिथ्या है। मैं इस घर का मालिक हूँ, यह बनावटी बात है। सच यह है कि मैं जीवन-पथ का पथिक हूँ। इसी से घर के मालिक को बार बार चोट लगेगी—उसके उपरान्त अन्तिम आघात है मृत्यु। तुम्हारे साथ मेरा जो मिलन है सो चलते रहने ही में—जहाँ तक एक राह में चला गया वहाँ तक ही अच्छा—उससे अधिक खींच-खाँच करने में ही मिलन बन्धन हो जायगा। वह बन्धन आज पड़ा रह गया—अब की मैं बाहर निकल पड़ा हूँ—चलते चलते जितना आँखों में मिले, जितना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथों में आ जाय उतना ही अच्छा । उसके बाद ? उसके बाद है अनन्त जगत् की राह, असीम जीवन का वेग,—तुम मुझसे कितनी वञ्चना कर सकती हो, प्रिये ? सामने जो वंशी बज रही है, कान लगा कर यदि सुनते हैं तो उसे सुन पाते हैं, बिछोह की सारी दरारों के भीतर होकर उसके माधुर्य का झरना झर रहा है । लक्ष्मी का अमृत-भाण्डार शून्य होनेवाला नहीं, इसी से बीच बीच में वह हमारे पात्र को तोड़ कर हमें रुला कर हँसती हैं । मैं टूटा बर्तन उठाने न जाऊँगा, मैं अपनी अतृप्ति को हृदय में लिये ही सामने चला जाऊँगा ।

मँझली रानी ने आकर कहा—राजा भैया, अपनी सब किताबें सन्दूकों में भर कर बैलगाड़ी में लाद कर जो तुम चले, इसके क्या माने ?

मैंने कहा—इसके माने यही हैं कि इन किताबों की ममता को मैं अभी तक छोड़ नहीं सका ।

मँझली रानी—ममता का कुछ कुछ बना रहना ही अच्छा । लेकिन अब क्या यहाँ लौट कर न आओगे ?

मैं—आना-जाना बना रहेगा, लेकिन यहीं पड़े रहना न होगा ।

मँझली रानी—सचमुच ? तो ज़रा आओ, ज़रा आकर देखो, कितनी चीज़ों पर मेरी ममता है ।

मँझली रानी के कमरे में जाकर देखा, छोटे-बड़े तरह तरह के बक्स और पोटलियाँ ढेर हैं । एक बक्स खोल कर दिखाया; कहा—राजा भैया, यह देखो, मेरे पान लगाने का सरंजाम है । क्यौड़ा पड़े हुए कत्थे की बड़ियाँ ये देखो बोतल में भरी हैं—ये सब देखो, मसालों से भरे हुए छोटे पीपे रक्खे हैं । ये देखो ताश हैं । पचीसी लेना भी नहीं भूली हूँ । तुम लोग काम-काज में लगे रहने के कारण खेलने की फ़ुरसत न पाओगे तो भी मैं खेलनेवाला ढूँढ़ ही लूँगी । यह कङ्घी तुम्हारी ही मँगाई हुई स्वदेशी कङ्घी है । और यह—

मैं—किन्तु बात क्या है मँझली रानी ? यह सब सामान बक्सों में क्यों भर रही हो ?

मँझली रानी—मैं भी तो तुम्हारे साथ कलकत्ते चल रही हूँ ।

मैं—क्यों ?

मँझली रानी—डरो नहीं, भैया, डरो नहीं, तुमसे भी अधिक हेल-मेल न करूँगी और छोटी रानी से भी झगड़ा न करूँगी । मरना तो होगा ही, इसी से पहले ही से गङ्गा-किनारे के देश में आश्रय लेना अच्छा—मरने पर यहाँ तुम उसी गन्दे मसान में जलाओगे, यह याद आते ही मुझे मरने से घृणा होती है,—इसी कारण तो इतने दिनों से तुमको जला रही हूँ ।

इतनी देर बाद मेरा यह घर मानो बोल उठा । मेरी अवस्था जब छः साल की थी, तब नव वर्ष की मँझली रानी इस घर में ब्याह कर आई थीं । इस घर की छत पर दोपहर को ऊँची दीवार के कोने की छाँह में बैठ कर उनके साथ खेला हूँ । बाग़ में आँवले के पेड़ पर चढ़ कर ऊपर से कच्चे आँवले मैंने फेंके हैं, उन्होंने नीचे बैठ कर उन्हें कूच कर नोन मिर्च हरी धनिया मिलाकर पथ्य तैयार किया है । गुड़िया के ब्याह के भोज में जो सामग्री चुपके से भंडारे से ले आने की ज़रूरत पड़ती थी उनके लाने का काम मेरे सिर था, क्योंकि दादी के विचार में मेरे किसी अपराध का दण्ड न दिया जाता था । उसके सिवा जिन शौकीनी की चीज़ों के लिए दादा से वह फ़रमाइश करती थीं उनकी फ़रमाइश दादा तक मैं पहुँचाता था—मैं दादा के पीछे पड़ कर चाहे जिस तरह होता था, काम पूरा कर लाता था । उसके उपरान्त यह भी स्मरण आता है कि उन दिनों बुख़ार आने पर वैद्यजी के कड़े हुक्म से तीन दिन तक मुझे केवल गर्म जल और इलायचीदाने का पथ्य दिये जाने का प्रबन्ध होता था—मँझली रानी मेरे दुःख को देख न सकती थीं, न-जाने कितनी बार उन्होंने छिपा कर मुझे खाने को ला दिया है, कभी कभी प्रकट हो जाने पर उन्हें झिड़कियाँ और डाँट-डपट भी सहनी पड़ती थी । उसके बाद बड़े होने के साथ ही साथ दुःख-सुख का रङ्ग गहरा हो उठा—कितनी ही बार झगड़ा भी हुआ है, सम्पत्ति के मामले में कभी कभी ईर्ष्या, सन्देह और विरोध भी आ पड़ा है । और उसके बीच में विमला के आने पर कभी कभी ऐसा हुआ है कि जान पड़ा, यह बिगाड़ अब मिट नहीं सकता—किन्तु उसके बाद यह प्रमाणित होगया है कि भीतर का मेल उस बाहरी घाव की अपेक्षा अधिक प्रबल है । इसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचपन से अब तक एक सत्य सम्बन्ध दिन दिन अखण्ड होकर स्थायी हो उठा है। उस सम्बन्ध की शाखा-प्रशाखायें इस बड़े घर भर में, आँगन में, बरामदे में, छत पर, बाग़ में अपनी छाया फैलाये, सब पर अधिकार जमाये खड़ी हैं।—जब देखा कि मँझली रानी अपनी सब छोटी-मोटी चीज़ें समेट कर बक्सों में बन्द कर हमारे इस घर से जाने के लिए तैयार खड़ी हैं तब इस चिरसम्बन्ध की सब जड़ें मानो मेरे हृदय में हिल उठीं। मुझे अच्छी तरह मालूम होगया कि मँझली रानी—जिन्होंने नव वर्ष की अवस्था से आज तक कभी एक दिन भी यह घर छोड़ कर बाहर नहीं बिताया—आज क्यों अपने सारे अभ्यास के बन्धन को काट डाल कर अपरिचित स्थान में जाने के लिए तैयार हैं। मगर उस असल कारण की बात मुँह फोड़ कर कहना ही नहीं चाहतीं—अन्य कितने ही प्रकार के बहाने करती हैं। इस भाग्य के द्वारा वञ्चित पति-पुत्रहीन नारी ने संसार में केवल इसी एक सम्बन्ध को अपने हृदय के सारे सञ्चित अमृत से सींच कर पाला है; उनकी वेदना कितनी गहरी है, इस बात का अनुभव आज जैसा घर भर में बिखरे हुए बक्सों और पोटलियों के बीच में खड़े होकर मैंने प्राप्त किया वैसा और किसी दिन नहीं। मुझे मालूम हो गया कि रुपये-पैसे और घर-द्वार के बँटवारे को लेकर छोटे-मोटे सामान्य सांसारिक विषयों में मेरे साथ विमला के साथ उनका जो बार बार झगड़ा हो गया है उसका कारण लोभ नहीं है; उसका कारण यही है कि अपने जीवन के इसी एक-मात्र सम्बन्ध में अपने दावे को वह ज़बर्दस्त नहीं बना सकीं—विमला ने एकाएक न-जाने कहाँ से बीच में आकर इस सम्बन्ध के रङ्ग को फीका कर दिया है। इसी जगह पर उन्होंने पग पग पर आघात पाया है, किन्तु कुछ कहने का उनका कुछ भी ज़ोर न था। विमला ने भी एक तरह से समझ लिया था कि मेरे ऊपर मँझली रानी का दावा केवल सामाजिकता का दावा नहीं है, वह उसकी अपेक्षा अधिक गम्भीर है—इसी कारण हमारे इस बचपन के सम्बन्ध पर उसको इतनी ईर्ष्या है। आज हृदय के द्वार पर मेरा हृदय धकधक करके धक्के देने लगा। एक बक्स के ऊपर मैं बैठ गया। बोला—मँझली रानी, हम दोनों ने जब एक दूसरे को पहले पहल देखा था उसी दिन को फिर देखने की बड़ी इच्छा होती है।

मँझली रानी ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—नहीं भाई, स्त्री का जन्म लेकर अब नहीं—जो मैं सह चुकी हूँ वह इतना ही बहुत है; अब नहीं सहा जा सकता।

मैं बोल उठा—दुःख के भीतर होकर जो मुक्ति आती है वह मुक्ति दुःख से भी बड़ी है।

उन्होंने कहा—सो हो सकता है, राजा भैया, तुम मर्द हो, मुक्ति तुम लोगों के लिए है। हम औरतें बाँधना चाहती हैं, बँधना चाहती हैं,—हमसे तुम सहज में छुटकारा नहीं पा सकते हो, भैयाजी। अगर उड़ना चाहते हो तो हमको भी ले चलना होगा—हमें छोड़ कर उड़ न सकोगे। इसी लिए तो यह सब बोझ बाँध कर रक्खा है—तुम लोगों को एक-दम हलका कर देने में हमारी रक्षा नहीं!

मैंने हँस कर कहा—वही तो देख रहा हूँ—यह बोझ तो स्पष्ट ही बोझ जान पड़ रहा है। किन्तु यह बोझ लादने की मजूरी तुम लोग दे देती हो इसी से तो हम लोग कुछ कहते नहीं।

मँझली रानी ने कहा—हम लोगों का बोझ है छोटी चीज़ का बोझ। जिसको ही छोड़ देना चाहेंगी वही कहेगा, मैं सामान्य हूँ, मेरा बोझ ही कितना है। इसी तरह हलकी चीज़ों से ही तो हम तुम्हारी मोट भारी कर देती हैं। राजा भैया, घर से कब चलना होगा?

मैं—रात के साढ़े ग्यारह बजे। अभी बहुत समय है।

मँझली रानी—देखो राजा भैया, मेरी एक बात तुमको माननी पड़ेगी—आज ज़रा सबेरे ही खा-पीकर दोपहर को ज़रा सो लेना—रात को गाड़ी में तो अच्छी तरह नींद न आवेगी। तुम्हारा शरीर ऐसा हो गया है कि देखने से जान पड़ता है, रोगी हो रहे हो। चलो, नहा डालो।

इसी समय चेमा दासी एक लम्बा घूँघट काढ़े आई और धीरे से बोली—दारोग़ा साहब किसी को अपने साथ लाये हैं, महाराज से मिलना चाहते हैं।

मँझली रानी ने बिगड़ कर कहा—महाराज चोर हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या डाकू, जो दारोग़ा उनके पीछे ही लगा रहता है! कह आ जाकर, महाराज अभी नहाने गये हैं।

मैंने कहा—मैं जाकर देख न आऊँ?—शायद कुछ ज़रूरी काम हो।

मँझली रानी ने कहा—नहीं, यह न होगा। छोटी रानी ने कल बहुत सी गुझिया और समोसे किये हैं। मैं गुझिया-समोसे खाने के लिए भेज कर दारोग़ा का मिजाज़ ठंढा किये रखती हूँ।—इतना कह कर मेरा हाथ पकड़ कर उन्होंने मुझे नहाने के कोठे में कर दिया और बाहर से दरवाज़ा बन्द कर दिया।

मैंने भीतर से कहा—मेरे साफ़ कपड़े अभी—

उन्होंने कहा—कपड़े मैं निकाले रखती हूँ, तब तक तुम नहा डालो!

इस उत्पात के शासन को न मानने की शक्ति मुझमें नहीं—संसार में यह बड़ा दुर्लभ है। दारोग़ा साहब को बैठे बैठे गुझिया खाने दो!

इस बीच में उसी डकैती के मामले में दारोग़ा दस-पाँच आदमियों को पकड़ चुका है। रोज़ ही एक-न-एक सीधे सादे भलेमानुस को पकड़ लाता है। आज भी जान पड़ता है, वैसे ही किसी अभागे को पकड़ लाया है। किन्तु गुझिया-समोसे क्या अकेला दारोग़ा ही खायगा? यह तो ठीक नहीं। दरवाज़े में धमाधम धक्के मारने लगा। मँझली रानी ने बाहर से कहा—पानी डालो, पानी डालो, जान पड़ता है—सिर गर्म हो उठा है।

मैंने कहा—गुझिया-समोसे दो आदमियों भर को भेजना—दारोग़ा जिसे चोर समझ कर पकड़ लाया है उसी को गुझिया-समोसे मिलने चाहिए—कहार से कह देना कि उसी के हिस्से में अधिक पकवान पड़े।

यथासम्भव जल्दी नहा कर दरवाज़ा खोल कर बाहर आया। देखा, दरवाज़े के बाहर ज़मीन पर विमला बैठी है। यह क्या मेरी वही विमला है, वही तेज और अभिमान से गर्विणी है? कौन भिक्षा का भाव मन में लिये यह यहाँ बैठी है? मेरे ज़रा ठिठक कर खड़े होते ही उसने ज़रा सिर झुका कर कहा—तुमसे मुझको कुछ कहना है।

मैं—तो आओ कमरे में चलो।

वह—किसी विशेष काम से क्या तुम बाहर जा रहे हो?

मैं—हाँ, लेकिन वह काम पीछे होगा—पहले तुम से—

वह—नहीं, तुम काम कर आओ—उसके बाद तुम्हारे भोजन कर चुकने पर बात-चीत होगी।

बाहर जाकर देखा, दारोग़ा की थाली ख़ाली है—वह जिसे पकड़ कर लाया है वह आदमी अभी तक बैठा गुझिया-समोसे उड़ा रहा है।

मैंने आश्चर्य के साथ कहा—यह क्या, यह तो अमूल्य है!

उसने एक गुझिया मुँह में रख कर कहा—जी हाँ, पेट भर कर खा लिया है, अब अगर कुछ ख़याल न कीजिए, तो जो गुझिया-समोसे बाक़ी हैं उन्हें रूमाल में बाँध लूँ।—यह कह कर उसने सब रूमाल में बाँध लिये।

मैंने दारोग़ा की ओर देख कर कहा—मामला क्या है?

दारोग़ा ने हँस कर कहा—महाराज, चोर की पहेली तो पहेली ही रही, उस पर चोरी के माल की पहेली यह देखिए।—इतना कह कर एक फटी पोटली खोल कर एक नोटों का बण्डल मेरे सामने रख दिया। कहा, ये महाराज के छः हज़ार रुपये हैं।

मैं—कहाँ से निकले?

दारोग़ा—अभी तो अमूल्य बाबू के हाथ से मिले हैं। यह कल रात को चकुया की कचहरी के नायब के पास जाकर बोले—चोरी के नोट मिल गये हैं। चोरी होने में नायब जितना नहीं डरा उतना चोरी का माल पाकर डरा। वह डरा कि सब लोग यही सन्देह करेंगे कि उसी ने सब नोट दबा कर रक्खे थे, अब विपत्ति की सम्भावना देख यह बाँधनू बाँधा है। उसने अमूल्य बाबू को खिलाने के बहाने से बिठा रख कर थाने में ख़बर दी। मैं घोड़े पर चढ़ कर गया। अमूल्य ने कहा—ये नोट मैंने कहाँ पाये, सो आपसे न कहूँगा। मैंने कहा—बिना बतलाये तो आप छूट नहीं सकते। इन्होंने कहा—झूठ कहूँगा। मैंने कहा—अच्छा वही कहिए। इन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा—एक झोपड़ी के पास पड़े पाये हैं। मैंने कहा—झूठ बोलना तो इतना सहज नहीं है। वह झोपड़ी कहाँ है, वहाँ आप किस ज़रूरत से गये थे, यह सब बतलाना होगा। उन्होंने कहा—यह सब बना लेने का मुझे यथेष्ट समय मिलेगा—इसके लिए आप चिन्ता न करें।

मैंने कहा—हरिचरण बाबू, भले आदमी के लड़के को व्यर्थ के लिए इधर-उधर घसीटने से क्या होगा!

दारोग़ा ने कहा—केवल भले आदमी का लड़का क्यों, यह निवारण घोषाल के लड़के हैं—वह मेरे क्लास-फ्रेंड थे। महाराज, मैं आपसे कहे देता हूँ, मामला क्या है? अमूल्य को यह मालूम हो गया है कि चोरी किसने की है—इसी वन्दे मातरम् के हुल्लड़ में उन्होंने उसे पहचाना है। यह अपने सिर आफ़त लेकर उसे बचाना चाहते हैं। यह सब है इनकी वीरता। महाराज, इस समय चोर का पकड़ा जाना कठिन होगा, किन्तु मैं कहे रखता हूँ कि कौन इसकी जड़ में है।

मैंने पूछा—कौन है?

दारोग़ा—आपका नायब तिनकौड़ीदत्त और वही क़ासिम सरदार।

दारोग़ा अपने इस अनुमान के पक्ष में जब अनेक युक्तियाँ दिखा कर चला गया तब मैंने अमूल्य से कहा—ये रुपये किसने लिये थे, यह अगर मुझसे सच सच कह दोगे तो किसी को कुछ हानि न पहुँचेगी।

उसने कहा—मैंने ही लिये थे।

मैं—किस तरह? वे तो कहते हैं, बहुत से डकैतों ने—

वह—मैं अकेला ही था।

अमूल्य ने जो बयान किया वह बहुत ही अद्भुत है। नायब रात को भोजन करके बाहर बैठा था; वहाँ पर अन्धकार था। अमूल्य की दोनों जेबों में दो पिस्तौल थे—एक में ख़ाली टोटा और एक में गोली भरी थी। अमूल्य के आधे चेहरे पर काला कपड़ा पड़ा था। एकाएक एक बुल्स-आई लालटेन की रोशनी नायब के मुँह पर डाल कर पिस्तौल का ख़ाली फ़ैर करते ही वह चीख़ कर बेहोश हो गया। दो-चार सिपाहियों के दौड़ कर आते ही अमूल्य ने उनके सिर पर पिस्तौल की आवाज़ कर दी। वे इधर-उधर घुस गये। क़ासिम सरदार लाठी हाथ में लिये दौड़ा आया; उसके पैर में ताक कर गोली मारते ही वह बैठ गया। उसके बाद नायब से ज़बर्दस्ती लोहे का सन्दूक़ खुलवा कर छः हज़ार रुपये के नोट गिन कर अमूल्य ने ले लिये। मेरी कचहरी के घोड़े पर पाँच मील तक आकर उसने उस घोड़े को वहीं छोड़ दिया और दूसरे दिन सबेरे यहाँ आकर पहुँचा।

मैंने पूछा—अमूल्य, तूने यह काम क्यों किया?

उसने कहा—मुझे विशेष आवश्यकता थी।

मैंने पूछा—तो फिर रुपये फेर क्यों दिये?

उसने कहा—जिसके हुक्म से फेर दिये हैं उनको बुलाइए, उनके सामने ही मैं कहूँगा।

मैं—वह कौन है?

उसने कहा—छोटी रानी दीदी।

विमला को बुला भेजा। वह एक सफ़ेद शाल सिर से पैर तक लपेटे धीरे धीरे बैठक में आई—उसके पैरों में जूते भी न थे।

मुझे जान पड़ा कि विमला को ऐसी अवस्था में जैसे और कभी नहीं देखा। सबेरे के चन्द्रमा की तरह वह मानो अपने को प्रभात के प्रकाश से ढक कर आई है।

अमूल्य ने विमला के पैरों के पास ज़मीन पर साष्टांग प्रणाम किया और विमला के पैरों की धूल अपने मस्तक में लगाई। उसके बाद उठ कर खड़े होकर बोला—तुम्हारी आज्ञा का पालन कर आया, दीदी। रुपये फेर दिये।

विमला ने कहा—तुमने मुझको बचा लिया, भाई।

अमूल्य ने कहा—तुमको स्मरण करके ही एक भी झूठी बात मैंने नहीं कही। मेरा वन्दे मातरम् मन्त्र तुम्हारे पैरों के नीचे रह गया। लौट आकर इस घर में घुसते ही तुम्हारा प्रसाद भी पाया है।

विमला इस बात को ठीक ठीक समझ न सकी। अमूल्य ने पाकेट से रूमाल बाहर निकाल कर गाँठ खोल कर जमा किये हुए गुझिया-समोसे दिखा दिये। बोला—मैंने सब नहीं खाये, कुछ रख छोड़े हैं—तुम अपने हाथों से मेरी थाली में परोस दोगी, इसी लिए रख छोड़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैंने सोचा, यहाँ अब मेरी ज़रूरत नहीं है। बैठक से बाहर चला गया। मैंने सोचा, मैं तो केवल बकबक कर मरता हूँ, और वे मेरे कुश के पुतले के गले में फटे जूतों की माला पहना कर नदी के किनारे जलाते हैं। मैं तो किसी को मरने की राह से फिरा सकता—जो नहीं फिरा सकता है वह एक इशारे से ही फिरा सकता है। हम लोगों की वाणी में वही अमोघ इङ्गित नहीं है। हम अग्निशिखा नहीं हैं, हम अङ्गार हैं, हम बुझे हुए हैं, हम दीपक जला न सकेंगे। मेरे जीवन के इतिहास में यही प्रमाणित हुआ।

फिर धीरे धीरे अन्तःपुर में गया। जान पड़ता है, और एक बार मँझली रानी के कमरे की ओर मेरा मन दौड़ा गया। यह अनुभव करने की आज मुझे बड़ी आवश्यकता है कि मेरे जीवन ने भी इस संसार में किसी एक जीवन की वीणा में सत्य और स्पष्ट आघात दिया है। अपने अस्तित्व का परिचय तो अपने भीतर नहीं पाया जाता, बाहर और कहीं उसकी खोज करनी होती है।

मँझली रानी के कमरे के सामने आते ही उन्होंने बाहर निकल कर कहा—राजा भैया, आज भी क्या खाने में देर करोगे? भोजन तैयार है।

मैंने कहा—तब तक तुम्हारे रुपये ही निकाल कर ठीक कर रक्खूँ।

मेरे सोने के कमरे की तरफ़ मेरे साथ जाते जाते मँझली रानी ने पूछा—दारोग़ा जो आये थे; अभी तक उस चोरी का कुछ पता चला या नहीं?

उन छः हज़ार रुपयों के लौटने का हाल मँझली रानी के आगे कहने को मेरा जी न चाहा। मैंने कहा—उसी की तो कोशिश हो रही है।

लोहे के सन्दूक़ की कोठरी में जाकर जेब से चाभियों का गुच्छा निकाल कर देखा, सन्दूक़ की चाभी नहीं है। मेरा दुश्चित्तापन भी अद्भुत है! इसी चाभियों के गुच्छे को लेकर आज सबेरे से कितनी ही बार कितनी ही आलमारियाँ—कितने ही बक्स मैंने खोले हैं, किन्तु एक बार भी यह लक्ष्य नहीं किया कि वह चाभी नहीं है।

मँझली रानी ने कहा—चाभी कहाँ है?

मैं इसका कुछ जवाब न देकर वृथा इस जेब उस जेब को टटोलने लगा—कई बार सब सामान हटा कर इधर-उधर देखा। हम दोनों आदमियों को यह मालूम हो गया कि चाभी खोई नहीं, किसी ने उसे छल्ले से निकाल लिया है। कौन यह काम कर सकता है? इस कोठरी में तो—

मँझली रानी ने कहा—घबराओ नहीं, पहले तुम भोजन कर लो। मुझे विश्वास हो, तुम असावधान हो, इसी से छोटी रानी ने ख़ास कर यह चाभी निकाल कर अपने बक्स में रख दी है।

मुझे भारी गड़बड़ जान पड़ने लगी। मुझसे बिना कहे विमला छल्ले से चाभी निकाल लेगी? ऐसा तो उसका स्वभाव नहीं है। मेरे भोजन के समय वहाँ पर आज विमला न थी—वह उस समय रसोई में अमूल्य को भोजन करा रही थी। मँझली रानी उसे बुलाने के लिए दासी को भेज रही थीं, मैंने मना कर दिया।

भोजन करके उठा ही था, वैसे ही विमला आई। मेरी इच्छा थी कि इस चाभी के खोने की बात मँझली रानी के सामने न हो। किन्तु यह न हो सका। विमला के आते ही उन्होंने पूछा—राजा भैया के लोहे के सन्दूक़ की चाभी कहाँ है, जानती हो?

विमला ने कहा—मेरे पास है।

मँझली रानी ने कहा—मैंने तो कहा था! चारों ओर चोरी-डकैती हो रही हैं। छोटी रानी के बाहर घबराहट नहीं देख पड़ती, किन्तु भीतर ही भीतर वह सावधान हैं।

विमला का मुख देख कर मन में एक तरह का खटका पैदा हो गया। मैंने कहा—अच्छा, चाभी अभी अपने ही पास रहने दो, तीसरे पहर रुपये निकाल लूँगा!

मँझली रानी बोल उठीं—फिर तीसरे पहर पर टालते हो। राजा भैया, अभी रुपये निकाल कर ख़ज़ांची के पास भेज दो।

विमला ने कहा—रुपये मैंने निकाल लिये हैं।

मैं चौंक उठा।

मँझली रानी ने पूछा—निकाल कर रक्खे कहाँ!

विमला ने कहा—ख़र्च कर डाले।

मँझली रानी ने कहा—ज़रा इनकी बातें तो सुनो! इतने रुपये काहे में ख़र्च कर डाले?

विमला ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। मैंने भी उससे कुछ नहीं पूछा। दरवाज़ा पकड़े चुपचाप खड़ा रहा। मँझली रानी विमला से कुछ कड़ी बात कहनेवाली थीं, किन्तु रुक गईं। मेरे मुख की ओर देख कर उन्होंने कहा—अच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जो ले लिये। मेरे स्वामी की जेब में और बक्स में जो कुछ रुपये रहते थे उनको मैं चुरा कर छिपा रखती थी। मैं जानती थी कि उन रुपयों को बारह भूत लूटकर खा जायँगे। राजा भैया, तुम्हारा भी वैसा ही हाल है—तरह तरह के विचारों में रुपये उड़ा देना जानते हो। तुम लोगों के रुपयों को अगर हम लोग चुरालें तभी वे बच सकते हैं। अब चलो, ज़रा सो रहो।

मँझली रानी मुझे पकड़ कर सोने के कमरे में ले गईं। मुझे यह होश भी न था कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। वह मेरे बिछौने के पास बैठ कर उसी तरह हँसी-खुशी के साथ बोलीं—अजी ओ छोटी रानी, ज़रा एक पान तो दो बहन। तुम तो एक-दम मेम-साहब बन बैठी हो! क्या घर में पान नहीं हैं? न हों तो मेरे ही कमरे से ला दो।

मैंने कहा—मँझली रानी, तुमने तो अभी तक कुछ खाया-पिया नहीं।

उन्होंने कहा—न-जानें कब खा-पी चुकी हूँ।

यह एक-दम झूठ था। वह मेरे पास बैठ कर न-जानें कहाँ की कौन कौन बेमतलब की बातें उड़ाने लगीं। दासी ने आकर दरवाज़े के बाहर से ख़बर दी कि विमला के लिए भोजन रक्खा ठंडा हो रहा है। विमला ने उसे कुछ जवाब नहीं दिया। मँझली रानी ने कहा—यह क्या, अभी तक तुमने खाया-पिया नहीं? इतनी देर हो गई!—यह कह कर वह ज़बर्दस्ती उसे उठा ले गईं।

मुझे यह मालूम हो गया कि उस छः हज़ार के डाके के साथ इस लोहे के सन्दूक़ से रुपये निकाल लेने का सम्बन्ध अवश्य है। किस तरह का सम्बन्ध है, सो जानने को जी न चाहा—किसी दिन इस बारे में प्रश्न भी न करूँगा।

विधाता हमारे जीवन-चित्र की रेखा को ज़रा धुँधला करके ही खींच देते हैं। हम लोग अपने हाथ से उसे कुछ कुछ बदल कर मिटा कर फिर भर कर अपने मन का एक स्पष्ट चेहरा अङ्कित कर लें, यही विधाता का अभिप्राय है। सृष्टिकर्त्ता के इशारे को लेकर अपने जीवन की आप सृष्टि करूँ—एक बड़े आइडिया को अपने सम्पूर्ण के भीतर व्यक्त करके दिखाऊँ—यही वेदना बराबर मेरे मन में है।

इसी साधना में इतने दिन बिताये हैं। प्रवृत्ति को कितना वञ्चित किया है, अपना कितना दमन किया है, इस भीतर के इतिहास को अन्तर्यामी ही जानते हैं कठिनता तो यह है कि किसी का जीवन अकेले की चीज़ नहीं है—सृष्टि करनेवाला अगर अपने चारों ओर के पदार्थों को लेकर सृष्टि न करे तो वह सृष्टि व्यर्थ होगी। इसी से मेरे मन में इस बात का बड़ा भारी प्रयास था कि विमला को भी इस रचना के भीतर खींचूँगा। मेरा यही ज़ोर था कि सम्पूर्ण हृदय से जब मैं उसे चाहता हूँ तब क्यों न ऐसा कर सकूँगा।

इसी समय मैंने स्पष्ट देख पाया कि अपने साथ साथ अपने चारों ओर की सृष्टि जो लोग सहज में कर सकते हैं वे और ही मनुष्य हैं; मैं उनमें नहीं हूँ। मैंने मन्त्र लिया है, पर मैं ख़ुद किसी को मन्त्र नहीं देसका। जिनके निकट मैंने अपने को सम्पूर्ण रूप से अर्पण कर दिया है उन्होंने मेरा और सब ले लिया है, केवल मेरे इसी अन्ततम पदार्थ को छोड़ कर। मेरी परीक्षा कठिन हुई। सबसे अधिक जहाँ पर सहाय चाहिए वहीं पर सबसे अधिक अकेला हो गया।

मुझे सन्देह होता है कि मुझमें एक अत्याचार था। मेरी इच्छा के भीतर एक यह ज़बर्दस्ती है कि मैं विमला के साथ अपने सम्बन्ध को एक सुकठिन "अच्छे" के साँचे में विशुद्ध रूप से ढाल दूँगा। किन्तु मनुष्य का जीवन तो साँचे में ढालने की चीज़ नहीं है। और "अच्छे" को जड़ वस्तु समझ कर उसे गढ़ने में वह मर जाकर उसका भयानक बदला लेता है।

यह मैंने जान ही नहीं पाया कि इस अत्याचार के कारण ही हम दोनों जने भीतर ही भीतर एक दूसरे से इतने अलग हो गये हैं। विमला जो ख़ुद हो सकती थी सो मेरे दबाव से ऊपर खिल उठ नहीं सकी; इसी कारण नीचे की तह से रुद्ध जीवन के सङ्घर्षण ने "बाँध" को काट डाला है। ये छः हज़ार रुपये आज उसे चोरी करके लेने पड़े हैं,—मुझसे वह स्पष्ट व्यवहार नहीं कर सकी, क्योंकि उसने समझ लिया है, एक जगह पर मैं उससे प्रबलरूप से अलग हूँ। हमारे ऐसे एक रूखे आइडिया के आदमी के साथ जिनका मेल मिल जाता है वे मिल जाते हैं; और जिनका मेल नहीं मिलता वे हमको धोखा देते हैं। सरल मनुष्य को भी हम कपटी बना डालते हैं। हम सहधर्मिणी को बनाने में स्त्री को विकृत कर देते हैं।

फिर क्या उसी आदि में फिरा नहीं जा सकता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मैं अब की से सहज मार्ग में चलूँ। अपनी यात्रा की साथिन को अब की किसी आइडिया की ज़ंजीर से बांधना नहीं चाहूँगा—केवल अपने प्यार की वंशी बजा कर कहूँगा—तुम मुझको प्यार करो—उसी प्यार के प्रकाश में, तुम जो हो उसी का पूर्ण विकास हो, मेरी फ़रमाइश एक-दम दब जाय—तुम्हारे भीतर विधाता की जो इच्छा है उसी की जय हो; मेरी इच्छा लज्जित होकर फिर जाय।

किन्तु हमारे बीच का जो विच्छेद भीतर ही भीतर जमा हो रहा था, वह आज ऐसे एक घाव के भीतर से बाहर निकल पड़ा है कि अब उसके ऊपर स्वभाव की शुश्रूषा काम नहीं कर सकती। जिस आबरू के पर्दे में प्रकृति अपना संशोधन का काम चुपचाप करती है वह आबरू का पर्दा तो एक-दम कट फट गया! घाव को ढक कर रक्खा जाता है। इस घाव को हम प्यार से ढकेंगे, वेदना को हम हृदय से ढक कर बाहर के स्पर्श से बचा रक्खेंगे। एक दिन ऐसा होगा कि इस घाव का चिह्न तक न रहेगा। किन्तु अब क्या और समय है? इतने दिन तक भ्रम में पड़े रहे, आज अपना भ्रम समझ में आया। अब इस भूल को सुधारने में कितने ही दिन लगेंगे! उसके बाद? उसके बाद क्षत तो सूख भी सकता है, किन्तु क्षति की पूर्ति क्या अब किसी समय में हो सकेगी?

कुछ खट से बोला—घूम कर देखा, विमला दरवाज़े के पास से लौटी जा रही है। जान पड़ता है, दरवाज़े के पास आकर अब तक चुपचाप खड़ी हुई थी—यह निश्चय न कर सकती थी कि भीतर जाऊँ या न जाऊँ—अन्त को लौटी जा रही थी। मैंने जल्दी से उठ कर पुकारा—विमला! वह ठिठक कर खड़ी हो गई। उसकी पीठ मेरी तरफ़ थी। मैं उसको हाथ पकड़ कर कमरे के भीतर ले आया।

कमरे के भीतर आते ही फ़र्श पर गिर कर तकिये पर मुँह रख कर वह रोने लगी। मैं कुछ न कह कर उसका हाथ पकड़े सिर के पास बैठा रहा।

रोने का वेग थमने पर जब वह उठकर बैठी तब मैंने उसे अपने हृदय के पास खींच कर लाने की चेष्टा की। उसने ज़रा ज़ोर से अपना हाथ छुड़ा लिया, और घुटने टेक कर मेरे पैरों पर बार बार सिर रख कर प्रणाम करने लगी। मेरे पैर हटाते ही उसने दोनों हाथों से मेरे पैर पकड़ लिये और गद्गद स्वर से कहा—ना, ना, ना, अपने पैर हटाओ नहीं—मुझे पूजा करने दो।

तब मैं चुप हो रहा। इस पूजा में बाधा देनेवाला मैं कौन! जो पूजा सत्य है, उसका देवता भी सत्य है,—वह देवता क्या मैं हूँ, जो मैं सङ्कोच करूँ?

विमला की आत्म-कथा।

चलो, चलो, अब की निकल चलो उस सागर-सङ्गम में जहाँ सब प्रेम-प्यार पूजा के समुद्र में जा मिले हैं। उस निर्मल नील के अतल में सारी कीचड़ का बोझ लीन हो जायगा। अब मैं नहीं डरती—अपने को भी नहीं, और किसी को भी नहीं। मैं आग के बीच से निकल आई हूँ—जो जलने का था वह जलकर राख हो गया जो बाक़ी है उसका अब मरण नहीं। मैंने अपने उसी अवशिष्ट को उनके चरणों में अर्पण कर दिया जिन्होंने मेरे सब अपराधों को अपनी गहरी वेदना के भीतर ग्रहण किया है।

आज रात को कलकत्ते जाना होगा। अब तक भीतर-बाहर की अनेक गड़बड़ों में पड़े रहकर असबाब-सामान निकाल कर इकट्ठा करने में मन नहीं लगा सकी थी। अब बक्स वग़ैरह निकलवाकर उनमें ले जाने का सामान रखने लगी। थोड़ी देर बाद देखा, मेरे स्वामी भी मेरे पास आकर उसी में जुट गये। मैंने कहा—नहीं, यह न होगा—तुमने मुझसे वादा किया था कि मैं ज़रा सो लूँगा।

मेरे स्वामी ने कहा—मैंने वादा किया था, मगर मेरी नींद ने तो वादा नहीं किया—उसके तो दर्शन ही नहीं होते।

मैंने कहा—नहीं, यह न होगा, तुम सोने जाओ!

उन्होंने कहा—तुम अकेले किस तरह सामान रख सकोगी?

मैंने कहा—मैं बहुत अच्छी तरह रख सकूँगी!

उन्होंने कहा—मेरे बिना भी तुम्हारा काम चल जाता है, यह दिखावा तुम कर सकती हो, किन्तु तुम्हारे बिना मेरा काम तो नहीं चलता। इसी से अकेले कमरे में किसी तरह मुझे नींद नहीं आई!

यह कह कर वह भी काम में जुट गये। इसी समय कहार ने आकर कहा—सन्दीप बाबू आये हैं, उन्होंने आपको ख़बर देने के लिए कहा है।

किसे ख़बर देने के लिए कहा है, यह पूछने की शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जो ले लिये। मेरे स्वामी की जेब में और बक्स में जो कुछ रुपये रहते थे उनको मैं चुरा कर छिपा रखती थी। मैं जानती थी कि उन रुपयों को बारह भूत लूटकर खा जायँगे। राजा भैया, तुम्हारा भी वैसा ही हाल है—तरह तरह के विचारों में रुपये उड़ा देना जानते हो। तुम लोगों के रुपयों को अगर हम लोग चुरालें तभी वे बच सकते हैं। अब चलो, ज़रा सो रहो।

मँझली रानी मुझे पकड़ कर सोने के कमरे में ले गईं। मुझे यह होश भी न था कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। वह मेरे बिछौने के पास बैठ कर उसी तरह हँसी-खुशी के साथ बोलीं—अजी ओ छोटी रानी, ज़रा एक पान तो दो बहन। तुम तो एक-दम मेम-साहब बन बैठी हो! क्या घर में पान नहीं हैं? न हों तो मेरे ही कमरे से ला दो।

मैंने कहा—मँझली रानी, तुमने तो अभी तक कुछ खाया-पिया नहीं।

उन्होंने कहा—न-जानें कब खा-पी चुकी हूँ।

यह एक-दम झूठ था। वह मेरे पास बैठ कर न-जानें कहाँ की कौन कौन बेमतलब की बातें उड़ाने लगीं। दासी ने आकर दरवाज़े के बाहर से ख़बर दी कि विमला के लिए भोजन रक्खा ठंडा हो रहा है। विमला ने उसे कुछ जवाब नहीं दिया। मँझली रानी ने कहा—यह क्या, अभी तक तुमने खाया-पिया नहीं? इतनी देर हो गई!—यह कह कर वह ज़बर्दस्ती उसे उठा ले गईं।

मुझे यह मालूम हो गया कि उस छः हज़ार के डाके के साथ इस लोहे के सन्दूक़ से रुपये निकाल लेने का सम्बन्ध अवश्य है। किस तरह का सम्बन्ध है, सो जानने को जी न चाहा—किसी दिन इस बारे में प्रश्न भी न करूँगा।

विधाता हमारे जीवन-चित्र की रेखा को ज़रा धुँधला करके ही खींच देते हैं। हम लोग अपने हाथ से उसे कुछ कुछ बदल कर मिटा कर फिर भर कर अपने मन का एक स्पष्ट चेहरा अङ्कित कर लें, यही विधाता का अभिप्राय है। सृष्टिकर्त्ता के इशारे को लेकर अपने जीवन की आप सृष्टि करूँ—एक बड़े आइडिया को अपने सम्पूर्ण के भीतर व्यक्त करके दिखाऊँ—यही वेदना बराबर मेरे मन में है।

इसी साधना में इतने दिन बिताये हैं। प्रवृत्ति को कितना वञ्चित किया है, अपना कितना दमन किया है, इस भीतर के इतिहास को अन्तर्यामी ही जानते हैं कठिनता तो यह है कि किसी का जीवन अकेले की चीज़ नहीं है—सृष्टि करनेवाला अगर अपने चारों ओर के पदार्थों को लेकर सृष्टि न करे तो वह सृष्टि व्यर्थ होगी। इसी से मेरे मन में इस बात का बड़ा भारी प्रयास था कि विमला को भी इस रचना के भीतर खींचूँगा। मेरा यही ज़ोर था कि सम्पूर्ण हृदय से जब मैं उसे चाहता हूँ तब क्यों न ऐसा कर सकूँगा।

इसी समय मैंने स्पष्ट देख पाया कि अपने साथ साथ अपने चारों ओर की सृष्टि जो लोग सहज में कर सकते हैं वे और ही मनुष्य हैं; मैं उनमें नहीं हूँ। मैंने मन्त्र लिया है, पर मैं ख़ुद किसी को मन्त्र नहीं देसका। जिनके निकट मैंने अपने को सम्पूर्ण रूप से अर्पण कर दिया है उन्होंने मेरा और सब ले लिया है, केवल मेरे इसी अन्ततम पदार्थ को छोड़ कर। मेरी परीक्षा कठिन हुई। सबसे अधिक जहाँ पर सहाय चाहिए वहीं पर सबसे अधिक अकेला हो गया।

मुझे सन्देह होता है कि मुझमें एक अत्याचार था। मेरी इच्छा के भीतर एक यह ज़बर्दस्ती है कि मैं विमला के साथ अपने सम्बन्ध को एक सुकठिन "अच्छे" के साँचे में विशुद्ध रूप से ढाल दूँगा। किन्तु मनुष्य का जीवन तो साँचे में ढालने की चीज़ नहीं है। और "अच्छे" को जड़ वस्तु समझ कर उसे गढ़ने में वह मर जाकर उसका भयानक बदला लेता है।

यह मैंने जान ही नहीं पाया कि इस अत्याचार के कारण ही हम दोनों जने भीतर ही भीतर एक दूसरे से इतने अलग हो गये हैं। विमला जो ख़ुद हो सकती थी सो मेरे दबाव से ऊपर खिल उठ नहीं सकी; इसी कारण नीचे की तह से रुद्ध जीवन के सङ्घर्षण ने "बाँध" को काट डाला है। ये छः हज़ार रुपये आज उसे चोरी करके लेने पड़े हैं,—मुझसे वह स्पष्ट व्यवहार नहीं कर सकी, क्योंकि उसने समझ लिया है, एक जगह पर मैं उससे प्रबलरूप से अलग हूँ। हमारे ऐसे एक रुखे आइडिया के आदमी के साथ जिनका मेल मिल जाता है वे मिल जाते हैं; और जिनका मेल नहीं मिलता वे हमको धोखा देते हैं। सरल मनुष्य को भी हम कपटी बना डालते हैं। हम सहधर्मिणी को बनाने में स्त्री को विकृत कर देते हैं।

फिर क्या उसी आदि में फिरा नहीं जा सकता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मैं अब की से सहज मार्ग में चलूँ। अपनी यात्रा की साथिन को अब की किसी आइडिया की ज़ंजीर से बाँधना नहीं चाहूँगा—केवल अपने प्यार की वंशी बजा कर कहूँगा—तुम मुझको प्यार करो—उसी प्यार के प्रकाश में, तुम जो हो उसी का पूर्ण विकास हो, मेरी फ़रमाइश एक-दम दब जाय—तुम्हारे भीतर विधाता की जो इच्छा है उसी की जय हो; मेरी इच्छा लज्जित होकर फिर जाय।

किन्तु हमारे बीच का जो विच्छेद भीतर ही भीतर जमा हो रहा था, वह आज ऐसे एक घाव के भीतर से बाहर निकल पड़ा है कि अब उसके ऊपर स्वभाव की शुश्रूषा काम नहीं कर सकती। जिस आबरू के पर्दे में प्रकृति अपना संशोधन का काम चुपचाप करती है वह आबरू का पर्दा तो एक-दम कट फट गया! घाव को ढक कर रक्खा जाता है। इस घाव को हम प्यार से ढकेंगे, वेदना को हम हृदय से ढक कर बाहर के स्पर्श से बचा रक्खेंगे। एक दिन ऐसा होगा कि इस घाव का चिह्न तक न रहेगा। किन्तु अब क्या और समय है? इतने दिन तक भ्रम में पड़े रहे, आज अपना भ्रम समझ में आया। अब इस भूल को सुधारने में कितने ही दिन लगेंगे! उसके बाद? उसके बाद क्षत तो सूख भी सकता है, किन्तु क्षति की पूर्ति क्या अब किसी समय में हो सकेगी?

कुछ खट से बोला—घूम कर देखा, विमला दरवाज़े के पास से लौटी जा रही है। जान पड़ता है, दरवाज़े के पास आकर अब तक चुपचाप खड़ी हुई थी—यह निश्चय न कर सकती थी कि भीतर जाऊँ या न जाऊँ—अन्त को लौटी जा रही थी। मैंने जल्दी से उठ कर पुकारा—विमला! वह ठिठक कर खड़ी हो गई। उसकी पीठ मेरी तरफ़ थी। मैं उसको हाथ पकड़ कर कमरे के भीतर ले आया।

कमरे के भीतर आते ही फ़र्श पर गिर कर तकिये पर मुँह रख कर वह रोने लगी। मैं कुछ न कह कर उसका हाथ पकड़े सिर के पास बैठा रहा।

रोने का वेग थमने पर जब वह उठकर बैठी तब मैंने उसे अपने हृदय के पास खींच कर लाने की चेष्टा की। उसने ज़रा ज़ोर से अपना हाथ छुड़ा लिया, और घुटने टेक कर मेरे पैरों पर बार बार सिर रख कर प्रणाम करने लगी। मेरे पैर हटाते ही उसने दोनों हाथों से मेरे पैर पकड़ लिये और गद्गद स्वर से कहा—ना, ना, ना, अपने पैर हटाओ नहीं—मुझे पूजा करने दो।

तब मैं चुप हो रहा। इस पूजा में बाधा देनेवाला मैं कौन! जो पूजा सत्य है, उसका देवता भी सत्य है,—वह देवता क्या मैं हूँ, जो मैं सङ्कोच करूँ?

विमला की आत्म-कथा।

चलो, चलो, अब की निकल चलो उस सागर-सङ्गम में जहाँ सब प्रेम-प्यार पूजा के समुद्र में जा मिले हैं। उस निर्मल नील के अतल में सारी कीचड़ का बोझ लीन हो जायगा। अब मैं नहीं डरती—अपने को भी नहीं, और किसी को भी नहीं। मैं आग के बीच से निकल आई हूँ—जो जलने का था वह जलकर राख हो गया जो बाक़ी है उसका अब मरण नहीं। मैंने अपने उसी अवशिष्ट को उनके चरणों में अर्पण कर दिया जिन्होंने मेरे सब अपराधों को अपनी गहरी वेदना के भीतर ग्रहण किया है।

आज रात को कलकत्ते जाना होगा। अब तक भीतर-बाहर की अनेक गड़बड़ों में पड़े रहकर असबाब-सामान निकाल कर इकट्ठा करने में मन नहीं लगा सकी थी। अब बक्स वग़ैरह निकलवाकर उनमें ले जाने का सामान रखने लगी। थोड़ी देर बाद देखा, मेरे स्वामी भी मेरे पास आकर उसी में जुट गये। मैंने कहा—नहीं, यह न होगा—तुमने मुझसे वादा किया था कि मैं ज़रा सो लूँगा।

मेरे स्वामी ने कहा—मैंने वादा किया था, मगर मेरी नींद ने तो वादा नहीं किया—उसके तो दर्शन ही नहीं होते।

मैंने कहा—नहीं, यह न होगा, तुम सोने जाओ!

उन्होंने कहा—तुम अकेले किस तरह सामान रख सकोगी?

मैंने कहा—मैं बहुत अच्छी तरह रख सकूँगी!

उन्होंने कहा—मेरे बिना भी तुम्हारा काम चल जाता है, यह दिखावा तुम कर सकती हो, किन्तु तुम्हारे बिना मेरा काम तो नहीं चलता। इसी से अकेले कमरे में किसी तरह मुझे नींद नहीं आई!

यह कह कर वह भी काम में जुट गये। इसी समय कहार ने आकर कहा—सन्दीप बाबू आये हैं, उन्होंने आपको ख़बर देने के लिए कहा है।

किसे ख़बर देने के लिए कहा है, यह पूछने की शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न थी। मेरे आगे पल भर में आकाश भर का प्रकाश जैसे लज्जावती लता की तरह सङ्कुचित हो गया।

मेरे स्वामी ने कहा—चलो विमला, सुन आवें, सन्दीप क्या कहता है। वह तो बिदा होकर चला गया था, अब फिर जो लौट आया है तो जान पड़ता है कोई विशेष बात कहनी है।

जाने की अपेक्षा न जाना ही विशेष लज्जा का कारण होगा, यह सोचकर स्वामी के साथ बाहर की बैठक में गई। वहाँ सन्दीप खड़ा हुआ चित्रों को देख रहा था। हमारे पहुँचते ही कह उठा--तुम सोचते होगे कि यह लौट क्यों आया? सत्कार पूर्ण रूप से समाप्त हुए बिना प्रेत बिदा नहीं होता।

यह कहकर चादर के भीतर से उसने एक रूमाल की पोटली निकाल कर टेबिल के ऊपर रख दी। उसमें वे ही गिन्नियाँ थीं। सन्दीप ने कहा—निखिल, यह न सोचना कि एकाएक तुम्हारे संसर्ग में पड़कर साधु हो उठा हूँ। पश्चात्ताप के आँसू बहाते-बहाते इन छः हज़ार रुपये की गिन्नियों को फेर देनेवाला सन्दीप नहीं। किन्तु—

इतना ही कह कर सन्दीप रह गया। ज़रा देर चुप रह कर मेरी ओर देखकर फिर उसने कहना शुरू किया—मक्खीरानी, इतने दिन के बाद सन्दीप के पवित्र निर्मल जीवन में एक 'किन्तु' आकर घुसा है, रात को तीन बजे के बाद जाग उठकर नित्य ही उस 'किन्तु' के साथ एक झपेट करके मैंने देख लिया है कि वह 'किन्तु' बिलकुल ही पोला नहीं है—-उसका दावा पूरा किये बिना सन्दीप का भी छुटकारा नहीं है। उस मेरा सर्वनाश करनेवाले 'किन्तु' के हाथ में अपनी पूजा दिये जाता हूँ। मैंने प्राणपण चेष्टा करके देख लिया कि पृथ्वी पर केवल उसी का धन मैं न ले सकूँगा। तुम्हारे आगे कङ्गाल होकर छुटकारा पाऊँगा, देवी! यह लो!—

इतना कह कर गहने का बक्स भी निकाल कर टेबिल के ऊपर रख कर सन्दीप ने फुर्ती से चले जाने का उपक्रम किया। मेरे स्वामी ने उसे पुकार कर कहा—सुने जाओ, सन्दीप!

सन्दीप ने दरवाज़े के पास खड़े होकर कहा—मुझे अब समय नहीं है; निखिल। ख़बर मिली है, मुसलमानों का दल मुझे महामूल्य रान की तरह लूट कर अपने क़बरस्तान में गाड़ रखना चाहता है। किन्तु मेरे जीने की अभी ज़रूरत है। उत्तर की गाड़ी छूटने में और पचीस मिनट की देर है। अतएव इस समय तो जाता हूँ—उसके बाद फिर थोड़ा सा अवकाश मिलने पर तुम लोगों से बाक़ी सब बातें कहूँगा। अगर मेरी सलाह मानो तो तुम भी बहुत देर न करो। मक्खीरानी, वन्दे प्रलय-रूपिणीम् हृत्पिण्डमालिनीम्!

इतना कह कर सन्दीप झपटता चला गया। मैं सन्नाटे में खड़ी रही। गिन्नी और गहने कितने तुच्छ हैं, सो इस तरह और कभी मैंने नहीं देख पाया था। कितनी चीज़ें साथ में लूँगी, कहाँ क्या रक्खूँगी, यही कुछ देर पहले सोच रही थी। इस समय यह जान पड़ा कि कोई भी चीज़ साथ ले जाने की ज़रूरत नहीं—केवल यहाँ से निकल कर चले जाने ही की ज़रूरत है।

मेरे स्वामी ने कुर्सी से उठ कर मेरा हाथ पकड़ कर धीरे से कहा—अब तो अधिक समय नहीं है, चलो सब काम कर डालें!

इसी समय मास्टर चन्द्रनाथ बाबू बैठक में घुसते ही मुझे देखकर दम-भर के लिए सङ्कुचित से हो गये। बोले—क्षमा करना बेटी, मैं ख़बर देकर नहीं आसका।—निखिल, मुसलमान दल बाँध कर बिगड़ खड़े हुए हैं। हरिश कुंडू की कचहरी लूट ली गई है। उसके लिए कुछ चिन्ता न थी, किन्तु औरतों के ऊपर जो अत्याचार उन्होंने शुरू किया है वह तो प्राण रहते देखा और सहा नहीं जा सकता।

मेरे स्वामी ने कहा—तो मैं जाता हूँ।

मैंने स्वामी का हाथ पकड़ कर कहा—तुम जाकर क्या कर सकोगे? मास्टर साहब, आप इन्हें रोकिए।

चन्द्रनाथ बाबू ने कहा—बेटी, रोकने का तो समय नहीं है।

मेरे स्वामी ने कहा—कुछ चिन्ता न करो विमला।

खिड़की के पास जाकर देखा, मेरे स्वामी घोड़ा दौड़ाते चले गये। उनके हाथ में कोई हथियार भी न था।

थोड़ी ही देर बाद मँझली रानी दौड़ी हुई वहीं आईं और घबराई हुई बोलीं—तुमने यह क्या किया छोटी? तुमने यह क्या सर्वनाश कर डाला? राजा भैया को क्यों जाने दिया?—कहार से बोलीं—बुला, बुला, जल्दी से दीवानजी को बुला ला।

दीवानजी के सामने आज तक मँझली रानी कभी नहीं निकली थीं। किन्तु आज उनके लज्जा नहीं रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने दीवानजी से कहा—महाराज को लौटा लाने के लिए जल्दी सवार भेजो।

दीवान ने कहा—हम लोग बहुत मना कर चुके हैं; वे लौटेंगे नहीं।

मँझली रानी—कहला भेजो, मँझली रानी को हैज़ा होगया है—वह मर रही हैं।

दीवान के चले जाने पर मँझली रानी मुझे गालियाँ देने लगीं—राक्षसी, सर्वनाशी! आप नहीं मरी, राजा भैया को मौत के मुँह में भेज दिया!

दिन का प्रकाश समाप्त हो आया। खिड़की के सामने पश्चिम आकाश के छोर पर ग्वालों के महल्ले के फूले हुए सहिंजन के पेड़ के नीचे सूर्य अस्त हो गये। इस सूर्यास्त की प्रत्येक रेखा इस समय भी मुझे आँखों के सामने देख पड़ रही है। अस्त हो रहे सूर्य को केन्द्र बना कर एक मेघ की घटा उत्तर और दक्षिण दो भागों में फैल गई थी—जैसे एक बड़ी भारी चिड़िया ने पङ्ख फैला दिये हों और उसके आग के रङ्ग के छोटे छोटे पर तह की तह सजाये हुए हों। जान पड़ने लगा, आज का दिन जैसे रात्रि का समुद्र पार होने के लिए उड़ा चला जा रहा हो।

अन्धकार हो आया। दूर पर किसी गाँव में आग लगने पर रह रह कर जैसे उसकी लपटें आकाश में उछलती हैं—वैसे ही बहुत दूर पर कभी कभी एक कोलाहल की लहर अन्धकार के भीतर से जैसे उमड़ उमड़ पड़ने लगी।

ठाकुरद्वारे में सन्ध्या की आरती होने लगी—शङ्ख और घंटा-घड़ियाल बजने लगा। मुझे मालूम है, मँझली रानी उसी मन्दिर में जाकर हाथ जोड़े बैठी हुई हैं। मैं इस राह पर की खिड़की को छोड़ कर एक पग भी कहीं हिल न सकी। सामने का रास्ता, गाँव और भी दूर पर के अन्नहीन खेतों का मैदान और उसके भी किनारे पर की वृक्षों की रेखा धुँधली हो आई। राजभवन का बड़ा तालाब अन्धे की आँख की तरह आकाश की ओर ताक रहा था। बाईं ओर के फाटक के ऊपर का नौबत-ख़ाना ऊँचा होकर क्या जानें क्या देख रहा है।

रात्रि के समय का शब्द न-जाने कितनी तरह के कपटरूप धारण करता है। पास कहीं अगर कोई डाली हिलती है तो जान पड़ता है, दूर पर जैसे कोई दौड़ा भागा जा रहा है। एकाएक हवा से दरवाज़े का एक पट भड़ से बोला, जान पड़ा, वह जैसे सारे आकाश के हृदय में 'धक' से हो उठने का शब्द है।

बीच बीच में, रास्ते के किनारे अन्धकार से काली होती हुई जो पेड़ों की दुहरी क़तार है, उसके बीच में प्रकाश देख पाती हूँ, उसके बाद और कुछ नहीं देख पड़ता। घोड़े के पैरों की आहट सुन पड़ती है,—उसके बाद देखती हूँ कि, घुड़सवार राजभवन के फाटक से निकल कर दौड़ा चला जा रहा है।

यही जान पड़ने लगा, मेरे मरने से ही सब आफ़त टल जायगी। मैं जब तक जीती हूँ, तब तक संसार को मेरा पाप अनेक ओर से मारता रहेगा। याद पड़ा, वह पिस्तौल बक्स में है। किन्तु इस राह पर की खिड़की को छोड़ कर पिस्तौल लेने जाने के लिए पैर नहीं उठा। मैं तो अपने भाग्य की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

राजभवन की ड्योढ़ी में टनटन करके दस बजे।

उसके कुछ ही देर बाद देखा, रास्ते में बहुत सी रोशनी और बहुत से लोगों की भीड़ है। अन्धकार में सब भीड़ एक में मिल जाने से जान पड़ा, एक बड़ा भारी काला अजगर टेढ़ा मेढ़ा होकर राजभवन के फाटक के भीतर घुसने को आ रहा है।

दूर पर लोगों का शब्द सुन कर दीवानजी फाटक पर दौड़े गये। उसी समय एक सवार आकर फाटक पर पहुँचा। दीवानजी ने भय के स्वर में पूछा—जटाधर, क्या ख़बर है?

उसने कहा—ख़बर अच्छी नहीं है।

ऊपर से हर एक शब्द मुझको स्पष्ट सुन पड़ा।

उसके बाद उसने न-जानें क्या चुपके चुपके कहा, कुछ सुन न पड़ा।

उसके उपरान्त एक पालकी और उसी के पीछे एक डोली फाटक के भीतर आई। पालकी के पास ही पास डाक्टर माथुर आ रहे थे। दीवानजी ने पूछा—डाक्टर साहब, आप क्या समझते हैं?

डाक्टर ने कहा—अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। सिर में बड़ी गहरी चोट आई है।

दीवान—और अमूल्य बाबू?

डाक्टर—उनकी छाती में गोली लगी थी—उनका काम तमाम हो गया। (समाप्त)

रूपनारायण पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

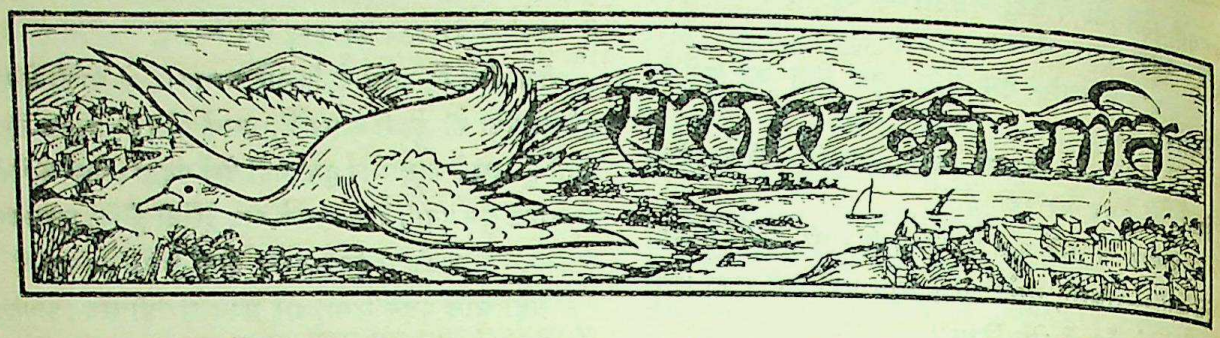

१—एशिया का भविष्य।

एशिया के भविष्य के सम्बन्ध में श्रीयुत विनयकुमार सरकार ने अपनी जो सम्मति प्रकट की है वह नीचे दी जाती है—

पश्चिम लगभग एक शताब्दी से पूर्व को युद्ध के लिए ललकार रहा है। बहुत दिनों तक एशिया यह निमन्त्रण स्वीकार करने में बिलकुल असमर्थ था। पहले पहल सन् १९०५ में योरप और अमरीका को पोर्ट आरथर की घटना से ज्ञात हुआ था कि एशिया भी अब उनका प्रतिद्वन्द्वी बनने का अभिलाषी है। जब एक बार योरप और अमरीका का राजनैतिक प्रभुत्व सारे एशिया पर जम गया तब पश्चिमीय दार्शनिकों की स्वभावतः यह धारणा हो गई कि एशियावासी निरे जङ्गली हैं, उनका दासत्व की बेड़ियों में जकड़ा रहना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। किन्तु संसार के लिए यह सौभाग्य की बात है कि अब धीरे धीरे अन्तर्राष्ट्रीय यातायात के साधनों में अधिक सुविधा होने के कारण जाति-विज्ञान, मनोविज्ञान एवं समाज-शास्त्र के नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित हो रहे हैं जिससे योरप तथा अमरीका के स्वतन्त्रचेता राजनीतिज्ञ और विशाल-हृदय वैज्ञानिक और दार्शनिक एशिया का महत्त्व कुछ कुछ समझने लगे हैं। एशिया में योरप के विरुद्ध जो राजनैतिक और वैज्ञानिक आन्दोलन चल रहा है, उसको वे सहानुभूति की दृष्टि से देखते हैं। इससे पश्चिमीय जीवन के मिथ्या विचारों के दूर होने की सम्भावना बढ़ती जाती है। यहाँ कुछ विचारों का दिग्दर्शन कराया जाता है—

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में जर्मनी के सुप्रसिद्ध दार्शनिक कान्ट ने Critque of Pure Reason, Critique of Applied Reason, and Critique of Judgment नामक पुस्तकें लिखी थीं। इस आलोचनात्मक दर्शनशास्त्र का एक-मात्र उद्देश माध्यमिक काल से लेकर फ्रेंच-क्रान्ति तक योरपीय बौद्धिक उन्नति की छानबीन करना था। वास्तव में कान्ट ने दर्शनशास्त्र में लोगों को एक नया मार्ग सुझाया था। एक ओर उसने गैलीलिओ आदि वैज्ञानिकों की प्रयोगात्मक वैज्ञानिक प्रणाली की सत्यता प्रतिपादित की थी और दूसरी ओर मानवीय बुद्धि की सीमाएँ निर्धारित की थीं और इस प्रकार बतलाया था कि मनुष्य में तार्किक शक्ति के अतिरिक्त नैतिक शक्ति भी है।

आज फिर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तुर्कों, मिस्रवासियों, फ़ारसियों, हिन्दुस्तानियों, चीनियों और जापानियों की विभिन्न विचारधाराओं का यदि कहीं समन्वय हो सकेगा है तो उसका नाम होगा 'पश्चिमीय विचार की समालोचना'। आज एशिया की चाहे राजनैतिक चाहे साहित्यिक, चाहे शिक्षा-सम्बन्धी चाहे कला-सम्बन्धी, प्रगति को ध्यानपूर्वक देखिए, सभी जगह आलोचनात्मक विचार-धारा की प्रबलता दिखाई पड़ेगी। वास्तव में आज नवजीवन-प्राप्त एशिया योरप के समाज-शास्त्र और सभ्यता की समीक्षा कर रहा है।

शायद योरप और अमरीका का बच्चा बच्चा इस सिद्धान्त को माने बैठा है कि पश्चिमीय जातियाँ पूर्वीय जातियों की अपेक्षा स्वभावतः श्रेष्ठ हैं। स्कूल के पाठों में, विश्वविद्यालय के व्याख्यानों में, समाचार-पत्रों की ऐतिहासिक गल्पों में सदैव यही ध्वनि निकला करती है। संसार की सभ्यता का पाँच सहस्र वर्ष का पुरातन इतिहास एशिया पर योरप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वर्तमान जाज्वल्यमान शासन के सामने तुच्छ है। किन्तु क्या कभी पूर्वीय हृदय इस मीमांसा में विश्वास कर सकता है ? उसकी दृष्टि में इतिहास ने अनेक अवसरों पर युद्ध-क्षेत्र में एशिया को जय और योरप को पराजय दिलाई है। क्या माध्यमिक काल के प्रारम्भ से अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक एशिया की धाक योरप पर नहीं जमी है ? पूरे एक सहस्र वर्ष तक योरप एशिया से दबता रहा है, एशिया ने योरप पर जितने आक्रमण किये हैं उतने योरप ने एशिया पर नहीं किये हैं। योरप और अमरीका की पाठशालाओं में चाहे जैसा विकृत इतिहास पढ़ाया जाय, किन्तु एशिया अपने नवीन जागृति के दिनों में अपनी सैनिक श्रेष्ठता को कदापि नहीं भूल सकता है। यह ऐतिहासिक घटना है, कोई शेख़चिल्ली की कहानी नहीं हैं।

हां, सन् १७५७ के प्लासी युद्ध से लेकर १९०५ के पोर्ट आरथर के युद्ध तक एशिया में योरप का बे-रोकटोक प्रभाव बढ़ता गया है। किन्तु क्या योरप का विकास उत्थान और पतन प्राकृतिक नियम के अनुसार नहीं है ? इतने दिनों की अधोगति के बाद योरप का उठना बिलकुल स्वाभाविक था। किन्तु आश्चर्य तो समाज-शास्त्रवेत्ताओं की उस विलक्षण बुद्धि पर है जिन्होंने १५० वर्ष की घटनाओं के आधार पर यह सिद्धान्त गढ़ लिया कि प्रकृति ने पश्चिम को राज्य करने के लिए और पूर्व को प्रजा बनने के लिए रचा है। नवीन एशिया के आलोचनात्मक दर्शन का यही पहला प्रश्न है।

आज के दिन प्रायः जापान से लेकर मिस्र तक समस्त पूर्वीय भूभाग दासता के बन्धन में जकड़ा हुआ है, और उसके शासकों ने ही उसके जीवन और विचारों की आलोचना की है। ऐसी अवस्था में यदि उन्होंने एशिया को योरप के चरणों पर आश्रित अङ्कित किया है तो कोई आश्चर्य नहीं। ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी में चीन में एक बड़ा भारी सम्राट् हुआ है, इसका नाम टिनशीह्वांगटी था, सबसे पहले इसी ने सारे चीन पर सार्वभौमिक अधिकार प्राप्त किया था, तत्कालीन कन्फ्यूसियस के अनुयायियों ने उसके राजनैतिक सङ्गठन में कुछ बाधा डालना चाही थी, इसलिए उसने साहित्य पर सेन्सर बैठा दिया और समस्त प्राचीन चीनी ग्रन्थों में आग लगवा दी थी। इस प्रकार एक नवीन युग का श्रीगणेश किया गया था। मान लीजिए, आज फिर एक टिनशीह्वांगटी एशिया में पैदा हो जाय, तो क्या वह एशिया-सम्बन्धी अधिकांश पश्चिमीय साहित्य में आग लगा कर तमाशा नहीं देखना चाहेगा ? यद्यपि योरप-अमरीका में उन्नीसवीं शताब्दी से लेकर आज तक जो अन्वेषण-कार्य हुआ है वह वास्तव में महान् और प्रशंसनीय है। तथापि एशिया के वर्तमान जीवन और धरती में गड़े हुए तथ्यों के आधार पर इन लोगों ने जो जो कल्पनाएँ की हैं, वे बड़ी ही विलक्षण हैं। मेक्समूलर ने एक पुस्तक लिखी है 'भारतवर्ष हमको क्या सिखला सकता है ?' उसका सारांश है कि भारतवर्ष के पास पारलौकिक जीवन-सम्बन्धी गम्भीर विचार, आत्मज्ञान, ब्रह्मजिज्ञासा और यति-जीवन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सोपनहोमर ने, जो स्वयं घोर निराशावादी था, उपनिषदों और बौद्ध धम्मपद के संसार की निस्सारता के वाक्यों को अत्यधिक महत्त्व दे रखा है। इन लेखकों का यह प्रभाव हुआ कि आज-कल योरप में एशिया और निराशावाद शब्दों में कोई अन्तर नहीं समझा जाता है। बौद्ध-धर्म का नाम लेने से तो विशेषकर शान्ति, अकर्मण्यता, नाश, त्याग और संन्यास के भाव उदित होते हैं, पश्चिमीय संसार ने पूर्व का यही उद्देश मान रखा है। किन्तु देखना यह है कि ऐतिहासिक दृष्टि से यह कहां तक ठीक है। पहली बात तो यह है कि भगवान् बुद्ध पांचवीं और छठी शताब्दी के नेताओं में से एक थे, अतएव मनुष्यों के जीवन और विचारों पर उनका एकाधिकार होना सम्भव नहीं था, उस समय भी सैकड़ों लेखक, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, कूटनीतिज्ञ, तर्क-विशारद, व्याकरणाचार्य्य और वैद्य थे जिनका जनता पर गहरा प्रभाव पड़ता था। दूसरी बात यह है कि शाक्यमुनि ने पिथोगोरस की तरह केवल भिक्षुसङ्घ ही स्थापित नहीं किया था, वरन उन्होंने गृहस्थ-धर्म, राज-धर्म, प्रजा-धर्म इत्यादि सामाजिक धर्म की भी शिक्षा दी थी। व्यक्तिगत रीति से वे प्रजातन्त्र शासन के कट्टर पक्षपाती मालूम होते हैं, निर्वाण तो उनका अन्तिम ध्येय था। उनके बहुत से शिष्य बड़े उत्साही प्रचारक हुए जिनके द्वारा बौद्ध-धर्म समस्त एशिया भर में फैल गया था। उन दिनों अनेक धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ, औष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धालय आदि खोले गये थे। अशोक, जो बौद्ध-धर्म का एक बड़ा भारी स्तम्भ था, स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बड़ा कुशल था, उसके द्वारा समस्त पश्चिमीय एशिया तथा मिस्र, यूनान और मेसीडन इत्यादि देशों में हिन्दू-सभ्यता की धाक जम गई थी। तीसरी बात यह है कि भारतवर्ष, चीन या जापान पर बौद्ध-धर्म का कभी एकाकी प्रभाव नहीं रहा है। कुछ दिनों तक भारतवर्ष में बौद्ध-धर्म का प्राधान्य अवश्य रहा है। किन्तु भारतीय राजामहाराजाओं की नीति में कभी धर्म ने अनुचित हस्तक्षेप नहीं किया है। चौथी बात यह है कि जो बौद्ध-धर्म ग्रहण करते थे, वे एक-दम संसार से भाग नहीं जाते थे, प्रत्युत समाज की अवस्था के अनुसार कृषक या व्यापारी, सैनिक या सभासद् की हैसियत से गृहस्थ-धर्म का पालन किया करते थे। वास्तव में शाक्यमुनि ने कभी निराशावाद की शिक्षा नहीं दी थी। अहिंसा की शिक्षा होते हुए भी राजा युद्ध से पीछे नहीं हटते थे।

शाक्यमुनि के एक ही शताब्दी के बाद कौटिल्य ने अर्थ-शास्त्र-नामक ग्रन्थ सङ्गृहीत किया था, उसको एक बार आद्यन्त पढ़ लेने से हिन्दुओं की सैनिक अवस्था का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। युद्ध-क्षेत्र में सैनिकों के पीछे स्त्रियाँ भोजन लिये हुए खड़ी रहती थीं, और समय पर सैनिकों को प्रोत्साहन दिया करती थीं, साथ ही वैद्य-समुदाय भी विभिन्न ओषधियों के साथ आवश्यक सहायता के लिए प्रस्तुत रहते थे। ऐसा मालूम होता है कि उस समय प्रत्येक भारतवासी के लिए सैनिक-शिक्षा अनिवार्य थी—जैसा योरपीय महायुद्ध के अवसर पर योरप में सेना में भरती होना अनिवार्य कर दिया गया था।

यह वही एशिया है और यदि वह अभी तक मोहावस्था में पड़ कर अपनी शक्ति भूल गया था तो उसे अब पुनः अपने वास्तविक इतिहास का अनुभव होने लगा है अतएव उसका और उसके द्वारा संसार का उद्धार अवश्यम्भावी है।

२—मुसलमान-साम्राज्य की स्थिति।

लासेन की सन्धि से केवल तुर्की ही नहीं प्रसन्न हुआ, बरन सभी मुसलमानी देशों ने प्रसन्नता प्रकट की, विशेष करके ब्रिटिश-साम्राज्य के उन खण्डों और मिस्र जैसे स्वतन्त्र देशों ने, जिनका ग्रेट-ब्रिटेन से घनिष्ठ सम्बन्ध है और जिनमें मुसलमान-प्रजा अधिक संख्या में निवास करती है। इस प्रसन्नता को देख कर योरप के विचारवान् तथा वे लोग भी जो संसार की गति-विधि से पूर्णतया परिचित रहते हैं, थोड़ा बहुत अवश्य चकित हुए होंगे। परन्तु इस सन्धि से मुसलमानों के इतना अधिक सन्तुष्ट होने के क्या कारण हैं। हम इन कारणों का महत्त्व तभी जान सकेंगे जब हम इन पर उन सम्बन्धों की दृष्टि से विचार करेंगे, जो पिछले डेढ़ सौ वर्षों के भीतर योरप से मुसलमान-देशों के साथ रहे हैं।

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भकाल तक तुर्की के सुलतान की राजकीय सत्ता को किसी तरह की ठेस नहीं पहुँची थी। तुर्की की ईसाई प्रजा के लिए योरपीय शक्तियों ने तुर्की में नाना प्रकार के विशेष स्वत्व प्राप्त कर लिये थे। उनसे उस पर कोई उतना अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा था। जो कुछ पड़ा था वह सैद्धान्तिक था। तुर्क एक शक्तिशाली राज्य था और पाश्चात्य योरप से दूर स्थित था। आवागमन के साधन उस समय पाश्चात्य योरप को पर्याप्त रूप में नहीं प्राप्त था। अतएव सुलतान की राजसत्ता को धक्का पहुँचाने के उद्देश से वह पूर्वोक्त विशेष स्वत्वों का उपयोग करने में असमर्थ था।

नवयुग का प्रारम्भ महारानी विक्टोरिया के ज़माने के पहले से हुआ था। पाश्चात्य योरप को और उस रूस को भी जिसका भय तुर्की को उत्तर से सदा बना रहता था, विज्ञान ने क्रमपूर्वक स्टीमशिप, रेलवे और आधुनिक युद्ध-सामग्री के रूप में अत्यधिक सुविधायें प्रदान कर दीं। इसके साथ ही इधर तुर्की की सत्ता भी कम वाञ्छनीय होती गई। तुर्की बचा रहा तो केवल इस कारण कि उन्नीसवीं सदी के अधिक काल तक इँग्लैंड और आस्ट्रिया और बाद को जर्मनी और आस्ट्रिया यह बात नहीं चाहते थे कि रूस या कोई दूसरी ही शक्ति बलपूर्वक तुर्की के प्रदेशों को दबा ले।

वर्तमान काल में ग्रेटब्रिटेन के स्थान में जर्मनी के महत्त्वाकांक्षी विलियम कैसर तुर्की के शक्तिशाली मित्र और सहायक बन बैठे। इसका परिणाम यह हुआ कि तुर्क-सरकार को ही नहीं किन्तु योरप बरन सारे संसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भयङ्कर विपत्ति का सामना करना पड़ा। तुर्की पर जर्मनी का प्रभाव बढ़ जाने के कारण पिछले युद्ध में उसे जर्मनी का पक्ष लेकर लड़ना पड़ा, यद्यपि तुर्की की प्रजा और राज-कर्मचारियों का बहुमत युद्ध में भाग लेने के विरुद्ध था और निरपेक्ष रहना ही हितकर समझता था।

जब क्षणिक सन्धि हो गई तब लोगों को इस बात का विश्वास हुआ कि अब मनुष्य-जाति के इतिहास में नये युग का आविर्भाव हुआ है और बड़े बड़े सुधार होंगे। युद्ध के पिछले दिनों में, विशेष करके अमरीका के युद्ध में भाग लेने के बाद मित्र-राज्यों और अमरीका के राजनीतिज्ञों ने इस बात की घोषणा की कि हम लोग न्याय, राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के कुछ मौलिक सिद्धान्तों के लिए लड़ रहे हैं। उनकी घोषणा का योरप और अमरीका की अपेक्षा एशिया पर कुछ कम भारी प्रभाव नहीं पड़ा। प्रत्यक्ष परिणाम तो यह हुआ कि तुर्क लोगों तथा संसार के दूसरे मुसलमानी देशों को ऐसी सन्धि की आशा हुई जिससे तुर्क-प्रधान तुर्क-राज्य अक्षुण्ण और स्वतन्त्र रहेगा और अरब की विभिन्न जातियों को कम से कम संयुक्त अरब-संघ क़ायम कर लेने की सुविधा हो जायगी।

परन्तु जब अभी युद्ध-सम्बन्धी अनेक बातें तय होने को बाक़ी ही थीं उपर्युक्त श्रेष्ठ सिद्धान्तों की उपेक्षा करके तुर्की के समक्ष सेवर्स सन्धिपत्र की शर्तें उपस्थित की गईं। तब सभी देशों के मुसलमान क्रुद्ध और असन्तुष्ट हुए। यह एक स्वाभाविक बात थी। यह कहने भर को सन्धि थी। इसने तुर्की और अरब को अधीन राज्य और उपनिवेशों की स्थिति में कर दिया था। इस सन्धि के अनुसार मित्र-राज्य तुर्की के वास्तविक स्वामी हो गये थे और उसकी सारी स्वाधीनता छिन गई थी। इससे स्मर्ना यूनान को मिल गया था, जिससे तुर्की के अनाटोलिया के एक बड़े भाग को तबाह कर डालने का अवसर उपस्थित हो गया। जिन सङ्कीर्ण विचार के लोगों ने सेवर्स की सन्धि को स्वीकार करवाने के लिए ज़ोर डाला था वे मुसलमान-जातियों की परम्परा-गत लड़ाई को भूल गये थे। परन्तु संसार के मुसलमानों की नैतिक सहायता पाकर तुर्क-जाति सँभल कर खड़ी होगई। अन्त में उसने अत्यधिक बलिदान कर और कष्ट उठा कर पूर्ण-स्वाधीनता का मार्ग प्राप्त कर लिया। उसके इस आत्मोसर्ग की तुलना इतिहास में मिलनी कठिन है। तुर्क लोग लगातार बारह वर्ष तक युद्ध करते करते थक गये थे। उनके वीरता-द्योतक कार्यों, उत्साह प्रदान करनेवाले उनके जातीय आदर्शों तथा उनकी शक्ति के सम्बन्ध में मिस ग्रेस एलीसन ने अपनी 'एन इंग्लिश ओमैन इन अंगोरा' नामक पुस्तक में बहुत कुछ प्रकाश डाला है। इस पुस्तक के पढ़ने से प्रकट हो जाता है कि तुर्कों ने इस बात का निश्चय कर लिया था कि या तो पराजित होकर मर मिटेंगे या पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करेंगे। अस्तु।

तुर्की ने ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा के नेतृत्व में अब स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है। यह सफलता उसे अपने सतत उद्योग की बदौलत प्राप्त हुई है। मिस एलिसन तथा दूसरे विचारवान् लोगों का मत है कि तुर्कों का आज भी इँग्लैंड पर दूसरे सभी देशों की अपेक्षा अधिक विश्वास है। यह बात जान कर कुछ लोग चकित होंगे। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। परन्तु प्रसन्नता की बात है कि सदा के पारस्परिक हितों तथा सहानुभूतियों ने दुराग्रह और धार्मिक जोश को दबा लिया। इनकी अपेक्षा वही अधिक प्रबल पड़ गईं। पिछले समय यूनानी सेना के पराजित और विनष्ट हो जाने पर जब ब्रिटेन के संयुक्त मन्त्रिमण्डल ने यूनान का पक्ष लेकर यूनान-तुर्क-युद्ध में हस्तक्षेप करने का विचार किया था तब स्वयं उस मन्त्रिमण्डल का ही पराभव हुआ, यही नहीं किन्तु मिस्टर लायड जार्ज को तुरन्त पद-त्याग करना पड़ा।

ब्रिटेन के मुख्य आदरणीय समाचार-पत्र तो क्षणिक सन्धि के समय से ही तुर्की के साथ न्यायपूर्ण सन्धि करने का ज़ोर देते रहे। और अब यह बात भी प्रकट हो गई है कि अँगरेज़ लोग पुराने विचार के लोगों के दुराग्रह तथा भावनाओं से उत्तेजित हो कर भड़कने के नहीं। वे उन लोगों के साथ फिर एक भयङ्कर और निरर्थक युद्ध करने को नहीं प्रवृत्त होंगे जिनसे उनका किसी प्रकार का वैर नहीं है। अँगरेज़ के इस भाव का तुर्की में विश्वास किया गया। लासेन की सन्धि-सभा के गड़बड़ की पिछली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशा में ग्रेट ब्रिटेन के प्रतिनिधि ने इस भाव की अपने स्पष्ट रुख़ से पुष्टि कर दी। उसने तुर्की के पूर्ण स्वाधीनता के उस दावे का विरोध नहीं किया जिसे तुर्क-प्रतिनिधियों ने चिर शान्ति स्थापित होने के लिए एक-मात्र शर्त के रूप में उपस्थित किया था।

युद्ध-भूमि में और अन्तर्राष्ट्रीय सभा-भवन में विजयी होकर तुर्की ने वह दर्जा प्राप्त कर लिया है जो उसे पीढ़ियों से प्राप्त नहीं था। यह सब उसने अपनी सन्तान की उन जातीय आदर्शों के प्रति आत्मत्यागात्मक भक्ति की बदौलत प्राप्त किया है, जिन्हें प्रत्येक अँगरेज़ समझता और आदर करता है। तुर्क जाति अनेक वर्षों के युद्ध के कारण तबाह हो गई है। उसका व्यापार तथा व्यवसाय नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। शान्तिकाल में उसे समुन्नत करने का भारी बोझ ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमालपाशा तथा उनके सङ्गियों पर आ पड़ा है। ये लोग उसे किस प्रकार वहन कर अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, इसे प्रत्येक सहृदय अँगरेज़ सहानुभूतिपूर्वक देखेगा। इस सहानुभूति का स्वागत तुर्क लोग बहुत आदर से करेंगे। इससे दोनों देशों के बीच नवीन मैत्री का सम्बन्ध दृढ़तर हो जायगा। अँगरेज़ी माल के तुर्की में प्रचार होने से ही इस सद्-भाव का पता लगेगा।

अँगरेज़-मुसलमान-सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण स्थान तुर्कों को प्राप्त है, तो भी तुर्क-जाति मुसलमानों के एक विशाल समुदाय का अंश-मात्र है। साधारण विचार-वाला आदमी भी यह बात मान लेने में भूल नहीं कर सकता कि स्वाधीन पाँच मुसलमानी राज्यों को आपस में, ग्रेट ब्रिटेन, फ़्रांस और रूस के शासनाधीन मुसलमान लोगों से तथा योरप और अमरीका से सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। इन राज्यों में से प्रत्येक की वर्तमान स्थिति का सङ्केत कर देने से इस प्रश्न की मीमांसा में सुविधा हो जायगी।

तुर्की और अफ़ग़ानिस्तान अपना अपना प्रबन्ध करने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं। उनका ओहदा ग्रेट-ब्रिटेन, स्वीडन, पेरू जैसे छोटे बड़े स्वाधीन राज्यों से भिन्न नहीं है। तुर्की और अफ़ग़ानिस्तान का दूसरे सभी राज्यों से सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अनुसार क़ायम है। ईरान का प्राचीन राज्य कम से कम सिद्धान्त-रूप में स्वाधीन है, परन्तु विदेशियों को वहाँ कई तरह के विशेषाधिकार प्राप्त हैं। मिस्र भी अन्त में अपनी महत्त्वाकांक्षा के ध्येय तक पहुँच गया है। उसकी जातीय राज-सत्ता स्वीकार कर ली गई है। पाँचवाँ मुसलमानी राज्य अरब है और यही भय का स्थान है। वर्तमान समय में अँगरेज़-मुसलमान-सम्बन्ध में यदि किसी प्रकार के गड़-बड़ या पुरानी विपत्तियों के फिर आपड़ने की कोई सम्भावना है तो उनके जन्म-स्थान अरब की मरुभूमि तथा उसकी पर्वत-मालाओं में होगा।

उपर्युक्त पाँच राज्य ऐक्य के सूत्र में बँधे हुए हैं। उनमें एक ही सभ्यता और एक ही धर्म प्रचलित है, उनके विचार एवं चाल-ढाल में भी सादृश्य है। परन्तु यह बात सच है कि जब तक योरप या कोई विशेष योरपीय राज्य, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के विपरीत उपर्युक्त राज्यों में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करेगा तब तक मुसलमानी विचार का कोई भी ज़िम्मेदार समाचार-पत्र उन पाँचों मुसलमानी राज्यों को पारस्परिक सादृश्य की सन्धि में बाँधने का प्रयत्न करना हितकर नहीं समझेगा। इस बात के कारण भी स्पष्ट हैं। ब्रिटिश-साम्राज्य के जिन देशों में मुसलमान बसते हैं उनमें सुदूर पश्चिमी अफ़्रीका तथा मलाया प्रायद्वीप को छोड़ कर मुसलमानों की संख्या दूसरी जाति के लोगों की अपेक्षा कम है। फ़रासीसों के अधीन दक्षिण-पश्चिमी अफ़्रीका तथा सहारा मरु-भूमि के अरबी एक विशाल टापू जैसे स्थान में बसते हैं, जो मुसलमानी देशों से सर्वथा पृथक् हैं। भौगोलिक तथा राजनैतिक विचार से तुर्की, फ़ारस, अफ़ग़ानिस्तान या मिस्र को यह आवश्यक है कि वे परस्पर घनिष्ठ बन्धन में आबद्ध होकर योरप के सन्देहभाजन न बनें। इसकी अपेक्षा वे इँग्लैंड, फ़्रांस या रूस जैसी किसी एक बड़ी शक्ति के साथ मैत्री-बन्धन में आबद्ध रहें, क्योंकि उनका हित इसी बात में है। मुसलमान-शक्तियाँ पाश्चात्य देशों के मामलों में किसी तरह का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करने की चेष्टा करेंगी या एक सभ्यता तथा बन्धुत्व के कारण अपना गुट्ट बना कर वे कोई गोलमाल करने की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न-शील होंगी, यह समझना सर्वथा भूल है । ये दोनों बातें उनके हितों की विघातक हैं ।

यदि योरप के राजनीतिज्ञ और विशेष करके ब्रिटिश-साम्राज्य के कर्ता-धर्ता अपने सर्व-कालीन हितों को जानते हैं तो वे अपनी शक्ति भर उन्नतिजनक और वाञ्छनीय मुसलमानी आन्दोलन को पुरस्सर करने के लिए उत्साह प्रदान करेंगे । सच्चे स्वाधीन तुर्की, फ़ारस, मिस्र और अफ़ग़ानिस्तान के निर्माण में वे अपनी नैतिक सहायता प्रदान करेंगे, जिससे इनमें से प्रत्येक राज्य शान्तिपूर्ण और ज्ञानात्मक उपायों से अपनी जातीय समुन्नति करे । इस प्रकार ये केवल अपनी ही सभ्यता का विकास न करें, बरन जिन गुणों का सम्बन्ध सदियों से इस्लामी सभ्यता से रहा है उनके समर्पण-द्वारा सारे जगत् की सभ्यता का विकास करें ।

जिस आशङ्का का सङ्केत ऊपर किया गया है उसके विकट रूप अरब तथा तुर्क-राज्य के दूसरे भूखण्ड हैं । नई सन्धियों के द्वारा सीरिया में फ्रांस और मेसोपोटैमिया में ग्रेटब्रिटेन का मैंडेट स्वीकृत हो गया है । किन्तु पैलेस्टाइन का प्रश्न अभी झमेले में ही पड़ा हुआ है । इन कठिनाइयों के सिवा अरबी-जाति छोटे छोटे राज्यों और रजवाड़ों में विभाजित है । अतएव प्राच्य देशों के किसी दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय मसले की अपेक्षा अरब के मसले को हल करने के लिए ग्रेटब्रिटेन और फ्रांस को विस्तृत विचार-शक्ति और राजनीतिज्ञता से काम लेने की आवश्यकता है । दुर्भाग्यवश ये दोनों बड़ी शक्तियाँ अरबी मैंडेट में ही उलझी हुई हैं । इनके झमेले में अमरीका का संयुक्त-राज्य नहीं पड़ा । इस प्रश्न का निराकरण इस प्रकार होना चाहिए कि पाश्चात्य योरप, विशेष करके इँग्लेंड एक ऐसे स्वाधीन अरब की रचना में ज़ोर डालें जो छोटे छोटे राज्यों का सङ्घ हो और जिनकी सभ्यता का केन्द्र मक्का या मदीना रहे । ऐसे ही अरब-सङ्घ सीरिया और पैलेस्टीन भी शामिल कर दिये जायँ ।

यहीं यह भी मान लेना चाहिए कि अरब के राज्यों में कोई प्रधान कैन्द्रिक शक्ति नहीं क़ायम हो सकती । अतएव वहाँ के राज-घराने, राज-सिंहासन और शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी मामले सदा ही नाज़ुक रहेंगे । यद्यपि अरबी लोग एक ही जाति के हैं, तो भी उनमें प्रान्तिक देश-प्रेम और फ़िर्क़े होने से एकता का अभाव है । अरब के इतिहास से यह बात प्रकट है कि जहाँ तक शासन-पद्धति और शासकों के व्यक्तित्व से सम्बन्ध है, अरबी लोग अनिश्चित और परिवर्तनशील होते हैं । परन्तु इन कठिनाइयों का निराकरण हो सकता है, यदि पाश्चात्य शक्तियाँ इन बातों में निरन्तर हस्तक्षेप न करती रहें । इँग्लेंड के लोकमत को अपने शासक-वर्ग पर इस बात के लिए ज़ोर डालना चाहिए कि वह अपने साधनों-द्वारा तुर्की की सीमा से भारतीय सागर तक और भूमध्यसागर से फ़ारस की खाड़ी तक एक स्वतन्त्र अरब की रचना में प्रयत्नशील हों । इस कार्य के लिए ग्रेटब्रिटेन में उपयुक्त व्यक्ति मिल सकते हैं । अरब की परिस्थिति से अनेक इँग्लेंड-वासी पर्याप्त रूप से परिचित हैं । वे इस कठिन कार्य के करने में अपना कर्तव्यपालन यथासम्भव कर सकेंगे । अरब के प्रश्न का इस प्रकार निराकरण करने से एक ओर ग्रेट-ब्रिटेन और फ्रांस के बीच तथा दूसरी ओर अँगरेज़-जाति और पाँच स्वाधीन मुसलमानी राज्यों के बीच एवं उनके और ब्रिटिशसाम्राज्य की मुसलमान प्रजा और नागरिकों के बीच सङ्घर्ष की सम्भावना सदा के लिए दूर हो जायगी । यही एच० एच० आगा ख़ाँ की राय है ।

३—दो जर्मन-राष्ट्र-विधाता ।

जर्मनी की वर्तमान स्थिति अभी एक प्रकार से अव्यवस्थित सी है । फ्रांस की रूर-सम्बन्धिनी नीति ने उसकी यह अव्यवस्था बढ़ा दी है । इसी नीति से इँग्लेंड और फ्रांस में भी एक प्रकार से सङ्घर्षण हो रहा है । जर्मनी अपनी आर्थिक समस्या में सुलझा हुआ है । जर्मनी के भूतपूर्व युवराज के आगमन से योरप में हल-चल सी होगई है । यहाँ हम जर्मनी के दो प्रमुख व्यक्तियों का हाल देते हैं । इससे जर्मनी की अन्तःस्थिति का पता लगेगा ।

१९२० के मार्च से डाक्टर जेस्लर जर्मन रीच के मन्त्री रहे हैं । कैपपुश (Kapp Putsch) के पराभव के बाद ये हरनोस्की के उत्तराधिकारी हुए थे । ये वर्टेमबर्ग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य के निवासी हैं। इनका जन्म सन् १८७५ में लड-विग्सबर्ग में हुआ था। इनके पिता एक रियासत के एजेंट थे। इनके जीवन का अधिक समय बवेरिया में व्यतीत हुआ है। एर्लेंजेन में क़ानून की डिग्री प्राप्त कर लेने के बाद ये बवेरिया के मन्त्रिमण्डल के न्याय-विभाग में शामिल हुए और अपने पद का कार्य योग्यतापूर्वक किया। जब इनकी नियुक्ति म्यूनिच के न्यायाधीश के पद पर हुई तब लोगों को इनकी प्रतिभा का परिचय मिला। व्यवसाय-सम्बन्धी जटिल मामलों के निपटाने में इनकी कुशलता का पता लोगों को मिला था। सन् १९१० में ये रेजेंसबर्ग के बर्गोमास्टर बना दिये गये। इस पद पर इन्होंने तीन वर्ष तक काम किया और औद्योगिक झगड़ों में मध्यस्थ का कार्य कर लोगों के प्रशंसा-भाजन बने। जब सन् १९१३ में नूरेम्बर्ग के बर्गोमास्टर का पद ख़ाली हुआ तब उस पद के लिए लोगों ने एकमत होकर इन्हीं को चुना। युद्ध-काल में ये उसी पद पर काम करते रहे। इस समय इन्हें सङ्गठन-कार्य करने का बड़ा मौक़ा मिला और जिन अनेक स्कीमों को इन्होंने नूरेम्बर्ग में कार्य में परिणत किया था बाद को वही रीच के सङ्गठन में काम आईं। दूसरे राष्ट्र-विप्लव के समय यद्यपि म्यूनिच में बहुत कुछ रक्तपात हुआ था तो भी बवेरिया ने उसमें भाग नहीं लिया था। इनका श्रेय इन्हीं को है। सन् १९१९ में ये बर्लिन बुला कर पुनः रचना के नव-सङ्गठित मन्त्रिमण्डल में शामिल किये गये।

डाक्टर जेस्लर कैथोलिक ईसाई हैं। तो भी ये डेमाक्रेटिक पार्टी के मेम्बर हैं। जब इनकी पार्टी रीच सभा में अधिकारारूढ़ नहीं थी तब भी ये मन्त्रिमण्डल में शामिल रहे। ये अपनी पार्टी के नियमों से विरोधी-दल के साथ कार्य करने से विरत नहीं किये गये। राष्ट्रपति डिक्टेटर के पक्ष में ये नेतामात्र हैं, उसकी परिचालक शक्ति नहीं। इनकी आड़ में दूसरे बड़े बड़े लोग कार्य करते रहते हैं।

मिनिस्टर की हैसियत से डाक्टर जेस्लर का काम जर्मन-सेना का घटाना था। अतएव ये उसे वर्सेलीज़-सन्धि के अनुसार एक लाख की संख्या तक घटा लाये। यह कार्य बहुत ही विवादास्पद था। इस अवसर पर सेना के अधिकारियों को निकाल देने के विरुद्ध जो भारी विरोध हुआ उसका उन्होंने सफलतापूर्वक सामना किया। इसके बाद इनकी भिड़न्त मित्र-दल के उस कमीशन से होती रही जो जर्मनी की सैनिक-शक्ति और युद्ध-सामग्री आदि की जाँच के लिए नियुक्त हुआ था। क्योंकि इनके अधीनस्थ कर्मचारी सन्धि की शर्तों की उपेक्षा करके गुप्त कार्रवाइयों के द्वारा एक बड़ी सेना और अधिक युद्ध-सामग्री बनाये रखना चाहते थे। इसके सिवा सोशियलिस्ट पार्टी भी इन पर सदा आक्रमण करती रहती थी। बात यह थी कि इनके अधीनस्थ कर्मचारी राजतन्त्रवादी थे और उनका अपने आदमियों पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता था। पर इन्होंने उन आक्रमणों की ज़रा भी परवा न की और अपने इस सिद्धान्त पर दृढ़ रहे कि काम ठीक ठीक होना चाहिए, काम करनेवालों के व्यक्तिगत विचार चाहे जैसे हों। तो भी इन्होंने ऐसे बहुत से अधिकारियों को पद-च्युत कर दिया जिनके विचार बहुत ही उग्र थे।

उपर्युक्त सभी झगड़ों में डाक्टर जेस्लर ने अपने ही मार्ग का अनुसरण किया है। इन्होंने कभी किसी की नहीं सुनी। अभी हाल ही में इन्होंने कहा था कि प्रजातन्त्र को अपनी सेना पर पूर्ण विश्वास है। इसी सम्बन्ध में प्रजातन्त्र की सेना और बवेरिया की इर्रेगुलर सेना के जिस सम्बन्ध के कारण बवेरिया के प्रधान सेनापति जनरल वान एप को सहसा पदत्याग करना पड़ा उसकी ओर कुछ ही दिन बाद इनका ध्यान आकर्षित किया गया। इसका निपटारा जर्मनी की वर्तमान परिस्थिति करेगी कि कौन ठीक है—डाक्टर या उनके विरोधी।

बवेरिया ने हरगस्टववानकर को अपना डिक्टेटर बना कर प्रजातन्त्र के विरुद्ध अपने भाव का परिचय दिया है। हरवानकर बवेरिया-मन्त्रि-मण्डल के भूतपूर्व कर्मचारी हैं। बवेरिया में इनवोनर्वेर नामक सेना की रचना में भाग लेने तथा १९२१ की गर्मियों में एकाएक पदत्याग कर देने से लोग इनसे भले प्रकार परिचित हैं। उपर्युक्त नाम की सेना को मित्रों ने नियमविरुद्ध बताया था और उसे निःशस्त्र और बर्ख़ास्त कर देने को दबाव डाला था। उस सेना के बल पर उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोध करने का विचार किया था, पर स्थिति को अच्छी तरह परख नहीं सके थे। अतएव ये कार्य-क्षेत्र से हट गये और म्यूनिच के डिस्ट्रिक्ट गवर्नर के पद पर रह कर उपर्युक्त समय की प्रतीक्षा करते रहे। बवेरिया के षड्यन्त्रकारियों की नीति तथा उनकी कार्यवाहियों से अपना सम्बन्ध इन्होंने बराबर बनाये रक्खा और ये म्यूनिच में ही रहते रहे।

हरवानकर एक प्रसिद्ध राजतन्त्रवादी रहे हैं। इन्होंने तथा इसके दल के लोगों ने बवेरिया के प्रेसीडेंट-पद के पुनःस्थापन के सम्बन्ध में हाल में जो प्रयत्न किये हैं वे इस बात का सङ्केत करते हैं कि राज-घराने को पुनः शासनारूढ़ करने की चाल चली जा रही है। सम्भव है कि ये इस अवसर को उपयुक्त समझें। परन्तु प्रत्येक दशा में इनकी इस नियुक्ति से बवेरिया में शान्ति की स्थापना की आशा नहीं की जा सकती। इनके दल-वालों ने राजनैतिक विद्वेष तथा यहूदी विरोध को फिर जाग्रत कर दिया है। यह बात इनकी घोषणाओं से भी स्पष्ट प्रकट होती है। हर हालत में इनका डिक्टेटर के पद पर आसीन किया जाना अच्छा नहीं हुआ। इनकी नियुक्ति से बवेरिया में शान्ति के स्थापन की कम सम्भावना है। राजनैतिक द्वेष और यहूदी-द्रोह को इनके दल के लोगों से बहुत कुछ उत्तेजना मिली है, जो समय समय पर इनकी घोषणाओं के वाक्यों से झलकता रहता है। केवल कम्यूनिस्ट दल ही नहीं, किन्तु साम्यवादी और प्रजातन्त्रवादी भी इनके कट्टर शत्रु हैं। यदि ये सबके साथ समान व्यवहार करने लगें तो इनके दल के लोग भी इनके प्रशंसक न रह जायँ।

४—योरप की परिस्थिति पर मिस्टर लायड जार्ज।

अमरीका के शिकागो नगर में व्याख्यान देते हुए लायड जार्ज ने अपने ये विचार प्रकट किये हैं—

मैं आप लोगों के समक्ष योरप की स्थिति का निष्पक्ष, स्पष्ट और अतिशयोक्ति रहित वर्णन करता हूँ। ग्रेटब्रिटेन की अपेक्षा संयुक्त-राज्य योरप के गोल-माल को बड़ी आसानी से उपेक्षा कर सकता है। परन्तु मुझे इस बात का प्रमाण मिला है कि आप लोगों की उपज के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश पर योरप की दुर्दशा का प्रभाव पड़ा है। और अन्त में उसका सभी वस्तुओं पर ऐसा ही प्रभाव पड़ेगा। कृषक लोग यह बात स्वीकार करते हैं कि योरप की ख़रीद करने की शक्ति भयङ्कर रूप से नष्ट हो गई है, जिसके कारण उनके अन्न के वहाँ बिकने में बाधा पड़ रही है। योरप उस चिथड़े लपेटे हुए आदमी के समान है जो एक दूकान की खिड़की के आगे किसी सुन्दर कपड़े पहने हुए आदमी को कपड़े ख़रीदते हुए देख रहा हो। वह अपनी आवश्यकताओं को उसकी अपेक्षा अधिक समझता है, परन्तु वह तब तक नहीं ख़रीद सकता जब तक वह फिर समृद्ध न हो जाय।

योरप का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया है। व्यापार और व्यवसाय नष्ट-भ्रष्ट हो गये हैं, क्षुधा और रोग का सारे देश में राज्य है, लाखों की संख्या में बच्चे मर रहे हैं और हंगामों में मनुष्य गोली के शिकार हो रहे हैं।

परन्तु योरप सँभलेगा। जिन स्थानिक उपद्रवों के कारण वह शीघ्र सँभल नहीं रहा है उनकी चर्चा हमें यहाँ अभीष्ट नहीं। रूस की स्थिति और भी शीघ्रता से सुधर रही है।

भविष्य युद्ध या शान्ति हरजाने के सवाल पर निर्भर है। मैं अपनी ही ओर से नहीं किन्तु उन दोनों सरकारों की ओर से भी कहता हूँ जो मेरे बाद अधिकारारूढ़ हुईं कि ब्रिटिशभाव परम्परा से बदले के भाव से रहित है। इसी नीति ने फ्रांस को दो बार उस स्थिति में पड़ जाने से बचाया जिसका उपभोग जर्मनी इस समय कर रहा है।

ब्रिटेन कहता है कि अपनी शक्ति भर जर्मनी को हरजाने की रक़म देनी ही चाहिए, परन्तु उसका सामर्थ्य विचारपूर्वक निश्चित करना होगा। ब्रिटेन उस नीति का विरोधी है जो हरजाने को पराजित देशों की समृद्धि, आदि विनष्ट करने के लिए अपना साधन बनाती है।

संसार को इस उपाय का पता लगाना चाहिए कि एक देश का भारी ऋण किस सूरत में अदा किया जाय जो दूसरे को स्वीकृत हो। ब्रिटेन इसी बात को मानता है, यद्यपि युद्ध में जितना व्यय ब्रिटेन को करना पड़ा उतना दूसरे देश को नहीं। मित्र-राज्य वह रुपया अदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में ढिलाई करते हैं जो हमने उन्हें ऋण में दिया था। हमीं लोग एक ऐसे हैं जो अपना क़र्ज़ अदा करते जाते हैं।

५—साम्राज्य-परिषद् और प्रवासी भारतीय।

भारतवासी अपने देश को छोड़ कर अन्यत्र जाना कम पसन्द करते हैं। हिन्दू-धर्म के अनुसार तो समुद्र-यात्रा ही निषिद्ध है। तो भी कितने ही भारतवासी स्वदेश छोड़ कर विदेशों में जा बसे हैं। मारिशस, ट्रेनीडाड, माल्टा, नैटाल, ट्रान्सवाल, कैनेडा आदि देशों में सैकड़ों भारतवासी हैं। इन देशों में कुछ व्यापार करते हैं तो कुछ मज़दूरी करके ही अपना पेट पालते हैं। कुछ समय से उपर्युक्त देशों के गोरे चमड़ेवाले इन काले आदमियों के संसर्ग से बचने की चेष्टा करने लगे हैं। उनकी इसी चेष्टा से भारतीयों को अत्याचार और अपमान सहना पड़ता है। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों ने अपनी स्वत्व-रक्षा के लिए आन्दोलन किया। भारतवर्ष ने भी उनका साथ दिया। अभी तक यह आन्दोलन जारी है। कहा नहीं जा सकता कि कब भारतीयों की इस दुरवस्था का प्रतीकार होगा। अभी हाल में डाक्टर तेजबहादुर-सप्रू भारत के प्रतिनिधि होकर साम्राज्य-परिषद् में सम्मिलित हुए थे। उन्होंने प्रवासी भारतीयों के लिए बड़ी चेष्टा की। इसी के सम्बन्ध में श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदीजी ने हिन्दी नवजीवन में एक लेख लिखा है। वही यहाँ उद्धृत किया जाता है—

प्रारम्भ में ही यह कह देना चाहता हूँ कि मैं उन लोगों के साथ सर्वथा सहमत हूँ, जो यह समझते हैं कि डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने साम्राज्य-परिषद् में जाकर कोई निन्दनीय या अनुचित काम नहीं किया। जिस अनथक परिश्रम के साथ उन्होंने अपना कर्तव्य-पालन किया है, उसकी प्रशंसा प्रत्येक निष्पक्ष आदमी को करनी पड़ेगी। अब रहा यह प्रश्न कि "डाक्टर सप्रू सफल हुए या असफल ?" इस पर झगड़ा करना व्यर्थ है। समय डाक्टर साहब की सफलता और असफलता का निर्णय शीघ्र ही कर देगा। डाक्टर साहब के साम्राज्य-परिषद् में जाने से दो लाभ अवश्य हुए हैं, एक तो यह कि प्रवासी भारतीयों के प्रश्न को बहुत कुछ महत्त्व मिला है और उसकी ख़ूब चर्चा हुई है और दूसरा यह कि हम लोगों को इस बात का अब अच्छी तरह पता लग गया है कि प्रवासी भारतीयों के उद्धार-कार्य में हमें कालोनियल आफ़िस तथा भारत-सचिव से कुछ भी आशा न करनी चाहिए। जनरल स्मट्स ने अपने सिद्धान्तों को साफ़ साफ़ प्रकट कर दिया—वे तो पहले से भी ऐसा ही कह रहे थे—यह भी कुछ कम लाभ की बात नहीं है। सारांश यह कि अब वायुमंडल स्पष्ट हो गया है और हम सब वस्तुओं को ज्यों की त्यों देख सकते हैं। इसलिए हमें सामने का ख़तरा भी अच्छी तरह दीख पड़ रहा है। हमारी यह निश्चित सम्मति है कि प्रवासी भारतीयों के लिए ऐसे सङ्कट का समय कभी नहीं आया था जैसा कि अब आया है। इसके कारण हम आगे चल कर बतलावेंगे।

(१) डाक्टर सप्रू ने इस प्रश्न को चार विभागों में बाँटा है। कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलेंड में १९२१ के प्रस्ताव के अनुसार भारतीयों को समानाधिकार का दिलवाना।

(२) दक्षिण अफ्रिका-सम्बन्धी प्रश्न।

(३) अन्य उपनिवेशों के प्रवासी भारतीयों का सवाल।

(४) केनिया का प्रश्न।

हमारी सम्मति में ये विभाग भ्रमात्मक हैं। इस प्रश्न को केवल दो विभागों में बाँटना चाहिए।

(अ) स्वराज्य-प्राप्त स्थानों में भारतीय।

(ब) कालोनियल आफ़िस-द्वारा शासित उपनिवेशों में भारतीय।

अब हमें यह बात देखना है कि प्रवासी भारतीयों का मुख्य प्रश्न किन स्थानों से सम्बन्ध रखता है।

स्वराज्य-प्राप्त स्थानों में भारतीयः—कनाडा में भारतीयों की संख्या १,२०० है, जिनमें १,१०० उसके एक प्रान्त यानी ब्रिटिश कोलम्बिया में ही रहते हैं। आस्ट्रेलिया में २,००० और न्यूज़ीलेंड में ६०० हिन्दुस्तानी हैं। दक्षिण आफ्रिका में भारतीयों की संख्या १,४९,७९१ है। इस प्रकार स्वराज्य-प्राप्त स्थानों में प्रवासी भारतीयों की संख्या १,५३,५९१ यानी लगभग १½ लाख है। बाक़ी १८ लाख प्रवासी भारतीय उन स्थानों में रहते हैं, जहाँ कालोनियल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आफ़िस का शासन है। इस प्रकार यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि प्रवासी भारतीयों का मुख्य प्रश्न उन स्थानों से सम्बन्ध रखता है जहाँ विलायत का औपनिवेशिक विभाग शासन करता है, अब इन अङ्कों को ध्यान में रख कर हमें साम्राज्य-परिषद् के निर्णय पर विचार करना चाहिए।

कनाडा—साम्राज्य-परिषद् में इधर कनाडा के प्रधान मंत्री ने डाक्टर सन्यू के प्रस्ताव से सहानुभूति प्रकट की है, उधर ब्रिटिश कोलम्बिया के एक सभासद् ने जो वहाँ की साधारण जनता के प्रतिनिधि हैं, साफ़ कह दिया है कि हम हिन्दुस्तानियों को वोट का अधिकार नहीं देंगे। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि कनाडा में जो १,२०० हिन्दुस्तानी हैं, उनमें से १,१०० कोलम्बिया में ही रहते हैं।

आस्ट्रेलिया—प्रधान मन्त्री के कथनानुसार दो हज़ार प्रवासी भारतीयों को समानाधिकार मिलने की आशा है।

न्यूज़ीलेंड—६०० भारतीयों को समानाधिकार मिल जावेगा।

दक्षिण आफ़्रिका—१ लाख ४६ हज़ार भारतीयों को अधिकार मिलने की कुछ भी आशा नहीं।

यदि हम यह मान भी लें कि कनाडा आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलेंड में शीघ्र ही भारतीयों को समान अधिकार मिल जावेंगे, तो इसका अर्थ यह होगा कि स्वराज्य-प्राप्त संस्थाओं के १,५३,५६१ भारतीयों में ३,८०० को समान अधिकार मिलने की पूरी आशा है।

अब बाक़ी ११६½ लाख के लिए साम्राज्य-परिषद् ने यह निर्णय किया है कि भारत सरकार की एक कमेटी इस विषय में कालोनियल आफ़िस से सीधी लिखा-पढ़ी करे! इस प्रकार साम्राज्य-परिषद् में कुल जमा ३,८०० भारतीयों के लिए कुछ काम हुआ; बाक़ी ११६½ लाख का भाग्य कमेटी के घटाटोप में छिपा दिया गया! केनिया के भाई भी इन ११६½ लाख के साथ ही डूब गये। कालोनियल मन्त्री ने साफ़ कह दिया कि केनिया के विषय में हमने जो निर्णय कर लिया, वह कर लिया। उसे हम बदलेंगे तो नहीं, लेकिन आप जो कहेंगे, उसे सुन लेंगे।

जब केनिया में समानाधिकार नहीं मिला, तब फिजी इत्यादि में कैसे मिल सकता है? जो सिद्धान्त केनिया के गोरों के लिए मान लिया गया है, उसी के लिए फिजी के गोरे तलवार उठाने को तयार हैं। केनिया में गोरों की संख्या ६ हज़ार और भारतीय २३ हज़ार हैं, फिजी में गोरे ५ हज़ार और भारतीय ६० हज़ार हैं। केनिया के गोरे कहते हैं कि अगर भारतीयों को हमारे बराबरी के हक़ दिये गये, तो हम बलवा कर देंगे और यही बात फिजी के गोरे भी कह रहे हैं। कालोनियल आफ़िस प्रवासी भारतीयों के सारे दुःखों का मूल है; वह भला किसी भारतीय कमेटी की बात क्यों सुनने लगा? केनिया को सब उपनिवेशों की कुंजी इसी लिए कहा गया था कि फिजी ट्रिनीडाड, जमेका इत्यादि का प्रश्न भी लगभग वैसा ही है, और फिर कमेटी की बात कालोनियल आफ़िस ने न मानी, तो वह कमेटी कर क्या लेगी? हमें तो इस कमेटी के घटाटोप में कुछ भी तत्त्व नहीं दीखता।

इस कमेटी के कारण वर्तमान समय में जो थोड़ा बहुत आन्दोलन हो रहा है, उसके भी शिथिल हो जाने की आशङ्का है। इस समय तक नरम और गरम सभी एक स्वर से चिल्लाते रहे हैं कि प्रवासी भारतीयों के लिए भारतीय जनता को कुछ उद्योग अवश्य करना चाहिए। अब देश का एक दल इस कमेटी का पक्षपाती होगा, दूसरा विरोधी। इस प्रकार प्रवासी भारतीयों के प्रश्न पर भी जहाँ सबको एक मत होना चाहिए, हम लोगों में फूट हो जावेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

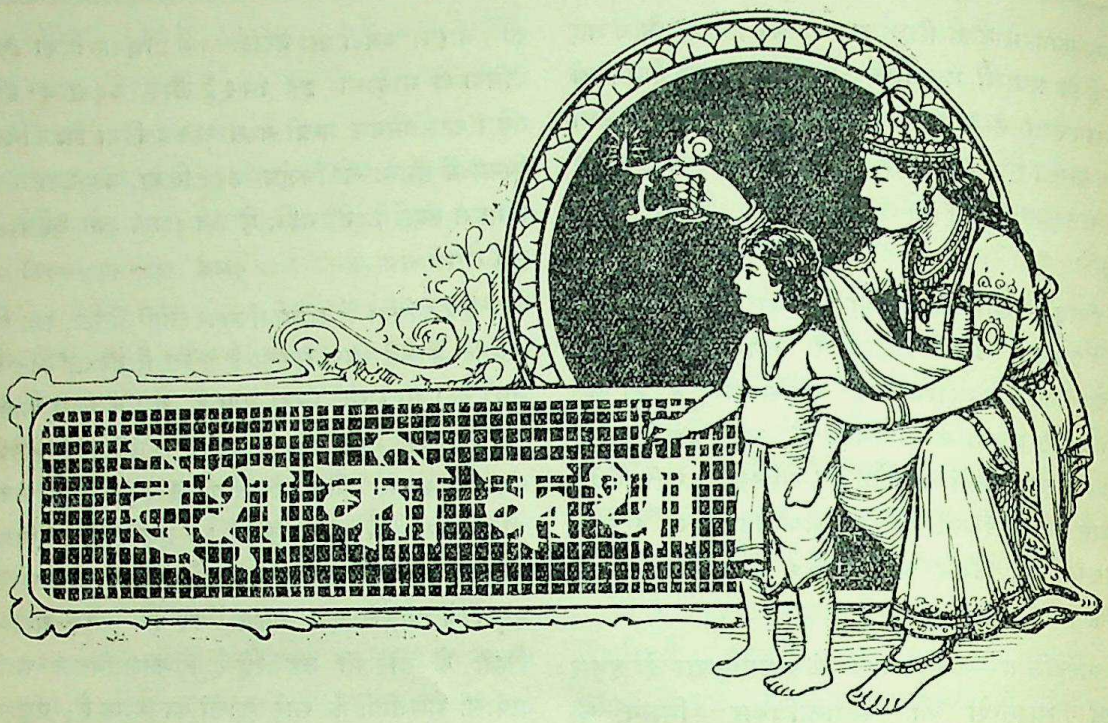

१—मर्दुमशुमारी की कुछ बातें।

देश किसे कहते हैं? पेड़-पहाड़, नदी-तालाब, खेत-बाग़, मसजिद-मन्दिर और बड़े बड़े आलीशान मकान देश नहीं। मनुष्यों के समुदाय ही का नाम देश है; निर्जन भू-भाग देश नहीं कहा जा सकता। अच्छा, तो इस देश का जन-समुदाय रहता कहाँ है? वह आगरा, मथुरा, प्रयाग, काशी, कानपुर और लखनऊ आदि बड़े बड़े शहरों ही में नहीं रहता; और न वह क़सबों ही में रहता है। रहते मनुष्य वहाँ भी हैं; पर समस्त समुदाय का कुछ ही अंश वहाँ रहता है। अधिकांश मनुष्यों का वास ५००० की आबादी से कम गाँवों ही में है। इस दशा में काशी, और प्रयाग तथा लखनऊ और कानपुर आदि की समृद्धि, सफ़ाई और शिक्षा को देख कर ही सारे प्रान्त की धन-दौलत और सुख-सन्तोष का पता नहीं लग सकता। छोटे बड़े गाँवों के रहनेवाले यदि दीन और दुखी हों तो यही कहना पड़ेगा कि प्रान्त या देश का अधिकांश निर्धन और निरन्न है।

इस प्रान्त में आगरा, कानपुर, लखनऊ आदि २४ शहर हैं। उनमें से शहर गिने जानेवाले जौनपुर की आबादी सबसे कम अर्थात् ३२ हज़ार और लखनऊ की सबसे अधिक अर्थात् २ लाख ४० हज़ार है। शहरों के बाद क़सबों का नम्बर है। उन्नाव, फ़तेहपुर और राय-बरेली आदि यद्यपि ज़िले के सदर-मुक़ाम हैं तथापि वहाँ आबादी अधिक नहीं। इससे उनकी गिनती क़सबों ही में है, शहरों में नहीं। इन शहरों और क़सबों में, संयुक्त प्रान्त की आबादी का बहुत ही कम अंश निवास करता है। उसका औसत फ़ी एक हज़ार पीछे केवल १०६ है। बाक़ी ८९४ आदमी गाँवों ही में रहते हैं—ऐसे गाँवों में जिनकी आबादी ५ हज़ार से कम है। अतएव शहरों की स्वच्छ और साफ़ सड़कों, बड़ी बड़ी कोठियों, फ़िटनों और मोटरों, पानी के नलों और बिजली की रोशनी और पंखों को देख कर सारे प्रान्त को वैसा ही समझ लेना बहुत बड़ी भूल है। देहात की निर्धनता, निरक्षरता और गन्दगी प्रायः ज्यों की त्यों बनी हुई है। इस दशा में यही कहना पड़ता है कि यह प्रान्त बहुत ही अनुन्नत दशा में है। शिक्षा, स्वच्छता और समृद्धि से उसका वही सम्बन्ध है जो ३ और ६ के अङ्कों को आमने सामने—इस तरह,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३६—रखने से होता है। इसमें से केवल एक अंश यदि समृद्ध हो गया और ९ अंश अधःपात के पङ्क में पड़े रहे तो देश या प्रान्त कदापि सुशिक्षित, सभ्य और समृद्ध नहीं कहा जा सकता। दस में से इन नौ अंशों की जो दुर्गति देहात में है वह वही लोग जान सकते हैं जो वहाँ रहते हैं अथवा जो कभी भूले भटके, किसी कारण से, वहाँ पहुँच जाते हैं। शक्ति रख कर और अधिकार पाकर जो लोग इन नौ अंशों को ऊँचा उठाने—उनके लिए उन्नति के साधन प्रस्तुत करने—के उपाय करते हैं वही सच्चे देशहितैषी हैं। अब आप विचार कर देखिए कि जो लोग प्रान्तिक कौंसिलों और लेजिस्लेटिव असेम्बली में जाने के लिए लार टपकाते फिरते हैं अथवा जो उनके मेम्बर रह चुके हैं उनमें से देहातियों के शुभचिन्तक—उनकी सुख-समृद्धि के इच्छुक—कितने हैं।

* * * *

प्रकृति या परमेश्वर ने कुछ नियम बना रक्खे हैं। यदि मनुष्य उन नियमों का पालन करता जाय तो उनमें कभी भूल नहीं हो सकती। परन्तु जहाँ उसने किसी नियम का उल्लङ्घन किया तहाँ उसका असर और नियमों पर भी पड़ता है। फल यह होता है कि अनेक विषयों में विषमता उत्पन्न हो जाती है। इस विषमता के कारण ढूँढ़ने से कभी तो ज्ञात हो जाते हैं और कभी नहीं होते। न ज्ञान होने का कारण मनुष्य-बुद्धि का परिमित होना है। प्रकृति का नियम स्त्री-पुरुष के जोड़े बराबर बराबर पैदा करना है। परन्तु प्रायः सभी देशों में देखा जाता है कि लड़कियाँ कुछ कम पैदा होती हैं, लड़के अधिक, मर्दुमशुमारी के नक़शों के अनुसार, १९२१ ईसवी में, इस प्रान्त में, यदि लड़कियाँ १००० पैदा हुईं तो लड़के ११०१। लोग लड़कियाँ चाहते भी नहीं अतएव अस्वाभाविक कारणों से भी उनका कम पैदा होना या पैदा होते ही मर जाना सम्भव है। पर प्रकृति इस बात को पसन्द नहीं करती। वह दोनों में समता रखना चाहती है। इसी से शायद उसने लड़कियों को जीवनी शक्ति अधिक दी है। पैदा होकर बच जाने से फिर वे, बेपरवाही करने से भी, नहीं मरतीं। जिस रोग से लड़के चल बसते हैं, लड़कियाँ बहुत करके बच जाती हैं। नतीजा यह होता है कि चार पाँच वर्ष की होने पर लड़कियों की संख्या बढ़ जाती है और लड़कों की कम हो जाती है। अर्थात् उस समय फ़ी एक हज़ार पुरुषों के मुक़ाबले में उनकी संख्या १०८२ हो जाती है। इसके बाद वे फिर घटने लगती हैं और ६० वर्ष की उम्र तक घटती ही चली जाती हैं। इसके अनन्तर उनकी संख्या पुरुषों से फिर अधिक हो जाती है। मर्दुमशुमारी के बड़े साहब का अनुमान है कि छोटी उम्र में शादी हो जाने और प्रसूति-काल में ठीक ठीक सेवा-शुश्रूषा न होने से ही शायद स्त्रियाँ अधिक मरती हैं उनका यह कथन यों हीं नहीं उड़ा दिया जा सकता। उसमें तथ्यांश ज़रूर है। स्त्रियों का यह अकाल मरण हम लोगों की दरिद्रता और अशिक्षा से कुछ न कुछ सम्बन्ध ज़रूर रखता है। यदि हम लोग शिक्षा के प्रभाव से प्रसूता स्त्रियों की ठीक ठीक रक्षा और परिचर्य्या का ज्ञान प्राप्त कर लें और घर में दाना-पानी होने से उनके लिए पथ्य और पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध कर सकें तो इस अकाल मरण की मात्रा ज़रूर बहुत कम हो जाय।

सो इस सम्बन्ध में भी देहात में रहनेवाली जनता को शिक्षा देने और उसकी समृद्धि के साधनों की सृष्टि करने की बड़ी आवश्यकता है।

२—मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट और शिक्षा।

समय समय पर देश की जन-संख्या का गिना जाना बहुत आवश्यक है। यदि काम की सभी बातें जानने के लिए नक़शों में आवश्यक ख़ाने रक्खे जायँ और उनकी ठीक ठीक ख़ानापुरी हो तो देश-दशा के अनेक विश्वसनीय चित्र देखने को मिलें। इन नक़शों के आधार पर रिपोर्ट लिखनेवाला यदि तजरिबेकार हो, बहुज्ञ हो, सारासार-विचार की शक्ति रखता हो, और देशवासियों की मति, गति और अवस्था से यथेष्ट परिचित हो तो उसकी आलोचना से अनेक अज्ञात बातें जानी जा सकती हैं। पिछली, अर्थात् १९२१ ईसवी की, मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट पर दो एक नोट सरस्वती में निकल चुके हैं। इस रिपोर्ट में शिक्षा के सम्बन्ध में जो अध्याय है उसकी कुछ बातें आज, इस नोट में, लिखी जाती हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इधर, कुछ समय से, कई कारणों से प्रेरित होकर, सरकार इस देश में शिक्षा-प्रचार में उन्नति करने की विशेष चेष्टा कर रही है। तिस पर भी जितनी उन्नति हुई है वह न कुछ के बराबर। अपना प्रान्त—संयुक्त-प्रदेश—तो शिक्षा में बहुत ही पिछड़ा हुआ है। इस प्रान्त के निवासियों में अशिक्षा या निरक्षरता का इतना अधिक आधिक्य देख कर बहुत ही शोक होता है। शिक्षित और सभ्य कहलानेवाली जाति के आधिपत्य में रह कर भी, इस प्रान्त में शिक्षा की इतनी अधोगति होना इस देश और इस प्रान्त का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। यदि इस ओर पहले से ही ध्यान दिया जाता और अब भी यथेष्ट प्रयत्न किया जाता तो यह दशा कभी न होती। इसकी कुछ जवाबदारी प्रान्त-निवासियों पर भी है; पर कुछ ही, अधिक नहीं। अधिक ज़िम्मेदारी तो उन्हीं की है जिन्हें ख़र्च देना और शिक्षा-प्रचार का प्रबन्ध करना पड़ता है।

संयुक्त-प्रान्त का रक़बा अँगरेज़ों की विलायत से कुछ ही कम है। आबादी क़रीब क़रीब बराबर है। रियासतों को छोड़ कर इस प्रान्त के उन ज़िलों की आबादी, जो ब्रिटिश-राज्य के अंश हैं, ४,५३,७५,७८७ है। उनमें से फ़ी एक हज़ार मनुष्यों में केवल ३७ मनुष्य साक्षर हैं। साक्षर से मतलब उस अर्थ से है जिस अर्थ का वाचक अँगरेज़ी शब्द "लिटरेट" (Literate) समझा जाता है। जो लोग साक्षर हैं उन्हें आप विद्वान्, पण्डित, आलिम या फ़ाज़िल न समझ लीजिएगा। टूटे-फूटे और टेढ़े-मेढ़े शब्दों या अक्षरों के द्वारा, शुद्धाशुद्ध भाषा में, अपनी जान पहचान के आदमी को चिट्ठी लिख लेनेवाले को भी आपको साक्षर मान लेना पड़ेगा। क्योंकि मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में "साक्षर" का यही अर्थ या लक्षण किया गया है। सो एक हज़ार निवासियों में ३७ तो इस प्रकार के धुक्कड़ साक्षर हैं और बाक़ी ९,९६३ सर्वथा निरक्षर! इन साक्षरों और निरक्षरों में स्त्री-पुरुष, बच्चे और बूढ़े सभी शामिल हैं। स्त्रियों और पुरुषों की साक्षरता का औसत अलग अलग लगाने से फ़ी एक हज़ार पुरुषों में ६५ और फ़ी एक हज़ार स्त्रियों में ६ साक्षर हैं। पिछले ३० वर्षों में साक्षरता कितनी बढ़ी है, इसका भी हिसाब लीजिए—

	पुरुष	स्त्री	
१९०१	५८	२	फ़ी एक हज़ार में
१९११	६१	५	
१९२१	६५	६	

१९०१ की अपेक्षा १९११ में फ़ी एक हज़ार में ३ पुरुष अधिक शिक्षित हुए थे। १९११ की अपेक्षा १९२१ में उनकी संख्या बढ़ कर ३ से ४ होगई। तरक़्क़ी इसे कहते हैं! १९११ में, पिछले दस वर्षों में, स्त्रियों की संख्या में ३ की वृद्धि हुई थी; पर १९२१ में केवल १ की। २० वर्ष पहले हज़ार स्त्रियों में २ साक्षर थीं। अब ६ होगई हैं! मर्दुमशुमारी के सुपरिंटेंडेंट कहते हैं कि जिन लोगों ने शिक्षा-प्रचार के लिए जी तोड़ परिश्रम किया है उन्हें इस बाढ़-वृद्धि से ज़रूर निराशा होगी। पर उन्हीं को क्यों? जिन्होंने इस विषय में कुछ भी नहीं किया कराया, क्या उनको निराशा न होगी? पर निराशा तो हम लोगों के लिए दालभात हो गई है। उसका उपयोग तो हमें बात बात में करना पड़ता है। उससे क्या डर?

स्कूल-लीविंग् और मैट्रीकुलेशन की शिक्षा पाये हुए लोग बहुत कम हैं। एम० ए० और बी० ए० तो और भी कम। साक्षरों में १० और २० वर्ष के बीच की उम्र के युवकों की ही संख्या सबसे अधिक समझनी चाहिए और ये सब देहाती या देशी भाषाओं के मदरसों ही की उपज हैं। इस उपज की संख्या १९११ में ३,८९,००० थी और १९२१ में ४,१४,०००।

दस वर्ष पहले एक युवक को साक्षर बनाने का ख़र्च ४० रुपया पड़ता था। अब पड़ता है ६० रुपया, सो साक्षरों की संख्या दस वर्ष में केवल २५ हज़ार बढ़ी। पर ख़र्च ड्योढ़ा हो गया!

देहात की अपेक्षा क़सबों और शहरों में साक्षरता अधिक है। हिसाब नीचे देखिए—

साल	हिन्दू		मुसल्मान	
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
१९११	१९४	३१	१३०	१८
१९२१	२२१	४७	१५४	२४

यह हिसाब फ़ी एक हज़ार मनुष्यों के औसत का है। इस सूबे में २४ शहर हैं। उनमें एक हज़ार मनुष्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में २१३ पुरुष और ४८ स्त्रियाँ साक्षर हैं। ऊपर के नक़्शे के अनुसार हिन्दुओं की अपेक्षा मुसल्मानों में साक्षर पुरुष अधिक हैं; और मुसल्मानों की अपेक्षा हिन्दुओं में साक्षर स्त्रियाँ। यह हिसाब आबादी के औसत के अनुसार है।

ऊपर जो हिसाब दिया गया वह शहरों का है। कुल सूबे के हिन्दू-मुसल्मानों की साक्षरता का मुक़ाबला करने से ज्ञात हुआ है कि पिछले दस वर्षों में मुसल्मान पुरुषों की अपेक्षा हिन्दू-पुरुषों में साक्षरता कुछ अधिक बढ़ी है। १९११ में फ़ी एक हज़ार पीछे ५८ हिन्दू और ५९ मुसल्मान पुरुष साक्षर थे; पर १९२१ में यही तारतम्य क्रम से ६७ और ६५ हो गया है। परन्तु पुरुषों और स्त्रियों की गिनती अलग अलग न करके यदि दोनों को मिला कर हिन्दुओं और मुसल्मानों में साक्षरता का हिसाब लगाया जाय तो मुसल्मान ही बढ़े-चढ़े निकलें। क्योंकि जहाँ फ़ी एक हज़ार में ३८ मुसल्मान साक्षर हैं वहाँ हिन्दुओं में केवल ३५ ही हैं।

अब ज़रा इस सूबे की अँगरेज़ी-दानी का हिसाब सुनिए। यह हिसाब फ़ी दस हज़ार आबादी के औसत का है और केवल पुरुषों का है—

१८९१	में फ़ी दस हज़ार में	१७ पुरुष
१९०१	,,	३६ ,,
१९११	,,	४९ ,,
१९२१	,,	६६ ,,

अर्थात् १८९१ में ५८८ पुरुषों में केवल एक पुरुष अँगरेज़ी लिख पढ़ सकता था। और अब, १९२१ में? अजी अब तो १५१ में ही वैसा एक पुरुष पैदा हो गया है। इसी से तो इस प्रान्त के अनेक देवोपम पुरुषरत्न अँगरेज़ी ही भाषा को सर्वोच्च स्थान देना चाहते हैं। उनका ख़याल है कि यदि इसी तरह तरक़्क़ी होती गई तो सौ दो सौ वर्षों में हमारे सभी रमई, बुधई और भोलई अँगरेज़ी भाषा के ज्ञाता हो जायँगे।

इस प्रान्त के "आर्यों" में अँगरेज़ी भाषा जाननेवाले सबसे अधिक हैं। उसके बाद जैनों में, फिर मुसल्मानों में, फिर हिन्दुओं में। हिन्दुओं में १० हज़ार मनुष्यों में सिर्फ़ ४७ मनुष्य अँगरेज़ी लिख-पढ़ सकते हैं और मुसल्मानों में ८१। हिन्दू तो अपनी "हिन्दुई" से ही बहुत कुछ उदासीन हैं, अँगरेज़ी तो समुद्रपार की भाषा है।

३—महकमे पुलिस की रिपोर्ट।

इस सूबे के महकमे पुलिस ने १९२२ ईसवी में जो कारगुज़ारी की और उसे जो जाँफ़िशानी उठानी पड़ी उसकी रिपोर्ट इस महकमे के सबसे बड़े साहब ने सरकार के दरबार में पेश कर दी। कौंसिल में बैठ कर श्रीमान् गवर्नर ने उस पर रायज़नी भी कर दी। वह रायज़नी अभी, कुछ ही दिन पहले, सरकारी गैज़ट में प्रकाशित हुई है। उसका सार सुनिए और साथ ही यत्र तत्र उस पर हमारी निःसार सम्मति भी सुन लेने की उदारता दिखाइए।

साल का श्रीगणेश ही बुरा हुआ। उपद्रव या विद्रोह की उत्पादक चर्चा ने ज़ोर पकड़ा। असन्तोष बढ़ा। क़ानून की अवहेलना करने का भाव प्रबल हुआ। लोगों ने समझा शासन में शीघ्र ही उथल-पुथल होगा—राज्य और किसी का हो जायगा। इससे बहुत लोगों ने लगान और मालगुज़ारी समय पर न अदा की। पुलीस पर बड़े बड़े ज़ोरो ज़ुल्म हुए; उसका सामाजिक बहिष्कार किया गया और उस पर नाहक़ कलङ्क लगाये गये। वालंटियर (स्वयंसेवक) संज्ञाधारियों की संख्या १०,००० तक पहुँच गई। फल यह हुआ कि बरेली, हरदोई और गोरखपुर ज़िलों में दङ्गे होगये; मार-काट भी हुई; चौरी-चौरा में पुलिस के कितने ही मुलाज़िमों की जानें तक गईं। यह देख कर सरकार सँभली। उसने अपने क़ानूनी शिकंजे को कड़ा किया। उधर असहयोग के नियन्ता या उत्पन्न-कर्त्ता धरोदा पहुँचा दिये गये। चलो छुट्टी हुई। विपक्षियों के हाथ-पैर ढीले पड़ गये। शान्ति के पैर फिर जमे। स्वयं-सेवकों के जत्थे तित्तर-बित्तर हो गये।

अशान्ति के समय शान्तिनाशक अपराध होते ही हैं। रिपोर्ट के साल वे सब हुए। राजनैतिक अपराध बहुत बढ़ गये। चोरी नकबज़नी आदि तो उतनी नहीं हुई; पर, क़त्ल, डाकेज़नी, बलवे आदि की संख्या बढ़ गई। सब मिलाकर २,७२३ राजनैतिक अपराध हुए। उनमें से ३०२ अपराधियों ने माफ़ी माँगकर अपना पीछा छुड़ाया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाक़ी बचे २,३९९। इन बाक़ी बचे हुओं में से १९२३ का चालान, फ़ौजदारी क़ानूनों की किन किन दफ़ाओं आदि के आधार पर हुआ, इसका ब्योरा तो सरकार ने बता दिया है; पर यह नहीं बताया कि इनमें से सज़ा कितनों को हुई और बेदाग़ कितने छूट गये। हमारी समझ नाक़िस में तो यह आता है कि यह बात भी उसे बता देनी थी। बिना बताये कोई कैसे जान सकता है कि इन लोगों पर लगाये गये जुर्म साबित भी हुए या नहीं। सम्भव है, ये सब असहयोगी ही हों, जिन्होंने अपने मुक़द्दमों में पैरवी ही न की थी। इस दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि ये लोग सचमुच ही अपराधी थे। एक बात और भी है। राजनैतिक अपराधियों की संख्या में से ४७६ की तफ़सील ही सरकार ने नहीं बताई। किस क़ानून की रू से वे पकड़े गये या उन पर मुक़द्दमा चला, इसका उल्लेख सरकारी समालोचना में नहीं, पुलिस के साहब की रिपोर्ट में शायद इनकी भी तफ़सील हो। परन्तु उस रिपोर्ट के दर्शनों का लाभ हमें अभी तक नहीं हुआ।

पुलिस के सबसे बड़े साहब—इन्स्पेक्टर जनरल—एक बात पर बहुत ख़ुश नहीं, तो सन्तुष्ट ज़रूर हैं और इस लिए उन्होंने अपने अधीन कर्मचारियों की पीठ भी ठोंकी है। वह बात यह है कि १९२१ की अपेक्षा १९२२ में ऐसे जुर्म कम हुए जिनमें दस्तन्दाज़ी करने का मजाज़ पुलिस को है। परन्तु अपने मन्त्रिमण्डल-संयुक्त गवर्नर साहब का कथन है कि नहीं, ख़ुशी मनाने का यह मौक़ा नहीं। पिछले साल से जुर्म कम हुए तो क्या हुआ; १९१३ से १९१७ तक ऐसे जुर्मों का जो औसत था उससे तो अधिक ही हुए। उन पाँच वर्षों में जितने जुर्म हुए थे उनसे इधर के पाँच वर्षों में—१९१८ से १९२२ तक—उनकी संख्या घटी नहीं, बढ़ ही गई। फिर सुख-सन्तोष, ख़ुशी और वाहवाही के लिए जगह कहाँ? हिसाब देख लीजिए—

	क़त्ल	डाकेज़नी	बलवे
१९१३—१७	६८६	७६३	१०८५
१९१८—२२	७८३	१३५७	११६५

हमें तो गवर्नर साहब ही का कहना अधिक युक्तिपूर्ण और प्रमाणसङ्गत जान पड़ता है, पुलिस के साहब का नहीं। डाकेज़नी तो प्रायः दूनी होगई और क़त्ल तथा बलवे कोई एक सौ के क़रीब बढ़ गये। फिर भी पुलिस ने ख़ूब काम कैसे किया! मगर बात यह है कि बिना बढ़ावा दिये मातहतों से अच्छे काम की उम्मेद भी तो नहीं की जा सकती। सो, एक हिसाब से पुलिस के साहब का भी कहना ठीक है और गवर्नर साहब का भी। गवर्नर साहब ने राय दी है कि सूबे में कुछ ख़ास बातें पैदा हो गई हैं। उन्होंने इन जुर्मों की संख्या बढ़ा दी है। उन्हें डर है कि यह बाढ़ अब शायद ही घटे। लक्षणों से मालूम होता है कि वह अब स्थायी होना चाहती है। दुर्दैव; हमारा भी और सरकार का भी!

१९२२ ईसवी में ऐसे जुर्मों की संख्या जिनमें पुलिस दस्तन्दाज़ी कर सकती है १,४२,३९४ तक पहुँच गई। जिनमें वह दस्तन्दाज़ी नहीं कर सकती उनकी संख्या ने १,५४,५१८ तक की ख़बर ली। पहले प्रकार के जुर्मों की संख्या पिछले १० वर्षों से प्रायः कम रही; पर दूसरे प्रकार के जुर्मों की बढ़ गई। सरकार इन संख्याओं को विश्वसनीय नहीं समझती। उसका ख़याल है कि पुलिस की दस्तन्दाज़ीवाले जुर्म ज़रूर अधिक हुए होंगे। पुलिस को इस तरह के छोटे छोटे जुर्मों की ख़बर शायद हुई ही न हो। इसी से यह संख्या कम हो गई है। मतलब यह कि दोनों ही तरह के जुर्म बहुत करके पहले से अधिक ही हुए। किफ़ायत के कारण सरकार ने हज़ारों चौकीदार बरख़ास्त कर ही दिये हैं। पुलिस के जवान भी कुछ तख़फ़ीफ़ में आ गये हैं। इस दशा में सब जुर्मों की रिपोर्ट यदि न हो अथवा अधिक जुर्म हों तो आश्चर्य ही क्या?

सबसे अधिक दुःख की बात तो यह है कि क़त्ल के जुर्म बहुत ही अधिक हुए। उनकी संख्या ८४२ तक पहुँच गई। इतने क़त्ल आज तक इस सूबे में, एक वर्ष में, कभी नहीं हुए थे। १९१३ से १९२२ तक, दस वर्षों में, इस तरह के जुर्मों का औसत ७३४ से आगे नहीं बढ़ा। १९१३ से १७ तक, पाँच वर्षों का औसत तो ६८६ ही था। कोढ़ में खाज यह हुई कि इधर तो क़त्ल इतने अधिक हुए, उधर क़ातिलों का पता भी पुलिस कम ही लगा सकी। सरकार के शोक को बढ़ानेवाली एक बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह भी हुई कि फ़ौजदारी की अदालतों ने मुजरिमों को सज़ा भी कम कर न दी। पुलिस के बड़े साहब इस असन्तोषजनक स्थिति के दो कारण बताते हैं। एक तो असहयोगियों का ऊधम और औदासीन्य, दूसरे पाप का पक्का सबूत (Unduly High Standard of Proof) देने के लिए अदालतों का हठ। साहब का शायद यह ख़याल है कि पुलिस के चारु चरित की रत्ती भर भी परवा न करके लोग मुजरिमों को ढूँढ़ ढूँढ़ उनके सिपुर्द किया करें और अदालतें, कच्चा-पक्का, जैसा सबूत पुलिस दे, उसे वेद-वाक्य मान कर मुलज़िमों को जेल में ठूँसती या फाँसी पर चढ़ाती रहें। साहब की राय पर सरकार कहती है कि कारण चाहे जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह दुःस्थिति सन्तोषजनक नहीं। साथ ही उसे इस बात का खेद भी है कि ऐसे समय में, जब सूबे की शान्ति ख़तरे में है, अदालतें, क़त्ल के मामलों में, मुलाज़िमों को फाँसी की सज़ा (Capital Sentence) देने में सङ्कोच करती हैं—विशेषकर ऐसे मामलों में जिनमें डाकेज़नी के साथ मनुष्य भी मार डाले गये हों। इस इशारे के लिए सरकार को साधु, सत्यप्रेमी और शान्तिप्रिय प्रजा का धन्यवाद।

सरकार की राय है कि बलवा करना तो इस सूबे के आदमियों की छठी में लिख सा दिया गया है। यह जुर्म तो पिछले साल और भी बढ़ गया। इस बाढ़-वृद्धि का कारण पुलिस के बड़े साहब ने "यथापूर्व" असहयोगियों की करतूतों और अन्य प्रकार की राजनैतिक चहल-पहलों ही के मत्थे मढ़ा है और गवर्नर साहब ने उनकी इस राय से इत्तिफ़ाक़ भी ज़ाहिर किया है। साधारण तौर पर इस तरह के जुर्म साल में १०५० ही के लगभग होते रहे हैं। पर १९२२ में उनकी संख्या १५१० तक जा पहुँची अर्थात ड्योढ़ी हो गई! हे असहयोगियों के समुदाय! अपनी इस लत को छोड़ो। शान्ति की उपासना का फ़तवा देकर अशान्ति न बढ़ावो—प्रसीद परमेश्वर!

डकैतियों का हाल तो कुछ पूछिए ही नहीं। १९१३ से १७ तक उनकी जितनी संख्या थी वह संख्या १९१८ से आगे, इस तरफ़) बराबर बढ़ती ही चली आ रही है। इस वृद्धि को सवाई-ड्योढ़ी न समझिए। वह प्रायः दूनी अर्थात् ९२ फ़ी सदी अधिक हो गई है। पुलिस के बड़े साहब को सरकार इस विषय में लिखनेवाली है और उनका ध्यान इस तरफ़ आकृष्ट करनेवाली है। अब तक शायद उसने यह काररवाई कर भी दी हो। वे जो उपाय बतावेंगे उन पर सरकार बड़े ग़ौर से विचार करेगी। तथास्तु।

पुलिस के महकमों के कारनामों की बड़ी बड़ी बातों का यह इतना ही उल्लेख बस होगा। चोरी, सेंध, ज़हर देने इत्यादि के जुर्मों की तफ़सील कौन बताने बैठे—

जिहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं
कहहु तूल किहि लेखे माँहीं

४—जेलों की सालाना रिपोर्ट।

असहयोगियों के उत्पात, उपद्रव, देशद्रोह और उद्दण्डता की सीमा नहीं। ऐसा एक भी सरकारी महकमा नहीं जिस पर उनके सब्ज़क़दम की छाया न पड़ी हो। जेलों के इन्स्पेक्टर जनरल ने १९२२ ईसवी की जो रिपोर्ट सरकार के दरबार में गुज़राई है उसमें असहयोगियों के कारनामों के लम्बे लम्बे पाठ जगह जगह पर पाये जाते हैं। रिपोर्ट के अन्त में लिखा है कि इन लोगों की भीड़ जेलों के भीतर बड़े बेमौके हुई। वह ऐसे समय में हुई जब क़ैदियों में असन्तोष और उद्दण्डता की मात्रा ख़ूब बाढ़ पर थी। फल यह हुआ कि असहयोगियों की आमद ने हुताशन में घृताहुतियों का काम किया। इस कारण जेलों के कर्म्मचारियों और अफ़सरों के हृदयों में चिन्तादेवी ने अपने आधिपत्य का अधिक विस्तार कर दिया। उन्हें अनवरत इसी विचार में लग्न रहना पड़ा कि क्या युक्ति की जाय जो ये क़ैदी क़ाबू में बने रहें और मार काट तथा ख़ून-ख़च्चर न हो। परमात्मा की परम कृपा और मुलाज़िमों की कारपरदाज़ी से सफलता हुई—काम बन गया। किसी की भी जान न गई; किसी के भी हाथ-पैर न टूटे; एक भी अभूतपूर्व दुर्घटना न हुई। इसका सारा श्रेय बड़े बड़े जेलों के सुपरिंटेंडेंट साहब लोगों को भी है और हिन्दुस्तानी जेलरों को भी। इन पिछले कर्म्मचारियों पर तो इन्स्पेक्टर जनरल साहब बहुत ही ख़ुश हैं। इन्होंने शरारत-पसन्द असहयोगियों को अपने वश में रख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी योग्यता, कार्य-कुशलता और कर्तव्य-पालन का बहुत ही अच्छा परिचय दिया। अतएव इन हिन्दुस्तानी कर्म्मचारियों की जितनी तारीफ़ की जाय कम है:—"The work of the Indian Staff deserves the greatest praise". इसमें सन्देह नहीं। यदि ये लोग असहयोगियों को उचित सीमा के भीतर न रखते तो सरकार का नमक खाकर इन्हें कृतघ्नता के पङ्क में पड़े पड़े सड़ना ज़रूर पड़ता। सौभाग्य से ये स्वामिद्रोह के दोष से बच गये, यह ख़ैर हुई।

इस सूबे में ६ सेंट्रल जेल, ४४ डिस्ट्रिक्ट अर्थात् ज़िले के जेल, ६ छोटे छोटे जेल और एक कम उम्र के लड़कों का जेल है।

साल के शुरू में २३,७९३ पुरुष और ४८९ स्त्रियाँ, कुल २४,२८२ क़ैदी सब जेलों में थे। १९२२ में स्त्री-पुरुष मिला कर ९४,९३८ नये क़ैदी दाख़िल किये गये। इस तरह कुल १,१९,२२० हो गये। यह संख्या १९२१ की अपेक्षा १० हज़ार अधिक हुई। सो, गत वर्ष, एक लाख से अधिक क़ैदियों को खिलाने-पिलाने, रखने और उनकी निगरानी करने का ख़र्च सरकार को उठाना पड़ा। जेल के बाहर रहनेवालों का फ़ी सदी औसत, इस सूबे में, धर्म्म के अनुसार, इस प्रकार है—

किरिस्तान	०.३८
मुसल्मान	१४.३८
हिन्दू	८५.०८

इस हिसाब को ध्यान में रखकर अब आप, धर्म्मानुसार ही, जेल के भीतर रहनेवाले क़ैदियों की तफ़सील लीजिए—

	१९२०	१९१	१९२२
क्रिश्चियन	०.२२	०.२९	०.२६
मुसल्मान	१७.२०	१७.९९	१८.२३
हिन्दू	८२.५१	८१७२	८१.५१

देखिए, क़ैद होने अर्थात् जुर्म करने में मुसलमानों ने कितनी तरक़्क़ी की है। हर साल कुछ न कुछ तरक़्क़ी वे करते ही चले जा रहे हैं। सहारनपुर, शाहेजहाँपुर वग़ैरह की बदौलत इस साल, अर्थात् १९२३ में, तो शायद उनकी यह तरक़्क़ी बाँसों बढ़ जाय। रहे हिन्दू, सो १९२१ में वे कुछ ज़रूर बढ़े थे। पर १९२२ में फिसल कर वे फिर अपनी पहली जगह पर—१९२० वाली पर—आ गये।

पुरानी पोथियों में लिखा है कि किसी ज़माने में चोरी इत्यादि करना भी कला में दाख़िल था। उसका भी शास्त्र था। और शास्त्र का ज्ञान अपढ़ों की अपेक्षा पढ़ों को ही अधिक हो सकता है। जान पड़ता है, पश्चिमी देशों की शिक्षा, कला, ज्ञान और विज्ञान के विस्तार के साथ ही साथ, इस देश के शिक्षितों में जुर्म्म करने और क़ैद हो जाने का माद्दा भी बढ़ रहा है। पढ़े और बे-पढ़े क़ैदियों का फ़ी सदी परता नीचे दिया जाता है। देख कर दिलजमई कर लीजिए—

सन्	पढ़े	अपढ़
१९१९	३.११	९६.८९
१९२०	३.४२	९६.५८
१९२१	५.६८	९४.३२
१९२२	७.३७	९२.६३

सो पढ़े लिखे लोग जेल जाने में तरक़्क़ी कर रहे हैं, अपढ़ तनज़्ज़ुली। ये तरक़्क़ी कुनिन्दा कौन लोग होंगे, ज़रा अन्दाज़ा तो लगाइए। अच्छा हमीं बतलाये देते हैं। ये हैं वही उपद्रवी असहयोगी जिनके कारण जेल के स्वदेशी कर्म्मचारियों को अपनी कर्म्मण्यता का कठोर परिचय देना पड़ा है।

साल भर क़ैदियों को क़ैद रखने में सरकार का ३३,५२,४२२ रुपया ख़र्च पड़ा अर्थात् १९२१ की अपेक्षा ४,१०,०६८ अधिक। कारण इसका क़ैदियों का अधिक होना और खाने-पीने की चीज़ों का महँगा होना बताया गया है।

सूबे के बड़े बड़े, अर्थात् सेंट्रल, जेलों में क़ैदियों को उद्योग-धन्धों की भी शिक्षा दी जाती है। किसी जेल में दरियाँ तैयार होती हैं। किसी में मूँज की चटाइयाँ, किसी में छोलदारियाँ। किसी में कुछ किसी में कुछ। इस मद में किस जेल को कितना मुनाफ़ा साल में हुआ, इसका हिसाब नीचे दिया जाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	रुपया
आगरा जेल	६३,१९१
फ़तेहगढ़ जेल	१५,३०८
इलाहाबाद जेल	१,०५,६१०
बनारस जेल	४५,४१७
लखनऊ जेल	३०,६९३

रहा बरेली का जेल सो वहाँ जिन क़ैदियों से मूँज की चटाई और कम्बल तथा दुसूती बुनने का काम लिया गया उनमें से फ़ी क़ैदी ने एक आना कम ५ रुपये का मुनाफ़ा दिखाया। सो सरकार ने इन लोगों के लिए जो कुछ ख़र्च किया उसका अधिकांश इन्होंने पैदा करके उसे लौटा दिया।

१९२१ में २३ क़ैदियों पर बेत पड़े थे; १९२२ में ४० पर पड़े। कारण यह कि इन लोगों ने औरों पर हमले किये थे, भागने की चेष्टा की थी और काम करने से इन-कार किया था।

असहयोगी क़ैदियों ने १९२२ में, जेल के कर्म्मचारियों की निष्ठुरता आदि की बड़ी बड़ी शिकायतें अख़बारों में छपाई थीं। पर इस रिपोर्ट में उनका कहीं भी उल्लेख नहीं। अतएव वे शिकायतें ज़रूर झूठ रही होंगी—वे इन लोगों की कल्पना की करामात मात्र रही होंगी।

५—सरकार की कुछ समालोच्य रिपोर्टें।

इधर महीने डेढ़ महीने के भीतर अनेक सरकारी महकमों की रिपोर्टें, सरकारी प्रेस के सुपरिंटेंडेंट के दफ़्तर से, प्राप्त हुई हैं। उन सभी पर कुछ न कुछ लिखने के लिए सरस्वती में जगह नहीं। परन्तु यदि नहीं लिखते तो उनका आना ही व्यर्थ हुआ जाता है। वे आती इसी लिए हैं कि उनमें लिखित बातों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जाय। अतएव दो एक रिपोर्ट की कुछ बातों का उल्लेख किया जाता है।

अस्पतालों के इन्स्पेक्टर जनरल साहब ने दो वर्षों (१९२०-२१ और १९२१-२२) की रिपोर्ट साथ ही लिख डाली है। वह नौही सफ़ों में समाप्त हो गई है। परन्तु उसके पुछल्लों, अर्थात् नक़्शों, ने कोई सौ सवासौ पृष्ठ घेर लिये हैं। इन सूबों की आबादी पाँच छः करोड़ है और हर साल हर आदमी प्रायः एक बार बीमार ज़रूर पड़ता है। परन्तु रिपोर्ट के दोनों सालों में ५४½ लाख से अधिक मरीज़ों ने सरकारी दवाख़ानों से दवा नहीं ली। अस्पतालों में रह कर दवा करानेवालों की संख्या तो एक लाख तक भी नहीं पहुँची। अतएव यह बताने की ज़रूरत नहीं कि आबादी के लिहाज़ से इस सरकारी महकमें ने जनता का कितना उपकार किया। ये दवाख़ाने और अस्पताल अधिकांश जनता की पहुँच के बाहर होने के कारण लाखों ही नहीं, करोड़ों मनुष्यों को वैद्यों और वैद्यराजों, हकीमों और नीम हकीमों की शरण जाना पड़ा होगा। और लाखों ही को, बीमारी की हालत में, करम ठोंक कर, पड़े पड़े राम राम रटना पड़ा होगा। तथापि महकमे के बड़े साहब के कथनानुसार पहले की अपेक्षा अब कुछ अधिक आदमी सरकारी दवा-ख़ानों तक पहुँचते हैं। रिपोर्ट में दिये गये अङ्कों से भी यही सिद्ध होता है।

इस महकमे ने कुछ जङ्गम दवाख़ाने भी खोल रक्खे हैं। वे चलते-फिरते रहते हैं—आज यहाँ कल वहाँ। आज रामपुर में दस मरीज़ों को दवा बाँटी और कल श्यामपुर चले गये। अब रामपुरवालों का मालिक राम रह गया। दवा से फ़ायदा हुआ या नुक़सान, इसके जानने का मौक़ा तक दवाख़ाने के डाक्टर को नहीं मिलता। इसी से इन जङ्गम दवाख़ानों की शिकायतें होती हैं और इसीसे अब इनकी संख्या भी कम कर दी गई है। इस कमी का एक कारण शायद ख़र्च की कमी भी हो, क्योंकि ज़िला बोर्ड के जनता-जनक ऐसे काम के लिए काफ़ी रुपया नहीं दे सकते।

जो मरीज़ अस्पतालों में पड़े रह कर दवा कराते हैं उन्हें प्राण-रक्षा के लिए भोजन भी करना पड़ता है। ऐसे मरीज़ों में से ६८ फ़ी सदी को अपने ही ख़र्च से खाने-पीने का प्रबन्ध करना पड़ा। बाक़ी ३२ फ़ी सदी को अस्पतालों से ख़ूराक भी मिली। पर बड़े साहब का कहना है कि ज़िला-बोर्ड आगे से शायद इतनी दरियाय-दिली से ख़ूराक-ख़र्च न दे सकें। सो अब भविष्यत् में बहुत करके ३२ फ़ी सदी से भी कम मरीज़ साबूदाना आदि मुफ़्त प्राप्त कर सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन अस्पतालों और दवाख़ानों का ख़र्च जनता से, कर के रूप में, प्राप्त हुए रुपये से ही चलता है। तथापि मुफ़्त दवा लेना और बिना टके ख़र्च किये इलाज कराना कङ्गालों ही का काम है। जिसके पास चार पैसे हैं वह ख़ैरात क्यों ले? इसी उच्च आदर्श की प्रेरणा से, सरकार ने सात आठ वर्षों से, दवा के दाम और टिकने की जगह का किराया भी लेना शुरू कर दिया है। पर किनसे? सबसे नहीं, उन्हीं से जो मुतमौव्वल हैं। परन्तु रिपोर्ट में यह नहीं लिखा कि कोई मुतमौव्वल है या नहीं, इसका फ़ैसिला कैसे किया जाता है। अस्तु। इन मदों से कितनी आमदनी हुई, सो नीचे देखिए—

साल	दवा की बिक्री से रु०	चीरफाड़ की फ़ीस से रु०	जगह के किराये से रु०
१९२१	३,९४९	१,५९१	३६,४९२
१९२२	५,२८६	२,२१८	२१,९२९

असाधारण चीरफाड़ की फ़ीस १०) और साधारण की ५) है। यह बहुत कम समझी गई है। अफ़सरों को यह बात खटक रही है। इसी से वे इस निर्ख़ को बढ़ानेवाले हैं। ज़रूर बढ़ाना चाहिए। भला बताइए, इस चीरफाड़ से दो वर्षों में ४ हज़ार भी रुपया न आया। यह कोई बात है। बड़े डाक्टरों में लफ़्टिनेंट कर्नल इलियस (आई० एम० एस०) ने २९५ चीरफाड़ किये और छोटों में डाक्टर भाटिया ने ९६७ कर डाले। भाटिया को और करने थे, क्योंकि दो वर्षों में यह तो रोज़ाना डेढ़ का भी परता न पड़ा।

लखनऊ के डाक्टरी कालेज से पिछले तीन वर्षों में कोई ६० छात्र डाक्टर बन कर बाहर निकले। पर अभाग्यवश १९१९ ईसवी के बाद, एक भी पासशुदह डाक्टर को सरकारी नौकरी नसीब न हुई।

जन-समुदाय को चुस्त और तन्दुरुस्त रखने के लिए भी सरकार ने एक महकमा खोल रक्खा है। उसके बड़े साहब डाइरेक्टर आफ़ पबलिक हेल्थ (Director of Public Health) कहाते हैं। लफ़्टिनेंट कर्नल डन साहब आज-कल इस ओहदे पर हैं। अप्रेल १९२३ तक तो वे ज़रूर थे, इधर की बात मालूम नहीं। उन्होंने १९२२ ईसवी की जो रिपोर्ट प्रकाशित कराई है वह उनके महकमे की पचपनवीं रिपोर्ट है। रिपोर्ट और नक़्शे मिला कर कोई सौ सफ़ों में आपने अपने महकमों की कारगुज़ारी का हाल लिखा है।

डाइरेक्टर साहब की शिकायत है कि हज़ारों चौकीदारों के निकाल दिये जाने के कारण बच्चों के पैदा होने और लोगों के मरने की, रिपोर्टें ठीक ठीक नहीं होतीं। टीका लगानेवालों को भी ठीक ठीक पता नहीं लगता कि एक वर्ष से कम उम्र के कितने बच्चे मरे और कितने पैदा हुए। इससे वे टीके का काम अच्छी तरह नहीं कर सकते। सो चौकीदार साहबान की तख़फ़ीफ़ का यह नतीजा हुआ।

रिपोर्ट के साल फ़ी एक हज़ार आबादी पीछे ३२ बच्चे पैदा हुए। पर उसके पहले वर्ष ३४ हुए थे। सो पैदावार कम रही। अच्छा मौतें? उनमें भी कमी हुई और बहुत कमी हुई। १९२१ में हज़ार पीछे ३९½ मरे थे; १९२२ में केवल २५ मरे। परन्तु डाइरेक्टर साहब ने इस हिसाब में एक पख़ लगा दी है। वे कहते हैं कि इस कमी का कारण कहीं सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र चौकीदार साहब ही न हों। सम्भव है उन्होंने ठीक ठीक फ़ौती और बचाज़नी न लिखाई हो। अस्तु, जो अङ्क नक़्शों ने बताये, हाज़िर हैं।

सब मिलाकर १४½ लाख बच्चे पैदा हुए—लड़के अधिक हुए, लड़कियाँ कम। मरों की संख्या ११ लाख ३४ हज़ार है। पुरुष अधिक मरे, स्त्रियाँ कम मरीं। पुरुष-जाति की पैदावार भी तो अधिक है।

किस रोग से कितने आदमी मरे, इसका हिसाब नीचे दिया जाता है—

हैज़े से	२,३३०
चेचक से	२४२
प्लेग से	२३,२९१
बुख़ार से	९,०९, २९३
अतीसार और संग्रहणी से	१०,६५४
कफ़, खाँसी आदि से	२५,३०७
चोट लगने से	२०,४४८
आत्महत्या से	१,९५९
अन्य कारणों से	१,४३,३१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अन्य रोगों और कारणों का उल्लेख हम छोड़े देते हैं। सबके उल्लेख की क्या ज़रूरत ? हमारी समझ में तो बुख़ार महाराज ही की कारगुज़ारी का उल्लेख काफ़ी हो सकता था। क्योंकि अकेले आप ही ९ लाख आदमी डकार गये। आपकी, अर्थात् मोसमी बुख़ार की, मौत के लिए सरकारी डाक्टर कुनैन नाम की दवा को बम का गोला समझते हैं। इसी से सरकार ने उसके प्रचार का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया है। छोटे छोटे डाकख़ानों तक में वह मिल सकती है। पर इस किफ़ायतशारी के ज़माने में उसने उसे ज़रा—यों ही थोड़ी सी—महँगी कर दिया है। पहले उसकी एक पुड़िया का दाम था एक पैसा; पर अब हो गया है चार पैसे ! पहले एक पुड़िया के भीतर से तीन टिकियाँ निकल आती थीं; अब किसी किसी के भीतर से दो ही निकलती हैं !

इस रिपोर्ट में और भी बहुत सी बातें सुनने और समझने लायक हैं। पर कहाँ तक लिखें। सिर्फ़ एक ख़ुश-ख़बरी सुन लीजिए। वह यह कि इस सूबे के बड़े बड़े शहरों में जहाँ जहाँ पम्प के पानी का प्रबन्ध है वहाँ वहाँ, सर्वत्र, इस काम में घाटा है। और यह काम सभी कहीं म्यूनीसिपैलिटियों के अधीन है। इन म्यूनीसिपैलिटियों के प्रायः समस्त मेम्बर विदेशी नहीं स्वदेशी, और सो भी शायद स्वराज्य-प्राप्ति के पक्के पक्षपाती हैं। अतएव म्यूनीसिपैलिटियों में वे जिस दक्षता से स्वराज्य-सञ्चालन कर रहे हैं उसके लिए उन्हें बधाई ! शाबाश !

६—जङ्गल के महकमे की वार्षिक बातें।

इस सूबे के उत्तरी भाग में बहुत जङ्गल है। उसकी देख-रेख के लिए एक महकमा क़ायम है। उसके बड़े साहब भी अँगरेज़ हैं और अनेक छोटे साहब भी। ये सब लोग इम्पीरियल अर्थात् राजकीय या शाही नौकरीवाले कहाते हैं। इनकी संख्या ४१ है। पर भारत के दुर्भाग्य से पिछले साल इनमें से ३२ ही काम पर रहे। ९ की कमी रही। जो रह गये हैं उनमें से भी चार पेंशन लेनेवाले हैं। इसी से छोटे हिन्दुस्तानी अफ़सरों को बड़ों का काम करना पड़ा। ये छोटे लोग शाही मुलाज़िमों की जगह पर काम करने की लियाक़त नहीं रखते। गवर्नर साहब की ऐसी ही राय है पर मरता क्या न करता। शाहियों की कमी के कारण इन्हीं में से ८ को उनके काम के लिए मुंतख़िब करना पड़ा। इनसे काम ठीक ठीक न चला होगा, इसमें सन्देह नहीं।

इधर तो अफ़सरों की कमी, उधर दुराचारी असहयोगियों के उत्पात। कोढ़ में खाज समझिए। दूसरों को—विशेष करके सरकार को—हानि पहुँचाना ही इन लोगों का पेशा सा हो गया है। इन्होंने कमायूँ के देहातियों को उभाड़ कर वहाँ के जङ्गलों में आग लगवा दी। इससे बड़ी हानि हुई। सीसम और सागौन वग़ैरह के हज़ारों लाखों पेड़ जल गये। घास-फूस कितनी जली, इसका तो ठिकाना ही नहीं। यही क्यों, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, साँप-बिच्छू भी तो लाखों की संख्या में भस्मीभूत हुए होंगे। पर इन निष्क्रियों और निष्ठुरों का दिल न दहला। इन्हें इसकी ज़रा भी परवा नहीं। नहीं मालूम, इन लोगों के हृदय—इन लोगों के कलेजे—किस चीज़ के बने हैं जो—

देखि न सकहिं परारि विभूती

असहयोगियों की बदौलत कमायूँ के जङ्गलों का तहस-नहस मई १९२१ में हुआ। इसके कुछ पहले ही सरकार ने एक कमिटी बना कर उसे एक काम सिपुर्द किया। उसने कहा, कमायूँ के देहाती कहते हैं कि जङ्गल के महकमे के नये नियमों की कृपा से हमारी नाकोंदम है—हम बहुत तङ्ग आ रहे हैं—; हमें जलाने को लकड़ी नहीं मिलती ; हमारे पशु जङ्गलों में चरने नहीं पाते। अतएव, ख़ूब जाँच करके एक रिपोर्ट दो कि इन लोगों की शिकायतों में कुछ सार भी है या नहीं। कहीं सारे उपद्रव की जड़ असहयोगी ही तो नहीं। ख़ैर, जाँच हुई; रिपोर्ट हुई ; और सरकार ने देहातियों की शिकायतों को दूर भी कर दिया। इस पर सरकार का कहना है कि असहयोगी उसके इस काम से सन्तुष्ट थोड़े ही होंगे ; क्योंकि अकारण उत्पात खड़े करना तो उनका विरुद ही है। तथापि उसे आशा है कि देहात के निवासी अब सहज ही में इन लोगों के फन्दे में आनेवाले नहीं ; क्योंकि उनकी जितनी शिकायतें सही थीं उतनी तो सभी दूर कर दी गई हैं। सरकार के इन वचनों से सिद्ध हुआ कि कुछ शिका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यतें ठीक भी थीं; इस दशा में असहयोगी शायद यह दलील पेश करें कि फिर सारा दोष हमारे ही मत्थे क्यों ?

१९१८ ईसवी में सरकार ने इस महकमे की एक व्यापारिक शाखा खोली। उसका नाम रक्खा—Utilization Circle उसको हुक्म हुआ कि जङ्गल में जो चीज़ें पैदा होती हैं मसलन लकड़ी, गोंद, मोम, बहेरा वग़ैरह, उसका उपयोग व्यापारिक ढङ्ग से करके महकमे की आमदनी बढ़ाओ। राल बनाओ, तेल निकालो, सूत लपेटने के लिए फिरकियाँ बनाओ, वग़ैरह। परन्तु उस शाखा के कर्णधार अफ़सर इसके उद्देश को सफल न कर सके। उसे उन्होंने चौपट कर दिया। उससे बहुत घाटा हुआ। इस कारण इस शाखा में बहुत कतर-ब्योंत करना पड़ा। कुछ उद्योग-धन्धे और किसी महकमे के सिपुर्द हुए और कुछ को कम्पनियों को दे डालने की ठहरी, इस असफलता के जवाबदेह सरकार के बजट बनाने वग़ैरह के नियम भी, कुछ अंशों तक, हैं। इस सरकिल में पहले कुछ कम ४ लाख सालाना घाटा रहता था, पिछले साल कोई ५ लाख रहा।

कमायूँ सरकिल में भी २½ लाख घाटा रहा।

ये दो सरकिल तो इस तरह गये। रह गये पूर्वी और पश्चिमी सरकिल। सो इन्हीं दोनों ने महकमे की लाज रख ली। इनके कृपाकटाक्ष से महकमे को ३४ लाख रुपये का मुनाफ़ा रहा।

कुल महकमे को ८२,७२,००० रुपये की आमदनी हुई। और ख़र्च हुआ ६०,८२,००० रुपया। अर्थात् कोई २३ लाख रुपये की बचत रही। यदि पूर्व निर्दिष्ट दोनों महकमे भी अपना काम सफलतापूर्वक कर सकते तो यह मुनाफ़ा शायद दूना हो जाता। पर भाग्य या दुर्भाग्य की बात—

तदबीर के पर जलते हैं तक़दीर के आगे।

इन पिछले दोनों महकमों का ख़र्च सरकार ने अब बहुत कम कर दिया है। कोई १३ लाख रुपये की काट-कसर कर डाली है। यह ठीक ही हुआ। जो पैदा नहीं करता उसे फ़िज़ूल-ख़र्ची करके सरकारी ख़ज़ाना ख़ाली करने का क्या अधिकार ?

इस महकमे की इन सब बातों का सम्बन्ध १९२२-२३ ईसवीवाले साल से है।

७—संयुक्त-प्रान्त में पशु-चिकित्सा की व्यवस्था।

इस देश में शहर और क़सबे कम हैं। गाँव ही अधिक हैं। अतएव आबादी का अधिक हिस्सा गाँवों ही में रहता है। सच पूछिए तो प्रजा, जन-समुदाय और देश का उल्लेख होने पर उस उल्लेख से देहातियों ही का अधिक बोध होना चाहिए, पर खेद है, ऐसा नहीं होता। ये देहाती ही देश के मेरुदण्ड हैं। वही सब तरह के कर भी अधिक देते हैं। उन्हीं करों की बदौलत सरकार का शासनचक्र चलता है। तथापि बेचारे देहातियों की रोग-चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध नहीं। तीस तीस चालीस चालीस मील दूर सदर मुक़ाम के शफ़ाख़ाने तक यदि वे पहुँच सकें तभी सरकारी सर्जन उनका इलाज करें। पर यह सम्भव नहीं। अतएव जूड़ी-बुख़ार, हैज़ा और प्लेग आदि रोगों से अभिभूत होने पर वे लोग अपने अपने गाँवों ही में पड़े हुए राम-नाम का स्मरण किया करते हैं।

मनुष्यों की रोग-चिकित्सा की जैसी दुरवस्था है उससे अधिक दुरवस्था पशुओं की रोग-चिकित्सा की है। देश कृषि-प्रधान है। कृषक देहात ही में रहते हैं। इस कारण उनके पशु भी उन्हीं के साथ वहीं उनके झोपड़ों के भीतर या उनके आस-पास खड़े, पड़े या बैठे जुगाली किया करते हैं। कोई साल ऐसा नहीं जाता जब दो दो, चार चार, छः छः ज़िलों में पशुओं की बीमारी न फैलती हो और सैकड़ों हज़ारों पशु चमड़ा उधेड़नेवाले चमारों के हवाले न हो जाते हों। इन पशुओं की चिकित्सा के लिए सरकार ने एक महकमा क़ायम कर रक्खा है। उसका नाम है—वेटरीनरी डिपार्टमेंट। पशुओं की रोग-चिकित्सा करना और अच्छी नसल के पशु पैदा करना उसी का काम है। पर इस महकमे के दफ़्तर और चिकित्सालय भी ज़िले के सुदूर सदर मुक़ाम में ही विराजते हैं। कुछ शफ़ाख़ाने क़सबों में भी हैं। पर दूर होने के कारण उनसे भी देहाती विशेष लाभ नहीं उठा सकते। इस महकमे के बड़े साहब तो साहब हैं हीं, कई एक छोटे साहब भी साहब ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो एक हिन्दुस्तानी भी ज़रूर हैं; परन्तु लघुतम पदों पर। हाँ, थोड़ी तनख़्वाहवाले कर्म्मचारी सब हिन्दुस्तानी ही हैं। सो एक तो ये बड़े लोग देहात में रह नहीं सकते, दूसरे सरकार के पास इतना रुपया नहीं जो प्रत्येक ज़िले के देहात में भी दस-पाँच पशु-चिकित्सालय खोले जा सकें। यह सब देहातियों का दुर्भाग्य ही है। और किसी का कुछ कुसूर नहीं।

इस महकमे की ३१ मार्च १९२३ तक की वार्षिक रिपोर्ट से सूचित होता है कि इस तरह के जितने शफ़ाख़ाने हैं उनमें से भी कुछ बन्द हो गये हैं अथवा बन्द होने पर हैं। बात यह है कि स्वराज्य के भावुक भक्त, जो डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के कर्ता धर्त्ता हैं, इनको चलाने के लिए रुपया ही नहीं देते। पशुओं के इलाज का प्रबन्ध न होने से यदि गायें और बैलों का अधिकांश अभाव हो गया तो शायद ये लोग हल जोतने के लिए अरब से ऊँट और घोड़े या अफ़ग़ानिस्तान से ख़च्चर मँगावें!

अपने महकमे की बातों का प्रचार करके पशुपालकों का हित करने के लिए यह महकमा एक सामयिक पत्र भी निकालता है। पर निकालता है उर्दू-ए-मुअल्ला में, हिन्दी में नहीं। यह शायद इसलिए कि हिन्दी कोई ज़बान ही नहीं; हिन्दुस्तानी तो अलबत्ते हैं। या शायद इसलिए, कि इस सूबेवाले न हिन्दी बोलते हैं और न लिखते ही पढ़ते हैं। दोनों में से एक बात ज़रूर होगी, इसमें सन्देह नहीं।

१९२१-२२ में केवल ११ हज़ार पशु मरे थे। पर १९२२-२३ में १४½ हज़ार कूच कर गये। इससे उम्मेद पड़ती है कि देहातियों के सौभाग्य से अब चरसे और जूते शायद कुछ सस्ते बिकें। क्यों न?

रिपोर्ट के साल प्रान्त भर में १२१ अस्पताल और शफ़ाख़ाने थे। बांदा, मिर्ज़ापुर, जौनपुर और सुल्तानपुर ज़िले के सदर मुक़ाम हैं। वहाँ पर भी कोई अस्पताल अब तक न थे। हाँ अब नये खोले गये हैं। साल भर में इन अस्पतालों से लोगों ने १,५०,४८१ पशुओं की चिकित्सा कराई। पर पशुओं को अस्पतालों में नहीं छोड़ा। हाँ, ८½ हज़ार पशुओं की चिकित्सा उन्हें वहीं रख कर भी कराई गई। यह संख्या बहुत ही कम है। इससे सूचित है कि शहरों में होने के कारण इनसे पशुपालों का यथेष्ट उपकार नहीं होता।

इस महकमे ने अच्छी अच्छी भेड़ें, घोड़े और ख़च्चर पैदा करने का भी कुछ काम ले रक्खा है। इसलिए उसने साँड़ रख छोड़े हैं। सर्व-साधारण भी शायद उनसे काम ले सकते हैं। पर यह बात इस रिपोर्ट में नहीं लिखी कि इस काम के लिए कुछ फ़ीस भी नियत है या नहीं।

यह पुस्तक वितरित न की जाय।

पशुओं की वबाई बीमारी के समय महकमे के कर्म्मचारियों को हुक्म है कि देहात में जाकर रोगी पशुओं का इलाज करें। पर महकमे के बड़े साहब की शिकायत है कि मरी आने की ख़बर पटवारी लोग फ़ौरन नहीं देते। इससे यह महकमा समय पर अपना कर्तव्य ठीक ठीक नहीं पालन कर सकता। ईश्वर करे पटवारियों के हृदयों में कर्तव्य-पालन की महत्ता का उतना ही ज्ञानोदय हो जाय जितना कि इस महकमे के बड़े बड़े अधिकारियों के हृदयों में है।

सहदेवसिंह वर्मा

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—आराध्य-देव।

तुम्हें मन-मन्दिर में प्रेम से विराज कर,
नित्य ही तुम्हारी हम आरती उतारते।
चाहे रहें कहीं, किसी काम में विलग्न रहें,
किन्तु क्षण भर भी न तुमको विसारते।
तन मन धन सब तुम पर वार चुके,
जीवन तुम्हारे लिए तुच्छ हैं विचारते।
धन्य भाग्य मानते अनन्य सुख पाते हम,
एक बार भी जो तुम प्यार से निहारते॥

—— गोपालशरणसिंह

२—निष्क्रिय प्रतिरोध।

पराजित देश का एक व्यक्ति अपने देश की विजय का उपाय सोचने लगा। बहुत सोच-विचार कर अन्त में उसने यह निश्चय किया कि अब तक मैंने बल-प्रयोग से अन्याय का प्रतिरोध करने की चेष्टा की है। अब मैं अपनी यह चेष्टा छोड़ दूँगा। देखूँ, धैर्य और सहिष्णुता से जय-लाभ कर सकता हूँ या नहीं।

यह व्यक्ति दुर्बल-चरित्र का मनुष्य नहीं था। उसे अपने निश्चय से कोई भी नहीं हटा सकता था। एक बार वह जो निश्चय कर लेता था उसी पर वह दृढ़ रहता था। इस बार भी वह ऐसी ही दृढ़ प्रतिज्ञा कर अपना कार्य करने लगा।

उस देश को जिस राजा ने पराजित कर स्वायत्त किया था उसका नाम था इजमन। उसने नगर के कुछ विशेष लोगों पर देख-रेख करने के लिए अपने नौकरों को आज्ञा दी थी। उन लोगों ने राजा से जाकर निवेदन किया महाराज, एक आदमी का रङ्ग-ढङ्ग बड़ा विचित्र है। वह न तो कभी बाहर जाता है और न किसी से मिलता-जुलता है। जान पड़ता है कि वह अधिकारियों को इस धोखे में रखना चाहता है कि वह नगर छोड़ कर चला गया है।

राजा ने क्रुद्ध हो कर आज्ञा दी—अच्छा, उसे अभी पकड़ कर हमारे पास ले आओ।

राजकर्मचारियों ने तुरन्त ही उसे पकड़ कर राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राजा ने आज्ञा दी—देखो, उसके पास क्या है।

उसके पास ऐसी कोई भी मूल्यवान् चीज़ नहीं थी। जो कुछ चीज़ें थीं वे सब राजा के पास पहुँचा दी गईं।

जब वह व्यक्ति राजा के सामने आया तब राजा उसका रङ्ग-ढङ्ग देख कर समझ गया कि यह मामूली आदमी नहीं है। तो भी उसे डराने के लिए उन्होंने गरज कर कहा—देखता हूँ, तुम आ गये हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस व्यक्ति ने शान्त-भाव से उत्तर दिया—हाँ, आ गया हूँ। मेरे पास जो कुछ था सब लेकर आया हूँ। कुछ भी नहीं छोड़ा है।

राजा ने पूछा—अच्छा, अब तुम क्या करते हो ?

उसने कहा—मैं तो कुछ नहीं करता। परन्तु मैंने अब यह निश्चय किया है कि सहिष्णुता से ही मैं जय प्राप्त करूँगा।

राजा जल उठा, क्रुद्ध स्वर से बोला—अच्छा, अभी तुम्हारी जय-प्राप्ति की लालसा बनी ही है।

उसने कहा—हाँ, यह लालसा तो बनी ही रहेगी। अन्याय पर विजय प्राप्त करनी ही होगी।

राजा ने कहा—यह धृष्टता। चुप रह, मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता। उसने कहा—मैं तो आपकी बात नहीं कहता हूँ। मेरा मतलब यह नहीं है कि मैं आपके ऊपर जय-प्राप्त करूँ।

राजा को विश्वास नहीं हुआ। उसने पूछा—तब तुम किसे जीतना चाहते हो ?

वह बोला—मैं अपने ही को जीतना चाहता हूँ।

राजा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—अभी तो तुमने कहा है कि मैं अन्याय को दमन करना चाहता हूँ। वह अन्याय क्या है।

व्यक्ति—प्रतिरोध और प्रतिघात की चेष्टा।

राजा—झूठी बात।

व्यक्ति—मैं झूठ कभी नहीं बोलता।

भय और विस्मय से राजा के मस्तक पर पसीने की बूँदें दिखाई देने लगीं। राजा सोचने लगा—माजरा क्या है ? इस आदमी को हो क्या गया है। उन्होंने फिर पूछा—तुम चाहते क्या हो। उसने कहा—मैं कुछ नहीं चाहता।

"सच ?"

"सच।"

ओठ के ऊपर ओठ दबा कर राजा सोचने लगा—तभी तो।

राजा बड़ा भावुक था। उसमें यथेष्ट स्फूर्ति थी। परन्तु वह किसी की धृष्टता नहीं सह सकता था। यह उसके लिए असह्य था कि कोई किसी भी विषय में उसे बाधा देने की चेष्टा करे। इसी के प्रतिरोधकारियों का प्रतिरोध कितना ही तीक्ष्ण क्यों न हो, वह सबका दमन कर देता था। परन्तु अब विद्रोहियों का विष-दन्त टूट गया है, अब वह निश्चिन्त हो गया है। परन्तु इससे वह तुष्ट नहीं हुआ।

कुछ देर के बाद उसने फिर उस व्यक्ति से पूछा—कुछ दिनों के पहले तो तुम्हारा कुछ दूसरा ही मतलब था। अब तुम्हारा मत कैसे बदल गया ? क्या कारण है।

उसने उत्तर दिया—कारण कुछ नहीं है। यह तो मनुष्य की मानसिक अवस्था का स्वाभाविक विकास है।

राजा ने कहा—हाँ, भाई, ठीक कहते हो। हमारा जीवन तो इसी प्रकार का है। आज उसकी गति एक ओर है तो कल दूसरी ओर। अपना पथ हम स्वयं निश्चित नहीं कर सकते। व्यर्थ एक पथ से दूसरे पथ में भटकते फिरते हैं।

इस बात को इजमन ने कुछ दुःख से कहा। वह जानता था कि अपनी मातृभूमि को पराधीन देख कर इस व्यक्ति को बड़ा दुःख होता होगा। पर उसका सन्देह दूर नहीं हुआ। वह सोचने लगा प्रजा का यह शान्ति-प्रिय व्यवहार देखने में तो अच्छा लगता है, परन्तु यदि समस्त देश निष्क्रिय प्रतिरोध में प्रवृत्त हो जाय तो हमारा राज्य किस प्रकार चलेगा। प्रजा-शासन, कर-संग्रह, ये सब कैसे सम्पन्न होंगे ? मन्त्रणा-सभा, विचारालय आदि तो बन्द हो जावेंगे। इसका मतलब क्या है ? एक बार इसकी परीक्षा करके तो देखें।

राजा ने नौकरों को हुक्म दिया—देखो, रोज़ इसी आदमी से हमारा अस्तबल साफ़ कराओ।

राजा की आज्ञा का पालन हुआ। वह प्रतिदिन चुपचाप अस्तबल साफ़ करने लगा। राजा उसका धैर्य और सहिष्णुता देख कर अवाक् रह गया। कुछ दिनों के बाद उन्होंने उसको इससे भी कड़ा काम दिया। परन्तु उसको भी उसने अक्लान्त भाव से सम्पन्न किया। श्रद्धा से राजा का हृदय भर गया। इतना विद्वान् और शिक्षित होकर भी वह नीच से नीच काम को सहर्ष कर लेता है। राजा ने उस व्यक्ति को बुला कर कहा—मैं तुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर पूरा विश्वास करता हूँ। जाओ, अपने देशवासियों में अपने सत्य का प्रचार करो।

इसके थोड़े ही दिनों के बाद वह व्यक्ति समस्त देश का श्रद्धा-भाजन हो गया। सभी ने उसको नेता स्वीकार कर लिया। वह जो कहता था वही उनके लिए वेद-वाक्य था। सभी लोग उसकी नीति का अनुसरण कर निश्चेष्ट हो गये। जिसकी जो इच्छा हो करे, वे किसी को नहीं रोकते थे। चोर उनका सर्वस्व ले जाय, वे उसको बाधा नहीं देते थे। किसी का कोई कर्तव्य भी है, यह बात वे सब भूल गये।

उसने कहा—शास्त्र में लिखा है कि मनुष्य का जीवन बड़ा दुःख-मय है। वासना तो जीवन को और भी दुःख-मय करती है। दुःख दूर करने के लिए सभी वासनाओं को वर्जित करना होगा। जब हमारे जीवन में किसी प्रकार की वासना नहीं रहेगी तभी हमारी ग्लानि दूर होगी।

यह सुन कर सब लोगों ने कहा—यह बात बिलकुल ठीक है। वासना-निवृत्ति के साथ हमारे सभी कर्म शान्त होंगे। फिर किसी प्रकार की आवश्यकता हमें न रहेगी।

कुछ दिनों के बाद इजमन ने देखा कि उसके चारों ओर गम्भीर शान्ति है। विस्मित होकर इजमन सोचने लगा—ये सब बड़े दुष्ट हैं, हमें धोखा देना चाहते हैं।

इसी बीच देश भर में कीड़े-पतिङ्गे छा गये। कोई उन्हें मारता नहीं था, त्रास तक नहीं देता था।

एक दिन इजमन ने एक नौकर को बुलाकर कहा—इन कीड़ों को हटाओ।

उसने कहा—महाराज, मैं उन्हें नहीं हटा सकता।

राजा ने कहा—क्यों ?

वह बोला—उनके भी तो प्राण है। उन्हें मारने से क्या अच्छा होगा ?

इजमन ने क्रुद्ध होकर कहा—मेरी बात नहीं सुनोगे तो मैं तुम्हारा सिर कटा लूँगा।

नौकर ने विनीत भाव से उत्तर दिया—महाराज की जैसी इच्छा हो।

उस दिन से सभी काम इसी प्रकार होने लगे। जब इजमन किसी से कुछ कहता तब वह यही उत्तर देता—महाराज की जैसी इच्छा हो। परन्तु कार्य के समय पर कोई काम नहीं करता था। तब उसकी आज्ञा का पालन कौन करता ?

राज्य के सभी काम एक एक कर बन्द हो गये। सभी की कर्म-शक्ति लुप्त हो गई। बैठे बैठे थक कर सभी सोने लगे। आलस्य का यह भार इजमन के लिए असह्य हो गया। वह पहले की बातें सोचता था। कैसे अच्छे दिन थे। कितना काम था। प्रजा विद्रोह करती थी और उसका दमन करना पड़ता था। आज यहाँ सैन्य भेजो और कल वहाँ सैन्य भेजो। परन्तु अब तो सारे देश में आलस्य छा गया है। आज समग्र जाति ध्वंसोन्मुख है। इसका क्या परिणाम होगा। अन्य देशों को देखो, वे कैसी उन्नति कर रहे हैं। हमारी क्या दशा है।

इजमन अधिक सोच नहीं सका। वह नगर में एक एक के घर जाकर उनका हाथ पकड़ कर कहने लगा—उठो, यह तुम क्या कर रहे हो ! इस प्रकार निराश और निश्चेष्ट पड़े रहने से लाभ क्या ?

परन्तु निर्जीव और मृतप्राय देशवासियों ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे चुपचाप पड़े रहे।

इजमन ने दूसरा उपाय सोचा, वह एक एक के कान के पास जाकर कहने लगा—देखो, तुम्हारा सर्वनाश उपस्थित है। तुम्हारे देश पर शत्रु चढ़े आ रहे हैं। उनको रोको।

क्षीण स्वर में एक ने कहा—देश-रक्षा भगवान् के हाथ में है। हम क्या कर सकते हैं।

इजमन ने चीत्कार करके कहा—एक बार उठ कर देखो तो, तुममें कुछ रोकने की शक्ति है या नहीं।

यह बात सुन कर उनमें से एक बोला—रोकने की ज़रूरत ही क्या है ? किसको रोकें ?

यही मनुष्य पहले अपने बाहुबल के लिए विख्यात था।

इजमन का धैर्य छूट गया। वह पागल की तरह चिल्ला कर कहने लगा—दुहाई तुम्हारी। तुम कुछ भी तो करो। विद्रोह करो, हत्या करो, जो तुम्हारी ख़ुशी हो करो। मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। कुछ करो तो। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया। सब वैसे ही निश्चेष्ट पड़े रहे।

इजमन की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने कहा—निष्क्रिय प्रजा को मैं किस प्रकार जागृत करूँ। एक बार उठ कर देखो, इतिहास में निष्क्रिय प्रतिरोध से किसी भी देश या जाति का कल्याण नहीं हुआ है। मैं अकेला क्या करूँ। कौन मेरी सहायता करेगा।

कहीं से कुछ शब्द नहीं आया। सर्वत्र शान्ति और निस्तब्धता बनी रही। कान्तिहीन दृष्टि से सब ताकते रहे।

इसी प्रकार धीरे धीरे समस्त जाति काल के मुख में पड़ कर लुप्त हो गई। अन्त में इजमन ने भी प्राण छोड़ दिया। मरते समय उसने कहा—शक्तिहीन कर्मोन्माद अच्छा नहीं है, परन्तु निष्क्रियता के अनुष्ठान में भी संयम चाहिए। तभी जाति की अन्तःशक्ति बढ़ती है। *

हृषीकेष

३—मोक्षासन्न।

१

इस घोर निराशा के तम में,
यह आशा का प्रकाश कैसा ?
मुझ व्यामोहान्ध नराधम में,
तृष्णा का कभी नाश कैसा ?
निश्चय मृगजल है, छलना है,
यह रङ्ग हवा में रँग कैसा ?
यह शिशु का विकट मचलना है,
पर शशि पाने का ढँग कैसा ?

२

रण की दुन्दुभी बजी कैसी,
वह शङ्खों का स्वर था कैसा ?
उर में जयमाल सजी कैसी ?
वह विजय स्वयंवर था कैसा ?
यह शान्ति कहाँ से आई है,
सौ शशियों का सङ्गम कैसा ?
कैसे अविफलता छाई है,
जड़ का होना जङ्गम कैसा ?

३

वह निकट चला सा आता है,
सर्वव्यापी प्रकाश कैसा ?
तन कहाँ चला सा जाता है,
सबका सम्यक् विनाश कैसा ?
परयुग अनित्यता के तन में,
है आज नित्यता का कैसा ?
स्पन्दन अनेकता के मन में,
है आज एकता का कैसा ?

४

सब तत्त्व कहाँ ये जाते हैं,
नभ का हो रहा लोप कैसा ?
जो अड़ते मुँह की खाते हैं,
स्थूलों पर सूक्ष्म कोप कैसा
कर दुख-द्वन्द्वों का घोष बन्द,
गम्भीरानन्द-नाद कैसा ?
करता सम्पूर्ण प्रमाद मन्द,
यह सुखमय गुरु प्रमाद कैसा ?

५

यह है आँखों का ही विनाश,
अन्तर्दृग का खुलना कैसा ?
यह है स्वप्नों का विकट पाश,
जकड़े मृग का डुलना कैसा ?
यह है युग पक्षाघात भला,
तन के अतीत होना कैसा ?
है सारा पूर्व-प्रदेश जला,
निशि का व्यतीत होना कैसा ?

६

इस अगम अनन्त ऊँचाई पर,
यह एकाएक वास कैसा ?
इस नित्य अचिन्त्य सचाई पर,
झूठे का सुख-विलास कैसा ?
उड़ कर मण्डूक विश्व बन कर,
हो गया स्वयं स्वकूप कैसा ?

---

* गोर्की की एक कहानी। बंगला से संकलित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघु बना एक ममता जनकर,
अद्वैत विराट् रूप कैसा ?

७

यह कहाँ गई गहरी छाया,
तम हुआ स्वयं प्रकाश कैसा ?
पूर्ण स्वतन्त्रता बन आया,
माया का महापाश कैसा ?
चमका है चरम विकासानन,
जिससे यह हास-हास कैसा ?
कर सका एक रस-ब्रह्म-जनन,
यह प्रलय-स्वरूप नाश कैसा ?

८

उस अनुपम सुख-दुख की स्मृतिमय,
माया का था प्रभाव कैसा ?
अतिविषय-विलास-स्वविस्मृतिमय,
है मेरा यह स्वभाव कैसा ?
वह परवशतामय परमितता,
का था विचित्र तम भ्रम कैसा ?
अब नित्य-ज्योति-निज आत्मिकता,
के पाने में सम्भ्रम कैसा ?

आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

४—पाश्चात्य-साहित्य में नायिका-भेद।

साहित्य और कला, दोनों में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में स्त्री-रूप की प्रधानता देखी जाती है। सभी देशों में स्त्री प्रेम की मूर्ति मानी गई है और पुरुष शौर्य का स्वरूप समझा गया है। कला में स्त्री के सौन्दर्य में कोमलता और पुरुष के सौन्दर्य में कठोरता की प्रधानता रहती है। काव्य में स्त्री के चरित्र में ममता, दया, क्षमा, चञ्चलता आदि गुण प्रदर्शित होते हैं और पुरुष के चरित्र में धैर्य, क्रोध, गम्भीरता आदि गुण अभिव्यक्त होते हैं। स्त्री की तेजस्विता उसकी दीनावस्था में प्रकट होती है और पुरुष का पराक्रम उसकी उन्नतावस्था में दिखलाई देता है। अन्यत्र अपालो और वेनस के चित्र प्रकाशित हुए हैं। प्राचीन पाश्चात्य-कला में अपालो की मूर्ति पुरुष के सौन्दर्य का आदर्श है और वेनस स्त्री-सौन्दर्य का। प्राचीन पाश्चात्य-साहित्य में एकिलस पुरुष-चरित्र का सबसे अच्छा उदाहरण है और हेलेन स्त्री-चरित्र का। अस्तु,

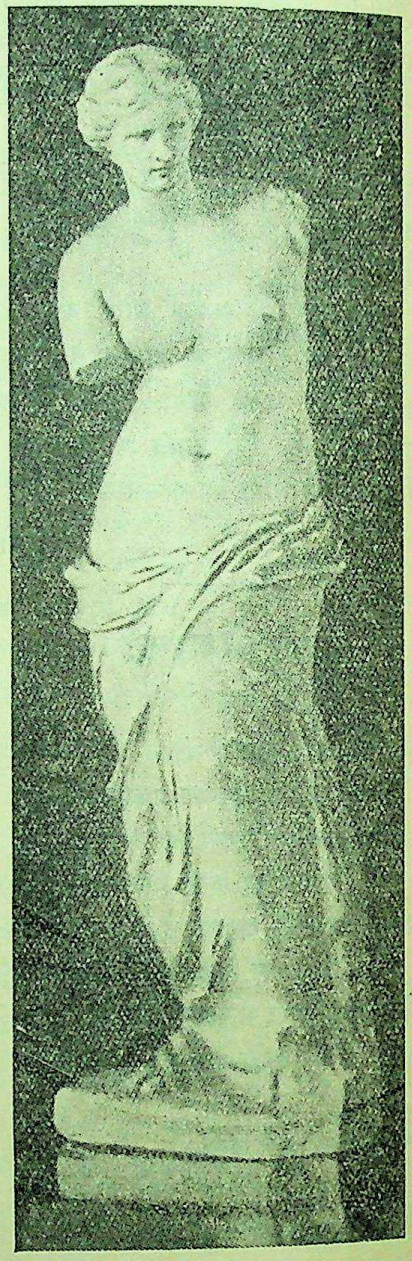

वेनस।

यहाँ हम स्त्री के एक ही गुण—प्रेम—की चर्चा करना चाहते हैं।

हिन्दू-साहित्य में प्रेम का बड़ा ही सूक्ष्म विश्लेषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है। नायिका-भेद उसी का परिणाम है। एक एक नायिका में प्रेम की एक एक अवस्था दिखलाई गई है। हिन्दी-साहित्य में नायिका-भेद पर कितने ही काव्यों की रचना हो चुकी है। कुछ कवियों ने तो नायिकाओं के मनोभाव व्यक्त करने में सदाचार तक का ध्यान नहीं रक्खा है। यही कारण है कि कितने ही विद्वानों की दृष्टि में नायिका-भेद की चर्चा तक अश्लील हो गई है। परन्तु कविता की वैज्ञानिक परीक्षा के लिए नायिका-भेद आवश्यक है। सभी देशों के कवियों ने प्रेम की भिन्न भिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। यहां हम हिन्दी के नायिका-भेद के अनुसार अँगरेज़ी-साहित्य की समीक्षा करना चाहते हैं।

अपालो।

नायिका कहते किसे हैं? काव्यप्रभाकर के अनुसार जिस सुन्दर स्त्री को देखते ही हृदय में शृङ्गार-रस का आविर्भाव हो उसी को नायिका कहते हैं। देखिए, टी० लाज की रोज़ालिंड नायिका है या नहीं—

With orient pearl, with ruby red,
With marble white, with sapphire blue.
Her body every way is fed,
Yet soft in touch and sweet in view
Heigh ho, fair Rosalynde!
Nature herself her shape admires;
The gods are wounded in her sight;
And love forsakes his heavenly fires,
And at her eyes his brand doth light:
Heigh ho, would she were mine!

भावार्थ—उसकी देह कहीं मोती, कहीं लाल मणि, कहीं श्वेत सङ्गमरमर और कहीं नीलम से पुष्ट हुई है। परन्तु स्पर्श में कितनी कोमलता है, दर्शन में कितनी मधुरता है, स्वयं प्रकृति उसके रूप की प्रशंसा करती है। देव तक उसे देख कर मुग्ध हो जाते हैं। कामदेव तो स्वर्ग को छोड़ कर उसी के नेत्रों से अपना शर तीक्ष्ण करते हैं। क्या वह मेरी नहीं होगी?

इसकी तुलना हिन्दी की एक नायिका से कीजिए—

कङ्कण करन कल किङ्किनी कलित कटि
कञ्चन कँगूरा कुच केसकारी जामिनी।
कानन करनफूल कोमल कपोल कण्ठ
कम्बुक कपोत कीर कोकिल कलामिनी
केसर कुसुम कलधौत की कछू ना कान्ति
कोविद प्रवीन 'बेनी' करिवरगामिनी।
कोक कारिका सी किन्नरी की कन्यका सी
कलकाम की कला सी कमला सी खासी कामिनी॥

जहां नायिकायें हैं वहां नायक भी होने चाहिए। हिन्दी में नायक उस सुन्दर गुण-रूप-यौवन-सम्पन्न पुरुष को कहते हैं जिसको स्त्रियां शृङ्गार-दृष्टि से देखें और जो काव्य, राग और रस का ज्ञाता हो। हिन्दी-साहित्य में यदि सच पूछो तो एक ही नायक है और एक ही नायिका। नायक हैं श्रीकृष्ण और नायिका राधा। श्रीकृष्ण परब्रह्म-रूप हैं अतएव उनके शृङ्गार-वर्णन में आध्यात्मिक भाव हैं। हिन्दी के परवर्ती कवियों ने श्रीकृष्ण के पौरुष-भाव की अवज्ञा कर उन्हें एक प्रेमी के ही रूप में वर्णित किया है। इसी से उन्होंने प्रेमी की सभी अवस्थाओं का वर्णन कर नायक के अनेक भेद कर डाले हैं। इन नायकों के अनेक रूप हैं। इनकी प्रेम-लीला अद्भुत है। पाश्चात्य साहित्य के श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं में ऐसे नायकों का अभाव नहीं है। परन्तु उनके दो ही भेद किये जा सकते हैं—पति और प्रेमी। पाश्चात्य जीवन में कोर्टशिप की प्रथा होने के कारण प्रेमी की मानसिक अवस्थाओं का चित्रण खूब हुआ है। हिन्दी के उपपति और वैसिक नायक सदाचार का उल्लंघन करनेवाले हैं। जब समाज में विलासिता और अनाचार की वृद्धि होती है तब ऐसे नायकों का अभाव नहीं रहता। अँगरेज़ी साहित्य में भी ऐसे अनेक कवि हुए हैं जिन्होंने सदाचार-विहीन असंयत प्रेम का वर्णन किया है। परन्तु प्रेम की गति चाहे सत् की ओर हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा असत् की ओर, उसकी एक अवस्था ऐसी होती है जब वह प्रेम समाज की सीमा का उल्लंघन कर जाता है। मीराबाई ने प्रेम के ही कारण लोक-लाज को छोड़ दिया। यह प्रेमोन्माद हिन्दी क्या, सभी साहित्यों में वर्णित हुआ है। परन्तु दुश्शील मनुष्यों का दुराचार सभी साहित्यों के

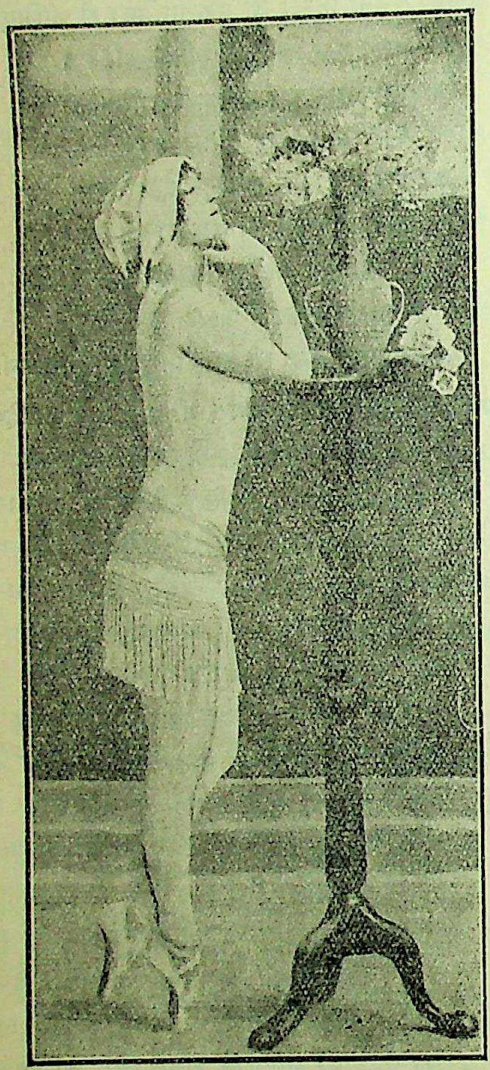

वासकसज्जा।

लिए अनिष्टकर है। यहाँ हम उन्हें छोड़कर केवल नायिका का ही वर्णन करना चाहते हैं।

नायिकाओं के भेद कई प्रकार से किये गये हैं—यहाँ उसका पूरा विवरण देना सम्भव नहीं है। अतएव उनमें से एक ही का वर्णन यहाँ किया जाता है। प्रकृति के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा। उत्तमा नायिका वह है जो अपने पति के दोष देख कर भी क्रुद्ध नहीं होती और पति के अहित करने पर भी सदा उसका हित करती है। क्या जी० डार्ले ने ऐसी ही नायिका की इच्छा नहीं की है—

Give me, instead of Beauty's burst,
A tender heart, a loyal mind.
Which with temptation I could trust,
Yet never linked with error find,—
One in whose gentle bosom I
Could pour my secret heart of woes,
Like the care-burthen'd honey-fly
That hides his murmurs in the rose.
My earthly comforter! whose love,
So indefeasible might be
That, when my spirit won above,
Hers could not stay for sympathy.

भावार्थ—मैं सुन्दरता की मूर्ति नहीं चाहता हूँ। मैं तो चाहता हूँ कि ऐसा कोमल हृदय हो, ऐसी दृढ़ अविचल बुद्धि हो। लोभ में भी मैं जिस पर विश्वास कर सकूँ, परन्तु दोष-निरूपण से जिसका सम्बन्ध न रहे, जिससे मैं अपने गुप्त दुःखों की बातें कह सकूँ और जिससे मेरी समस्त चिन्ता और सन्ताप दूर हो जाय।

ऐसी ही नायिका यह कह सकती है—

Were I as high as heaven above the plain,
And you, my love, as humble and as low.
As are the deepest bottoms of the main,
Whereso'er you were, with you my love should go.

मध्यमा नायिका वह है जो प्रियतम के दोष देख कर भी मान-सम्मान करे। उदाहरण में यह कहा गया है कि नायिका नन्दनन्दन को सामने देख कर आने से मना करती है और तत्पश्चात् वह मन्द मन्द मुसकराती है। कालेरिज की नायिका का ढङ्ग देखिए—

But now her looks are coy and cold,
To mine they never reply,
And yet I cease not to behold,
The love light in her eye.

भावार्थ—वह देखती तो मेरी ओर इस ढंग से है जिससे यह प्रकट हो कि उसका प्रेम नहीं है, परन्तु उसके नेत्रों में प्रेम की ज्योति है।

अधमा वह है जो प्रियतम के प्रेम करने पर भी रुष्ट ही रहती है। जान पड़ता है कि सकलिंग के प्रेमी की नायिका ऐसी ही थी, तभी तो कवि ने कहा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Why so pale and wan, fond lover ?
Prithee, why so pale ?
Will, when looking well can't move her,
Looking ill prevail ?

तुम इतने पीले क्यों पड़ गये ? जब तुम अच्छे रहे तब तो उस पर तुम्हारा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह रूठी ही रही। अब इतना दुःख करने से लाभ क्या ? अगर वह ख़ुद प्रेम नहीं कर सकती तो किसी तरह मनाने से वह राज़ी नहीं होगी। छोड़ो उसको।

If of herself she will not love,
Nothing can make her :
The devil take her !

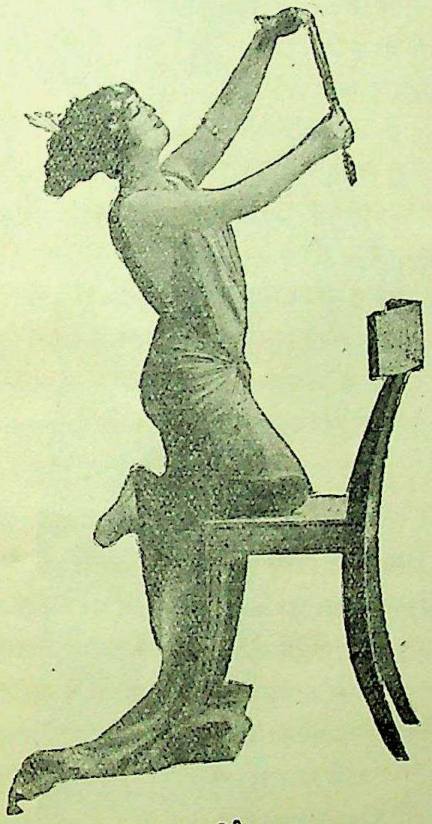

रूप-गर्विता।

इन नायिकाओं में प्रत्येक के दस भेद हैं—प्रोषितपतिका, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता, वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यतपतिका और आगतपतिका।

अब इनमें से कुछ के उदाहरण लीजिए। प्रोषितपतिका—प्रीतम के विदेश-गमन से विरह-सन्तापित स्त्री को प्रोषितपतिका कहते हैं—

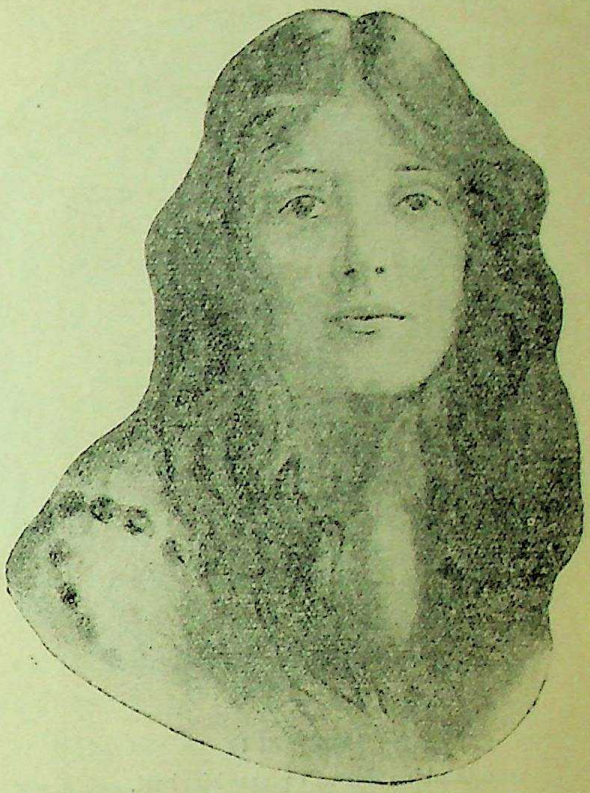

मध्या।

Come ye, yet once again, and set your foot by mine,
Whose woful plight and sorrows great no tongue may well define,
My love and lord, alas ! in whom consists my wealth,
Hath fortune sent to pass the seas, in hazard of his health.
Whom I was wont t' embrace with well-contented mind
Is now amid the foaming floods at pleasure of the wind.

भावार्थ—मेरी सखियो, मेरे स्वामी जिनके स्पर्श करने से मुझे सन्तोष होता था समुद्र की भीषण लहरों के बीच में पड़े हुए होंगे।

वासकसज्जा—

O some where, meek unconcious dove,
That sittest ranging golden hair ;
And glad to find thyself so fair
Poor child, that waitest for thy love.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

For now her father's chimney glows
In expectation of a guest ;

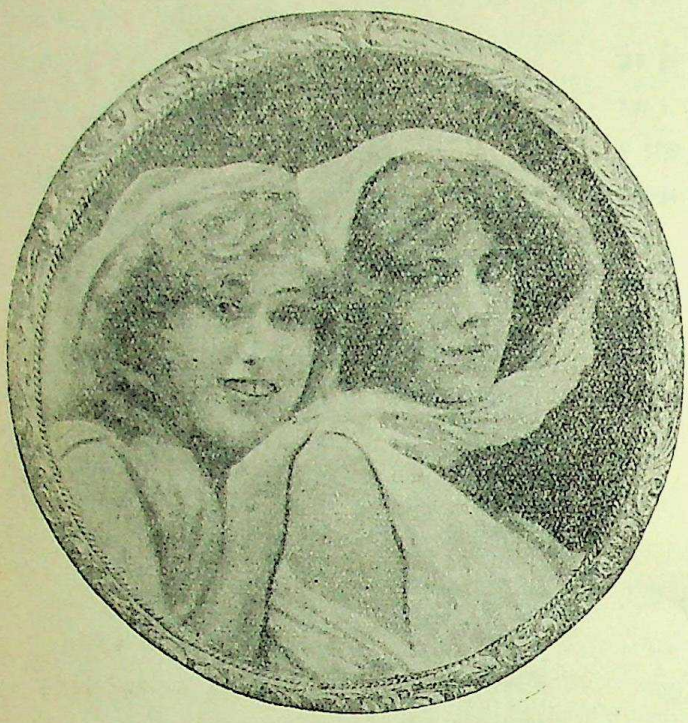

प्रेम-गर्विता।

And thinking this will please him best,
She takes a riband or a rose.

अपने बालों को सँवारती हुई वह अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में बैठी है। यह सोच कर कि इससे वह अधिक ख़ुश होगा वह कभी रिबन लगाती है और कभी गुलाब।

खण्डिता—

Wi' lightsome heart I pu'd a rose,
Frae aff its thorny tree ;
And my fause luver staw the rose,
But left the thorn wi' me

मैंने कटीले झाड़ से जो गुलाब तोड़ा था उसे वह वञ्चक प्रियतम ले गया और काँटा ही मेरे साथ छोड़ गया।

कलहान्तरिता—

I loved him not ; and yet, now he is gone,
I feel I am alone.
I checked him while he spoke ; yet could he speak,
Alas ! I would not check.

मैं उसे चाहती नहीं थी, पर अब वह चला गया है तो मुझे बिलकुल सूना लगता है। जब वह बोलता था तब तो उसे मैंने रोक दिया, परन्तु अब यदि वह आजाय और बोले तो मैं उसे नहीं रोकूँगी।

अधिक उदाहरण देने की ज़रूरत नहीं। पाश्चात्य साहित्य में सभी नायिकाओं के उदाहरण खोजने से मिल सकते हैं। कहना नहीं होगा कि ये पद्य नायिका-भेद के उदाहरण देने के लिए नहीं बनाये गये हैं। परन्तु नायिका-भेद के मूल में जो सत्य है वह सार्वभौमिक

मुग्धा।

और सार्वकालीन है। अतएव अज्ञातरूप से सभी में इन भावों की अभिव्यक्ति होती ही है।

रमेशदत्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५—स्वभाव।

जिसका जैसा है स्वभाव वह दुर्निवार्य है,
जग में उसके लिए नहीं कुछ भी अकार्य है।
दाहकता से युक्त सदा दिन-नाथ रहेगा,
निशानाथ पीयूष-रश्मि के साथ रहेगा॥
भूपति-पालित भी क्या शुनी, चर्म चाटती है नहीं?।
किसके मन में वह प्रकृति की, शक्ति व्यापती है नहीं॥१॥
खाता मृग क्या मांस, मृगाधिप पल्लव खाता?
क्या पर का उपकार कभी है खल को भाता?
क्या सज्जन का हृदय कभी निर्दय होता है?
कभी अशुचिता को न काक का मन खोता है॥
क्या कभी करी परग्रास के, आश्रित रहते हैं कभी?
निज निज स्वभाव की शक्ति से, शासित रहते हैं सभी॥२॥
क्यों मीठा हो निम्ब, ईख क्यों तिक्त कभी हो?
जलज-जाल क्यों कभी सुरभि से रिक्त कभी हो?
बक क्यों होते चपल, श्येन क्यों कायर होता?
अरसिक क्यों हो भ्रमर, रसिक क्यों वानर होता?
क्यों मधुर स्वादु हो जलधि-जल, गंगा-जल क्यों क्षार हो?
क्यों एकी गतिमति का कभी यह अशेष संसार हो?॥३॥
कोई सरिता कभी न पश्चिम-मुख बहती है,
किसी नदी की धार कभी क्या स्थिर रहती है?
शीतलता क्या कभी अनल में देखी जाती?
दाहकता क्या कभी खेह में पल भर आती?
क्या कोमल होता उपल है, कुसुम कठिन होता नहीं।
है जिसका पड़ा स्वभाव जो, दुस्त्यज है उसको वही॥४॥
चंचलता क्या कभी अचल में भी होती है?
निश्चल होकर वायु कभी क्या सुख सोती है?
कभी हिमोपल गले बिना क्या रह सकता है?
तेजस्वी क्या कभी पराभव सह सकता है?
क्या कभी आत्मबल दास के, हृदय हुआ उत्पन्न है?
क्या कभी चतुष्पद भी कहीं, हुआ वेद-व्युत्पन्न है?॥५॥
नन्दन-वन में कभी न शूकर सुख पाता है,
वारिज वन में कभी हंस क्या दुख पाता है?
मानससर में कभी न मेढ़क रति पावेगा,
खल-समाज में कभी नहीं सज्जन जावेगा॥
क्यों कभी गृध्र गीदड़ बिना मरघट के सुख से रहें?
क्यों साधु पराये दोष को कभी आत्म-मुख से कहें?॥६॥
लम्पट नर के साथ सती क्या रति पाती है?
दीप-शिखा क्या कभी अधोमुख को जाती है?
निर्गन्धा क्या मही कहीं पर मिल सकती है?
कुसुमावलि क्या कभी बबूँर में खिल सकती है?
कंटक-विहीन क्या तरु कभी हुए बबूलों के कहीं?
है प्रकृति जिसे जो लग चुकी उसे छोड़ती वह नहीं॥७॥
अग्नि-कीट क्या कभी वारि में वास करेगा?
कभी भूमि पर नहीं मत्स्य उल्लास करेगा?
इन्द्र-भवन में भी न केसरी हैं मुद पाते,
गन्दे जल के निकट भ्रमर हैं कभी न जाते॥
क्या तारक-गण भी भूमि पर कहीं ऊगता है कभी?
निज निज स्वभाव के वश पड़े हुए चराचर हैं सभी॥८॥
कभी नहीं कलहंस-चरण होता है काला,
कभी स्वप्न में भी न उगलता हिमगिरि ज्वाला।
नहीं निकलती कभी अश्व के मुख से गाली,
आ सकती है कभी नील में भी क्या लाली?
अति दुर्निवार है प्रकृति की लीला कुछ संशय नहीं।
क्या सत्यसन्ध के हृदय में हो सकता है भय कहीं?॥९॥
कभी काक को नहीं दाख-वन सुखकर होता,
अशुचि भक्ष्य को नहीं कभी खाता है तोता।
दिन में विकसित क्यों न कुमुदिनी-वन होता है?
निशि में मुकुलित हुआ कंज-कुल क्यों रोता है?
क्यों ज्ञानी जन के हृदय में जन्म-भूमि से प्रीति है?
है बुरा भला जग में न कुछ निज स्वाभाविक रीति है॥१०
सर ऊपर का भेद न घन मन में क्यों रखता?
क्यों उलूक अतिदिव्य दिवस के दृश्य न लखता?
वारिज-दल पर वारि कभी क्या रुक सकता है?
क्या मानी का शीस क्षुद्र को झुक सकता है?
किस हेतु चकोरी चन्द्र को अचल नेत्र से देखती?
क्यों चक्रवाकिका चन्द्र को काल-चक्र-सम लेखती॥११॥
घन-माला को देख नाचता क्यों मयूर है?
जलते बलते अनल बीच क्यों शलभ क्रूर है?।
प्रतिपालक को सर्प काट खाते क्यों कहिए?
बिना दण्ड के दुष्ट न वश आते क्यों कहिए?
क्यों स्वच्छ कलेवर में निरी भरी कालिमा है पड़ी?
है संसृति की स्वाभाविकी अति अद्भुत लीला बड़ी॥१२॥

रामचरित उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—सरस्वती का २४ वाँ वर्ष।

सरस्वती का २४ वाँ वर्ष पूरा हुआ। कहना नहीं होगा कि सरस्वती के प्रेमियों की कृपा से ही हम सरस्वती को इस परिवर्धित रूप में इस वर्ष निकाल सके हैं। आगामी वर्ष से सरस्वती में हम जिन विषयों का समावेश करना चाहते हैं उनका आभास पाठकों को इस संख्या में मिल जायगा। पृष्ठ-संख्या में भी वृद्धि की गई है। अब से प्रति मास सरस्वती में ११२ पृष्ठ रहेंगे। चित्रों की संख्या में भी वृद्धि हुई है।

हम अपनी अयोग्यता को अच्छी तरह जानते हैं। हिन्दी के पत्र-सम्पादकों में जो योग्यता है उसका शतांश भी हममें नहीं है। इस वर्ष हमसे जो अनेक भूलें हुई हैं उन्हें हम स्वीकार करते हैं। भूलें होने का एक-मात्र कारण है हमारी अल्पज्ञता और अनुभव-हीनता। इतना हम अवश्य कहेंगे कि हमने सरस्वती की उन्नति के लिए अपनी ओर से कुछ भी नहीं उठा रक्खा। जो बात हमारी शक्ति के बाहर थी वही हम नहीं कर सके हैं।

इस वर्ष हिन्दी के कितने ही विद्वानों ने हिन्दी के भिन्न भिन्न पत्रों में सरस्वती के सम्बन्ध में अपनी सम्मतियां प्रकट की हैं। हम उनके कृतज्ञ हैं। हमें विश्वास है कि हमें अपने कर्तव्य-पालन में उनकी इन सम्मतियों से बड़ी सहायता मिलेगी। अनुकूल हो या प्रतिकूल, सम्मतियाँ सभी की आदरणीय हैं। इसी से एक कवि ने यह इच्छा प्रकट की थी कि दूसरे लोग हमें जिस दृष्टि से देखते हैं वही दृष्टि हमें मिले।

२—साहित्य-निर्माण और लोक-प्रियता।

साहित्य के क्षेत्र में लोक-प्रियता भी सफलता का एक चिह्न है। सामयिक पत्रों की सफलता का तो वही एक-मात्र लक्षण है। यही कारण है कि कोई भी पत्र लोक-रुचि की उपेक्षा नहीं कर सकता। विचारणीय यह है कि साहित्य के निर्माण में लोक-रुचि का कितना प्रभाव पड़ता है।

कहा जाता है कि जो बात एक के लिए रुचिकर है वही दूसरे के लिए अरुचिकर हो सकती है। मनुष्यों में रुचि-वैचित्र्य स्वाभाविक है। तो भी इसमें सन्देह नहीं कि कुछ बातों में सभी मनुष्यों की एक सी रुचि होती है। जिन बातों का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से है उनमें रुचि की समानता रहती है। परन्तु जिन बातों का सम्बन्ध देश, काल और अवस्था से है उनमें रुचि-वैचित्र्य देखा जाता है। जीवन-रक्षा मनुष्य-मात्र के लिए है। इसलिए भोजन पर सबकी एक सी रुचि होगी। परन्तु खाद्य पदार्थों का सम्बन्ध देश, काल और अवस्था से है। इसी लिए खाद्य-पदार्थों पर सभी लोगों की एक सी रुचि नहीं होगी। कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो किसी एक विशेष देश के निवासियों को रुचिकर हैं। उनमें भी कुछ ऐसे हैं जो किसी एक विशेष समय में अच्छे लगते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो प्रत्येक मनुष्य की मानसिक और शारीरिक अवस्था के कारण उसे रुचिकर अथवा अरुचिकर होते हैं। यही बात साहित्य के विषय में भी कही जा सकती है। साहित्य में जिन बातों का सम्बन्ध देश, काल और अवस्था से नहीं है, जो सार्वकालीन और सार्वभौमिक हैं, उनमें रुचि-वैचित्र्य की सम्भावना नहीं है। परन्तु साहित्य के सार्वकालीन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सार्वभौमिक विषयों को समझने के लिए एक विशेष उन्नत मानसिक अवस्था की आवश्यकता है। सभी लोगों की मानसिक अवस्था इतनी उन्नत नहीं होती है कि वे साहित्य के सार्वकालीन विषयों को समझ सकें। जो लोग इस अवस्था पर पहुँच गये हैं उनमें रुचि-वैचित्र्य भी नहीं देखा जाता। अधिकांश लोगों की रुचि देश, काल और अवस्था पर निर्भर है। राष्ट्रीय साहित्य किसी एक राष्ट्र के व्यक्तियों को रुचिकर होता है। साम्प्रदायिक साहित्य एक विशेष सम्प्रदाय के अनुयायियों को अच्छा मालूम होता है। अपने अपने ज्ञान के अनुसार लोग अपनी अपनी रुचि के ग्रन्थ ढूँढ़ लेते हैं। लोक-रुचि व्यक्ति-गत रुचि पर निर्भर नहीं है। व्यक्तिगत मानसिक अवस्था को छोड़ कर देश की ही एक मानसिक स्थिति होती है। सर्व-साधारण उसी मानसिक स्थिति पर पहुँचे रहते हैं। उनकी यह मानसिक स्थिति परिवर्तित होती रहती है। लोक-रुचि इसी पर निर्भर है। इसी के अनुसार लोक-रुचि में परिवर्तन होता रहता है। इस लोक-रुचि से देश की तत्कालीन सभ्यता सूचित होती है। उससे हम जान सकते हैं कि देश सभ्यता के किस स्तर पर है। जो साहित्य लोक-प्रिय होगा वह उसी स्तर के अनुकूल होगा।

विद्वानों ने मनुष्य की तीन अवस्थायें निर्धारित की हैं। पहली अवस्था है पाशविक। इस अवस्था में मनुष्य की चित्त-वृत्ति वैसी ही होती है जैसी पशुओं की। क्षुधा, निद्रा, भय, क्रोध, आकृष्टि, आदि भाव मनुष्य और पशु में समान हैं। द्वितीय अवस्था मध्यावस्था है। इसमें मनुष्य की बुद्धि-वृत्ति परिपुष्ट होती है। अपनी इसी वृत्ति के कारण मनुष्य पशुओं से पृथक् किया जाता है। तृतीय अवस्था वह है जब मनुष्य अपनी आध्यात्मिक और नैतिक वृत्तियों के कारण अपने पाशविक भावों से बहुत ऊँचा चला जाता है। इसी अवस्था में मनुष्य अपनी भी एक विशेष सृष्टि कर लेता है। ये तीन अवस्थायें मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में जिस प्रकार लक्षित होती हैं उसी प्रकार उसके सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में भी व्यक्त होती है। बाल्यावस्था में मनुष्य की पाशविक वृत्तियाँ प्रबल होती हैं। युवावस्था में उसकी बुद्धि-वृत्ति की पुष्टि होती है। वृद्धावस्था में उसके आध्यात्मिक जीवन का विकास होता है। यही बात समाज और राष्ट्र के जीवन में देखी जाती है। जिस प्रकार किसी तेजस्वी और सुखान्वेषी युवक में वृद्धोचित विज्ञता और संयम की आशा करना अनुचित है उसी प्रकार किसी नवोत्थित और तेजोदृप्त सभ्य-जाति से प्राचीन और पुष्ट सभ्यता के नैतिक और आध्यात्मिक उत्कर्ष की आशा करना असङ्गत है। एक बात और भी है। जाति के जीवन में उत्थान-पतन होता रहता है। उन्नतिशील जाति के हृदय में तीव्र आकांक्षा रहती है और पतनोन्मुख जाति में उदासीनता और वैराग्य के भाव प्रबल रहते हैं। मध्यावस्था में उसकी सुख-लिप्सा खूब बढ़ी हुई रहती है। तभी जाति में विलासिता की वृद्धि होती है।

यह तो निश्चित है कि प्रथम अवस्था में मनुष्य अपने पाशविक जीवन में ही व्यस्त रहता है। अतएव उसकी रुचि भी उसी जीवन के अनुकूल होती है। बाह्य जगत् उसके लिए अधिक चित्ताकर्षक होता है। जिन कलाओं से उसके जीवन में सुख, स्वच्छन्दता, सुविधा और विलास की वृद्धि होती है उन्हीं के आविष्कार में वह रत होता है। इन्द्रिय की तृप्ति और जीवन के शारीरिक अभावों को दूर करने की इच्छा उसकी सभी कृतियों में प्रकट होती है। साहित्य में बाह्य जगत् की प्रधानता रहेगी। कला में बाह्य सौन्दर्य की ओर दृष्टि रहेगी। सङ्गीत और कविता में हृदय की भावनायें स्पष्ट रहेंगी। मतलब यह कि मनुष्य की आत्मा जड़ के अधीन रहेगी और उसकी सभ्यता भी जड़ानुगत होगी।

द्वितीय अवस्था में आत्मा पर जड़ का प्रभुत्व नहीं रहता। इससे शारीरिक शौर्य कम हो जाता है। युक्ति का राज्य प्रतिष्ठित होता है। धर्म में तर्क का प्राधान्य होता है। मनुष्य प्राकृतिक और आध्यात्मिक घटनाओं में कार्य्य-कारण का सम्बन्ध ढूँढ़ने लगता है। साहित्य में वस्तुतन्त्रता का प्रभाव उठ जाता है और वह विशुद्ध अवस्था में प्रकट होता है। नियमों की रचनायें होती हैं। कला की अभिव्यक्ति नियमित होती है। सङ्गीत और कविता में स्वरों और अलङ्कारों की सृष्टि होती है। संक्षेप में यह सभ्यता वैज्ञानिक होती है।

तृतीय अवस्था में बाह्य जीवन की अपेक्षा आन्तरिक जीवन के प्रति मनुष्य का अधिक अनुराग होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्म-तृप्ति की अपेक्षा आत्म-संयम की ओर उसका अधिक ध्यान होता है। धर्म मानसिक हो जाता है। स्वार्थ-त्याग और दया के भाव खूब फैलते हैं। द्वितीय अवस्था में मनुष्य की युद्ध-लिप्सा क्षीण हो जाती है और तृतीय अवस्था में तो वह बिलकुल लुप्त हो जाती है। साहित्य, सङ्गीत और कला में चिन्ता-शीलता दिखाई देती है।

साहित्य पर लोकरुचि का प्रभाव यही है।

३—हिन्दी-साहित्य में सौन्दर्य-सृष्टि।

कहा जाता है कि कविता का राज्य सौन्दर्य है। सभी कवि सौन्दर्य के उपासक और रूप के प्रेमी कहे जाते हैं। हिन्दी-साहित्य में भी कितने ही ऐसे कवि हो गये हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा से एक ऐसे सौन्दर्य-जगत् की सृष्टि की है जो हिन्दी-साहित्य की ही विशेषता है। हिन्दी के कवियों ने जो सौन्दर्य-वर्णन किया है उसको हम दो भागों में विभक्त करते हैं, पहला मानवीय सौन्दर्य-वर्णन और दूसरा प्राकृतिक सौन्दर्य-वर्णन। यहाँ हम मानवीय सौन्दर्य-वर्णन की चर्चा करते हैं।

एक विद्वान् ने लिखा है कि सौन्दर्य के स्पष्टीकरण में सबसे पहले यह प्रश्न होता है कि कवियों का यह वर्णनीय विषय—सौन्दर्य—है कहाँ? वह भीतर है या बाहर, वस्तु-गत है या हृदय का भाव-मात्र है? देखने से तो यही जान पड़ता है कि वस्तु ही सुन्दर है। वह स्वयं सुन्दर है, इसी से हम उसे सुन्दर देखते हैं। गुलाब स्वयं सुन्दर है, हम उसके सौन्दर्य का उपयोग-मात्र करते हैं। चन्द्रमा की निर्मल कान्ति, उषा की मधुर लालिमा, सन्ध्या की सौम्य प्रभा, ये सभी हृदय पर अङ्कित हो जाती हैं और तभी हम उनकी छवि को ग्रहण कर सकते हैं। हम सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर सकते। हम केवल उसे हृदयङ्गम कर सकते हैं। असंख्य ताराओं से युक्त अनन्त आकाश, लज्जाशीला युवती, इनका सौन्दर्य क्या हमारे भाव पर निर्भर है? यह तो उन्हीं का धर्म है, उन्हीं का ऐश्वर्य है। वे स्वयं अपने महत्त्व से महान् हैं। हम केवल द्रष्टा हैं। सौन्दर्य वस्तुगत है। वह बाहर है।

परन्तु यदि सौन्दर्य वस्तुगत है तो सुन्दर वस्तु के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मनुष्यों की भिन्न भिन्न राय क्यों होती है? एक मनुष्य एक वस्तु को सुन्दर समझता है और दूसरा मनुष्य उसी को कुत्सित कहता है, वह किसी दूसरी ही वस्तु को सुन्दर समझता है। भारतवासियों की दृष्टि में काले बाल और काली आँखें सुन्दर हैं और योरपवासी सुनहले बाल और नीली आँखों पर मुग्ध हैं। चीनवाले छोटे छोटे टेढ़े पैर और चपटी नाक में ही सौन्दर्य की पराकाष्ठा देखते हैं। नीग्रो-सुन्दरी अपने जिस सौन्दर्य का गर्व करती है उसे देख कर दूसरे लोग डर जाते हैं। भिन्न भिन्न जाति और भिन्न भिन्न मनुष्यों की भिन्न भिन्न रुचि है। इससे तो यही प्रमाणित होता है कि सौन्दर्य का कोई वस्तु-गत सार्वभौमिक माप-दण्ड नहीं है। मनुष्यों की सौन्दर्य-वृत्ति उनकी शिक्षा और संस्कार पर निर्भर है। प्रत्येक जाति अपनी एक विशेष शिक्षा-पद्धति और एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था की सृष्टि करती है। भिन्न भिन्न व्यक्तियों की सौन्दर्य-रुचि उनकी प्रकृति और शिक्षा से निर्मित होती है।

हम बाहर जो वस्तु देखते हैं वह सौन्दर्य नहीं है। वह है गढ़न, अथवा यह कहिए कि वह सौन्दर्य का उपकरण-मात्र है। किन्तु यह उपकरण जिस किसी को सुन्दर अथवा असुन्दर प्रतीत होता है वह उसे अपने मन के भीतर से देखता है। भारतीय चित्रकार जिस रूप की सहायता से अपनी सौन्दर्यानुभूति को प्रकट करता है उसी को योरपीय चित्रकार नहीं स्वीकार करेगा। यही नहीं, किन्तु उसे वह रूप कुत्सित भी प्रतीत होगा। वह अपनी सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए किसी दूसरे ही रूप का आश्रय लेगा।

सौन्दर्य के आधार के सम्बन्ध में मत-भेद हो सकता है, किन्तु स्वयं सौन्दर्य के सम्बन्ध में किसी में मत-भेद नहीं होगा। जिस सौन्दर्य को प्रकट करने के लिए मनुष्य रूप का आश्रय लेता है वह क्या है, यह समझने के लिए हमें अपनी सौन्दर्य-भावना का विश्लेषण करना चाहिए।

जब हम किसी को सुन्दर अथवा कुत्सित कहते हैं तब हम उसे तीन प्रकार से देखते हैं। पहले तो यह कि वह नेत्रों को प्रियकर है या नहीं। दूसरा यह कि वह हमारे हृदय को आनन्ददायक है या नहीं। तीसरा यह कि बुद्धि उसे अच्छा कहती है या नहीं। नेत्रों से हमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिर्फ़ रेखा और रेखा-विन्यास का ज्ञान होता है। नेत्र के स्नायु और उस पर पड़नेवाला रेखा का आघात, इन दोनों में एक प्रकार से मेल होता है। यह मेल जितना ही स्पष्ट और घनिष्ठ होगा उतना ही वह रेखा-विन्यास हमें अच्छा लगेगा। चक्षु को अच्छी लगेगी वस्तु की स्थिर रेखा और हृदय को आकृष्ट करेगी उसकी गति। बुद्धि उसके गुण को ग्रहण करेगी। वर्षा में हम आकाश में मेघ-पटल को देख कर मुग्ध होते हैं। हमारी इस मुग्धावस्था के तीन कारण हैं। पहला है उसका बाह्य आकार, रेखा-विन्यास। इसी को कालिदास के मेघदूत में यक्ष ने सबसे पहले देखा था—वप्र-क्रीड़ा-परिणत-गज-प्रेक्षणीयं ददर्श। इसके बाद हम देखते हैं मेघ की निविड़ लालिमा। उसकी चञ्चल गति में हम अपने हृदय की आशा-निराशा और गम्भीर वेदना की प्रतिच्छाया देखते हैं। इसके बाद हम सोचते हैं कि वह पृथ्वी के हृदय को शीतल करेगा, कदम्ब को स्फुटकोरक करेगा, चातक की पिपासा को दूर करेगा, मयूरी को नृत्य-विह्वल बना देगा, विरहिणी के चित्त को हर्षित करेगा। तब हम इसके गुण पर मुग्ध होते हैं। अब देखिए, हिन्दी के कवियों ने इस सौन्दर्य-बोध को किस प्रकार प्रकट किया है—पहले शरीरज सौन्दर्य लीजिए। यही चक्षुओं से ग्राह्य है। श्याम के इसी सौन्दर्य पर मुग्ध होकर एक गोपी कह रही है—

वारि डारौं शरद इन्दु मुख छवि गुविन्द पर
दिनेश हूँ को वारि डारौं नखन छटान पर।
कोटि काम वारि डारौं अंग अंग श्याम लखि,
वारि डारौं अलि अलि कुंचित लटान पर।
नैनन की कोरन पै कंज हूँ को वारि डारौं
वारि डारौं हंस हूँ को चाल लटकान पर।
देख सखी आज ब्रजराज छबि कहा कहौं
काम धनु वारि डारौं भृकुटी मटान पर।

वह रूप कौन सा था—

कुंडल विलोल कुल कानन कनक राजै
केसरि को तिलक भाल भृकुटी विशाल की।
कुन्दन किरीट तामैं मोर के पखान खोंसे
झूमत चलत मन्द गति सों मराल की।
चितवनि तिरछी तीर तीक्षण अनङ्ग केसे
विहँसत में आली जात लाली है गुलाल की।
कैसे हूँ विसारे नाहिं विसरत प्रताप नेक
मेरे मन बसी टेढ़ी मूरति गोपाल की।

परन्तु जिस रूप को देख कर निम्नलिखित पद्य की नायिका विह्वल हो गई थी वह उसके हृद्गत भाव का प्रेरक था।

पीत पट कसी बसी श्याम की सुरति लसी
तोलौं कुल फाँसन सिगास को सहति है।
आनै नहीं नेक एक प्रीति की परी है टेक
करि कै अनेक कला लला को चहति है।
कबधौं मिलैगो वह साँवरो कुँवर मोहि
लाख लाख यहै अभिलाष को लहति है।
खिरकी के माहिं खरी हिरकी हरी क्यों हेरै
घरी घरी फिरकी लौं थिरकी रहति है।

यशोदा ने कृष्ण के बाल्य-सुलभ और वीरोचित गुणों पर मुग्ध होकर कहा था—

कल न परति कहूँ ऊधो इन गैयन को
कब धौं ललन धौरी धूमरी पुकारि हैं।
पूरि है श्रवण कब सुधा निज बैननि सों
कब वह छबि हम नैननि निहारि हैं।
बूडिबो चहत ब्रज राधा दगधार ते
कब धौं धराधर करज पर धारि हैं।
मारि हैं अघासुर विदारि हैं बका को कब
वेणु को बजाय कुञ्जवन में विहारि हैं।

इन तीनों भावों को एक कवि ने एक ही पद्य में बड़े अच्छे ढँग से कह दिया है। उसमें नेत्र, हृदय और बुद्धि तीनों से ग्राह्य सौन्दर्य का समावेश हुआ है। सुनिए—

उमड़ि उमड़ि दग रोवत अधीर भये
मुख-द्युति पीरी परी विरह महाभरी।
हरीचन्द प्रेममाती मनहुँ गुलाबी छकी
काम झर झाँवरी सी द्युति तनु की करी।
प्रेम कारीगर के अनेक रङ्ग देखो यह
योगिया सजाये बाल बिरिछ तरे खरो।
आँखियां में साँवरो, हिये में बसै लाल वह
बार बार मुख ते पुकारत हरी हरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम नेत्रों से सौन्दर्य को देखते हैं, हृदय से उसका अनुभव करते हैं और बुद्धि से उसको समझते हैं। नेत्रों से ग्राह्य सौन्दर्य से इन्द्रिय की तृप्ति होती है। हृद्गम्य सौन्दर्य से हृदय तुष्ट होता है और बुद्धि के द्वारा यथार्थ ज्ञान हो जाने पर सौन्दर्य का निर्मलतम रूप प्रकट हो जाता है। पहले सौन्दर्य से विकार होता है, दूसरे से प्रेम और तीसरे से भक्ति और तन्मयता होती है। अब इनके उदाहरण लीजिए।

शारीरिक सौन्दर्य पर मुग्ध कोई गोपी कह रही है—

गरे गुञ्जमाल धरे खरे ह्वै तमाल हरे
लाल कब फूलन की माल पहिराय हैं।
ललित लता की सेज पल्लव मई सुनई
आपने करनि कब कुञ्ज में बिछाय हैं।

जिसने रूप को हृदय में रक्खा था उसकी उक्ति सुनिए—

पिय प्यारे बिना यह माधुरी
मूरति औरन को अब पेखिये का।
सुख छाँड़ि के संगम को तुम्हरे
इन लच्छन को अब लेखिये का।
हरिचन्द जू हीरन को व्यवहार
कै कांचन को ले परेखिये का।
इन आँखिन में तुव रूप बस्यो
उन आँखिन सों अब देखिये का।

परन्तु जिसने ज्ञान के द्वारा सौन्दर्य का निर्मलतम रूप देख लिया उसके लिए बिहारी ने कहा है—

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै श्याम रँग त्यों त्यों उज्जल होय॥

४—साहित्य और सदाचार।

सदाचार का सम्बन्ध समाज से है। सत् और असत् की जो धारणा हम लोगों में है उसको हमने समाज से ही प्राप्त किया है। यदि मनुष्य समाज से बिलकुल पृथक् रहे, यदि समाज से उसका कोई भी सम्बन्ध न हो, यदि वह एकाकी ही अपना जीवन व्यतीत करे तो उसके लिए सत् क्या होगा? मनुष्य में जिन नैतिक वृत्तियों का विकास होता है वे समाज ही की सम्पत्ति हैं। समाज के परिवर्तन के साथ उन नैतिक वृत्तियों में भी परिवर्तन होता है। समाज में परिवर्तन होता ही रहता है और उसके अनुसार मनुष्य की नैतिक वृत्तियाँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। समाज चिरन्तन है, नैतिक वृत्तियाँ चिरन्तन हैं और परिवर्तन भी चिरन्तन है। न समाज का अन्त होगा और न सदाचार का, परन्तु यह बात भी निश्चित है कि सदाचार का कोई भी आदर्श स्थिर नहीं रहेगा। आदर्श के नाम से सदाचार का ऐसा कोई भी साँचा नहीं बनाया जा सकता जो सदैव मनुष्यों को एक ही रूप में ढाल सके। कहा जाता है कि धर्म का नाश कभी नहीं होता, सत्य की सदा विजय होती है। जो सत्य है वह देश और काल के अतीत है। अच्छा अच्छा ही रहेगा और बुरा कभी अच्छा नहीं हो सकता। इस कथन का तात्पर्य यही है कि मनुष्य में धर्म का ज्ञान सदैव बना रहता है। असभ्य जातियाँ भी धर्म के ज्ञान से रहित नहीं होतीं। अच्छे और बुरे की भावना सभी में रहती है। परन्तु जब यह भावना कार्य-रूप में प्रकट होती है तब उसके विषय में यही बात नहीं कही जा सकती। जिस हिन्दू के लिए विधवा-विवाह अधार्मिक है वही यदि ईसाई हो जाय तो उसके लिए विधवा-विवाह अधार्मिक न रहेगा। यह सच है कि कोई धर्म को अधर्म नहीं कहेगा, परन्तु अवस्था बदलने पर वह किसी धार्मिक कृत्य को अधार्मिक कह सकता है। साहित्य में जिस सदाचार का चित्र रहता है वह किसी विशेष काल के विशेष समाज का प्रतिबिम्ब होता है। यदि किसी कवि की कृति में सदाचार का उत्कर्ष अङ्कित हुआ है तो इसका मतलब यही है कि वह उत्कर्ष मनुष्य के आचरण में उसी समय में और उसी समाज में व्यक्त हो सकता है जिसमें वह कवि स्वयं हुआ है। दूसरे समय और दूसरे समाज में वह उत्कर्ष जीवन में प्रकट नहीं हो सकता। आचरण के उत्कर्ष को सभी लोग, चाहे वे किसी युग और किसी देश के हों, मानेंगे। परन्तु स्वयं उत्कृष्ट आचरण सदैव उत्कृष्ट आचरण नहीं माना जा सकता।

हिन्दी के विद्वान् समालोचक स्वदेशी और विदेशी कवियों की तुलनात्मक समालोचना करते समय इस बात को भूल जाते हैं। बहुधा साम्प्रदायिक धर्म को ही वे सदाचार की एक-मात्र कसौटी मान बैठते हैं। इसी कारण चरित्र का माहात्म्य देखना उनके लिए असम्भव हो जाता है। कितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही विदेशी समालोचक इसी सङ्कुचित दृष्टि के कारण भारतीय चरित्र की गरिमा नहीं समझ सकते। हमें स्मरण है कि हिन्दी के एक विद्वान् ने किसी अँगरेज़ी समालोचक के विषय में यह लिखा था कि जिसके साहित्य में अश्लीलता की हद नहीं वह यदि व्रजभाषा के साहित्य को अश्लील कहे तो आश्चर्य की बात है। परन्तु उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जब कोई किसी एक समाज के माप से दूसरे समाज को नापने की चेष्टा करेगा तब उसका परिणाम यही होगा।

अच्छा, साहित्य में अश्लीलता है क्या? जो सदाचार का विरोधी है वह अश्लील नहीं कहा जा सकता। किन्तु जो सत् का संहारक है वही अश्लील है। अश्लीलता से मनुष्य असत् की ओर प्रेरित होता है। वह असत् को सत् नहीं समझता, किन्तु असत् को असत् समझ कर ही उसी की प्राप्ति की चेष्टा करता है। जिस साहित्य से ऐसी दुर्भावनायें उत्पन्न हों जिनसे मनुष्य असत् की ओर खिँच जाय उसी को हम अश्लील साहित्य कहेंगे। जब कोई वैज्ञानिक मनुष्य के अङ्ग अङ्ग की परीक्षा कर शरीर-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करता है तब क्या उसके हृदय में कोई दुर्भावना उत्तेजित होती है? जो विद्यार्थी शरीर-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसकी इस क्रिया को देखते हैं उनके भी हृदय में क्या उस समय कोई दुर्भावना उत्पन्न होती है? इसी प्रकार जब कोई चित्रकार अपनी अन्तर्गत सौन्दर्य-भावना को एक रूप देता है तब क्या वह किसी दुर्भावना के वशीभूत होता है। जब कोई कवि मनुष्य के अन्तस्तल की परीक्षा कर उसके अन्धकारमय जीवन पर प्रकाश डालता है तब क्या वह मनुष्यों को असदाचार की शिक्षा देता है? इसके विपरीत मनुष्य की पाशविक वासनाओं की तृप्ति के लिए जब कोई काम-शास्त्र की रचना करता है तब उसकी रचना अश्लील कही जा सकती है। जब कोई चित्रकार मनुष्य के चित्त को विकृत करने के लिए कोई चित्र अङ्कित करता है तब उसके चित्र से अवश्य विकार उत्पन्न होता है। जब कोई कवि शृङ्गार-रस की अभिव्यक्ति के लिए कामुकों की क्रीड़ा का वर्णन करता है तब उसकी कृति अवश्य अश्लील हो जाती है। जिस साहित्य अथवा कला का उद्देश, सत्य की परीक्षा या ज्ञान-वृद्धि है वही श्रेयस्कर है।

५—ज्ञान का सूत्र और राष्ट्रों की एकता।

भिन्न भिन्न मनुष्यों और राष्ट्रों को एकता के सूत्र में ज्ञान ही गूँथता है। ज्ञान ही सार्वभौमिक है। उसके लिए देश और जाति का व्यवधान नहीं है। इसी के सम्बन्ध में इँग्लेंड के एक विद्वान्, अर्ल ग्रे, का कथन सुनिए जिसे उन्होंने एक साहित्य-सभा में सुनाया था।

जब हम विभिन्न राष्ट्रों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पर विचार करने लगते हैं, तब सहसा हमारे सामने उस सम्बन्ध के दो मुख्य किन्तु परस्पर विपरीत पहलू आ जाते हैं। उनमें से एक को हम सहृदयता का नाता कह सकते हैं, जो मनुष्य-जाति के सामान्यरूप से, एक ही आदि और एक ही अन्त होने के कारण, स्वतः हमारे हृदयों में उत्पन्न होने लगता है। सब राष्ट्रों के मनुष्य इस बात में बिलकुल एक समान हैं कि उनको चुपचाप रोग, आपत्ति, मृत्यु, नैसर्गिक विप्लव या दैवाधीन घटनाओं का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए अभी जापान में जो महाभयङ्कर तूफान आया था, उसके कारण संसार भर में चाहे कोई जापान का शत्रु हो चाहे मित्र, जापान के प्रति एक सहानुभूति की लहर बह उठी थी। इस प्रकार की घटनाओं से क्षण भर में यह बात हृदय में पैठ जाती है कि मनुष्य चाहे जिस जाति का हो, चाहे जिस राष्ट्र का हो, किन्तु मनुष्य-मात्र का उद्गमस्थान एक ही है, मनुष्य-मात्र एक ही मार्ग के पथिक हैं, मनुष्य-मात्र परस्पर भाई भाई हैं। विभिन्न राष्ट्रों के मनुष्यों के बीच में यही एक सहृदयता का नाता है, यही एक प्रेम-बन्धन है।

किन्तु इस सम्बन्ध का एक दूसरा भी पहलू है। आपस के भेद-भाव का अनुभव विभिन्न राष्ट्रों के सदस्यों में बिलकुल स्वाभाविक है। यद्यपि मनुष्य-जाति का पारस्परिक भेद-भाव का विचार उस अन्तरङ्ग सहृदयता के नाते से कहीं हलका है, तो भी शायद हलका होने के कारण यह प्रत्यक्ष और अधिक चुभनेवाला है। और जब हम इतिहास के पृष्ठों में यह देखते हैं कि सर्वभिन्न राष्ट्रों के मनुष्यों ने इसी ऊपरी भेद-भाव के विचार से प्रेरित होकर और उस अन्तरङ्ग प्रेम-बन्धन की अवहेलना कर क्या क्या अनर्थ किये हैं, तब हमारी आँखों से आँसू निकले बिना नहीं रह सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा अनुमान है कि मनुष्य-जाति के पारस्परिक सम्बन्ध को अधिक उच्च और उच्च बनाने में आप लोगों की साहित्य-सभा बहुत कुछ काम कर सकती है। आप लोग संसार को इस बात का थोड़ा बहुत ध्यान दिला सकते हैं कि सम्प्रति जो भेद-भाव मानव-जाति को भिन्न भिन्न वर्गों में विभक्त किये हुए हैं, वे वास्तव में सर्वथा थोथे और कृत्रिम हैं। और साथ ही उन बन्धनों को जिनके द्वारा मानव-जाति एकता के सूत्र में बँध सकती है, आप लोग सुदृढ़ और चिरस्थायी बनाने में भी बहुत कुछ सहायता दे सकते हैं। मेरा विश्वास है कि जिस सीमा तक विभिन्न राष्ट्रों के लोग मनुष्य-मात्र के इस स्वाभाविक और वास्तविक सम्बन्ध को समझ सकेंगे, उसी सीमा तक हमारी सभ्यता सार्थक होगी। अतएव राष्ट्रों के प्रत्येक नवयुवक को, जिस पर राष्ट्र का उत्थान और पतन निर्भर है, यह सिद्धान्त भली भाँति हृदयङ्गम कर लेना चाहिए। आप लोग यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर भेद-भाव से शून्य होकर प्रेम और एकता की भावनाओं के आधार पर विचार करना चाहते हैं। मनुष्य चाहे जिस राष्ट्र का हो, जिसको ज्ञान की तृष्णा है, वह आपकी सभा में सम्मिलित हो सकता है। वास्तव में ज्ञान किसी राष्ट्र-विशेष की सम्पत्ति नहीं है। ज्ञान संसारव्यापी है, संसार भर के मनुष्यों का समान रूप से इस पर मानसिक आधिपत्य प्राप्त है, यह किसी प्रकार राष्ट्रीयता की सङ्कुचित दीवालों में बद्ध नहीं रह सकता। जो मनुष्य ज्ञान के आधार पर अपने समाज की स्थापना करते हैं, वही वास्तव में मनुष्य-जाति के द्वेष-पूर्ण और विरोधी भावों के स्थान में उनमें सच्चे प्रेम का संचार कर सकते हैं।

किन्तु ज्ञान का सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। मानव-जाति ने नैसर्गिक शक्तियों पर आज जितनी विजय प्राप्त कर ली है, उतनी उसके समग्र पिछले इतिहास में कहीं देखने को नहीं मिलती है। ज्ञान की वृद्धि होने से शक्ति का बढ़ना बिलकुल स्वाभाविक है, किन्तु फिर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ज्ञान और शक्ति की वृद्धि से संसार का हितसाधन हुआ है या अहित। लोगों ने ज्ञान और शक्ति का संचय करके उसका सदुपयोग किया है या दुरुपयोग। विज्ञान के द्वारा जो असीम शक्तियाँ प्राप्त हुई हैं, वह मनुष्य की भलाई में लगाई गई हैं या बुराई में।

हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि उदार विचार वालों के सम्मिलन से ही संसार का कल्याण होगा, मनुष्यों में आनन्द का साम्राज्य प्रतिष्ठित होगा। हमारे सामने इस समय जो जटिल समस्या उपस्थित है। उसे हमारी बुद्धि और ज्ञान ही हल कर सकेगा, एक ओर वह राष्ट्रीयता को लोप होने से बचायगा, और दूसरी ओर संसार से अशान्ति के साम्राज्य को भी दूर हटायेगा। हमारी समझ में आज सभी देशों के विद्या-प्रेमियों को एकत्र करके उनको सहृदयता के बन्धन से जकड़ देना ही संसार की शान्ति का सबसे अच्छा बीमा है। इन लोगों के सन्देश से मनुष्य संसार के दुःख को अपने दुःख के समान अनुभव करना सीख सकता है। इसी धारणा की प्रेरणा से विद्यार्थिगण जिनके ऊपर संसार के भविष्य का भार आ रहा है, आज राष्ट्रीय विद्यार्थि-सङ्गठनों के साथ साथ अन्तर्राष्ट्रीय विद्यार्थि-परिषदों की आवश्यकता का अनुभव कर रहे हैं। गत दस पाँच वर्षों की घटनाओं से हमारे नवयुवकों का ध्यान वसुधैव कुटुम्बकम् की ओर कुछ कुछ आकर्षित हो चला है। विद्यार्थियों को राष्ट्र में अपने उचित स्थान का परिचय हो रहा है, अतएव उनमें नवीन आशाओं की लहर उठ रही है। विश्व-विद्यालयों के नवयुवक सचमुच विश्व-प्रेम का अनुभव करने लगे हैं, और इस प्रकार अपने नाम को सार्थक करके आधुनिक समाज के मुकुट-मणि बन रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमर्श-विचार

१—'ही' और 'कभी'।

आक्टोबर १९२३ की 'सरस्वती' में श्रीयुत सुदर्शन ने 'ही' शब्द के शुद्ध शुद्ध प्रयोग पर विचार किया है। उनका मत यह है कि 'ही' का उल्लेख उसी शब्द के अनन्तर होना चाहिए जिस पर 'ही' का 'ज़ोर' देना अभीष्ट हो। इस विषय में उनसे किसी को मतभेद नहीं हो सकता। अब प्रश्न यह है कि क्या 'में' 'पर' आदि, जिन शब्दों के साथ आते हैं उन्हीं शब्दों का भाग बन जाते हैं या शब्दरूपेण इनकी कोई अपनी भी सत्ता होती है। पण्डित रामावतारजी के अतिरिक्त और वैयाकरण इन्हें विभक्तियाँ मानते हैं जो शब्दों का भाग होती हैं। पण्डित रामावतार ने इन्हें शब्दों से पृथक् अव्यय माना है। यदि पूर्वोक्त मत ठीक हो तो शुद्ध व्याकरण विभक्ति को शब्द से अलग न होने देगा और 'ही' का स्थान विभक्ति के पीछे रहेगा। इस प्रकार श्रीयुत सुदर्शन की धारणा अयुक्त हो जायगी।

हमारी सम्मति में 'में' 'पर' इत्यादि चाहे विभक्तियाँ हों चाहे अलग अव्यय, हिन्दी भाषा की प्रयोग-परिपाटी ने इन्हें शब्दों से पृथक् कर दिया है और 'ही' का स्थान विकल्प से इनके आगे वा पीछे दोनों जगह बराबर नियत हो गया है। यही बात उर्दू में भी है। उर्दू के वैयाकरण वृथा फ़ारसी और अरबी की प्रथाएँ उर्दू के पद-प्रयोगों में भी ढूँढ़ते हैं। वास्तव में उर्दू की व्याकरण-बनावट हिन्दी से ली गई है। जहाँ हिन्दी-लेखक संस्कृत-लेखकों के पीछे पीछे चले हैं, वहाँ संस्कृत के नियम हिन्दी के भी नियम बन गये हैं। और जहाँ उन्होंने अपना अलग रास्ता निकाला है, वहाँ हिन्दी संस्कृत की अनुगामिनी नहीं रही। 'ही' के विषय में दोनों बातें एक साथ हो जाने से विकल्प हो गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि 'ही' शब्द किसी वस्तु, व्यक्ति या समूह को, जिस पर इसका 'ज़ोर' पड़ता है, दूसरी वस्तुओं, व्यक्तियों और समूहों से अलग करता है। यही इसके प्रयोग का प्रयोजन होता है। परन्तु विभक्ति के पूर्व या पश्चात् आने से इस प्रयोजन की सिद्धि में कोई भेद नहीं पड़ता। यदि 'युधिष्ठिर ही पर' के स्थान में 'युधिष्ठिर पर ही' लिख दिया जाय, तो भी 'ही' का 'ज़ोर' तो युधिष्ठिर पर ही पड़ेगा, क्योंकि 'पर' कोई वस्तु नहीं। ऐसे अवसर बड़े कम आते हैं जहाँ 'पर' को 'में' से अलग करना हो। यथा—

रंग डिबिया पर ही नहीं, डिबिया में भी है।

यहाँ डिबिया शब्द के दोहरा देने से 'पर' और 'में' पर ज़ोर पड़ गया।

इसके विपरीत ऐसे उदाहरण भी हैं जिनमें ही का प्रयोग 'में' इत्यादि के पीछे ही करते बनता है, यथा—

वे घर पर ही हैं, स्कूल में नहीं।

यहाँ कौन कहेगा 'घर ही पर हैं'?

ऐसे विषयों में सबसे प्रबल प्रमाण 'धुरन्धर लेखकों' के लेख होते हैं। नवीन लेखकों को इन 'धुरन्धरों' के दोष-दर्शन की अपेक्षा उनके किये प्रयोगों पर ध्यान देना अधिक लाभकर है।

(२)

श्रीयुत सुदर्शन की दूसरी विप्रतिपत्ति 'कभी' शब्द के प्रयोग पर है। उनका अनुमान है कि इस शब्द का प्रयोग 'सिरे से ही ग़लत' किया गया है। वास्तव में 'कभी' 'कब भी' का अपभ्रंश है। कब का अर्थ है 'किसी समय'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत का 'कदापि' और हिन्दी का 'कभी' एक हैं। 'अभी भी' हर स्थान पर 'अब ही' ही नहीं, कहीं कहीं 'अब भी' भी होता है। जैसे—

'वह अभी नहीं आया'।

यहाँ अभी का अर्थ है 'अब भी'।

यह प्रश्न भाषा-विज्ञानियों के उठाने के हैं। वैयाकरण भी इन पर विचार कर सकते हैं। परन्तु पूरी पर्यालोचना के लिए भाषा का केवल वर्तमान रूप ही नहीं किन्तु उसका पूर्व इतिहास भी ज्ञात होना आवश्यक है।

चमूपति

२—ही का प्रयोग।

ही संस्कृत के 'एव' शब्द का पर्यायवाची शब्द है। संस्कृत में एव शब्द का प्रयोग तीन तरह से होता है—जैसे,

(क) हरिणैव धनं दत्तम् (हरि ने ही धन दिया)

(ख) हरिणा धनमेव दत्तम् (हरि ने धन ही दिया)

(ग) हरिणा धनं दत्तमेव (हरि ने धन दिया ही)

इससे मालूम पड़ता है कि "ही" शब्द जिसके आगे आता है उसी पर ज़ोर डालता है और दूसरों का व्यवच्छेद भी करता है।

इस नियम के अनुसार "धर्मराज युधिष्ठिर पर ही" इत्यादि प्रयोग ग़लत मालूम होते हैं क्योंकि "ही" "पर" के पास है इसलिए वह "पर" पर ही ज़ोर डालेगा "युधिष्ठिर" पर नहीं।

किन्तु ऊपर के संस्कृत वाक्यों में इस नियम का अनुसरण नहीं हुआ है और न हो सकता है। "हरिणैव" के तीन टुकड़े किये जा सकते हैं—

हरि-णा-एव। बीच में "णा" पड़ा हुआ है फिर भी "एव" अच्छी तरह से अपना काम करता है।

कह सकते हैं कि यह भाषा की विशेषता है। हिन्दी एक स्वतन्त्र भाषा है, प्रत्येक बात में वह संस्कृत की नक़ल नहीं कर सकती।

माना नक़ल करना अनिवार्य नहीं है लेकिन जब शब्दों में शक्ति है और जनता भी उसका उपयोग करना चाहती है तब किसी को रोकने का क्या अधिकार है?

सरस्वती के गताङ्क में जो ही शब्द के ऊपर टिप्पणी प्रकाशित हुई है उसमें कहा गया है कि "धर्मराज युधिष्ठिर पर ही" इत्यादि अशुद्ध प्रयोग बड़े बड़े लेखकों के लेखों में पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि बड़े लो ने इसे अपना लिया है। इधर साधारण जनता भी प्रकार के प्रयोग करती है। बस झगड़ा मिट गया, अशुद्ध कहने का किसी को अधिकार नहीं है।

अब प्रश्न इतना और रह गया कि यदि ही शब्द प्र शब्द से दूर रह कर भी उस पर ज़ोर डाल सकता है "हरि ने धन ही दिया" यहाँ पर ही शब्द हरि पर ज़ोर नहीं डालता, उत्तर सरल है—वास्तव में ही शब्द वि पद पर ज़ोर डालता है। इसलिए पद के पास रहना आवश्यक है। विभक्ति चिह्न सहित मूल शब्द को कहते हैं। पद ही किसी अर्थ को बतलाता है न कि को विभक्तिवाचक अव्यय, अथवा मूल शब्द।

'हरि ने' एक पद है। "ही" को इसके पास र आवश्यक है अब चाहे "ही" "हरि" और "ने" के बीच बैठ जावे या बगल में। यह बात भाषा में प्रयोग के उ निर्भर है। संस्कृत-भाषा "ही" (एव) को विभक्तिवा के बाद स्थान देना अच्छा समझती है और हिन्दी-भ विभक्ति के दोनों तरफ़।

इतना सब होने पर इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि पूरे पद के बाद "ही" डालने से सौ तो नहीं बिगड़ता। इसका उत्तर ज़रा कठिन है, क्य "तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्"। फिर इतना लिखना अनुचित न होगा कि "हरि ही ने" अपेक्षा "हरि ने ही" प्रयोग कुछ अच्छा मालूम होता लेकिन यह सब जगह के लिए नियम नहीं है क्य "तुमने ही" की अपेक्षा "तुम्हींने" भी मधुर मालूम होत

(२)

जब ही शब्द सब तब जब के साथ आता है तब उसका काम उन शब्दों पर ज़ोर डालना रहता है। जैसे सभी = सब ही, जभी = जब ही, तभी = तब ही, इत्या लेकिन कभी = कब ही यह ठीक नहीं मालूम होता।

क्योंकि "ही" के साथ होने से "सब जब तब" ज़ोर देकर अपने अर्थ को पुष्ट करते हैं लेकिन "कब साथ "ही" आने से उसका अर्थ बिलकुल बदल जाता है। जैसे—

(क) मैं तब गया था।

(ख) मैं तभी गया था। (ज़ोर आगया)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar